

स्व. विमोद चन्द्र पाण्डे सा
वर्ग स्मृति से उत्तराधिकारी से
प्राकृत भागती अकादमी जयपुर
सन्दर्भ पुस्तकालय को भेंट करके प्राप्त।

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

चतुर्थ भाग

['ज' से 'दस्तदाजी' तक, शब्दसंख्या— १९०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास जी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

सपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेन्द्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड	नगेन्द्र
हरवशलाल शर्मा	रामधन शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र	शिवनदनलाल दर
गोपाल शर्मा	सुधाकर पाडेय
भोलशकर व्यास (सह० सयो०)	करुणापति त्रिपाठी (सयोजक संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी
-------------------	-------------------

नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी ★ नई दिल्ली

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

सं० २०५२ वि०

सन् १९९५ ई०

प्रतियाँ — ६००

मूल्य — रु० २५०/- मात्र

मुद्रक

श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
के लिए आनन्द प्रिंटिंग प्रेस, जगतगज, वाराणसी
द्वारा (ऑफसेट प्रिंटिंग) मुद्रित ।

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओं का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, सशोधित, नवीन संस्करण, स० २०२४ वि० सन् १९६७ ई० में निकला था। इसके भाग क्रमशः अनुपलब्ध होते जा रहे हैं। इसलिए सभा ने यह सकल्प लिया कि इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाय ताकि इसकी उपलब्धता निरन्तर बनी रहे। चौथा भाग इधर कुछ दिनों से अनुपलब्ध था, इसी क्रम में यह संस्करण उपलब्ध कराया जा रहा है।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् निरन्तर करता रहेगा।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
स० २०५२ वि०
१८ अगस्त १९९५ ई० }.

सुधाकर पांडेय
प्रधानमंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गभीर कार्य करनेवाले निरंतरमात्र में प्रकाशस्तम्भ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगर्भा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाम उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुन अवतारणा का गभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्यादित पीढ़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तर-दायित्व का श्रृण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। अपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा समार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के मुन संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रयत्न योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ १४—३१५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस सवध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुन संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामचंद्र जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की सत्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्यय का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है इसी लिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशस्तनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में ऐसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प सबधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की सख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल से एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पीप, सन् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पीप, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पहाल में काशी, प्रयाग एव अन्यत्र स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पञ्चभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित सर्वोद्योग संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों

ना० प्र० सभा, काशी }
विजया दशमी, २०२४ वि० }

द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जमीन सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अद्भुत ग्रंथ हैं और उनमें हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत चतुर्थ खंड में 'ज' से लेकर 'दम्नदानी' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, योगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य मामलों 'विशेष' से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ५२६ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५७६ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथामाम्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप में नित्य सभा में पधारण इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देने रहे और प० कल्याणपति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में कुछियाँ हों, परन्तु हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इनकी और अधिक पूर्ण करते रहे क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं मनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुन्दरान जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव में कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होता रहेगा।

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[छद्मरूपों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अंधेरे०	अंधेरे की सूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अध०	अधकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० स०
अकबरी०	अकबरी दरवार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०) आंधी	अष्टांगयोगसंहिता आंधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम स०
अग्नि०	अग्निशस्त्र, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अजात० अणिमा	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वीं सं० अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग भदिर, उन्नाव	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आश्रय अनु- क्रमणिका (शब्द०) आदि०	आश्रय अनुक्रमणिका आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स० १९५३ ई०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानंद विहारी, बेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आनंदधन (शब्द०) आराधना	कवि आनंदधन आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
अनेक (शब्द०) अनेकार्थ०	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर) अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० स०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, फाँसी, प्र० स०, १९५४ वि०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्य भा० आर्यों०	आर्यकालीन भारत आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० स०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
अभिषात	अभिषात, गणपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इंद्रा०	इंद्रावती, सपा० प्रियामु दरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, सपा०, बजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
अमृतसागर (शब्द०) अयोध्या (शब्द०)	अमृतसागर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवीं सं०
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नरेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०	इत्यलम् इरा०	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद	उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम स०
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खड] सपा० आर० शामशास्त्री, गर्वनमेंट ग्रंथ प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०	एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०, १८८६ वि०

कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०	काश्मीर०	काश्मीर सुयमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पाठ्य वेचन शर्मा 'उग्र', गरुघाट मिर्जापुर, प्र० सं०	किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कबीर प्र०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी	कीर्ति०	कीर्तिलता, स० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी	कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, धाराबकी, २००७ वि०	कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, धाराबकी २००७ वि०	कृषि०	कृषिशास्त्र
कबीर म०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	केशव (शब्द०)	केशवदास
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेस्ते, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव ग्र०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	केशव० भमी०	केशवदास की भमीघुँट
कबीर (शब्द०)	कबीरदास	कोई कवि (शब्द०)	प्रज्ञातनाम कोई कवि
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलाल बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कुलाण्व तत्र (शब्द०)	कुलाण्व तत्र
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	कौटिल्य ग्र०	कौटिल्य का धर्मशास्त्र
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	कवासि	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
करुण०	सेनापति करुण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद प्र० सं०	खालिक०	खालिकवारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कविद (शब्द०)	कविद कवि	खिलीना	खिलीना (मासिक)
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	खुदाराग	खुदाराग और चंद हमीनो के खतूत पाठ्य वेचन शर्मा 'उग्र', गरुघाट, मिर्जापुर, झाँठवाँ सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गग य०	गग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, १९वाँ सं०	गवन	गवन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गालिव०	गालिव की कविता, स० कृष्णदेवप्रसाद गोड़, वाराणसी, प्र० सं०
काव्य० निबध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०	गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	गिरिधरदास (वा० गोपालचंद्र)
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, भागरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
		गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुञ्जन	गुञ्जन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुघर (शब्द०)	गुघर कवि
		गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
		गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
		गुलाल०	गुलाल बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र०

गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी	छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)	छीत०	छीत स्वामी, संपा० प्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, मण्डछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, सवत् २०१२
गोरख०	गोरखबानी, स० डा० पीतांबरदत्त बडव्याल, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०	जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० १३०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०	जग० श० जनानी०	जगजीवन साहब की शब्दावली
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नदबुलारे वाणपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, बाणोवितान, ब्रह्मानाल, वाराणसी	जायसी प्र०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
घाघ०	घाघ और भट्टरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जायसी प्र० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'चंद्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरण (शब्द०)	चरणदास	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सतवा सं०
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	भाँसी०	भाँसी की रानी, बृदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी, द्वि० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'भरक', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चिता	चिता, प्र० सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०	ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चितामणि	चितामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, प्रयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	डोला०	डोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
चित्रा०	चित्रावली, स० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सतवा सं०
चुमते०	चुमते चौपदे, प्रयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-भोध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,		
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०		
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०		
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम ग्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०		

सुलसी ग्रं०	सुलसी ग्रंथावली, सपा० रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय स०	द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, छहेरियासराय, पटना, प्र० स०
सुरसी श०, सुलसी श०	सुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) डेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११	द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर	द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
तेज०	तेजविह्वपनिषद्	घरनी० या०	घरनी माह्व की बानी, डेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
तोष (शब्द०)	कवि तोष	घरम० शब्दा०, घरम० धूप०	घरमदाम की शब्दावली ५५ श्री धूम्रा, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजता प्रेस, लि०, पटना ४
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेन्द्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बवई, प्र० स०	नद० ग्रं०, नददास प्र०	नददास ग्रंथावली, सपा० अजरतनदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
द० सापर	दरिया सागर, डेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	नई०	नई पोथ, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५३
दक्षिणतो०	दक्षिणी का गद्य श्रीराम वर्मा, द्विदी प्रचार सभा, इलाहाबाद, प्र० स०	नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि	नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स०, १९५१ ई०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, डेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०	नया०	नया साहित्य, नए प्रश्न, नददुलारे बाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दश०	दशरूपक, सपा० डा० भोलाशकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०	नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीटर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
दहकते०	दहकते भगवत, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि ।
दाहू०	श्री दाहूदयाल की बानी, स० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नाय (शब्द०)	नाय कवि
दाहूदयाल ग्रं०	दाहूदयाल ग्रंथावली	नायसिद्ध०	नायसिद्ध की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
दाहू० (शब्द०)	दाहूदयाल	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	निवधमालादशं (शब्द०)	निवधमालादशं (म० प्र० द्विवेदी)
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० स०	नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० स०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वैकटेश्वर प्रेस, बवई, १९६१ वि०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, सपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, काशी, प्र० स०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० स०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पदमावत	पदमावत, स० वासुदेवशरण भगवान, साहित्य सदन, चिरगाँव, काशी, प्र० स०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेन्द्रनाथ 'भ्रमर,' नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग	पदु०, पदुमा०	पदुमावती, सपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर मठ
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)		
देशी०	देशी नाममाला		
देनिकी	देनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, काशी, प्र० सं०, १९६६ वि०		
दो सी बावन०	दो सी बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम स०		

५० रा०, ५० रासी	परमाल रासी, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० समा, काशी, प्र० स०		रागेय रायव, आत्माराम पेंड संस, दिल्ली, प्र० स०, १०५३ ई०
परमानंद०	परमानंदसागर	प्रिय०	प्रियप्रवास, प्रयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोष', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, पृष्ठ सं०
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि	प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा प्रयागार, लखनऊ, प्र० सं०	प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० स०
पदें०	पदों की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, १९६६ वि०	प्रेम० श्रीर गोर्की	प्रेमचंद श्रीर गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्दा, राजकमल प्रकाशन लि०, नवई, १९५५ ई०
पल्लव	पल्लव सहव की बानी [१-३ भाग], बेलवे-डियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०	प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० स०, १९६६ वि०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० स०	प्रे० मा० (शब्द०)	प्रेमसागर
पाणिनि०	पाणिनिकानीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण भग-वाल, मोतीबाल बनारसीदास, प्र० स०	प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
पारिजात०	पारिजातहरण	फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरदार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
पावंती	पावंती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० स०, १९५५ ई०	फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० स०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५२ ई०	वंगाल०	वंगाल का काल, हरिवंश राय 'वचन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९४६ ई०
पिजरे०	पिजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	वांकी० प्र०, वांकीदास प्र०	वांकीदास प्रथावली [तीन भाग], संपा० राम-नारायण दूगड़, ना० प्र० समा, काशी, प्र० स०
पू० म० मा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २००६ वि०	वदन०	वंदनवार, वेदेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पू० रा०	पृथ्वीराज रासी [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० समा, काशी, प्र० स०	वद०	वदमाश वर्ण, तेगमली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० स०
पू० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासी [४ खंड], स० कविराज मोहनसिंह, साहित्य सस्यान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० स०	वलवीर (शब्द०)	वलवीर कवि
पोद्दार अभि० प्र०	पोद्दार अभिनंदन प्र०, संपा० वासुदेवशरण भगवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, स० २०१० वि०	बागैदरा	बागैदरा
प्रताप प्र०	प्रतापनारायण मिश्र प्रथावली संपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० समा, वाराणसी, प्र० स०	विल्ले०	विल्लेसुर बकरिहा, निराना, युगमंदिर, सलाव, प्र० स०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	विहारी २०	विहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्ना-कर', गंगा प्रयागार, लखनऊ, प्र० सं०
प्रवध०	प्रवधपत्र, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० स०	विहारी (शब्द०)	कवि विहारी
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० स०	वी० रासी	वीसलदेव रासी, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० समा, काशी, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगीत, संपा० सत संपूरणसिंह, बेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०	वीसल० रास	वीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० स०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा०	वी० श० महा०	वीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह भोरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० स०
		बुद्ध च०	बुद्ध चरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० तथा, वाराणसी, प्र० स०
		वृहत्०	वृहत्संहिता
		वृहत्संहिता (शब्द०)	वृहत्संहिता
		बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
		बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०

बेलि०	बेलि किसन रुक्मिणी री, स० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३१ ई०	भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० स०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा	मति० ग्रं०	मतिराम प्र यावली, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० स०
ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०	मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि प्र यावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'वच्चन,' सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३९ ई०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, तृ० स०	मधुज्वाल	मधुज्वाल सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३९ ई०
भक्तमाल (त्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०	मधु मा०	मधुमालती चार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामभारण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० स०, १९८३ वि०	मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'वच्चन,' सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० स०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६० वि०	मनविरक्त०	मनविरक्तकरण गुटका सार (चरणदास)
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६०	मनु०	मनुस्मृति
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक	मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	मल्लक० बानी	मल्लकदास की बानी, चेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
भा० इ० इ०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३३ वि०	मल्लक० (शब्द०)	मल्लकदास
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद शोभा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५६ वि०	महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, झांसी, नवम स० ।	महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालकार, रक्षाश्रम, आगरा, द्वि० स० १९८७ वि०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भारतेन्दु प्र०	भारतेन्दु प्रयावली [४ भाग], सपा० प्रजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ स०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०	माधवानल०	माधवानल कामकदला, बोधा कवि, नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८९९ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, प० सीताराम-चतुर्वेदी	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भिखारी प्र०	भिखारीदास प्र यावली [दो भाग], सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी	मानव	मानव, कवितासकलन, भगवतीचरण वर्मा
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० स०	मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि	मानस	रामचरितमानस, सपा० शमुनारायण चौवे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
भूषण प्र०	भूषण प्र यावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०	मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९९९ वि०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी	मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'वच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० स०, १९५० ई०
		मुंशी अभि० प्र०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, सपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
		मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
		भृग०	भृगुनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी
		मैला०	मैला भांचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० स०

मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० स०	राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गीरीशंकर हीराचंद श्रोभा, जयमेर, १९६७ वि०, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, काशी, प्र० स०	रा० रु०	राजरूपक, सपा० पं० रामकृष्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०	रा० वि०	राजविलास, सपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०	राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवां स०
युगपथ	युगपथ " " "	रामकवि (शब्द०)	राम कवि
युगात	युगात, सुमित्रानंदन पंत, इन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० स०	राम० च०	सक्षिप्त रामचंद्रिका, सपा० लाल भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, पृष्ठ स०
योग०	योगवाक्पिठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, सधमी वैकुण्ठेश्वर छापा खाना, कल्याण, बंबई स० १९६७ वि०	राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालवद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा प्रकाश, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०	राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म संप्रदाय, सपा० मालवद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रघु० रु०	रघुनाथ रूपक गीतारो, सपा० महतावचंद्र खारेड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	रामरसिक०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास	रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतांबर-दत्त बड़वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ	रामाश्व०	रामाश्वमेध, प्रकाश, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवांनरेश	रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय पटना, प्र० सं०
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	रे० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०	लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
रतन०	रत्नचहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १९८२ ई०	लल्लु (शब्द०)	लल्लुलाल
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०	लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम स०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार	लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा	वरुण०, वरुणरत्नाकर	वरुणरत्नाकर
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०	विद्यापति	विद्यापति, सपा० खगेंद्रनाथ मिश्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
रस०	रसमीमांसा, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०	विनय०	विनयपत्रिका, टीका० प० रामेश्वर भट्ट, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०
रस क०	रसकलश, प्रद्योतसिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय स०	विशाल	विशाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० स०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सपा० धर्मरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
रसखान (शब्द०)	सैयब इब्नाहिम रसखान	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रस र०, रसरतन	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
रसनिधि (शब्द०)	राजा पुष्पसिंह	वेशाली०, वै० न०	वेशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गोवर्धन बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
रहीम०	रहीम रत्नावली	वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रहीम (शब्द०)	अब्दुरहीम खानखाना	व्यंग्यायं (शब्द०)	व्यंग्यायं कीमुदी

व्यास (शब्द०)	अभिकादत्त व्यास	सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
वज्र (शब्द०)	वज्र (शब्द०)	सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान [महामारत]
शं० दि० (शब्द०)	शकरदिग्विजय	सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
शंकर०	शकरसर्वस्व, सपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद पेंड सप्त, आगरा, प्र० स०	स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, प० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिवर्ध, काशी, प्र० स०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि	स० सप्तक	सप्तसई सप्तक, सपा० श्यामसुन्दरदास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० स०
शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, काशी	सहजो०	सहजो नाई की बानी, बैलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतु० स०	साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, काशी, प्र० स०
शाहुजहाँनामा (शब्द०)	शाहुजहाँनामा	सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, सीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
शाङ्गधर स०	शाङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, सवत् १९७१	साम०	सामवेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल पटना, द्वि० स०
शिक्षर०	शिक्षर वशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०, १९८५	सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शास्त्रिनाथ शास्त्री, श्री मृत्युंजय भोपालाल, सखनऊ, प्र० स०
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारैहिंद	सा० लहरी	साहित्यलहरी, सपा० रामलोचनशरण विहारी, पुस्तक मंडार, लहेरियासराय, पटना
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि	सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इडियन प्रेस, प्रयाग
शुक्ल० अभि० प्र०	शुक्ल अभिनदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन	साहित्य०	साहित्यलोचन
शृ० सत० (शब्द०)	शृ गार सप्तसई	सुंदर० प्र०	सुंदरदास अयावसी [दो भाग], सपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर	सुंदरीसिद्धर (शब्द०)	सुंदरी सिद्धर
शेर०	शेर श्री सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	सुखदा	सुखदा, जैनैंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स०
शैली	शैली, कल्याणपति त्रिपाठी	सुधाकर (शब्द०)	सुधाकर द्विबेदी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सपा० डा० कृष्णलाल, चा० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	सुजात०	सुजातशरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० स०
श्रीमानंद (शब्द०)	स्वामी भेदानंद	सुनीता	सुनीता, जैनैंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० स०
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक	सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
श्रीनिवास प्र०	श्रीनिवास अयावसी, सपा डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	सुत०	सुत की माला, पत श्रीर बच्चन, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० स०
संतति०	संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी	सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, बैलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।	सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय स०
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० चमोद ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रीय परिषद्, पटना, प्र० स०	सूर० (शब्द०)	सूरदास
संत र०	संत रविदास श्रीर सनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० स०	सूर० (राधा०)	सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, नैकटेश्वर प्रेस, प्र० स०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बैलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सत्यासी,	सत्यासी, इलाहाबाद जोशी, भारती मंडार, सीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०	सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
संपूर्ण० अभि० प्र०	संपूर्णनिंद अभिनंदन ग्रंथ, सपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी	सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० स०
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०		
सत्य०	कविरत्न सत्यनाथरायण जी की जीवनी, श्री		

सैर कु०	सैर कुहवार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवल- किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०	हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती मंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सी अज्ञान० (शब्द०)	सी अज्ञान और एक सुज्ञान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौष'	हिंदी भा० हि० का० प्र०	हिंदी प्रालोचना हिंदी काव्य पर अंग्रेज प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
स्कंद०	स्कंदशुभ, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० क० का०	'हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिंदी प्रदीप (शब्द०) हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रदीप हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास	हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, ड० कमल कुलशेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, बचहरी रोड
हृ०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी शुभ, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग
हृकायके०	हृकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० सपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हि० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक	हिंदु० सम्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सम्यता, देवीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	हिम त०	हिमतगरिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती मंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
ह० रासो०	हम्मीर रासो, सपा० डा० व्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हिम्मत०	हिम्मतवहादुर विश्वावती, लाला भगवान- दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन	हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि		
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४६ ई०		
हृषं०	हृषंचरित् . एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव- शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना. प्र० सं०, १९५३ ई०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	अव्य०	अव्यय
अ०	अरबी	इब०	इब्रानी
अक० रूप	अकर्मक रूप	उ०	उदाहरण
अनु०	अनुकरण शब्द	उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	उडि०	उडिया
अमृ० मू०	अनुकरणार्थमूलक	उप०	उपसर्ग
अमुर०	अमुरणनात्मक रूप	उभय०	उभयलिङ्ग
अप०	अपभ्रंश	एकव०	एकवचन
अर्धं मा०	अर्धमागधी	कहावत	कहावत
अल्पा०	अल्पार्थक	काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
अव०	अवधी	[को०], [को०]	अन्य कोश

फोक०
क्रि०
क्रि० प्र०
क्रि० प्र०
क्रि० वि०
क्रि० स०
ध्व०
गीत
गुज०
ची०
छ०
जापा०
जावा०
जी०, जीवन०
ज्या०
ज्यो०
डि०
त०
तर्क०
ति०
तु०
दू०
दे०
देश०
देशी
धर्म०
नाम०
ना० घा०
नामिक धातु
ने०
न्याय०
पं०
परि०
पा०
पु०
पुतं०
पु० हि०
पू० हि०
पू०
प्रत्य०
प्र०
प्रा०
प्रे०
फ०
फकीर०

कोंकणी
क्रिया
क्रिया धर्मक
क्रिया प्रयोग
क्रिया विशेषण
क्रिया सकर्मक
क्वचित्
लोकगीत
गुजराती
चीनी भाषा
छंद
जापानी
जावा द्वीप की भाषा
जीवनचरित्
ज्यामिति
ज्योतिष
डिगल
तमिल
तर्कशास्त्र
तिब्बती भाषा
तुर्की
दूहा या दूहला
देखिए
देशज
देशी
धर्मशास्त्र
नामधातु
नामधातुज क्रिया
नामिक धातु
नेपाली
न्याय या तर्कशास्त्र
पंजाबी
परिधिष्ट
पाली
पुलिग
पुतंगाली
पुरानी हिंदी
पूर्वी हिंदी
पृष्ठ
प्रत्यय
प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्राकृत
प्रेरणार्थक रूप
फरोंसीसी भाषा
फकीरों की बोली

फा०
बंग०
बरमी०
बहुव०
बु० ख०
बोल०
भाव०
भू०
भू० कृ०
मरा०
मल०
मला०
मि०
मुसल०
मुहा०
यू०
यी०
राज०
नश०
ला०
ले०
व० कृ०
वि०
वि० द्वि० मू०
वे०
व्या०
(शब्द०)
स०
सयो०
सयो० क्रि०
स०
सक० रूप
सधु०
सर्व०
स्वे०
स्त्रि०
स्त्री०
हि०
④
>
†
‡
✓
*
?

फारसी
बंगला भाषा
बरमी भाषा
बहुवचन
बु देलखड की बोली
बोलचाल
भाववाचक सज्ञा
भूमिका
भूत कृदंत
मराठी
मलयाली या मलयालम भाषा
मलायम भाषा
मिलाइए
मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहावरा
यूनानी
यौगिक
राजस्थानी
लश्करी
लाक्षणिक
लैटिन
वर्तमान कृदंत
विशेषण
धिषमद्विशक्तिमूलक
वैदिक
व्याकरण
शब्दसागर
संस्कृत
संयोजक अव्यय
संयोजक क्रिया
सकर्मक
सकर्मक रूप
सधुक्कड़ी भाषा
सर्वनाम
स्पेनी भाषा
स्त्रियो द्वारा प्रयुक्त
स्त्रीलिंग
हिंदी
काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्युत्पन्न
प्रातीय प्रयोग
ग्राम्य प्रयोग
धातुचिह्न
सभाव्य व्युत्पत्ति
अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

ज

ज—हिंदी वर्णमाला में चव्वग के अंतर्गत एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चव्वग का तीसरा अक्षर है। इसका धातु प्रत्यय सवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। 'क' इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंकशन—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेखाएँ लाइन मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। २ वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। समय। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंग^१—संज्ञा स्त्री० [फा०, सं० जङ्ग] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—महदखान फिर हलल जंग हूँ और मचाइय। सनमुख फिर बट्टि सुमट बहु कट्टि हटाइय।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

घो०—जंगमावर। जंगजू।

जंग^२—संज्ञा स्त्री० [अ० जङ्ग] एक प्रकार की घड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

जंग^३—संज्ञा पुं० [फा० जङ्ग] १ लोहे का मुरचा। धातुजन्य मेल।

क्रि० प्र०—लगना।

२ घटा। घड़ियाल (को०)। ३. हथियारों का देश (को०)।

जंगआवर—वि० [फा०] लड़नेवाला योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—घोर सुना है प्रताप वडे जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है घोर जंगजू राजपूत व भील बराबर भाते जाते हैं।—महाराणा प्रताप (शब्द०)।

जंगम^१—वि० [सं० जङ्गम] १ चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। उ०—पुष्पराशि समान उसकी देख पावन काति। भूप की होने लगी जंगम सता की भाति।—शकुं०, पृ० ७। २. जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम दिव। ३. गमनशील प्राणी से उत्पन्न या प्राणिजन्य।

जंगम^२—संज्ञा पुं० दाक्षिणात्य लिगायत शैव संप्रदाय के गुरु।

विशेष—ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कीपीन पहनते हैं। इन लोगों का लिगायती में बड़ा मान है।

३ गमनशील यति। जोगी। उ०—कहाँ जंगम तु कौन नर क्यों आगम ह्यँ कौन।—पृ० रा०, ६। २२। ४. जाना। गमन। उ०—तिन रिधि पूछिय साहि, कवन फारन इछ भगम। कवन धान, किहि नाम, कवन दिसि करिव सु जंगम।—पृ० रा०, १। ५६१।

जंगमकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गमकुटी] छतरी (को०)।

जंगमगुल्म—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमगुल्म] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम विप—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमविप] वह विप जो चर प्राणियों के दण्ड, आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो।

विशेष—सृश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम विप माने हैं—दृष्टि, निश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, आतंज, घास (घाड़), मुखसंदेश, अस्थि, पित्त, विषादित, शूल और शय या मृत वेद। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विप, साधारण सर्प के दण्ड में विप; कृत्ते, बिल्ली, बंदर, गोहृ आदि के नख और दाँत में विप; बिच्छू, मिड़, सक्की मछली आदि के घाड़ में विप होता है।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] [वि० जंगली] १. जलमय भूमि। रेगिस्तान। २. वन। कानन। धरण्य।

मुहा०—जंगल खंगालना=जंगल में खाना। जंगल की खाँ पड़ताल करना या खानना। जंगल में भगल=सुनसान स्थान में चहल पहल। जंगल जाना=टट्टी जाना। पाखाने जाना।

३. मौस। ४. एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ५. बंजर भूमि। ऊसर (को०)।

जंगल जलेबी—संज्ञा पुं० [हि० जंगल + जलेबी] १. गु। गलीज। गु का लेंड। २. धरियारे की जाति का एक पीसा जिसके पीले रंग के फूल के बदर हुंठलाकार लिपटे हुए बीज होते हैं। जलेबी।

जंगला^१—संज्ञा पुं० [पु० जंगला] १. खिड़की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पक्ति। कटहरा। बाड़। २. चौखट या खिड़की जिसमें जाली या छड़ लपी हों। जंगला।

क्रि० प्र०—सगाना।

३. कुपट्टे आदि के किनारे पर काड़ा हुआ वेल बूटा।

जंगला^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] १. संगीत के बारह मुकामों में से एक। २. एक राग का नाम। ३. एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। ४. धन्न के वे पेड़ या बूटल जिनसे कूटकर धन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हि० जंगल] १. जंगल में मिलने या होनेवाला। जंगल सबधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कड़ा। २. भापसे भाप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या सगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। ३. जंगल में रहनेवाला। घनेला। जैसे, जंगली आदमी, जंगली जानवर, जंगली हाथी। ४. जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर। ५. असभ्य। उजड़। बिना सलोक के। जैसे, जंगली आदमी।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हि० जंगली+बादाम] १. कतिले की काष्ठ का एक पेड़। फूल। पिनार।

विशेष—यह पूरा भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों तथा पर्वतान और टनासरिन के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से फडी दुग्ध आती है। इसके फलों के बीज को उबालकर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को सड़की के दिनों में लोग भूनकर खी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं।

२. हड़ की काष्ठ का एक पेड़।

विशेष—यह छत्तमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसकी पीप से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो पीप और पुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसेली होती हैं और चमड़ा सिक्खने के साथ खे जाती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुधरो को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब औषध के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीरों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बादाम और मट बादाम भी कहते हैं।

३. गी रेंडू—संज्ञा पुं० [हि० जंगली+रेंडू] दे० 'बन रेंडू'।

४. गी—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगूला] घुंघरू का दाना। घोर।

५. गार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगार] [वि० जंगारी] १. ताँबे का दस्तान। सूतिया। २. एक प्रकार का रंग। उ०—सस्वीर वही संवरको जंगार में प्राया।—फकीर मं०, पृ० ३३०।

विशेष—यह ताँबे का कसाव है जिसे सिरकाफण लोग निकालते हैं। वे ताँबे के घूर्णों को सिरके के भाँके में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकालकर छिछले बरतन में सुखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रंगाई के काम में आती है।

जंगारी—वि० [फ्रा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगार] दे० 'जंगार'। उ०—और पापाय रंग तेहि माई। येहि बिधि पाँचो तत दरसाई।—पट०, पृ० २३८।

जंगाल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली—वि० [फ्रा० जंगार] दे० 'जंगारी'। उ०—स्याही सुरख सफेदी होई। वरद बाति जंगाली सोई।—घट०, पृ० १७।

जंगादी—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेतमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगादीरही—संज्ञा स्त्री [हि० जंगारी+रही] गधा विरोधा की पनी मीठी रंग की रही को छोड़े कुत्तियों पर लगाई जाती है।

जंगी—वि० [फ्रा०] १. सड़ाई से संवध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कातून। २. फौजी। सैनिक। सेना संवधी। जैसे, जंगी साट, जंगी भफसर।

यौ०—जंगी साट = प्रधान सेनापति।

३. बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। ४. घोर। लडाका। बहादुर। जैसे, जंगी घादमी। ५. स्वस्थ। पुष्ट। जैसे, जंगी जवान।

जंगी^२—संज्ञा पुं० [देश०] (कहारों की बोलचाल में) घोड़ा। जैसे,—धावने जंगी, बचा है।

जंगी^३—वि० [फ्रा०] जंगवार का। हथग देश का। जैसे, जंगी हड़।

जंगी^४—संज्ञा सं० जंगवार देश का निवासी। हथग।

जंगी जहाज—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगी+जहाज] लडाई के काम का जहाज। युद्धपोत।

जंगी वेड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगी+हि० वेड़ा] लडाकू जहाजों का समूह। युद्धपोतों का काफिला।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री [फ्रा० जंगी+हि० हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं० जंगुल] जहर। विष।

जंगे जरगरी—संज्ञा स्त्री [फ्रा० जंगेजरगरी] केवल दिखावटी या झूठमूठ की लडाई। कूटयुद्ध [को०]।

जंगेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घुस जिसे चोरी, मामरी और छद्मी भी कहते हैं। वि० दे० 'रुही'।

जंगे—संज्ञा स्त्री [हि० जंगी] बड़ी घुंघरू खगी कमरपट्टी जिसे अहीर या घोड़ी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंगोजदल—संज्ञा स्त्री [फ्रा० जंगो+घ० जदल] रक्तपात। मारकाट। लडाई भगडा। उ०—नई हुमको हुगिज है वह बल। ता उससे करें हम जंगोजदल।—दक्खिनी०, पृ० २२२।

जंगोजिवाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंगो+घ० जिवाल] दे० 'जंगोजदल'।

जंग^१—संज्ञा स्त्री [सं० जङ्घा] दे० 'जघा'। उ०—जानु जघ निर्मग मुदर कलित कचन दड। फाछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खड।—सूर०, १-३०७।

जंग^२—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घा] जाँघ में पहनी जानेवाली जाँघिया।

जंघा—संज्ञा स्त्री [सं० जङ्घा] १. पिठली। २. जाँघ। रान। उ०। ३. कंधी का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कंधी के फलों के साथ ढाखा जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाकर, जंघाकार—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाकर, जङ्घाकार] हरकारा। पापघ्न [को०]।

जंघापाण्डु—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में जाँघों की रक्षा के काम में उपयोगी कपड़ा [को०]।

जंघादल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घापथ] पैदल रास्ता [को०]।

जंघाकार—संज्ञा पुं० [हि० जंघा+कारना] कहारों की बोली में

वह खाई जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबन्धु] एक ऋषि का नाम [को०]।

जंघावल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घावल] दोड़ने की शक्ति। जाँघ की ताकत [को०]।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पृश्नखी। कुसटा।

जघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जघा + आर] वह फोड़ा जो जाँघ में हो। विशेष—यह भाकृति में लवा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारथ] १, एक ऋषि का नाम। २ जघारथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जघारा—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० जज्ज (= लडना), या सं० जङ्ग (= युद्ध) + हिं० आर (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी भगड़ातु होती है। उ०—तब जंघारो बीर बर स्वामि सु भागे आइ।—पृ० रा०, ६१। २४००।

जघारि—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारि] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल^१—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाल] १ धावन। धावक। दूत। २ भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति।

विशेष—इस जाति के भ्रतर्गत हरिण, एण, कुरग, ऋष्य, पुषत, न्यकु, शवर, राजीव, मुही आदि हैं। तामड़े रंग के हिरन को हरिण, कृष्णवर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरग, नीलवर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चद्रविद्रुयुक्त को पुषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, न्यकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाल^२—वि० वेग से दोड़नेवाला [को०]।

जंघिल—वि० [सं० जङ्घिल] शीघ्रगामी। फुर्तीला। प्रजवी। तेजी से दोड़नेवाला [को०]।

जंजपूक—संज्ञा पुं० [सं० जज्जपूक] मंद स्वर से अप करनेवाला भक्त। उ०—जजपूक गठरी सो बैठयो भुको कमर सन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

जजबील—संज्ञा स्त्री० [अ० जजबील] सोंठ। सूखी अदरक। गुंठि [को०]।

जजर^१—वि० [सं० जजर] १० 'जजल'।

जजर^२—संज्ञा पुं० [प्रा० जजीर] शृंखला। जजीर। उ०—सबई लगि दिढ़ जजर जेरी। मोह लोह की पाहनि बेरी।—नद० प्र०, पृ० २७३।

जंजरित—वि० [हिं० जं (= जनु) + सं० जटित, हिं० जरित] ग्रथित सा। जड़ा हुआ सा। उ०—नयन उदय पु डरि प्रसन भ्रमरीय सु राजे। गुजहार जजरित तड़ित बहरि सु विराजे।—पृ० रा० २। ५१०।

जंजल—वि० [सं० जजर, प्रा० जज्जर] पुराना और कमबोर। बेकाम। जीर्ण भीर्ण।

जंजार—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] १० 'जंजाल' उ०—कहा पड़ावे बावरे और सकल जजार।—संत रा०, पृ० १४३।

जंजाल—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जजालिया, जजाली] १ प्रपच। झूठ। बखेड़ा। उ०—बस प्रभु दीनवधु हरि, कारन रहित दयाल। सुखसिदास लठ ताहि भजु छाडि कपठ जजाल।—तुलसी (शब्द०)। १. बंजन। फँसान। उलझन। उ०—(क) भाजा लै के बल्थो उपति यहँ उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब सीन्हों, मिटयो जन्म जजाल।—सूर० (शब्द०)। (ख) हृदय की कवहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन गई काया, दुख जजाल जटी।—सूर० (शब्द०)।

मुहा०—जजाल तोड़ना=बधन या फँसाव को दूर करना। उ०—भव जजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय दिशायो।—सूर० (शब्द०)। जजाल में पड़ना या फँसना=कठिनायत में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

३ पानी का भँवर। ४. एक प्रकार की बड़ी पलीतेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि लुटिय। तुपक तेग जजालन छुटिय।—सूदन (शब्द०)। ५. एक बड़े मुँह की तोप। इसमें ककड़ परपर घाबि भरकर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का घुस तोड़ने के काम में आती थी। ६. बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हिं० जजाल + इया (प्रत्य०)] १. जंजाल या जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। उ०—बाहु रे ईश्वर! तेरे सरीखा जजालिया कोई जालिया भी न निकसै।—श्यामा०, पृ० ५। २. भगड़ातु। उपद्रवी। फसादी।

जजाली^१—वि० [हिं० जजाल] भगड़ातु। बखेड़िया। फसादी।

जंजाली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजाल] वह रस्सी और किरली जिससे पाल बड़ाते या गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [प्रा० जजीर] [वि० जजीरी] १ साँक। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की जजीर। उ०—तुम सु छुड़ावहु मत कह, बहुरि जरहु जजीर।—पृ० रा०, ६। १६२। २. वेड़ी।

मुहा०—जजीर डालना=पैर में वेड़ी डालना। बाँधना। बंधी करना। पैर में जजीर पड़ना=(१) जजीर में जकड़ा जाना। बंधी होना। (२) स्वच्छदता का अपहरण होना। बाधा या विवशता। उ०—प्रीतम बसत पहार पर, हूम जमुना के तीर। प्रथ तो मिलना कठिन है, पाँव परी जजीर।—(शब्द०)।

३. किराड की कुंडी या सिकड़ी।

मुहा०—जजीर बजाना=कुंडी सटकटाना। जंजीर जकड़ना=कुंडी बंद करना।

जंजीरखाना—संज्ञा पुं० [प्रा० जजीरखानह] कारागृह। जेलखाना [को०]।

जंजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की जिंदा लोहे के बने जंजीर की तरह नाचने वाली है। यह लोहे के बने

कर सी जाती है और यह केवल कसीदे और सूईकारी में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरि(७)—वि० [हि० जजीर + ई] जजीरदार। जिसमें जजीर लगी हो।

ज जीरी—वि० [क्रा० जजीरी] १ जजीरदार। २ जजीर में बंधा। बंदी [को०]।

मुहा०—जजीरी गोला=तोप के वे गोले जो कई एक साथ जजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं।

ज जीरेदार—वि० [हि० जजीरा + दार] जिसमें जजीरा पड़ा हो। जजीरा डाला हुआ। लहरियादार।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे, जंजीरे-दार सिलाई।

जट—संज्ञा पुं० [म० ज्वाड्ड] बिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिविलियन मजिस्ट्रेट। जंठ मजिस्टर।

जटिलमैन—संज्ञा पुं० [म०] १ भलामानुस। सम्य पुरुष। २. भंगरेजी चाल डाल से रहनेवाला आदमी। उ०—सुम लोग मबी जटिलमैन से डूट करना बिलकुल नहीं जानता।—भेमघन०, भा० २, पृ० ७६।

जंठ—संज्ञा पुं० [ड्य०] एक जगली पेठ जिसे साँगर भी कहते हैं। इसकी फलियों का प्रचार बनाया जाता है। उ०—डैले, पीलू, आक और जंठ के कुछमुड़ाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

जंठैल^१—वि० [हि० जट + एल (प्रत्य०)] १ प्रधान। बड़ा। २. स्वस्थ। तदुस्त। हट्टाकट्टा।

जंठैल^२—संज्ञा पुं० [म० जनरल] सैनिक आफसर। नायक। उ०—भलकारी ने टोकने के उत्तर में कहा—हम तुम्हारे जंठैल के पास जाचता है।—माँसी०, पृ० ४३५।

जंत^३(७)—संज्ञा पुं० [सं० जन्तु] प्राणी। जीव। जंतु। उ०—कर्महि करि उपजत ये जत। कर्महि करि पुनि सबको अंत।—नद० प्र०, पृ० ३०६।

जौ०—जीवजत=जीव जंतु। उ०—(क) जीवजत घन विघन बन जीव जीव बल छोन।—पु० रा०, १। २२। (ख) जा दिन जीव जत नहीं कोई।—रामानंद, पृ० १२।

जत^२—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र, प्रा० जत] यंत्र। तांत्रिक यंत्र। जंतर।

जौ०—जत मत्त=जतर मतर

जंतर—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. कल। योजार। यंत्र। २. तांत्रिक यंत्र।

जौ०—जतर मतर।

३. चौकोर या लंबी तावीज जिसमें तांत्रिक यंत्र या कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा या सिद्धि के लिये पहनते हैं। उ०—जतर टोना मूढ हिलावम ता कूं साँच न मानो।—धरण० बानी, पृ० १११। ५. गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े

पाट में गुंथे होते हैं। कठुला। तावीज। ५. यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल या घासव आदि तैयार करते हैं। ६. जतर मंतर। मानमदिर। आकाशलोचन। ७. परधर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोंका। ८. चीणा। चीन नामक वाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पुं० [हि० यन्त्र + मन्त्र] १ यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। २ आकाशलोचन। मानमदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी या तानी जाती है। जत्रा।

जंतरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्र] १ छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। वि० दे० 'जता'—२।

मुहा०—जंतरी में खींचना=(१) तारों को जंते में डालकर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

२ पत्र। तिथिपत्र। एक तरह का पचाग। उ०—मेरे यहाँ की सग्रह की जतरियों आदि को देखकर ही यह बात लिखी है।—सुदर० प्र०, भा० १ (जी०) पृ० १२१।

जंतरी^२—संज्ञा पुं० १ जादूगर। मानमती। २ वाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल व्यक्ति। उ०—विना जंतरी यंत्र वाजता गगन में।—पलदू०, पृ० ६४।

जंता^१—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] १. यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। २ सोनारों और तारकसों का एक योजार जिसमें डालकर वे तार खींचते हैं।

विशेष—यह योजार लोहे की एक लंबी पट्टी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पक्तियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उससे छोटे छेदों में, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकालकर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

जंता^२—वि० [सं० यन्त्र (=यता) यंत्रणा देनेवाला। दड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—साकिनी डाकिनी पूतना घेत बैताल भूत प्रथम जय जता।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७।

जंता^३—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] भ्रमवरण का वाहक। सारथी उ०—जाकों तू भयो जात है जता। अठथों गर्भें घु वेरो हवा।—नद० प्र०, पृ० २२१।

जंता^४(७)—संज्ञा पुं० [सं० जनिहृ > जनिता] [स्त्री० जंती] पिता। बाप।

जंती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जंता] छोटा जता जिससे सोनार भारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

जंती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिहृ > जनिता, या हि० जनना] माता। माँ।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

जौ०—जीवजंतु=प्राणी। जानवर।

२. महामारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी चरबी

से होम करने के पीछे सौ पुत्र हो गए । ३. आत्मा । जीवस्थ
आत्मा (को०) । ४. क्षुद्र जीव । निम्न कोटि का जानवर । कीट
पतंग आदि (को०) ।

जंतुकुं—सङ्घा पुं० [सं० जन्तुकुम्भ] १. शंख का कीड़ा । २. शंख ।

जंतुका—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुका] लाख । जंतुका । लाख ।

जंतुघ्न^१—वि० [सं० जन्तुघ्न] प्राणिनाशक । कृमिघ्न ।

जंतुघ्न^२—सङ्घा पुं० १. विडग । वायविडग । २. हींग । ३. विजोरा
नीवू । ४. वह घोष जिसके सपर्क से कीड़े मर जाते हैं ।

जंतुघ्नी—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुघ्नी] वायविडग । विडग ।

जंतुनाशक—सङ्घा पुं० [सं० जन्तुनाशक] हींग ।

जंतुपादप—सङ्घा पुं० [सं० जन्तुपादप] कोशाम्र या कोसम नाम का
वृक्ष । वि० दे० 'कोसम' [को०] ।

जंतुफल—सङ्घा पुं० [सं० जन्तुफल] उदुवर । गूलर । ऊमर ।

जंतुमति—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुमती] पृथ्वी । धरती [को०] ।

जंतुमारी—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुमारी] नीवू ।

जंतुला—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुला] काँस नाम की घास ।

जंतुशाला—सङ्घा पुं० [सं० जन्तुशाला] विडियाघर ।

जंतुहंत्री—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्तुहन्त्री] वायविडग । जंतुघ्नी ।

जंत्र—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्र] १. कल । घोजार । २. तांत्रिक यंत्र ।

यौ०—जन्मयंत्र ।

३. ताला । ४. तंत्र वाद्य । वाजा । वि० दे० 'यंत्र' । उ०—कबीर
जन्म न बाजही, टूटि गया सब तार ।—कबीर सा० सं०,
पृ० ७६ ।

जत्रना^१—क्रि० सं० [हि० जत्र] ताला लगाना । ताले के भीतर
बद करना । जकड़वद करना । उ०—सभा राउ गुरुमहिमुर
मन्त्री । भरत भगति सबके मति जत्री ।—तुलसी (शब्द०) ।

जत्रना^२—सङ्घा स्त्री० [सं० यन्त्रणा] दे० 'यन्त्रणा' ।

जन्मयंत्र—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्र यन्त्र] दे० 'जन्मयंत्र', 'यन्त्र यन्त्र' ।
उ०—जयति पर जन्म यन्त्राभिचार प्रसन, कारमनि कूट
कृत्यादि हता ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६७ ।

जंत्रा—सङ्घा पुं० [हि० जन्तरा] दे० 'जन्तरा' ।

जन्त्रित—[सं० यन्त्रित] १. नियन्त्रित । बंद । बँधा । उ०—जयति
निरुपाधि भक्तिभाव जन्त्रित हृदय बधु हित चित्रकूटादि
चारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ताला लगा हुआ । ताले में
बंद । उ०—नाम पाहरू राति दिन, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपद जन्त्रित जाहि प्रान केहि बाट ।—मानस,
५ । ३० ।

जंत्री^१—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्रिक] घीणा आदि वजानेवाला । वाजा
वजानेवाला ।

जंत्री^२—वि० यन्त्रित करनेवाला । बद्ध करनेवाला । जकड़वद करने-
वाला ।

जंत्री^३—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्रिन्] वाजा । उ०—वाजन दे वीजतरा जग
जन्त्री ना छेड । तुम्हे विरानी क्या पढी भगनी आप निवेर ।—
कबीर (शब्द०) ।

जंत्री^४—सङ्घा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का त्रिपिपत्र । पत्रा ।
जंतरी ।

जंद^१—सङ्घा पुं० [फ़ा० जंद, मि० सं० छन्दस्] १. पारसियों का
अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ ।

विशेष—इसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है । इसके
श्लोक को 'गाथा' या मन्त्र (मि० सं० मन्त्र) कहते हैं । इसके
छंद भी देवता वेदों के छंदों और देवताओं से मिलते हैं ।

२. वह भाषा जिसमें पारसियों का जंद अवेस्ता नामक धर्मग्रंथ
लिखा गया है ।

यौ०—जंद अवेस्ता=जरयुस्त रचित पारसियों का धर्मग्रंथ ।

जंदरा—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्र > हि० जन्तर > जंदरा] १. यंत्र ।
कल ।

मुहा०—जंदरा ढीला होना=(१) कल पुर्जे वेकार होना ।
(२) हाथ पैर सुस्त होना । पकावट भाना । नस
ढीली होना ।

२. जाता । जैसे, कुछ गेहूँ गीले, कुछ जंदरे ढीले । † ३. ताला ।

जंदा^१—सङ्घा पुं० [सं० यन्त्र हि० जन्त्र] ताला । उ०—जिस विषम
कोठड़ी जंदे मारे । विनु बीजी क्यों खलहि ताले ।—प्राण०,
पृ० ३२ ।

जघाला—सङ्घा स्त्री० [सं० यन्त्राला] १२८ हाथ लंबी, १६ हाथ
चौड़ी, और १२६ हाथ ऊँची नाव ।

जंपती—सङ्घा पुं० [सं० जम्पती] दपती । पतिपत्नी ।

जंपना^१—क्रि० भ० [सं० जल्प; प्रा० जप्प, जप, सं० जल्पना]
कहना । कथन करना । उ० (क) डम जपे चंद वरदिया
कहा निषट्टे इय प्रलो ।—पृ० रा० ५७ । २३६ । (ख)
सम वनिता वर बदि चंद जपिय कोमल कल ।—पृ० रा०,
१।१३ । (ग) यों कवि भूपण जपत है लखि सपति को
भलकापति लाजै ।—भूपण (शब्द०) ।

जंव^१—सङ्घा पुं० [सं० जम्भ] कंदम । कीचड़ । पक ।

जव^२—सङ्घा पुं० [भ० जव] पाप । दोष । गुनाह । उ०—नपस तेरा
जव अती बोले है जान । लायक उस है वेजन्न पद्यान ।—
दक्खिनी०, पृ० ३८१ ।

जंवक^१—सङ्घा पुं० [भ० जवक, तुल० सं० चम्पक] चपा का
फूल [को०] ।

जवक^२—सङ्घा पुं० [सं० जम्बुक] जवुक । उ०—ऐसा एक मधुमा
देखा । जबक करे केहुरि छूँ खेला ।—कबीर प्र०, पृ० १३५ ।

जंवाल—सङ्घा पुं० [सं० जम्वाल] १. कीचड़ । काँसो । पंक । २.
सेवार । शौवाल । ३. काई । ४. केवड़ा ।

जंवाला—सङ्घा स्त्री० [सं० जम्वाला] केतकी का वृक्ष ।

जंवाल्लिनी—सङ्घा स्त्री० [सं० जम्वाल्लिनी] नदी । सरिता [को०] ।

जंवीर—सङ्घा पुं० [सं० जम्बीर] १. जंबोरी नीवू । २. मधुमा ।
३. सफेद या हल्के रंग की तुलसी । ४. बनतुलसी ।

जंबोरी नीवू—सङ्घा पुं० [सं० जम्बीर] एक प्रकार का खट्टी नीवू ।

विशेष—इसका फल कागदी नीवू से बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभरे महीन महीन दानों के कारण छुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहुरा हरा होता है, पर पकने पर पीला हो जाता है। इसका पेठ दूदा और कटीला होता है। बसत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत पाते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंघील—संज्ञा स्त्री० [फा० जम्बील] भोली। पिटारी। ठोकरी।

जंघू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] १. जवू वृक्ष। जामुन। २. जामुन का फल। उ०—जुत जवु फल चारि तकि सुख करौ हों।—पनानद०, पृ० ३५२। ३. जाववान्। उ०—बंघि पाज सागरह धनुष भंगद सुप्रीवह। नील जवु सु जटाल घली राहुन भय पीवह।—पृ० रा०, २।२७१।

जवुक—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] [स्त्री० जवुकी] १. बड़ा जामुन। फरेदा। २. श्योनाक वृक्ष। ३. सुवर्ण केतकी। केमड़ा। ४. शृगाल। गीदड़। ५. वरुण। ६. एक वृक्ष। ७. टेंदू का पेड़। सोना पाड़ा। ८. स्कंद का एक अनुचर। ९. नीच व्यक्ति। निम्न कोटि का भ्रातृमी। [को०]।

जवुका—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] शृगाल। गीदड़। जंघुक। उ०—बरनी बहू मन जंघुका बहुत भोजन खात।—सत-बानी०, भा० १, पृ० ११६।

जवुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जवुद्वीप'।

जंघुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।

विशेष—यह द्वीप पुष्पिनी के मध्य में माना गया है। पुराण का मत है कि यह गोस है और चारों ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक साक्ष योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नौ नौ हजार योजन विस्तीर्ण हैं। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्मय, और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शृगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्मय तथा हिरण्मय और कुरुवर्ष के मध्य में हैं। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनके नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष हैं, और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनके नाम निषध, हेमकूट और हिमालय हैं। इलावृत के पूर्व में मद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष हैं, तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जवुद्वीप इसलिए पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंघु का पेठ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंघुद्वीप के कैलाश भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जवुवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवृक्ष] जवुद्वीप।

जंघुनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुनदी] दे० 'जंघु नदी'।

जंघुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुप्रस्थ] एक प्राचीन नगर।

विशेष—इस नगर का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि भाषकल का जम्बू या जम्बू (काश्मीर) यही नगर है।

जंघुमत्—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] १. एक नगर का नाम जिसे जाववान् भी कहते हैं। २. पर्वत [को०]।

जंघुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुमति] एक मण्डरा का नाम।

जंघुमान—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] दे० 'जंघुमत्' [को०]।

जंघुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम।

जंघुर—संज्ञा पुं० [फा० जवूर] दे० 'जवूर'। उ०—लासन भीर बहादुर जगी। जंघुर बमाने तीर खदगी।—जायसी (शब्द०)।

जंघुल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुल] १. जवू। जामुन। २. केतकी का पेठ। ३. कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की सी पक जाती है। सुपकनवा।

जवुवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवनज] दे० 'जवुवनज'।

जंघुस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जवुस्वामिन्] एक जैन स्यविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदेव मेठ की स्त्री पारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंघू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २. जामुन का फल। ३. नागदमनी। दोना। ४. काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन फल के भ्रम में बलीव भी है।

जंघू—वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जवुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुका] क्लिप्तमिथ।

जंघुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जवुखंड'।

जंघुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] दे० 'जवुद्वीप'।

जवूनद—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूनद] स्वर्ण। सोना। उ०—जवूनद को मेरु वनायव। पक्ष वृक्ष सुर तहाँ गायव। दुतिय रजत गिरि जहाँ सुहायव। ताहि नाम कैलाश धरायव।—प० रासो, पृ० २२।

जवूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] १. पुराणानुसार जवुद्वीप की एक नदी।

विशेष—यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस में निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जवुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मलोक से निकली हुई लिखा है।

जंघूर—संज्ञा पुं० [फा० जंघूर] १. जवूरा। २. तोप की चरख। ३. पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर सादी जाती थी। जंघूरक। ४. जिड़। बर्र (को०)। ५. तहल की मक्की (को०)। ६. एक जोहार (को०)।

जंवरक—संज्ञा स्त्री० [जम्वरक] छोटी तोप जो प्राय ऊँटों पर लादी जाती है। २ तोप की चखें। ३ भवर कली।

जंवरची—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंवरची] १. जंवर नामक छोटी तोप का चलानेवाला। तोपची। बर्कंदाज। सिपाही। तुपकची।

जंवूरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंवरूर] १. चखें जिसपर तोप चढ़ाई जाती है। २ भँवर कडी। भँवर कली। ३ सोने लोहे आदि धातुओं के भारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि को पकड़कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं।

विशेष—यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में बड़ा होता है। इसमें चिमटे की तरह चिपककर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं। इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं। कारीगर इसमें चीजों को दबाकर ऐंठते, रेतते, तथा और काम करते हैं।

४ लकड़ी का एक वस्त्र जो मस्तूल पर आधा लगा रहता है और जिसपर पाल का ढाँचा रहता है।—(लघ०)।

जम्बूल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूल] १. जामुन का वृक्ष। २. केवड़े का पेड़।

जम्बूनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूनज] श्वेत जपा पुष्प। सफेद गुडहल का फूल।

जंभ—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] दाढ़। चौमर। २. जवड़ा। ३. एक दैत्य का नाम जो महिषासुर का पिता था और जिसे इंद्र ने मारा था। उ०—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाढ़ी सुभ्रम पर रावण सदम पर रघुकुलराज है।—भूषण (शब्द०)।

यौ०—जम्भद्विप। जंभदेवी। जंभरिपु=इंद्र का नाम।

४ प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक। ६ जंबोरी नीवू। ७ कथा और हंसली। ८ भक्षण। ९ जम्हाई।

जंभक^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्भक] १. जंबोरी नीवू। २. शिव। ३. एक राजा का नाम।

जंभक^२—वि० १. जम्हाई या नौद लानेवाला। २. हिंसक। भक्षक। ३. कामुक।

जंभका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भका] जम्हाई।

जंभन—संज्ञा पुं० [सं० जम्भन] १. भक्षण। २. रति। सयोग। ३. जम्हाई।

जंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] जंभाई। जम्हाई।

जंभाराति—संज्ञा पुं० [सं० जम्भाराति] जंभ भ्रसुर के शत्रु इंद्र [को०]।

जंभारि—संज्ञा पुं० [सं० जम्भारि] १. इंद्र। २. अग्नि। ३. वज्र। ४. विष्णु।

जंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भिका] जम्हाई। जंभा [को०]।

जंभी, जंभीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्भिन्, जम्भीर] दे० 'जंबोरी नीवू'। उ०—कहूँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत भ्रम जंभीर है।—भूषण प्र०, पृ० ४।

जंभीरी—संज्ञा पुं० [सं० जम्भीर] दे० 'जंबोरी नीवू'।

जंभूरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंवरूर > जंवूरा] दे० 'जंवूरा'।

जंवालिनो—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्वालिनो] नदी।

जंगरा—संज्ञा पुं० [देश०] सर्व, भूग इत्यादि के वे ठठस जो बाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं। जंगरा।

जंगरैत—वि० [हिं० जांगर + ऐत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जंगरैतन] १. जांगरवाला। २. परिश्रमी। मेहनती।

जंगला—संज्ञा पुं० [हिं० जंगला] १. दे० 'जंगला'। २. दे० 'जंगला'।

जंचना—क्रि० प्र० [हिं० जांचना] १. जांचा जाना। देख भाल करना। २. जांच में पूरा उतरना। उचित में ठीक या अच्छा ठहरना। उचित तथा अच्छा ठहरना। उचित या अच्छा प्रतीत होना। ठीक या अच्छा जान रहना। जैसे,—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जंचता। (ख) मुझे उसकी बात जंच गई। ३. खाप बड़ना। प्रतीत होना। निश्चय होना। मन में बैठना। जैसे,—मुझे तुम्हारी बात नहीं जंचती।

जंघा—वि० [हिं० जंचना] १. जंघा हुआ। कुपरीसित। २. श्रवण्य। श्रवुक। जैसे,—जाँचा हाथ।

जंजाल^१—संज्ञा पुं० [हिं० जंग + जाल] एक प्रकार की प्राचीन श्रवुक। जजाल। उ०—छुट्टी एक कासे बिसाले जंजाले।—हिममत०, पृ० १२।

जंजीरनी^१—वि० [हिं० जजोर] बाँधनेवाली। उ०—कच मेचक जाल जंजीरनी तू।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० २१०।

जंतसरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जाँत + सर (प्रत्य०)] [स्त्री० जंतसरी, जंतसारी] वह गीत जिसे स्त्रियाँ चक्की पीसते समय गाती हैं। जाँते का गीत।

जंतसार—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रशाला] जाँता गाढ़ने का स्थान। वह स्थान जहाँ जाँता गाढ़ा जाता है।

जंताना—क्रि० प्र० [हिं० जाँता] १. जाँते में पिस जाना। २. कुचल जाना। चूरचूर होना।

जंघुर^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जंघूर] एक प्रकार की तोप जो प्रायः ऊँटों पर चलती थी। जंघूरक। उ०—लाखन मार बहादुर जंघी। जंघुर, कमाने तीर खदगी।—जायसी प्र०, पृ० २२२।

जंभाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या भालस्य मालुम पडने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने या दुर्बलता आदि के कारण होती है। उवासी।

विशेष—इसमें मुँह के खुलते ही साँस से साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिंच आती है और कुछ दान ठहरकर धीरे धीरे बाहर निकलती है। यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है। प्राय दूसरे को जंभाई लेते हुए देखकर भी जंभाई आने लगती है। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जंभाई आती है उसे 'वेवदत्त' कहते हैं। वैद्यक के अनुसार जंभाई आने पर उत्तम सुगन्धित पदार्थ खाना चाहिए।

क्रि० प्र०—खाना।—लेना।

जैमाना—क्रि० प्र० [सं० जूम्भण] जैमाई लेना ।

जैवाड़ी—संज्ञा पु० [सं० जामावृ, प्रा० जामाव, हि० जमाई] जामाता । दामाद ।

जैवारा—संज्ञा पु० [सं० यवाप्र या हि० जी] १ दे० 'जवारा' । २ नवरात्र । उ०—नेवरात को लोग जैवारा भी कहते हैं ।—मुक्ताम्रि० प्र० (सा०), पृ० १३२ ।

जै—संज्ञा पु० [सं०] १ मृत्युञ्जय । २ जन्म । ३ पिता । ४ विष्णु । ५. विष । ६ मुक्ति । ७ तेज । ८ पिशाच । ९. वम । १०. छंदशास्त्रानुसार एक गण जो तीन प्रसरों का होता है । पञ्चसू ।

विशेष—इसके आदि और अंत के वरुण लघु और मध्य का वरुण ब्रु होता है (151) । जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि । इस का देवता साँप और फल रोग माना गया है ।

जै^२—क्रि० १. वेदवाम् । वेगित । तेज । २. जीतनेवाला । जैता ।

जै^३—प्रत्यय उत्पन्न । जात । जैसे,—देशज, पित्तज, वातज, आदि ।

विशेष—बहु प्रत्यय प्रायः सत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता है । पंचमी सत्पुरुष आदि में पंचम्यत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि । पर सप्तमी सत्पुरुष में 'प्राकृद्', 'सरस्', 'काल' और 'यु' इन चार शब्दों के प्रतिरिक्त, जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे, प्राकृषिज, सरसिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप निवृत्ति होता है, जैसे, मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि ।

जै^४—अर्थ० पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त । उ०—चंद्र सूर्य का गम नहीं जहाँ ज दशन पावे दास ।—रामानंद० पृ० १० ।

जै^५—क्रि० वि० [सं० यज] दे० 'जहाँ' । उ०—वालों ढोला देखलउ, जई पाणी कूवेण ।—ढोला०, पृ० ६५७ ।

जै^६—संज्ञा स्त्री० [सं० जय, हि० जै] दे० 'जय' । उ०—निय भासा कपई, साहस कपई, जइ सूर जइ पाण्डीआ ।—कीर्ति०, पृ० ४८ ।

जैस^७—वि० [सं० यादव] [अन्य रूप जइसन, जइसे] दे० 'जैसा' । उ०—(क) गए सपति हसन की पाँती । सा मध्ये उन जइस प्रजाती ।—कबीर सा०, पृ० ६५ । (ख) वेबि सरोरुह ऊपर देखन जइसन दुतिष चवा ।—विद्यापति०, पृ० २४ । (ग) सुनइत रस कथा थापए सीत । जइसे कुरबिनी सुनए सगीत ।—विद्यापति०, पृ० ४०६ ।

जै^८—संज्ञा स्त्री० [सं० यज, प्रा० जय, हि० जी] १ जो की जाति का एक अन्न ।

विशेष—इसका पोषा जो के पोषे से बहुत मिलता जुलता है और जो के पोषे से अधिक बढ़ता है । जो, गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत में बोया जाता है । बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके हरे डठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम आते हैं । काटने के बाद डठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं । इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन

बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड़ दी जाती है । चौथी बार इसमें प्रायः हाथ भर या इससे कुछ कम लबी वालें लगती हैं । इन्हीं बालों में जई के दाने लगते हैं । बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है । फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड़ जाते हैं और डठल भी निकम्मे हो जाते हैं । एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन डठल होते हैं । इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है । इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जो आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहाँ इसके घाटे की रोटियाँ भी बनती हैं । इसके हरे डठल गेहूँ और जौ के मूसे से अधिक पोषक होते हैं और गोएँ, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें घड़े घास से खाते हैं ।

२ जो का छोटा अकुर ।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नवरात्र में देवी की स्थापना के साथ जोड़े से जो भी बोए जाते हैं । अष्टमी या नवमी के दिन वे अकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर भगवत्स्वरूप धरने यजमानों की मेंट करते हैं । उन्हीं अकुरों को जई कहते हैं । इस अर्थ में इनके साथ 'देना' 'खोसना' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है ।

मुहा०—जई बालना = अकुर निकालने लिये किसी अन्न को भिगोना या तर स्थान में रखना । जई लेना = किसी अन्न को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा कि नहीं । जैसे,—धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि ।

४. उन फलों की बतिया या फली जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है । जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई । उ०—(क) सख धरजि तरबिए तरबनी कुम्हिलैहँ कुम्हड़े की जई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—लगना । उ०—बचन सुपन्न मुकुल अवलोकनि, गुननिधि पदुप मई । परस परम अनुराग सीधि मुख, लगी प्रमोद जई ।—सूर०, १०।१७६२ ।

जई^२—वि० [सं० जयिन्, प्रा० जई] दे० 'जयी' ।

जईफ—वि० [प्र० जईफ] [वि० स्त्री० जईफा] बुद्धा । धृष्ट ।

जईफी—संज्ञा स्त्री० [फा० जईफी] बुढ़ापा । बुढ़ावस्था । उ०—जवानी का कमाया जईफी में काम आयगा ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३४ ।

जईन^३—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'जमुना' । उ०—सब पिरथमी असीसह, जोरि जेरि के हाथ । गाग जईन जो लहि जल, तो लहि अम्मर माथ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १३० ।

जउवा^४—संज्ञा पु० [देश०] एक तरह का रोगकीट । उ०—जउवा नारु दुखित रोग ।—दरिया० वानी, पृ० ५० ।

जऊ^५—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] जो । अगर । यद्यपि । यद्यपि ।

उ०—धन तन पानिप को जऊ, छकत रहै दिन राति । तऊ ललन लोयननि की, नैयुक प्यास न जाति ।—स० सप्तक, पृ० २४७ ।

जकंद०—सझा श्री० [फ्रा० जगद] छलांग । उछाल । चौकड़ी ।

जकंदना०—क्रि० प्र० [हि० जकद + ना (प्रत्य०)] १. कूदना । उछलना । उ०—सजोम जकदत जात तुरग । चढ़े रन सूरनि रग उमग ।—हम्मीर०, पृ० ५० । २. दूट पड़ना । उ०—जमन जोर करि घाइया तव भरत जकदे । मानो राहु सपट्टिया भच्छन नू चदे ।—सूदन (शब्द०) ।

जक^१—सझा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ष] १. घनरक्षक भूत प्रेत । यक्ष । २. कज्जस भ्रादमी ।

जक^२—सझा श्री० [हि० झक] [वि० झक्की] १. जिद्द । हठ । अड़ । उ०—हुती जिती जग में अधमाई सो में सदै करी । प्रथम समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी ।—सूर०, १।१३० ।

क्रि० प्र०—पकड़ना ।

२. धुन । रट । ज०—जदपि नाहि नाहि नहीं बदन लगी जक जाति । तदपि भौह हाँसी भरिनु, हाँसी पै ठहराति ।—बिहारी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—जक बंधना = रट लगना । धुन लगना । उ०—तव पद चमक चकचने चद्रवृत्त चख चितवत एक टक जक बंध गई है ।—चरण (शब्द०) ।

जक^३—सझा श्री० [फ्रा० जक] १. हार । पराजय । उ०—यही हैं प्रकसर कजा के जिनसे फरिषते भी, जक उठा चुके हैं ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ८५७ । २. हानि । घाटा । टोटा ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पाना ।

३. पराभव । लज्जा । ४. डर । खौफ । भय ।

जक^४—सझा श्री० [प्र० जका] सुख । शाति । चैन । उ०—सुख चाहै घर उद्यमी जक न परे दिन राति ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १७४ ।

जकड़—सझा श्री० [हि० जकड़ना] जकड़ने का भाव । कसकर बाँधना ।

मुहा०—जकड़वद करना = (१) खूब कसकर बाँधना । (२) मच्छी तरह फँसा लेना । पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना ।

जकड़ना^१—क्रि० प्र० [सं० युक्त + करण या शृङ्खल (= सिकड़ी)] कसकर बाँधना । जैसे,—उसके हाथ पैर जकड़ दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—डालना ।

जकड़ना^२—क्रि० प्र० अकड़ने आदि के कारण अगों का हिलने डुलने के योग्य न रह जाना । जैसे, हाथ पैर जकड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठाना ।

जकन—सझा पुं० [प्र० जकन] लुढ़ी । ठोड़ी । उ०—जब से चाहा है तेरा चाहे जकन, भद्र चरमो से मेरे जारी है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१ ।

जकना०—क्रि० प्र० [हि० छक या चकपकाना भयवा देश०] [वि० चकित] अचभे में आना । भौचक्का होना । चकपकाना । उ०—(क) तकि तकि चहूँ धोर जकि सी रही यकि, बकि बकि उठे छकि छेल की लगन में ।—दीनदयालु (शब्द०) । (ख) तर दोउ घरनि गिरे महराह । 'कोउ रहे आकाश देखत, कोउ रहे सिर नाह । धरिक लौं जकि रहे तहें तहें देख गति बिसराह ।—सूर०, १०।३८७ । (ग) दूत दबकाने, धिन्नगुप्त हूँ चकाने भी जकाने जमलाल पापपुंज लुंज ल्ये गए ।—पद्माकर प्र०, पृ० २५६ ।

जकर—सझा पुं० [प्र० जकर] शिशन । पुरुषेन्द्रिय । २. नर । ३. फौलाद [को०] ।

जकरना०—क्रि० प्र० [हि० जकड़ना] दे० 'जकड़ना' । उ०—श्यामा तेरे नेह की धोर जकरि जिय मोर ।—श्यामा०, पृ० १७१ ।

जकरिया—सझा पुं० [प्र० जकरिया] एक यहूदी पैगबर या भविष्य-वक्ता जो भारे से चीरे गए थे । उ०—योहन् जकरिया भविष्यवक्ता का पुत्र था ।—कबीर म०, पृ० २६५ ।

जकात^१—सझा श्री० [प्र० जकात] दान । खेरात ।

क्रि० प्र०—देना ।—करना ।—पाना ।

जकात^२—[प्र० जका (= वृद्धि ?)] कर । महसूल । उ०—(क) उस समय उड़ीसा में कौडियों के द्वारा क्रय विक्रय होता था । यहाँ की मुख्य आय जमींदारी और जकात से थी ।—शुक्ल ग्रंथि० प्र० (इति०), पृ० ११५ ।

जकाती—सझा पुं० [हि० जकात] दे० 'जपाती' ।

जकित०—वि० [हि० चकित] चकित । विस्मित । स्तमित । उ०—हरिमुख किधो मोहिनी माई । 'सूरदास प्रभु बदन बिलोकत जकित चकित चित भगत न जाई ।—सूर (शब्द०) ।

जकुट—सझा पुं० [सं०] १. मलयाचल । २. कुच्चा । ३. बैंगन का फूल । ४. जोड़ा । युग्म (को०) ।

जक्की^१—सझा श्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति ।

विशेष—इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में पाई जाती है । गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली जाती है ।

जक्की^२—वि० [हि० झक] दे० 'झक्की' ।

जक्त०—सझा पुं० [सं० जगत] दे० 'जगत' । उ०—धोर ते धोर ले एक रस रहत है, ऐसे जान जक्त में विरले प्राणी ।—कबीर० रे०, पृ० २७ ।

जक्त०—सझा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष' ।

जज्ञण—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण । भोजन । खाना । उ०—
सधु शब्द की सची जज्ञण । नानक कहे उदासी लक्षण ।—
प्राण०, पृ० १६८ ।

जक्ष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्ष्मा] दे० 'यक्ष्मा' या 'क्षयी' ।

जख्वा—संज्ञा स्त्री० [प्र० जाका, हि० जक] सुख । चैन । उ०—उन
सतन के साथ से जिवड़ा पावे जख । दरिया ऐसे साध के चित
चरनो ही रख ।—दरिया० बानी, पृ० २ ।

जखनः—क्रि० वि० [हि० जिस+सं० क्षण] जिस समय । जब ।
उ०—जखने चलिख सुरतान लेख परि खेप जान को ।
—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

जखनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी प्रा० जखिनी] दे० 'यक्षिणी'

जखनी^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० यखनी] दे० 'यखनी' ।

जखम—संज्ञा पुं० [फा० जखम, मि० सं० यक्ष्म] १. वह क्षत जो
शरीर में घाघात या प्रत्यक्ष घात के लगने के कारण हो
जाय । घाव । २. मानसिक दुःख का घाघात । सदमा ।

क्रि० प्र०—करना ।—खाना ।—खेना ।—पूजना । भरना ।—
लगना ।—होना ।

मुझा—जखम ताजा या हरा हो भाना = पीते हुए कष्ट का फिर
लौट भाना । गई हुई विपत्ति का फिर भा जाना । जखम पर
नमक छिड़कना = दुःख बढ़ाना ।

जख्मो—वि० [फा० जख्मी] जिसे जखम लगा हो । घायल । घुट्टा ।

ज खीर—संज्ञा पुं० [प्र० जखीरह्, हि० जखीरा] खजाना । कोष ।
समृद्ध । उ०—किल्ला में पाया और जेता जखीर । सावक
ही खडपुर नै कीर्ना बहीर ।—शिखर०, पृ० २३ ।

खीरा—संज्ञा पुं० [प्र० जखीरह्] १. वह स्थान जहाँ एक ही
प्रकार की बहुत सी चीजों का संग्रह हो । कोष । खजाना ।
२. समृद्ध । ढेर । समृद्ध । उ०—रहै जखीरा गढ़ के जेता ।—ध०
रासो, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

यौ०—जखीरा प्रयोज = दे० 'जखीरेबाज' । जखीराप्रयोजी
दे० 'जखीरेबाजी' ।

१. वह भाग का स्थान जहाँ बिछी के लिये तरल तरल के पैर पोके
और बीज आदि मिलते हों ।

जखीरेबाज—वि० पुं० [प्र० जखीरह् + फा० बाज (प्रत्य०)] जखीरे-
बाजी करनेवाला । प्रप आदि का प्रपसचय करनेवाला ।

जखीरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जखीरेबाज + ई] प्रप आदि या
उपयोग में आनेवाली और बिकनेवाली वस्तुओं का इस विचार
से सचय करना कि जब महुँगी होगी सब इसे बेचेंगे ।

जखेड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जखीरह्, हि० जखीरा] १. दे० 'जखीरा' ।
२. जमाव । गूथ । समूह । ३. दे० 'बखेड़ा' ।

जखैया—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जख] । एक प्रकार का
कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगो को
प्रचिक कष्ट देता है ।

जखल—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जख] दे० 'यक्ष' ।

जख्म—संज्ञा पुं० [फा० जख्म] दे० 'जखम' ।

यौ०—जख्मखुर्दा = घायल । जख्मी । जख्मेजिगर = दिल की
चोट । इश्क का घाव । प्रेम की पीड़ा ।

जगद—संज्ञा स्त्री० [फा० जगद] छलाँग । चौकड़ी । कुदान [को०] ।

जग^१—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] १. ससार । विश्व । दुनिया । उ०—
तुलसी या जग भाइ के सबसे मिलिए घाय । का जाने केहि
भेष में नारायण मिल जाय ।—तुलसी (शब्द०) । २. ससार
के लोग । जनसमुदाय । उ०—साँच कहौ तो मारन घावे,
भूठे जग पतियाना ।—कबीर (शब्द०) ।

जग^२—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग्घ, जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
सुन्यो द्रद्र मेरी जग मेटा । यह मदमस्त नद की वेटा । नद०
प्र०, पृ० १८१ ।

जगकर—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर] दे० 'जगकर्ता' ।

जगकर्ता—संज्ञा पुं० [हि० जग + कर्ता] ससार के निर्माता ।
ईश्वर । उ०—वे जगकर्ता सब कछु महही । वेद शास्त्र सब
तिन कहैं कहहीं ।—कबीर सा०, पृ० ४८२ ।

जगकारन—संज्ञा पुं० [हि० जग + कारन] जगत के कारणभूत ।
परमात्मा । उ०—जगकारन सारन भव भंजन घरनी मार ।
—मानस, ५।१ ।

जगचख—संज्ञा पुं० [हि० जग + सं० चक्षु] दे० 'जगच्चक्षु' ।
उ०—भाइ ऊतन घाम भजोध्या जगचख बस भस हरि
जोधा ।—रा० रू०, पृ० ११ ।

जगचार—संज्ञा पुं० [हि० जग + चार (प्रत्य०)] लौकिक
रस्म । नेग । उ०—किया ज्यो जो समुझ हो जगचार प्रमीर ।
न ले कुच की जब फिर चल्या वह फकीर ।—दक्खिनी०,
पृ० १३७ ।

जगच्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + चक्षु] सूर्य ।

जगजंत—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + यन्त्र] जगतचक्र । उ०—
कृपा घन भानद प्रचार जगजंत है ।—घनानंद, पृ० १६५ ।

जगजगा^१—संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल आदि का बहुत
पतला चमकीला तश्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काटकर टिकुली
और ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं । पन्नी ।

जगजगा^२—वि० चमकीला । प्रकाशित । जो जगमगाता हो ।

जगजगाना—क्रि० प्र० [अनु०] चमकना । जगमगाना ।

जगजननि—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + जननी] दे० 'जगज्जननी' ।
उ०—सग सती जगजननि भवानी ।—मानस ।

जगजामिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + यामिनी] भवनिशा ।
संसाररूपी रात्रि । उ०—एहि जगजामिनी जागहि जोनी ।
मानस, २।६३ ।

जगजाहिर—वि० [हि० जग + प्र० जाहिर] व्यक्त । स्पष्ट । सर्व-
ज्ञात । सर्वविदित । उ०—प्रयो वह जगजाहिर हो ।—सुनीता,
पृ० ३१० ।

जगजोनि—संज्ञा पुं० [सं० जगयोनि] ब्रह्मा । उ०—सोक
कनकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुनगन जगजोनी ।—
मानस, २।२६६ ।

जगज्जननी—सच्चा स्त्री० [सं०] जगदविका । जगद्धात्री । पर-
मेश्वरी [को०] ।

जगज्जयी—वि० [सं० जगत् + जयिन्] विश्वविजयी [को०] ।

जगमप—सच्चा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा
जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था । आजकल भी
कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका
व्यवहार होता है ।

जगद्भाल—सच्चा पुं० [म०] भाईबर । व्यर्थ का आयोजन ।

जगण्—सच्चा पुं० [सं०] पिगल भाल के अनुसार तीन भक्षरों का
एक गण जिसमें मध्य का भक्षर गुह्य और आदि और अंत के
भक्षर लघु होते हैं । जैसे,—महेश, रमेश, गणेश, हस्त ।

विशेष—दे० 'ज—१०' ।

जगत्—सच्चा पुं० [सं०] १ वायु । २. महादेव । ३ जगम । ४.
विश्व । संसार ।

यौ०—जगत्कर्ता, जगत्कारण, जगत्सारण, जगत्पति, जगत्पिता,
जगत्प्रपिता = परमेश्वर । ईश्वर । जगत्प्रसायण = विष्णु ।
जगत्प्रसिद्ध = विश्वप्रसिद्ध । लोक में ख्यात ।

पर्या०—जगती । लोक । भुवन । विश्व ।

५ गोपाचदन ।

जगत्—सच्चा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुत्सी] कुएँ के ऊपर
चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिसपर खड़े होकर पानी
भरते हैं ।

जगत्—सच्चा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत्' ।

यौ०—जगत्जनक = ईश्वर । जगत्जननि = दे० 'जगज्जननी' ।
जगत्तारन = परमात्मा । जगत्सेठ ।

जगत्सेठ—सच्चा पुं० [सं० जगत् + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन,
जिसकी साख सारे संसार में मानी जाय ।

जगती—सच्चा स्त्री० [सं०] १ संसार । भुवन । २. पृथिवी । भूमि ।

यौ०—जगतीचर = मानव । मनुष्य । जगतीजानि = राजा ।
भूपति । जगतीपति, जगतीपाल, जगतीमर्ता = दे० 'जगतीजानि' ।

३ एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर
होते हैं । ४ मनुष्य जाति । मानव जाति [को०] । ५ गऊ ।
गाय [को०] । ६ मकान की भूमि । गृह के निमित्त या घर
से संबद्ध भूमि [को०] । ७ जामुन के वृक्ष से युक्त स्थान ।
वह जगह जहाँ जामुन लगा हो [को०] ।

जगतीवल्ल—सच्चा पुं० [सं०] पृथिवी । भूमि ।

जगतीघर—सच्चा पुं० [सं०] १ बोधिसत्व । २ भूधर । पर्वत [को०] ।

जगतीरुह—सच्चा पुं० [सं०] वृक्ष । पेड़ । पीछा [को०] ।

जगत्कर्ता—सच्चा पुं० [सं० जगत्कर्तृ] १ ईश्वर । परमेश्वर । २
धाता । विधाता । ब्रह्मा [को०] ।

जगत्प्रभु—सच्चा पुं० [सं०] १ पितामह ब्रह्मा । २. नारायण । विष्णु ।
३. महेश । शंकर । शिव [को०] ।

जगत्प्राण—सच्चा पुं० [सं०] समीरण । वायु । हवा [को०] ।

जगत्साक्षी—सच्चा पुं० [सं० जगत्साक्षिन्] भानु । सूर्यः ।

जगत्सेतु—सच्चा पुं० [सं०] परमेश्वर ।

जगदंतक—सच्चा पुं० [सं० जगत् + अन्तक] मृत्यु । काल ।

जगदंबा जगदंबिका—सच्चा स्त्री० [सं० जगत् + अम्बा; -अम्बिका]
दुर्गा । भवानी । उ०—(क) जगदंबा जहाँ भवतरी से पुर
बरनि कि जाय ।—मानस, १ । ४ । (ख) जगदंबिका जानि
भव भामा ।—मानस, १ । १०० ।

जगद्—सच्चा पुं० [सं०] पालक । रक्षक ।

जगदात्म(तु)—सच्चा पुं० [सं० जगदात्मन्] परमात्मा । परमेश्वर ।
उ०—जगदात्मा महेश पुराणी ।—मानस, १ । ६४ ।

जगदात्मा—सच्चा पुं० [सं० जगदात्मन्] १. परमात्मा । २. वायु [को०] ।

जगदादि—सच्चा पुं० [सं० जगदादिः] १. ब्रह्मा । २. परमेश्वर ।

जगदादिज—सच्चा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगदाधार—सच्चा पुं० [सं० जगदाधार] १. परमेश्वर । २. वायु ।
हवा । ३. काल । समय [को०] । ४. शेषनाग । जगत् को
धारण करनेवाले । उ०—(२) जय अन्त जय जगदाधारा ।
—मानस ६ । ७६ । (ख) जगदाधार शेष किमि चठई चले
खिसियाइ ।—मानस, ६ । ५३ ।

जगदानंद—सच्चा पुं० [सं० जगत् + आनन्द] परमेश्वर ।

जगदायु—सच्चा पुं० [सं० जगत् + आयु] वायु । हवा ।

जगदीश—सच्चा पुं० [सं० जगत् + ईश] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।
३. जगन्नाथ ।

जगदीश्वर—सच्चा पुं० [सं० जगत् + ईश्वर] १. परमेश्वर । जगदीश ।
२. इन्द्र । मधवा [को०] । ३. शिव का नाम [को०] । ४. राजा ।
भूपति [को०] ।

जगदीश्वरी—सच्चा स्त्री० [सं०] भगवती ।

जगद्गुरु—सच्चा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. शिव । ३. विष्णु
[को०] । ४. ब्रह्मा [को०] । ५. नारद । ६. अत्यंत पूज्य या
प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें । ७. शंकराचार्य
की गद्दी पर के महंतों की उपाधि ।

जगद्गौरी—सच्चा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी । २. मनसा देवी का
एक नाम ।

विशेष—यह नागों की बहन और जरतार ऋषि की पत्नी थी ।
जगद्दीप—सच्चा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. महादेव । शिव । ३.
आदित्य । सूर्य [को०] ।

जगद्धाता—सच्चा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] १. ब्रह्मा ।
२. विष्णु । ३. महादेव ।

जगद्धात्री—सच्चा स्त्री० [म०] १. दुर्गा की एक मूर्ति । २. सरस्वती ।

जगद्भक्त—सच्चा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जगद्बीज—सच्चा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

जगद्योनि^१—सच्चा पुं० [सं०] १. शिव । २. विष्णु । ३. ब्रह्मा ।
४. परमेश्वर ।

जगद्योनि^२—सच्चा स्त्री० पृथिवी । धरा ।

जगद्वंश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + वंश] श्रीकृष्ण का एक नाम [को०] ।

जगद्वंश—वि० ससार द्वारा पूजनीय या पूज्य ।

जगद्वंश—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी ।

जगद्विख्यात—वि० [सं० जगत् + विख्यात] लोकप्रसिद्ध । सर्वख्यात ।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल ।

जगन०—संज्ञा पुं० [सं० यजन्] दे० 'यज्ञ' । उ०—जोवेजौ गृहि गृहि जगन जागवे, जगनि जगनि कीजे तप जाप ।—वेसि, दू० ५० ।

जगनक—संज्ञा पुं० [सं० यजनक, अथवा देश०] महोबा के राजा परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि ।

जगना—क्रि० प्र० [सं० जागरण] १. नींद से उठना । निद्रा त्याग करना । सोने की अवस्था में न रहना ।

क्रि० प्र०—उठना ।—जाना ।—पढ़ना ।

२. सचेत होना । सावधान होना । खबरदार होना । ३. देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना । ४. उत्तेजित होना । उमड़ना या उभड़ना । वेग से प्रकट होना । जैसे, शरीर में काम जगना । ५. (आग का) जलना । बलना । दहकना । जैसे, आग जगना । उ०—करि उपचार यकी सदै चल उताल नंदनंद । चदक चंदन चद ते ज्वाल जगी चोचद ।—मृ० सत० (शब्द०) । ६. जगमगाना । चमकना । जैसे, ज्योति जगना ।

जनिवास—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवास] दे० 'जगन्निवास' । उ०—जगन्निवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम ।—मानस १। १६१ ।

जगनीदी—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + नीदी] जनींदी । गर्वसुप्त । सोते जागते सी दशा । उ०—वह सोता तो रहा पर जग भी रहा था । सच पूछो, तो वह जगनींदी में पड़ा था ।—सुनीता, पृ० ३०८ ।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जगन्नु' [को०] ।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + नाथ] जगत् का नाथ । ईश्वर । २. विष्णु । ३. विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो उड़ीसा के भतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है ।

विशेष—यह मूर्ति प्रकली नहीं रहती, बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं । तीनों मूर्तियाँ चंदन की होती हैं । समय समय पर पुरानी मूर्तियों का चिसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं । सर्वसाधारण इस मूर्ति बदलने को 'नवकलेवर' या 'कलेवर बदलना' कहते हैं । साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति सारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है । पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मलमास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है । कूर्म, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, रुद्रिह, अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक

और माहात्म्य दिए गए हैं । इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति पहले पहल किसी जगल में पाई गई थी । उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा ययाति-केसरी ने, जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जगल से ढूँढ़कर पुरी में स्थापित किया था । जगन्नाथ जी का वर्तमान भव्य और विशाल मंदिर गगनश के पाँचवें राजा भीमदेव ने सन् ११४८ से सन् ११६८ तक में बनवाया था । सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति काला पहाड़ ने उड़ीसा को जीतकर जगन्नाथ जी की मूर्ति आग में फेंक दी थी । जगन्नाथ और बलराम की आजकल की मूर्तियों में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं । सुभद्रा की मूर्तियों में न हाथ होते हैं और न पैर । अनुमान किया जाता है कि या तो आरंभ में जगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ ई० में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों । नए कलेवर में मूर्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं । इन मूर्तियों को अधिकार भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं । भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों वरुणों के लोग बिना स्पर्शस्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं । महाप्रसाद का भात 'भटका' कहलाता है, जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवासस्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रासाद स्वरूप बाँटते हैं । जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं ।

यौ०—जगन्नाथ का भटका या भात = जगन्नाथ जी का महाप्रसाद ।

४. बगल के दक्षिण उड़ीसा के भतर्गत समुद्र के किनारे का प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धर्मों के अनर्गत है ।

विशेष—इसे पुरी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुरी, जगन्नाथ क्षेत्र और जगन्नाथ धाम भी कहते हैं । अधिकार पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है । जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर यही है । इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जातिभेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता । पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से 'रथयात्रा' और 'नवकलेवर' के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं । उन अवसरों पर यहाँ लाखों यात्री आते हैं । यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं ।

जगन्निधता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निधन्तृ] परमात्मा । ईश्वर ।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । परमेश्वर । २. विष्णु ।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. जल । कीट । ३. पशु । जानवर (को०) ।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

जगन्मयी—संज्ञा पुं० [सं०] १. लक्ष्मी । २. समस्त ससार को चलाने-वाली शक्ति ।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + मातृ] १. दुर्गा का एक नाम । २. लक्ष्मी [को०] ।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. महामाया ।

जगपतिनीॐ—संज्ञा स्त्री० [सं० यज्ञपत्नी] याज्ञिकों की वे स्त्रियाँ जो कृष्ण को भोजन देने गई थीं । उ०—जगपतिनीन भ्रुपुष्ट दैन । बोले सब हरि करना ऐन ।—नद० प्र०, पृ० ३०० ।

जगप्रानॐ—संज्ञा पुं० [जगत् + प्राण] वायु । समीरण । उ०—यावत् ही हेमन्त तो कंपन लगे जहान । कोक कोकनद मे दुखी ग्रहित भए जगप्रान ।—दीन० प्र०, १६५ ।

जगवन्दॐ—वि० [सं० जगत् + वन्द्य] जिसकी वदना ससार करे । संसार द्वारा पूजित । जगद्वन्द्य । उ०—प्रापनपी जु तज्यो जगवद है ।—केशव (शब्द०) ।

जगधीती—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + धीती] जगत् की चर्चा । लौकिक वृत्त ।

जगभिषक्ॐ—संज्ञा पुं० [हि० जग + भिषक्] मोंठ ।—अनेकार्य०, पृ० १०४ ।

जगमग—वि० [प्रनु०] १ प्रकाशित । जिसपर प्रकाश पड़ता हो । २ चमकीला । चमकदार । उ०—हसा जगमग जगमग होई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६ ।

जगमग^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'जगमगाहट' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जगमगनाॐ—वि० [हि० जगमग] जगमगानेवाला । जगमग करनेवाला । चमकनेवाला । उ०—फूलन के खमा दोऊ फूलन के ढाडी चार, फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना ।—नद प्र०, पृ० ३७४ ।

जगमगा—वि० [हि० जगमग] ३० 'जगमग' । उ०—जगमगा चिकुर प्रतिहि सोहे रावे जैसे पुरसही ।—कबीर सा०, पृ० १०४ ।

जगमगाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] किसी वस्तु का स्वयं प्रयत्न किसी का प्रकाश पढ़ने के कारण खूब चमकना । झलकना । दमकना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पे प्रगट सब लोक सिरतार्ज ।—घनानन्द, पृ० ४६२ ।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० जगमग] चमक । चमकमाहट । जगमगाने का भाव ।

जगमोहनी^१—संज्ञा पुं० [हि० जग + मोहन] मंदिर का बाहरी प्रांगण । उ०—सो वह ब्रह्मन् तो बाहिर जगमोहन में प्रभुन की आज्ञा पाय के दैव्यो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २६१ ।

जगमोहन^२—वि० [सं० जगत् + मोहन] [वि० स्त्री० जगमोहिनी] विश्व को मुग्ध करनेवाला ।

जगर—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिह्वकतर ।

जगरनॐ—संज्ञा पुं० [सं० जागरण] ३० 'जागरण' उ०—जगन्नाथ जगरन के आई । पुनि दुवारिका जाइ नहाई ।—जायसी (शब्द०) ।

जगरनाथ^१—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नाथ] दे० 'जगन्नाथ' ।

जगरमगर—संज्ञा पुं० [हि०] १. चकपकाहट । चकाचौँच । २ माया । दे० 'जगमग' । उ०—जगरमगर को खेल कोऊ नर पावई । खोक वेद की फेर जो सवे नचावई ।—गुलाल०, पृ० ६६ ।

जगरां—संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा] खजूर की खाँट ।

जगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिण्डी नामक सुरा । पीठी से बना हुप्पा मद्य । २. शराब की सीठी । कल्क । ३. मदन वृक्ष । मैनी । ४. कवच । ५. गोमय । गोबर ।

जगल—वि० घृत । चालाक ।

जगवाना—क्रि० सं० [हि० जगना] १ सोते से चठवाना । निद्रा भग करवाना । २. किसी वस्तु को अभिमन्त्रित करके उसमें कुछ प्रभाव लाना ।

जगसूरॐ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + सूर] राजा (क्व०) । उ०—बिनती कीन्ह घालि गिठ पागा । ए जगसूर । सीउ मोहि लागा ।—जायसी (शब्द०) ।

जगहँसाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जग + हँसाई] लोकनिदा । बदनामी । कुख्याति । उ०—देवफाई न कर खुदा सूँ डर । जगहँसाई न कर खुदा सूँ डर ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५ ।

जगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह] १. वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके । स्थान । स्थल । जैसे,—(क) उन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है । (ख) यहाँ तिल घरने की जगह नहीं है ।

क्रि० प्र०—करना ।—छोड़ना ।—देना ।—निकालना ।—पाना ।—बनाना ।—मिलना, आदि ।

मुहा०—जगह जगह = सब स्थानों पर । सब जगह । २. स्थिति । पद ।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ में 'जगह' को क्रियाविशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं । जैसे,—हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं ।

३. मौका । स्थल । अवसर । ४. पद । मोहदा । जैसे,—(क) दो महीने हुए उन्हें कलकटरी में जगह मिल गई । (ख) इस दफ्तर में तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है ।

जगहर—संज्ञा स्त्री० [हि० जगना] जगना । जगने की अवस्था । जगने का भाव ।

जगाजोता^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] जगर मगर । जगमगाहट ।

जगाता^२—संज्ञा पुं० [प्र० जगात] १ वह घन आदि जो पुराय के लिये दिया जाय । दान । खेरात । २ महसूल । कर ।

जगाती^३—संज्ञा पुं० [हि० जगात या फा० जगाती] १. महसूल या कर लगानेवाला कर्मचारी । वह जो कर वसूल करे । उ०—घर के लोग जगाती लागे छीन लेय करधनिया ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२ । २ कर जगाहने का काम या भाव ।

जगाना—क्रि० सं० [हि० जागना या जगना का प्रे० रूप] नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना । जैसे,—वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ । २ चेत में लाना । होश दिलाना । उद्वोधन कराना । चेतन्य करना । ३. फिर से ठीक स्थिति में लाना । ४ बुझती या बहुत घीमी आग को तेज करना । सुलगाना । ५ गाँजा । आदि की अग्नि को तेज करना, जैसे, चिलम जगाना । ६.

यत्र या सिद्धि आदि का साधन करना । जैसे,—मंत्र जगाना ।
भूत प्रेत जगाना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।—रखना ।—लेना ।

जगामग—वि० [अनु०] दे० 'जगमग' । उ०—चमकत पूर जहूर
जगामग ठाके सकल सरीर ।—भीखा० श०, पृ० २४ ।

जगार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जग+प्रार (प्रत्य०)] जागरण । जागृति ।
उ०—नैना मोछे चोर सखी री । श्याम रूप निधि नेखे पाई
देखन गए भरी री । कहा लेहि, कह सजे, विवश भय तैसी
करनि करी री । भोर भए मोरे सो ह्वै गयो धरे जगार परी
री ।—सूर (शब्द०) ।

जगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी । जवाहिर
नाम का पक्षी ।

विशेष—यह शिमले के आसपास के पहाड़ों में मिलता है और
प्रायः दो हाथ लम्बा होता है । नर के सिर पर लाल कलगी
होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गोंठें होती
हैं । नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग
की होती है और उसके पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं ।
उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती तथा पेट
के नीचे के पर भी काले होते हैं जिनपर ललाई की झलक
होती है और एक छोटी सफेद बिंदी भी होती है । मादा का
रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है । यह पक्षी दस दस
बारह बारह के झुंड में रहता है । जाड़े के दिनों में यह
गरम देशों में आकर रहता है । इसकी बोली बकरी के
बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चारकार करता
है । इसका शीत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है । अंगरेज
सोग इसका शिकार करते हैं । इसे जवाहिर भी कहते हैं ।

जगीरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर] दे० 'जागीर' । उ०—फाका
जिकर किनात ये तीनों बात जगीर ।—रत्न०, भा० १,
पृ० १४ ।

जगीस—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जग+ईस] दे० 'जगदीश' । उ०—
मिले सब पित्र सु दीन भसीस । भए सुप्र निरभय पित्र जगीस ।
रासो, पृ० ८ ।

जगीला—वि० [हि० जागना] जागने के कारण असंसाया हुआ ।
उनीदा । उ०—दुरति दुराए ते न रति, बलि कुंकुम सर
मैन । प्रगट कहे पवि रतजगे जगी जगीले नैन ।—शृ०
सत० (शब्द०) ।

जगुरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जंगम ।

जगीया—वि० [हि० जागना] १. जगानेवाला । प्रबुद्ध करनेवाला ।
२. जागनेवाला ।

जगोटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोग+बाट] योग का मार्ग । जोगियों
का पथ । उ०—कवन जगोटा कवन अधारी ।—प्राण०,
पृ० ७६ ।

जगीहाँ—वि० [हि० जागना] दे० 'जगीला' ।

जगा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग] दे० 'यज्ञ' । उ०—
आयो सु गग तट काज जग ।—पृ० रा०, १ । ५७५ ।

जग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जगत्] ससार ।

जग^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । आहार । खाना । २. वह
स्थान जहाँ भोजन किया गया हो (को०) ।

जग^३—वि० खाया हुआ । मुक्त । भक्षित (को०) ।

जग्घि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. खाने की क्रिया । भोजन । २. कई
भ्रादरियों का साथ मिलकर खाना । सहभोजन ।

जग्मि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

जग्मि^२—वि० जो चलता हो । जो गति में हो ।

जग्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ' । उ०—पिता जग्य
सुनि कछु हरपानी ।—मानस, १।६१ ।

यौ०—जग्यपवीत = यज्ञोपवीत ।

जग्योपवीत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत] दे० 'यज्ञोपवीत' ।
कमलासन आसनह मडि जग्योपवीत जुरि ।—पृ० रा०,
१ । २५५ ।

जघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कटि के नीचे भाग का भाग । पेट । २.
नितब । चूतड़ । उ०—सरस विपुल मम जघनन पर कल
किकिनि कलश सजावो ।—हरिश्चन्द्र (शब्द०) । ३. सेना का
पिछला भाग । उपयोगार्थ संरक्षित सैन्यदल (को०) ।

यौ०—जघनकूप = दे० 'जघनकूपक' । जघनगौरव । जघनचपला ।

जघनकूपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का गढ़ा ।

जघनगौरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नितब की गुहता । नितबभार (को०) ।

जघनचपला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामुकी स्त्री । २. कुलटा ।
३. आर्या छंद के सोलह भेदों में से एक । यह मात्रावृत्त
जिसका प्रथमार्ध आर्या छंद के प्रथमार्ध का सा और
द्वितीयार्ध चपला छंद के द्वितीयार्ध का सा हो ।

जघनी—वि० [सं० जघनिन्] बड़े नितबों से युक्त (को०) ।

जघनेला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कटूमर ।

जघन्य^१—वि० [सं०] १. अतिम । चरम । २. गहृत । श्याम्य ।
अत्यंत घुरा । ३. क्षुद्र । नीच । निकृष्ट । ४. निम्न कुलोत्पन्न ।
नीच कुल का (को०) ।

जघन्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १. भूद । २. नीच जाति । हीन वर्ण । ३. पीठ
का वह भाग जो पुट्टे के पास होता है । ४. राजाओं के पाँच
प्रकार के सकीर्ण अनुचरों में से एक ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा भ्रादमी घनी, मोटी बुद्धि
का, हँसोढ़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति
भी होती है । ऐसे मनुष्य के कान अशुभकार, शरीर के
जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियाँ मोटी होती हैं । इसकी छाती,
हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न
होते हैं ।

५. दे० जघन्यभ । ६. लिंग । शिश्न (को०) ।

जघन्यज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भूद । २. अत्यज । ३. छोटा भाई (को०) ।

जघन्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जघन्य+ता (प्रत्य०)] क्रूरता ।

सुदृढता । नीचता । उ०—भ्रमने कुरूप मदबुद्धि बालक के स्थान और स्वत्व को दूसरे के बालक को दे देना किसी कुछ विचित्र मूर्खता और जघन्यता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ ।

जघन्यभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भार्वा, भ्रश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छह नक्षत्र ।

जघ्नि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वध करता हो । २. वह म्रत्यु जिससे वध किया जाय ।

जघ्नु—वि० [सं०] निहृता । प्रहारक । वधकारी [को०] ।

जघ्नि—वि० [सं०] १. संधनेवाला । २. अनुमानयुक्त [को०] ।

जघगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० जघगी] प्रसव की अवस्था । प्रसूतावस्था [को०] ।

जघना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'जघना' ।

जच्चा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० जच्चह्] दे० 'जच्चा' ।

जच्चा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० जच्चह्] प्रसूता स्त्री । वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो ।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जच्चा कहलाती हैं ।

यौ०—जच्चाखाना = सूतिकागृह । सोरी । जच्चा बच्चा = प्रसूता और प्रसूत सति । जच्चागरी, जच्चागरी = घात्री कर्म । बच्चा पैदा कराने का काम । कौमारभृत्य ।

जच्छः—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ष, जच्छ] दे० 'यक्ष' । उ०—देखि विकट भट वटि कटकाई । जच्छ जीव लै गए पराई ।—मानस, १।१७६ ।

यौ०—जच्छपति । जच्छराज । जच्छेश ।

जच्छपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यक्षपति] यक्षों के स्वामी । कुवेर । उ०—भय तहँ रहहि सक के प्रेरे । रच्छक कोटि जच्छपति केरे ।—मानस, १।१७६ ।

जज—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. न्यायाधीश । विचारपति । स्थाप करने-वाला । २. दीवाने और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला बड़ा हाकिम ।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज (जिला जज) कहलाता है । जिसे के अदर अतिम अपील जज के यहाँ ही होती है ।

यौ०—बोरा या सेशन (सेशन) जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूमकर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशिष्ट अवसरों पर करे । सवजन = दे० 'सदराला' । सिविल जज = दीवानी की छोटी अदालत का हाकिम ।

जज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योद्धा ।

जजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यजन, प्रा० जजन] यज्ञ कार्य । यज्ञ करना । उ०—तीर्थ व्रत आदि देवा पूजन जजन । सत नाम जाने बिना नर्क परन ।—गीता० श०, पृ० २२ ।

जजना—क्रि० प्र० [सं० यज्ज] सम्मान करना । आदर करना । पूजा करना । उ०—कलि पूजे पाखंड को जजे न

श्रुति आचार । मागध नट विट दान दें तथा न द्विज करे प्यार ।—दीन० प्र०, पृ० ७६ ।

जजवात—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जजवह् का बहुव० जजवात] भावनाएँ । विचार । उ०—लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजवात की परवाह नहीं करते तो—काया०, पृ० ४२ ।

जजमनिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान] पुरोहिती । उपरोहिती । यजमानी ।

जजमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजमानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'यजमानी' ।

जजमेंट—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] फैसला । निर्णय । जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी, अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया ।

जजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रतिकार । बदला । प्रतिकूल । परिणाम उ०—किते दिन गुजर गए वले इस बजा । न पाया बुताँ ते उनें कुछ जजा ।—दक्खिनी०, पृ० २६५ ।

जजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ययाति] दे० 'ययाति' । उ०—धलि वेणु भवरीय मानधाता प्रह्लाद कहिये वहाँ लो कथा रावण जजात की ।—राम० धर्म०, पृ० ६४ ।

जजाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जजाल] एक प्रकार की बूझ । दे० 'जजाल'-४ । उ०—कितेक खबरीव छट्टि लै जजाल दगई ।—सुजान०, पृ० ३० ।

जजिमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान' ।

जजिया—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जियह] १. दंड । २. एक प्रकार का कर जो मुसलमानों राज्यकाल में अन्य धर्मवालों पर लगता था ।

जजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जज + ई (प्रत्य०)] १. जज की कचहरी । जज की अदालत । २. जज का काम । जज का पद या ओहदा ।

जजीरा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जजीरह] टापू । द्वीप ।

यौ०—जजीरानुमा = जमीन का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो ।

जजु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यजुप्, प्रा० अज, जजु] दे० 'यजुर्वेद' । उ०—चतुर वेद मति सब छोड़ि पाहीं । रिंग जजु साम भयवत माहीं ।—जायसी प्र० (गुरु), पृ० १६१ ।

जजुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यजुष] दे० 'यजुर्वेद' । उ० जजुर कहै सरगुन परमेश्वर, दस घीतार धराया ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ५४ ।

जज्जा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जज] दे० 'जज' । उ०—फुसि न जो तू ले पयो राजा बाबू धामला जज्जा ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५५१ ।

जज्व—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जज्व] १. आकर्षण । खिचाव । २. नेस्ती । ३. सोखना । आत्मसात् करना [को०] ।

जज्वा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जजवह्] भावना । भाव । मनोवृत्ति । उ०—उ०—जोश और जज्वा का झुका, भी तूफान किसी ने फूँके ।—वगाल०, पृ० ४४ ।

यौ०—जज्वए इश्क = प्रेम का आकर्षण । जज्वए दिल = हृदय की भावना या आकर्षण ।

जज्वाती—वि० [प्र० जज्वाती] भावना में बहनेवाला । भावुक [को०] ।
जम्कना—क्रि० प्र० [प्रनु०] विचकना । उम्कना । चौकना ।
उ०—जम्कत उम्कत लाल तरगहि ।—माधवानल०,
पृ० १६४ ।

जम्कना—संज्ञा पु० [हि० भरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है ।

जज्ञ—संज्ञा पु० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ' । उ०—केन वारि समुझाने भँवर न काटे वेध । कहँ मरो तै चितउर जज्ञ करो प्रसुमेध ।
—जायसी (शब्द०) ।

जज्ञास—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु' । उ०—जो कोई जज्ञास है, सदगुरु सरण जाइ । सुदर ताहि कृपा करे ज्ञान कहँ समुझाइ ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८१५ ।

जट^१—संज्ञा पु० [देश०, हि० झाड़] एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के प्रकार का होता है ।

जट^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'जाट' ।

जट^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—में बड़ में बड़ में बड़ माँटी । मण दसना जट का दस गाँठी ।—कवीर प्र०, पृ० १७६ ।

यौ०—जटजूट=जटाजूट । उ०—कोदड़ कठिन चढाइ सिर जटजूट बाँधत सोहू बयौं ।—मानस, ३।१२ ।

जटना^१—क्रि० स० [हि० जाट] घोखा देकर कुछ लेना । ठगना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

जटना^२—क्रि० स० [सं० जटन] जटना । ठोंककर लगाना ।
उ०—पाट जटी प्रति प्रवेत सो हीरन की प्रवली ।—केशव (शब्द०) ।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्ययं और भूठ भूठ की बात । गप । बकवाद । उ०—प्रपना बहुत समय । हथर उधर की जटल हाँकने में खो देते हैं ।—शिक्षागुरु (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मारना ।—हाँकना ।

यौ०—जटल काफिया = गपगप । वेतुकी बात । ऊटपटांग बात ।
जटलबाज = बकवादी । गप हाँकनेवाला ।

जटली—वि० [हि० जटल] गप्पी । जटलबाज ।

जटवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा' । उ०—कनवा फड़ाया जोगी जटवा बड़ीले ।—कवीर प्र०, भा० २, पृ० १५ ।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक में उलके हुए सिर के बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओं के होते हैं ।

पर्या०—जटा । जटि । जटी । जूट । शट । कोटीर । हस्त ।

२ जड़ के पतले पतले सूत । झकड़ा । ३ एक में उलके हुए बहुत से रेशे आदि । जैसे, नारियल की जटा, बरगद की जटा । ४ शाखा । ५. जटामासी । ६ जूट । पाट । ७ कौछ । केवाँच । ८. पातावर । ९ रुद्रजटा । बालछड़ । १०. वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व और उत्तरपद को पृथक् पृथक् फिर मिलाकर दो बार पढ़ते हैं ।

जटाऊ—संज्ञा पु० [सं० जटायु] दे० 'जटायु' । उ०—भागे मारग रोक जटाऊ । मार गयो तिहि रावण राऊ ।—कबीर सा०, पृ० ४० ।

जटाचीर—संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

जटाजिनी—संज्ञा पु० [सं० जटाजिनि] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला ।

जटाजूट—संज्ञा पु० [सं०] १. जटा का समूह । बहुत से लवे बड़े हुए बालों का समूह । उ०—जटाजूट दूढ़ बाँधे माये ।—मानस, ६।८५ । २. शिव की जटा ।

जटाज्वाला—संज्ञा पु० [सं०] दीप । चिराग [को०] ।

जटाटंक—संज्ञा पु० [सं० जटाटङ्क] शिव । महादेव ।

जटाटीर—संज्ञा पु० [सं०] महादेव ।

जटाधर—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव । २. एक बुद्ध का नाम । ३. दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में आया है । ४. जटाधारी । ५. संस्कृत के एक कोशकार का नाम [को०] ।

जटाधारी^१—वि० [सं० जटाधारिन्] जो जटा रखे हो । जिसके जटा हो । जटावाला ।

जटाधारी^२—संज्ञा पु० १. शिव । महादेव । २. मरसे की जाति का एक पोधा जिसके ऊपर फलगी के प्रकार के लहरदार साँस फूल लगते हैं । मुगंकेण । ३. साधु । वैरागी ।

जटाना^१—क्रि० स० [हि० जटना] जटने का प्रेरणाार्थक रूप ।

जटाना^२—क्रि० प्र० [हि० जटना] घोखे में आकर अपनी हानि कर बैठना । ठगा जाना ।

जटापटल—संज्ञा पु० [सं०] वेदपाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार या क्रम । कहते हैं, यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था ।

जटामटल—संज्ञा पु० [सं० जटामटल] जटाजूट । जूटा । जटापिठ [को०] ।

जटामाली—संज्ञा पु० [सं० जटामालिन्] महादेव । शिव ।

जटामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जटामासी' ।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामासी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड़ है । बालछड़ । बालूचर ।

विशेष—यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है । इसकी बालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी और सौंके की तरह होती हैं जिनमें घामने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी और आधे से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ होती हैं । इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है । इसमें छोटी उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिनपर तामड़े रंग के बाल या रेशे होते हैं । इसकी गंध तेज और मीठी तथा स्वाद कड़वा होता है । वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विपघ्न तथा उन्माद और कास, श्वास आदि को दूर करनेवाली मानी गई है । लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल घड़ते और काले होते हैं । खीचन से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो मोषघ और

सुगव के काम आता है। २८ सेर जटामासी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता है। इसे कालछट्ट, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।

विशेष—यह सूर्य के सारथी, भरुण का पुत्र था जो उसकी श्वेती नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हरण कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में यह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर इसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय इसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इसकी अत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था।

२. गुग्गुलु।

जटाल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. घटवृक्ष। बरगद। २. कचूर। ३. मुष्कक। मोला। ४. गुग्गुलु।

जटाल^२—वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाब^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरीटी।

जटाव^१—संज्ञा पुं० [हिं० जटना] जट जाने या जटने की क्रिया।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा। शकरजटा। २. एक प्रकार की जटामासी जिसे गधमासी भी कहते हैं।

जटायुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध राक्षस।

विशेष—यह द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के वेश में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हरण कर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था।

२. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। २. बरगद का पेड़। ३. जटा। ४. समूह। ५. जटामासी।

जटित—वि० [सं०] जडा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटियल—वि० [हिं० जटल] १. निकम्मा। रद्दी। २. नकली। दिखावटी। ३. जटनेवाला।

जटिल^१—वि० [सं०] १. जटावाला। जटाधारी। २. अत्यंत कठिन। जटा के लकड़े हुए बालों की तरह जिसका सुख करना बहुत कठिन हो। दुरुह। दुर्बोध। ३. क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

जटिल^२—संज्ञा पुं० १. सिंह। २. ब्रह्मचारी। ३. जटामासी। ४. शिव।

विशेष—जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थी, उस समय शिव जी जटिल वेश धारण करके उनके पास गए थे। उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।

५. बकरा (को०)। ६. साधु (को०)।

४-३

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. इस ऋषि के वंशज।

जटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल + ता (प्रत्य०)] कठिनाई। उलझन। पेचीदगी।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचारिणी। २. जटामासी। ३. पिप्पली। पोपल। ४. वचा। बब। ५. दोना। दमनक। ६. महाभारत के अनुसार गौतम वंश की एक ऋषिकन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषिपुत्रों से हुआ था। यह ब्रह्म धर्मपरायण थी।

जटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाकर। २. जटामासी। ३. 'जटि'।

जटी^२—संज्ञा पुं० [सं० जटिन्] १. शिव। २. प्लक्ष या वट का वृक्ष। ३. वह हाथी जो साठ वर्ष का हो [को०]।

जटी^३—[सं० जटिन्] [वि० स्त्री० जटिनी] जटाधारी उ०—विमन जटी, तपसी भए मुनि मन गति मूली।—छीत०, पु० २०।

जटी^४—वि० [सं० जटित] दे० 'जटित'।—उ०—जो पै नहिं होती ससिमुखी मृगनैनी केहरि कटी, छवि जटी छटा की सी छटी रस लपटी छूटी छटी—ब्रज० प्र०, पु० ६३।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लच्छन या लक्षण कहते हैं।

जटुली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बच्चों के केश। उ०—धूलि घुसर जटा जटुली हरि लियो हर भेष।—पोद्दार अभि० प्र० पु० २५२।

जट्टा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] जाट जाति।

जट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जली तवाकू। उ०—एक ही फूँक में चिलम की जट्टी तक चूस जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पु० ८४।

जट्टी^२—वि० [हिं० जटना] ठगनेवाला। गैरवाजिब मूल्य लेनेवाला।

जठर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। कुक्षि।

यौ०—जठरगद। जठरज्वाल = भूख। जठरज्वाला। जठरयंत्रणा, जठरयातना = गर्भवास का कष्ट। जठराग्नि। जठरानल।

२. मांगवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है।

३. एक देश का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वा-फाल्गुनी के अधिकार में है। महाभारत में इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है।

४. सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग।

विशेष—इस उदर रोग में पेट फूल जाता है। इसमें रोगी बलहीन और वर्णहीन हो जाता है तथा उसे भोजन से भरचि हो जाती है।

५. शरीर। देह। ६. मरकत मणि का एक दोष।

विशेष—कहते हैं कि इतने शोषयुक्त मरकत के रखने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है।

जठर^१—वि० १. बूढ़। बूढ़ा। २. कठिन। ३. बँधा हुआ (को०)।

जठरगद्—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राँठ की ध्वाधि (को०)।

जठरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधाग्नि। बुभुक्षा। भूख। २. उदर की पीड़ा। उदरक्षुब्ध (को०)।

जठरमुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

जठराग्नि—वि० [हिं० जेठ या जठर] [वि० स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा।

जठराग्नि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

विशेष—पित्त की कमी देखी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, अग्नि, विषग्नि, तीक्ष्णग्नि, और समान्ति।

जठरानल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जठरासय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिसार रोग। २. जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] दैनिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिसका आकार उदर का सा होता था।

जठाक्षी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठरी] दे० 'जेठरी'। उ०—देखि जठाक्षी, लागी छद्म बैठ।—वी० रासो, पृ० १६।

जठागनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'। उ०—कई साथ सिराय पचाय जठागनि बाय सहाय सबाय मरे।—राम० धर्म०, पृ० १०५।

ठोठी—वि० [हिं० जूठा + ठोड़ी (प्रत्य०)] जूठा कर देनेवाला। जूठा करनेवाले स्वभाव का। (भ्रमर)। उ०—बचरीक चेदुवा को लागी है चरन, बुमि अग्रभाग तप मृदु मज्जुल जठोडी को।—पद्मनेस०, पृ० २१।

जठेरा—वि० [हिं० जेठ या जठर] [स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा। उ०—विप्रबन्ध कृतमाम्य जठेरी।—मानस, २। ४६।

जड—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० जड़ (को०)।

जडक्रिय—वि० [सं०] सुस्त। शीघ्रसूत्री।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जडुल' (को०)।

जड़ुला—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में बरबरे के मुठन संस्कार को जड़ुला कहते हैं।—उ०—दाहूही की सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, अम्न, जड़ुला) में मानते हैं और स्मरण करते हैं।—सुदर्शन० (जी०), भा० १ पृ० ८।

जड़ुल^१—वि० [सं० जड़] दे० 'जड़'। उ०—बाहर घेहन की रहन, भीतर जड़ुल प्रचेत।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

जड़ु^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा] दे० 'जड़ा'। उ०—न तिष्ठा गिर बज्र के पुछन तिष्ठापरे। कंध सु जड़ु केहरी नेना उयो तारे।—पु० रा०, २४। १४६।

जड़^१—वि० [सं० जड़] १ जिसमें चेतनता न हो। अचेतन। २. जिसकी इन्द्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्वव्य ३. मंदबुद्धि। नासमर्थ। मूर्ख। ४. सरदी का मारा या

ठिठुरा हुआ। ५. शीतल। ठंडा। ६. गुँगा। मूक। ७. जिसे सुनाई न दे। बहुरा। ८. अनजान। अनभिज्ञ। ९. जिसके मन में मोह हो। जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो (दायभाग)।

जड़^२—संज्ञा पुं० [सं० जड़म्] १ जल। पानी। २. धरक। ३. सीसा नाम की धातु। ४. कोई भी अचेतन पदार्थ (को०)।

जड़^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ा (= धुल की जड़)] वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिसके द्वारा उनका पोषण होता है। मूल। शोर।

विशेष—जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूल या ठंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है; और दूसरी झकड़ा जिसके रेभे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारों तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है।

यौ०—जड़मूल।

यह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नींव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना, फाटना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर या बुराई करके समूल नाश करना। ऐसा मत्त करना जिसमें वह फिर अपनी पूर्वस्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = रुक या स्थायी होना। जड़ पकड़ना जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पढ़ना = नींव पढ़ना बुनियाद पढ़ना। शुद्ध होना। जड़ बुनियाद से, जड़मूल से = आमुलत। समूल। जड़ में पानी देना या भरना = दे० 'जड़ उखाड़ना'। जड़ में मट्टा डालना = सर्वनाश का प्रयोग करना। जड़ सींचना = आधार को पुष्ट करना।

३ हेठु। कारण। सबव। जैसे,—यही तो सारे झगड़ों की जड़ है। ४ वह ज़िमपर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़आमला—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + आमला] मुई आँवला।

जड़क्रिया—वि० [सं० जड़क्रिय] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। शीघ्रसूत्री।

जड़काळा—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ा + सं० काल] सर्श के दिव। जाड़े का समय। उ०—सागेउ माप परे अष पाखा। बिरहा काल भएउ जड़काला।—जायसी सं०, पृ० १५४।

जड़ज्जमत—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + जगत्] अचेतन पदार्थ। जड़प्रकृति।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ का भाव, जड़ता] १ अचेतनता। २. मूर्खता। बेवकूफी। ३. साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव।

विशेष—यह संचारी भाव किसी घटना के होने पर चित्त के विवेकशून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्रायः यबराहट, दुःख, भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है।

४ स्वव्यता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव—दे० 'जड़'—निज जड़ता लोगन पर डारी। होह हकम रघुपतिहि निहारी।—तुलसी (शब्द०)

जड़ताई—सझा ली० [सं० जड़ + (वै०) तावि (प्रत्य०) अथवा हिं०]
दे० 'जड़ता' । उ०—हृदय बिधि वेगि जनक जड़ताई । —मानस,
१।२४६ ।

जड़त्व—सझा पु० [सं० जड़त्व] १. चेतनता का विपरीत भाव ।
अचेतन पदार्थों का वह गुण जिससे वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते
हैं और स्वयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं
कर सकते । २. स्थिति और मति की इच्छा का अभाव ।
वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का एक गुण ।

जड़ना—क्रि० सं० [सं० जड़न] [सझा जड़िया, जड़ाई, वि० जड़ाऊ]
१ एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बैठाना । पच्ची
करना । जैसे, भंगूठी में नग जड़ना । २. एक चीज को दूसरी
चीज में ठीक कर बैठाना । जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना ।

सयो० क्रि०—हालना । —देना । —रखना ।

३ किसी वस्तु में प्रहार करना । जैसे, घोल जड़ना, थप्पड़ जड़ना ।
× चुगनी या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से
कुछ कहना । कान भरना । जैसे,—किसी ने पहले ही उनसे
जड़ दिया था, इसीलिये वे यहाँ नहीं आए ।

सयो० क्रि०—देना । उ०—और वस्त्रों की सुनिए कि घट जा
के बेगम साहव से जड़ दी कि हुज़ूर, अब जरी गफलत न करें ।
सर कु०, पु० २६ ।

जड़पदार्थ—सझा पु० [सं० जड़ + पदार्थ] भौतिक द्रव्य । अचेतन
पदार्थ ।

जड़प्रकृति—सझा ली० [सं० जड़ + प्रकृति] दे० 'जड़जगत' ।

जड़भरत—सझा पु० [सं० जड़भरत] भगिरथ गोत्री एक ब्राह्मण
जो जड़वत् रहते थे ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने बानप्रस्थ
आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ
उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिंता
बनी रही । मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए, पर
उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा । उन्होंने
हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म
लिया । वह संसार की भावना से बचने के लिये जड़वत् रहते
थे इसीलिये लोग उन्हें जड़भरत कहते थे ।

जड़लग—सझा ली० [देश०] तलवार । उ०—सऊ सारत समधा
सब कोई । जड़लग वह गई सग जिनीई । —रा० ६०,
पु० २५५ ।

जड़वत्—वि० [सं० जड़ + वत्] जड़ के समान । चेतनारहित ।
बेहोश । उ०—जड़वत् देख दोर के सगा । चेतन देख दोर में
रगा । —घट०, पु० २५७ ।

जड़वाद—सझा पु० [सं० जड़ + वाद] वह दार्शनिक मत या विचार-
धारा जिसमें पुनर्जन्म और चेतन आत्मा का अस्तित्व मान्य
नहीं । उ०—जड़वाद जर्जरित जग में हम अवतरित हुए
आत्मा महान । —गुप्त, पु० ५७ ।

जड़वादी—वि० [सं० जड़वादिन्] जड़वाद का अनुामी ।

जड़वाना—क्रि० सं० [हिं० जड़ना] १ नग इत्यादि जड़ने के लिये

प्रेरणा करना । जड़ने का काम कराना । २ कील इत्यादि
गड़वाना ।

जड़विज्ञान—सझा पु० [सं० जड़ + विज्ञान] भौतिक विज्ञान ।
जड़वाद ।

जड़वी—सझा ली० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे
हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो ।

जड़हन—सझा पु० [हिं० जड़ + हन (= गाड़ना)] धान का एक
प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह
बैठाए जाते हैं ।

विशेष—यह धान प्रसाद में घना बोया जाता है । जब पौधे एक
या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब किसान इन्हें उखाड़कर ताल
के किनारे बीच खेतों में बैठाते हैं । वह खेत, जिसमें इसके
बीज पहले बोए जाते हैं, 'बियाड़' कहलाता है, और पौधे के
बीज को 'बेहन' तथा बीज बोने को 'बेहन डालना' कहते हैं ।
बीज को बियाड़ से उखाड़कर दूसरे खेत में बैठाने की 'रोपना'
या 'बैठाना' कहते हैं, और वह खेत जिसमें इसके पौधे रोपे
जाते हैं, 'सोई', 'डाबर', आदि कहलाता है । जड़हन पौधों
में कुम्भार के मत में बाल फूटने लगती है, और भगहन में
खेत पककर कटने योग्य हो जाता है । इस प्रकार के धान
की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे
और कुछ के महीन होते हैं । यह कभी कभी तालों के किनारे
या बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है, और ऐसी
बोआई को 'बोमारी' कहते हैं । भगहनी के अतिरिक्त धान
का एक और भेद होता है जिसे कुमारी कहते हैं । इस भेद के
धान 'भोसहन' कहलाते हैं ।

जड़ा—सझा ली० [सं० जड़ा] १. मुड़े भाँवला । २. कौछ । केवाँच ।

जड़ाई—सझा ली० [हिं० जड़ना] १ जड़ने का काम । पच्चीकारी ।
२ जड़ने का भाव । ३ जड़ने की मजदूरी ।

जड़ाऊ—वि० [हिं० जड़ना] जिसपर नग या रत्न आदि जड़े
हों । पच्चीकारी किया हुआ । जैसे, जड़ाऊ मंदिर ।

जड़ान—सझा ली० [हिं० जड़ना] दे० 'जड़ाई' ।

जड़ाना^१—क्रि० सं० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप ।
जड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जड़ाना^२—क्रि० प्र० [हिं० जड़ा] १ जाड़ा सहना । ठंड खाना ।
२ सरदी की भाषा होना । शीत लगना । उ०—पूत जाड
थरथर तन काँपा । सुरुज जडाई संक दिसि तापा । —जायसी
प्र० (गुप्त), पु० २५८ ।

जड़ाव—सझा पु० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव । उ०—
पुनि भरनर बहु काड़ा, नाना भाँति जड़ाव । फेरि फेरि सब
पहिरहि, जैस जैस मन भाव । —जायसी (बन्द०) ।

जड़ावट—सझा ली० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव ।
जड़ाव ।

जड़ावर—सझा पु० [{ देशी जड़ा + सं० भा + √ वृ > भा वर,
अथवा हिं० जड़ा } जाड़े में पड़ने के रूपके । मरम रूपके ।

क्रि० प्र०—देना = स्वल्प वेतनभोगी कर्मचारियों को जाड़े के कपड़े या उसके विनिमय में धन देना ।—मिलना ।

जड़ावला—संज्ञा पुं० [हि० जड़ावर] दे० 'जड़ावर' ।

जड़ावला—वि० [हि० जड़ना] जड़ाया हुआ । संचित ।

जड़ित^७—वि० [हि० जड़ना या सं० जड़ित] जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो । २. जिसमें नग आदि जड़े हो ।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़िमन्] १. जड़ता । जड़त्व । २. एक भाव जिसमें मनुष्य को दृष्टि अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ हो जाता है । ३. मोर्ख्य । मूर्खता ।

जड़िया—संज्ञा पुं० [हि० जड़ना] १. नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष । वह जो नग जड़ने का काम करता हो । कुंदनसाज । उ०—हकनाहक पकरे सकल जड़िया कोठीवाल । प्र०, पृ० ४३ । २. सोनारों की एक जाति या वर्ग जो गहने में नग जड़ने का काम करती है ।

जड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ शोध के काम में लाई जाय । विरई ।

जौं—जही बूटी = जंगली शोध या वनस्पति ।

जड़ीभूत—वि० [सं० जड़ीभूत] स्वभाव । निश्चल । जड़भाव को प्राप्त । गतिहीन । उ०—गौतम ने जिस परिवर्तन के अमर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिशील होकर चल सका । लोटकर आया कहाँ जहाँ शाश्वत जड़ीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश धूमने का प्रयत्न कर रहा था ।—प्रा० भा० प०, पृ० ४७५ ।

जड़ीला^१—संज्ञा पुं० [हि० जड़ + ईला (प्रत्य०)] १. वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो । जैसे, मूली, गाजर । २. वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले । —(कहार) ।

जड़ीला^२—जड़दार । जिसमें जड़ हो ।

जड़आ—संज्ञा पुं० [हि० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के भंगूठे में पहना जाता है ।

जड़ल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जटल' ।

जड़ैया—संज्ञा स्त्री० [हि० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बुखार जिसके आरंभ में जाड़ा लगता हो । जुड़ी ।

जड़ा—वि० [सं० जड़] दे० 'जड़' ।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ता] दे० 'जड़ता' ।

जड़ाना—क्रि० प्र० [हि० जड़ या जड़] जड़ हो जाना । २. हठ करना । जिद करना । अपनी बात पर अड़े रहना ।

जटा^७—वि० [सं० यत्] जितना । जिस मात्रा का ।

जत^२—संज्ञा पुं० [सं० यति] बाघ के बारह प्रवर्षों में से एक । होली का ठेका या छाल ।

जतना^७—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] दे० 'यत्न' । उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं । अत राम कहि भावत नाही ।—तुलसी (शब्द०) ।

जतना^७—क्रि० प्र० [यत्न, हि० जतन] यत्न करना । उ०—

अब के ऐसे जतनन जती । विष्णुहि गर्भं बीच ही हर्तो ।—
नंद० प्र०, पृ० २२२ ।

जतनी^१—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] १. यत्न करनेवाला । २. सुचतुर । चालाक ।

जतनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यत्न (= रक्षा)] बहुरस्सी या डोरी जिसे चखें (रँहट) की पल्लूरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं ।

जतनु^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यत्न' । उ०—करेह सो जतनु विवेक विचारी ।—मानस १।५२ ।

जतरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' । उ०—माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ जी की जतरा कर आया था ।—
नई०, पृ० १०७ ।

जतलाना^१—क्रि० प्र० [हि० जताना] दे० 'जताना' ।

जतसरा—संज्ञा पुं० [हि० जाँत] दे० 'जैतसर' ।

जटा^७—वि०, अव्य० [सं० यत्] दे० 'जितना' । उ०—मेरे पास धन माल है होर मता । तुजे देऊगी मैं सारा जता ।—
दक्खिनी०, पृ० ३७६ ।

जताना^१—क्रि० प्र० [सं० ज्ञात] १. जानने का प्रेरणार्थक रूप । ज्ञात कराना । बतलाना । २. पहले से सूचना देना । आगाह करना ।

जताना^२—क्रि० प्र० [हि० जाँता] दे० 'जैताना' ।

जतारा^१—संज्ञा पुं० [हि० जाति या सं० यूय] वंश । खानदान । कुल । जाति । घराना ।

जति^७—क्रि० [सं० जेत] जेना । जीतनेवाला । उ०—चरन पीठ उन्नत नव पालक, गूढ गुलुफ जघा कदली जति ।—तुलसी प्र०, पृ० ४१५ ।

जति^२—संज्ञा पुं० [सं० यति] दे० 'यति' । उ०—स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन । नीचु हति महिदेव बालक कियो नीचु बिहीन ।—तुलसी प्र०, पृ० ४२२ ।

जती^१—संज्ञा पुं० [सं० यति] सन्ध्यामी । दे० 'यति' । उ०—जती पुरुष कहूँ ना गहँ परनारी की हाथ ।—शकुंतला०, पृ० ६७ ।

जती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यति] छद में विराम । दे० 'यति' ।

जतु^१—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष का निपास । गोंद । २. नाख । लाह । ३. शिलाजतु । शिलाजीत ।

जतु^२—संज्ञा स्त्री० गेदुर । चमगादड़ [को०] ।

जतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग । २. लाख । नाह । ३. शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है । इसे लच्छन या लक्षण भी कहते हैं ।

जतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ शोध के काम में आती हैं । २. चमगादड़ । ३. लाक्षा । लाख । लाह [को०] ।

जतुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पपटी या पपड़ी नाम की लता ।

जतुकृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुकृष्णा' [को०] ।

जतुकृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता ।

जतुगृह—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस ऐसी चीजों का बना हुआ घर

जो जल्दी जल सके । २. लाख का बना घर जैसा वारणावत में
दुर्गोधन ने पांडवों को भस्म करने के लिये बनवाया था ।
लाक्षागृह (को०) ।

जतुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

जतुपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शतरंज का मोहरा । २ चौसर की
गोटी । ३ लाख का बना हुआ रूप या आकार (को०) ।

जतुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें दाग पड़
जाता है । जटुल । जतुक ।

जतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का घान ।

जतुरस—संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग । अलक्तक । महावर ।

जतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी का नाम । चमगादड़ । २. लाख का
बना हुआ रंग ।

जतूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

जतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुका' ।

जतेक—क्रि० वि० [सं० यत् या हिं जितना + एक] जितना ।
जिस मात्रा का । जिस संख्या का ।

जतै—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जतय] जहाँ । उ०—ब्रजमोहन
मोह की मूर्ति राम जतै धनि रोहिनि पुन्य फी ।—
घनानंद०, पृ० २०० ।

जत्या—संज्ञा पुं० [सं० यूय] बहुत से जीवों का समूह । कुह । गरोह ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।

यौ०—जत्यादार, जत्येदार=जत्या अर्थात् समूह का प्रधान
या नायक ।

जत्र—क्रि० वि० [सं० यत्र] जहाँ । जिस जगह । उ०—किते जीव
समूह देखत भज्जे । मृग व्याघ्र चीते रिछ जत्र गज्जे ।—
ह० रासो, पृ० ३६ ।

जत्रानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जाटो की एक जाति जो रुहेलखंड में
बसती है ।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गले के सामने की दोनों ओर की वह हड्डी
जो कंधे तक कमानी को तरह लगी रहती है । हँसली ।
हँसिया । उ०—यज्ञोपवीत पुनीत विराजत गूढ जत्रु वनि धीन
अस तति ।—तुलसी प्र०, पृ० ४१५ । २ कंधे और बाँह
का जोड़ ।

जत्रुश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] शिनाजीत ।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं० यूय] जत्या । जूथ । यूथ । उ०—भाँक
करत घोर घटा घहरि घने । घुँघरु धिरत फिरत
मिल एक जत्रु ।—भारतेंदु प्र०, भाग २, पृ० ४४७ ।

जत्रा—क्रि० वि० [सं० यत्र] १ दे० 'यत्र' । उ०—जत्रा भूमि
सब बीज में, नखत निवास अकास । रामनाम सब घरम में
जानत तुलसीदास ।—तुलसी प्र०, भाग २, पृ० ८८ ।

यौ०—जत्राजोग । जत्राधित । जत्राचि = अपने इच्छानुसार ।
उ०—बट्ट करि कोटि कुतर्क जत्राचि बोलइ ।—तुलसी प्र०,
पृ० ३४ । जत्रालाभ = जो भी मिल जाय उसमें । जोभी प्राप्त
हो उससे । उ०—जत्रालाभ सतोप सदाई ।—मानस, ७।४६ ।

जत्रा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० यूय] मंजली । गरोह । समूह । टोली ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।

जत्रा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गय] पूँजी । धन । संपत्ति ।

यौ०—जत्रा जत्रा ।

जत्राजोग—क्रि० वि० [सं० ययायोग्य] दे० 'ययायोग्य' । उ०—
जत्राजोग भेटे पुरवासी गए सूल, सुखसिधु नहाए ।—सूर०,
६।१६८ ।

जत्राधित—क्रि० वि० [सं० ययास्थित] जैसा था वैसा ही ।
ज्यों का त्यों । उ०—शिवाहि विलोकि ससकेउ यारु । भयइ
जत्राधित सबु ससारु ।—मानस, १।८६ ।

जत्रार्थ—क्रि० वि० [सं० यथार्थ] दे० 'यथार्थ' । उ०—जे जन नियुत
जत्रार्थवेदी । स्वारथ भर परमारथ भेदी ।—नद प्र०,
पृ० ३०२ ।

जत्रार्थवेदी—क्रि० वि० [सं० यथार्थ + वेदिन्] यथार्थवेत्ता । सच्चाई
को जाननेवाला ।

जत्रावकास—क्रि० वि० [सं० यथावकाश] अवकाश के अनुसार ।
उ०—जाके जठर मध्य जग जितो । जत्रावकास रहत है
तितो ।—नद प्र०, पृ० २२९ ।

जत्रासंखि—क्रि० वि० [सं० यथासंख्य] क्रम के अनुसार । जैसा
क्रम हो उसके अनुसार । उ०—वसं वरुं चारघो जत्रासंखि
वास । चहूँ पाश्र्वमं ओ तज लोभ आस ।—ह० रासो,
पृ० १७ ।

जद^१—क्रि० वि० [सं० यदा] जब । जब कभी । उ०—(क) जब
जागूँ तद एकली, जब सोऊँ तब बेल ।—ढोला०, दू० ५११ ।
(ख) ब्रजमोहन घनघनानंद जानी जद चस्मों विच प्राया है ।
—घनानंद०, पृ० १८१ ।

जद^२—क्रि० वि० [सं० यदि] अगर । यदि ।

जद^३—संज्ञा स्त्री० [फा० जद] १ आघात । चोट । २. लक्ष्य ।
निशाना । ३. सामना (को०) ।

जदनी—क्रि० वि० [फा० जदनी] मारने या बध करने योग्य ।

जदपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' । उ०—जदपि प्रकाम
तदपि भगवाना । भगत विरह दुख दुखित सुजाना ।—
मानस, १।७६ ।

जदबर्दा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जदबद' ।

जदल—संज्ञा पुं० [प्र०] १ युद्ध । संघर्ष । २. झगडा । हुज्जत (को०) ।

जदवर, जदवार—संज्ञा पुं० [प्र०] जहर के असर को दूर करने-
वाली एक घास । निविषी ।

जदा—क्रि० वि० [फा० जदह] पीड़ित । सत्रस्त । मारा हुआ । जैसे,
गमजदा । मुसीबतजदा = विपत्ति का मारा ।

जदि—क्रि० वि० [सं० यदि] अगर । जो ।

जदीद—क्रि० वि० [प्र०] नया । हाल का । नवीन ।

जदु—संज्ञा पुं० [सं० यदु] दे० 'यदु' ।

जदुईस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जदुपति' ।—प्रनेकार्थ०, पृ० ६१ ।

जदुकुल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यदुवश' ।

जदुनाथ^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुनाथ' उ०—विनु धोन्हें ही देत
सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ।—सूर०, १।३।

जदुपति^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण । उ०—कोऊ कोरिक
संघही कोऊ लाख हजार । भों सपति जदुपति सदा विपति
विदारनहार ।—विहारी (शब्द०) ।

जदुपाल^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण ।

जदुपुरी^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुपुरी] राजा यदु का नगर । यदुकुल
की राजधानी, ययुरा प्रथवा यदुओं की पुरी द्वारका । उ०—
दृष्टि पड़ी जदुपुरी सुहाई ।—तंद० ग्रं०, पृ० २१३ ।

जदुवशी^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुवशी' । उ०—कुज कुटीरे
जमुना तीरे तू विखता जदुवशी ।—हिम कि०, पृ० २४ ।

जदुराज^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यदुपति । श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराज^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुराम^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम । बलदेव ।

जदुराय^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवर^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जदुवीर^५—संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र ।

जह^५—वि० [अ० ज्यादाह] अधिक । ज्यादा ।

जह^५—वि० [सं० मोझा] प्रचंड । प्रबल । उ०—छागलि चलेउ
समद भूप बलहद जह अति ।—गोपाल (शब्द०) ।

जह^५—संज्ञा पुं० [अ०] दादा । पितामह । बाप का बाप ।

जहपिं^५—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' ।

जहवद^५—संज्ञा पुं० [सं० यत्प्रवद्य प्रथवा हिं० अ०] अक्षयणीय वात ।
वह वात जो न कहने योग्य हो । दुर्वचन ।

जही^५—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टा । कोशिश । प्रयत्न । दौडवूप [क्रि०] ।

जही^५—वि० [अ०] मोरसी । बापदादे की [क्रि०] ।

जहोजहद^५—संज्ञा स्त्री० [अ०] दोडवूप । चेष्टा । प्रयत्न । उ०—
व्यक्ति विलीन दलो के दुमंद, जहोजहद में रदोबदल मे ।—
मिलन०, पृ० १७३ ।

जद्यपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' । उ०—सहज सरल
रघुवर बचन, कुमति कुटिल फरि जान । चने जौक जल
वक्रनाति, जद्यपि सलिल समान ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०१ ।

जनगम—संज्ञा पुं० [सं० जनङ्गम] चाडाल ।

जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोक । लोग ।

यौ०—जनप्रवाद = अफवाह । लोकापवाद । उ०—जन प्रवाद
गूँजता था, पर दूर ।—प्रपरा, पृ० १३६ । जन आंदोलन =
उद्देश्यपूर्ति के लिये जनसमूह द्वारा किया हुआ सामूहिक
प्रयत्न या हलचल । जनजीवन = लोकजीवन । जनप्रवाद ।
जनक्षय । जनश्रुति । जनवत्सल । जनसमूह । जनसमाज ।
जनसमुदाय । जनसमुद्र = जनसमूह । जनसाधारण । जनसेवक ।
जनसेवा, प्रादि ।

२ प्रजा । ३. गैवार । देहाती । ४. जाति । ५. वर्ग । गण ।
उ०—भार्य लोग इस समय अनेक जनों में विभक्त थे । प्रत्येक

जन एक पृथक् राजनैतिक समूह मान्य होता है ।—हिंदु०
सभ्यता, पृ० ३३ । ६ अनुयायी । अनुचर । दास । उ०—
(क) हरिजन इस दशा लिए डोलें । निर्मल नाम चुनी चुनि
बोलें ।—कबीर (शब्द०) । (ख) हरि भर्जुन की निज जन
जान । लै गए तहें न जहाँ ससि भान ।—सूर०, १० ।
४३०६ । (ग) जन मन मजु मुकर मन हरनी । किए
तिलक गुन गन बस करनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—हरिजन ।

७ सङ्घ । समुदाय । जैसे, गुणिजन । ८ भवन । ९ वह
जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से
चलती हो । १० सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति ।
११ सात लोकों में से पाँचवाँ लोक । पुराणानुसार चौदह
लोकों के अतर्गत ऊपर के सात लोकों में से पाँचवाँ लोक
जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगीद्र रहते हैं ।
१२ एक राक्षस का नाम । १३ मनुष्य । व्यक्ति ।

जन^२—संज्ञा स्त्री० [फा० जन] १. महिला । नारी । २ स्त्री ।
पत्नी । भार्या । उ०—मुसल्ला बिछा उसका जन बनियाज ।
—दक्खिनी०, पृ० २१५

जन^३—वि० [सं० जन्य] उत्पन्न । जनित । जात । उ०—सतसैया
तुलसी सतर तम हरि पर पद देत । तुरत प्रविष्टा जन दुरित
बर तुल सम करि सेत ।—सं० सप्तक, पृ० २५ ।

जनस^५—संज्ञा पुं० [हिं० जनेउ] दे० 'जनेऊ' । उ०—फोट चाट
जनउ तोड ।—कीर्ति०, पृ० ४४ ।

जनक^१—वि० [सं०] पैदा करनेवाला । जन्मदाता । उत्पादक ।

जनक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिता । बाप । २ मिथिला के एक
राजवंश की उपाधि ।

विशेष—ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर विदेह भी
कहलाते थे । सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री
थी । इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी
कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी
पड़ी हैं ।

३ सीता जी के पिता सीरध्वज का नाम ।

यौ०—जनकतनया = सीता । जनक की पुत्री । उ०—तात जनक-
तनया यह सोई ।—मानस, १।२३१ । जनकनदिनी । जनक-
दुलारी । जनकपुर । जनकसुता = दे० जनकात्मजा । उ०—
जनकसुता जगजननि जानकी ।—मानस, १।१८ ।

४ सवरासुर का चौथा पुत्र । ५ एक वृक्ष का नाम ।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पन्न करने का भाव या काम । २
उत्पन्न करने की शक्ति ।

जनकदुलारी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जनक + हिं० दुलारी] सीता ।
जानकी ।

जनकनदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनकनन्दिनी] सीता । जानकी ।
उ०—जनकनदिनी जनकपुर जब से प्रगटी प्राइ । तब ते सब
सुख सपदा अधिक अधिक अधिकाइ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८३ ।

जनकपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी ।

विशेष—इसका स्थान भोजकल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं । यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं ।

जनकात्मजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] सीता । जानकी (को०) ।

जनकारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग । बालकृत ।

जनकौर(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जनक + ओरा (प्रत्य०)] १. जनक का स्थान । जनक नगर । उ०—वार्जहि डोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि । सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६ । २. जनक राजा के वंशज या ससंधी । उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा । मे सब लोक सोक बस बोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मक्षामारी । जोकनाश (को०) ।

जनसदाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जनसदाँ] ठोड़ी । चिबुक । उ०—जनसदाँ में तेरे मुँह बाहे जमजम का असर बिसता ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६ ।

जनखा—वि० [फा० जनखह् या जनानह्] १ जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों । २ हीबड़ा । नपु सक ।

जनगणना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जन + गणना] महुँ महुँमारी । जनसंख्या की गिनती ।

जनगीर्ण—सञ्ज्ञा स्त्री० [देग०] मछली ।

जनघराँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जन + गृह] मठप ।—(हिं०) :

जनचछु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनचछुम्] सूर्य ।

जनचर्चा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद । सर्वसाधारण में फैली हुई बात ।

जनजल्पना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनजल्पना] लोकचर्चा । अफवाह (को०) ।

जनजागरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जन + जागरण] जनसमुदाय में स्वहित की दृष्टि से चेतना उत्पन्न होना ।

जनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जनन का भाव । २ जनसमूह । सर्वसाधारण ।

यौ०—जनता जमादंन = जनसमूह रूपी ईश्वर । लोककपी ईश्वर ।

जनतत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जन + तत्र] जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन । लोकतंत्र । प्रजातंत्र ।

यौ०—जनतंत्रवादी = लोकतंत्र को माननेवाला ।

जनतांत्रिक—वि० [सं० जन + तान्त्रिक] जनतंत्र संधी । उ०—विजित हो रहा यांत्रिक मानव । निखर रहा जनतांत्रिक मानव ।—अग्निमा, पृ० १२० ।

जनत्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूल और बृष्टि से रक्षा हो ।

जनत्राता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जन + त्राता] सेवक की रक्षा करनेवाला । लोक का रक्षक । उ०—मइ दन गएउ मलन जनत्राता ।—मानस, ७।११० ।

जनथोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देग०] ककडवेल । बेंदाल ।

जनजाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जन + जाति] जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहनेवाली जाति या वर्ग ।

जनधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनधन] १ मनुष्य और संपत्ति । २. सार्वजनिक धन ।

जनधा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धनि । धान ।

जनन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति । उद्भव । २. जन्म । ३. आविर्भाव । ४. तंत्र के अनुसार मन्त्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मन्त्रों का मात्रिका वणों से उच्चार किया जाता है । ५. यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है । ६. वंश । कुल । ७. पिता । ८. परमेश्वर ।

जनना—क्रि० घ० [सं० जनन (= जन्म)] सतान को जन्म देना । प्रसव करना । उ०—(क) जनन पुत्र मम धजे नगारा । तदपि धनवि सर सोष अपारा ।—कबीर (शब्द०) । (ख) रम खम जघन दुति देखत नशत जनन जग माँही ।—रघुराज (शब्द०)

जननाशौच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनन + अशौच] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है । वृद्धि ।

जननि(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जननि] दे० 'जननी' । समुक्ति महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकर्तह ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हों इहाँ तेरे ही कारन भायो । तेरी सौं सुनि जननि जसोदा मोहि गोपाल पठायो ।—सूर०, १०।४७८ ।

जननी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पन्न करनेवाली । २. माता । माँ । उ०—(क) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) करनी करुनासिधु की मुख कहत न आवै । कपट हेत परसे बकी जननी गति पावै ।—सूर०, १।४ । ३. जूही का पेड़ । ४. कुटकी । ५. मजीठ । ६. जटामाँसी । ७. अलता । ८. पपड़ी । पपरिका । ९. चमगादड़ । १०. दया । कृपा । ११. जननी नाम का गंधद्रव्य ।

जननेन्द्रिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जनन + इन्द्रिय] १. वह इन्द्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है । भग । योनि । २. उत्पत्ति (को०) ।

जनपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. देश । २. सर्वसाधारण । निवासी । देशवासी । प्रजा । लोक । लोग । उ०—ज्यों हुलास रनिवास नरेशहि त्यों जनपद रजधानी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. राज्य । ४. प्राचिनिक क्षेत्र । ५. मनुष्य जाति (को०) ।

जनपदकल्याणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जनपद + कल्याणी] गणतंत्र की सामान्य (जनभोग्या) विशिष्ट गणिका ।

जनपदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जनपदिन्] देश, समाज, क्षेत्र का शासक (को०) ।

जनपदीय—वि० [सं०] जनपद का । जनपद संधी ।

जनपाल, जनपालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों का पोषण करनेवाला । सेवक या अनुचर का पालन करनेवाला ।

जनप्रवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. लोकप्रवाद । लोकनिदा । २. जनरव । अफवाह । किवदती ।

जनप्रिय^१—वि० [सं०] सबसे प्रेम रखनेवाला। सर्वप्रिय। सबका प्यारा।
जनप्रिय^२—सच्चा पुं० १ धान्यक। धनिया। २ शोभाजन वृक्ष।
सहज का पेड़। ३ महादेव। शिव।

जनप्रियता—सच्चा स्त्री० [सं०] सबके प्रिय होने का भाव। सर्वप्रियता।
लोकप्रियता।

जनप्रिया—सच्चा स्त्री० [सं०] हलहल का साग।

जनवगुल—सच्चा पुं० [हिं० जन + वगुला] एक प्रकार का वगुला।

जनम—सच्चा पुं० [सं० जन्म] १. उत्पत्ति। जन्म। दे० 'जन्म'। उ०—
बहु विधि राम शिवहि समुक्तावा। पारवती कर जनम सुनावा।
—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—धारना।—पाना।—लेना।—होना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्ती। जनमपत्री।

३ जीवन। जिंदगी। आयु। उ०—(क) होय न विषय बिराग,
भवन वसत भा चौपयन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ
हरि भगति बिनु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसीदास
मोको बड़ो सोचु है तू जनम कवन विधि भरि है।—तुलसी
(शब्द०)।

मुहा०—जनम गंवाना = व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना।
जनम बिगड़ना = घमं नष्ट होना। जनम करम के ओछे =
जनमना और कर्मणा उभय प्रकार से हीन। उ०—ऐसे जनम
करम के ओछे, ओछन हैं व्योहारत।—सूर०, १।२२। जनम
भरना = जीवन बिताना। उ०—नैहर जनमु भरव बर
जाई। जियत न करव सवति सेवकाई।—मानस, २।२१।
जनम भर जलना = प्राजीवन दुख भोगना। उ०—वह
घनपड़, गंवार, मूकट्ट, लोह लट्ट के पाले पटककर जनम भर
जला करे।—ठेठ०, पृ० १०। जनम हारना = प्राजीवन
किसी की सेवा के लिये सकल्प धारण करना। उ०—घब
में जनम समु से हारा।—मानस, १।८१।

जनमघूँटी—सच्चा स्त्री० [हिं० जनम + घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों को
जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक बंधी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना = जन्म से ही
(किसी बात की) आदत पड़ना। (किसी बात का) इतना
घम्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके। जैसे,—भूट
बोलना तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमजला—वि० [हिं० जनम + जलना] [वि० स्त्री० जनमजली]
दुर्भाग्यग्रस्त। भाग्यहीन। धमगा।

जनमत—सच्चा पुं० [सं० जन + मत] सर्वसाधारण जनता की राय।
लोकमत। उ०—जनमत राजा को निकाल सकता था।—
प्रा० भा० पृ० १८६।

यौ०—जनमत सग्रह = जनता की राय का सकलन। लोकमत का
सकलन। जिससे लोक की राय जानी जाय। उ०—जनमत
सग्रह के पूर्व सब दलों को जनमत के प्रचार का
अधिकार होगा।—भारतीय, पृ० २२६।

जनमदिन—सच्चा पुं० [हिं० जनम + दिन] दे० 'जन्मदिन'।

जनमधरतो—सच्चा स्त्री० [हिं० जनम + धरती] दे० 'जन्मभूमि'।

जनमना^१—क्रि० प्र० [सं० जन्म] १ पैदा होना। उत्पन्न होना।
जन्म लेना। उ०—(क) जे जनमे कलिकाल कराला।—
मानस, १।१२। (ख) कै जनमत मरि गई एक दासी
घरवारी।—हम्मीर०, पृ० ४५। २ चौसर आदि खेलों में
किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार
खेले जाने के योग्य होना।

जनमना^२—क्रि० प्र० [सं० जन्म या हिं० जनमाना] जन्म देना।
उत्पन्न करना। उ०—कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुंद
जनम भे ओछ।—मानस, १।१६५।

जनमपत्ती—सच्चा स्त्री० [हिं० जनम + पत्ती] चाय कुलियो की बोलचाल
की भाषा में चाय की वह छोटी पत्ती या फुनगी जो पहले
पहल निकलती है।

जनमपत्री—सच्चा स्त्री० [सं० जनमपत्री] दे० 'जन्मपत्री'।

जनमरक—सच्चा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत
से लोग मर जायें। महामारी।

जनमर्यादा—सच्चा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसंगी—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० जनमसंगिनी] जिसका साथ
जनम भर रहे (पति या पत्नी)।

जनमसँघाती(पुं०)—सच्चा पुं० [हिं० जनम + सँघाती] वह जिसका
साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र।
२ वह जिसका साथ जन्म भर रहे।

जनमाना—क्रि० प्र० [हिं० जनम] १ जनमने का काम कराना।
प्रसव कराना। २ दे० 'जनमना'।

जनमु(पुं०)—सच्चा पुं० [सं० जन्म, हिं० जनम] दे० 'जन्म'। उ०—
राम काज लागि जनमु जग, सुनि हरपे हनुमान।—तुलसी
प्र०, पृ० ८६।

जनमुरोद—वि० [फा० जन + मुरोद] पत्नीपरायण। पत्नीभक्त। जोरू
का गुलाम। उ०—पत्नी की सी कहता हूँ तो जनमुरोद की
उपाधि मिलती है।—मान०, भा० १, पृ० १५४।

जनमेजय—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'जन्मेजय'।

जनयिता—वि० [सं० जनयितृ] वि० स्त्री० जनयित्रो] जन्मदाता। पैदा
करनेवाला।

जनयिता^२—सच्चा पुं० पिता। बाप।

जनयित्रो^१—वि० [सं०] जन्म देनेवाली। उ०—शीतलता, सरलता
महूत्री। द्विजपद प्रीति घरम जनयित्रो।—मानस, ७। ३८।

जनयित्रो^२—सच्चा स्त्री० माता। माँ।

जनयिष्णु—वि० [सं०] जननकर्ता। उत्पादक [को०]।

जनरजन—वि० [सं० जन + रजन] मनुष्यों को या सेवकों को सुख
पहुँचानेवाला [को०]।

जनरल^१—सच्चा पुं० [अ०] फौजों का एक बड़ा अफसर जिसके
अधिकार में कई रेजिमेंट होती हैं। अंग्रेजी सेना का सेनापति
या सेनानायक।

जनरल^२—वि० साधारण। सामान्य। जैसे, इन्स्पेक्टर जनरल।

जनरथ—सच्चा पुं० [सं०] १. किषदती। जनश्रुति। अफवाह। २.

लोकनिदा । वदनामी । ३ बहुत से लोगों का कोलाहल । हल्ला । शोरगुल ।

जनलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सप्तलोकों में से पाँचवाँ लोक । दे० 'जन' ११ ।

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जनुवरी] अंग्रेजी साल का पहिला महीना जो इकतीस दिनों का होता है ।

जनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वेत रोहित का पेड़ । सफेद रोहिटा । २. जनप्रिय । लोकप्रिय ।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] दे० 'जमाई'-२ ।

जनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जनरव' ।

जनवाना^१—क्रि० सं० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप । प्रसव कराना । लडका पैदा कराना ।

जनवाना^२—क्रि० सं० [हिं० जानना] समाचार दिलवाना । किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना ।

जनवास—संज्ञा पुं० [सं० जन्य + वास] १. सर्वसाधारण के ठहरने या टिकने का स्थान । लोगों के निवास का स्थान । २. बरातियों के ठहरने का स्थान । वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो । उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्हो जनवास तहाँ कीन्हो सन्मान दे हुलास र्यों समाज को ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किए सब । घर घर बालक बात कहन लागे सब ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सभा । समाज ।

जनवासना—क्रि० सं० [सं० जनवास + ना (प्रत्य०)] प्रागत जन को ठहरने या बैठने का स्थान देना । उ०—तोरन सुचार आचार करि कै जनवासत मढपहि ।—पृ० रा०, ७।१७७ ।

जनवासा—संज्ञा पुं० [सं० जन्यवास] दे० 'जनवास'-२ । उ०—अति सुदर दीन्है जनवासा । जहाँ सब कहँ सब भाँति सुपासा ।—मानस, १।३०६ ।

जनव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकप्रसिद्ध या लोक में प्रचलित चलन या रीति रिवाज [को०] ।

जनशून्य—वि० [सं०] जनहीन । निर्जन । सुनसान ।

जनश्रुत—वि० [सं०] प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर ।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो । अफवाह । किंवदन्ती ।

क्रि० प्र०—उठना ।—फैलना

जनसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + संख्या] किसी स्थानविशेष पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । आबादी । जैसे,—(क) काशी की जनसंख्या दो लाख के लगभग है । (ख) कलकत्ते की जनसंख्या में वबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है ।

जनसंवाध—वि० [सं०] सधन बसा हुआ [को०] ।

जनसमूह—संज्ञा पुं० [सं० जन + समूह] सर्वसाधारण मनुष्यों का समुदाय । आम जनता का मजमा ।

५-५

जनसाधारण—संज्ञा पुं० [हिं०] सामान्य जन । आम जनता ।

जनसेवक—वि० [सं० जन + सेवक] जनता की सेवा करनेवाला । जनता का हित । जनसेवी ।

जनसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + सेवा] सर्वसाधारण जनता के हित का काम ।

जनसेवी—वि० [सं० जन + सेविन्] दे० 'जनसेवक' ।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य । दंडकबन ।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृक्ष का नाम ।

विशेष—यह मुक्तक का दूसरा भेद है और इसके प्रत्येक खरण में तीस लघु और गुरु होता है । जैसे,—लघु सब गुरु एक तिसर न मन घर भजु नर प्रभु अघ जन हरण ।

जनहित—संज्ञा पुं० [सं० जन + हित] लोकोपकारी कार्य । लोक-कल्याण । उ०—फा न कियो जनहित जदुराई ।—सूर०, १।६ ।

जनहीन—वि० [सं० जन + हीन] निर्जन । बिजन । जनशून्य ।

जनांत—संज्ञा पुं० [सं० जनान्त] १. वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो । २. यम । ३. वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों ।

जनांत^२—वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला ।

जनांतिक—संज्ञा पुं० [सं० जनान्तिक] १. दो प्रादमियों में परस्पर वह सांकेतिक बातचीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें ।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है ।

२. व्यक्ति का सामीप्य ।

जना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति । पैदाइश । २. महिष्मती के राजा नीलवज्र की स्त्री का नाम । जैमिनी ।

विशेष—भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर हस्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने (जैमिनी ने) अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी । जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब यह स्वयं युद्ध करने लगी । श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनाई हुई थी ।

जना^२—संज्ञा पुं० [प्र० जिना] दे० 'जिना' ।

जना^३—वि० [सं० जन्य] [वि० स्त्री० जनी] उत्पन्न किया हुआ । जन्माया हुआ ।

जना^४—संज्ञा पुं० [सं० जनी (= माता) का हिं० पुं० रूप] उत्पन्न करनेवाला पिता । उ०—एकै जनी जना ससारा । कीन जान सै भयउ ग्यारा ।—कबीर धी०, पृ० १२ ।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] १. जनानेवाली । दाई । २. जनाने की उजरत । पैदा कराई का हक या नेम । दाई की मजदूरी ।

जनाजो^४—संज्ञा पुं० [हिं० जनाव] दे० 'जनाव' । उ०—घवघ-नाय धाहत चलन, भीतर फरह जबाउ । भए प्रेम बस सखि सुनि, विप्र सभासर राख ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनाकर—वि० [सं० जन + आकर] मनुष्यों से भरा हुआ ।
जनाकीर्ण । उ०—ग्राम नहीं वे ग्राम आज श्री नगर न नगर
जनाकर । ग्राम्या, पु० ११ ।

जनाकार—वि० [प्र० जिनह् + फा० कार] बुरा काम करनेवाला ।
व्यभिचारी । उ०—कहीं मजमा है मर्दोजन जनाकार ।
—कवीर म०, नृ० ४७ ।

जनाकीर्ण—वि० [सं०] सघन आवादीवाला । आदमियों से भरा
हुआ । जनाकर । उ०—हृवद्वा के जनाकीर्ण स्थान मे उन
दोनों ने अपने को ऐसा छिपा लिया, जैसे मधुमक्खियों के
छत्ते मे कोई मक्खी ।—तिल्ली, पु० २१६ ।

जनाचार—संज्ञा पुं० [सं०] देश या समाज आदि की प्रचलित
रीति । लोकाचार ।

जनाजा—संज्ञा पुं० [प्र० जनाजह्] १ मृतक शरीर । मुर्दा । शव ।
लाश । उ०—छुदी खुश की खोइ जनाजा जियतै करना ।—
पल्लव, पु० १४ । २ घरपी या वह संतुल जेसमें लाश को
रखकर गाढ़ने, जलाने या धोर किसी प्रकार की प्रतिम
क्रिया करने के लिये ले जाते हैं । उ०—छुटेंगे जीस्त के
फदे से कौन दिन आतिश । जनाजा होगा कब अपना रवा नहीं
मालूम ।—कविता को०, भा० ४, पु० ३८१ ।

क्रि० प्र०—उठना । निकलना ।—रवा होना ।

जातिग—वि० [सं०] प्रसाधारण । असामान्य । खोकोसर [को०] ।

जाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर । २ राजा ।

जाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । नरेश । २ विष्णु का एक
नाम [को०] ।

जनाती—संज्ञा पुं० [प्रयथा हि० जम (= यम = विवाह) + आती
(= पत्नी के)] कन्या पक्ष के लोग । धराती ।

जनानखाना—संज्ञा पुं० [प्र० जनान + फा० खानह्] घर का वह भाग
जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं । स्त्रियों के रहने का घर । अतः पुर
उ०—अब उन्हीं की सतान, जनामखानों में पतली छड़ी छिप
प्रप्रेषी छूता की ऐसी खटखटाते कुत्तों से मुकवाते पंछे चले जा
रहे हैं ।—प्रेमघन०, पु० ७६ ।

जनाना^१—क्रि० प्र० [हि० जानना का प्रे० रूप] मालूम कराना ।
जताना । उ०—सीइ जानइ जेहिहैहु जनाई । जानत तुम्हहि
तुम्हइ होइ जाई ।—मानस, २।१२७ ।

संयो० क्रि०—देना ।—रखना ।

जनाना^२—क्रि० प्र० [हि० जनना का प्रेरणार्थक रूप] उत्पन्न
कराना । जनन का काम कराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जनाना^३—वि० [फा० जनानह्] [वि० स्त्री० जनानी] १ स्त्रियों का
मन्त्री सचची । जैसे, जनाना काम, जनानी सूरत, जनानी
बोली । २ नामदं । नपुंसक । हीजड़ा । ३ निर्बल । हरपोक ।
४ धीरत । स्त्री । पत्नी ।

जनाना^४—संज्ञा पुं० १ जनता । मेहरा । २, अतः पुर । जनानखाना ।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना । स्थान को पर्देवाली स्त्रियों
के आने जाने योग्य करना ।

जनानापन—संज्ञा पुं० [फा० जनानह् + पन (प्रत्य०)] मेहरापन ।
स्त्रीत्व ।

जनानी—वि० स्त्री० [फा० जनानह] दे० 'जनाना'^३ ।

जनाव—संज्ञा पुं० [प्र०] [स्त्री० जनावी] १. बहों के लिये आदर सूचक
शब्द । महाशय । महोदय । जैसे, जनाव मौलवी साहब ।
२. पार्श्व । पहलू (को०) । ३. आश्रम (को०) । ४. चौखट ।
देहली । इयोड़ी । ५. उपस्थिति । मौजूदगी (को०) ।

जनावआली—संज्ञा पुं० [प्र०] मान्यवर । महोदय । प्रतिष्ठित
पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन ।

जनार्दन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु । २ शालग्राम की बटिया का
का एक भेद । ३. कृष्ण (को०) ।

जनार्दन—वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला । दुःखदायी ।

जनाव—संज्ञा पुं० [हि० जनाना] जनावों की क्रिया । सूचना । इत्तिहा ।
उ०—चलत व काहुहि कियो जनाव । हरि प्यारी सो बाढयो
भाय । रास रसिक गुण गाइ हो ।—सूर (शब्द०) ।

जनावना—क्रि० प्र० [हि० जनाना] सूचित करना । विदित
करना । जताना । ज्ञापित करना । उ०—ताते आप आगे
कहा जनावो ? जो कोई न जानतो होइ ताको जनाइए ।
यो—सौ दावम०, भा० १, पु० २३१ ।

जनावर^१—संज्ञा पुं० [हि० जानवर] दे० 'जानवर' । उ०—घास
में कोई जनावर न रहन पावे ।—दो सौ दावम०, भा०
१, पु० २१० ।

जनावर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेड़िया । २. मनुष्यमक्षक । वह जो
आदमियों को खाता हो । ३ आदमियों को खाने का काम ।

जनावर^३—संज्ञा पुं० [सं०] ठहरने का स्थान । घमंशाला ।
सराय [को०] ।

जनावर^४—संज्ञा पुं० [सं०] १ घमंशाला या सराय आदि जहाँ
यात्री ठहरते हैं । २ वह मकान या मंठप आदि जो किसी
विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय । ३. साधारण
घर । मकान ।

जनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति । जन्म । पैदाइश । २ जिससे
कोई उत्पन्न हो । मारी । स्त्री । ३. माता । ४. जनी नामक
गघद्रव्य । ५ पुनघघू । पतोहू । ६ भायाँ । पत्नी । ७.
जतुका । ८ जन्मभूमि ।

जनि^२—क्रि० प्र० [हि० जानना] जनु । मानो । उ०—पीन पयोधर
अपरुष सुंवर ऊपर मोतिन हार । जनि कनकाचन उपर
विमल जल दुइ यह सुरसरि धार ।—विद्यापति, पु० ३६ ।

जनि^३—प्रण० [हि०] मत । नहीं । न (निषेधार्थक) ।
उ०—जनि लैहु मातु कलक करना परिहरहु भवसर नहीं ।
—मानस, १।६७ ।

जनि^४—संघ० [हि०] दे० 'जिस' । उ०—जनि का जन्म होइत हम
गेलहुँ ऐलहुँ तनिकर अते ।—विद्यापति, पु० २५२ ।

जनिक—वि० [सं०] उत्पन्न करनेवाला । जन्म देनेवाला [को०] ।

जनिका^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जनाना] पहली । मुमम्मा । बुभोवस ।

जनिका^२—वि० [सं०] दे० 'जनि' [को०] ।

जनित—वि० [सं०] १ उत्पन्न । जन्मा हुआ । उपजा हुआ ।
२ उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता^१—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करने-
वाला । पिता ।

जनिता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ] उत्पन्न करनेवाली । माता ।
प्रसूति । उ०—उद्दित अघान सुभ गातनह, जेम जलधि पुनिम
बढ़हि । हलसत हीय जे प्रीय त्रिय, जिम सु ज्योति जनिता
बढ़हि ।—पृ० रा०, १ । १८४ ।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्मस्थान । जन्मभूमि । २. मूल ।
भाषार (को०) ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । माँ ।

जनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता (को०) ।

जनित्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता (को०) ।

जनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिमन्] १. उत्पत्ति । जन्म । २.
सतान । सतति (को०) ।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनिर्यो^७—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्नि] प्रियतमा । प्राणप्यारी ।
प्रिया । प्रेयसी ।

जनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] १ दासी । सेविका । अनुचरी । उ०—
बाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।—केशव प्र०,
भा० १, पृ० ६८ । २ स्त्री । ३ उत्पन्न करनेवाली । माता । ४.
जन्माई हुई । कन्या । लड़की । पुत्री । उ०—प्यारी छवि की
रासि बनी । जाहि विलोकि निमेष न लागत श्री ध्रुवमानु
जनी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४५ ।

जनी^२—वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पपंटी
या पान्दी भी कहते हैं ।

बिशेष—यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्नि-
दीपक, रुचिकारक तथा रक्त, पित्त, कफ, रधिरविकार, कोढ़,
दाह, वधन, तृषा, विष, खुजली और प्रण का नाश करनेवाली
कही गई है ।

जनीयर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

जनु^१—क्रि० वि० [हि० जानना] [अन्त्य रूप-जनि, जनुक, जनु,
जानो आदि] मानो । उ०—(क) छुटत गिलोला हृष्य सँ
पारत चोट पयल्ल । कमलनयन जनु कामिनी करत कटाख
छयल्ल ।—पृ० रा०, १।७२८ । (ख) कामकंदला भई
वियोगिनि । दुर्बल जनु वसं को रोगिनि ।—माधवानल०,
पृ० २०३ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनुक—क्रि० वि० [हि० जनु+क (प्रत्य०)] जैसे । मानो ।

जनु^७—संज्ञा पुं० [जनुन] पागलपन । उन्माद । उ०—इतना एहसा
और कर लिखाह ए दस्ते जनु ।—भारतेंदु प्र०, भा० २,
पृ० २४६ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पत्ति । जन्म (को०) ।

जनुन—पुं० [अ० जुनून] [वि० जनुनी] पागलपन । सनक । उन्माद ।
खन्त (को०) ।

जनुनी—वि० [अ० जुनूनी] पागल । उन्मादी (को०) ।

जनूय—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जनूबी] दक्षिण । दक्षिण (को०) ।

जनूबी—वि० [अ०] दक्षिण संबधी । दक्षिणी । दक्षिण का (को०) ।

जनेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० जनेन्द्र] राजा ।

जने—संज्ञा पुं० [सं० जन्] व्यक्ति । आदमी । प्राणी । उ०—हममें
दो जने का साक्षा तो निभता ही नहीं ।—प्रेमचन०, भा० २,
पृ० ८२ ।

यौ०—जने जने । जैसे, नाऊ की बरात में जने जने ठाकुर ।

जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत, प्रा० जन्तोवईय, अथवा सं० जन्म]
यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र । उ०—वामन को जन्म जनेऊ मेलि
जानि बूझि, जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन मे ।
—भक्तवरी०, पृ० ११५ ।

मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजी या तलवार का एक हाथ
जिसमें प्रतिद्वंद्वी की छाती पर ऐसा भाघात लगाया जाता है
जैसे जनेऊ पड़ा रहता है । इसे जनेव या जनेवा का हाथ भी
कहते हैं ।

२ यज्ञोपवीत सस्कार । उ०—छोन्ह जनेऊ गुरु पितु मोता ।
—मानस, १।२०४ ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+हि० एत (प्रत्य०)] वरयात्रा । वरान ।
उ०—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत । अवध
समीप पुनीत दिन, पहुँची प्राय जनेत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनेता—संज्ञा पुं० [सं० जनयिता या जनिता] पिता । बाप ।—
(हि०) ।

जनेरा—संज्ञा पुं० [हि० जुघार] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़
बहुत लंबे होते हैं । इसमें बालें भी बहुत लंबी आती हैं ।
जोन्हरी ।

जनेव—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] दे० 'जनेऊ' ।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हि० जनेऊ] १. लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी
हुई लकीर या घारी । २ एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े
बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । ३ बाँएँ कंधे से दाहिनी कमर तक
शरीर का वह अंश जिसपर जनेऊ रहता है । ४. तनवार या
खाँटे का वह वार जो जनेऊ की तरह काट करे । दे० मु०
'जनेऊ का हाथ' ।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जनेष्टा] जनप्रिय । लोकप्रिय (को०) ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी । २. चमेली का पेड़ । ३.
पपड़ी । पपंटी । ४. बुद्धि नाम की ओषधि ।

जनेस^७—संज्ञा पुं० [सं० जनेश] दे० 'जनेश' । उ०—गीतम की
तीय तारी भेटे अघ भूरि भारी, लोचन प्रतिवि भए जनक
जनेस के ।—तुलसी प्र०, पृ० १६० ।

जनैया—वि० [हि० जानना+ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला ।
जानकार । उ०—(क) बदले की बदली से जाहू । उनकी एक
हमारी दूँ सुम बड़े जनैया भाहू ।—सूर०, १।४००।१ ।

(ख) तृण के सयान घनधाम राज त्याग करि पाल्यो पितु
बचन जो जानत जनैया है।—पचाकर (शब्द०) (ग) जो
भायसु घन होइ स्वामिनी त्यावहुं ताहि लेवाई। योगी बावा
बहो जनैया सखे कुँवर सुखवाई।—रघुराज (शब्द०)।

जनो^१—सङ्घा पु० [हि० जनेऊ] दे० 'जनेऊ'।

जनो^२—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो। गोया। उ०—(क)
तैही जनो पतिदेवत के गुन गौरि सदै गुनगौरि पढाई।—
मति० प्र०, पृ० २७५ (ख) कुकुम मडित प्रिया वदन जनो
रजित नायक।—नद० प्र०, पृ० ३६।

जनोपयोगी—वि० [सं० जनोपयोगिन्] जनसाधारण के व्यवहार
या उपयोग की।

जनौ^३—क्रि० वि० [हि० जानना] मानो। जनो। उ०—(क)
जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनो सोइ उठि जागा।—
जायसी (शब्द०)। (ख) नर तो जनौ अनृत ही पगे।—
नद० प्र०, पृ० २३२। (ग) उन तेग कट्टी। जनो बज
टट्टी।—पृ० रा०, १०।२०।

जनौघ—सङ्घा पु० [सं० जन + ओघ] भीड़। जनसमूह [को०]।

जन्त—सङ्घा पु० [प्र०] १ उद्यान। वाटिका। बाग। २ विहिस्त।
स्वर्ग। देवलोक। उत्तम लोक। उ०—हमको मालूम है
जन्त की हकीकत लेकिन। दिल के खुश रखने को गालिब
ये खयाल अच्छा है।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४७४।
(ख) जन्त से कड़वा दिया शुरू में ही बेचारे आदम को।
—धूप०, पृ० ७३।

जन्तनी—वि० [प्र०] १ स्वर्गवासी। स्वर्गीय। २ सदाचारी।
पुण्यात्मा। स्वर्ग के योग्य [को०]।

जन्म—सङ्घा पु० [सं० जन्मन्] १. गर्भ में से निकलकर जीवन
धारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।

यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मतिथि। जन्मभूमि। जन्मपंजी
जन्मपत्री। जन्मरोगी। जन्मदिवस=जन्मदिन। जन्म-
कुडली। जन्ममरण। जन्मदाता। जन्मदात्री। जन्मनाम।
जन्मलग्न, आदि।

पर्या०—जन्म। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव।
भव। समभव। जन्म। प्रजनन। जाति।

क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।

मुहा०—जन्म लेना=उत्पन्न होना। पैदा होना।

२ अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे,—इस वर्ष
कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। ३ जीवन। जिंदगी।

मुहा०—जन्म बिगाड़ना=वैधर्म्य होना। धर्म नष्ट होना। जन्म
बिगाड़ना=(१) भगवान् और अनुचित कामों में लगे रहना।
(२) दे० 'जन्म हारना'। जन्म जन्म=सदा। नित्य।
जन्म जन्मातर=सदा। प्रत्येक जन्म में। जन्म में धूकना=
प्रेरणपूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना=(१) व्यर्थ जन्म
खोना। (२) दूसरे का दास होकर रहना।

४ फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुडली का वह लग्न जिसमें
कुडलीवाले जातक का जन्म हुआ हो।

जन्मज्योति—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्माष्टमी] दे० 'जन्माष्टमी'।

जन्मकील—सङ्घा पु० [सं०] विष्णु।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का
मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।
इसी से विष्णु को जन्मकील कहते हैं।

जन्मकुडली—सङ्घा स्त्री० [सं० जन्मकुण्डली] ज्योतिष के अनुसार
वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति
का पता चले।

जन्मकृत्—सङ्घा पु० [सं०] पिता। जन्मदाता।

जन्मक्षेत्र—सङ्घा पु० [सं०] जन्मभूमि। जन्मस्थान [को०]। ३

जन्मगत—वि० [सं० जन्म + गत] जन्म से ही प्राप्त। जन्मना प्राप्त
[को०]।

जन्मग्रहण—सङ्घा पु० [सं०] उत्पत्ति।

जन्मजात—वि० [सं०] जन्म से ही प्राप्त या उत्पन्न।

जन्मतिथि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. जन्म की तिथि। जन्मदिन।
२. वर्षगांठ।

जन्मतुष्ट्रा^१—वि० [हि० जन्म + तुष्ट्रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
जन्मतुष्ट्र] थोड़े दिनों का पैदा हुआ। नवोत्पन्न। दुधमुहूर्त।

जन्मद—वि० [सं०] दे० 'जन्मदाता'।

जन्मदाता—सङ्घा पु० [सं० जन्मदातृ] [स्त्री० जन्मदात्री] जन्म
देनेवाला। पिता [को०]।

जन्मदात्री—सङ्घा स्त्री० [सं०] जननी। माता [को०]

जन्मनक्षत्र—सङ्घा पु० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्मनक्षत्र
में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए,
उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए।

जन्मना^१—क्रि० सं० [सं० जन्म हि० वा (प्रत्य०)] १ जन्म
लेना। जन्म ग्रहण करना। पैदा होना। २ आविर्भूत होना।
अस्तित्व में आना।

जन्मना^२—क्रि० वि० [सं० जन्मन् का करण कारक] जन्म से।
जन्म द्वारा।

जन्मनाम—सङ्घा पु० [सं० जन्मनामा] जन्म के १२ वें दिन रखा
गया नाम [को०]।

जन्मप—सङ्घा पु० [सं०] १ फलित ज्योतिष में जन्मलग्न का
स्वामी। २ फलित ज्योतिष में जन्मराशि का स्वामी।

जन्मपति—सङ्घा पु० [सं०] १. कुडली में जन्मराशि का मालिक।
२. जन्मलग्न का स्वामी।

जन्मपत्र—सङ्घा पु० [सं०] १ जन्मपत्री। २ जन्म का विवरण।
जीवनवर्ति। ३ किसी चीज का आदि से अंत तक
विस्तृत विवरण।

जन्मपत्रिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री।

जन्मपत्री—सङ्घा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्चा जिसमें किसी की
उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा,
आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि
दिए हों।

जन्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] वषावृक्ष [को०] ।

जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ माता । माँ । २ जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म समय का लग्न । २ जन्म समय का नक्षत्र । ३. जन्म की राशि । ४ जन्मनक्षत्र के सजातीय नक्षत्र आदि ।

जन्मभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म की भाषा । मातृभाषा [को०] ।

जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । जन्मस्थान । २ वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्रिका । जन्मकुडली [को०] ।

जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।

जन्मरोगी—वि० [सं० जन्मरोगिन्] जन्म से रोग । जन्म से ही रोगग्रस्त [को०] ।

जन्मलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मराशि' [को०] ।

जन्मवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मवर्तमेन्] योनि । भग ।

जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो कचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । प्रसूतयोनि विधवा ।

जन्मवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जन्म + वृत्तांत] दे० 'जन्मपत्र' ।

जन्मशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से ही प्राप्त श्रद्धा या कर्तव्यो का परिशोधन [को०] ।

जन्मसिद्ध—वि० [सं० जन्म + सिद्ध] जिसकी प्राप्ति जन्म से ही सिद्ध या मान्य हो । जैसे,—स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उ०—बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्त्रि, मेरे स्वर की रागिनी बह्नि ।—अपरा, पृ० १७७ ।

जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ जन्मभूमि । २ माता का गर्भ । ३ कुडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० जन्मान्तर] दूसरा जन्म । अन्य जन्म । उ०—कारन ताको जानिए सुधि प्रगटी है भाव । जन्मांतर के सखन की जो मन रही समाय ।—शकुंतला, पृ० ८२ ।

यौ०—जन्मांतरवाद = पुनर्जन्म सवधी विचारधारा ।

जन्मांध—वि० [सं० जन्मांध] जन्म का अंधा । जन्म से अंधा ।

जन्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे,—द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः समासात् में होता है ।

जन्मा^२—वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २ जन्मराशि का स्वामी । ३ जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्माना—क्रि० सं० [हि० जन्माना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादो की कृष्णाष्टमी, जिस दिन आधी रात के समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की षष्ठमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चाद्रमास और गौण चाद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है । और किसी वर्ष सौर भाद्रमास में होती है ।

जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मो^१—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

जन्मो^२—वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम ।

विशेष—यह बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशंपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । यह धर्जुन का प्रपौत्र और अभिमन्यु का पौत्र था ।

२ विष्णु । ३ एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्टचिरजीवी और कुलदेवता आदि का पूजन । वरसगाँठ । २ जातक के छठे दिन या बारहवें दिन होनेवाला उत्सव या समारोह ।

जन्म^३—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जन्मा] १ साधारण मनुष्य । जनसाधारण । २ किवदती । अफगाँह । ३ राष्ट्र या किसी देश के वासी । ४. लड़ाई । युद्ध । ५. हाट । बाजार । ६ निदा । परिवाद । ७ वर । झूलह । ८. वर के संवधी जन । वर पक्ष के लोग । ९. वगती । १०. जामाता । दामाद । ११. पुत्र । बेटा । उ०—अनुज अनुकुल सा भ्रमल भला कौन है अन्य । अशुभ जिसका जन्म तू धन्य धन्य ध्रुव धन्य ।—साकेत, पृ० २६३ । १२ पिता । १३ महादेव । १४ वेद । शरीर । १५ जन्म । १६ जाति । १७ जन्म के समय होनेवाला शकुन या अप-शकुन [को०] ।

जन्म—वि० १ जन सवधी । २ जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत । ३ किसी जाति, देश, वंश या राष्ट्र से सवध रखनेवाला । ४, देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । ५ साधारण । सामान्य । गैरारु [को०] । ६ (समासात् में) किसी से या किसी के द्वारा उत्पन्न । जैसे, तज्जन्म, दुस्त्रजन्म ।

जन्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बधू की सहेली । २ बधू । ३ माता की सखी । ४. प्रीति । स्नेह । ५ सुख । आनंद [को०] ।

जन्मु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ अह्ना । विधाता । ३ प्राणी । जीव । ४ जन्म । उत्पत्ति । ५ हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वन्तर के सप्तपियों में से एक ऋषि का नाम ।

जप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जपतव्य, जपनीय, जपो, जप्य] १. किसी मन्त्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना। २. पूजा या संध्या आदि में मन्त्र का सख्यापूर्वक पाठ करना।

विशेष—पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक। कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच 'जिह्वाजप' नाम का एक चौथा जप भी मातते हैं। ऐसे लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में और सदसगुना फल मानस जप में होता है। मन ही मन मन्त्र का धर्म मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है। जिह्वा और ओठ को हिलाकर मन्त्रों के धर्म का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है। जिह्वाजप भी उपांशु के ही अंतर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है, पर ओठ में गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है। वरुणों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। जप करने में मन्त्र की सख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है।

यौ०—जपमाला। जपयज्ञ। जपस्थान।

३ जपक। जपनेवाला। जैसे, करुणजप।

जपजी—संज्ञा पुं० [हि० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रन्थ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं।

जपतप—संज्ञा पुं० [हि० जप+तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि। पूजा पाठ। उ०—जपतप कछु न होइ तेहि काला। है विधि मिलइ कवन विधि वाला।—मानस, १।१३१।

जपत(उ)—संज्ञा पुं० [म० जप्त] दे० 'जप्त'। उ०—जपत करी वन की लता, जपत करी द्रुम साज। ब्रुध बसत की कहत हैं कहा। जानि ऋतुराज।—स० सप्तक, पृ० ३८२।

जपतव्य—वि० [सं०] दे० 'जपनीय'।

जपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जप करने का काम। २. जप करने का भाव।

जपन—संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम। जप।

जपना^१—क्रि० सं० [सं० जपन] १. किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना। उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि।—सुलसी (शब्द०)। २. किसी मन्त्र का संध्या, यज्ञ या पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना। ३. छा जाना। जल्दी निगल जाना (बाजारू)।

जपना(उ)^२—क्रि० सं० [सं० यजन] यजन करना। जज्ञ करना। उ०—चहत महाभुनि जाग जपो। नीच निसाचर देत दुसह ब्रुख कूस तनु ताप तपो।—सुलसी (शब्द०)।

जपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० जपना] १. माला। २. वह धैली जिसमें माला रखकर जप किया जाता है। गोमुखी। गुप्ती।

जपनीय—वि० [सं०] जप करने योग्य। जो जपने योग्य हो।

जपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं।

विशेष—यह माला संप्रदायानुसार, रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्रजीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनको की होती है। इनमें प्रायः एक सौ घाठ, चौवन या भट्टाईस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है वहाँ एक सुमेरु होता है। हिंदुओं के प्रतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं।

जपयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] जपात्मक यज्ञ। जप। इसके तीन भेद वाचिक, उपांशु और मानसिक हैं।

विशेष—दे० 'जप-२'।

जपहोम—संज्ञा पुं० [सं०] जप। मन्त्र का होमात्मक रूप में जप।

जपा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा पुष्प। मड़हल। उ०—को इनकी छबि छद्दि सके, को इनकी छबि लाल। रोचन ते रोचन कहा, जावक, जपा, गुलाल।—स० सप्तक, पृ० ३८७।

यौ०—जपाकुसुम=मड़हल का फूल।—धनेकाव्य०, पृ० ४१। जपालक्त, जपालक्तक=जपाकुसुम सा गहरा लाल महावर।

जपा(उ)^२—संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला व्यक्ति। उ०—मठ मठ पछु पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—बायसी ग्र०, पृ० १२।

जपाना^३—क्रि० सं० [हि० जप या जपना] जपने का प्रेरणायक रूप। जप कराना।

जपिया(उ)—वि० [हि०] जप करनेवाला।

जपी—संज्ञा पुं० [सं० जपिन् हि० जप + ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला। वह जो जप करता हो।

जप्त—संज्ञा पुं० [म० जप्त] दे० 'जप्त'।

जप्तव्य—वि० [सं०] जो जपने योग्य हो। जपनीय।

जप्ती—संज्ञा स्त्री० [म० जप्ती] दे० 'जप्ती'।

जप्य^१—वि० [सं०] जपने योग्य। जपनीय।

जप्य^२—संज्ञा पुं० मन्त्र का जप।

जफर^१—संज्ञा स्त्री० [म० जफर] जय। विजय। सफलता। उ०—दो तीन गरातिव वह लखकर। जग उससे किए नई पाए जफर।—दक्खिनी०, पृ० २२१।

जफर^२—संज्ञा पुं० [म० जफ] एक विद्या जिससे परोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है (को०)।

जफा—संज्ञा स्त्री० [फा० जफा] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार। सखी। उ०—गया बहाना भूल जफा में मुर गँवाया।—पलटू०, पृ० २०।

यौ०—जफाकार, जफाकेश, जफाशिम्भार=अत्याचारी। अन्यायी। क्रूर। जालिम।

जफाकश—वि० [फा० जफाकश] १. सहिष्णु। सहनशील। २. मेहनती। परिश्रमी।

जफाकशी—संज्ञा स्त्री० [फा० जफाकशी] सहिष्णु और परिश्रमी स्वभाव का होना (को०)।

जफीर—संज्ञा स्त्री० [म० जफोर] दे० 'जफील'।

जफीरी—संज्ञा स्त्री० [म० जफोर + फा० ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश में होती है। २. सीटी (को०)।

जफील—खी० सखा पुं० [अ० जफ्रीर] १ सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कवूतरवाज कवूतर उठाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रखकर बजाते हैं । २. वह जिससे सीटी बजाई जाय । सीटी ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देना ।

जफीलना—क्रि० अ० [हि० जफील] सीटी बजाना । सीटी देना ।

जव—क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय । जिस वक्त । उ०—जबते राम व्याहि घर आए । नित नव मंगल मोट बधाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—जब कभी = जब जब । जिस किसी समय । जब कि = जब । जब जब = जब कभी । जिस जिस समय । उ०—जब जब होइ घरम की हानी । बाढे असुर पधम अभिमानो । तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ।—तुलसी (शब्द०) । जब तब = कभी कभी । जैसे,—जब तब वे यहाँ आ जाया करते हैं । जब होता है तब = प्रायः । प्रकसर । बराबर । जैसे,—जब होता है, तब तुम मार दिया करते हो । जब देखो तब = सदा । सर्वदा । हमेशा । जैसे,—जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो ।

जबई—क्रि० वि० [हि० जय + ही] जिस किसी समय । उ०—जबई पानि परै तहाँ सबई ता सिर देखि ।—नद० प्र०, पृ० १३५ ।

जबड़ा—सखा पुं० [सं० जम्भ] मुँह में दोनों ओर ऊपर ओर नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें ढाढ़े जड़ी रहती हैं । कल्ला ।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना । मुँह फाड़ना । जबड़े की तान = गवयों की एक तान जो उत्तम नहीं मानी जाती ।

यौ०—जबड़ालोड = जवरदस्त । बलवान । मुँहलोड ।

जबदी—सखा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रूहेनखड में पैदा होता है ।

जबर^१—वि० [फ़ा० जबर] १ बलवान । बली । ताकतवर । २ मजबूत । दृढ़ । ३ ऊँचा । ऊपरी ।

जबर^२—क्रि० वि० ऊपर । उपरि ।

जबर^३—सखा पुं० चट्ट में ह्रस्व प्रकार का बोधक चिह्न ।

जबरई—सखा स्त्री० [हि० जबर + ई (प्रत्य०)] अन्याययुक्त सक्ती । पत्याचार । ब्यादती ।

जबरजंगी—वि० [हि० जबर + जंग] दे० 'जबरदस्त' ।

जबरजद, जबरजद्—सखा पुं० [अ० जबरजद] एक प्रकार का पत्रा जो पीछापन किए हुए रंग का होता है । पुखराज ।

जबरजस्ता—वि० [फ़ा० जबरदस्त] दे० 'जबरदस्त' ।

जबरजस्ती—सखा स्त्री० [फ़ा० जबरदस्ती] दे० 'जबरदस्ती' । उ०—किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते जबरजस्ती जो चाहे निकाल दे ।—रगभूमि, भा० २, पृ० ७६४ ।

जवरदस्त—वि० [फ़ा० जवरदस्त] [सखा जवरदस्ती] १ बलवान बली । शक्तिवाला । २ दृढ़ । मजबूत । पक्का ।

जवरदस्ती—सखा स्त्री० [फ़ा० जवरदस्ती] अत्याचार । शीनाजोरी । प्रवलता । जियादती । अन्याय ।

जवरदस्ती^२—क्रि० वि० बलपूर्वक । दबाव डालकर । इच्छा के विरुद्ध ।

जवरन—क्रि० वि० [अ० जवन्] दसात् । जबरदस्ती । बलपूर्वक ।

उ०—एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया ।—भस्मावृत०, पृ० ११ ।

जवरा^१—वि० [हि० जवर] बलवान । बली । प्रबल । जवरदस्त । जैसे—जबरा मारे रोने न दे ।

जवरा^२—सखा पुं० [हि० जवर (= दृढ़)] बोड़े मुँह का एक प्रकार का कूठला या घनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन ।

जवरा^३—सखा पुं० [अ० जेबरा] घोड़े और गधे के मध्य का एक बहुत सुंदर जगनी जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं ।

विशेष—यह कबे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छरहरे, पर मजबूत धवन का होता है । इसके कान बड़े, गरदन छोटी और हुम गुच्छेदार होती है । यह बहुत चौकन्ना, चपल, जगली और तेज बौझनेवाला होता है और बड़ी कठिनता से पकड़ा या पाखा जाता है । यह कभी सवारी या सादने का काम नहीं देता । दक्षिण अफ्रीका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं । जहाँ तक हो सकता है, यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आवाज पाकर सुरत भाग जाता है । इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है ।

जवराइल—सखा पुं० [अ० जिब्रील] एक फरिश्ता या देवदूत ।

जवरुत—सखा पुं० [अ०] प्रतिष्ठा । श्रेष्ठता । युजुर्गी [को०] ।

जवरदस्त—वि० [हि०] दे० 'जवरदस्त' ।

जवरदस्ती—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'जवरदस्ती' ।

जवल—सखा पुं० [अ०] पर्वत । पहाड़ । उ०—तन दुख नीर तड़ाग, रोग विहगम रुखडो । बिसन सलीमुख वाग, जरा बरक ऊतर जवल ।—बौकी प्र०, भा० २, पृ० ४१ ।

जवह—सखा पुं० [अ० जवह, जिह्व] गला काटकर प्राण छिने की क्रिया । हिंसा । उ०—मोले भाले मुसलमानों को वर्गला कर जवह न कीजिए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६ ।

मुहा०—जवह करना = बहुत कष्ट देना । अत्यंत दुःख देना ।

जवहा^१—सखा पुं० [हि० जीव] जीवत । साहस । हिम्मत । जैसे,—उसने बड़े जवहे का काम किया ।

जवहा^२—सखा पुं० [अ० जवह] १. दसवाँ नक्षत्र । मघा । २. सप्ताह । पेशानी । माथा ।

यौ०—जवहासाई—माथा रगड़ना या घिसना । दैन्य प्रदर्शन ।

जवाँ—सखा स्त्री० [फ़ा० जवाँ] दे० 'जवान' । उ०—जवाँ सबके गाली ही भला घाशिक को तुम दे दो ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४२२ ।

यौ०—जवाँगीर । जवाँजद । जवाँदराज । जवाँदराजी । जवाँवाँ = भापाविज्ञ । जवाँदानी । जवाँबदी ।

जवाँगीर—वि० [फ़ा० जवाँगीर] जासूस । गुप्तचर । मेदिया [को०] ।

जवाँजद—वि० [फ़ा० जवाँजद] जो सबकी जवान पर हो । जन-प्रसिद्ध । विख्यात [को०] ।

जवाँदराज—सि० [फा० जवाँदराज] दे० 'जवानदराज' ।

जवाँदराजी—सज्ञा स्त्री० [फा० जवाँदराजी] दे० 'जवानदराजी' ।

जवाँदानी—सज्ञा स्त्री० [फा० जवाँदानी] किसी भाषा का पाठित्य या पूर्ण गान । उ०—लखनऊवाले, जिन्हें अपनी जवाँदानी का अर्थान है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६ ।

जवान—सज्ञा पुं० [फा० जवान] [वि० जवानी] । १ जीम । जिह्वा । यौ०—जवानदराज । जवानबदी ।

मुहा०—जवान कतरनी की तरह चलना = घृष्टतापूर्वक अनुचित अनुचित बातें कहना । उ०—ऐसी ढिठाई से खुदा समझे कि दोनों की जवान कतरनी की तरह चल रही है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६६ । जवान को लगाम देना = अपना कथन समाप्त करना । चुप हो जाना । उ०—बस बस जरी जवान को लगाम दी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जवान घाना = किसी चुप्पे भावमी का घड़कर बातें करना । उत्तर प्रत्युत्तर करना । उ०—शान खुदा, बेजवानों को भी हमारे लिये जवान घाई ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । जवान खींचना = बहुत अनुचित या घृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना । जवान खुशना = (१) मुँह से बात निकालना । (२) वक्त्रों का बोलने लगना । बोलने में समर्थ होना । जवान खुलवाना = टेढ़ी सीधी कुछ कहने की विवश करना । जवान खुश होना = पिपासित होना । प्यास से आकुल होना । जवान खोलना = मुँह से बात निकालना । बोलना । जवान घिस जाना या घिसना = कहते कहते हार जाना । बार बार कहना । जवान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । (३) खाया जाना । मुँह चलाना । जवान चलाना = (१) बोलना, विशेषतः जल्दी जल्दी बोलना । (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना । जवान चलाए की रोटी खाना = खुशामद या चापलूसी द्वारा जीवनयापन करना । जवान चाटना = दे० 'घोठ चाटना' । जवान दूटना = (वालक का) स्पष्ट उच्चारण प्रारंभ करना । † जवान डालना = (१) माँगना याचना करना । (२) पूछना । प्रश्न करना । जवान तक न हिलना = मौन रह जाना । कुछ न कहना । उ०—इतनी किरगिर्नें बैठी हैं किसी की जवान तक नहीं हिली और हम आपस में कटे मरते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३ । जवान थामना या पकड़ना = बोलने न देना । कहने से रोकना । जवान पर घाना = कक्षा जाना । मुँह से निकलना । जवान पर या में ताला लगना = चुप रहने की विवश होना । जवान पर मुहर लगाना = बोलने या कहने पर रुकावट होना । जवान पर रखना = (१) किसी चीज को थोड़ी मात्रा में खाकर उसका स्वाद लेना । चखना । (२) स्मरण रखना । याद रखना । जवान पर लाना = मुँह से कहना । बोलना । उ०—मरहूबा वगैरह जवान पर लाते थे और खुद ही रुक रुक कर सलाम करते थे ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १ । जवान पलटना = कहकर बदल जाना । वचन भंग करना । जवान पर होना = हर दम याद रहना । स्मरण रहना ।

जवान बंद करना = (१) चुप होना । (२) बोलने से रोकना । (३) विवाद में हारना । जवान बंद होना = (१) मुँह से शब्द न निकलना । (२) विवाद में हार जाना । निग्रह स्थान में जवान बिगड़ना = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना । ३ मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे । (३) जवान चटोरी होना । जवान में काँटे पड़ना = (१) जवान करना । निनावी होना । (२) किसी बात को रुककर रुक कहना । जवान में कीड़े पड़ना = अनुचित कथन या मिथ्या भावण पर अनुभ्रम कामना । जवान में खुजली होना = भगड़े की अमिलापा होना । जवान में लगाम न होना = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना । सोच समझकर बोलने के योग्य होना । जवान रोकना = (१) जवान पकड़ना । (२) चुप करना । जवान संभालना मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना । सोच समझकर बोलना । जवान सीना । दे० 'मुँह सीना' । जवान निकालना = उच्चारण होना । बोला जाना । जवान से निकलना = उच्चारण करना । कहना । जवान हिलाना = बोलने का प्रयत्न करना । मुँह से शब्द निकालना । दबी जवान से बोलना या कहना = कमजोर होकर बोलना । अस्पष्ट रूप से बोलना । इस प्रकार से बोलना जिससे सुनने-वालों को उस बात के सवध में सदेह रह जाय । बदजवानी = अनुचित और अशिष्ट बात । बरजवान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो । कठस्थ । उपस्थित । बेजवान = जो अधिक न बोलता हो । बहुत सीधा ।

२. जवान से निकला हुआ शब्द । बात । बोल । जैसे—मरद की एक जवान होती है ।

मुहा०—जवान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना । दे० 'जवान पलटना' ।

३ प्रतिज्ञा । वादा । कौल । करार ।

मुहा०—जवान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना । वचन देना । वादा करना ।

४ भाषा । बोलचाल । जैसे, उर्दू जवान ।

जवानदराज—वि० [फा० जवानदराज] [सज्ञा जवानदराजी] १ जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे । बहुत घृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला । २ बड़ बड़कर बातें करनेवाला । गैली या डींग हँकनेवाला ।

जवानदराजी—सज्ञा स्त्री० [फा० जवानदराजी] बहुत घृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव । घृष्टता । ढिठाई । गुस्साखी ।

जवानबंद—सज्ञा पुं० [फा० जवानबंद] १. ताबीज या यंत्र । वह ताबीज जो शत्रु की जवान को रोकने के लिये लिखा जाय । २ वह साक्षी या इजहार जो लिखा हुआ हो ।

जवानबदी—सज्ञा स्त्री० [फा० जवानबदी] १ किसी घटना प्रादि के नवध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय । लिखा जानेवाला इजहार । २. मौन । चुप्पी ।

जबानी—वि० [हि० जबान] जो केवल जवान से कहा जाय, पर कार्य ग्रथवा शीर किसी रूप में परिणत न किया जाय। मौखिक। जैसे, जबानी जमाखर्च, जबानी सदेसा।

जबाब—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जबाब] दे० 'जवाब'।

जौ०—जवाबदेह=उत्तरदाता। जिम्मेदार। उ०—इस नूतन कविता आंदोलन के साथ मैं आज अपनी रचनाओं के लिये आलोचक के सामने पहले से कहीं अधिक जवाबदेह हूँ।
—वदन०, पृ० २१।

जवारि—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवार] दे० 'जवार'। उ०—जवार में ही हाई स्कूल खुल गया था।—नई०, पृ० ८।

जवाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यकाम जावाल ऋषि की माता का नाम जो एक दासी थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद् में है।
विशेष—दे० 'जावाल'।

जवुर—वि० [प्र० जवुर] बुरा। खराब। अनुचित।

जवून—वि० [तु० जवून] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट।
उ०—करत है राम जवून भला, हम बपुरा कौन सवारी।—जग० भा०, पृ० ११४।

जवूर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवूर] वह आसमानी किताब जो हजरत दाऊद पर उतरी थी। एक मुसलमानी धर्मग्रन्थ। उ०—जैसे तोरीत ऋग्वेद है वैसा ही जवूर सामवेद है।—कबीर म०, पृ० २८८।

जब्त—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जब्त] १ अधिकारी या राज्य द्वारा दह-स्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हूरण। किसी अपराधी को दह देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। २. अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी के अधिकार से ले लेना। ३. धैर्य धारण करना। धीरतायुक्त होना। सहना (को०)। ४. प्रवध। हंतजाम। व्यवस्था (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जब्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जब्त] जब्त होने की क्रिया। कुर्की।

मुहा०—जब्ती में आना=जब्त हो जाना।

जब्वर(१)—वि० [फा० जब्वर] शक्तिशाली। भारी। उ०—लालच लोटहि पोट चोट जब्वर उर लागी। कियो द्वियो दु सार पीर प्राननि मैं पागो।—ग्रज० प्र०, पृ० १५।

जब्यार—वि० [प्र०] जबरदस्ती करनेवाला। ताकतवर। शक्तिशाली। उ०—छुकारा हुषा आज दस्ते जब्यार।—कबीर म०, पृ० ४७।

जबर्मा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जबहा'।

जब्र—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १ कठोर व्यवहार। ज्यादाती। सरती। २. साचारी। मजबूरी (को०)।

जब्रन—क्रि० वि० [प्र० जब्रन] बलात्। बलपूर्वक। जबर-दस्ती।

जब्री—वि० [प्र०] जबरदस्ती, बलपूर्वक या अनिवार्यत करायी जानेवाला (को०)।

जब्रीया^१—क्रि० वि० [प्र० जब्रीयह] जबरदस्ती से।

जब्रीया^२—सञ्ज्ञा पुं० वह जो ईश्वर-च्छा या निर्दिष्ट की आशक्ति मानता हो (को०)।

जब्रील—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'जिब्रील'।

जव्ह—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जव्ह] दे० 'जवह'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जभन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमन] मैथुन। स्त्री-प्रसंग।

जम(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'। उ०—दरसन ही ते लागी जम मुख मसी है।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १८१।

यौ०—जम अनुजा=यमुना। जमकातर। जमघट। जमघर। जमदिसा। जमपुर।

जमई—[फा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। प्रथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप में नहीं बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमक] दे० 'यमक'।

जमक^(२)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमक] दे० 'जमक'।

जमकना—क्रि० प्र० [हि० जमकना] दे० 'जमकना'।

जमकात(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमकातर'। उ०—बिजुरी चक्र फिरे चहुं केरी। ओ जमकात फिरे जम केरी।—जायसी (शब्द०)।

जमकातर(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यम + हि० कातर] गेंदर।

जमकातर^(२)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्तरी] १. यम का छुरा या खांश। २. एक प्रकार की छोटी तलवार।

जमकाना—क्रि० सं० [हि० जमकना] जमकना का मकर्मक रूप। जमकाना।

जमघट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यम + घट] दे० 'यमघट'। उ०—सब कछु जरि गयो होरी में। तब धूरहि धूर बचो री नाम जमघट परो री।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०५।

जमघट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमना + घट (= समूह)] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठप्ठाठस मरे हों शीर त्रिषे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। बहुत से मनुष्यों का भीड़। ठट्टा। जमावड़ा। मजमा। उ०—धीर नर्तकियों का जमघट जमता था।—मेमघन०, भा० २, पृ० ३३२।

क्रि० प्र०—जमना।—जमना।—जमाना।—होना।

जमघटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जमघट'।

जमघर(१)—सञ्ज्ञा पुं० [यम + गृह] यमालय। उ०—दुनिया में भरमो मति हीना। जमघर जावगे नाम विहीना।—कबीर सा०, पृ० ८१४।

जमज(१)—वि० [सं० यमज] दे० 'यमज'।

जमजम—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जमजम] मक्का का एक कुष्मा जिसका पानी मुसलमान लोग बहुत पवित्र मानते हैं। उ०—जलसदा

में तेरे मुक्त चाहे जमजम का भसर दिसता ।—कविता कौ०,
भा० ४, पृ० ६ ।

जमजोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो
श्रुतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती है ।

विशेष—यह चिड़िया जाड़े के दिनों में उत्तरपश्चिम भारत
में दिखाई पड़ती है और गरमी में फारस और तुर्किस्तान को
चली जाती है । यह प्रायः एक बालिष्ठ लयी होती है और
श्रुतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती रहती है ।

जमडाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दष्ट, प्रा० दड्ड, डड्ड, हि० डाढ़] कटारी
की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पीनी और
भाग की ओर मुकी हुई होती है । इसे एगु के शरीर में
भोंकते हैं । जमघर ।

जमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि
जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है । भृगुवंशी ऋषीक
ऋषि के पुत्र ।

विशेष—वेदों में जमदग्नि के बहुत से मन्त्र मिलते हैं । ऋग्वेद के
अनेक मन्त्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये
भी वशिष्ठ के विपक्षी थे । ऐतरेय ब्राह्मण हरिश्चंद्रोपाख्यान
में लिखा है कि हरिश्चंद्र के मरमेघ यज्ञ में ये अश्वयुक्त
हुए थे । जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और
विष्णुपुराण में आया है । इसकी उत्पत्ति के संबंध में
लिखा है कि ऋषीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो
राजा गांधी की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये
भिन्न गुणोंवाले दो चर तैयार किए थे । दोनों चर अपनी
स्त्री सत्यवती को देकर उन्होंने बतला दिया था कि श्रुतुस्नान
के उपरांत यह चर तुम खा लें और दूसरा चर अपनी माता
को खिला देना । सत्यवती ने दोनों चर अपनी माता को
देकर उसके संबंध में सब बातें बतला दीं । उसकी माता ने
यह समझकर कि ऋषीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम
गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चर तैयार किया होगा,
उसका चर स्वयं खा लिया और अपना चर उसे खिला दिया ।
जब दोनों गर्भवती हुईं, तब ऋषीक ने अपनी स्त्री के बखस
देखकर समझ लिया कि चर खराब मया है । ऋषीक ने उससे
कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से ब्रह्मबिण्ड पुत्र और तुम्हारी माता
के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने
के लिये चर तैयार किया था, पर तुम लोगों ने चर बदल
लिया । इसपर सत्यवती ने दुःखी होकर अपने पति से कोई
ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिससे उसके गर्भ से उग्र
क्षत्रिय न उत्पन्न हो; और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य
ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो । तदनुसार
सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से
विश्वामित्र का जन्म हुआ । इसीलिये जमदग्नि में भी बहुत
से क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित की
कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें
रमएवान्, सुपेण, बह्म, विश्वाबह्म और परशुराम नाम के पाँच
पुत्र उत्पन्न हुए थे । ऋषीक के चर के प्रभाव से उनमें से

परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि की मृत्यु के
संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हेहय के राजा
कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे । इस
पर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट
ढाले । जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई, तब
लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला ।

जमदिसा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें
यम का निवास माना जाता है । उ०—मेघ सिंह धन पूरुष
धर । विरिख मकर कन्या जम दिते ।—जायसी (शब्द०) ।

जमघर—संज्ञा पुं० [हि० जमडाढ़] १. जमडाढ़ नामक हथियार ।
उ०—गहि हृथ्य एकन को गिराए मारि जमघर कमर में ।—
हिम्मत०, पृ० २१ । २. एक प्रकार का वदामी कागज ।

जमघार^७—संज्ञा स्त्री० [हि० जम + घार] यम की सेना । काल की
सेना । उ०—जमघार सरिस निहारि सय नर नारि चलिहहि
भाजि कै ।—सुलसी ग्र०, पृ० ३४ ।

जमना^१—संज्ञा पुं० [सं० जमन] १. भोजन करना । भक्षण । २.
भोजन । भोज्य वस्तु [को०] ।

जमन^७—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, तुल०, प्रा० जमन] दे० 'यमुना' ।
उ०—सुर धान निगमबोधह सुरग । जल जमन आइ रायिस
स्वमग ।—पृ० रा०, १ । ६५८ ।

जमन^३—संज्ञा पुं० [सं० यमन] स्लेच्छ । मुसलमान । यमन ।
उ०—(क) व्याध सुरिच्छव मृग चरम, चरन दिए पहिराय ।
जमन सैन के मेघ कहें, धिवा किए नृपराय ।—पृ० रासो, पृ०
१०४ । (ख) दोऊ नृप मिलि मत्र करि जमन मिटवहु आस ।
—पृ० रासो, पृ० १०४ ।

जमन^४—संज्ञा पुं० [सं० जमन] जमाना । काल । जगत् । ससार [को०] ।

जमना^१—कि० घ० [सं० यमन (= जकड़ना), मि० घ० जमा] १.
किसी द्रव पदार्थ का ठंडक के कारण समय पाकर घपवा और
किसी प्रकार गाढ़ा होना । किसी तरल पदार्थ का ठोस हो
जाना । जैसे, पानी से घरफ जमना, दूध से दही जमना । २.
किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर छड़तापूर्वक बैठना ।
अच्छी तरह स्थित होना । जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी
पर आसन जमना, घरतन पर मेल जमना, सिर पर पगड़ी या
टोपी जमना ।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना ।
नजर का बहुत देर तक किसी चीज पर ठहरना । निगाह
जमना = दे० 'दृष्टि जमना' । मन में बात जमना = किसी बात
का हृदय पर अपनी भांति धकित होना । किसी बात का मन
पर पूरा पूरा प्रभाव पडना । रंग जमना = प्रभाव पड़ना ।
पूरा अधिकार होना ।

३. एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे, भीड़
जमना, तलछट जमना । ४. अच्छा प्रहार होना । खूब
घोट पडना । जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना । ५. हाथ
से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना । जैसे,—लिखने
में हाथ जमना । ६. बहुत से आदमियों के सामने होने-
वाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना । बहुत से

भादमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सबपर उसका प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। ७. सर्वसाधारण से सबव रखने-वाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाळा जमना, दूकान जमना। ८. घोड़े का बहुत ठुमक ठुमककर चलना। उ०—जमत उड़त ऐकत उछरत ६ बनी बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

जमना^२—क्रि० प्र० [सं० जन्म, प्रा० जम्म > जम + हि० ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

जमना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमना (= उत्पन्न होना)] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

जमना^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'यमुना'।

जमनिका^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] १ जवनिका। परवा। २. काई। उ०—हृदय जमनिका बहुविधि लागी।—गुलसी (शब्द०)।

जमनोत्तरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यमुना + भवतार] गढ़वाल के निकट हिमालय की वह चोटी जहाँ से यमुना निकलती है।

जमनौता—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जमानत + हि० औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५ रुपए प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जमनौता] दे० 'जमनौता'।

जमपुर^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमपुर] दे० 'यमपुर'। उ०—स्वामी को सकट परे, जो सजि भाजै कूर। लोक भजस, परलोक में जमपुर जात जरूर।—हम्मीर०, पृ० ४७।

जमरस्सी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यम + हि० रस्सी] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी औषधि समझी जाती है।

जमरा^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—विष्णु ते अधिक और कोउ नाही। जमरा विष्णु की चिरा भाही।—कबीर सा०, पृ० ३६५।

जमराई^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जो कोई सत्त पुरुष गहे भाई। ता कहें देख डरे जमराई।—कबीर सा०, पृ० ८१५।

जमराण^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जमराणा साँझी करी वानेइ लेज्यों मेल।—डोला०, पृ० ६१०।

जमरुद—सञ्ज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमल^{१०}—वि० [सं० यमल, प्रा० जमल] दे० 'यमल'। उ०—जमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७४८।

यौ०—जमलतर = दे० 'यमलाजुन'। उ०—मुनि सराप ते भए जमलतर तिन्ह हित प्रापु बेषाए हो।—सूर०, १।७।

जमवट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जमना] पहिए के धाकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुर्मी बनाने में भगाव में रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमवार^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यमवार] यम का द्वार। उ०—(क) सिंहल द्वीप भए घोताए। जवूदीप जाइ जमवारू।—जायसी (शब्द०)। (ख) उ०—परि जमवार चहे जहें रहा। जाइ न मेटा ताकर कहा।—पदमावत, पृ० २६२।

जमशेद—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा०] ईरान का एक प्राचीन शासक।

विशेष—कहा जाता है, इसके पास एक ऐसा प्याला था जिससे उसे ससार भर का हाल ज्ञात होता था।

जमहूर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जुमहूर] जनता। सर्वसाधारण [को०]।

जमहूरियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जुमहूरियत] जनतन्त्र। प्रजातन्त्र [को०]।

जमहूरी—वि० [प्र० जुमहूरी] सार्वजनिक [को०]।

जमा^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जमा] जमाना। काला। समय। ससार। दुनिया [को०]।

जमा^१—वि० [प्र०] १. जो एक स्थान पर सग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुद्दा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिलाकर। कुल। सब। जैसे,—वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर चले थे।

२ जो जमानत के तौर पर या किसी खाते में रखा गया हो। जैसे,—(क) उनका सौ रुपया बैंक में जमा है। (ख) तुम्हारे चार पान हमारे यहाँ जमा हैं।

जमा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ मूल धन। पूँजी। २ धन। रुपया पैसा। जैसे,—उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा। जमापूँजी।

मुद्दा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेइमानी से किसी का माल हजम करना। जमा हजम करना = दे० 'जमा मारना'। उ०—चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६६२।

३ भूमिकर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबदी।

४. सकलन। जोड़ (गणित)। ५. वही भादि का वह भाग या कोष्ठक जिसमें आए हुए धन या माल भादि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाखत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ दे० 'जमात'—१। उ०—यह खबर हमको झूझू की नागा जमाखत के ययोवृद्ध भटारी बाल-मुकुंद जी से मिली।—सुंदर प्र० (भू०), भा० १, पृ० ४।

जमाखती—वि० [प्र०] जमात संबंधी। सामुदायिक [को०]।

जमाई^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दामाद। जेन्दाई। जामाता।

जमाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जमना] १ जमने की क्रिया। २. जमने का भाव।

जमाई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] १. जमाने की क्रिया। जमादे का भाव। ३. जमाने की मजदूरी।

जमाना—संज्ञा पुं० [अ० जमान + फा० रत्न] धाय और व्यय ।

जमाजया—संज्ञा स्त्री० [हि० जमा + गय (= पूँजी)] धनसंपत्ति ।
नाम दे और माल । जमापूँजी ।

जमात—संज्ञा स्त्री० [अ० जमाधत] १ बहुत से मनुष्यों का समूह ।
जमानियों की गिरोह या जत्था । जैसे, साधुओं की जमात ।
—नालों की नहि बोरियाँ साधु न चले जमात । सत-
नामो, पृ० २८ । २ कक्षा । श्रेणी । दरजा । जैसे,—वह
लड़का पाँचवीं जमात में पढ़ता है । ३ पक्ति । कतार ।
—जुल । जैसे, सिपाहियों की जमात ।

जमानदी—संज्ञा स्त्री० = गिरोहबदी । दलबदी । उ०—जिसके कारण
जमान की जमातबदी भी बदलती गई । —भा० ६० ख०,
पृ० ६२२ ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा० या अ० जमाधत + दार] [सद्दा जमादारी]
१ कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी
अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । २
पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और
साधारण सिपाही होते हैं । हेड कास्टेबल । ३ कोई सिपाही
या पहरेदार । ४ नगरपालिका का वह कर्मचारी जो भगियों
के काम का निरीक्षण करता है ।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जमादार + ई (प्रत्यय)] १ जमादार
का पद । २ जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमानत] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य
किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने,
किसी बर्जदार के कर्ज अदा करने गयवा इसी प्रकार के किसी
और काम के लिये अपने ऊपर ले । वह जिम्मेदारी जो जबानी
या कोई कागज लिखकर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली
जाती है । प्रतिभूति । जामिनी । जैसे,—(क) वे सौ रुपये
को जमानत पर छूटे है । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर
उनका मकान छोड़ दिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

यौ०—जमानतदार=प्रतिभू । जामिनी । जिम्मेदार । जमा-
नतनामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + फा० नामह्] वह कागज
जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाणस्वरूप लिख
देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + फा० ई (प्रत्यय)] जमानत करने-
वाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार (क्व०) ।

जमानवीस—संज्ञा पुं० [अ० जमान + फा० नवीस] कचहरी का
एक स्थलकार ।

जमाना—संज्ञा स्त्री० [हि० 'जमान' का सं० रूप] १ किसी द्रव
पदार्थ को ठंडा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा
करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी
से बरफी जमाना । २ किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़ता-
पूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर
पेर जमाना ।

मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी और

लगाना । (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को
भरी भाँति प्रकट करा देना । रंग जमाना = अधिकार बढ़
करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

३ प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़
जमाना । ४. हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना ।
जैसे,—घभी तो वे हाथ जमा रहे हैं । ५ बहुत से भादमियों
के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक
करना । जैसे,—व्याख्यान जमाना । ६ सर्वसाधारण से
संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलाने योग्य
बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । ७ घोड़े
को इस प्रकार चलाना जिससे वह ठुमुक ठुमुककर पैर रखे ।
८. उदरदय करना । खा जाना । जैसे, भग का गोला
जमाना । ९ मुँह में रखना । मुखस्थ करना । जैसे, पान
का बीड़ा जमाना ।

जमाना—क्रि० सं० [हि० जमाना (= उत्पन्न होना)] उत्पन्न
करना । उपजाना । जैसे, पीछा जमाना ।

जमाना—संज्ञा पुं० [फा० जमानह्] १. समय । काल । वक्त । २.
बहुत अधिक समय । मुद्दत । जैसे,—उन्हें यहाँ आए जमाना
हुआ । ३ प्रताप या सोभाग्य का समय । एकवाल के दिन ।
जैसे,—भाजकल आपका जमाना है । ४. दुनिया । ससार ।
जगत् । जैसे,—सारा जमाना उसे गाली देता है । ५ राज्य-
काल । राज्य करने की अवधि (को०) । ६. किसी पद पर
या स्थान पर काम करने का समय । कार्यकाल (को०) ।
७ निलंब । देर । प्रतिफल (को०) ।

मुहा०—जमाना उलटना = समय का एकवारगी बदल जाना ।
जमाना छानना = बहुत खोजना । जमाना देखना = बहुत
अनुभव प्राप्त करना । तजरबा हासिल करना । जैसे—आप
बुजुर्ग हैं, जमाना देखे हुए हैं । जमाना पलटना या बदलना =
परिवर्तन होना । अच्छे या बुरे दिन आना ।

यौ०—जमानासाज । जमानासाजी । जमाने की गदिश = समय
का फेर ।

जमानासाज—वि० [फा० जमानह् + साज] १ जो अपने स्वार्थ
के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है ।
अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला ।
२. मुतफन्नी । धूर्त । छली (को०) ।

जमानासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमानह् + साजी] अपना मतलब
साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये
समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमापूँजी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जमाजया' ।

जमावदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पटवारी का एक कागज जिसमें
असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें
लिखी जाती हैं ।

जमानरद—संज्ञा पुं० [फा० जमानदं] दे० 'जवानदं' । उ०—आए
हैं जमानरद ग्यान कर करद ले, दरद न जान्यो सब जिन
दिन पार रे । —अज० प्र०, पृ० १३३ ।

जमामार—वि० [हि० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरे का धन दबा रखने या ले लेनेवाला ।

जमाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] सौंदर्य । शोभा । छवि । रूप । उ०—
कनक बिंदु सुरकी रुकुम, चदन मिलत जमाल । वदन तिलक
दिए भई, तिलक चौगुनी भाल ।—स० सप्तद, पृ० २५३ ।

जमालगोटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जयमाल (= जमाल) + गोटा] एक
पौधे का बीज जो मृत्युत रेचक है । जयपाल । दत्तीफल ।

विशेष—यह पौधा करोटन की जाति का है और समुद्र से ३०००
फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है । यह पौधा दूसरे
वर्ष फलने लगता है । इसका फल छोटी इलायची के बराबर
होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है । गरी में तेल का
अंश बहुत अधिक होता है और उसे खाने से बहुत दम्त आते
हैं । गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण
होता है और जिसके लगाने से वदन पर फफोला पड़ जाता
है । तेल गाढ़ा और साफ होता है और औषध के काम में
आता है । इसकी खली चाह के खेत की मिट्टी में मिलाने से
पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते । इसके पेड़ कहवे
के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं ।

जमाली—वि० [अ०] सुंदर रूपवाला । स्वरूपवान् । सौंदर्य-
युक्त [को०] ।

जमाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमाना] १ जमने का भाव । २ जमाने
का भाव । ३ भीड़ भाड़ । जमावड़ा ।

जमावट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जमाना] जमने का भाव । २० 'जमाव'

जमावड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमाना (= एकत्र होना)] बहुत से लोगों
का समूह । भीड़ । उ०—इन लोगों का गरी जमावड़ा वही
हुआ करता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८३० ।

जमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जमी] २० 'जमीन' । उ०—गिरकर न उठे
काफिर बंदकार जमी से, ऐसे हुए गारत ।—भारतेंदु प्र०,
भा० १, पृ० ५३० ।

जमीकंद—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जमीन + कंद] सूरन । शोल ।

जमींदार—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जमीनदार] जमीन का मालिक । भूमि
का स्वामी ।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी प्रांत,
जिले या कुछ गावों का भूमिकर लगाने और मरहदारी
खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था, वह जमींदार
कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दमवां भाग पुरखानार
स्वरूप दिया जाता था । पर, जब अत में मुसलमान शासक
कमजोर हो गए तब वे जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र
रूप से प्रायः मालिक बन गए । अंगरेजी राज्य में जमींदार
लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे पूरे मालिक समझे जाते थे
और जमींदारी पैतृक होती थी । ये सरकार को कुछ निश्चित
वार्षिक कर देते थे और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भांति
जिस प्रकार चाहे, उपयोग कर सकते थे । फौजदारी आदि
को कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही
जोतने बोलने आदि के लिये देते थे और इनसे नगान आदि

लेते थे । भारत के स्वतंत्र हो जाने पर लोकतांत्रिक सरकार
ने जमींदारी प्रथा का वैधानिक उन्मूलन कर दिया है ।

जमींदारा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जमींदारी] २० 'जमींदारी' ।

जमींदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जमीन्दारी] जमींदार की वह जमीन
जिसका वह मालिक हो । २ जमींदार होने की दशा या
प्रवस्था । ३ जमींदार का हक या स्वत्व ।

जमींदोज—वि० [फा० जमींदोज] १ जो गिरा, तोड़ा या उखाड़कर
जमीन के बराबर कर दिया गया हो । २ २० 'जमीनदोज' ।

जमी—वि० [सं० जमिन्] इद्रियनिग्रही । उ०—देखि लोग सकुचात
जमी से ।—मानस, २।२।४ ।

जमीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जमीन] १ पृथ्वी (ग्रह) । जैसे,—जमीन
बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है । २ पृथ्वी का वह
ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते
हैं । भूमि । धरती ।

मुद्दा०—जमीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत
अधिक परिश्रम या उद्योग करना । बहुत बड़े बड़े उपाय
करना । जमीन आसमान का फरक = बहुत अधिक अंतर ।
बहुत बड़ा फरक । आकाश पाताल का अंतर । उ०—मुकाबिला
करते हैं तो जमीन आसमान का फर्क पाते हैं ।—फिसाना०,
भा० ३, पृ० ४३६ । जमीन आसमान के कुलावे मिलाना =
बहुत ढींग हाँकना । बहुत शेखी मारना । उ०—चाहे इधर
की दुनियाँ उधर हो जाय, जमीन आसमान के कुलावे मिल,
जाँय, तूफान आए, भूचाल आए, मगर हम जरूर आँगेंगे ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० ५१ । जमीन का पैरों तले से निकल
जाना = सन्नाटे में आ जाना । होश हवास जाता रहना ।
जमीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन
के साथ मुँह लग जाय । जैसे,—जरा से धक्के से वह जमीन
चूमने लगा । जमीन दिखाना = (१) गिराना । पटकना । जैसे,
एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना । (२)
नीचा दिखाना । जमीन देखना = (१) गिर पड़ना । पटका
जाना । (२) नीचा देखना । जमीन पकड़ना = जमकर
बैठना । जमीन पर पड़ना = (१) धोड़े का तेज दौड़ने का
अभ्यास होना । (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होता । जमीन
पर पैर या कदम न रखना = बहुत इतराना । बहुत अस्मिमान
करना । उ०—ठाकुर साहब ने वारह चौदह हजार रुपया
नकद पाया तो जमीन पर कदम न रखा ।—फिसाना०, भा०
३, पृ० १२६ । जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत अस्मिमान
होना । जमीन में गड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना ।

३ सटह, विशेषकर कपड़े, कागज या तन्हे आदि की वह तनह
जिसपर किसी तरह के वेल बूटे आदि बने हों । जैसे,—कान्ची
जमीन पर हरी बूटी की कोई छोट मिले तो लेते आना । ४
वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में
आधार रूप से किया जाय । जैसे, अंतर जोड़ने में चदन की
जमीन, फुल्ल में मिट्टी के तेल की जमीन । ५ किसी कार्य के
लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली । पेशबंदी । भूमिका ।
आयोजन ।

मुहा०—जमीन बदलना = आधार का परिवर्तन होना । स्थिति का बदल जाना । जैसे,—भव जमीन ही बदल गई ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४० । जमीन बाधना = किसी कार्य के लिये पहुँचे से प्रणाली विधित करना ।

जमीनदोज—वि० [फ्रा० जमीनदोज] १ धरती के नीचे या भीतर । भूगर्भिक । उ०—घोर तब जमीनदोज किले बनने लगे ।—भा० ६० छ०, पृ० १४१ । २ दे० 'जमीनदोज' ।

जमीनी—वि० [फ्रा० जमीनी] जमीन संबंधी । जमीन का ।

जमौआ—संज्ञा पुं० [अ० जमौमह] १ क्रोडपत्र । अतिरिक्त पत्र । २ पूरक । परिशिष्ट [को०] ।

जमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमीयत] गोष्ठी । दल । परिपद । जमापत्र । समुदाय । उ०—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिवध सीव महीने तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहने की ओर रीति चली आ रही है वह जारी रखी जायगी ।—राज० इति०, पृ० १०४६ ।

जमीर—संज्ञा पुं० [अ० जमीर] १ अंतःकरण । हृदय । मन । २ विवेक । ३ (ध्या०) सर्वनाम [को०] ।

यौ०—जमीरफरोश = आत्मविक्रेता । अवसरवादी ।

जमील—वि० [अ०] [वि० स्त्री० जमीला] रूपवान । सुंदर । हसीन [को०] ।

जमुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूक] दे० 'जामुन' ।

जमुआ^२—संज्ञा पुं० [सं० यम, हिं० जम+उमा (प्रत्य०), अथवा हिं० जमना (= पैदा होना)] एक प्रकार का घातक बालरोग ।

जमुआरी—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ+मार (प्रत्य०)] जामुन का जगल ।

जमुकना^१—क्रि० अ० [?] पास पास होना । सटना । उ०—जब जमुकचो कछु प्रयु तनय, तब तरंग तहँ छोड़ि । नयो पुरंदर मलख बर, सकयो न सन्मुख दोड़ि ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमुन^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमुना] दे० 'यमुना' । उ०—(क) उत्तरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ।—मानस, २। १०१ (ख) मनु ससि भरि प्रनुराग जमुन जल लोटत मोल ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५५ ।

जमुना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, प्रा० जमुणा, जर्जलों] यमुना नदी । वि० दे० 'यमुना' ।

जमुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनिका] दे० 'यवनिका' । उ०—आपत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिठार सुंदर । वाजीगर जुदो खेल दिखावन हार ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७८५ ।

जमुनियाँ^१—संज्ञा पुं० [हिं० जामुन+ईया (प्रत्य०)] १. जामुन का रंग । जामुनी । २ जामुन का धूस । ३ यम का भय । यमपाश (लाक्ष०) । उ०—जमुनियाँ की डार मोरी तोड़ देव हो ।—घरम० भा०, पृ० २६ ।

जमुनियाँ^२—वि० जामुन के रंग का । जामुनी रंग का ।

जमुरका—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूर] कुलाबा ।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जमूर] १ चिमटी के आकार का नाल-

बधों का एक औजार जिससे वे धोड़ों के नाल काटते हैं । २. चिमटी । सँझसी ।

जमुर्दी—वि० [अ० जमुर्दीन, हिं० जमुर्दी] १. दे० 'जमुर्दी' । उ०—जमुर्दी जरी के काम ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६ ।

जमुर्द—संज्ञा पुं० [अ०] [अ०] पन्ना नामक रत्न ।

जमुर्दी^१—वि० [अ० जमुर्दीन] जमुर्द के रंग का हरा । जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो ।

जमुर्दी^२—संज्ञा पुं० जमुर्द का रंग । नीलापन लिए हुए हरा रंग ।

जमुर्वाँ—संज्ञा पुं० [हिं० जमुवा] जामुनी । जामुन का रंग ।

जमुहाना—संज्ञा पुं० [सं० जम्भण] दे० 'जम्हाना' ।

जमूरक^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है । उ०—सबके आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाए । धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निशान सुहाये ।—रघुराज (शब्द०) ।

जमूरा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जमूरक, हिं० जमूरक] दे० 'जमूरक' ।

जमूरा^२—संज्ञा पुं० [अ० जह्, +फ्रा० मुहह] दे० 'जहर-मोहरा' । उ०—जुगति जमूरा पाइ कै, सर पे सपटाना । बिप वा के वेधे नही, गुरु गम्भ समाना ।—कवीर० भा० ३, पृ० १४ ।

जमैयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमीयत] १ दल । समुदाय । २ सभा । गोष्ठी । परिपद [को०] ।

यौ०—जमैयतुल उलेमा = विद्वानों की सभा या गोष्ठी ।

जमोगा—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] १ जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया । सरेख । २ किसी दूसरे की बात का किसी तीसरे के द्वारा समर्थन । सामने का निश्चय । तसदीक । ३. देहाती लेनदेन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता है और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका स्वीकार करा देता है ।

यौ०—सही जमोग ।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [अ० जमा+सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से जमींदार को रुपया देता है ।

जमोगना^१—क्रि० सं० [अ० जमा+सं० योग] १. हिसाब किताब की जाँच करना । २. ध्याय को मूल धन में जोड़ना । ३. स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सोपना और उससे उस उत्तरदायित्व को स्वीकृत कराना । सरेखना । ४. किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना । तसदीक कराना ।

जमोगवाना^१—क्रि० सं० [हिं० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना । सरेखवाना ।

जमोगा^२—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] दे० 'जमोगा' ।

यौ०—सही जमोग ।

जमौआ—वि० [हिं० जमाना] जमाया हुआ । जमाकर बनाया हुआ ।

जम्मा^१—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम' ।

यौ०—जम्मराजा=यमराज । उ०—मनो जीव पापीन को जम्मराजा दियो दह सोई सब धूम घोट ।—हम्मीर०, पृ० ५

जम्म^२—संज्ञा पुं० [सं० जम्म, प्रा० जम्म] जन्म । उत्पत्ति ।

जम्मण^३—संज्ञा पुं० [सं० जम्मन्, प्रा० जम्मण] उत्पत्ति । जन्म । पैदाइश । उ०—तन माहि मनुषा जो ठहिरावे । जम्मण मरण मिश्रत घर दोजय ताके निकट न धावे ।—प्राण०, पृ० ६० ।

जम्मना^४—क्रि० प्र० [हि०] उत्पन्न होना । पैदा होना । जम्मे मरे न बिनसे सोइ ।—प्राण०, पृ० २ ।

जम्मभूमि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्म, प्रा० जम्म+सं० भूमि] दे० 'जम्मभूमि' । उ०—पन्नविध जम्मभूमि को मोह छोटिहिय, धनि छोटिहिय ।—कौटि०, पृ० २२ ।

जम्मु—संज्ञा पुं० [सं० जम्मु] काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर । जम्मु ।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जैमाई' ।

जम्हाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जैमाना' । उ०—बार बार ऋषि पाठ भस्मात्, लगत, नीके ताकी चोपनि धुनन न पाए ही । यमानव०, पृ० ४८८ ।

जम्हूर—संज्ञा पुं० [प्र०] जनता । जनसमूह । उ०—कर उसकी बुजुर्गी छड़े जम्हूर के धागे ।—कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

जयंत^१—वि० [सं० जयन्त] [वि० स्त्री० जयती] १. विजयी । २. बहुविव्या । अनेक रूप धारण करनेवाला ।

जयंत^२—संज्ञा पुं० १ एक रुद्र का नाम । २ रुद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम । ३ संगीत में ध्रुवक जाति में एक ताल का नाम । ४ स्कन्द । कार्तिकेय । ५ धर्म के एक पुत्र का नाम । ६ भ्रकूर के पिता का नाम । ७ भीमसेन का उस समय का बनायटी नाम जब वे विराट नरेश के यहाँ प्रजातवास करते थे । ८. ब्रह्मरथ के एक मंत्री का नाम । ९ एक पर्वत का नाम । जयंतिका की पहाड़ी । १० जैनों के भ्रतृवर देवों का एक भेद । ११. कलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय पड़ता है जब चन्द्रमा, उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पड़ता जाता है । इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल बहुपक्ष का नाश है ।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० जयन्तपुर] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था ।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] दे० 'जयती' ।

जयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्ती] १ विजय करनेवाली । विजयिनी । २. अजिता । यशस्वी । ३ हस्त्यी । ४. दुर्गा का एक नाम । ५ पार्वती का एक नाम । ६. किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव । वर्षगांठ का उत्सव । ७ एक बड़ा पेड़ जिसे जैत या जैता कहते हैं ।

विशेष—इस पेड़ की डालियाँ बहुत पतली और पतियाँ घनत्व की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं । फूल भरतूर की तरह पीले होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर बिते सवा बिते सभी पतली कनियाँ मगती हैं । कनियों के बीच उत्तेजक और संकोपक होते हैं और दन्त की घीमारियों में घोष के रूप में काम में आते हैं । साज का भरतूर भी इससे घनता है । इसकी पत्तियाँ कोरे या धूजन पर पायी जाती हैं और गिलटियों की गलाने का काम करती हैं । इसकी जड़ पीसकर विच्छेद के काटने पर लगाई जाती है । यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं । इसका बीज जेठ अष्टादश में बोया जाता है । इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे 'चक्रोद' कहते हैं । इसके रेशे से जाल बनता है । बंगाल में इसे लोग अमेल, मई में बोते हैं और सिंगर, धमदूर में काटते हैं । पोषा सन की तरह पानी में रखा जाता है । पाग के भीड़ों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है ।

८ जैती का पोषा । ९ ज्योतिष का एक योग । जब भावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की धापी रात के समय और द्वेप दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े, तब यह योग होता है । ११ जो के छोटे पोषे बिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण धोन धजमानों को मंगल द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं । जई । बरई । १२ पराणी ।

जय—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव । विरोधियों को दमन करके स्वत्व या महत्व स्थापन । जीत ।

विशेष—संस्कृत में जय शब्द पुलिग है किंतु 'जीत, विजय' धर्म में हिंदी में इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही मिलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जय मनाना=विजय की कामना करना । समृद्धि चाहना । जय हो=प्राणीवाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं ।

विशेष—प्राणीवाद के प्रतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं की समिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है और जगमें कुछ पापना का नाश किला रहता है । जैसे, जय दासी की, रामचंद्र जी की जय । उ०—जय जय जगजननि देवि, सुरनर मुनि भगुर सेव्य, बुद्धि बुद्धि दाविनी जय हरि कानिका ।—तुलसी (। अष्ट०) ।

यौ०—जय गोपाल । जय बीरभूज । जय राम, आदि (अभिवादन वचन) ।

२ ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रोष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष ।

विशेष—कलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और शत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीटा होती है ।

३ विष्णु के एक पार्षद का नाम ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि कनकादिन ने नगवान के पास जाने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई

विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संघार में तीन बार हिरण्यक, रावण और शिशुपाल का अवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुम्भकण और कस का जन्म ग्रहण करता पड़ा था।

४. महाभारत या भारत ग्रंथ का नाम। ५. जयगी या जैत के पेड़ का नाम। ६. लाग। ७. युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. धन्य। ९. वशीकरण। १०. एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। ११. भागवत के अनुसार दसवें मन्वन्तर के एक ऋषि का नाम। १२. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। १३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १४. राजा सजय के एक पुत्र का नाम। १५. उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न परवसु के एक पुत्र का नाम। १६. वह मकान जिसका दरवाजा दक्षिण की तरफ हो। १७. सूर्य। १८. परणी या अग्निमय नाम का पेड़। १९. इन्द्र। २०. इन्द्र का पुत्र जयत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से 'जय' नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

जय^३—वि० (समास में प्रयुक्त) विजयी। जीतनेवाला। जैसे, मृत्यु जय (= मृत्यु को जीतनेवाला)।

जयककण—संज्ञा पुं० [सं० जय + ककण] वह ककण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयक—वि० [सं०] विजेता। जीतनेवाला [को०]।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई नामक एक छद्म का नाम।

जयकार—संज्ञा पुं० [सं० जय + कार] जयघोष।

यौ०—जयजयकार।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का लूझा खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयचंद—संज्ञा पुं० [हिं० जय + चंद] १. कान्यकुब्ज का एक प्रसिद्ध राजा। २. देशद्रोही व्यक्ति (लाश०)।

विशेष—यह गृहद्वालवश का अंतिम नरेश था। इसका राज्य-काल सन् ११७० से ११९३ ई० तक रहा। अपने राज्यकाल के आखिरी वर्ष में यह गृहद्वालवश गोरी से पराजित होकर मारा गया।

जयखाता—स्त्री० पुं० [हिं० जय (= लाभ) + खाता] धनियों की एक वही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा या लाभ आदि लिखा करते हैं।—(व००)।

जयघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जय + घोष] जय जय की आवाज उठना—या गया जयघोष प्रगलित पक्ष।—साकेत, पृ० १६५

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जय + जयवती] संपूर्ण जाति की एक सत्तर रागिनी जो धूलश्री, विलासल और सोरठ के योग से बनती है।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह रात को ६ दंड से १० दंड तक गाई जाती है, पर वर्षाऋतु में लोग इसे सभी उमय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघ राग की भार्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश का सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जय + जी] एम प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है—जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था।—उ० कहि जयजीव सोस तिनहू नाए। भूप मुमगल वचन सुनाए।—सुलसी (शब्द०)।

जयदक्का—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल। जीत का डका।

जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] दे० 'जयति'।

जयतवल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक सत्तर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिलाकर बनता है। यह रात के पहने पहर में गाया जाता है।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—यह मानताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—साहूँ। तत्परि परिपास ताहू। ताहू। सत० पा० तत्या तापरि परिपास।

जयति—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक सत्तर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना भी मानते हैं। वि० दे० 'जयेत्'।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोढी, विभास और साहाना के योग से बनी हुई बताते हैं। रिनने लोग इसे पूरिया, सामत और लला व मेन से बनी मानते हैं। वि० दे० 'जयेती'।

जयतु—क्रि० प्रि० [सं०] जय हो (आशीर्वादसूचक)।

जयत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय नकुल का नाम [को०]।

जयदुग्भी—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + दुग्भी] जीत का डका। विजय की भेरी।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] मरुत के प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविंद' के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एवं कवि।

विशेष—इनका जन्म आज से प्रायः आठ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्तमान श्रीराम जिले के अंतर्गत केदुविल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये श्री के महाराज सत्तमसेन की राज्यसभा में रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है।

जयद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार शिशुवीर या सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहोदोस्त था।

विशेष—इसने एक बार जंगल में द्रौपदी को छेलेली पाकर क्रोध से जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत दुर्दशा की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और चक्रव्यूह के युद्ध में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का बध इसी ने किया था। दूसरे दिन भयंकर युद्ध के अनंतर सायंकाल यह अर्जुन के हाथों मारा गया।

जयद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय सहदेव का नाम [को०]।

जयध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालजघा के पिता का नाम जो भवती के राजा कार्तवीर्यजुन का पुत्र था। २. जयपताका। जयती।

जयध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयघोष'।

जयन—संज्ञा पुं० [सं० जयनम्] १. जय। जीत। २. हाथी, घोड़े आदि की सुरक्षा के लिये एक प्रकार का जिरहवस्त्र (को०)।

जयना(७)—क्रि० भ० [सं० जयन] जीतना। उ०—(क) भरत धन्य तुम जग जस जयक। कहि अस प्रेम भगन मुनि भयक। —तुलसी (शब्द०)। (ख) सै जात यवन मोहि करिके जयन। —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०२।

जयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इद्र की कन्या।

जयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजयपत्र। उ०—मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदर मुहि अपनाय। —भारतेंदु प्र०, भा०, १, पृ० ६०८। २. वह राजाशा जो अर्थी-प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिसपर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो।

विशेष—प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर घादी और प्रतिवादी के कयन, प्रमाण और घमंशाल तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उसपर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपराजय—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + पराजय] दे० 'जयाजय'।

जयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ जमालगोटा। २. ब्रह्मा का एक नाम (को०)। ३. विष्णु। ४. राजा।

जयपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जुम्मा खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा विराट के भाई का नाम। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है,—ताह। धिधिकिट ताहं गन थों।

जयफर—संज्ञा पुं० [हिं० जायफल] दे० 'जायफल'। उ०—जयफर लींग सुपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सदैव न झारा। —जायसी (शब्द०)।

जयभेरी—संज्ञा पुं० [सं०] विजय डका। जीत का नगाड़ा (को०)।

जयमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. वह हाथी जिसपर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। २. राजा के सवार होने योग्य हाथी। ३. ताल के साठ भेदों में एक।

विशेष—यह शृंगार और बीर रस में बजाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दातकि। धिमि धिमि। थों।

४. ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त आयुर्वेदीय जयमंगल नामक रस (को०)। ५. विजय की खुशी। जय का आनंद (को०)।

जयमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमार(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'। उ०—का कहूँ देउ ऐस जिउ दीन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा। —जायसी प्र०, पृ० १२२।

जयमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। २. वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने बरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—उ०—गावहि छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। —मानस, १, २६४।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जयमाल] दे० 'जयमाल'। उ०—सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि समीत देत जयमाला। —मानस, १, २६४।

जयमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'।

जययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात—संज्ञा पुं० [सं०] कर्लिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयश्री'।

जयलेख—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'जयपत्र'।

जयवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्राणी। शची। २. विजय करने-वाली सेना (को०)।

जयशाली—संज्ञा पुं० [सं० जय + शाली] यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था।

विशेष—अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता लेकर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद सवत् १२१२ में इन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयशृंग—संज्ञा पुं० [सं० जयशृङ्ग] विषय की घोषणा के निमित्त बजाया जानेवाला सींग का बाजा (को०)।

जयश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय की अधिष्ठाता देवी। विजयलक्ष्मी। २. विजय। जीत। ३. ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। ४. देशकार राग से मिलती जुलती सपूर्ण जाति की एक रागिनी जो सध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तम्भ—संज्ञा पुं० [सं० जयस्तम्भ] वह स्तम्भ जो विजयी राजा किसी देश का विजय करने के उपरांत अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाता है। त्रिग्यसूचक स्तम्भ।

जयस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जयस्वामिन्] १. शिव का एक नाम। २. छादोग्य सूत्र तथा आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याता (को०)।

जया'—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. पार्वती का

एक नाम । ३. हरी ह्व । ४. अरणी नामक वृक्ष । ५. जयती या जत का पेड़ । ६. हरीतकी । हड़ । ७. दुर्गा की एक सहचरी का नाम । ८. पताका । ध्वजा । ९. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ । १०. सोलह मातृकाओं में से एक । ११. माघ शुक्ल एकादशी । १२. एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे । १३. जया पुष्प । गुड़हल का फूल । घड़हल । १४. भाँग । १५. शमीवृक्ष । छौंकर ।

जया^१—वि० [सं०] जय दिलानेवाली । विजय करानेवाली । उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया । चौथी चतुरदसि नौमी रखया । —जायसी (शब्द०) ।

जयाजय—संज्ञा पुं० [सं०] जय और पराजय । जीत हार [को०] ।

जयादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे ।

जयाद्वय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयती और हड़ ।

जयानीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम । २. राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयापीढ़—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी शताब्दी में हुए थे ।

विशेष—ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे, पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़कर भाग गए । इसपर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ६६६६६ घोड़े दान किए थे ।

जावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । २. एक संकर रागिनी जो धवलश्री, विलावल और सरस्वती के योग से बनती है ।

जावह—वि० [सं०] जय + जावह । जय प्राप्त करानेवाला [को०] ।

जावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदत्ती का वृक्ष ।

जयाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरई घास ।

जयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम ।

जयाह्वया, जयाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जावहा' ।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील । जो जीतता हो ।

जयी^१—वि० [सं०] जयिम् । [वि० स्त्री०] जयिनी । विजयी । जयशील ।

जयी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] यव । दे० 'जरई' ।

जयेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] जयेंद्र । काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानुवाहू थे ।

जयेत्—संज्ञा पुं० [सं०] पांडव जाति के एक राजा का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है । इसमें पंचम स्वर नहीं लगता ।

जयेद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयेत् + गौरी = जयेद्गौरी । एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है ।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयेश्वरी के मेल से उत्पन्न होती है । यह सोमत, ललित और पूरिया प्रथवा टोड़ी, सहाना और विभास राग के योग से भी बन सकती है ।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य । जो जीतने योग्य हो ।

जरंड—वि० [सं०] जरठ । क्षीण । वृद्ध । पुराना [को०] ।

जरंत—संज्ञा पुं० [सं०] जरन्त । १. वृद्ध व्यक्ति । वृद्धा आदमी । २. महिष । भैंसा [को०] ।

जर^१—संज्ञा पुं० [सं०] जरा । वृद्धावस्था ।

जर^२—वि० [सं०] १. क्षय होने या जीर्ण होनेवाला । २. क्षीण । वृद्ध । पुराना । ३. क्षय या जीर्ण करनेवाला [को०] ।

जर^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश या जीर्ण होने की क्रिया । २. जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप, पुण्य, कलुष, राग-द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है ।

जर^४—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर । दे० 'ज्वर' । उ०—खने सताप सीत जर जाइ । की उपचरय संदेह न छाँड़ ।—विद्यावति०, पृ० १३७

जर^५—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का समुद्री सवार । कचहरा ।—(लघ०) ।

जर^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] जड़ । दे० 'जड़' ।

जर^७—संज्ञा पुं० [फा०] जर । १. सोना । स्वर्ण ।

यौ०—जरकस = दे० 'जरकश' । जरकार = (१) स्वर्णकार । सुनार । (२) सोने का काम की हुई वस्तु । जरगर । जरबोजो । जरनिगार । जरनिगारी । जरवपत । जरवापता । जरदोज ।

२. धन । दौलत । रुपया । उ०—जर ही मेरा भल्लाह है जर राम हमारा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५१५ ।

यौ०—जरअस्त = मूलधन । जरखरीद । जरगर । जरझिगरी = डिगरी की रकम । जरदार । जरनफद = रोकड़ । नकद । रुपया । जरनीलाम = नीलामी से प्राप्त धन । जरपेशगी = अग्रिम धन । दयाना ।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] जड़ । धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों ।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पाना से भिगोते हैं, फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढककर ऊपर से पर्यारों से दबा देते हैं जिसे 'मारना' कहते हैं । फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहते देते हैं, दूसरे या तीसरे दिन फिर खोलते हैं । उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं । फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं । ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं । यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है । कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और दो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, चौथे दिन उसे खोलते हैं । उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं । कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं, भिन्न भिन्न आनों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है ।

२. दे० 'जड़' ।

जरकटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी पक्षी । उ०—जुरां बाज बाँसे कुहो बहरी लगर सोने, टोने जरकटी त्यो शचान सोन पार है ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरकस, जरकसी—वि० [फा० जरकस] १. जिसपर सोने आदि के तार लगे हो। उ०—(फ) छोटिए धनुहियां पनहियां पगन छोटो, छोटिए कछोटो कटि छोटिए तरकसी। लसत भंगुली भीनी दामिनि की छवि छीनी सुंदर वदन सिर पगिया जरकसी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भव भक्ति भाँकि भक्ति भुकी उभक्ति भरोखे ऐन। फसे कबुकी जरकसी लमी बसी ही नैन।—शृ० सत० (शब्द०)।

जरकसि(उ)—वि० [हि०] ३० 'जरकसी'। उ०—पहिरै जरकसि पर आभूषण भोग भोग नैति रिभाय।—नद० प्र०, पृ० ३४६।

जरखरीद—वि० [फा० जरखरीद] नकद दाम देकर खरीदी हुई जमीने जायदाद जिसपर खरीददार का पूर्ण अधिकार हो। उ०—जब देखो तब तू तै—चुप। गोया बेटा नहीं जरखरीद गुलाम है।—शराबी, पृ० १७१।

जरखेज—वि० [फा० जरखेज] उपजाऊ। जिसमें खूब धन्न पैदा होता है। उर्वर (जमीन का विशेषण)।

जरखेजी—संज्ञा स्त्री० [फा० जरखेजी] उर्वरता। उपजाऊपन।

जरगर—संज्ञा पुं० [फा० जरगर] स्वर्णकार। सुनार [को०]।

जरगह—संज्ञा स्त्री० [फा० जर + जियाह] एक घास जिसे चौपाये बड़े स्वाद से खाते हैं।

विशेष—यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है। किसान इसे खेतों में कियारियां बनाकर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं। पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है। एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है। यह दाने की तरह दी जाती है और बैन घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं।

जरगा—संज्ञा स्त्री० [फा० जर + जियाह] ३० 'जरगह'।

जरज—संज्ञा पुं० [देग०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक की जड़ गाजर या मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है।

जरजर(उ)—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जरजरी] ३० 'जर्जर'। उ०—(क) सविषम खर शरे भोग मैल जरजर कहइते के पतियाह।—विद्यापति, पृ० ४८२। (ख) नाव जरजरी भार बहु खेवनहार गेवार।—दीन० प्र०, पृ० ११३।

जरजराना—क्रि० प्र० [सं० जर्जर] जर्जरित होना। जीर्ण होना।

जरजरी(उ)—संज्ञा स्त्री० [हि० जड़ + जड़ी] जड़ी वृद्धि। सुनहरी जड़ी। उ०—नाग दवनि जरजरी, राम सुमिरन बरी, भनत रेदास चेत निमैता।—रे० वानी, पृ० २०।

जरझरां—वि० [हि० जरना + सं० झार] १. भस्मीभूत। २ नष्ट।

जरजाल—संज्ञा पुं० [प्र० जर + फा० जलक (=गोली छरी)] लोहे के तारों में बंधे हुए बहुत से फल छुरी इत्यादि जो थोप में भर के छोड़े जाते हैं। उ०—लिए तुपक जरजाल जमूरे। से भरि वान बल पुरे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

जरठ^१—वि० [सं०] १ कर्कश। कठिन। २ वृद्ध। बुढ़ा। उ०—जरठ भयउं भव कहै रिछेसा।—मानस, ४।२६। ३ जीर्ण। पुराना। ४ पांडु। पीलापन लिये सुकंद रंग का।

जरठ^२—संज्ञा पुं० बुढ़ापा।

जरठाई(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० जरठ] बुढ़ापा। वृद्धावस्था। जीर्ण अवस्था।

जरठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं।

विशेष—वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्तपोषक और रुचिर माना है।

पर्या०—गर्भोटिका। सुनाला। जवाश्रया।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हींग। २. जीरा। ३. काला नमक। सोवचल। ४. कासमर्द। कसौजा। ५. जरा। बुढ़ापा। ६ दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है। ७ सुकंद जीरा।

जरणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. साखू का वृक्ष। सागौन का पेड़।

जरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काला जीरा। २ वृद्धावस्था। बुढ़ापा। ३ स्तुति। प्रशंसा। ४. मोक्ष। मुक्ति।

जरत^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जरना] १ बुढ़ा। वृद्ध। २ बहुत दिनों का।

जरत^२—संज्ञा पुं० वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी [को०]।

जरत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी। २ सौंड [को०]।

जरता बलता^१—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'जलना' के अतर्गत 'जलता बलता'।

जरतार(उ)—संज्ञा पुं० [फा० जर + तार] सोने या चाँदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन के हार की जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झालरे।—देव (शब्द०)।

जरतारां—वि० [हि० जरतार] [वि० स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या सफेले तार लगे हो। जरी के काम का। उ०—जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत। सरद जलद मिद जलज पर सहज किरन छवि देत।—स० सप्तक, पृ० ३४५।

जरतुआर^१—वि० [हि० जलना] जो दूसरों को देखकर बहुत जलता या घुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतिका, जरती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धा स्त्री। वृद्धी महिला।

जरतुशत—संज्ञा पुं० [फा० जरतुशत] ३० 'जरदुशत'।

जरत्करण—स्त्री० पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कार^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की कन्या से व्याह किया था। भ्रास्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

जरत्कार^२—संज्ञा [सं०] जरत्कार ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद—वि० [फा० जर्द] पीला। जर्द। पीत। उ०—घोड़े जरद दुसाला यारों केसर की सी क्यारी हैं।—घनानंद, पृ० १७६।

जरद अंछी—संज्ञा स्त्री० [फा० जर्द, हि० जरद + अंछी] काली

ग्रंथों की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काटे होते हैं।

विशेष—यह देहरादून से भूटान और खसिया की पहाड़ी तक ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण में कनाडा (कनारा, कन्नाड़) और लका तक भी होती है। इसमें फागुन चैत में फूल लगते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के काम आते हैं।

जरदक—संज्ञा पुं० [फा० जरदक] जरदा या पीलू नाम का पक्षी।
जरदष्टि^१—वि० [सं०] १. बूढ़ा। बूढ़ा। २. दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

जरदष्टि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा। बुढ़ावस्था। २. दीर्घ-जीवन।

जरदा^१—संज्ञा पुं० [फा० जर्दह] १. एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हल्दी डालकर उसे पानी में उबालते हैं। फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में धीरे डालकर भाँककर के शर्बत में पकाते हैं। पीछे से इसमें लोंग, इलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं।

२. एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगंधित सुरती।

विशेष—यह प्रायः काले रंग की होती है और पान दोहरा, मादि के साथ खाई जाती है। यह पीले और लाल रंग की भी बनाई जाती है। वाशिंगटन इसका एक प्रमुख व्यापार-केंद्र है।

यौ०—जरदाफरोश = जरदा बेचनेवाला।

३. पीले रंग का का घोड़ा। उ०—जरदा जिरही जाँग सुनीची ऊदे खजन।—सुजान०, पृ० ८। ४. पीली घाँस का कबूतर।

५. पीले रंग की एक प्रकार की छोट।

जरदा^२—संज्ञा पुं० [फा० जरदक] एक प्रकार का पक्षी। पीलू।

विशेष—इसकी कनपटी पीली, पीठ खाली, पेट सफेद और चौंच तथा पैर पीले होते हैं। इसे पीलू भी कहते हैं।

जरदार—वि० [फा० जर + दार] अमीर। धनवान। उ०—हुमा मालूम यह गुचे से हमको। जो कोई जरदार है सो तंग दिल है।—कविता की०, भा० ४, पृ० ३०।

जरदालू—संज्ञा पुं० [फा० जरदालू] खूबानी नाम का मेवा।

विशेष—३० 'खूबानी'।

जरदी—संज्ञा स्त्री० [फा० जरदी] पिलाई। पीलापन।

मुहा०—जरदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, खून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

२. ग्रंथ के भीतर का वह चप जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त—संज्ञा पुं० [फा० जरदुश्त, मि० सं० जरदष्टि (= दीर्घजीवी, बूढ़ा), अथवा सं० जरद्वष्ट (= एक ऋषि)] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म के प्रतिष्ठाता एक आचार्य।

विशेष—ये ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व ईरान के शाह गुस्ताप के समय में हुए थे। इन्होंने सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'जद अवेस्ता' (जद अवेस्ता) बनाया था। ये 'मीनू चेह' के वंशज और यूनान के प्रसिद्ध हकीम 'फीसा गोरस' के शिष्य थे। शाहनामे में लिखा है कि जरदुश्त तूरानियों के हाथ से मारे गए थे। इनको जरतुश्त और जरथुश्त भी कहते हैं।

जरदोज—संज्ञा पुं० [फा० जरदोज] [संज्ञा जरदोजी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलावत्तू और सलमे सितारे आदि का काम करता हो। जरदोजी का काम करनेवाला।

जरदोजी—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलावत्तू या सलमें सितारे आदि में की जाती है। उ०—सुवरन साज जोन जरदोजी। जगमगात तन अगनित ओजी।—हम्मीर०, पृ० ३।

जरदुगव^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बूढ़ा बैल। २. बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चंद्रमा की वीथी है।

जरदुगव—वि० जोड़ों। प्राचीन।

जरद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरन^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जलन'।

जरनल^१—संज्ञा पुं० [अ०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

जरनल—संज्ञा पुं० [अ० जेनरल] दे० 'जनरल'।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अ० जर्नलिस्ट] दे० 'पत्रकार'।

जरना^१—क्रि० प्र० [हि० जनना] दे० 'जलना'। उ०—देखि जरनि जह नारि की रे जरति प्रेत के संग।—सूर०, १।३२५।

जरना^२—क्रि० प्र० [सं० जटन, हि० जडना] दे० 'जडना'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरे जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जरना (= जलना)] १. जलने की पीड़ा जलन। उ०—पानी फिर पुकारतो उपजी जरनि अपार। पावक आयी पूछने सुदर चाकी सार—सुदर प्र०, भा० २, पृ० ७२८। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—(क) ताते हों देत न दुखन तोहें। राम विरोधी उर कठोर ते प्रगट कियो है विधि मोहें। सुदर सुखद सुसील सुधानिधिर जरनि जाय जेहि जोए। विष बाखली बधु कहियत विषु नातो मिटत न धोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपनि दाखन दीनता कहउँ सर्वाह सिर नाह। देखे विन रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाह—तुलसी (शब्द०)। (ग) देखि जरनि जह नारि की रे जरति प्रेत के संग। चिता न चित फीकी भयो रे रची जु पिय के रंग।—सूर०, १।३२५।

जरनिगार—वि० [फा० जरनिगार] सुनहरे कामवाला। सुनहरे रंग का।

जरनिगारी—संज्ञा [फा० जरनिगारी] सुनहरा काम। सोने का पानी। मुलम्मा।

जरनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] जलन । ताप । अग्नि । ज्वाला । उ०—बिछुरी मनो सग तै हिरनी । चितवत रहत अकित चारों दिसि उपजि विरह तन जरनी ।—सूर०, ६।७३ ।

जरनैल^२—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जनरल' ।

जरनैल^३—संज्ञा पुं० [अ० जनल] दे० 'जनल' ।

जरपरस्त—वि० [प्रा० जरपरस्त] अथपिशाच । सूम । लोभी । कलूस [को०] ।

जरपोस—संज्ञा पुं० [प्रा० जरपोस] जरी का कपड़ा । जरी की पोशाक । उ०—सबज पोस जरपोस करि लीनो लाल लुगाइ । भाइ भाइ फिर भाइ करि करति घाइ पर घाइ ।—स० सप्तक, पृ० ३८३ ।

जरफ—वि० [अ० जरफ] साफ । स्वच्छ । निर्मल उ०—सब सहूर नारि शृंगार कीन । अप्र अप्र मुड मिलि चलि नवीन । अपि कनक थार भरि द्रव्य द्रव । पटकूल जरफ जरकसी ऊब ।—पृ० रा०, १।७१३ ।

जरब—संज्ञा स्त्री० [अं० जरब] आघात । चोट । यौ०—जरब खफीफ = हल्की चोट । जरब शदीद = भारी चोट ।

मुहा०—जरब देना = चोट लगाना । आघात करना । पीटना । उ०—दगा देत दूतन चुनोती चित्रगुप्त देत जम को जरब देत पापी सेत शिवलोक ।—पद्माकर (शब्द०) ।
२ तबले मृदंग आदि पर का आघात । थाप जो दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी बंद । ३. गुणा (गणित) । कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई वेल ।

जरबकस—वि० [फा० जर + बकस] उदार । दाता । दानी । धन देनेवाला ।

उ०—तुम जरबकस जराब मोती हो लाल जवाहिर नहि गनता । —स० दरिया, पृ० ६४ ।

जरबफ्त—संज्ञा पुं० [फा० जरबफ्त] वह रेशमी कपड़ा जिसकी बुनावट में कलाबत्तू देकर कुल वेल बूटे बनाए जाते हैं ।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फा० जरबाफ] सोने के तारों से कपड़े पर वेलबूटे बनानेवाला कारीगर । जरदोज ।

जरबाफी^१—वि० [फा० जरबाफी] जरबाफ के काम का । जिसपर जरबाफ का काम बना हो ।

जरबाफी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'जरदोजी' ।

जरबीला^१—वि० [फा० जरब + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जरबीली] जो देखने में बहुत भङ्गीला और सुंदर हो ।—उ०—अवण भुके भुमका अति लोल कपोल जराइ जरे जरबीले ।—गुमान (शब्द०) । (ख) आयो तहें भावतो कहें पायो सीर सोरह मे पीठ पीछे चीन्हें चीन्हें पोति जरबीली की ।—रघुराज (शब्द०) ।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फा० जरबुलंद] कोपत का एक भेद जिसके गुलबूटे, जिनपर सोने या चांदी की कलई होती है, बहुत समड़े रहते हैं ।

जरब्वी^१—वि० [अ० जरब] धाव करनेवाला । चोट पहुंचानेवाला

उ०—लियें हंड तेगं सुघल्लै जरब्वी । कटे सेन चहुवान गानहु करब्वी ।—प० रासो, पृ० ८४ ।

जरबुलमसल—संज्ञा स्त्री० [अ० जरबुलमसल] कदागत । लोकोक्ति ।

जरमन^१—संज्ञा पुं० [अ०] १. जरमनी देश का निवासी । वह जो जरमनी देश का हो ।

जरमन^२—संज्ञा स्त्री० जरमनी देश की भाषा ।

जरमन^३—वि० जरमनी देश सबधी । जरमनी का । जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर ।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अ०] एक सफेद और चमकीली योगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से बनती है ।

विशेष—इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है । निकल की मात्रा बढ़ा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है । इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं ।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अ०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश ।

जरमुआ—वि० [हि० जरना + मुआ [वि० स्त्री० जरमुई] जल-मरनेवाला । बहुत इर्ष्या करनेवाला ।

जरर—संज्ञा पुं० [अ० जरर] १. हानि । नुकसान । क्षति । उ०—जब जुल्मी जरर मुल्क सुलेमान में देखा ।—कबीर म०, पृ० ३८८ । २. आघात । चोट ।

क्रि० प्र०—प्राना । पहुँचना । —पहुँचाना ।

३. आफत । मुसीबत ।

जरख—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड में बहुत होती है । इसे 'सेवाती' भी कहते हैं ।

जरवाना^१—क्रि० सं० [हि० जलना] दे० 'जलवाना' । उ०—न जोगी जोध से ध्यावै । न तपसी देह जरवावै ।—कबीर म०, भा० ३, पृ० ७ ।

जरवारा^१—वि० [फा० जर + हि० वाला (प्रत्य०)] रुपए-पैसेवाला । धनी । उ०—ते धन जिनकी ऊँची नजर है । कइक बनाय दिए जरवारे जिनकी कतहूँ नजर है ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

जरस^१—संज्ञा स्त्री० [फा०] घटा । घटियाल । उ०—जधं जी पर टंगाती हूँ मैं एक जरस । फिर आए सफर कर तू जब हो सरस ।—दक्खिनी० पृ०, १४६ ।

जरस^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास ।—(लश०)

जरहरि^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल का खेल । जलक्रीडा । उ०—रुहिर तरंगिणि तीर भूत गए जरहरि खेलइ ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

जराकुश—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है ।

विशेष—यह कई प्रकार की होती है । दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है । इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन तथा सुगंधित तेल आदि बनाने में काम आता है ।

जरा^१—सखा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

यौ०—जराग्रस्त । जरामरण ।

२ पुराणानुसार काल की कन्या का नाम । विघ्नसा । ३ एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी । इसी को पत्नी भी कहते हैं । जरा नाम की एक राक्षसी जिसने जरासंध को जोड़ा था । दे० 'जरासंध' । उ०—जरा जरासंध की सधि जोरघो हुती भीम ता संध की चीर डरथी ।—सूर०, १०।४२।५ । ४. खिरनी का पेड़ । ५. प्रार्थना । प्रणसा । श्लाघा ।

यौ०—जराबोध ।

६. पावन शक्ति (को०) । ७. वृद्धावस्था की शिथिलता (को०) ।

जरा^२—सखा पुं० [सं०] एक व्याघ्र का नाम ।

विशेष—इसी के बाण से भगवान् कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे ।

जरा^१—वि० [प्र० जरंह] थोड़ा । कम । जैसे,—जरा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी ।

यौ०—जरा जरा=थोड़ा थोड़ा । जरामना=कमवेश । थोड़ा बहुत । जरा सा ।

जरा^२—क्रि० वि० थोड़ा । कम । जैसे,—जरा दोड़ो तो सही ।

मुहा०—चारा चलेगी=जरा बात बढ़ेगी । तकरार होगी । उ०—
मैं तो समझी थी कि जरा चलेगी ।—सूर० कुं०, पृ० २४ ।

जराश्रत^१—सखा स्त्री० [प्र० जिराश्रत] दे० 'जिराश्रत' ।

जराश्रत—सखा स्त्री० [प्र० जराश्रत] १. रुदन । क्रदन । २. विनती । मिन्नत (को०) ।

जराऊ^१—वि० [हि०] दे० 'जडाऊ' । उ०—पाँवरि कवम जराऊ पाऊं । दीन्हि असीस प्राइ तेहि ठाऊं ।—जायसी (शब्द०) ।

जराकुमार—सखा पुं० [पुं०] जरासंध ।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुढ़ा । वृद्ध ।

जराजीर्ण—वि० [सं० जरा + जीर्ण] बुढ़ापे के कारण दुर्बल । बुढ़ा वृद्ध । उ०—हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण, निनिमेष नयनों से ।—अपरा, पृ० १५२ ।

जराति^१—सखा स्त्री० [प्र० जिराश्रत] खेती । फसल । समृद्धि । उ०—रेती बादशाही की जराति उजड़ेगा । देवीसिंघ तेरा जोर देवना पड़ेगा ।—शिखर०, पृ० ६४ ।

जराती—सखा पुं० [हि० जलना] वह शोरा जो चार बार उड़ाया गया हो ।

जरातुर—क्रि० [सं०] जरा से जर्जर । जराग्रस्त । वृद्ध । बूढ़ा (को०) ।

जराद—सखा पुं० [प्र०] टिढ़ी ।

जराना^१—क्रि० सं० [हि० जरना] दे० 'जलाना' । उ०—पवन को पूत महाबल जोधा पल में लक जराई ।—सूर०, ६१४० ।

जरापुष्ट—सखा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराफत—सखा स्त्री० [प्र० जराफत] जरीफ होने का भाव । मस खरापन । परिहासप्रियता । उ०—उसके मिलाज में जराफत जियादा है ।—प्रेमधन०, भाग २, पृ० १०२ । २. हँसी मजाक । परिहास ।

यौ०—जराफतपसद=विनोदप्रिय । हँसोड । जराफत की पोट=हँसी की पोटली । हँसोड़ ।

जराफा—सखा पुं० [प्र० जराफ] दे० 'जिराफा' ।

जराबोध—सखा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो ।—(वैदिक) ।

जराबोधोय—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

जराभीत, जराभीरु—सखा पुं० [सं०] कामदेव (को०) ।

जराभीरु—सखा पुं० [सं०] कामदेव ।

जरायणि—सखा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जरायु^१—वि० [हि०] दे० 'जराव' ।

जरायम—सखा पुं० [प्र० 'जरीमह' का बहु व०] पाप । दोष । गुनाह । अपराध (को०) ।

जरायमपेशा—वि० [फा० जरायम पेशाह] जो अपराधी स्वभाव का हो । अपराधी । दोष या गुनाह करनेवाला । जुर्म करनेवाला ।

जरायु—सखा पुं० [सं०] [वि० जरायुज] १. वह मित्ती जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है । भावल । खेड़ी । उत्त्व । २. गर्भाशय । ३. योनि । ४. जटायु । ५. अग्निजार या समुद्र-फल नामक वृक्ष । ६. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । ७. साँप की केचुल (को०) ।

जरायुज—सखा पुं० [सं०] वह प्राणी जो भावल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो । पिंडज ।

जरार—वि० [प्र० जरर] क्रूर । हानि पहुँचानेवाला । उ०—बड़ा जरार आदमी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५ ।

जराव^१—वि० [हि० जडना] जडाऊ । जिसमें नगीने आदि जड़े हो । जडा हुआ । उ०—(क) बँदी जराव लिलार दिए गहि होरी दोऊ पटिया पहिराई ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) । (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची विधि कोमलता प्रति ही सरसात है । त्यों हरिप्रोध जराव जरे खरे ककन कचन के दरसात है ।—अयोध्या० (शब्द०) ।

जराशोष—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है ।

विशेष—इस शोष रोग में रोगी दुर्बल हो जाता है, उसे भोजन से अरुचि हो जाती है और बल, वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है ।

जरासंध—पुं० [सं० जरासन्ध] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा । यह वृहद्रथ का पुत्र और कम का श्वसुर था ।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ और 'जरा' नाम की राक्षसी द्वारा दोनों टुकड़ों को जोड़कर सजीव किया गया । इसलिये इसका नाम जरासंध, जरासुत आदि पड़ा । कृष्ण द्वारा अपने श्वसुर कस के मारे जाने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर कृष्ण इसकी राजधानी गिरिग्रज में ब्राह्मण के वेश में गए और उन राजाओं को छोड़ देने के लिये कहा जिन्हें उसने परास्त कर कैद

कर लिया था, किंतु जरासिंध ने नहीं माना। अंततः भीम के साथ युद्ध करने की माँग स्वीकार कर ली। कहते हैं कई दिनों तक मल्ल युद्ध होने के बाद भी जब यह पराजित नहीं हुआ तब एक दिन कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने द्वांद्व युद्ध में जरा राक्षसी द्वारा जोड़े गए अंग के दोनों विभागों को घेरकर इसे मार डाला था।

जरासिंध—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जरासंध'।

जरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

यौ०—जरासुतजित् = जरा राक्षसी के पुत्र जरासंध को जीतनेवाला। भीम।

जराह—संज्ञा पुं० [प्र० जरह] दे० 'जरह'।

जरिणी—वि० स्त्री० [स्त्री० जरिन्] बूढ़ा। बूढ़ी [को०]

जरित^१—वि० [सं०] १. बूढ़ा। जईफ। २. क्षीण। दुर्बल। कृश [को०]।

जरित^२—वि० [हि० जरना, प्र० हि० जरना] दे० 'जड़ित'।—
उ०—पट्टी करन कंठ कटुला धन्यो, केहरि नख मनि जरित
जराए।—तुलसी प्र०, पृ० २५६।

जरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया^१—संज्ञा पुं० [हि० जरिया] दे० 'जरिया'। उ०—नग
कर मरम सो जरिया जाना। जरे जो मस नग हीर पखाना।
—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २४१।

जरिया—वि० [हि० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जलाकर
बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया
नमक।

यौ०—जरिया शोरा = एक प्रकार का शोरा जो भाफ उठाकर
बनाया जाता है। जरिया नमक = वह खारा नमक जो घाँच
से तैयार किया जाता है।

जरिया^२—संज्ञा पुं० [प्र० जरियह् या जरिग्रह्] १. सवध। लगाव।
धार। जैसे,—उनके यहाँ अगर आपका कोई जरिया हो तो
बहुत जल्दी काम हो जायगा। २. हेतु। कारण। सवध।
३. उपाय। साधन। तदधीर। उ०—तौ पाई जरिया सिर
पर धरिया, विप ऊपरिया तन तिगिया।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पृ० २३१।

जरिश्क—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरिश्क] दाढ़लदी।

जरी^१—वि० पुं० [सं० जरिन्] [वि० स्त्री० जरिणी] बूढ़ा। बूढ़ा।

जरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जरी] जरी। बूढ़ी। उ०—तब सो जरी
अमृत लेह पावा। जो मरे हुन तिनह् छिरिनि जियावा।—
जायसी (शब्द०)।

जरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जरी] १. तारा नामक कपड़ा जो बादले से
बुना जाता है। २. सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरी^३—वि० सोने का। स्वर्णिम। स्वर्णमय।

जरीद—संज्ञा पुं० [प्र०] १. पत्रवाहक। कासिद। २. जासूस। गुप्तचर।
[को०]।

जरीदा—संज्ञा पुं० [प्र० जरीदह्] १. एकाकी व्यक्ति। प्रकेला आदमी
२. समाचारपत्र। अखबार [को०]।

जरीनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० जरी+नाल (= ठोकर)]—कहारों की
बोलचाल में वह स्थान जहाँ इंटें और रोड़े पड़े हो।

जरीफ वि० [प्र० जरीफ] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्टे-
बाज। मखोलिया।

जरीव—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] माप जिससे भूमि नापी जाती है।
विशेष—हिंदुस्तानी जरीव ५५ गज की और अंग्रेजी जरीव ६०
गज की होती है। एक जरीव में २० गट्टे होते हैं।

यौ०—जरीवकश। जरीवकशो = (१) जरीव द्वारा खेतों की
पेमाइश। (२) जरीव खींचने का काम।

मुहा०—जरीव डाकना = भूमि को जरीव से नापना।
२. लाठी। छड़ी।

जरीवकश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय
जरीव खींचने का काम करता है।

जरीवपत^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जरवपत] दे० 'जरवपत'। उ०—
जरीवपत भी मोठे ताँसे, ताहि समुक्ति के धरना।—सं०
दरिया०, पृ० १४५।

जरीवाना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'। उ०—आगे तो जरी-
वाना, फेर जहलखाना रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ३५६।

जरीवी—वि० [फ्रा०] (भूमि) जो जरीव से नापी हुई हो।

जरीमाना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुरमाना'।

जरीली—वि० स्त्री० [हि० जरना + ईला (प्रत्य०)] सोने के तारों से
निर्मित। जड़ावदार। जिमपर जड़ाव का काम हो। उ०—
कहें प्रभा श्यामल इद्रनीली। मोती छरी सुंदर ही जरीली।
—श्यामा०, पृ० ३८।

जरुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरावस्था। वृद्धावस्था। बुढ़ापा।
उ०—जोवन बाल वृद्ध भवस्ता। जीवन हारिआ जरुआ
जित्ता।—प्राण०, पृ० २४२।

जरुथ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोश्त।

जरुथ^२—वि० कटुवादी। कटुभाषी।

जरुर^१—क्रि० वि० [प्र० जरुर] [वि० जरुरी] संज्ञा जरुरत] आवश्यक।
नि सदेह। निश्चय करके।

यौ०—जरुर जरुर = अवश्यमेव।

जरुर^२—संज्ञा पुं० [प्र० जरुर] दवा की बुकनी जो जरुम या घाँव
में छोड़ी जाय [को०]।

जरुरत—संज्ञा स्त्री० [प्र० जरुरत] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ता।—होता।

यौ०—जरुरतमद = (१) इच्छुक। आकांक्षी। (२) दीन।
दरिद्र। मुहताज।—(३) भिक्षुक। भिक्षारी।

जरुरतन्—क्रि० वि० [प्र० जरुरतन] आवश्यकतावश। कारणवश।
जरुरत से।

जरुरियात—संज्ञा स्त्री० [प्र० जरुरी का बहुव०] आवश्यक चीजें।

जरुरी—वि० [फ्रा० जरुरी] १. जिसकी जरुरत हो। जिसके बिना

काम न चले। प्रयोजनीय। २ जो अवश्य होना चाहिए।
आवश्यक। सापेक्ष।

जरूला^{७१}—वि० [सं० जटा + हि० वाला (प्रत्य०); अथवा हि० झट +
ऊला (प्रत्य०)] १. गर्भकालीन केशोंवाला। गर्भोत्पन्न केश
या जटा से युक्त। उ०—नित ही ब्रजजन हित अनुकूलो।
जमुदा जीवन लला जरूलो।—घनानंद०, पृ० २३२। २
जटूल। जन्मजात लक्षण चिह्नों से युक्त।

जरोटन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जसाटनी] जोंक। उ०—कोर कजरारी
केशों फरकत फेर फेर, सूकत जरोटन की थिरक थकेसी सी।
—पजनेस०, पृ० ६।

जरोल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत
होती है।

विशेष—यह इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम
आती है। यह बगाल में, विशेषकर सिलहट के कछार में,
चटगाँव और उत्तरी नीलगिरि में बहुत होता है।

जरोट^{७२}—वि० [हि० अठना] जडाऊ। उ०—कोऊ कजरौट जरोट
लिए कर कोउ मुरछल कोऊ छाता।—रघुराज (शब्द०)।

जर्कवर्क—वि० [फा० जर्क वर्क] जिसमें खूब तटक भटक हो।
भड़कीला। चमकीला। भटकदार।

जर्जर^१—वि० [सं०] १ जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण
वेकाय हो गया हो। २. फूटा। टूटा। खडित। ३. वृद्ध।
बृद्ध। ४ (ध्वनि) जो किसी पात्र के टूटने से हो (को०)।

जर्जर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ छरीला। बुढ़ना। पत्थरफूल। २ इद्र की
पताका (को०)।

जर्जरानना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जर्जराना] एक मात्रिका का नाम जो
कार्तिकेय की अनुचरी है।

जर्जरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर + हि० ता (प्रत्य०)] पुरानापन।
जीर्णता। उ०—स्मृति चिह्नों की जर्जरता में। निष्ठुर कर
की वर्चरता में।—लहर, पृ० ३४।

जर्जरित—वि० [सं० जर्जरित] १ जीर्ण। पुराना। २ टूटा। फूटा।
खडित। ३ पूर्णतः भ्रांति या अभिसूत।

जर्जरीक—वि० [सं०] १ बहुत वृद्ध। बुढ़ा। २ जिसमें बहुत से छेद
हो गए हों। घनेक छिद्रवाला।

जर्ण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १, (घटता हुआ या कृष्ण पक्ष का) चद्रमा।
२ धूस। पेड़।

जर्ण^२—वि० जीर्ण। पुराना। क्षीण।

जर्ण^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जलना, पुं० हि० जरना] विरह। वियोग।
जलन। जैसे, जर्ण को ग्रह।

जर्त्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी। २. योनि।

जर्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन बाह्य देश का एक नाम। २
उक्त देश का निवासी।

जर्तिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जगली तिल। बनतिलवा।

जर्त्त^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जर्त'।

जर्द^१—वि० [फा० जर्द] पीला। पीले रंग का। पीत।

यौ०—जर्दगोश=छली। धूर्त। मक्कार। जर्दचरम=(१)

श्येन जाति के शिकारी पक्षी। (२) पीली माँखवाला।

जर्दचोब=हरिद्रा। हल्दी।

जर्दा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जर्दह] दे० 'जरदा'।

जर्दालू—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जर्दालू] एक मेवा। जरदालू। खुबानी।

विशेष—दे० 'खुबानी'।

जर्दी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] पीलापन। पीलाई। वि० दे० 'जरदी'।

जर्दीज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जरदोज] दे० 'जरदोज'।

जर्दीजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [जरदोजी] दे० 'जरदोजी'।

जर्नल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जरनल'।

जर्नलिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'पत्रकार'।

जर्फ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जर्फ] १ बरतन। भाजन। पात्र। २.
योग्यता। पात्रता। ३ सहनशीलता। गंभीरता (को०)।

जर्री^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जर्रह] १ मयु। २. वे छोटे छोटे कण
जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। ३. जो का
सोवा भाग। ४. बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

जर्री^२—वि० दे० 'जरा'।

जर्री^३—सञ्ज्ञा स्त्री० सपत्नी। सीत। सीकन।

जर्रीक—वि० [अ० जर्रीक] धूर्त। मुद्देखी कहनेवाला। द्विजिह्व।

यौ०—जर्रीकखाना=धूर्तवास। धूर्तों की बैठक।

जर्रीद—वि० [अ० जर्रीद] जिरहबख्तर बनानेवाला। शस्त्र
निर्माता।

यौ०—जर्रीदखाना=शस्त्रागार।

जर्रीफ—वि० [अ० जर्रीफ] १ हँसोड़। दिल्लगीबाज। २
प्रतिभाशील (को०)।

जर्रीर—वि० [अ०] [सञ्ज्ञा जर्रीर] १ बलिष्ठ। प्रबल। २.
लडाका। बहादुर। बीर। ३. विशाल। भारी (सेना या
भीड़)।

जर्रीरा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जर्रीरह] १ बहुत विशाल सेना। २ एक
भयंकर विषैला विच्छू जिसकी पूँछ जमीन पर घिसटती
चलती है (को०)।

जर्रीही—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० जर्रीर + ई (प्रत्य०)] बहादुरी।
वीरता। सूरमापन।

जर्रीह—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] [सञ्ज्ञा जर्रीही] चीर फाड़ का काम
करनेवाला। फोड़ों आदि को चीरकर चिकित्सा करनेवाला।
शल्यचिकित्सक। शल्यचिकित्सक।

जर्रीही—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] चीर फाड़ का काम। चीर फाड़ की
सहायता से चिकित्सा करने का काम। शल्यचिकित्सा।
शल्यचिकित्सा।

जर्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक
बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी।

जर्हिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जगली तिल। जर्तिल।

जलंग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जलङ्ग] महाकाल नाम की एक सता।

जलंग^२—वि० जलमवधी । जलीय । जल का ।

जलंगम—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्गम] चाँडाल

जलतो^७—वि० [हि० जलना] जलनेवाली । जलती हुई । प्रज्वलित । उ०—तन भीतर मन मानिया बाहर कहे न लाग । ज्वाला ते फिर जल मया बुझी जलती भाग ।—रवीर सा० सं०, पृ०, ४५ ।

जलधर—संज्ञा पुं० [सं० जलधर] १ एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से गंगा-समुद्र-सगम में उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए । उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जाकर समुद्र से पूछा कि यह किसका सड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाएँ । जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा । इसी लिये ब्रह्मा ने इसका नाम 'जलधर' रखा । बड़े होने पर इसने इंद्र की नगरी अमरावती पर अधिकार कर लिया । अंत में शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए । उसकी स्त्री वृदा ने, जो कालनेमि की कन्या थी, अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की । जब देवताओं ने देखा कि जलधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में 'जलधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृदा के पास गए । वृदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया । पूजन छोड़ते ही जलधर के प्राण निकल गए । वृदा क्रुद्ध होकर शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई ।

२ एक प्राचीन श्रद्धि का नाम । ३ योग का एक वध ।

जलधर^३—संज्ञा पुं० [हि० जलोदर] दे० 'जलोदर' ।

जलधल—संज्ञा पुं० [सं० जलधल] १ नदी । २ अजन ।

जल^१—वि० [सं०] १ स्फूर्तिहीन । ठंडा । जह । २ सूख । हतज्ञान [को०] ।

जल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी । २ उशीर । छस । ३ पूर्वाषाढा नक्षत्र । ४. ज्योतिष के अनुसार जन्मकुहली में घोषा स्थान । ५. सुगंधवाला । नेत्रवाला । ६. धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य । वि० दे० 'दिव्य' ।

जलधलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी का बंधर । २. एक काला कोड़ा जो पानी पर तैरा करवा है । पैरोवा । भौतुपा । उ०—भरत दशा तेहि धवसर कैमी । जल प्रवाह जल धलि गति पैसी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसकी वनाघट खटमल की सी होती है, परंतु धाकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है । इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ओर घूम घूमकर तैरता है । जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है ।

जलई—संज्ञा स्त्री० [हि० जलना या धोजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो घेंकुड़े होवे हैं और दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है । यह प्रायः नाव के तख्तों को जड़ने में काम आता है ।

जलकंटक—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्टक] १. सिंघाड़ा । २. कुभी ।

जलकंडु—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्डु] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है ।

जलकंद—संज्ञा पुं० [सं० जलकन्द] १ केला । कदली । २ काँदा । जलकंदरा ।

जलकंदरा—संज्ञा पुं० [सं० जल + कन्दली] काँदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है ।

जलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ घास । २ कीड़ी ।

जलकपि—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु ।

जलकपोत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है ।

जलकना^७—क्रि० घ० [हि० झलकना] चमकना । जगमगाना । देदीप्यमान होना । उ०—खिलवत से निकल जलकते दरबार में आया ।—कवीर म०, पृ० ३६० ।

जलकरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलकरंज] १ नारियल । २. पथ । कमल । ३. शस्त्र । ४. लहर । तरंग । जललता ।

जलकर—संज्ञा पुं० [हि० जल + कर] १ वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय । जैसे, मछली, सिंघाड़ा, कवलगट्टा आदि । २ इस प्रकार के पदार्थों पर का कर । ३. वह द्रव्य या कर जो नगरों में पानी देने के बदले में नगरपालिकाएँ वसूल करती हैं । पानी का कर ।

जलकल—संज्ञा पुं० [हि०] पानी पड़ाने की कल । पानी का नल ।

यौ०—जलकल विभाग = दे० वाटर वर्क्स ।

जलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवार । २ कीचड़ । काई ।

जलकल्मष—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रमंथन में निकला हुआ विष [को०] ।

जलकष्ट—संज्ञा पुं० [सं० जल + कष्ट] जल का अभाव । पानी की कमी ।

जलकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलकाङ्क्ष] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी ।

जलकांत—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्त] वायु । हवा । पवन ।

जलकांतार—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्तार] वरुण ।

जलकाँदा—संज्ञा पुं० [हि० जल + काँदा] दे० 'काँदा' ।

जलकाफ—संज्ञा पुं० [सं०] जलकीमा नामक पत्थी ।

पर्याय—दास्पूह । कालकंटक ।

जलकामुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यमुखी । २ कुट्टु बिनी नाम का गुल्म [को०] ।

जलकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिसका जल ही शरीर है ।

जलकिनार—संज्ञा पुं० [हि० जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

जलकिराट—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राह या नाक नामक जलजंतु ।

जलकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० जलकुन्तल] सेवार ।

जलकुम्भी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + कुम्भीर] कुम्भी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है ।

विशेष—दे० 'कुम्भीर'—८ ।

जलकुक्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलकुक्कुट] एक जलपक्षी । मुगबि । उ०—जैसे जल महें रहे जलकुक्कुटी, पक्ष लित जल नाहि ।—जग० श०, भा० २, पृ० ८६ ।

जलकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगावी । उ०—कहूँ कारहव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५६ ।

जलकुक्कुम्भी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की जल की चिड़िया । कृकुद्दी । बनमुर्गी ।

पर्याय—कोयल । शिखरी ।

जलकुञ्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवार । २. काई ।

जलकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कूप । २. तालाब । सर । ३. जलावत । धावत । भँवर [को०] ।

जलकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु ।

७।केतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है ।

विशेष—इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है । यह देखने में स्वच्छ होता है । फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है ।

जलकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलक्रीडा' ।

जलकेश—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।

जलकौआ—संज्ञा पुं० [हि० जल + कौआ] एक प्रकार का जलपक्षी ।

विशेष—इसकी गर्दन सफेद, चौंच नुरी और शेष सारा शरीर काला होता है । मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं । यह चिड़िया सारे यूरोप, एशिया, अफ्रीका और उत्तरी अमेरिका में पाई जाती है । इसकी जगहों से सीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छह तक घड़े देती है । वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, घातनाशक, पीतल और वज्रघ्नक होता है ।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव और पितृ आदि का तर्पण ।

जलक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रीडा जो जलाशयों आदि में की जाय । जलविहार । जैसे, तैरना, एक दूसरे पर पानी फेंकना ।

जलखग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है ।

जलखर—संज्ञा पुं० [हि० जल + खर] दे० 'जलखरी' ।

जलखरी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + काढ़ना, या खारी] रस्सी या

तागे की जाल की बनी हुई थैली या झोली जिसमें लोग फल आदि रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं ।

जलखावा—संज्ञा पुं० [हि० जल + खाना] जलपान । कलेवा ।

जलगर्द—संज्ञा पुं० [सं० जल + फा० गर्द] पानी में रहनेवाला साँप । डेडहा ।

जलगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्वजन्म का नाम ।

जलगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में का भँवर । २. कछुआ । ३. वह देश जिसमें जल कम हो । ४. चौकोर तालाब (को०) ।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है ।

विशेष—इसमें पानी पर तैरता हुआ एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है । यह कटोरा पानी के नाँद में पड़ा रहता है । पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी जाता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है । डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकालकर खाली करके पानी की नाँद में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है । इस प्रकार एक एक घंटे पर यह कटोरा डूबता है और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है ।

जलधारा—संज्ञा पुं० [हि० जल + धार] वह स्थान जहाँ जल आदि रखा जाता है । नहाने का स्थान । उ०—ताकों श्रीनाथ जी के जलधारा में स्नान कराइये की सेवा सोंपी ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २०६ ।

जलधुमर—संज्ञा पुं० [हि० जल + धूमना] पानी का भँवर । जलावत । चक्कर ।

जलचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जिसमें जल कम हो । २. चौकोर तालाब (को०) ।

जलचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु । जलजंतु । जैसे, मछली, कछुआ, मगर, आदि । उ०—जलचर थलचर नमचर माना । जे जठ चेतन जीव सहाना ।—मानस, १।३ ।

यौ०—जलचरकैतु(७) = मीनकैतु । कामदेव । उ०—सहित सहाय जाहू मम हेतू । चलेउ हरपि हिय जनघर कैतू ।—मानस, १।१२५ ।

जलचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मछली । उ०—मधुकर मो मन अधिक कठोर । बिगसि न गयो कुभ काँचि लौं विछुरत नदकिनोर । हमतें भनी जलचरी बपुरी अपनी बेहू निबाहो । चल तैं विछुरि तुरत तन त्याग्यो पुनि जल ही कौं बाहो ।—सूर०, १०।३७२६ ।

जलचादर—संज्ञा स्त्री० [सं० जल + हि० चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह । उ०—सहज सेत पचतोरिया पहिरत भति छवि होति । जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति ।—बिहारी २०, दो० ३४० ।

विशेष—प्रायः घनवानों और राजाओं आदि के स्थानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-

चादर कहते हैं। कभी इसके पीछे घाले बनाकर उत्तमें दीपक की पत्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत घोमा देती है।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौलाई'।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजत] फुहारा। दे० 'जलयन्त्र'। उ०—जलजत छुट्टि महाराज भाय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।—पं० रासो, पृ० ४०।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्तु] जल में रहनेवाले जीवजंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजन्तुका] जोर।

जलजंत्रु—संज्ञा पुं० [सं० लयन्त्र, प्रा० जलजन्त्र, जलजत] भरना। फुहारा। उ०—चहुँ ओर सघन पर्वत सुगंध। जलजंत्रु छुट्टे उच्चे सवध।—हं० रासो, पृ० ६३।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजन्तुका] जलजामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है। दे० 'जलजामुन'।

जलजबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बूका] दे० 'जलजबुका'।

जलज^१—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

जलज^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल। २ धातु। ३. मछली। ४ पनीहा नाम का वृक्ष। ५ सेवार। ६ प्रबुवेत। जलवेत। ७. जलजंतु। ८ सामुद्रिक या लोनार नमक। ९ मोती। १० कुचले का पेड़। ११ चौलाई।

जलजन्म—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्मन्] कमल [को०]।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलजला^१—वि० [सं० ज्वल + जल > जज्वल] क्रोधी। दीप्त होने वाला। बिगड़ल।

जलजला^२—संज्ञा पुं० [प्रा० जलजलह] सूकप। भूबोल।

जलजलाना—क्रि० प्र० [सं० ज्वल, प्रा० जल, भाल, भल] झल झल करना। चमकना। उ०—वे हिलकर रह जाते हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है।—आकाश०, पृ० १३३।

जलजात^१—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

जलजात^२—संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजान(उ)—संज्ञा पुं० [सं० जलजान] दे० 'जलयान'। उ०—छटप, पोत, नतका, पलन, तरि, वहिन, जलजान। नाम नाँव चढ़ि भव उदधि केँ तरे प्रजान।—नद० प्र०, पृ० ६१।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे भापसे भाप उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्तें कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० जलज + जवलि] मोतियों की माला। उ०—खट लोल कपोल कलोल करे, कल कठ बनी जलजावलि

है। भंग भंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप धवधर जै।
—घनानंद, पृ० ५८५।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। नाक। घड़ियाल [को०]।

जलजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जलजीविन्] मत्लाह। मधुमा [को०]।

जलजोनि(उ)—संज्ञा पुं० [सं० जल (= कृपीट) + योनि, प्रा० जोणि] धनि। पावक। उ०—जातवेद जलजोनि हरि विप्रमान वृहमान।—अनेकार्य०, पृ० ४।

जलडमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलडिंवा—संज्ञा पुं० [सं० जलडिम्ब] शबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं० जलतरङ्ग] १. जल का हिलोर। जल की लहर। २. एक प्रकार का बाजा।

विशेष—यह बाजा धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रखकर बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुंगरी से आघात करके तरह तरह के ऊँचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरन(उ)^१—संज्ञा पुं० [सं० जल + तरण, हिं० तरना] पानी में तैरने की विद्या। उ०—पसुभाषा भी जलतरन, धातु रसाइन जानु। रतन परख भी चातुरी, सकल भग सग्यानु।—भाषवानल०, पृ० २०८।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)।

जलताडन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीटना। जल को पीटने का काम। २. (लाक्ष०) निरर्थक कार्य। व्यर्थ का काम [को०]।

जलतापिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हिलसा, हेलसा कहते हैं।

जलतापी—संज्ञा पुं० [सं० जलतापिन्] दे० 'जलतापिक'।

जलताल—संज्ञा पुं० [सं०] सलई का पेड़ [को०]।

जलविक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाता। २. वह कुटी जो एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने भयवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में इसे 'हाइड्रोफोबिया' कहते हैं।

जलस्थंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ, जलस्तम्भन] मत्तों आदि से जल का स्तम्भ करने या उसे रोकने की क्रिया। जलस्तम्भन। उ०—बिरह विधा जल परस दिन बसियत मो मन ताल। कछु जानत जलयम विधि दुर्जोधन लौं लाल।—बिहारी र०, दो० ४१४।

जलद^१—वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।

जलद^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. मोया। ३. फुपर। ४. पुराणानुसार आकशीप के अवतार एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाऋतु । वरसात ।

जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु ।

जलदतिलाला—संज्ञा पुं० [हिं० जल्दी + तिलाला] वह साधारण तिलाला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो । यह कीवाली से कुछ विलंबित होता है ।

जलददुर्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०] ।

जलदस्यु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री डाकू । समुद्री जहाजों पर डकैती करनेवाले व्यक्ति ।

जलदाता—संज्ञा पुं० [सं० जलदान] तर्पण करनेवाला । देव, ऋषि और पितृ गणों को पानी देनेवाला [को०] ।

जलदान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण [को०] ।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] साखू का पेड़ ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल साखू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साखू का यह नाम पड़ा ।

जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारों ओर नदी, झील आदि से सुरक्षित हो ।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वाषाढा नाम का नक्षत्र । २ वरुण जो जल के देवता हैं ।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलदोदो—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पीछा जो काई की तरह पानी पर फैलता है । इसके शरीर में लगने से खूजली पैदा होती है ।

लद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं ।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन, जिससे खेत में पानी देते या नाव का पानी उलीचते हैं ।

जलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तनपायी जलजंतु । वि० ३० 'जलहस्ती' ।

जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल । २ मुरता । ३ समुद्र । ४. तिनिस । तिनिस का पेड़ । ५ जलाशय । तालाब । झील । उ०—बहुता दिन बीजइ पछइ राति पढती देखि । रोही मझि डेरा किया ऊजल जलधर देखि ।—ढोना०, दू० ५६८ ।

जलधर केदारा—संज्ञा पुं० [सं० जलधर + हिं० केदारा] एक सकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है ।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बादलों की श्रेणी । २ बारह भक्तों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः भगण, भगण, भगण और भगण (SSS, SII, IIS, SSS) होते हैं । जैसे—मो भास मोहन हयको द योगा । ठानो ऊधो उन कुवजा सों भोगा । साँचो ग्वालागन कर नेहा देखी । प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखी ।

जलधरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर का या घातु आदि का बना हुआ वह भर्षा जिसमें शिवालिंग स्थापित किया जाता है । जलहरी ।

जलधार—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप का एक पर्वत ।

जलधार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधारा] ३० 'जलधारा' ।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी का प्रवाह । [पानी की धारा । २ एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँधकर पानी झालता रहता है ।

जलधारी^१—वि० [सं० जलधारिन्] [वि० स्त्री० जलधारिणी] पानी को धारण करनेवाला । जलधारक ।

जलधारी^२—संज्ञा पुं० बादल । मेघ । उ०—श्रवण न सुनत, चरण गति वाके, नैन भये जलधारी ।—सूर ।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र । उ०—बाँध्यो बननिधि नीर-नीधि जलधि सिंधु वारीस । सत्य तोयनिधि कवति उदधि पयोधि नदीस ।—मानस, ६।५ । २. एक सख्या जो दस शख की होती है और कुछ लोगों के मत से दस नील की । ३ चार की सख्या [को०] ।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी । २ नदी । दरिया ।

जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

जलधिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०] ।

जलधिरशाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र रूपी करघनीवाली अर्थात् पृथिवी [को०] ।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित धेनु ।

विशेष—इस धेनु की कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है । इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन, हिं० जलना] १ जलने की पीड़ा या दुःख । मानसिक वेदना या ताप । दाह । २ बहुत अधिक ईर्ष्या या दाह ।

मुहा०—जलन निकालना = द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना ।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदविलाव ।

जलना—क्रि० प्र० [सं० ज्वलन] १. किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अगारे या लपट के रूप में हो जाना । दग्ध होना । भस्म होना । बलना । जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना ।

यौ०—जलता धलता = होलिकापृक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता ।

मुहा०—जलती आग = भयानक विपत्ति । जलती आग में कूटना = जान बूझकर भारी विपत्ति में फँसना ।

२ किसी पदार्थ का बहुत गरमी या अग्नि के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना । जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में घी जलना, घूप में घास या पीछे का जलना । ३. अग्नि लगने के कारण किसी अग्न का पीड़ित और विकृत होना भुलसना । जैसे, हाथ जलना ।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना = किसी दुखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना ।

जले फफोखे फोड़ना = दुःखी या व्यथित व्यक्ति को किसी प्रकार, विशेषकर अपना बदला चुकाने की इच्छा से, और अधिक दुःखी या व्यथित करना। जले पाँव की विल्ली = जो स्त्री हरदम घुसती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

४. बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन सतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना = बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात = वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना = डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्हें अपनायो तब जनिहीं जब मनु फिरि परिहैं। हरखिहै न प्रति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—तुलसी (शब्द०)।

जलनाडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनाली'।

जलनाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पानी बहने का मार्ग। प्रणाली। नाली। मोरी [को०]

जलनिधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ चार की सख्या।

जलनिर्गम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जलनीम—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जल + नीम] एक प्रकार की कोनिया जो कड़ई होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि में उत्पन्न होती है।

जलनीलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार। शैवाल।

जलनीली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनीलिका'।

जलपंढर(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जल + पं० पट्टर] जलसर्प। पानी का सर्प। उ०—सहजाँ सोई सुमिरिये आलस ऊँघ न भ्रान। जन हरिया तन पेखणों ज्यो जलपट्टर जान।—राम० धर्म०, पृ० ५८।

जलपक(पुं०)—वि० [सं० जलपक्व] जल में पकनेवाला। जल में पका हुआ। उ०—धीपक जलपक जेते गने। कटुवा बटुवा ते सब बने।—चित्रा०, पृ० १०३।

जलपक्षी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

जलपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण। २ समुद्र। ३ पूर्वापादा नक्षत्र।

जलपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाली या नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपना(पुं०)—क्रि० प्र०, क्रि० सं० [हि०] दे० 'जल्पना'।

जलपद्धति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नहर। नाला। जलपथ [को०]।

जलपाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के उत्तरपूर्वीय भाग में तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और द्रावणकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल गूदेदार होता है और 'जंगली जैतून' कहलाता

है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यो ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जल + पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखो नाग दीपपुत सोच। लोपांजन द्य तै चली ताहि न देखे कोय।—नददास (शब्द०)।

जनपात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पानी का वर्तन। २ जल पीने का वर्तन [को०]।

जलपान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातः काल कार्य आरम्भ करने में पहले भ्रष्टा सध्या को कार्य समाप्त करने के उपरांत साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

यौ०—जलपानगृह = वह सार्वजनिक स्थान जहाँ जलपान की सामग्री मिलती हो तथा बैठकर खाने पीने की व्यवस्था हो।

जलपारावत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलरूपोत्त नाम की चिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जलपिंड] अग्नि। आग।

जलपित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जलपिप्पलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की औषधि।

जलपीपल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गन्धहीन औषधि।

विशेष—इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं। इसके तने में पास पास बहुत सी गाँठें होती हैं और इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लंबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं, पर उनमें गन्ध नहीं होती। यह खाने में तीखी, कड़ई, कसैली और गुण में मलशोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे 'गगतिरिया' भी कहते हैं।

पर्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयवल्ली। मत्स्यादिनी। मत्स्यगन्धा। लागली। शकुलादनी। चित्रपत्री। प्राणदा। वृणशीता। बहुशिक्षा।

जलपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लज्जावती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि में उत्पन्न होता है। २ कमल आदि फूल जो जल में उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पानी का जहाज।

जलपना(पुं०)—क्रि० प्र०, क्रि० सं० [हि०] दे० 'जल्पना'। उ०—बोर मद्र अरु रुद्र जलप्यि। कही सत्त सकर वन प्यि।—पृ० रा०, २५। ४८२।

जलप्रदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रदानिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में स्त्रीपर्व के अंतर्गत एक उपपर्व का नाम।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहा सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पोसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। २ वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो। ३ वर्षाकाल। प्रावृट् ऋतु। जलदागम (को०)।

जलप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलप्लावन'।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बहाव। उ०—भरत दसा तेहि भवसर कैसी। जल प्रवाह जलमलि गति जैसी।—मानस, ३। २३३। २ किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। ३ किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] नदी या जलाशय के आसपास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। मरूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १ मछली। २ चातक। पपीहा।

जलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चातकी। २ पार्वती। दुर्गा। दाक्षायणी। [को०]।

जलप्रेत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो जल में डूबकर मरने से प्रेत योनि प्राप्त करे।

जलप्लाव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदविलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी की बाढ़ जिससे आस पास की भूमि जल में डूब जाय। २. पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातिधो के धर्मग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित, वैवस्वत मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हजरत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबन्ध—संज्ञा पुं० [सं०] जलबन्ध [मछली]।

जलबन्धक—संज्ञा पुं० [सं०] जलबन्धक [पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है]।

जलबन्धु—संज्ञा पुं० [सं०] जलबन्धु [मछली]।

जलबालक—संज्ञा पुं० [सं०] विद्याचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलविन्दुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलविन्दुजा [यावनाल शर्करा नाम की दस्तावर ओषधि जिसे फारसी में शीरखिशत कहते हैं]।

जलविम्ब—संज्ञा पुं० [सं०] जलविम्ब [पानी का बुलबुला]।

जलविखाल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदविलाव।

जलविरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह देश जहाँ जल कम हो। २.

केकड़ा। ३ कच्छप। कछुआ (को०)। ४ चौकोर भील या तालाब (को०)।

जलबुद्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेतस् या जलवेत् [जलाशयों के निकट की भूमि में पैदा होनेवाला एक प्रकार का वेत]।

विशेष—इस वेत का पेड़ लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्तों की तरह होते हैं और इसमें फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ, बेंचें इत्यादि इसी वेत के छिलके से बुनी जाती हैं।

जलवेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलवल्ली [जल में या जल के कारण उत्पन्न होनेवाली लताएँ]। उ०—भय दिवाह प्रावृट् पुवि तपसरनी को कोप। जलवेली बिहु नागत्रिप ते जिन भए झलोप।—पृ० रा०, १। ४६५।

जलब्रह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या दुरदुर का साग।

जलब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलब्रह्मी'।

जलभँगरा—संज्ञा पुं० [हि०] जल+भँगरा [एक प्रकार का भँगरा जो पानी में या पानी के किनारे होता है]।

जलभँवरा—संज्ञा पुं० [हि०] जल+भँवरा [काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। इसे भँवरा भी कहते हैं]।

जलभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपात्र'।

जलभासू—संज्ञा पुं० [हि०] जल+भासू [सील की जाति का एक जंतु]।

विशेष—यह आकार में आठनी हाथ लंबा होता है और इसके सारे शरीर में बड़े बड़े बाल होते हैं। यह कुँडों में रहता है और इसकी सत्तर से अस्सी तक मादाधो के कुँड में एक ही नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तरपूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों में अधिकता से पाया जाता है।

जलभीति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलश्रास'।

जलभू^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २ एक प्रकार का कपूर। ३. जलचोलाई। ४ वह स्थान जहाँ जल एकत्र कर रखा जाता है (को०)।

जलभू^२—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक हो। जलप्राय भूमि। कच्छ। मरूप।

जलभू^३—वि० जलीय। जल में उत्पन्न [को०]।

जलभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ एक प्रकार का कपूर। ३ जल रखने का पात्र या बरतन।

जलमडल—संज्ञा पुं० [सं०] जलमण्डल [एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के ससर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। चिरेया बुदकर]।

जलमदूक—संज्ञा पुं० [सं०] जलमण्डूक [प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। जलदंडुर]।

जलमंजु—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म, पु० हि० जन्म] दे० 'जन्म'।

जलमक्षिका—संज्ञा पुं० [सं०] जलनिवासी एक कीट [को०] ।

जलमग्न—वि० [सं०] जल में डूबा हुआ । जल में निमग्न [को०] ।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी । मछरग । कौड़िल्ला ।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलमहुआ' ।

जलमय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव की एक मूर्ति ।

जलमय^२—वि० जल से पूर्ण या जलनिर्मित [को०] ।

जलमर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलकपि' ।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन । भाग ।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमहुआ—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुआ जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलशायों के निकट होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं । वैद्यक में यह ठंडा, क्षणनाशक, बलवीर्यवर्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—दीर्घपत्रक । ह्रस्वपुष्पक । स्वादु । गोलिका । मधूलिका । शोद्धप्रिय । पतंग । कीरेण्ड । गौरिकाक्ष । मागल्य । मधुपुष्प ।

जलमातंग—संज्ञा पुं० [सं० जलमातङ्ग] दे० जलहस्ती [को०] ।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं । ये गिनती में सात हैं । इनके नाम हैं—(१) मत्सी, (२) कूर्मी, (३) वाराही, (४) दुर्दुरी, (५) मकरी, (६) जलूका और (७) जतुका ।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] परीरु नामक एक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछरी के ऐसा होता है । उ०—तुरत तुरगम देव चढ़ाई । जलमानुष अगुमा संग लाई ।—

जलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपथ' [को०] ।

जलमार्जार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊदविलाव ।

जलमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाना । बादलों का समूह । उ०—बादल काला धरसिया धत जलमाला धौण । काम लगीं चाना करण मतवाला रंग माँण ।—घाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७ ।

जलमुक^७—संज्ञा पुं० [सं० जलमुक, जलमुच्] मेघ । बादल । दे० 'जलमुच्' । उ०—नोरद छोरद भवुवह वारिद जलमुक नाँठ ।—घनेकाथं०, पृ० ८२ ।

जलमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. एक प्रकार का कपूर ।

जलमुर्गा—संज्ञा पुं० [हिं०] जलकुक्कुट । मुर्गाबो ।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनघट्टि] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी ।

जलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

जलमूर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका । श्रोता ।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर । खस ।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र] १. वह यंत्र (रहट, चरखी आदि) जिससे कुएं आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है । २. जलघड़ी । ३. फुहारा । फोझारा ।

यौ०—जलयन्त्रगृह = फुहारा घर । वह घर जिसमें फुहारे लगे हों । जलयन्त्रमंदिर = दे० 'जलयन्त्रगृह' ।

जलयान्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह यान जो ग्रिमपेक आदि के निमित्त पवित्र जल लाने के लिये की जाती है । २. राजपुताने में प्रचलित एक उत्सव ।

विशेष—यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है । उस दिन उदयपुर के राणा अपने सरदारों के साथ सज-कर बड़े समारोह से किसी हृद के पास जाकर जल की पूजा करते हैं ।

३. वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है । इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठंडे जल से स्नान कराया जाता है ।

जलयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी जो जल में काम आती है । जैसे, नाव, जहाज आदि ।

जलयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० जल + युद्ध] पानी में होनेवाली लड़ाई । जलपोतों द्वारा युद्ध ।

जलरक—संज्ञा पुं० [सं० जलरङ्क] रक । बगुला ।

जलरङ्कु—संज्ञा पुं० जलरङ्क] बनमुर्गी । जलकुक्कुट । मुर्गाबो ।

जलरञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० जलरञ्ज] एक प्रकार का बगुला ।

जलरहंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरहण्ड] १. आवर्त । भँवर । २. पानी की बूंद । जलकण । ३. सौंप । सप ।

जलरख^७—संज्ञा पुं० [सं० जलरखि० रल] यक्ष । जल के रखवारे । वरुण के सिपाही । उ०—तूझ तुरगाँ दान रा हिमगिर चलहटियाह । गाने गीत तुरगमुख जलरख जल बटियाह ।—वाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६ ।

जलरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्री या साँभर ममक । २. ममक ।

जलराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में रहनेवाली राक्षसी जिसका नाम सिंहिका था और जो आकाशनामी जीवों की छाया से उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी ।

जलराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुम्भ और मीन राशियाँ । २. समुद्र ।

जलरास^७—संज्ञा पुं० [सं० जलराशि] समुद्र । जल का पुजीभूत रूप । सागर । उ०—जैसे नदी समुद्र समावे व्रत भाव तजि हूँ जलरास ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १५६ ।

जलरुहंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरहण्ड] दे० 'जलरह' ।

जलरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

जलरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकर राशि । २. नक्र । मकर (को०) ।

जललता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर । तरंग ।

जललोहित—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

जलवरंट—संज्ञा पुं० [सं० जलवरण्ट] जल के अधिक ससर्ग से होने-
वाली एक प्रकार की पिटिका या ग्रण [को०] ।

जलवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ का एक भेद । उ०—सुनत
मेघवर्तक साजि सैन लै भाये । जलवर्त, वारिवर्त पवनवर्त,
वीजुवर्त, भागिवर्तक जलद सग ल्याये ।—सूर (शब्द०) ।
२. दे० 'जलावत' ।

जलवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०] ।

जलवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] जलकृमी ।

जलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाहा ।

जलवा—संज्ञा पुं० [प्र० जलवह] १. शोभा । दीप्ति । तडक भडक ।
उ०—जहाँ देखो वहाँ मोहूद मेरा कृष्ण प्यारा है । उसी
का सब है जलवा जो जहाँ में प्राणाकारा है ।—भारतेन्दु
प्र०, भा० २, पृ० ८५१ । २. प्रदर्शित । नुमाइश । ३. दीदार ।
दर्शन [को०] ।

यौ०—जलवागर = प्रकट । प्रत्यक्ष । उ०—हुमा जब आदने मे
जलवागर में तब लिया बोसा । जो भाया अपने काबू में तो
फिर मुँह देखा क्या है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ ।

जलवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वाजा । उ०—जलाघात, जलवाद,
विनययोग्य मालाग्रथन ।—वर्ण०, पृ० २० ।

जलवाना—क्रि० सं० [हि० जलाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप ।
जलाने का काम दूसरे से कराना ।

जलवानोर—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत । अबुवेतस् ।

जलवायस—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्ला पक्षी ।

जलवायु—संज्ञा पुं० [सं० जल + वायु] भावहवा । मौसम ।

जलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] विषय पर्वत श्रेणी [को०] ।

जलवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उशीर । खस । २. विष्णुकद ।

जलवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । वारिवाह । २. वह व्यक्ति जो
जल ढोता हो [को०] । ३. एक प्रकार का कपूर [को०] ।

जलवाहक, जलवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] जल ढोनेवाला व्यक्ति ।
पनभरा । जलघडिया [को०] ।

जलविंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलविन्दुजा] दे० 'जलबिंदुजा' ।

जलविपुव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य
के कन्या राशि से मिलकर तुला राशि में सक्रमित होने के
समय होता है । तुला सक्राति ।

जलवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम ।

जलवृश्चिक—संज्ञा पुं० [सं०] भींगा मछली ।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलवेत' ।

जलवेकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक अशुभ योग । पानी या जलाशय
में प्राकृतिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना ।

विशेष—वृहत्संहिता के अनुसार नगर के पाम से नदी का सरक
जाना, ठातावों का अचानक एकवारगी सूख जाना, नदी के
पानी में तैल, रक्त, मांस आदि बहना, जल का अकारण मैला

हो जाना, कुएँ में घुम्राई, ज्वाला आदि देख पड़ना, उसके पानी
का खीलने लगना या उसमें से रौने, गाने, गर्जने आदि के
शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध, रस आदि का अचानक
बदल जाना, जलाशय के पानी का विगड़ जाना, इत्यादि इस
योग में होते हैं । यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति
का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है ।

जलव्यथ जलव्यथ—स्त्री० पुं० [सं०] ककमोट या कीघ्रा नाम
की मछली ।

जलव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का
एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता है ।

विशेष—ढील ढील में यह जलमालू से कुछ ही बड़ा होता है
पर इसके शरीर पर के बाल जलमालू के बालों की तरह
बहुत बड़े नहीं होते । इसके शरीर पर चीते की तरह दाग
या धारियाँ होती हैं । यह प्रायः ब्रह्मण सागर में सेटलैंड
नामक टापू के पास होता है ।

जलव्याल—संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द । पानी में का सौंप ।

जलशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

जलशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलशय' ।

जलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षोपल । करका । ओला [को०] ।

जलशायी—संज्ञा पुं० [सं० जनशायिन्] विष्णु ।

जलशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोंघा [को०] ।

जलशुनक—संज्ञा पुं० [सं०] जल का नकुल । ऊदविलाव [को०] ।

जलशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार । काई

जलशूकर—संज्ञा पुं० [सं०] कु मीर या नाग नामक जलजंतु ।

जलशोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा । अनावृष्टि [को०] ।

जलसध—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ
भीषण युद्ध करके तोमर से उसका बायाँ हाथ तोड़ दिया
था । अतः यह सात्यकि के हाथ से मारा गया था ।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहाना । स्नान करना । २. धोना ।
पखारना । ३. मुर्दे को जल में बहा देना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जलसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार जल में डूबकर
प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२. शव आदि को जल में डुबाना या तिरोहित करना ।

क्रि० प्र०—देना ।

जलसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम
समुद्र ।

जलसपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक ।

जलसा—संज्ञा पुं० [प्र० जलसह] १. आनंद या उत्सव मनाने
के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना,
विशेषतः लोगों का वह जमावड़ा जिसमें खाना पीना,
गाना बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो । जैसे,—
कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे । २. सभा;

समिति आदि का बड़ा प्राविशेषण जिसमें सर्वसाधारण सम्मिलित हों। जैसे,—परसों प्रायं समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसाई(५)—संज्ञा पुं० [सं० जलसायी] भगवान् विष्णु। उ०—नींद, भूख भ्रष्ट व्यास तनिक करती हो तन राख। जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख।—मति० प्र०, पृ० ४४५।

जलसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंही] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु, पाँच सात गज सवा होता है और इसके सारे शरीर में लसाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लवे लवे बाल होते हैं। यह अत्यंत बली और शक्ति प्रकृति का होता है। यह अमेरिका और एशिया के बीच 'कमचटका' उपद्वीप तथा 'क्यूरायल' आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह कुँड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिक्क—वि० [सं०] जल से खींचा हुआ। गीला। आद्र [को०]।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरिष] जल में या जलाशय के अति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष जो साधारण सिरस वृक्ष से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं दलहोन भी कहते हैं।

जलसीप—संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। जलज। उ०—जलसुत प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा। महिरिपु मध्य कियी जनि निश्चय बासा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० ११०।

यौ०—जलसुत प्रीतम = सूर्य।

२ मोती। मुक्ता। उ०—श्याम हृदय जलसुत की माला, प्रतिहिं अनुपम छाजे (री)। मनहुं बलाक भीति नव धन पर, यह उपमा कछु आजी (री)।—सूर०, १०।१८०७।

जलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस। शिशुमार। २ बड़ा कछुआ। ३ ओँक। ४ एक प्रकार का पोषा जो जल में पैदा होता है। ५. कोषा। ६ ककमोट या कोष्मा नाम की मछली। ७ सिंघाड़ा।

जलसूत—संज्ञा पुं० [सं०] नहरुषा रोग।

जलसूर्य, जलसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में व्यक्त सूर्य का प्रतिबिम्ब [को०]।

जलसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीचना। पानी देना। जल का छिड़काव।

जलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'जलसेक'।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेहों पर रहनेवाली फौज। नौसेना। समुद्री सेना।

जलसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जलसेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से सड़ाई के जहाज और जलसेनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ] एक देवी घटना जिसमें जलाशय या समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। सूँडो।

विशेष—यह जलस्तंभ कभी कभी सी सवा सी गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है, तब आकाश में बादल स्तंभ के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर में बढ़ते हुए जल तक पहुँचकर एक मोटे स्तंभ का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का, पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्रेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी सड़ होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर की ओर खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ वह बनता है, गहरा कुँड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है, तब ऊपर का भाग तो उठकर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हो कर पानी बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भन] मन्त्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाँधना।

विशेष—दुर्योधन को यह विद्या पाती थी अतएव वह शल्य के मारे जाने के बाद द्रिपयन हृद में जल का स्तंभन करके पड़ा था। इसका विशेष विवरण महाभारत में शल्य पर्व के २६वें अध्याय में द्रष्टव्य है।

जलस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] जल थल। जल और जमीन।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलस्थान, जलस्थाय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का स्थान। जलाशय। तालाब [को०]।

जलस्नाय—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग [को०]।

जलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं०] जल का स्रोत। धरमा। जलप्रवाह [को०]।

जलह—संज्ञा पुं० [सं०] जल के फीवारोंवाला छोटा स्थान। वह स्थान जहाँ फुहारा सगा हो [को०]।

जलहड्डी—संज्ञा पुं० [हि० जल + हड्डी] मोती। उ०—तै सी लाम समापिया रावल लालच छड्ड। साँखण सीचाणा जिता, जेप हुले जलहड्ड।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ८०।

जलहर^१(५)—वि० [हि० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ।

उ०—दाढ़ करता करत निमिष में जल माँहै थल थाप । थल माँ है जलहर करै, ऐसा समरथ थाप ।—दाढ़ (शब्द०) ।

जलहर^१—संज्ञा पुं० [सं० जलधर, प्रा० जलहर] १ मेघ । बादल । उ०—विज्जुलियाँ नीलज्जियाँ जलहर तूँ ही लज्जि । सुनी सेज विदेस प्रिय मधुरद मधुरद गज्जि ।—ढोला०, दू० ५० । २ तालाब । सरवर । जलाशय । उ०—(क) विरह जलाई में जल जलती जलहर जाउ । मों देखे जलहर जलै सतो कहा बुझाउ ।—कवीर (शब्द०) । (ख) नेना मए बनाय हमारे । मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे । वे जलहर हम मोन वापुरी कैसे जियहि निनारे ।—सूर (शब्द०) । (ग) सुंदर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पाल । चंद मुलकयउ जल हँस्यउ जलहर कपी पाल ।—ढोला०, दू० ३६४ ।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] वत्तीस धरारों की एक वणवृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं । इसमें सोलहवें धरार पर पति होती है । जैसे,—भरत सदा ही पूजे पादुका उतै सनेम, हते राम सिय बहु सहित सिधारे बन । सूनखा कै कुरूप मारे खल मूँड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन ।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] १ पत्थर या धातु धारि का वह अर्धा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है । उ०—लिंग जलहरी घर घर रोपा ।—कवीर सा०, पृ० १५८१ । २ एक वर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है । लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं । ३. मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टांगा जाता है । इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिससे से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जलजंतु जो स्तनपायी होता है ।

विशेष—यह प्रायः छह से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है । इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं । यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है, तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है । नर की नाक कुछ लंबी और सूँड की तरह आगे की निकली हुई होती है और वह प्रायः १५-२० मादाओं के मुँह में रहता है । गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है । इसका मांस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता । इसकी चरबी के लिये, जिससे मोमवत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है । प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है ।

जलहार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहरी] पानी भरनेवाला । पनिहारा ।

जलहारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलहार' ।

जलहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी भरनेवाली । पनिहारिनी । २. नाली । जल के निकाल की प्रणाली (को०) ।

जलहारी—संज्ञा पुं० [सं० जलहारिन्] [स्त्री० जलहारिणी] पनिहारा । जलहारक ।

जलहालम—संज्ञा पुं० [सं० जन + देश० हालम] एक प्रकार का हालम या चमुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है । इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है ।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाग । फेन । २ समुद्र का फेन । समुद्रफेन ।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में प्राहुति दी जाती है ।

जलांचल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्चल] १ पानी की नहर । पानी का सोता । २ झरना । निर्भर (को०) । ३ सेवार । काई (को०) ।

जलांजल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्जल] १ सेवार । २ सोता । झोत ।

जसांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरी अंजुनी । २ पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुनी में जल भरकर देना ।

मुहा०—जलांजलि देना—त्याग देना । छोड़ देना । कोई सबब न रखना ।

जलांटक—संज्ञा पुं० [सं० जलाण्टक] मगर । नक । नाक (को०) ।

जलांतक—संज्ञा पुं० [सं० जजान्तक] १ सात समुद्रों में से एक समुद्र २ हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यमामा गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

जलाविका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाम्बिका] कूप । कुम्भी ।

जलाक—संज्ञा स्त्री० [हि० जलना] १ पेट की जलन । २ तीक्ष्ण धूप की लपट । ३ लू ।

जलाकर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, कूप, झोत, जलाशय आदि जो जलयुक्त हो ।

जलाकांत—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाडक] हाथी ।

जलाकांक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्षिन्] दे० 'जलाकाश' ।

जलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल में आकाश का प्रतिबिंब । २ जलगत आकाश या शून्य (को०) ।

जलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल । जलपिप्पली ।

जलाखु—संज्ञा [सं०] ऊदबिलाव ।

जलाजल(१)—संज्ञा पुं० [हि० झलाझल] गोटे आदि की झालर । झलाझल । उ०—गति गयद कुन कुम किकिणी मनहुँ घट झहनावे । मोतिन हार जलाजल मानो खुमीदत झलकावे ।—सूर (शब्द०) ।

जलाटन—संज्ञा पुं० [सं०] कक नामक पक्षी ।

जलाटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलाटीन—संज्ञा पुं० [सं० जेलाटीन] एक प्रकार की सरस । दे० 'जेलाटीन' ।

जलातंक—सङ्घा पुं० [सं० जलातङ्क] जलप्रास नामक रोग ।

जलातन—वि० [हि० जलना + तन] १. क्रोधी । विगड़ल ।
वदमिजाज । २. ईर्ष्यालु । डाही ।

जलात्मिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. जोंक । २. कुश्र । कृप ।

जलात्यय—सङ्घा पुं० [सं०] वर्षा की समाप्ति का काल । शरत् काल ।

जलाद्—सङ्घा पुं० [अ० जलपाद] दे० 'जलपाद' । उ०—हो मन
राम नाम की गाहक । खोराखी लख जिया जोनि लख भटकत
फिरत प्रनाहक । करि हियाव सो भी जलाद यह हरि के पुर
ले जाहि । घाट वाट कहैं अटक होय नहि सब कोउ देहि
निवाहि ।—सूर० (भाव०) ।

जलाधार—सङ्घा पुं० [सं०] जल का आधारभूत स्थान ।
जलाशय [को०] ।

जलाधिदेवत—सङ्घा पुं० [सं०] १. वरुण । २. पूर्वापादा नक्षत्र ।

जलाधिप—सङ्घा पुं० [सं०] १. वरुण । २. फलित ज्योतिष के अनुसार
मात्र वह यह जो मन्त्रसर में जल का अधिपति हो ।

जलाना—क्रि० सं० [हि० 'जलना' का सक० रूप] १. किसी पदार्थ
को अग्नि के संयोग से अगारे या लपट के रूप में कर देना ।
प्रज्वलित करना । जैसे, भाग जलाना, दीया जलाना । २. किसी
पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचाकर या आँच की मद्दत से
भाप या कोयले आदि के रूप में करना । जैसे, अगारे पर
रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना । ३. आँच के द्वारा
विकृत या पोंड़ित करना । झुलसाना । जैसे—अगारे से हाथ
जलाना । ४. किसी के मन में डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न
करना । किसी के मन में सताव उत्पन्न करना ।

मुहा०—जला जलाकर मारना = बहुत दुःख देना । खूब तग करना ।

जलाना—क्रि० उ० [हि० जल + आना (प्रत्य०)] जलमग्न
होना । जलमय होना । उ०—महा प्रलय जब होवे भाई ।
स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई ।—कबीर सा०, पृ० २४३ ।

जलापा—सङ्घा पुं० [हि० जल + मापा (प्रत्य०)] डाह या
ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन ।

क्रि० प्र०—सहन ।—होना ।

जलापा—सङ्घा पुं० [अ० जलप पाठक] एक विलम्बती घीपव
को रेचक होती है ।

जलापात—सङ्घा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के
जल का गिरना । जलप्रपात ।

जलामई—सङ्घा स्त्री० [सं० जलमय] जलमय । जल से परिपूर्ण ।
उ०—समुद्र मध्य द्वीप के उधारि नैन दीजिए । दशो दिशा
जलामई प्रत्यक्ष ध्यान दीजिए ।—मुद्रा प्र०, भा० १,
पृ० ५४ ।

जलायुका—सङ्घा स्त्री० [सं०] जॉक ।

जलाशय—सङ्घा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल । बरसात । २. समुद्र ।
सागर [को०] ।

जलाद्रि—सङ्घा पुं० [सं०] १. नीचा बल । २. जलसिक्त पर्वत । ३.
जल से भीगा हुआ पदार्थ या स्थान [को०] ।

जलाल—सङ्घा पुं० [अ०] १. तेज । प्रकाश । उ०—खुदावद का
जलाल दहकती भाग के सदा दिखलाई देता था ।—कबीर
म०, पृ० २०१ । २. महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला
प्रभाव । आतंक ।

जलालत—सङ्घा स्त्री० [अ० जलालत] तिरस्कार । अपमान । बेइ-
ज्जती । उ०—कुछ देर बाद मसूवा पलटा । बर्बई के कारनामे
याद आए । जलालत से नसो में खून दौड़ने लगा, सोचा
क्या बर्बई में मुँह दिखाएँ ।—काले०, पृ० ३७ ।

जलाली—वि० [अ०] प्रकाशित । दीप्त । आतंकयुक्त । उ०—किया
उस उपर एक जलाली नजर, जो देवत सूँ पानी हुआ सर
वसर ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ । २. ईश्वरीय । उ०—रुह
जलाली करत हलाली, क्यो दोखल आगी जलता है ।—कबीर
श०, भा० २, पृ० १७ । ३. पराक्रमी । दुर्दम । अजेय । उ०—
ऐसी सेन जलाली बर औरंगजेव ।—नठ०, पृ० १६७ ।

जलालुक—सङ्घा पुं० [सं०] कमल की जड़ । भसींड ।

जलालुका—सङ्घा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलालुका—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'जलालुका' [को०] ।

जलावत—वि० [सं० जलवन्त] पानीवाला । जल से परिपूर्ण ।
उ०—जलावत एक सिध भगम है मुखमन सूरत लाया । चलत
पलट के यह मन गरजे गगन मङ्गल घर पाया ।—पलटू०,
पृ० ८१ ।

जलाव—सङ्घा पुं० [हि० जलना + आव (प्रत्य०)] १. खमीर या
आटे आदि का उठना ।

क्रि० प्र०—आना । पतला शीरा ।

२. वह आटा जो उठायो हो । खमीर । ३. किमाम ।

जलावतन—वि० [अ०] [सङ्घा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले
का दंड मिला हो । निर्वासित ।

जलावतनी—सङ्घा स्त्री० [अ० जलावतन + ई] वह स्वरूप किसी
अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना । देश-
निकाला । निर्वासन ।

जलावतार—सङ्घा पुं० [सं०] नदी का वह स्थान जहाँ उतरने चढ़ने
के लिये नाव आदि लगाई जाती है । घाट [को०] ।

जलावन—सङ्घा पुं० [हि० जलाना] १. लकड़ी, कड़े आदि जो जलाने
के काम में आते हैं । ईंधन । २. किसी वस्तु का वह अंश जो
भाग में उसके टपाए, जनाए या गलाए जाने पर जल जाता
है । जलता ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

३. मौसम में कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव । भँवर ।

विशेष—इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू में अपनी
ईख पेरना चाहते हैं, अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख
लाकर वहाँ पेरते हैं और उमका रस ब्राह्मणों, भिखारियों
आदि को पिलाते तथा उससे गुड बनाकर बाँटते हैं ।

जलावर्त्त—सङ्घा पुं० [सं०] पानी का भँवर । नास ।

जलाशय—वि० [सं०] १. जल में रहने या घूमन करनेवाला ।
२. मूल । जड़ [को०] ।

जलाशय^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे,—गड़हा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। २. उपोस। ३. सिंघाड़ा। ४. लामज्जक नामक वृक्ष। ५. मत्स्य। मछली (को०)।

जलाशया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला। नागरमोथा।

जलाशयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नए बने कूप या तालाब आदि की प्रतिष्ठा। दे० 'जलोत्सर्ग'।

जलाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्तगुड या दीर्घनाल नाम का वृक्ष। २. जलाशय (को०)। ३. सारस। शक (को०)।

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास।

जलाश्रोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा और चौकोर तालाब (को०)।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोक।

जलाहल^१—वि० [हिं० जलाजल, या सं० जलस्थल] जलमय। उ०—प्रातःप्रिया मंसुमान के नीर पनारे भए बहि के भए नारे। नारे भए ते भई नदियाँ नदियाँ नद हूँ गए काटि किनारे। वेगि चलो छू चलो ब्रज को नंदनदन चाहत चेत हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए मच सिंधु ते हूँ है जलाहल सारे।—(शब्द०)।

जलाहल^२—वि० [हिं० झलाझल] झलझलाता हुआ। चमक दमक। वाला। देदीप्यमान। उ०—कठसरी बहु क्रांति, मिली मुक्ता-हला।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० ३६।

जलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. कुमुद। कुई।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जली—वि० [प्र०] प्रकट। व्यक्त। स्पष्ट। प्रकाशमान। उ०—जिन्ने जली नित ऐसा याद हर दम भल्ला नाँव। यूँ हर भ्राजा वरतन पूरे नासूत पावे ठाँव।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

जलील—वि० [प्र० जलील] १. तुच्छ। वेकदर। २. जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित। तिरस्कृत।

जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाक।

जलू, जलूक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जलू, जलूक] जलोका। जोंक (को०)।

जलूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलूस—संज्ञा पुं० [प्र० जुलूस] बहुत से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धजकर, विशेषतः किसी सवारी के साथ किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

२ जलसा। धूमधाम। उ०—जोवन जलूस फूस लाये लों नसाय कहा पाप समुदाय मान मातो सान धरि कै।—दीन० प्र०, पृ० १३८।

जलेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० जलेन्द्र] १. वरुण। २. महासागर। ३. शिव (को०)।

जलेन्धन—संज्ञा पुं० [सं० जलेन्धन] १. बाइबागिन। २. वह पदार्थ जिसकी गर्मी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य, विद्युत् आदि।

जलेचर—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] जलचर।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो पानी में उत्पन्न होता है।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। जलज।

जलेतन—वि० [हिं० जलना + तन] १. जिसे बहुत जल्दी शोध आ जाता हो। जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो। २. जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जलेबी] बड़ी जलेबी। वि० दे० 'जलेबी'।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाब (= खमीर या शोरा)] १. एक प्रकार की मिठाई जो कुडलाकर होती है और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है।

विशेष—इसके बनाने की पद्धति यह है कि पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को धी की फड़ाही के ऊपर रखकर इस प्रकार धुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकलकर कुडलाकार होती जाती है। पक धुकने पर उसे धी में से निकालकर शीरे में थोड़ी देर तक ढुबो बेते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है।

२. बरियारे की जाति का एक प्रकार का पौधा।

विशेष—यह पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है और इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अंदर कुडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं।

३. गोल घेरा। कुंडली। लपेट। ४. एक प्रकार की भातिशवाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

यौ०—जलेबीदार = जिसमें कई घेरे हो।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती।

जलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरजमुखी नाम के फूल का पौधा। २. एक गुल्म। कुटुबिनी (को०)।

जलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कातिकेय की मनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेबाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगाकर चीजें निकालने-वाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। जलाधिप।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. विष्णु का एक नाम।

विशेष—जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

जलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण।

जलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशयों में सठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा का उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं। जल का उमड़कर अपनी सीमा से बाहर गिरना या बहना। २. वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने प्रयत्न उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल, कुर्मा या वावली आदि का विवाह ।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की त्वह में पानी एकत्र हो जाता है ।

विशेष—इस रोग में पानी इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पड़ता है । वैद्यों का मत है कि पृथ्वी पान करने और वस्ति कर्म, रेचन और बमन के पश्चात् चटपट ठंडे जल से स्नान करने से शरीर की जलवाहिनियों नष्ट हो जाती हैं और पानी उतर आता है । इससे रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर कांपने लगता है ।

जलोद्धतिगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण और सगण होता है (1 5 1, 1 1 5 1 5 1, 1 1 5) । जैसे—जु साजि सुपली हरी हि सिर मे । घंसे जु बसुदेव रैन जल मे । प्रभू चरण को छुभा जमुन मे । जलोद्धति गति हरी छिनक में । २ जल बढ़ने की स्थिति ।

जलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुँदला । २. छोटी ग्राह्यी ।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला नाम की घास ।

जलोद्भाद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

जलोदरगो—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक ।

जलौकस—संज्ञा पुं० [सं०] जलौका । जोंक ।

जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलौकस् [जोंक] ।

जल्द—क्रि० वि० [प्र०] [संज्ञा जल्दी] १ शीघ्र । चटपट । बिना विलंब । २ तेजी से ।

जल्दवाज—वि० [प्रा०] जल्दवाज [संज्ञा जल्दवाजी] जो किसी काम के करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक, जल्दी करता हो । बहुत अधिक जल्दी करनेवाला ।

जल्दवाजी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] जल्दवाजी [उतावली] शीघ्रता ।

जल्दी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शीघ्रता । फुरती ।

जल्दी—क्रि० वि० [प्र०] जल्द [दे० 'जल्द'] ।

जल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन । कहना । २. बकवाद । व्यर्थ की बात । प्रलाप । ३. न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ ।

विशेष—यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मदन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है । इसमें वादी का उद्देश्य उत्त-निर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष खंडन मान होता है । वाद के समान इसमें भी प्रतिज्ञा, हेतु भावि पक्ष अवयव होते हैं ।

जल्पक—वि० [सं०] बकवादी । वाचाल । यातूनी । उ०—तब सोनित की प्यास तृपित राम सायक निकर । तजो तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर प्रथम ।—मानस, ६ । ३२ ।

जल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकवाद । प्रलाप । गपगप । व्यर्थ की बातें । २ बहुत बढ़कर कही हुई बात । डींग ।

अल्पन—वि० [सं०] बातूनी । जल्पक [सं०] ।

जल्पना—क्रि० प्र० [सं०] जल्पन [व्यर्थ बकवाद करना । बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना । डींग मारना । सीटना । उ०—(क) कट जल्पसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप बुधि ठेज न ताके ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनि जल्पसि जड़ जनु कपि सठ विलोकु मम बाहु । लोकापाल बस बिपुल ससिप्रसन हेतु सब राहु ।—तुलसी (शब्द०) ।

जल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल्पन । बकवाद । डींग । उ०—भजि रघुपति कव हित भावना । छाड़हु नाय तृपा जल्पना ।—मानस, ६ । ५५ ।

जल्पाक—वि० [सं०] व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला । जल्पक । बकवादी । वाचक ।

जल्पित—वि० [सं०] १ जो (बात) वास्तव में ठीक न हो । मिथ्या । २ कथित । उक्त । कहा हुआ ।

जल्ला—संज्ञा पुं० [हि०] मील [सं०] १. मील ।—(संज्ञा०) । २ ताल । ३. होज । हड़ ।

जल्लाद—संज्ञा पुं० [प्र०] यह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो, जिन्हें प्राणदंड की भाशा हो चुकी हो । घातक । बधुमा ।

जल्लाद—वि० क्रूर । निर्दय । बेरहम ।

जल्हु—संज्ञा पुं० [सं०] मग्न ।

जल्वा—संज्ञा पुं० [प्र०] जल्वाहू [दे० 'जल्वा'] । उ०—बिना उसके जल्वा के दिखती कोई परी या हूर नहीं । सिवा मार के दूसरे का इस दुनिया में मूर नहीं ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १६४ ।

यो—जल्वागार = दे० 'जल्वागर' । जल्वागाह = प्रदर्शनगृह । उ०—भोरों सा रस लेता रहता गाता फिरता तू राहों मे । रूप मोर रस राग भरी इन जीवन की जल्वागाहों में । दीप ज०, पृ० १५३ ।

जल्वागाय—[प्रा०] जल्वागाह [दे० 'जल्वागाह'] । उ०—जब इस वज्र छल की उरुसी दिखाय । तो जोहर हो ज्यों दिप मने जल्वागाय ।—दक्खिनी०, पृ० १३८ ।

जल्सा—संज्ञा पुं० [प्र०] जल्सहू [दे० 'जल्सा'] उ०—रेल में, गृहाज में, खाने पीने के जल्सों में, पाठ बैठने में और बातचीत करने में जानपहचान नहीं समझी जाती ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३३० ।

जब—संज्ञा पुं० [सं०] वेग ।

जब—संज्ञा पुं० [सं०] यव [जो] ।

जवन—वि० [सं०] [वि० स्त्री०] जवनी [वेगवान्] । वेग-युक्त । तेज ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग । २. स्कंद का एक सैनिक । ३. पोड़ा ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं०] यवन [दे० 'यवन'] । उ०—पुष्यराज वैभव बसह करि जवन नुलायो ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०७ ।

जवन—संज्ञा पुं० [सं०] यवन [दे० 'यवन'] । उ०—पुष्यराज वैभव बसह करि जवन नुलायो ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०७ ।

‘जोन’ भयवा ‘जिस’ । उ०—जवन विधि मनुष्य मरे सोई भाँति
सम्हारो हो ।—घरम०, पु० ६ ।

जवनाल—सखा पु० [सं० यवनाल] जो का डठल । दे० ‘यवनाल’ ।

जवनि०—सखा स्त्री [सं०] १ पर्दा । दे० ‘यवनि०’ । उ०—(क)
मोहन काहें न उगिली माटी । बही वार भई लोचन उघरे
भरम जवनि० काटो । सूर निरखि नंदरानि अमित भई
कहति न मोठी खाटी ।—सूर०, १०।२५४ (ख) द्वार भरो-
खनि जवनि० रुचि ले छुटकाऊँ ।—घनानंद, पु० ३१३ ।
२ कनात । घेरा (को०) । ३ नाव की पाल (को०) ।

जवनिमा—सखा स्त्री [सं० जवनिमन्] गति । वेग । क्षिप्रता (को०) ।

जवनी^१—सखा स्त्री [सं०] १ जवाइन । प्रजवायन । २ तेजी । वेग ।

जवनी^२—सखा स्त्री [सं०] दे० ‘जवनि०’ (को०) ।

जवनी^३—सखा स्त्री [सं० यवनी] यवनी । यवन स्त्री । मुसलमान स्त्री ।
उ०—भूषण यो भवनी जवनी कहैं ।—कोऊ कहैं सरजा सो
हहारे । तू सबको प्रतिपालन हार विचारे भतार न मार
हमारे ।—भूषण प्र०, पु० ५१ ।

जवस्—सखा पु० [सं०] वेग ।

जवस—सखा पु० [सं०] घास ।

जवाँ—सखा पु० [फा० जवान का योगिक रूप] युवक । युवा ।

यौ०—जवाँमद । जवाँमदी । जवाँवस्त = भाग्यवान् । सौभाग्य-
शाली । जवाँसाल = युवक । नई उमर का ।

जवाँमद—वि० [फा०] [सखा जवाँमदी] १ शूरवीर । बहादुर ।
२ स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही । वॉलेंटियर ।

जवाँमदी—सखा स्त्री [फा०] चोरता । बहादुरी । मदमत्तगी ।

जवा^१—सखा स्त्री [सं०] दे० ‘जवा’ ।

जवा^२—सखा पु० [सं० यव] १ एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन
वस्त्रियां लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्जे को चीर-
कर दोनों ओर तुरप देते हैं । २ लहसुन का एक दाँना ।

जवाइन—सखा स्त्री [सं० यवानिका, यवानी, हि० अजवाइन] प्रज-
वाइन । जवाइन ।

जवाई—सखा स्त्री [हि० जाना, उर्दू जावना] १ वह धन जो जाने
के उपलक्ष में दिया जाय । २. जाने की क्रिया । गमन । ३
जाने का भाव ।

यौ०—जवाई जवाई = यावागमन । जाना जाना ।

जवाखार—सखा पु० [सं० यवखार] एक प्रकार का नमक जो
के क्षार से बनता है । वैद्यक में यह पाचक माना गया है ।

जवाद्—सखा पु० [अ० जवाद] दे० ‘जवादि’ । उ०—मृग नद
जवाद सब चरचि भग । कसमीर भगर सुर रहिय भग ।—
पु० रा०, ६।११२ ।

जवाद्^२—वि० [अ०] मुक्तहस्त । बानी । यशस्वी । वदान्य । फैयाज ।
उ०—पुनि कूरम सौं विरचियो छोटि देखि अजवाद् । बचन
जीत तासों भयो सूरज आपु जवाद् ।—सुजान०, पु० ३३ ।

जवादानी—सखा स्त्री [सं० यव + हि० जवा + दाना] चपाकसी
नामक गहना जो गले में पहना जाता है ।

जवादि—सखा पु० [अ० जवाद, जवाद, तुल० सं० जवादि] एक
सुगंधित द्रव्य जो गधमार्जार से निकाला जाता है । उ०—
पहिले तजि प्रारम प्रारमी देखि घरीक घसे घनसारहि से ।
पुनि पोछि गुलाब तिलोछि कुनैल प्रगोछे में मोछे प्रगोछन कै ।
कहि केशव भेद जवादि सो माँजि हते पर माँजि मे प्रजन है ।
बहुरे हरि देखों तो देखों कहा सखि लाज ते लोचन लागे दहैं ।
—केशव (शब्द०) ।

विशेष—राजनिघट्ट में इसके गुणों का वर्णन प्राप्त होता है । यह
थाले रंग की एक चिकनी लसदार चीज है जो कस्तूरी की तरह
महकी है । इसे गौरासार, मृगधर्मज आदि भी कहते हैं ।
वि० दे० ‘गधविलाव’ ।

जवादि कस्तूरी—सखा स्त्री [अ० या सं०] दे० ‘जवादि’ ।

जवाधिक—सखा पु० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा ।

जवान^१—वि० [फा०] १. युवा । तरुण ।

यौ०—जवाँमद । जवाँमदी ।

२ बीर । बहादुर । पराक्रमी ।

जवान^२—सखा पु० १ मनुष्य । पुरुष २ । सिपाही । ३ बीर पुरुष ।

जवानिल—सखा पु० [सं०] तीव्रगामी वायु । तेज हवा । मूर्ध्नि ।
तूफान (को०) ।

जवानी^१—सखा स्त्री [सं०] जवाइन । प्रजवायन ।

जवानी^२—सखा स्त्री [फा०] १ यौवन । तरुणार्थ । युवावस्था ।
२ मस्ती । मद ।

मुहा०—जवानी उठना या जवानी उभटना = यौवन का प्रारंभ
होना । तरुणार्थ का प्रारंभ होना । जवानी उतरना = उमर
ढलना । बुढ़ापा आना । जवानी चढ़ना = (१) यौवन का
आगमन होना । तरुणार्थ का प्रारंभ होना । (२) मद पर
आना । मदमत्त होना । जवानी ढलना = उमर खसकना ।
जवानी उतरना । बुढ़ापा आना । जवानी पर आना = मस्ती
में आना । यौवन के मद से मत्त होना । जवानी फटी पड़ना =
जवानी का पूर्ण विकास पाना । उठती जवानी = यौवनारंभ ।
चढ़ती जवानी । उतरती जवानी = यौवनावसान । उमर
खसकने की अवस्था । चढ़ती जवानी = यौवनारंभ । जवानी
का प्रारंभ होना । उठती जवानी । चढ़ती जवानी माझा
ढोला = भरी जवानी में उरसाह की जगह प्रशक्तता या कम-
जोरी दिखाना ।

जवाब—सखा पु० [अ०] १ किसी प्रश्न या बात को सुन भयवा पढ़-
कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात । उत्तर ।

यौ०—जवाबदावा । जवाबदारी । जवाबदेही ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—माँगना ।—मिलना ।—लिखना ।

मुहा०—जवाब तलब करना = किसी घटना का कारण पूछना ।

कैफियत माँगना । जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना =

निपेक्षात्मक उत्तर मिलना ।

२ वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया
जाय । कार्यरूप में दिया हुआ उत्तर । बदला । जैसे,— जब
उधर से गोलियों की बौछार प्रारंभ हुई, तब इधर से भी

ससका जवाब दिया गया। ३ मुकाबले की चीज। जोड़। जैसे,—इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। ४ इनकार। अस्वीकार। नहीं करना। ५ नौकरी छूटने की भाषा। मोक़फ़ी। जैसे,—कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

जवाबतलब - वि० [प्र०] जिसके सन्ध में समाधानकारक उत्तर माँगा गया हो। उत्तर या जवाब माँगने लायक।

जवाबतलबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जवाबतल+क्रा० ई (प्रत्य०)] जवाब माँगना। उत्तर माँगना [क्रि०]।

जवाबदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दारी (प्रत्य०)] जवाब-देही। उत्तरदायित्व। उ०—यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट् प्रश्न उपस्थित है तो वह हिंदीभाषा और हिंदी साहित्य के सामने है।—शुक्ल अभि० प्र० (जी०), पृ० १३।

जवाबदावा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवाब+हि० दावा] वह उत्तर जो वादी के निवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिखकर अदालत में देता है।

जवाबदिही—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दिही] दे० 'जवाब-देही'। उ०—(क) उसमें जवाबदिही करने के लिये भी रूपे चाहियेंगे।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २४३। (ख) मदन मोहन की ओर से लाला ब्रजकिशोर जवाबदिही करते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३५७।

जवाबदेह—वि० [प्र० जवाब+फा० दिह०] जिसपर किसी बात का उत्तरदायित्व हो। जिम्मेदार।

जवाबदेही—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जवाब+फा० दिही] १. उत्तर देने की क्रिया। २. उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भाव। जिम्मेदारी। जैसे,—मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाबसवाल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवाब+सवाल] १. प्रश्नोत्तर। २. वाद विवाद।

जवाबी—वि० [प्र० जवाब+फा० ई (प्रत्य०)] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जव बी तार, जवाबी काहें।

जवार^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. पड़ोस। २. ग्रामपास का प्रदेश।

जवार^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जवार] एक अन्न। वि० दे० 'जुमार'।

जवार^३—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवाल] १. अवनति। बुरे दिन। २. जजाल। भ्रष्ट। भार।

जवार^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जवाहर] दे० 'जवाहर'। उ०—सो सज्जन सूरें पूरे हैं। हीरे रतन जवार। तुलसी श०, पृ० २१०।

जवारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जो] जो के हरे हरे अक्षुर जो दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी और विजया दशमी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारिश—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] वह हकीमी या यूनानी औषध जो अक्वलेह या घटनी जैसी होती है [क्रि०]।

जवारिस^①—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जवारिश] दे० 'जवारिश'। उ०—सत जवारिस सो जन पौवे, जा को ज्ञान प्रगासा।—घरम०, पृ० ५।

जवारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जो, छुहारे, मोती आदि मिलाकर गुंथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत समुर अपनी बहू को पहनाता है।

जवारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. सितार, तबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिसपर होकर सब तार खूंटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजे के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी। २. तार-वाले बाजों में पड़ज का तार।

क्रि० प्र०—खोलना।—बढ़ाना।—बाँधना।—लगाना।

जवाल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जवाल] १. अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

① २. जजाल। भ्रष्ट। ब्रष्ट। बखेड़ा। उ०—छाँड़ि के जवाल जाल महि तू गोपाल लाल तारें कहि दीनचाल फद क्यों फँसातु है।—दीन० प्र०, पृ० १७०।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना=भ्रात में फँसना। भ्रष्ट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना=भ्रात में फँसाना।

जवाशीर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जावशीर] एक प्रकार का गधाविरोजा।

विशेष—यह कुछ पीले रंग का और कुछ पतला होता है। इसमें से ताड़पीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों में होता है। वि० दे० 'गधाविरोजा'।

जवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यवासक प्रा०, यवासम] एक कंटीला धुप जिसकी पत्तियाँ करोंदे की पत्तियों के समान होती हैं। उ०—अर्क जवास पात बिनु भएक। जस सुराज खल उद्यम गएक।—मानस, ५।१५।

विशेष—यह धुप नदियों के किनारे बलुई भूमि में आपसे आप उगता है। बरसात के दिनों में इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़वा, कसेला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनों में खस की तरह इसकी टट्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अन्नता। बालपत्र। अधिककटक। दूर-मूल। समुपात। दीर्घमूल। मरुद्बुध। कटकी। वनदर्म। सूक्ष्मपत्र।

जवासा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासम] दे० 'जवास'।

जवाही—सञ्ज्ञा पुं० [?] [वि० जवाही] १. आँख का एक रोग जिसमें पक्ष के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवाल। २. दैत्यों की आँख का एक रोग जिसमें उनकी आँख के नीचे मांस बढ़ जाता है।

जवाहड़—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जवा (=दाना) + हड़] बहुत छोटी हड़।

जवाहर—संज्ञा पुं० [प्र०] रत्न । मणि ।

जवाहरखाना—संज्ञा पुं० [प्र० जवाहर+फा० खानह्] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों । रत्नकोष । तोराखाना ।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [प्र०, जवाहर का बहुवचन रूप] बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि । जैसे,—प्रव उन्होंने कपड़े का काम छोड़कर जवाहरात का काम शुरू किया है ।

जवाहिर—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'जवाहर' । उ०—जटिल जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग । लपट गहत कर लपट सी लपट लगी सब सग ।—स० समक, पृ० ३७३ ।

यौ०—जवाहिरखाना = दे० 'जवाहरखाना' ।

जवाहिरात—संज्ञा पुं० [प्र०] जवाहिर का बहुवचन । दे० 'जवाहरात' ।

जवाही—वि० [हिं० जवाह्] १. जिसकी छाँह में जवाह रोग हुआ हो । २. जवाह रोम युक्त । जैसे, जवाही मालि ।

जबिन—वि० [सं०] वेगवान । गतिशील [को०] ।

जवी^१—वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त । वेगवान् ।

जवी^२—संज्ञा पुं० १ घोड़ा । ऊँठ ।

जवीय—वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान् । बहुत तेज ।

जवैया^१—वि० [हिं० जाना+ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला । गमनशील ।

जशन—संज्ञा पुं० [फा० जशन, मि० सं० यजन] १. धार्मिक उत्सव । २ किसी प्रकार का उत्सव । नाचगान । जलसा । ३ भानद । हर्ष ।

क्रि० प्र०—करना । मनाना । होना ।

४. वह नाच और गाना जिसमें कई वेश्याएँ एक साथ सम्मिलित हों । यह बहुधा महफिल या जलसे की समाप्ति पर होता है । उ०—क्यों भाई अब आज जशन होगा न ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२५ ।

जरन—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'जशन' । उ०—एक जशन सा वहाँ जमेगा, मदिराओं के दोर चलेंगे । सेठ हमारे चुने गए हैं, सबकी कौंसिल के मेंबर ।—मानव, पृ० ६८ ।

जस^१—क्रि० वि० [सं० यात्सा > जइस > जस, प्रा० जहा] जैसा । उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तामु दुगुन कपि रूप देसावा ।—सुनसी (शब्द०) ।

जस^२—संज्ञा पुं० [सं० यश] दे० 'यश' ।

जसद—संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता ।

जसवान^१—वि० [सं० यशस्वान्] यशस्वी । जिसका यश चारों ओर फैला हो । उ०—चढ़े सूर सावत सब, रूपवान जसवान ।—हम्मीर०, पृ० ५० ।

जसामत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १ लबाई, चौड़ाई और मोटाई, गहराई या ऊँचाई । २ मोटापा । स्थूलता [को०] ।

जसारत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. शूरता । बहादुरी । २. धृष्टता । [को०] ।

जंसी—वि० [सं० यशी] कीर्तिवाला । यशवाला । यशस्वी । उ०—जाति की जान देख जोसों में, जो जसी लोग जान पर खेलें ।—चुभते०, पृ० ७ ।

जसीम—वि० [प्र०] मोटा । स्थूल । पीवर । पीन [को०] ।

जसुं^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नद की पत्नी । यशोदा । उ०—थोरोई दूध पूत के हितही । राखति जसु जमाइ नित नित ही ।—नद० प्र०, पृ० २४८ ।

जसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चा ।

जसुबा, जसोदा^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० यशोदा ।

जसुँद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इस वृक्ष के रेशों से रस्से आदि बनते हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसे नताउल भी कहते हैं । वि० दे० 'नताउल' ।

जसोमति^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' ।

जसोबा, जसोवै^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' । उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहि न जानहु भार । जहाँ राजा बसि बाँधा छोरी पैठि पतार ।—जायसी (शब्द०) ।

जस्टिफाई—संज्ञा पुं० [प्र० जस्टिफाई] कपोल किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पक्ति छोटी बड़ी या कोई अक्षर इधर उधर न होने पाए । जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जस्टिस^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] न्याय । इन्साफ [को०] ।

जस्टिस^२—संज्ञा पुं० वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो । न्याय-मूर्ति । विचारपति । न्यायाधीश । जैसे—जस्टिस सुंदरलाल ।

विशेष—हिंदुस्तान में हाईकोर्ट के जज जस्टिस कहलाते हैं ।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [प्र०] [संक्षिप्त रूप जे० पी०] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांतिरक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं । शांति-रक्षक । जैसे, ग्रानरेरी मैजिस्ट्रेट ।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं । इन्हें ग्रानरेरी मैजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए । जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं । अपने महल्ले या आस पास दगा फसाद होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांतिरक्षा की व्यवस्था करते हैं ।

जस्त—संज्ञा पुं० [सं० जसद] दे० 'जस्ता' ।

जस्त—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] छत्रांगे । कुलाँच । जैसे,—शिकार का ग्राहट पाते ही वह जस्त मारने को तैयार हो जाती ।—सन्यासी, पृ० ५० ।

जस्तई—वि० [हिं० जस्ता] जस्ते के रंग का । खाकी ।

जस्ता—संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु ।

विशेष—इस धातु में गंधक का अंश बहुत होता है । इसका

व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में, विशेषतः लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, धैरी में विजली उत्पन्न करने तथा बरतन धनाने आदि में होता है। भारत में इसकी सुराक्षिया धनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी और सूख ठंडा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे 'सफेदा' कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर बाद में बेल्जियम तथा प्रुशिया में भी इसकी बहुत सी खानें मिलीं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहंदम^७—[अ० जहम, हि० जहनुम] दे० 'जहनुम'। उ०—जगत जहदम राधिया, झूठे कुल की लाज। तन बिनसें कुल बिनसिहै, गहरी न राम जिहाज।—कबीर प्र०, पृ० ५७।

जह^७—क्रि० वि० [सं० यज, प्रा० जध्य, अप० जह] दे० 'जहाँ'। उ०—अग गयी गिरि निकट विकट उद्यान भयकर। जह न खबर दिसि बिदसि बहुत जह जीव खयकर।—पृ० २१०, ६।६४।

यौ०—जह जह=जहाँ जहाँ। जिस जिस जगह। उ०—जह जह चरण पड़े संतन के तह तह बटाधार।—फहारात (शब्द०)। जह तह=जहाँ तहाँ। यत्र तत्र। उ०—जह तह लोगन्ह बेरा कीन्हा। भरत सोधु समही कर लीन्हा।—मानस, २।१६८।

जहंगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जहाँगीरी] कलाई का एक आभूषण। वि० दे० 'जहाँगीरी'।

जहङाना—क्रि० प्र० [सं० जहन, हि० जहाना] १ घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—हिंदू गूंगा गुरु कहै, मुसलिम गोयमगोय। कहै कबीर जहङे दोऊ, मोह नौद में सोय।—कबीर० (शब्द०)। २ धोखे में धाना। भ्रम में पठना। उ०—भव हम जाना हो हार बाजी को खेल। ठक बजाय देखाय समाझा बहुरि सो तेल सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहङे माया चेटक लाया। घर में खारि सबन भरमाया हृदय जान न धाया।—कबीर (शब्द०)।

जहङाना—क्रि० प्र० [सं० जहन] १ हानि उठाना। २ धोखे में पठना। उ०—सब लोग जहङा दयी प्रंघा समे भुलान। कहा कोई नहि मानहि सब एके माहें समान।—कबीर (शब्द०)।

जहक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० झकना] १ कुठन। चिड़। खीक। २ आवेश। उत्तेजना।

जहक^२—वि० [सं०] छोड़ने या त्याग करनेवाला। [को०]।

जहक^३—संज्ञा पुं० १ समय। २ वातक। शिष्ट। ३ साँप की केशुस [को०]।

जहकना^१—क्रि० प्र० [हि० चहकना] १. मस्त होना। प्रसन्न होना। मानस से सराबोर होना। उ०—प्राजु कुंज मंदिर में

छके रंग दोऊ बैठे, केसि करे लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १५०। २ उमसा होना। प्रमत्त होना। उ०—जहकन लागीं धूर कोइस प्रमंभ चंद सखि चहुँ ओर सो चकोर लागे जहकन।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० २२८।

जहकना^२—क्रि० सं० [हि० झकना] १. चिड़ना। कुठना।

जहका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जतु। कटास। कटार [को०]।

जहतियाँ—संज्ञा पुं० [हि० जगात (=कर)] जगात जगाहनेवाला। भूमिकर या सगान बसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो निस्त-यार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिके जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ कने कैद अपनी में जान जहतिया लावै। माँहि माँहि खरिहान कोथ को फोता मजन भरावै।—सूर (शब्द०)।

जहत्तवार्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे, 'मम चर गंगा माहि' यहाँ 'गंगा माहि' से 'गंगा के बीच' अर्थ नहीं है, किंतु 'गंगा के किनारे' अर्थ है। इसे जहत्तलक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहत्तलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक या एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में से कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे, यह वही देवदत्त है, इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है, न कि पहले के देवदत्त से या अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्त्वमसि श्वेतकेती' अर्थात् 'हि श्वेतकेतु! वह तू ही है', आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना—क्रि० प्र० [हि० जहदा] १. कीचड़ होना। दलदल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

२ शिथिल पड़ना। पक जाना। हाँक जाना।

जहदा^१—संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा मे राधिया झूठे कुल की लाज। तन दीजे कुल बिनसिहै रटे न नाम जहाज।—कबीर (शब्द०)।

जहंदम^७—संज्ञा पुं० [प्र० जहनुम] दे० 'जहनुम'।

जहन—पुं० [फा० जहन, जहून] समझ। दिमाग। बुद्धि। पारणा। उ०—बादल नीचे हो और इनसान ऊँचे पर यह बात उनके जहन में नहीं प्राती थी।—सेर कुं०, पृ० १२।

जहना^७—क्रि० सं० [सं० जहन] १ त्यागना। छोड़ना। परित्याग करना। २ नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष परत भो कैसे। फिरिहै प्रथ उत्तक सुनमै है। (शब्द०)।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [ज०] हि० 'जहन्नम' ।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [ज०] १. नरक । योषल ।

मुहा०—जहन्नम में जाना (१) गष्ट या बर्बाद होना, (२) सर्तों से दूर होना । जहन्नम में जाय । हमें कोई सबब नहीं ।

विशेष—इस मुहाबरे का प्रयोग दुःखजनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है । जैसे,—अब यह मानता ही नहीं, तब जहन्नम में जाय ।

२. यह स्थान जहाँ बहुत दुःख और कष्ट हो ।

जहन्नमरसीद—वि० [का०] नरक में गया हुआ । दोजस्ती ।

मुहा०—जहन्नमरसीद करना = नष्ट करना । नामनिशान मिटा देना । जहन्नमरसीद होना = नष्ट या बरबाद होना ।

जहन्नमी—वि० [का०] जहन्नम में जानेवाला । नारकिक । बरक़्तखी ।

जहन्नमी—इका स्त्री० [ज० जहन्नम] १. आपत्ति । मुसीबत । पाप्म ।

मुहा०—जहन्नम उठाना = दुःख भोगना । मुसीबत सहना ।

१. नरक । बसेड़ा । तरबुद ।

मुहा०—जहन्नम में पड़ना = नरक में फँसना । बसेड़े में पड़ना ।

जहरी—संज्ञा स्त्री० [का० जह्र] १. वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँचकर प्राणों से अथवा किसी अंग में पहुँचकर उसे रोगी कर दे । विष । बरक़ ।

यौ०—जहरदार । जहरवाय । जहरमोहरा ।

मुहा०—जहर खयलना = (१) ममंमेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुःखी हो । (२) द्वेषपूर्ण बात कहना । जली फटी कहना । जहर करना या कर देना = बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डालकर किसी आदमियों को शत्रुता कटु भाव कर देना कि उसका आधा कल्लि हो । पाय जहर का घूँट = बहुत कटुता । येसपस वा कटुता होने के कारण प खाने योग्य । जहर का घूँट पीना = किसी अशुभित बात को देखकर खोष को मन ही मन बर्क़ा रखना । खोष को प्रगट न होने देना । जहर का मुक्क्या कल्लि = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो । जहर की गीठ = विष की गीठ । किसी पर जहर लागाना = किसी शत्रु या आदमी के कारण ग्लानि, ईर्ष्या, अज्जा आदि के कारण दुःख पर उत्ताप होना । जैसे,—अपने इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए । जहर देना = जहर पिनाया या खिलाया । जहर मार करना = अनिच्छा या अशक्ति होने पर भी बरक़वस्ती खाना । जैसे,—अजहरी जाने की जल्दी की; किसी तरह दो रोटियाँ जहर धार करके खट्टी दोगे । जहर मारना = विष के प्रभाव या अशक्ति को बलाया या घात करना । जहर में बुझाना = डीर, छुरी, छलवार, कटार आदि हथियारों को विषाक्त करना ।

जिहरी—इसे हथियारों से जब वार किया जाता है, तब इससे आग्न होदेपारि मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रकट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत अस्वी बरक़वस्ती कर पाता है ।

२. अप्रिय बात या काम । वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो । जैसे,—हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना । बहुत नागवार बना देना । जैसे,—उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया । जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना । जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना । जैसे,—आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझाकर कहते हैं । जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना । बहुत नागवार मालूम होना ।

जहर^२—वि० घातक । मार डालनेवाला । प्राण लेनेवाला ।

२. बहुत अधिक हानि पहुँचाने वाला । जैसे,—ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है ।

जहर^३—संज्ञा पुं० [हि० जोहर] दे० 'जोहर' । उ०—ग्यारह पुत्र फटाइ पारहे अजय यथायो । साजि जहर प्रत नारि धर्म धर्म फल रलायो ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

यौ०—जहर प्रत = जोहर का प्रत । जोहर का कार्य रूप में परिणयन ।

जहरगत—संज्ञा स्त्री० [हि० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काढ़कर नाचा जाता है ।

जहरदार—वि० [का० जहरदार] जहरीला । विषाक्त ।

जहरवाय—संज्ञा पुं० [का० जहरवाय] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत मयकर और विषाक्त फोड़ा ।

विशेष—इस फोड़े के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है । इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बढ़ी कठिनता से अच्छा होता है । यह रोग मनुष्यों आदि को भी होता है । कहते हैं, इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता ।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [का० जहरमोहरा] १. काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें सॉप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है ।

विशेष—यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रखा जाता है जहाँ सॉप ने काटा हो । कहते हैं, यह पत्थर उस स्थान पर आपसे आप चिपक जाता है, और जबतक सारा विष नहीं खींच लेता, तबतक वहाँ से नहीं छूटता । यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेढक के सिर में से निकलता है ।

२. हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है ।

विशेष—यह बहुत ठंडा होता है, इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिसकर शरबत में मिलाकर पीते हैं । खूबन देश का यह पत्थर, जिसे 'जहरमोहरा खताई' कहते हैं, बहुत अत्यंत होता है ।

जहरी—वि० [हि० जहर + ई (शब्द०)] १. जहरवाला । विषाक्त । उ०—कुछ बालकनयो, कुछ कुछ जहरी, कुछ कित-

मिलती, कुछ कुछ गहरी, वह माती ज्यों नमगंधार मेरी वीणा मे एक तार । —कवासि, पृ० ७४ । २. अत्यधिक मादक या नशीली वस्तु पीनेवाला । ३. कसर रखनेवाला । छाही । ईर्ष्यालु ।

जहरीला—वि० [हि० जहर+ईला (प्रत्य०)] जिसके जहर हो । जहरदार । विषाक्त । जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर ।

जहल^१—संज्ञा पुं० [प्र० जहल] नासमझी । मूर्खता । बुद्धिहीनता । उ०—गेर उसकी हुकम सूँ करना झमल । नफा नई नुकसान है जानो जहल । —दक्खिनी०, पृ० १६२ ।

जहला^२—संज्ञा पुं० [प्र० जेल] कारागार । बंदीगृह ।

यौ०—जहलखाना=जेलखाना । बंदीगृह । उ०—फैरे जहल-खाना रे हरी । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५६ ।

जहलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जहलस्वार्थ' ।

जहल^३—क्रि० वि० [सं० यत्] दे० 'जहल' ।

जहाँ—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० यत्, प्रा० जह] १. स्थान-सूचक एक शब्द । जिस स्थान पर । जिस जगह । उ०—घन्य सो देस जहाँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी । —तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—जहाँ का तहाँ=अपने पहले के स्थान पर । जिस जगह पर हो, उम्मी जगह पर । जहाँ का तहाँ रह जाना=(१) दब जाना । भागे न बचना । (२) कुछ कारबाई न होना । जहाँ तहाँ=इतस्ततः । इधर उधर । उ०—जहाँ तहाँ गई सकल सब सीता कर मन सोच । भीत बिबस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच । —तुलसी (शब्द०) ।

२. सब जगह । सब स्थानों पर । उ०—रहा एक दिन अवधि कर प्रति धारत पुर लोग । जहाँ तहाँ सोचहि नारि नर कुश तनु राम वियोग । —तुलसी (शब्द०) ।

जहाँ^३—संज्ञा पुं० [प्रा०] जहान । ससार । लोक ।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या शैलीक शब्दों में होता है । जैसे,—(क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए । इमारत बनाते चले जाइए । (ख) जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

यौ०—जहाँधारा । जहाँगर्द=ससार में घूमनेवाला । घुमवकड । जहाँगर्द=विश्वभ्रमण । ससारपर्यटन । जहाँगीर=विश्वविजयी । विश्व का शासक । जहाँदीद । जहाँदीदा । जहाँगीरी । जहाँपनाह ।

जहाँधारा—वि० [प्रा०] संसार को शोभित करनेवाला [को०] ।

जहाँगीर—संज्ञा पुं० [प्रा०] मुगल सम्राट् अकबर का पुत्र ।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना ।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है । साधारणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं, जिन-पर नग अड़े होते हैं । कहीं कहीं पटरियों में कोड़े भी अड़े होते हैं

जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघुस्रों के फूल के आकार के फुन्हे पिरो दिए जाते हैं । इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं ।

२ हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की बूझी ।

जहाँदीद—वि० [प्रा०] जिसने दुनियाँ को देखकर बहुत कुछ तबस्व किया हो । अनुभवशील ।

जहाँदीदा—वि० [प्रा० जहाँदीदह्] दे० 'जहाँदीद' ।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [प्रा०] संसार का रक्षक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है ।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंड़ी ।

जहाज—संज्ञा पुं० [प्र० जहाज] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है । पोत ।

विशेष—प्रायःकल के जहाजों का अधिकतम भाग लोहे का ही होता है और उनके चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजनों से काम लिया जाता है । यात्रियों को ले जाने, सामान ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छह से छठ तक होती है ।

यौ०—जहाज का कोवा या कागा । जहाज का बंदी=दे०; जहाजी कोमा । उ०—(क) सीतापति रघुनाथ पू तुम लग मेरी दोर । जैसे काग जहाज को सूझन और न ठौर । —तुलसी (शब्द०) । (ख) मेरो मन घनत कहीं सुख पावै । जैसे उड़ि जहाज को पछी फिर जहाज पे पावै । —सूर०-२ । ११७८ ।

जहाजरान—संज्ञा पुं० [प्रा० जहाज + प्रा० रान (प्रत्य०)] जहाज चलानेवाला । पोत का चायक [को०] ।

जहाजरानी—संज्ञा स्त्री० [प्र० जहाज + प्रा० रानी (प्रत्य०)] जहाज चलाने का कार्य या पेशा । जहाज चलाव ।

जहाजी—वि० [प्र० जहाज + प्रा० ई (प्रत्य०)] जहाज से संबंध रखनेवाला । जैसे, जहाजी बेड़ा ।

यौ०—जहाजी इत्र=एक प्रकार का निकुष्ट इत्र जो कभीकभी में बनता है । जहाजी कोमा=(१) वह कोमा या कोई पत्नी जो किसी जहाज के छूटने के समय उसपर बैठ जाता है । और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उबता है, तब चारों ओर कहीं स्थल न देखकर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है । साधारणतः इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने या कोई काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो । (२) बहुत बड़ा घूँत । भारी पालाक । जहाजी बाहु=ये बाहु जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों की कुछ कैदें हैं । समुद्री बाहु । जहाजी छुपारी=एक प्रकार की छुपारी की शायल छुपारी से सम्बन्ध रखती बड़ी होती है ।

जहान—संज्ञा पुं० [प्रा०] संसार । लोक । अर्थ । जैसे,—जहान है की जहान है (कहावत) ।

विशेष—कविता और शैलीक शब्दों में एक शब्द जो 'जहाँ' से आता है । वि० दे० 'जहाँ' (२) ।

जहानक—सखा पुं० [सं०] प्रलय ।

जहालत—सखा स्त्री० [सं०] भ्रमान । मूर्खता । भूढता ।

जहिया(०)।—क्रि० वि० [सं० यद + हिया] जिस समय । जिस दिन । जब । उ०—(क) कह कबीर कुछ मछली न जहिया । हरि बिरया प्रतिपालेसि तहिया ।—कबीर (शब्द०) । (ख) भुजबल विषय जितव तुम जहिया । घरिहे विण्णु मनुज तनु तहिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जहिया तहिया = जिस किसी समय ।

जही(०)।—क्रि० वि० [सं० यत्, पा० यत्प] १. जहाँ ही । जिस स्थान पर । उ०—सत्त खड सात ही तरंगिनी वहै जहीं । सोह रूप ईश को अशेष जंतु सेवही ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—जही जहीं तहीं तहीं । उ०—जहीं जही विराम लेत राम तू तहीं तहीं अनेक भक्ति के अनेक भोग भाग सी बहै ।—केशव (शब्द०) ।

२. ज्यों ही । उ०—सीय जहीं पहिराई । रामहि माल सुहाई । दुदुमि देव वजाए । फूल तहीं बरसाए ।—केशव (शब्द०) ।

जहीन—वि० [सं० जहीन] १. बुद्धिमान् । समझदार । २. धारणा शक्तिवाला । मेधावी ।

जहु—सखा पुं० [सं०] सतान । सतति । मोलाद ।

जहूर—सखा पुं० [सं० जहूर या जूहर] प्रकाश । दीप्ति । उ०—जदपि रही है भावतो सकल जगत भरपूर । बस जैये वा ठौर की जहूँ हूँ करे जहूर ।—सं० सप्तक, पृ० १७८ ।

मुहा०—जहूर में घाना = प्रकट होना । जहूर में लाना = प्रकट करना ।

हूरा(०)।—सखा पुं० [सं० जहूर या जूहर] १. देखावा । ध्वज । उ०—ये सब बार प्यार लख पूरा । रूप न रेख जहूरा । २. ठाठ । ३. लड़का ।—(बाजारू) ।

रहेज—सखा पुं० [सं० रहेज वि० सं० रायज] वह धन संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को अथवा उसके घरवालों को दी जाती है । रहेज ।

जहु—सखा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. एक राजर्षि का नाम ।

विशेष—(१) पुराणों के अनुसार जब मगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे, तब जहु ऋषि मार्ग में यज्ञ कर रहे थे । गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उनकी पी लिया था । मगीरथ जी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था । तभी से गंगा का नाम जहूँसुता, जाहूँवी आदि पड़ा । (२) इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्रीवाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है ।

यौ०—जहूँजु। जहूँकन्या । जहूँतनया । जहूँसुता । जहूँसुता ।

जहूँकन्या—सखा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूँजा—सखा स्त्री० [सं०] गंगा । उ०—जो पुच्छी के विपुल सुख की माधुरी है विपाशा । प्राणो सेवा जनित सुख की प्राप्ति तो जहूँजा है ।—प्रिय०, पृ० २४४ ।

जहूँसनया—सखा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूँसप्तमी—सखा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी । कहते हैं, इसी दिन जहूँ ने गंगा को पान किया था । गंगासप्तमी ।

जहूँसुता—सखा स्त्री० [सं०] गंगा ।

जहूँ—सखा पुं० [सं० जहूँ] विष । जहर (को०) ।

जांगल^१—सखा पुं० [सं० जाङ्गल] १. तीतर । २. मास । ३. वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप धीर गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का सम्राव हो, करीब मदार, बेल धीर शमी आदि के पेड़ हो धीर बारहसिंधे तथा हिरन आदि पशु रहते हों । ४. ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन धीर बारहसिंधे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, हल्का, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल धीर प्रमेह, कठमासा तथा रसोपद आदि रोगों का नाशक कहा गया है ।

जांगल^२—वि० जंगल संबंधी । जंगली ।

जांगलि—सखा पुं० [सं० जाङ्गलि] १. सपेरा । साँप पकड़नेवाला । मयारी । २. निपटारा । साँप का जहर उतारनेवाला ।

जांगलिक—सखा पुं० [सं० जाङ्गलिक] दे० 'जांगलि' ।

जांगली—सखा स्त्री० [सं० जाङ्गली] कौछ । कँबाव ।

जांगलू—वि० [सं० जाङ्गलू] गंवार । जंगली । उजड़ ।

जांगी—सखा पुं० [सं० जाङ्ग ?] नगाडा ।—(ठि०) ।

जांगुल—सखा पुं० [सं० जाङ्गुल] १. तोरई । तोरी । २. विष । ३. दे० 'जगुल' ।

जांगुलि—सखा पुं० [सं० जाङ्गुलि] साँप पकड़नेवाला । गारुड । सपेरा ।

जांगुलिक—सखा पुं० [सं० जाङ्गुलिक] दे० 'जांगुलि' ।

जांगुली—सखा स्त्री० [सं० जाङ्गुली] साँप का विष उतारने की विद्या ।

जांगिक—सखा पुं० [सं० जाङ्गिक] १. उष्ट्र । ऊँट । २. एक प्रकार का भृगु जिसे शिकारी भी कहते हैं । ३. वह जिसकी जीविका बहुत थोड़े से ही चलती है । जैसे, हरकारा ।

जांतव—वि० [सं० जान्तव] जंतु संबंधी । जंतुजन्य ।

जांब(०)।—सखा पुं० [सं० जाम्बव] जामुन का फल या द्रव्य ।

जांबवंत—सखा पुं० [सं० जाम्बवत् > जाम्बवन्त] दे० 'जांबवान्' ।

उ०—(क) महाधीर गभीर वचन सुनि जांबवत समझाए । बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिमा दिखाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) जांबवत सुतासुत कहाँ मम सुता बुद्धि वत पुरुष यह सब संभारै ।—सूर (शब्द०) ।

जांबव—सखा पुं० [सं० जाम्बव] १. जामुन का फल । जंबू फल । २. जामुन के फल से धनी हुई शराब । जामुन का बना मद्य । ३. जामुन का सिरका । ४. सोना । स्वर्ण ।

जांबवक—सखा पुं० [सं० जाम्बवक] दे० 'जांबव' ।

जांबवत्—सखा पुं० [सं० जाम्बव] दे० 'जांबवान्' ।

जांबवती—सखा स्त्री० [सं० जाम्बवती] १. जाम्बवान् की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । उ०—(क)

जाववती भरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय । करि हरि ध्यान गए हरिपुर को जहाँ योगेश्वर जाय । —सूर (शब्द०) । (ख) रिच्छराज बहु मनि तासों लै जाववती को दीन्हों । जब प्रसेन को बिलंब भई तब सत्राजित सुघ सीन्हों । —सूर०, १० । ४१६० ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्वमतक मणि की खोज में जंगल में गए थे, तब वहीं उन्होंने जाववान् को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जाववती से विवाह किया था ।

२. नागदमनी । नागदोम ।

जाववान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] सुग्रीव के मन्त्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है ।

विशेष—इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह रीछ थे । रावण के साथ युद्ध करने में वेता युग में इन्होंने रामचन्द्र को बहुत सहायता दी थी । भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसी की कन्या जाववती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इन्होंने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी । इस कथा का उल्लेख रामचरितमानस (किष्किण्ड कांड, दोहा २८) में भी है, यथा—बलि वांघत प्रभु बाड़ेउ सो तनु वरनि न जाय । समय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन घाय ।

जाववि—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवि] वज्र ।

जाववी—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवी] १ जाववान् की पुत्री । जाववती । २ नागदमनी ।

जाववोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवोष्ठ] जाववोष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जसाए जाते थे ।

जाववीर—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बीर] जम्बीरी नीवू । जम्बीरी नीवू । जावील—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बील] १ पैर के छुटनेवाली गोल हड्डी । २ जम्बीरी नीवू (को०) ।

जावुक—वि० [सं० जाम्बुक] जबुक सबधी । शृगाल संबधी (को०) ।

जावुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुमालिन्] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था ।

जावुवत्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवत्] दे० 'जाववान्' ।

जावुवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवान्] दे० 'जाववान्' ।

जावू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] दे० 'जम्बू' (द्वीप) । उ०—जावू और पलाक्ष है शास्त्रमली कुश चारि । क्रौंच सकला द्वीप पट पुष्कर सात विचारि —(शब्द०) ।

जावूनद—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] १ घट्टरा । २ सोना । ३ स्वर्ण-मूषण (को०) ।

जावोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बोष्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे ।

जौ^१—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० जा] दे० 'जा' ।

जौ^२—संज्ञा स्त्री० [फा०] प्राण । जान ।

जौ^३—वि० [फा० जा] दे० 'जा' ।

जौउनि^४—संज्ञा स्त्री० [हि० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जौग^१—संज्ञा पुं० [देश०] बाँझों की एक जाति । उ०—जरदा, जिरहो, जांग, सुगोची, ऊँद खंजन । कर रकवाहे कवल गिलमिली गुलगुल रजन । —सूदन (शब्द) ।

जौग^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जाँघ] दे० 'जाँघ' ।

जौगाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला । भाट । बदी ।

जौगड़िया—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जांगड़ा' । उ०—(क) जांगड़िया हुआ दिये सिधू राग मझार । —बाँकी० पं०, भा० २, पृ० ६६ । (ख) कृष्ण पूछे ढोलाकणो जांगड़िया नूँ जान । —बाँकी० पं०, भा० २, पृ० १० ।

जौगर^१—संज्ञा पुं० [हि० जान या जाँघ > जांग + फा० गर (प्रत्य०)] १ शरीर । देह । २ हाथ पैर । ३ पोरुष । बल । शक्ति ।

जौ^२—जांगरचोर=जो काम करने से जी बुरासा हो । भालसी । डीखहराम । जांगरतोड=मेहनत करनेवाला । मेहनती । जैसे, जांगरतोड आदमी, जांगरतोड़ काम ।

मुहा०—जौगर टूटना, जौगर थकना=शरीर शिथिल होना । पोरुष या श्रमशक्ति का जवाब देना ।

जौगर^३—संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से धन्न झाड़ लिया गया हो । उ०—तुलसी जिलोक की समृद्धि सीख संपदा पकेलि चाकि राखी रासि जौगर जहान भो । —तुलसी (शब्द०) ।

जौगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जांगड़ा' । उ०—फरें जौगरे आलाप धिरद कलाप सूप प्रताप । प्रतिपाय मिनाजी चढ़े बाजी फरत धरि उर ताप—रघुराज (शब्द०) ।

जौगलू—वि० [हि० जंगल] दे० 'बागलू' ।

जौगी—संज्ञा पुं० [फा० जंग] नगाडा । —(हि०) ।

जौघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घ (=पिडली)] छुटने और कमर के बीच का भाग । ऊर ।

जौघा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक ।—(पूरबी) । २. कुरें के ऊपर गढ़ारी रखने का खम्भा । ३. लकड़ी या लोहे का वह घुरा जिसमें गढ़ारी पहनाई हुई होती है ।

जौघिया—संज्ञा पुं० [हि० जाँघ + ह्या (प्रत्य०)] १ लँगोट की तरह पहनावे का जाँघ को ढकने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र । काछा ।

विशेष—यह पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ पहनावा है जिसकी छुस्त मोहरियाँ छुटनों के ऊपर कमर और पैर के जोड़ तक ही रहती हैं । इसमें पूरी रान दिखाई पड़ती है । इसे प्रायः पहलवान और नट आदि लँगोटे के ऊपर पहनते हैं ।

२. मालखम की एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—इसमें बेंत को पैर के घुँटों और दूसरी उँगली से पकड़कर पिडली में लपेटते हुए दूसरी पिडली पर भी लपेटते

हिं और छव दुसरे पैर के भंगूठे से वेंत को पकड़कर नीचे की ओर फिर करके सटक जाते हैं ।

जौचिली^१—सहा पुं [हिं जाँच] वह वेल जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो ।

जौचिली^२—वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो ।

जौचिली^३—सहा पुं [दे०] १ खाकी रंग की एक बिड़िया ।

विशेष—इसकी गरदन लंबी होती है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है ।

२ प्रायः एक बालिष्ठ लंबी एक प्रकार की छोटी बिड़िया ।

विशेष—इसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चौप और सिर पीला, पैर लाली और दुम गुलाबी रंग की होती है ।

जौच—सहा स्त्री [हिं जाँचना] १. जाँचने की क्रिया या भाव । परीक्षा । परख । इम्तहान । आजमाइश । २. गवेषणा । तहकीकात ।

यौ०—जाँच बढ़ताइ = खोज के साथ किसी बात का पता लगाना । खानबीन ।

जौचणी^१—सहा पुं [सं० याचक] दे० 'जाचक' या 'याचक' । उ०—जाँचक दे जाँचक कहें जाँचे ? जो जाँचे तो रसना हारी ।—दूर, १:३४ ।

जौचकता^१—सहा स्त्री [सं० याचकता] दे० 'जाचकता' या 'याचकता' । उ०—(क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ की नारति ओर जहानहि रे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कुछ दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता भकुलानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

जौचकताई^१—सहा स्त्री [हिं जाँचक + ताई (प्रत्यय)] दे० 'जाचकता' ।

जौचना—क्रि० सं० [सं० याचना] १ किसी विषय की सत्यता या अवस्थता प्रबुद्धता योग्यता या अयोग्यता का निर्णय करना । तत्प्राप्त्य आदि का अनुसंधान करना । यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं । जैसे, हिसाब जाँचना, काम जाँचना । संयो० क्रि०—देखना ।—रखना ।—ठालना ।

२. किसी बात के लिये प्रार्थना करना । माँगना । उ०—(क) जिन जाँच्यों जाइ रंस नंदराय ठरे । मानो बरसत मांस प्रसाद बादुर मोर ररे ।—सूर (शब्द०) । (ख) रावन मरत अनुज कर जाँचा । प्रभु विधि बचन कीन्ह चहुँ साँचा ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) यही उदर के कारने जग जाँच्यो निसि याम । स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सरयो न एकी काम ।—कबीर (शब्द०) ।

जौजरा^१—वि० [सं० जजूर, प्रा० जजूर] [वि० स्त्री जाजरी] जो बहुत ही जीर्ण हो । जजूर । जीर्ण जीर्ण । उ०—साग्वी यह रोष जु मैं रोष हूँ । धनुष तोरी जाँजरी, पुरानो हो मैं जानो गयो काम सो ।—हनुमान (शब्द०) ।

जौम^१—सहा पुं [सं० जम्मा] वह वर्षा जिसके साथ धेड़ हवा भी हो ।

जौमा^१—सहा पुं [सं० जम्मा] दे० 'जौम' ।

जौट—सहा पुं [दे०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रिया भी कहते हैं ।

जौत—सहा पुं [सं० यन्त्र] घाटा पीसने की बड़ी चक्की । जौता । उ०—घरती सरग जौत पट दोऊ । जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३ ।

जौता—सहा पुं [सं० यन्त्र] १. घाटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन में गड़ी रहती है ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—पीसना ।

२. सुनारों और तारकणों आदि का एक औजार ।

विशेष—यह इस्पात या फोलाद सोहे की एक पटरी होती है जिसमें कमरा बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं । उन्हीं में कोई धातु का बत्ती या मोटा तार आदि रखकर उसे खींचते खींचते लंबा मोर महीन तार बना लेते हैं । इसे जती भी कहते हैं ।

जौद—सहा पुं [दे०] एक प्रकार के पेड़ का नाम ।

जौन^१—सहा स्त्री [सं० ज्ञान] ज्ञान । जानकारी । उ०—सबे जीव जेते सु केते जिहान । भ्रमे जत्र तत्र सु पावे न जान ।—ह० रासो, पृ० ३५ ।

जौन^२—सहा पुं [सं० ध्यान] गमन । जाना ।

यौ०—आवाजौन = आवागमन । उ०—त्रिवेणी कर असनान । तेरा भेट जाय आवाजौन ।—रामानंद०, पृ० ६ ।

जौन^३—सहा स्त्री [सं० ध्यान, यात्रा] वारात । उ०—ब्रदावन बैसाख पर सोहे जान ससोह ।—रा० रू०, पृ० ३४७ ।

जौपना—क्रि० सं० [अप० चंप, चप्प] दे० 'चाँपना' ।

जौपनाही—सहा पुं [फा० जहाँपनाह] दे० 'जहाँपनाह' ।

जौब^१—सहा पुं [सं० जम्बा] जबू फल । जामुन । जाम । उ०—(क) काहू गही मग की डारा । कोई बिरछ जाँब प्रति छारा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) श्याम जाँब कस्तूरी चोवा । मग जो ऊँच हृदय तेहि रोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

जौबखशी—सहा स्त्री [फा०] प्राणदान । जीवनदान । उ०—हुज़र यह गुलाम का लड़का है । हुज़र इसकी जाँबखशी करें, हुज़र का पुराना गुलाम हूँ ।—काया०, पृ० १६५ ।

जौबाज—वि० [फा० जौबाज] प्राण निखावर करनेवाला । जान की बाजी लगा देनेवाला । साहसी । उ०—जिसके लिये जौबाज है परवान ए बेखोफ ।—कबीर म०, पृ० ४६७ ।

जौबाजी—सहा स्त्री [फा० जौबाजी] जान की बाजी । प्राणों का दाँव । साहस । उ०—पै एतो हूँ हम सून्यो, प्रेम अल्लखो खेल । जौबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ।—रसखान०, पृ० ११ ।

जौबाजी^१—वि० [सं० यमल] दो । दोनों । उ०—भूप द्वार प्रसक्त भँवारी, ऐबराज जौमल हितकारी ।—रा० रू०, पृ० ३१५ ।

जौबाँ—वि० [फा० जा] मुतासिब । वाजिब । उचित ।

बी०—देखीये । बाँबे देखीये ।

जौबत^१—सहा पुं [सं० बाबत, हिं०, आवत] दे० 'यावत' । उ०—जौबत जग साखा बन बाँखा । जौबत केस रोम पलि पाँखा ।

—जायसी (शब्द०) । (ख) पुन रूपवत् पतानो काहा ।
जावत जगत सबै सुख चाहा । —जायसी (शब्द०) ।

जौवर^१—सखा पुं० [हिं० जाना] गमन । प्रस्थान । जाना । उ०—
नव नव छाट लड़ा लखिल नाही नाहीं कहूँ मज आवरो ।
—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

जा^१—सखा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. देवरानी । देवर की स्त्री ।
जा^२—वि० स्त्री० [सं० तुल्य० प्रा० (प्रत्य) जा (= उत्पन्न करनेवाला)]
उत्पन्न । समूत । जैसे, गिरिजा, जनकजा ।

जा^३—सर्व० [हिं० जो] जो । जिस । उ०—(क) जाकर जा-
पर सत्य सनेह । सो तेहि मिलहि न कछु सबेह । —तुलसी
(शब्द०) । (ख) एक समान जय ह्वै रहत लाख काम
ये दोइ । जा तिय ऐ तन में वर्षाहि मया कहिए सोइ ।
—पद्माकर प्र०, पृ० ८७ । (ग) मेरी भवयाधा हरी राधा
नागरि मोह । जा तन की भाँई परें स्यामु हरितदुति होइ ।
—बिहारी २०, श्लो० १ ।

जा^४—वि० [प्रा०] मुनासिब । उचित । वाजिब । जैसे,—भापकी
बात बहुत आ है
यौ०—बेजा = नामुनासिब । जो ठीक न हो ।

जा^५—सखा पुं० स्थान । जगह । उ०—कृष्ण देर रहा हक्का बक्का
भोचक्का सा भा गया कहाँ । क्या कष्ट यहाँ जाऊँ किस जा ।
मिलन०, पृ० १६० ।

जाइंट—सखा पुं० [अ० ज्वाइंट] १. जोड़ । पैदा । २. गिरह । गाँठ ।
(मिस्तरी) । ३. दे० 'ज्वाइंट' ।

जाइ^१—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ । बृथा । निष्प्रयोजन । बेफायदा ।
उ०—सुमन सुमन प्ररपन लिए उपवन ते घद ह्याइ । घन्ती
घरि हरि तकि कही ह्याइ भयो श्रम जाइ । —(शब्द०) ।

जाइफल—सखा पुं० [सं० जालीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइफल—महा पुं० [सं० जालीफल] दे० 'जायफल' ।

जाइस—सखा पुं० [दे०] दे० 'जायस' ।

जाई^१—सखा स्त्री० [सं० जा (= उत्पन्न)] कन्या । बेटा । पुत्री ।
उ०—छुपाहाली हुई बाप होर माई कूँ । मुलखन हुमा
पूत उस आई कूँ । —दक्खिनी०, पृ० ३६० ।

जाई^२—सखा स्त्री० [सं० जाती] जाती । चमेली ।

जाईनी^१—सखा स्त्री० [हिं० जामुन] दे० 'जामुन' ।

जाउर^१—सखा पुं० [हिं० छाउर (= चावल)] मीठा और चावल
झालकर पकाया हुआ दूध । खीर ।

जाएला^१—सखा पुं० [दे०] दो बार जोता हुआ खेत ।

जाएस—सखा पुं० [दे०] दे० 'जायस' ।

जाक^१—सखा पुं० [सं० यक, प्रा० जक, जक] यक ।

जाकट—सखा पुं० [अ० जैकेट] दे० 'जाकेट' ।

जाकड़—महा पुं० [हिं० जाकर; अथवा हिं० जकड़ना (= बाँधना)]
१. दुकानदार के यहाँ से कोई माल इन एत पर से छाना छि
यदि वह पसंद न होगा, तो फेर दिया जायगा । एकटा का

चराटा । २. इस प्रकार (शत पर) साया हुआ पाज ।

यौ०—जाकड़ बही ।

जाकड़वही—सखा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें
दुकानदार जाकड़ पर दिए हुए माल का नाम, किस्म और
दाम आदि टांक लेते हैं ।

जाकिटा^१—सखा स्त्री० [अ० जैकेट] दे० 'जाकेट' ।

जाकेट—सखा स्त्री० [अ० जैकेट] कुर्ती या सबरी की तरह का एक
प्रकार का अंग्रेजी पहनावा ।

जाख^१—सखा पुं० [सं० यख, प्रा० जख] दे० 'जख' । उ०—
कोरी मटुकी दहो जमायो जाख न पूजव शायी । तिहि
घर देव पितर काहे को जा पर कान्हू खायी ।
—सूर०, १०।३४६ ।

जाखना^१—सखा स्त्री० [दे०] पहिए के आकार का लोख पत्थर
जो कुर्छों की नींव में दिया जाता है । जयबठ । बेकार ।

जाखनी^१—सखा स्त्री० [सं० यखनी, प्रा० जखनी] दे०
'यखनी' । उ०—राघव करे जाखनी पूज । रही सो माय
देखायें पूजा । —जायसी (शब्द०) ।

जाग^१—सखा पुं० [सं० याग] यज्ञ । मस । उ०—(क) ख खौलैं सो
देई साम । ता धेती तुम खौली पाव । ख खिं वप्रपूर
जैहो । तहाँ पाइ मोकों तुम पैही । —सूर०, ६।२ ।
(ख) दण्ड दिए मुनि योनि सय करत कये कइ वाग ।
देवते सादर सकल सुरे जे पावत अथ वाग । —तुलसी
(शब्द०) ।

झि० प्र०—करना । —जागना । —जगना । उ०—पहिल महा
मुनि जाग जयो । नीच निराचर देख कुल कुल उठ बहु साप
तयो । —तुलसी (शब्द०) ।

जागा^१—सखा स्त्री० [हिं० जगह] १. जगह । स्थान । सिंहास ।
उ०—(क) तुहिकां न मुहिकां कहीं कुहिकां खो द थाय,
जाग कुन और सोपखाना बाघ व्यादा है । —सूर (शब्द०) ।
(ख) कुदरत बाकी भर रही रसगिधि खचही बाघ । ईदन
धिन धनियो रहे अ्यों पाहन में भाग । —रसनिधि (शब्द०) ।
२. गृह । घर । मकान । —(उ०) ।

जाग^२—सखा स्त्री० [हिं० जागना] जागने की क्रिया या भाव ।
जागरण । उ०—घटती होइ जाहि से दपनी राको कीजे
त्याग । बोखे कियो बास मन भीतर सब समयमें भइ जाग ।
—सूर (शब्द०) ।

जाग^३—सखा पुं० [दे०] वह कटुतर जो बिजकुम काले रंग का हो ।

जाग^४—सखा पुं० [अ० जक] अज्ञाय का भींमाररक्षक ।

जागत—सखा पुं० [अ०] जगती छप ।

जागता—वि० [सं० जागत] [वि० स्त्री० जागती] १. सजग । सचेत ।
२. वेदवती । शरत्कारिण ।

झा०—जागना = जगना । सासाध । जैसे, जागती जोत, जागती
कला । उ०—अधिर जागति सो जमुना जब बूढ़े बड़े उमई
बहु देरी । —पद्माकर (शब्द०) ।

जागविक्र—वि० [सं०] जागृत्संबंधी । सांसारिक [को०] ।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० [हि० जागता + कला] दे० 'जागती जीत' ।

जागती जीत—संज्ञा स्त्री० [हि० जागता + सं० ज्योति] १ किसी देवता विशेषतः देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार । २. चिराग । दीपक ।

जागना^१—क्रि० घ० [सं० जागरण] १ सोकर उठना । नींद त्यागना । उ०—आइ जागवाहि चेला जागहु । भाषा गुरु पाय उठि लागहु ।—जायसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

२ निद्रारहित रहना । जाग्रत अवस्था में होना । ३. सजग होना । चेतन्य होना । सावधान होना । उ०—अरुणै दसा रवि काल सयो धजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।—सुलसी (शब्द०) ।

४ उदित होना । चमक उठना । उ०—(क) भागत भगवत अनुरागत विराग भाम जागत भालस सुलसी से निकाम कै ।—सुलसी (शब्द०) । (ख) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा । कैसे कसौटी कचन लागे ।—जायसी (शब्द०) । ५ सजग होना । सड़ चढ़कर होना । उ०—पचाकर स्वादु सुषा तैं सरें मधु तैं महा माधुरी जागती है ।—पचाकर (शब्द०) । ६. ओर ओर से उठना । समुत्थित होना । जैसे, लोकमत का जागना । ७ प्रवृत्त होना । जलना । ८ प्रादुर्भूत होना । अस्तित्व प्राप्त करना । ९. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—छायो खोचि मांगि मैं तेरो नाम खिया रे । तेरे बज बलि आजु सौ जग जागि जिया रे ।—सुलसी (शब्द०) ।

जागना^२—क्रि० घ० [सं० यजन] यज्ञ करना । उ०—पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पावए बहु भागी ।—विद्यापति, पृ० ४१७ ।

जागनील—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार ।

जागविक्र—संज्ञा पुं० [सं० याज्ञवल्क्य] एक ऋषि । दे० 'याज्ञवल्क्य' । उ०—जागविक्र जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ।—सुलसी (शब्द०) ।

जागर—संज्ञा पुं० [सं०] १ जागरण । जाग । जागने की क्रिया । उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानी सुपने को सो जागर ।—हरिदास (शब्द०) । २ कवच । भगवत्पाण । जिरह बहतर । ३ अतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, महकार आदि) प्रकाशित या जाग्रत हों ।

जागरक—वि० [सं०] जाग्रत । चेतन्य [को०] ।

जागरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निद्रा का प्रभाव । जागना । २ किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपसर्ग में स्रग्भा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवद्भजन करते हुए सारी रात जागना । उ०—वासर ध्यान करत सब बीरयो । निशि जागरन करन मन भीत्यो ।—सूर (शब्द०) ।

जागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागरण' [को०] ।

जागरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ नींद का न होना । जागरण । २. सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य को

इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे ।

जागरित^२—वि० जागा हुआ । चेतन्य । सचेत ।

जागरित स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो ।

जागरितांत—संज्ञा पुं० [सं० जागरितान्त] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो । जागरित स्थान ।

जागरिता—वि० [सं० जागरित] [वि० स्त्री० जागरिनी] जागा हुआ । चेतन्य ।

जागरी—वि० [सं० जागरिन्] दे० 'जागरिता' ।

जागरूक^१—संज्ञा पुं० [व्यं० जागर + हि० क (प्रत्य०)] १ भूसा आदि मिना हुआ वह खराब अन्न जो देवादि के बाद अच्छा अन्न निकास लेने पर बच रहता है । २ भूसा ।

जागरूक^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जाग्रत अवस्था में हो । चेतन्य ।

जागरूक^३—वि० जागता हुआ । निद्रारहित । सावधान ।

जागरूप—वि० [हि० जागता + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो ।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागरण । जाग्रति । २ चेतनता ।

जागृती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागृति' [को०] ।

जागा—संज्ञा स्त्री० [हि० जगह] दे० 'जगह' ।

जागाही^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह, हि० जगह] स्थान । जगह । उ०—कोई भगदे प्रपनी रागाह पर, यह मेरी है यह तेरी है ।—राम० धर्म० (सं०), १० ६२ ।

जागाही^२—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, अथवा देशज, जागड़ा, जागरा] भाट ।

जागीर—संज्ञा स्त्री० [फा०] ऐसी भूमि जो राजा, बाबशाह, नवाब आदि किसी को प्रदान करते हैं । वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपसर्ग में मिले । सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि । जमीन । मुआफी । तमल्लुका । परगना ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

यौ०—जागीर खिदमतगी=सेवा के बदले में मिली जागीर । जागीर मनसबी=वह जागीर जो किसी मनसब, किसी पद के कारण प्राप्त हो ।

जागीरदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसे जागीर मिली हो । जागीर का मालिक ।

जागीरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'जागीरी' ।

जागीरी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जागीर + ई (प्रत्य०)] १ जागीरदार होने का भाव । २. जागीरी । रईसी । उ०—भागता सो जूझिया पीठ जो लागे घाय । जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसो भाव ।—कवीर (शब्द०) । ३. जागीर के रूप में मिली भित्तकियत ।

जागुड़—संज्ञा पुं० [सं० जागुड] १. केसर । २. एक प्राचीन देश का नाम । ३ इस देश का निवासी ।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जागृति] दे० 'जागरण' ।

जागृवि—सङ्घा पुं० [सं०] १ राजा । २ आग । ३. जागरण (को०) ।
जाग्रत^१—वि० [सं० जाग्रत्] १ जो जागता हो । सजग । सावधान ।
२ व्यक्त । प्रकाशमान । स्पष्ट (को०) ।

जाग्रत^२—सङ्घा पुं० वह श्रवस्था जिसमें शब्द, स्पर्श आदि सब बातों का
परिज्ञान और ग्रहण हो ।

जाग्रति—सङ्घा स्त्री० [सं० जाग्रत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाघनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ ऊर । जाँघ । जंघा । २. पृच्छ ।
पूँछ (को०) ।

जाचक^१—सङ्घा पुं० [सं० याचक] १. माँगनेवाला । वह जो
माँगता हो । मिथुन । मंगन । मिखारी । उ०—(क) नर
नाग सुरासुर जाचक जो सुम्ह सों मन भावत पायो न कै ।
—तुलसी (शब्द०) । (ख) नद पौरि जे जाँचन आए । बहुरो
फिरि जाचक न कहाए । —१०।३२ । २. भीख माँगने-
वाला । मिखमगा । उ०—दोरु चाह भरे फछु चाहत कह्यो
कहे न । नहि जाचक सुनि सूम लो बाहर निकसत बैन ।
—विहारी (शब्द०) ।

जाचकता^१—सङ्घा स्त्री० [सं० याचकता] १ माँगने का भाव ।
भीख माँगने की क्रिया । मिखमगी । उ०—जेहि जाचे
सो जाचकता वस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी
(शब्द०) ।

जाचना^१—क्रि० सं० [सं० याचन] माँगना । उ०—जेहि जाचे सो
जाचकता वस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजन^१—क्रि० सं० [सं० याजन] यज्ञ कराना । उ०—जजन
जाजन जाप गटन तीरथ दान भोपधी रसिक गदमूल देता ।
—रे० बानी, पृ० २ ।

जाजना^१—क्रि० सं० [हि० जाना] जाना । जाने की क्रिया या
भाव । उ०—भालेव न और जगदीसे कह्यो जाजे कहाँ, प्राणि
के तो दावे अंति प्राणि ही सिराहिने । —मुं० दर० ग्रं०,
(जी०), भा० १ पृ० ६६ ।

जाजना^२—क्रि० सं० [हि० जाजन] पूजा करना । सपासना
करना । उ०—स्यभ देव की सेवा जाजे, तो देव छटि है सकल
पछाने । —दक्खिनी०, पृ० ३४ ।

जाजम—सङ्घा स्त्री० [तु० जाजम] एक प्रकार की चादर जिसपर
बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम
में आती है ।

जाजमलार—सङ्घा पुं० [देश०] दे० 'जाजमलार' ।

जाजर^१—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जाजरि, जाजरी] दुर्बल ।
कृश । जीर्ण । उ०—चरन गिरहि कर कपमान जाजर देह
गिरन । प्राण०, पृ० २५२ ।

जाजरा^१—वि० [सं० जर्जर,] जर्जर । जीर्ण । उ०—(क)
ज्यों धुन लागई काठ को लोहइ लागई काँट । काम किया
घट जाजरा दाहू वारह बाट । —दाहू (शब्द०) । (ख)
घाँघरो अघम जह जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढका
ढकेल्यो मग में । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजरी—सङ्घा पुं० [देश०] बहेलिया । बिहीमार ।

जाजरा—सङ्घा पुं० [फा० जाजरूर] दे० 'जाजरूर' ।

जाजरूर—सङ्घा पुं० [फा० जा + रूर] शीघ्र क्रिया करने का
स्थान । पाखाना । टट्टी ।

जाजल—सङ्घा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

जाजलि—सङ्घा [सं०] एक प्रवरप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

जाजा^१—वि० [सं० जयादाह, हि० जयादा] बहुल । अधिक ।
उ०—जाय जोगण बंद जाजा, प्रजुण बन्ही करे प्राजा ।
बहुण भावध होम बाजा, रूपि दरजा रोस । —रघु० ६०,
पृ० २०७ ।

जाजात^१—सङ्घा स्त्री० [फा० जयादाद] दे० 'जयादाद' ।

जाजामलार—सङ्घा पुं० [देश०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब
शुद्ध स्वर लगते हैं । इसे जाजमलार भी कहते हैं ।

जाजिम—सङ्घा स्त्री० [तु० जाजम] १. एक प्रकार की छपी हुई चादर
जो बिछाने के काम में आती है । २. गलीचा । कालीन ।

जाजी—सङ्घा पुं० [सं० जाजिन्] योद्धा । वीर (को०) ।

जाजुल^१—वि० [सं० जाज्वल्य] दीप्तिमान । प्रकाशमान । प्रदीप्त ।
उ०—दसकठ सेन सिंघार दारुण, मार अणयकुमार । तो जो-
घार जो जोघार जाजुल रामरो जोघार । —रघु० ६०,
पृ० १६४ ।

जाजुलित^१—वि० [हि० जाजुल + इत (प्रत्य०)] दे० 'जाजुल' ।

जाज्वल्य—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । प्रकाशयुक्त । २. तेजवान् ।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । दीप्तिमान् । २. तेजस्वी ।
तेजवान् ।

जाट^१—सङ्घा पुं० [सं० यष्टि अथवा सं० यादव, > जादव > जाडव >
जाडभ > जाटभ > जाट] १. भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध जाति
जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताने और उत्तर प्रदेश के कुछ
भागों में फैली हुई है ।

विशेष—इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न
भिन्न प्रदेश में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के
अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते
होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अवगंत भी
बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम
आया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह संबंध
भी होता है । पर कहीं कहीं के जाटों में विषया विवाह और
सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की उत्पत्ति के संबंध
में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति
शिव की जटा से हुई, और कोई जाटों को यदुवशी और
जाट शब्द को यदु या यादव से संबद्ध बतलाता है ।
अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते
हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से
मुसलमान जाट भी हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चमकता गाना ।

जाट^२—सङ्घा स्त्री० [सं० यष्टि, हि० जाट] दे० 'जाट' ।

साध्य सम । (६) प्राप्ति सम । (१०) अप्राप्ति सम ।
 (११) प्रसंग सम । (१२) प्रतिष्ठापित सम । (१०)
 अनुत्पत्ति सम । (१४) संशय सम । (१५) प्रकरण सम ।
 (१६) हेतु सम । (१७) अर्थापत्ति सम । (१८) अविशेष
 सम । (१९) उपपत्ति सम । (२०) उपलब्धि सम ।
 (२१) अनुपलब्धि सम । (२२) नित्य सम । (२३)
 अनित्य सम, और (२४) कार्य सम ।

५. वरुण । ६. कुल । वंश । ७. गोत्र । ८. जन्म । ९. भ्रामलकी ।
 छोटा भ्रामला । १०. सामान्य । साधारण । भ्राम । ११.
 चमेली । १२. जावित्री । १३. जायफल । जातीफल । १४. वह
 पक्ष जिसके चरणों में भ्रामलों का नियम हो । मानिक छद्म ।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री ।

जातिचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जातीय रहन सहन
 तथा प्रथा ।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ । जो
 जाति से भ्रमण या बाहर हो ।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जाति का भाव । जातीयता ।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाति या वरुण का धर्म । २ ब्राह्मण,
 क्षत्रिय और वैश्य आदि का भ्रमण भ्रमण कर्तव्य । जिस
 जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या
 कर्तव्य ।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निरुप्य करते हुए जाति-
 धर्म का आदर किया जाता था ।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जातिपत्री] जावित्री ।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री ।

जातिपाँति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हि० पाँति > सं० पङ्क्ति] जाति
 या वरुण आदि । उ०—जाति पाँति उन सम हम नाही । हम
 निगुण सब गुण उन पाही ।—सूर (शब्द०) ।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं० जातिवैर] स्वाभाविक शत्रुता ।
 सहज वैर ।

विशेष—महाभारत में जातिवैर पाँच प्रकार का माना गया है,—
 (१) स्त्रीकृत । (२) वास्तुज । (३) बाज ।
 (४) सापल और (५) अपराधज ।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी
 ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद अध्ययन
 आदि न किया हो ।

जातिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] जातिच्युत होने का भाव ।
 जातिभ्रष्टता [को०] ।

जातिभ्रशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों
 में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और
 भ्राम्रम आदि से अष्ट हो जाता है ।

विशेष—इसके अतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना
 भयवा भ्रष्टाचर्य पदार्थ खाना, कपट व्यवहार करना और
 पुरुषमैथुन आदि कई निन्दनीय काम हैं । यह पाप यदि अनजान
 में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी
 में हो तो सातपन प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

जातिभ्रष्ट—वि० [सं०] जातिच्युत । जातिबहिष्कृत [को०] ।

जातिमान्—वि० [सं० जातिमत्] सत्कुलोत्पन्न । कुलीन [को०] ।

जातिज्ञान—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातिसूचक भेद । जातीय
 विशेषता [को०] ।

जातिवाचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याकरण में सज्ञा का एक भेद ।

२. जाति को बतानेवाला शब्द [को०] ।

जातिविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] जातियों का पारस्परिक वैर । जातिगत
 वैर । [को०]

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिवैर' ।

जातिवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रु [को०] ।

जातिव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] जातिगत पेशा । जातीय धंधा या
 काम । जैसे, सोनारी, लोहारी आदि ।

जातिशय—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० जातिसंकर] दो जातियों का मिश्रण ।
 वरुणसंकरता । दोगलापन ।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातिस्मर—वि० [सं०] जिसे अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त याद हो ।

जैसे,—जातिस्मर शिशु । जातिस्मर शुक । जातिस्मर मुनि ।

जातिस्तुत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल । जातीफल ।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भ्रमण जिसमें
 प्रकृति और गुण का वर्णन किया जाता है । २ जातिगत
 स्वभाव, प्रकृति या लक्षण ।

जातिहीन—वि० [सं०] १ नीची जाति का । निम्न जाति का ।

उ०—जातिहीन भय जन्म महि मुक्त कीन्ह भस नारि ।

महामद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।—मानस,
 ३।३० । २. जातिभ्रष्ट । जातिच्युत (को०) ।

जाती^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमेली । २ भ्रामलकी । छोटा भ्रामला ।
 ३ भ्रामली । ४ जायफल ।

जाती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति' । उ०—(क) सादर
 बोले सकल बराती । धिष्णु विरचि देव सब जाती ।—मानस,
 १।६६ । (ख) दीन हीन मति जाती ।—मानस, ६।११५ ।

जाती^३—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी । हस्ती (हि०) ।

जाती^४—वि० [सं० जाती] १. व्यक्तिगत । २. अपना । निज का ।


जातीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिकोष' ।

जातीपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री । जायपत्री ।

जातीपूग—संज्ञा पुं० (सं०) जायफल ।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

जातीय—वि० [सं०] जातिसंबंधी । जाति का । जातिवाला ।
जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जाति का भाव । जतिरत्न । २ जाति की ममता । ३ जाति ।
जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य ।
जातु—प्रत्य० [सं०] १ कदाचित् । कभी । २ संभवत । शायद ।
जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।
जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा । दोहद ।
जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।
जातुप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जातुपी] १ जतु या लाख का बना हुआ । २ चिपकनेवाला । चिपविपा । लसदार (को०) ।
जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।
जातूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपमृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम । हरिवंश के अनुसार इनका जन्म अट्टाईसवें द्वापर में हुआ था । २ शिव का एक नाम (को०) ।
जातूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवमृति के पिता का नाम ।
जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।
जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह वेल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो ।
जात्यध—वि० [सं० जात्यध] जन्माध (को०) ।
जात्य—वि० [सं०] १ उत्तम कुल में उत्पन्न । कुलीन । २ श्रेष्ठ । ३ जो देखने में बहुत अच्छा हो । सुंदर ।
जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक समकोण हो । जैसे  ।
जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन ।
विशेष—इस आसन में हाथ और पैर जमीन पर रखकर चलते हैं । कहते हैं कि इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्वजन्म की सब बातें याद हो जाती हैं ।
जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर हो । यह अठारह प्रकार का माना गया है ।
जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के भ्रमण की गिनती में वह दूरी जो मेघ से पूर्व की ओर प्रथम भ्रमण में ली जाती है ।
जात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा । यात्रा । उ०—
हूँतो आढ्य तब कियो असदृश्य करी न अज वन जात्र ।
—सूर०, १।२।१३ ।
जात्राङ्ग—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' ।
जात्रोङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' ।
जायकाँठ—संज्ञा स्त्री० [सं० जयका] ढेरी । ढेर । राशि ।
जादपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्ण । विष्णु । उ०—
कमला भई जादपति वारी । ताको है मुकता रखवारी ।—
इंद्रा०, पृ० १२६ ।
जादरसार—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वस्त्र । उ०—
बड़ा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर सार ।—वी०
रासो, पृ० २२ ।
जादवाँ—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी ।

जादवपति—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र ।
जादसंपति—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] जलजतुओं का स्वामी ।
वरुण ।
जादसपती—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] दे० 'जादसपति' ।
जादा—वि० [प्र० जियादह, हिं० ज्यादा] दे० 'ज्यादा' ।
जादुई—वि० [फा० जादू] इद्रजाल सबधी । जादू के प्रभाववाला ।
उ०—इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है ।—प्रेम० और गोकर्ण पृ० १ ।
जादू—संज्ञा पुं० [फा०] १ वह भद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हैं । इद्रजाल । तिलस्म ।
विशेष—प्राचीन काल में ससार की प्राय सभी जातियों के लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे । उन दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते थे । पर अब जादू पर से लोगो का विश्वास बहुत अंशों में उठ गया है ।
क्रि० प्र०—चलना । —करना ।
मुहा०—जादू उतरना=जादू का प्रभाव समाप्त होना । जादू चलना=जादू का प्रभाव होना । किसी बात का प्रभाव होना । जादू काम करना=प्रभाव होना । उ०—उसमें न किसी का जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना ।—चुभते० (प्रा०) पृ० ३ । जादू जगाना=प्रयोग आरंभ करने से पहले जादू को चेतन्य करना ।
२ वह भद्भुत खेल या कृत्य जो दशकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा दे कर किया जाय । ताण, भोगूठी, घड़ी, छुरी और सिक्के आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकराने-वाले खेल इसी के अंतर्गत हैं । बाजीगरी का खेल । ३ टोना । टोटका । ४ दूसरे को मोहित करने की शक्ति । मोहिनी । जैसे,—उसकी भाँखों में जादू है ।
क्रि० प्र०—करना । —डालना ।
जादू—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—पूरव दिसि गढ गढ़नपति समुद्र सिखर आति द्रुग । तहें सु विजय सुर राजपति जादू कुलह अभग ।—पृ० रा०, २० । १ ।
जादूगर—संज्ञा पुं० [फा०] [सं० जादूगरनी] वह जो जादू करता हो । तरह तरह के भद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करने-वाला मनुष्य ।
जादूगरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जादू करने की क्रिया । जादूगर का काम । २ जादू करने का ज्ञान । जादू की विद्या ।
जादूनजर—संज्ञा पुं० [फा० जादूनजर] दृष्टि मात्र से मोहित कर लेनेवाला । देखते ही मन लुभानेवाला । जिसके नेत्रों में जादू हो ।
जादूनिगाह—वि [फा०] दे० 'जादूनजर' ।

जादूबयान—वि० [फा०] जिसकी वाणी वशीभूत करनेवाली हो ।
जिसकी वाणी में जादू जैसी शक्ति हो [को०] ।

जादूबयानी—सद्वा स्त्री० [फा०] जादू जैसी शक्ति या प्रभाववाली वाणी । उ०—आपकी जदूबयानी तो इस दम अपना काम कर गई ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ ।

जादो०—सद्वा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—दुरजोधन को गवं घटायो जादो कुल नास करी ।—कबीर श०, पृष्ठ ४० ।

जादौ०—सद्वा पुं० [सं० यादव] १ यदुवशी । यदुवश मे उत्पन्न । उ०—सुमति विचारहि परिहरहि दल सुमनह सग्राम । सकल गए तन विनु भए साखी जादो काम ।—तुलसी (शब्द०) । २. नीच जाति । नीच कुलोत्पन्न ।

जादौराइ०—सद्वा पुं० [सं० यादवराज] श्रीकृष्णचंद्र । उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ । मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जान^१—सद्वा स्त्री० [सं० जान] १ ज्ञान । जानकारी । जैसे,—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है । २ समझ । अनुमान । खयाल । उ०—मेरे जान इन्हेंहि बोलिवे कारन चतुर जनक ठयो ठाट हतौरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जान पहचान=परिचय । एक दूसरे से जानकारी । जैसे,—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है । (ख) उनसे तुमसे जान पहचान होगी ।

मुहा०—जान में=जानकारी में । जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में या 'में' विभक्ति के साथ ही होता है । इसके लिये के विषय में भी मतभेद है । पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में प्रयोग प्राप्त होते हैं ।

जान^२—वि० सुजान । जानकार । ज्ञानवान । चतुर । उ०—(क) जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है ।—तुलसी प्र०, पृ० २०७ । (ख) प्रेम समुद्र रूप रस गहिर कैसे लागै घाट । वेकान्यो है जान कहावत जानपनो कि कहा परी वाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

यौ०—जानपन । जानपनी । जानपनो० । जानराय । जानसिरोमनि=ज्ञानवानों में श्रेष्ठ । उ०—(क) तुम्हें परिपूर्ण काम जान सिरोमनि भाव प्रिय । जनगुन गाहक राम दोपदलन करुनायतन ।—मानस, २३२ । (ख) प्रभु की देखी एक सुभाइ । प्रति गभीर तदार उदधि हरि जान सिरोमनि राइ ।—मूर०, १ । ८ ।

जान^३—सद्वा पुं० [सं० जानु] दे० 'जानु' ।

जान^४—सद्वा पुं० [सं० यान] दे० 'यान' ।

जान^५—सद्वा स्त्री० [फा०] १ प्राण । जीव । प्राणवायु । दम । जैसे,—जान है तो जहान है ।

मुहा०—जान भाना=जी ठिकाने होना । चित्त में धैर्य होना । चित्त स्थिर होना । शांति होना । जान का गाहक=(१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला । मार डालने का यत्न करनेवाला । शत्रु (२) बहुत तंग करनेवाला पीछा । न छोड़नेवाला । जान का रोग=ऐसा दुःखदायी व्यक्ति या वस्तु जो

पीछा न छोड़े । सब दिन कष्ट देनेवाला । जान का लागू=दे० 'जान का गाहक' । जान के लाले पटना=प्राण बचना कठिन दिखाई देना । जी पर भा बनना । (अपनी) जान को जान न समझना=प्राण जाने की परवाह न करना । अत्यंत अधिक कष्ट या परिश्रम सहना । (दूसरे को) जान को जान न समझना=किसी को अत्यंत कष्ट या दुःख देना । किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना । (किसी की) जान को रौना=किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना । किसी के द्वारा पहुँचाए गए कष्ट को याद करके दुःखी होना । जैसे,—तुमने उसकी जीविका ली, वह अबतक तुम्हारी जान को रोता है । जान खाना=(१) तंग करना । बार बार धेकर दिक करना । (२) किसी बात के लिये बार बार कहना । जैसे,—चलते हैं, यथो जान खाते हो । जान खोना=प्राण देना । मरना । जान घुराना=दे० 'जो घुराना' जान छुड़ाना=(१) प्राण बचाना । (२) किसी कष्ट से छुटकारा करना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना । सकट टालना । छुटकारा करना । निस्तार करना । जैसे,—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुटाकर भागते हैं । (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुटाओ । जान छूटना=किसी भय या आपत्ति से छुटकारा मिलना । किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना । निस्तार होना । जैसे,—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी । जान जाना=प्राण निकलना । मृत्यु होना । (किसी पर) जान जाना=किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना । जान जोखीं=प्राण का भय । प्राणहानि की आशंका । जीवन का सकट । प्राण जाने का डर । जान डालना=शक्ति का संचार करना । उ०—हम येजान में जान खान देखे ये ।—धुमते० (दो दो०), पृ० २ । जान तोड़कर=दे० 'जो तोड़कर' । जान दूसर होना=जीवन कटना कठिन जान पटना । भारी मालूम होना । दुःख पढ़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना । जान देना=प्राण त्याग करना । मरना । (किसी पर) जान देना=(१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना । किसी के किसी काम से कष्ट या दुःखी होकर मरना । (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना । किसी को प्राण से बढ़कर चाहना । बहुत ही अधिक प्रेम करना । (किसी के लिये) जान देना=किसी को बहुत अधिक चाहना । (किसी वस्तु के लिये या पीछे) जान देना=किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक धन्य होना । किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये वेचने होना । जैसे,—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है, उसका कोई कुछ नहीं दबा सकता । जान निकलना=(१) प्राण निकलना । मरना । (२) भय के मारे प्राण सूखना । डर लगना । अत्यंत कष्ट होना । घोर पीछा होना । जान पडना=दे० 'जान भाना' । जान पर भा बनना=(१) प्राण का भय होना । प्राण बचना कठिन दिखाई देना । (२) आपत्ति भाना । चित्त सबट में पडना । (३) हैरानी होना । नाक में दम होना । गहरी व्यग्रता होना । जान पर खेलना=प्राणों को भय में डालना । जान को जोखी में डालना ।

अपने आपको ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नोबत आना = ३० 'जान पर आ बनना'। जान बचना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को दूर रखना। निस्तार करना। जैसे,—हम तो जान बचाते फिरते हैं, तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। जान मारकर काम करना = जी तोड़कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। जैसे,—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान मे जान आना = धैर्य बँधना। डारस होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता, घबराहट या भय आदि का दूर होना। जान लेना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुख देना। पीड़ित करना। जैसे,—क्यों धूप में दोढ़ाकर उसकी जान लेते हो। जान सी निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाश रहना। जैसे,—शेर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। जैसे,—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण खोना। मरना। जान से मारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से जाना। जान हलाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हलाकान होना = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर आना = (१) प्राण कठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

२ वन। शक्ति। वृत्ता। सामर्थ्य। जैसे,—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। ३ सार। तत्व। सबसे उत्तम अंश। जैसे,—यही पद तो उस कविता की जान है। ४ अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। जैसे,—ममाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान घाना = ओष चढ़ना। शोभा बढ़ाना। जैसे,—रंग फेर देने से इस तस्वीर में जान आ गई है।

जान^१—सञ्ज्ञा पु० [ज्ञा० या सं० यान] वारात। उ०—(क) कर जोड़े राजा कहह, चालव चउरासी राय की जान।—बी० गसो, पृ० १०। (ख) जान पराई में ग्रहमक वच्चे, फपडे भी फट्टे देह भी दृष्टे। (कहावत)।

जानकार—वि० [हि० जानना + कार (प्रत्य०)] १. जाननेवाला अभिज्ञ। २. विज्ञ। चतुर।

जानकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जानकार + ई (प्रत्य०)] १ अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। २ विज्ञता। निपुणता।

जानकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] जनक की पुत्री। सीता।

जानकीकंत—सञ्ज्ञा पु० [सं० जानकीकन्त] राम। उ०—द्रवै जानकीकत, तब छूटे संसारदुख।—तुलसी ग्र०, पृ० ६६।

जानकीजानि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचंद्र। उ०—बाहुवल विपुल परिमित पराक्रम प्रतुल गूढ़ गति जानकीजानि जानी।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीजीवन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकीजीवन को जन हूँ जरि जाहु सो जीह जो जचित श्रीरहि।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीनाथ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जानकी के पति, श्रीराम। उ०—सो बातन की एकै बात। सब तजि भजौ जानकीनाथ।—सूर (शब्द०)।

जानकीप्राण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रामचंद्र। उ०—निज सहज रूप में संयत जानकीप्राण बोले।—प्रनामिका, पृ० १५६।

जानकीमगल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जानकी के पति—श्रीरामचंद्र।

जानकीरवन^७—सञ्ज्ञा पु० [सं० जानकीरमण] ३० 'जानकीरमण'।

जानकीवल्लभ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रामचंद्र [को०]।

जानदार^७—वि० [फ्रा०] १ जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी। २ उत्कृष्ट। ओषदार। जैसे, जानदार मोती। जानदार चीज या वस्तु।

जानदार^२—सञ्ज्ञा पु० जानवर। प्राणी।

जाननहार^७—वि० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] जानने या समझनेवाला। जाननिहार। उ०—सुखसागर सुख नीद बस सपने सब करता। माया मायानाथ की को जग जाननहार।—तुलसी ग्र०, पृ० १२३।

जानना—क्रि० सं० [सं० जान] १. किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निदिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। जान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकफ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। जैसे,—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तैरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता। संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

घो०—जानना वृम्भना = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पढ़ना = (१) मालूम पढ़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। सवेदना होना। जैसे—जिस समय मैं गिरा था, उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा, पर पीछे बड़ा दर्द उठा। जानकर अनजान = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। जान वृम्भकर = सूले से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। जैसे,—तुमने जान वृम्भकर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयगम करना। जैसे,—इस बात को जान रखो कि अब वह नहीं आएगा। किसी का कुछ जानना =

किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना । किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना । किसी का एहसानमद होना । जैसे,—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ । (.) तो मैं जानूँ = (१) (.) तो मैं समझूँ कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी अनहोनी बात हो गई । जैसे,—(क) यदि तुम इतना क्रुद्ध जाओ तो मैं जानूँ । (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लाए तो जानूँ । (२) (.) तो मैं समझूँ कि बात ठीक है । जैसे,—सुना तो है कि वे घानेवाले हैं, पर आ जायें तो जानें ।

विशेष—इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है । इसका प्रयोग 'मैं' और 'हम' दोनों के साथ होता है ।

(.) तो मैं नहीं जानता = (.) तो मैं जिम्मेदार नहीं । तो मेरा दोष नहीं । जैसे,—उसपर चढ़ते तो हो, पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता । मैं क्या जानूँ ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? = मैं नहीं जानता, तुम नहीं जानते, वह नहीं जानता । (बहुवचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है) । जाने अनजाने = जान बूझकर या बिना जाने बूझे ।

२ सूचना पाना । खबर पाना या रखना । प्रसंगत होना । पता पाना या रखना । जैसे,—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे घानेवाले हैं । ३ अनुमान करना । सोचना । जैसे,—मैं जानता हूँ कि वे कल तक आ जाएंगे ।

जाननिहारा^१—वि० [हि० जाननि + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला । समझनेवाला । उ०—(क) और सुम्हहि को जाननिहारा । —मानस, २।१२७ । (ख) भूत भविष को जाननिहारा । कहतु है वन शुभ गवन की बारा । —नद० प्र०, पृ० १५६ ।

जानपति^२—वि० [सं० ज्ञान + पति] ज्ञानियों में प्रधान । जानकारों में श्रेष्ठ । उ०—जानपति धानपति हाड़ा हिंदुवान पति दिल्लीपति दलपति बलाधपति है । —मति० प्र०, पृ० ३६ ।

जानपद^३—संज्ञा पुं० [सं०] १ जनपद संबंधी वस्तु । २ जनपद का निवासी । जन । लोक । मनुष्य । ३ देश । ४. कर । माल-गुजारी । ५ मिताक्षरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भदों में से एक ।

विशेष—इस लेख्य (दस्तावेज में) लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है । यह दो प्रकार का होता है—एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ से लिखा हुआ । अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती थी ।

जानपदी^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वृत्ति । २ एक मत्सरा ।

विशेष—इस मत्सरा को हृद ने शरद्वान् ऋषि का तप भग करने के लिये भेजा था । शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक-पात किया, उससे कृप और कृपीय की उत्पत्ति हुई । महाभारत प्रायश्चित्त में यह प्राख्यान वर्णित है ।

जानपना^५—संज्ञा पुं० [हि० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी । समझता । चतुराई । होशियारी । उ०—वेका-यो है जान

कहावत जानपनो की कहा परी बाट ।—हरिदास (शब्द०) ।

जानपनी^६—संज्ञा स्त्री० [हि० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमान्नी । जानकारी । चतुराई । होशियारी । उ०—(क) जानपनी की गुमान बड़ो तुलसी के विचार गंवार महा है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानी है जानपनी हरि की प्रस वाधिणी कछु मोठ कला की ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) हम तान दया नहि जानपनी । जड़ता पर वचन ताति घनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानवाज^७—संज्ञा पुं० [फा० जान + वाज] बल्खमटेर । वाजटियर । जान १२ खेल जानेवाला (लश०) ।

जानमनि^८—संज्ञा पुं० [हि० जान + सं० मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ । बड़ा जानी पुरुष । बहुत बुद्धिमान मनुष्य । उ०—रूप सील सिधु गुन सिधु बधु दीन को, दयानिधान जानमनि बीर बाहु बोल को ।—तुलसी प्र०, पृ० २०० ।

जानमाज^९—संज्ञा स्त्री० [फा० जानमाज] एक पतला कालीन या घासन जिसपर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं । नमाज पढ़ने का फर्श ।

जानराय^{१०}—संज्ञा पुं० [हि० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ । प्रत्यत ज्ञानी पुरुष । बड़ा बुद्धिमान मनुष्य । सुजान । उ०—जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र जननी कहैं बार बार भोर सयो प्यारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानवर^{११}—संज्ञा पुं० [फा०] १ प्राणी । जीव । जीवधारी । २. पशु । जंतु । हैवान ।

मुहा०—जानवर लगना = जानवरों का घाना जाना या दिखाई पड़ना । उ०—और वहाँ जंगलों में दरिद जानवर लगते हैं और घादमियों को खा जाते हैं ।—तैर कु०, पृ० १६ ।

जानवर^{१२}—वि० मूर्ख । अहमक । षड ।

जानशीन^{१३}—संज्ञा पुं० [फा० जानशीन] १. वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो । २. वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद या संपत्ति आदि का अधिकारी हो । उत्तराधिकारी ।

जानहार^{१४}—वि० [हि० जाना + हार (प्रत्य०)] १. जानेवाला । २. खो जानेवाला । हाथ से निकल जानेवाला । ३. मरनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

जानहार^{१५}—संज्ञा पुं० [हि० जानना + हार (प्रत्य०)] वह जो जाननेवाला हो । जाननेवाला या समझनेवाला व्यक्ति । दे० 'जाननिहार' ।

जानहार^{१६}—वि० जाननेवाला ।

जानहु^{१७}—प्रव्य [हि० जानना] मानो । जैसे । उ०—घनि राजा घस सभा सँवारी । जानहु कूल गृही कुचवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

जानाँ^{१८}—संज्ञा पुं० [फा०] प्रिय । माशूक । प्यारा । उ०—दिल का हजरा साफ कर जानाँ के आने के लिये ।—तुलसी० सा०, पृ० ४ ।

जाना^१—क्रि० प्र० [सं० √या (हि० जा) + ना (=जाना)]

१. एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना । गमन करना । किसी ओर बढ़ना । किसी ओर प्रसर होना । स्थान परित्याग करना । जगह छोड़कर हटना । प्रस्थान करना । जैसे,—(क) वह घर की ओर जा रहा है । (ख) यहाँ से जाओ ।

मुहा०—जाने दो=(१) क्षमा करो । माफ करो । (२) त्याग करो । छोड़ दो । (३) चर्चा छोड़ो । प्रसंग छोड़ो । जा पड़ना=किसी स्थान पर प्रकस्मात् पहुँचना । जा रहना=किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना । जैसे,—मुझे क्या, मैं किसी घमंशाला में जा रहूँगा । किसी बात पर जाना=किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निर्णय करना । किसी बात को ठीक मानकर उसपर चलना । किसी बात पर ध्यान देना । जैसे,—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है । जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, हूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि । कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है । जैसे, कर जाना—इनके लिये भी कुछ कर जाओ । कर्मप्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे, किया जाना, खा जाना । जहाँ 'जाना' का सयोग किसी क्रिया के पहले होता है, वहाँ उसका अर्थ बना रहता है । जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना ।

२ अलग होना । दूर होना । जैसे,—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी । (ख) सिर जाय तो जाय, पीछे नहीं हटेंगे । ३ हाथ या अधिकार से निकलना । हानि होना ।

मुहा०—क्या जाता है ? = क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या हानि होती है ? जैसे,—उनका क्या जाता है, मुकसान तो होगा हमारा । किसी बात से भी गए ? = इतनी बात से भी वचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इतने में भी घुक्नेवाले हो गए । जैसे,—उसने हमारे साथ इतनी बुराई की तो हम कुछ कहने से भी गए ?

४ खोना । गायब होना । चोरी होना । गुप्त होना । जैसे,—(क) पुस्तक यहीं से गई है । (ख) जिसका माल जाता है, वही जानता है । ५. धीतना । व्यतीत होना । गुजरना (काल, समय) । उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रूपया न पाया । (ख) गया वक्त फिर हाथ जाता नहीं । ६ नष्ट होना । बिगड़ना । सत्पानाश या बरबाद होना । जैसे,—यह घर भी भव गया ।

मुहा०—गया घर=दुर्दशाप्राप्त घराना । वह कुल जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई हो । गया धीता=(१) दुर्दशाप्राप्त । (२) निकृष्ट ।

७ मरना । मृत्यु को प्राप्त होना (की०) । जैसे,—उसके दो बच्चे जा चुके हैं । ज. प्रबाह के रूप में कहीं से निकलना । बहना ।

४-११

जारी होना जैसे, घाँस से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना, इत्यादि ।

जाना^२—क्रि० सं० [सं० जनन] उत्पन्न करना । जन्म देना । पैदा करना । उ०—(क) मेया मोहि दाऊ बहुत खिझायो । मोसों कहत मोल की, लीन्हो तू जसुमति कत जायो ।—सूर०, १०।२।५ । (ख) कोशलेश दशरथ के जाए । हम पितु वचन मानि बन आए ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या । जैसे, जानकीजानि । उ०—सो मय दीन्ह रावर्तहि आनी । होईहि जातुधानपति जानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समासों में होता है और यह ह्रस्व इकारात् ही रहता है ।

जानि^२—क्रि० [सं० ज्ञानी] जानकार । जाननेवाला । उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरोमनि कोसलराऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानिव—संज्ञा स्त्री० [प्र०] तरफ । ओर । दिशा । उ०—फौज उरशाक देख दूर जानिव । नाजनी साहेब दिमाग हुभा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ७ ।

जानिवदार—संज्ञा स्त्री० [फा०] तरफदार । पक्षपाती । हिमायती ।

जानिवदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पक्षपात । हिमायत । तरफदारी ।

जानी^१—संज्ञा पुं० [प्र० जानी] विषयलपठ व्यभिचारी व्यक्ति [को०] ।

जानी^२—क्रि० [फा०] १. जान से सबध रखनेवाला । प्राणों का । २ घनिष्ठ । गहरा (को०) ।

यौ०—जानो दुश्मन=जान लेने को तैयार दुश्मन । प्राणों का ग्राहक शत्रु । जानो दोस्त=दिली दोस्त । घनिष्ठ मित्र । प्रिय दोस्त । प्राणप्रिय मित्र ।

जानी^३—क्रि० स्त्री० [फा० जान] प्राणप्यारी । प्राणेश्वरी । प्रिया ।

जानीवासउ—संज्ञा [हि० जनवासा] जनवासा । घारात ठहरने का स्थान । उ०—घार नग्री आयो बीसल राव, जानीवासउ दीयो तिणि ठाव ।—बी० रासो, पृ० १६ ।

जानु^१—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग । घुटना ।

उ०—(क) श्याम की सुदरताई । बडे विशाख जानु लों पहुँचत यह उपमा मन भाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानु^२—संज्ञा पुं० [सं० जानु, तुल० फ्रा० जानू] जाँघ । रान । उ०—बान है फाबत भाक के मान है कदली विपरीत उठानु है । फा न करे यह सौतिन के पर प्रान से प्यारी सुजान की जानु है ।—तोष (शब्द०) ।

जानु^३—क्रि० [हि० जानना] दे० 'जानो' । उ०—तरिखर फरे फरे फरहरी । फरे जानु ह्रासन पुरी ।—जायसी (शब्द०) ।

जानुदन्—क्रि० [सं० जानु + दन् (दन्धन् प्रत्य०)] घुटने तक गहरा या घुटनों तक ऊँचा [को०] ।

जानुपाणि—क्रि वि० [सं०] छुटने के । पैया पैया । छुटने और हाथों के धल (चलना जैसे बच्चे चलते हैं) ।

जानुपानि^④—क्रि० वि० [सं० जानुपाणि] दे० 'जानुपाणि' । उ०—(क) जानुपानि धाए मोहि घरना । प्रयास गत, घरन कर चरना ।—तुलसी (शब्द०) (ख) पीत भंगुलिया तनु पहिराई । जानुपानि विचरन मोहि भारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) राजत सिधु रूप राम सकल गुन निकाय घाम, कोतुकी कृपालु ब्रह्म जानुपानि चारो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जानुप्रहृति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल युद्ध या कुपती का एक छन जिसमें छुटनों का व्यवहार विशेष होता था ।

जानुफलक—संज्ञा पुं० [सं०] छुटने की वह हड्डी जो जाँघ और पिंडली को जोड़ती है [क्रि०] ।

जानुमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जानुमंडल] दे० 'जानुफलक' ।

जानुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० जानु + हि० वाँ (प्रत्यय०)] बड़-रोज को हाथों के धमके पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी छुटने की हड्डी उभर आती है ।

जानुविजानू—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के २२ हाथों में से एक ।

जानू—संज्ञा पुं० [फ्रा० जानू] जया । जाँघ ।

जानो—अव्य० [हि० जानना] माबो । जैसे । ऐसा जान पड़ता है कि ।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि का नाम ।

जाप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंत्र या स्तोत्र धादि का बार बार मन में सञ्चारण । मंत्र की विधिपूर्वक प्राप्ति । उ०—अनमिल आखर अर्थ न जापू । प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू ।—तुलसी (शब्द०) । २. जगवान् के नाम का बार बार स्मरण और सञ्चारण ।

जाप^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम धादि जपने की मासा । उ०—बिरह भभूत बटा बैरानी । छाला काँव जाप कठ जाना ।—जायसी (शब्द०) ।

जापक—संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्ता । जप करनेवाला । जपनेवाला । उ०—(क) राम नाम वरकेश्वरी कनककसिपु कवि कालु । जापक जम प्रह्लाद जिमि पानिहि दधि सुरसालु ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) विषकूट सब दिन घसत प्रभु सिय ससन समेत । राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जापता^④—संज्ञा पुं० [फ्रा० जापितह्] कायदा । नियम । पद्धति । जान्ता । उ०—साहे या सिखावहि जापता सूँ मेल बीनी । सारा कामखान्या में बुनास्या घाम लीनी ।—शिक्षर०, पृ० ५६ ।

जापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जप । २. निवर्तन ।

जापा—संज्ञा पुं० [सं० जनन] सौरी । प्रसूतिका गृह ।

जापान—संज्ञा पुं० [जा० निप्पनि; अ० जापान] एक द्वीपसमूह जो चीन के पूरब है ।

जापानी^१—संज्ञा पुं० [अ० जापान + हि० ई (प्रत्यय०), या देश०] जापान द्वीपसमूह का निवासी । जापान का रहनेवाला ;

जापानी^२—वि० जापान का । जापान का बना । जैसे, जापानी दियासलाई, जापानी भाषा ।

जापिनी^④—वि० [हि०] जपनेवाली । उ०—बीर बधू ही पापिनी बीर बधू हरि लहि । और पीर कहाँ जापिनी पीर पपीहा देहि ।—स० सप्तक, पृ० २३४ ।

जापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक । जप करनेवाला । उ०—माधव लू मोते और, न पापी । लपट धूत पूत दमरी की विषय जाप की जापी ।—सूर० १ । १४० ।

जाप्य—वि० [सं०] (मंत्र या स्तुति) जप करने योग्य [क्रि०] ।

जाफा^१—संज्ञा पुं० [अ० जा' फ, जो' फ] १. वेहमी । २. घुमरी । मूर्च्छा । ३. यका'ट । शिथिलता । निर्वनता ।

क्रि० प्र०—घाता ।—होना ।

जाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियाफत] मोक्ष । शवत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—घाता ।—खिखाना ।—देना ।

जाफरान—संज्ञा पुं० [अ० जाफरान] १. कैसर । २. अफगानिस्तान की एक तातारी जाति ।

जाफरानी—वि० [अ० जाफरानी] कैसरिया । कैसर के रय का । कैसर का सा पीला । जैसे, जाफरानी रय, जाफरानी कपड़ा ।

जाफरानी ताँबा—संज्ञा पुं० [अ० जाफरानी + हि० ताँबा] पीछापन प्रिय हुए उत्तम ताँबा को जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है ।

जाफा—संज्ञा पुं० [अ० झाफह्] बुद्धि । बढ़ती । उ०—एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे ।—गोदान, पृ० २७ ।

जाव^१^④—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] उत्तर । जवाब । उ०—दिए जाव उनकुं अकेकुल सलाम, ऐ जिब्रेल, मैकइल मैक नाम ।—बकिनी०, पृ० १४५ ।

जाव^२—संज्ञा पुं० [अ० जाव] १. घधा । काम । २. द्रव्य के बदले में किया हुआ कार्य ।

जौ—जाव वक्त । जाव प्रेष ।

जाव^३^④—संज्ञा पुं० [अ० जव, हि० जावा] शैलों के मुह पर लगाने की जानी । उ०—शैलों की मुह पर 'जाव' समा दिया जाता है ।—मैला०, पृ० ६७ ।

जावजा—क्रि० वि० [फ्रा० जा + वजा] जगह जगह । इधर उधर जावजा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जवड़ा' ।

जावता—संज्ञा पुं० [फ्रा० जावितह्] दे० 'जान्ता' ।

जाव प्रेस—संज्ञा पुं० [अ०] काठ, नोटिस धादि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल ।

जाधर^१—संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल ।

जाधरी^२—वि० [सं० जर्जर] बूढ़ा । बुढ़ा । जईफ ।—(दि०) ।

जाधर^३^④—वि० [फ्रा० जबर] बलवान् । ताकतवर । अधिक बलवाला ।

जावाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम जावाला था।

विशेष—छादोग्य उपनिषद् में इनके संबंध में यह व्याख्यान आया है कि जब वे ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए, तब उन्होंने इनका भोजन तथा इनके पिता का वाम आदि पूछा। ये न बतला सके और अपनी माता के पास पूछने गए। माता ने कहा कि मैं जबानी में बहुतों के पास रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ। मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है। जा और कह दे कि मेरी माता का नाम जावाला है और मेरा जावाल है। जब आचार्य ने यह सुना तब उन्होंने कहा कि 'हे जावाल ? समझा जाओ, मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत कछे, क्योंकि ब्राह्मण के प्रतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता'। इनका एक नाम सत्यकाम भी है।

जावालि—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यपवशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुप्त और मंत्रियों में से थे।

विशेष—इन्होंने चित्रकूट में रामचंद्र को वन से जोड़ जाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश में इन्होंने चारों ओर से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को वनगमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था।

जावित—वि० [प्र० जावित] १ जल करनेवाला। सहनशील। २ प्रदक्षक।

जाविता—संज्ञा पुं० [प्र० जावित] दे० 'जावित'।

जाविर—वि० [फा०] १. जल करनेवाला। प्रत्याचार करनेवाला। जबरदस्ती करनेवाला। २. जबरदस्त। प्रचंड।

जाव्ता—संज्ञा पुं० [प्र० जावित] नियम। कायदा। व्यवस्था। कानून। जैसे, जाव्ते की कार्रवाई, जाव्ते की पायदी।

यौ०—जाव्ता आदालत = प्रदात सदधी कार्यविधि। प्रदातली व्यवहार। जाव्ता दीवानी = सर्वसाधारण के परस्पर अधिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून या व्यवस्था। जाव्ता फौजदारी = दंडनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून। जाव्ता माल = प्रदात माल का व्यवहार या पद्धति।

जाम^१—संज्ञा पुं० [सं० याम] पहर। प्रहर। ७३ घड़ी या तीस घंटे का समय। उ०—(क) गए जाम जुग भूपति प्रादा। घर घर उत्पन्न बाज बघावा।—बुखरी (शब्द०)। (ख) दुविष जाम प्रणीत उद्यम रघु किति काव्य जनि।—पुं० रा०, ६। ११। (ग) उ०—जाम विद्या रवि धोर की, प्रह्व सुन सु होय।—पुं० रा०, पुं० १७०।

जाम^२—संज्ञा पुं० [फा०] १ प्याला। २. प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा।

जाम^३—संज्ञा पुं० [अनु० कम (=जल्दी)] जहाज की दीड़ (लश०)।

जाम^४—संज्ञा पुं० [प्र० जैम] १ जहाज का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच घटकाव। फंसाव (लश०)।

क्रि० प्र०—माना।—करता।—होना।

२. मुरब्बा। चाशनी में पागे हुए फल।

जाम^५—वि० रुका हुआ। प्रवृद्ध। जैसे, दो गाड़ियों के सह जाने से रास्ता जाम हो गया।

जाम^६—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन।

जामगिरी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता (लश०)।

जामगी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक या तोप का फलीता। उ०—जोत जामगिन में जमी लागे नपत दिखान। रन असमान समान भी रन समान असमान।—लाल (शब्द०)।

जामणी—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] उत्पत्ति। जन्मना। जन्म होना। पैदाइश। उ०—हरि रस माते मगन भए सुमिरि सुमिरि भए मतवाले, जामण मरण सब भूलि गए।—दादू०, पुं० ५६६।

यौ०—जामणमरण = जन्म और मृत्यु।

जामदग्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र। परशुराम।

जामदानी—संज्ञा स्त्री० [फा० जामहदानी > जामादानी] १. कपड़ों की पैटी। चमड़े का सटूक जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते हैं। २ एक प्रकार का कड़ा हुआ फूलदार कपड़ा। बूटीदार महीन कपड़ा। ३ शीशे या धातु की बनी हुई छोटी सटूकची जिसमें बच्चे अपनी खेलने की चीजें रखते हैं।

जामन^१—संज्ञा पुं० [हि० जमाना] वह थोड़ा सा दही या घीर कोई छट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमाकर दही बनाने के लिये टावा जाता है। उ०—फिर कछु फिर पीरि तें फिर चितई मुमुकाय। भाई जामन लेन कौं नहैं चली जमाय।—बिहारी (शब्द०)।

जामन^२—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २ आलू बुखारे की आति का एक पेड़। पारस नाम का वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पंजाब से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है। इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चोपायों को खिलाई जाती हैं। लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं। इसे पारस भी कहते हैं।

जामन^३—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, पुं० हि० जामण] जन्म। उ०—सुनि धनुषधारी, भरजो हमारी यह भेट दीजे मय भारी जामन मरन को।—रघु० क०, पुं० २८५।

जामना^४—क्रि० प्र० [हि० जमाना] दे० 'जमाना'। उ०—ऊपर बाँसे तुरा बहि जामा।—बुखरी (शब्द०)।

जामनि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] रात्रि। यामिनी। निशा।

जामनी—वि० [सं० यावनी] दे० 'यावनी'।

जाम वेतुआ—संज्ञा पुं० [हि० आम + वेत] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बाँस प्रायः घरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है। यह बाँस दूर बनाने, छत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है।

जामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तन। वि० दे० 'यामल' जैसे, रत्न जामल।

जामवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जामवान्' । उ०—जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमत हृदय प्रति भाए ।—मानस, ५।१।

जामान^७—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जामवान्' । उ०—जामवान भगद सुग्रीव तथा कोउ रावन ।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ४३।

जामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामह] १. पहनावा । कपड़ा । वस्त्र । उ०—सत के सेल्ही जुगत के जामा छिमा डाल ठनकाई ।—कबीर रा०, भा० २, पृ० १३२ । २. एक प्रकार का घुटने के नीचे बड़े धरे का पुराना पहनावा । उ०—हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा रखते हैं ।—भारतेंदु प्र०, भा० १ पृ० २४६ ।

विशेष—इस पहनावे का नीचे का धेरा बहुत बड़ा और लहंगे की तरह चुननदार होता है । पेट के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढंग की होती है । पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहनकर जाते थे । यह पहनावा प्राचीन कश्मीर का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हूमा होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है, तथापि प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहनावा प्रचलित नहीं था । हिंदुओं में अवतक विवाह के अवसर पर यह पहनावा दुल्हे को पहनाया जाता है ।

मुहा०—जामे से बाहर होना = भापे से बाहर होना । अत्यंत श्लोष करना । जामे में फूला न समाना = अत्यंत आनंदित होना ।

यौ०—जामाजेव = वह जिसके शरीर पर वस्त्र शोभा पाता हो । जामादार = कपड़ों की देखभाल करनेवाला नौकर । जामा-पोश = वस्त्रयुक्त परिधानयुक्त ।

जामात—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] १. दामाद । कन्या का पति । उ०—सादर पुनि भेटे जामाता । रूपसील गुननिधि सब आता ।—तुलसी (शब्द०) । २. हुरहुर का पीषा । हुलहुल ।

जामातु^७—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामातृक—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद [को०] ।

जामानी[†]—वि० [हि०] दे० 'जामुनी' । उ०—कहीं बेंगनी जामानी तो कहीं कल्पई कहीं सुरमई । इन रंगों में डूबो गई मन, सध्या पावस की ।—मिष्ट्री०, पृ० ७६ ।

जामि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहिन । भगिनी । २. लड़की । कन्या । ३. पुत्रवधू । बहू । पतोहू । ४. अपने सधध या गोत्र की स्त्री । ५. कुल स्त्री । घर की बहू बेटो ।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने भगिनी, सविह की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू आदि किया है । मनु ने लिखा है कि जिन घर में जामि प्रतिपूजित होती है, उसमें सुख की वृद्धि होती है, और जिसमें अपमानित होती है, उस कुल का नाश हो जाता है ।

जामि^२—संज्ञा पुं० [सं० याम] दे० 'याम' और 'जाम' उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज हैगि दिवपत लागि । दुतिय जाम सगीत उछव रस किति काव्य जगि ।—पृ० रा०, ६।११।

जामिक^७—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरुआ । पहरा देनेवाला । रक्षक । उ०—चरन पीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवां स्थान ।

जामित्र वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं ।

विशेष—शुभ कर्म का जो काल हो, उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य, शनि या मंगल हो, तब जामित्र-वेध होता है । किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पापग्रह होने से ही जामित्रवेध होता है । किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने या शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्रवेध का दोष नहीं रह जाता ।

जामिन^१—संज्ञा पुं० [अ० जामिन] १. जिम्मेदार । जमानत करनेवाला । इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य करेगा या न करेगा, तो मैं उस कार्य की पूर्ति करूंगा या दंड सहूंगा । प्रतिभू । उ०—तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६५१ ।

कि० प्र०—होना ।

२. दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनों नलियों को प्रसंग रखने के लिये चिलमगदें और जूल के बीच में बांधी जाती है । ३. दूध जमाने की वस्तु । दे० 'जामन' ।

जामिन^२^७—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' । उ०—काम लुबध बोली सब कामिन । चार जाम गई जागत जामिन ।—पृ० रा०, १।४१० ।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० जामिनदार] जमानत करनेवाला ।

जामिनी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' । उ०—सुखद सुहाई सरद की कैसी जामिनी जात ।—अनेकार्य०, पृ० ८३ ।

जामिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' ।

जामिनी^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा] जमानत । जिम्मेदारी ।

जामी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रामी] १. दे० 'ग्रामी' । २. दे० 'जामि' ।

जामी^२^७—संज्ञा पुं० [हि० जनमना या जमना] बाप । पिता (हि०) ।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] गरम देशों में होनेवाला एक सदाबहार पेड़ । जाम । जवू ।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है । यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आपसे आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है । इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं । बैसाख जेठ में इसमें मजरी लगती है जिसके फल जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई

पढ़ते हैं जो घटने पर दो तीन भगुल लवे देर के प्रकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के और फिर खूब काले हो जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्रायः बोलते हैं। फलों का स्वाद कर्मेलापन लिए मीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में लगाने तथा खेती के सामान बनाने के काम में प्राती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली, यकृत रोग प्रादि की दवा है। गोघ्रा में इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूत्र के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पेड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक में जामुन का फल श्राही, रुखा तथा कफ, पित्त और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जवू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महास्कषा। राजार्हा। राजफला। शुक्रप्रिया। मोदमादिनी। जवुल।

जामुनी—वि० [हि० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भागिनेय। भाजा। बहिन का लडका।

जामेवार—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी जमीन पर वेलवृटे रहते हैं। २. एक प्रकार की छीट जिसकी वृटी दुशाले की चाल की होती है।

जायंट—वि० [अ०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। सयुक्त। जैसे, जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिविलियन होता है। जट।

जायँ^१—क्रि० वि० [अ० जायम] व्यर्थ। वृथा। निष्फल।

जायँ^२—अव्य० [फ्रा जा (= ठीक)] वाजिब। मुनासिब। ठीक। उचित। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जाय^३—अव्य० [अ० जायम (= वृथा)] वृथा। निष्फल। व्यर्थ। वेकार। उ०—(क) जाय जीव विनु देह सुहाई। वादि मोर सब विनु रघुराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तात जाय जिन कहू गलानी। ईस अधीन जीव गति जानो।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जेहि देह सनेह न रावरे मो ऐसी देह धराइ जो जाय जिए।—तुलसी (शब्द०)।

जायँ^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की मूतकर पकाई हुई दाल।

जाय^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० 'जा' का योगिक रूप] जगह। स्थान। मोका।

यौ०—जायनमाज। जायपनाह, जायरहाइरा = निवास स्थान।

जायँ^६—वि० [सं० जात] जन्मा हुआ। पैदा। उत्पन्न। जैसे—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाता निष्फल हुआ।

जायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीला चदन।

जायका—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जाइकह, जायकह] खाने पीने की चीजों का मजा। स्वाद। लज्जत।

क्रि० प्र०—लेना।

जायकेदार—वि० [अ० जायकह + फ्रा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जो खाने या पीने में अच्छा काम पड़े।

जायचा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० जायचह] जन्मकुहली। जन्मपत्री।

जायज—वि० [अ० जायज] यथार्थ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाजिब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायजा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जायजह] १. जाँच। पड़ताल।

मुहा०—जायजा देना = हिसाब समझाना। जायजा लेना = पड़ताल करना। जाँचना।

२. हाजिरी। गिनती।

जायजरूर—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० जा + अ० जरूर] दृढ़ी। पाखाना।

जायद—वि० [फ्रा० जायद] १ ज्यादा। अधिक। २ फालतू। अतिरिक्त।

जायदाद—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] भूमि, धन या सामान प्रादि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, घसबाव प्रादि। गैरमनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुर्पा प्रादि।

जायदाद गैरमनकूला—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा जायदाद + अ० गैरमनकूलह] वह संपत्ति जो हटाई बढाई न जा सके। स्थावर संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद जौजियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० जौजियत] वह संपत्ति जिसपर स्त्री का अधिकार हो। स्त्रीधन।

जायदाद मकफूला—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मकफूलह] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मनकूलह] चल संपत्ति। जंगम संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद मुतनाजिआ—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायदाद + अ० मुतनाजिअह] वह संपत्ति जिसके अधिकार प्रादि के विषय में कोई झगड़ा हो। विवादप्रस्त संपत्ति।

जायदाद शौहरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जायनमाज] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछोना जिसपर बैठकर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपनाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] आश्रय या पनाह का स्थान। आश्रय-गृह [स्त्री०]।

जायपत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] दे० 'जावित्री'।

जायफरा—संज्ञा पुं० [सं० जातिफल, जातीफल] दे० 'जायफल' ।

जायफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल, प्रा० जाइफल] अखरोट की तरह का पर उससे छोटा, प्रायः जामुन के बराबर, एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है । जातीफल ।

पर्या०—कोयल । सुमनफल । कोश । जातिशस्य । शालूक । मालतीफल । मज्जसार । जातिसार । पुट ।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०, ३५ हाथ ऊँचा और सदा-बहार होता है, तथा मलाका, जावा और बंटेविया आदि द्वीपों में पाया जाता है । दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं । ताजे बीज चोकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं । इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें निरर्थक सींचने की आवश्यकता होती है । जब पौधे ठेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५-२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं । यदि उनकी जड़ों के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घासपात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं । इसके नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं । जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को अलग अलग कर देते हैं और प्रति माह दस मादा पेड़ों के पास उस और एक नर पेड़ लगा देते हैं जिधर से हवा अधिक घाती है । इस प्रकार नर पौधों का पुपराग चढ़कर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड़ फलने लगते हैं । प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पंद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है । एक अच्छे पेड़ में प्रतिवर्ष प्रायः षेढ़ दो हजार फल लगते हैं । फल बहुधा रात के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं । फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतारकर अलग सुखा लिया जाता है । इसी सुखे हुए ऊपरी छिलके को जावित्री कहते हैं । छिलका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है । इस छिलके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है । सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिस रूप में वे बाजार में बिकने जाते हैं । जायफल में से एक प्रकार का सुगंधित तेल और अरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंध बढ़ाने अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है । जायफल की बुकनी या छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते हैं । भारतवर्ष में जायफल और जावित्री का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है । वैद्यक में इसे कफ, घा, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, खरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, बलवर्धक तथा त्रिदोष, मुख की विरसता, साँसी, वमन, पीनस और हृद्रोग आदि को दूर करनेवाला माना है ।

जायरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जमीन बुंदेलख और राजपूताने की पत्थरीली भूमि में नदियों के पास होती है ।

जायल—वि० [प्रा० या अ० जाइल] जिसका नाश हो चुका हो । विनष्ट । समाप्त । वरवाद ।

जायस—संज्ञा पुं० रायबरेली जिले की एक तहसील तथा प्रसिद्ध

प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी कबीरों की गद्दी है । उ०—जायस नगर धरम ग्रन्थानू । तहाँ प्राइ कवि कीन्ह वस्तानू । —जायसी प्र०, पृ० ६ ।

विशेष—यहाँ मुसलमान विद्वान् बहुत दिनों से होते आए हैं । बहुत सी जातियाँ घरना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं । पद्मावत या पद्मावती ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद यहीं के निवासी थे और यही उन्होंने पद्मावत की रचना की थी । उनका प्रसिद्ध तख्त नाम 'जायसी' इसी शब्द से बना है ।

जायसवाल—संज्ञा पुं० [हि० जायस] १ जायस का रहनेवाला व्यक्ति । २. वनियों की एक शाखा ।

जायसी^१—वि० [हि० जायस] जायस का रहनेवाला । जायस सभ्य । जायस का ।

जायसी^२—संज्ञा पुं० १ जायस का व्यक्ति या पदार्थ । २. प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी का संक्षिप्त नाम ।

जाया^१—संज्ञा स्त्री [म०] १. विवाहिता स्त्री । पत्नी । जोरु । विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो । उ०—जरा मरन ते रहित धमाया । मात पिता सुत बधु न जाया ।—यूर (शब्द०) । २ उपजाति पुत का सत्तवाँ भद्र जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) १५, ५५, १५, ५, ५ और चौथे चरण में (त त ज ग ग) ५५, ५५, १५, ५, ५ होता है । ३. जन्मकुंडली में लग्न से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है ।

जाया^२—वि० [अ० जाये या प्रा० जायह्] क्षराव । नष्ट । व्यर्थ । लोपा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना । —जाना । —होना ।

जायाघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में ग्रहों का एक योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब जन्मकुंडली में लग्न से सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है । जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जोती ।

२. वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो । ३. शरीर में का तिल ।

जायाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ दयला पक्षी । २ अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपाजित करनेवाला । नट । वेश्या का पति ।

जायानुजीवी—संज्ञा पुं० [म० जायानुजीविन्] दे० 'जायाजीव' ।

जायो—संज्ञा पुं० [सं० जायिन्] सगीत में ध्रुप की जाति का एक प्रकार का वाद्य ।

जायु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ औषध । दवा । २. वेश । भिषग ।

जायु^२—वि० जीतनेवाला । जेता ।

जार^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित संबंध हो । उपपति ।

पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष । यार । भाशना ।

जार^२—वि० मारनेवाला । नाश करनेवाला ।

जार^३—संज्ञा पुं० [ले० सीगर] रूस के सम्राट की उपाधि ।

जार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जाल] दे० 'जाल' । उ०—कहहि कबीर पुकारि के, सबका उहे विचार । कहा हमार मानै नहि, किम छूटे भ्रम जार ।—कबीर बी०, पृ० १६५ ।

जार^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जार] स्थान । जगह [को०] ।

जार^३—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] अंचार आदि रखने का मिट्टी, चीनी मिट्टी या शीश का वर्तन ।

जारक—वि० [सं०] १ जलानेवाला । क्षीण या नष्ट करनेवाला । २. पाचक [को०] ।

जारकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार । छिनामा ।

जारज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह सत्तान जो उसके जार या उपपत्ति से उत्पन्न हुई हो । दोगली सत्तान ।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज सत्तान दो प्रकार के माने गए हैं । जो सत्तान स्त्री के विवाहित पति के जीवनकाल में उसके उपपत्ति से उत्पन्न हो वह 'कुल' और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह 'मोलक' कहलाती है । हिंदू धर्मशास्त्रानुसार जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म कार्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता ।

जारजन्मा—वि० [सं० जारजन्मन्] जार से उत्पन्न । जारज [को०] ।

जारजयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पढ़नेवाला एक प्रकार का योन जिससे यह सिद्धांत बिकाला जाता है कि वह बालक अपने भ्रंसली पिता के वीर्य से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपत्ति के वीर्य से उत्पन्न है । उ०—चित पितमारन जोगु गनि भयो भये सुत सोगु । फिर हुनस्थो जिय जोहसी समझे जारज जोगु ।—विहारी र०, दो० ५७५ ।

विशेष—बासक की जन्मकुंडली में यदि सन या चंद्रमा पर वृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चंद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है । द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में रवि, शनि या मंगलवार के दिन यदि कुत्तिका, भृगुशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है । इसके प्रतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी हैं जिनकी उपस्थिति में जारज योग होने पर भी बासक जारज नहीं माना जाता ।

जारजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जारज ।

जारजेट—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जारजेट] एक प्रकार का महीन तथा बढ़िया कपड़ा ।

जारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पारे का भारहवीं सस्कार । २ जलाना । भस्म करना । ३ धातुओं को फूँकना ।

विशेष—वैद्यक में सोना, चांदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को औषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँककर भस्म करने को 'जारण' कहते हैं ।

जारणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा । सफेद जीरा ।

जारदुग्धी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्यमार्ग की एक वीर्या का नाम जिसमें बराहमिह्र के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ।

जारनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जारण या हिं० जलाना] १ जलाने की मकड़ी । ईंधन । २ जलाने की क्रिया या भाव ।

जारनी—क्रि० सं० [सं० जारण, हिं० 'जलाना'] दे० 'जलाना' ।

जारभरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उपपत्ति रखनेवाली स्त्री । परपुरुष से संबंध रखनेवाली स्त्री [को०] ।

जारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जनाना] सोनार आदि की गट्टी का वह भाग जिसमें धाग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज मलाई या तपाई जाती है । इसके भीचे एक एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाँकी की हवा जाती है ।

जारा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जाया] दे० 'जाना' । उ०—रोमराजि ज्योतिष भारा । अस्थि सैल सरिता नल जारा ।—मानस, ६।१५ ।

जारिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित संबंध हो । दुरधरिणी स्त्री ।

जारित—वि० [सं०] १ गलाया हुआ । पचाया हुआ । २ (धातु) ढोबी हुई । भारी हुई [को०] ।

जारी^१—वि० [प्र०] १. बहता हुआ । प्रवाहित । जैसे, खून का जारी होना । २ चलता हुआ । प्रचलित । जैसे,—वह प्रसंग जारी है या बंद हो गया ?

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

जारी^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जारी (= रोना)] १ एक प्रकार का गान जिससे मुहम्मद में ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं । २ खन । विलाप ।

यौ०—गिरियाँ व जारी = रोना पीटना । विलाप ।

जारी^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] भरवेरी का पोषा ।

जारी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्यय)] परस्त्री गमन । जार की क्रिया या भाव ।

जारी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जाली' । उ०—जारी घटारी, झरोखन, मोखन झकित दुरि दुरि ठौर ठौर ते परत काँकरी ।—नद० प्र०, पृ० १४३ ।

जारुथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम ।

जारुधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छत्ते का केसर माना जाता है ।

जारुथि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जारुथ्य] दे० 'जारुथ्य' ।

जारुथ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह अवयव यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय ।

जारोव—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] झाड़ू । बोहारी । कूँचा ।

जारोवकश^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] झाड़ू देनेवाला व्यक्ति ।

जारोवकश^२—वि० झाड़ू देनेवाला ।

जारोबकशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] झाड़ू देने का काम [को०] ।

जार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग ।

जालंधर—संज्ञा पुं० [सं० जालन्धर] १ एक ऋषि का नाम । २ जलंधर नाम का दैत्य । ३. पंजाब प्रांत का एक नगर ।

जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जालन्धर (= एक दैत्य)] मायिक विद्या । माया । इद्रजाल ।

जाल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है ।

विशेष—जाल में बहुत से सूतों, रस्सियों या तारों आदि को सड़े और आड़े फैलाकर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बुनना ।

जौं—जालकर्म = मछुए का घघा या पेशा । जालप्रयित = जाल में फँसा हुआ । जाखजीवी ।

मुहा०—जाल डालना या फँकना = मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जल में जाल छोड़ना । जाल फैलाना या बिछाना = चिड़ियों आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना ।

२ एक में झोतझोत बुने या गुथे हुए बहुत से तारों या रेशों का समूह । ३ वह युक्ति जो किसी को फँसाने या वश में करने के लिये की जाय । जैसे,—तुम उनके जाल से नहीं बच सकते ।

मुहा०—जाल फैलाना या बिछाना = किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना ।

४ मकड़ी का जाला । ५ समूह । जैसे,—पक्षजाल । ६ इद्र-जाल । ७ गवाक्ष । झरोखा । ८ ग्रहकार । अभिमान । ९ वनस्पति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ नमक । क्षार । खार । १० कदम का पेड़ । ११ एक प्रकार की तोप । उ०—जाल जजाल ह्यनाल गयनाल हूँ बान नीसान फहरान लागे ।—सूदन (शब्द०) । १२ फूल की कली । १३. दे० 'जाली' । १४ वह झिल्ली जो जलपक्षियों के पंजों को युक्त करती है (को०) । १५. माँखों का एक रोग (को०) ।

जाल^२—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल] ज्वाला । सपट । उ०—धगि जाल किन तन उठत किन तन तन बरसै मेह । चक्रपवन झरूर के केतन फकर खेह ।—पृ० रा०, ६।५५ ।

जाल^३—संज्ञा पुं० [प्र० जमल । मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अभिप्राय से हो । फरेब । धोखा । झूठी कार्रवाई ।

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—रेखना ।

जाल^४—संज्ञा स्त्री० [देशी जाड़ (= गुल्म)] राजस्थान में होनेवाला एक वृक्षविशेष । उ०—थल मध्यह्न जल बाहिरी, तूँ कोई नीली जाल । कई तूँ सीची सज्जणो, कई दूठठ अगालि ।—ढोला०, दू० ३६ ।

जालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जाल । २ कली । ३ समूह । ४ गवाक्ष । झरोखा । ५ मोतियों का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण । ६ केला । ७. चिड़ियों का घोंसला । ८. गर्व । अभिमान ।

जालकारक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा ।

जालकि—संज्ञा पुं० [सं०] १ शायो से घपती ओविका निर्वाह करने-वाला मनुष्य ।

जालविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ी ।

जालकिरा—संज्ञा स्त्री० [हि० जाल + किरा] परतला मिली हुई बाँ पेटी जिसके साथ तलवार भी लगी हो ।

जालकी—संज्ञा पुं० [सं० जालकिन्] बादल (को०) ।

जालकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकड़ा । २ वह कीड़ा जो मकड़ी के जाल में फँसा हो ।

जालगर्वभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग ।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है और बिना पके ही इसमें जलन उत्पन्न होती है । इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है ।

जालगोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दही मथने की हाँडी (को०) ।

जालजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जालजीविन्] धीवर । मछुआ ।

जालदार—वि० [सं० जाल + हि० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास छेद हो । जालवाला । जालीदार । २ फदेवाला । फदेदार (को०) ।

जालना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जलाना' । उ०—दाहू केइ जाले केइ जालिये, केइ जालन जाहि । केइ जालन की केरे, दाहू जीवन नाहि ।—दाहू० चानी, पृ० ३६७ ।

जालनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जालिनी' ४ । उ०—जालनी यह तीव्र दाह करके समुक्त और मांस के जाल से व्याप्त होती है ।—माधव०, पृ० १८७ ।

जालपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ हंस । २. जाबालि ऋषि के एक शिष्य का नाम । ३ एक प्राचीन देश का नाम । ४ वह पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार झिल्ली से ढँकी हों ।

जालप्राया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच । जिरह अधिकतर । सजोपा ।

जालबंद—संज्ञा पुं० [हि० जाल + फा० बंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह बेलें बनी होती हैं ।

जालबुर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसमें छोटी छोटी डालियाँ होती हैं ।

जालमु—वि० [हि०] दे० 'जालिम' । उ०—विघन करत है चपेट पकड़ फेट काल की । नामा दर्जी जालम बिहू राजा का गुलाम ।—दक्खिनी०, पृ० ४५ ।

जालरंध—संज्ञा पुं० [सं० जालरन्ध्र] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद । उ०—जालरंध भग पंगु

को कछु उजास सो पाइ । पीठि दिए जगत्यो रही दीठि
झरोखे लाइ ।—विहारी (शब्द०) ।

जालव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बलवत्
का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था ।

जालसाज—संज्ञा पुं० [प्र० जमल + का० साज] वह जो दूसरों
को धोखा देने के लिये झूठी कार्रवाई करे ।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री० [जाल + साजीप्र० जमल + का० साजी]
फरेब या जाल करने का काम । दगाबाजी ।

जाली^१—संज्ञा पुं० [सं० जाल] १ मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले तारों
का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और
दूसरे कीड़े मकोड़ों आदि को फँसाती है । वि० दे० 'मकड़ी' ।

विशेष—इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और
छतों आदि पर लगे रहते हैं ।

२. भाँख का रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या
झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण कुछ कम दिखाई
पड़ता है ।

विशेष—यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार के मूल आदि के
जमने के कारण होता है, और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती
जाती है, त्यों त्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है ।
झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता
है, तब इसे माड़ा कहते हैं ।

३. सूत या सन आदि का बना हुआ यह जाल जिसमें घास भुसा
आदि पदार्थ बंधे जाते हैं । ४ एक प्रकार का सरपत जिससे
चीनी साफ की जाती है । ५ पानी रखने का मिट्टी का बड़ा
वर्तन । ६ दे० 'जाल' ।

जाला^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] दे० 'ज्वाला' । उ०—इक मुख
अग्नि जाला उठत, इक परह देह बरिखा उठत ।—पृ० रा०,
६। ४५३ ।

जालाख—संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा । गवाक्ष ।

जालाप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरल मोपड़ि [को०] ।

जालिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ कैवर्ती जाल बुननेवाला व्यक्ति ।

२. जाल से भृगादि जंतुओं को फँसानेवाला व्यक्ति । कंकटक ।

३. इन्द्रजालिक । मदारी । बाजीगर । ४ 'मकड़ी' (दि०) ।

५. प्रदेश आदि का प्रधान शासक (को०) ।

जालिक^२—वि० जाल से जीविका अर्जित करनेवाला (को०) ।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाण । फटा । २ जाली । ३ विषया
स्थी । ४. कवच । जिरह बकतर । सजोपा । ५. मकड़ी ।

६ लोहा । ७ समूह । उ०—प्रनतजन कुमुदवन इडुकर
जालिका । जालसि अभिमान माहिपेस यह कालिका ।

—तुलसी (शब्द०) । ८ स्त्रियों के मुख पर डालनेवाला
आभरण या परदा । मुख पर डाली जानेवाली जाली (को०) ।

९ जोक (को०) । १०. केला (को०) । ११ एक प्रकार का
वस्त्र (को०) ।

जालिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरौई । घिया । २ वह स्थान
जहाँ चित्र बनते हैं । चित्रशाला । ३ परवल की लता । ४.
पिडिका, रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाहयुक्त
फुसियाँ हो जाती हैं । यह केवल प्रमेह के रोगियों को
होता है ।

जालिनी^७—वि० [हि० जालना] जलानेवाली ।

जालिनीफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरौई । २ घिया ।

जालिम—वि० [प्र० जालिम जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता
का व्यवहार करता हो । जुलम करनेवाला । अत्याचारी ।

जालिमाना—वि० [प्र० जालिम, का० जालिमानहू] अत्याचार
संबंधी (को०) । जालसाज । फरेब या धोखा देनेवाला ।

जालिया^१—वि० [हि० जाल = (फरेब) + इया (प्रत्य०)] जाल फरेब
करने या धोखा देनेवाला ।

जालिया^२—संज्ञा पुं० [हि० जाल + इया (प्रत्य०)] जाल की
सहायता से मछली पकड़नेवाला । धीवर ।

जाली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरौड़ी । २ परवल ।

जाली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० जाल] १ किसी चीज, विशेषतः लकड़ी
पत्थर या चातु आदि, में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों
का समूह ।

क्रि० प्र०—काटना ।—बनाना ।

२. कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या
पत्ती आदि के बीच में बहुत से छोटे छोटे छेद बनाए
जाते हैं ।

क्रि० प्र०—काटना ।—निकालना ।—हालना ।—भरना ।
—बनाना ।

३. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते
हैं । ४. वह मकड़ी जो चारों-फाटने के गहाँसे के, दस्ते पर
लगी रहती है । ५. कच्चे घाम के सुंदर गुठली के ऊपर का
वह तनुसमूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे
से फँका हो जाता है । इसके उत्पन्न होने के उपरांत घाम के
फल का पकना आरंभ होता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

६ दे० 'जाला' ।

जाली^३—संज्ञा स्त्री० [प्र०] एक प्रकार की छोटी नाव ।

जाली^४—वि० [प्र० जमल + हि० ई (प्रत्य०)] नकसी । घनावटी ।
झूठा । जैसे, जाली सिक्का, जाली दस्तावेज ।

यौ०—जाली नोट = नकसी नोट ।

जालीदार—वि० [देश०] जिसमें जाली घनी या पड़ी हो ।

जालीलेट—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लेट] एक प्रकार का कपड़ा
जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं ।

जालीलोटे^१—संज्ञा पुं० [हि० जाली + लोट] दे० 'जालीलेट' ।

जालीलोटे^२—संज्ञा पुं० [हि० जाली + प्र० नोट] दे० 'जाली नोट' ।

जालोर^७—संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर में विहार या प्रग्रहार का नाम [को०]।

जाल्म^१—वि० [सं०] १. पामर। नीच। २. मूर्ख। बेवकूफ। ३. क्रूर। कठोर। निष्ठुर (को०)।

जाल्म^२—संज्ञा पुं० १. दुष्ट, घृत या कपटी व्यक्ति। १. निर्धन या पदभ्रष्ट व्यक्ति। ३. बुरा पाठ या वाचन करनेवाला व्यक्ति [को०]।

जाल्मक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जाल्मिका] १. वह जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मण के साथ द्वेष करे। २. नीच या अधम या तुच्छ व्यक्ति।

जाल्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जाल्य^२—वि० जाल में फँसाए जाने योग्य [को०]।

जावक^१—संज्ञा पुं० [सं० यावक] लाह से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग। घलता। महावर।

जावत^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जावत'। उ०—जावत जगति हस्ति श्री चाँटा। सब कहै भुगुति रात दिन चाँटा। —जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १२३।

जावत^२—अव्य [सं० यावत्] दे० 'यावत्'।

जावन^७—संज्ञा पुं० [हि० जावना] जाने की क्रिया या भाव। जाना। उ०—नगे हि जावन नगे हि जावन झूठी रबिया बाजी। या दुनिया में जीवन थोड़ा गर्व करे सो पाजी। —कबीर श०, भा० २, पृ० ४८।

जान^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आमन'। उ०—(क) नई दोहनी पौछि पखारी घरि निर्धूम खीर पर ताये। तामें मिलि मिश्रित मिश्री करि है कपूर पुट जावन नायो। —सूर (शब्द०)। (ख) तोप भरत तब छमा जुबावह। धृति सम जावन देख जमावह —तुलसी (शब्द०)।

जाना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जाना'। उ०—ऊँपर बीठा जावता, हलहल करह करह। एराकी ओखभिया, जइसह कैती बूर। —ढोला०, पृ० ६४१।

जावना^२—क्रि० प्र० [हि० जनना] जन्म लेना। उत्पन्न होना। उ०—कहै कि हमरे बालक जावे, बड़ी प्रबुल दीक्षी। —चरण० वानी, पृ० ७३।

जावन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। तेजी। २. शीघ्रता [को०]।

जावरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊख के रस में पकाई गई खीर। खलीर। २. कद्दू के साथ पकाया हुआ चावल।

जावा^१—संज्ञा पुं० पूर्वी एशिया का एक द्वीप। यवद्वीप।

जावा^२—संज्ञा पुं० [हि० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुम्पाई जाती है। बेसवार। जाया।

जावित्री—संज्ञा स्त्री [सं० जातिपत्री] जायफल के ऊपर का छिलका जो बहुत सुगंधित होता है और औषध के काम में आता है। दे० 'जायफल'।

विशेष—वैद्यक में इसे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, धमन श्वास, तृषा, कृमि तथा विष का नाशक माना जाता है।

जावक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चदन।

जापनी^७—[हि०] दे० 'यक्षिणी'। उ०—राधों करी जापनी पूजा। चहे सुभाव दिखावे पूजा। —जायसी (शब्द०)।

जापरी^७—संज्ञा स्त्री [हि० जापनी] नटिनी। उ०—गीति गरवि जापरी मत्त भए मतरुफ गायह। —बीर्ति०, पृ० ४२।

जासु^७—वि० [सं० यस्य, प्रा० जन्त] जिंगवा।

जासू^१—संज्ञा पुं० [देश०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है।

जासू^२—वि० [हि० जासु] दे० 'जासु'।

जासूस—संज्ञा पुं० [अ०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषतः अपराध आदि का पता लगानेवाला। भेदिया। मुखविर। खुफिया।

जासूसी—संज्ञा स्त्री [हि०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया। जासूस का काम।

जासो^७—सर्व० [हि०] जिससे। उ०—नददास दृष्टि आसों सनु की सरुनि पर ता ऊपर चद धारों करति भारति नित। —नद० प्र०, पृ० ३७७।

जास्ती^१—वि० [प्र० ज्यादाती से देश० रूप] अधिक। ज्यादा। उ०—गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव भर तोलते तो छद् से जास्ती सुपारी नहीं चढ़ा पाते तराजू पर। —नई०, पृ० ७८।

जास्ती^२—संज्ञा स्त्री ज्यादाती।

जास्पति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। जेवाई। दामाद।

जाह^१—संज्ञा पुं० [फा०] १. पद। १. मान। प्रतिष्ठा। ३. गौरव [को०]।

जाह^२—संज्ञा स्त्री [सं० ज्या] धनुष की डोरी। प्रत्यक्षा। उ०—वाम हाथ लीध बाहू जीभए कसीस जाह। —रघु०, पृ० ७६।

जाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरगिट। २. जोक। ३. बिछोना। बिस्तर। ४. घोंघा।

जाहपरस्त—वि० [फा०] १. प्रतिष्ठा का लोभी। २. पदलोलुप। ३. धन लोगों या धर्मियों की भक्ति करनेवाला [को०]।

जाहरी^१—वि० [प्र० जाहिर] दे० 'जाहिर'।

जाहिद^१—संज्ञा पुं० [प्र० जाहिद] धर्मनिष्ठ। उ०—नही है जाहिदो को मे सेंती काम। लिखा है उनकी पेशानी मे सिरका। —कविता को०, भा० ४, पृ० १६।

जाहिर—वि० [प्र० जाहिर] १. जो छिपा न हो। जो सबके सामने हो। प्रगट। प्रकाशित। खुला हुआ। २. विदित। जाना हुआ।

यौ०—जाहिर जहूर=जाहिर। जाहिरपरस्त=ऊपरी बातों पर धृष्टि रखनेवाला।

जाहि^७—संज्ञा स्त्री [सं० जाति] मालती लता तथा उसका फूल।

जाहिरा—क्रि० वि० [प्र०] देखने में। प्रगट रूप में। प्रत्यक्ष में। जैसे,—जाहिरा तो यह बात नहीं मालूम होती आगे ईश्वर जाने।

जाहिल—वि० [प्र०] १. मूर्ख। अनाड़ी। अज्ञान। नासमझ। २. अनपढ़। विद्याहीन। जो कुछ पढ़ा लिखा न हो।

जाही—सखा स्त्री० [म० जातो] १ चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल । २. एक प्रकार की आतिशवाजी ।

जाहुप—सखा पुं० [म०] एक व्यक्ति का नाम जिमकी रक्षा सखिन् करते हैं [को०] ।

जाहूवी—सखा स्त्री [म०] जहू ऋषि से उत्पन्न, गंगा ।

जि(उ)—सर्व [हि० जिन] जिसने । जो ।

विशेष—'जिन' का यह रूप प्राचीन हिंदी काव्य में मिलता है ।

जिक—सखा स्त्री० [अ० जिक] जन्ते का धार ।

विशेष—यह खार देखने में सफेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम में आता है । यह क्लोराइड आफ जिक, वा सलफेट आफ जिक को सोडियम, बेरियम वा कैल्सियम सलफाइड में घोलने या हट करने से बनता है । सलफाइड के नीचे तलछट बैठ जाती है जिसे निकालकर सुखाने के बाद लाल आंच में तपाकर ठंड पानी में बुझा लेते हैं । इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारों में विकती है । इसे सफेद भी कहते हैं । गुलाबजल या पानी में घोलकर इसे आँखों में डालते हैं जिससे आँख की जलन और दद दूर हो जाता है ।

यौ०—जिक आक्साइड ।

जिगनी—सखा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] जिगिन का पेट ।

जिगिनी—सखा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] दे० 'जिगनी' ।

जिगी—सखा स्त्री० [सं० जिङ्गी] मजीठ [को०] ।

जिजर—सखा पुं० [अ०] मदरख से बनी एक प्रकार की पेय । उ०—खन्ना ने जिजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाई ।—गोदान, पृ० १२७ ।

जिद्—सखा पुं० [अ० जिन या जिन्न] भूत प्रेत । मुसलमान भूत । दे० 'जिन' ।

जिद्^२—सखा पुं० [हि० जद्] दे० 'जद' ।

जिद्^३—सखा स्त्री० [देश०] दे० 'जिदगी' । उ०—दे गिरद गिरेंदा हवा वे जिद असाही छीनी है ।—घनानंद, पृ० १८० ।

जिदगानी—सखा स्त्री० [फा०] जीवन । जिदगी ।

जिदगी—सखा स्त्री० [फा०] १ जीवन ।

मुहा०—जिदगी से हाथ धोना = जीने से निराश होना । २ जीवनकाल । आयु ।

मुहा०—जिदगी का दिन पूरा करना वा भरना = (१) दिन काटना । जीवन बिताना । (२) मरने को होना । आसन्नमृत्यु होना । जिदगी का दुश्मन होना = जिदगी देना । मौत के मुँह में जाना । उ०—हाथी आया ही चाहता है क्यों जिदगी के दुश्मन हो गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८६ ।

जिदा—वि० [फा० जिदह] १. जीवित । जीता हुआ ।

यौ०—जिदादिल । जिदावाद = अमर हो ।

२ सक्रिय । सचेष्ट (को०) । ३ हरामरा (को०) ।

जिदादिल—वि० [फा० जिदह्दिल] [सखा जिदादिली] खुश-मिजाज । हंसोढ़ । दिल्लगीबाज । विनोदप्रिय ।

जिदादिली—सखा स्त्री० [फा० जिदह्दिली] प्रसन्न रहने और मनो-विनोद करने का भाव ।

जिदावाद—अव्य० [फा० जिदह्वाद] चिरजीवी हो । जीवित हो ।

यौ०—इनकषाव जिदावाद = आति चिरजीवी हो ।

जिस—सखा स्त्री० [फा०] १ प्रकार । किस्म । भाँति । २ वस्तु । द्रव्य । ३ सामग्री । सामान । ४ अनाज । गल्ला । ५ रसद ।

यौ०—जिसवार ।

५ आभरण । गहना (को०) । ६. लिंग (को०) । ७ जाति (को०) । ८ परिवार (को०) । ९. वर्ग (को०) । १०. पण्य द्रव्य या व्यापारिक वस्तु (को०) । ११ असबाब (को०) । १२ व्यवहार गणित (अकगणित) ।

यौ०—जिसवाना = भठारगृह ।

जिसवार—सखा पुं० [फा०] पटवारियों का एक कागज जिसमें वे अपने हलके के प्रत्येक खेत में बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं ।

जिबाना—क्रि० सं० [हि० जेबना का सक० रूप] दे० 'जिमाना' ।

जि—सखा पुं० [म० जि] पिशाच [को०] ।

जिअ(उ)—सखा पुं० [सं० जीव, प्रा० जिअ] दे० 'जी' । उ०—राम भगति भूषित जिअ जानी । मुनिहहि सुजन सराहि सुबानी ।—मानस, १।६ ।

जिअन(उ)—सखा पुं० [हि०] दे० 'जीवन' । उ०—मरन जिअन एही पंथ एही पास निरास । परा सो गया पतारहि तिरा सो गया कविलास ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २२६ ।

जिसीलगान—सखा पुं० [हि० जिसी + लगान] जिस के रूप में ली जानेवाली लगान । फसल के रूप में ली जानेवाली लगान ।

जिअन(उ)—सखा पुं० [सं० जीवन] जीवन । जीवन की पद्धति । उ०—जिअन मरन फलु दसरथ पावा । अड अनेक अमल जसु छावा ।—मानस, २।१५६ ।

जिअनार्—सखा पुं० [सं० जीवन] जीवन ।

जिअनार्(उ)†—क्रि० प्र० [हि० जीना] दे० 'जीना' ।

जिअनार्(उ)†—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जिलाना' । उ०—तासों बैर कबहुँ नहि कीजै । मारे मरिय जिअए जीजै ।—तुलसी (शब्द०) ।

जिउँ(उ)—अव्य० [सं० यथा; अप० जिवे] दे० 'ज्यो' या 'जिमि' ।

• उ०—ऊँची चढ़ि चारु गि जिउँ, मागि निहालइ मुग्ध ।—ढोला०, दू० १६ ।

जिउँ†—सखा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव' ।

जिउका—सखा स्त्री० [सं० जीविका] 'जीविका' ।

जिउकिया—सखा पुं० [हि० जीविका वा जिउका] १. जीविका करनेवाला । रोजगारी । २ पहाड़ी लोग जो दुग्ध जंगलों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे,—चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों में बेचते हैं ।

जिउ तंत(उ)—सखा पुं० [सं० जीव + तत्त्व] जी का तत्त्व । जी की बात । उ०—जेति नारि हसि पूछहि प्रमिय बचन जिउ-तत ।—जायसी ग्र०, पृ० १६४ ।

जिउतिया—संज्ञा स्त्री० [हि० जूतिया > सं० जीवितपुत्रिका] एक व्रत जो आश्विन कृष्णष्टमी के दिन होता है। दे० 'जिताष्टमी'।

विशेष—इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं, करती हैं। इसमें गले में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अनंत की तरह गाँठें होती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लषाष्टमी के दिन किया जाता है।

जिउनार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जैवनार'। उ०—भोजन श्वपच कीन्ह जिउनारा। सात बार घटा भक्तकारा।—कवीर म०, पृ० ४६३।

जिउलेवाँ—वि० [हि० जीव + सेवा] दे० 'जिवलेवाँ'।

जिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ब्रज का एक लोकगीत, जिसमें दो दल बनाकर प्रश्नोत्तर होता है।

जिकर—संज्ञा पुं० [हि० जिकिर] दे० 'जिकिर'। उ०—फिरे गेय का छत्र जिकर का मुस्क लगाई।—पलटू०, भा० १, पृ० १०६।

जिका^१—सर्व० [हि० जिसका या जिनका का सक्षिप्त रूप] दे० 'जिसका'। उ०—भावी सब रत मामली, प्रिया करद सिणगार। जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार।—ढोला०, दू० ३०३।

जिक्र—संज्ञा पुं० [अ० जिक्र] १. चर्चा। बातचीत। प्रसंग।

क्रि० प्र०—माना।—करना।—चलना।—चलाना।—छिड़ना।—छिड़ना।

यौ०—जिक्र मजकूर = बातचीत। चर्चा। जिक्रे—खैर = कुशल-चर्चा। शुभ चर्चा उ०—मतः सबसे पहले क्यों न कविसम्मेलनों ही का जिक्रे खैर किया जाय।—कुकुम। (सू०), पृ० २।

२ एक प्रकार का जप (को०)।

जिग^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यज्ञ'। उ०—हृण ताडका निज ठहरा। जिग मांड प्रारभ जाहरा।—रघु० रू०, पृ० ६७।

जिगलु^१—वि० [सं०] सिप्रगामी। तेज चलनेवाला (को०)।

जिगलु^२—संज्ञा पुं० प्राणवायु। श्वास (को०)।

जिगन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिगिन'।

जिगमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाने की इच्छा (को०)।

जिगमिषु—वि० [सं०] जाने का इच्छुक (को०)।

जिगर—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० यकृत] [वि० जिगरी] १ कलेजा।

यौ०—जिगर कुल्फ = जिगर का तासा। हृदयरूपी तासा। उ०—मुसकानि ओ सटकीली बानि प्रानि दिल में डोले। मलकें रत्न हलकें जिगर कुल्फ को जु खोले।—ब्रज० प्र०, पृ० ४१। जिगर खराश = (१) जिगर की छीसनेवाला। (२) माँप्रिय। दुःखदायी। जिगर गोसा। जिगरबद = पुत्र (ला०)। जिगर-सोज = (१) दिल जलानेवाला। (२) दिल का जला।

मुहा०—जिगर कबाब होना = (१) कलेजा पक जायों या जलना। (२) बुरी तरह कुढ़ना। जिगर के टुकड़े होना = कलेजे पर सदमा पहुँचना। भारी दुःख होना। जिगर धामकर बैठना = धसल दुःख से पीड़ित होना।

२ चित्त। मन। जीव। ३. साहस। हिम्मत। ४ गूदा। सत्त।

सार। ५. मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। ६ पुत्र। लडका (प्यार से)।

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जिगर + हि० कीड़ा] मेढों का रोग जिसमें उनके कलेजों में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हि० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी—वि० [फा०] १. दिली। मीतरी। २ अत्यंत घनिष्ठ। घमिन्नहृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिगिनी] एक ऊँचा जंगली पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड़ के रूप में दधर दधर लगते हैं। यह पत्तों और तराई के जंगलों में होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसेला लिप्ता है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात, घण, अतीसार, और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्या०—जिगिनी। भिगिनी। भिगी। सुनियसि। प्रमोदिनी। पावंती। कृष्णमालमसी।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। २ उद्योग। धवा। व्यवसाय। ३. लड़ने की इच्छा। युद्ध करने की इच्छा। (को०)। ४ प्रतिस्पर्धा। लाग डौट (को०)। ५ प्रमुखता (को०)।

जिगीषु—वि० [सं०] १ युद्ध की इच्छा रखनेवाला। २ विजय का इच्छुक (को०)।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारों तक मिलता है।

विशेष—इसे जकी, सिग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी भादा बादल कहलाती है।

जिघलु—वि० [सं०] बध की इच्छा रखनेवाला। शत्रु (को०)।

जिघत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भूख। खाने की इच्छा। २. प्रयास करना (को०)।

जिघत्सु—वि० [सं०] भूखा। भोजन की इच्छा रखनेवाला (को०)।

जिघांसक—वि० [सं०] मारनेवाला। बध करनेवाला (को०)।

जिघांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मारने की इच्छा। २. प्रतिहिंसा।

उ०—जिघांसा की-धृति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर प्रपंचा खाली सदेह पर ही दूसरों की सत्यानाश करने की इच्छा होगी।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १६०।

जिघांसु—वि० [सं०] दे० 'जिघांसक'।

जिघृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकड़ने की इच्छा (को०)।

जिघृक्षु—वि० [सं०] पकड़ने की इच्छा रखनेवाला (को०)।

जिघ्र—वि० [सं०] १ सदेही। सदेह या शंका करनेवाला। २. सूँघनेवाला। ३ समझनेवाला (को०)।

जिच्च—संज्ञा स्त्री० वि० [?] दे० 'जिच्च'।

जिच्च—संज्ञा स्त्री० [?] १ बेबसी। तगी। मजबूरी। २. शतरज

मे शाह की वह भवस्था जब उसे चलने का कोई घर न हो और न भदव में देने को मोहरा हो। ३ शतरज के खेल की वह भवस्था जिसमें किसी एक पक्ष का कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

जिञ्च^३—वि० विवश। मजबूर। तग।

जिजमान^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जजमान] दे० 'जजमान'। उ०—मनु तमगन लियो जीति चद्रमा सोतिन मध्य बँध्यो है। कै कवि निज जिजमान क्षय मे सुदर आइ बस्यो है।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४५।

जिजिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जीजी] बहन।

जिजिया^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिजियह्] १. कर। महसूल। २. वह कर या महसूल जो मुसलमानी अमलदारी में उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिजीविषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीने की इच्छा [को०]।

जिजीविषु—वि० [सं०] जीने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिज्ञापयिषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जताने या ज्ञापन की इच्छा [को०]।

जिज्ञापयिषु—वि० [सं०] जानने का इच्छुक [को०]।

जिज्ञासा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। २. पूछताछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात।

क्रि० प्र०—करना।

जिज्ञासित—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की गई हो। पूछा हुआ [को०]।

जिज्ञासितव्य—वि० [सं०] जिज्ञासा योग्य। पूछने योग्य [को०]।

जिज्ञास—वि० [सं०] १. जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञान-प्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी। २. मुमुक्षु [को०]।

जिज्ञासु—वि० [सं०] जिज्ञासु। दे० 'जिज्ञासु'।

जिज्ञास्य—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके संबंध में पूछताछ की जाय।

जिठाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेठाई'।

जिठानी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेठानी'।

जिणि^४—सर्व० [हि० जिन] दे० 'जिस'। उ०—जिणि देसे सज्जन वसई, तिणि दिसि वज्जल बाउ। उमाँ लगे मो लगसी, ऊ ही लाख पसाउ।—ढोला०, दू० ७४।

जित्—वि० [सं०] जीतनेवाला। जेता।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समासात् में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विष्वजित् इत्यादि।

जित^१—वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। बिसे दूसरे ने जीता हो।

जित^२^४—क्रि०, वि० [सं० यत्] जिघर। जिस और। उ०—जात है जित बाजि केशी जात है तित लोग।—केशव (शब्द०)।

यौ०—जित, तित = जहाँ तहाँ। वि० ३० 'जहाँ' के मुहावरे।

उ०—सम विषम बिहर वन सघन घन तहाँ सथ्य जित तित हुप्र। भूल्यो सुसग कवियन वनह और नहीं जन सग दुप्र।—पृ० रा०, ६।१३।

मुहा०—जित कित होकर जाना = अव्यवस्थित जाना। इधर

उधर जाना। उ०—पसु भर पसुप दवानल माही। चकित भए जित कित हूँ जाही।—नद० प्र०, पृ० ३१०।

जितक—वि० [हि० जित] दे० 'जितना'। उ०—भवतारी भव-तार घरन भर जितक बिभूती। इस सब आश्रय के आधार जग जिहि की ऊती।—नद० प्र०, पृ० ४४।

जितना—वि० [हि० जिस + तना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे,—जितना मैं दोड़ता हूँ उतना तुम नहीं दोड़ सकते।

विशेष—सख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है। 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग सबध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितकोप, जितक्रोध—वि० [सं०] जिसने क्रोध को जीत लिया हो।

जितनेमि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीपल का दड़ या डडा [को०]।

जितमन्यु—वि० [सं०] दे० 'जितकोप' [को०]।

जितरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जिता] वह हलवाहा जिसे वेतन वा मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोक—वि० [सं०] जिसने पुण्य कम से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितघना^४—क्रि० सं० [सं० शात] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कपे क्यों हू जप निवरे न।—विहारी (शब्द०)।

जितवाना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने देना। जीतने में समर्थ या उद्यत करना। जीतने में सहायक होना।

जितवार^४—वि० [हि० जीतना] जीतनेवाला। विजयी। उ०—जँह हो ब्रजेशकुमार। रनभूमि को जितवार।—सूदन (शब्द०)।

जितवैया^१—वि० [हि० जीतना + वैया (पू० प्रत्य०)] १. जीतने-वाला। २. जितानेवाला। किसी को विजयी बनानेवाला।

जितशत्रु—वि० [सं०] विजयी। जो शत्रु को पराजित कर चुका हो [को०]।

जितश्रम—वि० [सं०] जो श्रम या यकान का अनुभव न करता हो।

जितसंग—वि० [सं०] जितसङ्ग] आसक्ति या आकर्षण से मुक्त [को०]।

जितस्वर्ग—वि० [सं०] पुण्य के प्रभाव से जो स्वर्ग जीत चुका हो [को०]।

जिता^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीतना वा जीतना] वह सहायता जो किसान लोग खेत की जोताई बोसाई में एक दूसरे को देते हैं।

जिता^२—वि० [हि०] [वि० स्त्री० जिती] दे० 'जितना'।

जिताक्ष—वि० [सं०] जितेन्द्रिय [को०]।

जिताक्षर—वि० [सं०] बढ़िया पढ़ने लिखनेवाला [को०]।

जितात्मा—वि० [सं०] जिताराम्] जितेन्द्रिय।

जिताना—क्रि० सं० [हि० जीतना का प्रे० रूप] जीतने में समर्थ या उद्यत करना। उ०—ताही समैं छैल छल कीन्हों है खोली

सग, देव विपरीत वसि ब्रूमत पहली बात। पूछें जो पियारी ताहि जानत अजान पिय, आपु पूछी प्यारी को जताइ के जितार्ई जात ।—देव (शब्द०) ।

जितारी—वि० [सं० जित्वर] १ जीतनेवाला । विजयी । २ बली । जो जीत सके । ३ अधिक । भारी । वजनी ।

विशेष—प्रायः पलडे पर रखी हुई वस्तु के सबध में बोलते हैं ।

जितारि^१—वि० [सं०] १ शत्रुजित् । २. कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला ।

जितारि^२—सञ्ज्ञा पु० बुद्धदेव का नाम ।

जिताष्टमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं ।

विशेष—यह व्रत ३ दिवस कृष्णाष्टमी के दिन पड़ता है । इस दिन स्त्रियाँ सायंकाल जलाशय में स्नान कर जीमूतवाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करती । इस व्रत के लिये उदयातिथि ली जाती है । इसको जिततिया भी कहते हैं ।

जिताहार—वि० [सं०] भूख पर विजय प्राप्त करनेवाला [को०] ।

जिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीत । विजय ।

जितिक^१—वि० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—जितिक हुती ब्रज गो, बछ, बाछी । तेल हरद करि आछी काछी ।—नद० प्र०, पृ० २३५ ।

जिती—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—ब्रह्मादिक विभूति जग जिती । अड अड प्रति दिखियत तिती ।—नद० प्र०, पृ० २६७ ।

जितीक—वि० [हि०] दे० 'जितिक' । उ०—पुनि जितीक गोपीजन भाई । ते रोहिनी सबहि पहिराई ।—नद० प्र०, पृ० २३५ ।

जितुम—सञ्ज्ञा पु० [यू० हिंदुमाई] मिथुन राशि ।

जितेंद्रिय—वि० [सं० जितेन्द्रिय] १ जिसने अपनी इन्द्रियो को जीत लिया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में ऐसे पुष्य की जितेंद्रिय माना है जिसे सुनने, छूने, देखने, खाने और सूँघने से हर्ष या विषाद न हो । २ शांत । समवृत्तिवाला ।

जिते^१—वि० [हि० जिस+ते] जितने (सख्यासूचक) । उ०—कत विदेस रहे हो जिते दिन देहु तिते मुकुतानि की माला ।—पद्माकर (शब्द०) ।

जितेक^१—वि० [हि० जिते] जितना । उ०—नगनि मध्य नग हुते जितेक । से ले ऊपर बैठे तितेक ।—नद० प्र०, पृ० ३१४ ।

जितै^१—क्रि० वि० [सं० यत्, प्रा० यत्] जिधर । जिस ओर । उ०—लाल जिते चितवै तिय पै, तिय त्यों त्यों चितौति सखीन की ओरी ।—देव (शब्द०) ।

जितैया—वि० [सं० जित्+ऐया (प्रत्य०)] जितवैया । जितवार । जेता । उ०—प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया रख भाव-सिंह तेरे दान के दुरद हैं ।—मति० प्र०, पृ० ४२७ ।

जितैला—वि० [हि० जीत+ऐला (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजेता । उ०—जमींदार ने कहा, तुम किसी जमींदार का

राज यो नहीं दे सकते । यह राज जितैला है । अगर ऐसा ही करना है तो उस जमींदार की बुला लाओ ।

जितो^१—वि० [हि० जिस] जितना (परिमाणसूचक) । उ०—(क) वैठि सदा सतमग ही मे विष मानि विषय रस कीति सदाही । त्यों पद्माकर झूठ जितो जग जानि सुजानहि के भवगाही ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) नख सिख सुदरता अवलोकत, कह्यो न परत सुख होत जितो री ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—सरया सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जिते' का प्रयोग होता है ।

जितो^२—क्रि० वि० जिस मात्रा से । जितना ।

जितना^१—क्रि० सं० [हि० जीतना] दे० 'जीतना' । उ०—(क) द्वादस हृथ्य मयद वर भिडपाल लिय मारि । जब बहु कर सिधनि गहे को जिति नृप नारि ।—प० रासो, पृ० १४ । (ख) रहत अर्चोकी नित ही ध्यान सु रावरो । अरु मन लीनो जित मयो प्रीति सो बावरो ।—ब्रज० प्र०, पृ० ३८ ।

जित्तम—सञ्ज्ञा पु० [यू० हिंदुमाई] मिथुन राशि ।

जित्यू—अव्य० [प०] जहाँ । उ०—अहो अहो घन आनंद जानी जित्यू तित्यू जाया है ।—घनानंद, पृ० १८१ ।

जित्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० जित्या] १ बड़ा हल । २ हेंगा । पटेला । सरावन (को०) ।

जित्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ हींग । २ सरावन । पटेला (को०) ।

जित्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जित्वरी] जेता । जीतनेवाला । विजयी ।

जित्वरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काशीपुरी का एक प्राचीन नाम [को०] ।

जित्थनी^१—सर्व० [?] जिससे । जिसका । उ०—तुका सज्जन तिन सुँ कहिये जित्थनी प्रेम दुनाय ।—दक्षिणी०, पृ० १०८ ।

जिद—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० जिद] [वि० जिदी] १ उलटी बात या वस्तु । विरुद्ध वस्तु या बात । २ वैर । शत्रुता । वैमनस्य ।

क्रि० प्र०—करना । —बाँधना । —रखना ।

३ हठ । अड । बुराग्रह ।

क्रि० प्र०—आना । —करना । —बाँधना । —रखना ।

मुहा०—जिद पर आना = हठ करना । अडना । जिद घटना = हठ धरना । जिद पकड़ना = हठ करना ।

जिदियाना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० जिद से नामिक धातु] हठ करना । बुराग्रह करना । अडना । अड जाना ।

जिद्दा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० जिद्] दे० 'जिद' ।

जिद्दन—क्रि० वि० [अ०] जिद्द करते हुए । हठ करते हुए । जिद के कारण । [को०] ।

जिद्दी—वि० [अ० जिद्+ई (प्रत्य०)] १. जिद करनेवाला । हठी । अडनेवाला । जैसे, जिद्दी लडका । २. बुराग्रही । दूसरे की बात न माननेवाला ।

जिधर—क्रि० वि० [हि० जिस+घर (प्रत्य०)] जिस ओर । जहाँ ।

विशेष—समन्वय में इसक्रे साथ 'उधर' का प्रयोग होना है। जैसे,
जिघर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यौ०—जिघर तिघर = (१) जहाँ तहाँ। इधर उधर।

विशेष—अब इसका कम प्रयोग है।

(२) बैठकाने। बिना ठोर ठिकाने।

मुहा०—जिघर चाँद उधर सलाम = प्रवसरवादिता। उ०—शर्मा
जी डाँटते हैं, जिघर चाँद उधर सलाम।—मैला०, पृ० ३४४।

जिघाँ^७—अव्य० [दे०] जहाँ। उ०—पिछे चलये ये दस भायाँ
मिलाकर। जिघाँ पिछे वो जगल बीच यकसर।—दक्खिनी०,
पृ० ३३८।

जिन^१—सङ्घा पु० [सं०] १ विष्णु। २. सूर्य। ३ बुद्ध। ४ जैनों के
तीर्थंकर।

यौ०—जिन सदन = जिनसघ। जैन मंदिर।

जिन^२—वि० १ जीतनेवाला। जयी। २ राग द्वेप आदि जीतने-
वाला। ३ बुद्ध [को०]।

जिन^३—वि० [सं० याति] 'जिस' का बहुवचन।

जिन^४—सर्व० [हि०] 'जिम' का बहुवचन।

जिन^५—सङ्घा पु० [घ०] भूत।

मुहा०—जिन का साया = जिन लगना। जिन चढना, जिन
सवार होना = क्रोध के आवेध में होना। क्रोधाघ होना।

जिन^६—अव्य० [हि० जनि] मत। उ०—सोच करो जिन होहु
सुखी मतिराम प्रवीन सवे नरनारी। मजुल वजुल कुंजन में
घन, पु ज सखी ससुरारि तिहारी।—मति० प्र०, पृ० २६०।

जिन^७—सङ्घा पु० [घ०] एक प्रकार की शराब। उ०—जिन का एक
देग।—यों दुनिया, पृ० १४२।

जिनगानी^१—सङ्घा स्त्री० [हि० जिगानी] दे० 'जिगानी'।

जिनगी^२—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'जिगी'। उ०—यकठोस दुल्हा
के साथ किस तरह घपनी जिनगी काटेगी।—नई०, पृ० २६।

जिनस^३^७—सङ्घा स्त्री० [घ० जिस] १ प्रकार। जाति। किस्म।
उ०—बहु जिनस प्रेत पिमाच जोगि जमात वरनत नहि
वनें।—मानस, १। ६३। २ दे० 'जिम'।

जिना—सङ्घा पु० [घ० जिना] व्यभिचार। छिनाला।
क्रि० प्र०—करना।

यौ०—जिनाकार। जिनाकारी। जिनाविलज्ज।

जिनाकार—वि० [घ० जिना + फा० कार] [सङ्घा जिनाकारी]
व्यभिचारी।

जिनाकारी—सङ्घा स्त्री० [घ० जिना + फा० कारी] पर-स्त्री-गमन।
व्यभिचार।

जिनाविज्ज—सङ्घा पु० [घ०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और
सम्मति के विरुद्ध बलात् सम्भोग करना।

जिनावर^४^७—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'जानवर'। उ०—फहे श्री
हृदिदास पिजरा के जिनावर जो, तरफराइ रह्यो उडिबे को
वि हरि।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३६०।

जिनि^५—अव्य० [हि० जनि] मत। नही। दे० 'जनि'। उ०—

(क) यह उज्जल रसमान कोटि जतनन के पोई। सावधान
हैं पहिरो यहि तोरी जिनि कोई।—नंद० प्र०, पृ० २५।
(ख) जिनि कटार गर लावमि समुक्ति देखु मन आप। सकति
जीउ जो काटै महा दोष श्री पाप। जायसी—(शब्द०)।

जिनि^७^७—सर्व० [हि० जिन] जिन्होंने।

जिनिसा^१—सङ्घा स्त्री० [घ० जिस] दे० 'जिस'।

जिनिसवारा^२—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'जिसवार'।

जिनेन्द्र—सङ्घा पु० [सं० जिनेन्द्र] १ एक बुद्ध। २. एक जैन
संत [को०]।

जिन्न—सङ्घा पु० [घ०] दे० 'जिन' [को०]।

जिन्नात—सङ्घा पु० [घ० जिन का बहु व०] भूत प्रेतदि।

जिन्नी^१—वि० [घ०] जिन या भूत सबधी [को०]।

जिन्नी^२—सङ्घा पु० यह व्यक्ति जिसके वश में भूत प्रेत हो [को०]।

जिन्ह^३^७—सर्व० [हि० जिन] दे० 'जिन'।

जिन्ह^४^७—सङ्घा पु० [घ० जिन्न] दे० 'जिन' (भूत प्रेत)।

जिन्हार—अव्य० [फा० जिनहार] हर्गिज। विलकुल। उ०—कहे
उस शत से ऐ नेक प्रतवार। खिलाफ इसमें न करना तुमे
जिन्हार।—दक्खिनी, पृ० ३२५।

जिप्सी—सङ्घा पु० [घ०] १ एक घूमती फिरती रहनेवाली जाति-
विशेष। २ उक्त जाति का व्यक्ति।

जिवह—सङ्घा पु० [घ० जवह] दे० 'जवह'। उ०—मुरगी मुल्ला से
कहे, जिवह करत है मोहि। साहिब लेखा मोगसी, सकट परि-
है सोहि।—सतवाणी०, पृ० ६१।

जिह्वा^७—सङ्घा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिह्वा^१—सङ्घा पु० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिभल्लो—वि० [हि० जीभ+ला (प्रत्य०)] चटोरा। चट्ट।

जिभ्या^२^७—सङ्घा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिम^७—अव्य० [हि०] दे० 'जिमि'। उ०—ले घण एही सपजइ,
सउ जिम ठल्लइ जाइ।—ढोला०, दृ० ४५६।

जिमखाना—सङ्घा पु० [घ० जिमनास्टिक का सक्षिप्त रूप जिम+
हि० खाना] वह सार्वजनिक स्थान जहाँ लोग एकत्र होकर
व्यायामादि करते हैं। व्यायामशाला।

जिमनार—सङ्घा स्त्री० [हि० जिमाना] भोज। समष्टिभोज। उ०—
जहाँ गए ब्रह्मभोज, साधु जिगनार यथेच्छ करते।—सुंदर प्र०
(जी०), मा० १, पृ० १४२।

जिमनास्टिक—सङ्घा पु० [घ०] वे कमरतें जो काठ के दोहरे बल्लो
या छड़ों आदि के ऊपर की जाती हैं। यंत्रेजी कसरत।

जिमाना—क्रि० सं० [हि० जीमना] खाना खिलाना। भोजन
कराना।

जिमि^७—क्रि० वि० [हि० जिम् + इमि] जिस प्रकार से। जैसे।
यथा। ज्यों। उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि
प्रिय जिमि दाम।—मानस, ७। १३०।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के भागे तिमि का प्रयोग होता है।

जिमित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भोजन [को०]।

जिमींदार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जमींदार] दे० 'जमींदार'।

जिम्मा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + प्रा०] १ इस बात का भारग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका सबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिज्ञा। जवाबदेही। जैसे,—(क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कल प्राणको चीज मिल जाएगी। (छ) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर प्राण का रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज सिलाने का मैंने जिम्मा लिया है।

क्रि० प्र०—करना। —लेना।

मुहा०—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया घाना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋणस्वरूप होना। देना। ठहराना। जैसे,—द्विसाथ करने पर ५) २० तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया ढालना = किसी के ऊपर ऋण या देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में किया जाता है और जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

२ सुपुर्दगी। देखरेख। सरखा। जैसे,—ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पाएँ।

जिम्मादार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + प्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मादारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + प्रा० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मावार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + प्रा० वार (प्रत्य०)] वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञावद्ध हो। जवाबदेह। उत्तरदाता।

जिम्मावारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जिम्मावार + ई (प्रत्य०)] १ किसी बात को करने या किए जाने का भार। उत्तरदायित्व। जवाबदेही। २ सुपुर्दगी। सरखा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मी—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मी] हमलाभी राज्य का वह कर जिसे गैर मुसलमान होने के कारण देना पड़ता था [को०]।

जिम्मीजर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० जमी + जर] जर जमीन। उ०—पाखंड डड रचवे नहीं। जिम्मीजर ककर वरा। समरिय काल कटक हनी ता पाछै गुजर घरा। —पृ० रा०, १२। १२८।

जिम्मेदार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + प्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + प्रा० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मेवार—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिम्मावार'। उ०—जिस गाँव के ये हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा। —कालि०, पृ० ५।

जिम्मेवार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिम्मह् + प्रा० वार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिम्मह् + प्रा० वारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—(क) इस जिय जानि सुनहु सित भाई। करहु मातु पितु पद नेव-काई। —तुलसी (शब्द०)। (स) प्रसन चंद सम जतिय दि। इक मग इष्ट जिय। इह आराधत भट्ट प्रगट-प्रचाम वीर विय। —पृ० रा०, ६। २६।

यौ०—जायवधा = हत्या करनेवाला। जल्ताव।

जियन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीवन] जीवन। जिवनी।

जियनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवन] १. जीवन। २. जीवन का दग। रहन सहन। आचरण।

जियरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीव] १. जीव। मन। चित्त। उ०—मेरो स्वभाव चित्तवे को भाई रो लाल निहारि कै बसो बजाई। या दिन तें मोहि लागी ठगोरी रो लोग कहै कोउ बावरी भाई। यो रसखानि घिरयो सिंगरो अज जानत वे कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहे भलो अपने तो सनेह न काहु सो कीजिए भाई। —रसखान (शब्द०)। २. प्राण। उ०—जियरा जावगे हम जानी। पाँच तख को बनो है बिजरा जिसमें वस्तु विरानी। आवत जावत कोउ न देखा दूब गया बिन पानी। —बगीर श०, भा०, पृ०।

जियाँकार—पि० [प्रा० जियाँकार] १. हानि पहुँचानेवाला। २. वदमाश। बुरा आचरण करनेवाला [को०]।

जिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिघा] १. सूर्य का प्रकाश। २. चमक। आभा। काति [को०]।

जिया^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दाई या धाय] दूध पिलानेवाली दाई।

जिया^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जी' और 'मन'।

जिया^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जीजी या बोदी] बड़ी बहन।

जियाजंतु—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीवजंतु] दे० 'जीवजंतु'।

जियादत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत] १. आधिष्य। अतिशयता। २. अत्याचार। जुर्म [को०]।

जियादती—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जियादत + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'ज्यादती'।

जियादा—वि० [प्र० जियादह्] दे० 'ज्यादा'।

जियान—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० जियान] घाटा। टोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—उठाना। —होना। —करना।

जियाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीना] १. जिताना। उ०—प्रवृत् करि माया जिव केरी। मोहि जियाव देहु विष मोरी। —जायसी (शब्द०)। २. पालना। पोसना। उ०—याप्र बछानि को गाय जियावत, याघिनी पै सुरभी सुत चौपै। —गुमान (शब्द०)।

जियापोसा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जिलाना + पूत] पुत्रजीवा का पेट । पतजिव ।

जियाफत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जियाफत] १ आतिथ्य । मेहमानदारी । २ भोज । दावत ।

मुहा०—जियाफत करना = (१) आदर सत्कार करना । (२) खाना खिलाना । भोज देना ।

जियार^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जियरा' । उ०—जावै बीत जियार, जेहल पछतावे जिके । —वांकी० प्र०, भा० ३, पृ० १६ ।

जियार^२—वि० [हि०] साहसी । हिम्मती । जीवटवाला ।

जियारत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जियारत] १ दर्शन । २ तीर्थदर्शन । क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—जियारत लगना = मेला लगना । दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना ।

जियारतगाह—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जियारत + फा० गाह] १. पवित्र स्थान । तीर्थ । २ दरवार । दरगाह । ३ दर्शकों की भीड़ या जमघट ।

जियारतो—वि० [प्र० जियारत + फा० ई (प्रत्यय)] १ दर्शक । २ तीर्थयात्री ।

जियारां—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १. जिलाना । जीवित रखना । पालना पोसना । २. आहार । चारा । ३ जीविका । ४ साहस । हियाव ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—देना ।

जियारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] १ जीवन । जिंदगी । उ०—उनको ले मान जियो याही मे प्रमान भयो दयो जो पै जाइ तो ही तो जियारी है ।—प्रिया० (शब्द०) । २ जीविका । उ०—राका पति वांका तिया वसे पुर पट्टर मे उर में न चाह नेकु रीति कछु न्यारिये । करीन धीन करि जीविका नवीन करे, घरे हरि रूप हिये, ताही सो जियारिये ।—प्रिया (शब्द०) । ३ जीवट । जियरा । हृदय की दृढ़ता । साहस ।

जियास—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जी] विश्वास । धैर्य । उ०—सांम कमधा सांपनो उर अपनो जियास । —रा० रू०, पृ० २६७ ।

जिरगा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जिरगह] १ झुंड । गरोह । २. महली । ३ पठानों की पचायत (को०) ।

जिरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीरा (को०) ।

जिरह^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जरह] १. हुज्रत । खुचुर । २. फेर फार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबड़ा जाय और सच्ची बात छिपा न सके । ऐसी पूछताछ जो किसी से उसकी कहीं हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिये की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जिरह काटना या निकालना = खोद बिनोद करना । बहुत अधिक पूछताछ करना । बात में बात निकालना । खुचुर निकालना ।

३. वह सूत की डोरी जो नैसर में ऊपर नीचे वय के गाँछने के लिये लगी रहती है (जुलाहे) । ४. चोरा । घाव (को०) ।

४-१३

जिरह^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जिरह] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच । बर्म । बकतर ।

यौ०—जिरहपोश = जो बकतर पहने हो । कवची ।

जिरही^१—वि० [फा० जिरही] जो जिरह पहने हो । कवचधारी ।

जिरही^२—सञ्ज्ञा पुं० सैनिक (को०) ।

जिराअत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिराअत] खेती । कृषि कर्म ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जिराअत पेशा = खेतिहर । किसान । कृषक ।

जिराता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जिराअत] दे० 'जिराअत' ।

जिराफ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिराफ या ज़राफ़] घास के मैदानों का एक वन्य पशु ।

विशेष—यह अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घास के मैदानों में झुंडों में फिरा करता है । इसके पैरों में खुर होते हैं और इसका अगला घड़ पिछले से भारी होता है । गरदन इसकी ऊँट की सी लबी होती है । यह अठारह फुट ऊँचा होता है । इसमें सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएँदार चमड़े से ढके रहते हैं । इसकी भालें सुंदर और उमड़ी होती हैं, जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है । इसकी नाक की बनावट कुछ ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है । जोभ इसकी इतनी लबी होती है कि यह उसे मुँह से सप्रह हच बाहर निकाल सकता है । इसके शरीर पर हिरन के से रोएँ और बड़ी बड़ी चित्तियाँ होती हैं । यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है ।

जिरायता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जिराअत' ।

जिरिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीरा] एक प्रकार का धान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है ।

जिलवा—वि० [प्र० जलवह] आत्मप्रदर्शन । हावभाव । शोभा । उ०—नरेशों की समान लालसा पग पग पर अपना जिलवा दिखाती थी ।—काया०, पृ० १७० ।

जिला^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. चमक दमक । शोष । पानी ।

मुहा०—जिला करना या देना = किसी वस्तु को मौज्जद तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाना । सिकली करना । जैसे,—हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना ।

यौ०—जिलाकार = सिकलीगर ।

२. मौज्जद तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाने का कार्य । चमकाने की क्रिया । शोष देने का कार्य ।

जिला^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जिलम] १. प्रांत । प्रदेश । २. भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो । ३. किसी इलाके का छोटा विभाग या भूभाग ।

यौ०—जिलादार ।

४. किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमें वह या उसके भादमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हों ।

जिला जज—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + अ० जज] जिले का प्रधान न्यायाधीश । जिलाधीश ।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था और जो थाप से बजाया जाता था ।

जिलादार—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १ सरबराहकार । सजावल । २ वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है । ३ वह छोटा अफसर जो नहर, भूमि आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो ।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० जिलादार + ई (प्रत्य०)] जिलेदार का काम या पद ।

जिलाधीश—संज्ञा पुं० [अ० जिलम + सं० अधीश] दे० 'जिला मैजिस्ट्रेट' ।

जिलाना—क्रि० सं० [हि० जीना का सक रूप] १ जीवन देना । जो डालना । जिदा करना । जीवित करना । जैसे, मुर्दा जिलाना । २. पालना । पोसना । जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं या जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है । जैसे,—कुत्ता, बिल्ली, तोता, शेर आदि । घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता ।

३. मरने से बचाना । मरने न देना । प्राणरक्षा करना । जैसे,—सरकार ने अकाल में लाखों आदमियों को जिला लिया । ४. धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना । मूर्छित धातु को पुनः जीवित करना ।

जिला बोर्ड—संज्ञा पुं० [अ० जिला + अ० बोर्ड] किसी जिले के कर्दाताओं के प्रतिनिधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्रामबोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रवर्धन आदि करना है ।

विशेष—मुनिसिपैलिटी के समान ही जिलाबोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है ।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अ० + अ०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है । जिला हाकिम ।

विशेष—हिंदुस्तान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है । सालगुजारी सबंधी कार्यों का अध्यक्ष (प्रधान) होने से कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण वह मैजिस्ट्रेट कहलाता है ।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [अ० जिला + फ्रा० साज] सिकलीगर । हथियारों पर धोप चढ़ानेवाला ।

जिलाहू—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाह ?] अत्याचारी । उ०—ज्वाला की जलूसन, जलाक जग जालन की, जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहू की ।—पद्माकर अ० पृ० २२८ ।

जिलिवदार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जिलेदार' । उ०—अर्जो लिखी फौजदार ले पाँचे जिलिवदार । जाके देव दग्गार चोपदार के कहिने ।—दक्खिनी०, पृ० ४६ ।

जिलेदार—संज्ञा पुं० [हि० जिलादार] दे० 'जिलादार' ।

जिलेवी—संज्ञा स्त्री० [हि० जलेवी] दे० 'जलेवी' ।

जिलो—संज्ञा पुं० ? अनुचर । उ०—अथा बादशाहमें बड़ा नामदार । जिलो में चले उसके कई ताजदार ।—दक्खिनी०, पृ० १६८ ।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० जिल्दी] १. खाल । चमड़ा । खलड़ी । २. ऊपर का चमड़ा । त्वचा । जैसे, जिल्द की बीमारी । ३. वह पट्टा या दपती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—घनाना ।—बाँधना ।

यौ०—जिल्दबद । जिल्दसाज ।

४ पुस्तक की एक प्रति ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण सत्या के अनुसार होता है । जैसे,—इस जिल्द पद्यावत, एक जिल्द रामायण ।

५. किसी पुस्तक का वह भाग जो पृथक् सिला हो । भाग । खंड । जैसे,—दाहूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है ।

जिल्दगार—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० गार (प्रत्य०)] जिल्दबद ।

जिल्दबंद—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० बंद (प्रत्य०)] वह जो किताबों की जिल्द बाँधता हो । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फ्रा० बंदी (प्रत्य०)] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम । जिल्द साजी ।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ्रा० साज (प्रत्य०)] संज्ञा जिन्दसाजी] जिल्दबद । जिल्द बाँधनेवाला ।

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फ्रा० साजी (प्रत्य०)] जिल्दबंदी । किताबों पर जिल्द बाँधने का काम ।

जिल्दी—वि० [अ० जिल्द + फ्रा० ई (प्रत्य०)] त्वक सबंधी । त्वचा या चमड़े से सबंध रखनेवाला । जैसे, जिल्दी बीमारी ।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्लत] १. अनादर । अपमान । तिरस्कार । बेइज्जती ।

मुहा०—जिल्लत उठाना = १. अपमानित होना । २. तुच्छ होना । हेठा ठहरना । जिल्लत देना = (१) अपमानित करना । (२) सज्जित करना । हतक करना । हेठा उठराना । जिल्लत पाना = अपमानित होना ।

२. दुर्गति । दुर्दशा । हीन दशा । जैसे, जिल्लत में पड़ना या फँसना ।

जिल्ली—संज्ञा पुं० [दश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह मासाम में होता है और घर की छोजन आदि में लगता है ।

जिल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वाहू] दे० 'जल्पा' । उ०—एक दिन ऐसा

भावेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा । —
भा० प्र०, भा० १, पृ० ५२६ ।

जिल्होर—संज्ञा पुं० [द्यो०] एव प्रकार का धान जो भगहन में
काटा जाता है ।

जिवा—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव' ।

जिवडा(उ)—संज्ञा पुं० [सं० जीव + डा (प्रत्य०)] दे० 'जीव' ।
उ०—ऐसा जिवडा न मिलाए जो फरफ बिछोर । —कवीर
म०, पृ० ३२५ ।

जिवमार(उ)—वि० [हिं० जीव + मार] जान मारनेवाला । उ०—
जल नहि, थल नहि, जीव घोर सृष्टि नहि, काल जिवमार
नहि ससय सताया । —कवीर २०, पृ० ३३ ।

जिवरिया(उ)—संज्ञा स्त्री० दे० 'जिवरी' । उ०—आदि अत जी कोउ न
पावे । तनक जिवरिया इत फिर आवे । —नद० प्र०,
पृ० २५० ।

जिवाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० १ 'जिमाना' । २. 'जिवाना' ।

जिवाजिव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी ।

जिवाना(उ)†—क्रि० म० [हिं० जीव (=जीवन)] जीवित करना ।
जिलाना । उ०—इहि काँटि मो पाइ गहि लीनी मरति
जिवाइ । प्रीति जनावति भीति सौं मीत जु काटयो आइ ।
—बिहारी २०, दो० ६०५ ।

जिवारी(उ)—वि० [हिं० जीव] जिलानेवाली । उ०—सोभा समूह
भई घनमानंद मुरति अग्न अन्नंग जिवारी । —घनानंद,
पृ० १०६ ।

जिवाला(उ)—संज्ञा पुं० [मरा० जिवाला] जीवन । उ०—जिव का
बी प्रो जिवाला रूपों में रूप माला । सबके ऊपर है बाला
नित हसत रस तू मीरा । —दक्खिनी, पृ० ११० ।

जिवावना—क्रि० सं० [जिवाना ?] जिलाना । जियाना । उ०—
मानदघन अथ मोघबहावन सुदृष्टि जिवावन वेद भरत है
मामी । —घनानंद, पृ० ४१८ ।

जिवैया—वि० [हिं०] जीमनेवाला । खानेवाले । उ०—तुम्हारे सिवाय
घोर कोई जिवैया नहीं बैठा है । —मान भा०, ५, पृ० २७ ।

जिष्ट(उ)—वि० [सं० ज्येष्ठ] दे० 'ज्येष्ठ' । उ०—अन अश्रुत सु
उन्नत जिष्ट । वदन भर कि वद्ध मनु पिष्ट । —पृ० रा०,
१ । २५७ ।

जिष्णु^१—वि० [सं०] जीतनेवाला । विजय प्राप्त करनेवाला । विजयी ।

जिष्णु^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु । २ इन्द्र । ३ अर्जुन । ४ सूर्य ।
५ वस्तु ।

जिस^१—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, हिं० जिस] 'जो' का वह रूप
जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है ।
जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से । जिस घोड़े
पर, जिस घर में, इत्यादि ।

जिस^२—सर्व० 'जो' का वह अग्ररूप, विकारीरूप जो उसे विभक्ति
संगने के पहले प्राप्त होता है । जैसे, जिसने, जिसको, जिससे,
जिसका, जिस पर, जिनमें ।

विशेष—सबब पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का
प्रयोग होता है । जैसे,—जिसको देगे उससे लेंगे । पहले 'उस'
के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था ।

जिसउ(उ)—वि० [द्यो०] जैसा । उ०—साह कुँवर सुत्पति जिसउ,
रूपे अधिक अनूप । लाखों बगसद माँगया, लाख भेंगा सिर
भूप । —ढोला०, दू० ६३ ।

जिसनू(उ)—संज्ञा पुं० [सं० जिष्णु] दे० 'जिष्णु'—३ । उ०—अहै
भिकुंटी धनुक समानू । है वरुनी जिसनू के वानू । —इंद्रा०,
पृ० ६० ।

जिसा(उ)†—वि० [हिं०] दे० 'जैसा' । उ०—मोकु दोस न दोज्यी
कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई । —रामानंद०, पृ० २६ ।

जिसिम—संज्ञा पुं० [अ० जिस्म] दे० 'जिस्म' ।

जिसौह(उ)—क्रि० वि०, वि० [हिं० जिसउ] जैसा । उ०—नृसिंह
विराजत सिंह जिसौह । विभीषन भा कयमास जिसौह ।
—पृ० रा०, ५ । ३६ ।

जिस्का—वि० [हिं०] जिसका । दे० 'जिस' । उ०—उन्होंने ऐसा
प्रेम लगाया जिस्का पारावार नहीं । —श्यामा०, पृ० १२१ ।

विशेष—पुराने लेखक 'जिस्का' को इसी प्रकार लिखते थे ।

जिस्ता^१—संज्ञा पुं० [हिं० जस्ता] दे० 'जस्ता' ।

जिस्ता^२—संज्ञा पुं० [हिं० दस्ता] दे० 'दस्ता' ।

जिस्म—संज्ञा पुं० [अ०] शरीर । देह ।

जिस्मानी—वि० [अ०] शरीर संबंधी । शारीरिक [को०] ।

जिम्मी—वि० [अ० जिस्म + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'जिस्मानी' [को०] ।

जिह^१—संज्ञा स्त्री० [फा० जद, सं० ज्या] चिल्ला । रोड़ा । ज्या ।
धनुष की प्रत्यचा । उ०—तिय कित कमनैती पढी दिन जिह
भौह कमन । चित चन वेके चुकति नहि वन बिलोकनि
वान । —बिहारी (शब्द०) ।

जिह^२(उ)—सर्व० [हिं०] दे० 'जिस' ।

जिहन—संज्ञा पुं० [अ० जिहन] समझ । बुद्धि । धारणा ।

मुहा०—जिहन खुशना=बुद्धि का विकास होना । जिहन
लडना=बुद्धि का काम करना । बुद्धि पहुँचना । जिहन
लडाना=सोचना । बुद्धि दोडाना । ऊहापोह करना ।

जिहाज(उ)—संज्ञा पुं० [हिं० जहाज] मरुभूमि का जहाज
अर्थात् ऊँट । उ०—ऊमर बिच छेती घणी, घाते गयउ
जिहाज । चारण डोलइ समुहउ, आइ कियउ सुमराज ।
—ढोला०, दू० ६४३ ।

जिहाद—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जिहादी] १ धर्म के लिये युद्ध ।
मजहबी लड़ाई । धार्मिक युद्ध । २ वह लड़ाई जो मुसलमान
लोग अन्य धर्मावलंबियों से अपने धर्म के प्रचार आदि के
लिये करते थे ।

मुहा०—जिहाद का झंडा=बहु पताका जो मुसलमान लोग
भिन्न धर्मवालों से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे ।
जिहाद का झंडा खड़ा करना=मजहब के नाम पर लड़ाई
छेड़ना ।

जिहान^७—सङ्घा पुं० [फा० जहान] ससार । जहान । उ०—मेक सयत समपत्त में, पैतीसै जसराज । मैं हरिधाम जिहान तज, हिंदुसयान जिहान ।—रा० रु०, पृ० १७ ।

जिहान^२—सङ्घा पुं० [सं०] १ जाना । गमन । २. पाना । प्राप्त करना [को०] ।

जिहानक—सङ्घा पुं० [सं०] प्रलय [को०] ।

जिहालत—सङ्घा स्त्री० [म० जहालत] मूर्खता । अज्ञानता

जिहासा—सङ्घा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा ।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला ।

जिहीर्षा—सङ्घा स्त्री० [सं०] हरने की इच्छा । लेने की इच्छा । हरण करने की कामना ।

जिहीर्षु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला ।

जिहेज—सङ्घा पुं० [म० जिहेज] १० 'जहेज' [को०]

जिह्वा^१—वि० [सं०] १. वक्र । टेढ़ा । २. दुष्ट । क्रूर प्रकृतिवाला । ३. कुटिल । कपटी । ४. अप्रसन्न । खिन्न । ५. मद । ६. पीला । पीतवर्ण का [को०] ।

जिह्वा^२—सङ्घा पुं० १ तगर का फूल । २. अघर्म । ३. कपट [को०] । ४. बेईमानी । मिथ्यात्व [को०] ।

जिह्वाग^१—वि० [सं०] १. कुटिल गतिवाला । टेढ़ी चाल चलनेवाला । २. मद गति । धीमा । ३. कुटिल । कपटी । चालबाज ।

३. ह्वाग^२—सङ्घा पुं० सपि ।

ह्वागति^१—वि० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चलनेवाला [को०] ।

ह्वागति—सङ्घा पुं० सपि [को०] ।

ह्वागामी—वि० [म० जिह्वागामिन्] [वि० स्त्री० जिह्वागामिनी] १. टेढ़ा चलनेवाला । २. कुटिल । कपटी । चालबाज । ३. मदगामी । सुस्त । धीमा ।

जिह्वता—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. मदता । धीमागन । ३. कुटिलता । कपट । चालबाजी ।

जिह्वमेहन—सङ्घा पुं० [सं०] मेढक ।

जिह्वयोधी^१—वि० [म० जिह्वयोधिन्] कपट युद्ध करनेवाला [को०] ।

जिह्वयोधी^२—सङ्घा पुं० भीम [को०] ।

जिह्वशाल्य—सङ्घा पुं० [म०] खैर । खदिर । कल्या ।

जिह्वान्—वि० [सं०] ऐंचा ताना [को०] ।

जिह्वित—वि० [सं०] धूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्वीकृत—वि० [सं०] भुकाया हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्व—सङ्घा पुं० [सं०] १. जिह्वा ।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पदों में मिलता है । जैसे, द्विजिह्व । २. तगरमूल [को०] ।

जिह्वक—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ में कांटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नहीं जाता, जीभ लड़खड़ाती है ।

विशेष—इसकी अवधि १६ दिन की है । इसमें श्वास कास आदि

भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः मूँगे या बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल—वि० [सं०] जिमला । चट्टू । चटोरा ।

जिह्वा—सङ्घा स्त्री० [म०] १. जीभ । २. प्राग की लपट [को०] । ३. वाक्य [को०] ।

जिह्वाम्र^१—सङ्घा पुं० [सं०] जीभ की नोक । दूँड ।

मुहा०—जिह्वाम्र करना = कठस्थ करना । जबानी याद करना । किसी विषय को इस प्रकार रटना या घोलना कि उसे जब चाहे तब कह सके । जिह्वाम्र होना = जबानी याद होना ।

जिह्वाम्र^२—वि० याद रखनेवाला या वाली (चीज या ग्रन्थ) ।

जिह्वाच्छेद—सङ्घा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड ।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे उनको यही दंड दिया जाता था ।

जिह्वाजप—सङ्घा पुं० [सं०] तत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें जिह्वा हिलने का विधान है ।

जिह्वानिलेखन—सङ्घा पुं० [सं०] जीभी [को०] ।

जिह्वानिलेखनिक—सङ्घा पुं० [सं०] १० 'जिह्वानिलेखन' ।

जिह्वाय—सङ्घा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे, कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि ।

जिह्वामल—सङ्घा पुं० [सं०] जीभ पर बैठा हुआ मल [को०] ।

जिह्वामूल—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ या पिच्छला स्थान ।

जिह्वामूलीय^१—वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो ।

जिह्वामूलीय^२—सङ्घा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो ।

विशेष—शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अयोगवाह होते हैं और वे सङ्घा में दो हैं—क और ख । क और ख के पहले विसर्ग आने से जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद—सङ्घा पुं० [सं०] पक्षी ।

जिह्वारोग—सङ्घा पुं० [सं०] जीभ का रोग ।

विशेष—सुश्रुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीन प्रकार के कटक जो वात, पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमें जिह्वा के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमें जिह्वा के मूल में सूजन हो जाती है और सार टपकती है । इन पाँचों में अलास असाध्य है । इसमें जीभ के तले की सूजन बढ़कर पक जाती है ।

जिह्वालिह—सङ्घा पुं० [म०] कुत्ता ।

जिह्वालौल्य—सङ्घा पुं० [सं०] चटोरापन । स्वादलोलुपता [को०] ।

जिह्वशाल्य—सङ्घा पुं० [सं०] खदिर । खैर का पेड़ । कल्या ।

जिह्वास्तंभ—सङ्घा पुं० [म०] एक प्रकार का जिह्वारोग जिसमें वायु स्वरवाहिनी नाडियों में प्रवेश करके उन्हें स्तंभित कर देता है ।—माधव, पृ० १४२ ।

जिह्विका—सङ्घा स्त्री० [सं०] जीभी ।

जिह्वोल्लेखनिका, जिह्वोल्लेखनी—सद्वा श्री० [मं०] जीमी [को०] ।
जीगनर्—सद्वा पु० [सं० जुगण] खद्योत । जुगन् । उ०—बिरह
जरी लखि जीगननि कही सुवह के बार । अरी प्राठ उठि
भीतरे वरसति प्राज अंगार ।—विहारी (शब्द०) ।

जी—सद्वा पु० [सं० जीव] १. मन । दिल । तबीयत । चित्त ।
उ०—(क) कहत नसाइ होइ हिम नीकी । रीझन राम जानि
जन जीकी । मानस, १।२८ । २ हिम्मत । दम । जीवट । ३
सकलप । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी अच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीड़ा
या वेचैनी न रहना । नीरोग होना । जैसे,—दो तीन दिन तक
बुखार रहा, आज जी अच्छा है । किसी पर जी आना = किसी
से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम में अनुरक्त होना । जी
उकताना = चित्त का उचाट होना । चित्त न लगना । एक ही
अवस्था में बहुत काल तक रहते रहते परिवर्तन के लिये चित्त
ध्यम होना । तबीयत घबराना । जैसे,—तुम्हारी बातें सुनते
सुनते तो जी उकता गया । जी उचटना = चित्त न लगना ।
चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, वस्तु या
स्थान आदि से विरक्ति होना । जैसे,—प्रब तो इस काम से
मेरा जी उचट गया । जी उठना = दे० 'जी उचटना' । जी
उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनु-
रक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय, आशंका आदि से चित्त
सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य जावा
रहना । जी में घबराहट होना । जैसे,—उसकी बीमारी का हाल
सुनते ही मेरा तो जी उड़ गया । जी उदास होना = चित्त
खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश में न रहना ।
चित्त चंचल और अग्रवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त
हो जाना । होश हवास जाना रहना । (२) मन फिर जाना
चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । हीसला
करना । साहस करना (२) जी चाहना । इच्छा होना ।
जैसे,—अब तो जी करता है कि यहाँ से चल दें । जी काँपना =
भय आशंका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय धराना ।
डर लगना । जैसे,—वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी काँपता
है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना ।
क्रोध, शोक, दुःख आदि के वेग को रो कलपकर या बक भक-
कर शांत करना । ऐसे क्रोध या दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट
करना जो बहुत दिनों से चित्त को घुलता रहा हो ।
जी का वोभ या भार हलका होना = ऐसी बात का दूर होना
जिसकी चिन्ता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका
मिटना । चित्त दूर होना । जी का अमान माँगना = प्राण रक्षा
की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी
बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राणरक्षा करने या
अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय में यह
निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात को सुनने
से अवश्य दुःख पहुँचेगा । जैसे,—यदि किसी राजा से कोई
अप्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि 'जी
का अमान पाऊँ तो वहाँ' । जी का आ लगना = प्राणों पर आ

बनना । प्राण बचना कठिन हो जाना । ऐसे भारी भ्रम या
सकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी
की निकालना = (१) मन की उमग पूरी करना । दिल की
दुबल निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का
उदगार निकालना । क्रोध, दुःख, द्वेष आदि उद्वेग को बक
भक कर शांत करना । बदला लेने की इच्छा पूरी करना ।
जी का जी में रहना = मनोरथों का पूरा न होना । मन में
ठानी, सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की
पढ़ना = प्राण बचाने की चिन्ता होना । प्राण बचाना कठिन
हो जाना । ऐसे भारी भ्रम या सकट में फँस जाना कि पीछा
छुड़ाना कठिन हो जाय । उ०—सब असबाब दाढ़ो में न काढ़ो
तै न काढ़ो तै न काढ़ो जिय की परी सभारे सहन भठार को ।
—तुलसी (शब्द०) । जी का = जीवटवाला । जिगरेवाला ।
साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—घनी धरनी के नीके
प्रापुनी अनी के सग प्रावै जुरि जी के मो नजीके गरजी के
सो ।—गोपाल (शब्द०) । (किसी के) जी को समझना =
किसी के विषय में यह समझना कि वह भी जीव है, उसे भी
कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट को समझना । दूसरे को क्लेश न
पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना = (१)
मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा
करना । (२) सतोष धारण करना । जी को न लगना = (१)
चित्त में अनुभव होना । हृदय में वेदना होना । सहानुभूति
होना । जैसे—दूसरो की पीड़ा आदि किसी के जी को नहीं
लगती । (२) प्रिय लगना । माना । अच्छा लगना । जी खट-
कना = (१) चित्त में खटका या सदेह उत्पन्न होना । (२)
हानि आदि की आशंका से (किसी काम के करने से) जी
हिचकना । (किसी से या किसी के ओर से) जी खट्टा
करना = मन फेर देना । चित्त में घृणा या विरक्ति उत्पन्न
कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय में दुर्भाव उत्पन्न
करना । जैसे,—तुम्हीं ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर
दिया है । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा होना =
चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग
न रहना । घृणा होना । जैसे,—उसी एक बात से उनकी
ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना = (१) चित्त
तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितात दत्त-
चित्त होना । जी तोड़कर किसी काम में लग जाना । (२)
प्राण देना । अत्यंत कष्ट उठाना । जी खुलना = सकोच छूट
जाना । षट्क खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक
न रह जाना । जी खोलकर = (१) बिना किसी सकोच के ।
बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके ।
वेधभङ्ग । जैसे,—जो कुछ मुम्हें कहना हो, जी खोलकर कहो ।
(२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए ।
मनमाना । यथेष्ट । जैसे,—तुम हमें जी खोलकर गालियाँ दो,
चिन्ता नहीं । जी गैवाना = प्राण देना । जान खोना । जी गिरा
जाना = जी बैठ जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिल-
ता आती जाना । जी घबराना = (१) चित्त व्याकुल होना । मन
व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना =

(१) जो चाहना । इच्छा होना । (२) जो घाना । चित्त मोहित होना । जो चला = (१) बोर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दान-शूर । (३) रसिक । सहृदय । जो चलाना = (१) इच्छा करना । मन दोड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । होसला बढ़ाना । जो चाहना = मनोभिलाष होना । मन चलना । इच्छा होना । जो चाहे = यदि इच्छा हो । यदि मन में चाहे । जो चुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हवाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे,—यह नौकर काम से जी चुराता है । जो छुपाना = (१) दे० 'जो चुराना' । जो छूटना = (१) हृदय की दृढ़ता न रहना । साहस दूर होना । ना उम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) थकावट घाना । शिथिलता घाना । जो छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना । (२) हृदय सकुचित करना । मन उदास करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कजूसी करना । जो छोड़ना = (१) प्राण त्याग करना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गंवाना । हिम्मत हारना । जो छोड़कर भागना = हिम्मत हारकर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जो जलना = (१) चित्त सतप्त होना । हृदय में सताप होना । चित्त में कुढ़न और दुःख होना । क्रोध घाना । गुस्सा लगना (१) ईर्ष्या होना । डाह होना । जो जलाना = (१) चित्त सतप्त करना । हृदय में क्रोध उत्पन्न करना । कुढ़ाना । चिढ़ाना । (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना । रज पहुँचाना । दुःखी करना । चित्त व्यथित करना । सताना (३) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जो जानता है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दुःख या पीड़ा वगुन के बाहर है । जैसे,—(क) मार्ग में जो जो कण्ट हुए कि उसे जी ही जानता होगा । ('जो जानना होगा' भी बोला जाता है ।) जी जान से लगना = हृदय से प्रवृत्त होना । सारा ध्यान लगा देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । जैसे,—वह जी जान से इस काम में लगा है । किसी को जी जान से लगी है = कोई हृदय से तत्पर है । किसी की घोर इच्छा या प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगाकर उद्यत है । कोई बराबर इसी चिन्ता और उद्योग में है । जैसे,—उसे जी जान से लगी है कि मकान बन जाय । जो जान सजाना = मन लगाना । दत्त चित्त होना । जी जुगोवा = (१) किसी तरह प्राणरक्षा करना । कठिनाई से दिन बिताना । जैसे तैसे दिन काटना । (२) बचना । प्रलग रहना । तटस्थ रहना या होना । जी जोड़ना = (१) हिम्मत बाँधना या करना । (२) तैयार होना । उद्यत होना । जी टेंगा रहना या होना = चित्त में ध्यान या चिन्ता रहना । जी में खटका बना रहना । चित्त चिंतित रहना । जैसे,—(क) जब तक तुम नहीं प्राप्ति, मेरा जी टेंगा रहेगा । (ख) उसका कोई पत्र नहीं आया, जो टेंगा है । जी दूट जाना = उत्साह भग

हो जाना । उमग या होसला न रह जाना । निराश होना । उदासीनता होना । जैसे,—उनकी बातों से हमारा जी दूट गया, अब कुछ न करेंगे । जी ठड़ा होना = (१) चित्त शांत और सतुष्ट होना । अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चित्त में सतोष और प्रसन्नता होना । जैसे,—वह यहाँ से निकाल दिया गया, अब तो तुम्हारा जी ठड़ा हुआ ? जी ठुकना = (१) मन को सतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त में दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत बँधना । दे० 'छाती ठुकना' । जी डरना = शका या घ्राणका होना । भ' होना । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जी रत करना (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचाना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना (४) उत्साहित करना । बढ़ावा देना । जी डूबना = (१) वेहोशी होना । मूर्च्छा घाना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । धबराहट और वेचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी डोलना = (१) विचलित होना । चंचल होना । (२) लुब्ध होना । अनुरक्त होना । (३) मन न करना । न चाहना । जी दहा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी तपना = चित्त शोध से सतप्त होना । जी जलना । क्रोध चढ़ना । उ०—सुनि गज बूह अधिक जित तपा । सिंह जात कहुँ रह नहिँ छपा । —जायसी (शब्द०) । जी तरसना = किसी वस्तु या बात के अभाव से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त घोर या दुःखी होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे,—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था । (ख) जब तक बगल में थे, रोटी के लिये जी तरस गया । जी तोड़ काम, परिश्रम या मिहनत करना = जान की बाजी लगाकर किसी काम को करना । जी तोड़ना = (१) दिल तोड़ना । निराश करना । हतोत्साह करना । (२) पूरी शक्ति से काम करना । काम करने में कुछ भी न उठा रखना । जी दहलना = भय या घ्राणका से चित्त डाँवाडोल होना । डर से हृदय काँपना । डर के मारे जी ठिकाने न रहना । अत्यंत भय लगना । जी-दान = प्राण दान । प्राणरक्षा । जी दार = जीवटवाला । दृढ़ हृदय का । साहसी । हिम्मतवर । बहादुर । कड़े दिल का । जी दुखना = चित्त को कण्ट पहुँचाना । हृदय में दुःख होना । जैसे,—ऐसी बात क्यों बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय को कण्ट पहुँचाना । दुःख देना । सताना । जैसे,—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ ? जी देना = (१) प्राण खोना । मरना । (२) दूसरे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहना । (३) प्राण से बढ़कर प्रिय समझना । अत्यंत प्रेम करना । जैसे,—वह तुम पर जो देता है और तुम उससे भागे फिरते हो । जी दोड़ना = मन चलना । इच्छा होना । लालसा होना । जी घेंसा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी घडकना = (१) भय या घ्राणका से चित्त स्थिर न रहना । कलेजा धक धक करना । डर के मारे हृदय में धबराहट होना । डर लगाना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना । हिम्मत न पड़ना । जैसे,—चार पैसे पास से निकालते जी धड-

कता है। जी धक्कधक्क करना = कलेजे का भय आदि के आगे
से जोर जोर से उछलना। जी धडकना = डर लगना। जी
धक्कधक्क होना = ३० 'जी धक्कधक्क करना'। जी निकलना =
(१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) चित्त
व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। जैसे,—भय तो
उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणांत
कष्ट होना। कष्टबोध होना। जैसे,—तुम्हारा रुपया
तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी
निदान होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने
न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना।
जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते
या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होने-
वाली बात का चित्त को प्रसन्न हो जाना। और अधिक सुनने
का साहस चित्त में न रहना। जैसे,—नित्य तुम्हारी जली कटी
बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर
में प्राण का संचार होना। जैसे—गर्भ के बालक को जी
पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होगा। मरे
हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा घामना। किसी
प्रसन्न दुख के वेग को दबाने के लिये हृदय पर हाथ रख
लेना। जी पकड़ा जाना = मन में सदेव पड़ जाना। माया
ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। जिसमें कोई
भारी प्राणका उठना। (स्थि०)। जैसे,—सार प्राते ही
मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर आ घनना = प्राण पर
आ घनना। प्राण बचाना कठिन हो जाना। ऐसे भारी
संकट या झूठ में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो
जाय। जी पर खेलना = प्राण को संकट में डालना। जान
को आफत में डालना। जान पर जोखों उठाना। ऐसा
काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। जी पानी
करना = (१) लहू पानी एक करना। प्राण देने और लेने
की नीयत माना। भारी प्रापति खड़ी करना। (२) चित्त
कोमल या दयालु करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या
दयालु होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना।
चित्त का दयालु होना। (२) हृदय का प्रेमाद्रं होना। चित्त में
स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिख बहलना।
चित्त बँटना। मन का किसी ओर बँट जाना जिसमें दुःख
की बात कुछ भूल जाय। (स्त्री०) जी फट जाना = हृदय
मिला न रहना। चित्त में पहले का सा सद्भाव या प्रेमभाव
न रह जाना। प्रीति भग होना। प्रेम में अंतर पड़ जाना।
चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो
जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो
जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अश्वि
उत्पन्न हो जाना। जैसे,—जब किसी ओर से जी फिर जाता
है तब फिर वह बात नहीं रह जाती। जी फिसलना = चित्त
का किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिचना। हृदय
अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुमाना। जी फोका
होना = ३० 'जी खट्टा होना'। जी बँटना = (१) चित्त का
किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि किसी प्रकार की

दुःख या चिंता की बात भूल जाय। जी बहलाना। (२)
चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय में पूर्ण रूप
से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी चला जाना।
ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भग होना। मन उचटना।
जैसे,—काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो
जी बँट जाता है। (३) एकाग्र प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के
प्रतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न
रहना। जी वद होना = ३० 'जी फिरना'। जी बढ़ना = (१)
चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। होसला बढ़ना। (२) साहस
बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना = (१) उत्साह नष्ट होना।
किसी विषय में प्रवृत्ति करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा
पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में रुचि उत्पन्न करना।
होसला बढ़ाना। जैसे,—लड़कों का जी बढ़ाने के लिये
इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की प्रशंसा
बढ़ाकर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में
होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिलाकर
उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना।
हिम्मत बढ़ाना। जी बहलना = (१) चित्त का किसी विषय में
लगकर ध्यान अनुभव करना। चित्त का ध्यानपूर्वक लीन
होना। मनोरंजन होना। जैसे,—थोड़ी देर तक खेलने से जी
बहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से
दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जैसे,—मित्रों के यहाँ
आ जाने से कुछ जी बहल जाता है नहीं तो दिन रात उस
बात का दुःख बना रहता है। जी बहलाना = (१) रुचि के
अनुकूल किसी विषय में लगकर ध्यान अनुभव करना।
मनोरंजन करना। जैसे,—कभी कभी जी बहलाने के लिये
ताश भी खेल लेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लगाकर
दुःख या चिंता की बात भूल जाना। जी बिखरना = (१)
चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्च्छा होना।
वेहोशी होना। जी बिगड़ना = (१) जी मचलाना। मतली
छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) भटकना। घृणा
करना। धिन मालूम होना। जी बुरा करना = कै करना।
उलटी करना। वमन करना। (किसी की ओर से) जी
बुरा करना = किसी के प्रति प्रच्छा भाव न रखना। किसी
के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध
करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना =
(१) दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न
करना। (२) क्रोध, घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना।
जी बुरा होना = (१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल
खराब होना। (३) चित्त में दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना।
जी बैठ जाना = (१) चित्त विह्वल होता जाना। चित्त
ठिकाने न रहना। चेतन्य न रहना। मूर्च्छा सी आना।
जैसे,—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है
ओर जी बैठा जाता है। (२) मन भरना। उदासी होना।
जी भटकना = चित्त में घृणा होना। धिन मालूम होना।
जी भरना (क्रि० श०) = (१) चित्त तुष्ट होना। तुष्टि
होना। तृप्ति होना। मन प्रधाना। ओर अधिक

की इच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) भ्रम जी भर गया और न खाएँगे। (ख) तुम्हारी बातों से ही जी भर गया, भ्रम जाते हैं। (व्यग्य)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से आनन्द और सतोष होना। जैसे,—लो, मैं, आज यहाँ से चला जाता हूँ, भ्रम तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन में घृणा न होना। जैसे,—ऐसे गंदे धरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भरकर=जितना और जहाँ तक जी चाहे। मनमाना। यथेष्ट। जैसे,—तुम हमें जी भरकर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (क्रि० सं०)=चित्त विषवासपूर्ण करना। चित्त से किसी बात की बुराई या घोसा आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जैसे,—यों तो घोड़े में कोई ऐब नहीं है पर आप वस आदमियों से पूछकर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना=हृदय का कण्ठा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या कष्ट का संचय होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि पक्षियों में घाँस पा जाय। हृदय का कण्ठा से धिल्ल होना। जी भरभरा उठना=रोमांच होना। हृदय के किसी प्राकस्मिक आवेग से चित्त का विह्वल हो जाना। (घपना) जी भारी करना=चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना=सबीयत अच्छी ब होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण सुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना=किसी की ओर चित्त प्राकपित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलना=किसी वस्तु या या व्यक्ति की ओर आकृष्ट होना। जी मचलाना=दे० 'जी मतलाना'। जी मतलाना=चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वमन करने की जी चाहना। जी मर जाना=मन में उमग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना=चित्त में दुःख या पछतावा होना। अफसोस होना। जैसे,—गाँठ के चार पैसे निकालते जी मलमलाता है। जी मारना=(१) चित्त की उमग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) सतोष धारण करना। सप्र करना। जी मिचलाना=दे० 'जी मतलाना'। (किसी से) जी मिलना=चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। जी में घाना=(१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना इरादा होना। सकल्प होना। जैसे,—तुम्हारे जो जी में आवे, करो। जी में घर करना=(१) मन में स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान बना रहना। (२) याद रहना। कोई बात या व्यवहार मन में बराबर रहना। जी में गड़ना या खुभना=(१) चित्त में जम जाना। हृदय में गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय में प्रकित हो जाना। चित्त में ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूर्ति जी में खुभी।—

सूर (शब्द०)। जी में जलना=(१) हृदय में क्रोध के कारण सताप होना। मन में कुड़ना। मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी आना=चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। जैसे,—जब वह उस स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जी में जी डालना=(१) चित्त संतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर करना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जी में डालना=मन में विचार लाना। सोचना। जैसे,—तुम्हारे साथ कोई बुराई करूँगा ऐसी बात कभी जी में न डालना। जी में घरना=(१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चलकर कोई उसके अनुसार कार्य करे। स्थान करना। (२) मन में बुरा मानना। नाराज होना। बैर रखना। जी में पैठना=(१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान में प्रकित होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूलना। जी में बैठना=(१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन में सत्य प्रतीत होना। जैसे,—उन्होंने जो बातें कही वे मेरे जी में बैठ गई। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर प्रकित हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी में रखना=(१) चित्त में विचार धारण करना। स्थान बनाए रखना जिसमें आगे चलकर उसके अनुसार कोई कार्य करें। (२) मन में बुरा मानना। बैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। जैसे,—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय में गुप्त रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। जैसे,—इस बात को जी में रखो, किसी से कहो मत। (किसी का) जी रखना=(किसी का) मन रखना। किसी के मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। जैसे,—जब वह बार बार इसके लिये कहता है तो उसका जी रख दो। जी रकना=(१) जी घबराना। (२) जी हिचकना। चित्त प्रवृत्त न होना। जी लगना=चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। जैसे,—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगाना=चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना=चित्त तत्पर करना। किसी काम में दत्तचित्त बनना। जी लगा रहना या लगा होना=(१) चित्त में ध्यान बना रहना। (२) जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। जैसे,—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया, जी लगा है। (किसी से) जी लगाना=किसी से प्रेम करना। जी लटना=पस्त होना। हिम्मत टूटना। उ०—इस

जगत का जीव वह है ही नहीं। लुट गए धन जी लटा जिसका नहीं।—चोखे०, पृ० २२। जी लटाना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण ह्य से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना = दे० 'जी कांपना'। जी ललचना = (१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। (२) किसी चीज के पाने के लिये सरसना। जैसे,—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं की देखकर जी ललच गया। (३) चित्त आकर्षित होना। मन लुमाना। मन मोहित होना। जी लमचाना = (१) (क्रि० प्र०) दे० 'जी ललचना'। (२) (क्रि० सं०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। जैसे,—दूर से दिखाकर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुमाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन भ्रम होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुमाना = (१) (क्रि० सं०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन खींचना। (२) (क्रि० प्र०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना जैसे,—उसे देखते ही जी लुमा जाता है। जी लुटना = मन मोहित करना। जी लेना = जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। जैसे,—वहाँ जाने के लिये हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) जी लेना = प्राण हरण करना। मार डालना। जी छोटना = जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। जी सन हो जाना = भय, आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी घबरा जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे,—उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी सनसनाना = (१) चित्त स्तब्ध होना। भय, आशंका, क्षीणता आदि से अंगों की गति शिथिल हो जाना। (२) चित्त विह्वल होना। जी साँय साँय करना = दे 'जी सनसनाना'। जी से = जी लगाकर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से। दत्तचित्त होकर। जैसे,—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उतर जाना = दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्त हो जाना। भला न जँचना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकरार हो जाना। जी से उतरना या जी से उतार देना = किसी वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा या अवहेलना करना कदम न करना। जी से जाना = प्राणविहीन होना। मरना। जान खो बैठना। जैसे,—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी

मिलना। (१) हृदय के भाव परस्पर एक होना = एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना = चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। जैसे,—(क) ऐसे कामों से भय हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एकदम हट गया। जी हवा हो जाना = किसी भय, दुःख या शोक के सहसा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना = (१) किसी का भाव अपने प्रति अग्र्य रखना। राजी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका पैदा न होने देना। दिलासा दिए रहना। जी हाथ में लेना = दे० 'जी हाथ में रखना'। जी हारना = (१) किसी काम से घबराना या ऊब जाना। हैरान होना। पस्त होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छोड़ना। जी हिलना = (१) भय से हृदय कांपना। जी दहलना। (२) करुणा से हृदय क्षुब्ध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

जी^२—अर्थ [सं० जित् प्रा० जिव (= विजयो) या सं० (श्री) युत प्रा० जुक, हि० जू] एक समानसूचक शब्द जो किसी नाम या शब्द के भागे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संवोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रतिसंवोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। जैसे,—(क) श्री रामचंद्र जी, पंडितजी, त्रिपाठी जी, लाला जी इत्यादि। (ख) कथन—ये ग्राम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ। वेशक। (ग) तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास? उत्तर—जी हाँ? (या केवल) जी।

विशेष—प्रश्न या केवल संवोधन में जी का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता। जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्त्रीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान पर केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे, प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)। उच्चारण भेद के कारण जी से तात्पर्य पुनः कहने के लिये होता है। जैसे,—किसी ने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो? उत्तर मिला 'जी'? अर्थ से स्पष्ट है कि श्रोता पुनः सुनना चाहता है कि उससे क्या कहा गया है।

जी^३—वि० [प्र० जी] वाला। सहित। युक्त [क्रि०]।

जी^४—जीशकर = शरकरवाना। तमीजदार। (२) समझदार। जीशान = शानवाला।

जी^५—सखा पु० [हि०] दे० 'जी', 'जीव'।

जी^६—सखा पु० [हि०] दे० 'जीवन'।

जी^७—सखा पु० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जीऊ—सखा पु० [हि०] दे० 'जिउ'। उ०—विनु जल मीन तपी तस जीऊ। चानिक भई कहत पिउ पीऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

जीकाद—सखा पुं० [अ० जीकाद] हिजरी सन् के ग्यारहवें महीने का नाम [को०] ।

जीको^④—सर्व० [हिं०] जिसका । उ०—ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिली जीको ।—घनानन्द, पृ० ४६४ ।

जीगन^④—सखा पुं० [सं० ज्योतिरङ्गण, देशी जोइगण, हिं० जीगन] दे० 'जुगम्' । उ०—बिरह जरी लखि जीगनतु कह्यो न उहि के बार । अरी आठ भजि भीतरी बरसतु आज अंगार ।—विहारी (शब्द०) ।

जीगा—सखा पुं० [फा० जीगह्] १ तुरी । सिरपेच । कलंगो । २ पगड़ी में बाँधने का एक रत्नजडित आभूषण (को०) । ३ कोलाहल । शोर (को०) ।

जीजा—सखा पुं० [हिं० जीजी] बड़ी बहिन का पति । बड़ा बहनोई ।

जीजी—सखा स्त्री० [सं० देवी, हिं० देई, प्रा० दीदी अथवा देण० (= बड़ी बहिन)] उ०—कीजे कहा जीजी जू । सुमित्रा परि पायें कहै तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीजूराना—सखा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

जीटा—सखा स्त्री० [हिं०] डींग । सबी चौड़ी बात ।

मुहा०—जीट उठाना=डींग हाँकना उ०—अपनी तहसीलदारी की ऐसी जीट उठाई कि रानी जी मुग्ध हो गई ।—काया, पृ० ५८ । जीट मारना=दे० 'गप मारना' ।

जीण^④—सखा पुं० [सं० जीवन] जीवन । उ०—सरसति सामग्री तू जग जीण । हंस खड़ी लटकावे बीण ।—बी०, रासो, पृ० ४ ।

जीत^१—सखा स्त्री० [सं० जिति, वैदिक जीति] १ युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता । जय । विजय । फतह । क्रि० प्र०—होना ।

२ किसी ऐसे कार्य में सफलता जिसमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हो । जैसे, मुकदमे में जीत, खेल में जीत, बाजी में जीत । ३ लाभ । फायदा । जैसे,—तुम्हारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी, उधर से भी ।

जीत^२—सखा स्त्री० [?] जहाज में पाल का घुताम ।—(लश०) ।

जीत^३—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'जीति' ।

जीतनहार—वि० [हिं० जीतना + हार (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजय करनेवाला । उ०—क्यों न फिर सब जगत में करत दिग्बिजै मार । जाके दग सामत हैं कुवलय जीतनहार ।—मति० प्र०, पृ० ३६६ ।

जीतना—क्रि० सं० [हिं० जीत + ना (प्रत्य०)] १ युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना । शत्रु को हाराना । विजय प्राप्त करना । जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना । उ०—रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु भावत ।—मानस ७ । २ । २ किसी ऐसे कार्य में सफलता प्राप्त करना जिसमें दो या दो से अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हो । जैसे, मुकदमा जीतना, खेल में जीतना, बाजी जीतना, जुए में रुपया जीतना ।

जीतब^④—सखा पुं० [सं० जीवितव्य] जीवन् । जीवित रहना ।

उ०—ताते लोमस नाम है मोरा । करी समाध जीतव है थोरा ।—कबीर सा०, पृ० ४३ ।

जीता—वि० [हिं० जीना] [वि० स्त्री० जीती] १ जीवित । जो मरा न हो । २ तेल या नाप में ठीक से कुछ बड़ा हुआ । जैसे,—अरा जीता तेलो ।

जीतालू—सखा पुं० [सं० आलु] आरारोट ।

जीता लोहा—सखा पुं० [हिं० जीना + लोहा] चुंबक । मेकतानीस ।

जीति^१—सखा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम ।

विशेष—यह जमुना किनारे से नेपाल तक तथा प्रवध, बिहार और छोटा नागपुर में होती है । इसके रेशे बहुत मजबूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम आते हैं । इन रेशों को टोगुस कहते हैं । इन रेशों से धनुष की टोरी बनती है ।

जीति^२—सखा स्त्री० [सं०] १ विजय । उ०—जीति उठि जाइगी प्रजीत पटु पूतनि की, सूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी ।—रत्नकर, भा० २, पृ० १४२ । २. दाय । हानि (को०) । ३. ह्रास की अवस्था । वृद्धावस्था (को०) ।

जीन^१—सखा पुं० [फा० जीन] १ घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी । चारजामा । काठी ।

यौ०—जीनपोश ।

२. पलान । कजावा । ३. एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

जीन^२—वि० [सं०] १ जीण । पुराना । अजर । कटा फटा । २ वृद्ध । ३ क्षीण (को०) ।

जीन^३—सखा पुं० चमड़े का धेला (को०) ।

जीनत—सखा स्त्री० [अ० जीनत] १ शोभा । छवि । नुबसूरती । २. सजावट । शृंगार ।

क्रि० प्र०—देना=शोभा देना ।—बदरना=शोभा या सौंदर्य बढ़ाना ।

जीनपोश—सखा पुं० [फा० जीनपोश] खीन के ऊपर ढकने का कपड़ा । काठी का ढँकना ।

जीनसचारी—सखा स्त्री० [फा० जीन + सचारी] घोड़े पर जीन रखकर चढ़ने का कथ्य । जैसे,—यह घोड़ा जीनसचारी में रहता है ।

जीनसाज—सखा पुं० [फा० जीनसाज] जीन बनानेवाला कारीगर चारजामा बनानेवाला ।

जीना—क्रि० सं० [सं० जीवन] १ जीवित रहना । सजीव रहना । जिंदा रहना । न मरना । जैसे,—यह घोड़ा अभी मरा नहीं है जीता है । (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा । उ०—अरविद सो आनन रूप मरए अनदित सोचन भृगु पिए । मन मों न बरयो ऐसो बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिए ?—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. जीवन के दिन बिताना । जिंदगी काटना । जैसे,—ऐसे जीने से तो मरना अच्छा ।

मुहा०—जीना भारी हो जाना=जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन

का सुख और भानद जाता रहना । जीता जागता = जीवित और सचेत । भला चगा । जीता लहू = देह से ताजा निकला हुआ खून । जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई प्रत्याय या अनुचित कर्म करना । सरासर वेईमानी करना । जैसे,—उससे अपना पाकर मैं कैसे इनकार करूँ ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती । (२) जान बूझकर बुराई में फँसना । जान बूझकर आपत्ति या सकट में पड़ना । जीते जी = (१) जीवित अवस्था में । जिदगी रहते हुए । उपस्थिति में । बने रहते । छाछत । जैसे,—(क) मेरे जीते जी तो कभी ऐसा न होने पाएगा । (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नहीं पा सकता । (२) जबतक जीवन है । जिदगी भर । जैसे,—मैं जीते जी आपका उपकार नहीं भूल सकता । जीते जी मर जाना = जीवन में ही मृत्यु से बढ़कर कष्ट भोगना । किसी भारी विपत्ति या मानसिक आघात से जीवन भारी होना । जवन का सारा सुख और भानंद जाता रहना । जीवन नष्ट होना । जैसे—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए । (ख) इस चोरी से जीने जी मर गए । जीते जी मर मिटना = (१) बुरी दशा को पहुँचना । (२) अत्यंत श्रासक्त होना । उ०—मैं तो जीते जी मर मिटा यारो कोई तबदीर ऐसी बताओ कि विनाल नसीब हो जाय ।—फिमाना०, भा० १, पृ० ११ । जीते रहो = एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से छोटी को दिया जाता है । जब तक जीना तब तक सोना = जिदगी भर किसी काम में लगे रहना । उ०—पेट के बेट वेगारहि मैं जब लीं जियना तब लीं सियना है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

३. प्रसन्न होना । प्रफुल्लित होना । जीते,—उसके नाम से तो वह जी उठता है ।

सयो० क्रि०—उठना ।

मुहा०—अपनी खुशी जीना = अपने ही सुख से भानदित होना ।

जीप—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की छोटी मोटर जो कार से अधिक मजबूत होती है तथा उसके आगे पहिए इजन द्वारा संचालित होते हैं । उ०—बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीप का रास्ता निकाल दिया जाय ।—किन्नर०, पृ० ११ ।

जीपण०—वि० [हि० जीपना] जीतनेवाले । उ०—उदर सुमिश्र लक्षण जीपण ग्रि, घरे शेष अवतार घुरंघर ।—रघु० ६०, पृ० ६० ।

जीपना—क्रि० सं० [हि० जीतना] जीतना । उ०—अवसाण आए छत्री पोरस सरसावे । यह लोक जीप परलोक मोल पावे ।—रा० ६०, पृ० ११४ ।

जीवना०—क्रि० प्र० [हि० जीवना] जीवित रहना । जीवन धारण करना । उ०—मैं गद्दी तेग पति साह सँ-घरि जाहू-जोन जीवो चहै । ह०, रसो, पृ० ८६ ।

जीवो०—संज्ञा पुं० [हि० जीवना] दे० 'जीवन' । उ०—साहिब में सरत्रा समर्य सिवराज, कबि सुपन कहत जीवो तेरोई सफल हैं ।—सुपन प्र०, पृ० ६३ ।

जीभ—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा, प्रा० जिह्व] १. मुँह के भीतर

रहनेवाली लंबे चिपटे मांसपिंड के आकार की वह इद्रिय जिससे कटु, म्ल, तिक्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है । जवान । जिह्वा । रसना ।

विशेष—जीभ मांसपेशियों और स्नायुओं से निर्मित है । पीछे की ओर यह नाल के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं । नीचे की ओर यह दाढ़ के मांस से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली भिल्ली से ढकी है जिसमें से बराबर लार छूटती रहती है । नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोशमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँटे कहलाते हैं । ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई घघचक्राकार कोई चिपटे और कोई नोक या शिखा के रूप के होते हैं । जिन मांसपेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है उन्हीं के बल से यह इधर उधर हिल डोल सकती है । स्नायुओं में जो महीन महीन शाखा स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा शीत, उष्ण आदि का अनुभव होता है । इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है । इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है । इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वादु वस्तु मुँह में लेकर कभी लोग जीभ चटकारते या दवाते हैं । द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है । १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबोकर यदि उसपर कोई वस्तु रखी जाय तो खट्टे मीठे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता । कई घृष्ट ऐसे हैं जिनकी पत्तियाँ चढ़ा लेने से भी यह ज्ञान थोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है । वस्तुओं का कुछ प्रश्न काटों में लगकर और घुलकर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं में पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है । अतः यदि कोई वस्तु सूखी, कड़ी है तो उसका स्वाद हमें जल्दी नहीं जान पड़ेगा । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से घनिष्ठ संबंध है । कोई वस्तु खाते समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं । जिस स्थान पर जीभ लारयुक्त मांस आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र या वधन होते हैं जो जीभ की गति नियत या स्थिर रखते हैं । इन्हीं वधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती । बहुत से बच्चों की जीभ में यह वधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोझ नहीं सकते । वधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं । रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीभ का बड़ा भारी कार्य कठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है । इन्हीं विभेदों से वणों की उत्पत्ति होती है जिनसे भाषा का विकास होता है । इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं ।

पर्या०—जिह्वा । रसना । रसना । रसाल । रसिका । साधुस्रवा । रसला । रसाका । लसना ।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बड़कर बोलना । ठिठ्ठाई से उत्तर देना । जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना । शब्द निकालना । जैसे,—प्रब्र जहाँ जीभ खोली कि पिटे । जीभ चलना = भिन्न-भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना । स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना । चटोरेपन की इच्छा होना । उ०—जीभ चले बल ना चले वहै जीभ जरि जाय ।—(शब्द०) । जीभ थोड़ी करना = कम बोलना । बकवाद कम करना । अधिक न बोलना । उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी । हाथ नचावति भावति ग्वालिन जीभ न करही थोरी ।—सूर (शब्द०) । जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना । (२) जीभ खींचना । जीभ उखाड़ लेना । जीभ पडना = बोलने न देना । बोलने से रोकना । जीभ बढ़ाना = चटोरेपन की आदत होना । जीभ बंद होना = बोलना बंद करना । जबान न खोलना । चुप रहना । जीभ हिलाना = मुँह से कुछ न बोलना । छोटी जीभ = गलशुडी । किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना । एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना ।

२ जीभ के आकार की कोई वस्तु । जैसे,—निब ।

मुहा०—कलम की जीभ = कलम का वह भाग जो छीलकर नुकीला किया रहता है ।

जीभा—सब्बा पु० [हि० जीभ] १ जीभ के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोल्हू का पंचर । २ चौपायों की एक बीमारी जिसमें उनकी जीभ के कटे सूज या बड़ जाते हैं और उनसे खाते नहीं बनता । देखी । अवार । ३ बैलों की आँख की एक बीमारी जिसमें आँख का मांस बढ़कर लटक जाता है ।

जीभी—सब्बा खी० [हि० जीभ] घातु की बनी एक पतली लचीली और धनुषाकार वस्तु जिससे जीभ छीलकर साफ करते हैं ।

२ मेल साफ करने के लिये जीभ छीलने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. निब । ४. छोटी जीभ । गलशुडी । ५. चौपायों का एक रोग । दे० 'जीभा' । ६. लगाम का एक भाग ।

जीभी चाभा—सब्बा पु० [हि० जीभ + चाभना] चौपायों का एक रोग । दे० 'जीभा' ।

जीमट—सब्बा पु० [सं० जीमूत (= पोषण करनेवाला).] पेड़ों और पौधों के घड़, शाखा और टहनी आदि के भीतर का गूदा ।

जीमना—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना । आहार करना । खाना । उ०—कावा फिर काशी भया राम जो भया रहीम मोटा चुन मैदा भया बैठि कवीरा जीम ।—कबीर (शब्द०) ।

जीमूत—सब्बा पु० [सं०] १ पर्वत । २ मेघ । बादल । ३. मुस्ता । मोषा । नागर मोषा । ४. देवताइ वृक्ष । ५. इद्र । ६. पोषण करनेवाला । रोजी या जीविका देनेवाला । ७. घोषा लता । ८. सूर्य । ९. एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है । १०. एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा में रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था । ११. हरिवंश के अनुसार दशाहं के पौत्र का नाम । १२. ब्रह्मांड पुराण में

शाल्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे । १३. शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम । १४. एक प्रकार का दड़क घुत्ता जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं । यह प्रचित के अतर्गत है ।

जीमूतमुक्ता—सब्बा खी० [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती ।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है । बृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुडपुराण, युक्ति-कल्पतरु आदि ग्रंथों में भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आज तक देखा नहीं गया । बृहत्संहिता में लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार ओले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है । जिस प्रकार ओले बादल से गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही में उठा लेते हैं । सारांश यह है कि यह मुक्ता मनुष्यों को अलभ्य है । न देखने पर भी प्राचीन आचार्य लक्षण बतलाने से नहीं झूके हैं और उन्होंने इसे मुरगी के अंडे की तरह गोब, ठोस और बजनी बनलाया है । इसकी काति सूर्य की किरण के समान कही गई है । इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय ।

जीमूतवाहन—सब्बा पु० [सं०] १ इद्र । २ शालिवाहन राजा का पुत्र ।

विशेष—प्राश्विन कृष्ण ८ को पुत्रकामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं ।

३ जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानन्द का नायक है । ४ धर्मरत्न नामक स्मृतिसंग्रहकार ।

जीमूतवाही—सब्बा पु० [सं० जीमूतवाहिन] धूम । धुवाँ ।

जीय^१—सब्बा पु० [हि०] दे० 'जीव', 'जी' ।

मुहा०—जीय घरना = दे० 'जी' से 'घरना' । उ०—माधव लू जो जन तें विगरे । तउ कृपालु करुणामय केशव प्रभु नहि जीय घरे ।—सूर (शब्द०) ।

जीयट—सब्बा पु० [हि०] दे० 'जीवट' ।

जीयति^१—सब्बा खी० [हि० जीना] जीवन । जिंदगी । उ०—तोहि सोहि आँखिनि सो आँखें मिली रहें जीयति को यहै लहा ।—हरिदास (शब्द०) ।

जीयदान—सब्बा पु० [सं० जीवदान] प्राणदान । जीवनदान । प्राणरक्षा । उ०—बालक काज धर्म जनि छाँड़ो राय न ऐसी कीजै हो । तुम मानी वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो ।—सूर (शब्द०) ।

जीये^१—वि० [प्रा० जेव, जेम] दे० 'जिमि' या 'ज्यो' । उ०—जीये तेल तिलनि मे जीये गधि फूलनि ।—संतवाणी, पु० ८५ ।

जीर^१—सब्बा पु० [सं०] १ जीरा । २. फूल का जीरा । केसर । उ०—रघुराज पंकज को जीर नहि बेवे हरि धरौ किमि धीर पावे पीर मन मोर है ।—रघुराज (शब्द०) । ३. खट्वा । खलवार । ४. अणु ।

जीर^२—वि० क्षिप्र । तेज । जल्दी चलनेवाला ।

जीर^३—संज्ञा पुं० [क्रा० जिरह] जिरह । कवच । उ०—कुडल के ऊपर कडाके सँठे ठौर ठौर, जीरन के ऊपर खडाके खडगान के ।—भूषण (शब्द०) ।

जीर^४—वि० [सं० जीर्ण] पुराना । जर्जर । उ०—मनहू मरी इक वर्ष की मयो तासु तन जीर । कल्पत कर महि पर गिरी गयो सुखाय शरीर ।—रघुराज (शब्द०) ।

जीरक^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरक^२—वि० [क्रा० जीरक] १. प्रवीण । प्रतिभाशाली । २. होशियार । चालक ।

जीरण^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा ।

जीरण^२—वि० [सं० जीर्ण] दे० 'जीर्ण' ।

जीरह^१—संज्ञा पुं० [क्रा० जिरह] । श्रंगश्राण । सन्नाह । उ०—जान तणी सजति करस । जीरह रगावली पहहरज्यो टोप ।—वीसल० रास०, पृ० ११ ।

जीरा—संज्ञा पुं० [सं० जीरक, तुलनीय क्रा० जीरह] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पीघा ।

विशेष—इसमें सोंफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सीकों में लगते हैं । पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लची होती हैं । बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र अधिकता से बोया जाता है । लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है । मिस्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि टापुओं में यह जगली पाया जाता है । माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है । जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं—सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक । सफेद या साधारण जीरा भारत में प्रायः सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है । काश्मीर लद्दाख, बलूचिस्तान तथा गद्वाल और कुमाऊँ से आता है । काश्मीर और अफगानिस्तान में तो यह खेतों में और तृणों के साथ उगता है । माल्टा आदि पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा और तीव्र गंध का होता है । वैद्यक में यह कटु, उष्ण, दीपक तथा मतीसार, गृहणी, कृमि और कफ वात को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—जरण । मजाजी । कणा । जीर्ण । जीर । दीप्य । जीरण । मजाजिका । मृत्तिशिव । मागध । दीपक ।

मुहा०—ऊँट के मुँह में जीरा = खाने की कोई चीज मात्रा में बहुत कम होना ।

२. जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज । ३. फूलों का केसर । फूलों के बीज का महीन सूत ।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वशापत्री नाम की घास ।

जीरी—संज्ञा पुं० [हि० जीरा] एक प्रकार का धान जो मगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावस बहुत दिनों तक रह सकता है ।

पजाव के करनाल जिले में अधिक होता है । इसके दो भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी ।

जीरीपटन—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का फूल ।

जीर्ण—वि० [सं०] १. बहुत बुढ़ा । बुढ़ापे से जर्जर । २. पुराना । बहुत दिनों का । जैसे, जीर्ण ज्वर । ३. जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया होगा । कमजोर हो गया हो । फटा पुराना । उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—जीर्ण शीर्ण = फटा पुराना । टूटा फूटा ।

४. पेट में अच्छी तरह पचा हुआ । जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो । परिपक्व । जैसे,—जीर्ण अन्न, अजीर्ण ।

जीर्ण^१—संज्ञा पुं० १ जीरा । २. बूढ़ा व्यक्ति (को०) । ३. वृक्ष (को०) । ४. शिलाजतु (को०) । ५. वृद्धावस्था । वार्धक्य (को०) ।

जीर्णक—वि० [सं०] प्रायः शुष्क या कुम्हालाया हुआ (को०) ।

जीर्णज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार । वह ज्वर जिसे रहते बारह दिन से अधिक हो गए हों ।

विशेष—किसी किसी के मत से प्रत्येक ज्वर अपने आरंभ के दिन से ७ दिन तक रहण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर दुबल और रूखा हो जाय तथा उसे बुखान लगे और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है ।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । बुढ़ाई । २. पुरानापन ।

जीर्णदारु—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष । विषारा ।

जीर्णपत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] पट्टिका लोघ । पठानी लोघ ।

जीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्ध का पेड़ । २. पुराना पत्ता (को०) ।

जीर्णफर्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीर्णफर्जी] विषारा (को०) ।

जीर्णवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जीर्णपर्ण' ।

जीर्णवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रात मण्ड ।

जीर्णवस्त्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] फटा पुराना कपड़ा (को०) ।

जीर्णवस्त्र^२—वि० जो फटे पुराने कपड़ों में हो (को०) ।

जीर्णवाटिका—संज्ञा पुं० [सं०] खंडहर (को०) ।

जीर्णा^१—वि० [सं०] बुढ़ा । बुढ़िया ।

जीर्णा^२—संज्ञा स्त्री० काली जीरी ।

जीर्णास्थिमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ाकर बनाई हुई मिट्टी ।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थ चिन्तामणि नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है,—जहाँ शिलाजीत निकलता हो वहाँ एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरो और मनुष्यों की र दे । ऊपर से सज्जीखार नमक, गंधक और महीने तक ढालता जाय । इसके पीछे फिर पत्थर तीन वर्ष में ये सब वस्तुएँ एक सिल उस सिल को लेकर मुकनी कर द ऐसे पात्र में भोजन करना

उ०—सुकवि सरदनम मन उडुगन से । राम भगत जन जीवनधन से ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीवनधर^१—वि० [सं० जीवन + धर] जीवनरक्षक । जीवनदायक जीवनप्रद [को०] ।

जीवनधर^२—सञ्ज्ञा पुं० जलधर । मेघ । बादल [को०] ।

जीवनवूटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हि० वूटी] १ एक पीघा या वूटी । संजीवनी ।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए आदमी को भी जिला सकती है ।

२ अति प्रिय वस्तु या व्यक्ति ।

जीवनमरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवन और मरण । जिनगी और मौत ।

जीवनमुक्त—वि० [सं०] जो जीवन में ही सर्वबंधनों से मुक्त हो चुका हो [को०] ।

जीवनमुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनकाल में ही प्राप्त निर्वन्धता [को०] ।

जीवनमूरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + मूल] १ सजीवनी नाम की जड़ी । २ अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति । प्यारी । प्राणप्रिया ।

जीवनमूर्ति^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवनमूल] सजीवनी वूटी । उ०—जीवन को ले का करों, पायो जीवनमूर्ति । भक्ति की सार यह ।—नद० ग्र०, पृ० १८८ ।

जीवनयापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवन + यापन] जीवननिर्वाह । जीवन व्यतीत करना ।

जीवनवृत्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित् । जीवनवृत्तांत । जीवनी ।

जीवनवृत्तांत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवनवृत्तांत] जीवनचरित । जिनगी भर का हाल । जीवनी ।

जीवनवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] जीवनोपाय । प्राणरक्षा के लिये उद्यम । रोजी ।

जीवनसंग्राम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवन + संग्राम] जीवन की सघर्षमय परिस्थितियों का सामना । सघर्षों में जीवनयापन का प्रयत्न ।

जीवनहेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का साधन । जीविका । रोजी ।

विशेष—गृहपुत्राण में दस प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, विपणि, कृषि, वृत्ति, भिक्षा और कुशीद ।

जीवनांत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवनांत] जीवन की समाप्ति । मरण । मृत्यु [को०] ।

जीवना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १, महोषध । २ जीवती लता । उ०—जीवत मिरनक होइ रहै, तजे खलक की आस ।—सत्-वाणी०, पृ० ४८० ।

जीवना^२^७—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जीना' ।

जीवना^३—क्रि० प्र० दे० 'जीमना' ।

जीवनाघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष । प्राणघाती जहर [को०] ।

जीवनाधार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवन का अचलब या सहारा [को०] ।

जीवनाधार^२—वि० परम प्रिय । प्राणाधार [को०] ।

जीवनांतर—क्रि० वि० [सं० जीवनान्तर] जीवन के बाद ।

जीवनावास^१—वि० [सं०] जल में रहनेवाला ।

जीवनावास^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वरुण । २ देह । शरीर ।

जीवनि^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवनी] १. सजीवनी वूटी । २ जिलाने-वाली वस्तु । प्राणाधार । ३. अत्यंत प्रिय वस्तु । उ०—गहलो गरव न कीजिए, समय सुहागिनि पाय । जिय की जीवनि जेठ मो, माह न छादि सुहाय ।—विहारो (शब्द०) ।

जीवनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ काकोली । २. तित्त जीवती । डोडी । ३ मेद । ४. महामेद । ५ लूही ।

जीवनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हि० ई (प्रत्य०)] जीवन भर का वृत्तांत । जीवनचरित् । जिनगी का हाल ।

जीवनीय^१—वि० [सं०] १ जीवनप्रद । २ जीविका करने योग्य । वरतने योग्य ।

जीवनीय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जल । २ जयती वृक्ष । ३ दूध (दि०) ।

जीवनीयगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में बलकारक औषधियों का एक वर्ग ।

विशेष—इसके अंतर्गत अष्टवर्ग पर्णिनी, जीवन्ती, मधूक और जीवन हैं । वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवन्ती, काकोली, मेघ, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, ऋषभक जीवक और मधूक ।

जीवनीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती लता ।

जीवनेत्री - सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सेंहली वृक्ष ।

जीवनोत्तर—वि० [सं०] जीवन के बाद का ।

जीवनोत्सर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवन + उत्सर्ग] जीवन की बलि । जीवन का दान । उ०—यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग ।—युगांत, पृ० ४७ ।

जीवनोपाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का उपाय । जीविका । वृत्ति । रोजी ।

जीवनोषध—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय ।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा में ही सात्मज्ञान द्वारा सासारिक मायाबंधन से छूट गया हो ।

विशेष—वेदातसार में लिखा है कि जिसने अखंड चैतन्य स्वरूप ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो ज्ञान तथा अज्ञान के कार्य, पाप पुण्य एवं संधय, अमृत आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है । सांख्य और योग के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्यस्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो । जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हो । जिसका जीवन सार्वक और

सुखमय न हो । उ०—यहाँ श्रकेला मानव ही रे चिर विषण्ण
जीवन्मृत ।—प्राण्या, पु० १६ ।

विशेष—जो, अपने कर्तव्य से विमुख और प्रकर्मण्य हो, जो सदा
ही कष्ट भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपना पोषण कर
सकता हो, जो अतिथि आदि का सत्कार न करता हो, ऐसा
मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है ।

जीवन्यास—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र ।

जीवपति^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धर्मराज ।

जीवपति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसका पति जीवित हो । सधवा
स्त्री । सोभाग्यवती स्त्री । सुहागिनी स्त्री ।

जीवपत्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो ।
सधवा स्त्री ।

जीवपत्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] नया पत्ता [को०] ।

जीवपत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती ।

जीवपितृक—वि० [सं०] जिसका पिता जीवित हो [को०] ।

जीवपुत्रक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ पुत्रजीव वृक्ष । जियापोता का पेड़ ।
२ इंगुदी का वृक्ष ।

जीवपुत्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०] ।

जीवपुष्पा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बृहज्जीवती । बड़ी जीवन्ती ।

जीवप्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी । हड़ ।

जीववंद^④—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीववन्धु । दे० 'जीववधु' ।

जीववन्धु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीववन्धु । गुल दुपहरिया । वधुजीव ।
वधुक ।

जीववलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पशु आदि की बलि [को०] ।

जीवबुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीव + बुद्धि] सामान्य प्राणियों की
समझ । लौकिक बुद्धि । उ०—परि छिन एक मे जीवबुद्धि सो
विगरि गई ।—दो सौ० वावन०, भा० १, पृ० १३५ ।

जीवभद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवती सता ।

जीवमन्दिर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीवमन्दिर] देह । शरीर [को०] ।

जीवमातृका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, घनदा, नदा, विमला, मंगला,
बला और पद्मा नाम की सात देवियाँ जो जीवों का पालन
और कल्याण करती हैं । (विधान पारिजात) ।

जीवयाज—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पशुओं से किम्रा जानेवाला यज्ञ ।

जीवयोनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव मृष्टि । जीवजंतु । जानवर ।

जीवरक्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] स्त्रियों का रज जो गर्भधारण के उपयुक्त
हुमा हो ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह पचभौतिक होता है अर्थात् जिन
पचभूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं ।

जीवरा^④—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जीव । प्राण । उ०—साई सेती
चोरिया, चोरा सेती जुमझ । तब जानेगा जीवरा मार परैगी
तुमझ ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवरिङ्ग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीव या जीवन] जीवन । प्राणधारण
की शक्ति । उ०—वी मन माली मदन बुर मालवाल बयो ।

प्रेम पय सीन्हीं पहिल ही सुमग जीवरि दयो ।—सूर
(शब्द०) ।

जीवल—वि० [सं०] १ जीवनमय । २. जीवनपूर्ण । ३. सजीव
करनेवाला । सप्राण करनेवाला [को०] ।

जीवला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेहली । २. सिंहपिप्पली ।

जीवलोक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] भूलोक । पृथ्वीतल । मर्त्यलोक ।

जीववत्सा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका बच्चा जीवित
हो [को०] ।

जीववल्ली—सञ्ज्ञा सञ्ज्ञा [सं०] क्षीरकाकोली ।

जीवविज्ञान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीव + विज्ञान] जीव जंतुओं विषयक
भारीरिक विज्ञान [को०] ।

जीवविषय—सञ्ज्ञा [सं०] जीवा या जीवन का विस्तार [को०] ।

जीववृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का गुण या व्यापार । २. पशु
पालने का व्यवसाय ।

जीवशाक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का शाक जो मालवा देश
में अधिक होता है । सुसना ।

जीवशुक्ला—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] क्षीरकाकोली ।

जीवशेष—वि० [सं०] जिसका केवल प्राण बचा हो । प्राणशेष ।
[को०] ।

जीवशोणित—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सजीव या स्वस्थ रक्त [को०] ।

जीवश्रेष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवमद्रा [को०] ।

जीवसंक्रमण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीवसङ्क्रमण] जीव का एक
शरीर से दूसरे शरीर में गमन ।

जीवसंज्ञा—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कामवृद्धि वृक्ष ।

जीवसाधन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धान्य । धान ।

जीवसुत—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीव + सुत] वह जिसका पुत्र जीवित
हो [को०] ।

जीवसुता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो ।

जीवसू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी सति जीती हो ।
जीवत्तिका ।

जीवस्थान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ जीव रहता है । मर्म-
स्थान । हृदय ।

जीवहत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राणियों का वध । २ प्राणियों
के वध का दोष ।

जीवहिंसा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] प्राणियों की हत्या । जीवों का वध ।

जीवहीन—वि० [सं०] १ मृत । जीवहरित । २. प्राणहीन ।
जहाँ कोई जीव न हो [को०] ।

जीवांतक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जीवान्तक] १ जीवों का वध करनेवाला ।
२ व्याध । बहलिया ।

जीवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सीधी रेखा जो किसी चाप के
सिरे से दूसरे सिरे तक हो । ज्या । २ धनुष की शरी ।

३ जीवती । ४ बालवच । वचा । ५ भूमि । ६. जीवन ।
७ जीवनीपाय । जीविका । ८ जीवन (की०) । ९. आभरण
की खनक या झनक (की०) ।

जीवाजूर्ना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवयोनि] जीवजतु । प्राणीमात्र । पशु, पक्षी,
कीट, पतंग आदि । उ०—पो फाटी पगरा हुमा जागे जीवाजूर्न ।
सब काहू को देत है चोच समाना घून ।—कवीर (शब्द०) ।

जीवाणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीव + अणु] अति सूक्ष्म जीव । क्षुद्रतम
जीव । उ०—ऐसा होता है कि जीवाणु कई पुष्टो तक बिना
विकसित हुए प्रवाहित रहें । —पा० सा० सि०, पृ० ११२ ।

जीवातु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्य । आहार । २ जीवन ।
अस्तित्व । ३ पुनर्जीवन । ४ जीवनदायक औषध [को०] ।

जीवातुमन्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आयुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे
आयु की प्रार्थना की जाती है । (आश्वश्रौत सूत्र)

जीवात्मा—सञ्ज्ञा पुं० [जीवात्मन्] प्राणियों की चेतन वृत्ति का
कारणस्वरूप पदार्थ । जीव । आत्मा । प्रत्यगात्मा ।

विशेष—अनेक धार्मिक और दार्शनिक मतों के अनुसार शरीर
से भिन्न एक जीवात्मा है । इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में
दिए गए हैं । सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है
और उसे नित्य, त्रिगुणशून्य, चेतन स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ,
द्रष्टा, विवेकी, सुख-दुःख-शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना
है । आत्मा या पुरुष अकर्ता है, कोई कार्य नहीं करता,
सब कार्य प्रकृति करती है । प्रकृति के कार्य को हम अपना-
(आत्मा का) कार्य समझते हैं । यह भ्रम है । न आत्मा
कुछ कार्य करता है, न सुख दुःखादि फल भोगता है । सुख
दुःख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म है । आत्मा न बढ़
होता है, न मुक्त होता है । कठोपनिषद् में आत्मा का परि-
माण अणुष्ठमात्र लिखा है । इसपर सांख्य के भाष्यकार
विज्ञानभिक्षु ने बतलाया है कि अणुष्ठमात्र से अभिप्राय
अत्यंत सूक्ष्म से है । योग और वेदांत दर्शन भी आत्मा को
सुख दुःख आदि का भोक्ता नहीं मानते । न्याय, वैशेषिक और
मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता
मानते हैं । न्याय वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा नित्य, प्रति
शरीरभिन्न और व्यापक है । शांकर वेदांत दर्शन में जीवात्मा
और परमात्मा को एक ही माना गया है । उपाधियुक्त होने से
ही जीवात्मा अपने को पृथक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने
पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता
है । सांख्य, वेदांत योग आदि सभी जीवात्मा को नित्य मानते
हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार जैसे सब पदार्थ क्षणिक हैं उसी
प्रकार आत्मा भी । जीवात्मा एक क्षण में उत्पन्न होता है और
दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है । अतः क्षणिक ज्ञान का नाम
ही आत्मा है । जिसकी धारा चलती रहती है और एक क्षण
को ज्ञान या विज्ञान नष्ट होता है और दूसरा क्षणिक विज्ञान
उत्पन्न होता है । इसे पूर्ववर्ती विज्ञानों के संस्कार और ज्ञान
प्राप्त होते रहते हैं । इस क्षणिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य
या स्थिर आत्मा नहीं । सांख्यिक शाखा के बौद्ध तो इस
क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते, सब

कुछ शून्य मानते हैं । वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती
तो सब भवस्थायी में बनी रहती । योगाचार शास्त्र के बौद्ध
आत्मा को क्षणिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस
विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान
और दूसरा आलस्य विज्ञान । जाग्रत और सुप्त भवस्था
में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति
भवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलस्य विज्ञान कहते हैं । यह
ज्ञान आत्मा ही को होता है । जैन दर्शन भी आत्मा को चिर,
स्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् मानता है । उपनिषदों
में जीवात्मा का स्थान हृदय माना है पर आधुनिक परीक्षाभा
से यह बात अच्छी तरह प्रगट हो चुकी है कि समस्त चेतन
व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी
कहते हैं । २० 'आत्मा' ।

पर्या०—पुनर्भवी । जीव । अमु—मान् । सत्व । देहभृत् । चेतन ।

जीवादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त । मूर्च्छा । सञ्ज्ञाशून्यता [को०] ।

जीवाधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का आश्रयस्थान । हृदय ।

विशेष—उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है ।

जीवानां—क्रि० प्र० ६० 'जिलाना' । उ०—तातें या वैष्णव को मरत
तें जीवायो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२३ ।

जीवानुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गर्गाचार्य मुनि, जो बृहस्पति के वंश में
हुए हैं । किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे
जाते हैं । उ०—भापत हम जीवानुज बानी । जा महुं होइ
सकल दुख हानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

जीवास्तिकाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का
करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के
अनुसार शुभाशुभ गति में जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के
वश से कर्म के समूह को नाश करनेवाला जीव ।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है,—अनादिसिद्ध, मुक्त और
बद्ध । अनादिसिद्ध महत् हैं जो सब भवस्थायी में अविद्या आदि
के बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संपन्न रहते हैं ।

जीविका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन
का निर्वाह हो । भरण पोषण का साधन । जीवनीपाय ।
वृत्ति । उ०—जीविका विहीन लोग सीधमान, सोच बस कहें
एक एकन सो कहाँ जाई का करी ?—तुलसी प्र० पृ०, २२१ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जीविकाजन=जीवन निर्वाह के साधन का सग्रह । उ०—उसे
अपने जीविकाजन की एक मशीन बना रहा है । —सं० दर्शन
पृ० ८८ ।

मुहा०—जीविका लगाना=भरण पोषण का उपाय होना । रोजी का
ठिकाना होना । जीविका लगाना=भरण पोषण का उपाय करना ।
जीवन निर्वाह का उपाय करना । रोजी का ठिकाना करना ।

२ जीवनदायी तत्व अर्थात् जल (की०) । ३. जीवन (की०) ।

जीवित^१—वि० [सं०] १ जीता हुआ । जिदा । संप्राप्त । उ०—
उस समय सत्यगुरु का वेष जीवित-साधु के समान था ।
—कवीर म०, पृ० ८१ । २ जो जीव या प्राणयुक्त हो

गया हो (को०) । १३ सजीव या सप्राण किया हुआ (को०) ।
४ वर्तमान । उपस्थित (को०) ।

जीवित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जीवन । प्राणधारण ।

यौ०—जीवितेश ।

२. जीवन श्रवधि । आयु (को०) । ३ जीविका । रोजी (को०) ।
४ प्राणी (को०) ।

जीवितकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवनकाल । जीवित रहने का समय ।
आयु (को०) ।

जीवितज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी (को०) ।

जीवितनाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पति (को०) ।

जीवितव्य^१—वि० [सं०] जीवित रहने या रखने योग्य (को०) ।

जीवितव्य^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जीवन । २ जीवित रहने की
सभावना । ३ पुनर्जीवित होने की सभावना ।

जीवितव्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवनोत्सर्ग । जीवन की ग्राहृति (को०) ।

जीवितसंशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जान का खतरा (को०) ।

जीवितान्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवितान्तक] शिव । शंकर । महा-
देव (को०) ।

जीवितेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणनाथ । प्यारा व्यक्ति । प्राणी से
बढ़कर प्रिय व्यक्ति । २ यमराज । ३ इन्द्र । ४ सूर्य । ५
देह में स्थित इडा और पिंगला नाडी । ६. एक जीवनदायिनी
श्रोत्रध्वज जो मृतक को जीवित करनेवाली कही गई है (को०) ।

जीवितेश्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव (को०) ।

जीवी—वि० [सं० जीविन्] १. जीनेवाला । प्राणधारक । २ जीविका
करनेवाला । जैसे,—श्रमजीवी । शस्त्रजीवी ।

विशेष—सामान्यतया इसका प्रयोग समस्त पदों के प्रत्यय में होता
है । जैसे,—बुद्धिजीवी ।

जीवेधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीवेधन] जलती हुई लकड़ी या ईंधन (को०) ।

जीवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा । ईश्वर ।

जीवोपाधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों
अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं ।

जीव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीवन (को०) ।

जीव्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनोपाय । जीविका (को०) ।

जीस्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जीस्त] जिदगी । जीवन । उ०—जीस्ते
नहीं है सरासर बस सरगर्दानी वह है । —भारतेन्दु प्र०,
भा० २, पृ० ५६६ ।

जीह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ । जुवान । उ०—
(क) जन मन मजु कंजु मधुकर से । जीह जसोमति हर
हलधर से । —तुलसी (शब्द०) । (ख) राम नाम मनि दीप घर
जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहरी जो चाहि उजियार ।
—तुलसी (शब्द०) । (ग) नाम जीह जपि जागहि जोगी ।
तुलसी (शब्द०) ।

जीहि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जीह] दे० 'जीह' ।

जुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जुग] बृद्धदारक वृक्ष । विधारा ।

जुंगित^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जुङ्गित] परित्यक्त । बहिष्कृत (को०) ।

जुंगित^२—वि० नीच जाति का व्यक्ति । चाडाल (को०) ।

जुंडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुहरी', 'ज्वार' ।

जुंदर—सञ्ज्ञा पुं० [?] बदर का बच्चा (कलवरी की बोली) ।

जुंबाँ—वि० [फ्रा० जु बाँ] कपायमान । हिलता हुआ (को०) ।

जुंविश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० जु विश] चाल । गति । हरकत । हिलना
डोलना ।

मुहा०—जु बिश खाना = हिलना डोलना ।

जुंझाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० झूका] दे० 'जू' ।

जुई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुई' ।

जुवली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दुवा] एक प्रकार की पहाड़ी मेढ ।

जु^१—वि० [हि०] दे० 'जो' । उ०—करत लाल मनुहारि, पै तू ज
लखति इहि मोर । ऐसी उर जु कठोर तो उचितहि उर
कठोर । —मति० प्र०, पृ० ४०८ ।

जु^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जू] दे० 'जू' ।

जुअती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती' ।

जुअल^२—वि० [सं० युगल, प्रा० जुमल] दे० 'युगल' । उ०—एम
कोप्पिम सुनिम सुखतान, रोमञ्चिम मुझ जुमल । —कीर्ति०,
पृ० ६० ।

जुआँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यूका, प्रा० जुमा] [स्त्री० मल्पां जुई] एक
छोटा कीड़ा जो मैलेपन के कारण सिर के बालों में पड़ जाता
है । जू । डील ।

जुआँरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुमाँ] जुमाँ । छोटी जुमाँ ।

जुआँरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्वार' ।

जुआ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० झूत, पा० जूत] वह खेल जिसमें जीतनेवाले
को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । रूपा पेसे की बाजी
लगाकर खेला जानेवाला खेल । किसी घटना की संभावना
पर हार जीत का खेल । झूत । उ०—आखो जन्म प्रकार
गान्यो । करो न प्रीति कमललोचन सौ जन्म जुमा ज्यो हारयो
—सूर (शब्द०) ।

विशेष—जुमा कीड़ी, पासे, ताश आदि कई वस्तुओं से खेला
जाता है पर भारत में कीड़ियों से खेलने का प्रचार आजकल
विशेष है । इसमें चित्ती कीड़ियों को लेकर फेकते हैं और चित्त
पड़ी हुई कीड़ियों की संख्या के अनुसार दाँवों की हार जीत
मानते हैं । सोलह चित्ती कीड़ियों से जो जुमा खेला जाता है
उसे सोरही कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—जीतना ।—हारना ।—होना ।

जुआ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युज (= जोड़ना)] १ गाड़ी, चक्कड़े, हल आदि
की वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है । २ जाति की
चक्की या मुँठ ।

जुआ^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुवा] दे० 'युवा' । उ०—बाल बृद्ध जुमा
नर नारिन की, एक सग । —प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६ ।

जुआखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुमा + फ्रा० खाना] वह स्थान जहाँ
जुमा खेला जाता हो । जुमा खेलने का मझा ।

जुआचोर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुमा + चोर] १. वह जुमारी जो अपना

दांव जीतकर खिसक जाय। २. धोखेबाज। धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला। ठग। वचक।

जुआचोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुआ + चोरी] ठगो। धोखेबाजी। वचकता।

क्रि० प्र०—करना।

जुआठा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुआ + काठ] दे० 'जुआठा'।

जुआठा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग + काठ] हल में लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलो के कंधों पर रहता है।

जुआझी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुआरी] दे० 'जुआरी'।

जुआना—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुवान'।

जुआनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'जवानी'।

जुआव—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—आवे जाइ जनावे तुषार, हिए विरहानल जुआव भए की।—हिंदी प्रेमा, पृ० २७१।

जुआर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार'। उ०—जाएखने दितहु भालिगन गाढ। जनि जुमार पखसे खेलपाइ।—विद्यापति, पृ० ३४३।

जुआर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुआ + आर (प्रत्य०)] जुआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआडी। उ०—संशय सावज शरीर महै, सगहि खेल जुमार।—कबीर बी०, पृ० ८८।

जुआर^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ज्वार] दे० 'ज्वार'।

जुआरदासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पोधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जुआर भाटा—सञ्ज्ञा [हि० ज्वारभाटा] दे० 'ज्वार भाटा'।

जुआरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोतार] उतनी घरती जितनी एक जोड़ी बैल एक दिन में जोत सके।

जुआरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुआ] जुआ खेलनेवाला।

जुइना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यून (= बघन या जोड़)] घास या फूस की ऎठकर बनाई हुई रस्सी जो बोक बंधने के काम में आती है।

जुई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जू] १ छोटी जुमा। २ एक छोटा कीड़ा जो मटर, सेम इत्यादि की फलियों में लगकर उन्हें नष्ट कर देता है।

जुई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] वरखी के आकार का फाँट का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है। श्रुवा।

जुई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यूनो, हि० जुही] दे० 'जुही'।

जुकति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत'। उ०—उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागमरी को हरष बढ़ाऊँ।—घनानंद, पृ० २४२।

जुकाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुड़ + घाम वा अ० जुकाम, तुलनीय सं० यक्ष्मन्, *जलम, > जुखाम] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुँह से कफ निकलता है, ज्वराश रहता है, सिर भारी रहता और दर्द करता है। सरदी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—जुकाम बिगड़ना = जुकाम का सूख जाना। मेढकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी

उसमें कोई संभावना न हो। किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो।

जुकुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुत्ता। २ मलय पर्वत [को०]।

जुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १ मिलनयोग। उ०—तन चपक कुंदन मनो के केसर रंग जुक्ति।—पृ० रा०, ६। ५४। २ उपाय। यत्न। उ०—घृत मन वास पास मनि तेहि मौ, करि सो जुक्ति बिलगावा।—जबानी, पृ० ४७।

जुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग] १ युग।

मुहा०—जुग जुग = चिर काल तक। बहुत दिनों तक। जैसे,—जुग जुग जीमो।

२ दो। उभय। उ०—बाला के जुग कान में बाला सोभा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८। ३. जत्था। गृह। दल। गोल।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना। अलग अलग हो जाना। दल टूटना। मंडली तितर बितर होना। जैसे,—सामने शत्रु सेना के दल खड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और उनके जुग टूट गए। (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना। जुग फूटना = जोड़ा खंडित होना। साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना।

३ चौसर के खेल में दो गोठियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना। जैसे, छुग छूटा कि गोठो मरी। ४. वह डोरा जिसे जुलाहे तारों को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं। ५. पुस्त। पोथी।

जुगजुगाना—क्रि० प्र० [हि० जगना (= प्रज्वलित होना)] १. मद मद और रह रहकर प्रकाश करना। मद ज्योति से चमकना। टिमटिमाना। जैसे, तारों का जुगजुगाना। उ०—कोठरी के कोठे में एक दीया जुगजुगा रहा था। २. अवनत या होन दशा से क्रमशः कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना। कुछ कुछ उभरना। कुछ कीर्ति या समृद्धि प्राप्त करना। कुछ बढ़ना या नाम करना। जैसे,—वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि चल बसे।

जुगजुगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकर-खोरा भी कहते हैं।

जुगत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १ युक्ति। उपाय। तदबीर। ढग। उ०—सबद मस्कला करे ज्ञान का कुरेंड लगावे। जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावे।—पखट्ट, भा० १, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जुगत भिड़ाना या मिलाना या सगाना = जोड़ तोड़ बैठाना। ढग रचना। उपाय करना। तदबीर करना।

२ व्यवहारकुशलता। चतुराई। हथकंडा। ३. चमत्कारपूर्ण उक्ति। घुटकुला।

जुगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय। तदबीर। उ०—जोग-जुगति सिखए सबे मनौ महामुनि मैन। चाहत पिय प्रभैतता काननु सेवत नैन।—बिहारी २०, दो० १३।

जुगती^१—वि० [हि० जुगत + ई (प्रत्य०)] लपायी । युक्ति-कुशल । जोड़ तोड़ बैठा लेने में कुशल ।

जुगती^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति । उपाय । उ०—कोई कहे जुगती सब जानूँ कोइ कहे मैं रहनी । आत्म देव सो पारधो नाहीं यह सब झूठी कहनी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०१

जुगनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जीगना] दे० 'जुगनू' ।

जुगनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गाना जो पञ्जाब में गाया जाता है ।

जुगनी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का आभूषण । वि० दे० 'जुगन' २ । उ०—गल में कटवा, कठा, हँसली, उर में हुमेल कस चपकली, जुगनी चौकी, भूँगे नकली ।—ग्राम्या०, पृ० ४० ।

जुगनू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोङ्गण अथवा हि० जुग-जुगाना] १ गुबरेले की जाति का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग प्राग की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा घरसात में बहुत दिखाई पड़ता है । खद्योत । पटबीजना ।

विशेष—तितली, गुबरेले, रेगम के कीड़े आदि की तरह यह कीड़ा भी ढोले के रूप में उत्पन्न होता है । ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर में रहता है और उसमें से दस दिन के उपरांत रूपांतरित होकर गुबरेले के रूप में निकलता है । इसके पिछले भाग से फासफरस का प्रकाश निकलता है । सबसे चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका में होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग दीपक का काम भी लेते हैं । इन्हें सामने रखकर लोग महीन से महीन अक्षरों की पुस्तकें भी पढ़ सकते हैं ।

२ स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगम^१—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' । उ०—ररो ममु जुगम अं भ्रम बाकी रह्या ।—रघु० ७०, पृ० ५७ ।

जुगल—वि० [सं० युगल] दे० 'युगल' । उ०—लाल कचुकी में उगे जोवन जुगल लखात ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३८७ ।

जुगलस्वरूप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युगल + स्वरूप] १ नियामक प्रकृति पुरुष के रूप में मान्य युग्म विग्रह । २. राधाकृष्ण । उ०—तब युगल स्वरूप ने वा कोठी में ही दरसन दीनो ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० ७८ ।

जुगलिया—सञ्ज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०६६ बाल मिलकर आजकल के मनुष्यों के एक बाल के बराबर हो ।

जुगवना—क्रि० सं० [सं० योग + वना (प्रत्य०)] १ सचित रखना । एकत्र करना । जोड़ जोड़कर रखना कि समय पर काम आए । २ हिफाजत से रखना । सुरक्षित रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना ।

जुगाड़ी—सञ्ज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० योग (=योजन) + हि० षाड़ (प्रत्य०)] १ व्यवस्था । कार्यसाधन का मार्ग । २. युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना । बैठाना ।

जुगादरी—वि० [सं० युगान्तरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना^१—क्रि० सं० [हि० जुगवना] दे० 'जुगवना' । उ०—जस भुवगम मणि जुगावे अस शिष्य गुरु आज्ञा गहे ।—कबीर सा० पृ० २१२ ।

जुगार^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जुगाली' उ०—बैठे हिरन सुहावने जिन पै करत जुगार ।—शकुंतला, पृ० ११९ ।

जुगलना—क्रि० प्र० [सं० उद्गलन (=उगलना)] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह में लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना । पागुर करना ।

जुगाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुगलना] सींगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया । पागुर । रोमष ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योगी] योग करनेवाला । योगी । उ०—रिपि सत जनी जगम जुती रहहि ध्यान आरभ मह ।—पृ० रा०, १२।८६ ।

जुगी^२—वि० [हि० युगी] युग से संबंध रखनेवाला । युग का । विशेष—इसका प्रयोग समास में ही मिलता है । जैसे सतयुगी, कलयुगी ।

जुगुत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' ।

जुगुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ०—हीत डमरू कर लीला सख । जोग जुगुति गिम भरल माय ।—विद्यापति, पृ० ३६७ ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ निंदा । गर्हणा । बुराई । २ भ्रमदा । घृणा ।

विशेष—साहित्य में यह बीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचारी । पञ्चजलि के अनुसार शोच या शुद्धि लाभ कर लेने पर अपने अंगों तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सासारिक प्राणियों तक का ससर्ग अच्छा नहीं लगता, उसका नाम 'जुगुप्सा' है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदित । घृणित ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] निंदक । बुराई करनेवाला ।

जुगुप्सू—वि० [सं०] दे० 'जुगुप्सु' ।

जुगत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'युक्ति' । उ०—जोग जुगत ते भरम न छूटे जब लग आपन सूँके । कहे कबीर सोइ सतगुरु पुरा जो कोइ समझै वूँके ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२ ।

जुगम—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३३ ।

जुज^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जुज, मि० सं० युज्] १. कागज के ८ पृष्ठों या १६ पृष्ठों का समूह । एक फारस ।

शौ०—जुजवंदी ।

२ भण । टुकड़ा । उ०—जुज से कुल कठरे से दरिया बन जावे । अपने को खोये तब अपने को पावे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६८ ।

जुज^३—अव्य० [फ्रा० जुज] को छोड़कर । के सिवा । बिना ।
बगैर [को०] ।

जुजदान—सञ्ज्ञा पुं० [भ० जुज + फ्रा० दान] वस्ता । वह थैला
जिसमें लड़के पुस्तकें आदि रखते हैं ।

जुजवदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [भ० जुज + फ्रा० वदी] किताब की सिलाई
जिसमें घाठ घाठ वा सोलह सोलह पन्ने एक साथ सिए
जाते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुजरस—वि० [भ० जुजरस] १. सूक्ष्मदर्शी । तीव्र बुद्धिवाला ।
२. मितव्ययी । ३. कलूस । कृपण [को०] ।

जुजरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [भ० जुजरसी] १. सूक्ष्मदर्शिता । २. मित-
व्ययिता [को०] ।

जुज व कुल—सञ्ज्ञा पुं० [भ० जुज व कुल] भग्न और संपूर्ण ।
संपूर्ण । कुल [को०] ।

जुजवी—वि० [भ० जुजवी] १. बहुत में से कोई एक । बहुत कम ।
कुछ छोड़े से । २. बहुत छोटे भग्न का । जैसे, जुजवी
हिस्सेदार ।

जुजाम—सञ्ज्ञा पुं० [भ० जजाम] कुष्ठ रोग । कोढ़ । उ०—फिल
फोर हुआ है उसको जुजाम । जीने से किया उसको नाकाम ।
—दक्खिनी०, पृ० २२६ ।

जुजीठल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर ।
(हि०) ।

जुज्ज^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्ज] युद्ध । लड़ाई ।
उ०—छमा तरवार से जगत को बसि करे, प्रेम की जुज्ज
मेदान होई । —पलटू०, भा० २, पृ० १५ ।

जुज्जाना^७—क्रि० सं० [हि० जुज्जाना] १. लड़ने के लिये
प्रोत्साहित करना । लड़ा देना । २. लड़ाकर मरवा डालना ।

जुज्जाऊ—वि० [हि० जुज्ज, जूज्ज + आऊ (प्रत्य०)] १. युद्ध का ।
युद्ध संबंधी । जिसका व्यवहार रणक्षेत्र में हो । लड़ाई में
काम आनेवाला । उ०—बाजे बिहद जुज्जाऊ बाजें । निरत
मगं सुरग गज गाजें । —हमिरी०, पृ० ५१ । २. युद्ध के
लिये उत्साहित करनेवाला । जैसे, जुज्जाऊ बाजा, जुज्जाऊ
राग । उ०—बाजहिं डोज, निसान जुज्जाऊ । सुनि सुनि
होय मटन मन चाऊ । —तुलसी (शब्द०) ।

जुज्जाना—क्रि० सं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्ज] १. लड़ा देना । युद्ध
के लिये प्रेरित करना । २. युद्ध में मरवा डालना ।

जुज्जार^७—वि० [हि० जुज्ज + आर (प्रत्य०)] लड़ाका ।
सूरमा । वीर । बाँकुरा । बहादुर । उ०—सकल सुरासुर
जुरहिं जुज्जारा । रामहिं समर को जीतनहारा । —तुलसी
(शब्द०) ।

जुज्जावर—वि० [हि० जुज्ज + आवर (प्रत्य०)] जुज्जानेवाला ।
उ०—जहें वजै जुज्जावर बाजा, सब काँधे उठि उठि भाजा ।
—कबीर श०, भा० ३, पृ० २० ।

जुट—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुट मयवा सं० जुट] १. दो

परस्पर-मिली हुई वस्तुएँ । एक साथ के दो भादमी या वस्तु ।
जोड़ी । जुग । २. एक साथ बंधी या सगी हुई वस्तुओं का
समूह । लाट । थोक । ३. गुट । मंडली । जत्था । दल । ४.
ऐसे दो मनुष्य जिनमें खूब मेल हो । जैसे,—उन दोनों की
एक जुट है । ५. जोड़ का भादमी या वस्तु ।

जुटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जटा । २. गुथी । चोटी । जूठा [को०] ।

जुटना—क्रि० भ० [सं० युक्त, प्रा० जुट + ना (प्रत्य०) या सं० जुट,
बाँधना] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार
मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी
पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे । एक वस्तु
का दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना
प्रयास या आघात के अलग न हो सके । दो वस्तुओं का
बंधने, विपकने, सिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर
एक होना । सक्क होना । सखिल होना । जुटना । जैसे,—
इस खिलौने का टूटा सिर गोंद से नहीं जुटता, गिर गिर
पड़ता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—मिलकर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों
के संवध में इस क्रिया का प्रयोग नहीं होता ।

२. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के
बीच अवकाश न रहे । दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट
होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू
जाय । भिडना । सटना । लगा रहना । जैसे,—मेज इस प्रकार
रखो कि चारपाई से जुटी न रहे । ३. लिपटना । चिपटना ।
गुथना । जैसे—दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात घूँसे चला
रहे हैं । ४. संभोग करना । प्रसंग करना । ५. एक ही
स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना ।
एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे,—भीड़
जुटना, भादमियों का जुटना, सामान जुटना । ६. किसी कार्य
में योग देने के लिये उपस्थित होना । जैसे,—आप निश्चित
रहें, हम मोके पर जुट जायेंगे । ७. किसी कार्य में जी जान
से लगना । प्रवृत्त होना । तत्पर होना । जैसे,—ये जिस काम
के पीछे जुटते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं । ८. एकमत
होना । अभिसंधि करना । जैसे,—दोनों ने जुटकर यह उपद्रव
खड़ा किया है ।

जुटली—वि० [सं० जूट] जूड़ेवाला । जिसे लंबे लंबे बालों की
लट हो । उ०—सखी री नदनंदनु देखु । धूरि धूसर जटा
जुटली हरि किए हर भेषु । —सूर (शब्द०) ।

जुटाना—क्रि० सं० [हि० जुटना] १. दो या अधिक वस्तुओं को
परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग
दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे ।
जोड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. एक वस्तु को दूसरी के इतने पास करना कि एक का कोई

भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। भिड़ाना। सटाना।
३. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुट + भाव (प्रत्य०)] जमाव। बटोर।

जुटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिखा। चुटो। चुटैया। २. गुच्छा।
लेट। जुड़ो। जुट्टी। १. एक प्रकार का कपूर।

जुट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का
एक में बँधा पूना। घांटी। २. एक समूह या जुट में उगनेवाली
घास जाति की कोई वनस्पति। जैसे, सरपत का जुट्टा, कौस
का जुट्टा।

जुट्टा—वि० परस्पर मिला या सटा हुआ।

जुट्टो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का
एक में बँधा हुआ छोटा पूना। झंझिया। जूरी। जैसे, तवाकू
की जुट्टी, पुदीने की जुट्टी। २. सूरज भादि के नए कल्ले
जो बंधे हुए निकलते हैं। ३. तने ऊपर रखी हुई एक प्रकार
की कई चिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का
समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, छप्यों की जुट्टी, पिसों
की जुट्टी। ४. एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी
भादि में लपेटकर तलने से बनता है।

जुट्टो—वि० जुटी या मिसी हुई। जैसे, जुट्टी भी।

जुठारना—क्रि० प्र० [हि० जूठा] १. खाने पीने की किसी वस्तु
को कुछ खाकर-छोड़ देना। खाने पीने की किसी वस्तु में मुँह
लगाकर उसे अपवित्र या दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना।
उच्छिष्ट करना।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठी वस्तु का खाना निषिद्ध
सम्माना जाता है।

सयो० क्रि०—डालना। देना।

२. किसी वस्तु को भोग करके उसे किसी दूसरे के व्यवहार के
अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जूठा + हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जूठा
खानेवाला। उ०—मूरदास प्रभु नदनदन कहै हम ग्वालन
जुठिहारे।—सूर (शब्द०)।

जुठैला—वि० [हि० जूठा + ऐल (प्रत्य०)] उच्छिष्ट। जूठा।

जुठैला—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे पैरोंवाली चादामी रंग की एक
चिड़िया जो समूह में रहती है।

जुड़गी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ना + गग] अति निकट का संबंध।
भग और धंगी जैसी घनिष्टता।

जुड़ना—क्रि० प्र० [हि० जुटना या सं० जुड (जुडाना)] १. दो या
अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का
कोई पार्श्व या भग दूसरे के किसी पार्श्व या भग के साथ
छुटापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने,
सिलने, या जुड़े जाने के कारण परस्पर सिलकर एक होना।
संबंध होना। सश्लिष्ट होना। संयुक्त होना।

क्रि० प्र०—जाना।

२. संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। ३. इकट्ठा
होना। एकत्र होना। ४. किसी काम में योग देने के लिये

उपस्थित होना। ५. उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना।
मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लत्ते जुड़नी। उ०—उसे तो चने
भी नहीं जुड़ते। ६. गाड़ी भादि में बँध लगना। जुटना।

जुड़पित्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ + पित्त] शीत और पित्त से उत्पन्न
एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े
चकत्ते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ—वि० [हि० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्भकाल से ही
एक में सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चों के लिये ही
होता है।

जुड़वाँ—सञ्ज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।—

जुड़वाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुड़वाना] दे० 'जोड़वाई'।

जुड़वाना—क्रि० प्र० [हि० जुड़] १. ठंडा करना। सुखी करना।
जैसे, छाती जुड़वाना।

जुड़वाना—क्रि० प्र० [हि० जोड़वाना] दे० 'जोड़वाना'।

जुड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ाई] दे० 'जोड़ाई'।

जुड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुड़ाना] ठंडक। शीतलता। जाड़ा।
उ०—जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नोद जुड़ाई
होई।—मानस, १। ३६।

जुड़ाना—क्रि० प्र० [हि० जुड़] १. ठंडा होना। शीतल होना।
२. शांत होना। तृप्त होना। प्रसन्न होना। सतुष्ट होना।
संयो० क्रि०—जाना।

जुड़ाना—क्रि० प्र० १. ठंडा करना। शीतल करना। २. शांत और
सतुष्ट करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—सोजत रहेउ
तोहि सुतधाती। भाजु निपाति, जुड़ावहु छाती।—तुलसी
(शब्द०)।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जुड़ाना—क्रि० प्र० [हि० जुड़ना का क्रि० सं० रूप] जोड़ने का
काम किसी ओर से कराना।

जुड़ावना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जुड़ाना'।

जुड़ावाँ—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुड़वाँ] दे० 'जुड़वा'।

जुड़ीशाल—वि० [ग्रं०] दीवानी या फौजदारी सबधी। न्याय
संबधी।

जुत—वि० [सं० युत] दे० 'युत'। उ०—(क) जानी जाति नारिन
दवारि जुत बन मे।—मतिराम (शब्द०)। (ख) जननद
जुत नरवर लई भक्त उज्जैन, भगार। देवोद्वा, पारेख लइ, रैयत
करी पुकार।—प० रासो, पृ० ८८।

जुतना—क्रि० प्र० [सं० युत प्रा० जुत] १. बँध, छोड़े भादि का
गाड़ी में लगना। नधाना। २. किसी काम में परिश्रमपूर्वक
लगना। किसी परिश्रम के कार्य में तत्पर या सलग्न होना।
जैसे,—बहु दिन भर काम में जुता रहता है। ३. लड़ाई में
लगना। युयना। जुटना। ४. जोता जाना। हल चलने के
कारण जमीन का खुदकर गुरगुरी हो जाना। जैसे,—यह
खेत दिन भर में जुत जायगा।

जुतवाना—क्रि० सं० [हि० जोतना] १. दूसरे से जोतने का काम करवाना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बेल, घोड़े आदि को गाड़ी, हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नधवाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु में जोते जाते हैं, दोनों के लिये होता है। जैसे, घोड़े जुतवाना, गाड़ी जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

जुताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोताई'।

जुताना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जोताना'।

जुतियाना—क्रि० सं० [हि० जूता से नामिक घातु] १. जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। २. मृत्यु निरावर करना। अपमानित करना।

जुतियौअल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जुतियाना + औल (प्रत्य०)] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्यु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यूय] दे० 'यूय'।

जुथौली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा—वि० [फ़ा०] [स्त्री० जुदी] १. पृथक्। अलग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जुदा करना = नौकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना। २. भिन्न। निराला। ३. अन्य। दूसरा (को०)। ४. विरही। विरहग्रस्त (को०)।

जुदाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बिछोह। वियोग। दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होने का भाव। विरह।

क्रि० प्र०—होना।

जुदागाना—क्रि० वि० [फ़ा० जुदागानह] अलग अलग। पृथक् पृथक्। उ०—हर मुल्क की चाल चलन, लिवाच, पोशाक और रस्मों रिवाज जुदागाना होता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७।

जुदी—वि० स्त्री० [फ़ा० जुदी] दे० 'जुदा'।

जुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—साहब दी सुरतनां भाइ गज जुद्ध निरक्षिप।—पृ० रा०, १६। १०२।

जुधु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—हैं ब्रह्म राय जुध करन जोग। जुध भाजि जाउ तो परै सोय।—पृ० रा०, १। ४४५।

जुधवान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युद्ध + हि० वान (प्रत्य०)] थोड़ा। युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

जुनब्बी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० जनब] जनब नगर की निर्मित तलवार। उ०—जगि जोर जुनब्बे फहरत फब्बे सुंडनि गद्दे फर पाटे।—पद्माकर ग्र० पृ० २७।

जुना—वि० [हि० जूना] दे० 'जीर'। उ०—जो जुने थिगले सिया है इस बजा। कुछ मजब तेरी कदर है भी कजा।—दक्खिनी०, पृ० १७५।

जुनारदार—वि० [अ० जुनार + फ़ा० दार] १. ब्राह्मण। २. जनेऊ धारण करनेवाला। उ०—कैसोदास मारु मरि हरम कमठ कटी जैन खाँ जुनारदार मारे इक नोर के।—प्रकबरी० पृ० ११६।

जुनिपर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अफ्रीजी फूल जो कई रंगों का होता है।

जुनू—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जुन्न'। उ०—जजीर जुनू कडी न पड़ियो। दीवाने का पाँव दरमियाँ है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

जुन्न—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पागलपन। सनक। झूठ। उन्माद।

जुन्नी—वि० [अ०] विक्षिप्त। सनकी। उन्मत्त [को०]।

जुनुव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जनुव] दक्षिण। दक्खिन [को०]।

जुन्नार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] यज्ञोपवीत। जनेऊ। उ०—बा तजरवये तसबीहो जुन्नार भुका।—कबीर ग०, पृ० ४६८।

जुन्हरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का मत्त।

जुन्हाई—सञ्ज्ञा [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] १. चाँदनी। चंद्रिका। उ०—सुमन बास स्फुटत कुसुम निकर तैसी है शरद जैसी रैन जुन्हाई।—प्रकबरी०, पृ० ११२। २. चंद्रमा।

जुन्हारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का मत्त।

जुन्हैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हि० जोन्ही + ऐया (प्रत्य०)] १. चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। २. चंद्रमा। उ०—अहित मनैसो ऐसो कोन उपहास याते सोचन खरी में परी जोवति जुन्हैया को।—पद्माकर (शब्द०)

जुप्त—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० जुप्त] १. युग्म। जोड़ा। २. सम संख्या जो दो से बँट जाय। ३. सूता [को०]।

जुबक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युवक] दे० 'युवक'। उ०—प्रात समय नित न्हाय जुबक जोधा जित आए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

जुबति—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'युवति'। उ०—अवलि निम्न जातीय जुबति जन जुरि जहँ जाहीं।—प्रेमघन०, पृ० ४८।

जुवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'। उ०—जुवन रूप संग सोभा पावे। सोह कुरूप संग बदन दुरावे।—नद० ग्र०, पृ० ११७।

जुवराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'।

जुवली—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० या इब्रानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जपन। बड़ा जलसा।

जुषा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युवन्] युवावस्था। उ०—बालपना भोले गयो, और जुवा महमत।—कबीर सा०, पृ० ७६।

जुवाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जबाद] एक प्रकार का गंधद्रव्य जो गंध-माजरी से निकाला जाता है [को०]।

जुवान—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० जवान] दे० 'जवान'।

जुबानी—वि० [फा० जवानी] दे० 'जवानी' ।

जुव्वन^①—संज्ञा पुं० [सं० यौवन, प्रा० जुव्वण] दे० 'यौवन' ।

उ०—जुव्वन क्यों बसि होई छक्क मैमत की । —सुदर प्र०, भा० १, पृ० ३६३ ।

जुव्वा—संज्ञा पुं० [म० जुव्वह्] फकीरो का एक प्रकार का लवा पहनावा । जुव्वा । लवा अंगरखा । बोगा । उ०—जो एक सोजन कू लाओ होर तागा । सिधो मेरे जुव्वे में यक दो टाँका । —दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

जुमकना^१—क्रि० प्र० [हि० जमना] १ जमकर खड़ा होना । घबटना । २ एकत्र होना । जोम में आना । उ०—जोतत जुमकि पोन मग सगनि । —पसाकर प्र०, पृ० ६ ।

जुमना^१—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पस या खाद देने का एक ढग जिसके अनुसार कटी हुई भाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं ।

जुमना^②—क्रि० प्र० [म० जोम] जोश में आना । झड़ना । उ०—जवानी जुमी जमाल सूरति देखि पिर नाहि दे । —रे० बानी, पृ० ३२ ।

जुमला^१—वि० [म० जुम्लह्] सब । कुल । सबके सब ।

जुमला^२—महा पुं० १ वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो । २ जोड़ (को०) ।

जुमहूर—संज्ञा पुं० [म० जुमहूर] जनता । जनसाधारण । सर्वसाधारण (को०) ।

जुमहूरियत—[म० जुमहूरियत] गणतन्त्र । जनतन्त्र । प्रजातन्त्र (को०) ।

जुमहूरी—वि० [म० जुमहूर+फा० ई (प्रत्य०)] सावजन्य । लोकसंचालित (को०) ।

जुमहूरी सत्तनत—संज्ञा स्त्री० [म० जुमहूर+फा० ई (प्रत्य०) + न०] सत्तनत गणतन्त्र राज्य । जनतन्त्र शासन । प्रजातन्त्र राष्ट्र (को०) ।

जुमा—संज्ञा पुं० [म० जुमम] शुक्रवार ।

यौ०—जुमा मसजिद ।

जुमा मसजिद—संज्ञा स्त्री० [म० जुमम मस्जिद] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते हैं ।

जुमिल—संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा । उ०—गुरा गुठ जुमिल दरिमाई । —रघुनाथ (शब्द०) ।

जुमिला^①—वि० [म० जुम्लह्] सब । समस्त । संपूर्ण । उ०—श्री नयपाल जुमिला के छितिपाल । —भूपण प्र०, पृ० ५२ ।

जुमिल्ला—संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की वाई और गड़ा रहता है और जिसमें लपेटन लगी रहती है । (जुलाहों की बोली) ।

जुमुकना—क्रि० प्र० [सं० यमक] १ निकट आ जाना । पास आ जाना । २ जुड़ना । इकट्ठा होना ।

जुमेरास—संज्ञा स्त्री० [म० जुमरास] वृहस्पतिवार । शुक्रवार । वीकें ।

४-१६

जुमेराती—वि० [म० जुमरास+फा० ई (प्रत्य०)] जो जमेरास को पैदा हुआ हो ।

विशेष—मुसलमानों में इस प्रकार के नाम जुमेरास को पैदा बच्चों के रखे जाते हैं ।

जुम्मा^१—संज्ञा पुं० [म० जुमम] दे० 'जुमा' ।

जुम्मा^२—संज्ञा पुं० [म० जिम्मह] दे० 'जिम्मा' ।

जुम्मा^३—वि० [म० जमम] कुल । सब । संपूर्ण ।

मुहा०—जुम्मा जुम्मा आठ दिन = (१) थोड़े दिन । कुछ दिन । चंदरोज । (२) कुल मिलाकर आठ दिन । कुल मिलाकर इने गिने दिन ।

जुयांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति ।

विशेष—इस जाति के लोग सिंहभूमि के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं ।

जुर^①—संज्ञा दे० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर' । उ०—घपने कर जु बिरह जुर ताते । मति भुरि जाहि डरति तिय याते । —नंद० प्र०, पृ० १३२ ।

जुरअत—संज्ञा स्त्री० [म० जुअत] साहस । हिम्मत । हियाब । जब्हा ।

जुरफुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर या ज्वर + हि० भरभराना] १. हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है । ज्वराश । द्वारत । २ ज्वर के आदि की कँपकँपी । शीत कप ।

जुरना^①—क्रि० प्र० [हि० जुड़ना] दे० 'जुड़ना' । उ०—(फ) पाँव रोपि रहै रण भाहि रजपूत कोऊ ह्य गज गाजत जुरत जहाँ दख है । —सुदर प्र०, भा० २, पृ० १०८ । (ख) छग प्रसन्न दूत-कुटुम जुरत चतुर वित प्रीति । परति गौठि दुरजन हिप दई नई यह रीति । —बिहारी (शब्द०) ।

जुरवाना^१—संज्ञा पुं० [हि० जुरमाना] दे० 'जुरमाना' ।

जुरमाना—संज्ञा पुं० [म० जुम, फा० जुमनिह्] अर्थवद । धनवद । यह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े ।

क्रि० प्र०—करना । —वेना । —खेना । —लगना । —होना ।

जुरर^①—संज्ञा पुं० [हि० जुरा] दे० 'जुरा' । उ०—जुरर बाज बहु कुही कूहेल । —प० रासो, पृ०, पृ० १८ ।

जुररा^①—संज्ञा पुं० [हि० जुरा] दे० 'जुरा' । उ०—जुररा सिकार तीतर बटेर । पेलत सरित तट यह बबेर । —पृ० रा०, ५, १६ ।

जुराना^①—क्रि० प्र० [हि० जुड़ना] दे० 'जुड़ना' । उ०—कत चौक सीमंत की बैठी गाँठ जुराह । पेखि परोसी कौ, पिया घूँघुट में मुसिक्याह । —मति० प्र०, पृ० ४४४ ।

जुराना^②—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'जुड़ना' ।

जुराफा—संज्ञा पुं० [म० जिराफ] अफ्रीका का एक जंगली पशु ।

विशेष—इसके खुर बेल के से, टाँगें और मदन ऊँट की सी लंबी, सिर हिरन का सा, पर बहुत छोटे छोटे और पूँछ गाय की सी होती है । इसके चमड़े का रंग नारंगी का सा होता है जिसपर बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं । ससार भर में सबसे ऊँचा पशु यही है । १५ या १६ ।

फुट तक की ऊँचाई तक के तो सब ही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं। इसकी माँखें ऐसी बड़ी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है। इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है। इसके नथुनों की बनावट ऐसी विलक्षण होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है। इसकी जीभ १७ इंच तक लंबी होती है। यह प्रायः वृक्षों की पत्तियाँ खाता है और मैदानों में झुंड बाँधकर रहता है। चरते समय झुंड के चारों ओर चार जुराफे पहले पर रहते हैं जो शत्रु के आने की सूचना तुरंत झुंड को दे देते हैं। शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं, परन्तु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इसके लात की चोट बहुत कड़ी होती है। इसका चमड़ा इतना सस्त होता है कि उसपर गोली असर नहीं करती। इसका मांस खाया जाता है।

यह पशु झुंड बाँधकर परिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके जोड़े में अत्यंत प्रेम मानकर इसका काव्य में उल्लेख किया है परन्तु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशु की जगह पक्षी समझा है। जैसे,—(क) मिलि बिहरत बिछुरत भरत दपति अति रसलीन। नूतन विधि हेमत की जगत जुराफा कीन।—विहारी (शब्द०)। (ख) जगह जुराफा हूँ जियत तज्यो तेज निज भानु। रूप रहे तुम पूस में यह घी कौन सयानु।—पद्माकर (शब्द०)।

राब—सझा ली० [हि० जुराब] दे० 'जुराब'। उ०—उसकी ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय।—अभिषाप्त, पृ० १३८।

जुराबना(०)†—क्रि० सं० [हि० जुराबना] दे० 'जुहाना'।

जुरावरी(०)—वि० फा० [जुरावरी] दे० 'जुरावरी'। उ०—सुंदर काल जुरावरी ज्यों जगहें र्यों लेइ। फोटि जतन जो तू करे तोहैं रहन न देख।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७०३।

जुरी^१—सझा ली० [सं० जूति (=ज्वर)] घीमा ज्वर। ह्रारत।

जुरी^२—वि० [हि० जुटना] १ जुटी। जुटाई हुई। २. प्राप्त।

उ०—जो निवाहो नेह के नाते न तुम जो न रोटी वाँटकर खाओ जुरी।—पुष्पवे०, पृ० ३५।

यौ०—जुरी कुरी=(१) अजित या प्राप्त संपूर्ण राशि। २ परिजन और कुल।

जुर्म—सझा पुं० [अ०] अपराध। वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुर्म खफीफ=छोटा या सामान्य अपराध। जुर्म शहीद=गंभीर अपराध। भारी अपराध।

जुर्माना—सझा पुं० [फा० जुर्माना] अर्थदंड। वह रकम जो किसी अपराध के दण्ड में चुकानी पड़े।

जुर्रत—सझा ली० [अ० जुर्रत] दे० 'जुर्रत' [को०]।

जुर्रा—सझा पुं० [फा०] नर बाज। उ०—वृक्षों पर जुर्रें, बाज, बहरी इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

जुर्राब—सझा ली० [अ०] मोजा। पायतावा।

जुर्रा—सझा ली० [हि० जुर्रा] बाज। मादा बाज।

जुल—सझा पुं० [सं० छल ?] धोखा। दम। भाँसा। पट्टी। छल छद्म। चकमा।

क्रि० प्र०—देना।—में आना।

यौ०—जुलबाज। जुलबाजी।

जुलकरन(०)—सझा पुं० [अ० जुल्करन] सम्राट् सिकंदर की उपाधि जिसके दोनो कंधों पर बालों की लटें पड़ी रहती थी। उ०—भयें मुरीद जुलहा के आई। तबही जुलकरन नाम घराई।—कबीर सा०, पृ० १५१।

जुलकरनैन—सझा पुं० [अ० जुल्करनैन] सुप्रसिद्ध यूनानी वादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ दो सींगोंवाला है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग 'पूर्व और पश्चिम दोनो कोनों को जीतनेवाला', कुछ लोग '२० वर्ष राज्य करनेवाला' और कुछ लोग 'दो उच्च ग्रहों से युक्त' अर्थात् भाग्यवान् भी अर्थ करते हैं।

जुलना—क्रि० सं० [हि० जुड़ना] १ मिलना अर्थात् समिलित होना। २ मिलना अर्थात् मेट करना।

विशेष—यह क्रिया अबब अकेली नहीं बोली जाती है। जैसे,—(क) मिल जुलकर रहो। (ख) जिससे मिलना हो, मिल जुल आओ।

जुलफ(०)—सझा ली० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुल्फ में कलुफ करी है मति मेरी छलि, एरी अलि कहा करों कल ना परति है।—दीन० ग्र०, पृ० १०।

जुलफिकार—सझा पुं० [अ० जुल्फिकार] मुसलमानों के चौथे खलीफा अली की तलवार का नाम [को०]।

जुलफी—सझा पुं० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—दाढ़ी भारत कोऊ, कोऊ जुलफीन सँवारत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० २३।

जुलबाज—वि० [हि० जुल+फा० बाज] धोखेबाज। छली। धूर्त। चालाक।

जुलबाजी—सझा ली० [हि० जुलबाज] धोखेबाजी छल। धूर्तता। चालाकी।

जुलवाना(०)†—वि० [अ० जुल्म+फा० आनह] अत्याचारी। जुल्मी। क्रूर। उ०—जम का फौज बड़ा जुलवाना पकरि मरोरे काला।—सं० दरिया, पृ० १५२।

जुलमा—सझा पुं० [हि० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जुल्म के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे। पकड़ जम जूतियो मारे, बहुर विलकुल नरक बारे।—सत तुरसी०, पृ० २६।

जुलहा—सझा पुं० [हि० जुलहा] दे० 'जुलहा'। उ०—चार वेद

ब्रह्मा ने ठाना । जुलहा भूल गया अभिमाना ।—कबीर सा०,
पृ० ८१४

जुलाई—संक्रांती [श०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ या अषाढ़ में पड़ता है। यह अंगरेजी का सातवाँ महीना है और ३१ दिनों का होता है। इस मास की १३वीं या १४वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है।

जुलाव—सका पुं० [अ० जुलाव, फ्रा० जुलाव] १ रेवन । दस्त ।
क्रि० प्र०—लगना ।

२ रेचक औषध । दस्त लानेवाली दवा ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना :

मुहा०—जुलाब पचना = किसी दस्त लानेवाली दवा का दस्त न लाना वरन् पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फ्रा० गुलाब से भरबी सचि में ढालकर बना लिया गया है। गुलाब दस्तावर दवाओं में से है।

जुलाल—वि० [म०] मोठा पानी । स्वच्छ पानी । निथरा हुआ जल । ठ०—के डोने में छूँ है श्री फूलों की फाव । यो काँध में जूँ है ग्रावे जुलाल ।—दक्खिनी०, पृ० १५० ।

जुलाहा—क़सा ५० [फा० जोलाह] १ कपडा बुननेवाला । तनुवाय ।
तनुकार ।

विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं। हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि भिन्न भिन्न जागो से पुकारे जाते हैं।

मुहा०—जुलाहे का तोर=भूठी बात । जुलाहे की सी दाढ़ी =
छोटी या नुकदार दाढ़ी ।

२ पानी पर तैरनेवाला तफ बीड़ा । ३ एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और मुँह मटर की तरह गोल होता है ।

जुलित(पु) — वि० [सं० उजलित] जलता हुआ । उ० — जुलित पावक
तेज लोचन भारी । सके दिष्ट को देव दान सहारी । — पु०
रा०, १०।१२० ।

रा०, १०११८० ।
जुलफा—सद्दा की० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' । उ०—जुल्फ
निसेनी पे चढे हग धर पलकै पाइ ।—स० सप्तक, पृ० १५५ ।

जुलुफी†—सखा स्त्री० [हि० जुल्फ] दे० 'जुल्फ' ।

जुलुमा—सषा पुं [हि० जुलुम] दे० 'जुलुम' । उ०—जोर जुलुम
जुलुमा—सषा पुं [हि० जुलुम] दे० 'जुलुम' । उ०—जोर जुलुम
प्रकृष पावे तोहि कहो को बचावे ।—गुलाल०, पृ० ११७ ।

जुलुमोऽ—वि० [हि० जुलमी] १ जुलम करनेवाला । १ अत्यधिक प्रभावित या मोहित करनेवाला ।

जुलूस—सङ्ख्या ५० [अ०] १ सिंहासनारोहण ।

क्रि० प्र०—करना । —फरमाना ।

२ राजा या बादशाह की सवारी । ३ उत्सव और समारोह की यात्रा । धूमधाम की सवारी । ४. बहुत से लोगों का किसी विशेष उद्देश्य के लिये जत्था बनाकर निकलना ।

क्रि० प्र०—निकलना । —निकालना ।

जुलोक(५)—सद्यः पुं० [सं० द्युलोक] वैकुण्ठ । स्वर्ग ।

जुल्फ—सया खी० [फ्रा० जुल्फ] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं । पट्टा । कुल्ले ।

जुल्फी—सश्री श्री० [फ्रा० जुल्फ] जुल्फ । पट्टा ।

जुलूम—वषा पुं० [प्र० जुलूम] [वि० जुलमी] १ मत्स्याचार ।
मत्स्याय । मनीति । जबरदस्ती । प्रपेर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—जुलमदोस्त=प्रत्याचार पसद करनेवाला । जुलमपसद=
प्रत्याचारी । जुलमरसीदा=प्रत्याचार पीडित । जुलमोसितम=
प्रत्याचार ।

मुहा०—जुलम दूटना=भागत या पड़ना । जुलम ढाना=(१) प्रत्याचार करना । (२) कोई मद्दुत काम करना । जुलम-तोड़ना=प्रत्याचार करना ।

३. आप्त ।

जुलमत—सखा श्री० [म० जुलमत] प्रषकार की कालिमा । मंघेरा ।
प्रषकार । उ०—हस हिद से सय दूर दूई कुफ की जुलमत ।
—भारतेदु प्र०, भा० १, पृ० ५३० ।

जुल्मात—संज्ञा पुं० [अ० जुल्मात] [जुल्मात का बहुव०] १. गंभीर ग्रंथेरा । २—दृष्ट्या जाके मगरिब के जुल्मात में । लगे दीपने ज्यों दिवे रात में ।—दक्खिनी०, पु० ८३ । २ वह घोर अंधकार जो सिकंदर को अमृतकुंड तक पहुँचने में पड़ा था (को०) ।

जुलमी—वि० [अ० जुलम + फ्रा० ई (प्रत्य०)] मत्पाचारो ।

जुल्लाव—मघा ५० [अ० जुलाव,] १ रेचन । दस्त ।

क्रि० प्र०—लगना ।

२ रेचक औषध । पि० दे० 'जुलाब' ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

जुव^१ ७—सषा पुं [हिं.] १० 'युवक' । उ०—वाहर से फगुहार
जुरे जुव जन रस राखे ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३८३ ।

जुव^{पु}—सरा श्री० [हि०] दे० 'युवती' । स०—परम मधुर मादक
मुनाद जिहि अन्न जुव मोही ।—नद०, प्र०, पृ० ४० ।

जुयतो—सद्यः श्री० [सं० युवती] दे० 'युवती' ।—मनेकायं, पृ० १०४ ।

जुवराज ७--कथा पुं० [मं० युवराज] दे० 'युवराज' । उ०--जाइ
पुकारे ते सब बन उजार युवराज । सुनि सुप्रोव हरप कपि
करि घाए प्रभु काज ।--मानस, ५।२८ ।

जुवावा—सझा पुं० [सं० जूत, हिं जुवा] १० 'जुवा' । उ०—जुवा खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर । क्यों न गई ते मति भई सुन सुरही के सोर ।—सं० सप्तक, पृ० ३६४ ।

जुवा^(७२)—सखा श्री० [सं० युता] दे० 'गुवती' । उ०—साजि साज
कुजन गई लक्ष्मी न नंदकुमार । रही ठौर ठाढ़ी गयी जुवा जुवा
सी द्वार ।—स० सप्तक, पृ० ३६८ ।

जुवा^{७३}—वि० [हि० जुदा] दे० 'जुदा' । उ०—मन मिसिमोडा
तिका माद्वी, जीम करे खिए माह जुवा ।—बांही० प्र०,
भा० ३, पृ० १०३ ।

जुवा—वि० [हि०] ३० 'युवा'। उ०—गावति गीत सखे मिलि
सु दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६।

जुवाडी—संज्ञा पुं० [हि० जुमारी] दे० 'जुमारी' । उ०—चोर, डाकू जुवाडी या दुष्ट हो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६ ।

जुवाना—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] दे० 'जवान' ।

जुवानो—संज्ञा पुं० [हि० जवानो] दे० 'जवानो' ।

जुवान्—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हि० जवान] तृण । जवान । उ०—लखि हिय हेंसि कह कृपानिधान । सरिस स्वान मधवान जुवान् ।—मानस, २।३०१ ।

जुवावा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जवाब' । उ०—ता पत्र का जुवाब श्री गुसाईं जी ने वा वैष्णव को कृपा करिके यह लिख्यो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६१ ।

जुवारा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्वार' । उ०—लह लह जोति जुवार की मर गँवारि की होति ।—मति० ग्रं०, पृ०, ४४४ ।

जुवारी—संज्ञा पुं० [हि० जुमारी] दे० 'जुमारी' । उ०—गृध गँवाइ ज्यो चले जुवारी ।—हि० क० का०, पृ० २१४ ।

जुष—वि० [सं०] १. भोग करनेवाला । चाहनेवाला । २. जानेवाला । ग्रहण करनेवाला । पहुँचनेवाला ।

विशेष—समस्त पदों के अंत में इसका प्रयोग मिलता है । जैसे, परलोकजुष, रजोजुष ।

जुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] भात का रसा या रस [को०] ।

जुष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] उच्छिष्ट । छूटन [को०] ।

जुष्ट^२—वि० १. तृप्त । तुष्ट । २. सेवित । भुक्त । ३. समन्वित । युक्त । ४. इष्ट । वाञ्छित । ५. पूजित । ६. अनुकूल [को०] ।

जुष्य^१—वि० [सं०] पूजनीय । सेवनीय [को०] ।

जुष्य^२—संज्ञा पुं० सेवा [को०] ।

जुसाँदा—संज्ञा पुं० [हि० जोसाँदा] दे० 'जोसाँदा' ।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तलाश । खोज । उ०—गरचे प्राण तक तेरी जुस्तजू खासो आस सब किया किए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १९९ ।

जुहना^①—क्रि० प्र० [हि० जूह (=युय) से नामिक घातु] दे० 'जुडना' । मिलना । उ०—कहौ कहूँ कान्ह जुहे तुम सग ।—पृ० रा०, २।३५७ ।

जुहाना—क्रि० सं० [सं० युय, प्रा० जूह + हि० आना (प्रत्य०)] १. एकत्र करना । २. संचित करना । जोड़ जोड़कर एक जगह रखना ।

संयो० क्रि०—देना । लेना ।

जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहार (=युद्ध का खनना या बद होना ?) राजपूतो या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम । अभिवादन । सलाम । बंदगी ।

जुहारना—क्रि० सं० [सं० अवहार (=पुकार या बुलावा)] १. किसी से कुछ सहायता माँगना । किसी का एहसान लेना । २. सलाम या बंदगी करना । उ०—यदि कोई मिले भी तो बुलाने पर भी मत बोलना । जुहारे तो सिर भर हिला देना ।—श्यामा०, पृ० ९९ ।

जुहावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जुहाना' ।

जुही—संज्ञा स्त्री० [सं० यूषी] एक छोटा भाव या पोषा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं । दे० 'झुही' । उ०—खिली मिलि सुयन जूष जुही ।—घनानंद, पृ० १४६ ।

विशेष—यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगोचों में लगाया जाता है । ये फूल बरसात में लगते हैं । इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है ।

जुहुराण^१—संज्ञा पुं० [सं० जुहुराण] चंद्रमा [को०] ।

जुहुराण^२—वि० [सं०] वक्र बनानेवाला । वक्रतापूर्वक कार्य करनेवाला [को०] ।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. वृक्ष । ३. कठोर हृदयवाला व्यक्ति । क्रूर व्यक्ति [को०] ।

जुहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्ध-चंद्राकार यज्ञपात्र जिससे घृत की आहुति दी जाती है । २. पूर्वं दिशा । ३. अग्नि की ज्वाला । अग्निशिखा [को०] ।

जुहुरा—संज्ञा पुं० [अ० जुहूर] प्रकट होना । जाहिर होना । आविर्भाव । उत्पत्ति । उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ । तो यमजाल का फिर जुहुरा हुआ ।—कवीर मं०, पृ० १३४ ।

जुहुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्धवृत्त । २. अग्नि । ३. चंद्रमा [को०] ।

जुहुवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जुहुराण' [को०] ।

जुहुवान्—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] पावक । अग्नि [को०] ।

जुहोता—संज्ञा पुं० [सं० जुहुवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला ।

जू^१—संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है ।

विशेष—ये कीड़े वालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं । आगे की ओर इनके छह पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गडों में विभक्त होता है । इनके मुँह में एक सूँड़ी होती है जो नोक पर झुकी होती है । ये कीड़े उसी सूँड़ी को जानवरों के शरीर में चुमोकर उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । चोखर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है । जू बहुत घंटे देती हैं । ये अड़े बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में पक जाते और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं । ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोड़े ही दिनों में रक्त चूसकर बड़े हो जाते हैं । भिन्न भिन्न आदमियों के शरीर पर की जू भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं । लोगो का कथन है कि कीड़ियों के शरीर पर जू नहीं पड़ती ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

यौ०—जूँसुही ।

सुहा^१—कानो पर जूँ रेंगना = चेत होना । स्थिति का ज्ञान होना । सतर्कता होना । होश होना । कानों पर जूँ न रेंगना = होश न होना । बात ध्यान में न आना । जूँ की चाल = बहुत धीमी चाल । बहुत सुस्त चाल ।

जू^३—प्रत्यय [हि०] दे० 'जू' । उ०—मारू सायर लहर जू
हिवहे द्रव काढत ।—ढोला०, पृ० ६१२ ।

जूठ^१—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हि० जूठ] दे० 'जूठा' ।

जूठन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जूठन] दे० 'जूठन' । उ०—तब से रेडा
सगरी श्री गुसाई जी की टहल करे और महाप्रसाद थी गुसाई
जी की जूठन लेई ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० ६२ ।

जूठा—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हि० जूठा] दे० 'जूठा' ।

जूड़िहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुड़] वह बैल जो बैलो के जुड़ के भागे
चलता है ।

जूदन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० जूदनी] वदर । (मदारी) ।

जूमुह—वि० [हि० जू + मुह] वह जो देखने में सीधा सादा पर
वास्तव से बड़ा धूर्त हो ।

जू—प्रत्यय [सं० (श्री) युक्त] १. एक आदरसूचक शब्द जो
ब्रज, बुंदेलखंड, राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के
साथ लगाया जाता है । जी । जैसे, कन्हैया जू । २. संबोधन
का शब्द । दे० 'जी' ।

जू^२—प्रत्यय [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलो या मँसों को
खड़ा करने के लिये बोला जाता है ।

जू^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती । २. वायुमंडल । वायु । ३.
बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका ।

जू^४—वि० [वै० सं०] तेज । वेगवान् [को०] ।

जूझा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग] १. रथ या गाड़ी के भागे हरस में
बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलो के कंधे पर रहती है ।
क्रि० प्र०—बाँधना ।

†२. जुमाठा । ३. चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़कर
वह फिराई जाती है ।

जूझा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जूत, प्रा० जूमा] वह खेल जिससे जीतने-
वाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है । किसी घटना
की संभावना पर हार जीत का खेल । जूत । वि० दे० 'जुमा' ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—जीतना ।—हारना ।—हीना ।

जूझाखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जूमा + खाना] वह अट्टा, घर
या स्थान जहाँ लोग जुमा खेलते हैं ।

जूझाघर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जूमा + घर] दे० 'जूझाखाना' ।

जूझाचोर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जूमा + चोर] दे० 'जुमाचोर' ।

जूक—सञ्ज्ञा पुं० [यूना० जूक्स] तुला राशि ।

जूग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग] दे० 'युग' । उ०—तोहे जजो परे हीत
उदासिन जूग पलटि न गेल ।—विद्यापति, पृ० ३२४ ।

जूजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कर्णपाली । कान की ललरी या लोर ।
उ०—कोई अपनी जूजी छेदकर कड़ा पहन लेता और कोई
उसको काटकर फेंक देता है ।—कबीर मं०, पृ० ३९१ ।

जूजू—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयकर जीव जिसका नाम लोग
लड़कों को डराने के लिये लेते हैं । हाऊ ।

जूझ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध । लड़ाई । झगड़ा ।

उ०—(क) पाई नही जूझ हूठ कीन्हे । जे पावा ते प्रापुहि
चोन्हे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कोने परा न छूटिहै सुन
रे जीव प्रवृत्त । कबिर माँड़ मैदान में करि इद्रिन सों जूझ ।
—कबीर (शब्द०) ।

जूझना^१—क्रि० प्र० [सं० युद्ध या हि० जूझ] १. लड़ना । २.
लड़कर मर जाना । युद्ध में प्राणत्याग करना । उ०—जूझे
सकल सुभट करि करनी । बहु समेत परथो नृप धरनी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

जूट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जटा की गाँठ । जूठा । २. लट । जटा ।
३. शिव की जटा ।

जूट^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. पटसन । २. पटसन का बना कपड़ा ।
यौ०—जूट मिल = वह मिल जहाँ पटसन के रेशो या धागो से
बोरे, टाट आदि बनते हैं । चटकल ।

जूटना^१—क्रि० प्र० [हि० जुटना] मिलाना । जोड़ना ।
जुटाना ।

जूटना^२—क्रि० प्र० [हि० जुटना] १. प्रवृत्त होना । लग जाना ।
२. एकत्र होना । उ०—जवना हार यई रण जूटे । फिरियो
सेख नगारे फूटे ।—रा० क०, पृ० २५६ ।

जूटि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जुट] १. मेज । २. सवि । ३. जोड़ी ।

जूटी^१—वि० स्त्री० [सं० जुष्ट] दे० 'जूठी' । उ०—चाट रहे हैं जूठी
पत्तल कभी सड़क पर पड़े हुए हैं ।—अपरा, पृ० ६६ ।

जूठा^१—वि० [सं० जुष्ट] १. दे० 'जूठन' । २. दे० 'जूठा' ।

जूठन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जूठ] १. वह खाने पीने की वस्तु जिसे
किसी ने खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसे किसी ने
खाकर छोड़ दिया हो । वह भोजन जिसमें से कुछ अन्न किसी
ने मुँह लगाकर खाया हो । किसी के भागे का बचा हुआ
भोजन । उच्छिष्ट भोजन ।

क्रि० प्र०—खाना ।

२. वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर
लिया । हो । भुक्त पदार्थ । दे० 'जूठा' ।

जूठा^२—वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुट्ट] [वि० स्त्री० 'जूठी' । क्रि०
जुठारना] १. (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो । जिसमें
किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो । किसी के खाने से
बचा हुआ । उच्छिष्ट । जैसे,—जूठा अन्न, जूठा भात, जूठी
पत्तल । उ०—विनती राय प्रवीन की, मुनिए साह सुजान ।
जूठी पातरि भखत हैं वारी, बायस खान ।—(शब्द०) ।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है ।
२. जिसका स्पर्श मुँह मथवा किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो ।
जैसे, जूठा हाथ, जूठा वस्त्र ।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक कलूस होना ।

३. जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के प्रयोग
कर दिया हो । जिसे किसी ने अपवित्र कर दिया हो । जैसे,
जूठी स्त्री ।

जूठा^२—सच्चा पुं० खाने पीने की वह वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के आगे का वचा हुआ भोजन। जूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठियाना^१—क्रि० सं० [हि० जूठ + ह्याना (प्रत्य०)] १. जूठा कर देना। उ०—माखी काट्टु के हाथ न आवे। गध सुगंध सबे जुठियावे।—स० दरिया, पृ० ६।

जूठी^१—वि०, सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'जूठा'।

जूड़ा^१—वि० [सं० जड] [क्रि० जुड़ना, जुड़वाना] ठंडा। शीतल। उ०—सोभा डाइन उर से उरपे जहर जूड़ हो जाई। विषघर मन मे कर पछित वा बहुरि निकट नहि आई।—कवीर श०, भा० २, पृ० २८।

जूड़ा^२—सच्चा पुं० [हि० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूड़ना^१—सच्चा पुं० [देश०] पहाड़ी बिच्छू जो आकार में बड़ा और काले भूरे रंग का होता है।

जूड़ा^१—सच्चा पुं० [सं० जूट अथवा सं० जूडा] १. सिर के बालों की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ अपने बालों को एक साथ लपेटकर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। उ०—काको मन बाँधत न यह जूड़ा बाँधनहार।—इयामा०, पृ० २९।

विशेष—जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालों को लपेटकर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—सोलना।

२. चोटी। कलंगी। जैसे, कबूतर या सुलबुल का जूड़ा। ३. पगड़ी का पिछला भाग। ४. मूँज आदि का पूला। गुँजारी। ५. पानी के घड़े के नीचे रखने की घास आदि की लपेटकर बनाई हुई गड़री।

जूड़ा^२—सच्चा पुं० [हि० जूड़] [स्त्री० जूड़ी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और साँस लेते समय कोख में गड़गड़ाहट पड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा सुस्त पड़ा रहता है।

जूड़ी^१—सच्चा स्त्री० [हि० जूड़] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर आने के पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर घटो बाँपा करता है। उ०—जो काहू की सुनहि बड़ाई। स्वास लेहि जनु जूड़ी आई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूड़ी, दूसरे दिन आनेवाले को अंतरा, तीसरे दिन आनेवाले को तिजरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है।

क्रि० प्र०—घाना।

जूड़ी^२—सच्चा स्त्री० [हि० जुड़ना] जुड़ी।

जूड़ी^३—वि० [हि० जूड़] ठंडी। शीतल। उ०—कितु बंगले के

कमरे में घुसते ही शीतल जूड़ी छाया ने अपना असर किया।—किन्नर०, पृ० ७।

जूगा^१—सच्चा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जूत^१—सच्चा पुं० [हि० जूता] १. जूता। २. बड़ा जूता।

जूत^२—वि० [सं०] १. आग्रह किया हुआ। २. खींचा हुआ। ३. दिया हुआ। प्रदत्त। ४. गया हुआ। गत [को०]।

जूता—सच्चा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत] चमड़े आदि का बना हुआ पैरों के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोग कटि आदि से बचने के लिये पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पादत्राण। उपा 'ह'।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को एक में सीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपल्ला कहते हैं। तले का पिछला भाग एंडी या एंडू और अगला भाग नोक या ठोकर कहलाता है। उपल्ले के वे अण जो पैर के दोनों ओर खड़े उठे रहते हैं, दोवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एंडी के ऊपर दोनों दोवारों के जोड़ पर लगी रहती है, लगेट कहलाती है। देशी जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे,—पंजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगावी, धेतला, चट्टी इत्यादि। अंग्रेजी जूतों के भी कई भेद होते हैं। जैसे, बूट, स्लिपर, पप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व में छाते और जूते के आविष्कार के संबंध में एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीम से पूछा कि आद्य आदि कर्मों में छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्म जी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि श्रीशिवश धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ाकर छोड़ते थे और उनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणों को ला लाकर उन्हें देती थी। धीरे धीरे दोषहर हो गई और कड़ी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लगे। वह शिथिल होकर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरांत वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि कुछ होकर देर होने का कारण बार बार पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर भ्रमण कुछ हुए और धनुष पर बाण चढ़ाकर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य ब्राह्मण के देश में ऋषि के पास आए और कहने लगे सूर्य ने आपका क्या विगाड़ा है जो आप उन्हें मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है? जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तो ब्राह्मण वेशधारी सूर्य ने कहा कि सूर्य तो सदा वेग के साथ चलते रहते हैं। आप का लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा? ऋषि ने कहा कि जब मध्याह्न में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा। इसपर सूर्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि 'अच्छा? अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिससे हमारी पत्नी को धूप का कष्ट न हो।' इस

पर सूर्य ने एक जोड़ा जूता और एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये ये दोनों पदार्थ हैं, इन्हें आप ग्रहण करें। तब से छाते और जूते का दान बड़ा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या चलना = (१) जूते से मारपीट होना। (२) लड़ाई दगा होना। झगडा होना। जूता खाना = (१) जूते की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। २ बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। विरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) चमार का काम करना। नीचा काम करना। जूता चाटना = अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न रखकर दूसरे की शुश्रूषा करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता चढ़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूते की मार पड़ना। उपानह प्रहार होना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। किसी अनुचित बात का कडा और मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। नुकसान होना। हानि होना। जैसे,—बैठे बैठे १० का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूता खरीद देना। जूता बरसना = दे० 'जूता पड़ना' (१)। जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। दे० 'जूता पड़ना'। (२) जूता मारना = (१) किसी अनुचित बात का ऐसा कडा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। मुँह तोड़ जवाब देना। (२) जूते से मारना। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँह तोड़ जवाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। ऐसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का तुरत ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को लज्जित होना पड़े। (४) प्रतिशय हानि उठाना। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का प्रादमी = ऐसा प्रादमी जो बिना जूता साँधे ठीक काम न करे। बिना कठोर दंड या शासन के उचित व्यवहार न करने वाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूते दाल बँटना = आपस में लड़ाई झगडा होना। परस्पर वैर-विरोध होना। मनबन होना। जूते से घाना = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारे के लिये तैयार होना। जूते से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हि० जूता+का० खोर] १ जो जूता खाया करे।

२ जो निर्लज्जता के कारण मार या माला की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूति—संज्ञा पु० [सं०] १ वेग। तेजी। २ अग्रसर होना। आगे बढ़ना

(को०)। ३ प्रबाध गति या प्रवाह (को०)। ४. उत्तेजना। प्रेरणा (को०)। ५. प्रवृत्ति। भुकाव (को०)। ६. मन की एकाग्रता (को०)।

जूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह का कपूर (को०)।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हि० जूता] १ स्त्रियों का जूता। २ जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीखोर। जूतीछुपाई। जूतीपैजार।

उ०—जूती पैजार और लाठी डडो तक की नौबत आती है।

—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नोक सेवा करना। दासत्व करना।

जूते कीनोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना।

कुछ परवाह न करना। जैसे,—ऐसा रूपमा मैं जूती की नोक

पर मारता हूँ। जूती की नोक खफा होना = परवा न करना।

फिर न करना। उ०—खफा काहे की होती हो वेगम ?

हमारी जूती की नोक खफा हो।—सर कु०, भा० १, पृ०

२१। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

(स्त्री०)। उ०—वह यहाँ नहीं आती है तो मेरी जूती की

नोक से। जूती के बराबर = अत्यंत तुच्छ। बहुत नाचीज।

(किसी की) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा

अत्यंत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाचीज होना।

(खुशामद या नम्रता से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का

प्रयोग करते हैं। जैसे,—मैं तो आपकी जूती के बराबर भी

नहीं हूँ)। जूती चाटना = खुशामद करना। चापलूसी करना।

जूती बाल बँटना = दे० 'जूतियों दाल बँटना'। उ०—छेड़खानी

करनी हैं, आप्रो पडोसन हम तुम लडें। दूसरी बोली लडें मेरी

जूती। उसने कहा जूती लगे तेरे सर पर। वह बोली, तेरे होते

सोती पर। चलो बस जूती दाल बटने लगी।—सर कु० भा०

१, पृ० ३८। जूती देना = जूती से मारना। जूती पर जूती

चढ़ना = यात्रा का आगम दिखाई पड़ना। (जब जूती पर जूती

चढ़ने लगती है तब लोग यह समझते हैं कि जिसकी जूती

है उसे कहीं यात्रा करनी होगी)। जूती पर मारना = दे०

'जूती की नोक पर मारना'। जूती पर रखकर रोटी देना =

अपमान के साथ रोटी देना। निरादर के साथ रखना

या पालना। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२)

नया जूता मोल लेना। जूती पहनाना = (१) किसी के पैर

में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूती से =

दे० 'जूती की नोक से'। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से

पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भला बुरा सुनना।

कडी बातें सहना। (३) अपमान सहना। जूतियाँ गाँठना =

(१) फटी हुई जूतियों को सीना। (२) चमार का काम

करना। अत्यंत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय

करना। जूतियाँ घटकाते फिरना = (१) दीनतावश इधर-

उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे

पुराने जूते को घसीटने से चट चट शब्द होता है)। (२)

व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूतियों बाल बँटना = आपस में

लड़ाई झगडा होना। वैर विरोध होना। फूट होना।

जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना। जूतियाँ बगल

में दवाना=जूतियाँ उतारकर भागना जिसमें पैर की आहूट न सुनाई दे। चुपचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना=(१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। तिरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगना=जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = अत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूतियों का सदका=चरणों का प्रेमोप (विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन)।

जूतीकारी—सच्चा श्री [हिं० जूती + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हिं० जूती + खा० खोर] १. जो जूतों की मार खाया करे। २. जो निलज्जता से मार और गाला की परवाह न करे। निलज्ज। बेहया।

जूती छुपाई—सच्चा श्री [हिं० जूती + छुपाना] १. विवाह में एक रस्म।

पिशोप—स्त्रियाँ कोहर के घर के चलते समय घर का जूता छिपा देती हैं और सघतक नहीं देती हैं जबतक वह छूटे के खिये कुछ नेग न दे। यह काम प्रायः वे स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में वधू की सहन होती हैं।

२. वह नेग जो घर स्त्रियों को जूती छुपाई में देता है।

जूती पैजार—सच्चा श्री [हिं० जूती + फ्रा० पैजार] १. जूतों की मार पीट। घोल चप्पड़। २. लड़ाई दंगा। कलह। झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।

जूथु—सच्चा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'। उ०—भयो पंक प्रति रग को तामे गज को यूथ फँसोरी।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०४।

यौ०—जूथ जूथ=झुंड का झुंड। समूहवद्ध। उ०—जूथ जूथ मिलि चली सुभासिनि। निज छवि निदरहि मदन विलासिनी।—मानस, १।३४५।

यूथिका—सच्चा श्री [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

यूथिका—सच्चा श्री [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूद—वि० [प्र०] शीघ्र। त्वरित। तुरंत। जल्दी।

यौ०—जूवक्रक्षम=कोई बात तुरंत समझनेवाला। तीव्रबुद्धि।

जूद—वि० [फ्रा०] तेज। द्रुत [जो०]।

जून^१—सच्चा पुं० [सं० जून = सूर्य ग्रहण देश०] समय। काल। बेला।

जून^२—सच्चा पुं० [सं० जून (=पुराना)] पुराना। उ०—का छति लाभ भूल धनु तोरे। देखा राम नये के धोरे।—तुलसी (शब्द०)।

जून^३—सच्चा पुं० [सं० (जून=एक तृण)] तृण। घास। तिनका।

जून^४—सच्चा पुं० [प्र०] अंगरेजी वर्ष का छठा महीना जो जेट के लगभग पड़ता है।

जून^५—सच्चा पुं० [सं० यवन ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय बैल, ऊँट आदि पाखती है।

जूना^१—सच्चा पुं० [सं० जून (=एक तृण)] १. घास या फूस को बटकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। २. घास फूस का लच्छा या पूला जिससे बरतन माँजते या मलते हैं। उसकन। उबसन। उ०—रग ज्यादा गोरा तो नहीं, साँवले से कुछ निखरा हुआ है। हाथ में छूना है और बरतन माँजते माँजते वह खीझ उठी।—बहुक्ते०, पृ० ६३।

जूना^२—हिं० [सं० जीर्ण] [वि० श्री० जूनी] दे० 'जीर्ण'। उ०—छूना गीठ धोहा चारणा भी के सुनाया।—शिवर०, पृ० ११।

जूनि—सच्चा श्री [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—सतगुरु ते जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिर जूनि न आया।—प्राण०, पृ० १११।

जूनियर—वि० [प्र०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

यौ०—जूनियर हाई स्कूल=वह हाई स्कूल जिसमें कक्षा छह से आठ तक पढ़ाई होती है। पूर्व माध्यमिक विद्यालय।

जूनी^१—सच्चा श्री [हिं० जूना] दे० 'जूना'। उ०—जूनी से कनातां तेज सींची प्रागि जाली।—शिवर०, पृ० ५२।

जूनी^२—सच्चा श्री [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—फिर फिर जूनी सकत आवे। गर्भवास में वह दुख पावे।—सहजो०, पृ० ८।

जूप^१—सच्चा पुं० [सं० जूत, प्रा० जूष्ठा या जूव] १. जूमा। दूत। उ०—जैसे, अथ छप, विनु गाँठ घन रूप की उशी हीन गुण प्राथ है न रूप जल पान की।—हनुमान (शब्द०)। २. विवाह में एक रीति जिसमें घर और वधू परस्पर जूमा खेलते हैं। पासा। उ०—कर कपे कगन नहि छूटे। खेलत रूप जुगल जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर (शब्द०)।

जूप^२—सच्चा पुं० [सं० यूप] दे० 'यूप'।

जूम^१—सच्चा पुं० [देश०] यूक। पीक। उ०—सुरती का जूम पिच से जमीन पर गिरा।—नई०, पृ० ३०।

जूमना^१—क्रि० प्र० [प्र० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) लागो हुतो हाट एक मदन घनी को जहाँ गोपिन को वृंद रह्यो जूमि चहुँबाई में।—देव (शब्द०)। (ख) गिरिधरवास भूमि जूमि आसु वदि, बाज लों दराज लेहि परन दवाय के।—गोपाल (शब्द०)।

जूमना^२—क्रि० प्र० [हिं० जूमना] दे० 'जूमना'।

जूर^१—सच्चा पुं० [हिं० जुरना] जोड़। सचय। उ०—दान प्राप्ति सब दरबक जूर। दान लाभ होइ बाँचे मूर।—जायसी (शब्द०)।

जूरना^१—क्रि० प्र० [हिं० जोड़ना] जोड़ना। उ०—अवध मे सतन रहूँ दूरि। वधु-सखा गुरु कहत राम की नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी (शब्द०)।

जूरना^२—क्रि० प्र० [हिं० जोड़ना] इकट्ठा होना। जुटना।

जूरर—सच्चा पुं० [प्र०] पच। न्यायसभ्य। जूरी का सदस्य।

जूरा—सच्चा पुं० [हिं० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह व्यक्ति जो कानून, विशेषकर दीवानो कानून में पारंगत हो। व्यवहार-शास्त्र-निपुण।

जूरिस्टिकशन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। जैसे, वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्टिकशन के बाहर है।

जूरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरना] १. घास, पत्तों या टहनियों का एक बंधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाखू की जूरी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बंधे हुए निकलते हैं। ३. एक पक्वान जो पौधों के नए बंधे हुए कल्लों को गीले वसन में लपेटकर तलने से बनता है। ४. एक प्रकार का पौधा या झाड़ जिससे क्षार बनता है।

विशेष—यह पौधा गुजरात, कराची आदि के खारे दलदलों में होता है।

जूरी^२—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, झाकाजनी, राजद्रोह, पद्वयंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्ती के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एकमत होकर उसे चोर बताया तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रहकर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर अदालत में उपस्थित होना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुत मानने की वाज्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्तान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर, जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये वाज्य नहीं हैं। जूरी से मनाव्य न होने की अवस्था में वे मामले हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] दे० 'जूरी'।

जूरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जूर'।

जूरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पूर्या—उत्पन्न। उत्पन्न।

जूर्णाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणविशेष। २. कुश। दर्भ [को०]।

जूर्णाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूर्णि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेग। २. आदिष्य। ३. वेद। ४. ब्रह्मा। ५. क्रोध। ६. स्त्रियों का एक रोग। ७. आग्नेयास्त्र [को०]।

जूर्णि^२—वि० १. वेगयुक्त। वेगवान। तेज। २. द्रवित। गला हुआ। नाग देववाह्य। ३. स्तुति करने में प्रयत्न।

जूर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर। २. तप। गरमी [को०]।

जूर्णाई—संज्ञा स्त्री० [सं० जुनाई] दे० 'जुनाई'।

जूर्णाई—संज्ञा पुं० [दे०] गैर। उ०—इम पतसाह मुणे भकुलायो। भड्डिनाण जुवत तल बायो।—रा० ६०, पृ० ६४।

५-१७

जूवा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जूघा] दे० 'जुघा'। उ०—टाँड़ा तुमने लादा भारी। वनिज किया पूरा वेपारी। जूवा खेला पूँजी हारी। भव चलने की भई तयारी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६।

जूवा^२—वि० [हिं०] दे० 'जुदा'। उ०—नामरूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ७३।

जूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। भोल। रसा। २. उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण—संज्ञा पुं० [सं०] चाय नामक पेठ जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस^१—संज्ञा पुं० [सं० जूप] १. मूँग भरहर आदि की पकी हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस लेना = (१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

२. उबली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काढ़ना। निकालना।

जूस^२—संज्ञा पुं० [फा० जुषत, तुलनीय सं० युक्त] १. युग्म संख्या। सम संख्या। ताक का उलटा। जैसे,—२, ४, ६, ८।

यो०—जूस ताक।

जूस ताक—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फा० ताक] एक प्रकार का जुघा जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपाकर कुछ कौड़ियाँ ले लेता है और दूसरे से पूछता है—'जूस कि ताक?' अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है या विषम? यदि दूसरा लड़का ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हारकर उबनी ही कौड़ियाँ बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूस ताखा^१—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फा० ताक] दे० 'जूस ताक'। उ०—घसन के बाग घोवे, नखद्यत एक टोवे, चुर ते चुरी को खेलै एक जूस ताख है।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० १६१।

जूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूम] यह पाक ससोषा रस जो हँस के पकते रस की गुठ के रूप में ठोस होने के पहले उतारकर रख देने से उसमें से छूटता है। खाँस का पसेव। चोटा। छोटा।

जूह^१—संज्ञा पुं० [सं० यूय, प्रा० जूह] झुड़। समूह। उ०—(क) टट्ट उह वज्जे उमरु, जूह जुगिनि जुरि नाची।—हम्मीर०, पृ० ५८। (घ) एकवि प्रार वासु पर छाँहहि गिरि तह वह।—मानस, १।१५।

जूहर—संज्ञा पुं० [फा० जोहर या हिं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निरिच्छत जान स्थितों चित्ता पर बैठकर जल जाती थी और पुष्प दुर्ग के बाहर लटने के लिये निकल पड़ते थे। वि० दे० 'जोहर'।

जूहारना^१—क्रि० सं० [हिं० जूहारना] दे० 'जूहारना'। उ०—सासु जूहारवा चान्यो, छह राई।—वी० रासो, पृ० २६।

जूहिया—वि० [हि० जूही + इया (प्रत्य०)] जूही वैसी । उ०—
हेमंती घोंस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी ।—नई०,
पृ० ४२ ।

जूही^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यूषी] १ फैलनेवाला एक झाड़ या पोधा
जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर
नीचे मुकीली होती हैं । उ०—जाही जूही वगुचन लावा ।
पुहुप सुवरसन लाग सुहावा ।—जायसी ग्र०, पृ० १३ ।

विशेष—यह हिमालय के अंचल में आपसे आप उगता है । यह
पोधा फूलों के लिये वगीचों में लगाया जाता है । इसके फूल
सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं । सुगंध
इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती
है । ये फूल बरसात में लगते हैं । जूही को कहीं कहीं पहाड़ी
चमेली भी कहते हैं । पर जूही का पोधा देखने में चमेली से
नहीं मिलता, कुद से मिलता है । चमेली की पत्तियाँ सीकों के
दोनों ओर पत्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं । जूही के फूल
का अंतर बनता है ।

२. एक प्रकार की भातशवाजी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल
से झड़ते दिखाई पड़ते हैं ।

जूही^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर
आदि की फलियों में लगता है । जूई ।

जूभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जूम्भ] [स्त्री० जूभा, वि० जूभक] १. जेमाई ।
जमुहाई । २. भालस्य । ३. प्रस्फुटन । विकास । खिलना (को०)
४. विस्तार । फैलाव (को०) । ५. एक पत्ती (को०) ।

भक^१—वि० [सं० जूम्भक] जेमाई लेनेवाला ।

भक^२—सञ्ज्ञा पुं० १. चंद्र ग्रहों में एक । २. एक ग्रह जिसके
मूलाने से शत्रु निद्राग्रस्त होकर लड़ाई छोड़ जेमाई लेने लगते,
सो जाते या शिथिल पड़ जाते थे ।

विशेष—जब राम ने ताड़का आदि को मारा था तब विश्वामित्र
ने प्रसन्न होकर मन्त्र सहित यह ग्रह उन्हे दिया था । विश्वा-
मित्र को यह ग्रह घोर तपस्या के उपरांत अग्नि से प्राप्त
हुमा था ।

जूभकास्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जूम्भकास्व] दे० 'जूभक' ।

जूभण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जूम्भण] १ जेमाई लेना । २. अगो को
फैलाना (को०) । ३. खिलना । विकास (को०) ।

जूभण^२—वि० १. जेमाई लेनेवाला (को०) ।

जूभमान—वि० [सं० जूम्भमत] १. जेमाई लेता हुआ या जेमाई
लेनेवाला । २. प्रकाशमान । खिलता हुआ । विकासमान ।

जूभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भा] १ जेमाई । २. भालस्य या प्रमाद
से उत्पन्न जड़ता । ३. एक शक्ति का नाम । ४. खिलना ।
विकास (को०) । ५. विस्तार । फैलाव (को०) ।

जूभिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिका] १. भालस्य । २. जूभा ।
३. एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार
बार जेमाई लिया करता है ।

विशेष—यह रोग निद्रा का अवरोध करने से उत्पन्न होता है ।

जूभिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता (को०) ।

जूभिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जूम्भिणी] एलापर्णी लता ।

जूभित^१—वि० [सं० जूम्भित] १. चेषित । २. प्रवृद्ध । फैला या
फैलाया हुआ । ४. जिसने जेमाई ली हो (को०) ।

जूभित^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रमा । २. स्फोटन । ३. स्त्रियों की
ईहा या इच्छा ।

जूभो—वि० [सं० जूम्भन्] १. जेमाई लेनेवाला । २. खिलने-
वाला (को०) ।

जेटिलमैन—सञ्ज्ञा पुं० [श०] सम्म पुष्प । भद्रजन । सभ्रात व्यक्ति
जेदू—सञ्ज्ञा पुं० [?] १. हिंदू । २. हिंदुओं की भाषा ।

विशेष—पहले पहल पुर्नगात्रियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये
इस शब्द का प्रयोग किया था । बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के
समय अंगरेज लोग उक्त शब्द में उस शब्द का प्रयोग करने लगे ।

जेत्ताक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जेत्ताक] रोग के शरीर में पसीना लाकर दूषित
अथ और विकार आदि निकालने की एक क्रिया । मकारा ।

जेगना^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० जोइगण] दे० 'जुगुन' । उ०—सुंदर
कहूँ एक रवि के प्रकाश बिनु जेगना की ज्योति, कहा रजनी
विलात है ।—सत याणी०, भा० २, पृ० १२३ ।

जेगरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चंद, मूंग, मोथी, ज्वार, बाजरे आदि के
ठठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं । जेगरा ।

जेगा^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जहाँ' । उ०—वाले सखी तिए मंदिरइ,
सज्जन रहियउ जेगा । कोइक मोठउ बोलइ, लागो होसर
तेण । डोला०, दू० ३५६ ।

जेना—क्रि० सं० [सं० जेमनम्] दे० 'जेवना' ।

जेवना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जेवना] भोजन । खाने की वस्तु ।

जेवना^२—क्रि० सं० [सं० जेमन] भोजन करना । खाना । भक्षण
करना । उ०—(क) जो प्रभु निगम अगम करि गए । जेवन
मिस ते हय पै आए ।—नद० ग्र०, पृ० ३०४ । (ख) भानंद-
धन ब्रज जीवन जेवन हिनिमिल स्वार तोरि पतानि ठाक ।
—धनानंद, पृ० ४७३ ।

जेवना^३—सञ्ज्ञा पुं० भोजन । भोजन । खाने का पदार्थ । वह जो कुछ
खाया जाय ।

जेवनार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेवनार' । उ०—चढ़ूँ प्रकार
जेवनार भई बहु भातिन्ह ।—सुलसी ग्र०, पृ० ६० ।

जेवाना^१—क्रि० सं० [हि० जेवना] भोजन कराना । खिलाना ।
जिमाना ।

जे^१—सर्व० [सं० ये] १ 'जो' का बहुवचन । २. दे० 'जो' ।
उ०—जेलचर यलचर नभचर नाना । जे जड़चेतन जीव
जहाना ।—मानस, १।३ ।

जे^२—सर्व० [सं० एतत्] यह का बहुवचन । उ०—माई, जे
दोऊ, कोन गोप के डोटा । इनकी बात कहा कही तीसों,
गुनन बडे, देखन के छोटा ।—नद० ग्र०, पृ० ३४१ ।

जे^३—सर्व० [सं० इदम्] यह । उ०—आगामिनी जामिनी जुग
ही । अगमामिनीन सी जे कही ।—नद० ग्र०, पृ० ३१७ ।

जेई^१—सर्व० [हि०] दे० 'जो' । उ०—हनिवत वीर सक जेई

जेइ-

जारी। परबत मोहि रहा रखवारी।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २५६।

जेइ०—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।
जेउ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जो'। उ०—उपके मनुव मोसु तस परई।
होमनुवा बसत जेउ भरई।—जायसी प्र०, पृ० २५६।

जेउ, जेउ०—सर्व० [हि०] दे० 'जो'।
जेउ०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] भेर। विलब। उ०—जन रामा
भन जेउ न कीजे सतगुर जानि जगावे हो।—राम० घम०,
पृ० २४८।

जेम०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] भेर। विलब। देरी। उ०—धुरी बात
बासा जेम विसरी जिण सायत।—राम० ह०, पृ० ३३६।

जेठ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] युयु० १ मनुह युयु, देर। २ रोटीयों की
तही। ३ मिट्टी के बरतनों का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे
के ऊपर रखे हों। ४ गोद। कोरा।

जेठ—सञ्ज्ञा पु० [प्र०] एक प्रकार का वायुयान।
जेठो—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह
बड़ा चबूतरा जिसपर से जहाजों का माल चढ़ाया और
उतारा जाता है।

जेठसां—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्येष्ठ + सां, पैतृक संपत्ति में बड़े भाई की
बड़ा हिस्सा।
जेठसां—वि० [सं०] ज्येष्ठ + सां, पैतृक संपत्ति में बड़े भाई की
हैसियत से बड़े हिस्से का अधिकारी।

जेठ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्येष्ठ, १ एक चांद मास जो बैसाख और
असाढ़ के बीच में पड़ता है।
विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है उस दिन चंद्रमा
ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं।
यह ग्रीष्म ऋतु का पहला और सबत् का तीसरा मास है।
सौर मास के हिसाब से जेठ धूप सकाति से आरंभ होकर
मिथुन सकाति तक रहता है।

२. [स्त्री०] जेठानी पति का बड़ा भाई। भसुर।
जेठ—वि० भग्न। बड़ा। उ०—जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह
दिनकर कुल रीति मुहाई।—तुलसी (शब्द०)।
जेठरत—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जेठ + रत (प्रत्य०)। पति का बड़ा
भाई।

जेठरां—वि० [हि०] जेठ + रा (प्रत्य०)। दे० 'जेठ' (वि०)।
जेठरैत—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जेठरा + ऐत (प्रत्य०)। गाँव का मुखिया।
जेठरैतां—वि० ज्येष्ठ। बड़ा।
जेठरैयत—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जेठ + रा + यत (प्रत्य०)। गाँव का मुखिया,
जिसकी समाज के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हों।

जेठवा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जेठ। एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार
होती है। इसे मनुवा भी कहते हैं। वि० दे० 'मनुवा'।
जेठा—वि० [सं०] ज्येष्ठ [वि० स्त्री०] जेठी। १. भग्न। बड़ा। २. सबसे
बड़ा। सबसे प्रच्छ।

मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रंगाई में सबसे
प्रथम बार रंग जाय।
जेठाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] जेठा—जेठ होने का भाव या दशा।
बड़ाई। जेठापन।

जेठानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] जेठ की स्त्री। पति के बड़े भाई
की स्त्री।

जेठी—वि० [हि०] जेठ + ई (प्रत्य०)। १. जेठ सबधी। जेठ का।
जैसे, जेठी घान। जेठी कपास। २. बड़ी। पहली।

जेठी—सञ्ज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की कपास जो जेठ में पकती और
फूटती है।
विशेष—इसे बरार या विदर्भ में टिकड़ी या लूठी और काठिया-
वाड़ में गंगरी कहते हैं।

२. जेठानी। उ०—जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि दूर सतिराम
बुलाई।—इतिहास, पृ० २५४।

जेठी—सञ्ज्ञा पु० बोरो नाम का घान जो चैत में नदियों के किनारे
बोया और जेठ में काटा जाता है।

जेठी मधु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] यष्टिमधु मुलेठी।
जेठुआं—वि० [हि०] दे० 'जेठी'।
जेठुआं—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्येष्ठ + पुत्र [स्त्री०] जेठोती। १. जेठ का लड़का।
जेठोत—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्येष्ठ + पुत्र। जेठानी का पुत्र। २. पति का
पति के बड़े भाई का पुत्र। जेठानी का पुत्र।

जेठीता—सञ्ज्ञा पु० [हि०] जेठोत। दे० 'जेठी'।
जेती—वि० [हि०] दे० 'जितना'। उ०—जेत बराती की भसवारा।
माए मोर सब चाल निहारा।—जायसी प्र० (गुप्त),
पृ० ३११।

जेतक—वि० [हि०] दे० 'जितना'। उ०—जेतक नेम धरम किए
री में बहु विधि भग भग भई में तो सवन मई री।—तद०
प्र०, पृ० ३४५।

जेतना—वि० [हि०] जितना। दे० 'जितना'। उ०—बिभु महि
पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काब। मागे बारिद देखि
जल रामचंद्र के राज।—मानस, ७/२३।

जेतवा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'जेतवार'।
जेता—वि० [सं०] जेतृ, १. जीतनेवाला। विजय करनेवाला।
विजयी।
जेता—सञ्ज्ञा पु० [सं०] विजय।

जेता—क्रि० वि० [सं०] यावत् जितना।
जेता—वि० [हि०] जिस + तना (प्रत्य०)। जिस मात्रा का। जिस
परमाणु का। जितना। उ०—संकल दीप मई जेनी रानी।
तिन्ह मई दीपक बारह वानी।—जायसी (शब्द०)।

जेतार—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'जेता'।
जेति—वि० [हि०] जितना। जितना। उ०—हरे रंग बहुत जानति
लहरे जेत समुद्र। वे पिय को चतुराई सकैं नु एकी बुद।
जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४१।

जेति—वि० [सं०] ज्येष्ठ [वि० स्त्री०] जेठी। १. भग्न। बड़ा। २. सबसे
बड़ा। सबसे प्रच्छ।

जैतिक^१—क्रि० वि० [हि० जितना] जितना । जिस कदर । जिस मात्रा में । जिस परिमाण में ।

जैतिक^२—वि० दे० 'जितना' । उ०—जैतिक भोजन ब्रज तै आयो । गिरि रूपी हरि सिगरी खायो ।—नद० प्र०, पृ० ३०७ ।

जैती^१—वि० स्त्री० [हि० जैता] जितनी । उ०—जैती लहर समुद्र की तेती मन की दोर । सहज हीरा नीपज जो मन आवै ठीर ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

जैती^२—क्रि० वि० [हि०] जितना । जिस कदर । उ०—धीरज ज्ञान सयान सवे, गंग जैतीई सारत तेतोई डाहे ।—गंग०, पृ० ७७ ।

जैती^३—वि० दे० 'जितना' ।

जैती^४—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैती' ।

जैती^५—वि० दे० 'जितना' । उ०—प्रह वह रूप अनूपम जैती । नैनन गह्यो गयो नहीं तेती ।—नद० प्र०, पृ० १२८ ।

जेन केन^१—क्रि० वि० [सं० जेन + केन] जैसे जैसे । उ०—जेन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन । अनाकर्ण चैनन्य कछु न चितवै साधन तन ।—नद० प्र०, पृ० ४६ ।

जेनरल^१—वि० [अ०] १ आम । सामान्य ।

यौ०—जेनरल इलेक्शन = आम चुनाव । साधारण निर्वाचन ।

जेनरल मर्चेट = सामान्य उपयोग के सामान का विक्रेता ।

२ बड़ा । प्रधान ।

यौ०—जेनरल सेक्टर = सस्था, सस्थान या विभाग का प्रधान मंत्री । जेनरल स्टाफ = सेनापति का सहाकारी मंडल ।

जरल^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] फौजी अफसर का एक पद जो सेनापति के अधीन होता है [को०] ।

नां—क्रि० सं० [सं० जेमन] दे० 'जोमना' ।

न्य—वि० [सं०] १ अभिजात । कुलीन । २ असली । सच्चा । ३ विजेता [को०] ।

नैन्यावसु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ इन्द्र । २ अग्नि ।

जेपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक श्रौषोपयोगी पौधा । जैपान । जमाल-गोटा [को०] ।

जेप्लिन—सञ्ज्ञा पुं० [जर्मन] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज ।

विशेष—इसका आविष्कार जर्मनी के काउंट जेप्लिन साहब ने किया था । इसका ऊपरी भाग सिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी बैलियाँ होती हैं । बड़े लंबोतरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो सड़क लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें आदमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं । सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है ।

जेव^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पहनने के कपड़े (कोट, कुरते, कमीज, अंग्रे आदि) में बगल या सामने की ओर लगी वह छोटी थैली या चकती जिसमें रुमाल, कागज आदि चीजे रखते हैं । लीसा । खरीता । पाकेट ।

क्रि० प्र०—कतरना ।—काटना ।

यौ०—जेवकट । जेवखर्च । जेवघड़ी ।

मुहा०—जेव कतरना = जेव काटकर रुपए पैसे का अपहरण ।

जेव खाली होना = पास में पैसा न होना । जेव भरी होना = पास में काफी रुपया होना ।

जेव^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जेव] शोभा । सौंदर्य । फवन ।

मुहा०—जेव तन बदलना = पहनना । धारण करना । जेव देना = शोभित होना ।

यौ०—जेवदाव = तजंदार । अच्छा । सुंदर ।

जेवकट—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जेव + हि० काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरो के जेव से रुपया पैसा लेने के लिये जेव काटता हो । जेवकतरा । गिरहकट ।

जेवकतरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जेव + कतरना] दे० 'जेवकट' ।

जेवखर्च—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जेवखर्च] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो । भोजन, वस्त्र आदि के व्यय से निज, निज का और ऊपरी खर्च ।

जेवखास—सञ्ज्ञा पुं० [फा० जेव + अ० खास] राज्यकोष से राजा या बादशाह के निजी खर्च के लिये दिया जानेवाला धन ।

जेवघड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जेव + हि० घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब में रखी जाती है । जेबी घड़ी । घाब ।

जेवदार—वि० [फा० जेवदार] सुंदर । शोभायुक्त ।

जेवरा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जेवरा] जेवरा नाम का जंगली जानवर । दे० 'जवरा' ।

जेवा—वि० [फा० जेवा] सुंदर । मनोरम । शोभनीय । ललित [को०] ।

मुहा०—जेवा देना = शोभा देना । सुंदर लगना ।

जेवी—वि० [फा०] १ जेब में रखने योग्य । जो जेब में रखा जा सके । जैसे, जेवी घड़ी ।

२ बहुत छोटा ।

जेवोजीनत—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जेव + अ० जीनत] दनाव सिगार । वेश हूपा । ठाट बाट । गृगार । सजावट [को०] ।

जेमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन करना । जोमना । २ आहार । खाय [को०] ।

जेय—वि० [सं०] जीतने योग्य । जो जीता जा सके ।

जेर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दश०] माँवल । वह भिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है ।

जेर^२—अव्य० [फा० जेर] नीचे । तले [को०] ।

जेर^३—वि० [फा० जेर] [देश० जेरवरी] १. परास्त । पराजित । २. जो बहुत दिक् किया जाय । जो बहुत तग किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना = हराना । पछाडना ।

जेर^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० जेर] घरकी ओर फारसी के अक्षरों के नीचे लगनेवाला एक संकेत चिह्न जो इ, ई, और ए की मात्राओं का सूचक होता है ।

जेर^५—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह सुंदरवन में अधिकता से होता है । इसके हीर की लकड़ी लाली लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुरती, आलमारी इत्यादि बनती हैं ।

जेरजामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरजामह्] १ मधोवस्त्र । कटिवस्त्र ।
२ घोड़े की जीन के नीचे पीठ पर ढाला जानेवाला कपड़ा [संज्ञा] ।

जेरजबीज—वि० [फ्रा० जेर + अ० तजबीज] विचाराधीन [को०] ।

जेरदस्त—वि० [फ्रा० जेरदस्त] अवीन । वशीभूत । असहाय [को०] ।

जेरनजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + अ० नजर] आँखों में । दृष्टि में ।
क्रि० प्र०—पढ़ना ।—होना ।

जेरनाउ—क्रि० सं० [हि० जेर] तग करना । सताना । उत्पीड़ित करना ।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरपाई] १ स्त्रियों के पहनने की जूती ।
स्लीपर । २ साधारण जूता ।

जेरपेच—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरपेच] पगड़ी के नीचे पहनी जानेवाली छोटी पगड़ी या टोपी [को०] ।

जेरवद्—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेरवार] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तग में फँसाया जाता है ।

जेरवार—वि० [फ्रा० जेरवार] १ जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तग और दुखी हो । आपत्ति या दुख की ओर से लदा हुआ । २ क्षतिग्रस्त । जिसकी बहुत हानि हुई हो ।

जेरवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जेरवारी] १ आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया । तगी । २ हेरानी । परेशानी ।
क्रि० प्र०—होना ।—सहना ।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० जेरी २. और ३. ।

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] १. दे० 'जेरी' । २ वह लाठी जो चरवाहे कंटोली भाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दवाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं । उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की । इतहि सखा कर वाँस लिए बिच मार मची भोरा भोरी की । —सूर (शब्द०) । ३ खेती का एक औजार जो फरई के आकार का काठ का होता है । इसका व्यवहार मत्त दाँवने के समय पुमाल हटाने में होता है । सिचाई के लिये दोरी चलाने में भी यह काम में आता है ।

जेरेखाक—क्रि० वि० [फ्रा० जेरेखाक] १ मिट्टी के नीचे । २ वस्त्र में [को०] ।

क्रि० प्र०—जाना ।—होना ।

जेरे नजर—क्रि० वि० [फ्रा० जेर + अ० नजर] दे० 'जेरनजर' ।

जेरेसाया—वि० [फ्रा० जेरेसायह्] किसी का भाश्रित । किसी की छाया में [को०] ।

'जेरे हिरासत—वि० [फ्रा० जेरे + अ० हिरासत] गिरफ्तारी में पड़ा हुआ [को०] ।

क्रि० प्र०—होना ।

जेरे हुकुमत—वि० [फ्रा० जेर + अ० हुकुमत] शासन के अधीन । मातहत देश [को०] ।

जेरोजवर—क्रि० वि० [फ्रा० जेरोजवर] नीचे ऊपर उबल पुपल । अस्तव्यस्त [को०] ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जेल^१—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दण्डित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रक्खे जाते हैं । कारागार । बंदी गृह ।

मुहा०—जेल काटना, जाना या भोगना = जेल में रहकर दण्ड भोगना ।

जेल^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेल] जगल । हेरानी या परेशानी का काम । उ०—खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सों लागे ।—मतिराम (शब्द०) ।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [अ० जेल + फ्रा० खानह्] कारागार । वि० दे० 'जेल' ।

जेलर—संज्ञा पुं० [अ०] जेलखाने का अध्यक्ष । जेल का प्रफसर ।

जेलोटीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस, हड्डी खाल आदि को उबालकर तैयार का हुई एक बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चित्रियों आदि की नकल करने के लिये पेज बनाने में होता है ।

विशेष—यह पशुओं को खिलाई भी जाती है । पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं । खूब साफ की हुई जेलोटीन से भोपघो की गोलियाँ भी बनाई जाती हैं ।

जेली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० जेली] घास या भुसा इकट्ठा करने का औजार । पाँचा ।

जेली^२—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की विदेशी मिठाई या गाढ़ी मीठी घटनी जो फलों आदि द्वारा चीनी के साथ उबालकर बनाई जाती है । इसे गाढ़ा या कड़ा कर देते हैं ।

जेलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेलरी' ।

जेलना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'जीमना' ।

जेलनार—संज्ञा स्त्री० [हि० जेलना] १ बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठकर भोजन करना । भोज । २ रसीई । मोनन ।

जेलर^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेलर] धातु या रस्सों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये शरीर में पहनी जाती है । गहना । आभूषण । अलंकार । आभरण ।

जेलर^२—पुं० [देश०] एक प्रकार का महोत्सव पक्षी जिसे जधी या विष मोनाल भी कहते हैं ।

विशेष—यह शिमले में बहुत पाया जाता है ।

जेलर^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जेलरी' ।

जेलरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जेलरा' ।

जेलरात—संज्ञा पुं० [फ्रा० जेलरात] जेलर का बहुवचन ।

जेलरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी ।

जेल^३—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १ जेठ मास । २ जेठ । पति का बड़ा भाई ।

जेल^४—वि० [सं० ज्येष्ठ] प्रयत्न । जेठ । बड़ा ।

जेल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० 'ज्येष्ठा' ।

जैह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जिह् (= चिन्ता), तुलनात्मक या] १. कमान की ढोरी में वह स्थान जो घाँस के पास लगाया जाता है और

जिसकी सीध में निशान रहता है। चिल्ला। उ०—तिथ कत कमनेती पढ़ी विन जेह मोह कमान। चित चल वेधे चुकति नहि, वक बिलोकनि वान।—बिहारी (शब्द०) २. दीवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह लेप जो कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम और चक्र सख असि, पचतत्व सूचक समुम्न। भर, इन पाँचों की गति हरि के बंस यही जगत की जेह। भस्म गंग लोचन अहि उमर पचतत्व भर भोलू, हर के बस पाँचड़ यह पंख जिनसे पिड डरेह।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहदु—संज्ञा स्त्री० [हि० जेत + घट] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

जेहन—संज्ञा पुं० [प० जेहल] [वि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहवदार—वि० [प० जेहल + फा० दार (प्रत्य०)] धारणा शक्ति-वाला। बुद्धिमान [को०]।

जेहरा—संज्ञा स्त्री० [?] पेर में पहनने का घुँघरूदार पाजैब नाम का जेवर।

जेहरि०—संज्ञा स्त्री० [हि० जेहर] दे० 'जेहर'। उ०—(क) पग जेहरि विछियन की ममकनि चलत परस्पर बांजत।—सूर (शब्द०)। (स) पग जेहरि जजीरनि जकन्यो यह उपमा कछु पावे।—सूर (शब्द०)। (ग) प्रमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि जगमगे पग युग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।

जेहली—संज्ञा स्त्री० [प० जहल] [वि० जेहली] हठ। जिद।

जेहली—संज्ञा पुं० [प० जेल] दे० 'जेल'।

जेहलखाना—संज्ञा पुं० [हि० जेलखाना] दे० 'जेलखाना' या 'जेल'।

जेहली—वि० [प० जेहल] जो समझाने से भी किसी बात की मलाई पुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। जिदी।

जेहि०—सर्व० [सं० यस्य, प्रा० जस्त, जिस, जेहि] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होय गएनायक करिवर वदन।—तुलसी (शब्द०)।

जेह—संज्ञा पुं० [प० जेहन] बुद्धि। धारणा शक्ति।

जैता—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] जेत का पेड़।

जै०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जय'।

जै०—वि० [सं० यावत्, प्रा० जाव] जितने। जिस सख्या में।

जैकरी०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकरी'।

जैकार०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैकारा०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयकार'।

जैगीषव्य—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महामास में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। अर्थात् देवत नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्हीं

के यहाँ निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और अर्थात् देवत सिद्धि प्राप्त कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से घुमते फिरते मिला। के रूप में देवत के पास आकर बैठे। देवत यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन तक पूजा करते हो गए और जैगीषव्य भटल भाव से बैठे रहे, कुछ बोलेवाले नहीं तब देवत ऊबकर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य से चकित होकर देवत जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार भटल भाव से बैठे पाया। इस र देवत आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी भनेक सिद्ध जैगीषव्य की सेवा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना मार्गों में स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रत लोक इत्यादि तक तो देवत पीछे गए पर इसके प्रागे वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। सिद्धों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सारस्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवत घर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य को ज्यों का त्यों बैठे देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके बाद वे जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योगशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैचंद०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जयचंद'।

जैजैकार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जयजयकार'।

जैजैवती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयजयवती] भैरव राग की एक रागिनी जो सवेरे गाई जाती है।

जैदक—संज्ञा पुं० [सं० जय + डक] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत०—संज्ञा स्त्री० [सं० जैत] विजय। जीत। फतह।

जैत०—संज्ञा पुं० [म०] जैतून वृक्ष। २ जैतून की लकड़ी।

जैत०—संज्ञा पुं० [म० जयन्ती] भगवत की तरह का एक पेड़।

विशेष—इसमें पीले फूल और लंबी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी होती है। पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

जैतपत्र०—संज्ञा पुं० [सं० जयति + पत्र] जयपत्रांजीत की सनेद।

जैतवार०—वि० [हि० जेत + वार (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजयी। विजेता। जैत सत्ता को सपूत राख सगरु को सिंह सोहे, जैतवार जगत करेरी किरवान की।—मति० प्र०,

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [म० जयतिश्री] एक रागिनी।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] एक प्रकार की घास जो खेती की फसल में खेतों में आस से आस लगती है।

जैतून—संज्ञा पुं० [म०] एक सदाबहार पेड़।

विशेष—यह परब सामा आदि से लेकर युरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है। इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है।

पत्तियाँ—इसकी नरकद की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे छोटी होती हैं। ऊपर की ओर हरी और नीचे की ओर सफेदी लिए होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फल कचरी के से होते हैं। पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थी। रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला मिर पर धारण करते थे। अरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिससे मुसलमान लोग अब तक इसकी लकड़ी की तसवीह (माला) बनाते हैं। इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं। फल पकने पर नीलापन लिए काले होते हैं। कच्चे फलों का—मुरब्बा और भचार पड़ता है। बीजों से तेल निकलता है। लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी धूप से चिटकती नहीं।

जैन—वि० [सं०] [वि० श्री० जैत्री] १. विजेता। विजयी। उ०—
चार चल चक्र चित्रित विचित्रित परम जगत विजयी जयति
कृष्ण को जैन रथ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४७।

यौ०—जैत्रय = विजयी।

२. सर्वोच्च (को०)।

जैन—संज्ञा पु० १. पारा। २. भोषण। ३. विजयी व्यक्ति। विजेता।
पुरुष (को०)। ४. विजय (को०)। ५. सर्वोच्चता (को०)।

जैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयती वृक्ष। जैत का पेड़।

जैन—संज्ञा पु० [सं०] १. जिन का प्रवर्तित धर्म। भारत का एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्ता नहीं माना जाता।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर या वर्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर युरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म बौद्ध धर्म के पीछे उसी के कुछ तत्वों को लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धों ने २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं। हिंदू धर्म के अनुसार जैनों ने भी अपने ग्रंथों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है पर प्र० जैकोबी आदि के आधुनिक ग्रन्थों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, सुनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पई आती है। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता आ रहा था उसी ने मार्ग चलेकर जैन धर्म का रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ अगो में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृतिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अगम, यो में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या महत्त्व को ही ईश्वर

मानते हैं। उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं। जिन २४ हुए हैं, जिनके नाम ये हैं—ऋषभदेव, भजितनाथ, समवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपाश्व, चंद्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, प्रातिनाथ, कुंभुनाथ, भरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पाश्वनाथ, महावीर स्वामी। इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है। शेष के विषय में अनेक प्रकार की भ्रमोक्ति और प्रकृतिविरोध कथाएँ हैं। ऋषभदेव की कथा भागवत आदि कई पुराणों में आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है। जिस प्रकार काल हिंदुओं में मन्वतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगो में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और भवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और भवसर्पिणी में चौबीस चौबीस जिन या तीर्थंकर होते हैं। ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान भवसर्पिणी के हैं। जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या भवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या भवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश अगों की रचना करते हैं। ये ही द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं—आचारंग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशांग, भक्तकृत दशांग, अनुत्तरोपपातिक दशांग, प्रश्न व्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद। इनमें से ग्यारह ग्रंथ तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अग अर्धमागधी प्राकृत में हैं और अधिक से अधिक बीस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं। इन अगमों या अगों को श्वेतावर जैन मानते हैं। पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते। उनके ग्रंथ संस्कृत में भलग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यथार्थ में जैन धर्म के तत्वों को सग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इंद्रभूति या गौतम थे जिन्हें कुछ युरोपियन विद्वानों ने भ्रमवश शाक्य मुनि गौतम समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतावर और दिगंबर। श्वेतावर ग्यारह अगों को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को। इसके अतिरिक्त श्वेतावर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कच्छु या लंगोट पहनाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रखते हैं। इन बातों के अतिरिक्त तत्व या सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। महत्त्व देव ने संसार को द्रव्यात्मिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्ता हर्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पीद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाच

के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकातवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्त्व और असत्त्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।

२ जैन धर्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—संज्ञा पुं० [हि० जैन] जैन मतাবलंबी।

जैनु^७—संज्ञा पुं० [हि० जेवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रहो जहँ जूठनि पावै ब्रजवासी के जैनु।—सूर (शब्द०)।

जैपत्र^७—संज्ञा पुं० [सं० जयपत्र]।

जैपाल—संज्ञा पुं० [सं०]

जैवो, जैवौ—क्रि० [हि०] दे० 'जाना'। उ०—बनत नही जमुवा की पेयो। सु घर स्याम घाघ पर ठाढ़े, कही कौन विध जैवो।—सूर०, १०। ७७६।

जैमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मणवूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी से मेज, कुर्सी आदि सजावट की चीजें बनाई जाती हैं।

२ खास राजा की सवारी का हाथी। ३ संगीत में एक ताल (को०)। ४ अयकार (को०)।

जैमाल^७—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाल] दे० 'जयमाल'।

जैमाला^७—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] दे० 'जयमाल'।

जैमिनि—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वमीमांसा के प्रवर्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

विशेष—कहते हैं, इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका अब केवल अश्वमेध पर्व ही मिलता है। यह अश्वमेध पर्व व्यास के अश्वमेध पर्व से बड़ा है, पर कई नई बातों के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।

जैमिनीय^१—वि० [सं०] १. जैमिनि संबंधी। २. जैमिनि प्रणीत। ३. जैमिनि का अनुयायी (को०)।

जैमिनीय^२—संज्ञा पुं० १. जैमिनि कृत ग्रंथ।

जैयट—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयद्—वि० [सं०] १. बड़ा भारी। घोर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयद् देवकूप। जैयद् आलम। ३. बहुत धनी। भारी मालदार। जैसे, जैयद् घसामी।

जैल^१—संज्ञा पुं० [सं० जेल] १. दामन। २. नीचे का स्थान। निम्न भाग। ३. पक्ति। सफ। समूह। ४. इलाका। हलका।

जै०—जेलदार।

जैल^२—अव्य० नीचे।

जैलदार—संज्ञा पुं० [सं० जेल + दार (प्रत्यय)] वह सरकारी ओहबेदार जिसके अधिकार में कई गाँवों का प्रबंध हो।

जैव^१—वि० [सं०] १. जीव संबंधी। २. बृहस्पति संबंधी।

जैव^२—संज्ञा पुं० १. बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि। २. पुष्य नक्षत्र। ३. जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कव (को०)।

जैवातृक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर। २. चंद्रमा। ३. ओषध। ४. किसान (को०)। ५. पुत्र (को०)।

जैवातृक^२—वि० १. [वि० जैव + तृक] दीर्घायु। २. दुबला पतला।

जैवात्रिक^७—संज्ञा पुं० [सं० जैवातृक] दे० 'जैवातृक'।

जैविक—वि० [सं०] दे० 'जैव'।

जैवेय—संज्ञा पुं० [सं०] जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कव (को०)।

जैसा^१—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—(क) धरतिहि जैस गगन प्रौं नहा। पलहि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोई मल जल धाव तुखारा। कोई जैस वैख गरिबारा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० २२६।

जैसन^७—वि० [हि० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—भय भाजु काज न राज ग्राम सों, घससि निजपुर जैसन।—द० सागर, पृ० १७।

जैसवार—संज्ञा पुं० [हि० जायम + वाला] कुरमियो और कजवारों का एक भेद।

जैसा^१—वि० [सं० यादृश, प्रा० जारिस, पेशाची जइस्तो वि० स्त्री० जैसी] १. जिस प्रकार का। जिस रूप रंग, प्राकृति या गुण का। जैसे,—(क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी होनी चाहिए।

मुहा०—जैसा चाहिए = ठीक। उपयुक्त। जैसा उचित हो। जैसा तैसा = दे० 'जैसे तैसे'। जैसे,—काम जैसा तैसा चल रहा है। जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमें किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेरफार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था, वैसा ही। जैसे—(फ) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रखा है, हाथ भी नहीं लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है, किसी ने नहीं खाया। (ग) वह साठ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ है। जैसे को तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा हो उसी प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिले, मिले नीच को नीच। पानी में पानी मिले, मिले कीच में कीच।—(शब्द०)।

२. जितना। जिस परिमाण का या मात्रा का। जिस कदर। (इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।) जैसे,—वैसा अच्छा यह कपड़ा है, वैसा वह नहीं है।

विशेष—सबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह वैसा शब्द के साथ आता है।

३. समान। सदृश। तुल्य। बराबर। जैसे,—उस जैसा आदमी हूँ मैं न मिलेगा।

जैसा^२—क्रि० वि० [हि०] जितना। जिस परिमाण या मात्रा में। जैसे,—जैसा इस लडके को याद है वैसा उस लडके को नहीं।

जैसी—वि० [हि०] 'जैसा' का स्त्री०। दे० 'जैसा'।

जैसे—क्रि० वि० [हि० जैसा] जिस प्रकार से । जिस ढंग से । जिस तरीके पर ।

मुहा०—जैसे जैसे = जिस क्रम से । ज्यों ज्यों । उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आता जायगा । जैसे तैसे = किसी प्रकार । बहुत यत्न करके । बड़ी कठिनाई से । उ०—खेर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आना । जैसे बने, जैसे हो = जिस प्रकार संभव हो । जिस तरह हो सके । उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आग्री । जैसे कवा घर रहे वैसे रहे विवेश = जिसके रहने या न रहने से काम में कोई भ्रतर न पड़े । निरर्थक व्यक्ति । जैसे मिया काठ, बेसी सन की दाढ़ी = अनुपयुक्त व्यक्ति के लिये अनुपयुक्त वस्तु ही उपयुक्त होती है ।

जैसी^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' । उ०—मर फरें पैयत सुख मांगी । जैसी वोइये तैसी लुनि कर्मन भोग भभागे । —सूर०, १।६१ ।

जैसी^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'जैसा' ।

जोग—सञ्ज्ञा पु० [सं० जोङ्ग] भ्रमर । भ्रमर ।

जोगक—सञ्ज्ञा पु० [सं० जोङ्गक] दे० 'जोग' ।

जोगट—सञ्ज्ञा पु० [सं० जोङ्गट] दे० 'दोहव' [को०] ।

जो'ताला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जोन्ताला] देवघान्य । पुतेरा ।

जों—क्रि० वि० [हि० ज्यों] ज्यों । जैसे । जिस प्रकार से । जिस तरह से । जिस भाँति ।

विशेष—दे० 'ज्यों' ।

जोंक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जल्लोक्] १ पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो विलकुल घोंघी के आकार का होता है और जीवों के शरीर में चिपककर उनका रक्त चूसता है ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश नालागों और छोटी नदियों प्रायः में, वृक्ष तट घासों में और बहुत घोंघी आतियाँ समुद्र में होती हैं । साधारण जोंक बड़े दो इंच लंबी होती है पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ठाई फुट तक लंबी होती है । साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और काँचापन मिले दूरे रंग का या स्याह होता है जिनपर या तो धारियाँ या बुँदकियाँ होती हैं । आँखें इसे बहुत सी होती हैं, पर काँटने और चूम्ने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है । आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती है—कागजी, मक्खनी और बैसिया । सुथूथ ने बारह प्रकार की जोंकें गिमाई हैं—कृष्णा, श्वेतवर्णा, ह्रस्ववर्णा, गोचरवर्णा, कर्दुरा और सामुद्रिक ये छह प्रकार की जोंकें जलजीवी और कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मृषिका, पुँडरीक-मुखी और मावरिका ये छह प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई गई हैं । जोंक शरीर के किसी स्थान में चिपककर तून चूसने लगती है और पेट में तून भर जाने के कारण सूब सूब उठती है । शरीर के किसी भाग में कोड़ा फुँसी या गिलटी

आदि हो जाने पर वहाँ का दुषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह सूब सूब पी लेती है तब उसे उँगलियों से तून कसकर दुह लेते हैं जिससे सारा तून उसकी गुदा के मार्ग से निकल जाता है । भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है । कभी कभी पशुओं के जन पीने के समय जन के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है ।

पर्या०—रक्तपा । जलूका । जलोरगी । तीक्ष्णा । बमनी । वेपनी । जलसपिणी । जनमूची । जलाटनी । जलाका । पटालुका । वेणीवेधनी । जलारिमका ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लपवाना ।

२. वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय । वह जो बिना अपना काम निकाले पिड़ न छोड़े । ३. सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छनना जिससे पीनी साफ की जाती है ।

जोंकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोंक] १ वह पशु जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है । २. मोहे का एक प्रकार का काँटा जो दो तख्तों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है । ३. एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी में होता है । ४. दे० 'जोंक' ।

जों जों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों ज्यों' ।

जों तों—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों त्यों' ।

मुहा०—जों तों करके = बड़ी कठिनाई से । उ०—गरज जों तों करके दिन तो काटा । —सल्लू (शब्द०) ।

जोंदरा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] 'जोंधरी' ।

जोंदरी—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'जोंधरी' ।

जोंधरा—सञ्ज्ञा पु० [सं० जूँण] १. बड़े कानों की ज्वार । २. जोंधरी का सूखा डठल । करपी । सकड़ा ।

जोंधरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जूँण] १. छोटी ज्वार । छोटे दानों की ज्वार । २. बाजरा (व्यक्ति) ।

जोंधिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जगोस्ता, हि० बोधिया] पौधनी । चद्रिका ।

जो^१—सर्व० [सं० य] एक सबववाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई सञ्ज्ञा या सर्वनाम के वर्णन में कुछ और वर्णन की योजना की जाती है । जैसे—(क) जो चोड़ा घापने भेजा या वह मर गया । (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे, वे गए ।

विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था । अब जो लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है । जैसे,—जो बोधना सो काटेगा । आजकल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का प्रयोग होता है ।

जो^२—सर्व० [सं० य] १. यदि । भ्रमर । उ०—(क) जो कभी समुझे प्रनु मोरी । नहिं निस्तार कल्प शत कोरी । —तुलसी (शब्द०) । (ख) जो बाँक कछु प्रनुचित करहों । गुह, पितु मातु मोद मन भरहीं । —तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस प्रयं में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है।
जैसे,—इसमें पानी देना हो तो भरी दे दो।

२. यद्यपि। मगरचे। (वच०)। उ०—पीरि पीरि कोतवार
जो बैठा। पेमरु लुबुध सुरग होइ पेठा।—जायसी (शब्द०)।

जोश्रंङा^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युवन्] जवान। युवा। उ०—जोश्रंङा धावहि
तुरय एवावहि बोलहि गाडिम बोला।—कीर्ति० पृ० ६४।

जोश्रंङा^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योजन, प्रा० जोश्रंङा] दे० 'योजन'।
उ०—सिधु परइ सत जोश्रंङो, खिवियां बीजलियाहि। सुरहुड
लोदर महिकियां, भीनी ठोवडियाहि।—ढोला०, दू० १६०।

जोश्रंङा^७—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जोवना'।

जोश्रंङा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री।
उ०—विरध भर विभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ
मुरख होइ रोगी तजै नाही जोइ।—सूर (शब्द०)।

जोश्रंङा^७—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

यौ०—जोइ सोइ = जो सो। जो जी मे प्राए। उ०—जसोदा
हरि पालने भुलावे। हसरवे दुलराइ मल्हावे जोइ सोइ कछु
गावे।—सूर०, १०।६६१।

जोश्रंङा^७—वि० [सं० योग्य, प्रा० जो, जोष, जोष] योग्य।
उचित। उ०—राजा राणी नूँ कहइ, बात विचारउ जोइ।
—ढोला०, दू० ७।

जोइन^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योनि, हिं० जोनि] दे० 'योनि'। उ०—
हीन लोक जोइन प्रोतारा। भावागमन में फिर फिर पारा।
—कबीर सा०, पृ० ८०६।

नोइसी^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—चित पितु
मारक जोग गनि भयो भये सुत सोगु। फिर हुलस्यो जिय
जोइसी समुझें जारज जोग।—बिहारी (शब्द०)।

जोउ—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

जोफ^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जोक] दे० 'जोंक'।

जोफ^७—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जोक] उ०—मंगे जीव तो घर बुला भेज
उसूँ। करे जोक फूलां सूँ, भर सेज कूँ।—दक्खिनी०,
पृ० ८७। २ रक्षान। चस्का। उ०—खुशियां इशरती जोक
दायम सो नित नित गहा के मंदिर में टिमटिम्प्या बजाय।—
दक्खिनी०, पृ० ७३।

जोखा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] जोखने का कार्य या भाव। तोल।

जोखता^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योपिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना^७—क्रि० सं० [सं० जुय (= जौखना)] तोलना। वजन करना।

जोखना^७—क्रि० प्र० [सं० जुय = जौखना] विचार करना।
सोचना। उ०—काहू साथ न तन पा, सकति मुए सब पोखि।
भोछ पूर तेहि जानव जो थिर भावत जोखि।—जायसी
(शब्द०)।

जोखमा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोखिम'।

जोखाना^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जोखना] १. लेखा। हिसाब।

विशेष—इस प्रयं में इसका व्यवहार बहुधा योगिक में ही होता
है। जैसे, लेखा जोखा।

२. तोलने का काम करनेवाला प्रादमी।

जोखा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योपा] स्त्री। लुगाई।

जोखाई^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जोखना] १ जोखने का काम। तोलाई।
२ जोखने या तोलने का भाव। ३. तोलने की मजदूरी।

जोखिडाँ^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० जोखिम] दे० 'जोखिम'। उ०—तुम
सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—
जायसी (शब्द०)।

जोखिम—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] १ भारी अनिष्ट या विपत्ति की प्राशका
प्रथवा संभावना। भोकी। जैसे,—इस काम में बहुत
जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमें
भारी अनिष्ट की प्राशका हो। जोखिम में पडना = जोखिम
उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

२ वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति भाने की संभावना
हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे,—तुम्हारी यह
जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआँ^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जोखना + आँ (प्रत्य०)] तोलनेवाला।
वया।

जोखुवाँ^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोखुआँ'।

जोखौँ^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोखिम'।

मुहा०—जान जोखौँ होना = प्राण का सकट में होना।

जोगंधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के
चलाए हुए अस्त्र से अपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति
श्री रामचंद्र जी को विश्वामित्र ने सिखलाई थी। उ०—
पद्मनाभ भर महानाभ दोउ दूदहु सुनाभा। ज्योति निकत
निराश विमल युग जोगंधर बड भाभा।—रघुराज (शब्द०)।

जोग^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योग'।

यौ०—जोगमुद्रा = योग की मुद्रा। जोग समाधि = योग की
समाधि।

जोग^७—अव्य० [सं० योग्य] १ के लिये। वास्ते। उ०—अपने जोग
लागि घर टेला। गुरु भएउँ प्रापु कीन्ह तुम चेला।—जायसी
(शब्द०)। २ कौ। के निकट। (पृ० हिं०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियों
के आरम्भिक वाक्यों में होता है। जैसे,—'स्वस्ति श्री माई
परमानंद जी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम
बाँचना।' बहुधा यह द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति के स्थान
पर काम में आता है। जैसे,—'इनमें से एक साड़ी माई कृष्ण-
चंद्र जी जोग देना।

जोगडा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० जोग+डा (प्रत्य०)] बना हुआ योगी।
पाखंडी। जैसे,—घर का जोगी जोगड़ा मान गाँव का सिद्ध।
(कहा०)।

जोगता^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योग्यता] दे० 'योग्यता'।

जोगन^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिन'।

जोगनिया^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोगिनी'।

जोगनिया^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिया'।

जोगमाया—सखा ली० [हि०] दे० 'योगमाया' ।

जोगवन्ता—क्रि० सं० [सं० योग + वन्ता (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न हो पाए । रक्षित रखना । उ०—जिवन मूरि त्रिमि जोगवन्त रहऊँ । दीप घाति नहि टारन कहऊँ ।—तुलसी (शब्द०) । २. सचित करना । बढोरना । ३. लिहाज रखना । भादर करना । उ०—ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मर्म कुमाउ ।—तुलसी (शब्द०) । ४. दर गुजर करना । जाने देना । कुछ ख्याल न करना । उ०—खेलत सग अनुज बालक नित जोगवत अनट भपाउ ।—तुलसी (शब्द०) । ५. पूरा करना । पूर्ण करना । उ०—काय न कलेस लेस लेत मानि मन की । सुमिरे सकुचि चचि जोगवत जन की ।—तुलसी (शब्द०) ।

जोगसाधन—सखा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या ।

जोगा—सखा पुं० [शब्द०] अफीम का खूदब । वह मेल जो अफीम को छानने से बच रहती है ।

जोगानल—सखा ली० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग । उ०—हर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी—तुलसी (शब्द०) ।

जोगिन्द—सखा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज । योगिश्रेष्ठ । २. महादेव (हि०) ।

जोगि—सखा ली० [हि० योगी] दे० 'योगी' ।

जोगिन—सखा ली० [सं० योगिनी] १. योगी की स्त्री । २. विरक्त स्त्री । साधुनी । ३. पिशाचिनी । ४. एक प्रकार की रणदेवी जो रण में कटे मरे मनुष्यों के हड्डि मुंडों को देखकर भ्रान्तित होती है और मुंडों को गेंद बनाकर खेलती है । ५. एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं । ६. दे० 'योगिनी' ।

जोगिनिया—सखा ली० [देश०] १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार । २. एक प्रकार का घाम । ३. एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल वर्षों ठहर सकता है ।

जोगिनी—सखा [सं० जोगिनी] १. दे० 'योगिनी' । उ०—भूमि प्रति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस्र फन रोप सो सीस कांधो ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'जोगिन' ।

जोगिनी—सखा ली० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोहण] जगृन् । खद्योत ।

जोगिया—वि० [हि० जोगी + इया (प्रत्य०)] १. जोगी संबंधी । जोगी का । जैसे, जोगिया भेष । २. गेरू के रंग में रंगा हुआ । गेरिक । ३. गेरू के रंग का । मटमैलापन लिए लाल रंग का ।

जोगिया—सखा पुं० [हि०] दे० १. 'जोगडा' । दे० २. 'जोगी' । ३. एक रागिनी ।

जोगीन्द्र—सखा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज । बड़ा योगी । योगिश्रेष्ठ । २. शिव । महादेव ।

जोगी—सखा पुं० [सं० योगिन्] १. वह जो योग करता हो । योगी । २. एक प्रकार के भिक्षु जो सारंगी लेकर भट्टहरि के गीत गाते और भीख मांगते हैं । इनके कपड़े गेरू रंग के होते हैं ।

जोगीडा—सखा पुं० [हि० जोगी + डा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का चलता गाना जो प्रायः बसंत ऋतु में ढोलक पर गाया जाता है । २. गाने बजानेवालों का एक समाज ।

विशेष—इस समाज में एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं । इनमें गानेवाले सबके का भेष प्रायः योगियों का सा होता है और वह कुछ भलकार आदि भी पहने रहता है । इसका गाना देहातो में सुना जाता है ।

३. इस समाज का कोई आदमी ।

जोगीश्वर—सखा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' ।

जोगीस्वर—सखा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' । उ०—जोगी-स्वरन के ईस्वर राम । बहुरथो जदपि आत्माराम ।—तुलसी प्र०, पु० ३२१ ।

जोगेश्वर—सखा पुं० [सं० योगेश्वर] १. श्रीकृष्ण । २. शिव । ३. देवहोत्र के पुत्र का नाम । ४. योग का अधिकारी । योग का ज्ञाता । सिद्ध योगी ।

जोगेसर—सखा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' । उ०—यूँ कमधज्ज धरे धूँ मवर । ज्यूँ गगा मेले जोगेसर ।—रा० रू०, पु० ७६ ।

जोगेस्वर—सखा पुं० [हि०] दे० 'योगेश्वर' । उ०—जोग मार्ग जोगेंद्र जोगि जोगेस्वर जानें ।—पोद्दार अभि० प्र०, पु० ३८४ ।

जोगोटा—वि० [हि० जोगी] जोग या योग करनेवाला ।

जोगोटा—सखा पुं० [हि० जोगोटा] दे० 'जोगोटा' ।

जोगौटा—सखा पुं० [सं० योगपट्ट] १. योगी का वस्त्र । कपीन । लंगोटा । २. झोली । उ०—मेखल सिंगी चक्र चंचारी । जोगौटा रदाख अधारी । कंधा पहिरि डड कर गहा । सिद्ध होइ कहें गोरख कहा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० २०५ ।

जोग्य—वि० [हि०] दे० 'योग्य' ।

जोजन—सखा पुं० [हि०] दे० 'योजन' । उ०—कह मुनि तात भएउ मंधियारा । जोजय सत्तारि नगर तुष्टहारा ।—मानस, १।५५ ।

जोजनगंधा—सखा ली० [हि०] दे० 'योजनगंधा' ।

जोट—सखा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा । जोड़ी । २. साथी । संधाती ।

जोट—वि० समान । बराबरी का । मेल का ।

जोटा—सखा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा । युग । उ०—(क) ए दोऊ दशरथ के डोटा । बाल मरननि के कल जोटा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन जोटा ।—तुलसी (शब्द०) । २. टाट का बना हुआ एक बड़ा दोहरा थैला जिसमें घनाज भरकर वेलों पर लादा जाता है । गोना । खुरजी ।

जोटिंग—सखा पुं० [सं० जोटिङ्ग] १. महादेव । शिव । २. प्रत्यत कठिन तपस्या करनेवाला साधक [जोग] ।

जोटी—सखा ली० [हि० जोट] १. जोड़ी । युग्मक । उ०—काँचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी । सूरदास

चिरजीवदृष्टि हरि हलधर की जगदी । —सूर (चन्द०) । २ बराबरी का । जोड़ का । समान । ३ जो गुण भावि में किसी दूसरे के समान हो । जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो ।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं०] बधन [क्रो०] ।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ने की क्रिया । २ गणित में कई संख्याओं का योगफल । वह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने से निकले । मीजान । ठीक । टोटल ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

३ वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकड़े जुड़े भ्रयवा मिले हों । जैसे, कपड़े में सिलाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या पाली आदि का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ उखटना = जोड़ का ढीला पड़ जाना । सधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ भ्रलग हो जायें ।

४ वह टुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय । जैसे,—यह चांदनी कुछ छोटी है इसमें जोड़ लगा दो । ५ वह चिह्न जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण सधि स्थान पर पड़ता है । ६ शरीर के दो भ्रयवों का सधि स्थान । गाँठ । जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पौर आदि ।

मुहा०—जोड़ उखटना = किसी भ्रयव के मूल का भ्रपने स्थान से हट जाना । जोड़ बैठना = भ्रपने स्थान से हटे हुए भ्रयव के मूल का भ्रपने स्थान पर आ जाना ।

७ मेल । मिलान । ८ बराबरी । समानता । जैसे,—तुम्हारा शरीर उनका कोन जोड़ है ?

विशेष—प्रायः इस भ्रय में इस शब्द का रूप जोड़ का भी होता है । जैसे,—(क) यह गमला उसके जोड़ का है । (ख) इसके जोड़ का एक लप ले आओ ।

९ एक ही तरह की भ्रयवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें । जोड़ा । जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (घोटी और दुपट्टे) का जोड़ ।

मुहा०—जोड़ बाधना = (१) कुशती के लिये बराबरी के दो पहलवानों को चुनना । (२) किसी काम पर भ्रलग भ्रलग दो दो भादमियों को नियत करना । (३) चौपड़ से दो गोठियाँ एक ही घर में रखना ।

१०. वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदिवाला । जोड़ । ११ पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड़ कपड़े हैं । १२ किसी वस्तु या कार्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री । जैसे, पहनने के सब कपड़ों या भ्रग प्रत्यग के आभूषणों का जोड़ । १३. जोड़ने की क्रिया या भाव । १४ छन । दाय ।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) दाय पँच । छल कपट । (२) किसी काय विशेष युक्ति । ढग ।

विशेष—बहुधा इस भ्रय में इसके साथ 'लगाना' । 'भिठना' क्रियाओं का व्यवहार होता है ।

१५ दे० 'जोड़ा' ।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ + ती (प्रत्य०)] १. गणित में कई संख्याओं का योग । जोड़ । २ गणना । गिनती । शुमार ।

जोड़ना—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] १ जोड़ने की क्रिया या भाव । २. वह पदार्थ जो दही अमाने के लिये दूध में डाला जाता है । जावन । जामन ।

जोड़ना—क्रि० सं० [सं० जुड़ (= बाधन) या सं० युक्त, प्रा० जुह] १ दो वस्तुओं को सीकर, मिलाकर, चिपकाकर भ्रयवा इसी प्रकार के किसी शरीर उपाय से एक करना । दो चीजों को मजदूती से एक करना । जैसे, लबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपड़ा जोड़ना । २ किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिला कर एक करना । ३. द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना या स्थापित करना । जैसे, भ्रदर जोड़ना, इंट या पत्थर जोड़ना । ४. एकत्र करना । इकट्ठा करना । सग्रह करना । जैसे, रूप जोड़ना । कुनबा जोड़ना, सामग्री जोड़ना । ५. कई संख्याओं का योगफल निकालना । मीजान लगाना । ६ वाक्यों या पदों आदि की योजना करना । वर्णन प्रस्तुत करना । जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफाव जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना) । ७ प्रज्वलित करना । जलाना । जैसे, भाग जोड़ना, दीआ जोड़ना । ८ संवध स्थापित करना । ९. संवध करना । संवध उत्पन्न करना । जैसे, दोस्ती जोड़ना । † १० जोटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

जोड़ला—वि० [हि० जोड़ा + ला (द्रव्य०)] एक ही गर्म से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे । यमज ।

जोड़वाँ—वि० [हि० जोड़ा + वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में शरीर एक ही गर्म से उत्पन्न हुए हो । यमज ।

जोड़वाई—संज्ञा पुं० [हि० जोड़वाँ] १ जोड़वाने की क्रिया । २ जोड़वाने का भाव । ३ जोड़वाने की मजदूरी ।

जोड़वाना—क्रि० सं० [हि० जोड़ना का प्रे० रूप] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना । जोड़ने का काम दूसरे से कराना ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] दो समान पदार्थ । एक ही सा दो चीजें । जैसे, घातियों का जोड़ा, तस्वीरों का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है । जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे ।

२ दोनो पैरों में पहनने के झूते । उपानह । ३ एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े । जैसे, भ्रगे शरीर पेजामे का जोड़ा, कोट शरीर पतलून का जोड़ा, लहुंग शरीर मोडनी का जोड़ा । ४ पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—(क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं । (ख) हम तो छोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी हो देर थी ।

यौ०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में वर पहनता है । (२) पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक ।

क्रि० प्र०—पहनना ।—बढ़ाना ।

५ स्त्री और पुरुष । जैसे, वर कन्या का जोड़ा । ६ नर और मादा (केवल पशु और पक्षियों आदि के लिये) । जैसे, मारस का जोड़ा कबूतर का जोड़ा, कुत्ते का जोड़ा ।

विशेष—अक ५ और ६ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं ।
क्रि प्र०—भिन्नाना ।—लगाना ।

मुहा०—जोड़ा खाना = समोग करना । मैथुन करना । जोड़ा खिलाना = समोग में प्रवृत्त करना । मैथुन कराना । जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना ।

७ वह जो बराबरी का हो । जोड़ा । ८. दे० 'जोड़' ।

जोड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ना + भाई (प्रत्य०)] १ दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव । २ जोड़ने का मजदूरी । ३ दोवार आदि बचाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रखकर जोड़ने की क्रिया । ४ घातुमो, पीतल, ताँबा, लोहा आदि जोड़ने का काम ।

जोड़ासंदेश सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो छेने से बनती है ।

जोड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] १ दो समान पदार्थ । एक ही सी दो चीजें । जोड़ा जैसे, साल की जोड़ी, तस्वीरों की जोड़ी, क्रिडाओं की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी ।

क्रि० प्र०—मिलाना ।—लगाना ।

यौ०—जोड़ीदार = जोड़वाला । जो किसी के साथ में हो । (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं ।)

विशेष—जोड़ी में प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं । जैसे,—किसी एक तस्वीर को उसी तरह की दूसरी तस्वीर की 'जोड़ी' कहेंगे ।

२ एक साथ पहनने के सब कपड़े । पूरी पोशाक । जैसे,—उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं । ३ स्त्री और पुरुष । जैसे वर वधू की जोड़ी । ४ नर और मादा (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये) । जैसे, घोड़ों की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी ।

विशेष—अक ३ और ४ के अर्थ में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं ।

५ दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी । वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हो । जैसे,—जब से समुगल का माल आपको मिला है तबसे आप जोड़ा पर निकलते हैं । ६ दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं ।

क्रि० प्र०—फेरना ।—मोजना ।—हिलाना ।

यौ०—जोड़ी की बैठक = बत्त बैठकी (कसरत) जो मुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेककर की जाती है । मुगदरों के मभाव में दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है ।

७. मजोरा । ताल ।

यौ०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवालों के साथ जोड़ी या मैथीरा बजाता हो ।

८ वह जो बराबरी का हो । समान धर्म या गुण आदि वाला । जोड़ ।

जोड़ूआ—सञ्ज्ञा पु० [हि० जोड़ा + उआ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चाँदी वा एक प्रकार का गहना ।

विशेष—इसमें एक सिकरी में छोटे बड़े दो छल्ले लगे रहते हैं । बड़ा छल्ला अंगूठे में और छोटा सबसे छोटी उँगली में पहना जाता है । सिकरी बीच की उँगलियों के ऊपर रहती है ।

जोड़ू—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोड़' ।

जोत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोतना अथवा सं० योज्, प्रा० जोत] १. वह चमड़े का तस्गा या रस्सी जिसका एक सिरा घोड़े, बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज में बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं । जैसे, एकके की जोत, गाड़ी की जोत, मोट या चरसे की जोत ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।—लगाना ।

२ वह रस्सी जिसमें तराजू की डंडी से बंधे हुए उसके पत्ले लटकते रहते हैं । ३ वह छोटी सी रस्सी या पगड़ी जिसमें बैल बांधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआड़े में बाँध दी जाती है । ४. उतनी भूमि जितनी एक घसामी को जोतने बोन के लिये मिली हो । ५ एक क्रम या पलटे में जितनी भूमि जोती जाय ।

जोता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १ दे० 'ज्योति' । २ दे० 'जोति' ।

जोत^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] समतल पहाड़ी । उ०—व्यापि वहाँ पहुँचने के लिये कुल्लू से दो जबर्दस्त जोते पार करनी पड़ेगी ।—फिन्नर०, पु० ६४ ।

जोत^४—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—ग्राम, पुहवै नरेश व्यास जग जोत बुलाइय । लगन निद्रि प्रनुज सुत नाम चिह्न चक्क चलाइय ।—पु० रा०, १ । ६८६ ।

जोतक^५—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—माता पूछे पड़िता जोतक पढहि भनेक । जो विधि ने लिख पाया को बूझै न जान विवेक ।—प्राण०, पु० २११ ।

जोतखी^६—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—जोतखी जी ठीक कहते हैं । गाँव के ग्रह अच्छे नहीं हैं ।—मैला०, पु० २६ ।

जोतगी—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' । उ०—तब बुनाय सब जोतगी कही सुपनफल सत्य । दिवस पच के अतर, होय सु दिल्लीपत्त ।—पु० रा०, ३ । ११ ।

जोतड़िया^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोत] दे० 'ज्योति' । उ०—ऊँची पउडी लै गगनतरि चढ़ीमा । अनहद बीचाय चमकी जोतड़िया ।—प्राण०, पु० २२३ ।

जोतदार—सञ्ज्ञा पु० [हि० जोत + दार (प्रत्य०)] वह घसामी जिसे जोतने बोन के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो ।

जोतना—क्रि० सं० [सं० योजन, पा० युक्त, प्रा० जुत + हि० ना (प्रत्य०)] १ जग, गाड़ी, कोल्लू, चरसे आदि को चलाने के घोड़े आदि पशु बाँधना । जैसे,—घोड़ा राय आदि को उनमें घोड़े बैल आदि को तैयार करना । जेग, गाड़ी जोतना । २ किसी काम में लगाना । ४ हल

खेती के लिये जमीन की मिट्टी खोदना । हल चलाना जैसे, खेत जोतना ।

जोतनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोत या जोतना] १ वह छोटी रस्सी जो जुए में जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों ओर बँधी होती है । २ जुताई । जोतने का काम ।

जोतनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० ज्योतिषी

जोसँत—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह । (कुम्हार) ।

जोता—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोतना] १ जुगाड़े में बँधी हुई वह पतली रस्सी जिसमें बैलों की गरदन फँसाई जाती है । २ जुलाहों की परिभाषा में वे दोनों डोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखनेवाली कमाँची या भँजनी के दोनों सिरों पर बँधी हुई होती हैं । इन दोनों डोरियों के दूसरे सिरे आपस में भी एक दूसरे से बँधे और पीछे की ओर ताने होते हैं । ३ करघे में सूत की वह डोरी जो बरौंछी में बँधी रहती है । ४ वह बहुत बड़ी धरन या शहतीर जो एक ही पक्ति में लगे हुए कई खमों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है । ५ वह जो हल जोतता हो । खेती करनेवाला । जैसे, हरजोता ।

जोताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोतना + भाई (प्रत्यय)] १ जोतने का काम । २. जोतने का भाव । ३. जोतने की मजदूरी ।

जोताव—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० जोताव ।

जोति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. धी का वह धिया जो किसी देवी या देवता प्रादि के प्रागे प्रथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है ।

क्रि० प्र०—जलाना ।—वारना ।

यौ०—जोतिभोग=किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने प्रादि की क्रिया ।

२ दे० 'ज्योति' ।

जोति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] जोतने बोलने योग्य भूमि । उ०—एषे तजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिए ।—प्रिया० (शब्द०) ।

जोतिक^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' । उ०—विद्या पढ़ेउं करन समीता । सामुद्रिक जोतिक गुन गीता ।—माधवानल०, पृ० २०८ ।

जोतिखी^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोतिग^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ ज्योतिष शास्त्र । उ०—न इह बात जोतिग घटे मनस धूम थिरताव ।—पृ० २०, ३१३ । २ ज्योतिषी । उ०—जोगनैर जोतिग कहै, प्रभु सु होय प्रयुराव । पृ० २०, ३१३ ।

जोतिमय^६—वि० [हि०] दे० 'ज्योतिर्मय' । उ०—रतनपुत्र उपनाथ रतन जिमि ललित जोतिमय ।—मति० ग्रं०, पृ० ४१४ ।

जोतिलिग—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिलिग' ।

जोतिवंत^७—वि० [सं० ज्योतिष] ज्योतिष्युक्त । चमकदार । उ०—

पावक पवन मणि पद्मग पतग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं ।—केशव (शब्द०) ।

जोतिष^८—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' ।

जोतिषटोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषटोम] दे० 'ज्योतिषटोम' ।

जोतिषी^९—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोतिस^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिष' ।

जोतिस्ना^{११}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्योत्स्ना' ।—अने०, पृ० १०१ ।

जोतिहारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोतना] जोतनेवाला किसान । जोता ।

जोती^{१२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] १ दे० 'ज्योति' । उ०—बदन पै सलिल कन जामगास जोती । इदु सुधा तामे मर्तो धमी मय मोती ।—नद० ग्रं०, पृ० ३४७ । २. दे० 'जोति' ।

जोती^{१३}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोतना] १ तराजू के पत्तों की डोरी जो डाली से बँधी रहती है । जोत । २ घोड़े की रास । लगाम । ३ चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हुर्ये में बँधी रहती है । इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है । ४ वे रस्सियाँ जिनसे खेत में पानी खींचने की दोरी बँधी रहती है ।

जोत्स्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना' ।

जोध^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योद्धा' । उ०—कबि लखन प्रबला कहत, सबसा जोध कहत ।—हम्मीर रा०, पृ० २७ ।

जोधन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बँधी रहती हैं ।

जोधा^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'योद्धा' । उ०—(क) प्रगट कपाट बड़े दीने है बहु जोधा रखवारे ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहाँ करन लागे सराई ।—सूर (शब्द०) ।

जोधा^{१६}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] जोता नाम की रस्सी जो जुगाड़े में बँधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फँसाए जाते हैं ।

जोधार^{१७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योद्धा] योद्धा । शूर । उ०—नकं कुह मे ना पड़ूँ जीतू मन जोधार । ऐसी मुक्त उपदेश दी सतगुर कर उपकार ।—राम० धर्म०, पृ० ३१३ ।

जोनी^{१८}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि' ।

जोनराज—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] राजतरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने स० १२०० के बाद का हाल लिखा है । इनका लिखा हुआ 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक ग्रंथ और 'किरातार्जुनीय' की एक टीका भी है ।

जोनरी^{१९}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ज्वार नामक पद्म ।

जोना^{२०}—क्रि० स० [हि०] देखना । उ०—रश्मिारी डोलत कहै करहुत भाछुत जोह ।—ढोला०, पृ० ३०६ । (ख) प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ में पैठत हो है दसा यह जो ले ।—पद्याकर ग्रं०, पृ० १७३ ।

जोनि^{२१}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि' । उ०—जहि जेहि जोनि करम बस भ्रमही । तहें तहें ईसु देउ यह हमही ।—मानस, २।२४ ।

जोनी०—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'योनि' । उ०—कवन पुरुष जोनी बिना कवन मोत बिना काल । —रामानन्द०, पु० ३३ ।

जोन्हा०—सच्चा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएह] १ जुन्हाई । चद्रिका । चाँदनी । ज्योत्स्ना । २ चद्रमा ।

जोन्हरी०—सच्चा स्त्री० [वंशी जोएणलिमा] ज्वार नामक अन्न ।

जोन्हाई०—सच्चा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोएहा] १ चद्रिका । चाँदनी । चद्रज्योति । २. चंद्रमा ।

जोन्हारी०—सच्चा पु० [हि०] ज्वार नामक अन्न ।

जोप०—सच्चा पु० [हि०] दे० 'ग्रूप' ।

जोपै०—अव्य० [हि० जो + पर अथवा सं० यद्यपि] १ यदि । अगर । २ यद्यपि । अगरचे ।

जोफ—सच्चा [प्र० जोफ] १ बुढ़ापा । बुढ़ावस्था । २ सुस्ती । निर्व्रमता । कमजोरी । नाताकती ।

जौ०—जोफ जिगर = (१) जिगर का ठीक ठीक काम न करना । (२) जिगर या यकृत की कमजोरी । जोफ दिमाग = दिमाग की कमजोरी । जोफ मेदा = पाचन की कमजोरी । मंदाग्नि । मजीर्य ।

जोवन—सच्चा पु० [सं० यौवन] १ युवा होने का भाव । यौवन । उ०—बन जोवन अभिमान अल्प जल कहै कूर आपुनी बोरी । सूर (शब्द०) ।

मुहा०—जोवन सूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का प्रानंद सेना ।

२ सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्यकाल की सुंदरता । रूप । खूबसूरती ।

क्रि० प्र०—छाना ।—पर घाना ।

मुहा०—जोवन उतरना = युवावस्था समाप्त होना । जोवन चढ़ना = युवावस्था का सौंवर्य घाना । जोवन ढलना = दे० 'जोवन उतरना' ।

१ रीनक । बहार । ४. कुच । स्तन । छाती । उ०—खूब दुहै जोवन सौं लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उभरना ।—ढलना ।

५. एक प्रकार का फूल ।

जोवना०—क्रि० सं० [हि० जोवना] दे० 'जोवना' ।

जोम—सच्चा पु० [प्र० जोम] १ उमग । उरसाह । २ जोश । उद्वेग । आवेश । ३ गहकार । अभिमान । घमड ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

४. धारणा । खयाल (को०) । ५. प्रबलता (को०) । ६. समूह (को०) ।

जोय०—सच्चा स्त्री० [सं० जाया] जोरू । स्त्री । पत्नी ।

जोय—सर्व० पु० [हि०] जो । जिस ।

जोयना०—क्रि० सं० [हि० जोड़ना (जैसे, दीया जोड़ना)] १ बांधना । जलाना । उ०—चौसठ दीया जोय के चौदह चढा माहि । तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाहि ।—कबीर (शब्द०) । २ दे० 'जोवना' ।

जोयसी०—सच्चा पु० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी' ।

जोर—सच्चा पु० [फा० जोर] बल । शक्ति । ताकत ।

क्रि० प्र०—घावमाना ।—देखना ।—दिखाना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) प्रयत्न करना । कोशिश करना । जोर दूटना = बल घटना या नष्ट होना । प्रभाव कम होना । शक्ति घटना । जोर डालना = बोल डालना । दे० 'जोर देना' । जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) शरीर आदि का) बोल डालना । भार देना । जैसे,—इस जंगले पर जोर मत दो नहीं तो वह टूट जाएगा । किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना । किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना । जैसे,—उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चलें । किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना । किसी बात के लिये हठ करना । जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना । जैसे,—मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में आपको बहुत फायदा होगा । जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग करना । ताकत लगाना । (२) बहुत प्रयत्न करना । खूब कोशिश करना । जैसे,—उन्होंने बहुतेरा जोर मारा पर कुछ भी नहीं हुआ ।

जौ०—जोर जुल्म = अत्याचार । उपादत्ती ।

२ प्रबलता । तेजी । बढती । जैसे, माँग का जोर, बुखार का जोर ।

विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ में 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उठाकर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उठाकर क्रिया की तरह करते हैं ।

मुहा०—जोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना । तेज होना । जैसे,—(क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी । (ख) इस फोड़े ने बहुत जोर बाँधा है । (२) दे० 'जोर में घाना' । जोर करना या मारना = प्रबलता दिखलाना । जैसे,—(क) लोग का जोर करना । काम का जोर करना । (ख) आज आपकी मुहब्बत ने जोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं । जोर में घाना = ऐसी स्थिति में पहुँचना जहाँ घाना-यास ही उन्नति या वृद्धि हो जाय । जोर या जोरो पर होना = (१) पूरे बल पर होना । बहुत तेज होना । जैसे,—(क) आजकल शहर में चेचक बहुत जोरो पर है । (ख) इस समय उन्हें बुखार जोरो पर है । (२) खूब उन्नत वस्था में होना । ३ वश । अधिकार । इस्तिवार । काबू । जैसे,—हम क्या करें, हमारा उनपर कोई जोर नहीं है ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—जताना ।—होना ।

मुहा०—जोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जत लाते हुए विशेष आग्रह करना । दबाव डालना ।

४ वेग । आवेश । झोंक ।

मुहा०—जोरो पर = बड़े वेग से। बड़ी तेजी से। जैसे, गाड़ी का जोरो पर जाना, नदी का जोग पर बहना।

५ भरोसा। भ्रामरा। महारा। जैसे,—भाप किसके जोर पर कूदते हैं ?

मुहा०—शतरज में किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका मोहरा भी तुरत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहर को जोर पहुँचाया गया है। शतरज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह स्वयं भी मारा जा सके। किसी के जोर पर कूदना = किसी की अपनी सहायता पर देखकर अपना बल दिखाना। बेजोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो।

६ परिश्रम। मेहनत। जैसे,—घंघेरे में पढ़ने से आँखों पर जोर पड़ता है।

क्रि० प्र०—पठना।

७ व्यायाम। कसरत।

जोरई—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़] १ एक ही में बँधे हुए लंबे लंबे और मजबूत दो घाँस अथवा सिरों पर मोटी रस्सी का एक फंदा लगा रहता है और जिसका उपयोग कोल्हू घोने के समय जाठ को रोकने और उसे कोल्हू में से निकालकर अलग करने में होता है।

विशेष—जाठ का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है और तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठाकर कोल्हू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है।

२ एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है।

विशेष—चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है।

जोरदार—वि० [फा० जोरदार] जिसमें बहुत जोर हो। जोरवा।

जोरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोड़ना'। उ०—जोरन दे तब दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० १।

जोरना—क्रि० सं० [हि०] १ दे० 'जोड़ना'। उ०—रति रख जानि धनग नृपति भाप नृपति राजति बल खोरति।—सूर (शब्द०)। २ जोतना। जानवर को जुए में नौबत। ३ किसी दूटी बीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना। उ०—जो प्रति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई।—मुलमी (शब्द०)।

जोरशोर—संज्ञा पुं० [फा० जोरशोर] बहुत अधिक जोर। बहुत अधिक प्रबलता या प्रचंडता। जैसे,—कल शाम को जोर शोर से आँधी आई थी।

जोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोड़ा'।

जोराजोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जबरदस्ती। धीगा धीमी।

जोराजोरी—क्रि० वि० जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जोराघर—वि० [फा० जोराघर] बलवान्। ताकतवर। जबरदस्त।

जोराघरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोराघरी] १ जोरावर होने का भाव। २ जबरदस्ती। धीगाधीमी।

जोरिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गंधबिलाव।

जोरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १ समानता। समता। दे० 'जोरी'। उ०—स्वर्ग सूर ससि करै प्रजोरी। तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी।—जायसी (शब्द०)। २ सहेली। साकिन्। दे० 'जोखी'। उ०—पूछत है रक्मिणी इनमे को वृषभानु किजोरी। वारेक हमे दिखाओ अपने बालपने की जोरी।—सूर (शब्द०)। ३ दे० 'जोड़ी'।

जोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जोराघरी। जबरदस्ती। उ०—जोरी मारि भजत उतही को जात यमुन के तीर। इक धावत पोछे उनही के पावत नहीं अधीर।—सूर (शब्द०)।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ा] स्त्री। परनी। भार्या। घरवाली।

मुहा०—जोरू का गुलाम = स्त्री का भक्त या उसके वश में रहने वाला। स्त्रैण।

यौ०—जोरू जाता = गृहस्थी। परिवार। घर बार।

जोल—संज्ञा पुं० [हि०] मेल। मिलाप।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः मेन के साथ होता है। जैसे, मेल जोल।

जोल—संज्ञा पुं० [हि० जोड़] समूह। सघ। जमघट। उ०—फटा करी बारिज मुख ऊपर, बिके पदपद जोल। सूरस्याम कि ये उतकरपा, तम कीन्ही बिनु मोल।—सूर०, १०।१७६२।

जोलहटो—संज्ञा स्त्री० [हि०] जुलाहों की बस्ती।

जोलहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाहला—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला। अग्नि। आग। उ०—रोग रोग पावक शिखा जगी जोलाहन जोर।—रघुराज (शब्द०)।

जोलाहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाही—संज्ञा स्त्री० [हि०] १ जोलाहों की स्त्री। उ०—काशी में जोलाहा जोलाही हुए।—कलर म०, पृ० १०३। २ जोलाहों का काम या घधा।

जोली—संज्ञा स्त्री० [हि० जोड़ी] वह जो गंगावरी का हो। जोड़। जोड़ी।

यौ०—हमजोली।

जोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] आनी या किश्मिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकता बिस्तर।—(लण०)।

विशेष—इसके दोनों सिरों पर अदबाल की तरह कई रस्सियाँ होती हैं। दोनों जोर की ये रस्सियाँ दो कठियों में बँधी होती हैं और दोनों कठियाँ दो तरफ खूंटियों आदि में लटका दी जाती हैं। बीच का बिस्तरवाला हिरसा लटकता रहता है जिसपर आदमी सोते हैं। इसका व्यवहार प्रायः जहाजों लोग जहाजों में करते हैं।

२. वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों में पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती है। —(लश०)। ३ एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के एक सिरे पर उसकी लहो से बनाई जाती है।

जोषना(७) —क्रि० सं० [सं० जुषण (= सेवन), अथवा प्रा० जो (जोव = देखना)] १ जोहना। देखना। तकना। २ हूँकना। तलाश करना। ३ आसरा देखना। रास्ता देखना। उ० — रेणु बिहाणी जोवतां दिन भी बीतो जाय। रामदास बिरहिन भुरे पीव न पाया जाय। —राम० धर्म०, पृ० १६३।

जोषसी(७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ० — सु दिन कहे रुखा जोवसी। चतुर नागर ईसज प्राण ज्यों चद। —वी० रासो०, पृ० ६।

जोवारी —सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है।

विशेष —यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसीलिये लोग इसे पालते और बोलना सिखाते हैं। यह शत्रुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घुमा करती है। फूलों और फलनों को बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है। इसके अड़े बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

जोश —सञ्ज्ञा पुं० [प्रा०] १ किसी तरल पदार्थ का घाँच या गरमी के कारण उबलना। उफान। उबाल।

मुहा० —जोश खाना = उबलना। उफलना। खोलना। जोश देना = पानी के साथ उबालना। जैसे, — इस दवा का जोश देकर पीओ। जोश मारना = उबलना। मथना।

यौ० —जोशाँदा = क्वाथ। काढ़ा।

२. चित्त की तीव्र धृति। मनोवेग। आवेश। जैसे, — उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डाली।

मुहा० —जोश खाना = आवेश में आना। जोश देना = आवेश में लाना या करना। जोश मारना = उमड़ना। जोश में आना = उत्तेजित हो उठना। आवेश में आना। खून का जोश = प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो। जैसे, — खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये उठ दौड़े।

यौ० —जोश खरोश = अधिक आवेश। जोशे जवानी = जवानी का जोश। जोशे जुनून = पागलपन का दौर। उन्माद का दौर। सनक।

जोशन —स्त्री० पुं० [प्रा०] १ भुजाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का गहना।

विशेष —इसमें छह पहल या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानों की पाँच, छह या सात जोड़ियाँ लंबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती हैं। दोनों बाँड़ों पर दो जोशन पहने जाते हैं।

२ फिरह बकतर। कवच। चार भाईना।

४-१६

जोशाँदा —सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० जोशाँदह्] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियों आदि। क्वाथ। काढ़ा।

जोशिश —सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा०] उत्साह। जोश [क्रि०]।

जोशी —सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोषी'।

जोशीला —वि० [प्रा० जोश + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जोशीली] जोश से भरा हुआ। जिसमें खूब जोश हो। आवेगपूर्ण। जैसे, — उन्होंने कल बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी।

जोषी —सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रीति। प्रेम। २. सुख। आराम। ३. सेवा। ४. सतोष (क्रि०)। ५. मोन (क्रि०)।

जोषी —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। नारी।

जोषी —सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोख'। उ० — चढ़े न चातिक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष। तुलसी प्रेम पयोधि की तारें माप न जोख। —तुलसी (शब्द०)।

जोषक —सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवक।

जोषण —सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति। प्रेम। २. सेवा। ३. दे० 'जोष' (क्रि०)।

जोषणा —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जोषण' (क्रि०)।

जोषा —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री।

जोषिका —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियों का स्तवक या गुच्छा। २. नारी। स्त्री (क्रि०)।

जोषित —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री (क्रि०)।

जोषित —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जोषित्] दे० 'जोषिता'। उ० — जुवा खेल खेलन गई जोषित जोषन जोर। —स० सप्तक, पृ० ३६४।

जोषिता —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। औरत। उ० — जवनि जोषिता अन अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। —मानस, १। ११०।

जोषी —सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १ गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति। २. महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति। ३. पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति। ४. ज्योतिषी। गणक —(वच०)।

जोष्य —वि० [सं०] कर्मनीय। प्रिय। प्यारा (क्रि०)।

जोसी —सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोश'।

जोसना(७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना'। उ० — यह बरती तुम जोष चद जोसना वान वृत्त। —पु० रा०, २५। १८६।

जोसी(७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष, ज्योतिषी, जोइसी, जोसी] ज्योतिषी। उ० — पाइया सोहि बोलावहि हो राय। ले पतझो जोसी वेगो तु भाई। —वी० रासो, पृ० ६।

जोह(७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. खोज। तलाश।

क्रि० प्र० — खगाना।

२ इंतजार। प्रतीक्षा। ३. नजर। दृष्टि। विशेषतः कृपायुक्त दृष्टि।

क्रि० प्र० — रखना।

जोहड़^①—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कच्चा तालाब ।

जोहन^①—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोहना] १. देखने या जोहने की क्रिया । उ०—सघन कला तर तर मनमोहन । दक्षिण चरन चरन पर दीन्हें तनु निभंघ गृधु जोहन ।—सूर (शब्द०) । २. तलाश । खोज । ढूँढ़ । ३. प्रतीक्षा । इंतजार ।

जोहना[†]—क्रि० सं० [सं० जुषण (= सेधन) अथवा प्रा० जोव (= देखना)] १. देखना । अवलोकन करना । ताकना । निहारना । उ०—(क) दर्पन साह भीत सहँ लावा । देखों जोहि भरोखे भावा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो सत ठौर खम हू होहि । कसो प्रह्लाद भाहि तूँ जोहि ।—सूर (शब्द०) । २. खोजना । ढूँढ़ना । पता लगाना । उ०—शकटपीप तेहि भागे सोहा । वसिस चख पोषन कर जोहा ।—विश्वाम० (शब्द०) । ३. राह देखना । इंतजार देखना । प्रतीक्षा करना । घासरा देखना । उ०—फुलन शेषरिया कोठरिया—विछोले, बलविरवा जोहेला तोरी घाट ।—सखबीर (शब्द०) ।

जोहर[†]—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोहड़] बावली । छोटा तालाब ।

जोहर^②—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' । उ०—जोहर करि देह त्यागी ।—ह० रासी, पृ० १९० ।

जोहार[†]—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] अभिवादन । वंदन । प्रणाम । नमस्कार ।

जोहार^②—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोहर' ।

जोहारना[†]—क्रि० प्र० [हि०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना । अभिवादन करना ।

जोहारी[†]—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जोहार] नमस्कार । प्रणाम । उ०—इक एक बाण भेज्यो—सकल नृपति पे मानी सब—साथ कीन्हें जोहारी ।—सूर (शब्द०) ।

जौ[†]—अव्य० [हि० ज्यों] यदि । जो ।

जौ[†]—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यों' ।

जौकना^①—क्रि० सं० [अनु०] डाँटना । डपटना । क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना ।

जौची[†]—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] पैरों या जो की फसल का एक रोम जिनसे बाल काली हो जाती है और उसमें बाल नहीं पड़ते ।

जौड़ा[†]—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोरा] दे० 'जोरा' ।

जौरा^①—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्वर, प्रा० हि० जोरा] १. ज्वर । बुझी ताप । २. व्याध । उ०—जाप करत जौरा बल्या, सुवर साजी लोच ।—सत् ब्राणी०, पृ० १०८ ।

जौरामौरा[†]—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] किये या महजों के भीतर का वह महारा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना पावि रहता है ।

जौरामौरा[†]—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जोड़ा + मौरा] १. दो बालों का जोड़ा ।—(प्यार का शब्द) । २. दो घनिष्ठ मित्रों का जोड़ा ।

जौरे^①—क्रि० वि० [फा० ज्वार] निकट । समीप । घासपास ।

जौ[†]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यव] १. चार पाँच महीने रहनेवाला एक पोषा जिसके बीज या दाने की गिनती घनाजों में है ।

विशेष—यह पोषा पृथ्वी के प्रायः समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है । भारत का यह एक प्राचीन धान्य और

हविष्यान्न है । भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त प्रायः पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी बोआई कार्तिक अगहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है । इसका पोषा बहुत कुछ गेहूँ का सा होता है । मगर इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से उच्छ निकलते हैं जिन्हें कभी कभी छाँटकर अन्नम करना पड़ता है । इसमें ढूँढ़दार घाल लगती है जिसमें कोश के साथ बिसकुल चिपके हुए दाने पत्तियों में गुँथे रहते हैं । दानों के ऊपर का नुकीला कोश कठिनाई से अलग होता है, इसी से यह घनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जो ग्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं । गेहूँ के समान जो के या जो की गूरी के भी घाटे का व्यवहार होता है । भूसी रहित जो या उसके मैदा का प्रयोग रोगियों के लिये पथ्य के काम आता है । सूखे हुए पोषे का भूसा होता है जो चोपायों को प्रिय, खाकर है और उनके के खाने के काम में आता है । यूरोप में और मध्य भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जो से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है । जो कई प्रकार के होते हैं । इस अन्न को मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है । वेदों में इसका उल्लेख बराबर है । मध्य भी हवन आदि में इस अन्न का व्यवहार होता है । ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिनग ने जिन पाँच अन्नों को बोझाया था उनमें एक जो भी था । ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जो का प्रचार खूब था । मध्य एशिया के करसंग नामक स्थान के खंडहर के नीचे दबे हुए जो स्टीन साहब को मिले थे । इस खंडहर के स्थान पर सातवीं शताब्दी में एक अच्छा नगर था जो बालू में बस गया । वेदक में जो तीन प्रकार के माने गए हैं—शूक, निशूक और हरित वणं । शूक को पंच, निशूक को अतियव और हरे रंग के यव को स्तोत्रय कहते हैं । जो शीतल, रुखा, धीर्यवर्षक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करने-वाला माना जाता है । यव से अतियव और अतियव से स्तोत्रय (जोड़वाई भी) हीन गुणवाला माना जाता है ।

पर्याय—यव । मेघ्य । सितशूल । दिग्भय । अक्षत । कपुति । धान्यराज । तीक्ष्णशूक । तुरमप्रिय । शक । ह्येष्ट । पवित्र धान्य ।

मुद्गा^०—जो जो घड़ना=धीरे धीरे बिना सक्षित हुए बढ़ना या विकसित होना । तिष्ठ तिष्ठ बढ़ना । क्रमशः बढ़ना । जो बराबर=जो के बाने के बराबर सबा । जो भर=जो के बाने के परिमाण का । खाए बिना सो सो हिसाब करे जो जो या वे से सो सो हिसाब करे जो जो=अधिक से अधिक सामूहिक व्यय करे पर हिसाब पाई पाई या पैसे पैसे का रखे ।

२. एक पोषा जिसकी लंबोली टहनियों से पंजाब में टोकरे, फाड़, आदि बनते हैं । मध्य एशिया के प्राचीन खंडहरो में मकान के परदों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं । ३. एक तीव्र जो ६ राई (सरदल) के बराबर मानी जाती है ।

जौ[†]—अव्य० [सं० यद्] यदि । अगर । उ०—जो लरिका कुछ

प्रनुचित करही । गुह पितु मातु मोद मन भरही ।—तुलसी (शब्द०) ।

जौ^१—क्रि० वि० [हि०] जब ।

जौ^२—जो लौ, जो लगि, जो लहि=जब तक ।

जौक^१—सञ्ज्ञा पुं० [तु० जूक] १. सेना । २. कतार । ३. भुंङ्ग । गिरोह । उ०—तुजे देखना था वझा हम कुं शोक । तुजे देक पाए हजारा सौं जौक ।—दक्खिनी०, पृ० ३४५ ।

जौक^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० जौक] स्वाद । मजा । शोक । मानद (को०) ।

जौकराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० जौ + केराव] मटर मिला हुआ जौ ।

जौख^१—सञ्ज्ञा पुं० [तु० जूक] १. भुंङ्ग । जट्या । २. फौज । सेना । ३. पक्षियों की श्रेणी । उ०—बनी गोव वे जौख की मोख सोहे । पतानातु कैकी पिकी हो परोहे ।—सूदन (शब्द०) । ४. पादमियों का गोल । समूह । मोड ।

जौगड़वा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जौगड़ (= कोई स्थान) + वा (प्रत्य०)] एक प्रकार का घन ।

विशेष—मह प्रगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावख सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है ।

जौचनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] चना मिला हुआ जौ ।

जौजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जौजह] जोरु । मार्या । पत्नी ।

जौजीयत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० जौजीयत] पत्नीत्व ।

जौड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जेवरी या जेवड़ी] मोटा रस्सा । उ०—फूस क जौड़ा हुरि करि, ज्यूं चहुरि न लागे लाइ ।—कबीर प्र०, पृ० ७१ ।

जौतुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योतुक] दे० 'योतुक' ।

जौधिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योद्धिक] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक । उ०—पृष्ठत प्रथित जौधिक प्रथित ये हाथ जानो बत्तिसे ।—रघुराज (शब्द०) ।

जौनी^१—सर्व० [सं० य पुन (क. पुन > कौन के साम्य पर बना)] जो ।

जौन^२—वि० जो । उ०—जौन ठौर मोहि प्राजा होई । ताहि ठौर रहीं में जोई ।—सूर (शब्द०) ।

जौन^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यवन' ।

जौनाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यय + नाल] १. वह जमीन जिसपर जौ प्रादि रबी की फसल बोई जाय । रबी का खेत । २. जौ का डल ।

जौन्ह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जौन्ह' ।

जौपै^१—अव्य० [हि० जौ + पै] अगर । यदि ।

जौपति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती' ।

जौवन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन' ।

जौम—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जौम' ।

जौर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] प्रत्याहार । जुलम । उ०—धब तलक खींच खींच जौरी जका । हर तरह दोस्ती निषाही है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७ ।

जौरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जूरा] वह प्रनाज जो गाँवों में नाऊ बारी प्रादि पोनियों की उनके काम के बदले में दिया जाता है ।

जौरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्या + वर अथवा हि० जेवरी] वड़ा रस्सा ।

जौनावर^१—वि० [हि०] दे० 'जौरावर' । उ०—जौरावर कोई न वचि, रावण या दशकंधा ।—कबीर सा०, पृ० ८८७ ।

जौलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जुलाई' ।

जौसाऊ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जौसाय (= बारह)] प्रति रुपया बारह पैसे । फी रुपया तीन घाना । (दलाली) ।

जौसानो^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तेजी । फुरती । उ०—शराब मंगाओ तो घबल की घोर जौसानो हो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८ । २. घोड़ा (को०) । ३. शराब का प्याला (को०) । ४. मनोरजन (को०) ।

जौलाय—वि० [हि० जौलाय] बारह । (दलाल) ।

जौशन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण । दे० 'जौशन' ।

जौहर^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा० गौहर का घरवी रूप] १. रत्न । बहुमूल्य पत्थर । २. सार वस्तु । सारांश । तत्व ।

क्रि० प्र०—निकालना ।

३. तलवार या और किसी सोहे के धारदार हथियार पर वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की उत्तमता प्रकट होती है । हथियार की घोष । ४. गुण । विशेषता । उत्तमता । खूबी । शारीफ की बात । जैसे,—(क) धुलने पर इस कपड़े का जौहर देखिएगा । (ख) मैदान में वे प्रपना जौहर दिखाएँगे ।

क्रि० प्र०—खुलना ।—दिखाना ।

मुहा०—जौहर खुलना = (१) गुण का विकास होना । गुण प्रकट होना । खूबी जाहिर होना । (२) करतब प्रकट होना । मेद खुलना । गुप्त कार्रवाई जाहिर होना । जौहर खोलना = गुण प्रकट करना । उत्कर्ष दिखाना । खूबी जाहिर करना । करतब दिखाना ।

३ प्राईने की चमक ।

जौहर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जीव + हर] १. राजपूतों में युद्ध के समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या गढ़ में शत्रु के प्रवेश का निश्चय होने पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता में जल जाते थे ।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का भवश्य अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का प्रादेश देकर आप युद्ध के लिये सुसज्जित होकर निकल पड़ते थे । स्त्रियाँ भी शृंगार करके बड़े भारी दहकते कुंड में कूदकर प्राण विसर्जन करती थीं । प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने बिस्तोरगढ़ को घेरा था तब महारानी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थीं । इसी प्रकार जब बिसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे घर्षात् २४००० प्राणियों के संगमन क्षण भर में जल मरे थे ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जौहर होना = चिता पर जल मरना । उ०—जौहर भई सब की पुष्प भए सगम ।—जायसी (शब्द०) ।

२ आत्महत्या । प्राणत्याग ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. वह चिता जो बुराई में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती थी ।
उ०—(क) जौहर कर साजा रनिवासु । जेहि सत दिये कहाँ
तेहि भासु ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भजहूँ जौहर साज
के कीन्ह चहो उजियार । होरी खेलत रन कठिन कोउ न
समेटै धार ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—साजना ।

जौहरी—संज्ञा पुं० [क्रा०] १ हीरा, लाल आदि बहुमूल्य पत्थर वेचने-
वाला । रत्नविक्रेता । २. रत्न परखनेवाला । जवाहिरात की
पहचान रखनेवाला । पारखी । परखेया । जँचवेया । ३ किसी
वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला । ४ गुण का भावर
करनेवाला । गुणग्राहक । कदरदान ।

ज्ञानमन्य—वि० [सं० ज्ञानमन्य] अपने आपको ज्ञानी माननेवाला [की०] ।

ज्ञा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्ञान । बोध । २. ज्ञानी । ज्ञाननेवाला ।
जैसे, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, कार्यज्ञ, निमित्तज्ञ । ३ ब्रह्मा । ४. बुद्ध
ग्रह । ५. सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको
ज्ञान लेने से वधन कट जाते हैं । ६ मंगल ग्रह । ७ ज और ज
के संयोग से बना हुआ संयुक्त पक्षर ।

ज्ञा^२—वि० १. जाननेवाला । जैसे, शास्त्रज्ञ । २ बुद्धिमान् । जैसे, विज्ञ ।

ज्ञापित—वि० [सं०] १ जाना हुआ । २ मारा हुआ ३ तुष्ट किया
हुआ । ४ तेज किया हुआ । चोखा किया हुआ । ५ जिसकी
स्तुति या प्रशंसा की गई हो ।

ज्ञा^३—वि० [सं०] जाना हुआ ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जानकारी । २ बुद्धि । ३ मारण । ४.
तोषण । तुष्टि । ५ स्तुति । ६ जलाने की क्रिया ।

ज्ञाबार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार । बुध का दिन ।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी ।

ज्ञात^१—वि० [सं०] विदित । जाना हुआ । अवगत । मालुम ।

ज्ञात^२—संज्ञा पुं० ज्ञान ।

ज्ञातजौवना(उ०)—[सं० ज्ञात + यौवना] दे० 'ज्ञातयौवना' । उ०—
निज तनु जोवन भागमन जानि परत है जाहि । कवि कोविद
सब कहत है ज्ञातजौवना ताहि ।—मति० पं०, पृ० २७६ ।

ज्ञातनन्दन—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञातनन्दन] जैनो के तीर्थंकर महावीर
स्वामी का एक नाम ।

ज्ञातयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका का एक भेद । वह
मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो । इसके दो
भेद हैं—नयोद्धा और विश्ववधनयोद्धा ।

ज्ञातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके । जिसे जानना हो अथवा
जिसे जानना उचित हो । ज्ञेय । वेद्य । बोधगम्य ।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि में आत्मा को ही एक मात्र ज्ञातव्य
माना है । उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना बाकी नहीं
रह जाता ।

ज्ञाता—वि० [सं० ज्ञातृ] [वि० स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला । ज्ञान रखने
वाला । जानकार ।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य । गोती ।
भाई । बंधु । बाधव । सपिण्ड समानोदक आदि । उ०—ते
मोहि मिले ज्ञात घर अपने में वृष्णी तब जात । हंसि हंसि दीरि
मिले भ्रम भरि हम तुम एकै ज्ञाति ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) ग्रहिर ज्ञाति मोछी मति कीन्हो । अपनी ज्ञाति प्रकट
करि दीन्हो ।—सूर (शब्द०) ।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोत्रज का पुत्र । २ जैन तीर्थंकर
महावीर स्वामी का नाम ।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी । अभिज्ञता ।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो
मन या आत्मा को हो । बोध । जानकारी । प्रतीति ।

क्रि० प्र०—होना ।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इन्द्रि-
यों के साथ, इन्द्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा
के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है । मान
लीजिए, कहीं पर एक घड़ा रखा है । इन्द्रियों ने उस घड़े
का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन
को दी । फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने
निश्चित किया कि यह घड़ा है । ये सब व्यापार इतने शीघ्र
होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता । एक ही साथ दो
विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता । ज्ञान सदा अयुगपद् होता
है । जैसे,—मन यदि एक ओर है और हमारी आँख किसी
दूसरी ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा । न्याय
में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण
माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है ।
चक्षु, श्रवण आदि इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष
कहलाता है । व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो
ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं । कभी कभी एक वस्तु
(व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नहीं
हो सकता, ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता
है । जैसे, घुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान । अनुमान तीन
प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट ।
कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (कारणलिंगक)
अनुमान कहते हैं । जैसे, बादलों का उमड़ना देख होने-
वाली वृष्टि का ज्ञान । कार्य को देख कारण के अनुमान
को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं । जैसे,
नदी का जल बढ़ता हुआ देख वृष्टि का ज्ञान । व्याप्य को
देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतो दृष्ट अनुमान कहते
हैं । जैसे, घुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को
देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि । प्रसिद्ध या ज्ञात वस्तु के
साधारण्य द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है, उसे
उपमान कहते हैं । जैसे,—गाय ही ऐसी नीलगाय होती है ।
दूसरो के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शब्द
कहते हैं । जैसे गुरु का उपदेश आदि । सांख्य शास्त्र प्रत्यक्ष,
अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण मानता है उपमान को
इनके अंतर्गत मानता है । ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा

प्रमात् यथार्थ ज्ञान और प्रमा या यथार्थ ज्ञान । वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पुण्य नहीं हो सकता । एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वह विषय रूप उपाधि के कारण है । वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई देनेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता या ब्रह्म का ही बोध होता है ।

पाश्चात्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप ज्ञान को ही ज्ञान का मूल प्रपञ्च प्रथम रूप माना है । किसी एक-वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है । इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से भागे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है । जैसे,—‘वह पेड़ नदी के किनारे है’ इस ज्ञान का ज्ञान केवल पेड़ ‘नदी’ और किनारा का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पुण्य भावों का समाहार है ।

प्राणिविज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तनु-जाल (नाडियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संभव रखते हैं । इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने-दोनों की शक्ति है । इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाडियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों की प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है । सूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाडियों और कोशों की क्रिया का नाम चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुद्रा०—ज्ञान छूटना = अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये सबी चौड़ी बातें करना ।

२ यथार्थ ज्ञान । सम्यक् ज्ञान । तत्त्वज्ञान । आत्मज्ञान । प्रमा । केवलज्ञान ।

विशेष—मीमांसा को छोड़कर प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है । न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष व रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से, जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश, दुःख के नाश से मोक्ष माना जाता है । सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति हट जाती है तब मोक्ष का ज्ञान होना बतलाया है । वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है ।

ज्ञानकांड—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानकाण्ड] वेद के तीव्र कांडों या विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है । जैसे,— उपनिषद् ।

ज्ञानकृत—वि० [सं०] जो पाप जान बूझकर किया गया हो, सुल से न हुआ हो ।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है ।

ज्ञानगम्य—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर । जो जाना जा सके ।

ज्ञानगर्भ—वि० [सं०] ज्ञान से पूर्ण या भरा हुआ [को०] ।

ज्ञानगोचर—वि० [सं०] ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य । ज्ञानगम्य ।

ज्ञानधन—संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध ज्ञान । केवल ज्ञान [को०] ।

ज्ञानचक्षु^१—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानचक्षुस्] ज्ञान के नेत्र । भ्रंतर्दृष्टि [को०] ।

ज्ञानचक्षु^२—वि० ज्ञान की आँख से देखनेवाला । पंडित [को०] ।

ज्ञानज्येष्ठ—वि० [सं०] जो ज्ञान में बढ़कर हो [को०] ।

ज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० ज्ञानतस्] जान बूझकर । जानकारी में । समझ बूझकर ।

ज्ञानतत्त्व—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानतत्त्व] यथार्थ ज्ञान [को०]

ज्ञानतपा—वि० [सं० ज्ञानतपस्] शुद्ध ज्ञान के लिये तप करने-वाला [को०] ।

ज्ञानद—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान देनेवाला । गुरु [को०] ।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पु० [सं०] वह जो चतुर्थ आश्रम में हो । सन्यासी ।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि सन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अपात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है अतः मृत्यु हो जाने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं । उसके शरीर को एक गड्ढा खोदकर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए ।

ज्ञानदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती । [को०] ।

ज्ञानदाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य । गुरु ।

ज्ञानदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान देनेवाली देवी । सरस्वती [को०] ।

ज्ञानदुर्वल—वि० [सं०] ज्ञान में दुर्बल या असमर्थ [को०] ।

ज्ञानधन—वि० [सं०] ज्ञानी । तत्त्वविद् । उ०—क्रिया समाहित चित्त ज्ञानधन तुम्हें जानकर ।— भूपरा, पृ० १६३ ।

ज्ञानधाम—वि० [सं० ज्ञानधामन्] परम ज्ञानी । उ०—खोजें सो कि भज इन नारी । ज्ञानधाम श्रीपति असुरारो ।—मानस, १ । ५१ ।

ज्ञाननिष्ठ—वि० [सं०] १. श्रवण, मनन, निदिध्यासन, आदि ज्ञान साधनोंवाला । २. तत्त्वज्ञानी [को०] ।

ज्ञानपिपासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा । ज्ञान की प्यास [को०] ।

ज्ञानपिपासु—वि० [सं०] ज्ञानप्राप्ति की इच्छावाला । जिज्ञासु [को०] ।

ज्ञानप्रभ—संज्ञा पु० [सं०] एक उपासक का नाम ।

ज्ञानमद—संज्ञा पु० [सं०] ज्ञान का अभिमान । ज्ञानी या जानकार होने का घमंड ।

ज्ञानमुद्र—वि० [सं०] ज्ञानी । ज्ञानवाला [को०] ।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तत्त्वसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा ।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को भँगूठे से मिलाकर हाथ

में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमलसंयुत के आकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ जघे तक रक्षा करते हैं ।

ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में हवन प्रयात् आत्मा और परमात्मा का संयोग या प्रवेशज्ञान । ब्रह्मज्ञान ।

ज्ञानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन । उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरे । ब्रह्म जानि सबसों हित करे ।—सूर (चन्द०) ।

ज्ञानलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद ।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक और अलौकिक । अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्य-लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज । ज्ञानलक्षण वह है जिसमें विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है । जैसे, घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घड़े का ज्ञान ।

२. ज्ञान का निर्देशक, संकेतक साधन या उपाय (को०) ।

ज्ञानलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्ञानलक्षण' (को०) ।

ज्ञानवान्—वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो । ज्ञानी ।

ज्ञानवापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीस्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ ।

ज्ञानविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभिन्न प्रकार का या पवित्र ज्ञान । २ वेद, उपवेद सहित उसकी शाखाओं का ज्ञान (को०) ।

ज्ञानवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञान में बड़ा । जिसकी जानकारी अधिक हो ।

ज्ञानशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य का विचार प्रवा कथन करने-वाला शास्त्र (को०) ।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ इन्द्रिय । २ ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न ।

ज्ञानाजन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानाञ्जन] तत्त्वज्ञान । ब्रह्मज्ञान (को०) ।

ज्ञानाकर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध ।

ज्ञानापोह—संज्ञा पुं० [सं०] भूल जाना । ज्ञान न रहना । विस्मरण (को०) ।

ज्ञानावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १, ज्ञान का परवा । ज्ञान का बाधक । २. वह पाप कर्म जिससे ज्ञान का प्रसार लाभ जीव को नहीं होता है ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है,—(१) मतिज्ञानावरण । (२) श्रुतिज्ञानावरण । (३) अवधिज्ञानावरण । (४) मन-पर्याय ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण । (जैन) ।

ज्ञानावरणीयकर्म—पुं० [सं०] दे० 'ज्ञानावरण' ।

ज्ञानासन—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन ।

विशेष—इससे योगाभ्यास में शीघ्र सिद्धि होती है । इसमें दाहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को रखना पड़ता है । इससे पैर की नसे ठीली हो जाती हैं ।

ज्ञानी—वि० [सं०] ज्ञानिन्] १ जिसे ज्ञान हो । ज्ञानवान् । जानकार । २ आत्मज्ञानी । ब्रह्मज्ञानी ।

ज्ञानेन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञानेन्द्रिय] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध या ज्ञान होता है । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं,—दशनेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना और स्पर्शेन्द्रिय ।

विशेष—इन इंद्रियों के गोलक या आधार क्रमशः आँख, कान, जीभ,

नाक और त्वक् हैं । इन पाँचों के अतिरिक्त कोई-कोई छठी इन्द्रिय मन या अतः करण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेन्द्रिय नहीं है कर्मेन्द्रिय भी है अतः उसे दाशनिकों ने उभयात्मक माना है ।

ज्ञानोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का उदय (को०) ।

ज्ञापक—वि० [सं०] १ जतानेवाला । जिससे किसी बात का बोध या पता चले । सूचक । व्यञ्जक (चम्पु) । २ बतानेवाला । सूचित करनेवाला (व्यक्ति) ।

ज्ञापक—संज्ञा पुं० १. गुरु । आचार्य । २ प्रभु । स्वामी (को०) ।

ज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ज्ञापित, ज्ञाप्य] जताने या बताने का कार्य ।

ज्ञापयिता—वि० [सं०] ज्ञापयितृ] सूचक । बतानेवाला । ज्ञापक (को०) ।

ज्ञापित—वि० [सं०] जताया हुआ । बतया हुआ । सूचित ।

ज्ञाप्य—वि० [सं०] जताने या सूचित करने योग्य (को०) ।

ज्ञीप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा (को०) ।

ज्ञेय—वि० [सं०] १. जिसका जानना योग्य या कर्तव्य हो । जानने योग्य ।

विशेष—ब्रह्मज्ञानी लोग एकमात्र ब्रह्म को ही ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता ।

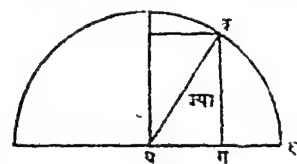
२ जो जाना जा सके । जिसका जानना संभव हो ।

ज्याना—वि० [सं०] [हि० जिमाना, जेवाना] खिलाना । उ०—सुमग सुस्वाद सुविजन भानि । जननी ज्ययि अपने पानि ।—नंद० ग्र०, पृ० २७८ ।

ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की डोरी । २ वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो ।



३. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो ।



४ त्रिकोणमिति में केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की निष्पत्ति । ५ पृथ्वी । ६ माना । ७ किसी वृत्त का व्यास । ८ सर्वोच्च शक्ति (को०) । ९ अत्यधिक मांग (को०) । १०. एक प्रकार की छड़ी । शम्पा (को०) । १०. सेना का पृष्ठ भाग (को०) ।

ज्याग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'याग' । उ०—जेहा केहा ज्याग हैवर राखोहा हुवे ।—बौकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १४ ।

ज्याघात—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी के स्पर्श या रगड़ से होने वाला उँगलियों पर का निशान या चिह्न (को०) ।

यौ०—ज्याघातवारण = धनुर्धरो द्वारा पहना जानेवाला अंगुलिधारण ।

ज्याघोष—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टकार (को०) ।

व्यादती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० व्यादती] १ अधिकता । बहुतायत । अधिकारी । २. जुलम । अत्याचार ।

व्यादा—क्रि० वि० [फ्रा० व्यादह] अधिक । बहुत ।

व्यान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० जियान] नुकसान । हानि । घाटा ।
उ०—हैंके ध्यान जु काह सो कीनो सु मान भयो वहे ज्ञान है बी की ।—पद्माकर प्र०, पृ० ११६ ।

व्यान^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० जान] ३० 'जान' । उ०—(क) पातसाह की व्यान बससीस करो ।—ह० रासो, पृ० १५६ । (ख) अरे इस्क ऐसा बुरा, फिरि लेता है व्यान ।—ब्र० प्र०, पृ० ४८ ।

व्याना^३—क्रि० सं० [हि०] ३० 'जियाना' । उ०—ज्याइए तो जानकी रमन जन जानि जिये, मारिए तो मांगी भीचु सुधिप कहतु हों ।—तुलसी प्र०, पृ० २४० ।

व्यानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृद्धावस्था । वरा । बुढ़ापा । २. क्षय । ३. त्याग । परित्याग । ४. नदी । ५. अत्याचार । चलीकृत् । १. हानि [श्लो०] ।

व्यानी^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यानि, तुलनीय फ्रा० जियान] हानि । घाटा । उ०—सा दिन तें व्यानी सी बिकानी सी दिखानी बिलसानी सी विलानी राजधानी जमराज की ।—पद्माकर प्र०, पृ० २६३ ।

व्याफत—संज्ञा स्त्री० [अ० व्याफत] १ दावत । भोज । २. मेह-मानी । आतिथ्य ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।

व्यामिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहू-गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, मित्र मित्र क्षेत्रों के भूगो आदि के परस्पर सम्बन्ध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है । क्षेत्र गणित । रेखागणित ।

विशेष—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उत्पत्ति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से १३५७ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रिस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि की मापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सुत्रपात हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नील नदी के बढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की हानि मिट चाया करती थी, इसी से यह विद्या निकली गई । इजिप्ट के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि येलस ने मिस्र में आकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में इसे प्रचलित की थी । बीरे बीरे यूनानियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की । पाइथागोरस ने सबसे पहले इस विद्या में सिद्धांत स्थापित किए और कई प्रतिज्ञाएं निकालीं । फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन में लगे । प्लेटो के अनेक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार किया जिनमें मुख्य अरस्तू (एरिस्टाटिल) और इडोडोसस थे । पर इस विद्या का प्रधान प्राचार्य इडिपिड (उक्नेदम) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्याय स्वरूप हो गया । यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेक्जेंड्रिया, जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव में इडिपिड ही यूरप में

व्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र या पीठ रहा है । जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था । प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले अभ्यसर हुए थे । वैदिक काल में आयों की यज्ञ की वेदियों के परिमाण, प्राकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । व्यामिति का आभास शुक्लसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सुत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहाँ कुछ उत्पत्ति नहीं की गई । यूनानियों के ससर्ग के पीछे ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथों में ही व्यामिति-विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए, परिधि और व्यास का सूत्रम अनुपात ३ १४१६ १ भास्कराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

व्यायस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० व्यायसी] १. ज्येष्ठ । बड़ा । २. सर्वश्रेष्ठ । ३. विशाल । महत् । ४. जो नाशालिप्त न हो । प्रोढ़ । ५. वयोवृद्ध । वृद्ध । ६. क्षीण । क्षयशील । ७. उत्तम । शक्तिशाली । वरेण्य [श्लो०] ।

व्यायिष्ट—वि० [सं०] १. सर्वश्रेष्ठ । २. प्रथम । सर्वप्रथम [श्लो०] ।

व्यारना^१—क्रि० प्र० [हि०] ३० 'जियाना', 'जिलाना' । उ०—आयो फिरि विप्र नेह खोजहूँ न पायो कहूँ सरसायो वातै लै दिखायो, स्याम ज्यारिये ।—प्रिया० (शब्द०) ।

व्यारना^२—क्रि० सं० [हि०] जारना (= जलाना)] ३० 'जारना' । उ०—चिता वाहूँ ममता ज्याहूँ ।—द्विखनी०, पृ० १३४ ।

व्यावना^३—क्रि० सं० [हि०] ३० 'जिलाना' ।

व्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योति [श्लो०] ।

व्युत्—अव्य० [हि०] ३० 'ज्यो' ।

ज्येष्ठ^१—वि० [सं०] १. बड़ा । जेठा । जैसे, ज्येष्ठ भ्राता । २. वृद्ध । बड़ा । वृद्ध ।

ज्यो—ज्येष्ठ तास = बाप का बड़ा भाई । ज्येष्ठ वर्ष = ब्राह्मण ।

ज्येष्ठश्वश्रू = पत्नी की बड़ी बहन । बड़ी साली ।

ज्येष्ठ^२—संज्ञा पुं० १. जेठ का महीना । वह महीना जिसमें ज्येष्ठा वक्षत्र में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो । यह वर्ष का तीसरा और ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना है । २. वह वर्ष जिसमें वृहस्पति का उदय ज्येष्ठा वक्षत्र में हो ।

विशेष—यह वर्ष कंगनी और सावाँ की छोड़ और गर्मियों के लिये हानिकारक माना जाता है । इसमें राजा धर्मज्ञ होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है ।—(वृहत्संहिता)

३. सामान का एक भेद । ४. परमेश्वर । ५. प्राण ।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्येष्ठ होने का भाव । बड़ाई । २. श्रेष्ठता ।

येष्ठवला—सखा श्री० [सं०] सहदेई नाम की बड़ी जो भोवध के काम में जाती है ।

येष्ठसामग—सखा पु० [सं०] परलयक साम का पढ़नेवाला ।

येष्ठसामा—सखा पु० [सं० ज्येष्ठसामन्] ज्येष्ठ सामवेद का पढ़नेवाला ।

येष्ठानु—सखा पु० [सं० ज्येष्ठान्नु] १. चावलो का धोवन । २. माँड़ (को०) ।

येष्ठाना—सखा पु० [सं०] १. बड़े भाई का हिस्सा या अंश । २. पैतृक संपत्ति में बड़े भाई को मिलनेवाला अधिक अंश । ३. उत्तम अंश या हिस्सा [को०] ।

येष्ठा—सखा श्री० [सं०] १. २७ नक्षत्रों में से अठारहवीं नक्षत्र जो तीन तारों से बने कुडल के आकार का है । इसके देवता चंद्रमा हैं । २. वह स्त्री जो पति की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो । ३. छिपकली । ४. मध्यमा जंगली । ५. गंगा । ६-१५ पुराण के अनुसार अलक्ष्मी देवी ।

विशेष—ये समुद्र मंथन पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं । जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब उन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो निरप्य गदी या बुरी बातें बोलें, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहो । विष्णुपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन्हें ग्रहण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी आदित्य ने इन्हें पत्नी रूप से ग्रहण किया ।

येष्ठा—वि० श्री० बड़ी ।

येष्ठाश्रम—सखा पु० [सं०] उत्तमाश्रम । गृहस्थाश्रम ।

येष्ठाश्रमी—सखा पु० [सं० ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ । गृही ।

येष्ठो—सखा श्री० [सं०] गृहगोषा । पत्नी । छिपकली । विस-तुष्ट्या ।

यौ—क्रि० वि० [सं० या + इव] १. जिस प्रकार । जैसे । जिस ढंग से । जिस रूप से । उ०—(क) तुलसिदास जगदव जवाब ज्यों अन्नध आगि लागे बाढ़न ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) करी न प्रीति श्याम सुंदर सो जन्म जुझा ज्यों हाथो ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सादृश्य दिखलाने के लिये होता है ।

मुहा०—ज्यों त्यों = (१) किसी न किसी प्रकार । किसी ढंग से । झुझा और बखेड़े के साथ । (२) अच्छे के साथ । अच्छी तरह नहीं । ज्यों त्यों करके = (१) किसी न किसी प्रकार । किसी ढंग से । किसी उपाय से । जिस प्रकार हो सके उस प्रकार । जैसे,—ज्यों त्यों करके उसे हमारे पास ले आओ । (२) झुझा और बखेड़े के साथ । दिक्कत के साथ । कठिनाई के साथ । जैसे,—रास्ते में बड़ी गहरा घाँघी भाई, ज्यों त्यों करके घर पहुँचे । ज्यों का त्यों = (१) जैसे का वैसा । उसी रूप रंग का । तद्रूप । सदृश । (२) जैसा पहले या वैसा ही । जिसमें कुछ फेर फार या घटती बढ़ती न हुई हो । जिसके साथ

कुछ क्रिया न की गई हो । जैसे,—सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है ।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'त्यों' का प्रयोग होता है पर गद्य में प्रायः नहीं होता ।

२ जिस क्षण । जैसे ही । जैसे,—(क) ज्यों मैं आया कि पानी बरसने लगा । (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा, वह उठकर चला गया ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है ।

मुहा०—ज्यों ज्यों = जिस क्रम से । जिस मात्रा से । जितना ।

उ०—जमुना ज्यों ज्यों लगी बाढ़न । त्यों त्यों सुकृत सुमत कलि पहि निदरि लगे बहि काढ़न ।—तुलसी (शब्द०) ।

ज्योतिःपुंज—वि० [सं० ज्योति पुंज] प्रखर या दिव्य प्रकाशवाला । जिसमें प्रकाश भरा हो । उ०—लग की ज्योतिःपुंज प्राप्त हो ।—भारवता, पु० ८ ।

ज्योतिःशाला—सखा पु० [सं०] ज्योतिष ।

ज्योति शिखा—सखा श्री० [सं०] लघु पुंज वणों की गणना के अनुसार विषम वंशवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में १२ लघु और दूसरे दल में ११ गुरु होते हैं ।

ज्योति—सखा श्री० [सं० ज्योतिस्] १. प्रकाश । उजाला । द्युति । २. अग्निशिखा । छपट । लो ।

मुहा०—ज्योति जगना = (१) प्रकाश फैलाना । (२) किसी देवता के सामने दीपक जलाना ।

३ अग्नि । ४ सूर्य । ५ नक्षत्र । ६ मेघ । ७ संगीत में अष्टताल का एक भेद । ८ माँव की पुतली के मध्य का वह बिंदु या स्थान जो बसंत का प्रधान साधन है । ९ दृष्टि । १०. अग्नि-प्टीम यज्ञ की एक संध्या का नाम । ११ विष्णु । १२. वेदांत में, परमात्मा का एक नाम ।

यौ०—ज्योतिमयी = प्रकाश से भरी हुई । ज्योतिमुल = ज्योति का मुख ।

ज्योतिकु—सखा पु० [हि०] ३० 'ज्योतिषी' । उ०—चार बार ज्योतिक सो घरी वृत्ति भावे । एक जाइ पहुँचे नहि और एक पठावे ।—सूर (शब्द०) ।

ज्योतिष—वि० [सं० ज्योति + हि० त (प्रत्य०)] प्रकाशित । उद्भा-सित । ज्योति से पूर्ण । उ०—मा ! तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतिष छटा अपार ।—वीणा, पु० ५५ ।

ज्योतिर्लिङ्ग—सखा पु० [सं० ज्योतिरिङ्ग] जुगल ।

ज्योतिर्लिङ्गण—सखा पु० [सं० ज्योतिरिङ्गण] जुगल ।

ज्योतिर्मय—वि० [सं०] प्रकाशमय । द्युतिपूर्ण । जगमगाता हुआ ।

ज्योतिर्लिङ्ग—सखा पु० [सं० ज्योतिर्लिङ्ग] १. महादेव । शिव ।

विशेष—शिवपुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे सबकाकर कमलनाभ पर इधर से उधर घूमने लगे । विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो । इसपर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो, तुम्हारा भी तो कोई कर्ता है ? जब दोनों

में घोर युद्ध होने लगा तब भगड़ा निपटाने के लिये एक कानागि सटश ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों ओर भयकर ज्वाला फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग आदि, मध्य और भूत रहित था। इस कथा का अभिप्राय ब्रह्मा और विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

२ भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो वारह हैं। वैद्यनाथ माहात्म्य में इन वारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं। सोभनाथ सोराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीगैल में, महाकाल उज्जयिनी में, शोकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर में), केदार हिमालय में, भीमशंकर ढाकिनी में, विश्वेश्वर काशी में, अंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चित्तौड़ में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबन्ध में, घृष्णेश्वर शिवाल्लय में।

ज्योतिर्लोक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ कालचक्र प्रवर्तक ध्रुव लोक। २ उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु।

विशेष—भागवत में इस लोक को सप्तपि मण्डल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है। यहीं उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इन्द्र कक्षप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्हस्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिश्चक्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मण्डल।

ज्योतिष—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहो नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय आर्यों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। एग्री की तिगि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के ऋग का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्ति० म०) कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष)। तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासत विपुवह्नि कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विपुवह्नि से वैदिक वर्ष का आरम्भ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विपुवह्नि से आरम्भ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में ऋग्मो वासत विपुवह्नि मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगो ने निश्चित किया है कि वासत विपुवह्नि की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा

नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यंत प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया, क्योंकि इसके संबंध में जब कि यूरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। बराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पोलिष और रोमक। सौर सिद्धांत सबंधी सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भुजाय, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देशांतर लका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अंतर पड़ता है।

क्रांतवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे,—होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के आजकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

२. ग्रहों का एक सहार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है।

विशेष—इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिषिक^२—वि० ज्योतिष सबंधी।

ज्योतिषी^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य। ज्योतिर्विद्। देवज्ञ। गणक।

ज्योतिषी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तारा। ग्रह। नक्षत्र।

ज्योतिष्क—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह।

२ मेयी। ३ चित्रक वृक्ष। चीता। ४ मनियारी का पेड़।

५ मेघ पर्वत के एक शृंग का नाम। ६ जैन मतानुसार देवताओं का एक भेद जिसके अंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और अक्ष हैं।

ज्योतिष्का—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मालकोगनी।

ज्योतिष्टोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होने थे। इस यज्ञ के समापनात में १२०० गोदान का विधान था।

ज्योतिष्पथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धाकाश।

ज्योतिष्पुंज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह।

ज्योतिष्मती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मानकौन्ती। २ रात्रि। ३ एक नदी का नाम। ४ एक प्रकार का वैदिक छंद। ५ सारंगी की तरह का एक प्राचीन वाजा। ६ सत्वगुणप्रधान मन की शांत अवस्था (के०)।

ज्योतिष्मान्—वि० [सं० ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त। ज्योतिर्मय।

ज्योतिष्मान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ प्लक्ष द्वीप के एक पर्वत का नाम। ३ ब्रह्मा का तृतीय पाद या चरण (के०)। ४ प्रलयकाल में उदित होनेवाले सात सूर्यों में से एक (के०)।

ज्योतिस्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्युति। ज्युति। प्रकाश। २ परम ज्योति। ब्रह्म की ज्योति। ३ दिद्युत्। विजली। ४ दिव्य सत्ता। ५ नक्षत्र। तारा आदि। ६ प्राकाशीय प्रकाश (तमस् का विलोम)। ७ सूर्य चंद्र। ८ दिव्य प्रकाश या बुद्धि। ९ ग्रह नक्षत्र संबंधी शास्त्र या विज्ञान। वि० दे० 'ज्योतिष'। १० देखने की शक्ति। ११ दिव्य जगत्। १२ गाय (के०)।

ज्योतिस्—सञ्ज्ञा पुं० १ सूर्य। २ अग्नि। ३ विष्णु (के०)।

ज्योतिसास्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योतिषशास्त्र'। उ०—ज्योतिसास्त्रं प्रति हृद्दी ज्ञान। ताके तुम ही बीज निदान।—नद० प्र०, पृ० २४४।

ज्योतिस्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ज्योत्स्ना'।—अनेकार्थ०, पृ० ३१।

ज्योतिस्नात—वि० [सं० ज्योति + स्नात] प्रकाशपूर्ण। उ०—ज्योतिस्नात जीवनपथ पर भव चरण चार गतव्य एक हो।—अग्नि०, पृ० ३५।

ज्योतिहीन—वि० [सं० ज्योति + हीन] प्रकाश से रहित। प्रभाहीन। उ०—उल्का वज्र व धूमादि से हृत विषय ज्योतिहीन होने पर।—वृहत्संहिता, पृ० ८२।

ज्योतीरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिषचक्र है)।

ज्योतीरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रस जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और वृहत्संहिता में है।

ज्योत्स्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंद्रमा का प्रकाश। चांदनी। २ चांदनी रात। ३ सफेद फूल की तोरई। ४ सौंफ। ५ दुर्गा का एक नाम (के०)। ६ प्रकाश। उजाला (के०)।

ज्योत्स्नाकाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पुंकर की पत्नी थी।

ज्योत्स्नाघौत—वि० [सं०] दे० 'ज्योत्स्नास्नात'।

ज्योत्स्नाप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चकोर।

ज्योत्स्नावृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दीपाधार। दीवट। फतिलसोज।

ज्योत्स्नास्नात—वि० [सं०] चांदनी में नहाया हुआ। चांदनी से पूर्ण।

ज्योत्स्निका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चांदनी रात। २ सफेद फूल की तोरई।

ज्योत्स्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्योत्स्निका'।

ज्योत्स्नेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (के०)।

ज्योनार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जैन (= खाना)] १ पका हुआ भोजन। रसोई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. भोज। दावत। ज्याफत।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—ज्योनार बैठना = अतिथियों का भोजन करने बैठना। ज्योनार लगाना = अतिथियों के सामने रखने के लिये व्यजनों को क्रम से लगाना या रखना।

ज्योवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० योवन] दे० 'जोवन'। उ०—तन घन ज्योवन कछु नहि भावत हरि सुखदाई री।—दक्खिनी०, पृ० १३२।

ज्योरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह भनाज जो फसल तैयार होने पर गाँवों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है।

ज्योरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी। रज्जु। डोरी।

ज्योरु—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'जोरु'। उ०—माँ बाप बेटे ज्योरु लडके सब देखत लोकन सरीखे।—दक्खिनी०, पृ० १२२।

ज्योहता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीव + हत] आत्महत्या। जोहर। उ०—केश गहि करखि जमुना चार डारिहै, सुन्यो नृप नारि पति कृष्ण मारयो। भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत विचारयो।—सूर (शब्द०)।

ज्योहरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उनकी स्त्रियाँ गड के शत्रुओं से घिर जाने पर चिता में जलकर भस्म हो जाती थी। दे० 'जोहर'।

ज्यौ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ज्यो'।

ज्यौ—अव्य० [सं० यदि] जो। यदि। उ०—जो न जुगुति पिय मिलन की धूर मुकुति मोहि दीन। ज्यो लहिये मंग सजन तो घरक नरक हू की न।—विहारी (शब्द०)।

ज्यौ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जीम, जीय] दे० 'जीव'। उ०—वृद्धत ज्यो घनभानद सोचि, बई विधि व्याधि असाधि नई है।—घनानंद, पृ० ५।

ज्यौ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गृहस्पति ग्रह (के०)।

ज्यौतिष—वि० [सं०] ज्योतिष संबंधी।

ज्यौतिषिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

ज्यौत्स्न—वि० [सं०] चंद्रकिरणों से प्रकाशित (के०)।

ज्यौत्स्न—सञ्ज्ञा पुं० शुक्ल पक्ष। उजाला पाख (के०)।

ज्यौत्स्निका, ज्यौत्स्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा की रात (के०)।

ज्यौनार—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योनार'।

ज्यौरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्योरा'।

ज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे। ताप। बुखार।

विशेष—सुथुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और माठ प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, वात-पित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सान्निपातिक और आगतुज। आगतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और आचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से उठे हुए, कृश या मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमोशय, हृदय, कठ, सिर और सवि इन पाँच कफ स्वानों का आश्रय लेता है तब उससे भंतरा, तिजरा और चौबिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होते हैं। प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ घातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विषयंय नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विषयंय ज्वर वह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगतुक ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं। जैसे, कामज्वर, श्लेष्मज्वर, भयज्वर इत्यादि। ज्वर अपने आरम्भ दिन से सात दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की काति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाडी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं। वैद्यक में गुच्छ, चिरायता, पिप्पली, नीम आदि कटु वस्तुएँ ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी ९८° और ९९° के बीच होती है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिस्सा है कि इस नाश की उष्णता शरीर में बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर में इतनी गरमी उत्पन्न होती है जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण जाड़ा लगता है और शरीर में कंपकंपी होती है। ज्वर में यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा गरमी अधिक उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की घातुओं का जो क्षय होता है वह पूर्ति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाव अधिक आता है, नाडी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, प्रायः कोष्ठबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, मुख कम हो जाती है, सिर में दद तथा भ्रमों में विलक्षण पीड़ा होती है। विपरीत कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, भ्रमों की सृजन, घृण आदि के ताप तथा कभी कभी नाटियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा लिखी है। जब कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंदो हो गए तब कृष्ण और

बाणासुर में घोर संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहुरज्वर को निकालकर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दश प्रजापति क अश्वमेध से कुछ होकर महादेव जी न आने परास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

मुहा०—ज्वर उत्तरना = ज्वर का जाता रहना। बुझार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

२ मानसिक क्लेश। दुःख। शोक (की०)।

ज्वरकुटुंब—संज्ञा पुं० [सं० (ज्वर कुटुम्ब)] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव, जैसे, प्यास, श्वास, अरुचि, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुड़च। २ बभ्रुभा।

ज्वरचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर का उपचार या इलाज [की०]।

ज्वरप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर का उपचार [की०]।

ज्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक श्रेष्ठ जो पारे, साजिक, सैतिल, हस्ताल, गंधक तथा भिलार्थ के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरहन्त्री] मंजीठ।

ज्वरहर^१—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला [की०]।

ज्वरहर^२—संज्ञा पुं० ज्वर का चिकित्सक [की०]।

ज्वराकुश—संज्ञा पुं० [सं० ज्वराकुश] १. ज्वर की एक श्रेष्ठ जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। २ कुश की तरह की एक सुगंधित घास।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमायूँ गढ़वाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ में से नौदू की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और टटलो से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि में डाला जाता है।

ज्वरामो—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरामो] भद्रदत्ती नाम का पौधा।

ज्वरातक—संज्ञा पुं० [सं० ज्वरान्तक] १ चिरायता। २ मनलतास।

ज्वरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मोत। उ०—तिये सज आधिनि व्याधिनि जरा जब आवे ज्वरा की सहेली।—केशव (शब्द०)।

ज्वरा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

ज्वरापह—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला।

ज्वरापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त—संज्ञा [सं०] ज्वरपीडित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरित्] [वि० स्त्री० ज्वरिणी] जिसे ज्वर हो।

ज्वरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० जुरी] दे० 'जुरी' । उ०—ज्वरी बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी स्थीं शचान सानवारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

ज्वलंत—वि० [सं० ज्वलन्त] १ जलता हुआ । प्रकाशमान् । दीप्त । देदीप्यमान् । २. प्रकाशित । अत्यंत स्पष्ट । जैसे, ज्वलंत दृष्टान्त, ज्वलंत प्रमाण ।

ज्वल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ज्वाला । अग्नि । २ दीप्ति । प्रकाश ।

ज्वलका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिला । आग की लपट । लौर ।

ज्वलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जलने का कार्य या भाव । जलन । दाह । उ०—(क) अधर रसन पर लाली मिसी मलूम । मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु घूम ।—(शब्द०) । (ख) सुदसा ज्वलन सनेहवा कारन तोर । अजन सोइ उर प्रगटत लगि दग कोर ।—रहीम (शब्द०) । २. अग्नि । आग । ३ लपट । ज्वाला । ४ चित्रक वृक्ष । चीता ।

ज्वलन—वि० १. प्रकाश करनेवाला । प्रकाशयुक्त । २ दाहक [क्रो०] ।

ज्वलनांत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ज्वलनान्त] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिसने बौद्ध मठ में प्रवेश करते ही बोधिज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

ज्वलित—वि० [सं०] १ जला हुआ । दग्ध । २ उज्ज्वल । दीप्ति-युक्त । चमकता या भजकता हुआ ।

रत्तिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता । मुरी । मरोडफली ।

रत्तिनी सीमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगाए ।

ज्वाइनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अजवाइन] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज भोपड़ और मसाले के काम में आते हैं । अजवाइन । उ०—विमूर्च्छित तन नहि सके समारि । पीपल मूल ज्वाइनि सारि ।—प्राण०, पु० १५० ।

यौ०—ज्वाइनिसारि = अजवाइन का सत्त ।

ज्वानी—वि० [फ़ा० जवान] दे० 'जवान' ।

ज्वानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० जवानी] दे० 'जवानी' ।

ज्वावा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० जवाव] दे० 'जवाब' । उ०—को रखै या भुमि पर, रविख करे को ज्वाव ।—ह० रासो, पु० ४८ ।

ज्वार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल, यवाकार या जूरण] १. एक प्रकार की घास जिसकी बाल के दाने मोटे अनाजों में गिने जाते हैं ।

विशेष—यह अनाज संसार के बहुत से भागों में होता है । भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है । ज्वार सूखे स्थानों में अधिक होती है, सीढ़ लिए हुए स्थानों में उतनी नहीं हो सकती । भारत में राज-पूताना, पंजाब आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है । बंगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है । यदि बोई भी जाती है तो दाने अच्छे नहीं पड़ते । इसका पौधा नरकट की तरह एक डठल के रूप में सीधा

५-६ हाथ ऊँचा जाता है । डठल में सात सात आठ आठ अंगुल पर गाँठें होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के आकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं । इसके सिरे पर 'फूल' के जीरे और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं । ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं । ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में कोई विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता । ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी, दूसरी खरीफ । मक्का भी इसी का एक भेद है । इसी से कहीं कहीं मक्का भी ज्वार ही कहलता है । ज्वार को जोन्हरी, जुडी आदि भी कहते हैं । इसके डठल और पौधे को चारे के काम में लाते हैं और खरी कहते हैं । इस अन्न के उत्पत्ति-स्थान के संबंध में मतभेद है । कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिमी देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ मानते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता । ज्वार की खेती भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आई है । पर यह चारे के लिये बोई जाती थी, अन्न के लिये नहीं ।

२ समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव । लहर की उठान । भाटा का उलटा ।

विशेष—दे० 'ज्वारभाटा' ।

ज्वारभाटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार । लहर का बढ़ना और घटना ।

विशेष—समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है । इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य का आकर्षण है । चंद्रमा के आकर्षण में दूरत्व के वर्ग के हिसाब से कमी होती है । पृथ्वी जल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा, उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा, अधिक आकर्षित होंगे । चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है, पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है । अतः सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है । ५ के लगभग है । सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है, पर अमावस्या और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती हैं, प्रतीति जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी, उमी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी । इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी । यही कारण है कि अमावस्या और पूर्णिमा को और दिनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँची उठती है । सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य करती हैं, अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठती है ।

ज्वारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जुमारी' ।

ज्वाला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिला । लो । लपट । आँच । उ०—चित्ता ज्वाला शरीर वन दावा लगि लगि जाय ।—गिरिधर (शब्द०) । २ मशाल (क्रो०) ।

घन रोय के द्वार परी चित भस्व ।—जायसी (शब्द०) । (ख)
पाँच तत्व का बना पीजरा तामे मुनिया रहती । उडि मुनिया
हारी पर बैठे भस्वन लागे सारी दुनिया ।—कवीर (शब्द०) ।

भस्वरा—सच्चा पुं० [देशी भस्वर] शुष्क वृक्ष । उ०—थल भूरा वन
भस्वरा नहीं सु चपल जाइ । गुण सुगंधी मारवी, महकी सह
बगुराइ ।—ढोला०, पृ० ४६८ ।

भस्वाड—वि० [हि० भस्वाड] दे० 'भस्वाड' ।

भस्वाड़—सच्चा पुं० [हि० 'भाड़' का भ्रु०] १ घनी घोर कटिदार
भाड़ी का पौधा । २ ऐसे कटिदार पौधों या भाड़ियों का घना
समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ढँक जाय । उ०—
ऊँचे भाड़, कँटीले भस्वाड़ो ने वन मग छाया ।—क्यासि,
पृ० ७२ । ३. वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों । ४ व्यर्थ की
घोर रदी, विशेषतः काठ की चीजों का समूह ।

भस्वरा—सच्चा स्त्री० [सं० कन्दरा या देश०] १ गुफा । कदरा । उ०—
मिले सिध गिर भस्वरा, सो एकलौ सदीव । रच टोली
फिरता रहे, जटै तठ बन जीव ।—दाँकी० ग्रं०, पृ० २७ ।
२ घनी भाड़ी ।

भस्वार^१—सच्चा पुं० [हि० जंजाल] जंजाल । मायाजाल । दुःख ।
उ०—इनके चरन सरन जे भाए मिटे सकल भस्वार । छोट
स्वामी गिरिधरन श्री विठ्ठल सकल वेद का सार ।—छोत०,
पृ० १४ ।

भस्वकार^२—सच्चा पुं० [सं० भस्वकार] भस्कार । भस्व भस्व की मधुर
ध्वनि । उ०—निगम चारि उतपति भयो चतुरानन मुख वैन ।
सचरेउ शब्द बनाहुदा भस्वकार मद ऐन ।—सत० दरिया,
पृ० ४० ।

भस्मा^३—सच्चा पुं० [भस्व भस्व से भ्रु०] दे० 'भस्म' । उ०—कोउ
वीणा मुरली पटह चग मृदग उपग । झालरि भस्म वजाई के
गावहि तिनके संग ।—(शब्द०) ।

भस्म^४—वि० [देश०] खाली । रीता । शुष्क । रहित ।

भस्मट—सच्चा स्त्री० [भ्रु०] १ व्यर्थ का झगडा । टटा । बखेडा । २
प्रपच । परेशानी । कठिनाई ।

क्रि० प्र०—सठाना ।—मे पड़ना ।—मे फँसना ।

भस्मटियाँ, भस्मटियाँ—वि० [हि० भस्मट] दे० 'भस्मट' ।

भस्मटो—वि० [हि० भस्मट] १. भस्मट करनेवाला । २. भस्मट से
भरा हुआ (काम) ।

भस्मन—सच्चा पुं० [सं० भस्मन] ग्रामभूषण की भस्कार । झुन झुन की
मधुर ध्वनि [को०] ।

भस्मनाना^१—क्रि० प्र० [सं० भस्मन] झुन झुन का शब्द करना ।
भस्कार करना । भस्कारना ।

भस्मनाना^२—क्रि० प्र० १. भस्कार होना । २. कोई बात इस ढंग से
कहना जिसमें खीझ और झल्लाहट मरी हो । झल्लाना ।

भस्मर^३—सच्चा पुं० [सं० भस्मर] दे० 'भस्मर' ।

भस्मर^४—सच्चा स्त्री० [हि० भस्मरी] दे० 'भस्मरी' ।

भस्मा—सच्चा स्त्री० [सं० भस्मा] १. वह तेज धाँधी जिसके साथ

वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूमी मनभावन सो रुसि सखी
वामिन को दूँध रह्यो रगा भूँक भस्मा सी ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—भस्मानिल । भस्माभक्त । भस्माभावन = दे० 'भस्मावात' ।

२. तेज धाँधी । अघट । ३. बड़ी बड़ी वृद्धों की वर्षा । ४. भस्म ।

५. खोई हुई वस्तु । हिराई हुई चीज (को०) ।

भस्मा^५—वि० प्रचंड । तीखा । ठंड ।

भस्मानिल—सच्चा पुं० [सं० भस्मानिल] १. प्रचंड वायु । धाँधी ।
२. वह धाँधी जिसके साथ वर्षा भी हो ।

भस्मार—सच्चा पुं० [सं० भस्मार] धाँधी की वह लपट जिसमें से कुछ
अव्यक्त शब्द के साथ धुँआँ और चिंगारियाँ निकलें । उ०—
(क) धाँडे धगिनि भार बनार, पुधार वरि, उचटि भगार
भस्मार छायो ।—सूर०, १० । ५६६ । (ख) लाल तिहारे
विरह की लागी धाँगेन अवार । सरखँ बरखँ नीरूँ मिटे न
भर भस्मार ।—भारवेदु प्र०, भा० २, पृ० ४६५ ।

भस्मावात—सच्चा पुं० [सं० भस्मावात] १. प्रचंड वायु । धाँधी ।
२. वह धाँधी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

भस्मी—सच्चा स्त्री० [देश०] १. फूटी कीली । २. दलाली का घन ।
भस्मी । (दलाली की बोली) ।

भस्मेरना^६—क्रि० प्र० [हि० भस्मेरना] दे० 'भस्मेरना' ।

भस्मेटी, भस्मेटी—सच्चा स्त्री० [हि०] एक राग । दे० 'भस्मेटी' ।
उ०—तीसरे ने कहा बाहू भस्मेटी है ।—श्रीनिवास ग्रं०,
पृ० २०४ ।

भस्मेरना^७—क्रि० प्र० [हि० भस्मेरना] दे० 'भस्मेरना' । उ०—
विषम धाय जिम लता मोरि माखत भस्मेरे । (क) चित्र
लिखी पुत्तरी जोरि जारत निहारे ।—पृ० १०, १३४८ ।

भस्मेटी—सच्चा स्त्री० [देशी] छोटे घोर उठे हुए बाल । भस्मेटी ।

भस्म—सच्चा पुं० [सं० जट, या देशी] १. छोटे बालों के मुडन के
पहले के केश । २. करील ।

भस्मा—सच्चा पुं० [सं० जयन्ता या देश०] १. तिकोने या चौकोर कपड़े का
टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ों या दि के डंडे में लगा रहता है
और जिसका व्यवहार चित्त प्रकट करने, संकेत करने, उत्सव
आदि सूचित करने तथा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये
होता है । पनाका । निशान । फरहर ।—पृ० ५५ ।

मुहा०—भस्मे तने की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते
को जान पहचान । भस्मे पर चढ़ना = बदनाम होना ।
अपने सिर बहुत बदनामी लेना । भस्मे पर चढ़ाना = बहुत
बदनाम करना ।

२. ज्वार, बाजरे आदि पौधों के ऊपर का नर फूल । जीरा ।

भस्मा कप्तान—सच्चा पुं० [हि० भस्मा + कप्तान] १. उस जहाज
का प्रधान जिसपर प्रतीकात्मक ध्वजा रहती है (नौमैनिक) ।
२. वह व्यक्ति जिसपर संस्था के प्रतीकात्मक ध्वज की
जिम्मेदारी हो ।

भस्मा जहाज—सच्चा पुं० [हि० भस्मा + जहाज] बड़े का प्रधान
जहाज जिसपर बड़े का नायक रहता है ।

भस्मा दिवस—सच्चा पुं० [हि० भस्मा + सं० दिवस] वह दिन जब

किसी कार्य से प्रेरित होकर लोगों में सहायता या चढ़ा लिया जाता है और चिह्न स्वरूप सहायता देनेवाले को भंडी भी जाती है (नीसैनिक) ।

मंडावरदार—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + वरदार] वह व्यक्ति जो किसी राज्य या सस्या का भंडा लेकर चलता है ।

मंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० 'भंडा' का स्त्री० अन्धा] छोटा भंडा जिसका व्यवहार प्रायः सकेत प्रादि करने और कभी कभी सजावट प्रादि के लिये होता है ।

मुद्दा—भंडी दिखाता = भंडी से सकेत करता ।

मंडीदार—वि० [हि० भंडी + दा० दार] जिसमें भंडी लगी हो । भंडीवाला ।

मंडोचोलन—संज्ञा पुं० [हि० भंडा + सं० उत्तोलन] भंडा फहराना घुंघरु फहराने का कार्य ।

मि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

मंफ—संज्ञा पुं० [सं० मम्प] १ उछाल । फलांग । कुदान ।

मुद्दा—मंफ देना = कूटना । सं०—करि अपनों कुल नास धनहि सो अगिन मंफ दे आई ।—सूर (शब्द०) ।

मु० २ हाथियों और घोड़ों आदि के गले का एक घासपण । गलमप ।

मंफण—संज्ञा पुं० [मप०] घाँसों को आधा खुली रखना । नेत्रों का अर्धगोचन ।—महा पु०, भा० १, पृ० १२ ।

मंफणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] बरनी । बरीनी । पक्ष्म ।

मंफन^१—संज्ञा पुं० [सं० मम्पन] १ उछलने की क्रिया । उछाल । २. भौंका । सं०—निराशा सिकता कुपय मे अशमरेखा सी सुप्रकित । वायु मंफन में धवल से हिमशिखर सी तुम अकपिन ।—ध्रुवसि, पृ० ६६ ।

मंफन^२—संज्ञा पुं० [सं० मम्पन, प्रा० मपण, हि० मंफना] छिपाने की क्रिया । आवृत्ति करने का कार्य । सं०—विहि अवसर लालन आइ गए उपमा कवि अहं कही नहि जाई । कचन कुभ के मपन को मुकि मपत चंद भनवकत भाई ।—अकबरी०, पृ० ३४६ ।

मंफना—संज्ञा पुं० [सं० मम्पन, प्रा० मपण] छिपाना । ढकना । आवृत्ति करना । सं०—कचन कुभ के मपन को मुकि मपत चंद भनवकत भाई ।—अकबरी०, पृ० ३४६ ।

मंफाक—संज्ञा पुं० [सं० मम्पाक] [स्त्री० मंफाकी] वानर । बदर [को०] ।

मंफाना—संज्ञा पुं० [सं० मम्प या देश०] १. दे० 'मंफान' । २. कुदान । उछाल ।

मंफापात—संज्ञा पुं० [सं० मम्प + पात] ऊँचाई में गहरे पानी में भ्रम से कूद जाना । कूदकर प्राणत्याग करना । सं०—(क) जोग जज्ञ अपतन तीरथ धनादि और, म्फापात लेत जाइ हिवारे गरत हैं ।—सुदर०, प्र०, भा० १, पृ० ४५५ । (ख) को बूड़े म्फापाती, इद्रिय बसि करि न जाती ।—सुदर प्र०, भा० १, पृ० १५७ ।

मंफापाती—वि० [हि० म्फापात] बहुत ऊँचाई से नदी में गिरकर प्राणत्याग करनेवाला ।

मंफाघना—संज्ञा पुं० [सं० मम्पन] १. हिलाना । कपाना । सं०—भनभनात मिली, म्फावत भरना भर भर भाड़ी ।—श्यामा०, पृ० १२० । २. उछालना । कुदान । सं०—फागुण मासि वसत रत प्रायच जइ न सुणेसि । चाचरिकइ मिस खेलती होली म्फावेसि ।—ढोला०, पृ० १४५ ।

मंफारु—संज्ञा पुं० [सं० मम्पारु] वानर । बदर [को०] ।

मंफित—वि० [सं० मम्प] ढंका हुआ । छिपा हुआ । आवृत्त । छाया हुआ ।

मंफो—वि० [सं० मम्पिन] कपि । मंफाक । बदर [को०] ।

मंफ—संज्ञा पुं० [सं० स्तवक या हि० भंडा] भोपा । गुच्छा । स्तवक [को०] ।

मंफना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मंफना' । सं०—व्रज जुवतिन को दर्पन जोई । तामे मुद्द मंफि आई सोई ।—नद० प्र०, पृ० १२६ ।

मंफा—संज्ञा [हि०] दे० 'मंफा' ।

मंफिया—संज्ञा स्त्री० [हि० मंफना] १. छोटी खिड़की । भरोसा । २. मंफरी । जाली ।

मंफोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मंफोरा' ।

मंफोरना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मंफोरना' ।

मंफोलना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मंफोरना' ।

मंफोला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मंफोरा' ।

मंफना—संज्ञा पुं० [हि० मंफना] दे० 'मंफना' । सं०—(क) श्रीरत प्रात समय दोउ बीर । माखन मांगत, बात न मानत, मंफत जसोदा जननी तीर ।—सूर०, १० । १६१ । (ख) सूरज प्रभु आवत हैं हलधर को नहि लखत मंफति कहति तो होते सग दोऊ ।—सूर (शब्द०) ।

मंफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल मंफा जिसे बोरा भी कहते हैं ।

मंफा—संज्ञा पुं० [हि० म्फा] दे० 'म्फा' । सं०—(क) नव नील कलेवर पीत मंफा मलकै पुलकै रुप गोद बिष्ट ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्राव लाल ऐसे मडु पीजे तेरी मंफा मेरी पैगिया घोर ।—हरिदास (शब्द०) ।

मंफिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मंफुली' ।

मंफुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने में की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी । दे० 'मठिया' ।

मंफुली—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'म्फा' ।

मंफुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० 'म्फा' का प्रत्यय०] छोटे बालकों के पहनने का म्फा या ढोला कुरता । सं०—(क) पुट्टन चलत कनक प्रांगन में कोशल्या छबि देखत । नील नलिन तनु पीत मंफुलिया धन दामिनि द्युति पेखत ।—सूर (शब्द०) ।

मंफुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मंफुलिया' । सं०—(क) नहि कह्यो मोर भयो मंफुली दे मुदित महुरि सखि प्रातुरताई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कोउ मंफुली कोइ मंफुल बनिया कोउ बावे रचि ताजा ।—रघुराज (शब्द०) ।

भँगूली^①—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भँगूलिया', 'भँगुली' । उ०—
कुलही चित्र विचित्र भँगूली । निरखहि मातु मुदित मन
फूली ।—तुलसी ग्र०, पृ० २८५ ।

भँगनना—क्रि० प्र० [भनु०] भन भन शब्द होना । भनक भनक
शब्द होया । भकारना । उ०—नेकु रहौ मति बोली भवै मनि
पायनि पैजनिया भँगनैगी ।—(शब्द०) ।

भँगभरा^१—संज्ञा पुं० [सं० जर्जर (= छिद्रयुक्त), प्रा० जर्जर, या हि०]
मिट्टी का जालीदार ढँकना जो खोले हुए दुध के बर्तन पर
रखा जाता है ।

भँगभरा^२—वि० [स्त्री० भँगरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हो ।
भौना ।

भँगरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर, हि० भर भर से भनु०] १ किसी
चीज में बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह । जानी ।
उ०—(क) भँगरी के भरोखनि हँ के भकौरति राघटी हँ में
न जात सही ।—देव (शब्द०) । (ख) भँगरी फूट चूर
होई जाई । तबहि काल उठि चला पराई ।—कबीर म०,
पृ० ५६४ । २ दीवारों आदि में बनी हुई छोटी जालीदार
खिड़की । ३ लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा
जो दमचूल्हे आदि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए
कोयले रहते हैं । जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से
नीचे गिरती है । दमचूल्हे की जाली या भरना । ४ लोहे
आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या
वरामदों में लगाई जाती है । ५ आटा छानने की छलनी ।
६ आग आदि उठाने का भरना । ७ दुपट्टे या घोंती आदि
के आँचल में उसके बाने के सूतों का, सुदरता या शोभा के
लिये बनाया हुआ छोटा जाल, जो कई प्रकार का होता है ।

भँगरी^२—वि० स्त्री० [हि० भँगरा का भत्पा० स्त्री०] दे० 'भँगरा' ।
भँगरीदार—वि० [हि० भँगरी + फा० दार] जालीदार । सूरखदार ।
जिसमें भँगरी या जाली हो ।

भँगरना^①—क्रि० प्र० [सं० भँगन] दे० 'भँगोडना' । उ०—
देख्यो भक्त प्रधान जब राजा जाग्यो नाहि । सुदर सक करी
नही पकरि भँगरी वाहि ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७६१ ।

भँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भँगोटी' ।

भँगोडना—क्रि० प्र० [सं० भँगन] १ किसी चीज को बहुत वेग
और भटके के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट
हो जाय । भकभोरना । जैसे,—वे सोए हुए घे, इन्होंने जाते
ही उन्हें खूब भँगोडा । २ किसी जानवर का अपने से छोटे
जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़कर खूब
भटका देना । भकभोरना । जैसे, कुत्ते या बिल्ली का चूहे को
भँगोडना ।

भँगोरा—संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़ ।

भँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भँगोटी' ।

भँगूलना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भँगूला' ।

भँगूला^१—वि० [हि० भङ्ग + कला (प्रत्य०)] १ जिसके सिर पर

गर्भ के बाल हो । जिसका मुँह न संस्कार न हुआ हो । गर्भ के
बालोवाला (बालक) । २. मुँह न संस्कार के पहले का ।
गर्भ का (बाल) । उ०—हर बघनही कठ कठुला भँगूले
केस मेढ़ी लटकन मसिविदु मुनि मनहर ।—तुलसी ग्र०,
पृ० २८६ ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः बहुवचन रूप में बोला जाता
है । जैसे, भँगूले केश, भँगूले बार । उ०—उर बघनही, कठ
कठुला, भँगूले बार, वेनी लटकन मसि बुदा मुनि मनहर ।
सूर १०।१५१ ।

३. घने पतियोवाला । सघन ।

भँगूला^२—संज्ञा पुं० १ वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हो ।
वह लरका जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँह न हों ।
२ मुँह न संस्कार से पहले का बाल । गर्भ का बाल जो अभी
तक मूँडा न गया हो । ३. घनी पतियोवाला वृक्ष ।
सघन वृक्ष ।

भँगकना—क्रि० प्र० [हि० भपकना] दे० 'भपकना' ।

भँगकी—संज्ञा स्त्री [हि० भपकी] दे० 'भपकी' ।

भँगताल—संज्ञा पुं० [हि० भपताल] दे० 'भपताल' ।

भँगक—संज्ञा पुं० [सं० भम्पाक] बंदर ।

भँगना^१—क्रि० प्र० [सं० भम्प] १. ढँकना । छिपना । घाड़ में
होना । २ उछलना । कुदना । लपकना । भपकना । उ०—
(क) छकि रसाल सीरभ सने मधुर माधुरी गध । ठोर ठोर
भोरत भँवत भोर भोर मधु प्रथ ।—बिहारी (शब्द०) ।
(ख) जबहि भँपति तबहि कपति विहँसि लगति उरोज ।—
सूर (शब्द०) । ३ टूट. पड़ना । एक दम से घा पड़ना ।
उ०—जागत काल सोवत काल काल भपे आई । काल चलत
काल फिरत कबहूँ ले जाई ।—दादू (शब्द०) । ४. भँगना ।
लज्जित होना ।

भँगना^२—क्रि० प्र० पकड़कर दवा लेना । छोप लेना । ढाँक
लेना । उ०—नीची म नीची निपट लों वोठि कुही बौरि ।
उठि ऊँचे नीची दियो मनु कुलिगु भँपि भोरि ।—बिहारी
(शब्द०) ।

भँगरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० भपना (= ढँकना)] पालकी को
ढाँकने की खोली । गिलाफ । ओहवार । उ०—आठ कोठरिया
नी दरवाजा दसयें लागि केवरिया । खिड़की खोलि पिया हम
देखल ऊपर भँप भँगरिया ।—कबीर (शब्द०) ।

भँगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भँगरिया] दे० 'भँगरिया' ।

भँगपाक—संज्ञा पुं० [सं० भम्पाक] बंदर । कपि ।

भँगपान—संज्ञा पुं० [सं० भम्प] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली
जिसमें दोनो ओर दो लंबे बाँस बंधे होते हैं । भम्पान ।

विशेष—इन बाँसों के दोनो ओर बीच में रस्सियाँ बंधी होती हैं,
जिनमें छोटे छोटे दो ओर बाँस पिरोए रहते हैं । इन्हीं बाँसों
को चार आदमी कंधों पर रखकर सवारी ले चलते हैं । यह
सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है ।

मौलो—संज्ञा पुं० [हि० माँ + लो (प्रत्य०)] [स्त्री० माला]
मौलो, मौलिया] छोटा माँ या माँ। छात्र।

मौलाना—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल] कातिहीन होना। समाप्त या नष्ट
होना। गलित होना। उ०—रूप रंग ज्यों फूलड़ा तन तरवर
ज्यों पान। हरिया मौलो कास को झड़ि झड़ि हुए मौलान।
—राम० धर्म०, पृ० ६७।

मौलिकार(५)†—[हि० मौल + काला] कृष्ण वर्ण का। माँवे रंग
का। कुछ कुछ काला। उ०—गैड गयंद जरे भए कारे। मो
बन मिरग रोम मौलिकारे।—जायसी (शब्द०)।

मौलराना—क्रि० प्र० [हि० मौलर] १. कुछ काला पड़ना। २.
कुम्हलाना। सुखना। फीका पड़ना।

मौल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'माँवा'। उ०—ममकत हिये गुलाब के
माँवाँ माँवावति पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

मौलाना^१—क्रि० प्र० [हि० माँवा] १. माँवे के रंग का हो जाना।
कुछ कासा पड़ जाना। जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा
मौला जाना। २. अग्नि का मंद हो जाना। भाग का कुछ
ठंडा हो जाना। ३. किसी चीज का कम हो जाना। घट
जाना। ४. कुम्हलाना। मुरझाना। ५. माँवे से रगड़ना
जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मौलाना^२—क्रि० प्र० १. माँवे के रंग का कर देना। कुछ काला कर
देना। जैसे,—धूप ने उनका चेहरा मौला दिया। २. अग्नि को
मंद करना। भाग ठंडी करना। ३. किसी चीज को कम
करना। उ०—ज्ञान को अभिमान किए मोको हरि पठ्यौ।
मेरोई भजन बापि माया सुख माँवायो।—सूर (शब्द०)। ४.
कुम्हला देना। मुरझा देना। ५. माँवे से रगड़ना। ६. माँवे
से रगड़वाना।

मौलवाना(५)†—क्रि० प्र० [हि० मौलवाना] माँवे से रगड़ना या
रगड़वाना। उ०—ममकत हिये गुलाब के माँवाँ माँवावति
पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

मौलना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. सिर या तलुए प्रादि में में तेल या
घोर कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार
रगड़ना जिसमें वह उस घाँगे के घंदर समा जाय। जैसे—
सिर में कदपू का तेल मौलने से तुम्हारा सिर घंदे दूर ेगा।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी को धटकाकर या अनुचित रूप से उसका घन प्रादि से
लेना। जैसे—इस मोभा ने सुत के बहाने उससे दस रुपए
मौल लिए।

संयो० क्रि०—लेना।

मौ—संज्ञा पुं० [सं०] १. माँवावत। वर्षा मिली हुई तेज भाँधी। २.
सुरगुरु। वृहस्पति। ३. दैत्यराज। ४. ध्वनि। गुंवार शब्द।
५. तीव्र वायु। तेज हवा।

मौ(५)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'माँई'। उ०—भरतहि देखि माहु
उठि घाई। मुरझित प्रबनि परी माँई घाई।—सुखसी (शब्द०)।

४-२१

मौ(५)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'माँई'। उ०—को जाने काहू के
जिय की छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे लामे
प्रेम माँई।—सूर (शब्द०)।

मौआ^१†—संज्ञा पुं० [हि० माँवा] माँवा। टोकरा। माँवा।

मौआ^२†—संज्ञा पुं० [सं० माँवुक, हि० माँऊ] दे० 'माँऊ'। उ०—
साधो एक बन माँऊर माँआ। लावा तितिर तेहि माँह
गुलाने सान बुझावत कोषा।—दरिया, पृ० १२५।

मौआ^३†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'माँआ'।

मौक^१—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें
माया पीछा या मला बुरा न सुके। २. धुन। सबक। नहर।
मोज।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

३. माँच। ताप। ज्वाला। उ०—मात्रा के मऊ जब जरे, कनक
कायिनी सागि। कहु कबीर कस बाचिहै, रुई सपेटी माँचि।
—संतबाबी, पृ० ५७। ४. माँका। ममक। माँक।

क्रि० प्र०—माना।

मऊ^१—संज्ञा स्त्री० [सं० मऊ] दे० 'मऊ'।

मऊ^२—वि० चमकीला। साफ। मोपदार। जैसे, सफेद मऊ।

मऊकेतु(५)†—संज्ञा पुं० [सं० मऊकेतु] दे० 'मऊकेतु'।

मऊमऊ^१—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. व्यर्थ की हुज्जत। फूल भगड़ा
या तकसार। किचकिच। २. व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक
वादविवाद। बकबक।

यौ०—बकबक मऊमऊ।

मऊमऊ^२—वि० [प्रनु०] चमकीला। मोपदार। चमकदार। उ०—
मऊमऊ मऊकती बह्नि वामा के द्य त्यों त्यों।—अपरा,
पृ० ४७।

मऊमऊ^३—वि० [प्रनु०] चमकीला। मोपदार। चमकदार।

मऊमऊहट—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] मोप। चमक। जपमहाहट।

मऊमूलना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मऊमूलना'।

मऊमूल^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] माँका। मऊका। उ०—तन जस पियर
वात भा मोरा। तेहि पर बिरह देह मऊमूल।—जायसी
(शब्द०)।

मऊमूल^२—वि० माँकेदार। तेज। जिसमें खूब माँका हो। उ०—
काम क्रोध समेत लुप्या पवन प्रति मऊमूल। नाहि चितवन
देति तिय सुत नाम नोका मोर।—सूर (शब्द०)।

मऊमूलना—क्रि० प्र० [प्रनु०] किसी चीज को पकड़कर खूब
हिलाना। माँका देना। मऊका देना। उ०—(क) सूरदास
तिनको ब्रज युवती मऊमूलति उर भंक भरे।—सूर (शब्द०)।
(ख) अधिक सुगंधनि सेवक बाबू मलिदन को मऊमूलति
है।—सेवक (शब्द०)। (ग) बातन ते डरपैए कहा
मऊमूलत हैं न भरी भरसात है।—(शब्द०)।

मऊमूल^३—संज्ञा पुं० [प्रनु०] मऊका। बकका। माँका। उ०—मंघ

विलस भनेरा दसकनि पाइव दुख भक्तभोरा रे।—तुलसी (शब्द०) ।

भक्तभोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] छीनाभपटी । होड़ाहोड़ी । उ०—भारत में मची है होरी । इक ओर भाग प्रभाग एक दिशि होय रही भक्तभोरी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०५ ।

भक्तभोलना^१—क्रि० सं० [हि० भक्तभोला] दे० 'भक्तभोरना' ।

भक्तभोलना^२—क्रि० प्र० कपना । हिसना डुलना । भौंका खाना । उ०—पकरयो चोर दुष्ट दुस्सासन चिखल बदन भई डोलै । धैरै राहु नीच ढिग घाएँ चद्रकिरन भक्तभोलै ।—सूर०, १।२५६ ।

भक्तभोला—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तभोरा' । उ०—भोर भोर तोर देत भक्तभोला, चलत नेक नहि जोर ।—तुरसी० श०, पृ० ७ ।

भक्तभोला—संज्ञा पुं० [धनु०] धायात । धक्का । भक्तभोरा । उ०—रचना यह परब्रह्म की चौराशी भक्तभोल ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ३१५ ।

भक्तड़—संज्ञा पुं० [हि० भक्त] दे० 'भक्तड़' ।

भक्तड़ा—संज्ञा स्त्री० [देख०] सूत सी निकली हुई जड़ । (प्र० फाईवसं०) ।

भक्तड़ी—संज्ञा स्त्री० [देख०] दोहनी । दूध दुहने का बरतन ।

भक्तना—क्रि० प्र० [धनु०] १ बकवाद करना । व्यर्थ की बातें करना । २ क्रोध में आकर अनुचित ध्वन कहना । उ०—वेगि चलो सब कहें, भक्तं तिन सौं निज हठ तैं ।—नंद० प्र०, पृ० २०६ । ३ कुमलाना । क्षीभना । उ०—हरि को नाम, दाम छोटे लौं भक्ति भक्ति डारि दयो ।—सूर०, १।१४ । ४ पछताना । कुदना । उ०—ऊधो कुलिश धई यह छाती । मेरो मन रसिक लग्यो नंदलालहि भक्त रहत दिन राती ।—सूर (शब्द०) ।

भक्तरा—संज्ञा पुं० [हि० भक्त] दे० 'भक्त' ।

भक्ता—वि० [हि०] दे० 'भक्त' ।

भक्ताभक्त^१—वि० [धनु०] जो खूब साफ सीर चमकता हुआ हो । दकाधक । चमकीला । भलाभल । उज्ज्वल । जैसे,—सफेदी होने से यह कमरा भक्ताभक्त हो गया । उ०—भौंकि कै प्रीति सौं भोने भरोखनि भारि कै भाका भक्ताभक्त भांकी ।—रघुराज (शब्द०) ।

भक्ताभक्त^२—वि० [धनु०] चमकीला । उज्ज्वल । उ०—खेंसी है कटारी कट्यो मे अग्यारी । भक्ताभक्त क्वारा दई की सभारी ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८२ ।

भक्ताभोर—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तभोर' । उ०—चहूँ धार तोपे चलै बान धुटै । भक्ताभोर समसेर की मार बोलै ।—हुस्मीर०, पृ० १६ ।

भक्ताभोरी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] हिलाने या भक्तभोरने का क्रिया या स्थिति । उ०—घोरी हूँ किसोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब । मची दुहुँ भोर भक्ताभोरी है ।—ब्रज० प्र०, पृ० २६ ।

भक्तराना^१—क्रि० प्र० [हि० भक्तोरा] भक्तोरा देना । भूमना ।

उ०—खयीं सांकरै कुजमग करतु भांकि भक्तरातु । मद मम मारत तुरंग खुदसु आवतु जातु ।—विहारी (शब्द०) ।

भक्तराना^२—क्रि० सं० भक्तोरा देना । भूमने में प्रवृत्त करना ।

भक्तोर^१—संज्ञा पुं० [धनु०] १ हवा का भौंका । पवन की हिसोर । हिलकोरा । उ०—(क) चार लोचन हँसि विलोकनि देखिके चितचोर । मोहनी मोहन लगावत लटक मूक भक्तोर ।—सूर (शब्द०) । (ख) पवि पाहन दामिनी गरज भरि चकोर खरि खोभि । रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीभि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) चारिहुँ भोर तैं पीन भक्तोर भक्तोरन घोर घटा घहरानी ।—पद्माकर (शब्द०) । २. भटका । भौंका । धक्का ।

भक्तोरना—क्रि० प्र० [धनु०] हवा का भौंका मारना । उ०—(क) चहुँ बिसि पवन भक्तोरत घोरत मेघ घटा गंभीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) भौंकी के भरोखनि हँ के भक्तोरति रावटी हँ मैं न जात सही ।—देव (शब्द०) ।

भक्तोरा—संज्ञा पुं० [धनु०] हवा का भौंका । बायु का वेग ।

भक्तोरा^१—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'भक्तोर' या 'भक्तोरा' । उ०—मृदु पदनास मद मलयानिल विलगत शोश निचोल । नील पीत सित धवन बज्जा चल सीर समीर भक्तोल ।—सूर (शब्द०) ।

भक्तोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भक्तोरा' । उ०—(क) धन मई वारी पुरुष भए भोला सुरत भक्तोरा खाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ७५ । (ख) उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में भक्तोले खातीं नजर पाती ।—रगभूमि, पृ० ४७६ ।

भक्ती^१—वि० [प्रा० जगजग (=चमकना) धयवा धनु०] खूब साफ और चमकता हुआ । भक्ताभक्त । ओपदार ।

भक्ती^२—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'भक्त' ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—उतरना ।

भक्तड़^१—संज्ञा पुं० [धनु०] तेज धांधी । तूफान । तीव्र वायु । भधड़ ।

क्रि० प्र०—घाना ।—उठना ।—चखना ।

भक्तड़^२—वि० [हि० भक्त + ङ (प्रत्य०)] दे० 'भक्ती' ।

भक्ता—संज्ञा पुं० [धनु०] १. हवा का तेज भौंका । २. भक्तड़ । धांधी (लघ०) ।

भक्ता भुक्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० भौंकि भूँक] किसी बात को ध्यान से न सुनकर हसर उबर भाँकना । बात को गौर से न सुनना । महुटियाना । उ०—घाघ कहै तब शनते चिनवै भक्ताभुक्ती करते ।—सं० दरिया, पृ० १३५ ।

भक्ताभोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भक्तभोरना] दे० 'भक्तभोरी' । उ०—भक्तभोरी ऐँचातानी, जहँ तहँ गए बिलाई ।—जग० बानी, पृ० ६८ ।

भक्ती—वि० [धनु० या प्रा० भल] १. व्यर्थ की बकवाद करनेवाला । बहुत बक बक करनेवाला । २. जिसे भक्त सवार हो । जो प्रादमी अपनी धुन के आगे किसी की न सुने । सनकी ।

भक्तवना^१—क्रि० प्र० [प्रा० भलण, भक्तवण] दे० 'भौंखना' ।

उ०—कह गिरिधर कविराय मातु भक्तवै वहि ठाहीं ।—
गिरिधर (शब्द०) ।

भक्तवर्(५)।—संज्ञा पु० [हि० भक्तवर्] भक्तवर् । उ०—घर ग्रंथ
बीच बेलडी, तहें लाल सुगंधा बूल । भक्तवर् इक नां आयो,
नानक नहीं कबूल ।—सतवाणी०, पृ० ७० ।

भक्तव'—संज्ञा स्त्री० [हि० भोक्तव] भोक्तव का भाव या क्रिया ।

मुहा०—भक्त मारना=(१) व्यर्थ समय नष्ट करना । वक्त
खराब करना । जैसे,—प्राप सवेरे से यहाँ बैठे हुए भक्त मार
रहे हैं । (२) मरनी मिट्टी खराब करना । (३) विवश
होकर बुरी तरह भोक्तव । लाचार होकर खूब कुदना । जैसे,—
(क) तुम्हें भक्त मारकर यह काम करना होगा । (ख) भक्त
मारो और वही जाओ । उ०—नीर पियावत का फिरे घर घर
सायर बारि । तृपारत जो होइगा पीवैगा भक्त मारि ।—
कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १५ ।

भक्तव' (५)।—संज्ञा पु० [सं० भक्त] भक्तव । मछली । उ०—प्राखित तें
प्रांशु उमडि परत कुचन पर प्रात । जनु गिरीस के सीस पर
ढारत भक्त मुकतान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७० ।

यौ०—भक्तकेतु । भक्तनिकेत । भक्तवराज । भक्तलग्न ।

भक्तकेतु—संज्ञा पु० [सं० भक्तकेतु] दे० 'भक्तकेतु' । उ०—प्राखों को नचा
नचाकर भक्तकेतु ध्वजा फहरात ।—वी० शा० महा०, १८८ ।

भक्तवना (५)।—क्रि० प्र० [प्रा० भक्तवर्ण] दे० 'भोक्तव' । उ०—(क)
बाबा नद भक्तव केहि कारण यह कहि मया मोह भक्तव ।
मुरदास प्रभु मातु पिता को तुरतहि दुख डारयो बिसराय ।
—सूर (शब्द०) । (ख) पुनि घाँइ घरी हरि लू की मुजान तें
छूटिबे को बहु भाँति भक्तव री ।—केशव (शब्द०) । (ग) कवि
हरिजन मेरे उर वनमाल तेरे बिन गुन माल रेख सेख देखि
भक्तियाँ ।—हरिजन (शब्द०) ।

भक्तनिकेत (५)।—संज्ञा पु० [सं० भक्तनिकेत] दे० 'भक्तनिकेत' ।

भक्तवराज (५)।—संज्ञा पु० [सं० भक्तवराज] भक्तव । नक्त । भक्तवराज ।
उ०—भक्तवराज प्रस्यो गजराज कृपा ततकाल बिलव कियो न
तहाँ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६ ।

भक्तलग्न (५)।—संज्ञा पु० [सं० भक्तलग्न] दे० 'भक्तलग्न' ।

भक्तिया—संज्ञा स्त्री [हि० भक्त + ह्या (प्रत्य०)] दे० 'भक्त' ।

भक्तियाँ (५)।—संज्ञा स्त्री [सं० भक्त] भोक्त । मछली । मत्स्य । उ०—
(क) पावत बन ते साँझ देखो मैं गायन साँझ, काहू को
ढोढारी एक शीप मोर पखियाँ । भवसी कुसुम जैसे चंचल
वीरध नैन मानो रस भरी जो लरत जुगल भक्तियाँ ।—सूर
(शब्द०) । (ख) गोकुल साहू मैं माम करै ते भई तिय
बारि बिना भक्तियाँ है ।—(शब्द०) ।

भगडना—क्रि० प्र० [देशी भगड (= भगडा, कलह) + हि० ना
(प्रत्य०) या भक्तभक्त से प्रभु०] दो भादमियों का आवेश
में भाकर परस्पर विवाद करना । भगडा करना । हुज्जत
तकरार करना । लड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

भगडा—संज्ञा पु० [देशी भगड या हि० भक्तभक्त से प्रभु०] दो
मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद । लड़ाई । टटा । बसेड़ा
कलह । हुज्जत । तकरार ।

क्रि० प्र०—करना ।—उठाना ।—समेटना ।—ढालना ।—
फेंसाना ।—तोड़ना ।—खट्टा करना ।—मचाना ।—लगाना ।

यौ०—भगडा बसेड़ा । भगडा भमेला ।

मुहा०—भगडा खडा होना = भगडा पैदा होना । भगडा खरीदना
= भकारण कोई ऐसी बात कह देना जिससे प्रतायास भगडा
खडा हो जाय । उ०—शेख जी जहाँ बैठे हैं भगडा जरूर
खरीदते हैं ।—फिसाना०, भा० १, पृ० १० । भगडा मोल
लेना = दे० 'भगडा खरीदना' ।

भगडालू—वि० [हि० भगडा + भालू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला ।
जो बात बात में भगडा करता हो ।

भगडी (५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगडा] अपने नेग के लिये भगडा
करनेवाली स्त्री ।

भगार—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की बिड़िया । उ०—तुलसी लाल
कर करे सारस भगार तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत है ।—
रघुनाथ (शब्द०) ।

भगारना—क्रि० प्र० [देशी भगड, हि० भगडा] दे० 'भगडना' ।
उ०—जसुमति मम भक्तिसाख करे ।—कब मेरी भँवरा गहि
मोहन जोइ सोइ कहि मोली भगरे ।—सूर०, १०।७६ ।

भगारा (५)।—संज्ञा पु० [देशी भगड] दे० 'भगडा' ।

भगाराऊ (५)।—वि० [हि० भगडालू] दे० 'भगडालू' उ०—याहि कहा
मैया मुँह लावति, गनति कि एक लंगरि भगाराऊ ।—तुलसी
ग्रं०, पृ० ४३४ ।

भगरिनि (५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगडी] दे० 'भगडी' । उ०—(क)
बहुत दिनन की भासा लागी भगरिनि भगरी कीनी ।—सूर०,
१०।१५ । (ख) भगरिनि तैं हों बहुत खिझाई । कचनहार
दिए नहि मानति तुहीं मनोखी दाई ।—सूर०, १०।१३ ।

भगरी (५)।—संज्ञा स्त्री [हि० भगडी] दे० 'भगडी' । उ०—यशोमति
लटकति पाँय परे । तेरो भलो मनइहो भगरी तूँ मति मनहि
डरे ।—सूर (शब्द०) ।

भगरौ (५)।—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'भगडा' । उ०—(क) मोर जो वा
समय प्रभुन को मुरारीदास वह वस्तु न देते तब भी श्री
बालकृष्ण जी प्राकृतिक बालक की नाई । भगरौ मुरारी-
दास सों करते ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १०० ।
(ख) तहें तुम सुनहु बड़ा घन तुम्हरो । एक मोक्षता पर सब
भगरौ—नद० ग्रं०, पृ० २७३ ।

भगला (५)।—संज्ञा पु० [हि० भगा + ला (प्रत्य०)] दे० 'भगा' ।

भगा—संज्ञा दे० [देश०] छोटे बच्चों के पहनने का कुछ डोला कुरता ।
उ०—नद उदै सुनि प्रायो हो कृपमानु की जगा । दैवे कौं
बड़ो महर, देत ना लावे गहर लाल की बघाई पाऊँ लाल की
भगा ।—सूर० १०।३६ । २ वल । शरीर पर पहनने का
कपड़ा । उ०—(क) भगा पगा भव पाग पिछोरी डाडिन की
पहिरायो । हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो ।
—सूर (शब्द०) । (ख) सीस पगा न भगा तन मे प्रभु आवे

को ग्राहि नसे किहि ग्रामा ।—कविता की०, भा० १, पृ० १४६ ।

भंगुलि, भंगुलियां—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगा का भल्पा०] दे० 'भगा' । उ०—प्रफुलित हूँ के धानि, दोनी है बसोदा रानी, भीलीयं भंगुलि तारि कंचन तगा ।—सूर०, १०।३६ ।

भंगुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भगा' ।

भंगुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भगा' । उ०—हार दुम पलना बिछोना नव पल्लव की, सुमन भंगुला सोहैं तन छवि भारी है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५७ ।

भंगुल—संज्ञा पुं० [सं० भ्रातिन्वर] कुछ चौड़े मुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक बरतन ।

विशेष—इस बरतन की ऊपरी तह पर पानी को ठंडा करने के लिये पोड़ी सी धातु लगा दी जाती है । इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नकाशियाँ भी की जाती हैं । इसका व्यवहार प्रायः गरमी के दिनों में जल को अधिक ठंडा करने के लिये होता है ।

भंगुमी—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. फूटी कीड़ी । २. दलाली का घन ।—(दलालों की भाषा) ।

भंगुल—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगुलना] १. भंगुलने की क्रिया का भाव । किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया । चमक । भड़क । जैसे,—धमी इनकी भंगुल नहीं गई है, इसी से खुसकर नहीं बोलते ।

क्रि० प्र०—जाना ।—मिटना ।—होना ।

मुहा०—भंगुल निकलना=भंगुल दूर होना । भय का नष्ट होना । भंगुल निकालना=भंगुल या भय दूर करना । जैसे,—हम चार दिन में इनकी भंगुल निकाल देंगे ।

२. कुछ क्रोध से बोलने की क्रिया या भाव । भुंभुवाहट । ३. किसी पदार्थ में से रह रहकर निकलनेवाली विशेषतः मधुर गंध ।

क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।

४. रह रहकर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा । कभी कभी होनेवाली सनक ।

क्रि० प्र०—घाना ।—चढ़ना ।—सवार होना ।

भंगुलना—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगुलना] भंगुलने या भड़कने का भाव । डरकर हटने या रुकने का भाव । भड़क ।

भंगुलना—क्रि० प्र० [भनु०] १. किसी प्रकार के भय की आशंका से एकस्मात् किसी काम से रुक जाना । अचानक डरकर ठिठकना । बिदकना । चमकना । भड़कना । उ०—(क) कबहुं चुंबन देत भाकषि जिय सेत करति बिन चैत सब हेत धरने । मिसति गुज कंठ है रहति धंग लटक के जात दुख दूर हूँ भंगुल सपने ।—सूर (शब्द०) । (ख) छाये परिये के डरन सँके न हाय छुवाइ । भंगुलति हियहि गुलाब के भँवा भँवावति पाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

संज्ञो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. भुंभुलाना । बिजलाना । ३. चौक पड़ना । उ०—जसुमति

मन मन यह विचारति । भंगुल उठयो सोवत हरि भवहीं कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति ।—सूर०, १०।२०० । ३. संकुचित होना । भंगुलना । उ०—भति प्रतिपाल कियो तुम हमरो सुनत नंद बिय भंगुल रहे ।—सूर०, १०।३११२ ।

भंगुलना—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगुलना] दे० 'भंगुल' । उ०—वह रस की भंगुलनि वह महिमा, वह मुसुकनि वंसो संजोग ।—सूर (शब्द०) ।

भंगुलना—क्रि० प्र० [हि० भंगुलना का प्रे० रूप] १. अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कराके किसी काम से रोक देना । चमकाना । भड़काना । उ०—जुज्यो उभकि मीपति बदन फुकति बिहंसि सतराह । तुल्यो गुलाब मुठी मुठी भंगुलकावत पिय जाइ ।—बिहारी (शब्द०) । २. चौंका देना ।

भंगुलार—संज्ञा स्त्री० [हि० भंगुलारना] भंगुलारने की क्रिया या भाव ।

भंगुलारना—क्रि० प्र० [भनु०] १. ठपटना । डाँटना । २. डुर-डुराना । ३. अपने सामने कुछ न गिनना । किसी को अपने भागे मंद बना देना । उ०—नख मानो चंद्र बाण साजि के भंगुलारत उर आय्यो । सुरदास मानिनि रण जीत्यो समर संग डरि रण भाग्यो ।—सूर (शब्द०) ।

भंगुलना—क्रि० प्र० [भनु०] भौंभुलाने का बजना । भौंभुल की ध्वनि होना । उ०—भंगुल भंगुलकत उठत तरंग रंग, भरि उच्चारहि दंद दंद मिरदव ।—माधवानल०, पृ० १६४ ।

भंगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० बज्जर, हि० भंगुली] जासीदार खिड़की । भंगुली । उ०—भंगुल भंगुल भंगुलिन जहाँ भौंभुल भुकि भुकि भूमि ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३ ।

भंगुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भंगुलिया' ।

भट्ट—क्रि० वि० [सं० भट्टति] तुरंत । उसी समय । उत्क्षण । फौरन । जैसे,—हमारे पहुँचते ही वे भट्ट उठकर चले गए ।

मुहा०—भट्ट से=जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक ।

यौ०—भट्ट पट ।

भट्टक—संज्ञा पुं० [भनु०] वायु का झोंका । धौंधी । उ०—भट्टक भट्टल छोड़न ठाम, कएल महातर तर विसराम ।—विद्यापति, पृ० ३०३ ।

भट्टकनहार—वि० [हि० भट्टकना + हार] भट्टकनेवाला । भट्टका देनेवाला । उ०—भट्टकनहार भट्टकनो । भट्टकनहार भट्टकनो ।—प्राण०, पृ० ११८ ।

भट्टकना—क्रि० प्र० [हि० भट्ट] १. किसी चीज को इस प्रकार एक-बारनी भौंभुल से हिलाना कि उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या घलस हो जाय । भट्टके से हलका धक्का देना । भट्टका देना । उ०—नासिका सलित बेसरि बानी प्रधर तट सुभा तारक छवि कहि न आई । धरनि पद पटक भट्टकि भौंहनि भटक भटक तहाँ रोके कन्हारी ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है । और उस चीज के लिये भी होता है जिसपर कोई दूसरी चीज चढ़ती

या पड़ती है। जैसे,—यदि धोती पर कनखजुरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती भटक दो' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने भटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से भलग कर दिया तो कहेंगे कि 'कृष्ण ने राम का हाथ भटक दिया'।

संयो० क्रि०—बेना।

२. किसी चीज को जोर से हिलाना। भोंका देना। भटका देना।

मुहा०—भटककर=भोंके से। भटके से। तेजी से। उ०—भटकि चढ़ति उतरति घटा नेक न याकति देह। मई रहति नट की बटा भटकि नागरी नेह।—बिहारी (शब्द०)।

३. दबाव डालकर आलाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ँठना। जैसे,—(क) भाज एक बरमास ने रास्ते में दस रुपए उनसे भटक लिए। (ख) पंडित जी भाज उनसे एक धोती भटक साए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—भटके का माल=जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

भटकना^२—क्रि० प्र० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे,—चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल भटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

भटका—संज्ञा पु० [प्रनु०] १. भटकने की क्रिया। भोंके से दिया हुआ हलका धक्का। भोंका।

उ०—पिउ मोतियन की माल है, पोई कावे घाग। जतन करो भटका घना, नहि टूटै कहुँ लागि।—संतवाणी०, पृ० ४२।

क्रि० प्र०—खाना।—बेना।—मारना।—लगना।—लगाना।

२. भटकने का भाव। ३. पशुबध का वह प्रकार जिसमें पशु एक ही घाघात से काट डाला जाता है। उ०—मुसलमान के जिबह हिंदू के मारें भटका।—पलद०, पृ० १०६।

यौ०—भटके का मांस=उक्त प्रकार के मारे हुए पशु का मांस।

४. आपत्ति, रोग या शोक आदि का घाघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगना।

५. कुस्ती का एक पंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दाय करले के हरादे से पेट में घुस आता है।

भटकाना^३—क्रि० सं० [हि० भटकना] भटके से स्थानच्युत कर देना। भटके से प्रस्थित कर देना।—उ०—यहि सालच भोंकवारि भरत ही, हार तोरि चोली भटकाई।—सूर (शब्द०)।

भटकारा—संज्ञा स्त्री [हि०] १. भटकारने का भाव। भटकने का भाव वा क्रिया। २. दे० 'फटकार'।

भटकारना—क्रि० सं० [प्रनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमें उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या भलग हो जाय। भटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ

करने के लिये चादर भटकारना या किसी का हाथ भटकारना। दे० 'भटकना'।

भटक्कना^४—क्रि० सं० [हि० भटकना] भटका देना। भोंका देना। उ०—भटक्कत इक्कन की गहि इक्क।—प० रासी, पृ० ४१।

भटकारी—क्रि० वि० [प्रनु०] जल्दी जल्दी। उ०—घाजु आभोत हरि गोकुल रे, पय चलु भटकारी।—विद्यापति, पृ० ३६५।

भटपट—अव्य० [प्रा० भटपट या हि० भट + प्रनु० पट] प्रति धीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे,—तुम भटपट जाकर बाजार से सोदा ले आओ। उ०—राम युधिष्ठिर बिक्रम की तुम भटपट सुरत करो रो।—भारतेंदु० प्र० भा० १, पृ० ५०३।

भटा—संज्ञा स्त्री [सं०] भू माँवला।

भटाका—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'भट्टाका'।

भटापटा^५—संज्ञा स्त्री [प्रा० भटपट=छोना भपटी, (भटपिभ=छोना हुमा)] हलचल। उत्पात। उपद्रव। उ०—तिहुँ लोक होत भटापटा, सब चार जुबन निवास हो—कबीर, सा०, पृ० ११।

भटासा—संज्ञा स्त्री [हि० भट्टी] बोछार।

भट्टि—संज्ञा स्त्री [सं०] १. छोटा पेड़। २. भाड़ी। गुल्म [को०]।

भट्टिका—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'भाटा'।

भट्टिति^६—क्रि० वि० [सं०] १. भट। चटपट। फौरन। तत्काल। तुरत। उ०—कटत भट्टिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।—तुलसी (शब्द०)। २. बिना समझे बृद्धि।

भट्टोला^७—संज्ञा पु० [देश०] वह खाट जिसकी बुनावट टूट टूटकर ढीली हो गई हो। उ०—माटी के कुडिल न्हामो, भट्टोले मुलाभो। फाटी गुदरिया बिछामो, धोरा कहि कहि बोली।—पोदार ग्रंथि० प्र०, पृ० ६१७।

भट्ट^८—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'भट'। उ०—दुधं तीन पानं हय-तीहि पान। वहै पग भट्ट सुदाहिम घट्ट।—पृ० रा०, २४। १७५।

भट्ठा—क्रि० वि० [हि० भट] धीघ्र। दे० 'भट'। उ०—जद जावे रे जद जावे। भठ सेस गयो समभावे।—रघु० सू०, पृ० १५६।

भट्ट^९—संज्ञा स्त्री [हि० भट्टना] १. दे० 'भट्टी'। २. ताले के भीतर का खटका जो चाभी के घाघात से घटता बढ़ता है।

भट्टकना—क्रि० सं० [प्रनु०] दे० 'भटकना'।

भट्टक्कारा—संज्ञा पु० [प्रनु०] दे० 'भट्टाका'।

भट्टभट्टाना—क्रि० सं० [प्रनु०] १. दे० 'भट्टकना'। दे० 'भट्टोड़ना'।

भट्टन—संज्ञा स्त्री [हि० भट्टना] १. जो कुछ भट्ट के गिरे। भट्टी हुई चीज। २. भट्टने की क्रिया या भाव। ३. लगाए हुए धन का मुनाफा या सुद।—(क्व०)।

यौ०—भट्टनभट्टन—दे० 'भट्टन'।

भड़ना—क्रि० प्र० [सं० खरण या √भृद्, अथवा सं० भर ('निर्भर' में प्रयुक्त), प्रा० भृड] किसी चीज से उसके छोटे छोटे भ्रगों या भ्रगों का टूट टूटकर गिरना । जैसे, आकाश से तारे भड़ना, वदन की धूल भड़ना, पेट में से पत्तियाँ भड़ना, वर्षा की बूँदें भड़ना ।

मुहा०—फूल भड़ना । दे० 'फूल' के मुहावरे ।

२ अधिक मान या सख्या में गिरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

३ वीर्य का पतन होना । (वाजारू) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. भाड़ा जाना । साफ किया जाना । ५. वाद्य का बजना । जैसे, नोबत भड़ना ।

भड़प^१—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु०] १ दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ । लड़ाई । २. क्रोध । गुस्सा । ३. आवेश । जोश । ४. धाग की ली । लपट ।

भड़प^२—क्रि० वि० [देशी भड़प्प या भृनु०] दे० 'भड़का' ।

भड़पना—क्रि० प्र० [भृनु०] १ शक्तिमान करना । हमला करना । बेग से किसी पर गिरना । २. छोप लेना । ३. लड़ना । भड़गना । उलझ पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

४ जबरदस्ती किसी से कुल छीन लेना । भटकना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

भड़पा—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु० या देशी भड़प्प] हाथापाई । गुत्यमगुत्या । यो०—भड़पाभड़पी = हाथापाई । कहा सुनी ।

भड़पाना—क्रि० सं० [भृनु०] दो जीवों विशेषतः पक्षियों को लड़ाना ।—(वव०) ।

भड़पी—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु०] दे० 'भड़वा' ।

भड़वेरी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० भ्राड + वेर] १ जगली वेर । २. जगली वेर का पोषा ।

मुहा०—भड़वेरी का काँटा = लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य । व्यर्थ भड़गा करनेवाला मनुष्य ।

भड़वैरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'भड़वेरी' ।

भड़वाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० भृड (= भड़) + सं० वायु, हि० वाइ] वह वायु जो भड़की लिए हो । वर्षा की भड़की से भरी हुई वायु । वह वायु जिसमें वर्षा की फुहारें मिली हों । उ० अति घण ऊनिमि प्राविशत भामी रिठि भड़वाई । वग ही भला त बप्पडा घरणि न मुकइ पाइ ।—ढोला०, दू० २५७ ।

भड़वाई—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० भ्राडना] दे० 'भड़ाई' ।

भड़वाना—क्रि० सं० [हि० भ्राडना का प्रे० रूप] भ्राडने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को भ्राडने में प्रवृत्त करना ।

भड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० भ्राडना] भ्राडने का भाव । भ्राडने का काम या भ्राडने की मजदूरी ।

भड़ाक—क्रि० वि० [भृनु०] दे० 'भड़ाका' ।

भड़ाका^१—सञ्ज्ञा पुं० [भृनु०] भड़प^१ । दो जीवों की परस्पर मुठभेड़ ।

१. —क्रि० वि० जल्दी से । शीघ्रतापूर्वक । चटपट ।

भड़ाभड़—क्रि० वि० [भृनु०] १ लगातार । बिना रुके । बराबर । एक के बाद एक । उ०—भर भर तोप भड़ाभड़ मारो ।—कवीर० पृ०, पृ० ३८ । २ जल्दी जल्दी ।

भड़ाभड़ि^२—क्रि० वि० [भृनु०] दे० 'भड़ाभड़' । उ०—रन में पैठि भड़ाभड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै ।—चरण० जनी०, पृ० ८७ ।

भड़्डी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० भड़ना अथवा सं० भर (= भरना) या देशी भड़ी (= निरंतर वर्षा)] १ लगातार भड़ने की क्रिया । बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव । २ छोटी बूँदों का वर्षा । ३. लगातार वर्षा । बराबर पानी बरसना । ४. बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजें रखते, देते अथवा निकालते जाना । जैसे,—उन्होंने बातों (या गालियों) की भड़्डी लगा दी ।

क्रि० प्र०—बँधना ।—बाँधना ।—लगना ।—लगाना ।

५ ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से हटता बढ़ता है ।

भणभण, भणभणा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] भन् भन् की ध्वनि । भनभन का शब्द (को०) ।

भणत्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'भनकार' (को०) ।

भन—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु०] वह शब्द जो किसी धातुखंड आदि पर आघात लगने से होता है । धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि । यौ०—भन भन ।

भनक—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु०] भनकार का शब्द । भन भन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है । जैसे, हथियारों की भनक, पाजेब की भनक, तूँडियों की भनक । उ०—ढोल उनक भनक गोमुख सहनाई ।—घनानंद, पृ० ४८६ ।

भनकना—क्रि० प्र० [भृनु०] १ भनकार का शब्द करना । २. क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना । ३. चिड़चिड़ाना । क्रोध में आकर जोर से बोल उठना । ४. दे० 'भोलना' ।

भनकमनक—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु०] मद मद भनकार जो बहुधा आसूषणों आदि से उत्पन्न होती है । उ०—भनक मनक धुनि होत लगत कानन को प्यारी ।—ब्रज० प्र०, पृ० ११९ ।

भनकवात—सञ्ज्ञा स्त्री [भृनु० भनक + सं० वात] घोंडों का एक रोग जिसमें वे अपने पैर को कुछ भटका देकर रखते हैं ।

भनकाना—क्रि० सं० [भृनु० भनकना का प्रे० रूप] भनकार उत्पन्न करना । बजाना ।

भनकार—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० भणत्कार, प्रा० भणवकार] दे० 'भनकार' उ०—घर घर गोपी दही बिलोवहि कर ककन भनकार ।—सूर (शब्द०) ।

भनकारना^१—क्रि० प्र० [हि० भनकार] दे० 'भनकारना' ।

भनकारना^२—क्रि० सं० दे० 'भनकारना' ।

भनकोर^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० भनकार या भनकोर] दे० 'भनकार' । उ०—लोका छोके विजुली चमके भिगुर बोलै भनकोर के ।

—कवीर० पृ०, भा० ३, पृ० ३० ।

भनभन—संज्ञा स्त्री० [भनु०] भन भन शब्द । भनकार । भन-भनाहट ।

भनभना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो तमाखू की नसों में छेद कर देता है । इसे चनचना भी कहते हैं ।

भनभना^२—वि० [भनु०] जिसमें से भनभन शब्द उत्पन्न हो ।

भनभनाना^१—क्रि० प्र० [भनु०] १. भन भन शब्द होना । २. (लाक्ष०) भय, सिहरन या हर्ष से रोमांचित होना । किसी अनुभूति से पुलकित होना । जैसे, न रोएँ भनभनाना ।

भनभनाना—क्रि० स० भनभन शब्द उत्पन्न करना ।

भनभनाहट—संज्ञा स्त्री० [भनु०] १. भनभन शब्द होने की त्रिया या भाव । भनकार । २. भन भुनी ।

भनभोरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

भनभुत—वि० [सं०] दे० 'भनभुत' । उ०—दूध घँतर का सरल, भनभान, खिल रक्षा मुखदेश पर युतिमान । किंतु है भव भी भनभुत तार, बोलते हैं भूष बारवार ।—साम०, पृ० ४८ ।

भनभन—संज्ञा पुं० [भनु०] भन भन शब्द । भनकार ।

भनभनाना^१—क्रि० प्र० और सं० [भनु०] दे० 'भनभनाना' ।

भनभन^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घान ।

भनभन—संज्ञा पुं० [देश० ?] प्राचीन काल का एक प्रकार का वाजा जिसपर चमड़ा मड़ा हुआ होता था ।

भनभन^१—संज्ञा स्त्री० [भनु०] भनकार । भनभन शब्द ।

भनभन^२—क्रि० वि० भनभन शब्द सहित । इस प्रकार जिसमें भन भन शब्द हो । जैसे,—भनभन खाड़े बजने लगे, भनभन खप-वरसने लगे ।

भनभन^३—वि० [हि० भनी] दे० 'भनी' । उ०—भनभन रतन मनि जटित कटि किंकिन कखित पीत पट भनभन ।—सूर (शब्द०) ।

भनभनाना—क्रि० प्र० [भनु०] दे० 'भनभनाना' । उ०—मुखर भनभनते रहे या मूक हो सब शब्द, पोपले वाचाल ये थोथे निहोरे ।—हरी घास०, पृ० २१ ।

भनभनहट—संज्ञा स्त्री० [भनु०] भनकार का शब्द । भनभनहट । उ०—टुटे सार सन्नाह भनभनहटे सौ । परे दूटि के भूमि खनभनहटे सौ ।—सूदन (शब्द०) ।

भप—क्रि० वि० [सं० भप्प (= जल्दी से गिरना, कूदना)] जल्दी से । तुरंत । भट । उ०—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि भप यमुना जल लीनो । सोवत काला जाइ जगायो फिरि भारत हरि कीनो ।—सूर (शब्द०) ।

भप^१—भप भप । भपाभप ।

मुहा०—भप खाना = (१) पतंग का जल्दी से पेंदी के बल गिर पड़ना । (२) भप खाना । भपना ।

भपक—संज्ञा स्त्री [हि० भपकना] १. उतना समय जितना पलक गिरने में लगता है । बहुत थोड़ा समय । २. पलकों का परस्पर मिलना । पलक का गिरना । ३. हलकी नींद । भपकी । ४. लज्जा । शर्म । हया । भेप ।

भपकना—क्रि० प्र० [सं० भप्प (= जोर से पड़ना, कूदना)] १.

२. पलक गिराना । पलकों का परस्पर मिलना । भपकी लेना । ऊँचना ।—(भव०) । ३. तेजी से भागे बढ़ना । भपटना । ४. ढकेलना । ५. भेपना । शरमिदा होना । उ०—तभी, देवि, क्यों सहसा दोख, भपक, छिप जाता तेरा स्मित मुख, कविता की सजीव रेखा सो मानस पट पर घिर जाती है ।—इत्यलम्, पृ० ६८ । ६. डरना । सहम जाना । उ०—कहु देत भपकी भपकि भपकहु देत खाली दाऊं ।—रघुराज (शब्द०) ।

भपका—संज्ञा पुं० [भनु०] हवा का भोंका ।—(तथा०) ।

भपकाना—क्रि० स० [भनु०] पलकों को बरवार बद करना । जैसे, भौख भपकाना ।

भपकारी—वि० स्त्री [हि० भपक + कारी (प्रत्यय०)] १. निदियारी । भपकानेवाली । २. हयादार । लज्जा से झुकनेवाली । उ०—कारी भपकारी मनियारी बरनी सघन सुहाई ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१४ ।

भपकी—संज्ञा स्त्री [भनु०] १. हलकी नींद । थोड़ी निद्रा । उँघाई । ऊँघ । जैसे,—जरा भपकी ले लें तो चले ।

क्रि० प्र०—भपना ।—लगना ।—लेना ।

२. भौख भपकने की क्रिया । ३. वह कपड़ा जिससे भनाज मोसाने या बरसाने में हवा देते हैं । बंधरा । ४. घोखा । चकमा । वहकाना । उ०—कहुँ देत भपकी भपकि भपकहुँ देत खाली दाऊं । बड़ि जात कहुँ द्रुत बगल हूँ बलगात दक्षिण पाऊं ।—रघुराज (शब्द०) ।

भपको^१—संज्ञा पुं० [हि० भपका] हवा का भोंका । उ०—दीपक वरत विवेक की तो लौं या घित माँहि । जो लौं नारि कटाक्ष पट भपको लागत नाहि ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८८ ।

भपको^२—संज्ञा पुं० [हि० भपका] हवा का भोंका । उ०—दीपक वरत विवेक की तो लौं या घित माँहि । जो लौं नारि कटाक्ष पट भपको लागत नाहि ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८८ ।

भपको^३—संज्ञा पुं० [हि० भपका] हवा का भोंका । उ०—दीपक वरत विवेक की तो लौं या घित माँहि । जो लौं नारि कटाक्ष पट भपको लागत नाहि ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८८ ।

भपको^४—संज्ञा पुं० [हि० भपका] हवा का भोंका । उ०—दीपक वरत विवेक की तो लौं या घित माँहि । जो लौं नारि कटाक्ष पट भपको लागत नाहि ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८८ ।

मुहा०—भपट लेना = बहुत तेजी से बढ़कर छीनना ।

भपटना^१—क्रि० प्र० [सं० भप्प (= कूटना)] १. किसी (वस्तु या व्यक्ति) की घोर भोक के साथ बढ़ना। वेग से किसी की घोर चलना। २. पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बढ़ना। दूटना। धावा करना।

मुहा०—किसी पर भपटना = किसी पर आक्रमण करना। जैसे, बिल्ली का चूहे पर भपटना।

भपटना^२—क्रि० स० बहुत तेजी से बढ़कर 'कोई चीज ले लेना। भपटकर कोई चीज पकड़ या छीन लेना।—जैसे, तोते को बिल्ली भपट ले गई।

संयो० क्रि०—लेना।

भपटना^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] भपटने का क्रिया।

भपटना—क्रि० स० [हि० भपटना का प्रेरण] धावा करना। आक्रमण करना। हमला करना। इशतयात्क देना। वार करना। लड़ने को उभारना। उसकाना। बढ़ावा देना। किसी को भपटने में प्रवृत्त करना।

भपट्टा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० भपटना] दे० 'भपट'।

क्रि० प्र०—मारना।

यौ०—भपट्टामार = भपट्टा मारनेवाला। भपटनेवाला।

भपताल—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं। इसमें तीन भाषात और एक खाली रहता है। इसका मृदंग का बोल यह है—

+ १ २ • +

धाग, धागे, ने, तडे, धागे, ने धा। और इसका तबले का बोल यह है—घिन धा, घिन घिन धा, देव, ता तिन तिन ता। धा⁺।

भपना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] भपने या मुदनेवाली वस्तु। पलक। उ०—प्रगमपुरी की सँकरी गलियाँ मड़बड़ है चखवा। ठोकर लगी गुर जान खब्द की उधर गए भपना।—कबीर० श० भा० १, पृ० ६७।

भपना^२—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. (पलकों का) घिरना। (पलकों का) बंद होना। २. (मछि) भपकना या बंद होना। झुकना। ३. लज्जित होना। भैपना। झपना।

भपनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठकना। वह जिससे कोई चीज ढकी जाय। २. पिठारी।

भपलैया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भपोला'। उ०—प्रस कहि भपलैया बिखरायो। शिलपिल्ले की दरस करायो।—रघुराज (चन्द०)।

भपबाना—क्रि० स० [प्रनु०] भपाना का प्रेरणार्थक रूप। किसी को भपाने में प्रवृत्त करना।

भपस—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० भपसना] १. गुजान होने की क्रिया या भाव। २. कहारों की परिभाषा में पेड़ की झुकी हुई डाल।

विशेष—इसका व्यवहार पिछले कहार को आगे पेड़ की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है।

भपसट—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. घोखा। दबसट। कपट। ३२ एक गाँसी।

भपसना—क्रि० प्र० [हि० भपना (= ठँकना)] सता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना। पेड़ या लता आदि का गुंजान होना। जैसे,—यह लता खूब भपसी हुई है।

भपाक—क्रि० वि० [हि० भप] पलक भँजते। चटपट। उ०—झफ़ोरि भपाक भपटि नर समय गेवाई। नहि समुझत निज मूल मध हँ दृष्टि छिपाई।—मीरा श०, पृ० ८७।

भपाका^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० भप] शीघ्रता। जल्दी।

भपाका^२—क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

भपाटा^१—क्रि० वि० [हि० भप] भपट। तुरंत। शीघ्र ही।

भपाटा^२—संज्ञा पुं० [हि० भपट] चपेट। आक्रमण। दे० 'भपट'।

भपाटा^३—क्रि० वि० [हि० भपाट] शीघ्र। भपट।

भपाना—क्रि० स० [हि० भपाना] १. भपने का सकर्मक रूप। मुँदना या बंद करना (विशेषतः घाँसों या पलकों का)। २. झुकाना। ३. दे० 'भपाना'।

भपाव—संज्ञा पुं० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औजार।

भपावना^१—क्रि० स० [हि० भपावना] छिपाना। गोपन करना। उ०—बदन भपावए मलकत भार, चाँदमण्डल जनि मिलए मंधार।—विद्यापति, पृ० ३४०।

भपित—क्रि० वि० [हि० भपना] १. भपा हुआ। मुँदा हुआ। २. जिसमें नींद भरी हो। भपकोड़ा या उनींदा (नेत्र)। ३. लज्जित। लज्जायुक्त। लजासु। उ०—कवि पद्माकर छक्ति भपित भपि रहत दगंचन।—पद्माकर (चन्द०)।

भपिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. गले में पहनने का एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह गहना हँसुली की तरह का बना होता है और इसके सोने या चाँदी के बीच में एक मछीक जड़ा रहता है। यह गहना प्रायः होम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं।

२. पेटारी। पच्छी।

भपेट—संज्ञा स्त्री० [हि० भपट] दे० 'भपट'।

भपेटना—क्रि० स० [प्रनु०] आक्रमण करके दबा लेना। चपेटना। दबोचना। छोप लेना। उ०—सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी भपेटे बाज के।—तुलसी श०, पृ० १८३।

भपेटा^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. चपेट। भपट। आक्रमण। २. भूत-प्रेतादि कृत बाधा या आक्रमण। ३. हवा का झोंका। झकोरा।—(लख०)।

भपोला—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० भपोली] दे० 'भपोली'।

भपोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] भपोला का पर्यायक। छोटा भपोला या भावा। भपोली।

भप्पड़—संज्ञा पुं० [प्रनु०] भपाड़। धप्पड़।

भप्परा^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] १. दे० 'भप्पड़'। २. मार। चोट। उ०—दीनो मुद्दीम को भार बहादुर ठागो सहे क्यों गयंद को भप्पर।—मूरण श० पृ० ७१।

अप्यान—संज्ञा पुं० [हि० अप्यान] अप्यान नाम की एक प्रकार की पहाड़ी सवारी जिसे चार भादमी उठाकर ले चलते हैं ।

अप्यानी—संज्ञा पुं० [हि० अप्यान] अप्यान उठानेवाला कहार या मजदूर ।

अपक—संज्ञा स्त्री० [हि० अपक] दे० 'अपकी' ।

अपकी०—क्रि० वि० [हि० अपक] अपकी में हो । उ०—सामलि राजा बोल्या रे प्रवधु सुगौ मनोपम बांणी जी । निरगुण नारी सँ नेह करता अपके रेणु बिहाणी जी ।—गोरख०, पृ० १५३ ।

अपकनी—क्रि० प्र० [अनु०] अप अप करना । ज्योति सी उठना । दीप्त होना । चमकना । उ०—काया अपकइ कनक जिम, सुंदर केहँ सुख । तेह सुरंगा किम हुबह, जिण वेहा बहु दुख ।—ढोला०, पृ० ५४६ ।

अपमधी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ते के आकार का गहना ।

अपका—वि० [अनु०] दे० 'अपका' ।

अपधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुँचाती है ।

अपधरी०—संज्ञा पुं० [अनु०] जलते हुए दोपक में मोटी बत्ती । उ०—कसतूरी मरदन कीयो अपधरी दीप ले गहरी बाट ।—वी० रावी, पृ० ६८ ।

अपरा—वि० [अनु०] वि० स्त्री० अपरी] चारों तरफ बिखरे और घूमे हुए बड़े बड़े वालोंवाला । जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों । जैसे, अपरा कुत्ता । उ०—कलुषा अपरा मोतिया अपरा बुधवा मोहि डेरवावे ।—मल्लक० बानी, पृ० २५ ।

अपरा^२—संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में तर माल ।

अपरीक्षा—वि० [हि० अपरा + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अपरीली] कुछ बढ़ा, चारों तरफ बिखरा और घूमा हुआ (बाल) ।

अपरैरा०—[हि० अपरा + ऐरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अपरैरी] दे० 'अपरीला' । उ०—कुंतल कुटिल छवि राजत अपरैरी । लोचन चपल तारे शरिर अपरैरी ।—सूर (शब्द०) ।

अपरा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'अपरा' । उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पौधत फूँदनि अपरा निहारत । वदन विद जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत ।—सूर (शब्द०) । (ख) छहरै सिर पे छवि मोर पखा सनकी नथ के मुकता पहरे । फहरै पियरो पट वेनी इतै सनकी चुनरी के अपरा अहरै ।—वेनी कवि (शब्द०) ।

अपरा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टंटा । बसेड़ा । अगड़ा । उ०—भरि नयन लखहु रघुकुल कुमार । तजि देहु मोर जग की अपरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

अपारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपार' । उ०—(क) बड़े घर की बहू बेटी करति वृथा अपारि । सूर प्रपनो प्रंश पावे जाहि घर अपारि ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत भवगरी जिन करी अजहूँ तजौ अपारि । पकरि कंस ले जाइगो कासिहि

सूर सवारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) यह अगरो बमरो जय रोषत हरिपद प्रति अनुरागा । ताते सज्जन रसिक शिरोमणि यह अपारि सब त्यागा ।—रघुराज (शब्द०) ।

अपिया—संज्ञा स्त्री० [हि० अपा का स्त्री० अया] १. छोटा अपा छोटा फूँदना । २. सोने या चांदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाबूबंद, जोत्तन, हुमेल, आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरोकर गूँधी जाती है । उ०—मदनातुर ती तिनक पर श्याम हुमेलन की अपके अपिया ।—बाल कवि (शब्द०) ।

अपिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० अपा का स्त्री० अया] वह अपा जो आकार में छोटा हो ।

अपी—संज्ञा स्त्री० [हि० अपा का स्त्री० अया] दे० 'अपा' । उ०—अपी जराक जोरि, प्रमित गूँधननि सवारी ।—तंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

अपुआ—वि० [अनु०] दे० 'अपरा' ।

अपुकड़ा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] [अन्य रूप—अपुकड़ा, अपुकड़ा] बमका जगमगाहट । उ०—(क) ऊँठ मंदिर प्राति घण्टा अपि सुहावा कज । बीजलि लियइ अपुकड़ा सिहरौ अपि लागत ।—ढोला०, पृ० २६८ । (ख) बीज न देख चहद्वियाँ, श्री परदेश गयाह । आपण लीय अपुकड़ा यलि लागी सहरीह ।—ढोला०, पृ० १५२ ।

अपुकनी—क्रि० प्र० [अनु०] १. चमकना । जगमगाना । दीप्त होना । ज्योति होना । उ०—(क) मंदिर मोहि अपुकती दीवा कैपी जोति । हंस बटाक चलि गया काढ़ी घर की छोति ।—कवीर प्र०, पृ० ७३ । (ख) अपुकें उड़े यों अपुकें फुलंगा । मनो प्रणि बेताल नचै खुलंगा ।—सूदन (शब्द०) । २. अमकना ।

अपुआ—संज्ञा पुं० [अनु०] १. एक ही में बंधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में थोपा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है । जैसे, पगड़ी का अपुआ । २. एक में लगी गूँथी या बंधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह । गुच्छा । जैसे, तालियों का अपुआ घुँघुराओं का अपुआ । उ०—अपुआ से बहु छोटे बटुए मूलत सुंदर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२ ।

अमकना—क्रि० प्र० [अनु०] अम अम की ध्वनि होना । अंकार होना । उ०—प्रवधु सहस्र ताड़ी पवन चलेगा, कोटि अमके नाद । बहुवारि चंदा बाई सोप्या किरणि प्रगटी जब प्राद ।—गोरख०, पृ० १६ ।

अमकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] अम अम की ध्वनि । अंकार । उ०—तमते तमते तम तेज मारे । अमते अमते अमकार मारे ।—पृ० रा०, १२ । ८६ ।

अमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक का अनुकरण । २. प्रकाश । उजला । ३. अम अम शब्द । उ०—पग जेहरि बिछियन की अमकनि चलत परस्पर बाजत । सूर स्वाम/सुख जोरी

ममि कचन छवि लावत ।—सुर (शब्द०) ४ ठसक या नखरे की चाल ।

ममकदा—संज्ञा पुं० [हि० ममक + दा (प्रत्य०)] दे० 'ममक' ।
उ०—मिरजा साहब—एक ममकदा नखर प्राया ।

फिसाना०, भा० ३, पृ० ८ ।

ममकदा—वि० ममकदानेवाले । ममकम शब्द करनेवाले । उ०—
गड़े गड़े कच छुट्टि पड़े उमड़े नैन बिसाल । कड़े ममकड़े ही
गड़े गड़े खड़े नंदलाल ।—स० सत्यक, पृ० २४१ ।

ममकना—क्रि० प्र० [हि० ममक] १. प्रकाश की किरणें फैलना ।
रह रहकर चमकना । धमकना । प्रकाश करना । प्रज्वलित
होना । २. झपकना । छाया । छा जाना । उ०—प्रांस सौ
कर कीर उठावत नैननि नींद ममकि रहि भारी । दोउ
माता निरखत प्रांस मुख छवि पर तन मन भारति
वारी ।—सूर०, १०।१२८ । ३. ममक शब्द होना ।

ममकार की ध्वनि होना । उ०—ममि ममि मुकि मुकि
ममकि ममकि माली रिमकिम रिमकिम मसाद बरसतु
है ।—ठाकुर, पृ० १६ । ४. मम मम करते हुए उछलना
कूदना । गहनों की ममकार के साथ हिलना डोलना । उ०—
(फ) कंवहुँक निकट देखि बषी ममतु मूलत-सुरंग हिबोरे ।
रमकत ममकत जगक सुता सँप हाव भाव चित बोरे ।—सूर
(शब्द०) । (ख) ज्यों ज्यों भावति निकट निशि त्यों त्यों
खरी उताल । ममकि ममकि टहलै करे लगी रहचलै वाल ।—

विहारी र०, दो० ५४३ । ५. गहनों की ममकार करते हुए
नाचना । ६. लड़ाई में हथियारों का चमकना और खनकना ।
उ०—मल्ल लगे झमकन खण लगे ममकन सुल लगे धमकन
तेग लगे छहरान ।—गोपाल (शब्द०) । ७. मकड़ दिख-
लाना । तेजी दिखाना । झोंक दिखाना । उ०—मम मम शब्द
करना । बजने का सा शब्द करना । उ०—तैसिये नह्यी बूदनि
बरसतु ममकि ममकि ममकोर ।—सूर (शब्द०) ।

ममकाना—क्रि० प्र० [हि० ममकना का सं० रूप] १. झमकाना ।
बार-बार हिलाकर चमक पैदा करना । २. चलने में माथपछ
आदि बजाना और चमकाना । उ०—सहज सिंगार उठत
जोवन तन बिधि निष हाथ-पताई ।—सूर त्याग पाप दिग
प्रापुन घट भरि चलि ममकाई ।—सूर०, १०।१४७ ।

३. युद्ध में हथियारों प्रादि का चमकाना और खनखाना ।

ममकारा—वि० [हि० ममक + आ] [वि० म० ममकारी] ममकम
बरसनेवाला (वादल) । उ०—सोखे सिधु सिधुर से बहुर थ्यो
बिध्य गंधमावन के बहु गरज गुरवाति के । ममकारे ममत
गगन पने धूमत पुकारे मुख धूमत पपीहा मोरान के ।—
देव (शब्द०) ।

ममकम—संज्ञा स्त्री [मनु०] १. मम मम शब्द जो बहुधा पुँवुषों
प्रादि के बजने से उत्पन्न होता है । धम धम । २. पानी बरसने
का शब्द । ३. चमक दमक ।

ममकम—वि० जिसमें से सब चमक या ममा निकले । चमकता
हुआ ।

ममकम—क्रि० वि० १. मम मम शब्द के साथ । जैसे, पुँवुषों का

ममकम बोलना, पानी का ममकम बरसना । २. चमक दमक
के साथ । ममकम ।

ममकमाना—क्रि० प्र० १. मम मम शब्द होना । २. चमकमाना ।
चमकना । ३. (लाक्ष०) झमकाना । पुलकित होना ।

रोमांचित होना । उ०—एक विचित्र अनुसूति से मिस-मेहता
की त्वष्टा ममकमा उठी ।—पिजरे, पृ० ५४ ।

क्रि० प्र०—उठना ।

ममकमाना—क्रि० प्र० १. ममकम शब्द उत्पन्न करना । २.
चमकाना ।

ममकमाइट—संज्ञा स्त्री [मनु०] १. ममकम शब्द होने की क्रिया
या भाव । २. चमकने की क्रिया या भाव ।

ममना—क्रि० प्र० [मनु०] नम्र होना । झुकना । दबना । उ०—
सुरखी श्याम के कर मधर बिबरमी । लेति सरबस जुवतिजन
की मदन विवित ममी । महा कठिन कठोर प्राणी बाँस बस
जमी । सूर पूरन परसि श्रीमुख नेकु ताहि ममी ।—
सूर०, १०।१२२८ ।

ममा—संज्ञा पुं० [सं० ममक] दे० 'ममा' या 'ममा' ।

ममाका—संज्ञा पुं० [मनु०] १. मम मम शब्द । पानी बरसने या
गहनों के बजने प्रादि का शब्द । २. ठसक । मटक । नखरा ।

ममामम—क्रि० वि० [मनु०] उज्ज्वल क्रांति के सहित । दयक
के साथ । जैसे, सलमे सितारे टके हुए कपड़ों का ममामम
चमकना । २. ममकम शब्द सहित । जैसे, पाजेब का ममामम
बोलना, पानी का ममामम बरसना ।

ममाट—संज्ञा पुं० [मनु०] मुरमुट । उ०—पवंत के सिर पर क्या
देखाता है कि बहुत से सुखे भाड़ों के ममाट से बड़ा घटाटोप
धूस निकल रहा है ।—व्यास (शब्द०) ।

ममाना—क्रि० प्र० [मनु०] ममकना । छाना । विरना । उ०—
(क) खेत तुम निशि अधिक गई सुत नैननि लोदा ममाई ।
बदन जमात प्रग ऐड़ाबत जननि पलोटा पाई ।—सूर
(शब्द०) । (ख) त्यों पयमाकर ओरि ममाई सुवोरी सब हरि
ये हक दाऊ ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ममाना—क्रि० प्र० [हि० ममा या ममा + ना (प्रत्य०)] दे०
'ममाना' ।

ममाना—क्रि० प्र० [हि० जमाना] प्रपञ्च मनु० ममाना । एकत्र
करना । एकत्र करना ।

ममारना—क्रि० प्र० [हि० ममाना का प्र० रूप] ममाँरा करना ।
ममाँ की तरह कर देना कुछ कुछ श्याम वर्ण का कर देना ।

उ०—दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि, मानदे को धन रंग
मलजि ममारई ।—धमानंद, पृ० २४४ ।

ममाल—संज्ञा पुं० [देशी] इद्रजास । माया (को०) ।

ममाल—संज्ञा पुं० [डि०] एक प्रकार का शिवाल गीत । उ०—हूँ
पर बंदायणों, धरे हलालो धार । गोता रूप ममाल बुण,
वरणें मुख विचार ।—रघु०, ६०, पृ० ६२ ।

ममुरा—संज्ञा पुं० [हि० ममुरा या ममाट] १. घने बालोवाला
पशु । जैसे, रीछ, ममुरा कुत्ता प्रादि । २. वह लड़का जो
बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर

को सहायता देता है। ३. वह बच्चा जो बोले बाले, कपड़े पहनता हो। ४. कोई प्यारा बच्चा।

भ्रमेल—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रमेला] दे० 'भ्रमेला'।

भ्रमेला—संज्ञा पुं० [भ्रु० भ्रम, भ्रम] १. बूढ़ा। भ्रमट। भ्रमड़ा। टटा। २. लोगों का झुंड। मोड़ भाड़। उ०—मथुन के भ्रमेला नीर पाय मल ठेला प्रान त्यागि भलबेला तन सहे काम चेला सो।—गोपाल (शब्द०)।

भ्रमेलिया—संज्ञा पुं० [हि० भ्रमेला + ह्या (प्रत्य०)] भ्रमेला करनेवाला। भ्रमड़ालु। बखेडिया।

भ्रम—संज्ञा स्त्री० [भ्र०] १. पानी, गिरने का स्थान। निभर। २. भ्रमना। सोता। शरमा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। ३. समूह। झुंड। ४. तेजी। वेग। उ०—प्रात गई नौके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब खीभी रिस भर ते।—सुर (शब्द०)। ५. झड़ी। लगातार बुष्टि। ६. किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) वर्षत मस्तन कवच धर फूटे। मघा मेघ मात्रो भर जुटे।—लाल (शब्द०)। (ख) पावक भर ते मेह भर दाहक दुसह बिसेखि। वह देह बाके परस याहि रगत की देखि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सूरदास तबही तम नोसे जाने भगिन भर फूटे।—सुर (शब्द०)। ७. भाँच। ताप। लपट। ज्वाला। भाल। उ०—(क) श्याम प्रकम भरि सीन्हीं विरह भगिन भर तुरत बुझानी।—सुर (शब्द०)। (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रखो रस परस्पर मिटयो तनु विरह भर भरी प्रानंद प्रिय सुर न माई।—सुर (शब्द०)। (ग) सटपटाति सी ससिमुखी मुख धुघट पट ढाँकि। पावक भर सी भ्रमक के गई भरोखे भाँकि।—बिहारी (शब्द०)। (घ) नेकु न भ्रमसी विरह भर नेह लता कुंमिलति। नित नित होत हरी हरी खरी भालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)। ८. ताले का खटका। ताले की भीतर की कल। ताले का कुत्ता।

भ्रमका—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रमक] दे० 'भ्रमक'।
भ्रमकना—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'भ्रमकना'। उ०—सरल विमल विराजही विदुम खम सुजोर। चार पादियनि पुरट की भरकत भरकत भोर।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० भ्रमकुना। उ०—रोवति देखि जननि भ्रुकुलानी लियो तुरत नोषा की भरकी।—सुर (शब्द०)।
भ्रमकना—क्रि० प्र० [हि० भ्रमकना] दे० 'भ्रमकना'। उ०—हंसत दसन प्रस चमके प्राहन उठे भरकिक। दारिउं सरि जो न के सका फाटेच दिया दरकिक।—जायसी प्र०, पृ० ७४।
भ्रमकना—क्रि० प्र० [सं० भ्रम (=पानी का बहना)] धीरे धीरे बहना। भर भर शब्द करते चलना। उ०—पीन भरके हिप हरख लागे सिपर वतास।—जायसी, पृ० (गुप्त), पृ० ३५०।

भ्रमकाना—क्रि० प्र० [सं० भ्रम (=समूह, झुंड)] एकत्र होना। झुंड से भा जाना। उ०—इत घोका मुहँ प्रस भो भाई। बहु बिठेटी चुलहे भरकाई।—कबीर सा०, पृ० ४०९।

भ्रमकर—संज्ञा स्त्री० [भ्रु०] १. जब के बहने, बरसने या हवा के बचने प्रादि का शब्द। २. किसी प्रकार से उत्पन्न कर

भ्रमकराना—क्रि० प्र० [भ्रु०] किसी बर्तन में से किसी वस्तु को इस प्रकार झाड़कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से भ्रमकर शब्द हो।

भ्रमकराना—क्रि० प्र० भ्रमरा उठना। काँप उठना। कंपित होना। उ०—भ्रमकराति भ्रमराति लपट प्रति, देखियत वही उबार।—सुर०, १०।४६३।

भ्रमना—संज्ञा स्त्री० [हि० भ्रमना] १. भरने की क्रिया। २. वह जा कुछ भरकर निकला हो। वह जो भर्रा हो। ३. दे० 'भ्रमन'।

भ्रमना—क्रि० प्र० [सं० भरण] १. भ्रमना। २. किसी कचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे,—पहाड़ों में भ्रमते भर रहे थे। उ०—नद नंदन के बिछुरे मखियाँ उपमा जोग नही। भ्रमना सों ये भरत रैन बित उपमा सकल नहीं।—सूरदास, भासा मिलिबे की प्रब घट सँस रही।—सुर (शब्द०)। १. वीर्य का पतन होना। वीर्य स्थलित होना।—(बाजार)। ४. बचना। भ्रमना। जैसे, नीबत भ्रमना।

विशेष—(१) दे० 'भ्रमना'।
विशेष—(२) इन प्रयोगों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिसमें से कोई चीज भरती है।

भ्रमना—संज्ञा पुं० [सं० भ्रम] कचे स्थान से गिरनेवाला जलप्रवाह। पानी का वह स्रोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। शरमा। जैसे, उस पहाड़ पर कई भ्रमते हैं।

भ्रमना—[सं० भरण] [स्त्री० भ्रमना] १. लोहे या पीतल प्रादि की बनी हुई एक प्रकार की छननी जिसमें लगे लगे छेद होते हैं और जिसमें रखकर समूचा घना ज चीना जाता है। २. खड़ी बाँड़ी की वह करछी या चम्मच जिसका घगला भाग छोटे तवे का सा होता है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। पीना।

विशेष—इससे खुले घी या तेल प्रादि में तली जानेवाली चीजों को उलटते पलटते, बाहर निकालते मथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। भरने पर जो चीज ले सी जाती है उसपर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है।

२. पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

भ्रमना—वि० [वि० स्त्री० भ्रमनी] १. भरनेवाला। जो भरता हो। जिसमें से कोई पदार्थ भरता हो।

भ्रमनाहट—संज्ञा स्त्री० [भ्रु०] भ्रमनाहट। उ०—भ्रमनाहट पर जेहर का अतका था।—नट०, पृ० १११।

भ्रमनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भ्रमन'। उ०—सुपुर बजत मानि मृग से मधीन होत, मीन होत चरणामृत भरति को।—शरण (शब्द०)।

भ्रमनी—वि० [हि० भ्रमना का स्त्री० भ्रमनी] भरनेवाली। दे०

‘भरना’ । उ०—भरनी सुरस बिडु घरनी मुकुंद लू की घरनी सुफल रूप जेत कर्म काल की । नरनी सुघरनी उधरनी वर बानी चार पात तम तरनी भगति नंदलाल की ।—गोपाल (शब्द०) ।

भरपां०—संज्ञा स्त्री० [भनु०] १. भौंका । भक्रोर । उ०—बंघु कीए मधुप मदंध कीए पुरजन सुमोहो मन गंधी की सुगंध भरपन सौ—देव (शब्द०) । २. वेग । तेजी । उ०—धेरि धेरि घहर घत भाए घोर तापें महा माखत भक्रोरत भरप सों ।—कमलापति (शब्द०) । ३. किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा । चौड़ । टेक । ४. चिक । चिलमन । चिलवन । परदा । उ०—(क) तासन की गिलमें गलीचा मखतूलन के भरपे भुमाऊ रहौं भूमि रंग द्वारी में ।—पयाकर (शब्द०) । (ख) भाकें मुकी युवती ते भरोखन कुंडनि ते भरपे कर टारी ।—रघुराज (शब्द०) । ५. दे० ‘भड़प’ ।

भरपनां०—क्रि० प्र० [भनु०] १. भौंका देना । बौझार मारना । उ०—वषंत गिरि भरपत ब्रज ऊपर । सो जल जेहूँ तेहूँ पुरन घु पर ।—सूर (शब्द०) । २. दे० ‘भड़पना’—१ । ३. दे० ‘भड़पना’—३ । उ०—एते पर कबहूँ जब भावत भरपत सरत घनेरो ।—सूर (शब्द०) ।

भरपेटां०—संज्ञा पुं० [भनु०] दे० ‘भपट’ ।

भरफ—संज्ञा स्त्री० [भनु०] चिलमन । परदा । भरप ।

भरवेरां०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ ।

भरवेरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ । उ०—महके कटहल, मुकुलित जामुन, जगल में भरवेरी भूषी ।—ग्राम्या, पृ० ३६ ।

भरवैरीं०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘भड़वेरी’ ।

भरर—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ू देनेवाला । स्यान भाड़ूनेवाला ।

विशेष—कैटिल्य ने लिखा है कि भाड़ू देनेवाले को जब कोई पट्टी हुई चीज मिलती थी तो उसका ३ भाग चंद्रगुप्त का राज्य लेता या और ३ भाग उसको मिलता था ।

भरवानां०—क्रि० प्र० [हि०] भरना का प्रे० रूप । १. भरने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को भरने में प्रवृत्त करना । २. दे० ‘भड़वाना’ ।

भरसनां०—क्रि० प्र० [भनु०] १. दे० ‘भुलसना’ । २. सूखना । मुरझाना । कुम्हलाना ।

भरसनां०—क्रि० प्र० १. दे० ‘भुलसना’ । २. सुखाना । मुरझा देना । उ०—विषय विकार को जवास भरस्यो करे ।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० २०१ ।

भरहरनां०—क्रि० प्र० [भनु०] भर भर शब्द करना । उ०—अजहूँ बेति मुड़ बहूँ दिशि ते उपजी काल अगिनि भर भरहरि । सर काल बल ब्याल प्रसत है श्रीपति सरल परति किन फरहरि ।—सूर०, १३१२ ।

भरहरां०—वि० [हि०] भरहरा [वि० स्त्री० भरहरी] दे० ‘भरहरा’ । उ०—भुकि भुकि भूमि भूमि भिन्न भिन्न भेल भेल भरहरी भांपन में भमकि भमकि उठे ।—पयाकर (शब्द०) ।

भरहरानां०—क्रि० प्र० [भनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना । हवा के भौंके से पत्तों का शब्द करना भयवा शब्द सहित गिरना । उ०—भरहरात बनपात, गिरत तरु, घरनि तराकि तराकि सुनाई । जल बरपत गिरिवर तर बचि भब कैसे गिरि होत सहाई ।—सूर०, १०१५६४ ।

भरहरानां०—क्रि० प्र० १. भरभर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषतः पेड़ों के पत्तों को, गिराना । पेड़ की डाल हिलाना । २. भटकना । भाड़ना ।

भरहिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

भरौं—संज्ञा पुं० [हि०] भरना । नष्ट होना । बेकार होना ।

भरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो पानी मरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है ।

भरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरना । स्रोत । सोता [स्त्रो०] ।

भराभर—क्रि० वि० [भनु०] १. भरभर शब्द सहित । २. लगातार । बराबर । ३. वेग सहित । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी दोउ मिलि लरत भराभरि ।—हरिदास (शब्द०) ।

भरापनां०—क्रि० प्र० [हि०] भपट । हपचा करना । भपटना ।

भराबोर—संज्ञा पुं० वि० [हि०] दे० ‘भलाबोर’ ।

भराहर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वाला + घर । सूर्य ।

भरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] भर । दे० ‘भड़ी’ । उ०—दस दिशि रहे बान नम छाई । मानहु मषा मेघ भरि लाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

भरिफ—संज्ञा पुं० [हि०] भरप । चिक । चिलमन । परदा ।

भरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] भरना । १. पानी का भरना । स्रोत । चश्मा । २. वह घन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी आदि में जाकर सीदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषतः खोन्चेवालों और कुंजड़ों आदि से प्रतिदिन किराए के रूप में वहाँ के जमींदार या ठीकेदार आदि को मिलता है । ३. दे० ‘भड़ी’ । उ०—कुंकुम अंगर भरगजा छिरकहि भरहि गुलाल अवीर । नम प्रसुन भरि पुरी कोचाहस भइ मनभावति भीर ।—तुलसी (शब्द०) ।

भरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास ।

भरोखा—संज्ञा पुं० [सं०] जाल + गवाक्ष भयवा भनु० भर भर (= वायु बहने का शब्द) + गोख भयवा सं० जालगवाक्ष [स्त्री० भरोखी] दीवारों आदि में बनी हुई भँकरी । छोटी खिड़की या मोखा जिसे हवा और रोशनी आदि के लिये बनाते हैं । गवाक्ष । गोखा । उ०—होर राणीभाँ भरोखियों पर बैठीभाँ सो भो सुणकर सम के मन पवन इस्थिर हो गए ।—प्राण०, पृ० १८३ ।

भरुआ—संज्ञा पुं० [सं०] १. हुड़क नाम का सरुही का बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता है । २. कलियुग । ३. एक नव का नाम । ४. हिरण्यवश के एक पुत्र का नाम । ५. लोहे आदि का बना हुआ भरना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज पचते हैं । ६. भाँक । ७. पैर में पहनने का भाँक या भाँकर नाम का बहना ।

मर्मरक—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग ।

मर्मरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तारा देवी का नाम । २. वेश्या । रङ्गी ।

मर्मरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. कटसरैया का पोषा ।

मर्मरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी ।

मर्मरी^१—संज्ञा पुं० [सं० मर्मरिन्] शिव ।

मर्मरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मर्म नामक राजा ।

मर्मरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश । २. शरीर । ३. चित्र ।

मर्ना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भरना' । उ०—नदी, मर्ना, घुष और भाकाश में, मुझको आपके साथ अत्यंत सुख मिलता था ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६८ ।

मर्प^१—संज्ञा स्त्री० [मनु०] दे० 'मर्प' ।

मर्पा—संज्ञा पुं० [देश०] १. बया पक्षी । २. एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

मर्प्या—संज्ञा पुं० [देश०] बया नाम की चिड़िया ।

मल्ल—संज्ञा पुं० [हिं० मार, सं० मल (= ताप, चिलचिलाती धुप) । अथवा सं० ज्वल, प्रा० मल] १. दाह । जलन । प्राँच । २. उग्र कामना । किसी विषय की उत्कट इच्छा । उ०—(क) जीव विलंबा जीव सो मल्ल लक्ष्यो नहि जाय । साहब मिले न मल्ल बुझै रहो बुझाय बुझाय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) मल्ल बायें मल दाहिने मल ही में व्यवहार । भागे पीछे मल जले राखे सिरजनहार ।—कबीर (शब्द०) । ३. काम की इच्छा । विषय या संभोग की कामना । ४. क्रोध । गुस्सा । रिस । ५. समूह । उ०—पुनि प्राए सरल सरित तीर ।***कछु प्रापु न मष मष गति चलति । मल पतितन को ढरष फलति ।—केशव (शब्द०) ।

मल्लक—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लिका (= चमक)] १. चमक । दमक । प्रकाश । प्रभा । द्युति । आभा । उ०—मनि खंभन प्रतिबिंब मल्लक छवि छमकि रहै भारी प्रांगने ।—तुलसी (शब्द०) । २. आकृति का आभास । प्रतिबिंब । जैसे,—वे खाली एक मल्लक दिखलाकर चले गए । उ०—मकराकृत कुंडल की मल्लकें इतहैं गुज मूल में छाप परी री ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मल्लकदार—वि० [हिं० मल्लक + प्रा० दार] चमकीला । चमकने-वाला । उ०—छोटी छोटी मंगुली मल्लामल्ल मल्लकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राज दोटे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

मल्लकना—क्रि० प्र० [सं० मल्लिका (= चमक)] १. चमकना । दमकना । उ०—मल्लका मल्लकत पायन्ह कैसे । पंज कोस भोस कन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । २. कुछ कुछ प्रकट होना । आभास होना । जैसे,—उनकी प्राण की बातों से मल्लकता था कि वे कुछ नाराज हैं । उ०—कुंडल लोल रूपोलनि मल्लकत मनु दरपन में आई री ।—सूर०, १।१३७ ।

मल्लकनि^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मल्लक' । उ०—(क) अवन कुडस मकर भानो नैन मोन बिसाल । सलिल मल्लकवि रूप

आभा देख री नंदलाल ।—सूर (शब्द०) । (ग) मदन मोर के चंद की मल्लकनि निदरति तनजोति । नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ।—तुलसी ग्रं० पृ० २७८ ।

मल्लका—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= जलना), प्रा० मल्ल + हिं० का (प्रत्य०)] चलने या रगड़ लगने आदि के कारण शरीर में पड़ा हुआ छाला । उ०—मल्लका मल्लकत पायन्ह कैसे । पंज कोस भोसकन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

मल्लकाना—क्रि० सं० [हिं० मल्लकना का सक० रूप] १. चमकाना । दमकाना । खसकाना । २. दरसाना । दिखलाना । कुछ आभास देना ।

मल्लकावनी^१—वि० [हिं० मल्लकना] चमकानेवाली । दीप्त करने-वाली । मल्लकानेवाली । उ०—सुरत लतान चार फल है फलित किधों, कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी । केषों चितामनिन की माल उर सोभित, बिसाल कठ में धरे हैं जोति मल्लकावनी ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३०५ ।

मल्लकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मल्लक' ।

मल्लकना^१—क्रि० प्र० [हिं० मल्लकना] दीप्त होना । मल्लकना । उ०—मल्लकत मूर चमकत सेल ।—ह० रासो, पृ० ६२ ।

मल्लमल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृद्धों के गिरने का शब्द । वर्षा की झड़ी से उत्पन्न शब्द । २. हाथी के कान की फटफटाहट (को०) ।

मल्लमल्ल^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० मल्लकना] चमक दमक ।

मल्लमल्ल^२—क्रि० वि० रह रहकर निकलनेवाली आभा के साथ । जैसे, मल्लमल्ल चमकना ।

मल्लमल्ला—वि० [मनु०] मल्लमल्ल करनेवाली । चमकमाती हुई । चमकनेवाली । उ०—तरवार बनी ज्यो मल्लमल्ला ।—पलटू०, पृ० ४५ ।

मल्लमल्लाना^१—क्रि० प्र० [मनु०] चमकना । चमकमाना । उ०—मल्लमल्लात रिस ज्वाल धवनमुत्त चहुँ दिसि चाहिय ।—सूदन (शब्द०) । २. दे० 'मल्लाना' ।

मल्लमल्लाना^२—क्रि० सं० चमकाना । चमकमाना ।

मल्लमल्लाहट—संज्ञा स्त्री० [मनु०] १. चमक । दमक । २. मल्लाहट ।

मल्लना^१—क्रि० सं० [हिं० मल्लमल्ल (= हिलना) से मनु०] १. किसी चीज को हिलाकर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या पहुँचाना । जैसे,—(क) जरा उन्हें पखा मल दो । (ख) वे मक्खियाँ मल रहे हैं । २. हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना । जैसे, पंखा मलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

† ३. ठकेलना । ठेलना । धक्का देकर भागे बढ़ाना ।

मल्लना^२—क्रि० प्र० १. किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना । उ०—फूल रहे, मूल रहे, फेल रहे, फबि रहे, मूषि रहे, मूलि रहे, मुकि रहे भूमि रहे ।—पद्माकर (शब्द०) † २. खेती बघारना । डींग हाँकना ।

मल्लना^३—क्रि० प्र० [हिं० मल्लना का प्रक० रूप] १. दे० 'मल्लना' । २. दे० 'मल्लना' ।

मलमल—संज्ञा पुं० [प्रा० मलमल] उजियाला । दे० 'मलमल' ।

मलमल—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= दीप्ति)] १. मधुर के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला । हल्का प्रकाश । २. मधुरा (कहारों की परि०) । ३. चमक दमक ।

मलमल—क्रि० वि० दे० 'मलमल' ।

मलमलताई—संज्ञा स्त्री० [हि० मलमल + ताई (प्रत्य०)] चमक । मलमलाहट । उ०—दुति तिय तन प्रस दीन्हि दिखाई । सरव चंद जल मलमलताई ।—तंद० प्र०, पृ० १२४ ।

मलमला—वि० [हि० मलमलाना] चमकीला । चमकता हुआ । उ०—मोर मुकुट प्रति सोहई श्रवणनि वर कुञ्ज । ललित कपोलनि मलमले सुंदर प्रति निर्मल ।—सूर (शब्द०) ।

मलमलाना—क्रि० प्र० [हि० मलमल] १. रह रहकर चमकना । रह रहकर मंद मोर, तीव्र प्रकाश होना । चमचमाना । २. ज्योति का प्रस्थिर होना । प्रस्थिर ज्योति निकलना । ठहरकर बराबर एक तरह न जलना या चमकना । निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना । जैसे, हवा के झोंके से दीप का मलमलाना । उ०—(क) मेया री में चंद लहौगी । कहा करों जलपुट भीतर को बाहर व्योकि गहौगी । यह तो मलमलात भ्रमभोरत कैसे के जु लहौगी ।—सूर०, १०।१६४ । (ख) श्याम प्रलेक बिच मोती मगो । मानहु मलमलति सीस गगा ।—सूर (शब्द०) । (ग) बालकैसि बातबस मलकि मलमलत सोभा की दीपति मानो रूप दीप दियो है ।—तुलसी प्र० पृ० २७३ ।

मलमलाना—क्रि० स० किसी स्थिर ज्योति या लो को हिलाना डलाना । हवा के झोंके आदि से प्रकाश को प्रस्थिर या बुझने के निकट करवा ।

मलमलित—वि० [हि० मलमलाना] मलमलाता हुआ । हवा में हिलता हुआ । उ०—घरनी जिव मलमलित दीप ज्यो होत धधार करो प्रेधियारी ।—घरनी० बा० पृ० २६ ।

मलमल—संज्ञा पुं० [हि० मलमल] १. एक प्रकार का पकवान जिसे 'मलमल' भी कहते हैं ।

मलमल—संज्ञा स्त्री० दे० 'मलमल' ।

मलमलाना—क्रि० प्र० [हि० मलमल] फलक, छाना, बढ़ना । मलमलना ।

मलमलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० मलमल] २० 'मलमल' । उ०—चहुँ दिस वायी मलमलिया, तो लोक मसंख हो ।—बरम०, पृ० ४४ ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हड़क नाम का बाजा । २. बजाने की भाँक ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० [हि० मलमल या मलमल का मलमली० स्त्री०] दे० 'मलमली' ।

मलमलाना—क्रि० स० [हि० मलमल] मलमलाना का प्रेरणार्थक रूप । मलमलाने का काम दूसरे से कराना ।

मलमलाना—क्रि० स० मलमलाना का प्रेरणार्थक रूप । मलमलाने का काम दूसरे से कराना ।

मलमल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० मलमल] दे० 'मलमल' । उ०—

मलमल तीर तरवारि बरछी देखि काँवर काच ।—धुटे तीर सुपक मर गोलाघाव सहै मुख साँचा ।—सुब०, पृ० भा० २, १।१।१०, ८८५ ।

मलमलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] चमकना । दमकना । उ०—तप तेज पुंज मलमलत तहै, दरसन तै पातक सुषर ।—ह० रासो, पृ० १० ।

मलमलाना—संज्ञा स्त्री० [प्रा० मलमल] उजियाला । मलमल ।

मलमलाया—संज्ञा पुं० [हि० मल + लाया (प्रत्य०)] [स्त्री० मलमलाई] वह जो बाह करता है । हसद करनेवाला आदमी । ईर्ष्यालु व्यक्ति ।

मलमलाला—संज्ञा पुं० [प्रनु०] मलमलाहट । प्रकाश की मद तेज चमक । उ०—अपन दामिनी होत मलमलाला । पाछे नहीं बनल उजियाला ।—कबीर सा०, पृ० ६६ ।

मलमली—संज्ञा पुं० [हि० मल] १. हलकी वर्षा । २. मलमल, तोरण या बंदनवार आदि । ३. पत्ता । वीजना । वेना । ४. समूह । उ०—मलमलत आवै भुद किमिम मलानि भयो, तमकत आवै तेगवाही प्रो सिलाही है ।—पद्माकर (शब्द०) । ५. तीव्र वर्षा । झड़ी लगना ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मातृप । धूप । चिलचिलाती धूप । चमक । २. पुत्री । कन्या । बेटी (को०) । ३. झिल्ली । भोगुर (को०) ।

मलमली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाला शब्दवा मल] १. क्रोध । गुस्सा । २. जलन । दाह ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० [हि० मल + ई (प्रत्य०)] दे० 'मलमली' ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० [हि० मल + मली (प्रत्य०)] पत्ता मलने का काम या उसकी मजदूरी ।

मलमल—वि० [प्रनु०] खूब मलमलाना या चमचमाना हुआ । चमचम । उ०—(क) छोटी छोटी मलमली मलमल मलमलार छोटी सी छुरी को लिये छोटे राज ढोटे हैं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) कचन के कलस भराए धुरि पन्न के ताने तुष तोरन तहाँई मलमल के ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मलमल—वि० [हि०] दे० 'मलमली' । उ०—नख सिख ले सब मुखन बनाई । बसन मलमल पिये भाई ।—स० दरिया, पृ० ३ ।

मलमली—वि० [प्रनु०] चमकीला । चमकदार । मलमल । उ०—जिहँ सबे मलमली हलाहली दिये खजे ।—गोपाल (शब्द०) ।

मलमली—संज्ञा स्त्री० मलमल होने की क्रिया या भाव ।

मलमलाना—क्रि० प्र० [प्रनु० मलमल] हड़ी, जोड़ी या नख आदि पर एकबारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की सवेदना होना । सुन्न सा हो जाना । जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर मलमल गया ।

मलमली—क्रि०—उठना । जाना ।

मलमलाना—क्रि० स० [हि० मलमल] दूसरे से मलमलाने का काम कराना । मलमलाने में किसी को प्रवृत्त कराना ।

मलमली—क्रि० स० [हि० मलमल] दे० 'मलमलाना' ।

मलमली—संज्ञा पुं० [हि० मल + मली (प्रत्य०)] १. कलायुक्त

का बना हुआ साड़ी का बोझ ग्रंथली। २ कारबोकी। उ०—
मल्लाबोर का घाँघरा घुमे घुमाला-तिस पर सच्चे-मोली टके
हुए।—लल्लू (शब्द०)। ३. एक प्रकार की भातिगवाजी।—

मल्लाबोर—वि० चमकीला। ओपदार।

मल्लामल्ल—संज्ञा स्त्री० [हि० मल्लमल्ल (= चमक)] चमक। दमक।
उ०—बहु दिवस लगी है बजार मल्लामल्ल हो रही। भूमर होत
प्रपार प्रधर दोरी लगी।—कबीर (शब्द०)।

मल्लामल्ल—वि० चमकीला। चमक दमकवाला। ओपदार।

मल्लारा—वि० [सं० ज्वल, पुं० हि० मल्ल, हि० माल, मार] दीखा।
तेज। मिच के स्वादवाला। मालवावा।

मल्लासी—संज्ञा स्त्री० [देशी] सूखी हुई पतली लकड़ी या पतली टहनी।
उ०—सोच विचारकर मैं सूखी मल्लासियों से कोपटो
बनाने लगा। सतरों को काटकर उसपर छाजन हुई।
—इंद्र०, पृ० ७२।

मल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी। पूगी फल [को०]।

मल्लसना—क्रि० प्र० [देशी] प्रयत्न सं० ज्वल से विकसित हि०
नामिक घोटु] दे० 'मल्लसना'।

मल्लस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जल्लस'। उ०—सुण प्रतुल साज
मल्लस सारा मिले छक मिलेसे।—रघु०, पृ० ८३।

मल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रात्य प्रयात् संस्कारहीन सत्रिय धोर
सवर्ण स्त्री से उत्पन्न वरुणसकर जाति। २ भांड या विदूषक।
३. पट्ट या हुडक नामक बाजा। ४. लपट। ज्वाला। उ०—
बहिन को देखकर उसे अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी
भ्रात्यों में जैसे मल्ल सी उठने लगती, जिसे, देखकर हम तीनों
अपनी ही जाते।—मधेरे०, पृ० २६।

मल्ल—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] मल्ला होने का भाव।

मल्लकण्ठ—संज्ञा पुं० [सं० मल्लकण्ठ] परवा।

मल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कवि का बना करता है। मल्ल। २.
मंजीरा। जोड़ी।

मल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मल्लक'।

मल्लना—क्रि० प्र० [प्रनु०] बहुत मूठी मूठी बातें करना। बहुत
बोम हाकना या गर्व उठाना।

मल्लरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मल्लर' [को०]।

मल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हुडक नाम का बाजा। २. मल्ल।
३. पसीना। स्वेद। ४. पसेव। ५. गुदवा। सुन्वापन [को०]।
६. घु घुराले केश [को०]।

मल्ला—संज्ञा पुं० [देशी] १ खीचा। बड़ा टोकरी। २. वर्षा। वृष्टि। ३.
बोझार। ४. वे दाने जो फँके हुए समाख के पत्ते पर पड़ जाते हैं।

मल्ला—वि० [हि० जल] बहुत तरल या पतला। जिसमें अधिक पानी
मिला हो। जो गाढ़ा न हो। जैसे, मल्ला रस, मल्ला भाँग।

मल्ला—वि० [हि० मल्लावा] १. पागल। २. बहुत बड़ा
बेवकूफ। ३. मल्लानेवाला।

मल्लाना—क्रि० प्र० [हि० मल्ल] बहुत चिन्ता। खिजलाना।
किठकिठाना। मु मल्लावा।

मल्लाना—क्रि० प्र० ऐसा काम करना, जिससे कोई बहुत चिन्ते।
किसी को मल्लाने या चिन्ते में प्रवृत्त करना।

मल्लानी—संज्ञा स्त्री० [देशी] मल्ला। पानी की फुली। उ०—
मल्लानी भर फुटि, छुटि सका सामता। ज्यों लट्टी पर नारि,
धीग मिल्यो भावता।—पु० रा०, १२। ३१६।

मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देह पोछने का कपड़ा। प्रगेछा।
२. शरीर का वह मेल जो उबटन भाँद लगाने, किसी चीज से
मलने या पोछने से निकले। ३. दोष। प्रकाश। ४. सूर्य की
किरणों का तेज।

मल्ली—वि० [हि० मल्लना] बातुनिया। गप्पी। चक्कादी।

मल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुडक की तरह का एक बाजा जिसपर
चमड़ा मड़ा होता है।

मल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० मल्ला] बड़ी टोकरी। भावा। उ०—
महीरे मल्ली टोकर धो कुछ ला पाता, उसी में गुजारा चल
रहा था।—प्रमिश्रित, पुं० १३।

मल्लीवाला—संज्ञा पुं० [हि० मल्ला] भावा या मल्ली होने का
काम करनेवाला। उ०—वहीं एक मल्लीवाला रहता है
ज्वाला।—प्रमिश्रित, पुं० २३।

मल्लीसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

मल्लकना—क्रि० प्र० [देशी] मल्लकना। चमकना। उ०—काया
मल्लक कनक जिम सुंदर केहे सुख। तेह सुरंगा जिम हुबहू।
जिण बेहा बहु दुख।—दोहा०, पुं० ५४६।

मल्लरा—संज्ञा पुं० [हि० मल्लरा] मल्लरा।

मल्ला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मल्ला'। उ०—मल्लवेली सुजान के पायनि
पानि पयो न टयो मन मेरो कवा।—चनानंद, पृ० ८।

मल्लारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मल्लार'।

मल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मल्ल। मीन। मल्लरी। उ०—संकुल
मकर उरग मल्ल जाती। प्रति प्रिया प्रदुस्तर सब भाँती।—
तुलसी (शब्द०)। २. मकर। मगर। ३. ताप। गरमी। ४.

५. मीन। राशि। ६. मीन। लग्न। ७. दे० 'मल्ल'।

मल्लकेत—संज्ञा पुं० [सं० मल्ल + केत (= पताका)] दे० 'मल्ल
केतन'। उ०—हरिहि हरि ही हरि गयीं विसिख लगे
मल्लकेत। पहिरि सयन ते हेत कहि डहरि डहरि के खेतु।—
सं० सप्तक, पुं० २६१।

मल्लकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव, जिसकी पताका में मीन का
चित्र है। मल्लकेतु [को०]।

मल्लकेतु—संज्ञा पुं० [सं० मल्लकेतु] कामदेव।

मल्लध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मल्लकेतु' [को०]।

मल्लना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मल्लना' या 'मल्लाना'।

मल्लनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशय। २. समुद्र।

मल्लराज—संज्ञा पुं० [सं०] मगर। मकर।

मल्ललग्न—संज्ञा पुं० [सं०] मीन लग्न।

मल्लपक—संज्ञा पुं० [सं० मल्लपक] कामदेव।

मल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नायवला। गुलसकरी।

भाषाशान—संज्ञा पु० [सं०] शिशुमार नामक जलजंतु । सूँस ।

भाषोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता । मस्त्यगंधा ।

भाषना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'भाषना' ।

भह्नना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] १ भल्लाना । भल्लाटे या सन्नाटे में घाना । २. (रोएँ का) खड़ा होना । उ०—गहन गहन लागीं गावन मयूरमाला भह्न भह्न लागे रोम रोम छन में ।—धीपति (शब्द०) ३. भन भन शब्द करना ।

भह्नना^२—क्रि० सं० दे० 'भह्नना' ।

भह्नना—क्रि० सं० [प्रनु०] १ भह्नना का सकर्मक रूप । २. भनकार शब्द करना । भनकारना । उ०—गति गयंद कुच कुम किकिनी मनहु घट भह्नावै ।—सूर (शब्द०) ।

भह्रना^३—क्रि० प्र० [प्रनु०] १ भर भर शब्द करना । भहने का सा शब्द करना । उ०—भह्रि भह्रि भुकि भीनी भर लाये देव छह्रि छह्रि छोटी धूँदनि छह्रिया ।—देव (शब्द०) २ (शरीर प्रादि का) बहुत थिथिल पड़ना । ढीला हो जाना । उ०—भह्रि भह्रि परे पाँसुरी लखाय देह विरह बसाय हाय कैसे दूबरे भये ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

भह्रना^४—क्रि० सं० भिह्नन । भल्लाना । उ०—सुनि सजनी में रही भकेली विरह बहेली इत गुह जन भह्रै ।—सूर (शब्द०) ।

भह्राना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १ थिथिल होकर भर भर शब्द के साथ या लहखड़ाकर गिरना । उ०—(क) असुर खै तर सों पछारयो गिरयो तर भह्राइ । ताल सो तर ताल लाग्यो उठयो बन बह्राइ ।—सूर (शब्द०) । (ख) आपु गए जमलाजुँन तर तर, परसत पात उठे भह्राई ।—सूर०, १०। ३८३ । (ग) लपट भपट भह्राने, हहराने वात फहराने भट परधो प्रबल परावनो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७१ । २ भल्लाना । किट-किटाना । खिजलाना । उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर भह्रानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति भह्रानी । अघर कप रिस भोह मरोरी मन की मन गह्रानी ।—सूर (शब्द०) । ३ हिलाना । उ०—बालघो किरावे वार वार भह्रावे, भरें बुँदियाँ सी, लंक पधिलाइ पाणि पागिहै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३ ।

भांकृत—संज्ञा पु० [सं० भाङ्कृत] १ भरने प्रादि के गिरने या नुपूर के बजने भा शब्द । भकार । २ पैर का एक गहना जिसमें धुँधलू लगे रहते हैं । नूपुर (को०) ।

भाँई, भाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. परछाई । प्रतिविम्ब । छाया । भाभा । भलक । उ०—(क) भाँई न मिटन पाई आप हृरि पातुर हूँ जब जान्यो गज ग्राह लए जात जल में ।—सूर (शब्द०) । (ख) बेसरि के मुकुता में भाँई बरव बिराजत चारि । मानो सूर गुर शुक्र भीम शनि चमकत चद्र मझारि ।—सूर (शब्द०) । (ग) कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । सति मह प्रकट भूमि की भाँई ।—तुलसी (शब्द०) । (क) मेरी भव बाधा हरी राधा नागरि सोइ । जा तन की भाँई परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी (शब्द०) । २ भषकार । धोषेरा । उ०—रेशमी सतत घाल लाल पट लपिटे महल भीतरे न शीत

भीत रनि की न भाँई है ।—देव (शब्द०) । ३. घोखा । छल ।

मुह०—भाँई बताना = छल करना । घोखा देना ।

यौ०—भाँई भप्पा = घोखा घड़ी ।

४ प्रतिशब्द । प्रतिध्वनि । उ०—कुहकि उठे बन मोर कंदरा गरजति भाँई । चित चकृत मृग वृंद बिया मनमय सरसाई ।—नागरीदास (शब्द०) । ५ एक प्रकार के हलके काले धब्बे जो रक्तविकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर पड़ जाते हैं ।

भाँई भाँई—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] बच्चों का एक खेल जिससे वे 'भाँई भाँई कीवो की बात भाँई' कहते जाते भीर धुमते जाते हैं ।

मुह०—भाँई भाँई होना = नजरो से गायब हो जाना । भ्रम्य हो जाना ।

भाँक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँकना] भाँकने की क्रिया या भाव ।

यौ०—ताक भाँक = दे० 'ताक भाँक' ।

भाँक^२—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'भाँख' ।

भाँकना—क्रि० प्र० [सं० वक्ष (= वक्षस्य = देखना) या अधि + प्रक्ष, प्रध्यक्ष, प्रा० प्रज्जवक्ष (= भाँख के समाने)] १. भोट के बगल में से देखना । उ०—(क) जँह तँह उमकि भरोखा भाँकति जनक नगर की नारि ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन भाँकति भरोखे लागी शोभा रानी पावती ।—तुलसी (शब्द०) । २. इधर उधर भुंकर देखना ।

भाँकनी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँकना] १. भाँकी । दर्शन । उ०—भाँकनी दे कर काँकनी की सुने कानन बैन प्रनाकनी कीने ।—देव (शब्द०) । २ कुम्भी (कहारों की परि०) ।

भाँकर—संज्ञा पु० [प्रा० भंखर] दे० 'भंखाड' ।

भाँकरी^४—वि० स्त्री० [प्रा० भंखर (= शुष्क तर)] कुलसी हुई । दुर्बल । सूखी हुई । उ०—उमड़ि उमड़ि हग रोवत भबीर भए, मुख दुति पीरी परी विरह महा मरी । 'हृत्विंद' प्रेम भाती मनहुँ गुलाबी छकी, काम कर भाँकरी सी दुति तन की करी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १७३ ।

भाँका—संज्ञा पु० [हि० भाँकना] १. रहते का छाँचा । जालीदार छाँचा । २. भरोखा । उ०—सभा भाँक द्रोपदि पति राखी पति पानिप कुल ताकी । बसन छोट करि कोट बिसंभर परन न दोन्हो भाँकी ।—सूर०, १ । ११३ ।

भाँकी—संज्ञा स्त्री० [हि० भाँकना] १. दर्शन । भवलोकन । भाँकने या देखने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।—होना ।

२ दृश्य । वह जो कुछ देखा जाय । उ०—काँटे समेटती, फूल छींटती भाँकी ।—साकेत, पृ० २१० ।

क्रि० प्र०—देखना ।

३. वह जिसमें से भाँका जाये । भरोखा ।

भाँख—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन । उ०—ठाढ़े ढिग बाघ ढिग भीते चितवत भाँख धृग साखाधृग सब रीमि रीमि रहे हैं ।—देव (शब्द०) ।

भाँखना^५—क्रि० प्र० [हि० भंखना] दे० 'भाँखना' । उ०—

(क) इंद्री वषा न्यारी परी सुख लुटति छाखि । सूरदास सग रहैं तेक भरै भाखि ।—सूर (शब्द०) । (ख) एहि विधि राउ मनहि मन भाँखा । देखि कुमाति कुमति मनु माँखा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मौखर—सषा पु० [प्रा० मखर; हि० मखाड] १. 'मखाड' । उ०—मौखर जहाँ सुछाडहु पया । हिलगि मकोय न फारहु कंया ।—जायसी (शब्द०) । २. भरहर की वे खूंटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं ।

मौगला—वि० [देश०] ढीला ढाला (कपड़ा) । उ०—पहिर भाँगले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे । घर मे तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे ।—गिरधर (शब्द०) ।

मौगा^१—सषा पु० [हि०] दे० 'मागा' । उ०—पीत बसन पहिरे सुठि माँगा । चखु चपल चलकै जनु नागा ।—विश्राम (शब्द०) ।

मौजन—सषा श्री० [हि०] दे० 'मौजन' ।

मौम—सषा श्री० [सं० मल्लक या मनमन से मनु०] १. मजीर की तरह के, पर उससे बहुत बड़े कसि के ढले हुए तश्तरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिसके बीच में कुछ उभार होता है । माल । उ०—(क) घटा घटि पखाउज आउज मौम वेनु बफ ताव ।—तुलसी प्र०, पु० २६५ । (ख) ताल मृदग मौम इ द्विनि मिलि बीना वेनु बजायो ।—सूर०, १ । २०५ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

विशेष—इसकी उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरौंदि रहती है । इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शखों के साथ यों ही बजाने में, रामायण की चौपाइयों के गाने के समय राम-लीला में प्रथवा ताशे और डोल आदि के साथ ताल देने में होता है ।

२. क्रोध । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—बजाना ।—निकालना ।

३. पाबोपन । शरावत । उ०—रुक्मिणी साँकरे कुज मग करत मौम मकरात । मद मंभ मारत तुरंग खूँदन पावत जात ।—विहारी (शब्द०) । ४. किसी दुष्ट मनोविकार का भाव । ५. सुखा हुआ कुर्मा या तालाब । ६. भोग की इच्छा । विषय की कामना । ७. दे० 'मौम' ।

मौम^२—वि० [सं० जर्जर] जो साड़ा या गहरा ब हो । मामूली । हलका (भोग आदि का नशा) ।

मौमड़ी^३—सषा श्री० [हि० मौम + डी (प्रत्य०)] १. दे० 'मौम' । २. दे० 'मौम' ।

मौमण^४—सषा पु० [देश०] मारवाड़ में खुशी का एक गीत । उ०—सुंदर बछि विप सुख की घर वृद्ध हैं बस मौमण गावे ।—सुंदर प्र०, भा० २, पु० ४५६ ।

४-२३

मौमल—सषा श्री० [मनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना । पंजनी । पायल ।

विशेष—यह गहना चाँदी का बनता है और इसमें नकाशी और जाली बनी होती है । यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने में 'मन मन' शब्द होता है । कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदि को भी शोभा के लिये और मनु मनु शब्द होने के लिये पीतल या ताँबे की मौमल पहनाते हैं ।

मौमर^१—सषा श्री० [मनु०] १. मौमल । पंजनी । उ०—बहि सुंदरी वहरखा, चासु छुड़ स वचार । मनु हरि कटि यल मेखला, पग मौमर मणकार ।—ढोला०, ६० ४८१ । २. दे० 'छलनी' ।

मौमर^२—वि० १ पुराना । जर्जर । छिन्न भिन्न । फूटा टूटा । २. छेदवाला । छिद्युक्त । उ०—भान मनुरागे पिपा भान देस गेला । पिपा बिना पाँजर मौमर भेखा ।—विद्यापति, पु० १७६ ।

मौमरा—वि० [सं० जर्जर] [वि० श्री० मौमरी] पोला । जर्जर । खोखला । उ०—मलूक कोटा मौमरा भीत परी भहराय ।—मलूक०, पु० ४० ।

मौमरि^३—सषा श्री० [हि०] दे० 'मौमल' । उ०—(क) सहस्र कमल सिंहासन राजें । मनहद मौमरि नितही बाँधे ।—चरण० वानी, पु० २६८ ।

मौमरी^४—सषा श्री० [देश०] मौम नामक बाजा । माल । उ०—बजे मौमरी शंख नगारे । गए प्रेत सब देव भगारे ।—रघुराज (शब्द०) । २. मौमल नामक पैर का गहना । उ०—मौमरियाँ मनकेगी खरी तरकेगी तनी तनी तन की तन तारे ।—देव (शब्द०) ।

मौमरी^५—वि० श्री० [सं० जर्जर] छिद्रों से भरी हुई । जिसमें बहुत से छेद हों । उ०—(क) कविरा नाव त मौमरी कूटा खेवन-हार । हलका हलका तरि गया बूढ़े जिन सिर भार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) गहिरा नदिया नाव मौमरी, वोका अधिष्ठ भई ।—बरम० श०, पु० २६ ।

मौमा^६—सषा पु० [हि० मौमरा] १. फसल में खमनेवाला एक प्रकार का कीड़ा ।

विशेष—यह बड़ी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में छे खाकर बिल्कुल भँकरा कर देता है । यह छोटा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और बहुतधा तमाकू या मुकधी (मुली ?) के पत्तों पर पाया जाता है ।

२. घो और चीनी के साथ भूनी हुई चीन की फकी । ३. छेव खाने का पोषा ।

मौमा^७—सषा पु० [मनु०] दे० 'मौम' । २. मंमठ । बछेड़ा ।

मौमिया—सषा पु० [हि० मौम + इया (प्रत्य०)] मौम बजानेवाला मनुष्य । बाजेवालों में से यह जो मौम बजाता हो ।

मौट—सषा श्री० [सं० जट, हि० मूट (माल)] १. पुरुष या स्त्री

का मुखेन्द्रिय पर के बाख । उपर पर के बाल । पशम ।
घण्य । उ०—भाबरु की भाँख में एक गाँठ है । भाबरु सब
पायरो की झाँट है । —कविता की०, भा० ४, पृ० १० ।

मुहा०—झाँट उखाड़ना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना ।
कुछ भी काम न करना । (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा
सकना । इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक झाँट
उखड़ जाने से हो सकती है । झाँट जल जाना या राख हो
जाना = किसी को अभिमान आदि की बातें करते देखकर बहुत
बुरा मालूम होना ।

विशेष—इस मुहावरे का व्यवहार अभिमान करनेवाले के प्रति
बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है ।
२ बहुत तुच्छ वस्तु । बहुत छोटी या निकम्मी चीज ।

मुहा०—झाँट बराबर = (१) बहुत छोटा । (२) अत्यंत तुच्छ ।
झाँट की झट्टली = अत्यंत तुच्छ (पदार्थ या मनुष्य) ।

झाँटाँ—संज्ञा पुं० [देश०] १. झकट । २. झाड़ू । ३. झापड़ ।
घण्य ।

झाँटि(०)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँट] दे० 'झाँट' । उ०—एकोहँ प्रापुहि
मयो द्वितीया दोन्हो काटि । एकोहँ कासों कहै महापुरुष की
झाँटि । —कबीर (शब्द०) ।

झाँती(०)—संज्ञा स्त्री० [देश०] देह । शरीर । उ०—दाहू झाँती पाए
पसु पिरि भवरि सो आहै । होणी पाए बिच में मिहर
न लाहै । —दाहू बानी, पृ० १६३ ।

झाँप—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १. वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय
टोकरा, झाँपा आदि । २. पड़ी हुई चीजें निकालने की एक
प्रकार की कल । ३. तीद । झपकी । ४. पर्दा । चिक । उ०—
झुकि झुकि झूमि झूमि झिझ झिल झेल झेल झरझरी झाँपन
में झमकि झमकि उठै । —पद्माकर (शब्द०) । ५. निकास ।
मस्तूल का झुकाव (स्थान) । ६. मूँज का बना पिटारा ।
झाँपा ।

झाँप^२—संज्ञा पुं० [सं० झप्प] सख्त कूद ।

क्रि० प्र०—देना = दे० 'झप' का मुहा० 'झप देना' ।

झाँपना^१—क्रि० सं० [सं० उज्झम्पव, हिं० झाँपना] १. ढाँकना ।
आवरण डालना । छोट में करना । धाड़ में करना । उ०—
जया गगन सब पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहि कृषिचारी ।
—तुलसी (शब्द०) । २. पकड़कर दबा लेना । छीप लेना ।

झाँपना^२—क्रि० सं० सजाना । शरमाना । झपना ।

झाँपाँ—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना] १. ढाँकने का बाँस आदि का बना
हुआ बड़ा टोकरा । २. मूँज का बना हुआ पिटारा ।

झाँपोँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १. उकने की टोकरी । २. मूँज
की बनी हुई पिटारी, जिसमें कभी कभी चमड़ा भी मड़ा होता
है । ३. झपकी । तीद । ऊँघ ।

झाँपो—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. धोबिन चिड़िया । सज्जन पक्षी । २.
छिनाल स्त्री । पुश्चली ।

झौं—झाँपो के झं = एक गाली ।

झाँमाँ—वि० [देशी या सं० दग्ध] १. दीप्त । दग्ध । २. अनुज्वल ।
झाँयँ(०)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई' । उ०—चंद्रकांति मणि
माझ बिमि, परति चंद की भाँय । —नद० खं०, पृ० १३१ ।

झाँयँ झाँयँ—संज्ञा स्त्री० [पनु०] १. किसी स्थान की वह स्थिति जो
सन्नाटे या सुनेपन के कारण होती है । २. दे० 'झाँव झाँव' ।

झाँव झाँव—संज्ञा स्त्री० [पनु०] १. शोर गुल । २. रम ठग । भाव
ताव । उ०—बनियकें झाँव झाँव दिखलाने के लिये ।
—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६ ।

झि० प्र०—करना । —खिलाना । —होना ।

झाँवना—क्रि० सं० [हिं० झाँवा] झाँवे से रगड़कर (हाथ पैर
आदि) घोना । उ०—हौं गई भेंट भई न सहेट में तातें ख्याहट
मो मन छाययो । कालिंदी के तट झाँवत पाँप हौं प्रायो तहाँ
लखि कखे सुभाययो । —प्रतापसिंह सवाई (शब्द०) ।

झाँवर^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाबर] वह नीची भूमि जिसमें वर्षाकाल
में जल भर जाता है और जिसमें मोटा मृत्त चमता है ।
डाबर ।

विशेष—ऐसी भूमि धान के लिये बहुत उपयुक्त होती है ।

झाँवर^२—वि० [सं० श्यामल][वि० स्त्री० झाँवरी] १. झाँवे के रंग का ।
कुछ कुछ काँधे रंग का । २. मखिन । उ०—साँची कहीं रावरे
सों झाँवरे लगे तमाल । —(शब्द०) । ३. मुरझाया हुआ ।
कुम्हलाया हुआ । ४. चिंत्त । मय । सुस्त । उ०—निसि न
नींद आवे दिवस न भोजन पावे चितवत मग भई लटि झाँवरी ।
—सूर (शब्द०) ।

झाँवरी(०)—वि० [हिं० झाँवर] कुछ कुछ काले रंग का । उ०—
बलिहारी सब क्यो कियो सैन साँवरे सन । नहि कछु गोरे भग
ये भए झाँवरे रण । —स० सप्तक, पृ० २४६ ।

झाँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँव (= छाया)] १. झलक । २. झाँख
की कलखी । कलखी ।

झौं—झाँवरीबाज ।

मुहा०—झाँवरी देना = (१) झाँख से इशारा करना । (२)
बातों से फँसाना । मुलावा देना ।

झाँवरी—संज्ञा पुं० [सं० झामक] जली हुई ईंट । वह ईंट जो जलकर
काली हो गई हो । इससे रगड़कर घस, शस्त्र आदि चीजों
की, विशेषतः पैरों की मेल छुड़ाते हैं । उ०—झाँवी खेव
जोग तेग को मले बनाई । —पलटू०, पृ० २ ।

झाँसना—क्रि० सं० [हिं० झाँसा] १. ठगना । धोखा देना । झाँसा
देना । २. किसी स्त्री को व्यवहार में प्रवृत्त करना । स्त्री को
झाँसना ।

झाँसा—संज्ञा पुं० [सं० अध्यास (= मिथ्या ज्ञान), प्रा० अन्धज्ञान]
अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया ।
धोखा । दमबुत्ता । छल । उ०—अरे मन उसे क्या है दुनियाँ
का झाँसा । लिया हात में भोक का जिसने काँसा । —
दक्खिनी०, पृ० २५७ ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—अध्यासी झलसी पत्तो करके कहीं ले गई

कैसा झाँसा दे गई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१०।
—बताना। उ०—रूपया पैसा अपने पास रखे, यारन के दूर से झाँसा बताव।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३३५।

यौ०—झाँसा पट्टी = धोखा घड़ी।

मुहा०—झाँसे में भाना = धोखे में भाना। उ०—यहाँ बड़े बड़ों की झालें देखी हैं। आपने झाँसे में कोई उनेला भाए तो भाए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

झाँसिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० झाँसा + दया (प्रत्य०)] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झाँसी—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] १. उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ की रानी लक्ष्मीबाई ने, जो झाँसी की रानी नाम से प्रसिद्ध हैं, सन् १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम (गदर) के अवसर पर अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया और युद्धक्षेत्र में लड़ती हुई मारी गई थीं। २. एक प्रकार का गुवरेला जो बाल और तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है।

झाँसू—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० झाँसा] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय, पा० उपज्झाय प्रा० उवज्झय, उवज्झाय, उज्झ, उज्झाय, उज्झाप्रो, ओज्झाय, हिं० ओझा प्रमवा सं० ध्या (= ध्यान, धितन); प्रा० झा] मैथिली या गुजराती ब्राह्मणों की एक उपाधि।

झाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाई'। उ०—मनि दपन सम अवनि रमनि तापर छवि देही। विपुलरति कुंडल अलक तिलक भुकि झाई लेही।—नंद प्र०, पृ० ३२।

झाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाई'।

झाऊ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० भावुक] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो दक्षिणी एशिया में नदियों के किनारे रेतीले मैदानों में अधिकता से होता है। पिचुल। मफल। बहुप्र थि।

विशेष—यह झाड़ बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है। इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे हलके गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सरदी में यह झाड़ नहीं रह सकता। कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग निकाला जाता है और इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार औषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का क्षार भी निकलता है। इसकी टहनियों से ठोकड़ियाँ और रस्सियाँ आदि बचती हैं और सुखी सड़की जलाने के काम में आती हैं। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड़ बहुत बढ़कर पेड़ का रूप भी धारण कर लेता है।

झाक^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० झक] अचपात। अशनिपात। उ०—(१) बह बह रुकह के कै झाक। बजै विषम आवध झाक।—पृ० रा०, ६।१६३।

झाकर—सञ्ज्ञा पुं० [देशी झंखर] कंटीली झाड़ियों और पौधों का समूह। झंखाड़। उ०—साधो एक बच झाकर झंखा। सावा तितरि तेहि माह मुलाने सान बुझावत कौमा।—सं० दरिया, पृ० १२५।

झाग—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० गाज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।
क्रि० प्र०—उठना।—घुटना।—छोड़ना।—निकलना।—फेंकना।

झागड़^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगड़ा'। उ०—सहज ही सहज पग धारा जब आमम को दसी परकार झागड़ बजाई।—चरण० बानी, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—बजाना।

झागना^१—क्रि० प्र० [हिं० भाग] भाग उत्पन्न होना। फेन निकलना।

झागना^२—क्रि० प्र० भाग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

झाज^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० झहाज] दे० 'जहाज'। उ०—किया था छुदा यूँ उसे सरफराज, जो थे सातों दरिया उपर उसके झाज।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

झाज^२—सञ्ज्ञा पुं० [?] महीन कागज। बैलून। गुंबारा। उ०—बम्बा गिरा गिरा की तोपाँ चखा चला की। झाजों में भर को ग्यासाँ हवा में तू उड़ा की।—दक्खिनी०, पृ० २६६।

झाझ^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझ'।

झाझ^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० जहाज, दक्खिनी, भाज] दे० 'जहाज'।

झाझन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'। उ०—बाजे शख बीन स्वर सोई। झाझन केरी बाजन होई।—कबीर सा०, पृ० ५८४।

झाझी^१—वि० [सं० दग्ध, प्रा० दज्झ, दाझ; राज० झाझ] १. दग्ध करनेवाली। जलानेवाली। इतनी अधिक शीतल जिससे जलने का मास प्रतीत हो। उ०—अति घण ऊनिनि आवियउ, झाझी रिठि भड़वाइ। बग ही भला त वप्पड़ा, धरणि न मुकइ पाइ।—ढोला०, दृ० २५७।

झाट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुंज। निकुंज। २. झाड़ी। ३. अण का प्रसालन। धाव की घोना।

झाट^२—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] अस्त्रों का प्रहार। उ०—पह झाट पाट छल राज पाट, दिल्लीस जले बल बले दाट।—रा० रू०, पृ० ७४।

झाटकपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० शाटक पट ?] एक प्रकार की ताजीम जो राजपूताने के राजदरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों को मिला करती थी।

झाटल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोभ। गोलीड। घटा-पटल। २. मोरवा नामक वृक्ष।

विशेष—यह सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का होता है। झाक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल घटियों की भाँति लटकते हैं।

झाटल^२—वि० [?] आहत। तस्त। उ०—झटक झाटल छोड़ल ठाम। कएल महातर तर बिसराम।—विद्यापति, पृ० ३०३।

झाटा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लुही। २. जुड़े भाँवला।

भाटास्त्रक—संज्ञ पु० [सं०] तरवूज । मतीरा [को०] ।

भाटिका—संज्ञ स्त्री० [सं०] भुईं भाँवला ।

पर्या०—भाटा । भाटीका । भाटी ।

भाङ्ग^१—संज्ञ पु० [सं० भाङ्ग; देशी भाङ्ग (= सतागहन) १. वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकलकर चारों ओर खूब छितराई हुई हों । पौधे से इसमें पत्तर यह है कि यह कटीला होता है । २. भाङ्ग के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का सामान जो छत में लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है ।

विशेष—इसमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से शीशे के गिलास लगे हुए होते हैं, जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है । नीचे से ऊपर की ओर के गिलासों के वृत्त बराबर छोटे होते जाते हैं ।

यौ०—भाङ्ग फानूस = शीशे के भाङ्ग, हाड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है ।

३. एक प्रकार की आतिथवाजी जो छूटने पर भाङ्ग या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है । ४. छीपियों का एक प्रकार का छाया, जो प्रायः दस अंगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या भाङ्ग की आकृति बनी रहती है । ५. समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं ।—(लघ०) । ६. गुच्छा । लच्छा ।

भाङ्ग^२—संज्ञ स्त्री० [हि० भाङ्गना] १. भाङ्गने की क्रिया । फटकर या भाङ्गू आदि देकर साफ करने की क्रिया ।

यौ०—भाङ्ग पोंछ = भाङ्ग और पोंछकर साफ करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है । जैसे, भाङ्गपोंछ, भाङ्गबुहार, भाङ्गभूङ्ग ।

२. बहुत डाँट या फटकारकर कही हुई बात । फटकार । डाँटवट ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।—सुनना ।—सुनाना ।

३. मंत्र से भाङ्गने की क्रिया ।

यौ०—भाङ्ग फूँक = मन्त्रोपचार ।

भाङ्ग^३—संज्ञ पु० [हि० भाङ्गना] फटका (कुशवी) ।

भाङ्गखंड—संज्ञ पु० [हि० भाङ्ग + भंड] १. कटिदार जंगल । बन । ऐसा वनविभाग जिसमें अधिकतर भरवारी आदि के कंटीले भाङ्ग हों । २. अत्यंत घना और भयंकर जंगल । ३. छत्तीसगढ़ और गोडवाने का उत्तरी भाग । भारखंड ।

भाङ्ग मखाङ्ग—संज्ञ पु० [हि० भाङ्ग + मखाङ्ग] १. कटिदार भाङ्गियों का समूह । २. व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह ।

भाङ्गबुहार^१—वि० [हि० भाङ्ग + फा० वार] १. सघन । घना । २. कंटीला । कटिदार । ३. जिसपर भाङ्ग या बेलवृक्ष आदि बने

हों । ४. जिसमें शीशे के भाङ्ग की सजावट हो । जैसे,—भाङ्गवार कमरा ।

भाङ्गद्वार^२—संज्ञ पु० १. एक प्रकार का कसीदा जिसमें बड़े बड़े बेल वृक्ष बने होते हैं । २. एक प्रकार का गलीचा जिसपर बड़े बड़े बेल वृक्ष बने होते हैं ।

भाङ्गन—संज्ञ स्त्री [हि० भाङ्गना] १. वह जो कुछ भाङ्गने पर निकले । २. वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज गंदे आदि दूर करने के लिये भाङ्गी जाय । भाङ्गने का कपड़ा ।

भाङ्गना^१—क्रि० सं० [सं० क्षरण] १. किसी चीज पर पड़ी हुई गंदे आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठाकर फटका देना । फटकारना । फटकारना । जैसे,—जरा दरी और धाँदनी भाङ्ग दो । २. फटका देकर किसी एक चीज पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना । जैसे,—इस झोंगे पर बहुत से बीज चिपक गए हैं, जरा उन्हें भाङ्ग दो । ३. भाङ्गू या कपड़े आदि की रगड़ या फटके से किसी चीज पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना । जैसे,—इन फितावों पर की गंदे भाङ्ग दो । ४. भाङ्गू या कपड़े आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार गंदे मेल, या और कोई चीज हटाकर कोई दूसरी चीज साफ करना । जैसे,—(क) सबेरे उठते ही उन्हें सारा घर भाङ्गना पड़ता है । (ख) इस मेज को भाङ्ग दो ।

सयो० क्रि०—झालना ।—देना ।—लेना ।

५. बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐंठना । फटकना ।—(क्व०) ।

संयो० क्रि०—लेना ।

६. रोग या प्रेतबाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मंत्र आदि से फूँकना । मन्त्रोच्चार करना । जैसे, नजर भाङ्गना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. बिगड़कर कड़ी कड़ी बातें कहना । फटकारना । डाँटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

८. निकालना । दूर करना । हटाना । छुड़ाना । जैसे,—तुम्हारी सारी बटमाथी भाङ्ग देंगे । उ०—मोहों ते ये चतुर कहावति । ये मनही मन सोको नारति । ऐसे वचन कहूँगी इन टें चतुराई इनकी मैं फारति ।—सूर (शब्द०) । ९. अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना । जैसे,—वह भाते ही झंगरेजी भाङ्गने लगा । १०. त्यागना । छोड़ना । गिराना । जैसे, बिड़ियों का पंख भाङ्गना ।

भाङ्गफूँक—संज्ञ स्त्री [हि० भाङ्गना + फूँकना] मंत्र आदि से भाङ्गने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं अथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है । मंत्र आदि पढ़कर भाङ्गना या फूँकना ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

भाङ्गबुहार—संज्ञ स्त्री [हि० भाङ्गना + बुहारना] भाङ्गने और बुहारने की क्रिया । सफाई ।

झाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० झाड़ना] १. झाड़ फूँक । २. तलाशी । ३. सितार के सब तारों (विशेषतः बाजे का तार और चिकारी का तार) को एक साथ बजाना । भाषा । ४. मल । गुह । मैला ।

मुहा०—झाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हगना । भाड़ा फिरना = हगाना । छोटे बच्चों को मलत्याग कराना ।

५. मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

झाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० झाड़] १. छोटा झाड़ । पौधा । २. बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या कुरमुट । ३. सुमर के बालों की कुँची । बलौछी ।

झाड़ीदार—वि० [हि० झाड़ी + फा० दार] झाड़ी की तरह का । छोटे झाड़ का सा । २. कंटोला । कटिदार ।

झाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हि० झाड़ना] १. बहुत सी लंबी सीकों आदि का समूह जिससे जमीन, फर्श आदि झाड़ते हैं । कुँचा । बोहारी । सोहनी । बढ़नी ।

मुहा०—झाड़ू देना = (१) झाड़ू की सहायता से कूड़ा करकट साफ करना । (२) दे० 'झाड़ू फेरना' । झाड़ू फेरना = सफाया हो जाना । कुछ न रहना । झाड़ू फेरना = बिलकुल नष्ट कर देना । झाड़ू मारना = (१) धृष्ट करना । (२) निरादर करना । (लि०) ।

२. पुच्छत तारा । कतु । दुमदार सिंघारा ।

झाड़ूकश—संज्ञा पुं० [हि० झाड़ू + फा० कश] १. झाड़ू देनेवाला । झाड़ू बरदार । २. भगी । मेहतर । चमार ।

झाड़ूदुमा—संज्ञा पुं० [हि० झाड़ू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम झाड़ू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐसी गिना जाता है ।

झाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हि० झाड़ + फा० बरदार] १. वह जो झाड़ू देता हो । २. चमार । भगी । मेहतर ।

झाड़ूवाला—संज्ञा पुं० [हि० झाड़ू + वाला] १. वह जो झाड़ू देता हो । झाड़ू बरदार । २. भगी, मेहतर या चमार ।

झाणू—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान, प्रा० झाण] १. धत करण मे स्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । ध्यान । २. हठयोग के अनुसार वह साधना जिसमें शरीर के भीतरी पाँच सरबों के साथ पंचमहाभूतों का ध्यान करके उन्हें ऊर्ध्व में स्थित किया जाता है ।

झाती०—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्यातृ, प्रा० झाती या देश०] ध्यान करनेवाला । धितक । उ०—खडित निद्रा मल्प प्रहारी । झाती पावे मनमे बारी ।—प्राण०, पृ० ८१ ।

झापड़०—संज्ञा पुं० [हि० झापना] गोपन । छिपाव । उ०—भातर दुतर नरि, से कइये जएवहु तरि, भारति न करइ झाप ।—विद्यापति, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—करना ।

झापड़—संज्ञा पुं० [सं० चपेटा] थप्पड़ । पड़ाका । लप्पड़ । तमाचा । क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—झापड़ कसना । झापड़ देना । झापड़ मारना = थप्पड़ मारना । उ०—यदि कोई बोल दे तो बिना एकाध झापड़ मारे मानते भी नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६७ ।

झापा०—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झप, हि० झापना] १. झपकी । तंद्रा । २. कमबोरी । थियलता । उ०—कहा होई जो भी दुख तापा । सुखे जोम दाह भी झापा ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

झाबर०—संज्ञा पुं० [?] दलदली भूमि ।

झावर०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'झाबा' । उ०—पुनि झाबर पे झाबर भाई । धिरित खाँह का कहीं मिठाई ।—जायसी (शब्द०) ।

झावा—संज्ञा पुं० [हि० झापना (= डाँकना)] १. टोकरा । खार्चा । हठ्ठे का बड़ा दौरा ।—उ०—हम लोग दो रोटों के लिये सिर पर झावा रखे तरकारी बेचते फिरें ।—फूलो०, पृ० ११ । २. घी, तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का चमड़े का टोंटीदार बरतन । ३. चमड़े का बना हुआ गोल घाल जिसमें पंजाब में खोग घाटा छानते हैं । इसे सफरा कहते हैं । ४. रोशनी का झाड़ जो लटकाया जाता है । ५. दे० 'झवा' ।

झावी—संज्ञा स्त्री० [हि० झाबा] छोटा झाबा । टोकरा ।

झाम०—संज्ञा पुं० [देश०] १. झम्बा । गुच्छा । उ०—सुंदर दसन चिबुक प्रति सुंदर हृदय विराजत दाम । सुंदर मुखा पीत पट सुंदर कनक मेखला झाम ।—सूर (शब्द०) । २. एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं । ३. घुड़की । डाढ़ डपट । ४. धोखा । छल । कपट ।

झामक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । झार्वा ।

झामर०—संज्ञा पुं० [सं०] १. टेकुआ रगड़ने की सान । तर्कशाण । सिल्ली । २. स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजनी की तरह का होता है ।

झामर०—वि० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] मलिन । सौवला । झावर । उ०—एव भेल विपरीत झामर देहा । दिवसे मलिन जनु चाँदक रेहा ।—विद्यापति, पृ० १३३ ।

झामरभूमर०—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] चमक दमक । घुमघाम । झूठा प्रपच । ठकोसला । उ०—दुनिया झामरभूमर भरुकी ।—कबीर० श०, पृ० ४१ ।

झामरि०—वि० स्त्री० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] दे० 'झामर' । उ०—सामरि हे झामरि तोर देह, की कह के सयँ लाएलि नेह ।—विद्यापति, भा० २, पृ० १६ ।

झामरि०—संज्ञा पुं० [सं० श्यामल, प्रा० झामल] 'झाँवा' । उ०—शरीर का पसीवा शरीर पर सूख फैदियों की स्वचा कड़ी और झामे की तरह छुरदुरी हो गई ।—भस्मावृत०, पृ० २० ।

झामो०—वि० संज्ञा पुं० [हि० झाम] धोखेबाज । चालाक । धूर्त । जितने मंत्र न फोड़ आनी । झूठ न वादि न परतिगामी ।—पपाकर (शब्द०) ।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झनकार । झन् झन् शब्द । २. सन्नाटे में हवा का शब्द । वह शब्द जो किसी सुबसान

स्थान में हवा के चलने तथा गूँज आदि के कारण बुनाई पड़ता है और जिससे कुछ भय सा होता है। जैसे, इतना बड़ा सुवा घर भायें भायें करता है।

भार^१—वि० [सं० सर्व, प्रा० सारो, हि० सारा] १. एकमात्र। निपट। केवल। उ०—दीयो दधि धान को सुकैषे ताहि भावत है जाहि मन भायो भार भगरो गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)। २. संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—के नख तें सिख खों पदमाकर जाहिरे भार सिंगार कियो है।—पद्माकर प्र०, पृ० १९८। ३. समूह। भुंड।

यौ०—भारभार। भाराभार।

भार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० भाला (=ताप,)] १. दाह। डाह। जलन। ईर्ष्या। उ०—भोसों कहो बात बाबा यह बहुत करत तुम सोच बिचार। कहा कहों तुम सो में प्यारे कंस करत तुमसों कुछ भार।—सूर०, १०।५३०। २. ज्वाला। सपट। प्रांच। उ०—(क) जनहुँ छाँह मेंहुँ धूप दिखाई। तैसे भार लाग जो भाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नाम खें चिसात बिलखात भकुलात प्रति तात तात तौसियत भौंसियत भारहीं।—तुलसी प्र०, पृ० १७४। (ग) गरज किलक भाषाँ उठत मनु दामिनि पावक भार।—सूर (शब्द०)। ३. भाल। चरपरापन। उ०—छाँह छबीछी घरी घुँगारी। भरहै उठत भार की न्यारी।—सूर (शब्द०)। ४. वर्षा की बूँदें। झड़ी।

भार^३—संज्ञा पुं० [हि० झटना] भरना। पोना।

भार^४—संज्ञा पुं० [सं० भाट, देशी भाड़ (= लता गहन)] १. वृक्ष। पेड़। भाड़। २. एक पेड़ का नाम।

भारखंड—संज्ञा पुं० [हि० भाड़+खंड] १. एक पहाड़ जो वैद्यनाथ होता हुआ जगन्नाथ पुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास प्रयोगों में छतीसगढ़ और पोंडवाने के उत्तरी भाग को भारखंड के नाम से लिखा है। २. दे० भाड़खंड।

भारन—क्रि० स० [हि० भाड़ना] दे० 'भाड़न'।

भारना^१—क्रि० स० [सं० भर] १. बाल साफ करने के लिये कघी करना। २. छाँटना। अलग करना। जुदा करना। ३. दे० 'भाड़ना'।

भारना^२—क्रि० स० [हि० झलना] दे० 'झलना'। उ०—सुरति खँवर खे सनमुख भारे।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १७।

भारफूँका—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भाड़फूँक'।

भार^१—संज्ञा पुं० [हि० भारना] १. पतली छवी हुई भाँप। २. वह घूप जिससे घाल को फटककर सरसों इत्यादि से पृथक् करते हैं। भरवा। † ३. खाँटी तेजी से खाने का हुनर।

भार^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, हि० भाल] भार। ज्वाला। उ०—भोर दगध का कहों अपारा। सुनै सो जरे कठिन प्रसि भारा।—पद्मावत, पृ० २४१।

भारि^१—वि० [हि० भार] दे० 'भार'। उ०—कहहु सुमंत

विचारि केहि बालक घोटक गहो। बसैं इहाँ श्रुति भारि सतिन कर न निवास इत।—(शब्द०)।

भारि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० झड़ी, या सं० धार (= धारा)] धनवरत वर्षा की झड़ी। घल्लड़ बूँदों की धारा। उ०—मेघनि जाइ कही पुकारि। सात दिन भरि बरसि बज पर गहैं नैकु न भारि।—सूर०, १०।८८२।

भारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भरना] लुटिया की तरह एक प्रकार का लेबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक छोटी एक टोंटी लगी रहती है। इस टोंटी में से धार बँधकर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने भयवा हाथ पर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) भासन दे चौकी भागे धरि। जमुनाजल राख्यो भारी भरि।—सूर (शब्द०)। (ख) भापुन भारी माँगि विप्र के चरन पखारे। इती दूर श्रम कियो राख भिज भप दुखारे।—सूर (शब्द०)।

भारी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० भारि] वह पानी जिसमें घमघूर, जीरा, नमक आदि धुला हुआ हो। इसका व्यवहार पश्चिम में अधिक होता है।

भारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० झड़ी] दे० 'झाड़ी'। उ०—फूल भरें सखीं फुलवारी। दिस्टि परी उकठी 'सब भारी'।—जायसी प्र०, पृ० २५४।

भारी^४—वि० [हि०] दे० 'भार'।

भारू—संज्ञा पुं० [हि० भाड़ू] दे० 'भाड़ू'।

भारनेवाला—वि० [सं० शब्द प्रा० झड़, हि० भारा+वाला (प्रत्य०)] पटा खेलनेवाला। पठा। बनेठी या लकड़ी चलानेवाला।

भारभर—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या हड़क बाजा बजानेवाला [को०]।

भाल^१—संज्ञा पुं० [सं० झलक] झलक। कंसे का बना हुआ ताल देने का वाद्य। उ०—सहस गुजार में परमली भाल है, झिलमिली उलटि के पोन भरना।—पद्म०, पृ० ३०।

भाल^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. रहट्टे का बड़ा खाँचा। २. भालने की क्रिया या भाव।

भाल^३—संज्ञा स्त्री० [सं० भाला] १. चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, राई की भाल, मिरचे की भाल। २. तरंग। मौज। खहर। ३. कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। झल।

भाल^४—संज्ञा पुं० [हि० झड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की झड़ी जो प्राय जाड़े में होती है। उ०—जिन जिन सबल ना किया असपुर पादन पाय। भाल परे दिन भायए सबल किमा न जाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

भाल^५—वि० [हि० भार] दे० 'भार'।

भाल^६—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाले, प्रा० भाल] १. भाँच। ज्वाला। उ०—प्रति के भाल में साँकड़े पैसता बैठते जठते श्री राम रखा करें।—रामानंद०, पृ० ६। † २. शीघ्र झटपट। उ०—भाये भेल भाल कुसुम सब छूछ। वारि विहून सर केमो वहि पूछ।—विद्यापति, पृ० ३१५।

माला^४—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १ घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। २ दे० 'मालर'।

मालना^५—क्रि० सं० [हि०?] १. घातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ सगाना। २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंडा करने के लिये बरफ या सोहे में रखना। संयो० क्रि०—देना।

मालना^६—क्रि० सं० [सं० खेल, प्रा० खेल; हि० खेलना] प्रहस्य करना। धारण करना। उ०—जिण्ण दीहे तिल्ली निइइ, हिरण्णो मालइ गाम। तह्ण दिहारी गोरहो पइउउ मालइ घाम।—डोला०, दु० २८२। २ कबूल करना। स्वीकार। करना। उ०—केताइ माली चाकरी, हूँए इजाका दीष।—रा०, पु० १२६।

मालर^७—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] १. किसी चीज के किनारे पर थोपा के लिये बनाया, सगाया या टाँका हुआ वह हाथिया जो सबकता रहता है।

विशेष—इसकी चौड़ाई प्रायः कम हुमा करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल दूटे आदि बने रहते हैं। मुख्यतः मालर कपड़े में ही होती है, पर दूसरी चीजों में भी थोपा के लिये मालर के आकार की कोई चीज बना या लगा लेते हैं। जैसे, गद्दी या तकिये की मालर, पखे की मालर। २ मालर के आकार की या किनारे पर लटकती हुई कोई चीज। ३ किनारा। छोर।—(कव०)। ४. माल। माल। उ०—(क) सुन्न सिखर पर मालर मलकै बरसे मसी रस बुँद चुपा।—कबीर श०, भा० ३, पु० १०। (ख) घुरत निस्सान तहँ गैव की मालरा गैव के घट का नाद धावे।—कबीर श०, पु० ८८। ५ घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है। उ०—घटे क्रिया बाँभण, मिटे मालर परसाँदा। ईन प्रजा उपजे, निरख दुर रीत निसाँदा।—रा० ७०, पु० २०

मालर^८—संज्ञा पु० [देश० १] एक प्रकार का पकवान जिसे मलरा भी कहते हैं। उ०—मालर माँडे पाए पोई। देखत उजर पाग जस धोई।—जायसी (शब्द०)।

मालरदार—वि० [हि० मालर + दार प्रत्य०] जिसमें मालर सगी हो।

मालरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मलराना'। उ०—नेक न मुरसी विरह भर नेह लता कुंभिलाति। निति निति होति हरी हरी खरी मालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)।

मालरा^९—संज्ञा पु० [हि० मालर] एक प्रकार का रुपहला हार। हुमेल।

मालरा^{१०}—संज्ञा पु० [हि० ताल] चौड़ा कुम्भी। बावली। कुड।

मालरि^{११}—संज्ञा स्त्री० [हि० मालर] बदनवार। लटकते हुए मोती आदि की पंक्ति। उ०—कनक कलस धरि मंगल गावो, मोतियन मालरि लाव हो।—धरम०, पु० ४९।

मालरी^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० मल्लरी] दे० 'माल'। उ०—घंटा ताल

मालरी बाजे। जग मग जोति प्रवधि पुर छाजे।—रामानंद०, पु० ७।

माला^{१३}—संज्ञा पु० [देश०] १. राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ में पाई जाती है। २. सितार बजाने में गत के अंत में द्रुत गति से बाज और बिकारी के जातों का भाड़ा बजाना। ३ बकमक। भाँझा।

माला^{१४}—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, प्रा० माला] दाढ़। ताप। जलन। बीस। उ०—तपन तब, जब उठत माला, कठिन दृष्ट अब को सहै।—संतबानी०, भा० २, पु० ११।

मालि^{१५}—संज्ञा स्त्री० [हि० मल] पानी की मछी माल। उ०—मालि परे दिव प्रपए अंतर पर यह साँझ। बहुत रसिक के लागते वेश्या रहिगे बाँझ।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छाना।—पड़ना।

मालि^{१६}—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे घाम को पीसकर उसमें राई, नमक और सुनी हींग मिलाकर बनाई जाती है। मारी।

माँवें माँवें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ बकवाद। बकबक। २ हुज्जत तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

मावरि^{१७}—संज्ञा पु० [हि० मूर] दे० 'मूर' उ०—कड़त गोल की गोल खेल खेलन मावरि हित।—प्रेमघन०, भा० १, पु० ३३

मावना^{१८}—क्रि० सं० [हि० भावाँ से नाम०] भाँवें से रगड़कर धोना। मैल साफ करता। उ०—नायन न्हुवायके गुसायनि के पाँय भावें, उभकि उभकि उठे वा कर खसन ते।—नट०, पु० ७४।

मावर—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'माँवर'।

मावु, मावुक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'माऊ'।

मिगा^{१९}—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गाक] तोरई। तोरी। तुरई।

मिंगनवडा पु० [देश०] १ एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है। २. सारस्वत शाहणों की एक जाति।

मिंगरि^{२०}—संज्ञा पु० [दे० प्रा० मिंगर] उ०—मिंगरि सलूर पावस निगाव।—पु० रा०, १। ४३४।

मिंगा^{२१}—वि० [देश० ? मिंगरि(उ) मिंगर] मिंगुर के समान। मिंगुर की ध्वनि सा। उ०—घचहब मिंगा शब्द सुनायो।—कबीर श०, भा० १, पु० १७।

मिंगाक—संज्ञा पु० [सं० मिङ्गाक] तोरई। तोरी।

मिंगिनी^{२२}—संज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गिनी] एक प्रकार का जगसी वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसके पत्ते महुए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगे हैं। फूल सफेद और फल बेर के समान होते हैं।

पर्या०—मिंगी। मिंगिनी। मिंगिनी। प्रमोदिनी। सुनियसि।

२ प्रकाश। ज्योति। चमक। लुक (को०)।

मिंगिनी^{२३}—संज्ञा स्त्री० [देश०] शुद्ध कीटविशेष। लघोत। जुगनु। उ०—चमकत सार सनाइ पर, हय गय नर भर

लगि । मनौ बुद्ध परि मिगिनियी, करत केखि विसि जगि ।
—पु० रा०, ८ । ४३ ।

मिगो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गी] दे० 'मिगिनी' ।

मिगिनी—वि० [देशी] प्रत्यत क्षीण । दुर्बल ।

मिगिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० मिङ्गिम] जसता हुआ वन (को०) ।

मिगिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिगिया' ।

मिगिरिस्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गिरिस्टा] मिगिरिस्टा नामक क्षुप ।

मिगिरिस्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गिरिस्टा] एक प्रकार का क्षुप ।

मिगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गी] मिङ्गी । मींगुर ।

मिगीटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] सपुणं जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । यह दिन के चौथे पहर में गाई जाती है ।

मिगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गी] कठसरैया । पियाबासा ।

मिङ्कवा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'मीङ्का' । उ०—चोखे चलु जेतवा, कमकि लेहु मिङ्कवा, देवस मुखल भैया पाहुन रे की ।—कबीर (शब्द०) ।

मिङ्गनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] तरोई । तुरई ।

मिङ्गवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मिङ्गट, मिङ्गट] एक प्रकार का छोटी मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनों तरफ बाल होते हैं ।

मिङ्गारना—क्रि० प्र० [हिं० मींगुर या मङ्गकार] मींगुर का शब्द होना । मींगुर का शब्द करना ।

मिङ्गुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० मङ्गा] छोटे बच्चों के पहनने का कुरता । मङ्गा । उ०—पीत भीन मिङ्गुली तन सोही । किलकनि चितवनि भावति मोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

मिङ्गोरना—क्रि० प्र० [सं० मङ्गोरण] मङ्गार करना । कूकना घावाज करना । पिङ्कना । उ०—हूँगरिया हरिया हुआ वणे मिङ्गोरया मोर । इण रिति सीणइ नोसरइ, जाचक, चातक, चोर ।—ढोला०, पृ० २५३ ।

मिङ्गि—वि० स्त्री० [देशी] भीनी । प्रत्यत क्षीण । उ०—कहहि कबीर किहि देवहु खोरी । जब चलिहहु मिङ्गि घासा तोरी ।—कबीर जी०, पृ० २८२ ।

मिङ्गिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा जिसमें दूध बाज कर कुम्हार के महीने में लङ्कियाँ घुमाती हैं । उ०—बाबरघ मग हूँ कड़े तिय तब दीपति पुंख । मिङ्गिया कैसो घट भयो दिन ही में बनकुज ।—मतिराम (शब्द०) ।

मिङ्गीटी, मिङ्गीटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मिङ्गीटी' ।

मिङ्गोरना—क्रि० प्र० [हिं० मङ्गोरना] दे० 'मङ्गोरना' । उ०—नहि नहि करण नयन ठर नोर । काँच कमल भमरा मिङ्गोर ।—विद्यापति, पृ० २०४ ।

मिङ्कना—क्रि० प्र० [हिं० मङ्कना] देखना । ताकना । उ०—

बरनीन हूँ नैन भिके भिकिके मनो खजन मीन पे जाल परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

मिङ्गना—क्रि० प्र० [हिं०] टिमटिमाना । उ०—मङ्कत बगसर टोप भिखे । रसचाह निसा प्रतिभयब रखे ।—रा० क०, पृ० ३४ ।

मिङ्गना—क्रि० प्र० [हिं० मीङ्गना] दे० 'मीङ्गना' । उ०—भोर जगि प्यारी भय ऊरध हते सी भोर बाधी खिभि भिरकि उचारि भय पलके ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मिङ्गना—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'मङ्गना' ।

मिङ्गमिगा—वि० [हिं० मिङ्गमिन] दे० 'मिङ्गमिन' । उ०—दीस रहया दिव माँहि दर्शन साईं दा । साईं दा साईं दा मिङ्गमिग साईं दा ।—राम० घमं०, पृ० ४६ ।

मिङ्गरा, मिङ्गरो—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] मङ्गडा । मङ्गट । उ०—समुझिय जग जनम को फल मन में, हरि सुमिरव मे दिन भरिए । मिङ्गरो बहुतेरो घेव घनेरो मेरो तेरो परिहरिए ।—भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० २२६ ।

मिङ्गक—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मङ्गक' ।

मिङ्गकना—क्रि० प्र० [हिं० मङ्गक, मिङ्गक] दे० 'मङ्गकना' । उ०—बही सचि चलें तजि म्हापुनपो मिङ्गके कपटी गो निचक नहीं ।—घनानंद (शब्द०) ।

मिङ्गकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मङ्गकार' ।

मिङ्गकारना—क्रि० प्र० [अनु०] १. दे० 'मङ्गकारना' । उ०—वोही डँग तुम रहे कन्हाई सबे उठी मिङ्गकारि । लेहु पसीस सवन के मुख ते कतहि दिरावत गारि ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'मङ्कना' । उ०—रसना मति हत नैना निज गुन लीन । कर तें पिय मिङ्गकारे मजुगति कीन ।—रहीम (शब्द०) ।

मिङ्गकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मङ्गक' । उ०—मुकि मङ्कत मिङ्गकी करति, उमकि मङ्गोखनि बाल ।—ब्रज० प्र०, पृ० २ ।

मिङ्गि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'मङ्गक' ।

मिङ्गिकना—क्रि० प्र० [हिं० मिङ्गक + ना (प्रत्य०)] उ०—बरनीन हूँ नैन भिके भिकिके मनो खजन मीन पे जावे परे ।
—ठाकुर (शब्द०) ।

मिङ्गिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिङ्गिया' ।

मिङ्गीना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'मङ्गोरना' । उ०—उधे मिङ्गीकर उसवे हिला दिया, क्योंकि मधुबन का वह रूप देखकर मैना को भी भय लगा ।—तितली, पृ० १८६ ।

मिङ्गका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'मङ्गका' । उ०—एक मिङ्गका सा सगा सहयं । निरखने जगे लुटे से, कीन । पा रहा यह सुदर खगोल ? कुतूहल रह न सका फिर मोन ।—कामायनी, पृ० ४५ ।

मिङ्गकारना—क्रि० प्र० [हिं० मिङ्गका] दे० 'मङ्गकारना' या 'मङ्कना' ।

मिङ्गी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिङ्गी' ।

मिङ्गकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. प्रवृत्ता या तिरस्कारपूर्वक बिगड़कर कोई बात कहना । २. प्रलय फेंक देना । मङ्कना ।
—(शब्द०) ।

मिड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़कना] १. वह बात जो मिड़ककर कही जाय। डाँट। फटकार।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—मुनना।

२. मिड़कने की क्रिया या भाव।

मिड़मिड़ाना—क्रि० प्र० [अनु०] भला बुरा कहना। कटु वचन कहना। चिड़चिड़ाना।

मिड़मिड़ाना—संज्ञा स्त्री० [हि० मिड़मिड़ाना] मिड़मिड़ाने का भाव या क्रिया।—(कव०)।

मिलमिल(०)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'मिल भन'। उ०—यह मिल-मिल जतर बाँजे भाला। पीवै प्रेम होय मतवाला।—द० सागर, पृ० ३८।

मिलवा—संज्ञा पुं० [दे०] महीन चावल का धान। उ०—राय-भोग भी काजररानी। मिलवा रुद भी दाउदखानी।—जायसी (शब्द०)।

मिलवा—वि० [सं० लीण, प्रा० भीण] दे० 'भीना'।

मिप् मिप्—क्रि० वि० [अनु०] रिमरिम शब्द के साथ। उ०—पहले नगहीं नगहीं बूंदे पड़ी, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से मिप् मिप् पानी बरसते लगा।—ठेठ०, पृ० ३२।

मिपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] दे० 'भेपना'।

मिपाना—क्रि० स० [हि० मिपना का स० रूप] लज्जित करना। शरमिदा करना।

मिमकना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'मिमकना'।

मिममिमि—वि० [हि० भीनी; या देखी मिमिम (= भ्रमयवों की जड़ता)] मंद ज्योतिषाली। उ०—उसकी मिममिमि आँखों से उल्लास के आँसू झड़ने लगते।—पिजरे०, पृ० ७५।

मिमिटना—क्रि० प्र० [हि० सिमटना] इकट्ठा होना। एक जगह जुट जाना। उ०—मिमिट आते हैं जहाँ जो लोग, प्रकट कर कोई प्रकथ अभियोग। मोन रहते हैं खड़े बेचे, सिर मुका-कर फिर उठते हैं न।—साकेत, पृ० १७३।

मिर—संज्ञा स्त्री० [हि० मिर] बूँद। फुहार। मिर्रि। उ०—मिर पिचकारी की मची आँधी उड़त गुलाब। यह धूँधरि घेंसि लीजिए पकरि छवीले लाल।—स० सप्तक, पृ० ३६०।

मिरकनहारी—वि० स्त्री० [हि० मिरकना + हारी (प्रत्य०)] मिड़कने-वाली। उ०—यातें तुमकौं ठीठि कही। स्यामहि तुम भई मिरकनहारी एते पर पुनि हारि नही।—सूर०, १०।१५।३६।

मिरकना(०)—क्रि० स० [हि० मिड़कना] दे० 'मिड़कना'। उ०—(क) छरीदार वैराग बिनोदो मिरकि बाहिरें कोन्हें।—सूर०, १४०। (ख) भोर जगि प्यारी मध करधें इतै की भोर भाखी खिभि मिरकि उषारि मध पलकै।—पद्माकर (शब्द०)। २. प्रलग फेंक देना। भटकना।—(कव०)। उ०—मुकुट शिर आखंड सोहै निरखि रहि ब्रजनारि। कोटि सुर कोदब बामा मिरकि डारै वारि।—सूर (शब्द०)।

मिरमिर—क्रि० वि० [अनु०] १ मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—

मिर मिर बहै बयार प्रेम रस सोलै हो।—घरम०, पृ० ४६।
२. मिर मिर शब्द के साथ।

मिरमिरा—वि० [हि० मरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि)। भँकरा। भीना।

मिरमिराना—क्रि० प्र० [अनु०] १. मिरमिर शब्द के साथ बहना (वायु, जल आदि)। २. दे० 'मिड़मिड़ाना'।

मिरना—क्रि० प्र० [सं० √ सर, प्रा० मिर, हि० √ मरना] बहकना। गिरना। प्रवाहित होना। 'मरना'। उ०—जहाँ तहा झाड़ी में मिरती हैं मरनों की झड़ी यहाँ।—पंचवटी, पृ० ९।

मिरना—संज्ञा पुं० १ छेद। छिद्र। सुराख। २ दे० 'मरना'।

मिरमिर(०)—वि० [हि०] दे० 'मिलमिल'। उ०—मिरमिर बरसै मूर। बिन कर बाँजे ताल तूर।—दरिया० बानी, पृ० ४८।

मिरहर, मिरहिर(०)—वि० [हि०] १. भीना। छिद्रित। छेदोंवाला। उ०—छिनहर घर मरु मिरहर टाटी। धन गरजत कपे मेरा छाती।—कबीर ग्र०, पृ० १८१। २. मिलमिल। मिलकदार। उ०—गग जमुन के बीच में एक मिरहिर नीरा हो।—घरम०, पृ० ३७।

मिरा—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना (= रस कर निकलना)] प्रामदनी। माध।

मिराना—क्रि० प्र० [हि०] मुराना।

मिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भींगुर (को०)।

मिरिहिरी(०)—वि० [अनु०] मंद मंद। धीरे धीरे। उ०—मिरि-हिरी बहै बयारि, अभी रस डरके हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७३।

मिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना] १ छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय। दरज। शिगाफ। २. वह गड्ढा जिसमें पानी मिर मिरकर इकट्ठा हो। ३. कुएं के बगल में से निकला नुस्सा छोड़ा सोता। ४. तुपार। पाला। ५. वह फसल जिसे पाला मार गया हो।

मिरी—संज्ञा [सं०] भींगुर। मिर्ली (को०)।

मिरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिरिका' (को०)।

मिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० मरना या मिर] वह छोटा गड्ढा जो नानी आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाता है। घेदमा।

मिलंगा—संज्ञा पुं० [हि० डीला + मग] १ दूरी हुई खाट का बाध। २. ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढीली पड़ गई हो।

मिलंगा—वि० १ ढीला ढाला। भोलदार। २. भीना।

मिलंगा—संज्ञा पुं० [हि० भींगा] दे० 'भींगा'।

मिलना—क्रि० प्र० [?] १. बसपूर्वक प्रवेश करना। घेंसना। घुसना। उ०—मिली फौज प्रतिमट गिरे खाइ घाव पर घाव। कुँवर धीरे परबत चढयो बढयो युद्ध को बाव।—लास (शब्द०)। २. तृप्त होना। मधा जाना। उ०—मिले राम कृष्ण, मिले पाइके मनोरथ की, हिले ह्य रूप किए धुरि

चुरि चुरि को ।—प्रिया (शब्द) । ३. मग्न होना । तल्लीन होना । उ०—कटथो कर चले हरि रंग माँझ मिले मानी जानी कछु चुक मेरी यहै सर धारिए ।—प्रिया (शब्द०) । ४. (कष्ट, आपत्ति प्रादि) भेला जाना । सहा जाना । सहन होना । उठाया जाना ।

मिलना^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० मिलनी] भींगुर ।

मिलम—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० मिलमिला] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का झंझरीदार पहरावा जो लड़ाई के समय सिर और मुँह पर पहना जाता था । एक प्रकार का लोहे का टोप या खोल । उ०—भलकत भावे भुड मिलम भलानि भूप्यो तमकत भावे तेगवाही भी सिलाही के ।—पद्माकर (शब्द०) ।

मिलमटोप—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'मिलम' ।

मिलमलित^(१)—वि० [हि० मिलमिल + इत (प्रत्य०)] मिलमिलाता हुआ । काँपता हुआ ।

मिलमा—सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है ।

मिलमिल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] १ काँपती हुई रोशनी । हिलता, हुआ प्रकाश । झलमझाता हुआ उजाला । २ ज्योति की भस्परता । रह रहकर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया । उ०—(क) हेरि हेरि बिल में न लीन्हो हिलमिल में रही हों हाथ मिल में प्रभा की मिलमिल में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) घुँघट के घुमि के सु भूमके जवाहिर के मिलमिल झालर को घुमि मिल भुक्त जात ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. बढ़िया मलमल या तनजेब की तरह का एक प्रकार का बारीक और मुलायम कपड़ा । उ०—(क) चंदनोता जो खरदुख भारी । बाँस-पूर मिलमिल की सारी । —जायसी (शब्द०) । (ख) राम धारती होन लगी है, जगमग जगमग जोति जगी है । कचन भवन रतन सिंहासन । दासक हासे मिलमिल बासन । तापर राजत जगत प्रकाशन । देखत छवि मति प्रेम पगी है । —मन्नालाल (शब्द०) । ४. घुड़ में पहनने का जोड़े का कवच । उ०—करन पास भीन्हैउ के छहू । विप्र रूप धरि मिलमिल इहू ।—जायसी (शब्द०) ।

मिलमिल—वि० रह रहकर चमकता हुआ । झलमझाता हुआ । उ०—नबो किनारे में लड़ी पानी मिलमिल होय । मैं मैली प्रिय ऊजरे मिसना किस विधि होय ।—(शब्द०) ।

मिलमिल्ला—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० मिलमिली] १ जो गफ या गाढ़ा न हो । २ जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों । झंझरा सीना । ३ जिसमें रह रहकर हिलता हुआ प्रकाश निकले । ४ झलझलाता हुआ । चमकता हुआ । ५. जो बहुत स्पष्ट न हो ।

मिलमिलाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १ रह रहकर चमकना । जुगजुमाना । उ०—गल नल कधर श्रीव पुनि कठ कपोटी केन ? पीक लीक जहँ मिलमिलत सो छवि कीने भन ।—भनेकायं०, पृ० २६ । २. प्रकाश का हिलना । ज्योति का भस्पर होना । ३. प्रकाश का दिमदिमाना ।

मिलमिलाना—क्रि० सं० १. किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें वह रह रहकर चमके । २. हिलाना । कंपाना ।

मिलमिलाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] मिलमिलाने की क्रिया या भाव ।

मिलमिली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मिलमिल] १. एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी झड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों प्रादि में जड़ा रहता है । खड़खड़िया ।

विशेष—ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या छड़ में जड़ी होती हैं जिनकी सहायना से मिलमिली खोली या बंद की जाती है, । इसका व्यवहार बाहर से आनेवाला प्रकाश और गर्म प्रादि रोकने के लिये अथवा इसलिये होता है कि जिसमें बाहर से भीतर का दृश्य दिखलाई न पड़े । मिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को जरा सा नीचे की ओर खींचने से एक दूसरे पर पड़ी पटरियाँ अलग भलग खड़ी हो जाती हैं और उन सबके बीच में इतना प्रकाश निकल आता है जिसमें से प्रकाश या वायु प्रादि अच्छी तरह आ सके ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खोलना ।—गिराना ।—बढ़ाना ।

२. चिक । चिलमन । ३. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना । ४ देखने या सोमा के लिये मकानों में बनी जाती ।

मिलवाना^१—क्रि० सं० [हि० खेलना का प्रे० रूप] खेलने का काम कराना । सहन कराना ।

मिलमिलि^(१)—वि० [अनु०] दे० 'मिलमिल' । उ०—छाँड़ो मिलमिलि नेह, पुरुष गम राखि के ।—घरम०, पृ० ५२ ।

मिलिमि^(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मिलिम] दे० 'मिलिम' । उ०—धरे टोप कुडो कसे कौच भग । मिलिमि घटाटोप पेटी भ्रमगं—हम्मीर०, पृ० २४ ।

मिलिखी^(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'मिलिखी' । उ०—भननात गोलिन की भनक जनु धनि छुकार मिलिखी की ।—पद्माकर प्र०, पृ० १२ ।

मिल्ल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नील की जाति का एक प्रकार का पौधा । इसकी छाल और फूल लाल होते हैं और पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं ।

मिल्लक—वि० [हि० मिल्ला] (बहु कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो । पतला और झलरा (कपड़ा) । गफ का उलटा ।

मिल्लान^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दरी बुनने की करघे की वह कड़ी लकड़ी जिसमें बै का बाँस लगा रहता है । गुरिया ।

मिल्ला^१—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० मिल्ली] १. पतला । बारीक । २. झंझरा । जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों ।

मिल्लि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बाजे का नाम । २ भींगुर । मिल्ली । २ चिमडा कागज । चमपत्र [को०] ।

मिल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ भींगुर । मिल्ली । २. मिल्ली की झंझर (को०) । ३. सूर्य का प्रकाश (को०) । ३. चमक ।

प्रकाश। दीप्ति (को०)। ५. उबटन, मंगराग आदि शरीर पर मलने से गिरनेवाली मेल (को०)। ६. रंग आदि लगाने में प्रयुक्त वस्त्र (को०)।

मिल्ली^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मींगुर। २. चर्मपत्र (को०)। ३. एक वाय (को०)। ४. दीए की वत्ती (को०)। ५. दे० 'मिल्लिका'।

मिल्ली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० चल भ्रमवा सं० मिल्लिका (= चमकदार पारदर्शी पतला आवरण) या भ० जिल्द (= आवरण) भ्रमवा सं० भुट] १. किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े। जैसे, चमड़े की मिल्ली। २. बहुत बारीक छिलका। ३. भाँख का जाला।

मिल्ली^३—वि० स्त्री० बहुत पतला। बहुत बारीक।

मिल्लीका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मींगुर।

मिल्लीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मींगुर। मिल्ली। २. सूर्य की दीप्ति या प्रकाश। ३. उबटन आदि का मेल। मिल्ली (को०)।

मिल्लीदार—वि० [हि० मिल्ली + फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो। जिसपर मिल्ली हो।

मीका—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] दे० 'मीका'।

मि० प्र०—लेना।—डालना।

मीकना—क्रि० भ० [प्रा० शब्द] दे० 'मीखना'। उ०—तुम्हें हर समय मीकते रहना पड़ता है।—सुखदा, पृ० ७८।

मीकना^१—क्रि० स० [दे०] फेंकना। पटकना।

मीका—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] १. चतना मूल जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है। २. सीका। छीका।

मीखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० शब्द] मीखने की क्रिया या भाव। खीज।

मीखना^१—क्रि० भ० [प्रा० शब्द, हि० खीजना] १. किसी मनिवायं मनिष्ट के कारण दुखी होकर बहुत पछताना और कुटना। खीजना। २. दुखड़ा रोना। अपनी विपत्ति का हाल सुनाना। उ०—छाट पड़े नर मीखन लागे, निकसि प्राण गयो चोरी सी।—कबीर सा० सं०, भा० २, पृ० ५।

मीखना^२—सञ्ज्ञा पुं० १. मीखने की क्रिया या भाव। २. दुख का वर्णन। दुखड़ा।

मीगट—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] पतवार घामनेवाला। मल्लाह। कण्ठधार।—(लश०)।

मीगन—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं।

विशेष—यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लका में पाया जाता है। इसमें से पोलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोद निकलता है जिसका व्यवहार छोटों की छपाई और मोपधि के रूप में होता है। इसकी छाल से टस्सर रंगा जाता है और चमड़ा सिभाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

मीगा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० चिङ्गट] १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है। म्निगा।

विशेष—इस मछली के भगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पसले और लंबे घाठ पैर होते हैं; इसीलिये प्राणिशास्त्रज्ञ इसे केकड़े आदि के अंतर्गत मानते हैं। घाठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत लंबे धारदार डक भी होते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह सबाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है। इसका सिर और मुँह मोटा होता है और डुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है। यह मछली अपना शरीर इस प्रकार झुका सकती है कि सिर के साथ इसकी डुम लग जाती है। इसके सिर पर उँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे भग होते हैं जिनके सिरों पर भाँखें होती हैं। इन भाँखों से बिना पुंछे यह चारों ओर देख सकती है। यह अपने भड़े सदा अपने पेट के भगले भाग में छाती पर ही रखती है। इसके शरीर के पिछले भागे भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आप-से आप साँप की केंचुली की तरह उतर जाते हैं। छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। बहुधा मांस के लिये यह सुलाकर भी रखी जाती है।

२. एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। ३. एक प्रकार का कीड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है।

मीगुर—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० मी+कर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा। घुरघुरा। जजीरा। मिल्ली।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी छह टांगें और दो बहुत बड़ी मूँछें होती हैं। यह प्रायः भँधेरे घरों में पाया जाता है तथा खेतों और मैदानों में भी होता है। खेतों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है। इसकी भावाज बहुत तेज मी मी होती है और प्रायः बरसात में अधिकता से सुनाई देती है। नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं।

मीमड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] दे० 'छिछड़ा'। उ०—जैसे चील मीमड़े पर छापा मारें।—शराबी, पृ० ७३।

मीमना^१—क्रि० भ० [अनु०] झुंझलाना। खिजलाना।

मीमो—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] १. एक रस्म। मिमिया।

विशेष—इस रस्म में माश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाड़ी में बहुत से छेद करके उसके बीच में एक लोया बालकर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उस दीपक का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग उन्हें कुछ देते हैं। उसी द्रव्य से वे सामग्री मंगाकर पूणिमा के दिन पूजन करती हैं और आपस में प्रसाद बाँटती हैं। लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सेंहुँघा रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है।

२. मिट्टी की वह कच्ची हाड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीपा रखते हैं।

मीटना—क्रि० अ० [देश०] दे० 'मीकना' ।

मीपना—क्रि० म० [देशी रूप] १. दे० 'मीपना' । २. 'डपना' ।

मीमना—क्रि० अ० [हि० भूमना] दे० 'भूमना' । उ०—मानो भीम रहे हैं तर भी मद पवन के भोको से ।—पंचवटी, पृ० ५ ।

मीवर—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'धीवर' । उ०—उज्जल उदक धुवाये भोयण, लंघे पार सरिता मृदु लोयण । प्रभु भीवर कीधो भवपार ।—रघु० ७०, पृ० ११० ।

मीसा—संज्ञा पुं० [हि० भीसी] दे० 'भीसी' ।

मीसी—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हि० भीना (= बहुत महीन)] कुहार । छोटी छोटी बूंदों की वर्षा । वर्षा की बहुत महीन बूंदें ।

क्रि० प्र०—पडना ।

मीक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मीका' । उ०—काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे । तिरगुन चारे भोक पकरि कै सवे निकारे ।—पलटू०, पृ० ८४ ।

मीक^२—क्रि० वि० [हि०] भटके से । शीघ्रता से । उ०—कावाड़ी नित काटता, भीक कुहाड़ा झाड़ ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ३२ ।

मीका—संज्ञा पुं० [सं० शिकव] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फँदा जिसपर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं । छीका । चिकहर ।

मीखना—क्रि० अ० [प्रा० भूख] दे० 'मीखना' ।

मीमा^१—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० भीभी] भीना । झंझरा ।

मीण^२, मीणा^३—वि० [सं० क्षीण, प्रा० भीण] दे० 'भीना' । उ०—(क) पाणी हो तैं पातला, धुवाँ ही तैं भीण ।—कबीर ग्र०, पृ० २६ (ख) मनवाँ तो पधर बस्या बहुतक भीण होइ ।—कबीर ग्र०, पृ० २० । (ग) मारू सेकइ हत्यडा, भीणे भंगारेइ ।—डोला०, पृ० २०६ ।

मीत—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के पाल का बटन ।

मीन^१—वि० [सं० क्षीण, प्रा० भीण] दे० 'भीना' ।

मीना—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० भीनी] १. बहुत महीन । बारीक । पतला । उ०—प्रफुल्लित हूँ के भानि दीन है जसोवा रानि भीनिये भंगुली तामें कंचन को तगा ।—सूर (शब्द०) । २. जिसमें बहुत से छेद हों । झंझरा । ३. गुल दुबला । दुर्बल । ४. मद । धीमा ।

मीनासारी—संज्ञा पुं० [हि०] धान का एक प्रकार ।

मीमना—क्रि० म० [हि० भूमना] दे० 'भूमना' । उ०—नव नील कुंज हैं भीम रहे, कुसुमों की कथा न बंद हुई ।—कामायनी, पृ० ६५ ।

मीमर—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'मीवर' ।

मीर^१—संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग । रास्ता । उ०—हरिजन सहजे उतरि गए ज्यों सुखे ताल की मीर ।—मीखा श०, पृ० २४ ।

मीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मींगुर [स्त्री०] ।

मीरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मींगुर । मिल्सी [स्त्री०] ।

मील—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर (= जल)] १. वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो ।

विरोध—भीलें बहुत बड़े मैदानों में होती हैं और प्रायः इनकी लंबाई और चौड़ाई सेकड़ों मील तक पहुँच जाती है । बहुत सी भीलें ऐसी होती हैं जिनका सोठा उन्ही के तल में होता है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है । ऐसी भीलों के पानी का निकास बहुधा गाँव के रूप में होता है । कुछ भीलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ भीलों में से नदियाँ निकलती भी हैं । कभी कभी भील का सबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है । अमेरिका के संयुक्त राज्यों में कई ऐसी भीलें हैं जो आपस में नदियों द्वारा सब एक दूसरे से संबद्ध हैं । भीलें खारे पानी की भी होती हैं और मीठे पानी की भी ।

२. तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय । बहुत बड़ा तालाब । ताल । सर ।

मीलणा^१—क्रि० अ० [सं० स्ना, प्रा० भिल्ल] स्नान करना । स्नाना । उ०—ढोला हूँ तुम बाहिरी, भीलण गइय तलाइ । उजल काला नाग जिउं लहिरी ले ले खाइ ।—डोला०, पृ० ३६३ ।

मीलम—संज्ञा स्त्री० [हि० भिल्लम] दे० 'भिल्लम' । उ०—साँगि समाहि कियो सुर ऐतो, दुटि परा सिर भीलम जाई ।—स० दरिया, पृ० ६३ ।

मीलरा^१—संज्ञा पुं० [हि० भील, अथवा क्षीलर] छोटी भील । छोटा तालाब । क्षीलर । उ०—हंस वसे सुख सागरे, भीलर नहि भावै ।—कबीर श० भा० ३, पृ० ४ ।

मीली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भिल्ली] १. मलाई । २. दे० 'भिल्ली' ।

मीवर^१—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] मीमी । मल्लाह । मधुमा । दे० 'धीवर' ।

मुँट—संज्ञा पुं० [सं० भुण्ट] १. पेड़ । २. झाड़ी [स्त्री०] ।

मुँड—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों आदि का समूह । प्राणियों का समुदाय । वृद्ध । गिरोह । बैधे, भंडियों का मुँड, कवतरो का मुँड ।

मुहा०—मुँड के भुण्ड=संख्या में बहुत अधिक (प्राणी) । भुण्ड में रहना=अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों में रहना ।

मुँडी—संज्ञा स्त्री० [देशी छुट (= खूँटी) या सं० भुण्ट (= झाड़)] १. वह खूँटी जो पीधों को काट लेने के बाद खेतों में खड़ी रह जाती है । २. चिखमन या परदा लटकाने का कुलाबा जो प्रायः कुंदे में लगा रहता है ।

मुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकवाई' ।

मुँकबाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'मुँकवाना' ।

मुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकाई' ।

मुँगना—संज्ञा पुं० [हि० जिगवा, जुँगना] जुगनु ।

मुँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] साँवा वामक धन्य ।

मुँकना—संज्ञा पुं० [मनु०] बच्चों का एक खिलौना । मुनमुना ।
 मुँकलाना—क्रि० प्र० [मनु०] खिलाना । कटकटाना । बहुत
 दुखी और क्रुद्ध होकर बात करना । चिड़चिड़ाना ।
 मुँकलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँकलाना] खोज । चिड़ ।
 मुँकलाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] निदा । चुगली । चुगलखोरी ।
 मुँकायो—संज्ञा स्त्री० [हि० ?] खोज । मुँकलाहट । उ०—
 माखन चोर रो में पायो । नितप्रति रोती देखि कमोरी मोहि
 प्रति लगत मुँकायो ।—सूर०, १०।१८८ ।
 मुँकभोरना—क्रि० स० [मनु०] दे० 'मुँकभोरना' ।
 मुँकना—क्रि० प्र० [सं० युज्, युक्त, हि० जुक्त] १. किसी खड़ी
 चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा होकर लटक
 जाना । ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना । निहुरना ।
 नवना । जैसे, घादमी का सिर या कमर मुँकना ।
 मुँका—मुँक मुँक पड़ना=नशे या नींद प्रादि के कारण किसी
 मनुष्य का सोचा या प्रच्छी तरह खड़ा या पैठा न रह सकना ।
 उ०—शमिय हलाहल मदभरे सेत स्याम रत्नार । जियत
 भरत मुँक मुँक परत जेहि चितवत एक वार ।—(शब्द०) ।
 २. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त
 होना । जैसे, छड़ी का मुँकना । ३. किसी खड़े या सीधे
 पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना । जैसे, खम्भे या तख्ते का
 मुँकना । ४. प्रवृत्त होना । दत्तचित्त होना । रूढ़ होना ।
 मुखातिव होना । ५. किसी चीज को लेने के लिये प्रागे
 बढ़ना । ६. नम्र होना । विनीत होना । अवसर पड़ने पर
 प्रमिमान या उग्रता न दिखलाना ।
 संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।
 ७. क्रुद्ध होना । रिसाना । उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन
 मनु जानी । मुँकी रानि भरहु धरगानी ।—तुलसी (शब्द०) ।
 (ख) भव भूठी प्रमिमान करति सिय मुकति हमारे ताई ।
 सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुमाई ।—सूर
 (शब्द०) । (ग) घनत वसे निसि की रिसनि उर भर
 रह्यो विसेखि । तऊ लाज भाई मुकत खरे लजोई देखि ।—
 विहारी (शब्द०) । † ८. शरीरात होना । मरना ।
 मुँकमुख—संज्ञा पुं० [हि० मुँकना+मुख] प्रातःकाल या सन्ध्या का
 वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता ।
 ऐसा प्रवेष्टा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने
 में कठिनाता हो । मुँटपुटा ।
 मुँकरना—क्रि० प्र० [मनु०] मुँकलाना । खिजलाना ।
 मुँकराना—क्रि० प्र० [हि० भोका] भोका खाना । उ०—नवयों
 साँकरे कुज मग करतु भोँक मुँकरात । मंद मद माखत तुरंग
 खँदून भावत जात ।—विहारी (शब्द०) ।
 मुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँकवाना] १. मुँकवाने की क्रिया या
 भाव । २. मुँकवाने की मजदूरी ।
 मुँकवाना—क्रि० स० [हि० मुँकना] मुँकाने का काम दूसरे से
 कराना । किसी को मुँकाने में प्रवृत्त करना ।
 मुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँकना] १. मुँकाने की क्रिया या भाव ।
 २. मुँकाने की मजदूरी ।

मुँकाना—क्रि० स० [हि० मुँकना] १. किसी खड़ी चीज के ऊपरी
 भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना । निहुराना ।
 नवाना । जैसे, पेड़ की डाल मुँकाना । २. किसी पदार्थ के एक
 या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना । जैसे, वेत
 मुँकाना, छड़ मुँकाना । ३. किसी खड़े या सीधे पदार्थ को
 किसी ओर प्रवृत्त करना । ४. प्रवृत्त करना । रूढ़ करना ।
 ५. नम्र करना । विनीत बनाना । ६. अपने अनुकूल करना ।
 अपने पक्ष में करना ।
 मुँकामुकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकामुकी' । उ०—सखि बिखर
 गई हँ कलियाँ । कहाँ गया प्रिय मुँकाएकी मे करके दे रग-
 रलियाँ ।—साकेत, पृ० २९७ ।
 मुँकामुखी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मुँकामुख' । उ०—जानि मुँका-
 मुखी भेप छपाय के गागरी ले घर तँ निकरी ती ।—ठाकुर
 (शब्द०) ।
 मुँकारा—संज्ञा पुं० [हि० भोकरा] हवा का भोका । भोकरा ।
 मुँकाव—संज्ञा पुं० [हि० मुँकना] १. किसी ओर लटकने, प्रवृत्त
 होने या मुँकने की क्रिया । २. मुँकने का भाव । ३. डाल ।
 उतार । ४. प्रवृत्ति । मन का किसी ओर लगना ।
 मुँकावट—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँकना + आवट (प्रत्य०)] १. मुँकने या
 नम्र होने की क्रिया या भाव । २. प्रवृत्ति । चाह । मुँकाव ।
 मुँगिया—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] भोपड़ी । कुटिया । उ०—
 हरि तुम क्यों न हमारे भाए । ताके मुँगिया मैं तुम बैठे, कीन
 बड़प्पन पायो । जाति पाँति कुसहूँ तँ न्यारी, है दासी को
 जायो ।—सूर०, १।२४४ ।
 मुँगी—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँगिया] दे० 'जुगिया' ।
 मुँकाना, मुँकवावना—क्रि० स० [सं० युद्ध, प्रा० मुज्ज, हि०
 मुँकलाना] उत्तेजित करना । प्रागे बढ़ाना । भिड़ा देना ।
 सघर्ष कराना ।
 मुँकाऊ—वि० [जुभाऊ] दे० 'जुभाऊ' । उ०—वाजत मुँकाऊ
 सहनाई सिधू राग पुनि सुनत ही काहर की छूटि जात कल है ।
 —सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४८४ ।
 मुँकार—वि० [हि० मुँक + आर (प्रत्य०)] दे० 'जुम्कार' ।
 उ०—गुजरात देश सितर हज्जार । बालुका राइ बालुक
 मुँकार ।—पु० रा०, १।४३० ।
 मुँट—संज्ञा पुं० [हि० भूठ] दे० 'भूठ' । उ०—देख सखि मुँट
 कमान । कारव किछुमो बुझइ नाहि पारिए तब काहे रोखल
 कान ।—विद्यापति, पृ० ४२६ ।
 मुँटपुट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मुँटपुटा' । उ०—घरे, उस घूमिल
 विजन में ? स्वर मेरा था चिकना ही, सब घना हो बला
 मुँटपुट ।—हरी पास०, पृ० ३२ ।
 मुँटपुटा—संज्ञा पुं० [मनु०] कुछ प्रवेष्टा ओर कुछ उजेला समय । ऐसा
 समय जब कि कुछ संयकार ओर कुछ प्रकाश हो । मुँकमुख ।
 मुँटलाना—क्रि० स० [हि० मुँट] दे० 'मुँटलाना' ।
 मुँटलाना—क्रि० स० [हि० जूठा प्रयत्न सं० प्रयत्न > प्रज्जुट >
 प्रज्जुट > मुँट] जूठा करना । जूठारना ।
 मुँटग—वि० [हि० भोटा] जिसके खड़े खड़े ओर बिखरे हुए बाब

हों। भोटवाला। जटावाला। दे० 'भोटग'। उ०—जोगिनी मुट्टग मुट्ट मुट्ट बनी तापसी सी तीर तीर वैठी सो समरसरि खोरि के।—तुलसी प्र०, पृ० १६५।

मुट्टा^५—संज्ञा पुं० [सं० मूष, हिं० जुट्ट] गिरोह। मुट्ट। उ०—छोहों भरि छुट्टे कैसे छुट्टे मुट्टक मुट्टे भुव छुट्टे।—सुजान०, पृ० ३१।

मुट्टा—वि० [हिं० भूठा] दे० 'भूठा'।

मुठकाना—क्रि० सं० [हिं० भूठ] १ भूठी बात कहकर प्रत्यय किसी प्रकार (विशेषत बच्चों आदि को) धोखा देना। २. दे० 'भूठलाना'।

भूठलाना—क्रि० सं० [हिं० भूठ + लाना (प्रत्य०)] १. भूठा ठहराना। भूठा प्रमाणित करना। भूठा बनाना। २. भूठ कहकर धोखा देना। भूठकाना।

मुठाई^५—संज्ञा स्त्री० [हिं० भूठ + माई (प्रत्य०)] भूठापन। असत्यता। भूठ का भाव। उ०—(क) जानि परत नहिं साँच मुठाई धेन चरावत रहे भुरैया।—सूर (शब्द०)। (ख) प्राधि मगन मन व्याधि विकल तन बचन मलीन मुठाई।—तुलसी (शब्द०)।

मुठाना—क्रि० सं० [हिं० भूठ + णा (प्रत्य०)] भूठा ठहराना। भूठा साबित करना। भूठलाना।

मुठामुठी^५—क्रि० वि० [हिं० भूठ] दे० 'भूठामुठी'।

मुठालना—क्रि० सं० [हिं०] १. दे० 'भूठलाना'। २. दे० 'जुठारना'।
भुन—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. दे० 'भुनभुनी'।

भुनक^५—संज्ञा पुं० [भनु०] तूपुर का शब्द।

भुनकना^५—क्रि० प्र० [भनु०] भुन भुन शब्द करना। भुन भुन बोलना या बजना।

भुनकना^५—संज्ञा पुं० [भनु०] दे० 'भुनभुना'।

भुनका^५—संज्ञा पुं० [हिं०] १. धोखा। छल। २. दे० 'भुनभुना'। उ०—दुनो घोर भुनका भुन भुन बाजे, ताहाँ दीपक ले बारी।—सं० दरिया, पृ० १०६।

भुनकार^५—वि० [हिं० भूता] [स्त्री० भुनकारी] झिझुरा। पतला। झीना। महीन। बारीक। उ०—भंगिया भुनकारी खरी सितजारी की सेदकनी कुछ दू पर लीं।—(शब्द०)।

भुनकारा^५—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनकार] दे० 'भुनकार'।

भुनभुन—संज्ञा पुं० [भनु०] भुन भुन शब्द जो तूपुर आदि के बजने से होता है। उ०—भरन तरनि नख ज्योति जगप्रगित भुन भुन करत पाय पेजिनियाँ।—सूर (शब्द०)।

भुनभुना—संज्ञा पुं० [हिं० भुन भुन से भनु०] [स्त्री० भुनभुनी] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज आदि से बनाया जाता है। घुनघुना। उ०—कबहुँक ले भुनभुना बजावति मीठी बतियन बोलै।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४६७।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है, पर साधारणतः

इसमें पकड़ने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनो सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। इसी लट्टू में ककड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से भुन भुन शब्द होता है।

भुनभुनाना^५—क्रि० प्र० [भनु०] भुन भुन शब्द होना। घुँघरू के जैसा बोलना।

भुनभुनाना^५—क्रि० सं० भुन भुन शब्द उत्पन्न करना। भुन भुन शब्द निकालना।

भुनभुनियाँ^५—संज्ञा स्त्री० [भनु०] सनई का पोधा।

भुनभुनियाँ^५—संज्ञा स्त्री० [भनु०] १. पैर में पहनने का कोई धातु-पण जो भुन भुन शब्द करे। २. वेदी। निगड।

क्रि० प्र०—पहनना।—पहनाना।

भुनभुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० भुनभुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की सनसनाहट या क्षोभ। २. दे० 'भुनभुना'।

भुनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जलाने की पतली लकड़ी।

भुनुक^५—संज्ञा पुं० [भनु०] भुन भुन बजने की धावाज। उ०—भुनुक भुनुक वह पगनि की डोलनि। मधुर ते मधुर सुनुतरी बोलनि।—नद प्र०, पृ० २४५।

भुनुनी^५—संज्ञा स्त्री० [भनु०] दे० 'भुनभुनी'—१। उ०—पावों में भुनुनी चढ़ गई।—जिप्सी, पृ० १३०।

भुपभुपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भुपभुनी'।

भुपरी^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'भुपभुनी'। उ०—सापुन की भुपरी मली ना साकट की गाँव। चदन की कुटकी मली ना बबूल बनराव।—कबीर (शब्द०)।

भुप्या—संज्ञा पुं० [भनु०] १. दे० 'भुनभुना'। २. दे० 'भुन'।

भुधभुधी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियों कान में पहनती हैं।

भुमुक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'भूमर'। उ०—पाँच रागिनी भुमुक पचीसो, छठपें धरम नगरिया।—धरम०, पृ० ३४।

भुमका—संज्ञा पुं० [हिं० भुमना] १. कान में पहनने का एक प्रकार का भूलनेवाला गहना जो छोटी गोन कटोरी के आकार का होता है। उ०—सिर पर हैं चंदवा शीश फूल, कानों में भुमके रहे भूत।—ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेष—इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोने के तार में गुये हुए मोतियों आदि की झालर सजो होती है। यह सोने, चाँदी या परवर आदि का भी सादा तथा जडाऊ भी होता है। यह अकेला भी कान में पहना जाता है और कारण फूल के नीचे लटकाकर भी।

२. एक प्रकार का पोधा जिसमें भुमके के आकार के फूल लगते हैं। ३. इस पोधे का फूल।

भुमभुना^५—क्रि० प्र० [हिं० भूमना] दे० 'भुमभुना'। उ०—रहे

भूमना घन गगन घन भौं तम तोम बिसेख । निसि बासर समुक्त
न परत प्रफुलित पकज पेख ।—स० सप्तक, पृ० ३९३ ।

भूमना^१—वि० [हि० भूमना] [वि० स्त्री० भूमनी] भूमनेवाला ।
हिलनेवाला ।

भूमना^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जो अपने खंटे पर बंधा हुआ अपने
पिछले पैर उठा उठाकर भूमा करे । यह एक कुलक्षण है ।

भूमरन^३—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमना] भूमने का भाव । लहरने
का कार्य । उ०—वेनी सिधिल खसित कच भूमरन सुसित पीठ
पर सोहे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५३२ ।

भूमरा—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत
भारी हथोड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में
होता है ।

भूमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. काठ की मुँगरी । २. गच पीटने
का औजार । पिटना ।

भूमाऊ—वि० [हि० भूमना] भूमनेवाला । जो भूमता है ।

भूमना—क्रि० सं० [हि० भूमना का सं० रूप] किसी को भूमने में
प्रवृत्त करना । किसी चीज के ऊपरी भाग को चारों ओर
धीरे धीरे हिलाना ।

भूमिरना^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'भूमना' ।

भुरकुट—वि० [प्रनु०] १. मुरझाया हुआ । सूखा हुआ । २. दुबला ।
कृश ।

भुरकुटिया^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे
खेड़ी कहते हैं ।

विशेष—३० 'खेड़ी'—१ ।

भुरकुटिया^२—वि० [प्रनु०] दुबला पतला । कृश ।

भुरकुना^३—संज्ञा पुं० [हि० भुर + कण] किसी चीज के बहुत छोटे
छोटे टुकड़े । चूर ।

भुरकुरी—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. कोंकणी जो लुंडी के पहले भाती
है । २. कोंकणी । कपन ।

भुरना—क्रि० प्र० [हि० धूल या चूर] १. सुखना । लुप्त होना ।
दे० 'भुराना' । उ०—हाड भई भुरि किगड़ी नसें भई सब
ताति । रोष रौब तन धुन उठे कहौ विषा केहि भाति ।—
जायसी (शब्द०) । २. बहुत अधिक दुखी होना या शोक
करना । उ०—(क) साँझ भई भुरि भुरि पय हेरी । कीन
घौ घरी करी पिय केरी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) इनका
बोझ आपके धिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो सत्तार
में इनका कहीं पता न लगेगा । वे बेचारे यो हो भुर भुर
कर मर जायेंगे ।—श्रीनिवासदास (शब्द०) । ३. बहुत
अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुबल
होना । घुलना । उ०—(क) ये दोऊ मेरे गाइ चरेया ।
जानि परत नहिं साँच भुडाई चारत धेनु भुरैया । सूरदास
जमुदा में चेरी कहि कहि लेति बधैया ।—सूर०, १०।५।१३ ।
(क) सूनी के परम पद, ऊनी के अनंत मद नूनी के नदीस
नद हविरा भुरे परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना (शब्द०) ।—उ०—
सिद्धि की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि वेधा की सपृद्धि
सुरसदन भुरे परी ।—रघुराज (शब्द०) ।

भुरमुट—संज्ञा पुं० [सं० भुट (=भांडी)] १. कई भांडों या पत्तों
आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय । एक ही
में मिले हुए या पास पास कई भांड या छुप । उ०—भानंदधन
विनोदभर भुरमुट लखें नैन न परत भाख्यो ।—घनानंद,
पृ० ४४५ । २. बहुत से लोगों का समूह । गिरोह । उ०—
खन इक मेंह भुरमुट होइ बीता । दर मेंह चढ़े रहैं सो बीता ।
—जायसी (शब्द०) । ३. चादर या ओढ़ने आदि से शरीर
को चारों ओर से छिपाने या ढक लेने की क्रिया ।

मुहा०—भुरमुट मारना = चादर या ओढ़ने आदि से सारा शरीर
इस प्रकार ढक लेना कि जिसमें जल्दी कोई पहचान न सके ।

भुरवना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भुरना + वन (प्रत्य०)] वह प्रश जो
किसी चीज के सुखने के कारण उसमें से निकल जाता है ।

भुरवना^२—क्रि० प्र० [हि० भुरना या भुरना] दुखी होना ।
चिंता से क्षीण होना । दे० 'भुरना' । उ०—मन मन भुरवै
दुलहिनि काह कीन्ह करतार हो ।—कबीर श० पृ० २ ।

भुरवाना—क्रि० सं० [हि० भुरना] १. सुखाने का काम दूसरे से
से कराना । दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना । २. भुराना ।
उ०—कोउ रजक भुरवावहिं खोली भारहि पोछहि ।—
प्रेमचन०, भा० १, पृ० २४ ।

भुरसना—क्रि० प्र० क्रि० सं० [हि० भुरसना] दे० 'भुरसना' ।
उ०—भानंदधन सो उपरि मिलौगी भुरसति विरहा भर मैं ।
—घनानंद, पृ० ५३३ ।

भुरसाना—क्रि० सं० [हि० भुरसाना] दे० 'भुरसाना' ।

भुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुरभुरी] दे० 'भुरभुरी' ।

भुराना^१—क्रि० सं० [हि० भुरना] सुखाना । लुप्त करना ।

भुराना^२—क्रि० प्र० १. सुखना । २. दुख या भय से घबरा जाना ।
दुःख से स्तब्ध होना । उ०—यह बानी सुनि ग्वारि भुरानो ।
मीन भए मानों बिन पानी ।—सूर (शब्द०) । ३. दुबला
होना । क्षीण होना । दे० 'भुरना' ।

संयो० क्रि०—जाना ।

भुरावन—संज्ञा स्त्री० [हि० भुरना + वन (प्रत्य०)] वह प्रश जो किसी
चीज को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है । भुरवन ।

भुरावना^३—क्रि० सं० [हि० भुराना] दे० 'भुराना' । उ०—मंजन
के नित न्हायके प्रग प्रगोछि के बार भुरावन लागो ।—मति०,
पृ० ३८३ ।

भुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० भुरना] किसी चीज की सतह पर लबी रेखा
के रूप में उभरा या घंसा हुआ चिह्न जो उस चीज के सुखने,
मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है ।
सिकुड़न । मिश्रवट । शिकन । जैसे, घाम पर की भुरी, चेहरे
पर की भुरी ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहुवचन में ही होता है। जैसे—घब
वे बहुत बुढ़े हो गए, उनके सारे शरीर में झुरियाँ पड़ गई हैं।

भूलकना(१)—क्रि० प्र० [हि० भूलना] दे० 'भूलना'। उ०—सुरह
सुगंधी वास मोती काने भूलकते। सूती मंदिर खास जाणू
दोलइ जागवी।—डोला०, दू० ५०७।

भूलका—संज्ञा पुं० [भनु०] दे० 'भुनकना'।

भूलना(१)—संज्ञा पुं० [हि० भूलना] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार
का ढीला ढाला कुरता। भूला। भूला।

भूलना(२)—वि० [हि० भूलना] भूलनेवाला। जो भूलता हो।

भूलना(३)—संज्ञा पुं० [सं० दोलन या दोला] दे० 'भूला'।

भूलनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलनी + इया (प्रत्य०)] दे०
'भूलनी'। उ०—भूलनियावाली हेंसि के जियरा सँ गेली
हमार।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६३।

भूलनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. सोने आदि के तार में गुथा
हुआ छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये
नाक की नथ में लटका लेती हैं। अथवा बिना नथ के एक
धामुपण की तरह पहनती हैं। २. दे० 'भूपर'।

भूलनीधोर—संज्ञा पुं० [देश०] धान का बाँध।—(कहारों की परि०)।

भूलमुली—वि० [भनु०] दे० 'भिलमिल'। उ०—काननि कनिक
पत्र चक्र चमकत चार ध्वजा भुनमुल भूलकति प्रति सुखदाइ।
—केशव (शब्द०)।

भूलमुली—वि० [भनु०] [वि० स्त्री० भूलमुली] दे० 'भिलमिल'।
उ०—झोने पठ में भूलमुली भूलकति झोप अमार। सुरतर की
मनु सिधु मै लसति सपल्लव डार।—विहारी (शब्द०)।

भूलषणा(१)—क्रि० सं० [हि० भूलाना] दे० 'भूलाना'। उ०—
निकट रहति जघपि श्री ललना। कब बाँधे कब भूलवे पलना।
—नंद० प्र०, पृ० २५०।

भूलषा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कपास जो बहाराइच,
बलिया, गाजीपुर और गोडा आदि में उत्पन्न होती है। यह
अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार
होती है, इसलिये इसे जेठवा भी कहते हैं। २. दे० 'भूला'।

भूलवाना—क्रि० सं० [हि० भूलना] भूलाने का काम दूसरे से
कराना। दूसरे को भूलाने में प्रवृत्त करना।

भूलसना(१)—क्रि० प्र० [सं० ज्वल + अश] १. किसी पदार्थ के ऊपरी
भाग या तल का इस प्रकार अंशतः जल जाना कि उसका रंग
काला पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का अशजला
होना। भूसना। जैसे,—यह लड़का अंगोठी पर गिर पड़ा
या इसी से इसका सारा हाथ भूलस गया। २. बहुत अधिक
गर्मी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सुखकर
कृच्छ्र काला पड़ जाना। जैसे,—गरमी के दिनों में कोयल
पोषी की परियाँ भुस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

भूलसना(२)—क्रि० सं० १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को

इस प्रकार अंशतः जलाना कि उसका रंग काला पड़ जाय और
तल खराब हो जाय। भूसना। जैसे—उन्होंने जानबूझ कर
अपना हाथ भूलस लिया। २. अधिक गरमी से किसी पदार्थ
के ऊपरी भाग को सुखाकर अशजला कर देना। जैसे,—प्राज
दोपहर की धूप ने सारा शरीर भूलसा दिया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—मुँह भूलसना = देखो 'मुँह' के मुहावरे।

भूलसवाना—क्रि० सं० [हि० भूलसना का प्रेरण] भूलसने का
काम दूसरे से कराना। दूसरे को भूलसने में प्रवृत्त करना।

भूलसाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'भूलसना'। २. दे० 'भूलसवाना'।

भूलाना—क्रि० सं० [हि० भूलना] हिठोले या भूले में बैठाकर
हिलाना। किसी को भूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो
नहीं नहीं अब ना भूलाओ लाल बाबा की सों मेरो ये जुगल
जघ पहरात।—तोप (शब्द०)। २. अघर में सटकाकर या
टाँगकर अघर उघर हिलाना। बार बार झोका देकर हिलाना।
३. कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक
समय तक आसरे में रखना। अनिश्चित या अनिर्णित प्रवस्था
में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे—इस
कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनो भूलाता है।

भूलाषणा(१)—क्रि० सं० [हि० भूलाना] दे० 'भूलाना' उ०—
लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ। कबहुँ पालने घालि भूलावइ।
—तुलसी (शब्द०)।

भूलावनि(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलाना] भूलाने का भाव या
क्रिया।

भूलुआ—संज्ञा पुं० [हि० भूला] दे० 'भूला'।

भूलौवा(१)—संज्ञा पुं० [हि० भूला (= कुरता)] जनाना कुरता।

भूलौवा(२)—वि० [हि० भूलना] जो भूलता या भूलाया जा
सकता हो। भूलने या भूल सकनेवाला।

भूलौवा(३)—संज्ञा पुं० भूलना। पालना। भूला।

भूलौवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'भूला'।

भुहिरना—क्रि० प्र० [हि० ?] लवना। लादा जाना। उ०—
रतन पदारथ नग जो बखाने। धोरन में देखे भुहिराने।—
जायसी (शब्द०)।

भुहिराना—क्रि० सं० [हि० ?] लादना। बोझ रखना।

भूँक(१)—संज्ञा पुं० [हि० भूँक] दे० 'भूँका'। उ०—(क) मुहमद
गुरु जो विधि लिखी का कोई तेहि फूँक। जेहि के भार जग
थिर रहा उठे न पवन के भूँक।—जायसी (शब्द०)। (ख)
त्यो पचाकर पौन के भूँकन बेलिया कूकन को सहि लेहैं।—
पचाकर (शब्द०)।

भूँक(२)—संज्ञा स्त्री० दे० 'भूँक'। उ०—किंकिनी की भूमकानि
भुलावनि भूँकनि सो भूँक जाव कटी की।—देव (शब्द०)।

भूँकना(१)—क्रि० सं० [हि०] १. दे० 'भूँकना'। २. दे०
'भूलना'।

मूँका④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मूँका'। उ०—यह गढ़ छार होइ एक मूँके।—जायसी (शब्द०)।

मूँखना④—क्रि० प्र० [हि०] 'मूँखना'। उ०—प्रवर्ण गनत इकटक मग जोवत तब इतनी नहीं मूँखी।—सूर (शब्द०)।

मूँमल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मूँकनाहट'।

मूँम्मा—वि० [देश०] [वि० स्त्री० मूँमी] इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। निंदक।

मूँटा—संज्ञा पुं० [हि० मूँटा] पेंग। दे० 'मूँटा'।

मूँटा—वि० [हि० मूँठा] दे० 'मूँठा'।

मूँठा—वि०, संज्ञा पुं० [हि० मूँठ] दे० 'मूँठ'।

मूँठा④—वि० [हि० मूँठ, मूँठा मूँठी] दे० 'मूँठी'। उ०—भोजन घघर घरे, पीक लीक सोहे भाछी काहे की लजात मूँठी सौह सात।—नंद० प्र०, पृ० ३५७।

मूँठी—संज्ञा स्त्री० [हि० मुँठी] वह ढंढल जो नील के सड़ने पर बच रहता है।

मूँपड़ा④—संज्ञा पुं० [देशी मूँपड़ा] दे० 'मूँपड़ा'। उ०—सुणि करहा डोलत कहइ साची भाखे जोइ। प्रगल जेहा मूँपड़ा तउ भासगे मोइ।—ढोला०, दृ० ३१४।

मूँषणहार④—वि० स्त्री० [?] जानेवाली। उ०—हिव सूँभर हेरा दुवड, मारु मूँषणहार। पिगल बोलावा दिया, सोहइ सो भसवार।—ढोला०, दृ० २६७।

मूँवना④—क्रि० प्र० [प्रा० मूँव] दे० 'मूँवना'। उ०—ढोलत हल्लाणउ करइ, घण हल्लिवा न देह। मूँवमूँव मूँवइ पागडइ, डवडव नयन भरेह।—ढोला०, दृ० ३०४।

मूँमना④—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मूँमना'। उ०—मूँमत प्यारी सारी पहिरे, चलत सु कटि लटकाइ।—नंद प्र०, पृ० ३८६।

मूँसना^१—क्रि० प्र०, क्रि० स० [हि० मूँसना] दे० 'मूँसना'।

मूँसना^२—क्रि० स० [प्रनु०] किसी को बढ़काकर या दमपट्टी देकर उसका धन आदि लेना। मूँसना।

मूँसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

मूँकटी—संज्ञा स्त्री० [हि० मूँक + कटी] छोटी झाड़ी। उ०—(क) वह मूँकटी तिरस्कृत प्रकृति की अनुसरती है।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। (ख) जिमि घसंत नव फूल मूँकटी तले लखाई।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

मूँकना④—क्रि० प्र० [हि० मूँकना] दे० 'मूँकना'। उ०—(क) जाकी सोनाभाय निवाजे। भवसागर में कबहुँ न मूँके ममय निसाने बाजे।—सूर०, १।३६। (ख) पावस रितु बरसे जब मेहा। मुकति मरौ हौं सुमिरि सनेहा।—हि० प्रेमनाया०, पृ० २२०।

मूँखना④—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मूँखना'।

मूँम④—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० मूँम] दे० 'युद्ध'। उ०—परे खड खड निजं सामि प्रागं। न को हारि मन्ने न को मूँम मगं।—पृ० रा०, ६।१५३।

मूँमना—क्रि० प्र० [हि० मूँम] दे० 'जुमना'। उ०—साहब को ४-२५

भावइ नही सो बाठ न वूमो रे। साईं सो सनमुख रहे इस मन से मूँमी रे।—दादू (शब्द०)।

मूँमाउ④—वि० [सं० युद्ध, प्रा० मूँम + हि० माउ (प्रत्य०)] दे० 'जुमाऊ'। उ०—बाजत मूँमाउ सिधू राग सहनाई पुनि सुगत ही काइर की छूटि जात कल है।—सुदर० प्र० भा० १, पृ० ४८५।

मूँमार—वि० [हि० मूँम + मार (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० मूँमारि④] दे० 'जुमार'। उ०—पंच महारिणि तहाँ कुटवाल। तिनकी तृया महा मूँमारि।—प्राण०, पृ० १६७।

मूँट—संज्ञा पुं०, वि० [देशी मूँठ] दे० 'मूँठ'।

मूँठ^१—संज्ञा पुं० [सं० मयुक्त, प्रा० मयुक्त मयवा (श्री मूँठ)] वह कपन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। वह बात जो यथार्थ न हो। सच का उलटा।

क्रि० प्र०—कहना।—बोलना।

मुह्ना—मूँठ सच कहना = निंदा करना। शिकायत करना। मूँठ का पुल बाँधना = लगातार एक के बाद एक मूँठ बोलते जाना। मूँठ सच जोड़ना = दे० 'मूँठ सच कहना'।

यौं—मूँठ का पुतला = भारी मूँठा। एकदम असत्य बातें कहने-वाला। मूँठमूँठ। मूँठसच।

मूँठ^२—वि० [हि०] दे० 'मूँठा'।—(स्व०)। उ०—मुख संपति दारा सुख हय गय मूँठ सबै समुदाइ। छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु भत नाहि सँग जाइ।—सूर०, १। ३१७।

मूँठ^३—संज्ञा स्त्री० [हि० मूँठ] दे० 'मूँठन'।

मूँठन—संज्ञा स्त्री० [हि० मूँठन] दे० 'जुठन'।

मूँठमूँठ—क्रि० वि० [हि० मूँठ + प्रनु० मूँठ] बिना किसी वास्तविक आधार के। मूँठे ही। यों ही। व्यर्थ। जैसे,—उन्होंने मूँठमूँठ एक बात बनाकर कह दी।

मूँठसच—वि० [हि०] ठीक वेठीक। जिसमें सत्य और असत्य का मियण हो।

मूँठा^१—वि० [हि० मूँठ] १. जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। जो मूँठ हो। जो सत्य न हो। मिथ्या। असत्य। जैसे, मूँठी बात, मूँठा अभियोग। २. जो मूँठ बोलता हो। मूँठ बोलने-वाला। मिथ्यावादी। जैसे,—ऐसे मूँठे आदमियों का क्या विश्वास।

क्रि० प्र०—ठहरना।—निकलना।—धनना।

३. जो सच्चा या असली न हो। जो केवल रूप और रंग आदि में असली चीज के समान हो पर गुण आदि में नहीं। जो केवल दिखावा और बनावटी हो या किसी असली चीज के स्थान पर यों ही काम देने, सुभीता उत्पन्न करने प्रयत्न किसी की धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो। नकली। जैसे—मूँठे जवाहिरात, मूँठा गोटा पट्टा, मूँठी पड़ी, मूँठा मसाला या काम (जरदोजी का), मूँठा दस्तावेज, मूँठा कागज।

विशेष—इस अर्थ में 'मूँठा' शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही हो है ताजिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं।

४. जो (पुरजे या घग आदि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सकें। जैसे, 'ताले' या 'खटके' आदि को 'मूठा' पड़ जाना। हाथ या पैर को 'मूठा' पड़ना।
 कि० प्र०—पड़ना।
 मूठा—वि० [हि० मूठा] दे० 'मूठा'।
 मूठामूठी—कि० वि० [हि०] दे० 'मूठमूठ'।
 मूठों—कि० वि० [हि०-मूठा] १. मूठमूठ। यो ही। २. नाम मात्र के लिये। कहने भर को। जैसे—वे मूठों भी हमें बुलाने के लिये न आए। उ०—मूठों हि दोस 'लगाने' मोहें 'राजा'।—गीत (शब्द०)।

मूणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की 'सुपारी'। २. एक प्रकार का मणिकुण्ड।
 मूना—वि० [सं० जीरा, प्रा० जूँ, गुंज, जूँ] दे० 'मोना'। उ०—
 (क) तब लो दया बनो दुसरे दुख दारिद को सायरी को सोइवो मोइवो भूने खेस को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चेहि व्यस
 उ०—उडे भूने सुसीकर प्ररम पीतल वृण परे।—रघुसाज (शब्द०)।
 मूम—संज्ञा स्त्री० [हि० मूमना, तुल० बेंग, धूम] १. मूमने की क्रिया या भाव। २. ऊँचा। उ०—उधरि मूमकी पं—(व०)।

मूमका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूमना] १. एक प्रकार का गीत जिसे होली के विनों में देहात की स्त्रियाँ मूम-मूमकर एक धेरे में नाचती हुई गाती हैं। मूमर। मूमकर। उ०—लिए खरी बेत सोधि विभाग। आचरि मूमक कहे सरस राग।—तुलसी (शब्द०)।
 २. इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य। ३. एक प्रकार का पुरबी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसरों पर गाया जाता है। मूमर। उ०—कहे नुवोरा मूमक होई। फर मो फल लिये सब कोई।—जयसी (शब्द०)। ४. गुच्छा। स्तवक।
 ५. चाँदी सोने आदि के छोटे-छोटे मूमको या मोतियों आदि के गुच्छों की वह कतार जो 'साड़ी' या 'मोड़नी' आदि के उस भाग में लगी रहती है जो मोँके की ऊँपर पहना है। इसका व्यवहार पूरबी में अधिक होता है। उ०—मूमका

मूमकसाडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मूमक + साड़ी] १. वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में मूमके या सोने मोती आदि के गुच्छे टँके हों। २. लहंगे पर की वह मोड़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टँके हों।

मूमकसारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मूमकसाडी'। उ०—
 (क) लाख टका मस मूमकसारी देहु दाइ को 'बेंग'।—सूर (शब्द०)। (ख) सुनि उमगी नारी प्रकुलित मन पहिरि मूमकसारी।—छीत०, पु० ३।

मूमका—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'मूमका'। उ०—मचवा मयारि विरोज लाल लटकत सुंदर मुंदर डरावगो। मोतिन कालरि मूमका राजत विच नील प्रणि बहु भाँदनी।—सूर (शब्द०)।
 २. दे० 'मूमक'। उ०—पग मरुत लटकत लटकाहूँ। मटकत मोहन हस्त उछाहूँ। मचल बचन मूमका।—सूर (शब्द०)।

मूमड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूमड़] दे० 'मूमर'। उ०—घाँट छोड़ नोकाओं के मूमड़ धारा में पड़ चले।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११५।

मूमड़भामड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूमड़] ठकीसला। मूठा प्रपंच। निरर्थक विषय। उ०—मपने हाथे करे यापना भज्यो का सिस काटी। सो पूजा घर लेयो मोली मुरति कुतान बाटी। दुनिया मूमड़भामड़ भटकी।—कबीर (शब्द०)।
 मूमड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] चंदिह मात्रा का एक ताल। दे० 'मूमरा'।
 मूमना—कि० प्र० [सं० मूमना (= कुदना)] १. मोधार पर लिपित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिर का बार बार भागे पीछे, बीच ऊपर या इधर उधर हिलना। धार बार भोके खाना। जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का मूमना। उ०—

मुहा०—बादल मूमना = बादलों का एकत्र होकर भुकना।
 २. किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार पीछे, धोर, इधर उधर हिलाना। लहराना। जैसे, हाथी या रीछ का मूमना। तथा या नींद में मूमना। उ०—
 साई सुधि प्यारे की विचार मति टारै तब, धारै पग मूम बारावति प्राए है।—प्रिया (शब्द०)।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्तो, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नपे आदि के कारण होती है। उ०—

मुहा०—दरवाजे पर हाथी मूमना = इतना मूम होना कि हाथी पाल सके। उ०—मूमत धार मनेक मंतंग जंजीर उडे मूम मंडु उडावे।—तुलसी (शब्द०)। मूम मूम कर = सिर और धड़ को भागे पीछे या इधर उधर खूब हिल हिलाकर लहरा लहराकर। जैसे—मूम मूमकर पड़ना, नाचना आ।
 प्रेत आदि बाधाओं के कारण खलना।

मूमना—सञ्ज्ञा पुं० १. बेलों का एक रोग जिसमें वे लूटे पर बंधे इधर उधर सिर हिलाया करते हैं। २. वह बेल जो मूमता हो।

मूमर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूमरा या सं० युम, प्रा० जुम + र (प्रत्य०)] १. सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या डेढ़ अंगुल चौड़ी, चार पाँच अंगुल लंबी धोर मोतरी से पोछी सीधी मयवा मनुषाकार एक पट्टी होती है।

विशेष—यह गहना प्रायः सोने का ही होता है, धोर इसमें छोटी जंजीरों से बंधे हुए धुंधले या कच्चे लटकते रहते हैं। किसी (क) किसी मूमर में जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो परिवर्तनी होती है। इसके पिछले भाग के कुछ भाग में बाँप के आकार के एक गोली टुकड़े में दूसरी जंजीर या जोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिर को कुड़ा सिर की चोटी या माँग के पास के शालों में प्रोतका दिया जाता है। यह गहना सिर के मगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं। संप्रुत प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में केवल एक ही मूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और यही इसका व्यवहार वेषाएँ करती है, पर मंजौर में इसका व्यवहार आ गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं, और वही मूमरो की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है।

२. कान में पहनने का मूमका नामक गहना। ३. मूमक नाम का गीत-गो होली में गाया जाता है। उ०—इस गीत के साथ

होनेवाला नाच । ५. एक प्रकार का गीत जो विहार प्रांत में सब ऋतुओं में गाया जाता है । ६. एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । जमघटा । जैसे, नाचों का भूमर ।

क्रि० प्र०—डाखना । पड़ना ।

७. बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिलकर इस प्रकार घूम घूमकर नाचना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । ८. भात को खटा करने पर रस्सी लेकर भागना ।

—(कलंदरों की भाषा) । ९. गाड़ीवानों की मोंगरी । १०. भूमरा नामक ताल । १०. 'भूमरा' । ११. एक प्रकार का काठ का खिलोना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारों ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकेली रहती हैं ।

मूमरा—संज्ञा पु० [हि० भूमर] एक प्रकार का ताल जो बौद्ध मंत्राओं का होता है । इसमें तीन भागों में एक बिराम होता है ।

वि० वि० तिरकिट, वि० वि० घा घा, तित्ता तिरकिट, वि० वि० घा घा ।

मूमरा—वि० [हि० भूमरा] भूमरावाला । उ०—बहुरि घनेक भगाव जु सरवर । रस मूमरे, धूमरे, तरवर ।—त० प्र०, पृ० २८५ ।

मूमरि—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमर] दे० 'भूमर' ।

मूमरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] शालक राग के पाँच भेदों में से एक ।

मूर—वि० [हि० घूर या घुर] सुखा । खुश । शुष्क ।

मूर—वि० [हि० भूठ] १. खाली । रीता । २. व्यर्थ ।

मूर—वि० [सं० जुष्ट] ठूठा । उछिड़पटा ।

मूर—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वल, हि० मार] १. जलन । दाह । २. परिताप । दुःख । उ०—मजहूँ कहै सुनाइ कोई करें कुविजा हरि । सूर दाहनि मुख गोपी कवरी के मूरि ।—सूर (शब्द०)

मूरणा—क्रि० प्र० [हि० मूर] दे० 'मूराना' । उ०—मन ही माहँ मूरणा, रोवँ मनही माहि । मन ही माहि घाह दे, दाह बाहरि नाहि ।—दा०, पृ० १३ ।

मूरना—क्रि० प्र० [हि० मूर] दे० 'मूराना' ।

मूरा—वि० [हि० मूर] १. शुष्क । सूखा । सुख । २. खाली ।

उ०—किगरी गड़े बजाए मूरी । भोर साफ सिंगी तिर-पूरी ।—जायसी (शब्द०) । ३. दे० 'मूर' ।

मूरा—संज्ञा पु० १. सूखा स्थान । वह स्थान जो पानी से भीगा न हो । २. जलघट्ट का प्रभाव । अवर्षण । सूखा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

—३. न्यूनता । कमो । उ०—करी कराह साज सब पूरा । काढ़हु पूरी परी न भूरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मूरि—संज्ञा स्त्री० [हि० मूर] दे० 'मूर' ।

मूरै—क्रि० प्र० [हि० मूर] व्यर्थ । निष्प्रयोजन ।

मूरै—वि० दे० 'मूर' । उ०—घोषि पची ओरी नहि पूरे । वार बार खोजत रिच मूरै ।—सूर (शब्द०) ।

मूल—संज्ञा स्त्री० [हि० भूलना] १. वह चीज जो कपड़ा जो प्रायः शास्त्र के लिये जीपाया की मोठ पर डाला जाता है । उ०—शेर के समान जब लोहे, सावधान, प्रवान, भूलन डपान जिन वेग वेप्रमान है ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो भूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और मधिर दामों की होती है और उसपर, कारचोवी आदि का काम किया होता है । बड़े बड़े राजाओं के हाथियों की भूलों में मोतियों की झालरें तक दी होती हैं । अंडों, तुषारों के बेलों पर भी इसी प्रकार की भूलें डाली जाती हैं । आसक्त कुत्तों तक पर भूल डाली जाने लगी है ।

मुहा०—गंधे पर भूल पड़ना = बहुत ही शयोष या कुत्त मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना ।—(व्यंग्य) ।

२. वह कपड़ा जो पहना जाने पर भूरा और बेहगम जान पड़े ।—(व्यंग्य) । उ० १. दे० 'भूला' । उ०—मखतूल के भूल भूलावत केशव भानु मनो शानि प्रक लिए ।—केशव (शब्द०) ।

मूला—संज्ञा पु० [हि०] मुंड । समुद्र । उ०—जो रखवालत जगत में, भाडी जबक भूल ।—बाकी० प्र०, भा० १, पृ० १४ ।

मूल—संज्ञा पु० [हि० भूलन] भूलने समय भूले की भाँगे और पीछे भौंका देना । पैग । उ०—बिच भुरमुट भूना चलते, जल छवे लोबो भूल ।—घनानंद, पृ० २१५ ।

मूलदंड—संज्ञा पु० [हि० भूलना + सं० दण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें चारी चारी से बैठकर और भूलते हुए दंड करते हैं ।

मूलन—संज्ञा पु० [हि० भूलना] १. एक उत्सव । हिंदोल ।

विशेष—इस उत्सव में देवमूर्ति, विशेषतः श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को भूलने पर बैठकर भुलाते हैं और उनके सामने तब गीत आदि करते हैं । यह साधारणतः वर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है ।

२. एक प्रकार का राग या चलता गाना ।

मूलना—संज्ञा स्त्री० भूलने की क्रिया या भाव ।

मूलना—क्रि० प्र० [सं० बोलन] १. किसी लटकी हुई वस्तु पर स्थित होकर प्रयत्न किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटककर बार-बार आगे पीछे या इधर उधर हटते बढ़ते रहना । लटक कर बार-बार इधर उधर हिलना । जैसे, पंख की रस्सी भूलना, भूले पर बैठकर भूलना । २. भूले पर बैठकर पैग लेना । उ०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल-किसोरी गोरी, भूपति हिंदोरे यो सोहाई, सखियान में । काम भूले घर में, उरोजन में दाम भूले स्थान भूले प्यारी की प्रियारी, सखियान में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) फूली बेनी सो भूलवेली वधू, भूलति मकेली काम केली ।—(शब्द०) । ३. किसी कार्य के होने समय तक पड़े रहना । मासरे में प्रयत्न । जैसे—जो लोग बरखो भूल हो, नही भोर पाय ।

मूलना^२—वि० [वि० खी० मूलनी] मूलनेवाला । जो मूलता हो ।
जैसे मूलना पुल ।

मूलना^३—संज्ञा पुं० १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे—हरि राम विभु पावन परम, गोकुल बसत मनमान ।
२. इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १० १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है । जैसे,—जैति हिम बालिका असुर कुल घालिका कालिका मालिका सुरस हेतु । ३. हिडोला । मूला । (क्व०) ।
उ०—अंबवा की बाली तले आली मूलना डला दे ।—गीत (शब्द०) ।

मूलनि^४—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] मूलने का भाव या स्थिति ।
उ०—हत यह ललित लतन की फूलनि । फूलि फूलि जमुना जल मूलनि ।—नंद० प्र०, पृ० ३१६ ।

मूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है ।

विशेष—बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में मुगदर छोड़ते समय पंजे को इस प्रकार उलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर मूलता हुआ जाता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

मूलनी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना + बैठक (= कसरत)] एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—बैठक की इस कसरत में बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह मुलाकर और तब उसे समेटकर बैठना और फिर उठकर दूसरे पैर को उसी प्रकार मुलाना पड़ता है । इसमें शरीर की तौलने की विशेष साधना होती है ।

मूलर^५—संज्ञा पुं० [हि० मूल] मुँह । जमघट । उ०—बालूवावा देसणउ जहाँ पाणी सेवार । ना पाणिहारी मूलरउ ना कुवइ लेकर ।—ढोला०, दृ० ६६४ ।

मूलरि^६—संज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] मूलता हुआ छोटा गुच्छा या झुमका । उ०—बर बितान बहु तने तनावन । मनि मूलरि लटकावन ।—गोपाल (शब्द०) ।

मूला—संज्ञा पुं० [सं० दोला] १. पेड़ की डाल, छत या और किसी ऊँचे स्थान में बाँधकर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सियाँ जंजीर आदि में बाँधी पटरी जिसपर बैठकर मूलते हैं । हिडोला ।

विशेष—मूला कई प्रकार का होता है । इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु या पेड़ों की डालों में मूलते हुए रस्से बाँधकर उसके निचले भाग में तख्ता या पटरी आदि रखकर उसपर मूलते हैं । दक्षिण भारत में मूलों का रवाज बहुत है । वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में तार या रस्सी या जंजीर लटका दी जाती है और बड़े तख्ते या चौकी के चारों कोने से उन रस्सियों को बाँधकर जंजीरों को जड़ देते हैं । मूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरसता से बराबर मूल सके । मूले के भागे और पीछे

जाने और आने को पैंग कहते हैं । मूले पर बैठकर पैंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करने हैं या उसके एक सिरे पर खड़े होकर झोंके से नीचे की ओर झुकते हैं ।

क्रि० प्र०—मूलना ।—ढोलना ।—पड़ना ।

२. बड़े बड़े रस्से, जंजीरों या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या बुर्ज आदि में बंधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अघर में लटकता और मूलता रहता है । मूलता हुआ पुल । जैसे, लछमन मूला ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे । आजकल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगली जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुरानी चाल के पुल पाए जाते हैं । पुरानी चाल के पुल दो तरह के होते हैं—(१) एक बहुत छोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी चट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा बोरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है । ऊपरवाले रस्से को पकड़कर यात्री उसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है । (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुनकर अथवा छोटे छोटे ढाँचे बाँधकर नदी की चौड़ाई के बराबर लंदी और बड़े हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उसे रस्सों में लटकाकर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्ही रस्सों और रस्सियों की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है । इसी में से होकर आदमी चलते हैं । इसके दोनों सिरे भी नदी के दोनों किनारे पर चट्टानों से बंधे होते हैं । आजकल यूरोप, अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बड़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं ।

३. वह विस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँधकर दोनों ओर दो ऊँची खूंटियों या खम्भों आदि में बाँध दिए गए हों ।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के विस्तर पेड़ों में बाँध देते हैं और उनपर सोते हैं । जहाजों में खलासी लोग भी इस प्रकार के कनवास के विस्तरों का व्यवहार करते हैं ।

३. पशुओं की पाठ पर डालने की मूल । ५. देहाती स्त्रियों के पहनने का ढोला ढाला कुरता । ६. भोका । भटका ।—(क्व०) । † ७. तरबूज । † ८. स्त्रियों का एक प्रकार का आभूषण । २. ६० 'मुलवा' ।

मूलाना^७—क्रि० सं० [हि० मूलाना] दे० 'मुलाना' । उ०—तापे श्री ठाकुर जी को डोल मूलाए ।—श्री सी बावन०, भा० १, पृ० २३० ।

मूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] १ वह कपड़ा जिससे हुवा करके मग्न भोसाया जाता है। परती। २ खलासियों आदि का जहाजी विस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँधकर दोनों ओर ऊँची खूंटियों या खम्भों आदि में बाँध दिए जाते हैं। दे० 'मूला' ३।

मूसर^①—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग, हि० लूणा] वह लकड़ी जो बेलो को नाथने के लिये उनके कंधों पर रखी जाती है। लूणा। उ०—मूसर भार न भूलही गोधा गावड़ियाह। इस बस भार न ऊपड़े मोला मावड़ियाह।—बाँकी० प्र०, भा० २ पृ० १५।

मूसा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास। गुलमुला। पलजी। बड़ा मुरमुरा।

विशेष—यह घास उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और इसे घोड़े तथा गाय बेल आदि बड़े चाव से खाते हैं।

मैँडा^①—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जयन्त, हि० भट्टा] भट्टा। बज्र। उ०—कहे कासी पढत लाल भट्टे बहुत। पाय दल जावे तहत क्या सरयत खबर।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

मैँप—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मपना] लाज। धामं। हया।

मैँपना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] धरमाना। लजाना। लज्जित होना। संयो० क्रि०—जाना।

मेकना^①—क्रि० प्र० [प्रनु०] झूकाना। बैठना। उ०—(क) डोलइ मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह। करह मेकि दोनूँ चढा कूट न संभाइह।—डोला०, पृ० ६३७। (ख) घाली टापर वाग मुखि, मेकयउ राजदुभारि।—डोला०, पृ० ३४५।

विशेष—ऊँट के बैठने की राजस्थानी में मेकना कहते हैं। ऊँट को बैठते समय के के किया जाता है। उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

मेपना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'मैँपना'।

मेर^①—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० देर] बिलब। देर। उ०—(क) चलहु तुरत जिन मेर लगावहु भवही घाइ करी विश्राम।—सूर (शब्द०)। (ख) काहे की तुम मेर लगावति। दान देहु घर जाहु वेचि दधि तुम झी की वह भावति।—सूर (शब्द०)।

मेर^②—सञ्ज्ञा पुं० [हि० छेड़ना] बखेड़ा। झगड़ा। उ०—(क) सुरदास प्रभु रासबिहारी श्री बनबारी बुधा करत काहे मेरे।—(शब्द०)। (ख) भयुकर समाना ऐसा बेरन। नदकुमार छाँडि की लेहू योग दुखन की टेहन। जहाँ न परम उदार नंद सुन मुक्त परो किन मेरन।—सूर (शब्द०)।

मेरना^①—क्रि० प्र० [हि० मेखना] खेलना। सहना। उ०—कह नृप पद प्रव ते गहौ गहे रानि सुख मेरि। मन में मयो न मेल कछु लागे सेवन फिर।—विश्राम (शब्द०)।

मेरना^२—क्रि० प्र० [हि० छेड़ना] शुरू करना। प्रारम्भ करना। उ०—मेरी बखेरी चाहि मेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाव (शब्द०)।

मेरा^①—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मेर ?] १. झगड़। बखेड़ा। मेर। उ०—(क) जीव का जनम का जीवक प्राप ही प्रापके

भानि मेरा।—दादू (शब्द०)। (ख) दीपक में घरघो बारि देखत भुज भए बारि हारी हो घरति करत दिन दिन को मेरो।—सूर (शब्द०)। (ग) सुदर बाही बचन है जामहि कछु बिबेक। नातर मेरा में परघो बोलत मानो मेक।—सुदर प्र०, भा० २, पृ० ७२६। २. छोटा सोता। झिरी। पीछे पावीबासा गड़ा। † ३ समूह। झुंड।

मैँल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मैलना] १. पाना में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। २. हलका प्रकाश या हिलोरा। उ०—सुरत समुद्र मगन दपति सो मैलत अति सुख मैल।—सूर (शब्द०)। ३. मैलने की क्रिया या भाव।

मैल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मैल] बिलब। बेर। मेर। उ०—(क) सब कहँ देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल मम बैना। भये कुमार विषादत लायक उचित मेख कछु है ना।—रघुराज (शब्द०)। (ख) माँकति है का झरोखा लगी लग लागिबे की इहाँ मैल नहीं फिर।—पद्माकर (शब्द०)।

मैलना—क्रि० प्र० [श्वेल (= हिलाना डुलाना)] १. ऊपर लेना। सहारना। सहना। बरदाश्त करना। जैसे, दुख मैलना, कष्ट मैलना, मुसीबत मैलना। उ०—टूटे परत प्रकास को कोन सकत है मैलि।—कबीर (शब्द०)। २. पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ०—(क) कर पग गहि घंगुडा मुख मैलत। प्रभु पीछे पालने मकेले हरखि हरखि अपने रग खेलत। सिध सोचन बिधि बुद्धि विचारत बट बाढ्यो सागर जल मैलत।—सूर (शब्द०)। (ख) बासकैलि को विशद परम सुख सुख समुद्र नृप मैलत।—सूर (शब्द०)। ३. पानी में हिलना। हेलना। जैसे, कमर तक पानी मैलकर नदी पार करना। ४. डेलना। डकैलना। घागे बढ़ाना। घागे चलाना। उ०—डुहुव की सहज बिसात दुहँ मिलि सतरँज खेलत। उर, रस, नैन चपल प्रभव चतुर बराबर मैलत।—हरिदास (शब्द०)। † ५ पचाना। हजम करना। ६ सहना। ग्रहण करना। मानना। उ०—पौषन भानि परे तो परे रहे फेती करी मनुहारि न मेची।—मतिराम। (शब्द०)।

मैलनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मैलना] एक प्रकार की जजीर जो कान के घ्रायुपण का भार सँभालने के लिये वालों में घटकाई जाती है।

मैली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मैलना] बच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देवा।

मैलुआँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मूला'।

मैर^①—सञ्ज्ञा पुं० [हि० महूर] दे० 'जहर' उ०—जपुरनाथ देसा धाम बेटा तीन पाया। प्याला भर पाया एक बेटा ने मराया।—शिखर०, पृ० ७४।

मौक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० युज, युक्त, हि० लुकना] १. लुकाप। प्रवृत्ति। २. तराजू के किसी पलड़े का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—भौक मारना = डोंडी मारना । कम तोलना ।
३. बौक । भार । जैसे—इसकी भौक सब उसी पर पड़ती है ।
४. वेग । भटका । तेजी । प्रचंड गति । जैसे—(क) गाड़ी बड़ी भौक से भा रही थी । (ख) साँड़ भा रहा है कहीं भौक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट आवेगी । (ग) नशे की भौक, क्रोध की भौक, लिलने की भौक, नौद की भौक,
५. किसी काम का धमधाम से चढ़ना । कार्य की गति । जैसे—पहली भौक में उसने इतना काम कर डाला । ६. ठाट । सजावट । चाल । प्रदाज ।

यौ०—नोक भौक = ठाट बाट । धूम धाम ।
७. पानी का हिलोरा । ८. दे० 'भौका' । ९. दो लड़के जो बेल-गाड़ी की मजदूरी के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं ।
भौकना—क्रि० सं० [हि० भौक] १. भटके के साथ एकबारगी किसी वस्तु को धागे की ओर फेंकना । वेग से सामने की ओर डालना । फेंककर छोड़ना । जैसे, भाड़ में पत्ते भौकना । इजन में फोयला भौकना । आँख में धूल भौकना ।
संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—भाड़ भौकना = (१) भाड़ में सूखे पत्ते आदि फेंकना । २. तुच्छ व्यवसाय करना (व्ययमे) । जैसे—इतने दिन दिल्ली में रहे, भाड़ भौकते रहे । ३. ठकेलना । ठेलना । झज्जरवस्ती आँगों की ओर बढ़ाना या करना । जैसे—उसने मुझे एकबारगी आँगों की ओर भौक दिया । ३. प्रधाधुधा खर्च करना । बहुत अधिक व्यय करना । बहुत अधिक खर्च करना । बहुत अधिक किसी काम में लगाना । जैसे, व्याह सादी में रुपया भौकना ।

संयो० क्रि०—देना । डालना ।
४. किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना । भय या कष्ट के स्थान में कर देना । बुरी जगह ठेलना । जैसे—(क) तुमने हमें कहीं लाकर भौक दिया, दिन रात आफत में जान पड़ी रहती है । (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर भौक दिया । ५. कार्य का बहुत अधिक भार देना । बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना । बिना सोचे समझे काम लादना । जैसे—तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर भौक देते हो । ६. बिना बिचारे आरोपित करना । (दोष आदि) मढ़ना । (दोष) लगाना । जैसे—सारा कसूर उसी पर भौकते हो ।

भौकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. भौ, भौ, करता । २. बहुत जोर से रोना । ३. झुलस जाना ।

भौकवा—संज्ञा पुं० [देश०] सड़के या भाड़ में खड़पताई भौकने वाला मनुष्य ।

भौकलाई—संज्ञा स्त्री [हि० भौकना] १. भौकने की क्रिया या भाव । २. भौकवाने की क्रिया या भाव । ३. भौकने के काम की सजरत । भौकने की मजदूरी ।

भौकवाना—क्रि० सं० [हि० भौकना का प्र० रूप] १. भौकने का काम कराना । २. किसी को आगे की ओर जोर से डालना ।

भौका—संज्ञा पुं० [हि० भौक] १. वेग से जानेवाली किसी वस्तु

के स्थान का प्राधात । तेजी से चलनेवाली किसी चीज के जाने से उत्पन्न भटका । धक्का । रैला । भपटा । २. वेग से चलनेवाली वायु का प्राधात । हवा का भटका या धक्का । वायु का प्रवाह । हवा का बहाव । भौकना । जैसे—ठंडी हवा का भौका आया । ४. पानी का हिलोरा । ५. बगल से लगने वाला धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय । रैला । ६. धर से धर भौकने या हिलने डोलने की क्रिया ।

मुहा०—भौके आना = नौद के कारण झुक झुक पड़ना । ऊँच लगना । भौका खाना = किसी प्राधात या वेग प्रादि के कारण किसी ओर झुकना । जैसे, भौका खाकर गिरना, नौद से भौका खाना ।

७. ठाट । सजावट । चाल । प्रदाज । उ०—पहिले राती चूतरी सिर उपरना सोहै । कटि लहगा लोलो बन्यो भौको जो देखि मन मोहै ।—सूर (शब्द०) । ८. कुशती का एक पंच ।

विशेष—यह पंच (दाँव) उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानों के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं । इसमें एक हाथ बिपक्षी के हाथ के बाहर निकालकर मोढ़े पर चढ़ाते और दूसरा बगल से मोढ़े पर ले जाते हैं और फिर भौका देकर गिराते हैं ।

भौकाई—संज्ञा स्त्री [हि० भौकना] १. भौकने की क्रिया या भाव । २. भौकने की मजदूरी ।

भौकारना—क्रि० सं० [हि०] कुछ कुछ झुलसा देना । जला देना ।

भौकिया—संज्ञा पुं० [हि० भौकना] भाड़ में पताई आदि भौकने वाला । भौकवा ।

भौकी—संज्ञा स्त्री [हि० भौक] १. भार । बोझ । जवाबदेही । जैसे—सब भौकी मेरे ही सिर ? २. भारी अनिष्ट या हानि की माशका । जोखों । जोखिम । जैसे—दुसरे का माल रख कर भौकी कौन सहे ।
क्रि० प्र०—सहना ।

भौक(०)—संज्ञा पुं० [देश०] १. खोता घोंसला । २. कुछ पक्षियों (जैसे, डेक, गोध आदि) के गले की थैली या लटकता हुआ मांस । ३. खजली । सुरसुराहट । चुल ।

मुहा०—भौक मारना = झुजली होना । चुल होना ।

भौकल(०)—संज्ञा पुं० [हि० भौकलाना] भौकलहट । क्रोध । कुदम । गुस्सा ।

क्रि० प्र०—भ्राना ।

भौट—संज्ञा पुं० [म० भौट] (= भाड़ी) १. भाड़ी । २. आड़ा मुर-मुट । ३. समूह । खरी । जुड़ी । ४. दे० 'भौट' । ५. चाल । ठाट । भौक । प्रदाज । उ०—लोचन बिखोच पोच खचित की—श्रीधर हाव भाव भरी करत भौटन पौखलित बात ।—नद० प्र०, पृ० ३७६ ।

भौटसभौटा—संज्ञा पुं० [हि०] भौटभौट । उ०—प्रब भौटस भौट की नौद प्रानेवाली है, और सारा कसूर मुगलाती का है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४ ।

मोटा—संज्ञा पुं० [सं० बृट्] १. बड़े बड़े बालों का समूह । इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुटा । उ०—दुमरे सबद बिबेक लगहि चूतर में सोंटा । धीरे-धीरे भागु पकरि के कटिहों मोटा ।—पलटू, भाग ३, पृ० ८६ ।

मुहा०—मोटे पकड़कर काटना, मोरना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का भीर कुम्बवहार करना—सिर के बाल खींचकर वे सजाव्यवहार करना ।—(स्त्रियों के लिये यह प्रपञ्च/कीर्ति का अर्थ है) । मोटे घसीटना—सिर के बाल खींचना ।

यो०—मोटा मोटी—ऐसा लड़ाई भगडा या मारपीट जिसमें मोटा मोटी पकड़ने की जोरत पावे ।

२. जुट्टा । पतली लंबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में आ सके ।

मोटा—संज्ञा पुं० [हि० मोका] १. वह (घबकी खो) भूले को इधर उधर हिलावे के लिये बिगा जाता है । मोका । पेंग । उ०—(क)

(खलित) बिसास । देहि मोटारी कि मंग वर सप्ताति ।—सूर (शब्द०) । (ख) एक समूह, एकत्र, वन में, डोल झूलत कुम्बविहारी । मोटु, देह, प्रसव, मधुर, उदावत, डारी ।

—हस्तिदन्त (शब्द०) । मुहा०—मोटा देता—भूले को बढाने के लिये घबका देता । पेंग । (मारना) । मोटा मारना—देह मोटा देना ।

२. भटका । मोक । झाल । प्रदाज ।

मोटा—संज्ञा पुं० [हि० छोटा] १. संज्ञा का वचन । उ०—

मोटी—संज्ञा स्त्री [हि० मोटा] दे० मोटा ।—१। उ०—सुनि

विपुल लखि तख सिख छोटी—लगे घसीटन धरि धरि छोटी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—मोटी मोटी—लड़ाई भगडा । दे० मोटा मोटी ।

मोटी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० मोका ।—१ ।

मोप—वि० [प्रा० भप, हि० मोपना] उक, खिन्नेवाला । मान्यवर्ति ।

मोपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० छोपना] (= छोना) अथवा प्रा० भप, हि० मोप । [को० मत्पा० मोपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषतः गाँवों में जंगलों आदि में मिले छोटी छोटी दोबारा को उठाकर जोड़ा जाय ।

मुहा०—मोपड़ा पेट । उदर (फकीर) । प्रके मोपड़े में

मोपड़ी—संज्ञा स्त्री [हि० मोपड़ा का को० मत्पा०] छोटा मोपड़ा । कुटिया । पराशरा । मदी । उ०—कत बोस लोचन

बिसोकिह कुमंत फल ह्यास लंवा लाई कपि रौड की सी मोपड़ी ।—तुलसी (शब्द०) ।

मोपा—संज्ञा पुं० [हि० भुवा] भुवा । गुच्छा । उ०—भूलहि रतन

पाट के मोपा । साज मदन नेहि का कह मोपा ।—जायसी (शब्द०) ।

मोक—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'मोक' । उ०—साम भूमल वे भी मतवाला, मोक में मोक सो पावे ।—सं० दरिया, पृ० ११२ ।

मोखना—क्रि० सं० [हि० मोकना] भासना । छोटना । देना । उ०—धर्म मोखे मोहल काल में जो ।—रघु० ख० पृ० २२६ ।

मोका—संज्ञा स्त्री [हि० मोक] १. किसी वस्तु की वह घनावश्यक लटकता हुआ प्रक जो फूला फूला ये मोक घसा—दिखाई दे ।

उ०—चितम्ब गुह्य कपड़ों को मोका लटका दे लाता बाहा । प्रेममन भा० पृ० २६१ ।

मोकर—संज्ञा पुं० [प्रा० मोकर] पचोनी । मोकरना ।

मोका—संज्ञा पुं० [हि०] पेंग । दे० 'मोका' । उ०—(क) गाजे घण

सुण पावणो, पाला भर मय पाव । भूले रेसम रंग मूड, मोटा देर भुलाव ।—बोकी० पृ०, भा० ३, पृ० ८ । (क) कोड भचल छोरि कटि में बांधि कसिके देत । कोड किए लावन की कछोटी चढ़त मोटा देत ।—भारतेंदु पृ०, भा० २, पृ० ११८ ।

मोटिंग—वि० [हि० मोटा] मोटेवाला । जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े मोर लड़े बाल हों । उ०—मज्जहि सत पिशाच

वेताला । प्रसम महा मोटिंग करावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मोटिंग—संज्ञा पुं० बहुत बड़े बड़े मोर लड़े बालोवाला । सुत प्रेत या पिशाच आदि ।

मोड़—संज्ञा पुं० [सं० मोड] सुपारी का वृक्ष ।

मोपड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मोपड़ा' ।

मोपड़ी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'मोपड़ी' ।

मोपरिया—संज्ञा स्त्री [हि० मोपड़ी + रिया (प्रत्यय)] दे० 'मोपड़ी' । उ०—खिरकी देव गोरी चितवन लागी, उपरी मोप

मोपरिया ।—कवीर पृ०, भा० १, पृ० ५५ ।

मोवाभोव—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'भम भम' । उ०—सहजो

गुरु ऐसा मिलि समे छटी निलमि । सिधू कु प्रेम समुद्र में कर दे मोवाभोव ।—सहजो, पृ० १२ ।

मोरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मोरी' ।

मोरई—वि० [हि० मोल + ई (प्रत्यय)] जिसमें मोल हो ।

रसेदार । उ०—सुर करवलि सरस मोरई । सेमि सीगरी

छमकि मोरई ।—सूर (शब्द०) ।

मोरई—संज्ञा स्त्री [हि० मोल] रसेदार तरकारी ।

मोरना—क्रि० सं० [सं० मोल] १. भटका । डेकर हिलाना या कपाना । उ०—कछो कहारि हमे न सोरि । नयो कहार चलत पग मोरि ।—सूर (शब्द०) । २. किसी चीज को इस प्रकार भटका डेकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीज गिर पड़े । जैसे पेट की बाल मोरना । आम मोरना । हमली मोरना आदि । उ०—मोरि से कौन लप वन बाग ये कौन जु पासन को हरियाई ।—सुकुसुमाकर (शब्द०) । ३. प्रतिपूर्क भोजन करना । छुकर खाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

३. इकट्ठा करना । एकत्र करना ।—(क्व०) ।

भोरा④^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० भोरा] गुच्छा । झुब्बा ।

भोरा④^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० भोला] दे० 'भोला' । उ०—लाल मखमली रुचिर पान को भोरा धारे ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२ ।

भोरि④^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'भोली' ।

भोरी④^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० भोली] १ भोली । उ०—(क) भाय करी मन की पद्माकर ऊपर नाय अबीर की भोरी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) हमारे कौन वेद विधि साधे । बहुभा भोरी दह भोरी इतनेन को भाराधे ।—सूर (शब्द०) । २. पेट । भोकर । भोकर । उ०—जो भावे भनगनत करोरी । डारे खाइ भरे नहि भोरी ।—विश्राम (शब्द०) । ३ एक प्रकार की रोटी । उ०—रोटी बाटी पोरी भोरी । एक कोरी एक घीव चमोरी ।—सूर (शब्द०) । ④ ४ रस्सी आदि के जालों या फंदों से युक्त भोला के आकार का बड़ा जाल जिसमें ग्राह्य लोगों को उठाकर पहुँचाते थे । दे० 'भोली'—७ । उ०—(क) बदाइय दिल्ली नगर भवर सेन जुषमग । घाय घुमत भोरिन घले, श्रवन सुनतहु भगि ।—पृ० रा०, ६१ । २४६८ । (ख) बाजीद धान भोरी धरिय, धाउ पथ रघर नृपति ।—पृ० रा० १० । ३४ ।

भोल^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० भालि (= भाम का पना)] तरकारी आदि का गाढ़ा रसा । धोरबा । २ किसी अन्न के आटे में मसाले देकर कढ़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली लेई । ३ माँड़ । पीच । ४. मुलम्मा या गीलट जो धातुओं पर चढ़ाया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चढ़ाना ।—फेरना ।

यौ०—भोलदार ।

भोल^२—सञ्ज्ञा पु० [सं० दोल (दोलन), हि० भूलना] १ पढ़ने या ताने हुए कपड़ों आदि में वह भ्रम जो डीखा होने के कारण भूल या लटककर भोले की तरह हो जाता है । जैसे, कुरते या कोट में का भोल, छत की चाँदनी में का भोल आदि । २. कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या क्रिया । तनाव या कसाव का उलटा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—निकलना ।—निकासना ।—पढ़ना ।

३. पल्ला । घाँघल । उ०—फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि काहूँ भन्हुवाय भमोल । तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट भोल ।—सूर (शब्द०) । ४ परदा । ओट । झाड़ । उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोल । ल्याए हरि कुसलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल । कहन देहु कहा करे हमरो बन उठि जेहे भोल । भावत ही याको पहिचान्यो निपटहि ओछो तोल ।—सूर (शब्द०) । ५ हाथी की चाल का एक ऐक जिसके द्वारा वह विस्कुल सीधा न चलकर बराबर झूलता हुआ चलता है ।

भोल^३—वि० १. ढीला । जो कसा या तना न हो ।

यौ०—भोलभाल = ढीलाढाला ।

२. निकम्मा । खराब । बुरा ।

भोल^४—सञ्ज्ञा पु० भूल । गलती । जैसे—गदहे की गोने में नौ मन का भोल ।—(कहा०) ।

भोल^५—सञ्ज्ञा पु० [हि० भिल्ली या भोली] १. वह भिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या भ्रूते रहते हैं । जैसे, कुतिया का भोल, मुरगी का भोल, मछली का भोल आदि ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों आदि के संबंध में नहीं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

मुहा०—भोल वैठाग । मुरगी के नीचे सेने के लिये भ्रूते रखना ।

२. गर्भ । उ०—भक्ति बीज बिनसे नही भाय परे जो भोल । जो कंधन बिठठा परे घटे न ताको भोल ।—कबीर (शब्द०) ।

भोल^६—सञ्ज्ञा पु० [सं० ज्वाल हि० भाल] १. राख । भस्म । खाक । उ०—(क) तुम बिन कता धन हरछे (हृदं या हृदं) तून तून वरमा डोल । तेहि पर बिरह जराइ के चहै उड़ावा भोल ।—जायसी (शब्द०) । (ख) प्राणि जो बगी समुद्र मे टूटि टूटि खसै जो भोल । रोवै कबिरा डिभिया मोरा हीरा जरे भमोल ।—कबीर (शब्द०) । २ दाह । जलन ।

भोलदार—वि० [हि० भोल + फा० दार] १ जिसमें रसा हो । रसेदार । २. जिसपर गिलट या मुलम्मा किया हो । ३. भोल सवधी । ४. जिसमें भोल पड़ता हो । ढीलाढाला ।

भोलना—क्रि० सं० [सं० उवलन] जलाना । उ०—हमको तुझ बिन सबै सतावत । 'पूछ पूछ सरदार सखन के इहि बिधि दई बढ़ाई । तिन प्रति बोल भोलि तनु डारयो भनल भँवर की नाई ।—सूर (शब्द०) ।

भोला^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० झलना वा सं० चोल] [स्त्री० भल्या० भोली] १. कपड़े की बड़ी भोली या थैली । २ ढीलाढाला गिलाफ । खोली । जैसे, बटूक का भोला । ३. साधुओं का ढीला कुरता । चोला । ४ बात का एक रोग जिसमें कोई भ्रम (जैसे, हाथ पैर आदि) ढीला पड़कर बेकाम पड़ जाता है । एक प्रकार का छक्का या पक्षाघात ।

मुहा०—किसी को भोला मारना = (१) बात रोग से किसी भ्रम का बेकाम हो जाना । पक्षाघात होना । (२) सुस्त पड़ जाना । बेकाम हो जाना ।

५ पेड़ों के पाला सू आदि के कारण एकबारगी कुम्हला जाने या सूख जाने का रोग ।

क्रि० प्र०—मारना ।

६. झटका । आघात । पक्का । भोंका । बाधा । आपत्ति । उ०—पाकी खेती देखिके गरवे कहा किसान । भ्रजहूँ भोला बहुत है घर भावे तब जान ।—कबीर (शब्द०) । ७ हाथ का सकेत । इशारा । ८ पाल की गोन या रस्सी को झटका देने या ढीलने की क्रिया ।

मोला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूलना] मोका । मँकोरा । हिलोर ।
न०—कोई खादि पवन कर मोला । कोई करदि पात भस
डोला ।—जायसी (शब्द०) ।

मोलाहल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आज्वल्, प्रा० मलहल] (युद्ध की)
चमक । दीप्ति । प्रकाश । उ०—हय हिसहि गज चिकरि
मगर सम दिप्पि कुलाहल । बलि पपिनि वेताल नदि नदिय
मोलाहन ।—पृ० रा०, ८।५४ ।

मोलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मोली] दे० 'मोली' । उ०—ऊघम
प्रति होत जात घुंघट में नहि लखात छुटत बहुरंग उडन प्रविर
मोलिका ।—मार्तण्ड प्र०, भा० २, पृ० ३६३ ।

मोलिहारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मोली + हारा (प्रत्य०)] १ मोली
लटकानेवाला । २ कहार । (सोनारों की बोली) ।

मोली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मूलना] १. इस प्रकार मोड़कर हाथ
में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग
एक गोल वस्तु के आकार का हो जाय और उसमें कोई
वस्तु रखी जा सके । कपड़े को मोड़कर बनाई हुई धैली ।
धोकरी । जैसे, गुलाल की मोली, साधुओं की मोली ।

विशेष—यह किसी चौखूँटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर इकट्ठा
बाँधने से बन जाती है । कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए
चारों कोनों को कुछ दूर तक सी सी देते हैं ।

मुहा०—मोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के पम्पे का
मूल जाना । मोली डालना = भिक्षा माँगने के लिये मोली
उठाना । साधु या भिक्षु हो जाना । मोली भरना = साधु
को भरपूर भिक्षा देना ।

२. घास बाँधने का जाल । ३ मोट । चरसा । पुर ४ वह कपड़ा
जिससे खलिहान में मनाज में मिला हुआ भूसा उड़ाकर मलग
किया जाता है । ५ धोरा । कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है । जब विपक्षी किसी
प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है । इसमें एक हाथ उलटकर
उसकी कमर पर देते हैं और दूसरे से उसकी टाँगों को
सघि पकड़ कर उठाते हैं ।

६. सफरी बिस्तर जो चारों कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा
खम्भे पेड़ प्रादि में बाँधकर फैलाया जाता है । ७ रस्सियों का
एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा भारी चीजों को उठाते हैं ।

मोली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल या माला] राख । मरम् ।

मुहा०—मोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उसे करने
बसना । कोई बात हो जाने पर मर्यादें उसके सबध में कुछ
करना । जैसे,—पचायत तो हो चुकी अब क्या मोली बुझाने
प्राप हो ?

विशेष—यह मुहावरा घर-जसने की घटना से लिया गया है
अर्थात् जब घर जलकर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने
के लिये पहुँचे ।

मौमट^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूढ] दे० 'मूढ' ।

४-२६

माद—सञ्ज्ञा पुं० [हि० मूढ] पेट । उदर । उ०—कोई कर्न
बिहीन या नासा बिन कोई । मोंद फुटे कोई पड़े स्वासा बिन
होई ।—सूदन (शब्द०) ।

मौर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हि० मूर] १. मुड ।
समूह । उ०—छकि रसाल सोरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठोर
ठोर मौरत भूपत मौर मौर मधु प्रघ ।—बिहारी (शब्द०) ।
२. फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छा । उ०—
वाख कैसी मौर मलकति जोति जोवन की चाटि जाते मौर
जो न होती रग चपा की ।—(शब्द०) । ३ एक प्रकार
का गहना जिसमें मोतियों या चाँदी सोने के दानों के गुच्छे
लटकते रहते हैं । मूवा । उ०—कलगी दुरा मौर जग
सरपेच सुकुडल ।—सूर (शब्द०) । ४ पेड़ों या झाड़ियों
का घना समूह । भापस । कुज । उ०—बस मौर गंभीर
भीतिकर नहि सुकत दस भासा ।—रघुराज (शब्द०)
५ दे० 'मौर' ।

मौर^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] मूढ । उ०—तुम काहे को मौर
करो इतनी, नहि काज है लाज हिये मढ़िबे को ।—नट०,
पृ० ५४ ।

मौरना—क्रि० घ० [मनु०] १ गूँजना । गुजारना । उ०—छकि
रसाल सोरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठोर ठोर मौरत भूपत
मौर मौर मधु प्रघ ।—बिहारी (शब्द०) । २. दे० 'मौरना' ।

मौरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'मौर' ।

मौराना^१—क्रि० घ० [हि० मौरा या मौरा] १. मौरा रंग का
हो जाना । बरंग हो जाना । काला पड़ जाना । २. मुरझाना ।
कुम्हलाना ।

मौराना^२—क्रि० घ० [हि० मूमना] इधर उधर हिलना ।
मूमना । उ०—सौंठिहिरक चले मौराई । निचैठ राव सब
कह बौराई ।—जायसी (शब्द०) ।

मौसना—क्रि० स० [हि०] दे० 'मूलसना' । उ०—नाम ले चिसाव
चिसाव प्रकुसाव प्रति वाच सात तौसियत मौसियत मारही ।
—तुलसी (शब्द०) ।

मौनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी । धोरी ।

मौर—सञ्ज्ञा पुं० [मनु० मौर मौर] १. मूढ । बड़ेझा । हुज्जत ।
तकरार । होरा । विवाद । उ०—(क) नहीं ठोठ नैनन ते
धोर । कितनों में बरजति समभावति उसटि करत हैं मौर ।
—सूर (शब्द०) । (ख) महिर तुम ब्रज चाहति कछु
धोर । बात एक में कही कि नाही प्राप घगावति मौर ।—
सूर (शब्द०) । २ डाँट । फटकार । कहावनी । ऊँचा
नीचा । उ०—धोर को कैतव मौर सहे पै न धावरी रावरी
प्रास मुनेई ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

मौरना—क्रि० स० [हि० भूपटना] धोप सेना । घसा सेना ।
भूपत कर पकड़ना ।—उ०—इती धायि के युग रथों कीर
धोरयो । मृगाधीन ज्यों मृग के लख मौरयो ।—सुंदर
(शब्द०) ।

झोरा—संज्ञा पुं० [अनु० झोरा] झंझट । बखेड़ा । हुज्जत ।
तकरार । होरा । विवाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

औ०—होरा झोरा ।

झोरी(उ)—संज्ञा स्त्री० [हि० झोला] दे० 'झोले' । उ०—उलटा कुम्भ
बरे जख नाहीं बगुला खोजे झोरी ।—सं० दरिया, पृ० १२७ ।

झोरे—क्रि० वि० [हि० धीरे] १. समीप । पास । निकट ।
२. साथ । संय । उ०—सीरे अंग सुभक्त न पीरे खोलि
धीरे राति अधिक ली राधिका के झोरे ई लगे रहैं ।—देव
(शब्द०) ।

झोल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'झोल' । उ०—यह नर गरम मुसइया
देखि माया को झोल ।—कबीर सा०, पृ० ५४३ ।

झोवाड़—संज्ञा पुं० हि० झावा] रहठे की बनी हुई वह छोटी दोरी
जिसमे मजदूर लोग खोदी हुई मिट्टी भरकर फेंकने के लिये ले
जाते हैं । खंभिया ।

झोहाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गुराना । २. जोर से चिड़चिड़ाना ।
क्रोध में झूलाना ।

झूझना(उ)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'झूलना' । उ०—येंक प्राए
फिर वासुदेव बोले । ज्यों भानंद मद सुं झूले ।—बिखनी, पृ० १२२ ।

ट

ट—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का
पहला वर्ण है । इसका उच्चारण स्पान पूर्वार्ध है । इसका
उच्चारण करने में तालु से ओम का अग्र भाग सगाना
पड़ता है ।

टंक^१—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. एक तीस जो चार मासे की
होती है ।

विशेष—कोई कोई इसे तीन मासे या २४ रत्ती की भी
मानते हैं ।

२. वह नियत मान या बाट जिससे तोल तोलकर धातु ठकसाल
में सिक्के बनने के लिये दी जाती है । ३. सिक्का । ४. मोती
की तोल जो २१२ रत्ती की मानी जाती है । ५. पत्थर काटने
या गढ़ने का औजार । टाँकी । छेनी । ६. कुल्हाड़ी । परशु ।
फरसा । ७. कुदाल । ८. खड्ग । तलवार । ९. पत्थर का
कटा हुआ टुकड़ा । १०. भाँग । ११. नील कपिरथ । नीला
कैय । खटाई । १२. कोप । कीध । १३. वर्ष । अभिमान ।
१४. पर्वत का सह्र । १५. सुहागा । १६. कोष । खजाना ।
१७. सपूर्ण जाति का एक राग जो श्री, भैरव और कान्हड़ा
के योग से बना है ।

विशेष—इसके गाने का समय रात १६ दह से २० दह तक है ।
इसमें कोमल श्रवण लगता है और इसका सरगम इस प्रकार
है—सा रे ग म प ध नि । हनुमत् के मठ से इसका स्वरगम
है—स ग म प ध नि सा सा ।

१८. म्यान । १९. एक कटिदार पेड़ जिसमें जेल या कैप के बराबर
फल लगते हैं । २०. सौंदर्य (को०) । २१. गुल्फ (को०) ।

टंक^२—संज्ञा पुं० [प्र० टंक] १. सासाब, पानी रखने का होज ।

टंक(उ)^३—संज्ञा पुं० [?] अल्पांश । थोड़ा अंश । उ०—जाको जस
टंक सातो दीप नव खंड महिम्बल की कहा ब्रह्म न सा समात
है ।—सूषण० प्र०, पृ० २२२ ।

टंकक^४—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कक] १. चाँदी का सिक्का या रुपया । २.
टाँकी । छेनी (को०) ।

टंकक^५—संज्ञा पुं० [हि० टंकण] टंकण यंत्र पर टंकण कार्य करने-
वाला व्यक्ति । (सं० टाइपिस्ट) ।

टंककपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ककपति] दे० 'टंकपति' (को०) ।

टंककशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ककशाला] टंकसाल घर ।

टंकटीक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कटीक] शिव ।

टंकण^१—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कण] १. सुहागा । २. धातु की चीज में
टाँका मारकर जोड़ खाने का कार्य । ३. घोट्टे की एक जाति ।
४. एक देश जिसका नाम जो बृहत्संहिता में कोंकण प्रादिके
साथ प्राया है ।

टंकण^२—संज्ञा पुं० [अनु०] टाइपराइटर पर टंकित करनेका कार्य ।
टाइप करना । उ०—छपाई और टंकण की कठिनाइयाँ कैसे
दूर हो ।—भा० शिक्षा, पृ० ५९ ।

टंकणक्षार—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कणक्षार] सोहागा (को०) ।

टंकन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टंकण' । उ०—एक और की प्रेम, जोर
करने बरजोरिए । ज्यों टंकन तैं हेम, पिघरस प्रात झोरिए ।
—ब्रज० प्र० १४१ ।

टंकणयंत्र—संज्ञा पुं० [हि० टंकण + सं० यंत्र] एक प्रकार का छापने
का छोटा यंत्र जिसपर अक्षरों की पत्तियाँ अलग अलग खड़ी
होती हैं और जब छापना होता है तो उन्हीं पत्तियों की उभ-
लियों से दबाते जाते हैं और यंत्र के ऊपर लगे हुए कागज
पर अक्षर छपते जाते हैं । टाइपराइटर ।

विशेष—कार्बन पेपर की सहायता से इस यंत्र पर एकाधिक
प्रतियाँ टंकित की जा सकती हैं ।

टंकना^१—क्रि० प्र० दे० [हि० टाँकना] दे० 'टंकना' ।

टंकना(उ)^२—क्रि० प्र० [?] टंकना । धातुत करना । उ०—बहु न
सील काँठ छीन ह्वै खज्ज मान टंकनि फिरै ।—पृ० १०,
२५।१६ ।

टंकपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कपति] टंकसाल का अधिपति ।

टंकवान्—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कवान्] एक पहाड़ जिसका नाम वाल्मीकि
रामायण में प्राया है ।

टंकवाना—क्रि० प्र० [हि० टंकवाना] दे० 'टंकाना' ।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] टंकसाल ।

टंका^१—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. पुराने समय में चाँदी की एक तोल

जो एक तोले के बराबर होती थी। २. टंकि का एक पुराना सिक्का। टका। ३. सिक्का। मुद्रा। उ० पान कसए सोनाक टका चादन क मूल ई घन बिका।—कीर्ति०, पृ० ६८।

टका^२—संज्ञा पुं० [टंका] एक प्रकार का गन्ना या ईख।

टंका^३—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] १. जंघा। २. तारा देवी। ३. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो त्रिपञ्च और चादि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वरग्राम यौ है—स रे ग म प ध नि स।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कानक] ब्रह्मदाय। शहतूत।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. वह शब्द जो घनुप की कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचने से होता है। घनुप की कसी हुई पतचिका खींच या तानकर छोड़ने का शब्द। २. टनटन शब्द जो कसे हुए तार आदि पर उंगली मारने से होता है।

३. घातुल्ल पर भाषात लगने का शब्द। ठनाका। झलकार। ४. विस्मय। ५. कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि। ६. कोलाहल। शोरगुल (को०)। ७. भयपथ। कुर्याति (को०)।

टंकारना—क्रि० सं० [सं० टङ्कार + ना (प्रत्यय०)] घनुप की डोरी खींचकर शब्द करना। पतचिका तानकर ध्वनि उत्पन्न करना। बिल्ला खींचकर बजाना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कारी] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ संबोतरी होती हैं।

बिरोध—फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में साव फूल लगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके भड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह क्षुप जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक में इसका स्वाद कटु और गुण वात रुफ का नाशक और अग्निदीपक सिद्धा है। टकारी उदर रोग और विसर्प रोग में भी बी जाती है।

टंकारी^२—वि० [सं० टङ्कारिन्] [वि० स्त्री० टङ्कारिणी] टंकार करनेवाला (को०)।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्किका] परपर काटने का औजार। टांकी। छेनी। उ०—मुत्त सुजन वन ऊख सम खल टंकिका रखान। परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान।—तुलसी (शब्द०)।

टंकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] श्री राग की एक रागिनी।

टंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी भरने का एक छोटा सा कुंड। बीवन्चा। टांका। २. पानी भरने का बड़ा बर्तन। ठब। ३. तेल भरने या संचित करने का पात्र।

टंकृत—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कृत] टंकार की ध्वनि (को०)।

टंकोर—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कोर] दे० 'टंकार'। उ०—देखे राम पक्षि माधव मुदित मोर। मानत मनहु सतचित्त ललित धन, बनु सुरधनु, गरजनि टंकोर।—तुलसी प्र० पृ० ३६३।

टंकोरना—क्रि० सं० [घनु०] १. घनुप की रस्सी को खींचकर

उससे शब्द उत्पन्न करना। टकारना। २. ठोकर लगाना। ठोकर मारकर शब्द उत्पन्न करना। ३. तर्जनी या मध्यमा उंगली की कुड़ली बजाकर उसकी नोक की अंगूठे से बजाकर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टंग—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] १. टाँग। टेंगड़ी। २. कुल्हाड़ी। ३. कुदाल। परघु। फरसा। ४. सुहागा। ५. चार मासे की एक तोल। ६. एक प्रकार की तलवार (को०)।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं० टङ्गण] टकण। सोहागा।

टंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गा] टाँग। पैर (को०)।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टंगिनी] पाठा।

टंघुं^१—वि० [सं० चण्ड, हि० चठ] १. सुमङ्गा। कज्जुस। कृपण। २. कठोरपूर्य। निष्ठुर।

टंच^२—वि० [हि० टिचन] पैपार। मुस्तैद।

टंटघंट—संज्ञा पुं० [घनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी घाटवर। घड़ी घटा आदि बजाकर पूजा करने का भारी प्रपञ्च। मिय्या घाटवर।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [सं० तराशा (= प्राक्रमण) प्रयत्न घनु० टनटन] १. उपद्रव। हलचल। दगा। फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा सड़ा करना = उपद्रव करना। झगड़ा मचाना।

२. ठकरार। सड़ाई। कसह।

यौ०—झगड़ा टंटा।

३. घाटवर। प्रपञ्च। बखेड़ा। खटराग। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। जैसे,—इस दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है।

टंडर—संज्ञा पुं० [अंग० टेंडर] १. वह कागज जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने खरीदने का इकरार करता है। निविदा। २. अदालत का वह प्राज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदालत में दाखिल करे। निविदा।

टंडल^१—संज्ञा पुं० [अंग० जेनरल, हि० जंजेल] मजदूरों का मेठ या जमादार।

टंडल^२—संज्ञा पुं० [अंग० टेंडर] दे० 'टेंडर'।

टंडस^३—संज्ञा पुं० [हि० टंटा] दिखावटी काम। झूठा काम। उ०—टंडस तें बाढ़े जजाखा।—धरनी०, पृ० ४१।

टंडेल—संज्ञा पुं० [अंग० जेनरल, हि० जंजेल] दे० 'टंडल'।

टंसरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बीणा।

टंकना—क्रि० प्र० [हि० टांकना का अक० रूप] १. टांका जाना। कील आदि जड़कर जोड़ा जाना। जैसे—एक छोटी सी चिप्पी टंक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२. सिलसई के द्वारा जुड़ना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा हुआ टंकना, चकवी टंकना, गोटा टंकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३ सीकर घंटकाया जाना । सिलाई के द्वारा ऊपर से सयाया जाना । जैसे, भालर में मोती टंके हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४ रेती या सोहन के दाँतों का नुकीला होना । रेती का तेज होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५ भंकित होना । लिखा जाना । दर्ज किया जाना । जैसे,—यह रुपया बही पर टंका है या नहीं ?

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु, रकम या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है ।

६ सिल, चक्की आदि का टाँकी से गढ़े करके छुरदरा किया जाया । छिनना । रेहा जाना । कुटना ।

टंकवाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टंकाना' ।

टंकसालि(७)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'टंकसाध' । उ०—घड़ी और शब्द रची टंकसालि ।—प्राण०, पृ० १०२ ।

टंकाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टाँकना] १ टाँकने की क्रिया या भाव । २. टाँकने की मजदूरी ।

टंकाना—क्रि० सं० [टाँकना का प्रे० रूप] १. टाँकों से जोड़वाना या सिलवाना । जैसे, सूता टंकाना । २ सिलाकर लगवाना । जैसे, बटन टंकाना । ३. (सिल, जीता, चक्की आदि) छुरदुरा कराना । कुटना । ४ सिलवाना । टंकवाना ।

टंकाना^२—क्रि० सं० [सं० टङ्क (=सिक्का)] सिक्कों का परखवाना सिक्कों की जाँच कराना ।

टंकारना—क्रि० सं० [हि० टंकारना] दे० 'टंकारना' । उ०—सुफलक बढ़ि निज धनुष टंकायो । बीस बाण बाहुलीकहि मान्यो ।—गोपाल (शब्द०) ।

टंकावल(७)—वि० [सं० टङ्क (=सिक्का) + आवल (=वाला)] टकोवाला । बहुमूल्य । उ०—काने कुडल मलमलइ कठ टंकावल हार ।—ढोला०, दृ० ४८० ।

टंकोर(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टंकोर] दे० 'टंकोर' । उ०—प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।—गुलसी (शब्द०) ।

टंकोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] दे० 'टंकोरी' ।

टंकोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] सोना, चाँदी आदि तोलने का छोटा तराजू । छोटा काँटा ।

टंगड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] घुटने से लेकर ऐड़ी तक का भाग । टाँग ।

मुहा०—टंगड़ी पर उड़ाना=लंग मारकर गिराना । कुश्ती में पैर से पैर फेंकाकर गिराना । मड़गा मारना ।

टंगना^३—क्रि० प्र० [सं० टङ्गण या टङ्गण (=जड़ा जाना)] १. किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार घटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो । किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना वा फँसना अथवा उसपर इस प्रकार

टिकना या घटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे । लटकना । जैसे, (सूँटी पर) कपड़े टंगना, परदा टंगना, तसवीर टंगना ।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अश्व आधार पर हो और थोड़ा सा अश्व आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टंगी हुई नहीं कहेंगे । 'टंगना' और 'लटकना' में यह अंतर है कि 'टंगना' क्रिया में वस्तु के फँसने या टिकने या घटकने का भाव प्रधान है, और 'लटकना' में उसके बहुत से अश्व का नीचे की ओर अधर में दूर तक जाने का भाव ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२ फाँसी पर चढ़ना । फाँसी लटकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टंगना^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वह माड़ी बंधी हुई रस्सी जिसपर कपड़े आदि टंगे या रखे जाते हैं । भलगनी । बिलगनी । २. जुलाहों की वह रस्सी जिसमें उठनी टाँगो जाती है । ३. वह फटा जिसे भेटी, लोटे आदि के गले में फँसाकर हाथ में लटकाए हुए ले चलने के लिये बनाते हैं ।

टंगरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टंगड़ी' ।

टंगा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मूँज ।

टंगारी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] कुल्हाड़ी । कुठार ।

टंड(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टटा] भगड़ा । प्रपच । सासारिक माया । उ०—टंड सकट में प्रसित है सुत दारा रहसाई ।—भोखा श० पृ० ८७ ।

टंडिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताड अथवा देश०] बाँह में पहनने का एक गहना जो अर्धत के आकार का, पर उससे भारी और बिना घुड़ी का होता है । टाँड । दहूँटा ।

टंडुलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] बनचोलाई जो कुछ कटिदार होती है । यह साग और दवा दोनों के काम आती है ।

टंसहरी^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टाँस + हरी (प्रत्य०)] वह दैल जो नसों के सिकुड़ जाने से लँगड़ा हो गया हो ।

ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का खोपड़ा । २. वामन । ३ चौपाई भाग । ४. शब्द ।

टई(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठही' ।

टक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टक (=घड़ना) या सं० भाटक] १. ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । किसी ओर लगी या बँधी हुई दृष्टि । गड़ी हुई नजर । स्थिर दृष्टि ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—टक बँधना=स्थिर दृष्टि होना । टक बाँधना=किसी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना । टकटक देखना=बिना पलक गिराए लगातार कुछ कास तक देखते रहना । टक सगाना=आसरा देखते रहना । प्रतीक्षा में रहना ।

२. लकड़ी आदि भारी बोझों को तोलनेवाले बड़े तराजू का चौखूँटा पलड़ा ।

टकमक(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी + मकका] टाकमक ।

उ०—टकभक्त सौं झुकि वदन निहारत मलक सँवारत पलक न मारत जान गई नंदरानी ।—न० प्र० पृ० ३३८ ।

टकटक(५)°—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी लगाकर देखना । एक टक देखना । उ०—टकटक ताकि रही ठग मुरी प्राप प्राप विसारी हो ।—पलटू० भा० ३, पृ० ८४ ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

टकटका(५)°—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टक या सं० टाटक] [स्त्री० टकटकी] स्थिर दृष्टि । टकटकी । उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार टकटका लागा ।—जायसी (शब्द०) ।

टकटका°—वि० स्थिर या बँधो हुई (दृष्टि) । उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को छात कन । रामचंद्र को रूप निहारत साधि टकाटक तकन ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

टकटकाना°—क्रि० सं० [हि० टक] १ एक टक ताकना । स्थिर दृष्टि से देखना । उ०—टकटके मुख झुकी नैनही नागरी, उरहनों देत रुचि अधिक बाड़ी ।—सूर (शब्द०) । २ टकटक शब्द उत्पन्न करना । ३ फल गिराने के लिये किसी पेड़ आदि को हिलाना ।

टकटकाना°—क्रि० सं० [हि० टका (= सिक्का)] १ रुपए लेना । चालाकी से रुपए लेना । २ धन कमाना । प्राय करना ।

टकटकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टक या सं० टाटकी] ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । अनिमेष दृष्टि । स्थिर दृष्टि । गड़ी हुई नजर । उ०—टकटकी चंद चकोर ज्यो रहत है । सुरत और निरत का तार बाजे ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ८८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकटकी बँधना = स्थिर दृष्टि होना । टकटकी बाँधना = स्थिर दृष्टि से देखना । ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे । उ०—झोर की छोट देखती बेला । टकटकी लोग बाँध देते हैं ।—चोखे०, पृ० १५ ।

टकटोना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टकटोलना' । उ०—पुनि पीवत हो कच टकटोवे झूठे जननि रहे ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोरना°—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= भंडाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना । टटोलना । उ०—(क) सूर एकहू धग न काँधो में देखी टकटोरि ।—सूर (शब्द०) । (ख) नहि सगुन पायत एक मिसु करि एक धनु देखन गए । टकटोरि कपि ज्यो नारियह सिर नाइ सब वैठत भए ।—तुलसी श०, पृ० ५३ । २ तलाश करना । हूँढना । खोजना । उ०—मोहि न पस्याहु तो टकटोरी देखो पन वै ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

टकटोलना—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= भंडाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । टटोलना ।

टकटोहन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टकटोना] टटोलकर देखने की क्रिया । स्पष्ट । उ०—प्रथम प्रथमा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोहना(५)°—क्रि० सं० [हि० टकटोना] दे० 'टकटोलना' । उ०—या बानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै । देखन प्रग यके मन मे शशि कोटि मदन छवि मोहै ।—सूर (शब्द०) ।

टकतंत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० हि० टक + सं० तन्त्री] सितार के ढग का एक प्राचीन बाजा ।

टकना°—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टक्क (= टाँग)] घुटना ।

टकना°—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टकना' ।

टकवीड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की भेंट जो किसानों की धोर से विवाहादि के अवसरों पर जमींदारों को दी जाती है । मधवच । शाशिया ।

टकराना°—क्रि० प्र० [हि० टकर] १ एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना या छु जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे । जोर से भिड़ना । धक्का या ठोकर लेना । जैसे,—(क) चट्टान से टकराकर नाव चुर चुर होना । (ख) झंघरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया ।

सयो० क्रि०—जाना ।

२ इधर से उधर मारा फिरना । डौवाडोल घुमना । कार्य-सिद्धि की प्राप्ति से कई स्थानों पर कई बार घाना जाना । घुमना । जैसे,—उसका घर मालूम नहीं मैं कहाँ टकराता फिरूँगा ? उ०—जैहूँ तैहूँ फिरत स्वान की नाई द्वार द्वार टकरात ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना । हैरान घुमना ।

३ लड़ाई या झगड़ा होना ।

टकराना°—क्रि० सं० १ एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना । जोर से भिड़ना । पटकना ।

मुहा०—माथा टकराना = (१) दूसरे के पैर के पास सिर पटककर विनय करना । प्रत्यत अनुनय विनय करना । (२) धोर प्रयत्न करना । सिर मारना । हैरान होना ।

२ किसी को किसी से लड़ा देना ।

टकराव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टकर + प्राव (प्रत्यय)] टक्कर । टकराहट

टकराहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टकराना] १. टकराने का भाव या क्रिया । उ०—वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से, नारी की आत्मा में भी कुछ जग जाता है ।—ठग०, पृ० ७१ । २. संघर्ष । लड़ाई ।

टकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

टकसरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बीस जो घास-पत्तों, चटगाँव धोर बर्मा में होता है । इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं ।

टकसारा°—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'टकसाल' । उ०—पारस रुपी जीव है लोह रूप ससार । पारस से पारस भया, परस भया टकसार ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—टकसार बाणी = प्रामाणिक बात । सच्ची बाणी । उ०—दूसरे कबीर साहब की जो टकसार बाणी है ।—कबीर म०, पृ० १८ ।

२ जेंचो या प्रामाणिक वस्तु । उ०—नष्ट का यह राज है न फरक बरतै द्वेक । सार शब्द टकसार है हिरदय भाँहि विवेक ।
—कबीर (शब्द०) ।

टकसारी^७—वि० [हि० टकसार] दे० 'टकसाली' ।

टकसाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टक्काला] १ वह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या ढाले जाते हैं । रुपए ऐसे भादि बनने का कार्यालय ।

मुहा०—टकसाल का खोटा=नीच । दुष्ट । कमीना । कम असख भ्रमिष्ट । टकसाल के चट्टे बट्टे = टकसाल में ठले हुए । विशिष्ट प्रकृति के । उ०—राज्य के अधिकारी तो वही पुरानी टकसाल के चट्टे बट्टे थे । —किन्नर०, पृ० २५ । टकसाल चढ़ना = (१) टकसाल में परखा जाना । सिक्के या धातु-खड की परीक्षा होना । (२) किसी विद्या या कला कोशल में दक्ष माना जाना । पारगट माना जाना । (३) बुराई में प्रमत्त होना । कुर्म या दुष्टता में परिपक्व होना । बदमाशी में पक्का होना । निर्लज्ज होना । टकसाल बाहर = (१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय । जो प्रचार में न हो । (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय । जिसका प्रयोग शिष्ट न माना जाय ।

२ जेंचो या प्रामाणिक वस्तु । असल चीज । निर्दोष वस्तु ।

टकसाली^१—वि० [हि० टकसाल + ई (प्रत्य०)] १. टकसाल का । टकसाल संबंधी । २ जो टकसाल का बना हो । खरा । बोखा । जैसे, टकसाली रुपया । ३. सर्वसमत । अधिकारियो या विज्ञो द्वारा अनुमोदित । माना हुआ । जैसे, टकसाली भाषा । ४ जेंचा हुआ । पक्का । प्रामाणिक । परीक्षित । जैसे, टकसाली बात ।

मुहा०—टकसाली बात = पक्की बात । ठीक बात । ऐसी बात जो प्रामाणिक न हो । टकसाली बोली = सर्वसमत भाषा । विज्ञो द्वारा अनुमोदित भाषा । शिष्ट भाषा । ऐसी भाषा जिसमें प्राम्य भादि दोष न हों ।

टकसाली^२—सञ्ज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी । टकसाल का अध्यक्ष ।

टकहाई—वि० स्त्री० [हि० टका] जो टके टके पर व्यभिचार करती हो । जो वेष्याओं में नीच हो । जैसे, टकहाई रबी ।

टका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टक्क] १. चाँदी का एक पुराना सिक्का । रुपया । उ०—(क) रतन सेन हीरामन चीन्हा । लाख टका बाह्यन कँह दीन्हा ।—जायसी (शब्द०) (ख) लाख टका घर झूमक सारी दे दाई को नेग ।—सूर (शब्द०) । २. तबि का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है । अघटना । दो पैसे । जैसे—अंधेर नगरी चौपठ राजा । टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

मुहा०—टका पास न होना = निर्धन होना । दरिद्र होना । टका सा जवाब देना = (१) खट से जवाब देना । तुरत अस्वीकार करना । किसी की शायंता, याचना, अनुरोध या माता को तुरत अस्वीकार करना । साफ इन्कार करना । कोरा जवाब देना । जैसे,—मैंने दो दिन के लिये उनसे घोड़ा माँगा तो उन्होंने टका सा जवाब दे दिया । (२) साफ जवाब देना कि मैंने इस

काम को नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता । साफ निकल जाना । कानों पर हाथ रखना । टका सा मुँह लेकर रह जाना = छोटा सा मुँह लेकर रह जाना । लज्जित हो जाना । स्त्रियमा जाना । टका सी जान = झेला बम । एका ही जीव । (स्त्रि०) । टके ऐँठना = अनुचित रूप से या धूर्तता से रुपया प्राप्त करना । रुपया ऐँठना । उ०—क्यों टका सा जवाब उसको दें । जिस किसी से सदा टके ऐँठे । —चोखे०, पृ० १७ । टके की भोकात = (१) साधारण वित्त का प्रादमी । गरीब प्रादमी । (२) अस्तित्वहीनता । उ०—हम गरीब प्रादमी हैं, टके की हमारी भोकात । —फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७ । टके को न पूछना = लेखमान महत्व न देना । महत्वहीन समझना । उ०—मूर्खों मरते हैं कोई टके को भी नहीं पूछता । फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६७ । टके कोस का दोड़नेवाला = घोड़ी मजदूरी पर अधिक परिश्रम करनेवाला । गरीब नोकर । उ०—टके कोस के दोड़नेवाले, हमको दोड़ने धूपने से काम है । —सेर कु०, भा० १, पृ० ३१ । टके गज की चाल = मोटी चाल । किराया से निर्वाह । टके गिनना = हुक्के का गुड़ गुड़ बोलना ।

३. धन । द्रव्य । रुपया पेसा । जैसे,—जब टका पास में रहेगा, तब सब सुनेंगे । ४ तीन तोले की तोल । दो बालाशाही पेसे भर की तोल । भापी छंटाक का मान । (वैद्यक) ।

मुहा०—टका भर = (१) तीन तोले का परिमाण । (२) बोझा सा । जरा सा ।

५. गढ़वाल की एक तोल जो सवा सेर के बराबर होती है ।

टकाई^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'टकाही', 'टकहाई' ।

टकाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकासी' ।

टकावल^७—वि० [हि० टका (= सिक्का) उल (= वाला) (प्रत्य०)] टकावाला । टके का । उ०—भाँणिसुं कोड़ि टकावल हार । —बो० रासो, पृ० ३६ ।

टकाटकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकटकी' ।

टकातोप—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है । —(सश०) ।

टकाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टंकाना' ।

टकानी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टंकना] बेलगाड़ी का लूमा ।

टकासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टका] १. टके रुपए का व्याज । दो पेसे रुपए का सूद । २ वह कर या चंदा जो प्रति मनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय ।

टकाही^१—वि० [हि० टका + ही (प्रत्य०)] दे० 'टकहाई' ।

टकाही^२—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'टकासी' ।

टकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टक] दे० 'टकटकी' ।

टकी^२—वि० [हि० टकना] टंकी हुई ।

टकुआ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तकुंक, प्रा०, तक्कुम] १. एक प्रकार का सूत्र जो चरखे में लगा रहता है । तकला । २. बिनीसा निकालने की चरखी में लगा हुआ छोटे का एक पुरजा । ३. छोटे तराजू या कटि के पल्लों में बंधा हुआ तागा ।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक ऐसा पेड़ जिसकी पत्तियाँ झर जाया करती हैं। चपोट सिरीस।

टकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० टकु] १. पत्थर काटने का औजार। २. पेचकड़ की तरह लोहे का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

टकुवा (७)—संज्ञा पुं० [सं० तकुं, प्रा० तकुम] दे० 'टकुवा'। उ०—टिकुली सेदुर टकुवा चरखा दासी ने फरमाया।—कबीर०, म०, भा० ४, पृ० २५।

टकुचना—क्रि० सं० [हि० टोकना] खाना।—(दलाल)।

टकैट—वि० [हि०] दे० 'टकैत'।

टकैत—वि० [हि० टका + ऐत (प्रत्यय)] १. टकेवाला। खपए पैसवाला। धनी। २. कम हैसियत या थोड़ी पूँजीवाला।

टकैया—वि० [हि० टका + ह्या (प्रत्यय)] १. टके का। टके-वाला २. तुच्छ। साधारण।

टकोर—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्कार] १. हलकों चोट। प्रहार। घाघात। ठेस। यपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

२. ठके की चोट। नगाड़े पर का घाघात। ३. ठके का शब्द। नगाड़े की घाघात। ४. धनुष की डोरी खींचने का शब्द। टकार। ५. दवा भरी हुई गरम पोटली को किसी मग पर रखकर छुलाने की क्रिया। सेंक। ६. दाँतों की बह टोस जो किसी वस्तु के खाने से होती है। दाँतों के गुठले होने का भाव। धमक।

क्रि० प्र०—लगना।

७. झाल। परपराहट। उ०—कवहूँ कोर खात मिरचन की लगी दसन टकोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना—क्रि० सं० [हि० टकोर से नामिक धातु] १. ठोकर लगाना। हलका घाघात पहुँचाना। ठेस या थपड़ मारना। २. ठके घाघात पर चोटे लगाना। धजाना। ३. दवा भरी हुई किसी गरम पोटली को किसी मग पर रख रखकर छुलाना। सेंकना। सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं० [सं० टक्कार] ठके की चोट। नोखत की घाघात।

टकीना—संज्ञा पुं० [हि० टका + मोना (प्रत्यय)] दे० 'टका'।

टकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टकु] १. सोना आदि तोलने का छोटा तराजू। छोटा कंटा। २. दे० 'टकासी'।

टक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. कजूस व्यक्ति। कृपण। २. वादीक जातीय व्यक्ति [क्रि०]।

टक्कदेश—संज्ञा पुं० [सं०] खूनाब और ह्यास के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—राजतरंगिणी में टक्क देश को गुजंर (गुजरात) राज्य के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय में प्रत्यत प्रताप-शालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। खीनी

यात्री हुएनसांग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों में प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे। यशोधर्मन द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी) के ७० वर्ष पीछे हर्षवर्धन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके राजत्वकाल में हुएनसांग मारा गया। टक्क धायद हूण जाति की ही कोई शाखा रही हो।

टक्कदेशीय—वि० [सं०] टक्कदेश का। टक्क देश में उत्पन्न।

टक्कदेशीय—संज्ञा पुं० बयुआ नाम का साग।

टक्कवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टक + बाई] एक प्रकार का बात-रोग जिसमें रोगी का शरीर सुन्न हो जाता है और वह टक बाँधकर ताकता रहता है।

टक्कर—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठक] १. वह घाघात जो दो वस्तुओं के वेग के साथ मिलने या छू जाने से लगता है। दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = १. किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से भिड़ना या छू जाना कि गहरा घाघात पहुँचे। जैसे,—चट्टान से टक्कर खाकर नाव चूर चूर हो गई। २. मारा मारा फिरना। जैसे,—नोकरी छूट जाने से वह इधर उधर टक्करे खाता फिरता है।

२. मुकाबिला। मुठभेड़। भिड़त। लड़ाई। जैसे,—दिन भर में दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुकाबिले का। बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे,—उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। समुख होना। लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले का होना। समान होना। तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर खाता है। टक्कर लड़ना = बराबरी होना। समानता होना। उ०—इस ठास से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लड़े।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। टक्कर लेना = वार सहना। चोट सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना। भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना। अपने से अधिक सामर्थ्यवाले शत्रु से लड़ना।

३. जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा मारने या पटकने का घाघात।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) घाघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर मारना या पटकना। सिर से धक्का लगाना। (२) माथा नारना। हैरान होना। धोर परिश्रम और उद्योग करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल शीघ्र न दिखाई दे। जैसे,—लाख टक्कर मारो सब वह तुम्हारे हाथ नहीं आता। टक्कर, लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मारकर लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे,—दोनों नेट्टे खूब टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ाना = सिर से धक्का मारना।

४. घाटा । हानि । नुकसान । धक्का । जैसे,—(१०) की टक्कर बैठे बैठाए लग गई ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—टक्कर भेजना = (१) हानि उठाना । नुकसान सहना ।
(२) चकट या घापति सहना ।

टक्कर^३—सका पु० [सं०] शिव [को०] ।

टखना—सका पु० [सं० टङ्क (=टीग)] एडी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ । पैर का गट्टा । गुल्फ । पादप्रथि ।

टग^७—संज्ञा स्त्री० [?] 'टकटकी' । उ०—विपि चालुक भत वेह टग कुषह्वाजि जनु बारि ।—पु० रा०, ५।५५ ।

टगटग^७—क्रि० वि० [हि० टकटकाना] टकटकी लगाकर । एकटक । उ०—कबीर टग टग घोषती पल पल गई बिहाइ ।
—कबीर प्र०, पु० ७२ ।

टगटगाना—क्रि० सं० [हि०] ३० 'टकटकाना' ।

टगटगी^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टकटकी' । उ०—पलु एक कपट्ट न होइ छतर टगटगी लागी रहै ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २८ ।

टगटगी^७—क्रि० वि० [हि० टगटगी] स्थिर दृष्टि से । टकटक । उ०—टट्टग चाहि रहे सब लोई । बिष्णो वर तेज प्रदम्भुत सीई ।—पु० रा०, १२।१३६ ।

टगाण—संज्ञा पु० [सं०] मानिक पणों में से एक । यह छह मानाओं का होता है और इसके १३ उपभेद हैं । जैसे,—555, 1155, इत्यादि ।

टगमग^७—क्रि० वि० [हि० टकटकी] एकटक । स्थिर । उ०—
टगमग नयन सु मग मग विमग सु भुल्लिय भंग ।—पु० रा०, २।४५७ ।

टगना^७—क्रि० प्र० [?] टसना । टिगना । उ०—टगे न टेक दृष्टि नहि जाई । टलै कान घोरहि को पाई ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २२२ ।

टगर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. टंकण । सोहागा । २. विलास । क्रीड़ा । ३. तगर का पेड़ । ४. मँड़ (को०) । ५. टोला (को०) ।

टगर^२—वि० विरही निगाह से देखनेवाला । ऐंषाताना [को०] ।

क्रि० प्र०—देखना ।

टगरगोड़ा—संज्ञा पु० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कौड़ियाँ बिखारके जमा कर देते हैं और फिर एक कौड़ी से उन्हें मारते हैं ।

टगर टगर^७—क्रि० वि० [हि०] घाँवें खोले हुए । व्यान खगाकर । बकटकी बाँधकर । उ०—सोभासदन यदन मोहन को देखि को विपे टगर टगर ।—घनानंद, पु० ४८६ ।

टगरा—वि० [सं० टेरक] ऐंषाताना । भेंगा ।

टगाटगी^७—संज्ञा स्त्री० [हि० टकटकी] समाधि की व्यवस्था । उ०—टगाटगी जीवन मरण, ब्रह्म बराबरि होइ ।—दादू, पु० १४४ ।

टघरना—क्रि० प्र० [सं० तप (= गरम करना) + गरण

(=विपलना)] १. धी, चरबी, मोम आदि का घीय भाकर द्रव होना । विपलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. हृदय का द्रवीभूत होना । धित में दगा आदि उत्पन्न होना । हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टघराना—क्रि० प्र० [हि० टघरना] धी, मोम, चरबी आदि को घीय पर रसाकर द्रव करना । विघातना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—जाना ।—सेना ।

टचटच^७—क्रि० वि० [हि० टघटना (= चलना)] धीव धीव । धक धक (घाप की लपट का शब्द) उ०—टच टच तुम शिनु पाणि मोहि नागो । पाँधो दाप विरह मोहि जागी ।—जायसी (शब्द०) ।

टघना—क्रि० प्र० [हि० टघटच] घाव का ज्वनना ।

टघनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] मोड़ का एक घोमार जिससे कबरे बरतनों पर नक्काशी करते हैं ।

टट^७—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'टट' । उ०—भाएउ माणि ममुंद टट वकई न धाई पाय ।—जायसी प्र० (मुक्त), पु० २७० ।

टटका—वि० [सं० तरकाच] [वि० स्त्री० टटकी] १. तस्कात का । गुरत का प्रस्तुत या उपस्थित । जिसकी योजना कर से घाए हुए बहुत देर न हुई हो । हाल का । ताजा । उ०—(क) मेरे क्यों हूँ न निद्रति घात परी टटकी ।—नूर (शब्द०) । (ख) मनिहार गरे मुकुमार घरे गट भेम घरे विप को टटकी ।—रमलान (शब्द०) । २. नया । कोरा ।

टटका—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० टटकी] टट्टी । टटिया । टाटी ।

टटकी—संज्ञा स्त्री० [पञ्जाबी] १. चोपड़ी । २. २० 'ठठरी' । ३. ३० 'टट्टी' ।

टटपूँखी^७—वि० [हि०] १० 'टटपूँखिया' । उ०—कोड़ी छिरे उछालती जो टटपूँगी होइ ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ७६७ ।

टटरा—संज्ञा पु० [हि० टट्टा] [स्त्री० टटरी] बड़ी टटिया या टाटी ।

टटरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'टट्टी' ।

टटलपटला—वि० [प्रतु०] पटपट । घंघ उड़ । उत्पटाग । उ०—
टटमपटल बोल पाटल कपोल देव दीपति पटल में पटल हूँ के पटकी ।—देव (शब्द०) ।

टटाना—क्रि० प्र० [ठाँ] सूत जाना ।

टटांवरी^७—वि० [हि० टाट + मबर] टाट पहुँचनेवाला । जिसका वस्त्र टाट हो । उ०—सुंदर गण टटांवरी बहुरि दिगबर होइ ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ३५ ।

टटावक^७—संज्ञा पु० [?] टावक । टामक । टामन । टोटका । टोना । उ०—नददास सखि मेरी कहा बच काम के घाए टटावक दोने ।—नंद० प्र०, पु० ३४३ ।

टटाल—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'टल' [को०] ।

टटावली—सखा जी० [सं० टिट्टभावली] टिट्टहरी नाम की चिड़िया ।
कुररी ।

टटियाँ—सखा जी० [हि०] दे० 'टट्टी' उ०—देखत कछु कीतिगु
इतै देखी नैक निहारि । कब की इकटक डटि रहौ टटिया
मंगुरिनु फारि ।—बिहारी २०, दो० १३४ ।

टटियाना—क्रि० प्र० [हि० ठाँठ] सुख जाना । सुखकर प्रकट
जाना ।

टटोषा—सखा पुं० [अनु०] धिरनी । चक्कर । उ०—लैचूँ तो भावे
नहीं जो छोड़ तो जाय । कबीर मन पूछ रे प्राण टटोबा खाय ।
—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खाना ।

टटोरी—सखा जी० [हि०] दे० 'टिट्टहरी' । उ०—चोरती, ज्यों
वेदना का तीर, लंबी टटोरी की प्राह ।—हृदयमं पु० २१६ ।

टटुआ—सखा पुं० [हि०] दे० 'टट्टू' । उ०—ताके प्रागे भाइके
टटुआ फेरें बाल ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ७१७ ।

टटुई—सखा जी० [हि० टट्टू] मादा टट्टू ।

टटुवा—सखा पुं० [हि० टट्टू] दे० 'टट्टू' । उ०—काहे का
टटुवा काहे क पाखर काहे क मरी गोनियाँ ।—कबीर श०,
भा० १, पु० २२ ।

टटोना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टटोलना' ।

टटोरना—क्रि० सं० [हि० टटोलना] दे० 'टटोलना' । उ०—
कबहुँ कमला सरला पाइ के टेढ़े टेढ़े जात । कबहुँक मग पग
धूरि टटोरत भोजन की विलखात ।—सुर (शब्द०) ।

टटोल—सखा जी० [हि० टटोलना] टटोलने का भाव । उँगलियों
से छू या दबाकर मालूम करने का भाव या क्रिया । गूढ़ स्पर्श ।

टटोलना—क्रि० सं० [सं० स्पर्श + तोलना (= मालूम करना)] १
मालूम करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना । किसी
वस्तु के तल की प्रवस्था प्रत्यक्ष उसकी कड़ाई आदि जानने
के लिये उसपर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना । गूढ़ संस्पर्श
करना । जैसे,—ये धाम पके हैं, टटोलकर देखो ।

संयो० क्रि०—लेना ।—डाखना ।

२. किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना । हूँठने
या पटा लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना । जैसे,—
(क) मँधेरे मे क्या टटोलते हो ! रुपया गिरा होगा तो सबेरे
मिल जायगा । (ख) वह प्रधा टटोलता हुआ अपने घर तक
पहुँच जायगा । (ग) घर के कोने टटोल बाले कहीं पुस्तक का
पता न लगा ।

संयो० क्रि०—डाखना ।

३. किसी से कुछ बातचीत करके उसके विचार या भाषण का इस
प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो । बातों में किसी के
हृदय के भाव का प्रभाव लेना । पाह लेना । यद्वा । जैसे,—
तुम भी उसे टटोलो कि वह कहीं तक देने के लिये तैयार है ।

मुहा०—मन टटोलना = हृदय के भाव का पता लगाना ।

४-२७

४ जाँच या परीक्षा करना । परखना । जाजमाना । जैसे,—
(क) हम उसे खूब टटोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या
गहीं है । (ख) मैंने तो सिर्फ तुम्हें टटोलने के लिये रुपए
मांगे थे, रुपए मेरे पास हैं ।

टटोलना(उ०)—क्रि० सं० [हि० टोलना] दे० 'टटोलना' ।

टटुआ—सखा पुं० [हि०] दे० 'टट्टू' ।

टट्टनी—सखा जी० [सं०] छिपकली ।

टट्टर—सखा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्यात (= जो खड़ा
हो)] बाँस की फट्टियों, सरकड़ों आदि को परस्पर जोड़कर
बनाया हुआ ढाँचा । जैसे,—(क) कुत्ता टट्टर खोलकर भोपड़े
में घुस गया । (ख) टट्टर खोलो निखट्टू भाए । (कहावत) ।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना ।

टट्टरी—सखा जी० [सं०] १. ढोल का शब्द । नगाड़े आदि का शब्द ।
२. खंवी चौड़ी बात । ३. धुलबाजी । ठट्टा । ४. झूठ (की०) ।

टट्टा—सखा पुं० [सं० तट (= ऊँचा किनारा) या सं० स्यात (= जो
खड़ा हो)] [जी० टट्टी] १. बाँस की फट्टियों का परदा
या पल्ला । टट्टर । बड़ी टट्टी । २. लकड़ी का पल्ला । बिना
पुस्तवान का तस्ता । ३. मंडकोश ।—(पंजाबी) ।

टट्टी—सखा जी० [सं० तटो (= ऊँचा किनारा) या सं० स्याती
(= जो खड़ी हो)] १. बाँस की फट्टियों, सरकड़ों आदि को
परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो भाड़, रोक या रक्षा
के लिये दरवाजे, बरामदे प्रत्यक्ष और किसी खुले स्थान
में लगाया जाता है । बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला
जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे । जैसे, खस
की टट्टी ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टट्टी की झाड़ (या-घोट) से शिकार खेलना=(१)
किसी के विषय छिपकर कोई बात चलना । किसी के विरुद्ध
गुप्त रूप से कोई कार्रवाई करना । (२) छिपाकर बुरा काम
करना । लोगों की दृष्टि बचाकर कोई अनुचित कार्य करना ।
टट्टी का घोषा=पतले दम का घोषा । टट्टी में छेद करना=
किसी की बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना ।
प्रकट रूप से कुकर्म करना । खुल खेलना । निर्जञ्ज हो जाना ।
लोकलज्जा छोड़ देना । टट्टी लगाना=(१) भाड़ करना ।
परदा खड़ा करना । (२) किसी के सामने पीड़ लगाना ।
किसी के प्रागे इस प्रकार पक्ति में खड़ा होना कि उसका
सामना एक जाय । जैसे,—यहाँ क्या टट्टी लगा रखी है, क्या
कोई तमाशा हो रहा है । घोड़े की टट्टी=(१) वह टट्टी
जिसकी झाड़ में शिकारी, शिकार पर बार करते हैं । (२)
ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का
पता न चले । ऐसी वस्तु प्रत्यक्ष जिसके कारण लोग धोखा
खाकर हानि उठावें । जैसे,—उसकी दुकान वगैरह सब धोखे
की टट्टी है; चले घूमकर भी रुपया न देना । (३) ऐसी वस्तु
जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े, पर काम देनेवाली न

हो । चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु । काज़ू भोज़ चीज़ ।
२. चिक । चिलमन । ३. पतली दीवार जो परदे के लिये खड़ी
की जाती है । ४. पाखाना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

५. पुनवारी का तस्ता जो बरातों में निकसता है । ६. बाँस
की फट्टियों आदि की बनी हुई वह दीवार और छाजन जिस-
पर झरूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं ।

टट्टी संप्रदाय—सञ्ज्ञा पु० [हि० टट्टी + संप्रदाय] एक धार्मिक वैष्णव
संप्रदाय जिसके संस्थापक स्वामी हरिदास जी हैं ।

टट्टर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] भेरी का शब्द ।

टट्ट—सञ्ज्ञा पु० [अनु०] [वि० टट्टानी, टट्टई] १. छोटे कद का
घोड़ा । टाँगन ।

मुहा०—टट्ट पार होना = बेडा पार होना । काम निकस जाना ।
प्रयोजन बिगड़ हो जाना । भाड़े का टट्ट = रुपया लेकर दूसरे
की ओर से कोई काम करनेवाला । २. खियौत्रिय ।—(बाजारू)

मुहा०—टट्ट भडकना = कामोद्दीपन होना ।

टठिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाठी' ।

टठिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भाँग ।

टढ़िया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताड़] बाँह में पहनने का एक गहना जो
भ्रत के माकार का पर उससे मोटा और बिना धुँडी का
होता है । टाँक ।

टण—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'टना' ।

टन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द । किसी घातु खंड
पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि । टनकार । भनकार ।
जैसे,—टन से घंटा बोला ।

विशेष—'खटपट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग
भी अधिकतर 'से' बिभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है ।
घट इसका लिंग उत्तमा निश्चित नहीं है ।

मुहा०—टन हो जाना = चटपट मर जाना ।

टन^२—सञ्ज्ञा पु० [प०] एक अंग्रेजी तौल जो अठ्ठाईस मन के
समम होती है ।

टनकना—क्रि० प्र० [अनु० टन] १. टनटन बजना । २. धूप या
गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना । रघु रङ्गकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा देना । जैसे, माथा टनकना ।

टनकार^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टन] दे० 'टंकार' । उ०—कड़ी
कमान जब ऐंठि के छेँचिया, तीन बेर टनकार सहज टका ।—
कबीर श०, भा० ४, पृ० १३ ।

टनटन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टनटनाना^१—क्रि० प्र० [हि० टनटन से नामिक घातु] घंटा
बजाना । किसी घातु खंड पर आघात करके उसमें से 'टनटन'
शब्द निकालना ।

टनटनाना^२—क्रि० प्र० टनटन बजना ।

टनमन^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० तन्मन् मन्त्र] तन्मन् । टोना । जादू ।

टनमन^२—वि० [हि० टनमना] दे० 'टनमना' ।

टनमना—वि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो । जिसकी चेष्टा मंद
न हो । जिसकी सबीयत हरी हो । जो शिथिल न हो । स्वस्थ ।
चंगा । 'अनमना' का उलटा ।

टनमनाना—क्रि० प्र० [हि० टनमना + ना (प्रत्य०)] १. सबीयत
हरी होना । स्वस्थ होना । २. कुलबुलाना । टलमनाना ।

टना—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुण्ड] [स्त्री० मल्पा० टनी] १. स्त्रियों की
योनि में 'निकला हुआ वह मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों
के बीच में होता है । २. योनि । भग ।

टनाका^१—सञ्ज्ञा पु० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द ।

टनाका^२—वि० बहुत कड़ी (धूप) । माथा टनकानेवाली (धूप) ।

टनाटन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] घमातार घंटा बजने का शब्द ।

टनाटन^२—क्रि० वि० १. भला । चंगा । २. अच्छी हालत में ।
बढ़िया ।

क्रि० प्र०—होना ।

टनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टना' ।

टनेख—सञ्ज्ञा पु० [पं०] सुरंग खोदकर बनाया हुआ मार्ग । ऐसा रास्ता
जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के बीच होकर गया हो ।

टन्नाका^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० टनाका] दे० 'टनाका' ।

टन्नाका^२—वि० दे० 'टनाका' ।

टन्नाका^३—क्रि० प्र० [हि० टनटन] टनटन की आवाज करना । टनटन
की ध्वनि उत्पन्न होना ।

टन्नाका^४—क्रि० प्र० [हि०] बिगड़ना । नाराज होना । बहकना
करना ।

टप^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टोप, तोप (= आच्छादन, ढेरे, घंटाटोप)]
१. जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की ओर लुझी
गाड़ियों का झोहरा या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या
गिराया जा सकता है । कसंदरा । २. जटकावेवाले सप के
ऊपर की छतरी ।

टप^२—सञ्ज्ञा पु० [अनु० टव] नाथ के आकार का पानी रखने का
खुला बरतन । टाँका ।

टप^३—सञ्ज्ञा पु० [अनु० टपूष] जहाजों की गति का पता लगाने का
एक औजार ।—(सं०) ।

टप^४—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठप्पा] एक औजार जिससे छिबरी का पंच
धुमावदार बनाया जाता है ।

टप^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद टपकने का शब्द । सं०—
(क) परत अत्र बूँद टप टपकि धानन बाल भई बेहाल
रति मोह भारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) व्यारी पितु
कठन न कारो रैन । टप टप टपकत दुख भरे नैन ।—हरिश्चंद्र
(शब्द०) ।

यौ०—टप टप ।

२. किसी वस्तु के एकबारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द ।
जैसे—आम टप से टपक पड़ा ।

यौ०—टप टप ।

टप^१—सखा पुं० [अ० टोप] कानों में पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण ।

टप^२—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र । तुरत । उ०—कैसे कहे कछु थोड़े सवाब मिलें बड़ी बेर में पाहि मिली टप ।—घनाचद, पु० १५१ ।

मुहा०—टप से = चट से । झट से बड़ी जल्दी । जैसे,—(क) बिल्ली ने टप से चूहे को पकड़ लिया । (ख) टप से घामो ।

विशेष—छट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि०वत् ही होता है । मत इसका लिए उतना निश्चित नहीं है ।

टपक—सखा स्त्री० [हि० टपकना] १ टपकने का भाव । २ बूँद बूँद गिरने का शब्द । ३. एक एककर होनेवाला दंद । ठहर ठहरकर होनेवाली पीडा । जैसे, फोड़े की टपक ।

टपकन—सखा स्त्री० [हि० टपकना] १ टपकने की क्रिया या भाव । २ लगातार बूँद बूँद गिरने की स्थिति । ३. एक एककर पीडा होना । टोसना । टकसना ।

टपकना—क्रि० प्र० [अनु० टपटप] १ बूँद बूँद गिरना । किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना । चूना । रसना । जैसे, बड़े से पानी टपकना, छत टपकना । उ०—टप टप टपकत दुख भरि नैन ।—हरिश्चंद (शब्द०) ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है, दोनों के लिये होता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. फल का पककर घाघसे घाघ पेठ से गिरना । जैसे, घाम टपकना । महुआ टपकना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

३. किसी वस्तु का ऊपर से एकबारगी सीध में गिरना । ऊपर से सहसा पतित होना । टूट पड़ना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—टपक पड़ना = एकबारगी या पहुंचना । घरस्मात् आकर उपस्थित होना । जैसे,—हैं 'तुम बीच में कहीं से टपक पड़े । घा टपकना = दे० 'टपक पड़ना' ।

४ किसी बात का बहुत अधिक आभास पाया जाना । अधिकता से कोई भाव प्रगट होना । लक्षण, शब्द, चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यक्त होना । जाहिर होना । झलकना । जैसे,—(क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी । (ख) मुहल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है । (ग) उसकी बातों से बदमाशी टपकती है ।

संयो० क्रि०—पड़ना । जैसे,—उसके भग्न भग्न से यौवन टपका पड़ता था ।

५ (चित्त का) तुरत प्रवृत्त होना । (हृदय का) झट झटकावित होना । डल पड़ना । फिसलना । लुभा जाना । मोहित हो जाना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

६. स्त्री का समीप की ओर प्रवृत्त होना । डल पड़ना ।—(बाजारू) ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. घाव, फोड़े आदि का मवाद घाने के कारण रह रहकर दंद करना । धिलकना । टोस मारना । टोसना । ८ फोड़े का पककर बहना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

९. लड़ाई में घायल होकर गिरना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

टपकवाना—क्रि० स० [हि० टपकाना] किसी को टपकाने के कार्य में प्रवृत्त करना । टपकाने के लिये प्रेरित करना ।

टपका—सखा पुं० [हि० टपकना] १ बूँद बूँद गिरने का भाव ।

यौ०—टपका टपकी ।

२ वह जो बूँद बूँद करके गिरा हो । टपकी हुई वस्तु । रसाव ।

३ पककर घाघसे घाघ गिरा हुआ फल । ४. रह रहकर उठने-वाला दंद । टोस । ५ चौपायों के खुर का एक रोग । खुरपका । † ६ डाल में पका हुआ घाम ।

टपका टपकी^१—सखा स्त्री० [हि० टपकाना] १. बूँदाबूँदो । (मेह की) हनकी झड़ी । फुहार । फुही । २ फलों का लगातार एक एक करके गिरना । ३. किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टूटना । ४. एक के पीछे दूसरे आदमी की मृत्यु । एक एक करके बहुत से आदमियों की मृत्यु (जैसे हैजे आदि में होती है) ।

क्रि० प्र०—सगना ।

टपका टपकी^२—वि० इसका दुक्की । झूला मटका । एक माध । बहुत कम । कोई कोई ।

टपकाना—क्रि० स० [हि० टपकाना] १. बूँद बूँद गिराना । चुपाना । २. झरक उतारना । भक्के से झरक खींचना । चुपाना । जैसे, शराब टपकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

टपकाव—सखा पुं० [हि० टपकाना] टपकाने का भाव ।

टपना^१—क्रि० प्र० [हि० टपना] १ बिना कुछ खाए पीए पड़ा रहना । बिना दाना पानी के समय काटना । जैसे,—सबरे से पड़े टप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछना । २ बिना किसी कार्यसिद्धि के बैठा रहना । व्यर्थ आसरे में बैठा रहना ।—(दलाल) ।

विशेष—दे० 'टापना' ।

टपना^२—क्रि० प्र० [हि० टापना] १ कूदना । उछलना । उचकना । फाँटना । २. जोड़ा खाना । प्रसंग करना ।

टपना^३—क्रि० प्र० [हि० तोपना] डाँकना । प्राच्छदित करना ।

टपनामा—सखा पुं० [हि० टिप्पन] जहाज पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्रयात्रा के समय तूफान, गमी आदि का लेखा रहता है ।—(सश०) ।

टपमाल—सखा पुं० [प्र० टपमाल] एक बड़ा भारी लोहे का घन जो जहाजों पर काम आता है ।

टपरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोपना] [श्री० टपरी, टपरिया] १ छप्पर। छाजन। २ झोपडा।

टपरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टप्पा] छोटे छोटे खेतों का विभाग।

टपरिया^३—सञ्ज्ञा श्री० [हि० टपरा] झोपड़ी। मईया। घास-फूस का मकान।

टपाक^४—वि० [हि० टप] टप से। शीघ्र। उ०—ऐसे तोहि काल माइ लेइगो टपाकि दे।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ४१२।

टपाटप—क्रि० वि० [अनु० टपटप] १. लगातार टपटप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूँद बूँद करके (गिरना)। जैसे,—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा। २ भट पट। जल्दी जल्दी। एक एक करके शीघ्रता से। जैसे,—बिल्ली चूहों को टपाटप ले रही है।

टपाना^५—क्रि० सं० [हि० तपाना] १. बिना दाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पडा रहने देना। २ व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

टपाना^६—क्रि० सं० [हि० टाप] कुदाना। फेंदना।

टप्परा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोपना] १ छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० 'टाट उलटना'।

२. दे० 'टापर'।

टप्पा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हि० थाप, टाप] १ किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श। उछल उछलकर जाती हुई वस्तु का बीच में टिकान। जैसे,—गेंद कई टप्पे खाती हुई गई है।

मुहा०—टप्पा छाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिरकर जमीन से छू जाना और फिर उछलकर आगे बढ़ना।

२ उतनी दूरी जितनी दूरी पर पर कोई फेंकी हुई वस्तु जाकर पड़े। किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। ३ उछाल। कूद। फाँद। फलाँग।

मुहा०—टप्पा देना = लंबे लंबे डग बढ़ाना। कूदना।

४ नियत दूरी। मुकरंर फासला। ५ दो स्थानों के बीच पड़ने-वाला मैदान। जैसे,—इन दोनों गाँवों के बीच में बालू का बड़ा भारी टप्पा पड़ता है। ६ छोटा भूविभाग जमीन का छोटा हिस्सा। परगने का हिस्सा। ७ अंतर। बीच। फाँद। उ०—पीपर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया आय। कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टप्पा देना = अंतर ढालना। फाँद ढालना।

८ दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीवन (स्त्रि०)।

मुहा०—टप्पे ढालना, भरना, मारना = दूर दूर बखिया करना। मोटी और भद्दी सिलाई करना। लंगर ढालना।

९ पालकी से जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं। पालकीवालों की चौकी या डाक। † १० ढाकखाना। पोस्ट आफिस। ११ पाल के जोर से चलनेवाला वेड़ा। १२. एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है।

† १३ एक प्रकार का ठेका जो तिलवाडा तान पर बजाया जाता है। १४. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पानी रखने के लिये नाँद के आकार का खुला बरतन।

टब^२—सञ्ज्ञा पुं० [म०] जलाने का एक प्रकार का लव जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान पर लटकाया जाता है।

टवलना^३—सञ्ज्ञा पुं० [?] चत्ताचली की स्थिति। भूहाप्रयाण की स्थिति होना। उ०—खजर जुदाई धवला, अब तो इधर भी टवला। ब्रज० प्र०, पृ० ४३।

टबूकना^४—क्रि० म० [हि० टपकना] टपकना। टप टप करके गिरना। उ०—हियझुठ बादल छाईयउ, नयण टबूकई मेहु।—ढोला०, दू० ३६०।

टब्बरा^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटंब] कुटुंब। परिवार। (पंजाब)।

टमकना^६—क्रि० म० [हि० टमकना] वजना। शब्द करना। उ०—टमकत तवल टामक विहद। टमकंत टाम विनु भुव गरद।—सुजान०, पृ० ३६।

टमकी—सञ्ज्ञा श्री० [सं० टङ्कार] छोटा नगाड़ा जिसे बजकर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डुगडुगिया।

टमटम—सञ्ज्ञा श्री० [म० टेंकम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हँकता है।

टमटी—सञ्ज्ञा श्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ०—गध्या भर आधार भतं के बहुत खिलौना। परिया टमटी अतरदान रूपे कै सोना।—सूदन (शब्द०)।

टमस—सञ्ज्ञा श्री० [म० तमसा] टोस नदी। तमसा।

टमाटर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० टमैटो] एक प्रकार का फल जो गोलाई लिए हुए चिपटा तथा स्वाद में खट्टा होता है। विलायती मटा।

विशेष—यह कच्चा रहने पर हरा और पचने पर लाल हो जाता है तथा सरकारी, चटनी, जेली आदि के काम आता है।

टमुकी—सञ्ज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टमकी'।

टर—सञ्ज्ञा श्री० [अनु०] १ कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्णकटु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टरटर करना = (१) ठिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाद में बार बार कुछ कहते जाना। जवानदराजी करना। जैसे,—टर टर करता जायगा, न मानेगा। (२) एकवाद करना। टर टर लगाना = व्यर्थ एकवाद करना। झूठमूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

२ मेढ़क की बोली।

यौ०—टर टर।

३ धमंड से भरी बात। भविनीत वचन और चेष्टा। ऐंठ।

मकड़। जैसे—शेखों की शेखी, पठानों की टर। ४ हठ।
जिद। घड़। ५. तुच्छ बात। पोख बात। बेमेल बात।
६. ईद के बाद का मेला (मुसलमान)। उ०—ईद पीछे
टर, बरात पीछे पोखा।

टरकना—क्रि० प्र० [हि० टरना] १ चला जाना। हट जाना।
खिसका जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना=धीरे से चला जाना। चुपचाप हट जाना।
जैसे,—जब काम का वक्त आता है तो वह वही टरक देता
है। ① (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना।
उ०—टरं टरं टरकन लगे बसहु दिसा मंदूक।—गोपाल
(शब्द०)।

टरकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [टरना] ईस या गले की दूसरी बार को
सिचाई।

टरकाना—क्रि० स० [हि० टरकना] १ एक स्थान से दूसरे स्थान
पर कर देना। हटाना। खिसकाना। जैसे,—(क) देखते रहो,
ये चीजें इधर उधर टरकाने न पावें। (ख) जब कोई हड़ने
माये तब इस लड़के को कहीं टरका दो। २ किसी काम के
लिये आए हुए मनुष्य को बिना समझा काम पूरा किए कोई
बहाना करके सोटा देना। टाल देना। चलता करना। घटा
बताना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगने आते हैं तो
तुम यों ही टरका देते हो।

टरकी—सञ्ज्ञा पुं० [तुरकी] १ एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच
के नीचे गले में लान भालर रहती है और जिसके काले परों
पर छोटी छोटी सफेद बिंदियाँ होती हैं।

विशेष—इसका मांस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। इसे पेरु
भी कहते हैं।

२. एक देश (तुरकी)।

टरकुल—वि० [हि० टरकाना] १ बहुत साधारण। बिल्कुल
नामूलो। घटिया। खराब।

टरगी—सञ्ज्ञा पुं० [टरना] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में
आती है। इसे भैंस बड़े चाव से खाती हैं।

विशेष—यह सुखाकर बारह तेरह बरस तक रखी जा सकती
है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है।
हिन्दुस्तान में यह घास हिसार, मांटगोमरी (पंजाब) आदि
स्थानों में होती है, पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं
होती। इसे पलका या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हि० टर] १ बक बक करना। २
ठिठाई से बोलना। टर टर करना।

टरना—क्रि० स० [हि० टलना] १ 'टलना'। उ०—(क)
चूण से कुलिस कुलिस चूण करई। तामु दूत पग कहु किमि
टरई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अस विचारि नोबहि मति
माता। सो न टरई जो रचइ विधाता।—तुलसी (शब्द०)।

टरना—सञ्ज्ञा पुं० [टलना] तेली के कोल्हू में ठँका और कठरी से
बँधी हुई रस्सी।

टरनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टरना] टरने का भाव।

टरं टरं—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टरना] १. मेंढक की आवाज। २.
बेमेल बात की बात। बकबाज। उ०—सत्य बहु, सत्य, वहाँ
नहीं टरं टरं, नहीं वहाँ भेक, वहाँ नहीं टरं टरं।—प्रनामिका,
पृ० ११।

टरा—वि० [अनु० टर टर] १. टरनेवाला। ऐंठकर बात करने-
वाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला।
घमड़ के साथ बिड़ बिड़कर बोलनेवाला। सीधे न बोलने-
वाला। २. घृष्ट। कटुवादी।

टराना—क्रि० प्र० [अनु० टर] ऐंठकर बातें करना। अविनीत और
कठोर स्वर से उत्तर देना घमड़ के साथ बिड़ बिड़कर बोलना।
सीधे से न बोलना। घमड़ लिए हुए कटु वचन कहना।

टरापन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टर] बातचीत में अविनीत भाव।
कटुवादिता।

टरु—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टर टर] १ टर्रा बादमी। २. मेंढक। ३.
बमड़े की झिल्ली मढ़ा हुआ एक खिलौना जो बोंड़े की पूँछ
के बाल से एक लकड़ी में बँधा होता है। इसे घुमाने से टरं
की आवाज निकलती है। मेंढक। भौरा। कौवा।

टल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी [को०]।

टलटल—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ। उ०—तेरे
गीतों को वह जिसमें गाती है टल टल छल छल।—वीणा,
पृ० २८।

टलना—क्रि० प्र० [सं० टल (=विचलित होना)] १. अपने स्थान
से मलग होना। हटना। खिसकना। सरकना। जैसे,—वह
पत्थर तुमसे नहीं टलेगा।

मुहा०—अपनी बात से टलना=प्रतिज्ञा पूरी न करना।
मुकरना।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अनुपस्थित होना।
किसी स्थान पर न रहना। जैसे,—(क) काम के समय तुम
सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो,
तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दूर होना। मिटना। न रह जाना। जैसे,—आपत्ति टलना,
सकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

४ (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का
समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकरंर वक्त के
और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये
होता है। जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की
सायत टलना, दिन टलना, सप्त टलना, विवाह टलना,
इम्तहान टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

५ (किसी बात का) अन्यथा होना । घोर का और होना । ठीक न ठहरना । खिंचित होना । जैसे,—हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती । ६. (किसी भाव या अनुरोध का) न माना जाना । उल्लिखित होना । पुरा न किया जाना । जैसे,—बादशाह का हुक्म कहीं टल सकता है । ७. समय व्यतीत होना । बीतना ।

टलमल^१—कि० [हि० टलमलाना] हिलता हुआ । कपित । उ०—छोटे युग दल राजस पव तस पृथ्वी टलमल ।—अपरा, पृ० ३८ ।

टलमल^२—कि० वि० [अनु०] कलकल पदनि के साथ ।

टलमलाना—कि० प्र० [अनु०] हिलना झुलना । टलमल होना ।

टलहा—वि० [देश०] [वि० स्त्री० टलही] छोटा । खराब । दूषित । जैसे, टलहा रुपया, टलही चाँदी ।

टलाटली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'टालटल' । उ०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाई । कै कै सबे टलाटली, मली चली सुधु पाई ।—विहारी २०, दो० २४ ।

टल्ला^१—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] धक्का । भाषात । ठोकर । उ०—तो बस उस एक टल्ले से ही हो जाए जीवन कल्याण ।—अपलक, पृ० २६ ।

मुहा०—टल्ले मारना=ठोकर खाते फिरना । मारा मारा फिरना । इधर से उधर निष्फल घूमना ।

टल्ली—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का लौस । २० 'टोली' । ३० २ आधार । ३०—चद सूर्य दुइ टल्ली लावै । इहि विधि लिखा लिखनि न पाये ।—प्राण०, पृ० ८ ।

टल्लेनवीसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टल्ला + फा० नवीसी] २० 'टल्लेनवीसी' ।

टल्लो^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० पल्लव ?] १ हरी टहनी । २ पल्लव ।

टवर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह ।

टवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घटन (= घूमना)] भावारगी । व्यर्थ घूमना । उ०—फेर रह्यो पुर करत टवाई । मान्यो नहि जो जननि सिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

टस—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] १ किसी भारी चीज के खिसकने का शब्द । टसकने का शब्द ।

मुहा०—टस से मस न होना=(१) किसी भारी चीज का जरा सी भी जगह न छोड़ना । कुछ भी न खिसकना । (२) किसी कड़ी वस्तु का (पकाने या बनाने आदि से) जरा सी भी न गलना ।

३ कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना । किसी के मनुष्य कुछ भी प्रवृत्त न होना । ४ कपड़े आदि के फटने का शब्द । मसकने का शब्द ।

टसक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टसकना] रह रहकर चटनेवाली पीड़ा । टसक । टीस । घसक ।

टसकना—कि० प्र० [सं० टस (=केलना) + करण] १. किसी भारी चीज का जगह से हटना । जगह से हिलना । खिसकना । जैसे,—यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता । २. रह रहकर दर्द करना । टीस मारना । घसकना । ३.

प्रभावित होना । हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना । किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना । किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना । जैसे,—उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा ज़ोर हृदय है कि जरा भी न टसका । ४. पककर गदराया । गुदर होना । ५. रोना घोना । घाँस बहाना । ६. घसकना । खलना । जाना । उ०—किसी को भी आपके टसकने का पूर्ण विश्वास न था ।—प्रेमवत०, भा० २, पृ० १३६ ।

टसकाना—कि० सं० [हि० टसकना का प्रे० रूप] किसी भारी चीज को जगह से हटाना । खिसकाना । सरकाना ।

टसना^१—कि० प्र० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना । मसक जाना । दरकना ।

संयो० कि०—जान ।

टसर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नगर] १ एक प्रकार का कड़ा घोर मोटा रेशम जो बमाल के जंगलों में होता है ।

विशेष—छोटा चागपुर, मयूरनज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में खालू बहेड़ा, गियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पनपते हैं । रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक ध्यान नहीं करना पड़ता । पालनेवालों को जंगल में जाप से भार होनेवाले कीड़ों को केवल चींटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है । पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं जहाँ अपने जोड़े ढूँढ़कर वे अपनी वृद्धि करते हैं । मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर दिपटे बिपटे भड़े देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं । एक बीछा तीन चार दिन के भीतर दो ढाई सौ तक भड़े देता है । भड़े देकर ये कीड़े मर जाते हैं । दस बारह दिनों में इन भड़ों से पुँदी या ढोख के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं । घोर पत्तियाँ खाट खाटकर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं । इस बीचों में ये तीन चार बार फलेवर या खोली बदलते हैं । अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बड़ाई को पहुँच जाते हैं । उस समय इनका आकार ८, १० अंगुल तक होता है । ये घटमैले, भूरे, नीले, पीले कई रंगों के होते हैं । पूरी बड़ाई को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने गुँद से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सुखकर सूत के रूप में हो जाती है । सूत निकालते हुए घूम घूमकर ये अपने धिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं । ये कोश घड़ाकार होते हैं । बड़ा कोश १२ अंगुल तक लंबा होता है । कोश के भीतर तीन चार किन्ती तक सूत बिखालकर ये कीड़े मुरवे की तरह घुप-चाप पड़े जाते हैं । पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें भय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतरकर निकल जायेंगे, घबड़ाने के पहले ही इन कोशों को ज़ार के साथ गरम पानी में उबालकर वे कीड़ों को मार डालते हैं । जिन कोशों को उबालना नहीं पड़ता, उनका टसर सबसे अच्छा होता है ।

जो कोश पकने के पहले ही नवाले जाते हैं, उनका सूत कच्चा भीर निकम्मा होता है।

२ टसर का बुना हुआ कपड़ा।

टसुआ—सबा पुं० [सं० मथु, हिं० मीसू, मंसुआ] मीसू। मथु। (परिषद्)

क्रि० प्र०—बहाना।

मुहा०—टसुए बहाना = झूठमूठ मीसू गिराना।

टसुआ—सबा पुं० [सं० मथु, हिं० मीसू, मंसुआ] दे० 'टसुआ'

मुहा०—टसुए बहाना = दे० 'टसुए बहाना'। उ०—बड़ी बेगम, अब टसुए पीछे बहाना। पहले हमारी बात का जवाब दो।
—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५।

टहका—सबा स्त्री० [हिं० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा। रङ्ग रङ्गकर उठनेवाली पीड़ा। चक्कर।

टहकना—क्रि० प्र० [हिं० टसकना] १ रङ्ग रङ्गकर दर्द करना। चक्करना। टोस मारना। २. (धी, मोम, चरबी आदि का) भाँच खाकर सरल होना या बहना। पिघलना।

टहकाना—क्रि० प्र० [हिं० टहकना] भाँच से पिघलाना।

टहटह—क्रि० वि० [दे०] स्पष्टतापूर्वक। उ०—टहटह मु बुलिय मोर।—प० सो०, पृ० ८१।

मुहा०—टहटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी। श्वेत चाँदनी।

टहटहा—वि० [हिं० टटका] टटका। साजा।

टहनी—सबा पुं० [सं० तनुः (=पटल या शरीर)] [स्त्री० टहनी] १ वृक्ष की पतली शाखा। पतली डाल।

टहनी—सबा पुं० [सं० गण्ठीवादः] घुटन। टेढ़ना। उ०—जल टहने तक पहुँच गया था।—दृग्वि०, पृ० ५१।

टहनी—सबा स्त्री० [हिं० टहना] वृक्ष की गड़द पतली शाखा। पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीम की टहनी।

टहरकटा—सबा पुं० [हिं० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिसपर टकूप या तकले से उसारा हुआ मूत लपेटा जाता है।

टहरना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'टहलना'।

टहल—सबा स्त्री० [हिं० टहलना] १ सेवा। गुथूपा। विश्रम।
क्रि० प्र०—करना।

यौ०—टहल टहल = सेवा गुथूपा। उ०—कल करनी वरनिए कहाँ सौ करत फिरत नित टहल टहल है।—सुषधी (सप्त०)।
टहल टहोर = सेवा गुथूपा।

मुहा०—टहल बजाना = सेवा करना।

२. नोकरी चाकरी। काम करना।

टहलना—क्रि० प्र० [?] १. धीरे धीरे चलना। मद गति से अग्रगण्य करना। धीरे धीरे कदम रखते हुए चलना।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिस्त जाना। चुपचाप प्रत्यक्ष चला जाना। हट जाना। जाय जगह पर उपस्थित न रहना।

२. केवल जी बढ़लाने के लिये धीरे धीरे चलना। हवा खाना।

सेर करना। जैसे,—वे संव्या को नित्य टहलने जाते हैं। ३. परलोक गमन करना। मर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टहलनी—सबा स्त्री० [हिं० टहल + नी (प्रत्यय)] १ टहल करनेवाली। सेवा करनेवाली। दासी। मजदूरनी। लोन्नी। चाकरानी। उ०—मृगंसी पीके घड़ी टहलनी भँवर कमज फुल बास लुभावे।—धनानंद, पृ० ३३४। २ वह नकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलान—सबा स्त्री० [हिं० टहलना] टहलने की क्रिया या भाव।

टहलाना—क्रि० प्र० [हिं० टहलना] १ धीरे धीरे चलाना। घुमाना। फिरावा। २. सेर कराना। हवा खिलाना। ३ हटा देना। दूर करना। ४. चिड़नी छुपड़ी बातें करके किसी को अप्रसन्न साय से जाना।

मुहा०—टहला ले जाना = छड़ा ले जाना। गायब करवा। चोरी करना। उ०—पेचकार, हुजूर चुता कोई जात शरीफ टहला ले गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४९।

टहलि—सबा स्त्री० [हिं० टहलना] दे० 'टहल'। उ०—छोट सी भँस सोहने सीगनि टहलि करनि को गोती हू।—नंद० प्र०, पृ० ३३७।

टहलुआ—सबा पुं० [हिं० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला। सेवक। नौकर। खिदमतगार।

टहलुई—सबा स्त्री० [हिं० टहल] १. दासी। चिकरी। लोन्नी। चाकरानी। मजदूरनी। नौकरानी। २ वह नकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है।

टहलुनी—सबा स्त्री० [हिं० टहल] दे० 'टहलनी'। उ०—पहले गाँव में से एक लड़की आई, फिर एक टहलुनी आई, उसके पीछे एक और आई।—ठेठ०, पृ० ३०।

टहलुवा—सबा पुं० [हिं०] दे० 'टहलुआ'। उ०—धीरे सब बजवासी टहलुवान को महाप्रसाद लिवायो।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० १४।

टहलू—सबा पुं० [हिं० टहल] नौकर। चाकर। सेवक।

टहाका—वि० [दे०] दे० 'टहाटह'।

यौ०—टहाका मजोरिया = निर्मल चाँदनी।

टहाटहा—वि० [दे०] निर्मल। चटकीला।

यौ०—टहाटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी।

टरी—सबा स्त्री० [हिं० घाव, घात] मतषव निकालने की घात। प्रयोजनसिद्धि का उप। साध। युक्ति। जोड़ तोड़।

मुहा०—टही लगावा = जोड़ तोड़ लगावा। टही में रहना = काम बिकालने की साध में रहना।

टहुआटारी—सबा स्त्री० [दे०] शहर की उपर छरामा। घुगड़खोरी।

टहुकड़ा—सबा पुं० [हिं० टहुकना] शब्द। कानि। उ०—करहट किया टहुकड़ा, निशा जागी नारि।—लोसा०, पृ० ३४५।

टहुकना—क्रि० प्र० [प्र०] बोलना। भाषाज करना। उ०—मोर टहुकड़ सीखर थी।—बी० रातो०, पृ० ७०।

टहुका—सबा [हिं० टक या ठहाका] १ पहेली। २. चमत्कारपूर्ण उक्ति। घुटकुला।

टहका^३—संज्ञा पुं० [हि० टहकना] घावाज । स्वर । उ०—टहका मोर का साल । द्विये मे हूक सी चालै ।—राम० धर्म०, पु० ३८ ।

टहेल^४—संज्ञा स्त्री० [हि० टहल] दे० 'टहल' । उ०—सो वह वीरौ नित्य अपने हाथ सों श्री ठाकुर जी की सेवा टहेल करती ।—दो सी बावन०, भा० १, पु० १२१ ।

टहोका—संज्ञा पुं० [हि० ठोकर भयवा ठोका] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का । झटका ।

मुहा०—टहोका देना=हाथ या पैर से धक्का देना । झटकना । ठकेलना । ठेलना । टहोका खाना=धक्का खाना । ठोकर सहना । उ०—मैंने इनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुंझलाकर कहा ।—इया भल्ला खा (शब्द०) ।

टांक—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्क] एक प्रकार की शराब [को०] ।

टांकर—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कर =] १. कामी । लपट । २. कुटना धुगलखोर [को०] ।

टांकार—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कार] दे० 'टकोर' [को०] ।

टाँक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. एक प्रकार की तौल जो चार माशे की (किसी किसी के मत से तीन माशे की) होती है । इसका प्रचार ओहुरियों में है । २. धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तौल जो पचीस सेर की होती थी ।

विशेष—इस तौल के बटखरे को धनुष की डोरी में बांधकर लटका देते थे । जिसने बटखरे बांधने से धनुष की डोरी अपने पूरे सधान या खिंचाव पर पहुँच जाती थी, उसनी टाँक का, वह धनुष समझा जाता था । जैसे,—कोई धनुष सवा टाँक का, कोई बेट टाँक का, यहाँ तक कि कोई दो या तीन टाँक तक होता था जिसे मर्यादत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे ।

३. बाँच । कूत । प्रवाण । प्राँक । ४. हिस्सेदारों का हिस्सा । बखरा । ५. एक प्रकार का छोटा कटोरा । उ०—घोड़ टाँक में हूँ सोय सेरावा । लौंग मिरिच तेहि ऊपर नावा ।—जायसी (शब्द०) ।

टाँक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँकना] १. लिखावट । लिखने का ढंग या चिह्न । लिखन । उ०—छती नेहू कागर द्विये भई लखाय न टाँक । विरह तज्यो उधरयो सु प्रव सेंहूँ को सो घाँक ।—बिहारी (शब्द०) । २. कलम की नोक । खेखनी का डक । उ०—हरि जाय चेत चित सुखि स्याही भरि जाय, हरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

टाँकना—क्रि० सं० [सं० टकन] १. एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील प्रादि जड़कर जोड़ना । कील काटि ठोकर एक वस्तु (धातु की चद्दर प्रादि) को दूसरी वस्तु में मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी को बैठाना । जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सुई के सहारे एक ही तारे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर ले आकर उन्हें एक दूसरे से मिलाना । सिलाई के द्वारा जोड़ना ।

सीना । जैसे, चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा हुआ टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३. सीकर घटकाना । सुई तारे से एक वस्तु पर दूसरी इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे ।

जैसे, बटन टाँकना । मोती टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. सिल, चक्की प्रादि को टाँकी से गड़डे करके खुरदरा करना । कुटना । रेहना । छीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६ किसी कागज, चर्ही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना । दर्ज करना । चढ़ाना । जैसे,—ये दस रुपए भी बही पर टाँक लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—मन में टाँक रखना = स्मरण रखना । याद रखना ।

† ७. लिखकर पेश करना । दाखिल करना । जैसे, अर्जी टाँकना । चट कर जाना । उड़ा जाना । खाना । (बाजार) । जैसे—देखते देखते वह सब मिठाई टाँक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६ अनुचित रूप से रुपया पैसा प्रादि ले लेना । मार लेना । उड़ा लेना ।—(बलाल) ।

टाँकली^१—संज्ञा स्त्री० [?] पाल तपेटने की धिरनी या गड़ारी । (लश०) ।

टाकली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्का] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था ।

टाँका—संज्ञा पुं० [हि० टाँकना] १. वह जड़ी हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चद्दरें) एक दूसरे से जड़ी रहती हैं । जोड़ मिछानेवाली कील या काँटा ।

क्रि० प्र०—उभड़ना ।—निकालना ।—लगना ।—लगाना । सीयन का उतना प्रश्न जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर से जाने में तैयार होता है । सिलाई का पुष्प पुष्प पण । सोय । जैसे,—दो टाँके लगा दो । क्यादा काम नहीं है ।

क्रि० प्र०—उभड़ना ।—छुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—टाँका चलाना = सीने के लिये कपड़े प्रादि में धार पर सुई बाँधना । टाँका भरना = सुई से छेदकर ताना फँसाना या घटकाना । सीना । सिलाई करना । टाँका मारना = दे० 'टाँका भरना' ।

३. सिलाई । सीवन । ४. टंकी हुई चकती । चिगली । चिप्पी ।

५. शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव, पूजने के लिये की जाती है । जोड़ ।

क्रि० प्र०—उभड़ना ।—छुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

६ धातुओं के जोड़ने का मसाना जो उनको गलाकर बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

टॉका^२—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] [स्त्री० घल्पा० टाँकी] लोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी ओर धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चोड़ी छेनी।

टॉका^३—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= खड्ग या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी इकट्ठा रखने का छोटा सा कुंड। होज। चहुबन्ना। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंठाल।

टॉकाटुक—वि० [हिं० टाँक + तोल] तोल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक ठीक तुला हुआ।—(दुकानदार)।

टॉकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर गढ़ने का औजार। वह लोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते, काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हठी, कठिनाई याकी। हठी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल (शब्द०)।

कि० प्र०—बलना।—चलाना।—बैठना।—मारना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना=(१) पत्थर पर टाँकी का घाघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

२. तरबूज या खरबूजे के ऊपर छोटा सा चौखूँटों कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है।

विशेष—फल घेननेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काटकर तरबूज रखते हैं।

३. काटकर बनाया हुआ छेद। ४. एक प्रकार का फोडा। कुवस। ५. गरमो या सूजाक का घाव। ६. धारी का दाँत। दाँता। दंदाणा।

टॉकी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= खड्ग या गड्ढा)] १. पानी इकट्ठा रखने का छोटा होज। छोटा टाँका। छोटा चहुबन्ना। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंठाल।

टॉकीबंद—वि० [हिं० टाँकी + फा० बंद] (इमारत, दीवार या जुड़ाई) जिसमें जगे हुए पत्थर पट्टियों या दोनों ओर गड़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जुड़ाई। टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर घामने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर झुकी हुई कीलों को ठोककर छेदों में गसा हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जुड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. शरीर का वह निचला भाग जिसपर जड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या दोड़ते हैं। साधारणतः जड़ की जड़ से लेकर एड़ी तक का भाग जो पतले खभे या खड़े के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से लेकर एड़ी तक का भाग। जीवों के चलने फिरने का अवयव। (जिसकी सख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है)।

मुहा०—टाँग भड़ाना=(१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी ऐसे काम में होय डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फूल दखल देना। (२) भड़ंगा लगाना। विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे,—जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग भड़ाते हो? टाँग उठाना=(१) स्वीसंमोग करना। स्त्री के साथ संमोग करने के लिये प्रस्तुत होना। घासन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग उठाकर मूतना=कुत्तों की तरह मूतना। टाँग की राह निकल जाना=दे० 'टाँग तले (या नीचे) से निकलना। उ०—उस भ्रंवर के भस्मादे से कोरे निकल जाओ तो टाँग की राह निकल जाऊँ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। टाँग टूटना=चलने फिरने से पक़ावट भ्राना। उ०—हर रोज़ घाय होइते हैं। साहब हमपर मलग खफा होते हैं और टाँगें घसग टूटती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५७। टाँग तले (या नीचे) से निकलना=हार मानना। परास्त होना। नीचा देखना। घबौन होना। टाँग तले (या नीचे) से निकालना=हराना। परास्त करना। नीचा बिखाना। घबौनता या हीनता स्वीकार कराना। टाँग तोड़ना=(१) भंगभंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा सा सीखकर उसके टूटे फूटे या मशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे,—क्या भंगेजी की टाँग तोड़ते हो? (अपना) टाँग तोड़ना=चलते चलते पैर थकना। घूमते घूमते हैरान होना। टाँग पसारकर सोना=(१) निर्द्वंद्व होकर सोना। बिना किसी प्रकार के छटके के चैन से दिन बिताना। टाँगें रह जाना=(१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का थिथिल हो जाना। (२) लकवा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग लेना=(१) टाँग का पकड़ना (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिड न छोड़ना। टाँग बराबर=छोटा सा। जैसे,—टाँग बराबर लड़का, ऐसी ऐसी बातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँधकर बैठना=किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँग से टाँग बाँधकर बैठना=अपने पास से हटने न देना। सदा अपने पास बैठा रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं जाने जाने न देना।

२. कुशती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मारकर या मझाकर उसे बिलस कर देते हैं।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—(क) पिछली टाँग खब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली

टाँच कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग=जब दोनों पहलवान धामने सामने छाती से छाती मिलाकर भिड़े हों तब विपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग=विपक्षी को बगल में पाकर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग=जब विपक्षी पीठ पर हो, तब मोका पाकर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसाकर झटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) झड़ानी टाँग=विपक्षी को दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसाकर मारने झड़ानी टाँग कहते हैं।

(३) चतुर्थांश। चौपाई भाग। चहारम।—(दलाल)।

टाँगना—संज्ञा पुं० [सं० तुरंगम या हि० टेंगना] छोटी जाति का घोड़ा। बड़ घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्टू।

विशेष—नेपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० सं० [हि० टेंगना] १. किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगाकर इस प्रकार झटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार से बाँधना या फँसाना भयवा उसपर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर झटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका प्रायः ऊपर की ओर हो। झटकाना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, झाड़ू टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा भाग आधार के नीचे झटकता हो, तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'झटकाना' में यह अंतर है कि 'टाँगना' क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'झटकाना' में उसके बहुत से भाग को नीचे की ओर दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे,—कुएँ में रस्सी झटकाना कहेंगे रस्सी टाँगना नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में झटकाना का भी प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

२. फाँसी चढ़ाना। फाँसी झटकाना।

टाँगा^१—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] बड़ी कुल्हाड़ी।

टाँगा^२—संज्ञा पुं० [सं० टेंगना] एक प्रकार की दो पहिए की गाड़ी जिसका ढाँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या झटका या आगे पीछे टेंबा भी रहता है। ताँगा।

विशेष—इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के झड़कने आदि पर झट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोड़े जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँग + नोचना] नोचखसोट। खींचा-खींची। खींचावानी।

टाँगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँगा] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [दे० या हि० ककुनी (वेसे ही जैसे किशुक से टेसू)] बाजरे या कोंगनी की तरह का एक मनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है।

विशेष—इसके दाने महीन और पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात खाते हैं।

टाँघना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टाँगन'।

टाँच^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँची] ऐसा वचन जिससे किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का कार्य करनेवाला हो, उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। माँजी। उ०—मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है।—भारतेंदु प्र०, भाग० १, पृ० ५६९।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँच^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँचा] १. टाँका। सिलाई। डोम। २. टेंकी हुई चकती। पिगली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी (शब्द०)। ३. छेद। सुरास।

टाँच^३—संज्ञा स्त्री० [दे०] हाथ पैर का सुझ पड़ जाना या सो जाना। टाँस।

क्रि० प्र०—धरना।—पकड़ना।—होना।

टाँचना^१—क्रि० सं० [हि० टाँच] १. टाँकना। डोम लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचा।—तुलसी (शब्द०)। २. काटना। तराशना। छीलना। छाँटना।

टाँचना—क्रि० प्र० फूला फूला फिरना। गुलछरें उड़ते हुए घूमना।

टाँची^१—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (=रुपया)] रुपया भरने की लम्बी धेली जिसमें रुपए भरकर कमर में बाँध लेते हैं। न्योबी। न्योली। मियानी। बसनी।

टाँची^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टाँची] माँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँचा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टाँच'।

टाँटा^१—संज्ञा पुं० [हि० टट्टी] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना=(१) सिर के बाल उड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास में कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। मुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ना=सिर पर खूब झूठे लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खोजना=मार जाने की जो चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार जाने की नोबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना=(१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हैरान कर देना। पास का भय निकसवा देना। टाँट गंजी होना=(१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुरें निकलना। खर्च करते करते पास में बच न रह जाना।

टॉटर—संज्ञा पुं० [हि० टट्टर] खोपड़ी। कपाल।

टॉठ—वि० [धनु० ठन ठन या सं० स्याणु] १. जो सुखकर कड़ा हो गया हो। करारा। कड़ा। कठोर। उ०—राम सों साम किए नित है हित कोमल काज न कीजिए टठि।—सुखसी (शब्द०)।

२. हड़। बसी। तगड़ा। मुस्टड़ा।

टॉठा—वि० [हि० टाठ] [वि० श्री० टाठी] १. करारा। कड़ा कठोर। २. छड़। हट्ट पुष्ट। तगड़ा।

टॉढ़ा—संज्ञा श्री० [सं० स्याणु] १. लकड़ी के खमों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बांस के लट्टे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज प्रसवाव रखते हैं। परछत्ती। २. मधान जिसपर बैठकर खेत की रखवाली करते हैं। ३. गुल्ली बंदे के खेल में गुल्ली पर उड़े का भाषात। टोला।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

टॉढ़ा—संज्ञा पुं० [दे० ताड] बाहु पर पहनने का लिये का एक गहना। टेंडिया।

टॉढ़ा^३—संज्ञा पुं० [सं० मट्टाल, हि० मटाला, टाल] १. ढेर। मटाला। टाल। शशि। २. समूह। पक्ति। ३. धरो की पक्ति। ४. दे० 'टांड'।

टॉढ़ा^४—संज्ञा श्री० [दे०] ककड़ मिली मिट्टी। कंकरीली मिट्टी।

टॉढ़ा^५—संज्ञा पुं० [हि० टांड (= समूह)] १. मूल्य भादि व्यापार की वस्तुओं से बने हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं। बरदो। बजजारों के बैलों भादि का झुंड। बजजारों के बैल ज्यों टांडो उतरधो भाय।—कबीर (शब्द०)। २. व्यापारियों के माल की बखान। बिक्री के माल का खेप। व्यापारी का माल जो लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय। उ०—मति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाव दं भावनो है। सुई वेह लो वेह सकी न तहाँ परतीति को टांडो सदावनो है।—बोधा (शब्द०)।

मुहा०—टांडा खदना = (१) बिक्री का माल लदना। (२) कुछ की तैयारी होना। (३) सरने की तैयारी होना।

३. व्यापारियों का चलता समूह। बजजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो। ४. नाव पर चढ़कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह। उ०—लोके बेगि निबेरि सुर प्रभु यह पतितन को टांडो।—सुर (शब्द०)। ५. कूटब। परिवार।

टॉढ़ा^६—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हि० टूंड] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो गन्ने भादि की जड़ों में सगकर फसल को हानि पहुँचाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

टॉढ़ी—संज्ञा श्री० [दे०] टिड्डी। उ०—उमड़ि रात्रि तुरकन ल्यो मीरी। छूटे तीर चढ़ति ज्यों टांडी।—साध (शब्द०)।

टॉण्ड—संज्ञा पुं० [सं० ताड] दे० 'टाडा'। उ०—बारी टाण्ड सलोनी दूटी।—जायसी ग्रं०, पृ० १४१।

टॉयटॉय—संज्ञा श्री० [धनु०] १. कर्कश शब्द। मप्रिय शब्द। कड़ई बोली। टें टें। २. बक बक। बकवाद। प्रसाप।

मुहा०—टॉय टॉय करना = बकवाद करना। निरर्थक बोलना। निता समझे बूझे बोलना। उ०—तुम कुछ समझते तो हो नहीं बेकार टॉय टॉय करते हो।—फिसाना०, भा० २, पृ० ११५। टॉय टॉय किस = (१) बकवाद, पर कुछ नहीं। किसी कार्य के संबंध में बातचीत तो बहुत बढ़कर पर परिणाम कुछ नहीं। (२) किसी कार्य के प्रारंभ में तो बड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं। कार्य का प्रारंभ तो बड़ी धूमधाम के साथ, पर अंत को होना जाना कुछ नहीं।

टॉस—संज्ञा श्री० [हि० टानना (= खींचना)] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिससे फँसने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है। यह पीड़ा प्रायः क्षणिक होती है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

टॉसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टाँचना', 'टाँकना'।

टा—संज्ञा श्री० [सं०] १. पुच्छी। २. शपथ। कसम (श्री०)।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [म०] किसी पुस्तक के सबसे ऊपर का पृष्ठ जिसपर पुस्तक और प्रकाशक का नाम भादि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है। आवरण पृष्ठ।

टाइप—संज्ञा पुं० [म०] सीसे अथवा सीसे और ताम्र के मिश्रण से बने हुए अक्षर जिनको मिलाकर पुस्तकें छापी जाती हैं। कांटे का अक्षर।

टाइपकास्टिंग मशीन—संज्ञा श्री० [म०] कांटे का अक्षर ढालने का कल।

टाइपमोल्ड—संज्ञा पुं० [म०] कांटे के अक्षर ढालने का साँचा।

टाइपराइटर—संज्ञा पुं० [म०] एक कल या यंत्र जिसमें कागज रखकर टाइप के से अक्षर छापे जाते हैं। यह दफ्तरों और कार्यालयों में बिट्टी पत्री भादि छापने के काम में आता है। टकण यंत्र।

टाइफायड—संज्ञा पुं० [म० टाइफायड] एक प्रकार का विषैला ज्वर जिसमें सबेरे साप घट जाता है और संध्या को बढ़ जाता है। मोतीहरा।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [म० टाइफून, तुलनीय तूफान] एक प्रकार का तूफान जो चीन के समुद्र में और उसके आसपास बरसात के बार महीनों में आया करता है।

टाइम—संज्ञा पुं० [म०] समय। वक्त।

यौ०—टाइमटेबुल। टाइमपीस।

टाइमटेबुल—संज्ञा पुं० [म०] वह विवरणपत्र या सारणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है। जैसे, स्कूल का टाइमटेबुल, दफ्तर का टाइमटेबुल, रेलवे टाइमटेबुल।

टाइमपीस—संज्ञा स्त्री० [घ०] कमरे में भेज, झालमारी झपका हेरु पर रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल समय बताती है, बजती नहीं। किसी किसी में खाने की घंटी समय निर्धारित करने पर बजती है।

टाई—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. कपड़े की एक पट्टी जो. मग्रेजी पहनावे में कासर के झर गोंठ देकर बांधी जाती है। नेकटाई। २. जहाज के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुड़ी मस्तूल के छेदों में लगाई जाती है।

टाउन—संज्ञा पुं० [घ०] शहर। कसबा।

टाउन ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [घ०] चुंगी। पोंटूदी।

टाउनहाल—संज्ञा पुं० [घ०] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई, रोशनी आदि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती हैं।

टाकरी लिपि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुरी, ठकुरी ?] एक प्रकार की लिपि जो शारदा लिपि का घसीट रूप है।

विशेष—इस लिपि में इ, ई, उ, ए, ग, घ, च, ज, ङ, ढ, त, थ, द, ध, प, भ, म, य, र, ल, और ह वणं वर्तमान शारदा लिपि से मिलते जुलते हैं। शेष वणं भिन्न हैं, जिसका कारण संभवतः शोधना से लिखना और चलतु कलम है। इसमें 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखा जाता है।

टाका०—संज्ञा पुं० [हि०] कंठाल। दे० 'टाँका'। उ०—मागे सगुन सगुनिभाँ ताका। बहिर मच्छ रूपे कर टाका।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २११।

टाकू—संज्ञा पुं० [सं० तकुं] टकुआ। तकला। टेकुरी।

टाकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेंट। नजराना। उ०—उन्होंने उबीसा के समस्त जमींदारों से टाकोली या पेसकश वसूल किया।—शुक्ल भूमि० ग्रं० पृ० ६६।

टाट^१—संज्ञा पुं० [सं० तत्तु] १. सन या पटुए की रस्सियों का बना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

मुहा०—टाट में मुँज का बखिया=जैसी मद्। चीज, वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बखिया=चीज तो मही और सस्ती, पर उसमें लगी हुई सामग्री बढ़िया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

२. बिरादरी। कुल। जैसे,—वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा०—एक ही टाट के=(१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दल के। एक ही विचार के। टाट बाहर होना=बहिष्कृत होना। जाति पंक्ति से अलग होना।

३. साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा०—टाट उसटना=दिवाला निकालना। दिवालिखा होने की सूचना देना।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था, तब वह अपनी कोठी या दुकान पर का टाट और

गद्दी उल्टकर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले सोट जाते थे।

टाट^२—वि० [घ० टाट] कसा हुआ।—(लख०)।

मुहा०—टाट करना=मस्तूल खड़ा करना।

टाटका^१—वि० [हि०] दे० 'टटका'। उ०—(क) चिउ टाटक मुहें सोधि सेरावा।—पदमावत, पृ० ५८६। (ख) भीखा पावत मगन रैन दिन टाटक होत न बासी।—भीखा श०, पृ० १२।

टाटक०—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—टाटक ध्यान जपे नोकारा। जब या जीव को होइ उवारा।—घट०, पृ० ८५।

यो०—टाटक टोटक।

टाटबाफ—संज्ञा पुं० [हि० टाट+फ्रा० बाफ] १. टाट बुननेवाला। २. कपड़ों पर कलाबत्तू का काम करनेवाला।

टाटबाफी—संज्ञा स्त्री० [हि० टाट+फ्रा० बाफी] १. कलाबत्तू का काम। २. टाट बुनने का काम।

टाटबाफीजूता—संज्ञा पुं० [फ्रा० तारबाफी] वह छूता जिसपर कलाबत्तू का काम हो। कामदार छूता।

टाटर^१—संज्ञा पुं० [सं० स्यातृ (= जो खड़ा हो)] १. टट्टर। टट्टी। २. सिर की हड्डी या परदा। खोपड़ी। कपाल। उ०—टाटर हूट, हूट सिर तामू।—जायसी (शब्द०)।

टाटर^२—संज्ञा पुं० [?] बोटों को सजाने की सामग्री। उ०—टाटर पापर सज्जित कियो राव।—बी० रासी०, पृ० ११।

टारिकएसिड—संज्ञा पुं० [घ०] इनली का सत। इमला का चुक।

टाटिका०—संज्ञा स्त्री० [हि० टाटी] टट्टी। उ०—विरचि हरि भक्त को बेष वर टाटिका, कपट दल हरित पलवनि छाया। तुलसी (शब्द०)।

टाटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० स्थात्री ता तटी] छोटा टट्टर। टट्टी। उ०—(क) घाँधी भाई ज्ञान की ढही भरम की भोति। माया टाटी उड़ि गई भई नाम सो प्रोति।—रबीर (शब्द०)। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारो मानव रक त्रास टाटी की।—सूर (शब्द०)।

टाटी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली (= बटखोई), प्रा० ठाली, ठाली] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] भुजा पर पहनने का एक गहना। टाड़। टेंडिया। बटुटा। उ०—बाहु टाड़ कर ककव बाहुव, एते पर ही लोकी।—सूर (शब्द०)।

टाडर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

टाड्या०—संज्ञा पुं० [?] (विवाहादि) उत्सव। उ०—प्रदता टाण्णी ऊपर, वाणा खरने नाहि।—बाँकी० ग्रं० भा० ३, पृ० ८२।

टान^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताव (= फैलाव, बिछाव)] १. तनाव। बिछाव। फैलाव। २. खींचने की क्रिया। खींच। ३. सितार के परदे पर ऊँचली रखकर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सब स्वर विकल भावें। ४. सॉप के दाँव

सगने का एक प्रकार जिसमें दौत घँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

दान^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (= धुन या सकड़ी का खंभा)] टाँड़। मधान।

दान^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दानं] प्रेस में किसी कागज को एकाधिक बार छापने का भाव। एक दान प्रायः एक हजार प्रतियों का होता है।

दानना—क्रि० सं० [हि० दान + ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

दानिक—संज्ञा पुं० [सं० दानिक] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवर्धक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। पुष्टि। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई दानिक दिया है।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, थाप] १. छोड़े के पैर का वह सबसे निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है। घोड़े का मध्वचंद्राकार पावतल। भुम। उ०—जे जख चखहि बलहि की नाई। टाप न बूढ वेग प्राधिकारि। तुलसी (शब्द०)। २. छोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे,—दूर पर घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। ३. पलग के पास का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। ४. बेंत या और किसी पेड़ की लकीरी टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का भावा जिसकी पेदी में एक छेद होता है। मछली पकड़ने का ढोचा। ५. मुरगियों के बंद करने का भावा।

टापड़—संज्ञा पुं० [हि० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि० [हि० टाप + दा० दार (प्रत्य०)] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना^१—क्रि० प्र० [हि० टाप + ना (प्रत्य०)] १. घोड़ों का पैर पटकना।

विशेष—प्रायः जब खाना पाने का समय होता है, तब घोड़े टाप पटककर अपनी भूख की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी लेते हैं।

२. टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर हेरान फिरना।

३. व्यर्थ इधर उधर फिरना। ४. उछलना। कुदना।

टापना^२—क्रि० सं० कुदना। फाँटना। उछलकर लौटना। जैसे, बीवार टापना।

टापना^३—क्रि० प्र० [सं० तप] १. बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे,—सबरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. ऐसी बात के मासरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। धाया में पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे,—घंटों से बैठे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। ३. किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मसना। पछताना। जैसे,—दह चला गया, मैं टापता रह गया।

टापर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. मोड़ने का मोटा कपड़ा। चदर।

२. घोड़ों को शीत से बचाने के लिये मोड़ने का मोटा वस्त्र।

तप्पड़। जीन के नीचे का मोटा कपड़ा। उ०—(क) ज़िण्ण

दीहे पासठ पडइ, टापर तुरी सहाइ।—ढोसा०, पृ० २७६।

(ख) घाली टापर बाग मुल्लि, मेक्यउ राजदुमारि। करहइ

किया टहकड़ा निद्रा जागो नारि।—ढोसा०, पृ० ३४५। ३.

तिरपाल। ४. झोपड़ा।

टापर^२—संज्ञा पुं० [हि० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू आदि की सवारी।

टापा—संज्ञा सं० [सं० स्थापन, हि० थाप] १. टप्पा। मैदान। २. उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। ३. उछाल। हूद। छलंग। फाँद।

मुहा०—टापा देना = लवे डग भरना। उ०—कबिरा यह ससार में घने मनुष्य मतिहिन। राम नाम जाना नहीं भाए टापा दोन।—कबीर (शब्द०)।

४. किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा। भावा।

टापू—संज्ञा पुं० [हि० टापा या टप्पा] १. स्थल का वह भाग जिसके चारों ओर जल हो। वह भूखंड जो चारों ओर जल से घिरा हो। द्वीप। † २. टप्पा। टापा।

टावर^१—संज्ञा पुं० [प० टवर] १. बालक। लडका। उ०—धर को सब टावर मुवो सुदर कही न जाइ।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५२। २. परिवार।

टाबू—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलों के मुँह पर इसलिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जाबा।

टामका—संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। झिमझिमी। उ०—दुबुभि पटह घुदंग डोलकी डफला टामक। मदरा तबला सुमरु खंजरी तबला धामक।—सुदम (शब्द०)।

टामकटोया—संज्ञा पुं० [हि०] टकटोहना। टटोलना।

क्रि० प्र०—मारना = मधेरे में टटोलना या भटकना।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तन्त्रविधि। टोटका। उ०—जावत हों जु दई मुँवरी पड़ि राम कछु जनु टामन कीन्हो।—हनुमान (शब्द०)।

यौ०—टामन टुमन = सर्वस्व। उ०—इतना कहत हाथ तब जोरे। टामन टुमन सब ही तोरे।—राम० धर्म०, पृ० ३४६।

टार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोठा। २. गाँड़। खोँडा। लंग। ३. जो पुरुष का संयोग करानेवाला व्यक्ति। कुटना। दवाल। भंडूभा।

टार^२—संज्ञा पुं० [सं० मट्टास, हि० टाल] ढेर। राशि। टाल।

टार^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टारना] टालझल। वि० दे० 'टाल'।

टार^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जूत जिसमें लगी हुई खोँगी से बीज गिरता रहता है।

टारन—संज्ञा पुं० [हि० टारना] १. टावने या सरकावने की वस्तु।

२ कोल्लू में पड़ा हुआ वह लकड़ी का डंडा जिससे गेंडेरियाँ चलाई या हिलाई जाती हैं।

टारना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टालना'। उ०—(क) भूप सहस्र दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जियन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहि टारन कहेऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

टारपीढो—सञ्ज्ञा पु० [अं०] एक विष्वंसकारी यन्त्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। विस्फोटक वज्र।

विशेष—यह जल के अंदर छिपाया रहता है। युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है।

टारपीढो कैचर—सञ्ज्ञा पु० [मनु०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जगो जहाज जो टारपीढो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीढो बोट—सञ्ज्ञा पु० [म०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उसपर टारपीढो या विस्फोटक वज्र चलाती है। नाशक जहाज।

टाल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अटाल, हि० अटाला] १ नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो। ऊँचा ढेर। भारी राशि। अटाला। गज। जैसे, लकड़ी की टाल, मुस की टाल, पयाल की टाल, घास की टाल। २ लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दुकान। ३ बैलगाड़ी के पहिए का किनारा।

मुहा०—टाल मारना = पहिए के किनारों का छीलना।

टाल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का घटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बाँधा जाता है।

टाल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टालना] १ टालने का भाव। २ किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा। ऐसा बहाना जिससे किसी समय किसी काम को करने से कोई बच जाय।

यौ०—टालटूख। टालबटाल। टालमटाल। टालमटूख। टालमटोख।

टाल^४—सञ्ज्ञा पु० [सं० टार] व्यभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला। कुटना। भंडुभा।

टालटूख—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टाल + टूख] दे० 'टालमटूख'।

टालना—क्रि० सं० [हि० टालना] १. अपने स्थान से भ्रमण करना। हटाना। खिसकाना। सरकावा।

संयो० क्रि०—देना।

२. दूसरे स्थान पर भेज देना। अनुपस्थित कर देना। दूर करना। भगा देना। जैसे,—जब काम का समय होता है तब तुम उसे कहीं टाल देते हो।

संयो० क्रि०—देना।

३. दूर करना। मिटाना। न रहने देना। निवारण करना।

जैसे, आपत्ति टालना, सकट टालना, बला टालना। उ०—मुनि प्रसाद बल तात तुम्हारी। इस अनेक करबरे टारी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. किसी कार्य का निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना। नियत समय से और भागे का समय ठहराना। मुलतबी करना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, 'तेयि टालना, धिवाह की सायत या लगन टालना, धिवाह। खना, इम्सहान टालना।

संयो० क्रि०—देना।

५. समय व्यतीत करना। समय बिताना। ६. किसी (भावेष्ट या अनुरोध) को न मानना। न पालन करना। उल्लंघन करना। जैसे,—(क) हमारी बात वे कभी न टालेंगे। (ख) राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है? ७. किसी काम को तत्काल न करके दूसरे समय पर छोड़ना। मुलतबी करना। जैसे,—जो काम भावे, उसे तुरत कर डालो, कल पर मत टालो। ८. बहाना करके किसी काम से बचना। किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिससे वह न करना पड़े।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी के करने के लिये छोड़ देना। किसी के सिर मढ़ना। जैसे,—जो काम उसके पास जाता है, वह दूसरों पर टाल देता है।

९. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा करना। किसी काम को और आगे चलकर पूरा करने की मिथ्या आशा देना या प्रतिज्ञा करना। जैसे,—तुम इसी तरह महीनों से टालते आये हो, आज हम खपया जखर लेंगे। १०. किसी प्रयोजन से भाए हुए मनुष्य को निष्फल लोटाना। किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कहकर फेर देना। घटा बताना। टरकाना। जैसे,—इस समय इसे कुछ कह सुनकर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जायगा। ११. पलटना। फेरना। मोरे का मोर करना। १२. कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बात देख सुनकर न बोलना। बचा जाना। तरह दे जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टालबटाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टाल + बटाल] दे० 'टालमटाल'।

टालमटाल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टाल + म (प्रत्य०) + टाल] दे० 'टालमटूल'।

टालमटाल^२—क्रि० वि० [(दलाली) टाली (= अठन्ती)] भाषे भाष। निष्फा निष्फ।

टालमटूल—सञ्ज्ञा पु० [हि० टालना] बहाना।

टाला—वि० [(दलाली) टाली (= अठन्ती)] [स्त्री० टाली] भाषा। भर्ष (दवाव)।

टाहली④—संज्ञा स्त्री० [हि० टालना] टालना । उ०—टाला-
हली दिन गया, ब्याज बढ़ता जाय ।—कबीर सा०, पृ० ७५ ।

टालिमा④—वि० [हि० टालना ?] चुने हुए । चुनिदा । उ०—विण
मई सेस्पा टालिमा, बाँकड़ मुहों विहंग ।—डोला०, दू० २२७ ।

टाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ गाय बैल आदि के गले में बाँधने
की घंटी । २. जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम
की हो और बहुत चंचल हो । उ०—पाई पाई है नैया
कुत्र वृंद में टाली । अब के प्रपती घट ही बराबहु जेह
हटकी घाली ।—सूर (शब्द०) । ३ एक प्रकार का बाजा ।
४. प्रठली । भाषा रूपया । धेनी ।—(दलाल) ।

टाली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीशम जिसके पेठ पंजाब
में बहुत होते हैं ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी सरी और बहुत मजबूत होती है ।
यह इमारतों में सगरी है तथा गाड़ी, खेती के सामान आदि
बनाने के काम में आती है ।

टावर—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाट । मोनार । बुर्ज । २.
किला । कोट ।

टाहली—संज्ञा पुं० [हि० टहल] टहल करनेवाला । टहलुपा ।
दास । सेवक । लिदमतगार । उ०—कादर को भादर काहू के
नाहि देखियत सबनि सोहात है सेवा सुजान टाहली ।—
तुलसी (शब्द०) ।

टोहली④—संज्ञा स्त्री० [हि० टाहली] टहलुई । नोकरी । उ०—
यान समारो टोहली, चोवा चदन घंग सुहाई ।—बी० रासो,
पृ० ४६ ।

टिंगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्री की योनि । भग ।—(प्रसिष्ट) ।

टिंकर—संज्ञा पुं० [सं० टिक्कर] किसी प्रोपय का सार जो स्फिरिट
के योग से तरल रूप में बनाया जाता है ।

टिंकर आयोडीन—संज्ञा पुं० [सं० टिक्कर आयोडीन] सृजन आदि
पर लगाने के लिये आयोडीन और स्फिरिट आदि का घोल ।

टिंकर ओपियाई—संज्ञा पुं० [सं० टिक्कर ओपियाई] धकीम
और स्फिरिट आदि का घोल ।

टिंकर कार्बिमम—संज्ञा पुं० [सं० टिक्कर कार्बिमम] इलायची
का भक ।

टिंकर स्टील—संज्ञा पुं० [सं० टिक्कर स्टील] फोलाव आदि का
स्फिरिट में बनाया हुआ घोल ।

टिटिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिनिका] १. जल विरीस का पेड़ ।
धनु शिरीषिका । दादोन । २. जोंक ।

टिंड—संज्ञा पुं० [सं० टिण्ड] १. ककड़ी की जाति की एक बेल
जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी
बनती है । डेंडसी । डेंडसी । २. रहट में लगा हुआ नरतन
जिसमें पानी भरकर आता है । डब्बू ।

टिंडर—संज्ञा पुं० [सं० टिण्ड (= डेंडसी)] रहट में लगी हुई हेंडिया ।

टिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्ड] टिंड नाम की तरकारी । डेंडसी ।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिण्ड] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें

छोटे खरबूजे के बराबर गोल फल लगते हैं । इन फलों की
तरकारी बनती है । डेंडसी । डेंडसी ।

टिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] टिंडा । डेंडसी । डेंडसी ।

टिंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हन को पकड़कर दबानेवाली मुठिया ।
२. जाता घुमाने का छुंटा ।

टिंक—संज्ञा पुं० [?] टिक्कर । लिट । ठोकथा । घूमा ।

टिंकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टीकेवाली गाय । वह गाय जिसके
माथे पर सफेद टीका हो । २. एक छोटी चिड़िया जो तालों
में उतरती है और जाड़ा नीतने पर बाहुर जाती जाती है ।

टिकट—संज्ञा पुं० [सं० टिकेट] १. वह कागज का टुकड़ा जो किसी
प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को दिया
जाय और जिसके द्वारा वह कहीं जा सके या कोई काम
कर सके । जैसे, रेल का टिकट; बाक का टिकट, मिएटर
का टिकट । २. कहीं जाने जाने या कोई काम करने के लिये
अधिकारपत्र । ३. संसद् या विधानसभा या नगरपालिका
के चुनाव के लिये किसी प्रत्यासी को दलविशेष के प्रतिनिधि
के रूप में चुनाव लड़ने के लिये दिया जानेवाला अधिकार या
स्वीकृति । ४. वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम
के करनेवालों पर लगाया जाय । जैसे, स्नान का टिकट, मेले
का टिकट ।

मुद्दा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना । कर नियत करना ।

टिकटधर—संज्ञा पुं० [सं० टिकट + हि० धर] वह स्थान या कमरा
जहाँ टिकट बिकता है ।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. घोड़ों की हाँकने के लिये मुँह से
किया हुआ शब्द । २. घड़ी के बोलने का शब्द ।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकटी] १. तीन तिरछी खड़ी की
हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर
बाँधकर उनके शरीर पर बैठ या कोड़े लगाए जाते हैं । ऊँची
तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में
फाँसी लगाते हैं । टिकटी । २. ऊँची तिपाई । टिकटी ।

मुद्दा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लडई में न हटनेवाले चोट
खाकर मरे हुए मुरगे की तीन लकड़ियों पर खड़ा करना ।

विशेष—मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लडते ही
लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं
हटता है, तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर
देते हैं । यदि दूसरा मुरगा लात मारकर उसे लकड़ी के नीचे
गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह
किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत
समझी जाती है ।

टिकटिकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घाट नौ मगूल लंबी एक चिड़िया
जिसका रंग सुरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं ।

विशेष—जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः
जलाशयों के किनारे झाड़ियों में बँसला बनाती है । यह एक
बार में बार भरे देती है ।

टिकटिकी^३—सच्चा स्त्री [हि०] दे० 'टिकटकी' ।

टिकठी—सच्चा स्त्री [सं० त्रिकाष्ठ या हि० तीन काठ] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेत या कोड़े लगाए जाते हैं । टिकटिकी । २. ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है । ३. काठ का भासन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों । तिपाई । ४. बुना हुआ कपड़ा फैलाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा । यह कपड़े की चौड़ाई के बराबर फैल सकता है ।—(जुलाहे) । ५. भरथी जिसपर शव को अस्थिति क्रिया के लिए ले जाते हैं ।

टिकड़ा—सच्चा पुं [हि० टिकिया] [स्त्री० मल्ला० टिकड़ी] १. चिपटा गोल टुकड़ा । घातु, पत्थर, खपड़े या धीरे किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड । २. धाँव पर सँकी हुई छोटी मोटी रोटी । बाटी । मगाकडी ।

मुद्दा—टिकड़ा लगाना = प्राग पर बाटी सँकना या पकाना ।

३. जड़ाऊ या ठप्पे के गहनों में कई नगों को जड़कर बनाया हुआ एक एक विभाग या भ्रंश ।

टिकड़ी—सच्चा स्त्री [हि० टिकड़ा] छोटा टिकड़ा ।

टिकना—क्रि० प्र० [सं० स्थित + √ कृ या घ (= नहीं) + टिक (= चलना)] १. कुछ काल तक के लिये रहना । ठहरना । बंरा करना । मुकाम करना । उ०—टिकि लीजियो राव में काहू भटा जहाँ सोवत होंय परेवा परे ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।—लेना ।

२. किसी धुनी हुई वस्तु का नीचे बैठना । तल में जमना । तख्खट के रूप में नीचे पड़े में झुकना होना । ३. स्थायी रहना । कुछ दिनों तक चलना या बचा रहना । कुछ दिनों तक काम देना । जैसे,—यह खूत तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा । ४. स्थित रहना । भड़ा रहना । इधर उधर न गिरना । ठहरना । सहारे पर रहना । जमना या बैठना । जैसे,—(क) यह गोला खंडे की नोक पर टिका हुआ है । (ख) इसपर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों । ५. युद्ध या लड़ाई में सामना करते हुए जमे रहना । ६. विश्राम के उद्देश्य से थोड़ी देर के लिये कहीं रुकना । ७. प्रतिकूल समय या मौसम में किसी पदार्थ का विकृत न होना । ८. ध्यान या निगाह का स्थिर होना ।

टिकरी^१—सच्चा स्त्री [हि० टिकिया] १. नमकीन पकवान जो बेसन और मैदे की दो मोयनदार खोइयों को एक में बेलकर घीर धी में लकड़कर बनाया जाता है । २. टिकिया । ३. लिट्टी ।

टिकरी^२—सच्चा स्त्री [हि० टीका] सिर पर पहनने का एक गहना ।

टिकली^१—सच्चा स्त्री [हि० टिकिया या टीका] १. छोटी टिकिया । २. पत्नी या काँच की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं । सितारा । चमकी । ३. छोटा टीका । माथे पर पहनने की छोटी बंदी ।

टिकली^२—सच्चा स्त्री [सं० तर्क, हि० तकला] सूत बटने की फिरकी । सूत कातने का एक योजन ।

विशेष—यह नाँस या लोहे की सलाई पर लगी हुई काठ की गोस टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें सपेदा हुआ सूत अँठकर कड़ा होता जाता है ।

टिकस—सच्चा पुं [सं० टैक्स] महसूल । कर । जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस । उ०—सबसे ऊपर टिकस लगाऊँ, घन है मुझको धन ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७३ ।

मुद्दा—टिकस लगाना = महसूल या कर नियत होना ।

टिकसारा^१—वि० [हि० टिकना + सार (प्रत्य०)] टिकाऊ । टिकनेवाला ।

टिकार्ही^१—सच्चा पुं [हि० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो । युवराज । उत्तराधिकारी राजकुमार ।

टिकाऊ—वि० [हि० टिक + आऊ (प्रत्य०)] टिकनेवाला । कुछ दिनों तक काम देनेवाला । चलनेवाला । पायदार ।

टिकान—सच्चा स्त्री [हि० टिकना] १. टिकने या ठहरने का भाव । २. टिकने या ठहरने का स्थान । पड़ाव । चट्टी ।

टिकाना—क्रि० सं० [हि० टिकन] १. रहने के लिये जगह देना । निवासस्थान देना । कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना । ठहराना । जैसे,—इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सहारे पर खड़ा करना या रोकना । भड़ाना । ठहराना । स्थित करना । जमाना । जैसे,—(क) एक पैर जमीन पर झकड़ी तरह टिका लो, तब दूसरा पैर उठाओ । (ख) इसे दीवार से टिकाकर खड़ा कर दो । (ग) बोझ को चबूतरे पर टिकाकर थोड़ा दम ले लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

† ३. किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना । बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना । जैसे,—(क) प्रकेले उससे चारपाई न जायगी, तुम भी टिका लो । (ख) चार भादमी जब उसे टिकाते हैं, सब वह उठता है ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. देना । प्रस्तुत करना ।

टिकानी—सच्चा स्त्री [हि० टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पंजनी झालकर रस्सी से बाँधते हैं ।

टिकाव—सच्चा पुं [हि० टिकना] १. स्थिति । ठहराव । २. स्थिरता । स्थायित्व । ३. वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हों । पड़ाव ।

टिकावली^(७)—सच्चा स्त्री [दे०] एक प्रकार का आभूषण । उ०—टीका टीक टिकावली हीरा हार हमेल ।—छीत०, पृ० २५ ।

टिकिया^१—सच्चा स्त्री [सं० वटिका] १. गोल धीरे चिपटा छोटा टुकड़ा । गोल धीरे चिपटे आकार की छोटी वस्तु । चक्राकार छोटी मोटी वस्तु । जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया ।

विशेष—चकती धीर टिकिया में यह अंतर है कि टिकिया का प्रयोग प्रायः ठोस और उमरे हुए मोटे दल की वस्तुओं के लिये होता है, पर चकती का प्रयोग कपड़े, चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, कपड़े या चमड़े की चकती, मैदे की टिकिया।

२. कोयले की बुकनी को किसी लसीली बीज में सानकर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर भाग सुलगाते हैं।
३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने और चाणनी में डुवाये से बनती है।
४. बरतन के संचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है।
५. छोटी मोटी रोटी। बाटी। लिट्टी।

टिकिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. माया। ललाट। २. माये पर लगी हुई बिंदी। ३. ऊंगली में घुवा, रप या धीर कोई वस्तु पोतकर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

विशेष—मनपड़ सोग नित्य प्रति के सेन देव की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्रायः बीवार पर बनाते हैं।

टिकिया^४—संज्ञा पुं० [देश०] टीखा। मीठा।

टिकुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्रुं, हि० टकुमा] सुत बटने या कातने की फिरकी। टिकवी।

टिकुरी^२—संज्ञा पुं० [देश०] निसोय। तुडुंदा।

टिकुला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकजी'।

टिकुवा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टकुमा', 'टकुमा'।

टिकैत—संज्ञा पुं० [हि० टीका + ऐत (प्रत्य०)] १. राजा का वह पुत्र जो राधा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। राजा का उत्तराधिकारी कुमार। युवराज। २. अधिकारता। सरदार।

टिकोर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकोर'।

टिकोरा^१—संज्ञा पुं० [सं० वटिका, हि० टिकिया] घाम का छोटा धीर कच्चा फल। घाम का वह फल जिसमें जाड़ी न पड़ी हो। घाम की बतिया।

टिकोला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टिकोरा'।

टिकोला, टिकौला—संज्ञा पुं० [हि० √ टिक + मौला (प्रत्य०)] माषार। टेक। सहारा। उ०—जिन टिकौनों से उसने अपने मन को संभाला था, वे सब इस सूक्ष्म में बीचे पा रहे धीर वह भोपड़ा भीचे गिर पड़ा।—मोदाम, पृ० ११४।

टिककड़—संज्ञा पुं० [हि० टिकिया] १. बड़ी टिकिया। २. हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी पई हो। बाटी। लिट्टी। भगाकड़ी। ३. मालगुवा।—(साधु)

टिककस^१—संज्ञा पुं० [प्र० टैक्स] कर। महसुब। उ०—टिककस लगा रे कस कस के छोड़ो अपना रोजगार।—प्रेमचम०, भा० २, पृ० ३६१।

टिकका^१—संज्ञा पुं० [देश०] मुँगफली के पीछे का एक रोग।

टिकका^२—संज्ञा पुं० [हि० टीका] [स्त्री० टिककी] १. टीका। तिलक। बिंदी। २. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ खड़ा चिह्न।

विशेष—दे० 'टिककी'।

३. सुष। स्मरण। याद।

टिकका साहब—संज्ञा पुं० [हि० टीका (= तिलक) + प्र० साहब] राजा का वह बड़ा लड़का जिसका बीवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज।—(पंजाब)।

टिककी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकिया] १. गोस धीर चिपटा छोटा टुकड़ा। टिकिया।

मुहा०—टिककी जमना, बैठना या लगना = प्रयोजनसिद्धि का उपाय होना। युक्ति खडना। प्राप्ति आदि का होना। गोटी जमना।

२. भंगाकड़ी। बाटी। लिट्टी।

टिककी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] उँगली में रंग या धीर कोई वस्तु पोतकर बनाया हुआ गोल चिह्न। बिंदी। २. माये पर की बिंदी। गोल टीका। ३. राधा की बूटी। राधा में बना हुआ पान आदि का चिह्न।

टिककी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

टिकटिख—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकटिख'।

टिखटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टिकठी] तक्ती। पटिया। उ०—कै शिव तंत्र सटीक खुल्यो विद्वत्सत टिखटी पर।—का० सुषमा, पृ० १।

टिघलना—क्रि० प्र० [सं० तप + गलन] पिघलना। घाँघ से प्रवी-भूत होना।

विशेष—दे० 'पिघलना'।

टिघलाना—क्रि० स० [हि० टिघलना] पिघलाना।

टिचन—वि० प्र० अटेंशन] १. तैयार। ठीक। दुस्तद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. सद्यत। मुस्तैद।

क्रि० प्र०—होना।

टिटकारना—क्रि० स० [अनु०] टिक टिक शब्द करके किसी पशु को चसने के लिये उभारना। 'टिक टिक' करके हाँकना। जैसे, घोड़े को टिटकारना।

मुहा०—टिटकारी पर खगना = (पशु का) इशारा पाकर काम करना। संकेत पाकर या बोझी पहचानकर पास चला जाना।

टिटकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० टिटकारना] घोड़े या अन्य पशु को टिकटिक करके हाँकने की ध्वनि। उ०—टमटमवालों ने घपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की।—बई०, पृ० २०।

टिटिया^१—संज्ञा पुं० [प्र० तटिम्माह] १. जनावरपक्ष ऋकट। २. ठकोसला। प्रपच। ३. घाहवर।

टिटिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० तटिम्मह] दे० 'टिटिवा' ।

टिटिह—संज्ञा पुं० [सं० टिटिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
देखा टिटिह टिटिहरी भाई । चौबें भरि भरि पानी लाई ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिभ, हि० टिटिह] पानी के किनारे
रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर
चितकबरे, पीठ खेरे रंग की, दुम मिलेजुले रंगों की और चौंच
काली होती है । कुररी ।

विशेष—इसकी बोली कड़ई होती है और सुनने में 'टी टी' की
ध्वनि के समान जान पड़ती है । स्मृतियों में द्विजातियों के
लिये इसके आसन्नस्य का निषेध है । इस चिड़िया के संबंध
में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश
न टूट पड़े, उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित
सोती है ।

टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिटिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर । उ०—
टिटिहा कही जाऊँ ले कहाँ । यहि ते नीक और है जहाँ ।—
नारायणदास (शब्द०) ।

टिटिहारोर—संज्ञा पुं० [हि० टिटिहा + रोर] १. चिल्लाहट । शोर-
गुल । २. रोना पीटना । क्रदन ।

टिटुआ—संज्ञा पुं० [हि० टटू का मल्लां] [स्त्री० टिटुई] छोटा टटू ।
उ०—टिटुई ऊँटन को घोसा वहि सकत नहीं जिमि ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५७ ।

टिटिभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिटिभी] १. टिटिहा । नर टिटिहरी ।
दे० 'टिटिहरी' । उ०—उमा रावनहि मस मभिमाना । जिमि
टिटिभ खग सुत उताना ।—तुलसी (शब्द०) । २. टिट्टी ।

टिटिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिभ की मादा । टिटिहरी ।

टिटिभी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिटिभ] टिटिभ की मादा ।

टिटो०—संज्ञा स्त्री० [हि० टिट्टी] दे० 'टिट्टी' । उ०—मेड़ ओ टिट्टी
को काज कीवै ।—कबीर० रे०, पृ० २६ ।

टिट्टीविडी—वि० [देश०] दे० 'टिट्टीविडी' ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों
में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर दिखाई पड़ता है ।

विशेष—यह चार पाँच घंगुल लंबा और कई तरह का होता है,
जैसे,—हरा, भूरा, चित्तीदार । यह नरम पत्ते खाकर रहता
है । गुबरेले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके
जीवन में आकृतिपरिवर्तन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ नहीं
होती । मच्छियों की तरह इसके मुँह में भी घँसाने के लिये
दोँव होते हैं ।

टिट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ या सं० तट्ट+डीन (= उडना)] एक जाति
का टिट्टा या उडनेवाला कीड़ा जो भारी दल या समूह बांधकर
चलता है और मार्ग के पेड़ पौधों और फसल को बड़ी हानि
पहुँचाता है । इसका आकार साधारण टिट्टे के ही समान,
पर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए
और चित्तीदार होता है । जिस समय इसका दल बादल की

घटा के समान उमड़कर चलता है, उस समय आकाश में
झंझकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़ पौधों और खेतों में
पत्तियाँ नहीं रह जाती । टिट्टियाँ हजार दो हजार कोस तक
की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों में होकर
जाती हैं, उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं । ये पर्वत की
कवराओं और रेगिस्तानों में रहती हैं और बालू में अपने श्रव
देती हैं । अफ्रिका के उत्तरी तथा एशिया के दक्षिणी भागों
में इनका आक्रमण विशेष होता है ।

मुहा०—टिट्टी दल = बहुत बड़ा झुंड । बहुत बड़ा समूह । बड़ी
भारी भीड़ या सेना ।

टिट्टिगा—वि० [हि० टेढ़ा + बंक] जो सीधा और सुधील न हो ।
टेढ़ामेढ़ा ।

टिट्टिडंगा—वि० [हि० टेढ़ा + बेंडगा] टेढ़ामेढ़ा । बेंडंगा ।

टिप्पाना—क्रि० प्र० [हि०] १. क्रुद्ध होना । रुष्ट होना । २. (शिष्य
का) उत्तेजित होना ।

टिप्पानाफिस्स—संज्ञा पुं० [हि० टिप्पाना + फिस्स] आलोचना । निंदा ।
कहासुनी । उ०—तिस पर भी आपने जो इतना टिप्पानाफिस्स
किया तो बड़ा परिश्रम पड़ा ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३ ।

टिप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] साँप के काटने का एक प्रकार । साँप
का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ गए हों और विष रक्त में मिल
गया हो ।

टिप^२—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुरस्कार के रूप में मरूप मात्रा में दिया
जानेवाला द्रव्य । बख्शीश ।

विशेष—भोजनालय और होटलों आदि में वैरो तथा मोटर
डाइवरों को दिया जानेवाला पुरस्कार 'टिप' कहा जाता है ।

टिपकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टपकना' ।

टिपका०—संज्ञा पुं० [हि० टिपकना] बूँद । कतरा । विटु । उ०—
नव मन दूध बटोरिया टिपका किया विनास । दूध फाटि काँपी
भया भया घुँव का नास ।—कबीर (शब्द०) ।

टिपकारी—संज्ञा पुं० [हि० टिप] दीवारों पर इंटों की बीच की
जोड़ाई पर सीमेंट मयवा चूने की लकीर ।

टिपटाप—वि० [अं० टिप + टॉप] १. चुस्त । २. साफ सुथरी सुंदर
वेशभूषा पहने हुए ।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री० [प्रत्यु०] १. बूँद बूँद गिरने का शब्द । टपकने
का शब्द । वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से
होता है । २. बूँद बूँद के रूप में होनेवाली वर्षा । हलकी
बूँदाबादी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना ।

टिपटिपाना—क्रि० प्र० [हि० टिपटिप से नामिक घात] हलकी
वर्षा होना ।

टिपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० तोपना] बाँस, बेंत या मूँज के छिलके
से बना हुआ ढक्कनदार छोटा पिटारा । पिटारी ।

टिपवाना—क्रि० सं० [हि० टीपना] १. दबवाना । सँपवाना ।

मिसवाना । जैसे, पैर टिपवाना । २ पिटवाना । धीरे धीरे प्रहार करना । ३. बिखवाना । टेंकवाना ।

टिपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] टीपने की क्रिया । लेखन । प्रकन ।
उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का संक्षेप और अनुस्मरण रहता है । उसकी टिपाई सच्ची होनी चाहिए ।
—हिंदु० सभ्यता, पृ० १ ।

टिपारा—संज्ञा पुं० [हि० तीन + फ्रा० पारह (= टुकड़ा)] मुकुट के आकार की एक टोपी जिसमें कंलियों की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में । उ०—भोर फूल बीनिवे को गए फूलवाई हैं । सीसनि टिपारो, उपवीत पीन पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भेसवाई हैं ।
—तुलसी (शब्द०) ।

टिपिर टिपिर—क्रि० वि० [प्रनु०] टिपटिप की ध्वनि । हवा के साथ पानी की बूँदों के गिरने की ध्वनि । उ०—बूँदें टिपिर टिपिर टपकी, दल बादल से ।—कवासि, पृ० ४५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

टिपुर—संज्ञा पुं० [देश०] १ गुमान । अभिमान । गुडर । २ बहुत अधिक आचार विचार । पालट । झाडबर ।

टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । २ किसी घटना के संबंध में समाचारपत्रों में संपादक की ओर से लिखा जाने वाला छोटा लेख ।

टिप्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. टीका । व्याख्या । २ जन्मकुंडली । जन्मपत्री ।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाहसंबंध स्थिर करने के लिये बर कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान ।

टिप्पनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण । टीका । व्याख्या । उ०—संपादक लोग अपनी अपनी टिप्पनियों में इसपर शोक सूचित करते.....
—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२ ।

टिप्पसा—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिप्रायसाधन का उग । युक्ति ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—जमाना ।—बैठना ।—भिडाना ।—लगना । विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिप्पा(७)—संज्ञा पुं० [?] १. घावा । उ०—छुटे सठब सिपे करे दिम टिप्पे, सबे सनु दिपे कहूँ हैं न दिपे ।—पद्माकर प्र०, पृ० ११ । २ टिप्पस । युक्ति ।

टिप्पा(८)—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुषेन्द्रिय । लिङ्ग ।—(मणिलि) ।

टिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. उंगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ चिह्न । २. ताश की बुटी ।

विशेष—दे० 'टिक्की' ।

टिफिन—संज्ञा स्त्री० [फ्रं० टिफिन] अंगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान ।

टिबरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी ।

टिबिल—संज्ञा पुं० [सं० टिबुल] मेज । उ०—नाक पर चरमा देगे,

कौटा और चिमटे से टिबिल पर खाएँगे ।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

टिब्बा—संज्ञा पुं० [हि० टीला] दे० 'टीला' । उ०—जोनसार और गढ़वाल की नाग टिब्बा श्रृंखला सब भीतरी श्रृंखला के पहाड़ों के नमूने हैं ।—भा० भू०, पृ० १११ ।

टिमकना—क्रि० प्र० [देश०] १. चकना । ठहरना । २. चमकना । प्रकाशयुक्त होना ।

टिमकी—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. छोटा मोटा बरतन । २. बच्चों का पेट ।

टिमटिमा—वि० [हि० टिमटिमाना] मद्धिम या मद (प्रकाश) । उ०—टिमटिम दीपक के प्रकाश में पड़ते निज गोपी शिशुपल ।
—रेणुका, पृ० १० ।

टिमटिमाना—क्रि० प्र० [सं० तिम (= ठंडा होना)] १ (दीपक का) मद मद जलना । क्षीण प्रकाश देना । जैसे,—कोठरी में एक बोया टिमटिमा रहा था । २. समान बंधी हुई लो के साथ न जलना । बुझने पर हो-होकर जलना । क्लिप्तमिलान । जैसे,—दीपक टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है ।

मुहा०—माँख टिमटिमाना = माँख को थोड़ा थोड़ा खोलकर फिर बंद कर लेना ।

२ मरने के निकट होना । कुछ ही घड़ी के लिये और जीना ।

टिमटिम्यो—संज्ञा पुं० [देश०] ढोल की तरह का एक बाजा । उ०—गृहा के मंदिर टिमटिम्यो, बाजाया ।—दक्खिनी०, पृ० ७३ ।

टिमाक—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव । सिंगार । ठसक । (स्त्रि०) ।

टिमिला—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० टिमिली] लड़का । छोकरा ।

टिमिली—संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की । छोकरा ।

टिम्मा—वि० [देश०] छोटे डोल डोल का । नाटा । ठंगना । बोना ।

टिर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टर' ।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री० [हि० टिर + फिस] चींचपड़ । प्रतिवाद । विरोध । बात न मानने की ठिठाई । जैसे,—सीधे से जो कहते हैं वह करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार बैठेंगे ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिरिकवाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रं० ट्रिक + वाजी] चालाकी । फरेब । उ०—तुम हमको टिरिकवाजी दिखाती हो ।—मेला०, पृ० ३५६ ।

टिरी—वि० [हि० टरी] दे० 'टरी' ।

टिरीना—क्रि० प्र० [प्रनु०] दे० 'टरीना' । उ०—माया को कस के एक पप्पड़ लगाया तो वह टिरीने लगी ।—चंद कु०, भा० १, पृ० १४ ।

टिलटिलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] पतला दस्त फिरना । दस्त माना ।

टिलटिली—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] पतला दस्त फिरने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—माना ।—घुटना ।

टिलिया—सहा पु० [दे०] १. सड़की का वह टुकड़ा जो छोटा, गँठोला घोर टेढ़ा हो । गठोला घोर टेढ़ा मेढ़ा मुँहा । २. नाटा या ठिगना घादमी । ३. चापलूस घादमी ।

टिलियाँ—सहा स्त्री० [दे०] १. छोटी मुर्गी । २. मुर्गी का बच्चा ।

टिलोलिली—सहा स्त्री० [प्र०] बीच की उँगली हिसा हिसाकर चिड़ाने का शब्द ।—(सड़के) ।

विशेष—जब एक सड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में भ्रूतकार्य होता है, तब दूसरे सड़के उसके सामने हथेली सोझ करके घोर बीच की उँगली हिसाकर 'टिलोलिली' कहकर चिड़ाते हैं ।

टिलेहू—सहा पु० [दे०] एक प्रकार का नेवला जिसके घरोर ये दुर्गंध निकलती है ।

विशेष—इसका सिर सुपर के ऐसा घोर दुम बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बल चलता है घोर अपने सुपन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमाना, जावा आदि टापुओं में यह पाया जाता है ।

टिलोरियाँ—सहा स्त्री० [दे०] मुर्गी का बच्चा ।

टिल्ला—सहा पु० [हि० ठेलना] धक्का । टकोर । चोट ।—(नाजार्) ।
यौ०—टिल्लेनबीछी ।

टिल्लेबाजी—सहा स्त्री० [हि० टिल्लो + बा० नबीछी] १. निकृष्ट सेवा । नीच सेवा । २. व्यय का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निठल्लापन । ३. हीसाहवासी । टाल-मटल । बहाना ।

क्रि० प्र०—करना ।

टिसुआँ—सहा पु० [सं० पशु] माँस ।—(पजाबी) ।

टिहुका—सहा स्त्री० [दे०] १. ठिठक । दक्कन । २. चौकना । ३. चमक । ४. छटना । ५. रोना । ६. रदन । ७. कोयल की कूक ।

टिहुकना—क्रि० प्र० [दे०] १. ठिठकना । २. चौकना । ३. छटना । ४. चमकना । ५. रोना । ६. कोयल का कूकना ।

टिहुकारा—सहा स्त्री० [दे०] कोयल की कूक ।

टिहुकारना [टिहु]—क्रि० प्र० [हि० टिहुकार से नाभिक बातु] कोयल का कूकना ।

टिहुनी—सहा स्त्री० [सं० पुण्ड, हि० पुटना] घुटना । २. कोहनी ।

टिहुका—सहा स्त्री० [दे०] चौकने की क्रिया या भाव । चौक । झनक । उ०—एक ताग बनवल, दूसर दैल दूटी । बिसरे काटस, उठलि टिहुकी ।—कबीर (शब्द०) ।

टिहुकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टिहुका' ।

टीगाँ—सहा पु० [दे०] मय । योनि ।

टीटी—सहा स्त्री० [प्र०] एक विशेष प्रकार की ज्वनि । टी टी की ज्वनि । उ०—तब एकाकी जग कोई तिनकों के बदीबर में । कर टीटीं चुप हो बैठा । अपने सुने पिजर में ।—वीर०, पृ० २५ ।

टीह—सहा पु० [सं० टिएडस (= बेंकसी)] रक्त में बाँधने की हुंफिया ।

टीहसी—सहा स्त्री० [सं० टिएडस] कड़की की आठि की एक वेत जिसमें बोल मोम एक लपटे हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टीह—सहा पु० [दे०] १. बाँठा घुमाने का सूँटा । २. दे० 'टिह' ।

टीही—सहा स्त्री० [हि०] दे० 'टिही' । उ०—जिमि टीही दम नुहा समाई ।—दुतरी (शब्द०) ।

टी—सहा स्त्री० [सं०] पाप ।

टीक—सहा स्त्री० [सं० टिकक] १. गले में पहनने का घोंने का एक गहना जो छप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । २. माँके में पहनने का घोंने का एक गहना ।

टी गार्डन—[सं० टी (= बाग), + गार्डन (= बाग)] वह जमीन जहाँ बाग होती है । बाग बगीचा । जैसे,—भासाम के टी गार्डन के फूलियों की दशा खोजनीय घोर कल्याणकर है ।

टीकठा—सहा पु० [हि० टिकना] रोड़ की हड्डी ।

टीकन—सहा पु० [हि० टिकना] गूनी । चाँद । वह संभा या सड़की लकड़ी जो किसी मार को समाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा०—टीकन देना = बड़ों पौधों को सीधा घोर सुरोत रखने के लिये गूनी लगाना ।

टीकना—क्रि० प्र० [हि० टीका] १. टीका लगाना । टिकन देना । २. जँघली में रंग आदि पोतकर चिह्न या रेखा बनाना ।

टीका—सहा पु० [सं० टिकक] १. वह चिह्न जो जँघली में कोला जदन, रोली, केसर, मिट्टी आदि पोतकर मलक, बाहु आदि जगों पर शृंगार आदि या सांप्रदायिक संकेत के लिये लगाना जाता है । टिकक ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टीका टाकना = बड़ों को बतियान करने के पहले टीका लगाना । उ०—धेरी लाए मेरी लाए बकरी टीका टाके ।—कबीर व०, मा० ३, पृ० ५२ । टीका देना = टीका लगाना । माँके पर चिह्न नुए जदन आदि से चिह्न बनाना ।

विशेष—टीका पूजन के समय तथा मोक शुभ अवसरों पर लगाना जाता है । माँका के समय भी जानेबाने के शुभ के लिये उसके माँके पर टीका लगाते हैं ।

२. विवाह स्थिर होने की रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोच बर के माँके में टिकक लगाते हैं घोर कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोचों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समय माना जाता है । टिकक ।

क्रि० प्र०—बड़ना ।—बड़ना ।—भेजना ।

३. दोनों भाँ के बीच माँके का मम्म बाग (जहाँ टीका लगाते हैं) । ४. किसी समुदाय का चिरोमलि । (किसी कुल, मजसी या जनसमूह में) श्रेष्ठ पुरुष । उ०—समाधान करि सो सबही का । मयज जहाँ दिनकर कुल टीका ।—दुतरी (शब्द०) । ५. राजतिलक । राजसिंहासन या मही पर बैठने का कृत्य ।

कि० प्र०—देना ।—होना ।

१† वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो । युवराज । जैसे, टीका साहब । ७. प्राधिपत्य का चिह्न । प्रधानता की छाप । जैसे,—क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है ?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला । मनोला । जैसे,—क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा ? —(स्त्रि०) ।

८. वह श्रेष्ठ जो राजा या जमींदार को रीयत या भूसामी देते हैं ।

९. सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं । १०. थोड़े की दोबोई भाँलों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है । ११. घन्टा । दाग । चिह्न । १२. किसी रोम से बचाने के लिये उस रोम के चेष या रस से बनी मोषधि को लेकर किसी के शरीर में सुईयों से धुमाकर प्रविष्ट करने की क्रिया । जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका ।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषतः शीतला रोम से बचाने के लिये ही इस देश में होता है । पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर लेकर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोदकर उसका संचार करते थे । संचाल लोग प्राग से शरीर में फफोले डालकर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं । इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है, उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला भी आती है और डर भी रहता है । सन् १७६८ में डा० जेनर नामक एक अंगरेज ने गोयन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने की युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है । इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सब देशों में फैल गया । भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंग्रेजी शासनकाल से हुआ है । कुछ लोगों का मत है कि गोयन शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी । इस बात के प्रमाण में अम्बतारि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का एक श्लोक देते हैं—

धेनुस्तन्यमसूरिका नराणां च मसूरिका ।
तज्जलं बाहुमुलान्च शस्त्रातेन गृहीतवान् ॥
बाहुमुले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च ।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वर संभवम् ॥

टीका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का ग्रंथ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ । व्याख्या । ग्रंथ का विवरण । विवृति । जैसे, रामायण की टीका, सप्तसई की टीका ।

टीकाई—वि० [हि० टीका] टीका लेनेवाला । टीका किया हुआ । उ०—लासवास जी के बालकृष्ण जो टीकाई चले गद्दी बैठे ।

—सुंदर प्र०, भा० १, (जी०), पृ० १४० ।

टीकाकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार । किसी ग्रंथ का ग्रंथ लिखनेवाला । वृत्तिकार ।

टीका टिप्पणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टीका + टिप्पणी] १. मालोचना । तर्क वितर्क । २. अप्रशंसा । निंदा ।

टीकारो(७)—वि० [हि० टीका] टीकाई । प्रधान । सर्वोच्च । उ०—टीकारो मालक तिकी श्रीकारो मुख पास ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७७ ।

टीली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टीका] १. टिकुली । २. टिकिया । टिकी । ३. टीका । उ०—चंद्रमंगा से नीच लगावत विष के टीकी ।—नंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

टीकुरी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. ऊँची पृथ्वी । नदी के बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि । २. जंगल । वन ।

टीटा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है । टना ।

टीहरि(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टीह' । उ०—बाँधे ज्यूँ भरहर की टीहरि, भावत जात बिगूते ।—कबीर प्र०, पृ० १५५ ।

टीड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिड़ी' । उ०—(क) कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई ।—मानस, ६।६६ । (ख) मानो टीड़ी दल गिरत सभ्र मरुण की बार ।—शकुंतला, पृ० २५ ।

टीन—सञ्ज्ञा पुं० [अंग० टिन] १. राँगा । २. राँगे की कलई की हुई लोहे की पतली चद्दर । ३. इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा ।

टीप^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टीपना] १. हाथ से दबाने की क्रिया या भाव । दबाव । दाब । २. हलका प्रहार । धीरे धीरे ठोक्ने की क्रिया या भाव । ३. गच कूटने का काम । गच की पिटाई । ४. बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों में मसाला देकर नहले से बनाई हुई लकीर । ५. टंकार । ध्वनि । धोर शब्द । ६. गाने में ऊँचा स्वर । धोर की तान ।

कि० प्र०—सगाना ।

७. हाथी के शरीर पर लेप करने की मोषधि । ६. दूध और पानी का शीरा जिससे चीनी का मेल छंटता है । ९. स्मरण के लिये किसी बात को भटपट लिख लेने की क्रिया । टाँक सेने का काम । नोट । १०. वह कागज जिसपर महाजन को मूस और ब्याज के बदले में फसल के समय भनाज मादि देने का इकरार लिखा रहता है । ११. दस्तावेज । १२. हुंडी । चेक । १३. सेना का एक भाग । कंपनी । १४. गजीफे के खेल में विपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया । १५. लड़की या लड़के की अम्पनी । कुँबली । टिप्पन ।

टीप^२—वि० छोटी का । सबसे अच्छा । सुनिचा । बढ़िया । —(स्त्रि०) ।

टीपटाप—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठाटबाट । सजावट । तड़क भड़क । दिखावट । २. दरारों या सधियों में मसाला भरना ।

टीपणा(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] दे० 'टीपना' । उ०—पोथी पुस्तक टीपणो जग पठित को काम ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ ।

टीपदार—वि० [हि० टीप + दार (प्रत्यय)] सुरीला । मधुर । उ०—बल्लाह क्या टीपदार आवाज है, बस यह मासुम पड़ता है कि कोई बीन बजा रहा है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

टीपन^१—सका श्री० [हि० टीपना] शरीर में वह स्थान जहाँ कटा या ककड़ धुने से मांस ऊँचा होकर कड़ा हो जाता है। गठ। टीका। घट्टा।

टीपन^२—सका पु० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। टीपना।

टीपना^३—क्रि० सं० [टिपन (= फेंकना)] १. हाथ या सँगसी से दबाना। चापना। मसखना। जैसे, पेर टीपना। २. धीरे धीरे ठोकना। हलका प्रहार करना। ३. ऊँचे स्वर में गाना। ४. गजों के खेल में दो पक्षों से एक पक्षा जीतना। ५. बीबाब या फरस की बरारों को मसाले से भरना।

टीपना^४—क्रि० सं० [सं० टिप्पनी] सिखा लेना। ठीक लेना। शक्ति कर लेना। एज कर लेना।

टीपना^५—सका श्री० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। उ०—श्रीमत् गंगाधर राव की जन्मपत्री मिलाकर देवू सायब टमकर छा जाय। टीपना प्राप्त हो गई। मिल गई।—भाषी०, पु० ४२।

टीसा—सका पु० [हि० टीसा] टीसा। हूह। भीटा।

टीम—सका श्री० [सं०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटाम—सका श्री० [थो०] १. जनाव सिंगार। सजापट। २. ठाठवाट। तख मड़क। उ०—टीमटाम बाहर बहुतों दिवत बासी से बंधा।—कबीर रा०, भा० ४, पु० २५।

टीसा—सका पु० [सं० उठोसा (= मार)] १. पुष्पो का वह उमरा हुआ भाग जो घासपास के तल से ऊँचा हो। हूह। भीटा। २. मिट्टी या बालू का ऊँचा ढेर। घुघ। ३. छोटी पहाड़ी। ४. साधुओं का मठ।

टीशन—सका श्री० [प्र० स्टेसन] रेलगाड़ी के ठहरने का स्थान। स्टेसन। उ०—पुरेनिया टीशन पर गाड़ी पहुँची थी नहीं थी।—मैसा०, पु० ७।

टीस^१—सका श्री० [देश०] पुमती हुई पीड़ा। रह रहकर उठनेवाला दर्द। कसक। बसक। हूह।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—टीस उठना=दर्द शुरू होना। रह रहकर पीड़ा होना। (पाव पावि का) टीस मारना=रह रहकर दर्द करना।

टीस^२—सका श्री० [म० स्विच] किताब की घिसाई। जुबबसी।

टीसना—क्रि० प्र० [हि० टीस] १. पुमती पीड़ा होना। रह रहकर दर्द उठना। कसक होना। पाव फोड़े पावि का दर्द करना।

टुंगा^१—सका पु० [सं० उत्तुङ्ग] पहाड़ की चोटी।

टुच—वि० [सं० तुच्छ] धुन। तुच्छ। दुष्पा।

मुहा०—टुच मिठाना=पोड़ी पूँजी से काम करना। टुच लड़ाना=(१) पोड़ी पूँजी से काम प्रारंभ करना। (२) पोड़ी पूँजी से जुझा खेलना। धीरे धीरे जीतना।

टुंटा—वि० [सं० वण्ट या हि० टूटा] १. जिसका हाथ कटा हो। बिना हाथ का। लुलो। २. टूँठा।

टुंटेक^१—सका पु० [सं० टुण्टेक] १. शयिताक। सोना पाठा। बालू। टेट। २. काँसा तैर।

उ०—वि० १. छोटा। २. क्रूर। दुष्ट। ३. कठोर [क्रि०]।

टुंटेक^२—सका श्री० [सं० टुण्टेक] पाठा।

टुंठ—सका पु० [सं० वण्ट (= बिना तिर का पट), या स्पाण्ड (= क्षिप्त वृद्धा)] १. वह पेड़ जिसकी शाख टूटनी मादि कट गई हो। टिपन वृद्ध। टूँठ। २. वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. एक प्रकार का श्रेष्ठ जिसका विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह धोके पर चमार होकर मोर घपना कटा तिर प्राग रसकर रात को निद्रमत्ता है। ५. शक। टुंठरा। उ०—यह मुझ टूँठ टूँठ किया। निरमं नम नाइक मध्यस्थि।—र.र.०, पु० २२०।

टुंठा^१—वि० [हि० टु] [श्री० पन्ना० टुंठो] १. जिसकी शाख टूटनी मादि कट गई हो। टूँठा। २. जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लुलो। टुंठा। ३. (बैठ) जिसका पींग टूटा हो। एक सीत का बैठ। टूँठा।

टुंठा^२—सका पु० १. हाथ कटा मादनी। लुना मनुष्य। २. एक चींग का बैठ।

टुंठा^३—सका श्री० [सं० तुण्ड] बालि। टुंठा।

टुंठी^१—सका श्री० [सं० वण्ट] बाहुबल। नुना। मुक्क।

मुहा०—टुंठीया बीपना या रुसना=मुक्के बीपना। टुंठीया बिपना=मुक्के बीपना। हलकड़ी पहा।

टुंठी^२—वि० श्री० [सं० स्पाण्ड, हि० टूँट, टूँट, टूँटा, टूँठो] जिसका हाथ न हो। कटे हाथ को। लुलो।

टुंठा^३—सका पु० [म०] बादपेरिया रुबतर में स्थित एक हिमप्रदेश।

टुंगना—क्रि० सं० [हि० टुंगा] १. (पीपायों का) टूटनी के तिर की पत्तियों को दाँव से बाटना। कुतरना। २. कुतर कर पचाना। पोड़ा सा दाँवकर खाना।

संयो० क्रि०—खाना।—लेना।

टुइया^१—सका श्री० [दच०] छोटी आवि का मुसा या तोता। गुपी।

विशेष—इसकी पीप बीनी मोर गरदन बंगनी रंग की होती है।

टुइया^२—वि० डेगना। नाटा। बीना।

टुइल—सका श्री० [म० टिल] एक प्रकार का मोटा मुत्तायम सूती कपड़ा।

टुक^१—वि० [सं० स्तोक (= पोड़ा)] पोड़ा। जरा। क्विच। तनिक। मुहा०—टुक सा=जरा सा। पोड़ा सा।

टुक^२—क्रि० वि० पोड़ा। जरा। तनिक। जैसे,—टुक इपर देखो। उ०—मात, कातर न हो, मही, टुक पीरख धारो।—साकेत, पु० ४०४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि० वि० वत् ही अधिक होता है। कभी कभी यह पों ही बेपरवाई करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है। जैसे,—टुक जाकर देखो तो।

टुक टुक^१—क्रि० वि० [प्रनु०] ३० 'टुकुर टुकुर'।

टुक टुक^२—क्रि० वि० [हि० टुकड़ा] टुक टुक। टुकड़े टुकड़े। उ०—दरजी ने टुक टुक कीन्ह दरद नहि जाना हो।—धरनी०, पु० ३६।

क्रि० प्र०—करना।

दुकड़गदा

दुकड़गदा^१—सच्चा पुं [हि० दुकड़ा + प्रा० गदा] वह मिलमगा जो घर घर रोटी का दुकड़ा माँगकर खाता हो । मिचारी । मँगता ।

दुकड़गदा^२—वि० १ तुच्छ । २ अत्यंत निर्धन । दरिद्र । कंगाल ।

दुकड़गदाई^३—सच्चा पुं [हि० दुकड़ा + प्रा० गदा + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'दुकड़गदा' ।

दुकड़गदाई^४—सच्चा स्त्री० दुकड़ा माँगने का काम ।

दुकड़तोड़^५—सच्चा पुं [हि० दुकड़ा + तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ दुकड़ा खाकर रहनेवाला भ्रातृमी । दूसरे का भाग्यित मनुष्य ।

दुकड़ा^६—सच्चा पुं [सं० स्तोत्र (= घोड़ा), हि० दुक, दुक + डा (प्रत्य०), [स्त्री० प्रत्या० दुकड़ी] १ किसी वस्तु का वह भाग जो उससे हट फूट या कट छंटकर भलग हो गया हो । खंड । छिन्न भग्न । रेखा । जैसे, रोटी का दुकड़ा, कागज या कपड़े का दुकड़ा, परावर या ईंट का दुकड़ा ।

मुहा०—दुकड़े उठाना = काटकर कई भाग करना । दुकड़े करना = काटकर या तोड़कर कई भाग करना । खंड करना । दुकड़े दुकड़े करना = काटकर खंड खंड करना । (किसी वस्तु को) धूर धूर करना । खंडित करना ।

२ बिह्व मादि के द्वारा विभक्त भग्न । भाग । जैसे, खेत का दुकड़ा । ३ रोटी का दुकड़ा । रोटी का तोड़ा हुआ भग्न । भाग । कोर ।

मुहा०—(दूसरे का) दुकड़ा तोड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खाना । दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना । जैसे,—वह समुराल का दुकड़ा तोड़ता है । दुकड़ा तोड़कर जवाब देना = दे० 'दुकड़ा सा जवाब देना' । दुकड़ा देना = मिलमगे को रोटी या खाना देना । (दूसरे के) दुकड़ों पर पड़ना = दूसरे की दी हुई झाँकर रहना । दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना । पराई कमाई पर गुजर करना । जैसे,—वह समुराल के दुकड़े पर पड़ा है । दुकड़ा माँगना = भोख माँगना । दुकड़ा सा जवाब देना = भट्ट और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना । सकोच नही करना । साफ इनकार करना । लगी चिपटी न रहना । 'दुकड़ा सा जवाब देना' । दुकड़े दुकड़े को मुहताज होना = प्रत्यक्ष दरिद्रावस्था को पहुँच जाना । उ०—मगर जूए की सत पी सब दीलत दीव पर रख दी तो दुकड़े दुकड़े को मुहताज करे तो क्या करे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६२ ।

दुकड़ी^७—सच्चा स्त्री० [हि० दुकड़ा] १ छोटा दुकड़ा । खंड । जैसे, एक दुकड़ी नमक, काँच की दुकड़ी । २ धान । कपड़े का दुकड़ा । ३ समुदाय । मबली । दल । जैसे, यारों की दुकड़ी । ४ पशु पक्षियों का दल । झुंड । गोल । जरया । जैसे, कबूतरों की दुकड़ी । ५ सेना का एक भग्न । हिस्सा । कपनी । ६ स्त्रियों का लहंगा । ७ कातिक के स्नान का मेला ।

दुकनाई^८—सच्चा पुं [हि०] दे० 'दोकनी' ।

दुकनाई^९—सच्चा पुं [हि० दुकाना (प्रत्य०)] दुकड़ा । दुका ।

दुकनी^{१०}—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'दोकनी' ।

दुकनी^{११}—सच्चा स्त्री० [हि० दुक + नी (प्रत्य०)] छोटा दुकड़ा ।

दुकरीया^{१२}—सच्चा स्त्री० [हि० दुकड़ा] छोटा दुकड़ा । दुकड़ी । खंड । दुक । उ०—दरजी और नहि, यह बाँस की दुकरिया ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५१ ।

दुक्करी^{१३}—सच्चा स्त्री० [दे०] सत्त्वम की तरह का एक दुकड़ा ।

दुक्करी^{१४}—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'दुकड़ी' ।

दुक्कुर दुक्कुर^{१५}—क्रि० वि० [मनु०] निनिमेष । बिना पलक गिराए हुए । उ०—उदुगण अपना रूप देखते दुक्कुर दुक्कुर से ।—साकेत, पृ० ४०६ ।

मुहा०—दुक्कुर दुक्कुर ताकना = दे० 'दुक्कुर दुक्कुर देखना' । उ०—चिड़ियाएँ सुख से घोंसलों में बैठी दुक्कुर दुक्कुर ताँकतीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६ । दुक्कुर दुक्कुर देखना = खचाई हुई दृष्टि से या विवशता के साथ किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर देखना ।

दुक्का^{१६}—सच्चा पुं [हि० दुकड़ा] १ दुकड़ा । २ चौपाई भाग । उ०—दुइ दुक्क होइ भुमि मद्ध काय ।—हं० रासो, पृ० ८२ ।

दुक्कड़ी^{१७}—सच्चा पुं [सं० स्तोत्र] 'दुकड़ा' ।

दुक्करी^{१८}—सच्चा पुं [सं० स्तोत्र] दे० 'दुकड़ा' ।

दुक्का^{१९}—सच्चा पुं [हि०] १ दे० 'दुकड़ा' ।

मुहा०—दुक्का सा जवाब देना = दे० 'दुकड़ा सा जवाब देना' । २ चौपाई भाग या भग्न ।

दुक्की^{२०}—सच्चा स्त्री० [हि०] १ छोटा दुकड़ा । २ चौपाई भग्न ।

दुगर दुगर^{२१}—क्रि० वि० [हि०] दे० 'दुक्कुर दुक्कुर' । उ०—दुगर दुगर वेस्या करे सुदर बिरहा ऐन ।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० ६८३ ।

दुधलाना^{२२}—क्रि० प्र० [देश०] १ चुमलाना । मुँह में रखकर घीरे घीरे चुमना । २ जुगाली करना ।

दुचकारा^{२३}—सच्चा पुं [हि० दुच्चा] निदा । दुच्ची बात । अपशब्द । उ०—तब अपने मुहले में लोटती समय कई मसखरियाँ, बोलीबोली घोर दुचकारे उसे सुनते पडते ।—प्रमिशता, पृ० १२७ ।

दुच्चा^{२४}—वि० [सं० तुच्छ, या देश०] १ तुच्छ । मोछा । नीच । नीनाशय । छिछोरा । खूब प्रकृति का । कमीना । शोहवा । जैसे, दुच्चा भ्रातृमी । २ छोटा या वेनाप का (कपड़ा) ।

दुटका^{२५}—सच्चा पुं [हि०] दे० 'दोटका' ।

दुट्टुट्टु^{२६}—सच्चा स्त्री० [मनु०] चिड़ियों के चोखने की एक प्रकार की की ध्वनि । उ०—हैं चहक रही चिड़ियाँ टी वी टी—दुट्टुट्टु । युगात्, पृ० १२ ।

दुटना^{२७}—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दटना' । उ०—फिर फिर चितु उत ही रहतु टुटी लाज की लाव । भग्न भग्न छत्रि और मैं भयी और की नाव ।—विहारी र०, दो० १० ।

दुटना^{२८}—वि० [हि०] [वि० स्त्री० दुदनी] दूटनेवाला ।

दुटनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टोंटी] झारी या गड़वे की पतली नली । छोटी टोंटी ।

दुटपूँजिया—वि० [हि० दूटी + पूँजी] थोड़ी पूँजी का । जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो ।

दुटरूँ—सञ्ज्ञा पुं० [धनु०] छोटी पड़की । छोटी फास्ता ।

मुहा०—दुटरूँ सा = धकेला । एकाकी ।

दुटरूँ दूँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] पड़की के बोलने का शब्द । पेंडकी या फास्ता की बोली ।

दुटरूँ दूँ—वि० १ धकेला । एकाकी । जैसे,—सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही दुटरूँ दूँ रह गया हूँ । २. हुबचा पतला । कमजोर । जैसे,—बेचारे दुटरूँ दूँ भावमी कहाँ तक करे ।

दुटहा—वि० [हि० दूटना] [वि० स्त्री० दूटही] १. दूबा हुआ । २. दूटे (हार्य प्रादि) वाला । ३. क्षातिवर्धित ।

दुटाना—क्रि० प्र० [हि० दूटना का प्रेरणा०] दूबने के लिये प्रेरित करना । दुबवा देना । उ० बरन को बारण के पक्ष से, काजे तारे को टूटा दिया ।—मर्चन, पृ० ३८ ।

दुटाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़ा मड़ा हुआ एक बाजा ।

दुटियल—वि० [हि० दूट + इयल (प्रत्य०)] १. टूटा फूटा हुआ या टूटने फूटनेवाला । जीर्णोद्धार । २. कमजोर । निर्बल ।

दुटुहा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

दुटेला—वि० [हि० दूट + एला (प्रत्य०)] टूटा हुआ ।—(लश०) ।

दुटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दूटना' । उ०—पाछो पहारे पुहवि कप गिरि सेहर दुटइ ।—कीर्ति, पृ० १०२ ।

दुड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तुड़] १. नाभि । २. ठोड़ी ।

दुड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] टुकड़ी । डली ।

दुनकी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बार बार मूत्रलाप होने और उसके साथ धातु पिरने का रोग ।

दुनका—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक परदार कीड़ा जो घास की हानि पहुँचाता है ।

दुनगा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तनु (= पतला) + घण (= घमला) - तन्वघ] [स्त्री० दुनगी] बाल या टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का घमला भाग ।

दुनगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दुनगा] बाल या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं । टहनी का घमला भाग ।

दुनदुना—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक बमकीन परवान जो मैदे की चिकनी लकी बसियों को घी में तलकर बनाया जाता है ।

दुनदुना—क्रि० प्र० [हि० दुनदुन] घटियों के बजने की आवाज । दुनदुन की ध्वनि । उ०—घोर ध्वनि ? किसनी न जाने घटियाँ, दुनदुनाती थीं, न जाने शंख किनने ।—हरी प्रसाद, पृ० २० ।

दुनहाया—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० दुनहाई] दे० 'टोनहाया' ।

दुनाका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली ।

दुनियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन ।

दुनिहाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोनहाई' । उ०—दुनिहाई सब टोच में रही छु सीति कहाय । सुतो ऐँचि पिय प्राप स्यों करो भवोत्थित प्राइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुनिहाया—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोनहाया' ।

दुन्ना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] वह नाल जिसमें फल लगते हैं और लटकते हैं । जैसे, रुद्र का दुन्ना ।

दुपकना—क्रि० प्र० [धनु०] १. धीरे से काटना या डंक मारना । २. किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना । झुगझी खाना । ध्वांछित रूप से बीच में पड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दुवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दूबना] गोता । डुब्नी । उ०—दुवी देख पाण में, बिठो हुँकेई ।—बादल, पृ० ६७ ।

दुमकना—क्रि० प्र० [धनु०] दे० 'टपकना' ।

दुम्मा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बप पाने की एक गैरमामूली रसीद ।

दुरन—क्रि० प्र० [पं० दुर] चलना । उ०—शिव शांति सरोवरि संत समाने, फिरन दुरन के गवन मिटाने ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

दुरी—सञ्ज्ञा पुं० [?] १. टुकड़ा । डली । दाना । खा । कण । २. मोटे प्रनाज का दाना । ज्वार, बाजरे प्रादि का दाना ।

दुलकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दुलकना' ।

दुलड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पुरबी बंगाल और मासाम में होता है ।

दुसकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'टसकना' ।

दूँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] पाधने का शब्द ।

दूँक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दूक' ।

दूँगना—क्रि० प्र० [हि० दूगना] १. (चौपायों का) टहनी के सिरे को कोमल पत्तियों को दाँत से काटना । कुतरना । २. थोड़ा सा काटकर खाना । कुतरकर खाना ।

संयो० क्रि०—बाधा ।—देना ।

दूँगा—वि० [सं० दुङ्ग] कँधा ।

दूँटा—वि० [हि०] जिसके हाथ दूटे हुए या खराब हों । उ०—दूँटा पकरि सठावे पवंत पंगुल करै नृप्य महनाइ ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५०८ ।

दूँड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० प्रत्य० दूँड़ी] १. मच्छड़, मक्खी, टिड्डे प्रादि कीड़ों के मुँह के भागे बिकली हुई बाल की तरह की पतली बधियाँ जिन्हें धँसाकर वे रक्त प्रादि चूसते हैं । २. जो, गेहूँ प्रादि की बाल में दाँत के कोश के सिरे पर बिकला हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव । सींग । सीपूर ।

दूँड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. जो, गेहूँ, धान प्रादि की बाल में दाँतों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली नोच । सीगा । २. ठोड़ी । नाभि । ३. गाजर, मूखी प्रादि की नोक । ४. किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक ।

दूधरा—वि० [देश०] वह असहाय बालक जिसकी माँ मर गई हो ।
दूका—संज्ञ पुं० [सं० स्तोक] दुकड़ा । खंड । उ०—तिहि मारि
करे तलकास दूक ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

यो०—दूक दूक । उ०—मन को माछें पटक के, दूक दूक होइ
जाय ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

मुहा०—दो दूक करना = स्पष्ट करना । किसी प्रकार का भेद
न रहने देना । = दो दूक जवाब देना = स्पष्ट जवाब देना ।
साफ साफ नकार देना ।

दूकड़ा(१)—संज्ञ पुं० [हि०] दे० 'दुकड़ा' । उ०—दूकड़ा दूकड़ा होई
जावे ।—कबीर० दे०, पृ० २३ ।

दूकरा—संज्ञ पुं० [हि०] दे० 'दुकड़ा' ।

दूका—संज्ञ पुं० [हि० दूक] १. दुकड़ा । २. रोटो का दुकड़ा ।
उ०—केचित् घर घर मांगहि दूका । बासी कुसी कखा सूका ।

—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ६१ । ३. रोटो का चौपाई
भाग । ४. मिठा । भीख । उ०—बर तन राख लगाय चाह
भर, खाय घरन के दूका ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ६४ ।

क्रि० प्र०—मांगना ।

दूकी—संज्ञ स्त्री० [हि० दूक] १. दूक । खंड । दुकड़ा । २. अँगिया
के मुलकट के ऊपर की चकती ।

दूक्यो(१)—संज्ञ पुं० [(हि०)] मालु ।

दूटी—संज्ञ स्त्री० [सं० द्रुति, हि० दूटना] १. वह भग जो दूटकर
भलग हो गया हो । खंड । दूटन ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यो०—दूटपूट ।

२. दूटने का भाव । ३. लिखावट में वह मूल से छूटा हुआ शब्द
या वाक्य जो पंक्ति से किनारे पर लिख दिया जाता है ।
उ०—मो विनवी पंडितन मन भजा । दूट सँवारहु मेढबहु
सजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दूटे—संज्ञ पुं० टोटा । घाटा । कमी ।

मुहा०—दूट में पड़ना = घाटे में पड़ना । हानि उठाना । कमी
होना । उ०—दूट में जाय पड़ नहीं कोई । दूटकर भी कमर
न दूट सके ।—सुमते०, पृ० ४७ ।

दूटदार—वि० [हि० दूटना] दूटनेवाला । जोड़ पर से खुलने बंद होने-
वाला (कुर्सी, टेबल आदि) ।

दूटना—क्रि० प्र० [सं० द्रुट] १. किसी वस्तु का प्राघात, दबाव या
भटके के द्वारा दो या कई भागों में एकबारगी विभक्त
होना । टुकड़े टुकड़े होना । खंडित होना । भग्न होना । जैसे,—
छड़ी दूटना, रस्सी दूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यो०—दूटना फूटना ।

विशेष—'दूटना' और 'फूटना' क्रिया में यह अंतर है कि फूटना
खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है, विशेषतः ऐसी जिनके
भीतर प्रवकाश या वासी जगह रहती है । जैसे, घड़ा

४-३०

फूटना, बरतन फूटना, खपड़े फूटना, तिर फूटना । खकड़ी
आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता ।
पर फूटना के स्थान पर पश्चिमी हिंदी में 'दूटना' का प्रयोग
होता है, जैसे, घड़ा दूटना ।

२. किसी भंग के जोड़ का चलाव जाना । किसी भंग का छोट
खाकर ढीला घोर बेकाम हो जाना । जैसे,—हाथ दूटना,
पैर दूटना । ३. किसी लगातार चलनेवासी वस्तु का रुक
जाना । चलते हुए क्रम का भग होना । विलसिखा बंद होना ।
जारी न रहना । जैसे,—पानी इस प्रकार गिराओ कि धार
न दूटे । ४. किसी भीतर एकबारगी भग से जाना । किसी वस्तु
पर झपटना । झुकना । जैसे, भीस का मांस पर दूटना,
बच्चे का खिलौने पर दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

५. अधिक समुद्र में घाना । एकबारगी बहुत सा भी पड़ना । पिस
पड़ना । जैसे,—दुकान पर ग्राहकों का दूटना, बिपत्ति या
प्रापत्ति दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—दूट दूटकर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना ।
मुसलाधार बरसना ।

६. दल बाँधकर सहसा भाकमण करना । एकबारगी भावा
करना । जैसे, फौज का दुश्मन पर दूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. घनायास कहीं से भा जाना । अकस्मात् प्राप्त होना । जैसे,—
दो ही महीने में इतनी संपत्ति कहीं से दूट पड़ी ? उ०—
भायो हमारे मया करि मोहन मोकों तो मानो महाविधि
दूटो ।—देव । (शब्द०) । ८. पुष्य होना । प्रसंग होना ।
अ्युत होना । भेल में न रहना । जैसे, पंक्ति से दूटना,
गवाह का दूट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. संबंध छूटना । लगाव न रह जाना । जैसे, नाता दूटना ।
मित्रता दूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१०. दुबल होना । कृश होना । दुबसा पड़ना । क्षीण होना ।
जैसे,—(क) वह खाने बिना दूट गया है । (ख) उसका
सारा बस दूट गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—(कुर्से का) पानी दूटना = पानी कम होना ।

११. घनहीन होना । कंगाल होना । बिगड़ जाना । जैसे,—इस
रोजगार में बहुत से महाजन दूट गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१२. चलता न रहना । बंद हो जाना । किसी सस्था, कार्यालय
आदि का न रह जाना । जैसे, स्कूल दूटना, बाजार दूटना,
कोठी दूटना, मुकदमा दूटना

संयो० क्रि०—जाना ।

१३. किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शत्रु के अधिकार में जाना। जैसे, किला दूटना। उ०—मेघनाद उन्हें करड़ खराई। दूट न द्वार परम कठिनाई।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

१४. खप का बाकी पड़ना। वसूल न होना। जैसे,—झभी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे १०) दूटते हैं। १५. टोटा होना। घाटा होना। हानि होना। १६. शरीर में ऐंठन या तनाव लिए हुए पीड़ा होना। जैसे,—बुखार बढ़ने पर जोड़ जोड़ दूटता है।

मुहा०—बदन या धंग दूटना = भंगड़ाई खाना।

१७. पेड़ों से फल का तोड़ा जाना। फलों का इकट्ठा किया जाना। फल उतरना। जैसे, आम दूटना।

दूटा^१—वि० [हि० दूटना] [वि०खी० दूटी] १. टुकड़े किया हुआ। भग्न। खंडित।

यौ०—दूटा फूटा = जीर्ण। बिभ्रम्मा।

मुहा०—दूटी फूटी जवान, बात या बोली = (१) असंबद्ध वाक्य। ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों। जैसे, दूटी फूटी मग्रेजी। उ०—क्या कहें हाले दिल गरीब जंगर। दूटी फूटी जवान है प्यारे।—वि० भा०। २. असंगत वाक्य। उ०—शीत, पित्त कफ कंठ निरोधे रसना दूटी फूटी बात।—सूर (शब्द०)। दूटी बाहू गले पड़ना = अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना। किसी संबंधी का खर्च अपने बिम्बे होना।

२. दुबला। कमजोर। क्षीण। शिथिल। ३. विघटन। दरिद्र। दीन।

दूटा^२—सच्चा पु० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—कर व्योपार सहज है सोदा, दूटा कबहुं न परता।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १०।

दूटा फूटा—वि० [हि० दूटना + फूटना] बिगड़ा हुआ। जिसकी हालत बुरी हो गई हो। उ०—घाप भी उन्हीं दूटे फूटे मवालों में है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६।

दूठना^३—क्रि० प्र० [सं० घुष्ट, प्रा० घुष्ट, हि० दूठ + ना (प्रत्य०)] घुष्ट होना। प्रसन्न होना। उ०—हमसों मिले वर्ष द्वादश दिन चारिक सुप सों दूठे। सूर आपसे प्रावन खेलें ऊधव खेलें कठे।—सूर (शब्द०)।

दूठनि^४—सच्चा स्त्री० [हि० दूठना] संतोष। घुष्टि। प्रसन्नता। उ०—ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटवि सरस्वरजि सुहाई। भजन मिलनि ठूठनि दूठनि किसकनि भवलोंकनि बोलनि बरनि न जाई।—तुलसी (शब्द०)।

दूनरोटी—सच्चा स्त्री० [प्र० टाउन द्यूटी] चुनी।

दूनार्—सच्चा पु० [हि०] दे० 'दोना'।

दूस—सच्चा स्त्री० [अनु० टून टून] गहना पाठा। प्रासूषसु।

यौ०—दूसटाम = (१) गहना पाठा। वस्त्राभूषण। (२) बनाव सिंगार। दूस छल्ला = छोटा मोटा गहना। साधारण गहना।

२. सुंदर स्त्री। ३. धनी स्त्री। मालदार स्त्री। ४. नीची। (बाजार) ५. चालाक और चतुर आदमी। ६. उकसाने या छोड़ने की क्रिया। भटका। धक्का।

मुहा०—दूस देना = कबूतर को छतरी पर से उड़ाना।

७. ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—दूस फारना या तोड़ना = ताना मारना।

दूमना—क्रि० सं० [अनु०] १. धक्का देना। भटका देना। खोदना। २. ताना मारना। व्यंग्य बोलना।

दूरनामेंट—सच्चा पु० [प्र० दूरमिट] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिलता है।

दूल^१—सच्चा पु० [प्र०] मीजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय।

दूल^२—सच्चा पु० [प्र० रदल] ऊँचे पावों की छोटी चौकी जिसपर लड़के बैठते हैं या कोई चीज रखी जाती है। तिपाई।

दूसा^१—सच्चा पु० [सं० तु, (= भूसी) ?] १. मंदार का फल। बोरा। २. रेखा। फुचड़ा। सूत। ३. पक्कड़ का फूल। पाकर का फूल। ४. पतझड़ के बाद टहनियों के सिरे पर पत्तियों का संश्लिष्ट नुकीला आकार जो नीम, पाकर आदि वृक्षों में मिलता है।

दूसा^२—सच्चा पु० [देश०] टुकड़ा। खंड।

दूसी^१—सच्चा स्त्री० [हि० दूसा] कली। बिना खिला हुआ फूल।

टेंकिका—सच्चा स्त्री० [सं० टेङ्किका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

टेंकी—सच्चा स्त्री० [सं० टेङ्की] १. शुद्ध राग का एक भेद। २. एक प्रकार का नृत्य।

टेंपरेचर—सच्चा पु० [प्र०] शरीर या किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है। तापमान। जैसे,—(फ) सवेरे उसका टेंपरेचर लिया था; १०२ डिग्री बुखार था। (ख) इस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेंपरेचर हो गया था।

क्रि० प्र०—लेना।—होना।

टें—सच्चा स्त्री० [अनु०] तोते की बोली। सुए की बोली।

यौ०—टें टें।

मुहा०—टें टें = व्यर्थ की धक्कावाद। हुज्जत। टें होना या बोचना = उसी तरह चटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्ली के पकड़ने पर तोता एक बार टें शब्द निकालकर मर जाता है। भट्ट प्राण छोड़ देना। मर जाना। न बचना।

टेंगड़—सच्चा पु० [हि०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगड़ा—सच्चा पु० [हि०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगन^३—सच्चा पु० [सं० तुएङ] टेंगरा मछली। उ०—संघ सुगंध धरे जल बाढ़े। टेंगन मुवे टोय सब काढ़े।—जायसी (शब्द०)।

टेंगना^४—सच्चा पु० [हि०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगर—सच्चा स्त्री० [सं० तुएङ (= एक मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी मछली दो दाईं हाथ तक लंबी होती है। टेंगरा की तरह इसे भी काटे होते हैं।

टेंगरा—सच्चा स्त्री० [सं० तुएङ (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह भारत के अनेक भागों में, विशेषकर भवघ, बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह ठेढ़ बालिशत सभी तथा सफेद या कुछ कासापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहरा नहीं होता और इसके मुँह के किनारे सभी भूँछें होती हैं। इसके शरीर में तीन काँटे होते हैं, दो भगल भगल और एक पीठ में। क्रुद्ध होने पर यह इन काँटों से मारती है। सबसे बड़ी विलसणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा शब्द निकालती है।

टेंपुना—संज्ञा पुं० [सं० पण्डोवान्] [श्री० टेंपुनी] पुटना।

टेंपुनी—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टेंपुना'।

टेंपुनी—संज्ञा पुं० [हि० टेक] खभा। टेक। चाँड़

टेंट—संज्ञा श्री० [हि० टट+ऐठ] धोती की वह मंजलाकार ऐंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुरी।

मुहा०—टेंट में कुछ होना = पास में कुछ रुपया पैसा होना।

टेंट—संज्ञा श्री० [हि० टेंट] १. कपास की ओढ़। कपास का बोझ जिसमें से रई निकलती है। २. करील का फल। ३. करील। ४. पशुओं के शरीर पर का ऐसा धाव जो ऊपर से देखने में सुखा जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। ५. दे० 'टेंटर'।

टेंटर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेंटर'।

टेंटर—संज्ञा पुं० [देश०] रोग या चोट के कारण घाँव के उले पर का उमरा हुआ मांस। टेंडर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पक्षी।

विशेष—इसकी चोंच बालिशत भर की और पैर ठेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका बदन चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टेंटर—संज्ञा पुं० [हि० टेंट+पार (प्रत्य०)] दे० 'टेंटा'।

टेंटिहा—वि० [हि०] दे० 'टेंटी'।

टेंटिहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के क्षत्रिय जो प्रायः बिहार के झांझाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टेंटी—संज्ञा श्री० [हि० टेंट] १. करील। उ०—सुर कहीं कैसे रश्मि माने टेंटी के फल खारे।—सुर (शब्द०)। २. करील का फल। कचड़ा।

टेंटी—वि० [अनु० टें टें] बात बात में विगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टेंटु—संज्ञा पुं० [सं० टुएटक] शयोवाक। सोनापाठा।

टेंटवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गसा। घेंटू। धोची। २. भेंगूठा।

टेंट—संज्ञा श्री० [अनु०] १. तोते की बोली। २. व्यर्थ की बकवाव। हुज्जत। घृष्टतापूर्ण बात। जैसे,—कहाँ राम राम कहाँ टें टें।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

मुहा०—टें टें मचाना = बकवाद करना। अनावश्यक बोलना।

उ०—तुमको इन बातों में क्या दखल है। नाहक बिन, नाहक की टें टें लगाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७१।

टेंड—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टिंडरी'।

टेंड(पु)—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टेंव'। उ०—गुन गोपाल उचारत रसना, टेंव एह परी।—सतवाणी०, पृ० ४८।

टेंड—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'टेंव'।

टेंडकर्ता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टेकन'।

टेंडकारा—संज्ञा पुं० [हि० टेक] [श्री० टेडकी] दे० 'टेकन'।

टेंडकी—संज्ञा श्री० [हि० टेक] १. किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई गई वस्तु। २. जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की डोरी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे। ३. साधुओं की सभारी।

टेक—संज्ञा श्री० [हि० टिकना] १. वह लकड़ी या खभा जो किसी भारी वस्तु को धड़ाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या भगल से मिलाकर लगाया जाता है। चाँड़। धूनी। थम।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. टिकने या भार देने की वस्तु। धोठंगने की चीज। ढासना। सहारा। ३. साधन। प्रवसन। उ०—दे मुद्रिका टेक सेहि प्रवसर सुचि समीरसुत पैर गहे री।—तुलसी (शब्द०)। ४. बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या वेदी। बैठने का स्थान। जैसे, राम टेक। ५. ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। ६. बिना में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन में ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। छट। हठ। जिद। उ०—सोई गोसाईं जो विधि गति छैकी। सकइ को दारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक गहना = दे० 'टेक पकड़ना'। टेक पकड़ना = जिस पकड़ना। हठ करना। टेक निमाना = (१) जिस बात के लिये साधन या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक निमाहना = दे० 'टेक निमाना'। टेक निमाना = प्रतिज्ञा या भान का पूरा होना। टेक निमाना = प्रतिज्ञा पूरी करना। टेक रहना = दे० 'टेक निमाना'।

७. वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण मनुष्य अवश्य करे। बान। भावत। सत्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. गीत का वह टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। ९. पुण्य की नोक जो पानी में कुछ दूर तक चली गई हो।—(लघ०)।

टेकड़ी—संज्ञा श्री० [हि० टेक+ड़ी (प्रत्य०)] १. टीला। ऊँचा घुस्स। २. छोटी पहाड़ी। उ०—टेकड़ियों के पार, कहो कैसे चढ़कर भाते हो?—हिम०, पृ० १०१।

टेकन—संज्ञा पुं० [हि० टेकना] [श्री० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवासी वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे

या वगल में लगाई जाय। मटुकन। रोक। जैसे,—पड़े के नीचे टेकन सया दो।

क्रि० प्र०—सगाना।

टेकना^१—क्रि० स० [हि० टेक] १. सड़े सड़े या बैठे बैठे धम से बचने लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत ढालना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साम भिजाना। सहारा लेना। ढाँटना लेना। धाँधल बनाना। जैसे, दोवार या खम्भा टेककर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—लेना।

२. किसी धंग को सहारे प्रादि के लिये कहीं टिकाना। ठहराना या रखना।

मुहा०—घुटने टेकना=पराजय स्वीकार करना। हार मानना। माया टेकना=प्रणाम करना। दण्ड्य करना।

३. चलने, चढ़ने, उठने बैठने प्रादि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसको हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये धामना। जैसे, बारपाई टेककर उठना बैठना, लाठी टेककर चलना। उ०—(क) गुरु प्रभु कर सेज टेकत कबहुं टेकत डहरि।—मूर (चन्द०)। (ख) नाचत गावत गुन की सानि। समित भए टेकत पिय पानि।—मूर (चन्द०)। ४. चलने में गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृहद्वार फिरपो तुमको प्रभु छड़े। धंभ धष टेकि जले क्यों न परे गाढ़े।—मूर (चन्द०)। † ७ ५. टेक करना। हठ करना। ठानना। उ०—सोई गोसाईं जेइ दिधि गति छँकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (चन्द०)। ६. किसी को कोई काम करते हुए बीच में रोकना। पकड़ना। उ०—(क) रोवहि मातु पिता श्री भाई। कोउ न टेक जो कंत भलाई।—जायसी (चन्द०)। (ख) जनहुं मोटि कै मिलि गए तस दूनों भए एक। कपन कसत कसोटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी (चन्द०)।

टेकना^२—संज्ञा पु० [दे०] एक प्रकार का जंगली धान। पनाय।

टेकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] टेकने का साधार, छड़ी प्रादि। उ०—उन्हीं की टेकनी के सहारे वे चल सकते हैं।—प्रेमपन०, भा० २, पृ० ३७३।

टेकनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकन + ई (प्रत्य०)] दे० 'टेकन'।

टेकर—संज्ञा पु० [हि० टेक] [स्त्री० टेकरी] १. टीला। उठी हुई सुमि। २. छोटी पहाड़ी।

टेकरा—संज्ञा पु० [हि० टेक] दे० 'टेकर'।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टेकर'। उ०—यमुना अपनी घोड़ी लेकर बजरे से उतरी घोर बासु की एक ऊँची टेकरी के कोने में खली गई।—कफाख, पृ० ८८।

टेकला^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] धुन। रट। उ०—बन बन पुकाऊँ एकला, ठाऊँ गले बिज में खला। एक नाम की है टेकला, सोहबत की तई में क्या कलूँ।—कबीर (चन्द०)।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का मोजार।—(संज्ञ०)।

टेकान—संज्ञा पु० [हि० टेकना] १. टेक। वह सफ़ा जो किसी गिरनेवाली परत या छत प्रादि को उँसाने के लिये उसक नीचे लड़ी कर दी जाती है। बाँड़। २. ऊँचा चतूरा या खम्भा जिसपर बोझावाले सपना बोझ झटकर गड़ी देर गुस्ता सेते हैं। परम जोहा।

टेकाना^१—क्रि० स० [हि० टेकना] १. किसी वस्तु को कहीं से जाने में सहायता देने के लिये पकड़ना। उठाकर ले जाने में सहारा देने के लिये धामना। जैसे,—बारपाई को टेका लो, मोतर कर दें।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. उठने बैठने या चलते किले में सहायता देने के लिये धामना। जैसे,—ये इतने कमखोर हो गए हैं कि दो प्रादमी टेकाकर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं।

टेकानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना] पहिए को रोकने की कील। फिल्ली।

टेकी—संज्ञा पु० [हि० टेक] १. कड़ी हुई बात पर खना रहनेवाला। प्रतिज्ञा पर टढ़ रहनेवाला। २. पड़नेवाला। हड़ो। दुराग्रही। जिद्दी। ३. साधार। टेक। सहारा। उ०—कहि बस्ती टेकी पूनी है, कहि पाव कइव की पूनी है।—राम० धर्म०, पृ० २२।

टेकुआ^१—संज्ञा पु० [सं० ठकुफ, प्रा० टकुम] चरखे का तल्ला बिज-पर घुल काटकर सपेटा जाता है। ठपुआ।

टेकुआ^२—संज्ञा पु० [हि० टेक] १. टिकाने या पड़ाने की वस्तु। मटुकन। २. सहारे की वह सफ़ा जो एक पहिया बिकल सेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है।

टेकुरा^१—संज्ञा पु० [दे०] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ठकुं, हि० टेकुमा] १. फिरकी सगा हुआ सूया जिसके घुमाने से फेंसी हुई कड़ी का सूत कतरर लिपटता जाता है। सूत कातने का तकला। २. बाँध की बाँधी के एक छोर पर साह मगाकर बनाई हुई जुताहों की फिरकी जिसमें रेलम फेंकाया रहता है। ३. रस्सी बटने का तकला या मोजार। ४. जमारों का सूया जिससे वे तागा खींचते घोर निकालते हैं। ५. गोप नाम का गहना बनाने के लिये सुतारों की सलाई जिससे तार खींचकर फेंदा दिया जाता है। ६. मूर्ति बनानेवालों का पिपटी भार का एक मोजार जिससे वे मूर्ति का उस साफ घोर चिकना करते हैं।

टेकुवा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टेकुमा'। उ०—टेकुवा साधत जो बनि पाये, मँहगे मोख बिकाय।—कबीर रा०, भा० २, पृ० ४८।

टेपरना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'टिपसना'।

टेचिन—संज्ञा पु० [सं० स्टीचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक घोर माथा होता है घोर दूसरी घोर दिवरी होती है। यह

किसी चीज को बढ़ाने या घटाने के काम में आता है।
—(सञ्ज०)।

टेढ़का—सञ्ज पु० [सं० ताटङ्क] कान में पहनने का एक गहना।

टेढ़ुआ—सञ्ज पु० [हि०] दे० 'टेंदुवा'। उ०—घड़ी घन बनाने की बात तो और है पूरी दास्तान भी नहीं सुनी और टेढ़ुए पर चढ़ बैठे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९६।

टेढ़ही—सञ्ज खी० [हि० टेढ़ा] टेढ़ी लकड़ी की छड़ी। उ०—लिये हाथ में ढाल टेढ़ही।—ग्राम्या, पु० ४४।

टेढ़—सञ्ज खी० [हि० टेढ़ा] १. टेढ़ापन। वक्रता। २. भकड़। ऐँठ। उजड़पन। नटखटी। शरारत।

मुहा०—टेढ़ की सेना=नटखटी करना। शरारत करना। उजड़पन करना।

टेढ़—वि० दे० 'टेढ़ा'।

टेढ़बिड़गा—वि० [हि० टेढ़ा + बिड़गा] टेढ़ामेढ़ा। टेढ़ा और वेढगा। बेढोल।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् (= टेढ़ा)] [वि० खी० टेढ़ी] १. जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो। इधर उधर झुका या घूमा हुआ। फेर खाकर गया हुआ। जो सीधा न हो। वक्र। कुटिल जैसे, टेढ़ी खकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता।

यौ०—टेढ़ा मेढ़ा=जो सीधा और सुढोल न हो। टेढ़ा बाँका=नोक नोक का। बना ठना। देख चिकनिया।

मुहा०—टेढ़ी चितवन=तिरछी चितवन। भावभरी दृष्टि।

२. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो समानांतर न गया हो। तिरछा। ३. जो सुगम न हो। कठिन। बँझा। फेरफार का। मुश्किल। पेंचोला। जैसे, टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला। उ०—मगर सेरों का मुकाबिला जरा टेढ़ी खीर है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४।

मुहा०—टेढ़ी खीर=मुश्किल काम। कठिन कार्य। दुष्कर कार्य।

बिरोध—इस मुहा० के सवध में लोग एक कथा कहते हैं। एक भादमी ने एक भधे से पूछा 'खीर खाओगे?'। भधे ने पूछा 'खीर कैसी होती है?' उस भादमी ने कहा 'सफेद'। फिर भधे ने पूछा 'सफेद कैसा?'। उसने उत्तर दिया 'जैसा बगला होता है?' इसपर उस भादमी ने हाथ टेढ़ा करके बताया। भधे ने कहा—'यह तो टेढ़ी खीर है, न खाई जायगी'।

४ जो शिष्ट या नञ्ज न हो। उदत। सघ्न। उजड़। दुःखील। कोपवान्। जैसे, टेढ़ा भादमी, टेढ़ी बात। उ०—टेढ़े भादमी से कोई नहीं बोलता।—(शब्द०)।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना=(१) उग्र रूप धारण करना। जैसे,—कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से नहीं। (२) भकड़ना। ऐँठना। टर्नना। जैसे,—वह जरा सी बात पर टेढ़ा हो जाता है। टेढ़ी आँख से देखना=क्रूर दृष्टि करना। शत्रुता की दृष्टि से देखना। घनिष्ट करने का विचार करना। बुरा व्यवहार करने का विचार करना। टेढ़ी पालि करना=कुपित दृष्टि करना। क्रोध की भावति बनाना।

बिगड़ना। टेढ़ी सीधी सुनाना=ऊँची नीची सुनाना। खरी खोटी सुनाना। मला बुरा कहना। टेढ़ी सुनाना=दे० 'टेढ़ी सीधी सुनाना'।

टेढ़ाई—सञ्ज खी० [हि० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव। टेढ़ापन।

टेढ़ान—सञ्ज पु० [हि० टेढ़ा + पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का भाव।

टेढ़ामेढ़ा—वि० [हि० टेढ़ा + प्रत्य० मेढ़ा] जो सीधा न हो। टेढ़ा। वक्र।

टेढ़े—क्रि० वि० [हि० टेढ़ा] सीधे नहीं। घुमाव पिराव के साथ। जैसे,—वह टेढ़े जा रहा है।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना=इतराना। धमंड करना। उ०—(क) कबहूँ कमला चपल पाय के टेढ़े टेढ़े जात। कबहूँ मग मग घूरि टोरोत, भोजन को बिसलात।—सूर (शब्द०)। (ख) जो रहीम मोछो बढे तो प्रति ही इतरात। व्यादा सो फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जात।—रहीम (शब्द०)।

टेना—क्रि० सं० [हि० टेव + ना (प्रत्य०)] १. किसी हथियार की धार को तेज करने के लिये परस्पर घादि पर रगड़ना। उ०—कुबरी करी कुबलि केकेई। कपट छुरी उर पाहन देई।—तुलसी (शब्द०)। २. मूँछ के बालों को खड़ा करने के लिये ऐँठना। जैसे, मूँछ टेना।

टेना^१—सञ्ज पु० [हि०] दे० 'टेनी'।

मुहा०—टेना मारना=दे० 'टेनी मारना'। उ०—करे बिबेक दुकान जाव का लेना देना। गादी हैं संतोष नाम का मारे टेना।—पलटू०, भा० १, पृ० १००।

टेनिया^१—सञ्ज खी० [हि० टेनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'टेनी'। उ०—काहे की हंडी काहे का पलरा काहे की मारी टेनिया।—कबीर भा०, भा० २, पृ० १५।

टेनिस—सञ्ज पु० [अ०] गेंद का एक प्रकार का प्रंगरेजी खेल।

टेनी—सञ्ज खी० [देश०] छोटी उँगली।

मुहा०—टेनी मारना=सीधा तोलने में उँगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज कम चढ़े। (सीधा) कम तोलना।

टेनेट—सञ्ज पु० [अ०] १. किराएदार। २. भसामो। पहरेदार। रैयत।

टेप—सञ्ज पु० [अ०] फीता।

यौ०—टेप रिकार्डर=रिकार्ड करनेवाला वह यंत्र जो बैटरी से चालित होता है और प्रवचनों को फीते पर रिकार्ड करने के काम आता है।

टेपारा—सञ्ज पु० [हि०] दे० 'टिपारा'। उ०—प्रसन्न प्रति खलित माल जटिल लाल टेपारो।—नद०, अ० पु० ३९५।

टेबलेट—सञ्ज पु० [अ०] १. छोटी ठिकिया। जैसे, किनाइन टेबलेट। २. परस्पर, दृष्टि आदि का फलज जिसपर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है। जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टेबलेट लगाना निश्चित किया है।

टेबिल—सञ्ज पु० [अ० टेबुल] मेज। उ०—प्रंगरेजों के साथ एक टेबिल पर खाना न खाएंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७८।

देबुल^१—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] १. मेज ।

यौ०—देबुल क्लाय=मेजपोथ ।

२. नकशा । ३. वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों ।
नकशा । सारिणी ।

टेम^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० टिमटिमाना] दीपशिखा । दीप की ली ।
दीपक की ज्योति । लाट । उ०—श्यामा की मूरति दीप की
टेम में दिखाने लगी ।—श्यामा०, पु० १५६ ।

टेम^२—सञ्ज्ञा पुं० [भं० टाइम] समय । वक्त ।

टेमन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

टेमा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी श्रेंटिया ।

टेर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तार (= संगीत में ऊँचा स्वर)] १. गावे में
ऊँचा स्वर । तान । टोप ।

क्रि० प्र०—लवाना ।

२. बुलाने का ऊँचा शब्द । पुकारने की आवाज । बुलाहट ।
पुकार । हूँक । उ०—(क) टेर लखन सुनि विकल जानकी
प्रति भातुर उठि धाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) कुण के टेर
सुनी जवै फूलि फिरे शत्रुघ्न ।—केशव (शब्द०) ।

टेर^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तार (= तै करना)] निर्वाह । गुजर ।

मुद्दा०—टेर करना = गुजारना । बिताना । काटना । जैसे,—
जिंदगी टेर करना ।

टेर^३—वि० [सं०] तिरछी निगाह का । ऐंचाताना [स्त्री०] ।

टेरक—वि० [सं०] ऐंचाताना [स्त्री०] ।

टेरना^१—क्रि० सं० [हिं० टेर + ना (प्रत्य०)] १. ऊँचे स्वर से
गाना । तान लगाना । २. बुलाना । पुकारना । हूँक लगाना ।
उ०—(क) मई साँझ जननी टेरत है कहाँ गए चारो
माई ।—सूर (शब्द०) । (ख) फिरि फिरि राम सीय तन
हेरत । तृषित जानि जल खेन लखन गए, मुज उठाय ऊँचे
चढ़ि टेरत ।—तुलसी ।—(शब्द०) ।

टेरना^२—क्रि० सं० [सं० तीरण (= तै करना)] १. तै करना । चलता
करना । निवाहना । पूरा करना । जैसे,—थोड़ा सा काम और
रह गया है किसी प्रकार टेर ले चलो । २. बिताना ।
गुजारना । काटना । जैसे,—वह इसी प्रकार जिंदगी टेर ले
जायगा ।

सयो० क्रि०—ले चलना । —ले जाना ।

टेरनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० टेरना] टेर । पुकार । उ०—हरि की
सी गाइ निवेरनि टेरनि भँवर केरनि ।—नंद० ग्रं०, पु० २६ ।

टेरवा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] हुक्के की नली जिसपर चिलम रखी
जाती है ।

टेरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] १. टेरा । भंकोल का पेड़ । २. पेड़ों का घड़ ।
तवा । वृक्षस्वप्न । जैसे, केले का टेरा । २. शाखा । जैसे,—
हाथी के लिये टेरा काटना है ।

टेरा^२—वि० [सं० टेर] ऐंचाताना । टेपरा । भेंगा ।

टेरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० टेरना] बुसावा । उ०—पाछे टेरा

घायो । तब यह सावधान हूँ विचार करने लाग्यो ।—दो सी
बावन०, भा० १, पु० २३२ ।

टेराकोटा—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] १. पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ,
इमारतों में लगाने के लिये बेलबूटे, आदि बनते हैं । २. पकी
हुई मिट्टी का रंग । ईंटकोहिया रंग ।

टेरिऊल—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] टेरिलिन और ऊन के मिश्रित धागे या तनसे
बना वस्त्र ।

टेरिकाट—सञ्ज्ञा पुं० [भं० टेरिकॉट] टेरिलिन और सूत के धागे या
उनसे बना हुआ वस्त्र ।

टेरिटोरियल फोर्स—सञ्ज्ञा स्त्री० [भं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध
अपने स्थान से हो । नागरिक सेना । देशरक्षणी सेना ।
देशरक्षक सेना ।

विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने की नहीं जाना
पड़ता ।

टेरिलिन—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] एक प्रकार का कृत्रिम रेखा या उन रेखाँ
से बुना हुआ वस्त्र ।

टेरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी । पतली शाखा । जैसे, नीम की टेरी ।

टेरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा ।

टेरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पोधा जिसकी कलियाँ रंभने और
चमड़ा सिझाने में काम आती हैं । इसे 'बखेरी' और 'कुंती'
भी कहते हैं । २. बकम की फली ।

टेरो—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद । उलटी ।

टेलपेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] ठेलठाल । धक्कापुक्की । उ०—हम
लोग भी टेल पेलकर रेल पर चढ़ बैठे ।—प्रेमधन०, भा०, २
पु० ११२ ।

टेलर^१—वि० [?] नाम मात्र की । कहने भर के लिये । उ०—उन्हें
टेलर हिंदू कहलाने की अपकीर्ति से बचाना ।—प्रेमधन०, भा०
२, पु० २५७ ।

टेलर^२—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] दर्जी । सीने का काम करनेवाला ।

टेलिग्राफ—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं ।
दे० तार ।

टेलिग्राफ—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] तार से भेजी हुई खबर । तार ।

टेलिपैथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [भं०] वह मानसिक क्रिया जिसके द्वारा दूसरों
की भावनाओं का ज्ञान होता है ।

टेलिप्रिंटर—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] विद्युत् संचालित वह टाइपराइटर या
ठकण यंत्र जिसमें तार द्वारा प्राप्त समाचार आदि अपने आप
ठकित होते हैं ।

टेलिफोटोग्राफी—सञ्ज्ञा स्त्री० [भं०] दूरवीक्षण यंत्र द्वारा फोटो लेना ।

टेलिफोन—सञ्ज्ञा पुं० [भं०] वह यंत्र जिसके द्वारा एक स्थान पर
कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई
पड़ता है ।

विशेष—इसकी साधारण बुद्धि यह है कि दो चींटे लो जिनका
ऊँह एक ओर कागज, चमड़े आदि से मड़ा हो तथा दूसरी
ओर खुला हो । मड़े हुए चमड़े के बीचोबीच से लोहे का
एक सड़ा तार ले जाकर दोनों चींंटों के बीच सगा दो ।

यदि एक चोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान सगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी । पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है । अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है । चुंबक की एक छड़, जिसमें रेगम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे होकर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ तबि का तार कमानी की तरह घुमाकर अड़ा रहता है, एक नली के भीतर बँठाई रहती है । चुंबक के एक ध्रुव के पास सोहे का एक पत्तर बँधा रहता है । यह पत्तर काठ की खोली में रहता है—जिसका मुँह एक ओर चोंगे की तरह खुला रहता है । इस प्रकार दो चोंगों की आवश्यकता टेलीफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये । इन दोनों चोंगों के बीच तार लगा रहता है । ध्वज वायु में उत्पन्न तरंग या कंप मान है । मुँह से निकला हुआ ध्वज चोंगे के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँबे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह ध्वज पीछे जल्दी जल्दी हिलता है । इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है । इस प्रकार तार की मँडलाकार कमानी के एक बार एक ओर दूसरी बार दूसरी ओर बिजली उत्पन्न होती रहती है । इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है । टेलिफोन के द्वारा स्थल पर हजारों कोस दूर तक की ओर समुद्र में सैकड़ों कोस तक की कहीं बातें सुनाई पड़ती हैं ।

टेलिविजन—संज्ञा पुं० [ग्र०] किसी वस्तु, दृश्य या घटना के चित्र को बेतार के तार से या तार द्वारा संप्रेषित करने की वह प्रक्रिया जिससे दूरस्थ व्यक्ति भी उसे तत्काल ज्यों का त्यों देख सुन सके ।

विशेष—टेलिविजन में प्रकाशतरंगों को किसी वृक्ष पर से बिजली तरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो बेतार के तार या तार द्वारा संप्रेषित होती है और इसके बाद उनको पुनः प्रकाशतरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो टेलिविजन पट पर उस दृश्य को चित्रित करती है ।

टेलिस्कोप—संज्ञा पुं० [ग्र०] वह यंत्र जो दूरस्थ वस्तुओं को निकटतर ओर विशालतर दिखाने का कार्य करता है ।

टैसी—संज्ञा पुं० [देश०] मछली आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी बाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, घोजारों के दस्ते आदि बनाये के काम में आती है ।

विशेष—यह पेड़ आसाम, कछार, सिलहट और अरुणाचल में बहुत होता है ।

टैव—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] प्रभ्यास । आदत । बान । स्वभाव । प्रकृति । उ०—(क) सुनु मेया याकी टेव सरन की, सकुच बेचि सी खाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम तो टेव जानतिहि ह्रींहा तऊ मोहि कहि आवै । प्रात उठत मेरे लास लईतहि माखन रोटी भावे ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

टेचकी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेचकन, टेकन] १. दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की डीढ़ी में इसलिये लगी रहती है जिससे तागा गिरने न पावे । २. नाब के पालों में से सबसे ऊपर का छोटा पाल ।

टेवना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टेना' ।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] १. जन्मपत्री । जन्मकुंडली । २. लग्न-पत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लक्ष्मी के यहाँ से शकुन के साथ नाई ले जाकर लड़के के पिता को विवाह से १० या बारह दिन पहले देता है ।

टैवैया—संज्ञा पुं० [हि० टेवना] १. टेनेवासा । सिन्धी पर भार तेज करनेवाला । २. चोखा करनेवाला । तीक्ष्ण या पैना करनेवाला । उ०—जहाँ जमजातन और नदी मट कोटि जलचर दत टैवैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

टैसुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टैसु' ।

टैसू—संज्ञा पुं० [सं० किशुक] १. पलाश का फूल । वाक का फूल ।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत मध्वा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रंगे जाते थे । दे० 'पलाश' ।

२. पलाश का पेड़ । ३. लड़कों का एक उत्सव । उ०—जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल । तिन केसन को भस्म चढ़ावत टैसू के से खेल ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे होकर घास का एक पुतला सा लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं । प्रत्येक घर से उन्हें कुछ भक्षण या पैसा मिलता है । इसी प्रकार पाँच दिन तक भर्षात् शरद् पूर्ण तक करते हैं और जो कुछ भिक्षा मिलती है उसे इकट्ठा करते जाते हैं । पूर्ण की रात को मिले हुए द्रव्य से सावा, मिठाई आदि लेकर वे बोए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाबल की परीक्षा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं । सबके भत में सावा, मिठाई लड़कों में बँटती है । टैसू के पीछे इस प्रकार के होते हैं—इमली के जड़ से निकली पतंग । नौ सी मोती नौ सी रथ । रंग रंग की बनी कमल । टैसू पाया घर के द्वार । जोसो रानी बंदन किवार ।

टेहज़ा—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार । ब्याह की रीति रस्म ।

टेहुना—संज्ञा पुं० [हि० घुटना] घुटना ।

टेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोहुनी' ।

टैंक—संज्ञा पुं० [ग्र०] १. मोटर की तरह का एक युद्धान जो मजबूत इस्पात का बना होता है और जिसमें तोपें लगी रहती हैं । २. तालाब ।

टैंठी—वि० [?] चंचल । उ०—पैठत प्राण खरी मनखीली सु नाक चढ़ाई बोलत टैंठी ।—घनानंद, पृ० ३७ ।

टैयों—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कोड़ी जिसकी पीठ साधारण कोड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उमरे हुए बड़े दाँते से होते हैं ।

विशेष—इसका रंग नीलापन लिए या बिलकुल सफेद होता है।
फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसी से इसका व्यवहार
जुए, में अधिक होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैर्यो^२—वि० नाटा घोर हट्ट पुष्ट।

टैक्स—संज्ञा पु० [प्र०] कर या महसूल जो राज्य अथवा नगरपालिका
अथवा जिला परिषद् या पंचायत की ओर से किसी वस्तु पर
लगाया जाय। जैसे, इनकम टैक्स।

टैक्सी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिक्काने के
काम में आती है।

टैनां—संज्ञा पु० [देश०] घास का पुतला या बंडे पर रखी हुई काली
हड्डी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये
रखते हैं।

टैनीं—संज्ञा स्त्री० [देश०] मेड़ों का कुंड।—(गढ़ेरिप)।

टैरां—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टैरा'।

टैरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टैरी'।

टैबलेट—संज्ञा पु० [प्र०] दे० 'टैबलेट'।

टौक^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टौका'।

टौक^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोक'। उ०—उलझन की मोठी
रोक टोक, यह सब उसकी है नोक भौंक।—कामायनी,
पृ० २३५।

टौकां—संज्ञा पु० [सं० स्तोक (= षोड़ा)] १ छोर। सिरा।
किनारा। २ नोक। कोना। ३. जमीन जो नदी में कुछ दूर
तक गई हो।—(मल्लाह)।

टौगा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'टांगा'।

टौगू—संज्ञा पु० [देश०] फैलनेवाली एक झाड़ी जिसकी छाव के रेशों से
रस्ती बनाई जाती है। जित्ती। जक।

टौच—संज्ञा स्त्री० [हि० टौचना] १ सीयन। सिलाई का टाँका।
२. टौचने की क्रिया।

टौचना^१—क्रि० सं० [सं० टचन] चुमाना। गड़ाना। घंसाना।
कोँचना।

टौचना^२—संज्ञा पु० [हि० ताना] १. ताना। व्यंग्य। २. उपासना।
उलाहना।

टौट—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएट] ठोर। चौक। उ०—मारत टौट भुजा
उधिराना।—अग० बानी, पृ० ८२।

टौटरीं—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टौटी'।

टौटा—संज्ञा पु० [सं० तुएट] १. चिड़िया की चौंच के आकार की
निकली हुई कोई वस्तु। २. चौंच के आकार के गड़े हुए काठ
के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की
ओर पक्ति में बड़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए
जाते हैं। घोड़िया। ३. पानी आदि ढालने के लिये बरतन
में लगी हुई नली।

टौटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुएट] १. पानी आदि ढालने के लिये भारी।
कोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है।
पुनतुली। २. पशुओं का घुपन। जैसे, सुअर की टौटी।

टौस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टौस'।

टोआ^१—संज्ञा पु० [सं० तोय (= पानी)] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोआ^२—संज्ञा पु० [सं० तोवम] अंकुर [को०]।

टोआ^३—संज्ञा पु० [हि० टोहना] जहाज या नाव के आगे के भाग
पर पानी की याद देने के लिये बैठनेवाला मल्लाह।

टोआ^४—संज्ञा पु० [हि० टोह] दे० 'टोह'।

टोइर्यो—संज्ञा स्त्री० [देश० या *हि० तोतिया] छोटी जाति का सुभा
जिसकी चौंच तक सारा भाग बंगनी होता है। तोरी।

टोईं—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। पवं। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक
का भाग।

टोक^१—संज्ञा पु० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुमा
शब्द। किसी पं या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुमा
शब्द। जैसे,— एक टोक मुँह से न निकला।

टोक^२—संज्ञा स्त्री० १. छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते
देख उसे टोकने या पुछताछ करने के लिये कहा जाय।
पुछताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा। जैसे,—
'क्या करते हो?', 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि।

यौ०—टोक टाक=पुछताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे,—
बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं, टोकटाक न करो। रोक
टोक=मनाही। मुमानिमत। निषेध।

२. नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव।—(लि०)।

मुहा०—टोक में आना=नजर लगानेवाले आदमी के सामने
पड़ जाना। जैसे—बच्चा टोक में पड़ गया।

टोक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टेक] टेक। प्रतिज्ञा। उ०—बिप्र सूद
जोगी तपी सुकवि कहत करि टोक।—बज० प्र०, पृ० ११८।

टोकणी^३—संज्ञा स्त्री [?] एक प्रकार का हंडा। उ०—कबीर
तथा टोकणी लीए फिरे सुभाई।—कबीर प्र०, पृ० ३५।

टोकनहार—वि० [हि० टोकना + हार (प्रत्यय)] टोकनेवाला।
बाधा पहुँचानेवाला।—उ०—कोई न टोकनहार नफा घर
बैठे पावो।—पलटन, पृ० १४।

टोकना^१—क्रि० सं० [हि० टोक] १. किसी को कोई काम करते
देखकर उसे कुछ कहकर रोकना या पुछताछ करना। जैसे,
'क्या करते हो?' 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि। चौंच में बोल
उठना। प्रश्न आदि करके किसी कार्य में बाधा डालना।
उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न अंतर होय
कन्हाई। घाट बाट अमुना तट रोके। मारग अवत जहाँ
तहँ टोके।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई रोककर कुछ पुछता है तो
यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा अनुम समझता है।

२. नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हँसना। ३. एक पहलवान
का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना। ४. गलती
बतलाना। अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाना। ५. आपत्ति
करना। एतराज करना।

टोकना^२—संज्ञा पु० [?] [स्त्री० टोकनी] १. टोकरा। डला। २

पानी रखने का घालु का एक बड़ा बरतन। एक प्रकार का हडा।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकना] १. टोकरी। उ०—
प्राज के दिन छोटी छोटी टोकनियों में प्रनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाए जाते हैं।—शुक्ल० अभि० प्र०, पृ० १३८। २. पानी रखने का छोटा हडा। ३. बटखोई। देगची।

टोकरा—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकरी] बांस की चिरी हुई फट्टियों, घरहूर, झाज की पतली टहनियों आदि को गाँधकर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल आदि रखते हैं। छाबड़ा। बला। झाबा। खाँचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहना। परदा न खुलना। भरम बना रहना।

टोकरियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरी का घत्पा०] दे० 'टोकरी'।
टोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टोकरा] १. छोटा टोकरा। छोटा बसा या छाबड़ा। झापी। झपोली। २. देगची। बटखोई।

टोकवाँ—संज्ञा पुं० [दे०] उखाती लड़का। नटखट लड़का।
टोकसी—संज्ञा स्त्री० [दे०] नरियरी। नारियस की आधी खोपड़ी।
टोका—संज्ञा सं० [दे०] एक कीड़ा जो उर्व की फसल को नुकसान पहुँचाता है।

टोका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोंका'।

यौ०—टोकाटोकी = बाबा। टोकटाक।

टोकाना(७)†—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टिकाना-४'। उ०—इहि विधि बारि टकोर टोकावे।—कबीर सा०, पृ० १५८४।

टोकारा—संज्ञा पुं० [हि० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात बिताने या स्मरण दिसाने के लिये कहा जाय। इशारे के लिये मुँह से निकाला हुआ शब्द।

टोट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा'। उ०—रोम रोम पूरि पीर, न्याकुल सरीर महा, घूँमि मति गति भाँसै, प्यास की न टोट है।—घनानंद, पृ० ६६।

टोटक(७)†—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] दे० 'टोटका'। उ०—स्वारथ के साबिन तज्यो तिजरा को सो टोटक, भीचट उलटि न हेरो।—तुलसी प्र०, पृ० ५६३।

टोटका—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] १. किसी बाधा को दूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी प्रलौकिक या र्बवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। छटका। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन भवै छटका। बिसरी भूख पियास किया सठपुर ने टोटका।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने घाना = आकर कुछ भी न ठहरना।
४-३१

थोड़ी देर भी न बैठना। तुरत चला जाना। जैसे,—थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी?—(स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी हो जाना कि देखकर आश्चर्य हो।

२. काली हाँडी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेआई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोटका + आई (प्रत्य०)] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटल—संज्ञा पुं० [प्र०] जोड़। ठीक। मोजान।

मुहा०—टोटल मिलाना = जोड़ ठीक करना।

टोटा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बांस आदि का कटा हुआ टुकड़ा। २. मोमबत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा। ३. कारतूस। ४. एक प्रकार की घालसवाजी।

टोटा—संज्ञा पुं० [हि० टूटना, टूटा] १. घाटा। हानि। उ०—
लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस खागा।—
घट०, पृ० २७५।

क्रि० प्र०—उठाना।—सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना = नुकसान पूरा करना। घाटा पूरा करना। हूरजाना देना।

२. कमी। प्रभाव। जैसे,—यहाँ कागज का क्या टोटा है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोटि(७)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] थुटि। गलती। उ०—कोटि विनायक जो लिखें, महि से कागर कोटि। ता परि तेरे पीय के गुन नहि आवै टोटि।—नंद० प्र०, पृ० ६१।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चौंख के आकार का गढ़ा हुआ काठ का बड़ा हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पक्ति में बड़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये खपाया जाता है। टौटा।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] १. एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है।

विशेष—इसका स्वरप्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ष नि स स नि ष प म ग रे स। रे सा नि स नि ष ष नि स ग रे स नि स नि ष। प ग म म रे ग रे स रे नि स नि ष स रे ग म प ष ष प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ष ष ष नि स। हनुमत मत से इसका स्वरप्राम यह है—म प ष नि स रे ग म ष ष स रे प म प ष नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के पतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में वीणा लिए हुए, प्रिय के बिरह में गाती हुई, श्वेत वस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली।

२. चार मात्राओं का एक ताल जिसमें २ आघात और २ खाली
रहते हैं। इसका सबसे का बोल यह है—विन् धा, गेदिन,
३ ० +

जिनता, गेदिन, धा। प्रथमा

+ ० ० ० +
वेदा के टे, नेदा के टे। धा।

टोनहा—वि० [हि० टोना + हा (प्रत्य०)] [वि० बी० टोनही] टोना
करनेवाला। जादू मारनेवाला।

टोनहाई—सका बी० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] १. टोना करने-
वाली। जादू मारनेवाली। २. टोना करने की क्रिया।

टोनहाया—सका पुं० [हि० टोना + हाया (प्रत्य०)] टोना करने-
वाला मनुष्य। जादू करनेवाला मनुष्य।

टोना^१—सका पुं० [सं० तन्त्र] १. मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू।

क्रि० प्र०—करना।—चमनाना।—मारना।

२. एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें
'होना' शब्द कई बार आता है।

टोना^२—सका पुं० [देश०] एक शिकारी चिड़िया। उ०—जुरा बाज
बासे, कुही, बहरी, मगर सोच टोने जरकटी त्यों सचान
सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

टोना^३—क्रि० सं० [सं० त्वक् (= स्पर्शद्रव्य) + ना (प्रत्य०)] १. हाथ
से टटोलना। छुना। छुकर मालूम करना। उ०—साँच मई
मँघरे को हाथी और साँचे हैं सपरे। हाथ की ठोई साँचि
कहत हैं हैं साँखिन के मँघरे।—कबीर श०, भा० १, पृ०
५४। २. अच्छी तरह समझना। अनुभव करना। उ०—जग
में आपन कोई नहीं, देखा सब ठोई।—संतवाणी०, पृ० ४३।

टोनाहाई—सका बी० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] ३० 'टोनहा'।

टोप^१—सका पुं० [हि० तोपना (= ढाँकना)] १. बड़ी टोपी। सिर
का ढाँका पहनावा। उ०—सुँवर सोख सबाह करि सोख दियो
सिर टोप।—सुँवर० प्र०, भा० २, पृ० ७४०।

यौ०—कपटोप।

२. सिर की रखा के बिये लड़ाई में पहनने की चोड़ी की
टोपी। सिरस्त्राण। खोद। कूड़। ३. खोल। गिलाफ। ४.
प्रगुशताना।

टोप^२—सका पुं० [समु० टप टप या सं० स्तोत्र] बूँद। कतरा।

यौ०—टोप टोप = बूँद बूँद।

टोपन—सका पुं० [देश०] टोकरा।

टोपरा—सका पुं० [हि०] ३० 'टोकरा'।

टोपरा—सका पुं० [हि०] ३० 'टोकरा'।

टोपरी^१—सका बी० [हि० टोपर] ३० 'टोकरा'।

टोपरी^२—सका बी० [हि० टोपा] टोप। सिरस्त्राण विशेष। उ०—
फुटत यों सु घोपरी। कि जोग पत्र टोपरी।—पु० रा० ५।७७।

टोपही—सका बी० [हि० टोप] बरतन के सचि का सबसे ऊपरी
भाग जो कटोरे के आकार का होता है।

टोपा^१—सका पुं० [हि० टोप] बड़ी टोपी।

टोपा^२—सका पुं० [हि० तोपना] टोकरा।

टोपा^३—सका पुं० [सं० टक्कन, हि० तोपना, तुरपना] टीका।
बोम। सीवन।

मुहा०—टोपा भरना = ताना भरना। सीना।

टोपी—सका बी० [हि० तोपना (= ढाँकना)] १. सिर पर का
पहनावा। सिर पर ढाँकने के लिये बना हुआ आच्छादन।

क्रि० प्र०—पहनना।—लगाना।

मुहा०—टोपी उछलना = निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी
उछालना = निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना =
टोपी पहनना। टोपी बदलना = भाई भाई का संबंध जोड़ना।
भाईचारा करना। टोपी बदल भाई = वह जिससे टोपी बदल-
कर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।

विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी
टोपी छेपे पहनावे और उसकी टोपी आप पहनते हैं।

२. राखमुकुट। ताज।

मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य
होना।

३. टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी।
४. टोपी के आकार का धातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक
की निपुल पर चढ़ाकर घोड़ा गिराने से भाग लगती है।
बंदूक का पड़ाका। ५. वह थैली जो शिकारी जानवर के
मुँह पर चढ़ाई रहती है। ६. सिंघ का अग्र भाग। सुपारा।
७. मस्तूल का सिरा।—(जश०)।

टोपीदार—वि० [हि० टोपी + दा० वार] जिसपर टोपी लगी
हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक,
टोपीदार तम्बा।

टोपीवाला—सका पुं० [हि० टोपी] १. वह आदमी जो टोपी पहने
हो। २. महमदशाह और नादिरशाह के सिपाही जो लाल
टोपियाँ पहनकर आए थे। ये टोपीवाले कहलाते थे।

३. अंगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं। ४. टोपी बेचने-
वाला।

टोभ^१—सका पुं० [हि० टोभ] टीका। टोपा। उ०—बैरिनि
जोभही टोभ दे रीं मन वैरी की भूँजि के भौन धरौगी।—
देव (शब्द०)।

टोभा—सका पुं० [हि० टोभ] ३० 'टोभ'।

टोया—सका पुं० [सं० तोय] गड्ढा।—(पञ्चाबी)।

टोर^१—सका बी० [देश०] कटारी। कटार। उ०—तुम सों न जोर
घोर भुपन के मोर रूप काँकरी को घोर काक मारो है न
टोर के।—हनुमान (शब्द०)।

टोर^२—सका बी० [देश०] शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण
नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच रहता है
और जिसे फिर उमाल और छानकर शोरा निकाला जाता है।

टोर^३—सका पुं० [हि० ठोर] ठोर। मुँह। उ०—लगी टोर
निरहटु गरबं मिशायं।—प० रासो, पृ० १४१।

टोरना—क्रि० सं० [सं० घुट] लोडना । उ०—(क) रिक्तवार दृग देखि कै मनमोहन की ओर । भीहन मारत रीति जनु भारत है तन टोर ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) कोउ कहूँ टोरन देव न माली । मंगिहु पर मुरके हम खाली ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—घाँस टोरना = लज्जा भावि से दृष्टि हटाना या भ्रमण करना । घाँस मोड़ना । दृष्टि छिपाना । उ०—सूर प्रभु के चरित सखियन कहव लोचन टोरि ।—सूर (शब्द०) ।

टोरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] जुसाहों का सूत तोलने का तराजू ।

टोरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोड़ा' ।

टोरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोक] [श्री० टोरी] लडका । छोकड़ा ।

टोरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोड़ी' ।

टोरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कसरखेटि' ।

टोरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टोली' । उ०—दो दो पजे तो कसा लें इधर या उधर देखिए तो मेरी टोरी कैसी बढ़ बढ़के लात देती है ।—फिसाना०, मा० १, पृ० ३ ।

टोरी^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० सुवर] घरहर का वह छिनके सहित खड़ा बाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय ।

टोरी^५—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. रोडा । कंकड़ । ईंट का टुकड़ा । २. सड़का ।

टोल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. मडली । समूह । जत्था । फुंड । उ०—(क) अपने अपने टोल कहत अणवासी आई । भाव भक्ति ले चली सुदंति पासो आई ।—सूर (शब्द०) । (ख) टुनिहाई सब टोल में रहो जु सोत कहाय । सुतो ऐषि तिय प्राप त्यों करी मदीखिल प्राय ।—विहारी (शब्द०) ।

यौ०—टोल मटोल = फुंड के फुंड ।

२. मुहल्ला । बस्ती । टोला । उ०—भाजु और तमचुर के रोख । गोकुल में धानंद होत है, मगल धुनि महराने टोल ।—सूर०, १०।१४ । ३. चटसार । पाठशाला ।

टोल^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय २५ बंद से २८ दंड तक है ।

टोल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टाल] सड़क का महसूल । मार्ग का कर । चुगी ।

यौ०—टोल कलेक्टर = कर लेनेवाला । महसूल वसूल करनेवाला

टोलना^७—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टोलना' । उ०—नौ ताली दे बमवाँ खोलिया । तब इस गढ़ महि एकी टोलिया ।—प्राण०, पृ० २८ ।

टोला^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोलिका (= किसी स्तम्भ या गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. आदमियों की बड़ी बस्ती का एक भाग । मुहल्ला । उ०—घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के उत्साह बग हो गए ।—श्यामा०, पृ० ४७ । २. एक प्रकार

का व्यवसाय करनेवाले या एक जातिवाले लोगों की बस्ती । जैसे, चमरटोला ।

टोला^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बड़ी कोड़ी । कोड़ा । टम्घा ।

टोला^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. गुल्ली पर बंदे की चोट ।

क्रि० प्र०—खगाना ।

२. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया । ठूँग । उ०—जो वैष्णव भावे तो ताके मुँड में टोला देतो ।—बो सी बावन०, मा० १, पृ० ३३१ । ३. पत्थर या ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । ४. बेंत आदि के माघात का पड़ा हुआ चिह्न जो कभी खाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है । साँट । नील ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

टोलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= घेरा, हाता)] टोली । छोटा मुहल्ला ।

टोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= हाता, बाड़ा)] १. छोटा मुहल्ला । बस्ती का छोटा भाग । उ०—नैन बचाय चवाइन के नहि रैन मे हूँ निकसी यह टोली ।—सेवक (शब्द०) । २. समूह । फुंड । जत्था । मडली । उ०—इस टोली ते सतगुरु राखे ।—प्राण०, पृ० ३८ । ३. पत्थर की चौकोर पटिया । सिल । ४. एक जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमाचल, सिक्किम और आसाम की ओर होता है ।

विशेष—इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें ऊपर जाकर टहनियाँ निकलती हैं । यह बाँस बहुत सीधा और सुधील होता है । टोकरे बनाने के लिये यह बाँस सबसे अच्छा समझा जाता है । यह छप्परों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में भी आता है । इसे 'नाल' और 'पकोर' भी कहते हैं ।

टोलीघनवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टोली + घान] घान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते घोड़े और घोषाएँ बड़े चाव से खाते हैं । इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं ।

टोवना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'टोना' ।

टोवा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गलही पर बैठनेवाला वह मांझी जो पानी की गहराई जाँचता है ।

टोह—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टोली] १. टटोल । खोज । हूँड । तलाश । पता ।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना । टोह मे रहना = तलाश में रहना । हूँडते रहना । टोह लगाना या लेना = पता लगाना । सुराग लगाना ।

२. खबर । देखभाल ।

महा०—टोह रखना = खबर रखना । देखभाल रखना ।

टोहना—क्रि० सं० [हि० टोह] १. हूँडना । खोजना । २. हाथ खगाना । धुना । टटोलना । उ०—घब तनको धीरण न संगत हाथ अपने सो मैं बहुते टोहो ।—धनानंद, पृ० ३४० । टोहाटाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टोह] १. ध्यानबीन । हूँड । तलाश । २. देखभाल ।

टोहानी—**व**श **श्री०** [**हि०** टोहना] टोह । देखना । उ०—
करि टोहानी नाम की बिगड़न कूँ कछु नाहि ।—**राम०**
धर्म०, पृ० ७१ ।

टोहिया—**वि०** [**हि०** टोह] १. टोह लगानेवाला । हूँडनेवाला ।
२. जानूस ।

टोहियाना—**क्रि०** **स०** [**हि०**] दे० 'टोहना' ।

टोह—**व**श **श्री०** [**हि०** टोह] तलाश करनेवाला । पता लगानेवाला ।

टौना—**व**श **पु०** [**हि०**] दे० 'टोना' । उ०—**धुनि सुनि मोही**
राधिका **घो** **बज** **सिगरी** **नारि**, **मनो** **टौना** **कन्यो** ।—**नद०**
प्र०, पृ० १२८ ।

टौंस—**स**श **स्त्री०** [**सं०** तमसा] १ एक छोटी नदी जो मयोध्या
के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिलती है ।

विशेष—**रामायण** में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ बन को जाते
हुए **रामचन्द्र** जो ने मपना डेरा किया था तथा जिससे प्रागे
बलकर गोमती घोर गंगा पड़ी थी । बालकांड के प्रादि में
तमसा के तट पर वाल्मीकि के माश्रम का होना लिखा है ।
मयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी **रामचन्द्र** को
वाल्मीकि का माश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई
उल्लेख नहीं है । इससे संभव है कि वाल्मीकि दो स्थानों पर
रहे हों ।

२. एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकलकर रीवाँ
होती हुई मिर्जापुर घोर इलाहाबाद के बीच गंगा से
मिलती है ।

विशेष—इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक माश्रम बतलाया
जाता है जो संभवतः उस माश्रम को सूचित करता हो जिसका
उल्लेख मयोध्याकांड में है ।

३. एक नदी जो जमुनोत्री पहाड़ से निकलकर देहरी घोर
देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है ।

टौहना—**क्रि०** **स०** [**हि०** टोहना] दे० 'टोहना' । उ०—**टौहन**
को **पतिया** **लिखी** **मेखतु** **योहन** **को** **सबही** **धन** **धर्म** ।—
सुदर० **प्र०**, भा० १, पृ० ६३ ।

टौडिक—**वि०** [?] पेड़ । उ०—**टौडिक** **हैं** **धनमानद** **ढाटत** **काटत**
क्यों **नहीं** **दीनता** **सों** **दिन** ।—**पनानद**, पृ० २५३ ।

टौनहाल—**व**श **पु०** [**प्र०** टाउनहाल] दे० 'टाउनहाल' ।

टौना टामन—**व**श **पु०** [**हि०** टोना + **प्रनु०** टामन] जादू
टोना । तन मन । उ०—**टौना टामन** **मन** **यंत्र** **सब** **साधन**
साधे ।—**बज०** **प्र०**, पृ० १४ ।

टौर—**व**श **पु०** [**हि०** टोस] समूह । कुँड । यूप । उ०—**यह** **घोर**
काग **को** **नीको** **फम्यो** **गिरिपारी** **हिले** **कहूँ** **टौरनि** **सों** ।—
यनानंद, पृ० ५२८ ।

टौरना—**क्रि०** **स०** [**हि०** टेरना ?] मसी बुरी बात की जाँच
करना । २ किसी व्यक्ति या बात की बाहूँ सेना । पता
लगाना ।

टोरिया—**व**श **श्री०** [**श्री०**] टोसा । छोटी पहाड़ी । उ०—**बैरी**

घपनी **टोपे** **केंची** **टोरिया** **पर** **चढ़ा** **से** **आवेगा** **घोर** **बही** **से**
फाटक **घोर** **बुजें** **को** **घुस्स** **करने** **का** **उपाय** **करेगा** ।—**भौसी०**,
पृ० ३२० ।

टौरी—**व**श **स्त्री०** [**श्री०**] टोसा । घुस्स । पहाड़ी ।

ट्योम्मा—**व**श **पु०** [**श्री०**] भंफट । बखेड़ा ।

ट्रंक—**व**श **पु०** [**प्र०**] लोहे का सफरी सड़क ।

ट्रप—**व**श **पु०** [**प्र०**] १. ताश के खेल में वह रंग जो घोर रंगों के
बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत किया जाता है ।
हुकम का रंग । तुल्य । २. ट्रप का खेल ।

ट्रक—**व**श **स्त्री०** [**प्र०**] बोम्मा डोनेवाली खुली मोटर ।

ट्राम—**व**श **स्त्री०** [**प्र०**] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लकी
गाड़ी जो लोहे की बिल्ली हुई पटरी पर चलती है । इसमें पहले
घोड़े सगते थे पर अब यह बिजली से चलाई जाती है ।

ट्रेडमार्क—**व**श **पु०** [**प्र०**] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने
के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते
हैं । छाप ।

ट्रस्ट—**व**श **पु०** [**प्र०**] संपत्ति या दान । संपत्ति को इस विचार या
विश्वास से दूसरे व्यक्ति के सुपुर्द करना कि वे संपत्ति का
प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी
या दानपत्र के अनुसार करेंगे ।

ट्रस्टी—**व**श **पु०** [**प्र०**] वह व्यक्ति जिसके सुपुर्द कोई संपत्ति इस
विचार घोर विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का
प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी
या दानपत्र के अनुसार करेगा । प्रतिभावक ।

ट्रांसपोर्ट—**व**श **पु०** [**प्र०**] १. माल भ्रमण एक स्थान से दूसरे
स्थान को ले जाना । चारबरेदारी । २. वह जहाज जिसपर
सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान
को भेजा जाता है । ३. सवारी । गाड़ी ।

ट्रांसलेटर—**व**श **पु०** [**प्र०**] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा
में उल्था करता है । भाषांतरकार । अनुवादक । जैसे, गर्वन-
मैट ट्रांसलेटर ।

ट्रांसलेशन—**व**श **पु०** [**प्र०**] एक भाषा में प्रवर्तित भाषों या
विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रगट करना । एक भाषा
को दूसरी में उल्था करना । भाषांतर । अनुवाद । उल्था ।
तर्जुमा ।

ट्रूप—**व**श **श्री०** [**प्र०** ट्रूप] १. पसटन । सेन्यदल । जैसे, ब्रिटिश
ट्रूप । २. घुड़सवारी का एक दल जिसमें एक कप्तान की
अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं ।

ट्रूस—**व**श **श्री०** [**प्र०**] दो लड़नेवाली सेनाओं के नाथकों की
स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना । कुछ काल के लिये
सझाई बंद होना । शणिक सधि ।

ट्रेक्टर—**व**श **पु०** [**प्र०**] एक प्रकार का मशीनी हल ।

ट्रेजरर—**व**श **पु०** [**प्र०**] सजानची । कोषाध्यक्ष ।

ट्रेडिङ—**व**श **पु०** [**प्र०**] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र ।

ट्रेडिल मशीन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसे एक घ्राहमी पेर या बिजली आदि से चलाया तथा हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याहो इसमें आपसे आप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तसवीरें बहुत साफ छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. रेलगाड़ी में लगी हुई गाड़ियों की पक्ति। २. रेलगाड़ी।

मुहा०—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ट्रेजेडियन—संज्ञा पुं० [प्र०] १. वह अभिनेता जो विषाद, शोक

और गंभीर भावव्यंजक अभिनय करता हो। २. वियोगात नाटक लिखनेवाला। वियोगात नाटकलेखक।

ट्रेजेडी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब सघन और दृढ़ दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक जनक या दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत कष्टोत्पादक और विषादमय हो। दुःखांत नाटक। वियोगात नाटक।

ठ

ठ—व्यंजन में बारहवां व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने मूर्धा कहा है। इसका उच्चारण करने में बहुधा जीम का अग्रभाग और कभी कभी मध्य भाग तालु के किसी हिस्से में लगाना पड़ता है। यह अघोष महाप्राण वर्ण है।

ठंकरना(ठं)—क्रि० सं० [हि० ठंकरना, ठंकरना] छुपाना। ठंकरना। उ०—(क) मावडिया मुख ठंकिया, वैसे फाड़े बाक।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १६। (ख) गोरख के गुरु महा मर्छीरा तिनहे पकरि सिर ठका।—सं० बरिया, पृ० १३१।

ठंखा—संज्ञा पुं० [देश०] बृक्ष। पेड़ पीछा। उ०—बरन बान सब मोपहुँ वेधे रन बन ठंख।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १५६।

ठंठ—वि० [सं० स्थाणु] १. जिसकी डाल और पत्तियाँ सूखकर या कटकर गिर गई हो। ठूँठा। सुखा (पेड़)। २. दूध न देने वाली (गाय)। ३. धनहीन। निर्धन।

ठंठाना^१—क्रि० प्र० [ठंठ से नाम०], ठंठ शब्द की ध्वनि होना।

ठंठाना^२—क्रि० सं० ठंठ की ध्वनि करना।

ठंठसा—संज्ञा स्त्री० [सं० ठिण्डश] ढेंढस। ढेंढसी।

ठंठार(ठं)—वि० [हि० ठंठ + आर (प्रत्य०)] खाली। रीता। खूँखा। उ०—जसु कछु दीजे धरन कहूँ धापन लेहु संभार। तस सिगार सब लोन्हंसि कीन्हंसि मोहि ठंठार।—जायसी (शब्द०)।

ठंठी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठ + ई (प्रत्य०)] ज्वार, मूँग आदि का वह अन्न जो दाना पीटने के बाद बाल में खगा रहता है।

ठंठी^२—वि० स्त्री० (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठंठी गाय।

ठंठीकरना—क्रि० सं० [हि०] ठोकरना। पीटना। उ०—तन कूँ जमरो लूटसी लूटे धन कूँ लोक। नाहों करि करि बालसी हरिया हाडू ठंठीक।—रम० धर्म०, पृ० ७०।

ठंठ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंड'।

ठंठई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठंठक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडक'।

ठंठा—वि० [हि०] दे० 'ठंडा'।

ठंठाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठंठ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंठा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहा०—ठंड पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठंड लगना = शीत का अनुभव होना।

ठंठई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठंडाई'।

ठंठक—संज्ञा स्त्री० [हि० ठंडा + क (प्रत्य०)] १. शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसी अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहा०—ठंडक पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना।

ठंडक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।

२. ताप वा जलन की कमी। ताप की शक्ति। तरी।

क्रि० प्र०—घाना।

३. प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष। तृप्ति। प्रसन्नता। तसल्ली।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शक्ति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे,—इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर या पर अब ठंडक पड़ गई है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठंठा—वि० [सं० स्तब्ध, प्र० तड, पड, ठड] [वि० स्त्री० ठडी] १. जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सदै०। शीतल। गरम का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = ठंड के वक्त में। वृष निकलने के पहले। तड़के। सवेरे। उ०—रात भर सोमो, सवेरे उठकर ठंडे ठंडे चले जाना।

थी०—ठंडी आप = (१) हिम। बरफ। (२) पासा। सुषार। ठंडी कड़ाही, ठंडी कढ़ाई = हलवाईयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुआ बनाकर बाँटने की रीति। ठंडी मार = शीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई टूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत थोड़ा साई

हो। गुप्ती मार। (जैसे, लात घुसो आदि की)। ठंडी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बड़े। ऐसी देह जिसमें जवानों के चिह्न जल्दी न मादूम हों। (२) ऐसा शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंडी साँस = ऐसी साँस जो दुख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींचकर ली जाती है। दुख से भरी साँस। शोकोच्छ्वास। प्राह।

मुहा०—ठंडी साँस लेना या भरना = दुःख की साँस लेना।

२. जो जलता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, ठंडा दीया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. जो उद्दीप्त न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भडका न हो। उद्गाररहित। जिसमें आवेश न हो। शांत। जैसे, क्रोध ठंडा होना, जोश ठंडा होना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है। जैसे, क्रोध ठंडा पड़ना, उत्साह ठंडा पड़ना, क्रुद्ध मनुष्य का ठंडा पड़ना, उत्साह में आए हुए मनुष्य का ठंडा पड़ना, आदि।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—ठंडा करना = (१) क्रोध शांत करना। (२) ठाढ़ देकर शोक कम करना। ठाढ़ बंधाना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठंडी करना = शीतला या चेचक के अण्डे होने पर शीतला की प्रतिमा पूजा करना।

४. जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। सपुंसक। ५. जो उद्देगशील या चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शांत। गंभीर। ६. जिसमें उत्साह या समग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। धीमा। सुस्त। मंद। उदासीन।

यौ०—ठंडी गरमी = (१) ऊपर की प्रीति। वनावटी स्नेह का आवेश। (२) बातों का जोश। उ०—बस बस यह ठंडी गरमियाँ हमें न दिखाया करो।—सेर०, पृ० १४। ठंडा मुद्द, ठंडी लड़ाई = प्राधुनिक राजनीति में दाँव पेंच की लड़ाई। इसे शीत मुद्द भी कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द कोल्ड वार का अनुवाद है।

७. जो हाथ पैर न हिलाए। जो इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देखकर क्रुद्ध न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे,—वे बहुत इधर उधर करते थे पर जब खरी खरी सुनाई तब ठंडे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = चुपचाप। बिना चूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।

८. जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति वा इच्छा की पूर्ति से संतुष्ट हो। तृप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे,—लो, आज वह चला जायगा, अब तो ठंडे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ठंडे ठंडे = हँसी खुशी से। कुशल मानद से। ठंडे ठंडे घर आना = बहुत तृप्त होकर लौटना (अर्थात् प्रसंतुष्ट होकर या निराश होकर लौटना (अग्य)। ठंडे पेटों = हँसी खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मनमोटाव या लड़ाई भगड़े के। सीधे से। ठंडा रखना = आराम चैन से रखना। किसी बात की तकलीफ न होने देना। संतुष्ट रखना। ठंडे रहो = प्रसन्न रहो। खुश रहो। (स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एवं आशीर्वादात्मक)।

९. निश्चेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ठंडा होना = मर जाना। ताजिया ठंडा करना = ताजिया दफन करना। (मूर्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठंडा करना = जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंडा करना = (१) जल में विसर्जन करना। डुबाना। (२) किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, चुड़ियाँ ठंडी करना।

१०. जिसमें चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बेरोनक।

मुहा०—बाजार ठंडा होना = बाजार का चनता न होना। बाजार में लेनदेन खूब न होना।

ठंडाई—सका श्री० [हि० ठंडा + ई (प्रत्य०)] १. वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शांत होती है और ठंडक आती है।

विशेष—सौंफ, इलायची, कासनी, ककड़ी, कद्दु, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब की पेंखड़ी, गोल मिर्च आदि को एक में पीसकर प्रायः ठंडाई बनाई जाती है।

२. ऊपर लिखे मसालों से युक्त भाँग या शर्बत।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठंडा मुलम्मा—सका पु० [हि० ठंडा + म० मुलम्मा] बिना आँच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बेटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठंडी—वि० श्री० [हि०] दे० 'ठंडा' और उसके मुहा०।

ठंडी—सका श्री० शीतला। चेचक (स्त्रि०)।

मुहा०—ठंडी लगना = शीतला के धानों का मुरझाना। चेचक का जोर कम होना। ठंडी निकलना = शीतला के धाने शरीर पर होना। शीतला या चेचक का रोग होना।

ठंभना—सका पु० [सं० स्तम्भन, प्रा० ठम्भन] रुकने की स्थिति। रुकावट। उ०—घिन यो ठम्भन जग माही, एक हरि बिन हुआ नाही।—राम० धर्म०, पृ० २५३।

ठसरी—सका श्री० [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य (को०)।

ठः—सका पु० [सं० अनुध्व०] एक ध्वनि जो किसी धातुपात्र के कड़ी जमीन या सीढ़ियों पर गिरने से प्रत मे होती है (को०)।

ठ—सका पु० [सं०] १. शिव। २. महाध्वनि। ३. चंद्रमण्डल या सूर्यमंडल। ४. मंडल। धेरा। ५. शूंग्य। ६. गोचर। इद्रिप्राण्य वस्तु।

ठई—सका श्री० [हि० ठह > ठही] स्थिति। याह। अवस्था।

ठठरां—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठौर' । उ०—उहाँ सब सुखा निधि प्रति बिनास है अनंत यानसम ठठरा ।—प्राण०, पृ० ६५ ।

ठठवाँ†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाँव' । उ०—जंगम जोग विचारे जहूँ, जीव सोव करि एकै ठठवाँ ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२३ ।

ठठ^१—संज्ञा स्त्री० [प्रनुध्व० ठठ] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर से मारने का शब्द । ठोकने का शब्द ।

ठठ^२—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० टट्ट] स्तब्ध । भीचकका । आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट । सप्राये में धाया हुआ ।

मुहा०—ठठ से होना = स्तब्ध होना । आश्चर्य में होना । उ०—उनकी सौम्य मूर्ति पर लोचन ठठ से बँध जाते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—रह जाना ।—हो जाना ।

ठठ^३—संज्ञा पुं० [देव०] चंद्रवाजों की सलाई या सूजा जिसमें भफीम का किवाड लगाकर चँकते हैं ।

ठठ^४—संज्ञा पुं० [हि० ठग] दे० 'ठाग' । जैसे, ठकमूरी (= ठगमूरी) । उ०—ठाकुर ठठ भए गेल चौरें चप्परि घर लिज्जिम ।—कीर्ति०, पृ० १६ ।

ठठठक—संज्ञा स्त्री० [प्रनुध्व० ठठठक्] १. लगातार होनेवाली ठठठक् की ध्वनि या मावाज । २. झगड़ा । घबेरा । टंटा । झगड़ । उ०—ठठठक जम्म मरन का मेटे जम के हाथ न धावै ।—कबीर० ग्रं०, पृ० २६ । (ख) उठि ठठठक एती कदा, पावस के अभिसार । जानि परैगी देखि यों दामिनि घन घेघिदार ।—विहारी (शब्द०) ।

ठठठकाना^१—क्रि० सं० [प्रनुध्व० ठठठक] १. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु पटककर शब्द करना । खटखटाना । २. ठोकना । पीटना ।

ठठठकाना^२—क्रि० प्र० स्तब्ध होना । ठठ से होना ।

ठठठकिया—वि० [प्रनुध्व० ठठठक + हि० इया (प्रत्य०)] १. झुंझती । थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला । ठकरार करनेवाला । घबेराया ।

ठठठोभा—संज्ञा पुं० [प्रनुध्व०] १. एक प्रकार की करताब । २. करताब बजाकर भीख माँगेवाला । ३. एक प्रकार की छोटी नाव ।

ठठमूरी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] स्तब्ध या निश्चेष्ट करनेवाली बड़ी । दे० 'ठागमूरी' । उ०—जा दिन का ठर मानता सोइ बेला धाई । मलिन छोन्ही राम की ठठमूरी छाई ।—मल्ल०, भा०, पृ० ११ ।

ठठा†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठक (= घाघात या घबका)] घबका । धोह । घाघात । उ०—करै मार पग ठका देत जावै ।—प० रासो, पृ० १४४ ।

ठठार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ठ' प्रथम ।

ठठुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोखा' ।

ठठुरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठुराई' ।

ठठुरसुहाती†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर (= मालिक) + सुहाती]

ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय । लल्लोचन्यो । खुशामद । तोपमोद । उ०—हमहु कहब भब ठठुरसुहाती ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठठुर सोहाती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठुरसुहाती' । उ०—ठठुर-सोहाती कर रहे हो कि एकाध पत्तल मित जाय ।—मान०, भा०-५, पृ० ३० ।

ठठुराइत†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठुरायत' । उ०—जो कहो क्यों गई दासी हमारी । तजि तजि गूढ़ ठठुराइत भारी ।—नद० प्र०, पृ० ३२१ ।

ठठुराइति, ठठुराइती†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठुरायत + ई (प्रत्य०)] स्वामित्व । प्रभुत्व । आधिपत्य । उ०—रंग उमा सी दासी जाकी । ठठुराइति का कहिये ताकी ।—नद० प्र०, पृ० १३० ।

ठठुराइना—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर की स्त्री । स्वामिनी । मालकिन । उ०—तहि दासी ठठुराइन कोई । जहं देखो तहं ब्रह्म है सोई ।—सूर(शब्द०) । २. क्षत्रिय की स्त्री । क्षत्राणी । ३. नाइन । नाउन । नाई की स्त्री । उ०—देव स्वरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लों सीस ते पाइन । ह्वं रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी हसे कर टोढ़ी दिए ठठुराइन ।—देव (शब्द०) ।

ठठुराइसा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठुरायत' ।

ठठुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. आधिपत्य । प्रभुत्व । सरदारी । प्रधानता । उ०—भव तुलसी गिरधर विनु गोकुल को करिहै ठठुराई ।—तुलसी (शब्द०) । २. ठाकुर का अधिकार । स्वामी होने के अधिकार का उपयोग । जैसे,—खेल में कैसी ठठुराई ? उ०—न्याय न किय कोनी ठठुराई । बिना किए लिखि दोनि बुराई ।—बायसी (शब्द०) । ३. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो । राज्य । रियासत । ४. उच्चता । बड़प्पन । महत्व । बड़ाई । उ०—हरि के जन की प्रति ठठुराई । महाराज अधिराज राजहू देखत रहे लबाई ।—सूर (शब्द०) ।

ठठुरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] १. ठाकुर या सरदार की स्त्री । जमींदार की स्त्री । २. रानी । उ०—निज मंदिर ले गई चकिमणी पहुनाई बिधि ठानी । सूरदास प्रभु तेंह पग धारे जहं दोळ ठठुरानी ।—सूर (शब्द०) । ३. मालकिन । स्वामिनी । मधीश्वरी । ४. क्षत्रिय की स्त्री । क्षत्राणी ।

ठठुरानी सीजा—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठुरानी + सीज] आवण शुक्ल तृषीया को मनाया जानेवाला एक व्रत । हरियाली वीज ।

ठठुराय†—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद । उ०—गहरवार परहार सकुरे । कलहस मोर ठठुराय जूरे ।—बायसी (शब्द०) ।

ठठुरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाकुर] आधिपत्य । स्वामित्व । प्रभुत्व । उ०—ठठुरायत गिरधर की साँची । कोरव जीति जुषिष्ठिर राजा कीरति तिहें लोक में माँची ।—सूर०, १।१७ । २. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो । रियासत ।

ठकुराली—संज्ञा पुं० [हि० ठाकुर + माल (प्रत्य०)] दे० 'ठाकुर' ।
उ०—चल्या ठकुराल्या न लावीय वार । भोज तण्ण
मिलिया असवार ।—वी० रासो०, पृ० १६ ।

ठकुरास—संज्ञा स्त्री० [हि०] ठकुरास । अधिकारक्षेत्र । रियासत ।
उ०—तुम्हें मिली है मानव हिय की यह चंचल ठकुरास । पर,
हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर ।—मपलक,
पृ० ७३ ।

ठकोरा—संज्ञा पुं० [हि० ठक + मोरा (प्रत्य०)] टकोर । भाघात ।
चोट । उ०—कजर के पहर गजर ठकोरा बगे ।—रघु० ६०,
पृ० २३८ ।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० टेकना, टेकना + मोरी (प्रत्य०)] १.
सहारा लेने की लकड़ी । उ०—(क) भक्त भरोसे राम के
निधरक ऊँची दीठ । तिनकी करम न लायई राम ठकोरी
पीठ ।—कबीर (शब्द०) । (ख) देखादेखी पकरिया गई
छिनक मे घूटि । कोई बिरला जन ठाहरे जासु ठकोरी पूठि ।—
कबीर (शब्द०) ।

विशेष—यह लकड़ी भट्टे के आकार की होती है । पहाड़ी
लोग जब बोझ लेकर चलेते चलते एक जाते हैं तब इस लकड़ी
को पीठ या कमर से मिठाकर उसी के बल पर थोड़ी देर
खड़े हो जाते हैं । साधु लोग भी इसी प्रकार की लकड़ी सहारा
लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते
हैं । इसे वे वैरागिन या जोगिनी भी कहते हैं ।

ठक्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी (को०) ।

ठक्कर^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टक्कर' ।

ठक्कर^२—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] गुजरातियों की एक जातीय
उपाधि या परल ।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । ठाकुर । पूज्य प्रतिमा । २.
मिथिला के ब्राह्मणों की एक उपाधि ।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्यग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन ठगिनी] १.
धोखा देकर लोगों का धन हरण करनेवाला व्यक्ति । वह
लुटेरा भी छल और धूर्तता से माल लूटता है । मुलावा देकर
लोगों का माल छीननेवाला । उ०—जग हटवारा स्वाद ठग,
माया वेश्या लाय । राम माम गाढ़ा गहो जनि कहुं षाहु
ठपाय ।—कबीर (शब्द०) ।

विशेष—ठाकू और ठग में यह अंतर है कि ठाकू प्रायः जबरदस्ती
बल दिखाकर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्तता
करते हैं । भारत में इनका एक असंग संप्रदाय सा हो
गया था ।

मुहा०—ठग लगना=ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना ।
जैसे,—उस रास्ते में बहुत ठग लगते हैं । ठग के लाङ्गू=दे०
'ठगलाङ्क' ।

यौ०—ठगमूरी । ठगमोदक । ठगभाङ्गू । ठगविद्या ।

२. छली । धूर्त । धोखेबाज । चक । प्रतारक ।

ठगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठगपना । ठग
का काम । २. धोखा । छल । फरेब ।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक छंदों के गणों में से एक । यह पाँच
मात्राओं का होता है और इसके न उपभेद हैं ।

ठगना^१—क्रि० सं० [हि० ठग + ना (प्रत्य०)] धोखा देकर माल
लूटना । छल और धूर्तता से धन हरण करना । २. धोखा
देना । छल करना । धूर्तता करना । मुलावे में डालना ।

मुहा०—ठगा सा, ठगी सी=धोखा खाया हुआ । भूला हुआ ।
चकित । भौंचक्का । आश्चर्य से स्तब्ध । दंग । उ०—(क)
करत कछु नाही भाजु बनी । हरि भाए हों रही ठगी सी जैसे
चित्र धनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी
ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न मुदाव है ।—सुंदरीसर्वस्व
(शब्द०) ।

३. उचित से अधिक मूल्य लेना । बाजिब से बहुत ज्यादा दाम
लेना । सोचा बेपने में बेईमानी करना । जैसे,—यह दूकानदार
लोगों को बहुत ठगता है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

ठगना^२—क्रि० प्र० १. ठगा जाना । धोखा खाकर लूटना । २.
धोखे में आना । चकित होना । आश्चर्य से स्तब्ध होना ।
ठक रह जाना । दंग रहना । उ०—(क) तेउ यह चरित देखि
ठगि रहइँ ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बिनु देखे बिन ही
सुने ठगत न कोउ बाँच्यो ।—सूर (शब्द०) ।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग] १. ठग की स्त्री । २. ठगनेवाली
स्त्री । ३. धूर्त स्त्री । छलनेवाली स्त्री । ४. कुटनी ।

ठगपन—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना' ।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हि० ठग + पन + ना (प्रत्य०)] १. ठगने
का काम या भाष । २. धूर्तता । छल । चालाकी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठग + मूरि] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे
ठग लोग पयिकों को बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये
खिलाते थे ।

मुहा०—ठगमूरी खाना=मतवाला होना । होशहवास में न
रहना । उ०—(क) काहू तोहि ठगोरी खाई । बूझति सबी
सुनति नहि नेकहु तुही किबो ठगमूरी खाई ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) ज्यों ठगमूरी खाइके मुखहि न बोले बँन । दुगर दुगर देख्या
करे सु दर बिरहा ऐन ।—सु दर० प्र०, भा० १, पृ० ६३३ ।

ठगमूरी^२—वि० स्त्री० ठगमूरी से प्रभावित । उ०—टक टक ताकि
रही ठगमूरी घापा प्राप दिसारी हो ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० ८४ ।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हि० ठग + सं० मोदक] दे० 'ठगलाङ्क' ।
उ०—चलत चितै मुसकाम के घुडु बचन सुनाए । तेही
ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि तन छुछो छिटकाए ।—सूर
(शब्द०) ।

ठगलाङ्क—संज्ञा पुं० [हि० ठग + लाङ्क (= लट्क)] ठगों का लङ्क
जिसमें नशीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पयिकों से रास्ते में मिलकर
उन्हें किसी बहाने से अपना लङ्क दिखा देते थे जिसमें बिच

या कोई नशीली चीज मिली रहती थी। जब लट्ठ खाकर पयिक, मुद्दित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाडू खाना = मतवाला होना। होशहवास में न रहना। वेसुष होना। उ०—सूर कहा ठगलाडू खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कवहुँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर (शब्द०)। ठगलाडू देना = वेसुष करनेवाली वस्तु देना। उ०—मनहु दीन ठगलाडू देख प्राय तस मोच।—जायसी (शब्द०)।

ठगलीला—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + लीला] ठगों का मायाजाल। वंचना। धोखाधड़ी। उ०—छूटेगी जग की ठगलीला होंगी आखिं घंट शीला :—देला, पृ० ७६।

ठगवा(०)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठग'। उ०—कीनो ठगवा नगरिया लटल हो।—कबीर० शं०, भा० १, पृ० २।

ठगवाना—क्रि० स० [हि० ठगना का प्रे० रूप] दूसरे से किसी को धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + विद्या] ठगों की कला। धूर्तता। धोखाधड़ी। छद्म। वचकता।

ठगवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हाई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगहारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाइनि(०)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ठगनेवाली स्त्री। ठगिनी। उ०—रदि परे नर काल के दुडि ठगाइनि जानि।—कबीर० शं०, भा० ४, पृ० ८८।

ठगाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + आई (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगाठगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग] धोखाधड़ी। वचकता। धोखाधड़ी।

ठगाना—क्रि० प्र० [हि० ठगना] १ ठग जना। धोखे में आकर हानि सहना। २ किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार को बातों में आकर ज्यादा दाम दे देना। जैसे,—इस लोहे में तुम ठगा गए। ३. (किसी पर) भ्राम्यमान होना। भ्रम होना।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठगाई', 'ठगाहई'। उ०—नाहक नर मुसी धरि ऐक्यों। जिन यन नाहि ठगाही कीन्हों।—विद्याभ (शब्द०)।

ठगिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इन (प्रत्य०)] १ धोखा देकर लुटेनेवाली स्त्री। लुटेरिन। २ ठग की स्त्री। ३ धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + इनी (प्रत्य०)] १ लुटेरिन। धोखा देकर लुटेनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ भ्रावति सोइ सोइ कहि शरति जाति जनावति दे दै गारी।—सूर (शब्द०)। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ठग'।

४-३२

उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६।

ठगिया—वि० ठगनेवाला। छसनेवाला। उ०—ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेव।—स० सप्तक, पृ० १६३।

ठगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठग का काम। धोखा देकर माल लुटेने का काम। २. ठगने का भाव। ३. धूर्तता। धोखाधड़ी। चालबाजी।

ठगोरी(०)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठग + गौरी] ठगों की स्त्री माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुषवुष भुलानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु साई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँवे गौरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) दसन चमक धधरन परनाई देखत परी ठगोरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—ढालना।—पड़ना।—नगना।—लगाना।

ठगौरी(०)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठगोरी] दे० 'ठगोरी'। उ०—रूप ठगोरी डार मन मोहन लैगो साय। तब तैं सैं भरत हैं नारी नारी हाय।—स० सप्तक, पृ० १८५।

ठट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्याता (= जो खड़ा हो), या देश०] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पक्ति।

मुहा०—ठट के ठट = मुँह के मुँह। बहुत से। उ०—रात का वक्त था मगर ठट के ठट सगे हुए थे।—फिसाना०, भा० २, पृ० १०४। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर जगना। राशि इकट्ठी होना।

२. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—धरधर भर भर हरखत बरखत फूल सनेह सिधिल गोप गाइन के ठट हैं।—तुलसी (शब्द०)। ३. बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैज पन रहे काज ठट ठानि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ठटवारी = सजावटवाली। बनाव वाली।

ठटकीला—वि० [हि० ठाट] [वि० स्त्री० ठटकीली] सजा हुआ। ठाटदार। सजीला। सड़क भड़कवाला। उ०—माछी चरननि कषन सकुट ठटकील बनमाल कर टेके द्रुमद्वार टेढ़े ठाढ़े नदलाल छबि छायि घट घट।—सूर० (शब्द०)।

ठटना—क्रि० स० [सं० स्याता (= जो खड़ा या ठहरा हो)। हि० ठाट, ठाढ़] १. ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटें। पवि पवि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तक बड़ो न घटो।—सूर (शब्द०)। २. सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—(क) रुप धन्यो विकट रन ठाट ठाटि मास मास धर मास रटि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कोक करि जलपान मुरेठा ठाटि ठाटि बान्हत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४०।

मुहा०—ठटकर बातें करना = बनाव बनाव बातें करना। एक एक शब्द पर जोर देते हुए बातें करना।

३. (राग) छेड़ना। थारम करना। उ०—नव निकुंज गृह नवल प्रागे नवल बीना मधि राग गौरी ठटी।—हरिदास (शब्द०)।

ठटना^२—क्रि० प्र० १ खड़ा रहना । भड़ना । उठना । उ०—खैचत स्वाद स्वाद पातर ज्यों चातक रटत ठटो ।—सूर (शब्द०) ।
२ विरोध में जमना । विरोध में उठना रहना । ३ सजना । सुसज्जित होना । तैयार होना । उ०—जबही भाइ चढ़े दल ठटा । देखत जैसे पगल घन घटा ।—जायसी (शब्द०) ।
४ एकत्र होना । जमाव होना । पुंजीभूत होना । उ०—छत्तीस राग रागनि रसनि तत ताल कठन ठटहि ।—पू० रा०, ८१२ । ५. स्थित होना । धरना । करना । साधना । उ०—कोई नाँव रटे कोई ध्यान ठटे कोई खोजत ही थक जावता है ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २६८ ।

ठटनि^७, ठटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठटना] बनाव । रचना । सजावट । उ०—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन पुलिन ठटनी ।—सूर (शब्द०) ।

ठटया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जयली जानवर ।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाठ] १. हड्डियों का ढाँचा । मस्तिष्कज ।

मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना । कृपांग होना ।

२ घास भूसा धाँवि बाँधने का जाँच । खरिया । खड़िया । ३. किसी वस्तु का ढाँचा । ४. मुरदा उठाने की रथी । मरथी ।

ठट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठाठ] बनाव । रचना । सजावट ।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हि० टट्टी वा सं० स्थाता] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह । एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पक्ति । २. समूह । कुंड । समुदाय । पक्ति । उ०—(क) इष रहहि गणेंता विरद भणता, भट्टा ठट्टा पेखीभा ।—कीर्ति०, पृ० ४८ । (ख) देखि न जाय कपिन के ठट्टा । प्रति विशाल तनु भालु सुमट्टा ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पिपत भट्ट के ठट्ट भर गुजरातिन के बूंद ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

ठट्टना^७—क्रि० प्र० [हि० गठना] धायोजन करना । ठाटना । उ०—सु रोमशाह राजई चपम कवि साजई । सुमेर शृंग कंद के, चढ़े पपील चंद के । समय कवि ठट्टई धक्क मुट्टि चडुई ।—पू० रा०, २५ । १३६ ।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाठ] ठट्टरी । पजर । हड्डी का ढाँचा । उ०—उर धतर धुंधुभाइ जरे जस काँच की भट्टी । रक्त मांस जरि जाय रहे पाँजर की ठट्टी ।—गिरधर (शब्द०) ।

ठट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट] दे० 'ठट्ट' और 'ठट्ट' ।

ठट्टई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टा] ठट्टा । विलगी । हँसी ।

ठट्टा^१—संज्ञा पुं० [सं० प्रट्टहास या सं० टट्टरी (= उपहास)] हँसी । उपहास । दिल्लगी । मसखरापन । खिल्ली । उ०—तब नीरु ने कहा कि लोग मुझको हँसेंगे और ठट्टा में उड़ावेंगे ।—कबीर मं०, पृ० १०४ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—ठट्टाबाज, ठट्टेबाज = दिल्लगीबाज । ठट्टेबाजी = दिल्लगी ।

मुहा०—ठट्टा उड़ाना = उपहास करना । दिल्लगी करना । उ०—और लोग तरह तरह की नकलें करके उसका ठट्टा उड़ाने लगे ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १७६ । ठट्टा मारना =

खिलखिलाना । प्रट्टहास करना । ठट्टा में उड़ाना = किसी की चर्चा या कथन को मजाक समझना । खिल्ली उड़ाना । ठट्टा लगाना = खिलखिलाकर हँसना । ठठाकर हँसना । प्रट्टहास करना ।

ठठ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठठ' । २ 'ठाठ' । उ०—करि पान गया जल बिमल फिर ठठे ठठ घमसान के ।—हिम्मत०, पृ० २२ ।

ठठई^७—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टरी] हँसी । ठट्टा । मसखरापन । उ०—हुतो न सौचो सनेह मिटयो मन को, हरि परे उपरि, संदेसहु ठठई ।—तुलसी प्र०, पृ० ४४३ ।

ठठकना^७—क्रि० प्र० [सं० स्तेय + करण] १. एकबारगी रुक या ठहर जाना । ठठकना । उ०—(क) ठठकति चले मटक मुँह मोरे बकट भौह चलावे ।—सूर (शब्द०) । (ख) ढग कुङ्कति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि । सिंघे जाति चित चोरटी वदे गोरटी बारि ।—बिहारी (शब्द०) । २ स्तम्भित हो जाना । क्रियाशून्य हो जाना । ठठ रह जाना । उ०—मन में कछु कहन चढ़े देखत ही ठठकि रहे सूर श्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय ।—सूर (शब्द०) ।

ठठकाना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठकना] ठठकने का भाव ।

ठठना^१—क्रि० सं० क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठटना' । उ०—कोकि चले, ठठि छेल छले, सु छबोली धराय लौ छाँह न छावावे ।—घनानंद, पृ० २१२ ।

ठठरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठट्टरी' ।

ठठवा^१—संज्ञा पुं० [हि० टाट] एक प्रकार का रुखा और मोटा कपड़ा । इकतारा । लमगावा ।

ठठा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट्टा' ।

ठठाना^१—क्रि० सं० [अनु० ठक् ठक्] ठोकना । धाधात लगाना । पीटना । जोर जोर से मारना । उ०—फले फूले फले छल, सीदे साधु पल पल, बाती दीपनालिका ठठाइयत सूप है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दठ ठठाइ ठोठरे कीने । रहे पठान सकल मय भीने ।—साल (शब्द०) ।

ठठाना^२—क्रि० प्र० [सं० प्रट्टहास] खिलखिलाना । प्रट्टहास करना । कहकहा लगाना । जोर से हँसना । उ०—दुइ कि होइ इक सम भुभाव । हंसत ठठाइ फुलावब गाल ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठठिया^१^७—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्टर (= ढाँचा या ठठरी)] हड्डियों का ढाँचा । काया । शरीर । उ०—काह भए ठठिया के भेटे । शीख दरस बिनु भरम न भेटे ।—कबीर सा०, पृ० ४१२ ।

ठठियार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठरी (= ढाँचा)] ढाँचा । टट्टर । मस्तिष्क । उ०—तस सिंगार सब सीन्हेंसि मोहि कीन्हेंसि ठठियारि ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४१ ।

ठठियार^२—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चोपायो की चरानेवाला । चरवाहा ।—(नेपाल तराई) ।

ठठरिना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] ठठेरिन । ठठेरे की स्त्री । उ०—ठठरिन बहुतई ठाठर कीन्हो । चली महीरिन काजर कीन्हो ।—जायसी (शब्द०) ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठठकना', 'ठठकना' । उ०—
दूर ही से मुझें घाट में नहाते देख ठठके ।—प्यामा०,
पृ० १७ ।

ठठेर मंजारिका—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा + सं० मंजारिका] ठठेरे
की बिल्ली । उ०—अहे बजबी हरिन भ्रम कहा बजावे बीन ।
या ठठेर मंजारिका सुर सुनि मोहेगी न ।—दीनदयाल
(शब्द०) ।

विशेष—ठठेरी की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने
से न तो वह थोड़ी खड़खड़ाहट से डरती है न किसी अन्धे
शब्द पर मोहित होती है ।

ठठेरा^१—संज्ञा पुं० [अनु० ठन ठन अथवा हि० टाठी+एरा (प्रत्य०)]
[ज्ञा० ठठेरिन, ठठेरी] धातु को पीट पीटकर बरतन
बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा०—ठठेरे ठठेरे बसलाई=जैसे का तैसा व्यवहार । एक ही
प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो आदमियों
के बीच व्यवहार जो खालाकी, धूर्तता, बल आदि में एक
दूसरे से कम न हों । ठठेरे की बिल्ली=ऐसा मनुष्य जो कोई
अचिकर काम देखते देखते या सुनते सुनते अभ्यस्त हो गया
हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देखकर न चौंके
या न घबराय ।

विशेष—ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना
करती है । इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुनकर
नहीं डरती ।

ठठेरा^२—संज्ञा पुं० [हि० ठाँठ] ज्वार बाजरे का ठठल ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] १ ठठेरा की स्त्री । २. ठठेरा
जाति की स्त्री । ३ ठठेरा का काम । बरतन बनाने का काम ।
यौ०—ठठेरी बाजार ।

ठठेरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० टट्टर (= रोक)] अवरोध । रोक ।
आड़ । उ०—बीसों तीस गोलामू ठठेरी तोड़ नायी । साले
तोप राजा की भचंका भोड़ नाखी ।—गिखर०, पृ० ७५ ।

ठठोल—संज्ञा पुं० [हि० ठठ्ठा] [स्त्री० ठठोलिन] १ ठठेराज ।
विनोद प्रिय । दिल्लगीबाज । मसखरा । उ०—मूँछ मरोरत
बोलई ऐठ्यो फिरत ठठोल ।—सुंदर० प्र०, भा० १,
पृ० ३१६ । २ ठठोली । हँसी । दिल्लगी । उ०—याद परी
सब रस की वार्त बढ़ि गयो विरह ठठोलन सौं ।—भारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ३६५ ।

ठठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठ्ठा] हँसी । दिल्लगी । मसखरापन ।
मजाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय ।
उ०—ऐसी भी रही ठठोली ।—अर्चना, पृ० ३४ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठठकना', 'ठठकना' ।

ठठ्ठा—वि० [सं० स्पातृ] खड़ा । दंडायमान ।

यौ०—ठठिया व्यवहार=वह सामाजिक व्यवहार जिसमें रूप्यो
का खेव देन न होता हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठिया—संज्ञा पुं० [हि० ठठ्ठा] वह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल
खड़ी होती है ।

विशेष—ऐसा नैचा सखनऊ में बनता है और मिट्टी की फरशी में
सगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक
करते हैं ।

ठठ्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठठ्ठा] १. पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

यौ०—ठठ्ठाहट्टी=जिसकी कमर झुकी हो । कुबड़ी ।—(स्त्रि०) ।

२. पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । काँप का उसटा । ३. ठाँचा ।
टट्टर । उ०—दुर्बान और केलों के ठठ्ठे खड़ा कर देते ।—
प्रेमधन०, भा० २, पृ० ६ ।

ठठ्ठा—वि० [सं० स्पातृ] खड़ा । दंडायमान । उ०—तरकि तरकि
भति वज्र से डारें । मदमत इद्र ठठ्ठी फलकारें ।—नद०
प्र०, पृ० १२२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ठठिया—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठ्ठा (=खड़ा)] १. काठ की वह ऊँची
भोखली जिसमें पड़े हुए धान को खिया खड़ी होकर कुटती
है । २. मरसा नाम का साक । ३. पशुओं का एक रोग ।

ठठियाना—क्रि० सं० [हि० ठठ्ठा (=खड़ा)] खड़ा करना ।

ठठुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठठिया' ।

ठन—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द ।
किसी धातु के बजने का शब्द ।

यौ०—ठन ठन=चमड़े से मढ़े हुए बाजे का शब्द ।

ठनक—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठन ठन] १. मृदंगादि की ध्वनि । चमड़े
से मढ़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द । उ०—खनक चुरीन
की ल्यो ठनक मृदगन की रुक रुक सुर मृपुर के जाल को ।
—पपाकर (शब्द०) । २. रह रहकर आघात पड़ने की
सी पीड़ा । टीस । चसक । ३. धातुखंड पर आघात होने
से उत्पन्न शब्द । ठन ।

मुहा०—ठनकर बोलना=कड़ी आवाज में कुछ कहना ।

उ०—सिंह ठवनि होए बोसे ठनकि के, रन जीते फिरि
भावे ।—सं० दरिया, पृ० ११५ ।

ठनकना—क्रि० प्र० [अनु० ठन ठन] १ ठन ठन शब्द करना ।
धातुखंड अथवा चमड़े से मढ़े बाजे आदि का आघात पाकर
वजना । जैसे, तबला ठनकना । २. रह रहकर आघात पड़ने
की सी पीड़ा होना । जैसे, माया ठनकना ।

मुहा०—तबला ठनकना=चुप गीत आदि होना । उ०—हम भी
रस्ते रात के आघात रहे तो तबला ठनकर रहा ।—भारतेंदु
प्र०, भा० १, पृ० ३२६ । माया ठनकना=किसी बुरे लक्षण
को देखकर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना । जैसे, तार
पाते ही माया ठनका ।

ठनका—संज्ञा पुं० [हि० ठनक] १ धातुखंड आदि पर आघात पड़ने
का शब्द । २. आघात । ठोकर । ३. रह रहकर आघात
पड़ने की सी पीड़ा ।

ठनकाना—क्रि० स० [हि० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना । जैसे, तबला ठनकाना, रुपया ठनकाना ।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजाकर ले लेना । रुपया बसूल कर लेना । उ०—बैद्य, तुमने रुपए तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो ।

ठनकार—सञ्ज्ञा पुं० [अनुव्य० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनकारना—क्रि० प्र० [हि० ठनकार] फुफकारना । क्रुद्ध सपं का फन काढ़कर फुफकारना । उ०—सन सन करके रात खनकती भींगुर भनकारें । कमी कमी बादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारें । सपि खंडहर पर ठनकारें ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४८६ ।

ठनगन^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेगियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या झड़ । उ०—ठनगन तैं सब वाम बसनन सजि सजि कै गई ।—नद० प्र०, पृ० ३३३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठानना ।—होना ।

२. हठ । मड़ । मान । उ०—यनि माएँ ठनगन ठनति है सत्रोंपर राधे तोहि लहौं ।—घनानंद, पृ० ४५६ ।

ठनठन—क्रि० वि० [अनुव्य०] धातुखंड के बजने का शब्द ।

ठनठन गोपाल—सञ्ज्ञा पुं० [अनुव्य० ठनठन + गोपाल (= कोई व्यक्ति)] १. छुँछी घोर निःसार वस्तु । वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो । २. खूबसूरत आदमी । निर्धन मनुष्य । वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो ।

ठनठनाना^२—क्रि० स० [अनुव्य०] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना । बजाना ।

ठनठनाना^३—क्रि० प्र० ठन ठन बजना या आवाज होना । ठनठन की ध्वनि होना ।

ठनना—क्रि० प्र० [हि० ठनना] १. (किसी कार्य का) तत्परता के साथ आरंभ होना । दृढ़ संकल्पपूर्वक आरंभ किया जाना । अनुष्ठित होना । समारंभ होना । छिड़ना । जैसे, काम ठनना, भगड़ा ठनना, वैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना । २. (मन में) स्थिर होना । ठहरना । निश्चित होना । पक्का होना । दृढ़ होना । चिन्ता में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना । दृढ़ संकल्प होना । जैसे, मन में कोई बात ठनना, हठ ठनना । उ०—हरिचंद्र तु बात ठनी तो ठनी नित की कलकानि ते छूटनी है ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । ३. ठहरना । लगना । जमना । धारण किया जाना । प्रयुक्त होना । उ०—डुलरी कल कोकिल कठ बनी मृग खजन मंजन भाँति ठनी ।—केशव (शब्द०) । ४. उद्यत होना । मुस्तैद होना । सन्नद्ध होना । उ०—रत जीवन काजै सटन निवाजै आनंद छाजै युद्ध ठवे ।—गोपाल (शब्द०) ।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना ।

ठनमनाना—क्रि० प्र० [हि०] ३. 'ठनमनाना' ।

ठनाका—सञ्ज्ञा पुं० [अनुव्य० ठन] ठन ठन शब्द । ठनकार ।

ठनाठन—क्रि० वि० [अनुव्य० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ । भनकार के साथ । जैसे, ठनाठन बजना ।

ठप—सञ्ज्ञा पुं० [अनुव्य०] १. छुले हुए ग्रंथ की एकाएक बंद करने से उत्पन्न शब्द या ध्वनि । २. किसी कार्य या व्यापार का पूरी तरह बंद रहना या रुक जाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

ठपका—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] धक्का । ठोकर । ठेस । उ०—गढ़ तन काचा कुम है निया फिरे था साथ । ठपका लाग्या फूटि गया फट्ट न आया हाथ ।—कवीर (शब्द०) ।

ठपाका—सञ्ज्ञा पुं० [फा० तपाक] जोश । आवेष्ट । वेग । तेजी । उ०—रामसिंह नशे में थे ही ठपाक से भालू की लड़ियाँ गाने लगे ।—कालि०, पृ० २४ ।

ठपोरना—क्रि० स० [हि० ठप ठप अनुव्य०] धपधपाना । ठोकना । उ०—जन दरिया बानक बना गुरू ठपोरी पूठ ।—दरिया० बानी, पृ० १६ ।

ठप्पा—सञ्ज्ञा पुं० [म० स्वापन, हि० यापन, पाप, अथवा अनुव्य० ठप] १. नकली, धातु, मिट्टी आदि का सड़ जिसपर किसी प्रकार की प्राकृति, बेलवूटे या मंजर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उरी किसी दूसरी वस्तु पर रखकर दबाने से या दूसरी वस्तु को उसपर रखकर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे प्राकृतियाँ, बेलवूटे या मंजर उभर आँवें प्रगया बन जाँय । सीना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. चाकड़ी का टुकड़ा जिसपर उभरे हुए बेलवूटे बने रहते हैं और जिगपग रंग, स्याही आदि पोतकर उन बेलवूटों को कपड़े आदि पर छापते हैं । छापा । ३. गोटे पट्टे पर बेलवूटे उभारने का सोचा । ४. सभे के द्वारा बनाया हुआ चिह्न, बेलवूटा भादि । छाप । नकश । ५. एक प्रकार का चोड़ा नकाशोदार गोटा ।

ठक्का—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० ठपका] पाघात । ठोकर । ठेस । उ०—या तनु को कइ गर्व करत है प्रोजा ज्यो गल आवे रे । जैसे बर्तन बनों काँच को ठक्क लगे निगलाने रे ।—राम० धर्म०, पृ० ३६० ।

ठक्कना—क्रि० प्र० [हि० ठनक] ठेस या ठोकर देजें हुए चलना । ठसक के साथ चलना । उ०—हवकि न चोत्रिबा, ठक्कि व चालिबा धीरे धरिबा पाव । गरब न करिबा, सहजै रहिबा भणत गोरख रावें ।—गोरख०, पृ० ११

ठभोली^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० ठठोली वा देश०] ३. 'ठठोली' ।

ठमकना^२—क्रि० स० [अनु०] ठम् की ध्वनि के साथ गिरना, ठहरना या रुकना उ०—उरें फुट्ट सत्ताह धरनी ठमकें ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

ठमक—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० ठमकना] १. चलते चलते ठहर जाने का भाव । रुकावट । २. चलने की ठसक । चलने में हावभाव सचक ।

ठमकना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] १. चलते चलते ठहर जाना । ठिठकना । रुकना । जैसे,—तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो । २. ठमक के साथ रुक रुककर चलना । हाव भाव दिखाते हुए चलना । भंग मरोड़ते या मटकाते हुए चलना । लचक के साथ चलना । उ०—ठमकि ठमकि सरकौही चालन घाड़ सामुहें मेरे ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३८६ ।

ठमका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० मनुष्य०] ठम् ठम् की स्थिति या क्रिया । ठक ठक । भ्रमट बखेडा । उ०—धमण धमती रह गई सीला पड़या अंगार । अहरण का ठमका मिटया री ताद चले लोहार ।—राम० धर्म०, पृ० १६ ।

ठमका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] झोंका । उ०—इसलिये कान सेठानी नींद का ठमका ले रही थी ।—जनानी०, पृ० ३८ ।

ठमकाना—क्रि० सं० [हि० ठमकना] ठहराना । चलते चलते रोकना ।

ठमकारना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठमकाना' ।

ठमठमाना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] ठमकना । ठिठकना । उ०—हुल्हा जू जरा जरा ठमठयाया ।—झाँसी०, पृ० ३१६ ।

ठमिकना^१—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'ठमकना' । उ०—चोया को लेंहंगो झूना को ताव । ठमिक ठमिक घन देख्य पाव ।—वी० रासो, पृ० ११४ ।

ठमकड़ा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठमक (= ठमक) + ड़ा (प्रत्य०)] ठक ठक की आवाज । ठपका । ठमका । उ०—धबलिय धबती रहि गई, बुकि गए अंगार । अहरण रत्ना ठमकड़ा जब उठि चले लुहार ।—कबीर प्र०, पृ० ७५ ।

ठयना—क्रि० सं० [सं० अनुष्ठान] १. ठानना । हठ संकल्प के साथ प्रारम्भ करना । छेड़ना । उ०—(क) दासी सहस्र प्रगट तँह भई । इद्रलोक रचना श्रमि ठई ।—सूर (शब्द०) । (ख) जब नैगनि प्रीति ठई ठग श्याम सो, स्थायी सखी हूँति हौ बरजौ ।—तुलसी (शब्द०) । २. कर चुकना । पूरी तरह से करना । (इसका प्रयोग सपो० क्रि० के रूप में हुआ है) । उ०—देवता निहोरे महामारिन सों कर जोरे मोरानाय भोरे पापनी सी कहि ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मन में ठहराना । निश्चित करना । उ०—तुलसिदास कौन प्रास मिलन की ? कहि गए सो तो एकी चित न ठई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एहि विधि हित सुम्हार मे ठएक ।—मानस, पृ० ७१ ।

ठयना^२—क्रि० प्र० १. ठनना । हठ संकल्प के साथ प्रारम्भ होना । २. मन में दृढ़ होना । ३. प्रयोग में आना । फाय में प्रयुक्त होना ।

ठयना^३—क्रि० सं० [सं० स्थापन, प्रा० ठवन] १. स्थापित करना । बैठाना । ठहराना । २. लगाना । प्रयुक्त करना । नियोजित करना । उ०—विधिना धति हौ पोच कियो री । रोम रोम लोचन इक टक करि युवतिच प्रति काहे न उयो री ।—सूर (शब्द०) ।

ठयना^४—क्रि० प्र० १. ठहरना । स्थित होना । बैठना । जमना । उ०—राज रख लखि गुरु भूसुर सुभासनहि समय समाज की

ठयनि भली ठई है ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रयुक्त होना । लगना । नियोजित होना ।

ठरना—क्रि० प्र० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठइ, हि० ठार + ना (प्रत्य०)] १. प्रत्यंत शीत से ठिठुरना । सरदी से झकड़ना या मुन्न होना । जैसे, हाथ पाँव ठरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. प्रत्यंत सरदी पड़ना । बहुत अधिक ठंड पड़ना ।

ठरकना—क्रि० प्र० [हि० ठरका (= ठोकर, टक्कर)] टकराना । उ०—चकमक ठरकै भगति भरै यूँ धव मयि घृत करि लीया ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

ठरमरुआ^१—वि० [हि० ठार + मारना [वि० स्त्री० ठरमई] वह फसल जिसे पाला मार गया हो ।

ठराना—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] ठिठ जाना । स्थिर होना । ठहरना । उ०—हरि कर चिपका निरखि तियन के नैना छविहि ठराई ।—नद० प्र०, पृ० ३८१ ।

ठराना^२—क्रि० सं० [हि० ठडा (= खड़ा) + ना (प्रत्य०)], या ठहराना] खड़ा करना । तैयार करना । बनाना । ठहराना । उ०—जमी के तले यक ठरा कर मकान ।—दक्खिनी०, पृ० ३३६ ।

ठरारा—वि० [हि० ठार] सदैव । ठडा । उ०—कवहुँ मनहि मन सोचत, मोचत स्वास ठरारे ।—नद० प्र०, पृ० २०१ ।

ठरुआ^१—वि० [हि० ठार] [वि० स्त्री० ठरई] फसल जिसे पाला मारा गया हो ।

ठरुका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठोकर] ठोकर । आघात । उ०—जिनसौ प्रीति करत है गाढ़ी सो मुख लावे लुकी रे, जारि बारि तन खेद करेगे दे दे मुँठ ठरुकी रे ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६१० ।

ठरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठड़ा (= खड़ा)] १. इतना कड़ा बड़ा हुआ मोटा सूँ जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे । मोटा सूत । २. बड़ी घषपकी ईंट । ३. महुवे की निकृष्ट कड़ी शराब । फूल का उलटा । ४. भंगिया का वव । तनी । ५. एक प्रकार का मड़ा सूता । ६. मड़ा और बेडौल मोती ।

ठरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. बिना अकुर उठा हुआ घान का बीज जो छितराकर बोया जाता है । २. बिना अकुर उठे हुए घान की बोआई ।

ठलवारि^१—वि० पुं० [हि० ठल्ला, ठल्ल > ठल्लेनवीसी (= बहाना, निठल्लापन)] बहाना करनेवाला । किसी बात को हँसी में उड़ा देनेवाला । ठट्टेबाज । उ०—कहा तेरेईं प्रायो राज साज तजि खोरत छोरे काज, कहा तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।—घनानंद, पृ० ४२६ ।

ठलाना^१—क्रि० सं० [प्रा० ठल्ल] ठेलना । रखना । उ०—(क) ता पाछे रीति अनुसार सामग्री ठवाइ प्रभुन को पचना कुवाइ भाति करि अनोसर करते ।—दो सी वाचन०, भा० १, पृ० १०१ । (ख) पाछे वह सब प्रत्य तुमको तुम्हारे भासनव में ठवाइ देहुंगी ।—दो सी वाचन०, भा० १, पृ० २५५ ।

ठलाना^२—क्रि० सं० [हि० ठालना] गिराना । निकालना ।

ठलुआ—वि० [मप० ठल (= रिक्त) या हि० ठाला + उ आ (प्रत्य०)]
निठला । खाली । उ०—मधुवन की बातों ही में मालूम
हुआ कि उस घर में रहनेवाले सब ठलुए वेकार हैं ।—तितली,
पृ० २२७ ।

ठलुआ—वि० [मप० ठल या हि० ठाला + उक (प्रत्य०)] दे०
'ठलुआ' ।

ठल्ला^१—वि० [मप० ठलिय ठल्य] १ निर्वन । धनरहित ।
दरिद्र । २. खाली । शून्य । रिक्त । उ०—नमणी खमणी वह
गुणी सगुणी भनइ सियाई । जे घर एही सपजइ, तउ जिन
ठल्लउ जाइ ।—ढोला०, दु० ४५३ ।

ठवेंका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठमक] दे० 'ठमक', 'ठसक' । उ०—
चदेलिन ठवेंकन्ह पगु डारा । चली चोहानी होइ भन-
कारा ।—जायसी ग्र०, पृ० २४६ ।

ठषक^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठोक] आघात । थपकी । ठोका । उ०—
पवन ठवक लागि ताहि जगावै । तब ऊरध को शीश उठावै ।—
चरण० बानी, पृ० ८० ।

ठवन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थापण, प्रा० ठावण] दे० 'ठवनि' ।

ठवना^१—क्रि० सं० [सं० स्थापन] १ स्थापित करना ।
रखना । उ०—वायस वोजउ नाम, ते आगलि खल्लउ ठवइ ।
जइ तू हई सुजाण तउ तू वहिलउ भोकलइ ।—ढोला०, दु०
१४२ । २. योजना करना । ठानना । उ०—आठम प्रहर सभा
समे धरा ठवै सिणगर ।—ढोला०, दु० ५८६ ।

ठवना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठवना' ।

ठवनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, हि० ठवना (= बैठना) वा सं०
स्थान] १ बैठक । स्थिति । उ०—राज रत्न लखि गुरु
श्वसुर सुभासनहि समय समाज की ठवनि भली ठई है ।—
तुलसी (शब्द०) । २. बैठने या खड़े होने का ढंग । आसन ।
मुद्रा । भग की स्थिति या संचालन का ढब । अदाज । उ०—
(क) कुजर मनि कठा कलित उर तुलसी की माल । वृषभ
कंध केहरि ठवनि वलनिधि बाहु त्रिसाल ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए । ठवनि जुवा मृगराज
लजाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठवरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठोर' । उ०—कपनी कयि कयि बहु
चतुराई । चोर चतुर कहि ठवर ना पाई ।—स० दरिया,
पृ० ८ ।

ठस—वि० [सं० स्थास्तु (= दृढ़ता से जमा हुआ, दृढ़)] १. जिसके
कण परस्पर इतने मिले हो कि उसमें उंगली आदि न घँस
सके । जिसके बीच में कहीं रेंद्र वा अक्काश न हो । जो
भुरभुरा, गीला या मुलायम न हो । ठोस । कड़ा । जैसे, बरफी
का सुखकर ठस होना, गीले भाटे का ठस होना । २. जो
भीतर से पोला या खाली न हो । भीतर से भरा हुआ । ३.
जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों । जिसकी बुनावट घनी हो ।
गफ । जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा । उ०—इस टोपी का
काम खूब ठस है ।—(शब्द०) । ४. दृढ़ । मजबूत । ५.
भारी । वजनो । गुरु । ६. जो अपने स्थान से जल्दी न टसके ।
जो हिले बोले नहीं । निष्क्रिय । सुस्त । मट्टर । भालसी । ७.

(रूपा) जिसकी भूतकार ठीक न हो । जो खरे सिक्के के
ऐसा न हो । जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न
दे । जैसे, ठस रुपया । ८ भरा पूरा । संपन्न । घनाढ्य ।
जैसे, ठस भसानी । ९ कृपण । कजूस । १०. हठो । बिदी ।
अड़ करनेवाला ।

ठसक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठस] १. अभिमानपूर्ण हाव भाव ।
गर्वोली चेष्टा । नखरा । जैसे,—वह बड़ी ठसक से चलती है ।
२ अभिमान । दप । शान । उ०—कढ़ि गई रैयत के जिय
की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की ।
—भूषण (शब्द०) ।

ठसकदार—वि० [हि० ठसक + फा० दार] १. घमडी । अभि-
मानी । २ शानदार । तटक भड़कवाला । उ०—ठोर ठकुराई
को लु ठाकुर ठसकदार नद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई
है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठसका—सञ्ज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. वह खाँसी जिसमें कफ न निकले
और गले से ठन ठन शब्द निकले । सूखी खाँसी । २. ठोकर ।
धक्का ।

क्रि० प्र०—खाना ।—मारना ।—लगना ।

ठसाठस—क्रि० वि० [हि० ठस] ऐसा दबाकर भरा हुआ कि
और भरने की जगह न रहे । ठूसकर भरा हुआ । खूब कस-
कर भरा हुआ । खचाखच । जैसे,—(क) वह सड़क कपड़ों
से ठसाठस भरा हुआ है । (ख) इस कुप्पे में ठसाठस चीनी
भरी हुई है ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल धूल या ठोस वस्तुओं के लिये
ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं । जो
वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु में भरी जाती है दोनों के
संबंध में इस शब्द का व्यवहार होता है । जैसे, सड़क ठसाठस
भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं ।

ठसा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ नक्काशी बनाने की एक छोटी रस्सानी ।
२. गवपूर्ण चेष्टा । अभिमानपूर्ण हाव भाव । ठसक । ३.
घमंड । अहंकार । ४ ठाट बाट । शान । ५ ठवनि । मुद्रा ।
अदाज ।

मुहा०—ठसे के साथ बैठना = घमंड के साथ बैठना । गवं भरी
मुद्रा में शान के साथ बैठना । उ०—कोचवान भी ठसे के
साथ बैठा है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६ । ठसे से
रहना = ठाट बाट से रहना या जीवन बिताना । उ०—इस
ठसे से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर
लें ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १ ।

ठह—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ठाँव । ठही । स्थान ।

ठहक—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] नगारे का शब्द ।

ठहकना—क्रि० प्र० [देश०] ध्वनि करना । बोलना । आवाज
करना । उ०—पिक ठहकें भरणा पई हरिए डूंगर हाल ।—
बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ८ ।

ठहकाना^१—क्रि० सं० [हि० ठह (= स्थान)] किसी वस्तु को
उसके ठीक स्थान पर बैठाना या जमाना । उ०—तन बंदूक
सुमति के सिगरा, ज्ञान के गज ठहकाई । सुरति पलीता हरदम

सुलगै, कसपर राख चढ़ाई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ४० ।
(क) दम को दाक सहज को सीसा ज्ञान के गज ठहकाई।—
कबीर० श०, भाग २, पृ० १३२ ।

ठहना^१—क्रि० सं० [प्रनुष्व०] १. हिनहिनाना । घोड़े का बोलना ।
२. घनघनाना । घटे का बजाना ।

ठहना^२—क्रि० प्र० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए
सोच विचार करने या बनाने संवारने के लिये धीरे धीरे बीच में
ठहरना । धीरे धीरे धैर्य के साथ करना । बनाना । संवारना ।
किसी काम को करने में खूब जमना ।

मुहा०—ठह ठहकर बोलना = हाव भाव से साथ रुक रुककर
बोलना । एक एक शब्द पर जोर दे देकर बोलना । मठार
मठारकर बोलना । ठहकर = अच्छी तरह जमकर ।

ठहनाना—क्रि० प्र० [प्रनुष्व०] १. घोड़ों का बोलना । हिन-
हिनाना । उ०—गज भरु कुरुपति छवि छाई । चहुँविडि
तुरप रहे ठहनाई।—सबल (शब्द०) । घटे का बजना ।
घनघनाना । ठनठनाना उ०—दृढ़ घंट घ्वनि प्रति ठहनाई ।
मार राग सहित सहनाई।—सबल (शब्द०) । ३. दे०
'ठहना^३' ।

ठहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थल या स्थिर] १. स्थान । जगह । उ०—ठाकुर
महेश ठकुराइनि उमा सी जहाँ लोक वेद हैं विदित महिमा
ठहर की।—तुलसी (शब्द०) । २. रसोई के लिये मिट्टी
से लिपा हुआ स्थान । चौका । ३. रसोईघर आदि में मिट्टी
की लिपाई । पोताई । चौका । उ०—नेम प्रचार पटकर्म
नहीं नोहीं पाति को पान । चौका चदन ठहर नहीं मीठा देव
निदान ।—सं० दरिया०, पृ० ३८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—ठहर देना = रसोईघर वा भोजन के स्थान को लीप पोत-
कर स्वच्छ करना । चौका लगाना ।

ठहरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर + हि० ना (प्रत्य०), प्रथवा सं०
स्थल, हि० ठहर + ना (प्रत्य०)] १. चलना बंद करना ।
गति में न होना । रुकना । थमना । जैसे,—(क) थोड़ा ठहर
जामो पोछे के लोगों को भी सा लेने दो । (ख) रास्ते में
कहीं न ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. विश्राम करना । डेरा ठासना । टिकना । कुछ काल तक के
लिये रहना । जैसे,—घाप काशी में किसके यहाँ ठहरेंगे ?

संयो० क्रि०—जाना ।

३. स्थित रहना । एक स्थान पर बना रहना । इधर उधर न
होना । स्थिर रहना । जैसे,—यह नौकर चार दिन भी किसी
के यहाँ नहीं ठहरता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना । चित्त की
आकुलता दूर होना ।

४. नीचे न फिसलना या गिरना । बढ़ा रहना । टिका रहना ।
बढ़ने या गिरने से रुकना । स्थित रहना । जैसे, (क) यह

गोला डबे की नोक पर ठहरा हुआ है । (ख) यह घड़ा फूटा
हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा । (ग) बहुत से योगी देर
तक झंघर में ठहरे रहते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. दूर न होना । बना रहना । न मिटना या न नष्ट होना ।
जैसे,—यह रंग ठहरेगा नहीं, उड़ जायगा । ६. जल्दी न
टूटना फटना । नियत समय के पहले नष्ट न होना । कुछ दिन
काम देने लायक रहना । चलना । जैसे,—यह जूता तुम्हारे
पैर में दो महीने भी नहीं ठहरेगा । ७. ज़िम्मी धुली हुई वस्तु
के नीचे बैठ जाने पर पानी या धर्क का स्थिर और
साफ होकर ऊपर रहना । धिराना । ८. प्रतीक्षा करना ।
धैर्य धारण करना । धीरज रखना । स्थिर भाव से रहना ।
चलन या आकुल न होना । जैसे,—ठहर जामो, देते हैं,
आफत क्यों मचाए हो । ९. कार्य आरम्भ करने में देर करना ।
प्रतीक्षा करना । आसरा देखना । जैसे,—प्रब ठहरने का वक्त
नहीं है झटपट काम में हाथ लगा दो । १०. किसी लगातार
होनेवाली क्रिया का बंद होना । लगातार होनेवाली बात
या काम का रुकना । थमना । जैसे, मेह ठहरना, पानी
ठहरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

११. निश्चित होना । पक्का होना । स्थिर होना । तै पाना ।
करार होना । जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना ।
बात ठहरना, व्याह ठहरना ।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का सकल्प होना ।
विचार स्थिर होना । ठनना । जैसे,—(क) क्या अब चलने
ही की ठहरी ? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरे ।
ठहरा = है । जैसे,—(क) वह तुम्हारा भाई ही ठहरा कहाँ
तक खबर न लेगा ? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे
क्या छिपाना ? (ग) अपने सबबी ठहरे उन्हें क्या कहें ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ
किसी व्यक्ति या वस्तु के सम्बन्ध होने पर विशुद्ध घटना या
व्यवहार की संभावना होती है ।

† ११. (पशुओं के लिये) गर्भ धारण करना ।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना] १. ठहराने की क्रिया । २.
ठहराने की मजदूरी । कम्बा । अधिकार ।

ठहराऊँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठहराव' ।

ठहराऊ—वि० [हि० ठहरना] ठहरनेवाला । कुछ दिन बना
रहनेवाला । जल्दी नष्ट न होनेवाला । २. टिकाऊ । चलने-
वाला । बड़ा । मजबूत । † ३. ठहरानेवाला । टिकानेवाला ।
किसी कार्य को निश्चित करानेवाला । किसी व्यक्ति को कहीं
टिकानेवाला ।

ठहराना^१—क्रि० सं० [हि० ठहरना का प्रेरण] १. चलने से
रोकना । गति बंद करना । स्थिति कराना । जैसे,—(क)
वह चला जा रहा है उसे ठहराओ । (ख) यह चलता हुआ
पहिया ठहरा दो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. टिकावा । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक के लिये निवास देना । जैसे,—इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । ३ इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे । झड़ाना । टिकाना । स्थित रखना । जैसे, ठंडे की नोक पर गोषा ठहराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४ स्थिर रखवा । इधर उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । ५ किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करवा । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । पक्का करवा । स्थिर करना । तै करना । जैसे, घात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहरावा, व्याह ठहराना ।

ठहराना^७—क्रि० प्र० [हि० ठहरना] रुकना । टिकना । स्थिर होना । उ०—(क) रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी इक ठौर । —स० सप्तक, पृ० १८३ । (ख) जबै भाऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ ।—सूर (शब्द०) ।

ठहराव—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठहरना] ठहरने का भाव । स्थिरता । २ निश्चय । निर्धारण । नियति । मुकरंरी । ३ दे० 'ठहरनी' ।

ठहरूँ—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठहर' ।

ठहरौनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठहराना, पु० हि० ठहरावनी] १ शिवाह में लेन देव का करार । २ किसी भी प्रकार का पारस्परिक करार या निश्चय ।

ठहाका^१—सञ्ज्ञा पु० [अनुध्व०] झट्टहास । जोर को हँसी । कहकहा । क्रि० प्र०—भारना ।—लगाना ।

ठहाका^२—वि० चटपट । घुरत । तड़ से ।

ठहियाँ^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठह, ठाँव] ठाँह । जगह । ठिकाना । स्थान ।

ठहोँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठह] स्थान । ठाँव । ठाँह ।

ठहोर^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठहर] ठहरने योग्य स्थान । विश्राम योग्य स्थल । उ०—कतए भवन कत प्रागन बाप कतए कत माय । कतहु ठहोर नहि ठेहर ककर एहन जमाय ।—विद्यापति, पृ० ३६८ ।

ठाँ^१—सञ्ज्ञा स्त्री० पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] दे० 'ठाँव' । उ०—यौ सब ठाँ दरसे बरसे घबमानद भीजि घराधि कृपाई ।—घनानंद, पृ० १५० ।

यौ०—ठाँ ठाँ = स्थान स्थान पर । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मथानी वज्र । जनु नव मानेंव बुद भगजै ।—नंद० प्र०, पृ० २४८ ।

ठाँ^२—सञ्ज्ञा पु० [अनुध्व०] बंदूक की धावाज ।

ठाँई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठाँव] स्थान । जगह । उ०—मीन रूप जो कीव बनाई । तीन छोड़ रहूँ चौथे ठाँई ।—कबीर सा०, पृ० १७ । २. तई । प्रति । उ०—पाव भले मुख नैव रची

रचि प्रारसी देखि कहैं हम ठाँई ।—केशव (शब्द०) । ३. समीप । पास । निकट ।

ठाँड़, ठाँऊँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] १ ठौर । ठाँव । स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—रक सुदामा कियो प्रजाची, दियो भ्रमपद ठाँड़ ।—सूर०, १।१६४ । २. पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहमद ठाँऊँ । जिन्हहि दोन्हि जग विरमल नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाँठ—वि० [सं० स्थाणु (= ठूँठा पेड़) वा अनु० ठन ठन] १. जो सूखकर बिना रस का हो गया हो । चौरस । २ (गाय या भैंस) जो दुध न देती हो । दुध न देनेवाला (चोपाया) । जैसे, ठाँठ गाय । दे० 'ठाँठ' ।

ठाँठरी^१—सञ्ज्ञा पु० [हि०] ठठरी । ठाँषा ।

ठाँठर^२—वि० [हि० ठाँठ] दे० 'ठाँठ' ।

ठाँण^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] पान । जगह । उ०—खूँटइ जीण न मोजड़ी कदवाँ वही केकाण । साजनिया साखइ नहीं, सालइ प्राही ठाँण ।—ढोला०, दू० ३७५ ।

ठाँमाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ठाँव । स्थान । उ०—ठगिया रूप निहारि, ठाँम ठाँम ठाँरो खरो ।—ब्रज० प्र०, पृ० २ ।

ठाँय^१—सञ्ज्ञा पु० स्त्री०, [सं० स्थान, प्रा० ठाण] १. स्थान । जगह । ठिकाना ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२ समीप । निकट । पास । उ०—जिन लागि निज परलोक विगारयो ते उजात होत ठाँये ठाँय ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाँय^२—सञ्ज्ञा पु० [अनुध्व०] बंदूक छूटने का शब्द । जैसे,—ठाँय से गोली मार दो ।

ठाँय^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. लगातार बंदूक छूटने का शब्द । २. रगड़ा । झगड़ा । उ०—खैर अब इस ठाँयें ठाँयें से क्या मतलब ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७७ ।

ठाँव—सञ्ज्ञा स्त्री०, पु० [सं० स्थान, प्रा० ठाव] स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—(क) निहरी, नीच, निगुन निर्धन कहैं जग दूसरों न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाहिन खेरे श्रीर कोठ बलि खरन कमल बिनु ठाँव ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सब कवियों ने पु० किया है और अधिक स्थानों में पु० ही बोला जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पश्चिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

२ भवसर । मोका । उ०—इहै ठाँव हों बारति रही ।—जायसी प्र०, पृ० ८४ । ३. रुकने या टिकने का स्थान । ठहराव । उ०—चार जोस से गाँव, ठाँव एको नहीं ।—घरनी० श०, पृ० ४५ ।

ठाँसना^१—क्रि० स० [सं० स्थास्तु (= बढ़ता से बैठाया हुआ)] १ जोर से घुसाना । कसकर घुसेड़ना । दबाकर प्रविष्ट करना । २ कसकर भरना । दबा दबाकर भरना । † ३ रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

ठाँसना^२—क्रि० प्र० ठन ठन शब्द के साथ खाँसना । बिना कफ निकाले हुए खाँसना । ठाँसना ।

ठाँही^१—सच्चा श्री० [हि०] दे० 'ठाई' । उ०—मन माया काल गति नाहीं । जीव सहाय बसे तेहि ठाँही ।—कबीर सा०, पृ० ८२३

ठाउरी^१—सच्चा पु० [हि० ठावें + र (प्रत्य०)] ठोर । आश्रयस्थान । ठिकाना । उ०—मनुवाँ मोर भइल रंग वाउर । सहज नगरिया लागस ठाउर ।—गुलाल० बानी, पृ० १०४ ।

ठाका^१—सच्चा श्री० [सं० स्ताघ अथवा स्तम्भन अथवा हि० थाक (= थकना) अथवा सं० स्या + क (प्रत्य०)] बाधा । रोक । रुकावट । उ०—(क) जब मन गाहि लेत खलवारा । छूटो ठाक मूए सिद्धदारा ।—प्राण०, पृ० ५० । (ख) जाके मन गुरु का उपदेश । ताँ को ठाक नहीं उह देश ।—प्राण०, पृ० ११ ।

ठाकना^१—क्रि० स० [हि० ठाक + ना (प्रत्य०)] ठीक करना । रोकना । स्थिर करवा । उ०—दृष्टि को ठाकि मन को समझावे । काम को साधि जाय महलि समावे ।—प्राण०, पृ० २६ ।

ठाकरा^१—सच्चा पु० [हि० ठाकुर, गुज० ठक्कर] प्रदेश का स्वामी । सरदार । नायक । उ०—इसलिये कहा गया कि पहले यहाँ कोई राजा या ठाकर रहता था ।—किन्नर०, पृ० ४६ ।

ठाकुर—सच्चा पु० [सं० ठक्कुर] [श्री० ठकुराइन, ठकुरानी] १ देवता, विशेषकर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा । देवमूर्ति ।

यौ०—ठाकुरद्वारा । ठाकुरबाड़ी ।

२. ईश्वर । परमेश्वर । भगवान् । ३. पूज्य व्यक्ति । ४. किसी प्रदेश का अधिपति । नायक । सरदार । अधिष्ठाता । उ०—सब कुँवरन फिर खँचा हाथू । ठाकुर जेव तो जँवे साधू ।—जायसी (शब्द०) । ५. जमींदार । गाँव का मालिक । ६. क्षत्रियों की उपाधि । ७. मालिक । स्वामी । उ०—(क) ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्जिभ ।—वीरि०, पृ० १६ । (ख) निहरी, नीच, निर्गुन, निधन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । ८. नाइयों की उपाधि । नापित ।

ठाकुरद्वारा—सच्चा पु० [हि० ठाकुर + सं० द्वार] १ किसी देवता विशेषतः विष्णु का मंदिर । देवालय । देवस्थान । २. जगन्नाथ जी का मंदिर जो पुरी में है । पुरुषोत्तम धाम । ३. मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान ।

ठाकुरप्रसाद—सच्चा पु० [हि०] १ देवता की निवेदित वस्तु । नैवेद्य । २. एक प्रकार का घान जो भादों महीने के अंत और क्वार के आरंभ में हो जाया करता है ।

ठाकुरबाड़ी—सच्चा श्री० [हि० ठाकुर + बाड़ा या बाँव बाड़ी (= घर)] देवालय । मंदिर ।

ठाकुरसेवा—सच्चा श्री० [हि० ठाकुर + सेवा] १ देवता का पूजन । २. वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो ।

ठाकुरी—सच्चा श्री० [हि० ठाकुर + ई (प्रत्य०)] ठकुराई ।

स्वामित्व । आधिपत्य । शासन । उ०—बिस्तु की ठाकुरी दीख जाई ।—कबीर० श०, १० ४, पृ० १५ । (ख) जम के जसूस विनय जस सौ हमेशा करै तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठाट^१—सच्चा पु० [सं० स्यातृ (= खड़ा होनेवाला)] १. फूस और घाँस की फट्टियों को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जो झाड़ू करने या छाने के काम में आता है । लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा । जैसे,—इस खपरेल का ठाट उजड़ गया है ।

यौ०—ठाटबंदी । ठाटवाट । नवठट = छाने के काम में आने-वाले पुराने ठाट को पूरी तौर से नया करना ।

२. ढाँचा । ढङ्गा । पजर । किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिनके आधार पर शेष रचना की जाती है ।

मुहा०—ठाट खड़ा करना = ढाँचा तैयार करना । ठाट खड़ा होना = ढाँचा तैयार होना ।

३. रचना । बनावट । सजावट । वेशविन्यास । शृंगार । उ०—(क) प्रज बनवारि ग्वाल बालक कहँ कोने ठाट रच्यो ।—सूर (शब्द०) । (ख) पहिरि पितवर, करि झाड़वर बहु तन ठाट सिंगारयो ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठटना ।—वनाना ।

मुहा०—ठाट बदलना = (१) वेश बदलना । नया रूप रंग दिखाना । (२) और का और भाव प्रकट करना । प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये झूठे लक्षण दिखाना । (३) श्रेष्ठता प्रकट करना । झूठमूठ अधिकार या बहप्पन जताना । रंग बाँधना । ठाट मौजना = दे० 'ठाट बदलना' ।

४. झाड़वर । तडक भड़क । तैयारी । शान शोक्त । दिखावट । धूमधाम । जैसे,—राजा की सवारी बड़े ठाट से निकली ।

यौ०—ठाट वाट ।

५. चैनचान । मजा । आराम ।

मुहा०—ठाट मारना = मौज उड़ाना । मजे उड़ाना । चैन करना । ठाट से फाटना = चैन से दिन बिताना ।

६. ढग । ढेली । प्रकार । ढव । तर्ज । अदाज । जैसे,—(क) उसके चलने का ठाट ही निराला है । (ख) वह घोड़ा बड़े ठाट से चलता है । ७. आयोजन । सामान । तैयारी । अनुष्ठान । समारंभ । प्रवध । बंदोबस्त । उ०—(क) पालव बैठि पेड़ एइ फाटा । सुख मँह सोक ठाट धरि ठाटा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कासो कहौ, कहौ, कैसी करौ अब क्यों निवहै यह ठाट जो ठायो ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—रघुवर कहेव लखन भल घाटु । करहुँ कतहुँ अब ठाहर ठाट ।—मानस, २।१३३ ।

८. सामान । माल अथवा व । सामग्री । उ०—सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा ।—नजीर (शब्द०) ।

९. युक्ति । ढव । ढग । उपाय । डोल । जैसे—(क) किसी ठाट से

घपना खया वहाँ से निकालो । (ख) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है । उ०—राज करत बिनु काज ही ठटहि जे कर कु ठाट । तुलसी ते कुराज ज्यों बहै बारह बाट ।—तुलसी (शब्द०) । १०. कुत्ती या पटेवाजी मे खड़े होते या बार करने का ढंग । पैतरा ।

मुहा०—ठाट बदलना= दूसरी मुद्रा से खड़ा होना । पैतरा बदलना । ठाट बाँधना= बार करने की मुद्रा से खड़ा होना ।

११. कबूतर या मुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या झाड़ने का ढंग ।

मुहा०—ठाट मारना= पर फड़फड़ाना । पंख झाड़ना ।

१२. सितार का तार । १३. संगीत में ऐसे स्वरों का समूह जो किसी विशेष राग में ही प्रयुक्त होते हैं । जैसे, ईमव का ठाट, भैरवी का ठाट ।

मुहा०—ठाट बाँधना= तब राग में किसी राग में प्रयुक्त होने-वाले स्वरों को उस स्थाय पर वियोजित करना जिससे अभीष्ट राग में प्रयुक्त स्वरों की ध्वनि प्राप्त हो । उ०—बाँधकर फिर ठाट, अपने ध्रुव पर झंकार दो ।—अपरा, पृ० १३ ।

ठाट^३—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट, ठाट] [स्त्री० ठाटी] १. समूह । झुंड । उ०—(क) बिने रजनी हेरए बाट, जनि हरिनी बिछुरल ठाट ।—विद्यापति, पृ० १६८ । (ख) गज के ठाट पचास हजार । मख सहस्र रई घसवारा ।—रघुराज (शब्द०) । २. बहुतायत । अधिकता । प्रचुरता । ३. बैद्य या सौंड़ की वरदन के ऊपर का छिल्ला । कुबड़ ।

ठाटना—क्रि० सं० [हि० ठाट+ना (प्रत्य०)] १. रचना । बनाना । निर्मित करना । संयोजित करना । उ०—बालक को तन ठाटिया निकट सरोवर तीर । सुर नर मुनि सब देखहि साहेब धरेत सरीर ।—कबीर (शब्द०) । २. अनुष्ठान करना । ठानना । करना । आयोजन करना । उ०—(क) महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पाचव बैठि पेड़ पर काठा । सुख भँह सोक ठाट धरि ठाठा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सुसज्जित करना । सजाना । सँवारना ।

ठाटवंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट+वां+दी] छाजन वा परदे आदि के लिये फूस और बाँस की फट्टियों आदि को परस्पर जोड़कर ठाँवा बनाने का काम । २. इस प्रकार का ठाँवा । ठाट । ठट्टर ।

ठाटबाट—संज्ञा पुं० [हि० ठाट+बाट (=राह, तरीका)] १. सजावट । रूपावट । सज्जण । २. तड़क भड़क । भाँड़बर । शान शोक । जैसे,—घाज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली ।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] १. बाँस की फट्टियों और फूस आदि को जोड़कर बनाया हुआ ठाँवा जो छाजन या परदे के काम में आता है । ठाट । ठट्टर । ठट्टी । २. ठठरी । पजर । ३. बाँचा । ४. कबूतर आदि के बैठने की झुत्तरी जो ठट्टर के रूप में होती है । ५. ठाटबाट । रूपावट । सिंगार । सजावट ।

उ०—ठठिरिन बहुतय ठाटर कीन्ही । बली अहीरिन काजर कीन्ही ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट] ठट । समूह । खेणी । उ०—अस रय रेंगि असइ गज ठाटी । बोहित बसे समुद्र मे पाटी ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाट्ठा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट' ।

ठाठा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] दे० 'ठाट' ।

ठाठना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठाटना' ।

ठाठर^१—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० ठाठरी] ठाँचा । ठठरी । उ०—पाए बीरा जीव बलावा । निकसा जिब ठाठरी पड़ावा ।—कबीर सा०, पृ० ५६३ । दे० 'ठाटर' ।

ठाठर^२—संज्ञा पुं० [देश०] बंदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लगी व सगे ।—(मल्लाह) ।

ठाढ़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० ठाढ़] खेत को वह जोटाई जिसमें एक बल जोतकर फिर दूसरे बल जोतते हैं ।

ठाढ़ी^२—वि० [वि० स्त्री० ठाढ़ी] दे० 'ठाढ़ा' । उ०—नंबदास प्रभु जहाँ जहाँ ठाढ़े होत, वहीं वहीं सटक सटक काहूँ सों हूँ करी मो ना करी ।—मंद०, प्र०, पृ० ३४३ ।

ठाढ़ी^३—क्रि० [हि०] दे० 'ठाढ़ा' । उ०—ठाढ़ रहा धति कपित गाता ।—मानस, ६।१४ ।

ठाढ़ा^४—वि० [सं० स्थातृ (=जो खड़ा हो)] १. खड़ा । दंडायमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।

२. जो पिसा या कुटा न हो । समूचा । साबित । उ०—भूँजि समोसा घिब भँह काढ़े । झीप मिर्च तेहि भीतर ठाढ़े । जायसी (शब्द०) । ३. उपस्थित । उत्पन्न । पैदा । उ०—कीन बहुत लीला हरि जबहीं । ठाढ़ करत हैं कारन तबहीं ।—विश्राम (शब्द०) ।

मुहा०—ठाढ़ा देना=स्थिर रखना । ठहराना । रखना । ठिकाना उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जाने । प्रब प्रगटे बसुदेव सुवन तुम गार्न बचन परिमाने ।—सूर (शब्द०) ।

ठाढ़ा^२—वि० हट्टा कट्टा । हूष्ट मुष्ट । बली । छटाग । मजबूत ।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा पुं० [हि० ठाढ़ सं० ईश्वर+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो दिन रात खड़े रहते हैं । वे खड़े ही बड़े खाते पीते तथा बीवार आदि का सहारा लेकर सोते हैं ।

ठाढ़र^३—संज्ञा पुं० [देश०] रात । भगड़ा । मुठभेड़ । उ०—देव आपनों नहीं संभारत करत ईंद्र सो ठाढ़र ।—सूर (शब्द०) ।

ठान^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण, ठाण] स्थान । ठाँव । जगह । उ०—तब तबीब तसलीम करि, लै धरि प्राइ लुहान । नव दोहे सिर झल्लयो, डँडोलन गय ठान ।—पृ० रा०, ५।६ । (ख) राजे सोक सब कहे तू आपना । जब कास नहि पाया ठाना ।—बिखनी०, पृ० १०४ ।

ठान^२—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुष्ठान] १. अनुष्ठान । कार्य का आयोजन । शुमारण । काम का चिड़ना । २. छोड़ा हुआ काम ।

कार्य । उ०—जानती हतेक तो न ठानती घठान ठान भूलि पय प्रेम के न एक पग डारती ।—हनुमान (शब्द०) । ३ चेष्टा । मुद्रा । अगस्त्यति या संचालन का ढङ्ग । प्रसाज । उ०—पाछे बक चितै मधुरे हंसि घाव किए उखटे सुठान सों ।—सूर (शब्द०) । ४. छद् निश्चय । छद् संकल्प । पक्का इरादा । उ०—क्यों निदोपियों को हलाकान करने की ठान ठानते हो ? —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७ ।

मुहा०—ठान ठानना = छद् निश्चय करना । पक्का इरादा करना । ठानना^१—क्रि० सं० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान प्रयत्न सं० स्थापन > प्रा० ठामन, > ठाव + ना (प्रत्य०)] १ किसी कार्य को तत्परता के साथ प्रारंभ करना । छद् संकल्प के साथ प्रारंभ करना । अनुष्ठित करना । छेड़ना । जैसे, काम ठानना, भगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना । उ०—(क) तब हरि और खेल इक ठान्यो ।—नद० प्र०, पृ० २८५ । (ख) तिन सो कह्यो पुन हित ह्य मख हम दोनो हैं ठानी ।—रघुराज (शब्द०) । २. (मन में) स्थिर करना । (मन में) ठहराना । निश्चित या ठीक करना । पक्का करना । चित्त में छद्तापूर्वक धारण करना । छद् संकल्प करना । जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना । उ०—(क) सदा राम पहि प्रान समाना । कारन कौन कुटिल पन ठाना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मैंने मन में कुछ ठान सनका हाथ पकड़ बोली ।—श्यामा०, पृ० ६८ ।

ठानना^२—क्रि० सं० [हिं० ठान] १ ठानना । छद् संकल्प के साथ प्रारंभ करना । छेड़ना । करना । उ०—कहि को सोई हजार करो तुम तो कवहूँ अपराध न ठायो ।—मतिराम (शब्द०) । २. मन में ठहराना । निश्चित करना । दुर्वृत्ता-पूर्वक चित्त में धारण करना । पक्का विचार करना । उ०—विश्वामित्र दुखी हूँ तँह पुनि करन महा तप ठायो ।—रघुराज (शब्द०) । वि० दे० 'ठानना' । ३. स्थापित करना । रखना । धरना । उ०—मुरली तऊ गोपासहि भावति । प्रति प्राचीन मुजान कनीठे गिरिधर नार नवावति । प्रापुन पौढ़ि मधर सज्या पर करपल्लव पदपल्लव ठावति ।—सूर (शब्द०) ।

ठानना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाना' ।

ठामना^४—सञ्ज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] १ स्थान । जगह । उ०—(क) इमर सपुरा को करमो वीरत्तण निज ठाम ।—कीर्ति०, पृ० ६० । (ख) जो चाहत जित जान उतै ही यह पहुँचावत । बने बीच के गाम ठाम को नाम भुलावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७ ।

विशेष—दे० 'ठाव' ।

२. अगस्त्यति या अंगसंचालन का ढङ्ग । ठवनि । मुद्रा । प्रसाज । ३. प्रंगेट । प्रंगलेट ।

ठाव^१—सञ्ज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] दे० 'ठाव', 'ठाव' ।

ठाव^२—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ठाव' ।

ठार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठारु, ठड या देश०] १. गहरा जाड़ा । अत्यंत शीत । गहरी सरशी । २. पाछा । हिम ।

क्रि० प्र०—पड़वा ।

ठारा^३—[सं० स्थान, प्रा० ठारु; अप० ठाम, ठाव, ठाय] १. स्थान । ठौर । जगह । उ०—(क) राति दिवस करि चालीयत, पुनरमइ दिवस पहुँचो तिणि ठार ।—बी० रासो, पृ० १०४ । (ख) मामो, तूँ सालिक राह दिवाने चलते न साए बार । मुकाम राहें मंजिव वुनै उमजा हे किस ठार ।—दक्खिनी०, पृ० ५४ । २. खेत या खलिहान का वह स्थान जहाँ किसान अपने सामान आदि रखता है और देखरेख करता है ।

ठार^४—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० ठारि] दे० 'ठाव', 'ठावा' । उ०—(क) तन दाहृत कर घीचहि तुरत, ठार रहत न सोई । पासन मारि बिबोरी होवे, तबहूँ भक्ति न होई ।—जग० शा०, भा० २, पृ० ३३ । (ख) ठारि भेलिहि बनि पाँगो न डोले ।—विद्यापति, पृ० ४६ ।

ठारौ^५—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अष्टार, अष्टारस, अष्टारह] दे० 'अष्टारह' । उ०—ठारे सेव दुहोतरा अगहन मास सुजान ।—सुजान०, पृ० ७ ।

ठाली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देशी ठलिय (=रिक्त), प्रयत्न हिं० निठल्ला] १ व्यवसाय या काम घड़े का अभाव । जीविका का अभाव । बेकारी । बेरोजगारी । २. खाली वक्त । फुरसत । अवकाश ।

ठाल^२—वि० जिसे कुछ काम घषा न हो । खाली । निठल्ला ।

ठाला^३—सञ्ज्ञा पुं० [देशी ठल्ल (=निर्धन), वा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम घड़े का अभाव । बेकारी । रोजगार का न रहना । २. रोजी या जीविका का अभाव । आमदनी का न होना । वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो । रुपए पैसे की कमी । जैसे,—आजकल बड़ा ठाला है, कुछ नहीं दे सकते । मुहा०—ठाले पड़ना = मृम्यता, रिक्तता या खालीपन का अनुभव होना । ठाला बतावा = बिना कुछ दिए चलता करना । घटा बतावा (दलाव) । बैठे ठाले = खाली बैठे हुए । कुछ काम घषा व रहते हुए । जैसे,—बैठे ठाले यही किया करो, अच्छा है ।

यौ०—ठाला ठलिया = खाली । रीता । धुँझा । उ०—नैन नधावत बधि मटुकिन को करिके ठाला ठलिया ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १६४ ।

ठाली^४—वि० [देशी० ठलिय (=रिक्त), वा हिं० निठल्ला] १ खाली । जिसे कुछ काम घषा न हो । निठल्ला । बेकाम । उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठो है तोसों मूढ चरावे । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फरकत हाथ न धावे ।—सूर (शब्द०) । (ख) ठाली ग्वालि जानि फट्फट घसि कह्यो पछोरन धूँधो ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने सये ।—मस्मा०, पृ० ४३ ।

ठाली^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] ठारस । थरोसा । आश्वासन । उ०—कहा कहीं माली खाली बैठ सब ठाली, पर मेरे बनमाखी को न कासी ते छुड़ावहीं ।—रसमान०, पृ० ३० ।

ठाव^६—सञ्ज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं०] दे० 'ठाव' ।

ठाव^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] ठाव । स्थाव । उ०—होरी सब ठावन छै राखी पूजत छै छै रोरो । घर के काठ डारि सब सीने पावत पीत व गोरी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०७ ।

ठावना—क्रि० सं० [हि० ठाना] दे० 'ठाना' ।

ठासा—संज्ञा पुं० [हि० ठासना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं । उ०—देवे ठासा वेहद परै सनवाती सीका । चारि खूँट मे चलै बियत एक होय रती का ।—पलटू० बानी, पृ० ११५ ।

यौ०—गोल ठासा = गोल सिरे का ठासा जिससे लोहे की चद्दर को गढ़कर गोला बनाते हैं ।

ठाह^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान वा हि० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगाकर गाने या बजाने की क्रिया ।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं । इसी को 'ठार' या 'ठाह' में गाना बजाना कहते हैं । भागे चलकर वह चीज क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं । जिसे दून, तिगून या चौगून कहते हैं । वि० दे० 'चौगून' ।

२ स्थान । ठाँव । उ०—चल्यो जहाँ सब हथिनी ठाही । गज मकरव देखि तेहि माई ।—घट०, पृ० २४१ ।

ठाह^२—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ (= छिछला)] दे० 'घाह' ।

ठाहरा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० ठहर] १. स्थान । जगह । उ०—शुक्रसुता जब माई बाहर । पाए बसन परे तेहि ठाहर ।—सूर (शब्द०) । २ निवास स्थान । रहने या ठिकने का स्थान । डेरा । उ०—रघुवर कह्यो लखन भल घाढ़ । फरह कतहुँ भव ठाहर ठाढ़ ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाहरना^१—क्रि० घ० [हि० ठाहर] दे० 'ठहरना' । उ०—घर में सब कोइ वंकुडा मारहि गाल मनेक । सुदर रण में ठाहरे सूर बीर को एक ।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८ ।

ठाहरू^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठाहर' ।

ठाहरूपक—संज्ञा पुं० [सं० स्था+रूपक या देश०] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है । इसमें और आड़ा चौताल में बहुत थोड़ा भेद है ।

ठाहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाह] दे० 'ठाही' ।

ठिंगना—वि० [हि० हेठ + भग] [वि० स्त्री० ठिंगनी] जो ऊँचाई में कम हो । छोटे कद का । छोटे डील का । नाटा । (जीव-धारियों विशेषतः मनुष्य के लिये) ।

ठिक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकिया] धातु की चद्दर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ लगाने के काम में आवे । पिगली । चकती ।

ठिक^२—वि० [हि०] दे० 'ठीक' । उ०—यातें यह ठिक जान्यो परे । अपनी विभो आप विस्तरे ।—घनानंद, पृ० २७५ ।

ठिक^३—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थितिक] ठहराव । स्थिरता । उ०—जासों नही ठहरे ठिक मान को, क्यों हठ के सठ हठनो ठानति ।—घनानंद, पृ० १२४ ।

ठिकठान^१—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] दे० 'ठिकठन' । उ०—एतेहू

ठिकठान में देखति हौं उत सान । यह न सयानी देखि हौं पाती मांगत पान ।—सं० सप्तक, पृ० २४५ ।

ठिकठेक^१—वि० [हि०] ठीक ठीक । ठग से । उ०—एक शरीर में धंग भए बहु एक, घरा पर धाम मनेका । एक शिला महि कोरि किए सब चित्र बनाइ घरे ठिकठेका ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४६ ।

ठिकठैन^१—संज्ञा पुं० [हि० ठीक + ठयना] ठीक ठाक प्रबंध । आयोजन । उ०—भाज क्यूँ शीरें भए ठए नए ठिकठैन । चित के हित के चुगल ये नित के होय न नैन ।—विहारी (शब्द०) ।

ठिकठोरी^१—संज्ञा पुं० [हि० ठिकना या ठीक + ठोर] ठिकने लायक स्थान । ऐसा स्थान जहाँ आश्रय लिया जा सके ।

ठिकडा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकना^१—क्रि० घ० [सं० स्थिति + √ कृ > करण] ठिकना । ठहरना । रुकना । घबटना । उ०—रम भिजए दोऊ दुहुनि तब ठिकि रहैं टरें न । छवि सों छिरकत प्रेम रंग भरि पिचकारी नैन ।—विहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—रहना ।

ठिकरा^१—संज्ञा पुं० [देशी ठिकरिया] दे० 'ठीकरा' ।

ठिकरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिकरा] दे० 'ठीकरी' ।

ठिकरीर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जहाँ खपड़े, ठीकरे आदि बहुत पड़े हों ।

ठिकार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ठीक] पाल के जमकर ठीक ठीक बैठने का भाव ।—(लश०) ।

ठिकाना^१—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] दे० 'ठिकाना' ।

ठिकाना^२—संज्ञा पुं० [हि० ठिकान] १ स्थान । जगह । ठौर । २ रहने की जगह । निवासस्थान । ठहरने की जगह ।

यौ०—पता ठिकाना ।

३ आश्रय । स्थान । निर्वाह करने का स्थान । जीविका का अवलंब ।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) जगह करना । स्थान निश्चित करना । स्थान नियत करना । जैसे,—घरने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो । (२) ठिकना । डेरा करना । ठहरना । (३) आश्रय ढूँढना । जीविका लगाना । नोकरी या काम षधा ठीक करना । जैसे,—इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, खाली बैठे हैं । (४) व्याह के लिये घर ढूँढना । व्याह ठीक करना । जैसे,—इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे । ठिकाना ढूँढना = (१) स्थान ढूँढना । जगह तलाश करना । (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढना । निवास स्थान ठहराना । (३) नोकरी या काम षधा ढूँढना । जीविका खोजना । आश्रय ढूँढना । (४) कन्या के व्याह के लिये घर ढूँढना । घर खोजना । (किसी का) ठिकाना लगना = (१) आश्रयस्थान मिलना । ठहरने या रहने की जगह मिलना । उ०—सिपाही जो भागे तो बीच में कहीं ठिकाना न लगा ।—(शब्द०) । (२) जीविका का प्रबंध होना । नोकरी

या काम घटा मिलना । निर्वाह का प्रबंध होना । जैसे,—इस चाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा । ठिकाना लगाना = (१) पता चलाना । ढूँढ़ना । (२) माथप देना । नौकरी या काम घटा ठीक करना । जीविका का प्रबंध करना । ठिकाने घाना = (१) अपने स्थान पर पहुँचना । नियत वा वांछित स्थान पर वास होना । उ०—जो फोट साको निकट बतावे । धीरज धरि सो ठिकाने घावे ।—सूर (शब्द०) । (२) ठीक विचार पर पहुँचना । बहुत सोच-विचार या बातचीत के उपरान्त यथार्थ बात करना या समझना । जैसे, बुद्धि ठिकाने घाना । उ०—हैं इतनी देर के बाद घब ठिकाने घाए ।—(शब्द०) । (३) मूल तत्व व० पहुँचना । असली बात छेड़ना या कहना । प्रयोजन की बात पर घाना । मतलब की बात उठाना । ठिकाने की बात = (१) ठीक बात । सच्ची बात । यथार्थ बात । प्रामाणिक बात । असली बात । (२) समझदारी की बात । युक्तियुक्त बात । (३) पते की बात । ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय । ठिकाने न रहना = चल हो जाना । जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना । ठिकाने पहुँचाना = (१) यथास्थान पहुँचाना । ठीक जगह पहुँचाना । (२) किसी वस्तु को सुप्त वा नष्ट कर देना । किसी वस्तु को न रहने देना । (३) मार डालना । ठिकाने लगना = (१) ठीक स्थान पर पहुँचना । वांछित स्थान पर पहुँचना । (२) काम में घाना । उपयोग में घाना । अच्छी जगह खर्च होना । उ०—चलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी, ठिकाने लग गई ।—(शब्द०) । (३) सफल होना । कभीसूत होना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगना । (४) परम धाम सिधारना । मर जाना । मारा जाना । ठिकाने लगाना = (१) ठीक जगह पहुँचाना । उपयुक्त वा वांछित स्थान पर ले जाना । (२) काम में लाना । उपयोग में अच्छी जगह खर्च करना । (३) सार्थक करना । सफल करना । निष्फल न जाने देना । जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना । (४) इधर उधर कर देना । छो देना । लुप्त कर देना । गायब कर देना । नष्ट कर देना । न रहने देना । (५) खर्च कर डालना । (६) माथप देना । जीविका का प्रबंध करना । काम घधी में लगाना । (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना । पूरा कराना । (८) काम तमाम करना । मार डालना ।

४ निश्चित अस्तित्व । यथार्थता की संभावना । ठीक प्रमाण । जैसे,—उसकी बात का क्या ठिकाना ? कभी कुछ कहता है कभी कुछ । ५ रङ्ग स्थिति । स्थायित्व । स्थिरता । ठहराव । जैसे,—इस दूटी मेज का क्या ठिकाना, दूसरी बगामो ।

विशेष—इन घघों मे इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वा सदेहात्मक वाक्यों ही में होता है । जैसे,—वप्या तो सब लगावे जब उनकी बात का कुछ ठिकाना हो ।

५ प्रबंध । आयोजन । बंदोबस्त । डील । प्राप्ति का द्वार या ढंग । जैसे,—(क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, धीरे बातें पीछे करेंगे । (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है । उ०—

दो करोड़ रुपए साल की घामदनी का ठिकाना हुआ ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ठिकाना लगना = प्रबंध होना । आयोजन होना । प्राप्ति का डील होना । ठिकाना लगाना = प्रबंध करना । डील लगाना ।

६ पारावार । घत । हद । जैसे,—(क) यह इतना क्रुत मोलता है जिसका ठिकाना नहीं । (ख) उसकी दोलत का कहीं ठिकाना है ?

विशेष—इस घघ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक वाक्यों ही में होता है ।

ठिकाना^१—क्रि० घ० [हि० ठिकाना] १ ठहराना । घडाना । स्थित करना । २. किसी घन्य की वस्तु को गुप्त रूप से अपने पास रख लेना या छिपा लेना ।

ठिकानेदार—संज्ञा पु० [हि० ठिकाना + दार (प्रत्य०)] १ किसी छोटे घूमाग का अधिपति । जागीरदार । २ स्वामी । मालिक ।

ठिगना—वि० [हि० ठिगना] नाटा । छोटे कद का । ३० 'ठिगना' । उ०—इंस्पेक्टर घघेड, साँवला, लबा घादमी था, कोडी की सी घालें, फूले हुए गाल धीरे ठिगना कद ।—गहन, पु० २८३ ।

ठिठकना—क्रि० घ० [सं० स्थित + करण या देश०] १ चलते चलते एकवारगी रुक जाना । एकदम ठहर जाना । उ०—तनिक ! ठिठक, कुछ मुककर दाएँ, देख अजिर में उनकी घीरे ।—साकेत, पु० ३६८ । २ घघों की गति बंद करना । स्तमित होना । न हिलना न डोलना । ठक रह घाना ।

ठिठरना—क्रि० घ० [सं० स्थित या हि० ठार घयवा सं० शीत + कृ० > सरण] अधिक शीत से सकुचित होना । सरदी से एँटना या सिकुड़ना । जाड़े से घकटना । बहुत अधिक ठंड खाना । जैसे, हाथ पाँव ठिठरना ।

ठिठुरन—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिठुरना] ठिठरने या ठरने का भाव । जाड़े की अधिकता से घघों की सिकुड़न । ठरन । उ०—दर व दीवार सब बरफ ही बरफ घीरे ठिठुरन इस कयामत की ।—सेर०, पु० १२ ।

ठिठुरना^१—क्रि० घ० [हि०] ३० 'ठिठरना' ।

ठिठोली—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठोली] ३० 'ठठोली' । उ०—वाह का बोली है कि राने में भी टिठोली है ।—प्रेमघन०, भा० २, पु० २४ ।

ठिन^१—संज्ञा पु० [सं० स्थिति (= स्थान)] स्थान । स्थल । उ०—पाँच पचीस एक ठिन घाहें, जुगुति ते एह समुझाम ।—जग० श०, भा० २, पु० २० ।

ठिन^२—संज्ञा पु० [अनुध्व०] छोटे वक्कों के द्वारा रह रहकर, राने की ध्वनि की तरह उत्पन्न घावाज ।

मुहा०—ठिन ठिन करना = राने की सी ध्वनि करना । रह रह कर घीरे घीरे वदन का प्रवास करना । (स्त्रि०) ।

ठिनकना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १ बच्चे का रहकर रोने का सा शब्द निकालना । २. ठसक से रोना । रोने का नखरा करना । (स्थि०) ।

ठियाँ—संज्ञा पुं० [सं० स्थित] १. गाँव की सीमा का चिह्न । हव का पत्थर या लट्ठा । २. चौड । थूनी । ३. दे० 'ठीहा' ।

ठिर—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर वा स्तब्ध] १. गहरी सरदी । कठिन शीत । गहरी ठंड । पाखा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. शीत से ठिठुरने की स्थिति या भाव ।

क्रि० प्र०—जाना ।

ठिरना—संज्ञा स्त्री० [हि० ठिर] दे० 'ठरन', 'ठिठरन' ।

ठिरना^१—क्रि० सं० [हि० ठिर] सरदी से ठिठुरना । ऋद्धि से पकड़ना ।

ठिरना^२—क्रि० प्र० गह्रा जाड़ा पड़ना । अत्यंत ठंड पड़ना ।

ठिलना—क्रि० प्र० [हि० ठेलना] १. ठेला जाना । ढकेला जाना । चलपूर्वक किसी ओर खिसकाया या बढ़ाया जाना । उ०—फिरें घर बज्जिय भार करार । ठिलें न ठिलाइ न मलिन्य हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ । २. चलपूर्वक बढ़ना । वेग से किसी ओर झुक पड़ना । घुसना । घेंसना । उ०—दक्खिन ते उमड़े दोउ भाई । ठिले दोह चल पुहिम हिलाई ।—लाख (शब्द०) । † ३. बैठना । जमना । स्थिर होना ।

ठिलाठिला—क्रि० वि० [हि० ठिलना] एक पर एक गिरते हुए । धक्कमधक्का करते हुए । घने समूह और बड़े वेग के साथ । उ०—मिलमिल फौज ठिलाठिल धावे । चहुँ दिस ओर छुवन नहि पावे ।—लाख (शब्द०) ।

ठिलाना—क्रि० प्र० [हि० ठिलना] ठेला जाना । हटाया जाना । उ०—फिरें घर बज्जिय भार करार । ठिले न ठिलाइ न मलिन्य हार ।—पृ० रा०, १६।२२१ ।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली, प्रा० ठाली (= हंडिया)] छोटा घड़ा । पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन । गगरी ।

ठिलुआ—वि० [हि० निठल्ला] निठल्ला । निकम्मा । बेकाम । जिसे कुछ काम बधा न हो । उ०—बहुत ठिलुए अपना मन बहलाने के लिये मोरों की पचायत ले बैठे हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठिल्ला—संज्ञा पुं० [हि० ठिलिया] [स्त्री० ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा । पानी भरने या रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन । बड़ा गगरा ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिलिया' ।

ठिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठिल्ली' ।

ठिवना^१—क्रि० सं० [सं० स्थापय, प्रा० ठव] ठोकना । उ०—सिपराध बंस दूजो सिपर उरस ठिवतो आवियो ।—सिखर०, पृ० ७७ ।

ठिहारा—वि० [सं० स्थिर मयवा हि० ठीहा] १. विश्वास करने योग्य । एतबार के लायक । २. निवास योग्य । स्थिर होने योग्य ।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठहरना] ठहराव । निश्चय । इकरार । उ०—जैसी हुती हमते तुमते भव होयगी वैसिये प्रीति बिहारी । चाहत जो चित में हिठ तो जनि बोलिय कुजन कुंजबिहारी ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

ठींगा—वि० [हि० धींगा] जबदस्त । बलवान् । उ०—सीह पयो बच सहिबो, ठींगरी सँकरात ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० १६ ।

ठीक—वि० [सं० स्थितिः या देशः] १. जैसा हो वैसा । यथार्थ । सच । प्रामाणिक । जैसे,—तुम्हारी बात ठीक निकली । २. जैसा होना चाहिए, वैसा । उपयुक्त । अच्छा । भला । उचित । मुनासिब । योग्य । जैसे,—(क) उनका बर्ताव ठीक नहीं होता । (ख) तुम्हारे लिये कहना ठीक नहीं है ।

मुहा०—ठीक लगना = भला जान पड़ना ।

३. जिसमें भूल या प्रशुद्धि न हो । शुद्ध । सही । जैसे,—भाठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं ? ४. जो विगड़ा न हो । जो अच्छी दशा में हो । जिसमें कुछ थुटि या कसर न हो । दुस्त । अच्छा । जैसे,—(क) यह घड़ी ठीक करने के लिये भेज दो । (ख) हमारी तबीयत ठीक नहीं है ।

यौ०—ठीक ठाक ।

५. जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे । जो ढीला या कसा न हो । जैसे,—यह सूता पैर में ठीक नहीं होता ।

मुहा०—ठीक घाना = ढीला या कसा न होना ।

६. जो प्रतिकूल प्राचरण न करे । सीधा । सुष्ठु । नम्र । जैसे,—(क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा । (ख) हम भरी मुम्हें भाकर ठीक करते हैं ।

मुहा०—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना । राह पर लाना । दुस्त करना । (२) तग करना । दुर्गति करना । दुर्दशा करना ।

७. जो कुछ भागे पीछे, इधर उधर या घटा बढ़ा न हो । जिसकी भावना, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो । किसी निर्दिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति का । जिसमें कुछ फर्क न पड़े । निर्दिष्ट । जैसे,—(क) हम ठीक ग्यारह बजे भावेंगे । (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है । (घ) यह चीज ठीक वैसी ही है ।

मुहा०—ठीक उत्तरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना । जाँच करने पर न घटना न बढ़ना । जैसे,—मनाज तोलने पर ठीक उत्तरा ।

८. ठहराया हुआ । नियत । निश्चित । स्थिर । फक्का । तै । जैसे, काम करने के लिये बादमी ठीक करना, गाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—ठीक ठाक ।

ठीक^२—क्रि० वि० जैसे चाहिए वैसे । उपयुक्त प्रणाली से । जैसे, ठीक चलना, ठीक पौडना । उ०—(क) यह घोड़ा ठीक नहीं चलता । (ख) यह बनिया ठीक नहीं तोड़ता ।

यौ०—ठीकमठाका, ठीकमठोक=एकदम ठीक। पूर्णतः ठीक।
बिलकुल दुस्त।

ठीक^३—संज्ञा पुं० १. निश्चय। ठिकाना। स्थिर और असंदिग्ध बात।
पक्की बात। छद्म बात। जैसे,—उनके माने का कुछ ठीक
नहीं, भावें या न भावें।

यौ०—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना=मन में पक्का करना। छद्म निश्चय करना।

उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी प्रवलंब बड़ी उर आखर
दू की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर विचार मन बोन्हों
ठीका। राम रजायसु आपन नीका।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस मुहावरे में 'ठीक' शब्द के आगे 'बात' शब्द लुप्त
मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में होता है।

२. नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त।
जैसे,—खावे पीवे का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

यौ०—ठीक ठाक।

३. जोड़। मोजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, ठीक लगाना=जोड़ निकालना। योगफल
निश्चित करना।

ठीकठाक^३—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त।
आयोजन। जैसे,—इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. जीविका का प्रबंध। काम घरे का बंदोबस्त। आयय। ठौर
ठिकाना। जैसे,—इनका भी कहीं ठीक ठाक लगामो।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

३. निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे,—बिवाह का ठीक
ठाक हो गया?

ठीकठाक^३ वि०—मच्छी तरह दुस्त। बन्द कर तैयार। प्रस्तुत। काम
देने योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० ठीकरा] दे० 'ठीकरा'।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [देशी ठिकरिमा] [झी० मल्ला० ठीकरी] १.
मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। उपरल आदि का टुकड़ा।
सिटकी।

मुहा०—(किसी के माथे या सिर पर) ठीकरा फोड़ना=बोप
लगाना। कलक लगाना। (जैसे किसी वस्तु या रूप आदि
को) ठीकरा समझना=कुछ न समझना। कुछ भी मूल्यवान्
न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे,—
पराए साल को ठीकरा समझना चाहिए। (किसी वस्तु का)
ठीकरा होना=प्रधापुध खर्च होना। पानी की तरह बहाया
जाना। ठीकरे की तरह बेमोल एवं तुच्छ होना।

२. बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। ३. भौख मांगने का
बरतन। मिश्रपात्र। ४. सिक्का। रुपया (सधु०)।

ठीकरी^१—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिकरिमा] १. मिट्टी के बरतन का
छोटा फूटा टुकड़ा। २. तुच्छ। निकम्मी चीज। ३. मिट्टी का
तवा जो बिलम पर रखते हैं।

ठीकरी^२—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिकर (=पुष्पेद्रिय)] उपस्थ। स्त्रियों
की योनि का उमरा हुआ तल।

ठीका—संज्ञा पुं० [हि० ठीक] १. कुछ पद आदि के बदले में किसी
के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान
बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। २. समय
समय पर धामदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये
इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह धामदनी वसूल
करके और उसमें से कुछ भुगतान मुनाफा काटकर बराबर
मालिक को देता जायगा। हजारा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हि०] १. ठीके पर दूसरों से काम लेनेवाला
व्यक्ति। ठीका देनेवाला। २. किसी काम को कुछ निश्चित
नियमों के अनुसार पूरा करा देने का जिम्मा लेनेवाला व्यक्ति।

ठीटा—संज्ञा पुं० [हि० ठैठा] दे० 'ठैठा'।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [मनुष्य०] हँसी का शब्द।

यौ०—हाहा ठीठी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठीढ़ी ठाढ़ी^१—वि० [सं० स्थिति + रूप] जिस हालत में हो उसी
में स्थित। स्पन्दहीन। निश्चेष्ट। उ०—सजि सिंगार कुजन
गई जहाँ जहाँ बलवीर। ठीढ़ी ठाढ़ी भी तरुन बाढ़ी गाढ़ी
पीरें।—सं० सप्तक, पृ० ३८६।

ठीखना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठैलना'। उ०—मैं तो मूर्खि ज्ञान
को प्रायो गयउ तुम्हारे ठीले।—सुर (शब्द०)।

ठीवन^१—संज्ञा पुं० [सं० प्लीवन] यूँक। खसारा। कफ। गलेष्मा।
उ०—आमिष अस्थिर धाम को धानन, ठीवन ठामें करो
अधिकार्थ।—रघुराज (शब्द०)।

ठीसा—संज्ञा स्त्री० [हि० ठोस] रद्द रहकर होनेवाली पीड़ा।
ठोस। उ०—मृतक होय गुरु पद गई ठोस कर सब दूर।—
कबीर श०, भा० ४, पृ० २६।

ठीह—संज्ञा स्त्री० [धनु०] घोड़ों की हींस। हिनहिनाहट का शब्द।
उ०—दुई दल ठीहें तुरंगनि दीनी। दुई दल बुद्धि जुद्ध रस
भीनी।—लाल (शब्द०)।

ठीह—संज्ञा पुं० [सं० स्या] दे० 'ठीहा'।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्या] १. जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का
कुंदा जिसका थोड़ा सा बाग जमीन के ऊपर रहता है।

विशेष—इस कुंदा पर वस्तुओं को रखकर लोहार, बढ़ई आदि
उन्हें पीटते, छीलते या गड़ते हैं। लोहार, कड़ेरे आदि धातु
का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी 'निहाई' गांठते हैं।
पशुओं को खिसाने का चारा भी ठीहे पर रखकर काटा
जाता है।

२. बढ़ईयों का लकड़ी गड़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में
दालुपी गड़वा बना रहता है। ३. बढ़ईयों का सफ़री खीरने
का कुंदा जिसमें लकड़ी को कसकर खड़ा कर वेते और पीरते
हैं। ४. बैठने के लिये कुछ किया हुआ स्थान। बेसी। गद्दी।
५. हुकानदार के बैठने की जगह। ६. हद्द। सीमा। ७. चढ़।
थूनी। ८. उपयुक्त स्थान।

ठुंठ—संज्ञा पुं० [देश० ठुंठ वा सं० स्थाणु] १. सूखा हुआ पेड़।

२ ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट या गिर गई हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो। लूना।

हुं—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठुठ] दे० 'ठुठ'।

हुंफना^①—क्रि० स० [हि० ठोंकना] धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। उ०—दिन दिन देन उरहूँ तो पावें ठुँकि ठुँकि करत खरैया।—सूर (शब्द०)।

हुक—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनुष्य०] किसी चीज पर कड़ी वस्तु से आघात करने का शब्द या ध्वनि।

हुकहुक—सञ्ज्ञा स्त्री० किसी वस्तु को ठोकने से लगातार होने-वाली ध्वनि।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

हुकना—क्रि० प्र० [मनुष्य०] १. ताड़ित होना। ठोंका जाना। पिटवा। आघात पहुँचना। २. आघात पाकर घबरेना। घड़ना। जैसे, खूँटा ठुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. मार खाना। मारा जाना। जैसे,—घर पर खूब ठुकोगे। ४. कुपती आदि मे हारना। ज्वस्त होना। पस्त होना। ५. हानि होना। नुकसान होना। चपत घेतना। जैसे,—घर से निकलते ही २० की ठुकी। ६. काठ में ठोंका जाना। कैद होना। पैर में वेड़ी पहनना। ७. दाखिल होना। जैसे, नालिथ ठुकना। ८. घबरेना। ध्वनित होना। उ०—कहूँ तिमस घर घुसत, लुफत कहूँ सुमट छात छल। ठुकत काल कहूँ पत्र, कुकत कहूँ घन पाइ जल।—पृ० रा०, ८।४२।

ठुकराना—क्रि० स० [हि० ठोकर] १. ठोकर मारना। ठोकर लगाना। लात मारना। २. पैर से मारकर फिनारे करना। तुच्छ समझकर पैर से हटाना। ३. तिरस्कार या उपेक्षा करना। न मानना। अनादर करना। जैसे, बात ठुकराना, सलाह ठुकराना।

ठुकराखाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] १. दे० 'ठाकुर'। उ०—मनमाने जे पलाणजह। हिव चाखो ठुकराखाँ सँमहा जानि।—घो० रासो, पृ० १९। २. नेपाल के एक वर्ग की उपाधि।

ठुकधाना—क्रि० स० [हि० ठोकना का प्रे० रूप] १. ठोंकने का काम कराना। पिटवाना। २. गड़वाना। घँसवाना। ३. सभोग कराना (प्रशिक्षण)।

ठुकाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठुकना] ठोंके जाने या मार खाने की स्थिति, पाय या क्रिया। जैसे,—सुना आज बड़ी ठुकाई हुई।

ठुठकना^②—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठिठकना'। उ०—ठुठकिय सकिय फायर पाय। रनकत बड़ खकत जाय।—पृ० रासो, पृ० ४१।

ठुड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। ठोड़ी। हनु।

ठुड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठड़ा (= खड़ा)] वह भुना हुआ दाना जो फूटकर खिलान हो। टोरी। जैसे, मक्के की ठुड़ी।

ठुनक ठुनक—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनुष्य०] ठिठककर चलने के कारण आसुपण से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—ठुमक चाल ठिठ ठाठ सी, ठेलयो मदच कटकक। ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके खाल भटकक।—ब्रजनिधि प्र०, पृ० ३।

ठुनकना^१—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'ठिनकना'। २. प्यार या दुलार के कारण नखरा करना। उ०—सबको है आपको नही है ? उसने ठुनकते हुए कहा।—झाँसी, पृ० ३२।

ठुनकना^२—क्रि० स० [हि० ठोंकना] धीरे से उँगली से ठोक या मार देना।

ठुनकाना^३—क्रि० स० हि० ठोंकना] धीरे से ठोकना। उँगली से धीरे से चोट पहुँचाना।

ठुनकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनुष्य०] ठुनक की आवाज। उ०—ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके खाल भटकक।—ब्रज० प्र०, पृ० ३।

ठुनठुन—सञ्ज्ञा पुं० [मनुष्य०] १. पातु के ठुकड़ों या धरतनों के बजने का शब्द। २. बच्चों के रक रककर रोने का शब्द।

मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = धरावर रोया करना।

ठुनुकना^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठुनकना'। उ०—वह बालिका के सदृश ठुनुककर बोली।—कहाल पृ० २१७।

ठुमक—वि० [मनुष्य०] १. (चाल) जिसमें उमग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद या ठिठक लिए हुए (चाल)। २. ठसकमरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक, ठुमक, ठुमुक, ठुमक—क्रि० वि० [मनुष्य०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुदकते या रह रहकर कूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चों का ठुमक ठुमक चलना। उ०—(क) कौशल्या जब धोलन आई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चर्खाहि पराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चखत देखि जसुमति मुख पावे। ठुमुक ठुमुक धरनी पर रंगत जननी देखि दिखावे।—सूर (शब्द०)।

ठुमकना, ठुमकना—क्रि० प्र० [मनुष्य०] १. बच्चों का उमग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। उ०—ठुमुकि चखत रामचंद्र बाजत पैजविर्मा।—तुलसी (शब्द०)। २. नाचने में पैर पटककर चलना जिसमें घुंघुंरु बजें।

ठुमका^५—वि० [देश०] [वि० स्त्री० ठुमकी] छोटे डील का। नाटा। ठेगना। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पे ठुमका ठुमकी ठुमकी ठाकुराइन।—पद्माकर (शब्द०)।

ठुमका^६—सञ्ज्ञा पुं० [मनुष्य०] [स्त्री० ठुमकी] भटक। थपका।—(पतंग)।

ठुमकारना—क्रि० प्र० [देश०] उँगली से झोरी खींचकर भटका देना। थपका देना।—(पतंग)।

ठुमकी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. हाथ या उँगली से खींचकर दिया हुआ भटक। थपका।—(पतंग)।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. ठिठक। रकावट। ३. छोटी झोर खरी पूरी।

ठुमकी^२—वि० स्त्री० नाटी। छोटे डोल की। छोटी काठी की।
उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पे ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।
—पद्याकर (शब्द०)।

ठुमठुम—वि० क्रि० वि० [हि०] दे० 'ठुमक ठुमक'। उ०—भाई बंद
सकल परिवारा। ठुमठुम पाव चले तेहि सारा।—घट०,
पृ० ३७।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १ एक प्रकार का छोटा सा गीत। दो
बोली का गीत जो केवल एक स्थान और एक ही मंत्र में
समाप्त हो।

यौ०—सिरपरका ठुमरी=एक प्रकार की ठुमरी जो 'भद्रा'
ताल पर बजाई जाती है।

२. उड़ती खबर। गप। भफवाह।

क्रि० प्र०—उठना।

ठुरियाना^१—क्रि० प्र० [हि० ठार (=शोत)] ठिठुर जाना।
सिकुड़ जाना। शोत से झुक जाना।

ठुरियाना^२—क्रि० प्र० [हि० ठुरी] ठुरी होना। मुने हुए दाने का न
खिलना।

ठुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठडा (=खड़ा) या देश०] वह भुना हुआ
दाना जो भुनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० प्र० [अनुध्व०] १. दे० 'ठिनकना'। २. ठुस शब्द
करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० प्र० [हि० ठूसना] १ कसकर भरा जाना। इस
प्रकार समाना या घंटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय।
जैसे,—इस सधक में कपड़े ठुसे हुए हैं। २ कठिनाता से
घुसना। ३. भर जाना। समाप्त हो जाना। न रहना। उ०—
दृष्टिपन भी न निकसे, भाष्टापन भी ठुस जाय जैसे भले
लोग मन्त्रों से मन्त्रों प्राप्त में बोलते चालते हैं, ज्यों का खो
वही सब डोल रहे और यदि किसी की न पड़े।—ठेठ०,
(उपो०), पृ० २।

ठुसवाना—क्रि० प्र० [हि० ठूसना का प्रेरण] १. कसकर
भरवाना। २. जोर से घुसवाना। ३. संभोग कराना।
ठुसवाना (प्रशिष्ट०)।

ठुसाना—क्रि० प्र० [हि० ठूसना] १ कसकर भरवाना। २ जोर
से घुसवाना। ३. खूब पेट भर खिलाना (प्रशिष्ट०)।

ठूंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १, चौंच। ठोर। २ चौंच से मारने
की क्रिया। चौंच का प्रहार। ३ उंगली को मोड़कर पीछे
निकली हुई जोड़ की हड्डी की नोक से मारने की क्रिया।
ठोला।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूंगना^१—क्रि० प्र० [हि० ठूंग + ना (प्रत्य०)] ठूंगना।
धुगना। उ०—खोवहु तीन्नु लोक सब ठूंगे सासे सास। दाह
साय सब जरे, सतगुरु के बेसास।—दाह० बानी, पृ० १५६।

ठूंगा—संज्ञा पुं० [हि० ठूंग] दे० 'ठूंग'।

४-३४

ठूँठ—संज्ञा पुं० [हि० ठूटना, वा सं० स्थाणु, वा देशी ठुठ (=स्थाणु)]
१. ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल, पत्तियाँ घायि कट
गई हों। सूखा पेड़। २. कटा हुआ हाथ। ठुडा। उ०—
विद्या विद्या हरण हित पढ़त होत खल ठूँठ। कसो
निकारो मोन को घुसि घायो गृह उँट।—विश्राम (शब्द०)।
३ एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की
फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हि० ठूँठ वा सं० स्थाणु] [वि० स्त्री० ठूँठी] १. बिना
पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा
पेड़। २ बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठूँठियाँ—वि० [हि० ठूँठ + इया (प्रत्य०)] १ लूला। लँगड़ा।
२. हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठि—संज्ञा स्त्री० [हि० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, मरहर आदि की जड़
के पास का डठल जो खेत काटने पर पड़ा रह जाता है।
खूँटी।

ठूँसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ठूसना'।

ठूँसा—संज्ञा पुं० [हि०] १ दे० 'ठोसा'। २ मुक्का। घुँसा।

ठूँठ—वि० [देशी ठुँठ, हि० ठूँठ, ठूँठ] दे० 'ठूँठ'। उ०—दसा मुने
निज बाग की लाल मानिहो झूठ। पावस रितु हूँ मैं लखे डाढ़े
ठाढ़े ठूँठ।—मति० प्र०, पृ० ४५६।

ठूँठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे०
'राजजामुन'।

ठूँटू—संज्ञा पुं० [देश०] पटवों की बड़ देड़ी कील जिसपर वे गहने
भेंटकाकर उन्हें गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्पर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर
लगी होती है।

ठूसना—क्रि० प्र० [हि० ठस] १. कसकर भरना। इतना अधिक
भरना कि इधर उधर जगह न रहे। २. घुसेड़ना। जोर से
घुसाना। ३. खूब पेट भरकर खाना। कसकर खाना।

ठेंगना—वि० [हि० ठेंग + अग] [वि० स्त्री० ठेंगनी] छोटे डोल
का। जो ऊँचाई में पुरान हो। नाटा।—(जीवधारियों,
विशेषतः मनुष्य के लिये)।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हि० ठेंग + अग वा अंगूठा वा देश०] १. अंगूठा।
ठोसा।

मुह्ना^१—ठेंगा दिखाना = (१) अंगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना।
घृष्टता के साथ भस्वीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना।
(२) चिढ़ाना। ठेंगे से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

विशेष—जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने
या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या
निर्भीकता प्रकट करने के लिये ऐसा कहता है।

२. विगेंद्रिय। (प्रशिष्ट)। ३. सोंटा। डडा। गदका। जैसे,—
जबरदस्ती का ठेंगा सिर पर।

मुह्ना^२—ठेंगा बजाना = (१) मारपीट होना। जड़ाई दगा होना।
(२) व्यय की खटखट होना। व्यय निष्कष होना। कुछ

काम न निकलना । उ०—जिसका काम उसी को सजे । भीर करें तो ठेगा बाजे ।—(शब्द०) ।

४. वह घर जो बिक्री के माल पर लिया जाता है । धुंगी का महसूल ।

ठंगुर—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठेगा (= सोटा)] काठ का लंबा कुंदा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ भीर उछल कूद न सकें ।

ठेघा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठेघा' ।

ठेठ^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेठ' ।

ठेठ^२—वि० [हि०] दे० 'ठेठ' ।

ठेठा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] सुखा हुआ खंठल । उ०—रानी एक मज़ूर से बैलों के लिये जोन्हरी का ठेठा कटवा रही थी ।—तितली, पृ० २३८ ।

ठेठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. कान की मेल का लच्छा । कान की मेल । २. कान के छेव में लगाई हुई छई, कपड़े आदि की डाट । कान का छेद मुँदने की वस्तु ।

मुहा०—कान में ठेठी लगाना = न सुनना ।

३. शीशी बोतल आदि का मुँह षट करने की वस्तु । डाट । काग ।

ठेपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेठी' ।

ठेक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टिकना] १. सहारा । बल देकर टिकाने की वस्तु । झोठगाने की चीज । २. वह वस्तु जो किसी भारी चीज को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे से लगाई जाय । टेक । चौड़ा । ३. वह वस्तु जिसे घीस में देने या ठोकने से कोई बिली वस्तु कस जाय, इधर सधर न हिले । पच्चड़ । ४. किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे । पैदा । सला । ५. टट्टियों आदि से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें मनाब भरकर रखा जाता है । ६. घोड़ों की एक चाल । ७. छड़ी या छाठी की सामी । ८. धातु के बरतन में खी हुई चकती । ९. एक प्रकार की मोटी महलाबी ।

ठेकना—क्रि० सं० [हि० टिकना, टेक] १. सहारा लेना । आश्रय लेना । खजने या उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना । टेकना । २. आश्रय लेना । टिकना । ठहरना । रहना । उ०—वो, षेरह, चौबीस घों एका । पुरष दखिन कोन तेह ठेका ।—जायसी (शब्द०) । वि० दे० 'टेकना' ।

ठेकवा चौंस—सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बस ।

विशेष—यह बगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चटाई आदि के काम में आता है । इसे देवबांस भी कहते हैं ।

ठेका^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० टिकना, टेक] १. टेक । सहारे की वस्तु । २. ठहरने या रुकने की जगह । बैठक । मंडा । ३. तबला या ढोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायें, केवल ताल दिया जाय । यह बाएँ पर बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—देना ।

मुहा०—ठेका भरना = घोड़े का उछल कूद करना ।

४. सबले का बायाँ । दुग्गी । ५. कीवाली ताल । ६. ठोकर ।

घक्का । थपेड़ा । उ०—तरब तरंग रंग की राजहि उछलत छज लगी ठेका ।—रघुराज (शब्द०) ।

ठेका^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा । ठीका । जैसे, मकाब बनवाने का ठेका । सड़क तैयार करने का ठेका । २. समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और कुछ अपना निश्चित मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा । इजारा । पट्टा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।—पर लेना ।

यौ०—ठेका पट्टा ।

मुहा०—ठेका भेंट = वह नजर जो किसी वस्तु को ठेके पर लेनेवाला मालिक को देता है ।

ठेकाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में कासे हाशियों की छपाई ।

ठेकाना^१—क्रि० सं० [हि० ठेकना का प्रे० रूप] झोठगाना । किसी वस्तु को किसी वस्तु के सहारे करना । सहारा देना ।

ठेकाना^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठिकाना] दे० 'ठिकाना' ।

ठेकुरी(पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठेकली' । उ०—कहू ठेकुरी ढारि के वारि ढारे ।—प० रासो, पृ० ५५ ।

ठेकेदार—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ठीकेदार' ।

ठेकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० टेक] १. टेक । सहारा । २. चौड़ा । ३. विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं टिकाने या ठहराने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लेना ।

ठेगड़ी(पुं०)—सञ्ज्ञा पु० [देश०] कुत्ता ।—(हि०) ।

ठेगना(पुं०)—क्रि० सं० [हि० ठेकना] १. ठेकना । सहारा लेना । उ०—पाणि ठेगि मलूषा काहीं । रघुनायक चित्तयो गुण पाहीं ।—रघुराज (शब्द०) । २. रोकना । बरजना । मना करना । उ०—भँवर भुजग कहा सो पीया । हम ठेगा तुम कान न कीया ।—जायसी (शब्द०) ।

ठेगनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठेगना] टेकने की लकड़ी ।

ठेगना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ठेगना' ।

ठेगनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठेगना] टेकने की लकड़ी ।

ठेगा^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० टेक] टेक । चौड़ा । वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय । ठहराव । टिकान । उ०—(क) बरनहि बरन गगन जस मेघा । सठहि गगन बैठे जनु ठेगा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धिरहू बजागि घीस को ठेगा ।—जायसी प्र०, पृ० १९१ ।

ठेगना^२—सञ्ज्ञा पु० [सं० प्रच्छेद, हि० ठेगना] दे० 'ठेगना' ।

ठेठ^१—वि० [देश०] १. निपट । निरा । बिलकुल । जैसे, ठेठ गँवार । २. खालिस । जिसमें कुछ मेलजोल न हो । जैसे, ठेठ बोली, ठेठ हिंदी । ३. शुद्ध । निर्मल । निलिप्त । उ०—मैं उपकारी ठेठ का सतगुरु दिया सोहाग । दिल दरपन दिखलाप के दूर

क्रिया सब ताग ।—कवीर (शब्द०) । ४. मारना । धुक् ।

उ०—मैं ठेठ से देखता आता हूँ कि भाप मुझको देखकर जलते हैं ।—श्रीनिवास दास (शब्द०) ।

ठेठ^२—सच्चा स्त्री० सीधी सादी बोली । ब्रह्म बोली जिसमें साहित्य अर्थात् लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो ।

ठेठरी—सच्चा पुं० [अ० पिएटर] दे० 'पिएटर' ।

ठेना^१—क्रि० प्र० [?] १ ठहरना । रुकना । २ धकटना । ऐठना । उ०—नाहक का भगड़ा मोल लेना है, सेतमेत का ठेना है ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ५४ ।

ठेप^१—सच्चा स्त्री० [देश०] सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो मठी में घा सके ।—(सुनार) ।

विशेष—सुनार सोना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस प्रकार मठी में लेते हैं ।

क्रि० प्र०—बढाना ।—लगाना ।

ठेप^२—सच्चा पुं० [सं० दीप] दीपक । चिराग ।

ठेपी—सच्चा स्त्री० [देश०] १. डाट । काग जिससे बोतल वा किसी बरतन का मुँह बंद किया जाता है । २. छोटा ढँकना ।

ठेरा^१—सच्चा पुं० [हिं० ठहर] ठहराव । रुकाव का स्थान । टेक । उ०—पद नवकल रो ठेर पुणीजै, गीत सतखणो मछ गुणी जै ।—रघु० छ०, पृ० १३७ ।

ठेलना—क्रि० स० [हिं० टलना] या प्रप० [ठिल्ल] १ ढकेलना । धक्का देकर भागे बढ़ाना । रेलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

थौ०—ठेलठाल, ठेलमठेल=धक्कम धक्का । ठेलाठेल । ठेलमेल= एक पर एक भागे बढ़ते हुए । ठेलाठेली=धक्कम धक्का ।

२. ज्वरदंती करना । बलात् किसी को धकियाते हुए भागे बढ़ना ।

ठेला—सच्चा पुं० [हिं० ठेलना] १. बगल से लगा हुआ धक्का जिसके कारण कोई वस्तु खिसककर भागे बढ़े । पार्श्व का आघात । टक्कर । २. छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो खगो के सहारे चलाई जाती है । ३. बहुत से भादमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना । धक्कम धक्का । ऐसी भीड़ जिसमें देह से देह रगड़ खाए । रेलना । ४. एक प्रकार की गाड़ी जिसे भादमी ठेल या ढकेलकर चलाते हैं ।

थौ०—ठेलागाड़ी ।

ठेलाठेल—सच्चा स्त्री० [हिं० ठेलना] बहुत से भादमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना । रेलना । धक्कम धक्का । उ०—ठानि ब्रह्म ठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल मेला के मझार हित हेझा के भखो गयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ठेवका^१—सच्चा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ खेत सींचने के लिये पुरवट का पानी गिराया जाता है ।

ठेवकी^१—सच्चा स्त्री० [हिं० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को धकाने या टिकाने की जगह या वस्तु ।

ठेस—सच्चा स्त्री० [देश०] १ आघात । चोट । धक्का । ठोकर । उ०—शोषण दिल पर संवेफिराक की ऐसी ठेस लगी कि चकवाधुर हो गया ।—फिसावा०, भा० १, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।—लगाना ।

२. सहारा । टेक ।

ठेसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठूसना' ।

ठेसमठेस—क्रि० वि० [हिं० ठेस] सब पार्श्वों को एकबारगी खोले हुए (जहाज का चलना) ।—(सश०) ।

ठेहरी—सच्चा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो पुरानी चाल के दरवाजों के पल्लों की चूल के नीचे गड़ी रहती है और जिसपर चूल घुमती है ।

ठेही—सच्चा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईख ।

ठेहुका^१—सच्चा पुं० [हिं० ठेक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने चलते समय आपस में रगड़ खाते हों ।

ठेहुना^१—सच्चा पुं० [सं० मण्डीवान्] [स्त्री० ठेहुनी] घुटना ।

ठेहुनी^१—सच्चा स्त्री० [हिं० ठेहुना] हाथ की कुहनी ।

ठेकर—सच्चा पुं० [देश०] नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हलदी के साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते हैं ।

ठैन^१—सच्चा स्त्री० [सं० स्थान, हिं० ठाय] जगह । स्थान । बैठने का ठाँव । उ०—श्रीकृत सधन कुज वृंदावन बसीवट जमुना की ठैन ।—सूर (शब्द०) ।

ठैया^१—सच्चा स्त्री० [हिं० ठाय] दे० 'ठाई' ।

ठैरना^१—क्रि० प्र० [हिं० ठहरना] दे० 'ठहरना' । उ०—उनकी कोई बात हिकमत से खाली नहीं ठैरती ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १८४ ।

ठैनाई^१—सच्चा स्त्री० [हिं० ठहरना] दे० 'ठहराई' ।

ठैराना^१—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठहराना' । उ०—(क) मैं बीजक दिखाकर इन्से कीमत ठैरा जूंगा ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १६० । (ख) हे सारथी, सपोवनवासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े इन्से रथ यहीं ठैरा दो हम उत्तर लें ।—शकुंतला, पृ० १२ ।

ठैलपैल—सच्चा स्त्री० [हिं० ठेलना] दे० 'ठेलपेल' ।

ठैहरना^१—क्रि० प्र० [हिं० ठहरना] रुकना । ठहरना । उ०—(कछु ठैहरि कैं) प्यारे, जो यैही गति करनी ही तो अपनायो क्यों ?—पोद्दार ग्रंथि० प्र०, पृ० ४६५ ।

ठोंक—सच्चा स्त्री० [हिं० ठोकना] ठोंकने की क्रिया या भाव । प्रहार । आघात । २. वह लकड़ी जिससे वरी बुननेवाले सूत ठोंककर ठस करते हैं ।

ठोंकना—क्रि० स० [अनुध्व० ठक ठक] १. जोर से चोट मारना । आघात पहुंचाना । प्रहार करना । पीटना । जैसे,—इसे हथोड़े से ठोंको ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मारना । पीटना । लात, धूँसे डके आदि से मारना । जैसे,—घर पर जामो खूब ठोंके जाओगे ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. ऊपर से चोट लगाकर घँसावा । गाड़ना । जैसे, कील ठोंकना, पक्कर ठोंकना । ४. (नाखिल, भरजी आदि) दाखिल करना । दायर करना । जैसे, नाखिल ठोंकना, दाया ठोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५ काठ में डालना । बेडियो से जकड़ना । ६. धीरे धीरे हथेली पटककर घाघात पहुँचाना । हाथ मारना । जैसे, पीठ ठोंकना, ताल ठोंकना, बच्चे को ठोंककर सुसाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—ठोक ठोंककर लड़ना = ताल ठोंककर लड़ना । डटकर लड़ना । जबरदस्ती झगड़ा करना । ठोंकना बजाना = हाथ से टटोलकर परीक्षा करना । जाँचना । परखना । जैसे,—सोग दमड़ी की हाँड़ी भी ठोंक बजाकर लेते हैं । उ०—(क) तन-सराय मन पाहुरु, मनसा उतरी प्राय । कोउ काहू का है नहीं (सब) देखा ठोक बजाय ।—कबीर सा० स०, पृ० ६१ । (ख) ठोंकि बजाय लखे गजराज कहाँ लौ कहाँ केहि सो रव काढ़े ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय । श्रेष्ठ विदा मिलि जाँहि मधुपुरी जेह गोकुल के राय ।—सूर (शब्द०) । पीठ ठोकना = दे० 'पीठ' का मुहा० । रोटी या बाटी ठोंकना = घाटे की लोई को हाथ से ठोंकते हुए बढ़ाकर रोटी बनाना ।

७ हाथ से मारकर बजाना । जैसे, तबला ठोंकना । ८ कसकर मटकाना । लगाना । जड़ना । जैसे, ताला ठोंकना । ९. हाथ या सकड़ी से मारकर 'खट खट' शब्द करना । खटखटाना ।

ठोंकवां—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठोकना] मोठा मिले हुए घाटे की मोटी पूरी । मूना ।

ठोंग—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १ चबु । चोच । २. चोच की मार । ३ उंगली मुकाकर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया । उंगली की ठोकर । खुदका ।

ठोंगना—क्रि० स० [हि० ठोंग] १ चोच मारना । २ उंगली से ठोकर मारना । खुदका मारना ।

ठोंगा—सञ्ज्ञा पु० [हि० ठोंग] पतले कागज का नोकदार या गोला एक पात्र जिसमें दूकानदार सोदा देते हैं ।

ठोंचना—क्रि० स० [हि० ठोंग] दे० 'ठोंगना' ।

ठोंठ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चोच का अगला सिरा । ठोर । उ०—चाटुकारी का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरे की सी ठोठ को बाँध दूँ ।—वीणा, (विज्ञापन) ।

ठोंठा—सञ्ज्ञा पु० [दे०] एक कीड़ा जो ज्वार, बाजरा और ईल को हानि पहुँचाता है ।

ठोंठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चने के दाने का कोश । २ पोस्ते की ढोंडी ।

ठों—अव्य० [देश० या हि० ठोर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में सख्याचाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है । सख्या । अर्द्ध । जैसे, एक ठो, दो ठो । इस अर्थ के बोधक अव्यय शब्द गो, ठे आदि भी चलते हैं । जैसे, एक ठे, दू गो आदि ।

ठोकवा—सञ्ज्ञा पु० [दे०] ग्राम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका या आवरण ।

ठोक०—[हि०] दे० 'ठोंक' । उ०—सुंदर मसकतिदार सौ मुख मयि काढ़े पाणि । सदगुरु चक्रमक ठोकते तुरत उठे कक जाणि ।—पुं० २, पृ० ६७१ ।

ठोकना—क्रि० स० [हि० ठोंकना] दे० 'ठोंकना' ।

यौ०—ठोक पीट करना = ठोकना पीटना । बारबार ठोकना । ठोक पीटकर गठना = ठोक पीटकर दुरुस्त करना । तैयार करना । उ०—जब हम सोने को ठोक पीट गढ़ते हैं, तब मान मूल्य, सौंदर्य सभी बढ़ते हैं ।—साकेत, पृ० २१३ ।

ठोकर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठोकना] १. वह चोट जो किसी पंग विशेषतः पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे । घाघात जो चलने में ककड़, पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे । ठेस ।

क्रि० प्र०—लगना ।

मुहा०—ठोकर उठाना = घाघात या दुःख सहना । हानि उठाना । ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की टकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना । झटुकना । झटुककर गिरना । जैसे,—जो संभलकर नहीं चलेगा वह ठोकर खाकर गिरेगा (२) किसी मूल के कारण दुःख या हानि सहना । प्रसाधधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना । जैसे,—ठोकर खावे, बुद्धि पावे (३) चोखे में घाना । मूलचूक करना । चूक खाना । (४) प्रयोजन सिद्धि या जीविका प्राप्ति के लिये चारों ओर घूमना । हीन दशा में भटकना । इधर उधर मारा मारा फिरना । दुर्दशा-प्रस्त हो कर घूमना । दुर्गति सहना । कष्ट सहना । जैसे,—यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो घाघात ही ठोकर खायेगा । ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना । ठोकर लगना = किसी मूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना । ठोकर लेना = ठोकर खाना । झटुकना । चलने में पैर का ककड़ परपर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना । ठेस खाना । जैसे, घोड़े का ठोकर लेना ।

२. रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर वा ककड़ जिसमें पैर टकरा चोट खाता है ।

मुहा०—ठोकर जड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए । रास्ते का ककड़ पत्थर बचाते हुए । ठोकर पहाड़िया कदम में = घँसा हुआ पत्थर या ककड़ बचाते हुए ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग पालकी ढोते समय पालकी ढोनेवाले कहार करते हैं ।

३. वह कड़ा घाघात जो पैर या जूते के पजे से किया जाय । जोर का धक्का जो पैर के अगले भाग से मारा जाय । जैसे,—एक ठोकर बेंगे होय ठीक हो जायेंगे ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना । ठोकर खाना = पैर का घाघात सहना । खाता सहना । पैर के घाघात से इधर उधर लुढ़कना । ठोकरों पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना । अपमानित होकर रहना ।

४ कड़ा घाघात । धक्का । ५. जूते का अगला भाग । ६. कुश्ती का एक पंजा जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (जोड़) खड़े खड़े भीतर घुसता है ।

विशेष—इसमें विष्णु का हाथ जगल में दबाकर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं। घोर बिघर का हाथ बगल में दबाया रहता है उपर ही की टांग से धक्का देते हैं।

ठोकरी—सका स्त्री० [टोकर] बहु गाय जिसे चूषा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका गूथ गाढ़ा और मोटा होता है। बच्चा गाय।

ठोकरा—सका पुं० [टोकर] दे० 'ठोकरा'।

ठोका—उंठ पुं० [टोका] त्रियों के हाथ का एक गहना जो त्रियों के लिये पहना जाता है। एक प्रकार की पट्टी।

ठोठ—वि० [हि० ठूठ] १ जिसमें कुछ ठस न हो। २ जड़। मूर्ख। गारदी।

ठोठ—वि० [हि० ठोठ] मूर्ख। जड़। व्यवहारमूल्य। उ०—(क) दादू भादर भाव का मोठा लागी मोठ। विन भादर बज्जन बुरा झोमण वाला ठोठ।—राम० धर्म०, पृ० २३१। (ख) ठग कामेता ठोठ गुद चुगल न कीजे सेण।—बांकी० प्र०, भा० २, पृ० ४८।

ठोठरा—वि० [हि० ठूठ] [वि० स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या सगी हुई वस्तु के निकल जाने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोपता। उ०—सात बीस एहि विधि तरे बान वीथि उत्पन्न। रातिहु दिनहु टटाई के करे ठोठरे वन।—सात (गद्य०)।

ठोडा—सका पुं० [हि० ठोर] स्थान। जगह। उ०—(क) प्राप ठोड जे उमग न प्राया फिरता ठोड घनेक फिरे।—रघु० सू०, पृ० २५१। (ख) दोनू ठोड जैतुर जोधपुर नै जोर धोतू।—सिख०, पृ० ८२।

ठोड़ी—सका स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में घोंट के नीचे का भाग जो कुछ मोटाई लिये उभरा होता है। ठुड़ी। धिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना = चिता में मग्न होकर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना = (१) प्यार करना। (२) किसी चिड़े हुए भादमी को स्नेह का भाव दिखाकर मनाना। मोटी बातों से क्रोध शांत करना। ठोड़ी लाना = सुंदरी स्त्री की ठुड़ी पर का तिल या मोदना।

ठोड़ी—सका स्त्री० [हि०] दे० 'ठोड़ी'। उ०—हे मुक्त प्रति छवि प्रागरी, कहा सरद की चंद। पे हित मान समान किम तुव ठोड़ी की बुंद।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

ठोपां—सका पुं० [मनु० टप् टप्] बूँद। बिंदु।

यी०—ठोप ठोप, ठोपेठोप = बूँद बूँद। उ०—र्यों र्यों गरदं होइ मुने संतन की बानी। ठोपे ठोप प्रपाय ज्ञान के सागर पानी।—पलटू०, पृ० ६१।

ठोर—सका पुं० [टोकर] एक प्रकार मिठाई या पकवान जो मेदे की मोहनदार बड़ाई हुई लोई की घी में तलने और खानसी में पागने से बनता है। बल्लभ सप्रशय के मविरा ने इसका भोग प्राप. लगता है।

ठोरा—सका पुं० [सं० तुण्ड] चोंच। चपु। उ०—कंटिया दूध देवं नहि कबहू ठोर चखावे गोछी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

ठोरी—सका स्त्री० [हि० ठोर] कोल्हू का वह स्थान जहाँ से रस प्रवाह ठस टपकर गिरता है। टोंटी। उ०—उकड़ू लुफ जाडो, मरा टाड़ा हटाकर प्रलग रत्न लेतो और खानी टाड़ा कोल्हू की टोरी से जगा देती।—नंद०, पृ० ८१।

ठोलना—वि० ग० [हि० ठुलाना] ठुलाना। घसाना। उ०—दामो होई करि निरवट्ट, पाप पसारहु ठोलसुं बाई।—बी० रामो, पृ० ४२।

ठोला—सका पुं० [टोकर] रेसम करनेवालों का एक मोजार जो नक़्सी की चौकोर छोटी पट्टी (एक बिजा संबी एक बिछा बांडी) के रूप में होता है। इसमें सफ़ेदी या एक नूँटा लगा रहता है जिसमें सूया डालने के लिये दो छेद होते हैं।

ठोला—सका पुं० [टोकर] [स्त्री० ठोली] मनुष्य। भादमी।—(सप्तदश)। उ०—हुन ठोली सापर रस जाना।—पट०, पृ० १९२।

ठोवकी—सका पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण; मय० ठाव; राज० ठावड, ठोवडी] दे० 'ठोर'। उ०—विष्णु परइ सत जोधले खिवियां बीजनिपाहि। सुरहुड सोद महबिख्यां, भीनी ठोवबिपाहि।—ठोला०, पृ० १६०।

ठोस—वि० [हि० ठस] जिसके भीतर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो पोता या खोखला न हो। जो भीतर से भरापूरा हो। जैसा, ठोस कड़ा। उ०—यह मूर्ति ठोस सोने की है।—(कन्द०)।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में प्रवर यह है कि 'ठस' का प्रयोग या तो चदर के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये प्रयुक्त गीले या मुलायम के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी का सूखकर ठस होना। और, 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये प्रयुक्त। लबाई, चोडाई, मोटाईवासी (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

२ रड़। मजबूत।

ठोस—सका पुं० [देश०] बसक। कुड़न। राह। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत प्रब कुजवा के ठोसनि।—मूर (गद्य०)।

ठोसा—सका पुं० [देश०] भेंगूटा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना = भेंगूटा दिखाना। झकार करना। ठोसे में = बसा से। ठेंगे से। कुछ परवाद नहीं।

ठोहना—वि० स० [हि० ठोहना, ठोहना] ठिकाना ठोहना। पठा लगाना। खोजना। उ०—प्रायो कहाँ प्रब ही कहि की हों। ज्यों प्रपनी पद पारं सो ठोहों।—केशव (सन्द०)।

ठोहरा—सका पुं० [हि० निठोहर] घसाना। गिराना। मर्दगी।

ठोका—सका पुं० [सं० स्थानक, हि० ठाँव + क (प्रत्यय)] वह स्थान जहाँ सिपाई के लिये छाता, गढ़ने प्रादि का पानी दोरी से ऊपर उतोरकर गिरावे है। ठोरका।

ठोका—सका पुं० [हि०] दे० 'ठोर'। उ०—दिल्ली चपो दूध,

नन दोषो । क्रिय हो टोड़ मुझाग न कीषो ।—रा० ६०,
पृ० २६ ।

ठोनि^१—सञ्ज्ञा स्तो० [हि०] दे० 'ठयनि' ।

ठोर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हि० ठाय + र (प्रत्य०)]
१ जगह । स्थान । ठिकाना ।

थो०—ठोर ठिकाना = (१) रहने का स्थान । (२) पता
ठिकाना ।

मुठ्ठा^३—ठोर मुठ्ठा = (१) मच्छी जगह, बुरी जगह । बुरे
ठिकाने । मनुष्यसुख स्थान पर । जैसे—(क) इस प्रकार ठोर
मुठ्ठा को धीज न उठा लिया करो । (ख) तुम परपर फेंकते
हूँ किसी को ठोर मुठ्ठा लग जाय तो ? (२) बेमोका । बिना
बख्तर । ठोर न माना = समीप न माना । पास न फटकना ।
उ०—हरि को भजे सो हरिपद पावे । जगम मरन वेहि ठोर
न पावे ।—मूर (शब्द) । ठोर न रहना = स्थान या जगह न
मिलना । निराश्रय होना । उ०—कबीर वे नर मंथ हैं, गुह
को कहते मोर । हरि छडे गुह मोर हैं, गुह छडे नहि ठोर ।—

कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४ । ठोर मारना = तुरंत ब्रह्म
कर देना । उ०—तब मनुष्यन ने बाको ठोर मारयो । ता पाछे
बाकी सीस गाम के द्वार पे बांध्यो ।—दो सो बावन०, भा०
२, पृ० ६६ । ठोर रखना = उसी जगह मारकर गिरा देना ।
मार डालना । ठोर रहना = (१) जहाँ का वहाँ रह जाना ।
पढ़ रहना । (२) मर जाना । किसी के ठोर = किसी के
स्थानापन्न । किसी के तुल्य । उ०—कबले के ठोर बाप बाद-
घाह साहजहाँ ताओ केव कियो मानो मक्के भागि लाई है ।—
भूपण (शब्द०)

२. मोका । घात । त्वसर । उ०—ठोर पाय पवनपुत्र डारि
मुद्रिका दई ।—केयव (शब्द०) ।

ठोहर^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठोर] स्थान । ठाँव । ठोर । उ०—सुदर भटवयो
बहुत दिन भवतू ठोहर भाव फेरि न कवहुँ भाई यह मोसर
यह डाव ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७०० ।

ठथापा^५—वि० [देश०] उपद्रवी । शरारती । उतपाती ।

ड

ड—व्यजनों में तेरहवाँ व्यजन मोर डवंग का तीसरा वण । इसका
उच्चारण मान्यतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्धा में
स्पर्श करने से होता है ।

डंक^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दंश या दंशो] १. भिड़, बिच्छू, मधुमक्खी
आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे वे कोष में या
मगने पचाव के लिये जीवों के शरीर में घोंसाते हैं । उ०—
उसटिया मूर प्रह डंक छेदन किया, पोखिया चद्र तहाँ कला
सारो ।—राम० पर्व०, पृ० ३१६ ।

विदोष^७—भिड़, मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो
काँटा होता है, वह एक नली के रूप में होता है जिससे
शेकर जहर की गति से जहर निकलकर घुमे हुए स्थान
में प्रवेश करता है । यह काँटा केवल मादा कीड़ों को
होता है ।

डि० प्र०—मारना ।

२. कलम की जीम । निब । ३. डक मारा हुआ स्थान । डक
का पाय ।

डंक^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं०, प्रा० डक (= वाद्यविशेष) घपवा मनु०]
डमक । डिंगडिंगी । उ०—बाजोगर ने डक बजाया । सब
खोग तमाये धाया ।—कबीर म०, पृ० ३३८ ।

डंकदार^९—वि० [हि० डक + दा० दार] डकवाला । काँटेदार ।

डंकना^{१०}—डि० प्र० [मनु०] शब्द करना । गरजना । गपानक
शब्द करना । उ०—दूषनाछ हृदय तोष डंकिय पुनि धमकिय
बड ।—मूदन (शब्द०) ।

डंका^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डंका (= पुं० दुमि का शब्द)] एक प्रकार का
बाजा जो नाँव के आकार के तब या लोहे के बरतनों पर
बनना मड़कर बनाया जाता है । पहले लड़ाई में डंके का

जोड़ा ऊँटों मोर हाथियों पर चलता था मोर उसके साथ
भडा भी रहता था ।

डि० प्र०—बजना ।—बजाना ।—पिटना ।—पीटना ।

मुद्दा^{१२}—डंके की चोट कहना = खुल्लम खुल्ला कहना । सबको
सुनाकर कहना । वेष्टक कहना । डका डालना = (१)
मुरगे से मुरगे को लठाना । (२) मुरगे का चोच मारना ।
डंका देना या पीटना = (१) दे० 'डका बजाना' । (२) मुनादी
करना । डुगो फेरना । डोंडो फेरना । डका बजाना = हल्ला
करके सबको सुनाना । सबपर प्रकट करना । प्रसिद्ध करना ।
घोषित करना । किसी का डका बजना = किसी का शासन
या अधिकार होना । किसी की चलती होना । उ०—सजे
प्रमी साकेत, बजे ही, जय का डका । रह न जाय धव कहीं
किसी रावण की लका ।—साकेत, पृ० ४०२ ।

थो०—डंका निशान = राजाओं की सवारी में भागे बजनेवाला
डका मोर ध्वजा ।

डंका^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डक] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट ।

डंकिनि^{१४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी' ।

डंकिनी वदोवस्त^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दवामी + प्रा० वदोवस्त] स्थायी
व्यवस्था । दे० 'दवामी वदोवस्त' ।

डंकी^{१६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [द्यो०] १. कुपती का एक पेंच । २. मालखन की
एक कसरत ।

डंकी^{१७}—वि० [हि० डक] डकवाला ।

डंकुर^{१८}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डंका] एक प्रकार का पुराना बाजा जिससे
ताल दिया जाता था ।

डंझ^{१९}—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पलाश । डख ।

हंख^१—संज्ञा पुं० [हिं० हंख] विष का दौत । उ०—ये देखो ममता नागन भाई रे भाई भाई । तिनों तो डख मारा रे मारा ।
—बनखनी०, पृ० ५८ ।

हंग—संज्ञा पुं० [देश०] अघपका छुहारा ।

हंगम—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष विशेष । एक पेड़ का नाम ।

विशेष—यह पेड़ बहुत बड़ा होता है । हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है । दारजिलिंग के आसपास तथा खसिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है ।

हंगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस) । उ०—मानुष ही कोई मुवा नहि, मुवा सो डगर घूर ।—कवीर म०, पृ० ३६४ ।

हंगर^२—वि० दे० 'हंगर' ।

हंगू ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० हंगू + सं० ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर जकड़ उठता है और उसपर चक्के पड़ जाते हैं । इसे लेंपड़ा ज्वर भी कहते हैं ।

हंगोरी^१—संज्ञा पुं० [देशी डंगा (= यष्टि) + हिं० मोरी (प्रत्य०)] डहोंकी । यष्टि । छड़ी । उ०—हथ डंगोरी पग खिसाहि डोखी देखि नीमाणु ।—प्राण०, पृ० २५० ।

हंटा^१—संज्ञा पुं० [हिं० हटा] दे० 'डंडा' । सं०—साले नगाहचो ने ठोक सामने कपाल पर ही डटा चलाया था ।—मैला०, पृ० ७५ ।

डंठल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] छोटे पीछों की पेड़ी और शाखा । नरम छाल के झाड़ों और पीछों का घड़ और टहनो । जैसे, ज्वार का डंठल, मूली का डंठल ।

डंठी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] डंठल ।

डंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डड] १ डंडा । सोंटा । उ०—कथा पहिरि डड कर गहा । सिद्ध होइ कहें गोरख कहा ।—जायसी प्र० (गुत), पृ० २०५ । २. बाहुदंड । बाहु । ३. मेरुदंड । रीढ़ । उ०—हरिया खडिया मगन को, मेरु उलंग्या डड । सुख उपजा सोंई मिला, भेटा ब्रह्म मखड ।—हरिया० बानी, पृ० १५ । ४ एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के घन पृथ्वी पर पट और सीधा पड़कर किया जाता है । हाथ पैर के पंजों के बल पर पड़कर की जानेवाली कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—डंडपेल । डड वैठक = डड और वैठक नाम की कसरत ।

मुहा०—डंड पेलना = खूब डंड करना ।

५. दंड । सजा । ६. अर्थदंड । जुर्माना । वह रुपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में दिया जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—डंड डालना = अर्थदंड नियत करना । जुर्माना करना । डंड भरना = हानि के बदले में धन देना । जुर्माना या हरजाना देना । उ०—भूमि आस जो करहि भरहि तो डंड सेव करि ।—पृ० रा०, ८३ ।

७. घाटा । हानि । नुकसान ।

मुहा०—डंड पड़ना = नुकसान होना । व्यर्थ व्यर्थ होना । जैसे,—कुछ काम भी नहीं हुआ, इतना रुपया डंड पड़ा । ८. घड़ी । दंड । दे० 'दंड' । उ०—डंड एक माया कर मोरें । जोगिनि होउं चलो संग तोरें ।—पदमावत, पृ० ६५८ ।

डंडक^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'दंडक' । उ०—परे ग्राह भव वनखंड माही । डंडक आरन धौंभ बनाही ।—पदमावत, पृ० १३२ ।

डंडकारण^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य' ।

डंडण^१—वि० [सं० दण्डन] डंड देनेवाला । उ०—अरि डंडण नव खंड भवीही ।—रा० रू०, पृ० १२ ।

डंडताल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + ताल] एक ाकार का बाजा जिसमें लंबे चिमटे में मजीर जड़े रहते हैं । उ०—भाँक मजीरा डंडताल करताख बजावत ।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० २४ ।

डंडधारी—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + हिं० धारी] डंडी । संन्यासी । उ०—स्वामी कि तुम्हें प्रह्ला कि प्रह्लाधारी । कि तुम्हें वामण पुस्तक कि डंडधारी ।—पोरख०, पृ० २२७ ।

डंडन^१—वि० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] डंड देनेवाला । वह जो दंड दे । उ०—पुनि गुज्जर बलिवड सोड्ड धनडडनि डंडन ।—पृ० रा०, १३।३० ।

डंडना^१—क्रि० सं० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] डंड देना । जुर्माना लगाना । दंडित करना । उ०—डंडयो (डंडयू) साह साहावदी मठ सहस हैवर सुवर ।—पृ० रा०, २०।६९ ।

डंडपेल—संज्ञा पुं० [हिं० डंड + पेलना] १ खूब डंड करनेवाला । कसरती पहलवान । २ बलवान या तगड़ा भादमी ।

डंडल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बगाल और बरमा में पाई जाती है । यह मछली पानी के ऊपर अपनी भाँखें निकालकर तैरती है । इसकी खबाई १८ इंच होती है ।

डंडवत्^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्' । उ०—(क) सोके तब करे डंडवत पूजूं और न देवा ।—कवीर रा०, भाग १, पृ० ७२ । (ख) डंडवो डंडी धीन्ध जेह साईं । आप डंडवत कीन्ध सवाई ।—जायसी (राग०) ।

डंडा^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १ लकड़ी या बाँस का सीधा खंडा टुकड़ा । लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें । सोंटा । मोटी छड़ी । लाठी ।

मुहा०—डंडा खाना = डंडे की मार सहना । डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे खेलना = डंडों की छड़ाई का खेल खेलना । (भावों बरी चौय को पाठशालाओं के लड़के यह खेल खेलने बिकसते हैं) । डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना । डंडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे भावों बरी चौय को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चाँदी के पत्तार चढ़े हुए कलम, दवात आदि देने की रीति करना । डंडा बजावे फिरना = मारा मारा फिरना ।

१ डंड । डंडवारा । वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । चारदीवारी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डडा खींचना = चारदीवारी उठाना ।

डंडा(डु)†—सझ पुं० [देशी डडय (=रथ्या)] मार्ग । लीक राह । उ०—बाग वृच्छ बेली पर झडा । सतगुरु सुरति बतावे डडा ।—घट०, पृ० २४७ ।

डंडाकरन(डु)—सझ पुं० [सं० दण्डकारण्य] दण्डक वन । उ०—परेउ भाइ सब वन खंड माहा । डडाकरन बीभ वन जाही ।—जायसी (शब्द०) ।

डंडाकुंडा—सझ पुं० [हिं० डंडा + कुंडा] बल वैभवा । सत्ता । प्रभाव । उ०—उनके प्राख मूंदते साख भी नही बीवेगा कि भंगरेजों का डंडाकुंडा उठ जाएगा ।—किन्नर०, पृ० २३ ।

डंडाडोलो—सझ स्त्री० [हिं० डंडा + डोलो] लडको का एक खेल जिसमें ने किसी लडके को दो भाडे डंडो पर बैठाकर इधर उधर फिराते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

डंडाधारी(डु)†—सझ पुं० [सं० दण्ड + हिं० धारी] डंडो । सन्यासी । उ०—मोनी उदासी डंडाधारी ।—प्राण०, पृ० ६२ ।

डंडानाच—सझ पुं० [हिं० डंडा + नाच] वह नृत्य जिसमें डंडा लड़ाते हुए लोग नाचते हैं । उ०—डंडा नाच कुछ अशों में गुजरात देश के 'गरवा नृत्य' के सदृश होता है । मुख्य अंतर यही है कि डंडा नाच पुरुषों का है और गरबा स्त्रियों का ।—शुक्ल अभि० प्र० (साहि०), पृ० १३६ ।

डंडाबेड़ी—सझ स्त्री० [हिं०] बेड़ी और उसके साथ लगा लोहे का डंडा जिससे कैदी न भाग सके ।

डंडारन(डु)†—सझ पुं० [सं० दण्डकारण्य, प्रा० डंडारण्य] दण्डकारण्य ।

डंडाल—सझ पुं० [हिं० डंडा] नगाड़ा । दुडुमि । डका ।

डंडिया†—सझ स्त्री० [हिं० डंडो] १ दे० 'डंडी-१६' । २. दे० 'डंडो' ।

डंडी†—सझ स्त्री० [हिं० डंडा] १ छोटी लंबी पतली लकड़ी । २ हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली घस्तु का दह लबा पतला भाग जो मुट्ठी में लिया या पकड़ा जाता है । दस्ता । हस्या । मुठिया । जैसे, छाते की डंडी । ३ तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका लटकाकर पसड़े बांधे जाते हैं । डौंडी । उ०—काहे की डंडी काहे का पलरा काहे की मारी देनिया ।—कबीर रा०, भा० २, पृ० १५ ।

मुहा०—डंडी मारना = सोदा देने में 'बालाकी से कम सोलना ।

४ वह लबा डंडल जिसमें पत्ता, फूल या फल लगा होता है । नाल । जैसे, कमल की डंडी । पान की डंडी । उ०—कमलों के पत्ते जीर्ण होकर झड़ गए हैं, फूलों की कणिका और केसर भी गिर गई है, पाले के कारण उसमें डंडी मात्र शेष रह गई है ।—हिं० प्र० चि०, पृ० १३ । ५ फूल के नोचे का लबा पतला भाग । जैसे, हरसिंगार की डंडी । ६ हरसिंगार का फूल । ७ भारसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उंगली में पड़ा रहता है । ८ डंडे में बँधी हुई भोली के आकार की

एक सवारी जो कंधे पहाड़ों पर चलती है । भूपान । ९. लिंगेन्द्रिय । १०. दंड धारण करनेवाला सन्यासी ।

डंडी^२—वि० [सं० दण्ड] भगड़ा लगानेवाला । चुगलखोर ।

डंडीमार—वि० [हिं०] टेनी मारनेवाला । सोदा कम तोखनेवाला ।

डंडूर—सझ पुं० [प्रा० डुडूल] दे० 'डडूल' । उ०—अग्नि ज्वाह किन तन उठत, किन तन वरसे मेह । चक्र पवन डंडूर के कैतन कंकर खेह ।—पृ० रा०, ६।५५ ।

डंडूल—सझ पुं० [प्रा० डुडूल (= घूमना, चक्कर लगाना)] बाया-चक्र । बवडर । उ०—कर सेती मोला जपें, हिंदे बहे डंडूल । पग ती पासा में गल्या, भाजण लागी सुल ।—कबीर प्र०, पृ० ४५ ।

डंडौत—सझ पुं० [सं० ण्ड, प्रा० डण्ड + सं० वत्, हिं० श्रोत] दे० 'दंडवत्' । उ०—पलटू उन्हें डंडौत करी, वोही साहब मेरा है जी ।—पलटू, पृ० ५० ।

डंडर—सझ पुं० [सं०] १. आयोजन । झांडवर । डंडोसबा । घूम-घाम । २. विस्तार । उ०—उड्डि रेन डंडर धमर, दिव्यी सेन चहुमान ।—पृ० रा०, ६।१३० । ३. समूह । उ०—कुवा वायडियू के डंडर, बाड़ी बागू के झाडवर ।—रघु० रू०, पृ० २३७ । ४. विलास । ५. एक प्रकार का चंदोवा । चंदरछत ।

डौ०—मेघडंडर = बड़ा शामियाना । दलबादल । धवर डंडर = वह खाली जो संध्या के समय आकाश में बिखाई पड़ती है । उ०—विनसत वार न लागई, मोछे जन की प्रीति । धवर डंडर सक्ति के ज्यो बाल की भीति ।—स० सप्तक, पृ० ३१२ ।

डंडल --सझ पुं० [सं० डंडेल] दे० 'डंडेल' ।

डंडेल --सझ पुं० [सं०] १. हाथ में लेकर कसरत करने की लोह या लकड़ी की गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्टू की तरह गोख होते हैं । इसे हाथ में लेकर तानते हैं । यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है । कुछ डंडेलों में स्प्रिंग भी लगी रहती है । २. वह कसरत जो इस प्रकार के लट्टू से की जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।

डंड(डु)†—सझ पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डम] दे० 'डिम' । उ०—डंड भनै मत मानियो सत कहीं परमारथ जानो ।—कबीर रा०, भा० ४, पृ० २४ ।

डंड—सझ पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डड] एक प्रकार का बड़ा मन्थर जो बहुत काटता है और जिसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है । डंड । वनमथक । जंगली मन्थर । उ०—देव विषय गुल खालसा इस मसकादि खुलु झिल्ली कपादि सब सपं स्वाभी ।—तुलसी (शब्द०) २ वह स्थान जहाँ उक चुमा हो या साँप आदि विपले कीड़ों का दाँत चुगा हो ।

डंडरना†—क्रि० प्र० [हिं० डकार] दे० 'डकारना' ।

डंडारना†—क्रि० प्र० [हिं० डकारना] डकार लेना । डकार प्राना ।

डंडियाना†—क्रि० प्र० [हिं० डक + प्राना (प्रत्य०)] डंक मारना ।

डंडीला†—वि० [हिं० डंक + ईला (प्रत्य०)] डंकवाला ।

डंडौरी†—सझ स्त्री० [हिं० डक + प्रीरी (प्रत्य०)] झिड़। बरें । ततैया । हडा ।

हंगरा—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा ।

हंगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंगरा] लंबी ककड़ी । डोंगरी ।

हंगरी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोंगर (= दुवला)] एक प्रकार की चुड़ैल । डाइन । उ०—डाइन हंगरी नरन चनावत । गजन घुमाइ प्रकास पठावत ।—गोपाल (शब्द०) ।

हंगरी^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत ।

विशेष—यह बेंत पूर्वी हिमालय, सिक्किम, भूटान से लेकर चटगाँव तक होता है । यह सबसे मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छड़ियाँ और डंडे निकलते हैं । टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है ।

हंगबारा—संज्ञा पुं० [हिं० डंगर (= बैल, चोपाया)] इस बैल आदि की वह सहायता जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं । जिता ।

हंगौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी से सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं । यह पेड़ भासाम और कटार में बहुतायत से होता है ।

हंटैया^१—संज्ञा पुं० [हिं० डाटना] डाटनेवाला । डाट बतानेवाला । घुड़कनेवाला । धमकानेवाला । उ०—साँसति घोर पुकारत भारत कोन सुनै चहुँ घोर हंटैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

हंठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डठल] दे० 'डठल' ।

हंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड; प्रा० डड] एक प्रकार का ग्यायाम । दे० 'डंड-४' ।

यौ०—हंडबैठक । हंडपेल ।

हंडका—संज्ञा पुं० [हिं० डडा] सीढ़ा का डडा ।

हंडवारा^१—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ + वार (= किनारा)] [स्त्री० भल्पा० डंडवारी] वह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । दूर तक गई हुई खुची दीवार ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डंडवारा खींचना = डंडवारा उठाना ।

हंडवारा^२—संज्ञा पुं० [हिं० दक्षिण + वार (प्रत्य०)] दक्षिण का वायु । दखनहरा । दखिनया ।

क्रि० प्र०—चलना ।

हंडवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ + वार (= किनारा)] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है ।

मुहा०—डंडवारी खींचना = डंडवारी या चारदीवारी उठाना ।

हंडवी^१—संज्ञा पुं० [देश०] वह या राजकर देनेवाला । करवा । उ०—हंडवी डाँड़ दीन्ह जेह ताई । प्राप डडवत कीन्ह सवाई ।—जायसी (शब्द०) ।

हंडहरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मछली जो बगाल, मध्यभारत और बर्मा में पाई जाती है । यह तीन इंच लंबी

होती है । २. लकड़ी या लोहे का लंबा डंडा जो दरवाजे का खुलना रोकने के लिये किवाड़ के पीछे लगाया जाता है ।

हंडहरा^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो भासाम, बंगाब, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है ।

हंडहरा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड + हिं० हरी (प्रत्य०)] टहनी ।

हंडहिया—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] वह डंडा जिससे बैलों की पीठ पर सदे हुए बोरे फेंसाए रहते हैं ।

हंडिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी (= रेखा)] १. वह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बल गोटे टाँककर लकीरें बनी हों । छड़ीदार साड़ी । उ०—(क) साल चौकी नीख डंडिया संग युवतिन मोर । सूर प्रभु छवि निरखि रीसे मगन भी मन कीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) नख सिल सजि सिंगार युवती तन डंडिया कुसुमे बोरी की ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसे प्रायः कुम्भारी लकड़ियाँ पहनती हैं । कभी कभी यह रंग बिरंगे कई पाट जोड़कर बनाई जाती है ।

२. गेहूँ के पीछे में वह लंबी सीक जिसमें बास लगी रहती है ।

हंडिया^२—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ (= भयंकर; सीमा)] १. महसूल वसूल करनेवाला । कर उगाहनेवाला । २. सीमा या हद पर कर उगाहनेवाला ।

हंडिया^३—संज्ञा स्त्री० [कुमा० डाँडी, नेपा० डाँडी (= डोली)] उ०—(क) भालहि बाँध कटाइन डंडिया फँदाइन हो साधो ।—पलटू०, पृ० १५ । (ख) छोटी मोटी डंडिया चंदन के हो, छोटे चार कहार ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६२ । २. दे० 'डाँड़ी' ।

हंडियाना—क्रि० सं० [हिं० डाँड़ी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सीकर जोड़ना । दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना ।

हंडियारा गोला—संज्ञा पुं० [हिं० डडा + गोला] दोहरे सिरे का जंबा (गोप का) गोला । खठिया ।—(जश०) ।

हंडीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी] सीधी लकीर ।

हंडूर हंडूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डंडूर', 'डंडूल' ।

हंडोरना—क्रि० सं० [अनु०] डूँकना । हिलोरकर डूँकना । चलत पलटकर खोजना । उ०—मयके जब हम दरस पावें देखि लाख करोर । हरि सो हीरा खोई के हम रह्यो समुंद डंडोर ।—सूर (शब्द०) ।

हंडाना^१—क्रि० सं० [देश०] बगवाना । वाग दिखाना । उ०—करहुव कूडइ मनि थकइ पैन राखीयज जाण । ऊकरहो डोका भुगइ भवस डंडायज प्राण ।—डोला०, पृ० ३३६ ।

हंडा—संज्ञा पुं० [देश०] या हिं० बाँव] दीव । मोका । पुक्ति । जैसे, कोई डंड बैठ जाय तो काम होते क्या देर ।

हंडरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ अकड़ जाते हैं और उनमें दर्द होता है । गठिया । उ०—प्रहंकार अति दुख डंडरुआ । दम कपट मद मान नहरुआ ।—तुलसी (शब्द०) ।

डंकरना साख—संज्ञा पुं० [सं० डमरू (= वाद्य) + हि० सालना]
पातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये डमरू के
समान एक प्रकार का जोड़ ।

विशेष—इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा ओर दूसरी ओर
से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े में उसी काट की नाप से
गड़ड़ा करते हैं और उस कटे हुए अण्ड को उसी गड़ड़े में बैठा
देते हैं । यह जोड़ बहुत छद्म होता है और खींचने से नहीं
उखलता ।

डंकरना—संज्ञा पुं० [सं० डमरू] दे० 'डमरू' । उ०—चँवर घट भी
डंकरू हाया । गौरा पारवती धनि साया ।—जायसी ग०,
पृ० १० ।

डंवाडोल—[हि० डोंव डोंव + डोलना] घस्पर । चंचल । विचलित ।
पबराया हुआ । जैसे, चित्त डंवाडोल होना । उ०—पावक
पवन पानी भानु हिमवान जम काख भोकपाल मेरे डर
डंवाडोल हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—होना ।

डंसना—क्रि० सं० [सं० दशन, प्रा० दसण] दे० 'डसना' ।

ड—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि । शब्द । २. नगाड़ा । ३. बड़वाग्नि ।
४. मय । ५. शिव (को०) ।

डरझा—संज्ञा पुं० [हि० डोल] दे० 'डोल' ।

डऊँ—क्रि० [हि० डोल] डोल डोलवाला । वयस्क । बड़ा । जैसे,—
इतने बड़े डऊँ हुए, प्रकल नहीं आई ।

डक—संज्ञा पुं० [सं० डोंक] १. एक प्रकार का पतला सफेद टाट
(कनवास) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाते हैं । २.
एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

डक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बंदरगाह या नदी के किनारे एक
पिरा हुआ स्थान, जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका
फाटक पानी में बना होता है । २. मवालत में वह स्थान जहाँ
अभिमुक्त सबेरे किए जाते हैं । कटपरा ।

डकई—संज्ञा पुं० [हि० डाका + इत (प्रत्य०)] दे० 'डकैत' ।

डकई—संज्ञा पुं० [हि० डाका (= एक नगर)] केले की एक जाति जो
गारा में होती है ।

डकना—क्रि० सं० [हि०] 'डकना' । लापना । उ०—कोउक
तरनि गुनमय सरीर तन सहित चली डकि । मात पिता
पति अपु रहे मुकि न रहीं डकि ।—नव प्र०, पृ० २६ ।

डकरना—क्रि० प्र० [हि० डकार] १. दे० 'डकारना' । २. दे०
'डकराना' ।

डकरा—संज्ञा पुं० [देश०] कासी मिट्टी जो ताल की बँदिया में
पानी मूँछ जाने पर निकलती है और जिसमें दरार फटे
होते हैं ।

डकराना—क्रि० प्र० [प्रनु०] बैल या भैंस का बोसना ।

डकबाहरी—संज्ञा पुं० [हि० डाक] डाक का अपराधी । डाकिया ।

डकार—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. पेट की वायु का एकबारगी ऊपर

की ओर छूटकर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का
पारोरिक व्यापार । मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार ।

क्रि० प्र०—माना ।—लेना ।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की प्रेरणा से
भाती है ।

मुहा०—डकार न लेना = (१) किसी का धन या कोई वस्तु
उड़ाकर पता न देना । छुपचाप हजम कर जाना । (२) कोई
काम करके उसका पता न देना ।

२. बाघ सिंह आदि की गरज । दहाड़ । गुराहट ।

क्रि० प्र०—लेना ।

डकारना—क्रि० प्र० [हि० डकार + ना (प्रत्य०)] १. पेट की
वायु को मुँह से निकालना । डकार लेना । २. किसी का
माल उड़ाकर ले लेना । किसी की वस्तु छुपचाप मार लेना ।
हजम करना । पचा जाना । जैसे,—वह सब माल डकार
जायगा ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बाघ सिंह आदि का गरजना । दहाड़ना ।

डकूरा—संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु । बबडर ।
चक्रवात । बगूला ।

डकैत—संज्ञा पुं० [हि० डाका + ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला ।
जबरदस्ती माल छीननेवाला । लुटेरा ।

डकैती—संज्ञा स्त्री० [हि० डकैत] डकैत का काम । डाका मारने का
काम । जबरदस्ती माल छीनने का काम । लूटमार । छापा ।

डकौत—संज्ञा पुं० [देश०] भड्डर । भड्डरी । सामुद्रिक । ज्योतिष
आदि का ढोंग रचनेवाला ।

विशेष—इनकी एक पुष्प जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती
है, पर नीच समझी जाती है ।

डकक—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिन' । उ०—सीत
सुष्टे तुरी डकक नह करी ।—पृ० रा०, २४ । २११ ।

डककरना—क्रि० प्र० [प्रनु०] डककरना । ध्वनि करना । शब्द
करना । उ०—बुभुक्षा बहू डाकिनी डककरतो ।—कीर्ति०,
पृ० १०६ ।

डककारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल वीणा (को०) ।

डखना—संज्ञा पुं० [प्रनु०] पखना । पख ।

डग—संज्ञा पुं० [हि० डकना या सं० दक्ष] १. चलने में एक स्थान
से पैर उठाकर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति ।
कदम । उ०—मुरि मुरि चितवति नवगली । डग न परत
ब्रजनाथ साय भिनु, विरह भ्यया मचली ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) उर्ध्व कोठ दूर चलन को करे । क्रम क्रम करि डग डग
पग भरे ।—सूर०, ३१३ ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—डग देना = चलने में आगे की ओर पैर रखना । उ०—
पुर से निकली रघुबीर बधु बरि भीर दियो मग उर्ध्व डग दे ।
—तुलसी (शब्द०) । डग भरना = चलने में आगे पैर रखना ।

कदम बढ़ाना । उ०—क्यों नहीं बेडिगे भरें डग हुम । पाँव क्यों जाय डगमगा मेरा ।—पुनर्वे०, पृ० १० । डग मारना = कदम रखना । लवे पैर बढ़ाना । उ०—मारि डगे जब फिरि चली सुंदर वेनि दुरे सब भग । मनहुँ चद के बदन सुधा को लड़ि उडि सगत भुगोंग ।—सूर (शब्द०) ।

२. खसने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी । उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े । पेंड ।

डगकु(५)—क्रि० वि० [हि० डग + एक] एक दो पग । एकाध कदम । उ०—डगकु डगति सी चलि, ठठुकि चितई, चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी, वडै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

डगचाली—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] डाकिनी । उ०—मृतप्रेत डगचाली मातुँ करत बत ।—नट०, पृ० १७० ।

डगडगाना—क्रि० प्र० [प्रतु०] हिलना । इधर से उधर हिलना । काँपना ।

मुहा०—डगडगाकर पानी पीना तेजी के साथ = एक दम में बहुत सा पानी पीना ।

डगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] मार्ग । रास्ता । राह । उ०—बिगड़ी बनती, बन जाय सही । डगड़ी गङ्गती, गङ्ग जाय मही ।—प्रचंता, पृ० ६ ।

डगडोलना—क्रि० प्र० [हि० डग + डोलना] डगमगाना । हिलना । काँपना । उ०—मीपम द्रोण करण सुने कोउ मुखहू न बोले । ए पाठव क्यों काड़िए घरना डगडोले ।—सूर (शब्द०) ।

डगडोर—वि० [हि० डग + डोलना] डौंवाडोल । हिलनेवाला । चलायमान । उ०—श्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी मोर । जैसे घट पूरन न डोले प्रथमरो डगडोर ।—सूर (शब्द०) ।

डगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिपल में चार माथाओं का एक गण ।

डगना(५)—क्रि० प्र० [सं० दक्ष (= चलना), हि० डिगना या डग + ना (प्रत्य०)] १. हिलना । टसकना । खसकना । जगह छोड़ना । उ०—डगइन सभु सरासन केसे । कामी बचन सती मन जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । २. झुकना । झुज करना । उ०—तुरंग नचावहि कुँवर घर शक्ति मृदग निसान । नागर नट चितवहि चकित, डगहि न ताल बंधान ।—तुलसी (शब्द०) । ३. डगमगाना । खड़खड़ाना । उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि । लिए जाति चितु चोरटी वडै गोरटी नारि ।—बिहारी २०, दो० १३६ ।

मुहा०—डग मारना = हिलना । झटका खाना । जैसे,—ठठाने पर झालमारी डग मारती है ।

डगवेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डग + वेड़ी] पैर की वेड़ी । उ०—बैथ्यो ठान में घाप पाय, डगवेड़ी पाग्यो ।—प्रब० प्र०, पृ० १६ ।

डगमग—वि० [हि० डग + मग] हिलता हुआ । डगमगाता या

खड़खड़ाता हुआ । उ०—बिहुरत बिबिध बालक सग । डगनि डगमग पगनि डोलत, घूरि, घूसर भंग ।—सूर०, १०।१८६ । २. विचलित । निपचयहीन ।

डगमगाना(५)—क्रि० प्र० [हि० डगमग] ३० 'डगमगाना' ।

डगमगाना—क्रि० प्र० [हि० डग + मग] १. इधर उधर हिलना डोलना । कभी इस बल कभी उस बल झुकना । स्थिर न रहना । परपराना । खड़खड़ाना । जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना । २. विचलित होना । किसी बात पर धक्का न रहना ।

डगमगाना^२—क्रि० प्र० १. हिलाना डोलाना । कपित करना । २. विचलित करना । धक्का न रहने देना ।

डगमगी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० डगमग] डावाँडोल वृत्ति । विचलन । अस्थिरता । उ०—छूटि डगमगी नाहि सत को बचन न माने ।—पलटू०, भा० १, पृ० ३ ।

डगर—संज्ञा स्त्री० [हि० डग] मार्ग । रास्ता । पथ । पेंडा । उ०—नगरक धेनु डगर के संजर । कुमुदिनि वसु मकरन्या ।—विद्यापति, पृ० ३३२ ।

मुहा०—डगर बताना = (१) रास्ता बताना । (२) उपाम बताना । उपदेश देना । डगर पाना = निकास पाना । स्थान पाना । उ०—प्रथमहि गए डगर तिन पायो । पाछे के लोगनि पछितायो ।—सूर०, १०।६१६ ।

डगरना(५)—क्रि० प्र० [हि० डगर] १. चलना । रास्ता लेना । घीरे घीरे चलना । उ०—ताते हतें डगरी द्विजदेव न जानती कान्हू भजों मग सूटें ।—द्विजदेव (शब्द०) । २. लुढ़कना । गिरते पड़ते आगे बढ़ना । जे फूलन तुलसी सुखिन प्रतुल तीं प्रति ही खुलतीं ते डगरीं ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८६ ।

डगरबगर—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर + प्रतु० बगर] राह, कुराह । उ०—जगर मगर महि, डगर बगर नहि, रबि ससि, निसु दिन, भाव नहीं ।—केशव प्रमी०, पृ० १० ।

डगरा^१—संज्ञा पुं० [हि० डगर] रास्ता । मार्ग । उ०—गुरु कछो राम नाम नीको मोहि सागत राम राज डगरो सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

डगरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की पतली फट्टियों का बना हुआ छिछला बसा । डलरा । छाबड़ा ।

डगराना—क्रि० प्र० [हि० डगरना] १. रास्ते पर से पाना । ले चलना । चलाना । २. हाँकना । ३. लुढ़काना ।

डगरिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' ।

डगरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] ३० 'डगर' । उ०—(क) जमुन भरन जल हुम गई तहें रोकत डगरी ।—सूर०, १०।१४२० । (ख) तू चला चले पकड़ो डगरी ।—माराधना, पृ० १८ ।

डगा^३—संज्ञा पुं० [हि० डागा] डागा । दुग्धी बजाने की लकड़ी । नगाड़ा बजाने की लकड़ी । चोब । उ०—हुँ सब कबितरहू कर पछलगा । किछु कहि बसा तबल देइ डगा ।—जायसी (शब्द०) ।

डगाना—क्रि० प्र० [हि० डग] ३० 'डिगाना' ।

ढगाता—संज्ञा पुं० [ङि०] टहनी। छोटी बाल। पतली साखा।
उ०—जहाँ नालियाँ मिलकर बनी होती हैं वहाँ बुत्तों की
ढगानों को काटकर वे जमाते हैं और फिर पानी बरस जाने
के बाद बोझ बोधे हैं।—बुध्द० धर्मि० प्र० (विभि०),
पृ० ४०।

ढगावना^(१)—क्रि० प्र० [हि० ढिगाना] दे० 'ढिगाना'। उ०—
कवि बोधा मनी धर्मो नेजहु ठे बड़ि छाये न चित ढगावनी
है।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६१८।

ढगावर—संज्ञा पुं० [सं० ठगुं] १. कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक
मांसाहारी पशु।

विशेष—यह पशु रात को चिकार की शोर में निकलता है
और कभी कभी बरती से कुरी, बकरी के बच्चों आदि
को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है; पर
मुख्य भेद दो हैं—बिलीवाला और बारीबावा। यह एशिया
और अफ्रीका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह
बेसने में बड़ा डरावना जान पड़ता है। इसका पिछला
पंख छोटा और घनता भारी होता है। गरदन लंबी और
मोटी होती है, कंधे पर लंबे लंबे बाल होते हैं। इसके दाँत
बहुत पैने और तेज होते हैं। यह जानवर दरपोक भी बड़ा
होता है। यह मुरबे खाकर भी रहता है। इसका कर्त में से
पंखें मुरबे से बाना प्रसिद्ध है।

२. लंबी टाँगों का डुरवा घोड़ा।

ढगा—संज्ञा पुं० [हि० ढग] लंबी टाँगों का डुरवा घोड़ा।

ढच^१—संज्ञा पुं० [सं०] हाथक सबका। हालेंड का निवासी।

ढट—संज्ञा पुं० [सं०] निगाता।

ढटना^१—क्रि० प्र० [सं० स्थाट, हि० ठाट या ठाड़] १. जमकर
घड़ा होना। मटना। ठहरा रहना। जैसे,—वे संधेरे से मेले
में ढट हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।—जा ढटना।

मुहा०—ढटा रहता = सामना करने या कठिनाई भेजने के लिये
घड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। ढटकर जाना =
गुब गेट भर जाना।

२. मिटना। लग जाना। लु जाना। ३. मच्छा लगना। फटना।

ढटना^(२)—क्रि० प्र० [सं० रट्टि, हि० रोट] ताकना। देखना।
उ०—(क) उर मानिक की उरबली बटव पटव टग दाग।
अनरुध बाहर रुड़ि मनो पिय हिय को अनुदाग। (ख)
नरुडि मरुडि सटकत पमव रटव मुकुट की धाई। चटक
नरुडि नट निमि मयो, पटक भटक बन मरिह।—बिहारी
(सं०)।

ढटाना^१—संज्ञा पुं० [हि० ढटाना] १. ढटाने का काम। २. ढटाने
की मरदूरी।

ढटाना—क्रि० प्र० [हि० ढटना] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु
से लपाना। घटाना। मिटाना। २. एक वस्तु को दूसरी
वस्तु से लगाकर माग को मोर डेनना। जोर से मिटाना।
३. बमाना। धक्का करना।

ढट्टा—संज्ञा पुं० [हि० ढाटना] १. हुक्के का नैचा। टेक्सा। २.
ठाट। काग। गट्टा। ३. बड़ी मेख। ४. छोट छापने का
ठप्पा। साँपा।

ढडकना^१—क्रि० प्र० [मनु०] जोर से बजना या शब्द उत्पन्न
होना। उ०—ढडकत डोहें चहें फेर सद्।—प० रासी,
पृ० ८२।

ढडकना^२—क्रि० प्र० [मनु०] जोर से बजाना।

ढडह्रा^१—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्डुम] एक सर्प। बेडहा।

ढडही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

ढड़ियाना^१—क्रि० प्र० [हि० डौडा] बनाना। ढाँड़े के समान करना।

ढड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०, या हि० डौड़ी] पक्ति। उ०—मन में
भावे तो दो ढड़ोच लिख भेजना।—श्यामा०, पृ० ६२।

ढड्ड—वि० [सं० दग्ध, प्रा० दड्ड, डड्ड] दग्ध। जला हुआ। तप्त।
संतप्त (वि०)।

ढड्डार^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाल, प्रा० डण्डाल] दे० 'डण्डाल'।
उ०—डिड न रहे डड्डार बाघ बनचर बन बुल्लिय।—सूदन
(शब्द०)।

ढड्डार^२—वि० [सं० दण्ड, हि० डाड़, डाड़ी] बड़ी डाड़ी रखनेवाला।
विशेष—मध्य काल में और आज भी बड़ी डाड़ी रखना वीरों का
वेश समझा जाता है।

ढड्डाली^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाल, प्रा० डण्डाल] वाराह। शूकर।
उ०—ढुडत डडाल डडाल मिय भुङ्कारन बहु भुङ्करहि।—
पृ० रा०, ६। १०२। पृ० (उ०), पृ० १२२।

ढड्डार^३—वि० [सं० दड्ड, प्रा० डिड; हि० दिड] डड्ड हवय का।
साहसी।

ढड्डन^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड, या सं० दहन] जलन।
ताप। उ०—भक्ति लता केवल लगी दिन दिन होत पाप को
ढड्डन।—देवस्वामी (शब्द०)।

ढड्डना^(१)—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड + ना (प्रत्य०)]
जलना। सुलगना। बलना। उ०—डड्डे मनु रूप लमें इह रूप।
गड़े जिमि कैयक हैं महि भूप।—सूदन (शब्द०)। २.
जलना। ताप से पीड़ा होना। जलन होना। उ०—भोचवव
पय तातो जब लाग्यो रोवत जीभि डडे।—सूर०, १०। १७४।

ढड्डार^१—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाल] दे० 'डण्डार'।

ढड्डार^२—वि० [हि० डाड़] १. डाड़वाला। जिसे डाड़ हो।
२. डाड़ोवाला।

ढड्डारा—वि० [हि० डाड़] १. डाड़वाला। वह जिसके डाड़ें हो।
दाँतवाला। २. यह जिसे डाड़ो हो।

ढड्डाल^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाल, प्रा० डण्डाल] दे० 'डण्डार'। उ०—
सोमस सुतन आबिट डर इम डडाल उस सट पसहि।—पृ०
रा०, ६। १०१। पृ० रा० (उ०), पृ० १२३।

ढड़ियल—वि० [हि० डाड़ी] डाड़ोवाला। जिसके बड़ी डाड़ी हो।

ढड्डुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० द्य] बरें, गेहूँ, जने का तेल जो मोठ में
मजदूरी के सिवे लगाया जाता है।

बद्धना—क्रि० सं० [सं० दग्ध, प्रा० बद्ध + हि० ना (प्रत्य०)] जलाना ।
बद्धोरा^७—वि० [हि० बाढ़ी] बाढ़ीवाला । उ०—सित प्रसित
बद्धोरे दीह तन सजि सनेह रोसन सने ।—सूदन (शब्द०) ।

बपट^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० दपं] डीट । फिटकी । घुसकी ।

बपट^२—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० रपट] दीड़ । घोड़े की तेज चाल ।
सरपट चाल ।

बपटना^१—क्रि० सं० [हि० बपट + ना (प्रत्य०)] डीटना । क्रोध में
जोर से बोलना । रुड़े स्वर से बोलना ।

बपटना^२—क्रि० प्र० [हि० रपटना] तेज दौड़ना । वेग से जाना ।

बपोरसंख—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० बपोर (= बड़ा) + सं० संख, प्रा०
संख] १. जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके । डींग मारने-
वाला ।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है । एक
ब्राह्मण ने दरिद्रतासे दुखी हो समुद्र की प्राराधना की ।
समुद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक बहुत छोटा सा सख दिया ।
और कहा कि यह ५००) रोज तुम्हें दिया करेगा । जब उस
ब्राह्मण ने उस संख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब
एक दिन अपने गुरु जी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से
उनका उत्सव किया । गुरु जी ने उस संख का हाल जान
लिया और वे धीरे से उसे उठा ले गए । ब्राह्मण फिर दरिद्र
हो गया और समुद्र के पास गया । समुद्र ने सब हाल सुनकर
एक बहुत बड़ा सा सख दिया और कहा कि 'इससे भी गुरु जी
के सामने रुपया माँगना, यह खूब बड़ बड़कर वाटे करेगा,
पर देगा कुछ नहीं । जब गुरु जी इसे माँगें तो दे देना और
पहलेवाला छोटा सख माँग लेना' । ब्राह्मण ने ऐसा ही किया ।
जब ब्राह्मण ने गुरु जी के सामने उस संख से ५००) माँगा
तब उसने कहा—'५००) भगा माँगते हो, दस बीस पचास
हजार माँगो' । गुरु जी को यह सुनकर लालच हुआ और उन्होंने
वह सख लेकर छोटा सख ब्राह्मण को लौटा दिया । गुरु जी
एक दिन उस बड़े सख से माँगने बैठे । पर वह उसी प्रकार
और माँगने के लिये कहता जाता, पर देता कुछ नहीं था ।
जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए, तब उस बड़े सख ने कहा—'गता
सा शक्तिनी, विप्र ! या ते कामान् प्रपूरयेत् । मह बपोरश-
खास्यो वदामि न ददामि ते' ।

२ बड़े खिलडोल का पर मूल । देखने में सयाना पर चञ्चा की
सी समझवाला ।

बप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा । बहुत मोटा ।

बफ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० बफ] १. चमड़ा मड़ा हुआ एक प्रकार का
बड़ा बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है । उफला । उ०—
(क) बिन डफ ताल मृदग बजावत गात भरत परस्पर छिन
छिन होरी ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ख) कहे पदमाकर
गालन के डफ बाजि उठे गलगात गाढ़े ।—पद्माकर
(शब्द०) । २. लावनीबाजों का बाजा । चंग ।

विशेष—यह लकड़ी के गोले बड़े मेंडरे पर चमड़ा मढ़कर बनाया
जाता है । होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं ।

डफनी—सञ्ज्ञा स्त्री [प्र० दफ] दे० 'डफनी' । उ०—मक्ति मक्ति मृदग
डफनी डफ दुधुभि डोल सु पीट बजाया है ।—पद्माकर प्र०,
पृ० २६७ ।

डफर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ड्रापर] जहाज के एक तरफ का पाल ।

डफला—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दफ] डफ नाम का बाजा ।

डफली—सञ्ज्ञा स्त्री [प्र० दफ] छोटा डफ । छंजरी ।

मुहा०—मपनी मपनी डफली मपना शब्दा राग = जितने लोग
उतनी राय ।

डफाण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भन, दम्भना, फा० डनणा, कुमा०
डफाण, पु० हि० दभान] पाखंड । झाड़वर । दंभ । उ०—
काहे रे नर करहु डफाण, अतिकालि घर गोर मसाण ।—
दादू, पृ० ४८४ ।

डफारी—सञ्ज्ञा स्त्री [अनु०] चिग्याड । जोर से रोने या चिल्ला
उठने का शब्द । उ०—तखन रतनसेन प्रति पबरा । छौड़ि
डफार पाँय ले परा ।—जायसी (शब्द०) ।

डफारना^१—क्रि० प्र० [अनु०] चिल्लाना । दहाड़ मारना । जोर
से रोना या चिल्लाना । उ०—जाय विहगम समुद्र डफारा ।
जरे मच्छ, पानी भा लारा ।—जायसी (शब्द०) ।

डफालची—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डफला] दे० 'डफाली' ।

डफाली—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डफला] डफला बजानेवाला । एक
मुसलमान जाति ।

विशेष—यह जाति डफला बजाती तथा डफ, तासे ढोल प्रादि
चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है । प्रवध में डफाली
डफला बजाकर गाजी मियाँ के गीत गाते और मौख माँगते
फिरते हैं ।

डफोरना^१—क्रि० प्र० [अनु०] हाँक देना । चिल्लाना । ललकारना ।
गरजना । उ०—वचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि
तुपसी त्रिकूट चढि कहत डफोरि के ।—तुलसी (शब्द०) ।

डफोला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डफोर] चक्कास । निरयंक बात । उ०—
मोटे मोर कहावते, करते बहुत डफोल ।—मुद्गर प्र०, भा०
१, पृ० ३१७ ।

डफ्फ^७—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दफ, हि० डफ] दे० 'डफ' । उ०—बीती
जात बहार सबत लगने पर प्राया । लोभे डफ्फ बजाय सुमग
मानुष तनया या ।—पलटू, भा० १, पृ० २० ।

डब^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दब] तरल । दैठे, घाँघों का डब डब होना ।
विशेष—इस शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता । डबक, डफकना,
डबकोंही प्रादि प्रचलित शब्दों में इसका रूप मिलता है ।

डब^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डबरा] १. जेब । पेंता ।

मुहा०—डब पकड़कर कुछ कराना = गरदन पकड़कर कुछ काम
कराना । गला बचाकर काम कराना । डैठे,—रुपया देगा कैते
नहीं, डब पकड़कर लूँगा । डब में भाना = वस में होना ।
काबू में भाना ।

२ कुप्पा बनाने का चमड़ा ।

दबटना^१—क्रि० प्र० [हि० डब] किसी पानु की चट्ट को कठोरी के प्राकार का गठन करना ।

दबटना^२—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. पीड़ा करना । दबटना । दर्द देना । पीड़ा मारना । २. लंगड़ाकर चलना ।

दबटना^३—क्रि० प्र० [सं० द्रव या द्रवक] तरलित होना । प्रचुर होना । (नेत्रों में) पानी भर माना ।

दबकीही^१—क्रि० प्र० [प्रनु० या हि० दबटना] [वि० क्री० डबकीही] पानी मरा हुआ । दबटताया हुआ । प्रचुरवृत्ति । गोला । उ०—बिलसो दबकीहूँ चलन, विय सखि गमन बराय । निय गह्वर मायो गरी राखी गरे लगाम ।—बिहारी (चन्द०) ।

दबटवाना—क्रि० प्र० [प्रनु०, या हि० उब उब] पानी से पीछे भर माना । पानी से (पीछों का) गोला होना । प्रचुरवृत्ति होना । प्रेते, पीछे दबटवाना । उ०—(क) जब जब सुरति करत सब तब उबटवाइ दोउ सोचन उमनि भरत ।—सूर (चन्द०) । (ख) उ०—दबटवाय पीछन में पानी । बुड़े तन श्री यही निधानी ।—सहजो, पु० ३० ।

संयो० क्रि०—माना ।—जाना ।

बिरोप—इस शब्द का प्रयोग 'प्राति' के साथ तो होता ही है, 'पानी' के साथ भी होता है ।

सबरी^१—संज्ञा पुं० [सं० डबर] घाबर । उ०—डरायी साजे डबर, यह हम कीध पवाण । करवा सुरा सहायकज प्रसुरा सु पाराण ।—रघु० क०, पु० १७३ ।

उपरा^१—संज्ञा पुं० [सं० दत्र (=ममुद्र या भोजन)] [श्री० भत्वा० डबरी] १. डिल्ला लबा गड़वा जिसमें पानी जमा रहे । कुड़ा । होठ । २. यह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी जमा हो । ३. खंड का कोना जो जोड़ने में मूट जाता है । ४. कठोरा । पान ।

डबरी^१—संज्ञा श्री० [हि० डबरा] छोटा गड़वा या ताल ।

डबल^१—वि० [प्र०] दोहरा । दुना । दोगुना । उ०—डबल जीन धोर गर्मी में भी फनालीन ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पु० २४२ ।

डबल^२—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य ?] पैसा । मद्रित्री राग्य का पैसा ।

डबलरोटी^१—संज्ञा श्री० [प्र० डबल + हि० रोटी] पाचरोटी ।

डबलबिक^१—वि० [प्र०] दोहरी बिकी ।

डबला^१—संज्ञा पुं० [सं०, तुल० हि० डबरा] मिट्टी का पुरवा । बुलुङ्ग । तुलुङ्ग ।

डबा^१—संज्ञा पुं० [हि० डबा] १० 'डबा', 'डिबा' । १.

डबारी^१—संज्ञा श्री० [हि० डबरा] गड़ही । उ०—को है रूप, पगारम को है, को है सतित डबारी ।—गुनाम०, पु० ४२ ।

डबिया^१—संज्ञा श्री० [हि० डबा] छोटा डिबा । डिबिया ।

डबिरना^१—क्रि० प्र० [दे०] घेठ में से नदों को निकाल लाना । (नदियों की सोपी) ।

डकी^१—संज्ञा श्री० [हि० डबा] २० 'डकी', 'डिडी' । उ०—

कचन की ऋष रूप डकीन में सोल घरी मनो नील नगी है ।—सुदरी सर्वस्व (चन्द०) ।

डबुआ^१—संज्ञा पुं० [दे०] २० 'डबुनिया' । उ०—मिट्टी का कुल्हड़ या डबुआ बुरा नहीं माना होता ।—प्राधुनिक०, पु० १६५ ।

डबुलिया^१—संज्ञा श्री० [दे०] कुल्हड़ा । छोटा पुरवा ।

डबोना^१—क्रि० प्र० [प्रनु० उब डब, या सं० द्रवण] १. डराना । गोता देना । बोरना । मग्न करना । २. बिगाड़ना । नष्ट करना । चोपट करना ।

मुहा०—नाम डबोना = नाम में धब्बा लगाना । स्वाति नष्ट करना । वस डोना = वस की मर्यादा नष्ट करना । कुल में चलक लगाना । जुटिया डबोना = महस्व नष्ट करना । प्रतिष्ठा खोना ।

डब्वल^१—संज्ञा पुं० [दे०] २० 'डबल' ।

डब्बा^१—संज्ञा पुं० [तैलग । या सं० डिम्ब (=गोल)] १. दबकनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोम या भुरभुरी चीजें रखी जाती हैं । संप्रट । २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो चलन हो सकती हो ।

डब्बू^१—संज्ञा पुं० [हि० डबा तुल० देशी डोम, गुज० डोपो] डोड़ी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है ।

डभक^१—वि० [सं० स्तवक, या देश०] ताजा । पेड या पीछे से तत्काल तोड़ा हुआ । उ०—एक पीला सा डभक प्रमद उठने हाथ बढ़ाकर उठा लिया ।—नई०, पु० १२६ ।

डभकना^१—क्रि० प्र० [प्रनु० डभ डभ या सं० द्रव] १. पानी में डूबना, उतराना । घुमकी लेना । २. (पीछों का) डबटवाना । (नेत्रों में) जल भर माना । उ०—बदन पियर जल डभकीहि नेना । परगट दुप्रो पैम के येना ।—जायसी (चन्द०) ।

डभका^१—संज्ञा पुं० [हि० डभकना] कुएँ से ताजा निकाला हुआ (पानी) । ताजा । † २. प्रभु । नेत्रजल ।

डभका^२—संज्ञा पुं० [दे०] १. सुना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो । कोहरा ।

डभकौरी^१—संज्ञा श्री० [हि० डभकना] उरव की पीठी की बरी जो बिना तले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है । डभकी । उ०—पानोरा राहता पकौरी । डभकौरी मुंगछी सुठि सौरी ।—सूर (चन्द०) ।

डभकौही^१—वि० [हि०] २० 'डबकीही' ।

डभ^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वलुण्डकर जाति जिसे प्रह्लेभवं पुराण ने सेठ और चाडाली से उद्गन्त माना है । डोम ।

डभकना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] ध्वनि या शब्द करना (डोम प्रादि का) ।

डभकना^२—क्रि० प्र० [हि० दमकना] धमकना । जोतित होना । उ०—धोवग चित्तमण वलुक, वे डभकना बरबार ।—बकी० प्र०, भा० २, पु० ७५ ।

डभडम^१—संज्ञा श्री० [प्रनु०] डमक बजाने से होनेवाली धावाज । उ०—एक नाद का यही प्रभ हो, डम डम डमक बजे फिर गांत ।—धीला, पु० ४८ ।

डमरु—सङ्घा पु० [सं०] १ भय से पलायन । भगेड । भगदड । २ हलचल । उपद्रव । ३ गाँवों के साधारण सघर्ष (झो०) ।

डमरु—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'डमरु' । उ०—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर हँसत डमरु बजाइ ।—सूर०, १०।१६० ।

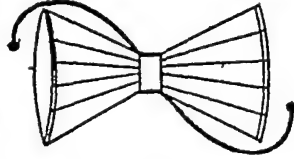
डमरुघ्ना—सङ्घा पु० [सं० डमरु] वात का एक रोग जिससे जोड़ों में दर्द होता है । गठिया ।

यौ०—डमरुघ्ना साल = दे० 'डँवरुघ्ना साल' ।

डमरुका—सङ्घा झी० [सं०] हाथों की एक तांत्रिक मुद्रा [झी०] ।

डमरु—सङ्घा पु० [सं० डमरु] १. एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है ।

विशेष—इस बाज के दोनों सिरों पर चमड़ा मड़ा होता है । इसके बीच में दो तरफ बराबर बड़ी हुई डोरी बँधी होती है जिसके दोनों छोरों पर एक एक कीड़ी या गोली बँधी होती है । बीच में पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कीड़ियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है । यह बाजा शिव जी को बहुत प्रिय है । बबर नचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं ।



२ डमरु के आकार की कोई वस्तु । ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गावदुम) होती गई हो ।

यौ०—डमरुमध्य ।

३. एक प्रकार का दहक वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में ३२ लघु बण होते हैं । जैसे,—रहत रजत नग नगर न गज तट गज खल कलगर गरल तरल घर । भिखारीदास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है ।

डमरुमध्य—सङ्घा पु० [सं० डमरु + मध्य] धरती का वह तग पतला भाग जो दो बड़े बड़े भूखंडों को मिलाता हो ।

यौ०—जलडमरुमध्य = जल का वह तग पतला भाग जो जल के दो बड़े भागों को मिलाता हो ।

डमरुयंत्र—सङ्घा पु० [सं० डमरु + यंत्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें प्रकं खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर, नोसाबर घादि उड़ाए जाते हैं ।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिलाकर और कपडमिट्टी से जोड़कर बनाया जाता है । जिस वस्तु का प्रकं खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (यर्थात् दोनों जुड़े घड़ों को) इस प्रकार भाड़ा रखते हैं कि एक घड़ा घाँव पर रहता है और दूसरा ठोड़ी जगह पर । घाँव लगने से वस्तु भिसे हुए पानी की भाँप उड़कर दूसरे घड़े में जाकर टपकती है । यही टपका हुआ जल उस वस्तु का अर्क होता है ।

सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को खड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं । नीचे के घड़े के पेंदे में घाँव लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा भादि रखकर ठंडा रखते हैं । घाँव लगने पर सिंगरफ से पारा उड़कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है ।

डयन—सङ्घा पु० [सं०] १ उड़ान । उड़ने की क्रिया । २ पालकी (झो०) ।

डर—सङ्घा पु० [सं० डर] १ दु खपूर्ण मनोवेग जो किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट वा हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है । भय । भीति । खोफ । घास । उ०—नाथ लखनु पुरु देखन चहुँ । प्रभु संकोच डर प्रकट न कहूँ ।—मानस, १।२१८ ।

क्रि० प्र०—लगना ।—खाना । उ०—पेग पेग भुँइ चाँपत भावा । पखिह देखि सबन्हि डर खावा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पु० १६५ ।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण ।

२. अनिष्ट की संभावना का अनुमान । आशंका । जैसे,—हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय ।

डरना—क्रि० प्र० [हि० डर + ना (प्रत्य०)] १. किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से आकुल होना । भयभीत होना । खोफ करना । सशक होना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२ आशंका करना । प्रवेश करना ।

डरपक—वि० [हि० डार + सं० पक्क] डार में ही पका हुआ (फल) । उ०—किधौं सु डरपक आम में मनि हूँ मिल्यो मल्लिक । किधो तनक हूँ तम रख्यो कै ठोड़ी को विद ।—पद्माकर ग्रं०, पु० २०० ।

डरपना—क्रि० प्र० [हि० डर] डरना । भयभीत होना । उ०—(क) इद्रहु को कछु दूपन नाही । राजहेतु डरपत मन माही ।—सूर (शब्द०) । (ख) एकहि डर डरपत मन मोरा । प्रभु मोहि देव साप प्रति घोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

डरपाना—क्रि० सं० [हि० डरपना] डराना । भयभीत करना ।

डरपुकना—वि० [हि० डरपुकना] दे० 'डरपोक' । उ०—सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोले/बात प्रकासी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पु० ३३३ ।

डरपोक—वि० [हि० डरना + पोकना] बहुत डरनेवाला । भीरु । कायर ।

डरपोकना—वि० [हि० डरना + पोकना] दे० 'डरपोक' ।

डरवाना—क्रि० सं० [हि० डर] दे० 'डराना' ।

डरवाना—क्रि० सं० [हि० डालना] दे० 'डलवाना' ।

डरा—सङ्घा पु० [हि० डला] [झी० डरी] डोका । डला । टुकड़ा ।

डराकू—वि० [हि० डरना] १ बहुत डरनेवाला । भीरु । २ डराने या भय उत्पन्न करनेवाला ।

डराडरि—सङ्घा झी० [हि० डर] दे० 'डराडरी' । उ०—जब मानि

धरत कटक काम को तब जिय होत डराडरि ।—स्वामी
हरिदास (शब्द०) ।

डराहरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डर] डर । भय । घ्राणका ।

डरान—वि० [हि० डरावना] भयदायक । भयावना । भयकर । उ०—
उहकत डक्क डारन डरान । गहकत गिद्धि सिद्धिनिय थाप ।—
पृ० रा०, १। ६६१ ।

डराना—क्रि० सं० [हि० डरना] डर विस्ताना । भयभीत करना ।
खोफ दिलाना ।

संयो० क्रि०—वेना

डरानी—वि० [हि० डरना] १ खोफ पैदा करनेवाली । भयावनी ।
२ डरी हुई । भयभीत । उ०—बोले यों डरानी भावसिद्ध
जु के डर में ।—मति० प्र०, पृ० ४१८ ।

डरापना—क्रि० सं० [हि० डर] किसी को डरा वेना । भयभीत
करना ।

डरारा०—वि० [हि० डरा + आर (प्रत्य०)] (प्रांति) जिसमें
डोरे या हथकी रत्ताम रेखा हो । मस्त (प्रांति) । उ०—पीन
मधुर पंकज मृग हारै । निरखत भोचन जुगम डरारै ।—
माधवानन्द०, पृ० १६० ।

डरावना—वि० [हि० डर + णावना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० डरावनी]
जिससे डर लगे । जिससे भय उत्पन्न हो । भयानक । भयकर ।
उ०—कारी घटा डरावनी साई । पापिनि सापिनि सी परि
साई ।—नन्द० प्र०, पृ० १६१ ।

डरावा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डराना] १. वह लकड़ी जो फलदार पेड़ों में
चिड़िया उड़ाने के लिये बँधी रहती है । इसमें एक लकी रस्मी
बँधी होती है जिसे खींचने से खट खट शब्द होता है । खट-
खटा । घड़का । २ डराने की दृष्टि से कही बात ।

डराहुका—वि० [हि० डरना] डरपोक ।

डरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डार + रिया (प्रत्य०)] दे० 'डार' या
'डाल' । उ०—भबके राखि लेहु भगवान । हम अनाथ बैठे
द्रुम डरिया पारधि साधे वान ।—सूर (शब्द०) ।

डरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डलिया] दे० 'डलिया' । उ०—सीसनि धरै
छाक की डरियनि । तफति गुपाल भूष की डरियनि ।—
घनानन्द, पृ० ३१७ ।

डरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डली] दे० 'डली' । उ०—परतीति दै
नीनी अनीति महा, विष दीनी दिखाय मिठास डरी ।—
घनानन्द, पृ० ८१ ।

डरीला—वि० [हि० डार] डारवाला । शाखायुक्त । टहनिका ।
उ०—होवन धचीले सब टूटत डरीले, झूल होत हैं फटीले शेष
फन धमकीले हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

डरीला—वि० [हि० डर + ईला (प्रत्य०)] दे० 'डरेला' ।

डरेरना—क्रि० सं० [हि० डरेरना] दे० 'डरेरना' । उ०—मुला
जोरि के तोर मुखी डरेरे ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

डरैला—वि० [हि० डर] डरावना । भयानक । खोफनाक । उ०—
बिटरन अडा धरत नाद उच्चरत डरैला ।—श्रीधर पाठक
(शब्द०) ।

डला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डला (= डुकड़ा)] डुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = डेर का डेर । बहुत सा ।

डल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. झील । २. काश्मीर की एक
झील । उ०—धनि सागर सस तूल, विमल विस्तृत डल
वूसर ।—काश्मीर०, पृ० १ ।

डलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डला] दे० 'डलिया' ।

डलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दोरा । डला । बाँस आदि की बनी बड़ी
डलिया (को०) ।

डलना—क्रि० प्र० [हि० डालना] डाला जाना । पड़ना । बैठे,
झूला डलना ।

डलरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डलिया] छोटी डलिया । मूँज की बनी
हुई छोटी पिटाड़ी । उ०—नए बसन प्राभूपन सजि डलरी
गुड़िया बे ।—प्रमथन०, भा० १, पृ० २६ ।

डलवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डला] 'डला' ।

डलवाना—क्रि० सं० [हि० डालना का प्रेरक] डालने का काम
कराना । डालने देना ।

डला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० दलपान् डली] १. डुकड़ा ।
ढोका । खट । उ०—रीठ पड़े धारू जली, धर घड डला
उधेड़ ।—रा० क०, पृ० २६० ।

विशेष—साधारणतः इसका प्रयोग नमक, मिर्ची आदि के लिये
प्रधिक होता है । जैसे, नमक का डला, मिर्ची की डली ।
२ लिगेन्द्रिय ।—(वाज०) ।

डला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डलक] [स्त्री० दलपान् डलिया] बाँस, बेंत आदि
की पतली फट्टियों या कमचियों को गाँझकर बनाया हुआ
वरतन । टोकरा । धोरा । उ०—डला भरि ही लाल । कैस के
उठाऊँ । पठवी ग्वात छाक लै आवैं ।—नन्द० प्र०, पृ० ३६० ।

यौ०—डला खुलवाई = बनियों के यहाँ विवाह की एक रीति
जिसमें दुल्हा दुल्हन के यहाँ एक टोकरा लाता है ।

डलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डला] छोटा डला । छोटा टोकरा ।
धोरी । उ०—प्रेम के परवर धरो डलिया में, आदि की भारी
साई । ज्ञान के गजरा डड़ करि राखो गगन में हाट लगाई ।
—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

डली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डला] १. छोटा डुकड़ा । छोटा डेला ।
खट । जैसे, मिर्ची की डली, नमक की डली । २. धुपारी ।

डली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डला] दे० 'डलिया' । उ०—चुने डली में
मुयरे, बड़े बड़े भरे भरे ।—वेला, पृ० १६ ।

डल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डला । दोरा ।

डल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डल्लक] दोरा ।

डवैरुआ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डवैरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डवैरुआ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' ।

डवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डवा] दे० 'डिंबा' । उ०—विष को
डवा है के उदेग को अँवा है, कल पलकी न बाई भयवा है
चक्र वात को ।—घनानन्द, पृ० ८० ।

विविध—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ युग ।

डस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की शराब । २. तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बंधे रहते हैं । जोती । ३. कपड़े की धान का छोर जिसमें ताने और धाने के पूरे तागे नहीं बुने रहते । छीर ।

डसणा—पंजा पुं० [सं० दशन, प्रा० डसण] दाँत । दशन । उ०—हीर डसण बिद्वम प्रघर, मारु भुक्तुटि मयंक ।—डोला०, दू० ४५४ ।

डसन—संज्ञा स्त्री० [सं० दंशन] १. डसने की क्रिया या भाव । २. डसने या काटने का ढंग । उ०—यह प्रपराष बड़ो वन कीनो । तसक डसन साप में दीनो ।—सूर (शब्द०) ।

डसना^१—क्रि० सं० [सं० दंशन] १. किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । सर्प प्रादि जहरीले कीड़ों का काटना । उ०—घरे घरे कान्ठु कि रमसि वोरि । मदन भुजंग डसु बालहि तोरि ।—विद्यापति, पृ० ३६६ । २. डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

डसना^२—संज्ञा पुं० [हिं०] १. 'डासन', 'दसना' । उ०—सुंदर सुमनन सेज बिछाई । मरगज मरगजि डसनि डसाई ।—नंद ग्रं०, पृ० १४१ ।

डसनी—वि० [सं० दंश, प्रा० डस] काटनेवाली । उ०—सिसु-धातिनी परम पापिनी । सतनि की डसनी जु सापिनी ।—नंद ग्रं०, पृ० २३६ ।

डसवाना—क्रि० सं० [हिं०] १. 'डसाना' ।

डसा—संज्ञा पुं० [सं० दश] बाढ़ । शीमड़ ।

डसाना^१—क्रि० सं० [हिं० डसना] बिछाना । उ०—'हे राम' खचित यह वही चौतरा भाई । जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई ।—सूत०, पृ० १३७ ।

डसी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दसी] १. 'दसी' ।

डसी^२—संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सहदानी ।

डस्टर—संज्ञा पुं० [अ०] गर्द झाड़ने का कपड़ा । झाड़न ।

डहकना—क्रि० सं० [हिं० डहकना] १. 'डहकना' । उ०—कह बरिया मन डहकत फिर ।—दरिया० बानी, पृ० ३५ ।

डहक—वि० [?] सख्या में छह । ६ ।—(बलाल) ।

डहकना^१—क्रि० सं० [हिं० डाका] १. छल करना । धोखा देना । ठगना । जटना । उ०—डहकि डहकि परचेहु सब काह । प्रति प्रसंक मन सदा उछाह ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी वस्तु को देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना । उ०—खेलत खात, परस्पर डहकत, छीनत कहत करत रग-देया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डहकना^२—क्रि० सं० [हिं० दहाड, धाड़] १. रोने में रह रहकर शब्द निकालना । बिलखना । विखाप करना । उ०—काल बदन ते राखि सीनो हंन गवें जे खोइ । गोपिनी सब ऊधो घागे डहकि दीनो रोइ ।—सूर (शब्द०) । २. हुंकारना । डकार

लेना । दहाड मारना । गरजना । उ०—इक दिन कंस प्रसुर इक प्रेरा । भावा घटि वपु विरपभ केरा । डहकत फिरत उडावत धारा । पकरि सींग तुरतै प्रभु मारा ।—विश्राम (शब्द०) ।

डहकना^३—क्रि० सं० [देश०] छितराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल धौत कलधौत घाम उज्जल जुन्हाई डहडही डहकत है ।—देव (शब्द०) ।

डहकलाय—वि० [?] सोलह । १६ ।—(बलाल) ।

डहकाना^१—क्रि० सं० [सं० दस (= खोना), हिं० डाका] खोना गंवाना । नष्ट करना । उ०—वाद विवाद यज्ञ व्रत साथै । कतहैं जाय जन्म डहकावै ।—सूर (शब्द०) ।

डहकाना^२—क्रि० सं० किसी के धोखे में भाकर अपने पास का कुछ खोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में भ्राना वंचित या प्रतारित होना । ठगा जाना । जैसे, इस सोदे में तुम डहका गए । उ०—(क) इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन प्रजानी ?—सूर (शब्द०) । (ख) डहके ते डहकाइबो मलो जो करिय विचार ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

डहकाना^३—क्रि० सं० १. ठगना । धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना । धोखा देना । जटना । २. किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना ।

डहकावनि^१—संज्ञा पुं० [हिं० डहकाना] [स्त्री० डहकावनि] ललचाना या धोखा देने का कार्य या स्थिति । उ०—ले ले व्यजन चखनि चखावनि । हंसनि, हंसावनि, पुनि डहकावनि ।—नंद ग्रं०, पृ० २६४ ।

डहडह—वि० [अनु०] १. 'डहडहा' ।

डहडहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० डहडही] १. हरा भरा । ताजा । लहलहाता हुआ । जो सुखा या मुरझाया न हो । (पेड़, पौधे, फूल, पत्ते आदि) । उ०—(क) जो काटे तो डहडही, सींचे तो कुम्हिलाय । यहि गुनवती बेम का कुछ गुन कहा न जाय ।—कबीर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित । प्रसन्न । प्रानदित । उ०—तुम सीतनि देखत बई प्रपने हिय ते लाल । फिरति सबनि मे डहडही वही मरगजी बाल ।—विहारी (शब्द०) । (ख) सेवती चरन चारु सेवती हमारे जान, ह्वे रही डहडही लहि मानें कंब को ।—देव (शब्द०) । (ग) डहडहे इनके नैन प्रबहि कतहैं चितए हरि ।—नंद ग्रं०, पृ० १५ । ३. तुरंत का । ताजा । उ०—सहसही इदीवर पयामता शरीर सोही डहडही चबन की रेखा राबे भाल में ।—रघु-राज (शब्द०) ।

डहडहाट^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहडहा] हरापन । ताजगी ।

डहडहाना—क्रि० सं० [हिं० डहडहा] १. हरा भरा होना । ताजा होना । (पेड़, पौधे, आदि का) । उ०—दूर दमकत थवन शोभा जलज युग डहडहत ।—सूर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित होना । प्रानदित होना ।

उहड़हाव—संज्ञा पुं० [हि० उहड़हा] हराभरा होने का भाव । साजगी । प्रफुल्लता ।

उहड़ना^१—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] डेना । पर । पल । उ०—विषयाना कित देह भोगूरा । जिहि मा मरन उहड़न धरि घुरा ।—जायसी (शब्द०) ।

उहड़ना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन । डाह ।

उहड़ना^३—संज्ञा पुं० [सं० डयन] दे० 'डेना' । उ०—जों पंखी कहवाँ धिर रहना । ताकै जहाँ जाइ जों उहड़ना ।—पद्मावत, पृ० २५८ ।

उहड़ना^४—क्रि० प्र० [सं० दहन] १ जलना । मस्म होना । २ कुड़ना । चिड़ना । द्वेष करना । घुरा मानना ।

उहड़ना^५—क्रि० प्र० १. जलाना । मस्म करना । उ०—रावन प्रंका हो उही वेह मोहि डाड़न धाइ ।—जायसी (शब्द०) । २. सतप्त करना । दुःख पहुँचाना । उ०—उहड़ चब घट चदन चीरु । दगध करइ सन विरह बपीरु ।—जायसी (शब्द०) । ३. ताड़ना । बजाना । उ०—उहड़ संकर डई करे जोगण किलकारी ।—रघु० क०, पृ० ४७ ।

उहड़ा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डगर] १ रास्ता । मार्ग । पथ । उ०—जिहि उहड़त उहड़ करत कहुरो । चित बल चोरत चेटक चेहुरो ।—रघुराज (शब्द०) । २. पाकासवना । ३. पगडंडी ।

उहड़ना—क्रि० प्र० [हि० उहड़] चबना । फिरना । टहलना । उ०—जिहि उहड़त उहड़ करत कहुरो । चित बल चोरत चेटक चेहुरो ।—रघुराज (शब्द०) ।

उहड़ा^२—संज्ञा पुं० [हि० उहड़] मार्ग । डगर । उ०—सखी रो पाज भव चरती बच देखा । बच उहड़ा मेवात भँकारे हरि घाए जन मेखा ।—सहजो०, पृ० ५७ ।

उहड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० उहड़ना] चबाया । बीटाया । फिराया । उ०—कोठ बिरजि रहो भाव चबन इक चित छाई । कोठ बिरजि बिपुरी मृदुलि पर नैव उहड़ाई ।—सूर (शब्द०) ।

उहड़ि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० बधि, हि० वहेड़ी] बही जमाने के काम में प्रयुक्त मिट्टी की हडिया । उ०—सुत की बरजि राखहु महरि । उहड़ चबन म देस काहुँहि फोरि डारत उहड़ि ।—सूर०, १०।१४२१ ।

उहड़ि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० उहड़] राह । उ०—बच धरव कोठ माहि पावत रोकि राखत उहड़ि ।—सूर०, १०।१४२३ ।

उहड़ियाँ—संज्ञा पुं० [हि० उहड़] नाप बैल का घूमकर व्यापार करनेवाला व्यक्ति ।

उहड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कुठिया' ।

उहड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० डमर] दे० 'डमर' । उ०—उहड़ संकर डई, करे जोगण किलकारी ।—रघु० क०, पृ० ४७ ।

उहड़ा^३—वि० [हि० डाहना] डाहनेवाला । तंग करनेवाला । कष्ट पहुँचानेवाला । उ०—फोरहि सिस सोड़ा मदन सागे महुक पहार । कायर कुर कपूत कसि भर भर सहस उहड़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

उहीली—वि० स्त्री० [हि० डाह + ली (प्रत्यय०)] डाह पैदा करनेवाली । उ०—पग द्वे चलति ठठकि रहे ठाढ़ी मोन धरै हरि के रस गीली । धरनी नख चरननि कुरवारति, सीतिनि भाग सुहाग उहीली ।—सूर० १०।१७७२ ।

उहु, उहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. हलविशेष । लकुच । २. बड़हर ।

उहोला^१—संज्ञा पुं० [देश०] हलचल । उपद्रव । भय । उ०—महा उहोली मेदनी विसतरियो तिण बार । साह तपस्या भगवती प्रकवर सेण मपार ।—रा० क०, पृ० ११ ।

डांकुति—संज्ञा स्त्री० [सं० डाङ्कुति] घंटी आदि बजने की ध्वनि (ध्व०) ।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डा] डाकिनी । डाइन ।

डाँक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दमक, दवेंक भयवा देस०] ठाँव या चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्तर ।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे थोटर नदीनों के भीचे बैठते हैं । अब ठाँव के पत्तार की विशेषी डाँक भी बहुत पाती है जिसके बीच धोर चमकीले ठुके काटकर लियों की टिकसी, कपड़ों पर टाँकने की चमकी धादि बनती है । डाँक थोटे की सान ८-१ प्रगुल जबो धोर ३-४ प्रगुल चौड़ी पटरी होती है जिसपर डाँक रखकर चमकाने के बिजे थोटे हैं ।

डाँका^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँकना] कै । बमम । उसटी ।

क्रि० प्र०—होना ।

डाँका^३—संज्ञा पुं० [हि० डंका] नगाड़ा । दे० 'डंका' । उ०—दान डाँक बाजे दरबारा । कौरति गई समुंदर पारा ।—जायसी (शब्द०) ।

डाँक^४—संज्ञा पुं० [हि० डंक] बिप्ले जंतुओं के काठने का डंक । धार । उ०—जे तव होत दिखाखि मई भमी इक माँक । बगे सीरछी बीठि भव द्वै बीछी को डाँक ।—बिहारी (शब्द०) ।

डाँकना^१—क्रि० प्र० [सं० तक (= चलना)] १. कुचकर पार करना । खाँचना । फाड़ना । २. पार कर जाना । लौंच जाना । उ०—प्रजगर उडा सिलर को डाँका, गरुड बकित होय वैठा ।—दरिया० मानी पृ० ५६ । २. बमन करना । उसटी करना । ३. जोर से पुकारना । धावाज देना ।

डाँकिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी' । उ०—परहु चरक, फलचारि सिमु, बीच डाँकिनी साड ।—तुलसी प्र०, पृ० ११० ।

डाँगा^१—संज्ञा पुं० [सं० डङ्ग (= पहाड़ का किबारा धोर चोटी)] १. पहाड़ी । जंगल । वन । २. पहाड़ की ऊँची चोटी ।

डाँग^२—संज्ञा पुं० [सं० डङ्ग, हि० डागा] मोठे बाँस का डंडा । सह ।

डाँगा^३—संज्ञा पुं० [हि० डाँकना] कुद । फसाँग ।

डाँग^४—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डंका' ।

डाँगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. चौपाया । डोर । गाय, भैंस आदि पशु । † २. मरा हुमा चौपाया । (गाय, बैल आदि) चौपाए की लाव (पुरव) ।

मुहा०—डाँगर घसीटना = चमारों की तरह मरा हुआ घोषाया बीचकर से जाना । अशुचि कर्म करना ।

१ एक नीच जाति का नाम ।

डाँगर^२—वि० १. दुबला पतला । जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो ।
२. मूर्ख । जड़ । गावदी ।

डाँगा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] १. जहाज के मस्तूल में रस्सियों को फँसाने के लिये घाड़ी लगी हुई धरन । २. लकड़ के बीच का मोटा डंडा । (लघ०) ।

डाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति (=दमन, दण्ड) या सं० दण्ड] १. शासन । वध । दाव । दवाव । जैसे,—(क) इस लड़के को डाँट मे रखो । (ख) इस लड़के पर किसी की डाँट नहीं है ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—मानना ।—रखना ।

मुहा०—डाँट में रखना = शासन में रखना । वध में रखना । किसी पर डाँट रखना = किसी पर शासन या दवाव रखना । डाँट पर = पालनी के कहारों की एक बोली । (जब तंग और ऊँचा नीचा रास्ता भागे होता है तब अगला कहार कुछ बचकर चलने के लिये कहता है 'डाँट पर') ।

२ डराने के लिये क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द । घुड़की । डपट ।

क्रि० प्र०—बताना ।

डाँटना^१—क्रि० सं० [हि० डाँट + ना (प्रत्य०)] प्रपञ्च सं० दण्डन । १. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कड़े स्वर में बोलना । घुड़कना । डपटना । उ०—(क) जैसे मोन किलकिला दरसत, ऐसे रहो प्रभु डाँटत । पुनि पाछें प्रधमिधु बड़त है सूर खाल किन पाटत ।—सूर०, १। १०० । (ख) जानै ब्रह्म सो विप्रवर भ्रांति दिखावहि डाँटि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) सोई हूँ जैमरी बोधे, जननि साँटि ले डाँटि ।—सूर०, १० । ३४६ ।

संयो० क्रि०—देना ।

२ ठाठ से वस्त्र आदि पहनना । दे० 'डाँटना'—६ । उ०—चाकर भी वर्दी डाँट है ।—फिस्ताना०, भा० ३, पृ० ३६ ।

डाँठा—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] डठल ।

डाँड़—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डड] १ सीधी लकड़ी । डंडा । २ गदका । उ०—सीखत घटकी डाँड़ विविध लकड़ी के दोवन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २८ ।

यो०—डाँड़ पटा = (१) फरी गतका । (२) गतके का खेव । ३. नाव खेने का लबा बल्ला या डंडा । चप्पू ।

क्रि० प्र०—खेवा ।—चलावा ।—मारना ।—भरना ।—(लघ०) ।

४. प्रकृष का हृषा । ५. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिससे करी फँसाई रहती है । † ६ सीधी खकीर । ७ रीक की हड्डी । ८. ऊँची उठी हुई तग जनीन जो दूर तक खकीर की तरह चली गई हो । ऊँची मेंड़ ।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना ।

१०. रोक, भाड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार । १०. ऊँचा स्थान । छोटा बीटा या टीका । उ०—सो कर जे पंडा

छिति गाड़े । उपज्यो दूत दूम इक तेहि डाँड़े ।—रघुराज (शब्द०) । ११. दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक सकीर की तरह गई हो और जिसपर लोग भाते जाते हैं । मेंड़ ।

क्रि० प्र०—डाँड़ मारना = मेंड़ बनाना । सीमा या हदबंदी करना ।

यो०—डाँड़ मेंड़ = दे० 'डाँड़ामेंड़' ।

१२ समुद्र का डालुमाँ रेतीला किनारा । १३. सीमा । हृष । जैसे, गाँव का डाँड़ा । १४ वह मैदान जिसमें का जगल कट गया हो । १५. भयंकर । किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन । जुरमाना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

१६ वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले । नुकसाब का बदला । हरजाना ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

१७. लवाई नापने का मान । कट्टा । बाँस ।

डाँड़ना—क्रि० सं० [हि० डाँड़ + ना (प्रत्य०)], या सं० दण्डन । भयंकर देवा । जुरमाना करना । उ०—(क) उदधि अपार उत्तरतहूँ न लागी बार केसरीकुमार सो भबड ऐसे डाँड़िगे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पड़ा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निचित माटी के बाँड़ा ?—जायसी (शब्द०) ।

डाँड़र—संज्ञा पुं० [हि० डाँठ] बाजरे के डठल का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रहता है । बाजरे की खुँटी ।

डाँड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़] १ छड़ । डंडा । २. गतका । उ०—बज्र की सीप बज्र का डाँड़ा । उठी प्रापि उस बाजे खाँड़ा ।—जायसी (शब्द०) । ३. नाव खेने का डाँड़ । ४. समुद्र का डालुमाँ रेतीला किनारा (शब्द०) । ५. हृष । सीमा । मेंड़ ।

यो०—डाँड़ा मेंड़ा । डाँड़ा मेंड़ी ।

मुहा०—होली का डाँड़ा = लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो वसंत पंचमी के दिन से होली खेलने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है ।

डाँड़ामेंड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डाँड़ + मेंड़] १ एक ही डाँड़ या सीमा का अंतर । परस्पर अत्यंत सामीप्य । सपाव । २. अतनवन । झपड़ा ।

क्रि० प्र०—रहना ।

डाँड़ामेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डाँड़ामेंड़ा' ।

डाँड़ाशहल—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का सीप जो बगाल में होता है ।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँड़ा] १. लंबी पतली लकड़ी । २ हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लबा पतला भाग जो हाथ में बिधा या पकड़ा जाता है । लंबा हत्ता या दस्ता । देवे, करछी की डाँड़ी । उ०—हरि जू की मारती बनी । प्रति विविध रचना रचि राखी परति न गिरा बनी ।

कच्छप भ्रम मासन भनूप भति, डाँडी शेष फनी।—सूर (शब्द०)। ३ तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटकाकर पलड़े बाँधे जाते हैं। उड़ी। उ०—साँई मेरा बानिया सहज करे व्यवहार। बिन डाँडी बिन पालड़े तोले सब ससार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—डाँडी मारना = सोदा देने में कम तोलना। डाँडी सुभीते से रहना = बाजारभाव भनुकूल होना। उ०—भगवान कहीं गों से बरखा कर वे भीर डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।—गोदान, पृ० ३०।

४ टहनी। पतली शाखा। ५. वह सब ठूल जिसमें फूल या फल लगा होता है। नाल। उ०—तेहि डाँटी सह कमलहि तोरी। एक कमल की दूनी खोरी।—जायसी (शब्द०)। ६, हिंडोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पट्टी लटकती रहती है। उ०—पट्टी लगे नग नाग बहुरंग बनी डाँडी चारि। भोरा भवै भजि केलि भूले नवल नागर नारि।—सूर (शब्द०)। ७ जुलाहों की वह लकड़ी जो चरखी की पवनी में डाली जाती है। ८ शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। ९ घनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी धोरे तीसरी उँगली के नीचे इसलिये निकाला रहता है जिसमें घनवट घूम न सके। १० डड़ि खेनेवाला मादमी (लश०)। ११ मटुर या सुस्त मादमी (लश०)। † १२ सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खीचना।

१३. लीक। मर्यादा। १४ सीमा। हव। उ०—इरे लोग वन डाँड़ियाँ, सूते ही साहूल। जे सूते ही जागता, सबलाँ माथा सूल।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० २४। १५. बिड़ियों के बैठने का मट्टा। १६ फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। १७ पालकी के दोनों धोर निकले हुए लंबे ठड़े जिन्हें कहार कंधे पर रखते हैं। १७ पालकी। १८. ठंडे में बंधी हुई भोली के आकार की एक सवारी जो कँचे पहारों पर चलती है। भूपान।

डाँदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डदू, हि० डाढ़ा + री (प्रत्य०)] भूनी हुई मटर की फली।

डाँडू—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँभा—संज्ञा पुं० [सं० दाह प्रा० डाह, या सं० दग्ध, प्रा० डदू, या हि० दागना] १ जलने का दाग। दाग। २ जलने से उत्पन्न पीड़ा या कष्ट। उ०—बाँधवें बहुरी छाहूँदी, नोऊँ नागर बेल। डाँभ संभालूँ करहना, चोपड़िसुँ चपेल।—ढोला०, पृ० ३००।

डाँवरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] [स्त्री० डाँवरी] लड़का। बेटा। पुत्र।

डाँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँवरा] लड़की। बेटो। उ०—(क) कचन मन रतन जडित रामचंद्र पाँवरी। दाहिन सो राम वाम जनक राय डाँवरी।—देवस्वामी (चन्द०)। (ख)

बाहिर पोरि न बीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँवरी डोले।—देव (शब्द०)। ३० 'डावरी'।

डाँवरु—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल—वि० [हि० डोलना] इयर उधर हिलता डोलता हुषा। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चंचल। विचलित। प्रस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होना।

डाँवो—क्रि० वि० [प्रा० डाव, गुज० टावो] बाईं ओर। बाईं तरफ। उ०—टाँवो साँड सडूकतो जाई।—घो० रासो, पृ० ६०।

डाँशपाहिड़—संज्ञा पुं० [दे०] संगीत में छताल के ग्यारह में से एक जिसमें पाँच आघात के पश्चात् एक शून्य (खासो) होता है।

डाँस—संज्ञा पुं० [सं० दश] १. बड़ा मच्छड़। दश। २. एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। उ०—जरा बछड़े को देखता हूँ... बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं।—वई०, पृ० ३०। ३. कुकरोँखी।

डाँसरा—संज्ञा पुं० [दे०] इमली का बीज। चिमाँ।

डाँ—संज्ञा पुं० [मनु०] सितार की गत का एक बोल। जैसे—डा डिङ डा डा डा डा डा।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकनी। २. टोकरो जो टोकर से जाई जाय (खे०)।

डाइचा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] ३० 'दायजा'। उ०—डाइचो विद दाहिन दुहम, भुज भुजग कीरति करे।—पृ० रा०, १६, १५।

डाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकनी] १. भूतनी। बुईल। राखसो। उ०—भोक्ता डाइन डर से डरपे।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८। २. टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। ३. कुम्पा धोर डरावनी स्त्री।

डाइनामाइट—संज्ञा पुं० [सं०] एक विस्फोटक पदार्थ का नाम।

डाइनिंग रूम—संज्ञा पुं० [प्रं०] भोजन कक्ष। उ०—भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग रूम में बुलाया।—जिप्सी, पृ० ४२३।

डाइबोटी—संज्ञा पुं० [प्रं० डाइबिटीज] बहुमूत्र रोग। मधुमेह।

डाइरेक्टर—संज्ञा पुं० [प्रं०] १. प्रबंध चलानेवाला। कार्यसंचालक। निर्देश। निदेशक। मुतजिम। इंतजाम करनेवाला। २. मशीन में वह पुरजा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी—संज्ञा स्त्री० [प्रं०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर या देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची प्रसार क्रम से हो।

डाइवोर्स—संज्ञा पुं० [प्रं०] तलाक। पति पत्नी का संबंधविच्छेद।

डाई—संज्ञा पुं० [प्रं०] १. पासा। २. ठप्पा। साँचा। ३. रंग।

डाईप्रेस—संज्ञा पुं० [प्रं०] ठप्पा उठाने की कल। उभरे हुए मखर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक'—संज्ञा पुं० [हि० उडाँक या उलाँक या डाँकना (= फाँटना)] १. सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकाव पर बराबर जानवर आदि बद्धे जाते हो। मोड़े गाड़ी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना=शोध यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चीकी नियत करना। डाक लगावा=शोध सवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर प्रादमियों या सवारियों का प्रवध रहना। डाक खगाना=दे० 'डाक बैठाना'।

यौ०—डाक चीकी=मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के छोटे बदले जायें या एक हुरकारा दूसरे हुरकारे को चिट्ठियों का पैला दे। उ०—पाछे राजा ने द्वारिका से मेरता से डाक चीकी बैठाई दोनी।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० २४६।

२. राज्य की ओर से चिट्ठियों के भाने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इतजाम जिसके मुताबिक सत एक जगह से दूसरी जगह बराबर भाते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे, नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

३. चिट्ठी पत्री। कागज पत्र आदि जो डाक से भावे। डाक से भानेवाली वस्तु। जैसे,—तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

डाक^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] वमन। उलटी। कै।

क्रि० प्र०—होना।

डाक^३—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० डाँक] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या जवुतरे आदि बने होते हैं।

डाक^४—सञ्ज्ञा पुं० [बग० डाकवा (= चिल्लाना)] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु लेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे बाम लगाते हैं।

डाकखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाक + फ्रा० खाना] वह स्थान या सरकारी दफ्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से भाई हुई चिट्ठियाँ लोगो को बाँटी जाती हैं।

डाकगाड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिसपर चिट्ठी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इतजाम हो। डाक से जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाक + घर] दे० 'डाकखाना'।

डाकनवारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाकना + वारी (प्रत्य०)] पुकारनेवाला। बुलानेवाला। प्रियतम। उ०—जब डाकनवारी चढ़पो घिर पे तब, लाज कहा घर के चढ़िये की।—नट०, पृ० ५४।

डाकना^१—क्रि० प्र० [हि० डाक] कै करना। वमन करना।

डाकना^२—क्रि० सं० [हि० उड़ाक, डाँक + ना (प्रत्य०)] फाँटना। लाँचना। कुदकर पार करना। उ०—मृग हाथ बीस वण डाकै। एण हाथि उठै तब ताकै।—सुंदर पं०, भा० १, पृ० १४१। (ख) सुंदर सुर न गासणा डाकि पडै रण माँहि। घाव सहै मुख समहाँ पीठि फिरावे नहि।—सुंदर पं०, भा० २, पृ० ७३८।

संयो०क्रि०—जाना।

डाकवैगला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाँक + बैगला] वह बैगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बैगले स्थान स्थान पर बने थे। पशुसे जख रेश नहीं थी तब इन्होंने स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यहीं प्रहृा रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने आदि का सुबीता रहता था।

डाकमहसूल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाक + प्र० महसूल] वह खर्च जो बीज को डाक द्वारा भेजने या भंगाने में लागे। डाकभ्यय।

डाकमुंशी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाक + फ्रा० मुश] डाकघर का भफसर। पोस्टमास्टर।

डाकर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सुख जाने पर चिखकर कड़ी हो जाती है।

डाकव्यय—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डाक + सं० व्यय] डाक का खर्च। डाक महसूल।

डाका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाकना (= कुदना) वा सं० दस्यु प्रयवा देश०] वह प्राक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल असबाब जबरदस्ती छीनने के लिये कई प्रादमियों का दल बाँधकर भावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना=लूटने के लिये भावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये चढ़ दोड़ना। डाका पढ़ना=लूट के लिये प्राक्रमण होना। जैसे,—उस राँव पर भाज डाका पड़ा। डाका मारना=जबरदस्ती माल लूटना। बसपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डाका + फ्रा० जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डाकिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २ डाइन। जुईल।

डाकिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाक + इया (प्रत्य०)] डाक से भाई चिट्ठियाँ आदि लोगों के पास पहुँचानेवाला कर्मचारी।

डाकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डाक] वमन। कै।

डाकी^२—सञ्ज्ञा पुं० १. बहुत खानेवाला। पेटू। २ डाकू। उ०—सुंदर तृष्णा डाइनी डाकी लोम प्रचड। दोऊ काई भाँवि जब, कपि उठै ब्रह्म ड।—सुंदर पं०, भा० २, पृ० ७१४।

डाकी^३—वि० सवल। प्रचड (डि०)।

डाकू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डाका + क (प्रत्य०), वा सं० दस्यु] १. डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लूटनेवाला। लुटेरा। बटमार। २ अधिक खानेवाला। पेटू।

डाकेट—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] किसी बड़ी चिट्ठी या भाज्ञापत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का बुलासा।

डाकोर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ठाकुर, हि० ठाकुर] ठाकुर। विष्णु भगवान् (गुजरात)।

डाक्टर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. भाषायं। अध्यापक। विद्वान्। २. वैद्य। चिकित्सक। हुकीम।

डाक्टरो—सखा बी० [प्र० डाक्टर + ई (प्रत्य०)] १. चिकित्सा-
शास्त्र । २. योरोप का चिकित्साशास्त्र । पाश्चात्य प्रायुर्वेद ।
३. डाक्टर का पेशा या काम । ४. वह परोक्षा जिसे पास करने
पर प्रायमी डाक्टर होता है ।

डाक्टर—सखा पुं० [प्र० डाक्टर] दे० 'डाक्टर' ।

डाखी—सखा पुं० [हि० डाख] डाक । पलाय । उ०—तरवर भरहि
भरहि बन डाखा । भई उपर फूल कर साखा ।—जायसी
(शब्द०) ।

डाखिपी(५)†—सखा पुं० [?] मूखा सिंह (डि०) ।

डागरि—सखा बी० [हि० डगर] दे० 'डगर' ।

डागली—सखा पुं० [देशी डगर] शैल । पर्वत । उ०—जन दरिया
इस झूठ की, डागल ऊपर दोड़ ।—दरिया० बानी, पृ० ३१

डागा(५)†—सखा पुं० [सं० दग्धा, प्रा० डड्ड] नगाड़ा बजाने का डडा । शोब ।

डागुर—सखा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति । उ०—डागुर पछी-
दरे धरि मरोर । बहु जलठ ठट्ठ वट्टे सजोर ।—सुदन(शब्द०) ।

डागुली—सखा पुं० [देशी डगर, हि० डागल] शैल । पर्वत । उ०—
काहे की फिरत नर भटकत ठोर ठोर । डागुल की दोर देवी
देव सब जानिए ।—सु दर ग्रं०, भा० २, पृ० ४७६ ।

डाचा—सखा पुं० [सं० दच्छ, प्रा० डड्ड, या देश०] मुख । उ०—(क)
छोह घणी ऊछज छरा, केहर फाई डाच ।—बांकी ग्रं०, भा०
१, पृ० ११ । (ख) खलकामा रत खात भरे, डाचा पल
भरवे ।—रघु० अ०, पृ० ४० ।

डाट^१—सखा बी० [सं० दान्ति] १. वह वस्तु जो किसी चोभ को
ठहराए रखने या किसी वस्तु को खड़ी रखने के लिये लगाई
जाती है । टेक । चाँड ।

क्रि० प्र०—छपावा ।

२. वह कौल या खूँटा जिसे ठोककर कोई छेद बंद किया जाय ।
छेद रोकने या बंद करने की वस्तु ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. बोटल, पीपी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । ठेंडी ।
काग । गट्टा ।

क्रि० प्र०—कसना ।—लगाना ।

४. मेहराब को रोके रखने के लिये इंटों आदि की भरती ।
अवाव की रोक । लदाव का ढोला ।

डाट^२—सखा पुं० [हि०] दे० 'डाँट' ।

डाट^३—सखा पुं० [प्र०] नुकता । बिंदु । उ०—हम कसवियों पर
डाट लगाकर ।—प्रेमचंद, भा० २, पृ० ४४६ ।

डाटना—क्रि० सं० [हि० डाठ] १. किसी वस्तु को किसी वस्तु
पर रखकर जोर से ठकेलना । एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर
कसकर दबाना । मिटाकर ठेलना । जैसे,—(क) इसे इस
उहे से डाटो तब पीछे खिसकेगा । (ख) इस उहे को डाटे
रहो तब पत्थर इधर न लुढ़केगा ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. किसी लंबे, उहे आदि को, किसी चोभ या भारी वस्तु को
ठहराए रखने के लिये उससे मिड़ाकर लगाना । टेकना ।

चाँड लगाना । ३. छेद या मुँह बंद करना । मुँह कसना ।
मुँह बंद करना । ठेंडी लगाना । ४. कसकर भरना । ठसकर
भरना । कसकर घुसेडना । उ०—ज्ञान गोली वहाँ खूब डाटी ।
—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८ । ५. खूब पेट भर खाना ।
कस कर खाना । उ०—अपनित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट
छाटे । मनसा करि प्रभुहि अपि भोजन को डाटे ।—सूर
(शब्द०) । ६. डाट से कपडा, गहना आदि पहनना । जैसे,
कोट डाटना, प्रेपरखा डाटना । ७. मिड़ाना । डाटना ।
मिलाना । उ०—रख न साव सुधे सुख की विन राखि
आधिक सोचन डाटे ।—केशव (शब्द०) ।

डाठी(५)†—सखा बी० [देश०] दुर्वासना । बुरी आदत । उ०—
धनुषा भयो क म की डाठी । जस कोइ गहे मय की लाठी ।
—चित्रा०, पृ० २७ ।

डाड़ना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'डाडना', 'षाड़ना' ।

डाड़ना^२—क्रि० सं० [हि० डाड़ना] डाड़ना ।

डाड़—सखा बी० [सं० दच्छा, प्रा० डड्ड] १. चबाने के चोड़े दाँत ।
चौभड़ । दाढ़ । उ०—हम बी दो रुपए नहीं बचते । मिठाई
प्राए तो डाड़ तक गरम न हो । इतने में होता ही क्या है ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । २. बट आदि वृक्षों की
शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ । बरोह ।

डाड़ना(५)†—क्रि० सं० [सं० दग्ध, प्रा० डट्ट + हि० ना (प्रत्य०)]
जलाना । भस्म करना । उ०—तुलसिदास जगदध जवास ज्यों
मनघ प्रायि सागे डाड़न ।—तुलसी (शब्द०) ।

डाड़ा—सखा बी० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ड] १. दावानल । वन की आग ।
२. अग्नि । आग । उ०—रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा ।
जिमि तून पाइ लागि अति डाड़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. ताप । दाह । जलन ।

क्रि० प्र०—फूंकना ।

डाढार(५)†—सखा पुं० [हि० डाढ] फण । फन उ०—सेस सीस
लधि भार डिढय डाढार करविक्र ।—रसर०, पृ० १०४ ।

डाढ़ी(५)†—वि० [सं० दग्ध] दग्ध । पोड़ित । उ०—सखी संग की
निरखति यह खवि भई व्याकुल मम्मय को डाढ़ी ।—
सुर०, १० । ७३६ ।

डाढ़ी^२—सखा बी० [प्रा० डड्ड, हि० डाड़ + ई(प्रत्य०)] १. चेहरे पर
घोठ के नीचे का घोल उभरा हुआ भाग । ठोड़ी । ठुड़ी ।
चिबुक । २. ठुड़ी और कनपटी पर के बाल । चिबुक और
गडस्थल पर के लोम । बाढ़ी । उ०—दाढ़ी के रखेपन की
डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हई हिंदुवाने की ।
—भूषण (शब्द०) ।

मुहं—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँड़वाना । डाढ़ी बढ़ाना । डाढ़ी
का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना । अपमानित
करना । दुर्दशा करना । डाढ़ी को कसप लगाना = झुके आदमी
को कर्लक लगाना । श्रेष्ठ और बृद्ध को दोष लगाना । पेट में
डाढ़ी होना = छोटी ही प्रवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट
करना या बातें करना । पेशाब से डाढ़ी मुड़वाना = पत्यव

प्रमान करना । प्रप्रतिष्ठा करना । दुर्गति करना । डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को फटकारना । (२) संतोष धीरे उत्साह प्रकट करना । डाढ़ी रखना = डाढ़ी के पास न मुँडवाना । डाढ़ी बढने देना ।

डाढ़ीजारी—संज्ञा पुं० [हि०] डाढ़ीजार । उ०—धमिरती देवी के पुछा—कौन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है ?—मान०, भा० ५, पृ० २३ ।

डाव—संज्ञा स्त्री० [सं० दम्] १. डाम नाम की घास । २. कच्चा पारियल । ३. परतमा ।

डावक—वि० [धनु०] दे० 'डामक' ।

डावर^१—संज्ञा पुं० [सं० वज्र (= समुद्र या मीस)] १. नीची जमीन । गहरी मूमि वहाँ पानी ठहरा रहे । २. गहरी । पोखरी । तलेया । गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है । उ०—(क) सुरसर सुषप बनब वनचारी । डावर जोय कि हंसकुमारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) छो मैं बरबि कहाँ बिधि केहीं । डावर कमठ की मरर केहीं ।—तुलसी (शब्द०) । ३. हाथ घोड़े का पात्र । बिलमबी । ४. मीसा पाबी ।

डावर^२—वि० मटमैला । गदसा । कीचड़ मिखा । उ०—भूमि परब भा डावर पावी ।—तुलसी (शब्द०) ।

डावा—संज्ञा पुं० [हि० डम्बा] दे० 'डम्बा' । उ०—घंघ प्रहित घूमब के डावा । डमल धरध भावन छवि छावा ।—पद्माकर (शब्द०) ।

डाबी—संज्ञा स्त्री० [सं० बर्मे] कटी हुई घास वा फसल का पूला ।

डाभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्] १. कुण की जाति की एक घास जो प्रायः रैहू मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है । एक प्रकार का कुण । २. कुण । उ०—घसक डाभ, तिल पाव यों घंसुवन को परवाह । बीदहि देव तिलानबी, तेना तुम बिनु वाह ।—गुबारक (शब्द०) । ३. घास का मोर । घास की मंजरी । उ०—जट लहि घामहि डाय व होई । तज लहि सुरोष बसाय न सोई ।—जायसी (शब्द०) । ४. कच्चा पारियल ।

डाभक—वि० [धनु० डभक डभक] कुपे से तुरत का निकला हुआ । ताबा (पानी) । जैसे, डामक पानी ।

डाभर^१—संज्ञा पुं० [सं० दम्] दे० 'डावर' ।

डामचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मशान जिसपर से खेत की रखावली करते हैं । मीडा । माचा ।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिलकयित माया जानेवाला एक तन्त्र जिसके छह भेद किए गए हैं—योग डामर, विव डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्म डामर और गन्धर्व डामर । २. हलचल । घूम । ३. माडबर । ठाटबाट । ४. चमत्कार । ५. दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चर्तों में से एक । ६. क्षेत्रपाल । ४६ भैरवों में से एक । ७. एक मिश्रित या सकर जाति ।

डामर^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. साल वृक्ष का गोंद । राख । २. एक

प्रकार का गोंद या कहरुषा जो बल्लि में पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है । दे० 'कहरुषा' । ३. कहरुषा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधुमक्खियों के छत्ते से निकलता है । ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है । ५. दे० 'डामल' ।

डामरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्ब] दे० 'डोवरी' । उ०—उन पावि गहो हुतो मेरो जबै सबै गाय उठी ब्रज डामरिया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८ ।

डामल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० डायमुल्डस] १. जनम कैद । उम्र भर के लिये कैद । २. देशनिकाषा का बंड ।

विशेष—भारतवर्ष में मंगरेजी सरकार भारी भारी प्रवराधियों को प्रबन्धन टापू में भेजा करती थी । उसी को डामल कहते थे ।

डामल^२—संज्ञा पुं० [सं० डायमंड] दे० 'डायमंड कट' ।

डौ—डायमंड कट । डामल कट ।

क्रि० प्र०—छीलना ।

डामल^३—संज्ञा पुं० [देश०] घसकतरा । तारकोल । उ०—इस डडे के पीछे इस भर मोटा डामल का पलस्तर था जो भाल या सीध को रोकता था ।—हिंदु० सम्प्रदा, पृ० १७ ।

डामाडोल—वि० [हि०] दे० 'डावाडोल' ।

डामिल^१—संज्ञा पुं० [हि० डामिल] दे० 'डामल' । उ०—केतने गुं डे डामिल गएन, केतने पाएन फंसिया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३ ।

डायँ डायँ—क्रि० वि० [धनु०] व्ययं इधर से उधर (घूमना) । व्ययं घुल छावते हुए । जैसे,—वह यों ही दिन भर डायँ डायँ फिरा करता है ।

डायट—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यवस्थापिका सभा । राज्यसभा । जैसे, आपास की इपीरियल डायट । २. पच्य । ३. भोजन । आश पदार्थ ।

डायन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी, प्रा० डाइणी] १. डाकिनी । पिशाचिनी । चुड़ैल । सूतिन । २. कुरपा स्त्री ।

डायनामो—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा एंजिन जिससे बिजली पैदा की जाती है ।

डायरिया—संज्ञा पुं० [सं०] दस्त की बीमारी । प्रतिसार ।

डायल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिसके ऊपर घंके बने होते हैं और सुईयाँ घूमती हैं । घड़ी का चेहरा । २. पहिए का टेढ़ा हो जाना (विशेषतः साइकिल घाबि का) । अपनी जगह पर ठीक न बैठना ।

डायलाग—संज्ञा पुं० [सं० डायलॉग] संवाद । कथोपकथन । वार्तालाप । उ०—प्रबकी दके अपना डायलाग अच्छी तरह पार कर लो ।—माझाण०, पृ० १५२ ।

डायस—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऊँचा स्थान या चतुर्तरा जिसपर किंच समा के समापति का घासन रखा जाता है । मंच ।

डायमंड कट—संज्ञा पुं० [सं०] गहनों की बातु को इस प्रकार छीलने

जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय । हीरे की सी काट ।
ढामल काट ।

ढायार्की—सङ्ग जी० [अ०] वह शासनप्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो । द्वैय शासन । दुहृत्पा शासन ।

विशेष—भारत में सन् १९१६ ई० के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासनप्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई थी । शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से सबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए थे । एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन-सभा के अधिकार में था, और दूसरा ट्रांसफरेंड या हस्ता-तरित विषय, जो मिनिस्टर्स या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) था । 'रक्षित विषयों' की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन-सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता थी और हस्तातरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तर-दायी थे । यद्यपि विशेष अवस्थामों में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार था, परन्तु शासनसभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता था । शासनसभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी था कि वे सम्राट के आज्ञापत्र द्वारा नियुक्त होते थे, परन्तु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही था । मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को था ।—भारतीय शासनपद्धति ।

ढार^१—सङ्ग सङ्ग [सं० दाव (= लकड़ी)] १ ढाल । शाखा । उ०—(क) रत्नजटित कंकन बाणवद गगन मुद्रिका सोहै । ढार ढार मनु मदन विटप तव विकस देखि मन मोहै ।—सूर (शब्द०) । (ख) जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो भीत बहार । भव भलि रही गुलाब में अपत कँटीली ढार ।—विहारी (शब्द०) । फानूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की खूँटी ।

ढार^२—सङ्ग जी० [सं० डलक] डलिया । चेंगेरी । डाली । उ०—चली पावन सज गोहूँ फूल ढार सेह हाथ । बिस्नुनाथ कह पूजा पदुमावति के साथ ।—जायसी (शब्द०) ।

ढार^३—सङ्ग जी० [प० ढार (= झुंड)] समूह । झुंड ।

ढारना^१—क्रि० स० [हि० ढालना] दे० 'ढालना' । उ०—(क) जिन्ने जन्म ढारा है तुज कूँ । बिसर गया सनका ध्यान पू ।—दक्खिनी०, पृ० १४ । (ख) खूँद डारी घरनि सरन जख पूरि डारे धूर करि डारे सुख विरही तियान के ।—ठाकुर०, पृ० १६ ।

ढारना^२—सङ्ग पु० [हि० ढालना (= फैलना)] कपड़ा सुखाने के लिये बँधी रखी या बाँस । धरपानी ।

ढारियास—सङ्ग पु० [देश०] बावून बबर की एक जाति ।

ढारी—सङ्ग जी० [हि० ढार] दे० 'ढार', 'ढाल' ।

ढाल^१—सङ्ग जी० [सं० दाव (= लकड़ी), हि० ढार] १. पेड़ के घड़ से छपर छपर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और कल्ले होते हैं । शाख । शाखा ।

मुहा०—ढाल का टूटा = (१) ढाल से पककर गिरा हुआ राजा (फल) । (२) बढ़िया । मनोसा । चोखा । जैसे,—तुम्हीं एक ढाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं को दिया जाय । (३) नया भाया हुआ । नयागवुक । ढाल का पका = पेड़ ही में पका हुआ । ढालवाला = वधर । शास्त्रामृग ।

२. फानूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी । ३. तलवार का पल । तलवार के मूठ के ऊपर का मुख्य भाग । ४. एक प्रकार का गहना जो मध्यभारत और मारवाड़ में पहना जाता है ।

ढाल—सङ्ग जी० [सं० डाल, हि० डला] १. डलिया । चेंगेरी । २. फूल, फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजाकर किसी के यहाँ भेजी जाय । ३. कपड़ा और गहना जो एक डलिया में रखकर विवाह के समय वर की ओर से बधू को दिया जाता है ।

ढालना—क्रि० स० [सं० तलन (= नीचे रखना)] १. पकड़ी या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े । नीचे गिराना । छोड़ना । फेंकना । गेरना । जैसे,—ऐसी चीज क्यों हाथ में लिए हो ? छपर ढाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

मुहा०—ढाल रखना = (१) किसी वस्तु को रख छोड़ना । (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना । रोक रखना । देर लगाना । भुजाना ।

२. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना । छोड़ना । जैसे, हाथ पर पानी ढालना, थूक पर राख ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना । किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय । स्थित या मिश्रित करना । रखना या मिलाना । जैसे, घड़े में पानी ढालना, दूध में चीनी ढालना, दाल में घी ढालना, बूझें में नमक ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. घुसाना । घुसेड़ना । प्रविष्ट करना । भीतर कर देना या ले जाना । जैसे, पानी में हाथ ढालना, कुएँ में डोल ढालना, बिल या मुँह में हाथ ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. परित्याग करना । छोड़ना । खोज खबर न लेना । भुला देना । उ०—केहि अघ भीगुन आपनो करि डारि दिया रे ।—तुलसी (शब्द०) । ६. अकित करना । लगाना । चिह्नित करना । जैसे, लकीर ढालना, चिह्न ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिसमें

वह कुछ ढक जाय। फैलाकर रखना। जैसे, मुँह पर चादर डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गीली धोती डालना।

संयो० क्रि०—देना।

६. शरीर पर धारण करना। पहनना। जैसे, अंगरखा डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

१०. किसी के मृत्यु छोड़ना। जिम्मे करना। भार देना। जैसे,—
(क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो। (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है।

संयो०—क्रि०—देना।

११. गर्भपात करना। पेट गिराना। (चोपायों के लिये)।

संयो० क्रि०—देना।

१२. (किसी स्त्री को) रख लेना। पत्नी की तरह रखना।

संयो० क्रि०—लेना।

१३. लगाना। उपयोग करना। जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना। १४. किसी के अंतर्गत करना। किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना। जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च में डाल दो। १५. अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। बुरी बात घटित करना। मचाना। जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना। १६. विछाना। जैसे, खटिया डालना, पलग डालना, चारा डालना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी, समाप्ति की वृत्ति व्यक्त करने के लिये, सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, फाट डालना, जला डालना, दे डालना, आदि।

डालफिन—संज्ञा स्त्री० [अ०] ह्वेल मछली का एक भेद।

डालर—संज्ञा पुं० [अ०] अमेरिका का सिक्का। यह १०० सेंट या टके का होता है। रुपयों में इसका मूल्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता है। कभी एक डालर तीन रुपए दो आने के बराबर था। संप्रति उसकी दर भारतीय रुपयों में लगभग ४८७ न. पैसे है।

डाखाना—संज्ञा पुं० [सं० डलक] दे० 'डला', 'डाल'।

डालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाडिम' [को०]।

डाकी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाला] १. डनिया। चेंगेरी। २. फल फूल, मेवे तथा खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया में सजाकर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं। जैसे,—बड़े दिन में साहब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ आती हैं।

क्रि० प्र०—भेजना।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे आदि सजाकर भेजना।

डाली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाल] दे० 'डाल'।

डाब^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाब'।—उ०—पाका काचा हूँ गया, जीत्या हारे डाब। अंत काल गाफिल भया, दाबु किससे पाब।—दाबू, पृ० २१२।

४-३७

डावड़ा^१—संज्ञा पुं० [दे०] पिठवन।

डावड़ा^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डावरा'।

डावड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'डावरी'।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्व ?] [स्त्री० डावरी] लटका। वेटा। उ०—दशरथ को डावरी सँवरी ब्याहे जनककुमारी।—रघुराज (शब्द०)।

डावरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डावरा] लड़की। बेटी। कन्या। उ०—
(क) ठाढ़े भए रघुवशमणि तिमि जनक भूपति डावरी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) जिन पानि गछ्यो हूतो मेरी तवे सब गाय उठी ब्रज डावरियाँ।—सुदरीसवंस (शब्द०)।

डास—संज्ञा पुं० [दे०] चमारों का एक मोजार जिससे चमड़े के भीतर का रख साफ करते हैं।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन, हिं० डाम + आसन] बिछाने की चटाई, बल आदि। बिछावन। बिछौना। बिस्तर। उ०—
खोमड़ मोड़न लोमड़ डासन। सिस्तोदर पर जमपुर आसन।—तुलसी (शब्द०)।

डासना^१—क्रि० सं० [हिं० डासन] बिछाना। डालना। फैलाना। उ०—
(क) निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहि समु कृपाला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) डासत ही गढ़ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नीद भरि सोयो।—तुलसी (शब्द०)।

डासना^२—क्रि० सं० [हिं० डसना] डसना। काटना। उ०—
डासी वा विसासी विपमेपु विपधर उठे पाठहूँ पहर विपे विष की लहर सी।—देव (शब्द०)।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डासन] १. खाट। पलग। चारपाई। २. बिछौना।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] १. जलन। ईर्ष्या। द्वेष। द्रोह। उ०—
इनके मन में शीशों की डाह बड़ी प्रबल थी।—श्री-निवास प्र०, पृ० २१२।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

२. ताप। जलन। उ०—
पुहकर डाह वियोग, प्राण विरह वस होहि जब। का सभभावहि लोग, अग्नि न थिर पारो रहै।—रसरतन, पृ० ६४।

डाहना—क्रि० सं० [सं० दाहन] जलाना। सताना। दिक करना। तग करना। उ०—
काहे को मोहि डाहन पाए रेनि देत सुख वाको?—सूर (शब्द०)।

डाहल, डाहाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश। त्रिपुर देश [को०]।

डाही—वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला। ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु। जैसे,—वह बड़ा डाही है,

डाहुक—संज्ञा पुं० [सं० दाहुक ? या देश०] १. एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है। २. चातक। पपीहा।

डिंगर^१—संज्ञा पुं० [सं० टिङ्गर] १. मोटा आदमी। मोटासा। २. दुष्ट।

बदमाश। ठग। ३ दास। गुलाम। ४. नीच मनुष्य। निम्न कोटि का व्यक्ति। ५. फेंकना। क्षेपण (को०)। ६. तिरस्कार (को०)।

डिंगर^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बांध दिया जाता है। ठिगुरा। उ०—कबिरा माछा काठ की पहिरो मृगद डुलाय। सुमिरन की सुष है नही ज्यों डिंगर बांधी गाय।—कबीर (शब्द०)।

डिंगल^१—वि० [सं० डिङ्गर] नीच। दूषित।

डिंगल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और वंशावली आदि लिखते चले आते हैं।

डिंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीड़।

विशेष—इसके पेड़ चासिया पर्वत तथा चटगाँव और बर्मा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं। इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है। सारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिंडस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिस] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिक] हंसोड भिलारी (को०)।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिम] जलसर्प। डेङ्हा (को०)।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिम] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था। डिमडिमी। डुगडुगिया। २. करोंदा। कृष्णपाक फल।

यो०—डिंडिमघोष। डिंडिमनाद।

डिंडिमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिमडिमी] दे० 'डिंडिम'।

डिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिर] १. समुद्रफेन। २. पानी का झाग।

डिंडिर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिरमोदक] १. गृंजन। पाजर। २. सहस्रमुन।

डिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी। डेंडसी।

डिंडी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली फेंसाने का चारा। (विशेषतः) छोटी मछली।

डिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डीर] दे० 'डिंडिर'।

डिंड—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] १. हलचल। पुकार। वावैया। २. भयध्वनि। ३. दपा। लड़ाई। ४. झंझ। ५. फेफड़ा। फुफ्फुस। ६. प्लीहा। पिलही। ७. कीड़े का छोटा बच्चा। ८. भारभिक व्यवस्था का भ्रूण। ९. गर्भाशय (को०)। १०. कंडुक। गोंद (को०)। ११. भय। डर। भीति (को०)। १२. शरीर (को०)। १३. सद्योजात शिशु वा प्राणी (को०)। १४. मूर्ख (को०)।

डिंडयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बयुद्ध] दे० 'डिंडाह्व' (को०)।

डिंडाशय—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब + आशय] गर्भाशय।

डिंडाह्व—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब + आह्व] सामान्य युद्ध। ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

डिंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बिका] १. मधमाती स्त्री। २. सोना-पाठा। श्योनाक। ३. फेन। बुलबुला। बुल्ला (को०)।

डिंडी^२—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] १. बच्चा। छोटा बच्चा। उ०—मब लू, हो डिंड, सो न वूझिए बिलब मब मवलब नाही मान

राखत हो तेरिये।—तुलसी (शब्द०)। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)। ३. मूर्ख या जड़ मनुष्य। ४. एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत बयावक हो जाता है।

डिंडी^३—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] १. भाडवर। पाखंड। २. भूमिमान। धमंड। उ०—करे नहि कछु डिंड कबहूँ, डारि में है खोइ।—जग० बाजी, पृ० ३५।

डिंडक—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बक] १. [स्त्री० डिंडिका] बच्चा। छोटा बच्चा। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)।

डिंडकचक्र—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बकचक्र] स्वरोदय में वर्णित मनुष्यों के शुभाशुभ फल का सूचक एक तान्त्रिक चक्र (को०)।

डिंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बा] छोटी बासिका। नन्ही बच्ची (को०)।

डिंडिया—वि० [सं० दम, हिं० डिंड] भाडवर रखनेवाला। पाखंडी। २. भूमिमानी। धमंडी।

डिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिस] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडामाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा पश्चिम में होता है।

विशेष—इसमें एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो हांग की तरह घुमी रोग में दी जाती है। इसके लगाने से घाब जल्दी सूखता है और उसपर मक्खियाँ नहीं बैठती।

डिंडकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवा औरत। युवती (को०)।

डिंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घबका] १. सींगो का घबका। (जैसे मेढे देते हैं)। २. झपट। वार। आक्रमण।

डिंडेटर—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पप्रदसंक। शास्ता। २. वह मनुष्य जिसे शासन की प्रभावित सत्ता प्राप्त हो। निरकुश शासक। उ०—देवता रूप वे डिंडेटर, लोहू से जिनके हाथ सने।—मानव०, पृ० ५६।

विशेष—डिंडेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२) राज्य या शासनपक्ष का। जब देश में सकट उपस्थित होता है तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिसपर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था सकट काल के लिये है। जैसे, सं० १९८०-८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिंडेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासनपक्ष का डिंडेटर वही होता है जो बड़ा जबरदस्त होता है। जिसका सब लोगों पर बड़ा प्रभुत्व छाया रहता है। जैसे, किसी समय इटली का डिंडेटर मुसोलिनी था।

यो०—डिंडेटरशिप = निरकुश शासन। प्रभुतायुक्तवाद।

डिंडेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय। इमला।

डिंडी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. भाजा। हुक्म। फरमान। २. न्यायालय की वह भाजा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी पक्ष

को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय। उ०—प्रवालत डिक्की न दे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३। वि० दे० 'डिगरी'।

डिक्लरेशन—संज्ञा पुं० [प्र०] वह लिखा हुआ कागज जिसमें किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार-पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या स्वीकृत की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लरेशन दिया है। (ख) वे अग्रदूत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लरेशन देनेवाले हैं।

डिक्शनरी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] शब्दकोश। अभिधान।

डिगंबर^७—वि० [सं० दिगम्बर] वस्त्ररहित। नग्न। दिगंबर। उ०—प्रंबर छोड़ दिगंबर होई। उहि भगमन भग निवहै सोई।—रसरतन, पृ० २५६।

डिगना—क्रि० प्र० [सं० टिक (= हिलना। डोलना)] १. हिलना। टनना। खिसकना। हटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे,—उस भारी पत्थर को कई प्रादमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा। उ०—प्रसवार डिगत बाहुन फिरें, भिरें भूत भैरव विकट।—हम्मीर०, पृ० ५८।

संयो० क्रि०—जाना।

२. किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प वा सिद्धांत पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगमिगाना^१—क्रि० प्र० [हि० डगमगाना] दे० 'डगमगाना'। उ०—रणधीर के घाते से ये सभा ऐसी डिगमिगाने लगी थी जैसे हाथों के चढ़ने से नाव डिगमिगाती है।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ८६। (ख) डिगमिगात पग चलन दुखारो। यही लकुट भब बेति सहारो।—शकुंतला, पृ० ८२।

डिगमिगाना^१—क्रि० स० १. हिलाना। डिगाना। २. विचलित करना।

डिगरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० डिग्री] १. विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

२. धंधा। कला। समकोण का ढ़ाँचा भाग।

डिगरी^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० डिग्री] मदासत का वह फंसला जिसके जरिए से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह भाशा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे,—उस मुकदमें में उसकी डिगरी हो गई।

यौ०—डिगरीदार।

मुद्दा०—डिगरी जारी कराना=फंसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा वगैरह करने की फारंवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय कराना। डिगरी देना=अभियोग में किसी के पक्ष में निर्णय करना। फंसले के जरिए से हक कायम

करना। डिगरी पाना=अपने पक्ष में न्यायालय की भाशा प्राप्त करना। जर डिगरी=वह रुपया जो मदासत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिखावे।

डिगरीदार—संज्ञा पुं० [प्र० डिग्री + का + दार] वह जिसके पक्ष में डिगरी हुई हो।

डिगलाना^१—क्रि० प्र० [हि० डग, डिगना] डगमगाना। हिलना। लड़खड़ाना।

डिगलाना^२—क्रि० स० [हि० डिगना] डिगाना। चालित करना।

डिगवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बिड़िया का नाम।

डिगाना—क्रि० स० [हि० डिगना] १. हटाना। हसकाना। जगह से टाखना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रहना। विचलित करना। उ०—दूर नर मुनि देय डिगाय करे यह सबकी हाँसी।—पलटू०, पृ० २५।

संयो० क्रि०—देना।

डिगुलाना^७—क्रि० प्र० [हि० डग] दे० 'डिगलाना'। उ०—टिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाश। कपि किसोरी वरसि कै खरें सजाने लाल।—विहारी (शब्द०)।

डिगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० बीषिका, बँग० बीधी (= बावली या तालाब)] पोखरा। बावली। जैसे, सालबिही।

डिगी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिम्मत। साहस। जिगरा।

डिजाइन—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तर्ज। वनावट। आका।

डिडेक्टिव—संज्ञा पुं० [प्र०] जासूस। मुखबिर। गुप्तचर। मेविया।

यौ०—डिडेक्टिव पुलिस=वह पुलिस जो छिपकर मामलों का पता लगावे। बुद्धिवा पुलिस।

डिठारा^१—वि० [हि० डीठ + आरा (प्रत्यय)] [वि० डिठारी] दुष्टिवाला। देखनेवाला। आँखवाला। जिसकी आँख से सूँके।

डिठि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—प्रभर सुधा मिठी, दूषे भवरि डिठि, मधुसम मधुरे बानि रे।—विद्यापति, पृ० १०३।

डिठियार, डिठियारा^१—वि० [हि०] दे० 'डिठार'। उ०—(क) तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तव पीठि। अथ कहे दुख पाइहै डिठियारो केहि डीठि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) घटकर सेती अथ डिठियारे राह बतावै।—पद्म०, पृ० ७४।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डिठौना'। उ०—सब बचाती हैं सुनों के पात्र। किंतु देती हैं डिठौना मात्र।—साकेत, पृ० १८०।

डिठौहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीठि + हरना अथवा देश०] एक जगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरोकर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं।

विशेष—दे० 'बजरबट्ट' या 'नजरबट्ट'।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हि० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने की स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि बसव रंगीला। बीन्हों भाल डिठौना

नीला।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सखि कजन को परम सलोना भाल डिठोना देही। मनु पकज कोना पर बैठो मल्लि-छोना मधु लेही।—रघुराज (शब्द०)।

डिडा—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़'। उ०—नहि बाल बृद्ध किस्सोर तुम धुम समान पै डिड खरी।—पृ० रा०, २। ५१०।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहीसा।

डिडिकारा, डिडिकारी—संज्ञा स्त्री० [मनु०] पशुओं का गुराँदा।

डिडई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घान जो मगहन में तैयार होता है।

डिडवा—संज्ञा पुं० [देश०] डिडई नाम का घान जो मगहन में तैयार होता है।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें युवावस्था में ही बाल पकने लगते हैं।

डिडियाना—क्रि० प्र० [मनु०] शोक के आवेग में गाय का रंभाना। उ०—परी धरनि धुकि यो बिललाइ। ज्यों मृतबच्छ गाइ डिडियाइ।—नंद० प्र०, पृ० २४२।

डिडा—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिड] दृढ़। पक्का। मजबूत। उ०—सुनि दुहुमि धुकार धराधर धरधर बुल्लिय। डिड न रहे डड्ढार, बाघ धनचर वन डुल्लिय।—सुजान०, पृ० २६।

डिडय^①—वि० [सं० दृढ़] दे० 'डिड'। उ०—सेस सीस लचि भाार डिडय डाढार करक्किय।—रसरतच, पृ० १०४।

डिडाना^②—क्रि० प्र० [हिं० डिड] १. पक्का करना। मजबूत करना। २. ठानना। निश्चित करना। मन में दृढ़ विचार करना।

डिड्या—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रत्यत लालच। लालसा। कामना। वृष्णा। उ०—समग्र करने की लालसा प्रबल हुई तो जोरी से, चोरी से, छल से, खुशामद से, कमाने की डिड्या पड़ेगी और खाने खचने के नाम से जान निकल जायगी।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

डिट्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ का बना हाथी। २. विशेष लक्षणों-वाला पुरुष।

विशेष—साँवले, सुंदर, युवा और सर्वसास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डिट्थ कहते हैं।

डिनर—संज्ञा पुं० [प्र०] रात का भोजन। उ०—कहो, सुना तुमने भी है कुछ, सेठ हमारे रामचंद्र ने, आज दिया हम सब लोगो को, है फरपो में एक डिनर।—मानव, पृ० ६८।

डिपटी—संज्ञा पुं० [प्र० डेपुटी] नायब। सहायक। सहकारी। जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंस्पेक्टर।

डिपाजिट—संज्ञा पुं० [प्र०] धरोहर। प्रमानत। तहवील।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [प्र०] मुहकमा। सरिश्ता। विभाग। गुदाम। प्रमानतखाना। जखीरा। भांडार। जैसे, बुकडिपो।

डिप्टी—संज्ञा पुं० [प्र० डिपटी] दे० 'डिपटी'। जैसे, डिपटी कंट्रोलर।

डिप्थीरिया—संज्ञा पुं० [प्र०] छोटे बच्चों का एक सक्रामक रोग

जिसे कठरोहिणी कहते हैं। उ०—कीर्ति का छोटा भाई प्रकस्मात् एक विचित्र रोग का शिकार बन गया है। डाक्टरों ने कहा डिप्थीरिया हो गया है। धीरतों ने कहा हब्बा बब्बा।—सन्यासी, पृ० १६०।

डिप्लोमा—संज्ञा पुं० [प्र०] विद्यासंबन्धी योग्यता का प्रमाणपत्र। सनद।

डिप्लोमेसी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. वह चातुरी या कौशल जो कार्यसाधन के लिये, विशेषकर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये किया जाय। कूटनीति। २. स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमेट—संज्ञा पुं० [प्र०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेंस—संज्ञा पुं० [प्र०] प्रारक्षा। बचाव। सुरक्षा। २. सफाई (पक्ष संबंधी)।

डिफेंशन—संज्ञा पुं० [प्र०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गहित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिससे किसी की मानहानि या वैद्मजती होती हो। हठक इज्जत। जैसे,—इधर महीनो से उनपर डिफेंशन केस चल रहा है।

डिबिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा + इया (सध्वयंक प्रत्य०)] वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। छोटा डिब्बा। छोटा सपुट। जैसे, सुरती की डिबिया।

डिबिया^२—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'। उ०—राम, राम राम, रतन लागी डिबिया।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६९७।

डिबिया टेंगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) कमर पर होता है और उसका दाहिना हाथ कमर में लिपटा होता है। इसमें विपक्षी को दाहिने हाथ से जोड़ का बायाँ हाथ कमर के पास से दाहिने जाँच तक खींचते हुए और बाँए हाथ से लंगोट पकड़ते हुए बाँए पैर से भीतरी टाँग मारकर गिराते हैं।

डिबचर—संज्ञा पुं० [प्र०] १. वह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अक्षर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है। ऋण स्वीकारपत्र। २. माल की रपतनी के महसूल का रक्का। परमट का वसीका। बहती।

डिब्बा—संज्ञा पुं० [तैलग या सं० डिम्ब (=गोला)] १. वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। सपुट। २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी। ३. पसली के दर्द की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुमा करती है। पसई चलने की बीमारी।

डिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] दे० 'डिबिया'।

डिभगना^④—क्रि० प्र० [देश०] मोहित करना। मोहना। छलना।

ठहकना। उ०—दुरजोधन अभिमानहि गयऊ। पंडव केर भरम नहि भयऊ। माया के डिमगे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा।—कवीर (शब्द०)।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक या दृश्य काव्य का एक भेद।

विशेष—इसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है। यह रीढ़ रस प्रधान होता है और इसमें चार भक्त होते हैं। इसके नायक देवता, गंधर्व, यक्ष आदि होते हैं। भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है। इसमें शात, शृंगार और हास्य ये तीनों रस न माने चाहिए।

डिमडिम—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] डमरु से निकलनेवाली आवाज। उ०—डिम डिम डमरु बजा निज कर में नाचो नयन तृतीय तरेरे।—रेणुका, पृ० ३।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिडिम] चमड़ा मड़ा हुआ एक वाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। दुगडुगिया। दुग्गी। उ०—डिमडिमी पटह बोल डफ बीणा मृदंग उमग चंगतार।—सूर (शब्द०)।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [म०] १ बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जा। २ स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा, जो पानेवाले को देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—सगना।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [मं०] कागज या छापने के फल की एक नाप जो १८" × २२" इंच होती है।

डिमाक(५)—संज्ञा पुं० [मं० दिमाग] मस्तिष्क। दिमाग। सिर। उ०—डिमाक नाक चुन के कि नाक नाक सों हरे।—पद्माकर प्र० पु० २८४।

डिमोक्रैसी—संज्ञा स्त्री० [मं०] जनतान्त्रिक शासन।

डिला—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है। मोया।

डिला—संज्ञा पुं० [सं० दल] ऊन का लच्छा।

डिलारा—वि० [फ्रा० दिलावर या दिलेर] जवामंद। धूर। वीर।

डिलारा—वि० [हिं० डील] बड़े कद का। डीलडोल वाला। उ०—बलवर्क भलवर्क ललवर्क उमडे। बुखारेडू के हैं डिलारे घुमडे।—पद्माकर प्र० पु० २८०।

डिलिबरी, डिलेबरी—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ डाकखानों में प्राई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनोप्राइंटों की बंटवाई जो नियत समय पर होती है। २. किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। ३ प्रसव होना।

डिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में भगण होता है। जैसे,—राम नाम निशि वासर गावहु। जन्म लेन कर फल जग पावहु। सोख हमारी जो हिय लावहु। जन्म मरण के फव नसावहु। २ एक बण्डित का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (115) होते हैं। इसके अन्य नाम तिलका, तिल्ला और तिल्लाना

भी हैं। जैसे,—सखि बाल खरो।' शिव भाल खरो। भमरा हरये। तिलका निरखे।

डिल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० डोला] बेलों के कंधों पर उठा हुआ कुबड़। कुन्वा। ककुत्थ।

डिविजनल—वि० [मं०] डिवीजन का। उस भूभाग, कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हो। जैसे, डिवीजनल कमिश्नर।

डिविडेंड—संज्ञा पुं० [मं०] वह लाभ या मुनाफा जो पायंट स्टॉक कंपनी या समिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी को होता है, और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सेकड़े डिविडेंड बाँटा।

डिवीजन—संज्ञा पुं० [मं०] १ वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे, बनारस डिविजन। २. विभाग। थ्रेणी। जैसे,—वह मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में फल्ट डिवीजन पास हुआ।

डिस्काउंट—संज्ञा पुं० [मं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। बट्टा। दस्तूरी। कमीशन।

डिस्मिस—वि० [मं०] १. बरखास्त। २. खारिज। जैसे, अपील डिस्मिस करना।

डिस्लायल—वि० [मं०] भ्रातृघ्न। राजद्रोही। उ०—डिस्लायल हिंदुन कहत कहाँ भूष ते लोग।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७६५।

डिस्सीप्लिन—संज्ञा पुं० [मं०] १. नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। २. भाषानुवर्तित्व। नियमानुवर्तित्व। फरमाबरदारी। ३. व्यवस्था। पद्धति। ४. शिक्षा। तालीम। ५. दंड। सजा।

डिस्ट्रायर—संज्ञा पुं० [मं०] नाशक जहाज। वि० दे० 'टारपीडो बोट'।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पुं० [मं० डिस्ट्रिक्ट] दे० 'डिस्ट्रिक्ट'।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पुं० [मं०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'जिला बोर्ड'।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'जिला मजिस्ट्रेट'।

डिस्पेंसरी—संज्ञा स्त्री० [मं०] दवाखाना। औषधालय। उ०—पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी था।—मैसा०, पृ० ७।

डिस्पेंसिया—संज्ञा पुं० [मं०] मंदान्त्रि। अन्विमाद्य। पाचन शक्ति की कमी।

डिस्ट्रिक्ट (करना)—क्रि० सं० [मं०] आपेक्षाने में कपोल किए हुए दाइयों (मसरों) को केशों (खानों) में अपने स्थान पर रखना।

डिस्ट्रिक्टरी—संज्ञा पुं० [मं०] १ कपोल दाइयों को अपने स्थान पर रखनेवाला। २. वितरक। वितरण करनेवाला।

डीहदारी

जैसे बन रहा डीह । —कामायनी, पृ० १४५ । ३.
ग्राम देवता ।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० डीह + दारी] एक तरह का हक जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन देव ढालते हैं । खरीददार उनको गांव का कोई ग्रंथ दे देता है जिससे उनका निर्वाह हो ।

हुंगां—संज्ञा पुं० [सं० हुङ्ग (= ऊँचा)] १ ढेर । घटाला । उ०—
घर्ती स्वर्ग प्रसूक्त मा तवहुं न भाग बुझाय । उठहिं बज्र जरि
हुंग वे धूम रह्यो जग छाया ।—जायसी (शब्द०) २ टीला ।
भीटा । पहाड़ी ।

हुंडा—संज्ञा पुं० [सं० या स्कन्ध (= तना)] १. ठूँठ । पेड़ों की
सूखी डाल जिसमें पक्षे प्रादि न हों । उ०—देव ज्ञ मनग मंग
होमि कै भसम संग मंग मंग उमल्यो भलेवर ष्यो हुंड में ।—
देव (शब्द०) । २ शिररहित मंग । धड़ । उ०—उठि मुंड
परत कहं ह्य सु तुंड । कहं ह्य परत कहं परिय बुंड ।
—मुजान०, पृ० २२ ।

हुंड—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुम] दे० 'हुण्डुम' ।

हुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुम] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत
कम विष होता है । डेढ़हा साँप । डघोड़ा साँप ।

हुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुम] दे० 'हुंडुम' ।

हुंडुल—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुल] छोटा उरल ।

हुंडुक—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डुक] दे० 'हुण्डुक' [को०] ।

हुंड—संज्ञा पुं० [सं० हुण्ड, देशी] डोम [को०] ।

हुंडर—संज्ञा पुं० [सं० हुण्डर] डंबर । माडवर ।

हुंक—संज्ञा पुं० [मनु०] घुंसा । मुक्का ।

हुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० टुकड़ी] वो घोड़ों की बगघी । उ०—खुद
हुकड़ी पर चढ़ के निकलती थी ।—सेर कु०, पृ० १४ ।

हुकाडुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० हुकना] १. आँखमिचोनी । हुकौवल ।
हुकाडुकी । उ०—प्रति गह्वर तहें ब्रज के बाल । हुकाडुकी
खेलें बहुकाल ।—नद० प्र०, २६२ ।

हुकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] दे० 'डोकिया' ।

हुकियाना—क्रि० सं० [हि० हुक] घुंसें से मारना । घुंसा लगाना ।

हुक्का हुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि०] घुंसेबाजी । घापस में घुंसें की
मार । उ०—हुक्का हुक्की होन लगी ।—पद्याकर पृ०, पृ० २७ ।

हुगहुगाना—क्रि० सं० [मनु०] किसी चमड़ा मड़े बाजे को लकड़ी
से बजाना ।

हुगहुगी—संज्ञा स्त्री० [मनु०] चमड़ा मड़ा हुषा एक छोटा बाजा ।
डोंगी । डुगी । उ०—हुगहुगी सहर में बाजी हो ।—कबीर
पृ० भा० २, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—फेरना ।

मुहा०—हुगहुगी पीटना=डोंडी बजाकर घोषित करना । मुनादी
करना । चारों ओर प्रकट करना । हुगहुगी फेरना=दे०
'हुगहुगी पीटना' । उ०—घ्रापने पत्रावसवन प्रथ करके विश्वे-
श्वर के द्वार पर भी हुगहुगी फेर दी थी जिसको हमसे

शास्त्रार्थ करना हो पहले जाकर वह पत्र देख ले ।—भारतेंदु
प्र०, भा० ३, पृ० ५७४ ।

हुगगी—संज्ञा स्त्री० [मनु०] दे० 'हुगहुगी' ।

हुचना—क्रि० प्र० [हि० हुचना] दबना । चुकता न होना । उ०—
नाचता है सुदखोर जहाँ कहीं व्याज हुचता ।—कुतुर०,
पृ० १० ।

हुटना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदछा भी
कहते हैं ।

हुड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

हुड़का—संज्ञा पुं० [देश०] घान के पोधो का एक राग ।

हुड़ुदा—संज्ञा पुं० [हि० डाड़] खेत में दो नालियों (बरहों) के
बीच की मेंड़ ।

हुपटना—क्रि० सं० [हि० दो + पट] चुनना । चुनियाना । उ०—
ग्रन्थवाइ तन पहिराइ भूपन वसन सुंदर हुपटि के ।—
विश्राम (शब्द०) ।

हुपटा—संज्ञा पुं० [हि० हुपट्टा] दे० 'हुपट्टा' । उ०—हुपटा है रंज
किरमची मनु मवके बई कमची ।—ब्रज प्र०, पृ० १५ ।

हुपट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'हुपट्टा' ।

हुप्पीकेट—वि० [प्र०] द्वितीय । दूसरी । उ०—कमरा बंद करके,
चाबी अपने परिचित किसी एक मेस महाराज को दे दी,
हुप्पीकेट उमादत्त के पास थी ।—सत्यासी, पृ० १२१ ।

हुवकना—क्रि० प्र० [हि० हुबकी] १ हुबना उतराना । २. चित्तकुश
होना । धवराना । उ०—इनही से सब हुबकत डोलें मुकद्दम
घोर दीवान । खान पान सब न्यारा राखें, मन में उनके मान ।
—कपीर पृ०, भा० २, पृ० ६४ ।

हुवकी—संज्ञा स्त्री० [हि० हुबना] १. पानी में हुबने की क्रिया ।
हुंबी । पोता । बुढ़की । उ०—हुबकी खाइ न काहुप पावा ।
हुब समुद्र में जोउ गंवावा ।—इंद्रा०, पृ० १५९ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—क्षेना ।

मुहा०—हुबकी मारना या लगाना=गायब हो जाना ।

२. पीठी की बनी हुई बिना तखी वरी जो पीठी ही की कढ़ी में
हुवाकर रखी जाती है । ३ एक प्रकार का बटेर ।

हुवहुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० हुनुभि] दे० 'हुंनुभि' । उ०—बाजा
वाजइ हुबहुभी, परणवा चाल्यो बीसलराव ।—बी० रासो,
पृ० ३७ ।

हुववाना—क्रि० सं० [हि० हुबाना का प्रेरण] हुबाने का काम
कराना ।

हुवाना—क्रि० सं० [हि० हुबना] १. पावो या घोर किसी प्रव
पदार्थ के भीतर डालना । मग्न करना । पोता देना । धोरना ।
२ क्षोपट/करना । नष्ट करना । सत्यानाश करना । बरबाद
करना । ३ मर्यादा कलंकित करना । यश में दाग लगाना ।

मुहा०—नाम हुबाना=नाम को कलंकित करना । यश को बिगा-
ड़ना । किसी काम या वृत्ति के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना ।
मर्यादा खोना । लुटिया हुबाना=महत्व खोना । बड़ाई न

रखना । प्रतिष्ठा नष्ट करना । वंश हुबाना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल की प्रतिष्ठा खोना ।

हुवाव—संज्ञा पुं० [हि० हुबना] पानी की चतवी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय । डूबने भर की गहराई । जैसे,—यहाँ हाथी का हुवाव है ।

हुबुकी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबना] दे० 'हुबकी' । उ०—परन जलज काढ़े कहँ जाऊँ । हुबुकी खाऊँ सुमिरि वह नाउँ ।—इंद्रा०, पृ० ८२ ।

हुबोना—क्रि० स० [हि०] दे० 'हुबोना' ।

हुब्बा—संज्ञा पुं० [हि० हुबना] दे० 'पनहुब्बा' ।

हुब्बी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'हुबकी' । उ०—व्यर्थ लगाने को हुब्बी हाँ ! होगा कौन मला राखी ।—भरता, पृ० १० ।

हुबकौरी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबकी + बरी] दे० 'हुबकौरी' । उ०—चोराई तोराई मुरई मुरब्बा भारी स्त्री । हुबकौरी मुँगछोरी रिकवछ ईरहर छीर छँछोरी जो ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

हुभकौरी—संज्ञा स्त्री [हि० हुबना, हुबकी + बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी ही के भोल में पकाई और हुवाकर रखी जाती है । उ०—खंडरा बचका जायसी और हुभकौरी । प्र०, पृ० १२४ ।

हुभई—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का आवल जो कंधार में होता है ।

हुरी—संज्ञा स्त्री [हि० डोरी] दे० 'डोरी' । उ०—काम की घुरी नेह में जुरी मानी किसी ने उसी की हुरी से बाँध दिया हो । श्यामा०, पृ० ३१ ।

हुलना—क्रि० प्र० [सं० डोलना] दे० 'डोलना' । उ०—मंद मंद मेगध मतंग लौ चलेई भले भुजन समेत मुज सुषन हुलत जात ।—पद्माकर (शब्द०) ।

हुलाना—क्रि० स० [हि० डोलना] १ हिलाना । चलाना । गति में लाना । चलायमान करना । जैसे, पल्ला हुलाना । २ हटाना । भगाना । उ०—कारे भए करि कृष्ण को ध्यान हुलाएँ ते काहू के डोलत ना ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३ चलाना । फिराना । ४ घुमाना । टहलाना ।

हुलि—संज्ञा स्त्री [सं०] कमठी । कछुई । कच्छपी ।

हुलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] खजन के आकार की एक चिड़िया (को०) ।

हुली—संज्ञा स्त्री [सं०] चिल्ला साग । लाल पत्ती का बयुभा ।

हुँगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (= पहाड़ी)] १ टीला । भीटा । हूह । उ०—सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहौँ घों हुँगरन की झोट सुमेर ।—सूर (शब्द०) । २ छोटी पहाड़ी । उ०—छिनही में ब्रज धोइ बहावै । हुँगर को कहूँ नावै न पावै ।—सूर (शब्द०) ।

हुँगर फल—संज्ञा पुं० [हि० हुँगर + फल] बबाल का फल । बेबदाली का फल जो बहुत कड़वा होता है और सरदी में घोड़ों को खिलाया जाता है ।

हुँगरी—संज्ञा स्त्री [हि० हुँगर] छोटी पहाड़ी ।

हुँगा—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] १. चम्मच । चमचा । २. एक सक्की की नाव । डोगा (लघ०) । ३. रस्से का गोल लपेटा हुमा लच्छा (लघ०) ।

हुँगा—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] छोटी पहाड़ी । टीला । उ०—विविध ससार कौन बिधि तिरवी, जे दड़ नाव न गहे रे । नाव छाड़ि दे हूँगे बसे ती हुना दुःख सहे रे ।—रै० बानी, पृ० ३८ ।

हुँगा—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक ।

हुँजा—संज्ञा स्त्री [देश०] भाँधी । तेज हवा (हि०) ।

हुँडा—वि० [सं० तुङ्ग, हि० टूटना] एक सींग का (वैल) । (वैल) जिसका एक सींग टूट गया हो । २. जिसके हाथ कटे हों । लूला । बिना पाथ पार्व का । ३ शिरविहीन (घड) ।

हुँम—संज्ञा पुं० [देश० हुब या डोंब] दे० 'डोम' । उ०—हुँम न जाँये देवजस सुँम न जाँये मोज । मुगल न जाँये शोदया मुगल न जाँये मोज ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ४८ ।

हुँमणी—संज्ञा स्त्री [हि० हुँम] दे० 'डोमनी-३' । उ०—सीहर सदी हुँमणी, ऊँमर हृदय सध्य ।—दोला०, दू० ६३० ।

हुक—संज्ञा स्त्री [देश०] पशुओं के केफलों की एक बीमारी ।

हुकना—क्रि० स० [सं० श्रुटिकरण, या हि० चूकना] श्रुति करना । सूच करना । गलती करना । मोका खोना । चूकना ।

हुबना—क्रि० प्र० [मनु० हुब हुब] १ पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना । एकबारगी पानी के भीतर चला जाना । मग्न होना । गोता खाता । वूटना । जैसे, नाव हुबना, आदमी हुबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—हुबकर पानी पीना = धोखाधड़ी करना । धोरो से छिपकर बुरा काम करना । उ०—हमी में हुबकर पानी पीने-वाले हैं ।—चुभते० (दोदो०), पृ० ४ । हुब मरना = लज्जा के मारे मर जाना । शर्म के मारे मुँह न दिखाना । उ०—उन्हें हुब मरने को ससार में चुल्लु भर पानी मिलना मुश्किल हो जाता ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ३४१ ।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग विधि और आदेश के रूप में ही प्रायः होता है । जैसे, तू हुब मर ? तू हुब क्यों नहीं मरते ?

चुल्लु भर पानी में हुब मरना = दे० 'हुब मरना' । हुबते को तिनके का सहारा होना = निराश्रय व्यक्ति के लिये थोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना । संकट में पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये थोड़ी सी सहायता भी बहुत होना । हुबा नाम उछालना = (१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना । गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना । (२) अपसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना । हुबना उठराना = (१) चित्ता में मग्न होना । सोच में पड़ जाना । (२) चित्ताकुल होना । घबराना । जो हुबना = (१) चित्त विह्वल होना । चित्त व्याकुल होना । जो घबराना । (२) बेहोशी होना । मूर्छा माना ।

विशेष—पद्याकर ने 'प्राण' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, ऊबत हो, हुबत हो, डगत हो, डोलत हो, बोलत न काहे प्रीति रीतिन रिदै चले ।...परे मेरे प्राण ।

कान्हू प्यारे की चलाचल में तब तों चले न, भाव चाहत किते चले ।

२. सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का प्रस्त होना । सूर्य या किसी तारे का प्रदृश्य होना । जैसे, सूर्य डूबना, शुक्र डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चोपट होना । सत्यानाश जाना । धरबाद होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे, वंश डूबना । उ०—डूबा वंश कबीर का, चपजे पूछ कमाल ।—(शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । उ०—भावत जावत कोई न देखा डूब गया बिन पानी ।—कबीर श०, पृ० ३१ ।

मुहा०—नाम डूबना=मर्यादा बिगड़ना । प्रतिष्ठा नष्ट होना । कुख्याति होना ।

४ किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को दिया हुआ रुपया न वसूल होना । मारा जाना । जैसे,—(क) उसने जितना रुपया इधर उधर फर्ज दिया था सब डूब गया । (ख) जिसने जिसने हिस्सा खरीदा सबका रुपया डूब गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. बेटी का बुरे घर ब्याहा जाना । कन्या का ऐसे घर पडना जहाँ बहुत कष्ट हो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. चिंतन में मग्न होना । विचार में लीन होना । भ्रष्टी तरह ध्यान डटाना । जैसे, डूबकर सोचना । ७ लीन होना । तन्मय होना । लित होना । भ्रष्टी तरह लगना । जैसे, विषय वासना में डूबना, ध्यान में डूबना ।

डूमा—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब] दे० 'डोम' । उ०—सुंदर यह मन डूम है, माँगत करे न सक । दीन भयो जाचत फिर, राजा होइ कि रक ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७२६ ।

डूमा—संज्ञा पुं० [रूसी] रूस की पार्लमेण्ट या राजसभा का नाम ।

डूमना—क्रि० प्र० [हिं० डुलना] दे० 'डोलना' । उ०—पहिले पोहरे रेण के, दिवला धवर डूख । धण कस्तूरी हुइ रही, प्रिय चंपारी फूल ।—ढोला०, पृ० ५८२ ।

डेंटिस्ट—संज्ञा पुं० [अंग० डेंटिस्ट] दंतचिकित्सक । दाँत का डाक्टर । दाँत बनानेवाला ।

डंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिया] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल कुम्हड़े की तरह गोल पर छोटे होते हैं ।

डेसडा—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डेवड़ा', 'ड्योड़ा' ।

डेसदी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ड्योड़ी' ।

डेका—संज्ञा पुं० [देश०] महानिब । वकायन ।

डेक—संज्ञा पुं० [अंग०] जहाज पर लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत ।

डेक्करना—क्रि० प्र० [अंग०] ध्वनि करना । दे० 'डकरना' । उ०—सब दिसे डाकिनि डेक्करइ ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेक्कारा—संज्ञा पुं० [अंग०] डमरू ध्वनि । उ०—उछलि डमरू डेक्कारा वर ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेगा—संज्ञा पुं० [हिं० डग] दे० 'डग' । उ०—बात बात में गाँधी और डेग डेग पर डाँधी ।—मैला०, पृ० २३ ।

डेग—संज्ञा पुं० [हिं० देग] दे० 'देग' ।

डेगची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'देगची' ।

डेट—संज्ञा स्त्री० [अंग०] तिथि । तारीख ।

डेडरा—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] दे० 'दादुर' । उ०—डेडरा से डरे, सींगी मच्छ को मरोड डारे । कानन के बीच जाय कुंजर को पकड़े ।—राम० धर्म०, पृ० ८१ ।

डेडरिया—संज्ञा पुं० [हिं० डेडरा] दे० 'डेडरा' । उ०—डेडरिया खिण मह हुबइ धण बूढइ सरजित ।—ढोला०, पृ० ५४८ ।

डेडहा—संज्ञा पुं० [सं० डुएडुम] पानी का सौंप जिसमें बहुत कम विष होता है ।

डेड—वि० [सं० प्रच्युत, प्रा० डिवड्ड] एक और भाषा । सार्द्धक । जो गिनती में १३ हो । जैसे, डेड रुपया, डेड पाव, डेड सेर, डेड बजे ।

मुहा०—डेड ईंट की जुदा मसजिद बनाना=खरेपन या भ्रष्टाचार के कारण सबसे भलगा काम करना । मिलकर काम न करना । डेड गाँठ=एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी भाषी गाँठ । रस्सी तागे आदि की वह गाँठ जिसमें एक पूरी गाँठ लगाकर दूसरी गाँठ इस प्रकार लगाते हैं कि तागे का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी ओर बाहर नहीं खींचते, तागे को थोड़ी दूर ले जाकर बीच ही में कस देते हैं । इसमें दोनों छोर एक ही ओर रहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गाँठ खुल जाती है । मुन्दी । डेड चावल की खिचड़ी पकाना=भपनी राय सबसे भलग रखना । बहुमत से भिन्न मत प्रकट करना । डेड चुल्लू=थोड़ा सा । डेड चुल्लू लहू पीना=मार डालना । खूब बड़ देना । (क्रोधोक्ति, छि०) ।

विशेष—जब किसी निदिष्ट संख्या के पहले इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या को एकाई मानकर उसके भाषे को जोड़ने का अभिप्राय होता है । जैसे, डेड सो=सो और उसका भाषा पचास अर्थात् १५०, डेड हजार=हजार और उसका भाषा पाँच सौ, अर्थात् १५०० । पर, इस शब्द का प्रयोग दहाई के भाषे के स्थानों को निदिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ हो होता है । जैसे, सो, हजार, लाख, करोड़, प्रारब इत्यादि । पर मनपड और गँवार, जो पूरी गिनती नहीं जानते, और संख्याओं के साथ भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं । जैसे, डेड बीस अर्थात् तीस ।

डेडखम्मन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेड + फ्रा० खम] एक प्रकार का बिरका या गोल रक्तानी ।

डेडखम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० डेड + फ्रा० खम (=डेड़ा)] तबाकू पीने का वह सस्तः नैचा जिसमें कुलफी नहीं होती । इसके घुमाव पर केवल एक छोड़े की टेढ़ी सलाई रखकर उसे पयाल और चियड़े आदि से लपेट देते हैं ।

डेङ्गोशी—संज्ञा पुं० [हिं० डेड + फ्रा० गोशह (=कोना)] एक बहुत छोटा और मजबूत बना हुआ जहाज ।

डेढ़ा^१—वि० [हि० डेढ़] डेढ़ गुना। किसी वस्तु से उसका भाषा और अधिक। डेढ़ा।

डेढ़ा^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेढ़िया^१—संज्ञा पुं० [देश०] पुमाले की जाति का एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसके पत्ते सुगंधित होते हैं।

विशेष—यह वृक्ष धारजिलिण, सिक्किम और भूटान प्रादि में पाया जाता है। इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है। इसकी लकड़ी मकानों में लगाने तथा चाय के संदूक और खेती के सामान (हल, पाटा प्रादि) बनाने के काम में आती है। यह पेड़ पुमाले की जाति का है।

डेढ़िया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] दे० 'डेढ़ी'।

डेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० डेढ़] किसानों को बोघाई के समय इस शब्द पर प्रनाज उधार देने की रीति कि वे फसल कटने पर जित्त हुए प्रनाज का इधोड़ा देंगे।

डेना^१—क्रि० सं० [दे०] देना। प्रदान करना। उ०—तन भी देवाँ, मन भी देवाँ देवाँ पिंड पराक्त वे।—बाबू०, पृ० ५१३।

डेपूटेशन—संज्ञा पुं० [अ०] चुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जनसाधारण या किसी सभा संस्था की ओर से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय। प्रतिनिधि मंडल। विनिष्ट मंडल।

डेघरा^१—वि० [देश०] बेहूत्या। बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

डेघरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का वह कोना जो जोधने में छूट जाता है। कोँवर।

डेघरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० डिब्बी] डिब्बी के आकार का छीन, पीछे प्रादि का एक बरतन जिसमें पैल भरकर रोखनी के लिये बत्ती जलाई है। डिब्बी।

डेमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह सरकार या शासनप्रणाली जिसमें राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। वह सरकार जो जनसाधारण के अधीन हो। सर्व-साधारण द्वारा परिचालित सरकार। लोकसत्ताक राज्य। लोकसत्तात्मक राज्य। प्रजासत्तात्मक राज्य। २. वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वह सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। ३. राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन प्रकुलीन, धनी दरिद्र, ऊँच नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रेट—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। २. वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का

पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता प्रकुलीनता या ऊँच नीच का भेद न मानता हो।

डेरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डर'।

डेरा^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डेरा'। उ०—रहू खेत पर ठाढ़ भलि की डेर मंडै।—पलटू० पृ० ८७।

डेरा^३—संज्ञा पुं० [हि० डैरना, डैराव या हि० दर (= स्थान)] १. टिकान। ठहराव। थोड़े काल के लिये निवास। थोड़े दिन के लिये रहना। पड़ाव। जैसे,—भाज रात को यहीं डेरा करो, सवेरे उठकर चलेंगे।

क्रि० प्र०—होना।—सेना = स्थान सजबोजकर टिक जाना या निवास करना। उ०—साल्ह महस हूँ ठूकड़ा, ठाढ़ी डेरउ लीध।—ढोला०, पृ० १८७।

२. टिकने का आयोजन। टिकान का सामान। ठहरने वा रहने के लिये फैलाया हुआ सामान। जैसे, बिस्तर, बरतन, भाँड़ा, छप्पर, संवू इत्यादि। छावनी। जैसे—यहाँ से चटपट डेरा उठाओ।

यौ०—डेरा डंडा = टिकने का सामान। बोरिया बँभना। निवास का सामान। उ०—तसल्ली से प्रसबाव वगेरह रखा गया और डेराडंडा ठीक हुआ।—मेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

मुहा०—डेरा डालना = सामान फैलाकर टिकना। ठहरना। रहना। डेरा पड़ना = टिकान होना। छावनी पड़ना। उ०—(क) भरि चोरासी कोस परे गोपन के डेरा।—सूर (शब्द०)। (ख) पास मेरे हृदय उधर प्रागे। है दुखों का पड़ा हुआ डेरा।—सुभते०, पृ० ४। डेरा डंडा उखाड़ना = टिकने का सामान हटाकर चला जाना।

३. टिकने के लिये साफ किया हुआ और छाया बनाया हुआ स्थान। ठहरने का स्थान। छावनी। कंप। उ०—नीबत भरहि वह रूपति डेरन दुंदुभी धुनि ह्वै रही।—रघुराज (शब्द०)। ४. खेना। संवू। छोलदारी। शामियाना।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

५. नाचने गानेवालों का दल। मंडली। गोल। ६. मकान। घर। निवासस्थान। जैसे,—तुम्हारा डेरा कितनी दूर है?

डेरा^१—वि० [सं० डहर (= छोटा) ?] [स्त्री० डेरी] बायाँ। सव्य। जैसे, डेरा हाथ। उ०—(क) फहमें प्रागे फहमें प्राछे, फहमें बहिने डेरे।—कबीर (शब्द०)। (ख) सूर ग्याम सम्मुख रति मानत गए मग बिसरि दाहिने डेरे।—सूर (शब्द०)।

डेरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी सफेद और मजबूत लकड़ी सजावट के समान बनाने के काम में आती है। विशेष—यह पेड़ पंजाब, प्रबन्ध, बंगाल तथा मध्य प्रदेश और मद्रास में भी होता है। इसे 'घरोखी' भी कहते हैं। इसकी छाल और बड़ सौर काटने पर पिलाई जाती है।

डेराना^१—क्रि० प्र० [हि० डर] दे० 'डरना'। उ०—जहाँ पुष्प देखत मलि सगू। जित डेराइ कपित सब भगू।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४०।

डेरावाली—संज्ञा स्त्री० [हि० डेरा + वाली] रखैव। उ०—खेलावन

की डेरावाली खुद भाकर बालदेव की बुढ़िया मोची से कह गई थी ।—मैला० पु० १२ ।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० डेररी] वह स्थान जहाँ गोएँ, भैंसें रखी और दूध मक्खन आदि देवा जाता है ।

यौ०—डेरीफार्म ।

डेरीफार्म—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'डेरी' ।

डेरी०—संज्ञा पुं० [हि० डर] दे० 'डर' । उ०—जप को देखि मोहि डेर लाग्यो ।—जग०, बानी०, पु० २८ ।

डेरी०—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' । उ०—सिव सखी भेल साजिके, भाए गोरा की तजिके । नाचे हैं डेरें लैंके, बजवाल देखि भिभिके ।—ब्रज प्र०, पु० ६१ ।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो रबी की फसल के लिये जोत-कर छोड़ दी जाय । परेल ।

डेरी—संज्ञा पुं० [देश०] कटहल की तरह का एक बड़ा अँचा पेड़ जो लका में होता है ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी चमकदार और मजबूत होती है, इसलिये वह मेज कुरसी तथा सजावट के अन्य सामान बनाने के काम में आती है । नावें भी इसकी मन्थी बनती हैं । इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं । बीज भी खाने के काम में आते हैं । इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है ।

डेरी—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डुल] उत्तु पक्षी । उ०—वननाद जोवन, राजमद ज्यों पछित मँड डेल ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

डेरी—संज्ञा पुं० [सं० दल, हि० डला] डेला । पत्थर, मिट्टी या ईंट का टुकड़ा । रोड़ा । उ०—(क) नाहि व रास रसिक रस भाव्यो ताँते डेल सो डारो ।—सूर (शब्द०) । (ख) डेल सो बनाय प्राय मेलत सभा के बीच लोगव कविच कीबो खेल करि जानो हैं ।—इतिहास, पु० ३४४ ।

क्रि० प्र०—डेल करवा = नष्ट करना । डेला या रोड़ा कर देना । समाप्त करना । उ०—भोरो खर भाए रिस भीने । ठेक सबै डेल से कीने ।—नद० प्र०, पु० २७७ ।

डेरी—संज्ञा पुं० [हि० डला] वह डला जिसमें बहेलियाँ पक्षी आदि बंद करके रखते हैं । उ०—कित नैहर पुनि भाउब, कित सवुरे यह खेल । भापु भापु कहैं होइहि, परब पखि जस डेल ।—जायसी (शब्द०) ।

डेलाधारियन—संज्ञा स्त्री० [भाषारिष] (स्वतंत्र) भाषारस्य की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं ।

डेलाटा—संज्ञा पुं० [यू०, प्र०] नदियों के मुहाने या संगमस्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बालु के जमने से बनी हुई वह भूमि जो धारा के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है ।

डेला—संज्ञा पुं० [सं० दल] १. डेला । रोड़ा । २. भाँच का संकेत

उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है । भाँच का कोया । ३. एक जंगली वृक्ष । दे० 'डेररा' । उ०—डेले, पीपु, भाक और जड़ के कुड़मुड़ाए वृक्ष ।—ज्ञानदान, पु० १०३ ।

डेला—संज्ञा पुं० [हि० डेलवा] यह काठ जो नटखट चीपायों के गले में बांध दिया जाता है । ठेंगुर ।

डेलिंगेट—संज्ञा पुं० [प्र०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय ।

डेलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक पोधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है । इसका फूल लाल या पीला होता है ।

डेली—संज्ञा स्त्री० [हि० डला] डलिया । बोंस की भाँपी । दे० 'डेल' । उ०—बँधिया सुभा करत सुख केली । चुरि पीख भेलसि धरि डेली ।—जायसी (शब्द०) ।

डेली—वि० [प्र०] दैनिक (प्रसवार आदि) ।

डेवड़ा—वि० [हि० डेवड़ा] डेढ़ गुना । डेवड़ा । उ०—सुर सेनप उर बहुत उछाहू । विधि ते डेवड़ सुनोवन साहू ।—तुलसी (शब्द०) ।

डेवड़ा—संज्ञा स्त्री० तार । सिलसिला । क्रम ।

क्रि० प्र०—लगना ।

डेवड़ना—क्रि० प्र० [हि० डेवड़ा] भाँच पर रखी हुई रोटी का फूलना ।

डेवड़ना—क्रि० प्र० १ कपड़े को मोड़ना । कपड़ों को तड़ लगाना । किसी वस्तु में उसका आधा और मिलावना । डेवड़ा करना । २ भाँच पर रखी हुई रोटी को फूलाना ।

डेवड़ा—वि० [हि० डेड़] आधा और अधिक । किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा । डेड़गुना ।

डेवड़ा—संज्ञा पुं० १. ऐसा तग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या पड़ा हो (पालकी के कहार) । २ गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो । ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से पत्तों की डेड़गुनी सहाय बतलाई जाती है ।

डेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'डघोड़ी' । उ०—पल पाँवड़े डारि रहोगी डटी डेवड़ी डर छोड़ि मधोरतियाँ ।—श्यामा०, पु० १६२ ।

डेवलप करना—क्रि० प्र० [प्र० डेवलप + हि० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें प्रकृत चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय ।

डेसिमल—संज्ञा पुं० [प्र०] दशमलव । उ०—प्रपना प्राप हिसाब लगाया । पाया महा दीन से दीन । डेसिमल पर दस शून्य जमाकर, लिखे जहाँ तीन पर तीन ।—हिम त०, पु० ७० ।

डेस्क—संज्ञा पुं० [प्र०] लिखने के लिये छोटी डालुप्राँ मेज ।

डेहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन जिसपर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है । दहलीज । खतमर्दा ।

देहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दह] मल रखने के लिये कच्ची मिट्टी का लंबा बरतन ।

देहल—संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली । दहलीज ।

डैंगू फीवर—संज्ञा पुं० [अंग० डेंग फीवर] दे० 'डूंगू ज्वर' । उ०—
वे० १९२९ का डैंगू फीवर ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३ ।

डैगना—संज्ञा पुं० [हि० डेग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट बोपायों के गले में इसलिये बांध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें । ठेंगुर । लंगर ।

डैन^७—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] दे० 'डेना' । उ०—
गरजे गगन पक्षि जब बोला । डोल समुद्र डैन जब बोला ।—
जायसी ग्रं०, पृ० ६३ ।

डैना—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] चिड़ियों का वह फैलने और सिमटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं । पंख । पक्ष । पर । बाजू ।

डैमफूल—संज्ञा पुं० [अंग०] एक भंगरेजी गाली । अभागा मूलं । नारकी । सत्यानाशी । उ०—और इसपर बदमाशों की डैमफूल । तहजीब के साथ बात करना जानते ही नहीं ।—
भांसी०, पृ० २५१ ।

डैरू^१—संज्ञा पुं० [सं० डमरू] दे० 'डमरू' । उ०—सरप मरै बाँवी उठि नाचै कर बिनु डैरू बाजै ।—गोरख०, पृ० २०८ ।

डैश—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अंग्रेजी विरामचिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है ।

विशेष—यदि किसी वाक्य के बीच डैश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरणसंबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता । जैसे,—जो शब्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे अरबी के, चाहे अंग्रेजी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता । डैश का चिह्न इस प्रकार का— होता है ।

डोंगर—संज्ञा पुं० [सं० दुङ्ग (= पहाड़ी) या देशी डुगर] [स्त्री० मर्या० डोंगरी] पहाड़ी । टीला । भीटा । उ०—(क) एक फूक विश ज्वाल के जल डोंगर जरि जाहि ।—सूर (शब्द०) । (ख) डोंगर को बल उनहि बताऊँ । ता पाछे ब्रज खोजि बहाऊँ ।—सूर (शब्द०) । (ग) चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डगि । जनु पुर बीधनि बिहुरत छैल सँवारे स्वाँग ।—तुलसी (शब्द०) ।

डोंगा—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० मर्या० डोंगी] १. बिना पाल की नाव । २. बड़ी नाव ।

मुद्गा—डोंगा पार होना या लगाना = काम निबटना । छुटकारा होना ।

डोंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोंगा] १. बिना पाल की छोटी नाव । २. छोटी नाव । ३. वह बरतन जिसमें लोहार लोहा लाल करके बुझाते हैं ।

डोंडूहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोडूहा' ।

डोंडा—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड] १. बड़ी इलायची । २. टोंडा । कारतूस । उ०—चंद्रबाण सत्रएँ बिराजे । जनु हुने सोई बने

जु मागे । बरि बंदूक छठारह छोड़े । इतने उदिय होय तब डोंडे ।—हुनुमान (शब्द०) ।

डोंडी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुण्ड] १. पोस्ते का फल जिसमें से प्रफीम निकलती है । कपास की कली । उ०—सोजा, मणिपुर राजकुमार । ज्यों कपास की डोंडी में सोता है वेर पसार । एक कीठ नन्हा सा खेत, मृदुल सुकुमार ।—बदन०, पृ० ६५ । २. चमरा मुँह । टोंटी ।

डोंडी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणी] डोंगी । छोटी नाव ।

डोंडो^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोंडी' ।

डोंबि—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'डोम' ।

डोई—संज्ञा स्त्री० [देशी डोमा; हि० डोको] काठ की डोंडी की बड़ी करछी जिससे कड़ाह में दूध, घी चाशनी आदि चलाते हैं ।

विशेष—यह वास्तव में लोहे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमें काठ की लंबी डोंडी खड़े बल लगी रहती है ।

डोक—संज्ञा पुं० [देश०] छुहारा जो पककर पीसा हो जाय । पकी हुई खजूर ।

डोकनी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] कठोती । उ०—बाँस का डोगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया ।—वेपाल०, पृ० ३१ ।

डोकर—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० डोकरी] दे० 'डोकरा' ।

डोकरडो^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोकरा—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर, प्रा० दुष्कर ?] [स्त्री० डोकरी] १. बुढ़ा आदमी । अशक्त और बुढ़ मनुष्य । † २. पिता ।

डोकरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डोकरी + रिया (प्रत्यय)] दे० 'डोकरी' ।

डोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोकरा] बुढ़ी स्त्री । उ०—तहाँ मागं मे एक डोकरी की घर मिल्यो ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० ३२० ।

डोकरों^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा' ।

डोका^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोका^२—संज्ञा पुं० [देश०] डठल । उ०—उर्करवी डोका खुगइ, मयस डेमायड भाण ।—डोला०, दृ० ३३६ ।

डोकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ या छोटा कटोरा या बरतन जिसमें तेल, उबटन आदि रखते हैं ।

डोकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं ।

डोगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोगर' ।

डोगरा—संज्ञा पुं० [हि० डोंगर] जम्बू, कश्मीर, कांगडा आदि में बसी एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के व्यक्ति ।

डोंगरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. डोगरा जाति के लोगों की बोली जो पंजाबी की एक शाखा है । २. छोटे छोटे घर । उ०—काम करने के लिये मीलों दूर साधारण से छोटे छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें डोंगरी कहते हैं ।—किन्नर०, पृ० १६ ।

डोज—संज्ञा स्त्री० [अंग० डोज] साना । खुराक । मोताब ।

डोड़हथी—संज्ञा स्त्री० [हि० डौडा + हाथ] तलवार (डि०) ।

डोड़हा—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] पानी में रहनेवाला साँप ।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक सता जो शोध के काम में जाती है । विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्धक मानी जाती है । इसे जीवती भी कहते हैं ।

डोडो—संज्ञा पुं० [सं०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती ।

विशेष—यह चिड़िया मारिचस (मिरिच के) टापू में जुलाई १६८१ तक देखी गई थी । इसके चित्र यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं । सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं । डोडो भारी और वेढे शरीर की चिड़िया थी । डोलडोल में बत्ताख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार अपना बचाव कर सकती थी । मारिचस में यूरोपियनों के बसने पर इस दोन पक्षी का समूल नाश हो गया ।

डोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'डोड़ी' । उ०—(क) इनके मिलने में डोड़ी पहरा नहीं लगता ।—श्रीनिवास प्र० (नि०), पृ० ५ । (ख) देसोतारी डोड़ियाँ गोला करे गलार ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ८७ ।

डोब—संज्ञा पुं० [हि० डूबना] डूबाने का नाव । गोता । डूबकी ।

मुहा०—डोब देना = गोता देना । डूबाना । जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना । कलम को स्याही में डोब देना ।

डोबना—क्रि० स० [हि० डूबाना] डूबकी देना । डूबाना । गोता देना । उ०—भागल डोब पाछल तारे ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

डोबा—संज्ञा पुं० [हि० डूबाना] गोता । डूबकी ।

मुहा०—डोब देना या भरना = डूबाना । गोता देना । जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना ।

डोभरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजा महुआ ।

डोम—संज्ञा पुं० [सं० डम, देशी डूब, डोंव] [स्त्री० डोमिनी, डोमनी] १. प्रसुष्य मीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में पाई जाती है । उ०—यह देखो डोम लोगों ने सुखे गन्ने सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़कर बेवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २९७ ।

विशेष—स्पृतिथी में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता । केवल मत्स्यसूक्त तंत्र में डोमों को प्रसुष्य लिखा है । कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है । इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे । गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था । पर अब यह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है । शमशान पर शव जलाने के लिये भाग देना, शव के ऊपर का कफन सेना, सुप, डले आदि बेचना आजकल डोमों का काम

है । पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी लाकर बेचते हैं ।

२ एक नीच जाति जो मगल के भवसरों पर लोगों के यहाँ जाती बजाती है । डाढी । मीरासी ।

डोमकौआ—संज्ञा पुं० [हि० डोम + कौआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है । डोम काक या डोम काग नाम भी इसके हैं ।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० [हि० डोम + ढा (प्रत्य०)] दे० 'डोम' । उ०—शमशान के डोमड़ों तक की नोकाएँ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११३ ।

डोमसमौटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल तबि आदि का काम करती है ।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोम] १. डोम जाति की स्त्री । २. डोम की स्त्री । ३. उस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर गाने बजाने का काम करती है । ये स्त्रियाँ गावे बजाने के प्रतिरिक्त कहीं कहीं वेश्यावृत्ति भी करती हैं ।

डोमसाह—संज्ञा पुं० [हि० डोम + साह] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गोदड़ रुख भी कहते हैं । वि० दे० 'गोदड़ रुख' ।

डोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

डोमाकाग(७)—संज्ञा पुं० [सं० ड्रोण + काक] दे० 'डोमकौआ' । उ०—मँवर पतंग जरेँ भी तागा । कोइल, मुजइल, डोमाकागा ।—जायसी प्र०, पृ० १६३ ।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हि० डोम] १. डोम जाति की स्त्री । २. मीरासियों की स्त्री । दे० 'डोमनी' । उ०—नटिनी डोमिन डाढ़िनी सहनायन परकार । निरतत नाद बिनोद सौं विहँसत खेलत नार ।—जायसी (सन्द०) ।

डोमीनियन—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वतंत्र शासन या सरकार । २. स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य । जैसे, ब्रिटिश डोमीनियन । ३. उपनिवेश । अधिराज्य । उ०—पर भारत को सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा डोमीनियन का दर्जा नहीं मिला था ।—भारतीय०, पृ० २६ ।

यौ०—डोमीनियन स्टेट = अधिराज्य का दरजा । अधिनियमिक राज्य का पद ।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोरा । तागा । बागा । रस्सी । सूत । उ०—डोठि डोर नैना दही, छिरकि रूप रस ठोय । मयि मो घट प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय ।—रसनिधि (सन्द०) । २. पतंग या गुड्डी उड़ाने का मसिदार तागा । ३. सिलसिला । कतार । ४. अवसंब । सहारा । लगाव ।

मुहा०—डोर पर बगाना = रास्ते पर खाना । प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना । ढ़क पर खाना । प्रकृत करना । परवाना । डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर तागा भरकर सीना । फलीता खाना । डोर मजबूत होना = जीवन का सुख बढ़ होना । त्रिदोष नाकी रहना । डोर होना = सुख होना । मोहित होना । खट्टा होना । वि० दे० 'डोरी' ।

डोरक—संज्ञा पुं० [सं०] डोरा । तागा । सूत्र । धागा ।
डोरडा—संज्ञा पुं० [दे०] धागे का ककन, जो व्याह में बँधता है
 और जिसे खोलकर वर वधू को जुमा खेलाने की रीति चलती
 है । उ०—खेले जुवा डोरडा खोले । सह सुभ कारज सारिया ।
 —रघु० ४०, पु० ८७ ।

डोरना—संज्ञा पुं० [हि० डोर] दे० 'डोरा' । उ०—हरीचंद यह प्रेम
 डोरना को कैसे करि छुटे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पु० ४६२ ।

डोरही—संज्ञा स्त्री० [दे०] बड़ी कटाई । बड़ी भटकटैया ।

डोरा—संज्ञा पुं० [सं० डोरक] १. रुई, सन, रेशम आदि को बटकर
 बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो, पर लंबाई
 में लकीर के समान दूर तक चला गया हो । सूत्र । सूत ।
 तागा । धागा । जैसे, कपड़ा सीने का डोरा, माला गुँथने का
 डोरा । २. धारी । लकीर । जैसे,—कपड़ा हरा है, बीच बीच
 में लाल डोरे हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

३. धाँखों की बहुत महीन लाल नसें जो साधारण मनुष्यों की
 धाँख में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नये की उम्र में
 होते हैं या सोकर उठते हैं । जैसे,—धाँखों में लाल डोरे
 कानो में वालियाँ । ४. तलवार की धार । उ०—डोरन में
 छाछे चीनी छाछे प्रागे पाछे प्रति भारी ।—पद्माकर प्र०, पु०
 २८७ । ५. सपे धी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से
 डालते समय बँध जाती है ।

मुहा०—डोरा देना = तपा हुआ धी ऊपर से डालना ।

६. एक प्रकार की करछी जिसकी डीढ़ी खड़े बल लगी रहती
 है और जिससे धी निकालते हैं या दूध आदि कड़ाह में चलाते
 हैं । परी । ७. स्नेहसूत्र । प्रेम का बंधन । लगन ।

मुहा०—डोरा डालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना । प्रेम में फँसाना ।
 अपनी ओर प्रवृत्त करना । परचाना । उ०—यह डोरे कहीं
 और डालिप, समझे प्राप ।—फिसाना०, भा० ३, पु० १२५ ।
 डोरा लगना = स्नेह का बंधन होना । प्रीति संबंध होना ।

८. वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता
 लगे । अनुसंधान सूत्र । सुराग । उ०—जुबति जोन्ह में मिलि
 गई नेकु न देत लखाय । सोंछे के डोरे सगी, मली चली संग
 आय ।—बिहारी (शब्द०) । † ९. काजल या सुरमे की
 रेखा । १०. नृत्य में कंड की गति । नाचने में गरदन हिलाने
 का भाव ।

डोरा—संज्ञा पुं० [हि० डोड़] पोस्ते का डोड़ । डोडा ।

डोरि—संज्ञा स्त्री० [हि० डोर] दे० 'डोरी' । उ०—ज्यों कपि डोरि
 बाँधि बाजीगर कन कन को चोहटें नचायो ।—सूर०, १।३२६ ।

डोरिया—संज्ञा पुं० [हि० डोरा] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा
 जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों । २. एक
 प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं । यह ऋतु के
 अनुसार रंग बदलता है । ३. जुलाहों के यहाँ तागा उठाने-
 वाला लड़का । ४. एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ

शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी । ये लोग कुत्तों
 को शिकार पर सघाते थे ।

डोरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोरी' । उ०—सुरत सुहागिनि
 जब भरि लावे बिन रसरी बिन डोरिया ।—धरम०, पु० ३५ ।

डोरियाना—क्रि० सं० [हि० डोरी + प्राना (प्रत्य०)] पशुओं को
 रस्सी से बाँधकर ले चलना । बागडोर लगाकर घोड़ों को ले
 जाना । उ०—गवने भरत पयादेहि पाये । कोतल संग जाहि
 डोरियाये ।—तुलसी (शब्द०) । २. परचाना । हिलगाना ।

डोरिहार—संज्ञा पुं० [हि० डोरी + हारा] [स्त्री० डोरिहारिनी]
 पटवा ।

डोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोरा] १. कई डोरों या तागों का बटकर
 बनाया हुआ खंड जो लंबाई में दूर तक लकीर के रूप में
 चला गया हो । रस्सी । रज्जु । जैसे, पानी भरने की डोरी,
 पक्का खींचने की डोरी ।

मुहा०—डोरी खींचना = सुध करके दूर से अपने पास बुलाना ।
 पास बुलाने के लिये स्मरण करना । जैसे,—जब भगवती डोरी
 खींचिगी तब जायेंगी (स्त्रि०) । डोरी लगना = (१) किसी
 के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान
 बना रहना । जैसे,—अब तो घर की डोरी लगी हुई है ।
 उ०—भारति धरज लेहु सुनि मोरी । चरवन लागि रहे छ
 डोरी ।—जग० श०, पु० ५८ ।

२. वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर
 डालकर सीते हैं ।

क्रि० प्र०—भरना ।

३. वह रस्सी जिसे राजा महाराजाधों या बादशाहों की सवारी के
 प्रागे प्रागे हृद बाँधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं ।

विशेष—यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी
 की हृद के भीतर कोई जा न सके ।

क्रि० प्र०—प्राणा ।—चलना ।

४. बाँधने की डोरी । पाश । बंधन । उ०—मैं मेरी करि वनम
 गंवावत जब सगि परत न जम की डोरी ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—डोरी टूटना = सबंध टूटना । उ०—का तकसीर मई
 प्रभु मोरी । काहे टूटि जाति है डोरी ।—जग० श०, पु० ६४ ।
 डोरी डोली छोड़ना = देखरेख कम करना । चौकसी कम
 करना । जैसे,—जहाँ डोरी डोली छोड़ी कि बच्चा बिगड़ा ।
 ५. डीढ़ीदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध, चाशनी आदि
 चलाते हैं ।

डोरे—क्रि० वि० [हि० डोर] साथ पकड़े हुए । साथ साथ ।
 संग संग । उ०—(क) प्रभु निचोरे कल बोलत निहोरे नैक,
 सखिन के डोरे 'देव' डोले जित तित कों ।—देव (शब्द०) ।
 (ख) बानर फिरत डोरे डोरे अथ तापसनि, शिव को
 समाज कैधों ऋषि को सदन है ।—केशव (शब्द०) ।

डोल—संज्ञा पुं० [सं० डोल (= झूलना, लटकाना)] १. लोहे
 का एक गोल बरतन जिसे कुँड़े में खटकाकर पानी खींचते हैं ।

२. हिडोला। झूला। पालना। उ०—(क) सघन कुज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन सोख। खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधि मंडल डोल।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—डोल उत्सव = दे० 'डोलोत्सव'। उ०—सो हतने ही उनको सुधि पाई जो आजु तो डोल उत्सव की दिन है।—दो सो धावन, भा० १, पृ० २२६।

३. डोली। पालकी। शिविका। उ०—महा डोल दुलहिन के भारी। बेहू बताय होहु उपकारी।—रघुराज (शब्द०)। † ४. धार्मिक उत्सवों में निकलनेवाली चौकियाँ या विमान। १ जहाज का मस्तूल (लघ०)।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

७. कं०। खलमखी। हलचल। उ०—बावसाहू कहें ऐस न बोलु। चढ़े तो परं जगत महुँ डोलु।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

डोल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की काजी मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोला^३—वि० [हि० डोलना] डोलनेवाला। चल। उ०—तुम बिनु काँपे घनि हिया, तन तिनउर भा डोल। तेहि पर बिरह जराइके, चहै उड़ावा भोल।—जायसी (शब्द०)।

डोलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काज का लाल देने का एक प्रकार का बाजा।

डोलखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डोल + खी (प्रत्य०)] १ छोटा डोल। २ फूल या फल आदि रखकर हाथ में लटकाकर ले चलने योग्य बाँध, बँट आदि का पात्र।

डोलहाल—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] १ चलना फिरना। २. बिसा के लिये जाना। पाखाने जाना।

क्रि० प्र०—करना।

डोलढाक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ढाक ?] पेंगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं। वि० दे० 'पेंगरा'।

डोलदहल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] हलचल। उ०—डोलदहल लखमगुर है, मत बयर्थ डरो। सो बार सजड़ने पर भी है दुनिया बसती।—सुत०, पृ० ४८।

डोलना^१—क्रि० प्र० [सं० दोन (= लटकना, हिलना)] १. हिलना। चलायमान होना। गति में होना। २. चलना। फिरना। टहलना। जैसे,—चोपाए चारों ओर डोल रहे हैं। उ०—(क) भक्तबिरह कातर करुनामय, डोलत पाछे लागे।—सूर०, १।८। (ख) जाहि बन कैमो न डोल रे। ताहि बन पिया हसि बोल रे।—विद्यापति०, पृ० ३१६।

यौ०—डोलना फिरना = चलना घूमना।

३. झुलना जाना। हटना। दूर होना। जैसे,—वह ऐसा झकड़कर माँगता है कि डुलाने से नहीं डोलता। ४. (चित्र) बिचलित होना। (चित्र का) टड़ न रह जाना। (चित्त का) किसी

धात पर) जमा न रहना। धिगना। उ०—(क) मर्म बचन जत्र सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बटु करि कोटि कुतर्क जयारवि बोलइ। मचल सुता मनु भचल बयारि कि डोलई?—तुलसी (शब्द०)।

डोलना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'डोला'।

डोलनि^(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डोलना] डोलने की स्थिति या कार्य। उ०—वैसिए हंसनि, चहनि पुनि डोलनि। वैसिए लटकनि, मटकनि, डोलनि।—नद० प्र०, २६५।

डोलरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डोल + री (प्रत्य०)] पलंग। छाट। भोखी।

डोला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० डोल] [स्त्री० भल्पा० डोली] १. स्त्रियों के बैठने की वह बंद सवारी जिसे कहार कर्षों पर लेकर चलते हैं। पालकी। मियाना। शिविका।

मुहा०—(किसी का) डोला भेजना = दे० 'डोखा देना' उ०—डोला भेजि दीबे जोन माँगत दिल्ली को पति, मोलहन कह्य सीख मेरी सीस घर रे।—हम्मीर०, पृ० २०। डोला माँगना = ब्याह के लिये कन्या माँगना। उ०—मुसलमानों द्वारा डोला की माँग की प्रस्वीकार करने पर उनपर आक्रमण किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया।—स० दरिया (भू०), पृ० १०। (किसी का) डोला (किसी के) छिर पर या चौड़े पर उछलना = किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना। डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना। (२) धूर्तों और नीची जातियों में प्रचलित एक प्रथा। अपनी बेटी को वर के घर पर ले जाकर ब्याहना। डोला निकालना = दुलहिन को बिदा करना। डोला सेना = भेंट में कन्या सेना।

२. वह झोंका जो झूले में दिया जाता है। पेंग।

डोलाना—क्रि० सं० [हि० डोलना] १ हिलाना। चलाना। गति में रखना। जैसे, पंखा डोलना।

संयो० क्रि०—देना।

२ हटाना। दूर करना। भगाना।

डोलायंत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोलायत्र] दे० 'दोलायंत्र'।

डोलिया^(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डोली] डोली। पालकी। उ०—छोट मोट डोलिया चदन के छोटे चार कहार हो।—धरम०, पृ० ६२।

डोलियाना—क्रि० सं० [हि० डोलना] १. किसी वस्तु को चुपके से हटा देना। किसी चीज को गायब कर देना। २. दे० 'डोली करना'।

डोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कर्षों पर उठाकर ले चलते हैं। पालकी। शिविका। उ०—पाँव चाँपासर की डोली के बाबत जो हाल महकमे बंदोबस्त से मिला उसकी नकल आपकी सेवा में भेजता हूँ।—सुंदर प्र० (बी०), भा० १, पृ० ७५।

डोली करना—क्रि० सं० [हि० डोलना] घटा बताना। हटाना। टालना।—(दलाल)।

डोली डंडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] बालकों का एक खेल।

बोल—सका स्त्री० [देश०] १. रेबंद चीनी ।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों के जंगल में होता है। वहाँ से इसकी जड़, जो पीसी पीसी होती है, नीचे की ओर भेजी जाती है और बाजारों में बिकती है। पर, गुण में यह चीन की रेबंद (रेबंद चीनी), खुशन की रेबंद (रेबंद खताई) या विलायती रेबंद के समान नहीं होती। इसे पचमचल और चुकरी भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल, आसाम और भूटान से लेकर बरमा तक होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह चीने और छाते बनाने के काम में अधिकतर पाती है। टोकरे और पात रखने के डले भी इससे बनते हैं।

डोलोत्सव—सका पुं० [सं० दोसोत्सव] दे० 'दोसोत्सव'। उ०—तब श्री गुसाईं जी का वैष्णव सों कहूँ, जो सब की तुम डोलोत्सव कीन ठौर कीन प्रकार करपो ?—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २३१।

डोसा—सका पुं० [देश०] उड़व या चावल को पीसकर समीर चठने पर बनाया जानेवाला चिसड़ा या चलाटा।

डोहरा—सका पुं० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन जिससे कोल्हू से गिरा हुआ रस निकाला जाता है।

डोहली—सका स्त्री० [हि० डोली, मध्यगम डोहली (जेसे, प्रमहर = प्रंबर) दे० 'डोली'। उ०—मोरी गयी डोहली माँहि। साकुर पगौ तणी बल साहे।—रा० ६०, पृ० ३३५।

डोहि, डोही—सका स्त्री० [हि० डोई] दे० 'डोई'। उ०—छननी बखनी डोहि धोर करछी बहु करछी।—सुदन (चन्द०)।

डोहीजना—क्रि० प्र० [देश०, तुल० हि० डोहना] मन्वेपण करना। डूँडना। खोजना। उ०—मन सीखाएउ जइ हुबइ पोखी हुबइ त माए। जाइ मिखीजइ साजणी डोहीजइ महिराए।—दोसा०, पृ० २११।

डोंडा—सका पुं० [हि०] डोंगा। नाव। उ०—घसके पहार भार प्रगटयो पहार जस डोंगरनि डोंडा चले समद सुझाने हैं। रसरतन, पृ० १०।

डोंडाना—क्रि० प्र० [हि० डोंडाबोल] डोंडाबोल रहना। विचलित होना। चबराचना।

—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] १. एक प्रकार का डोल जिसे किसी बात की घोषणा की जाती है। बिडोरा।
२. उ०—चित डोंडी बुधि फेरी लावे। मन हुनो के।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७४।

।—बजना।—बजाना।

= (१) डोल बजाकर सर्वसाधारण को सूचित करना। (२) सब किसी से कहते फिरना।
१) घोषणा होना। (२) बुझाई फिरना।
। चबती होना। उ०—लौड़ी के घर डोंडी बजानो।—सूर (चन्द०)।

२. वह सूचना जो सर्वसाधारण को डोल बजाकर दी जाय। घोषणा। मुनाबो।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना। उ०—तब ब्रज के गामन डोंडो फेरी।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ३००।

डोंरा—सका पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो सेतों में पैदा हो जाती है। इसमें साँया की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने में कड़ूए होते हैं।

डोंर, डोंरु—सका पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—नील पाठ परोइ मणिगण कणिग पोने जाइ। भुनभुनाकरि हंसत मोहन नचत डोंर बजाइ।—सूर (चन्द०)।

डोआ—सका पुं० [देश०] काठ का चमचा। काठ की डोंरी की बड़ी करछी। उ०—मकड़ी डोआ कपटुती सरस कातु मनुहारि। सुप्रभु सप्रहृदि परिहरहि सेवक सखा विचारि।—तुलसी (चन्द०)।

डोका, डोकी—सका स्त्री० [देश०] पंजुर पदी। पड़की। उ०—ममिसारिकामों की नोका ऐसी प्रगल्भ मानो डोका।—श्यामा० पृ० ३१।

डौर—सका पुं० [हि० डोल] डोल। उग। प्रकार। उ०—(क) मोरें ठोर मोरन पे बोरन के ये गए।—पद्माकर प्र०, पृ० १६१। (ख) पद्माकर चांदनी चढ़ते कछु मोर हो डोल ये गए हैं।—पद्माकर प्र०, पृ० २०६।

डौर—सका स्त्री० [हि०] दे० 'डोर' उ०—गुहनी डौर सुरति के भोरे मेरा मुनक मिसाही।—राम० धर्म०, पृ० ३७५।

डौर, डौरु—सका पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—(क) कछु वज्रियं डोर रुद्र समारी।—प० रासो पृ० १७७। (ख) बने डमरु डौर डमरु तड़कें। पढ़ें मेरे धुनै हके गेन हकें।—प० रा० १।३६०।

डोल—सका पुं० [हि० डोल ?] किसी रचना का प्रारंभिक रूप। ढाँचा। प्रकार। ढुंढा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डोल ढाँचना=ढाँचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ करना। बनाने में हाथ लगाना। लगाना लगाना। डोल पर लाना=काठ छोटकर मुडोल बनाना। दुस्तव करना।

२. बनावट का उग। रचना। प्रकार। उ०—जेसे,—इसी डोल का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डोल से लगाना=ठीक कम से रखना। इस प्रकार रखना जिससे देखने में अच्छा लगे।

३. तरह। प्रकार। भाँति। किस्म। थोर। तरीका। ४. ममिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदबीर। व्योत। आयोजन। सामान। उ०—कबीर राम सुमिरिए क्यों फिरे थोर की डोल।—कबीर म०, पृ० ३६५।

यौ०—डोलडाल।

मुहा०—डोल पर लाना=ममिप्रायसाधन के अनुकूल करना। ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार

प्रयुक्त करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। डोल बाँधना = दे० 'डोल लगाना'। डोल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे,—कहीं से सी रुपए १००) का डोल लगाओ।

५ रंग ढग। लक्षण। आयोजन। सामान। जैसे,—पानी बरसने का कुछ डोल नहीं दिखाई देता। ६. वसोबस्त में जमा का तकदमा। तस्वीमीना।

डोल^२—संज्ञा स्त्री० खेतों की मेड़। डाँड।

डोलडाँडा—संज्ञा पुं० [हि० डोल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। व्योत।

डोलदार—वि० [हि० डोल + फा० दार (प्रत्य०)] सुडोल। सुंदर। खूबसूरत।

डोलना—कि० सं० [हि० डोल] गढ़ना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाटकर किसी ढाँचे पर लाना। दुस्त करना।

डोलना—संज्ञा पुं० [दे०] हाथ का गढ़ना। उ०—(क) मन्बन की बाँह के डोले में गोली लगी थी।—फूलो०, पृ० ११। (ख) करि हिकमत रहकला बनाई। डोले तले से धरी कलाई।—प्राण०, पृ० २२।

डोलियाना—कि० सं० [हि० डोल] १. ढग पर माना। कह सुनकर अपनी प्रयोजन सिद्धि के अनुकूल करना। काट छाँटकर किसी ठीक आकार का बनाना। गढ़कर दुस्त करना।

डोबर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद, दुम काली और बाँच लाल होती है।

डोबा—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'डोबा'।

ड्यंभक(७)†—संज्ञा पुं० [सं० ड्यंभक] दे० 'डिम्बक'। उ०—भेष बिबजित भीख बिबजित, बिबजित ड्यंभक रूप। कहै कबीर तितैं लोग बिबजित, ऐसा तत्त भूप।—कबीर ग्रं०, पृ० १६३।

ड्यूक—संज्ञा पुं० [ग्र०] [स्त्री० ड्यूकेज] १. इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंशपरंपरागत उपाधि। इंग्लैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे, कनाडा के ड्यूक, विंडसर के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजाबहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंग्लैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्क्विस्, बर्ल, वाइकॉन्ट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंशपरंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या 'उत्तराधिकारी' उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। अब यह भी नियम हो गया है कि जिसे सरकार चाहे केवल जीवन भर के लिये यह उपाधि प्रदान करे। मार्क्विस्, बर्ल, वाइकॉन्ट और बैरन उपाधियों को लाहें कहलाते हैं। मार्क्विस्,

४-३६

बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

२ सामंत। सरबार। राजा।

ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] १. करने योग्य कार्य। कर्तव्य। धर्म। फर्ज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। २. वह काम जो सुपुर्द किया गया हो। सेवा। लिबमत। पहुरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। ३. नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। ४. फर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्योड़ा—वि० [हि० डेढ़] [स्त्री० ड्योड़ी] भाषा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका भाषा और ज्यादा। डेढ़गुना।

ड्यो—ड्योड़ी पाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी भाषी पाँठ। डेढ़पाँठ। मुदी।

ड्योड़ा^२—संज्ञा पुं० १. ऐसा तग रास्ता जिसके एक किनारे पर ढास या गड्ढा हो।—(पासकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से भर्कों की डढ़गुनी सख्या बतलाई जाती है।

ड्योड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १. द्वार के पास की भूमि। वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। चौकट। दरवाजा। फाटक। २. वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। उ०—महरी ने दरोगा साहब को ड्योड़ी पर अगया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४। ३. दरवाजे में घुसते ही पड़नेवाला बाहरी कमरा। पोरी। पंखरी।

ड्यो—ड्योड़ीदार। ड्योड़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योड़ी खुलना = दरबार में जाने की इजाजत मिलना। जाने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योड़ी बंद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ जाने जाने की मनाही होना। जाने जाने का निषेध होना। ड्योड़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता। ड्योड़ी पर होना = दरवाजे पर या अधीनता में होना। नौकरी में होना। उ०—बन्तो : हुजूर, हमने यह बात किसी रईस के घर में आज तक देखी ही नहीं। यहाँ चाहे बड़ बड़ के जो नावें बनाएँ, किसी और की ड्योड़ी पर होती तो बड़े बड़े निऊसवा सी जाती।—सर कु०, पृ० ३२।

ड्योड़ी—[हि० डेढ़] डेढ़गुनी। दे० ड्योड़ा।

ड्योड़ीदार—संज्ञा पुं० [हि० ड्योड़ी + फा० दार] दे० 'ड्योड़ीवान'।

ड्योड़ीवान—संज्ञा पुं० [हि० ड्योड़ी] ड्योड़ी पर रहनेवाला—सिपाही या पहरेदार। द्वारपाल। दरवान उ०—जहाँ न ड्योड़ीवान पायजामा तन धारे।—झींझर पाठक (शब्द०)।

ड्यौढ़, ड्यौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़] [वि० जी० ड्योड़ी] १. एक घीर प्राधा अधिक । उ०—वह जिसके न, दून ड्योढ़, पोन । जो वेदों में है सत्य, साम ।—प्राधना, पृ० २० ।
 ड्यौड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योड़िया] द्वारपाल । ड्योड़ीदार । दरबान । उ०—सोया ड्योड़ी प्रीत सवाई ।—रा० ४०, पृ० ३१५ ।
 डूम—संज्ञा पुं० [ड०] १. एक प्रकार का अंगरेजी बाजा । डोल । नगाड़ा । २. डोल जैसे प्रकार का बड़ा पात्र या पीपा ।
 ड्राइंग—संज्ञा स्त्री० [ड्र०] रेखाओं के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला । लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या ।
 ड्राइंगरूम—संज्ञा पुं० [ड्र०] बैठने का कमरा । बिस्तर कमरे में आनेवालों को बैठाया जाय । उ०—उनके भिये ड्राइंगरूम बनाकर सजाना पड़ता है ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७७ ।
 ड्राइवर—संज्ञा पुं० [ड्रा०] गाड़ी हौकने या चलावेवाला । जैसे, रेल का ड्राइवर ।
 ड्राई प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [ड्रा०] सूखी छपाई । छापेखाने में वह छपाई जो मिर्गोए हुए सूखे कागज पर की जाती है ।
 विशेष—इस प्रकार की छपाई के कागज को चमक नहीं जाती है और छपाई साफ होती है ।
 ड्रान—वि० [ड्र०] बराबर । हारबोतशुम्य । उ०—बाजो ड्रान रही ।—गोदान, पृ० १३२ ।
 ड्राप—संज्ञा पुं० [ड्र०] १. डूँद । बिंदु । २. दे० 'ड्राप सीन' ।
 ड्राप सीन—संज्ञा पुं० [ड्र०] १. नाट्यखाला या थिएटर के रंगमंच के आगे का परदा जो नाटक का एक एक पुरा होने पर मिराया जाता है । यवनिक्का ।
 ड्राफ्ट—संज्ञा पुं० [ड्रा०] १. भुगतान । पक्षी । खर्चा । जैसे,—अपनी का ड्राफ्ट पैसा कर कमिटी में भेज दिया गया । २. चेक । हुंडी ।
 ड्राफ्ट्समैन—संज्ञा पुं० [ड्र०] नक्शा बनानेवाला । स्थूल मानचित्र

प्रस्तुत करनेवाला । जैसे,—ड्राफ्ट्समैन ने मकान का नक्शा इंजीनियर के पास भेजा ।

ड्राम—संज्ञा पुं० [ड्र०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंग्रेजी मान जो तीन मासे के बराबर होता है ।

ड्रासा—संज्ञा पुं० [ड्र०] १. रंगमंच पर पात्रों या नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन । रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन । अभिनय । २. वह रचना जिसमें मानव जीवन का चित्र अर्कों और गम्भीरों आदि में चित्रित हो । नाटक ।

ड्रिंक—संज्ञा पुं० [ड्रि०] मद्यपान । उ०—कैलाश ने कहा पहले ड्रिंक चले, फिर खाना मंगाया जायगा ।—सत्यासी, पृ० १४० ।

ड्रिक्स—संज्ञा स्त्री० [ड्रि०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के कम से लड़े होने, चलने, धंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा । कवायद । जैसे,—स्कूल में ड्रिल नहीं होती ।

ड्रौ—ड्रिक्स मास्टर = कवायद सिखानेवाला शिक्षक ।

ड्रूटनाट—संज्ञा पुं० [ड्रू०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है ।

ड्रूने—संज्ञा पुं० [ड्रू०] नगर के गवे पानी के निकास का परनाला । मोरी । गंदगी के बहाववाली नाली ।

ड्रूस—संज्ञा पुं० [ड्रू०] पोशाक । वेशभूषा ।

ड्रूस करना—क्रि० सं० [ड्रू० ड्रूस + हिं० करना] धाव में दवा आदि भरकर बांधना । मरहम पट्टी करना । पत्थर आदि को बिकना और सुखोल करना । ३. बाल छांटना ।

ड्रूगूल—संज्ञा पुं० [ड्रू०] १. सवार । सिपाही ।

विशेष—पहले ड्रूगूल पैदल और सवार दोनों का काम देते थे । पर अब वे सवार ही होते हैं ।

२. रिसाले का नोकर । ३. क्रूर या उद्द व्यक्ति । जंगली आदमी । ४. पक्षदार सौंप । सगस नाग ।

ड

ड—हिंदी वर्णमाला का चौदहवाँ व्यंजन और टवर्ग का चौथा अक्षर । इसका उच्चारण स्थाय मुहूर्त है ।

डंक—संज्ञा पुं० [सं० ध्यापक, हिं० डाक] पलाश या छिन्नल की एक किस्म । उ०—जरी सो धरती डीवहिं डीवी । डंक परास जरे तेहि डीवी ।—पद्मनाभ, पृ० १७ ।

डंकना—संज्ञा पुं० [प्रा० डकण, हिं० डकना] दे० 'डकना' ।

डंकना—क्रि० सं० [सं० ध्याप, प्रा० धा० डक, डंक] दे० 'डकना' । उ०—(क) धिमत केस पुरुष नहिं अकिय । प्रधीराज देखत सिर डकिय ।—पृ० रा०, ६१ । ७१४ । (ख) समझि दासि सिर भर तिन डंकसे ।—पृ० रा०, ६१ । ७१६ ।

डंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंकना] डकना । धाकधान । उ०—

देह कतेब न खाँगी बाँगी । सब डकी तबि भाँगी ।—गोरख०, पृ० २ ।

डंका—संज्ञा पुं० [हिं० डाक] पलाश । डाक । उ०—बहनी बान धस धवी बेधी रन बन लख । सतजहिं तब सब रोवाँ पखिहिं तन सब पख ।—जायसी (शब्द०) ।

डंग—संज्ञा पुं० [सं० तङ्ग, तङ्गन (= बाल, पति ?)] १. क्रिया । प्रणाली । शैली । डब । रीति । धीर । धरोका । जैसे,—(क) बोलने बालने का डंग, बैठने उठने का डंग । (ख) जिस डंग से हम काम करते हो वह बहुत अच्छा है । २. प्रकार । भाँति । तरह । किस्म । ३. रचना । प्रकार । बनावट । गढ़न । डीचा । जैसे,—वह गितास और हो डंग का है । ४.

भूमिप्रायसाधन का मार्ग । युक्ति । उपाय । तद्विध । डोल ।
जैसे,—कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—निकालना ।—बताना ।

मुहा०—ढंग पर चढ़ना = भूमिप्रायसाधन के अनुकूल होना ।
‘किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ
भयं सिद्ध हो । जैसे,—उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ,
पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है । ढंग पर लाना = भूमिप्राय
साधन के अनुकूल करना । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना
जिससे कुछ मतलब निकले । ढंग का = कार्यकुशल । व्यवहार-
बख । चतुर । जैसे,—वह बड़े ढंग का धादमी है ।

५. चाल ठाल । आचरण । व्यवहार । जैसे,—यह मार खाने का
ढंग है ।

मुहा०—ढंग बरतना = शिष्टाचार दिखाना । दिखाऊ व्यवहार
करना ।

६ धोखा देने की युक्ति । बहाना । हीला । पाखंड । जैसे,—यह
तुम्हारा ढंग है ।

क्रि० प्र०—रचना ।

७ ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो ।
लक्षण । आसार । जैसे,—रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता ।
८. दशा । अवस्था । स्थिति । उ०—नैनन को ढंग से अनग
पिचकारिन ते, गातन को रंग पीरे पातन तें जानबी ।—
पद्माकर (शब्द०) ।

ढंगउजाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढंग + उजाड़] घोड़ों के दुम के नीचे
की एक भोरी जो ऐंनों में समझी जाती है ।

ढंगी—वि० [हिं० ढंग] चालवाज । चतुर । चालाक ।

ढंटस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘ढँढरस’ । उ०—ढंटस कर मन ते
हूर, सिर पर साहब सदा हुरुर ।—गुलाल०, पृ० १३७ ।

ढटार—वि० [देश०] बड़ा ठट्टा । बहुत बड़ा और वेढा ।

ढढेरा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘ढिढेरा’ । उ०—ता पाछे राजा जेम-
लजी ने सगरे ग्राम मे ढढेरा पिटाइ दियो ।—दी सी बावन०,
भा० १, पृ० २५७ ।

ढढोलना^(१)—क्रि० स० [प्रा० ढढुल्ल, ढढोल (= खोजना)] दे०
‘ढढोरना’ । उ०—प्रहू फूटी बिसिपु बरी हणहणिया हय पट्ट ।
ढोलइ धण ढढोलियउ, शीतल सुंदर घट्ट ।—ढोला०,
दू० ६०२ ।

ढँकना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘ढकना’, ‘ढकन’ ।

ढँकना^२—क्रि० स० [हिं०] दे० ‘ढकना’ ।

ढँकना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० ढँकनी] दे० ‘ढकना’ ।

ढँकुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० ‘ढँकली’ ।

ढँग^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढंग] भूमिप्राय साधने का उपाय । डोल ।
दे० ‘ढंग’ । उ०—वाही के जेए बलाय सों, बालम ! हैं तुम्हे
नीकी बतावति हो ढंग ।—देव (शब्द०) ।

ढँगलाना—क्रि० स० [हिं० ढाल] लुढ़काना ।

ढंगिया^१—वि० [हिं० ढंग + दया (प्रत्य०)] दे० ‘ढंगी’ ।

ढँढरच—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढंग + रचना] धोखा देने का आयोजन ।
पाखंड । बहाना । हीला ।

ढँढोर—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० धायें धायें] १. भाग की लपट । उवाला ।
लो । उ०—(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा । बिरह ढँढोर
परहि सिर जटा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कथा जरे भगिनि
जनु लाए । बिरह ढँढोर जरत न जराए ।—जायसी (शब्द०)
२ काले मुँह का बंदर । लंगूर ।

ढँढोरची—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढँढोर + ची (प्रत्य०)] ढँढोरा फेरने-
वाला । मुनादी फेरनेवाला । उ०—लेकिन बूस्की भोर मोरा-
वियन धर्मप्रचारकों से ढँढोरची मुक्ति सेनिकों का तुलना नहीं
की जा सकती ।—किन्नर०, पृ० ६४ ।

ढँढोरना^१—क्रि० स० [हिं० ढँढना] टटोलकर ढँढना । हाथ
ढालकर इधर उधर खोजना । उ०—(क) तेरे लाल मेरो
माखन खायो । दुपहर दिवस जानि घर सुनो ढँढोरि
भापही भायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) वेद पुरान भागवत
गीता चारों बरन ढँढोरी—कबीर० श०, भा० १, पृ० ८५ ।

ढँढोरा—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० ढम+ढोल] १ घोषणा करने का ढोल ।
ढुगढुगी । डोंडो ।

मुहा०—ढँढोरा पीटना = ढोल बजाकर चारों ओर जताना ।
मुनादी करना ।

२ वह घोषणा जो ढोल बजाकर की जाय । मुनादी ।

मुहा०—ढँढोरा फेरना = दे० ‘ढँढोरा पीटना’ ।

ढँढोरिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढँढोरा] ढँढोरा पीटनेवाला । ढुगढुगी
बजाकर घोषणा करनेवाला । मुनादी करनेवाला ।

ढँढोलना^१—क्रि० स० [हिं०] दे० ‘ढँढोरना’ उ०—रतन निराला
पाइया, जगत ढँढोलिया वादि ।—कबीर प्र०, पृ० १५ ।

ढँपना^१—क्रि० प्र० [हिं० ढकना] किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई
न देना । किसी वस्तु के ऊपर से छेक लेने के कारण उसकी
छोट में छिप जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढँपना^२—सञ्ज्ञा पुं० ढाकने की वस्तु । ढकन ।

ढ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा ढोल । २. कुत्ता । ३. कुत्ते की पूँछ ।
४. ध्वनि । नाद । ५. साँप ।

ढई देना—क्रि० प्र० [हिं० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम
से पहुँचना और जबतक काम न हो जाय तबतक न हटना ।
धरना देना ।

ढकई^१—वि० [हिं० ढाका] ढाके का ।

ढकई^२—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है ।

ढकना^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ढक् (= छिपाना)] [स्त्री० ढक्पा० ढकनी]
वह वस्तु जिसे ऊपर ढाल देने या बैठाने से नीचे की वस्तु
छिप जाय या बंद हो जाय । ढकन । चपनी ।

ढकना^२—क्रि० प्र० किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना ।
छिपना । जैसे—मिठाई कपड़े से ढकी है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

ढकना^३—क्रि० सं० दे० 'ढाँकना' ।

ढकनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढकनी' । उ०—सुभग ढकनिया
ढाँपि पट जतन राखि छीके समदायो ।—सूर (शब्द०) ।

ढकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकना] १. ढाँकने की वस्तु । ढक्कन ।
२. फूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के
पीछे की ओर गोदा जाता है ।

ढकपन्ना—संज्ञा पुं० [हि० ढाक+पन्ना (= पत्ता)] पलास पापड़ा ।

ढकपेडरु—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

ढकसाँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. सूखी खाँसी में गले से होनेवाला
ठन ठन शब्द । २. सूखी खाँसी ।

ढका^१—संज्ञा पुं० [सं० धाक] तीन सेर की एक तोल या बाट ।

ढका^२—संज्ञा पुं० [प्र० ढाक] घाट । जहाज ठहरने का स्थान ।
(शब्द०) ।

ढका^३—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] बड़ा ढोल । उ०—नवति दुँडुमि
ढका बदन मार हका, चलत लागत धका कहत प्रागे ।—
सूदन (शब्द०) ।

ढका^४—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का । टक्कर । उ०—(क) ढकनि
ढकेलि पेलि सचिव चले ले ठेलि नाथ न चबैगो बल अनल
भयावनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) चढ़ि गढ मढ़ छड़
कोट के कँगूरे कोपि नेकु ढका देंहुँ ठेलव की हैरी सी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

ढकिल^५—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए
वेग के साथ धावा । चढ़ाई । आक्रमण । उ०—ढकिल करी
सब ते प्रथिकाई । मोडी गुप्त लोगन की घाई ।—लाल कवि
(शब्द०) ।

ढकेलना—क्रि० सं० [हि० धक्का] १. धक्के से गिराना । ठेलकर
प्रागे की ओर गिराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. धक्के से हटाना । ठेलकर सरकना । जैसे,—भीड़ को पीछे
ढकेलो ।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री० [हि० ढकेलना] ठेलमठेला । आपस
में धक्का धक्की ।

क्रि० प्र०—करना ।

ढकोरना^१—क्रि० सं० [अनु०] पी जाना । दे० 'ढकोसना' ।

ढकोसना—क्रि० सं० [अनु० ढक ढक] एकबारगी पीना । बहुत
खानापीना । जैसे,—इतना दूध मत ढकोस लो कि कै
हो जाय ।

संयो० क्रि०—जाना । —लेना ।

ढकोसला—संज्ञा पुं० [हि० ढग+सं० कीशल] ऐसा आयोजन
जिससे लोगों को धोखा हो । धोखा देने का या मतलब साधने
का ढंग । धाड़बढ़ । मिथ्या जाल । कपट व्यवहार । पालतू ।
उ०—इस ढकोसलों में क्या तथ्य है ।—कंकाल, पृ० १०४ ।
(ख) मगर यह इतक सब ढकोसला ही ढकोसला है ।—
फिसाना, भा० १, पृ० ११ ।

क्रि० प्र०—करना । —फैलाना ।

ढक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम । (कदाचित् 'ढाका') ।
२. विशाल आराधना मंदिर । बड़ा मंदिर (को०) ।

ढक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाकने की वस्तु । वह वस्तु जिसे
ऊपर से डाल देने या बैठाने से कोई वस्तु छिप जाय या बंद
हो जाय । जैसे, बिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन । २.
(दरवाजा प्रादि) बंद करना या ढक देना (को०) ।

ढक्का^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बड़ा ढोल । २. नगाड़ा । ढका ।
उ०—शस्त्र मेरी पणव मुरज ढक्का बाद धनित । घटा नाद
बिष बिष गुजरत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५ ।
२. डमरू । ३. छिपाव । दुराव (को०) । ४. भदशन ।
सोप (को०) ।

ढक्का^२—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ढका' ।

ढक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तानिकों की उपासना में तारा देवी का
एक नाम (को०) ।

ढक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाल] पहाड़ की ढाल जिससे होकर सोप
चढ़ते उतरते हैं ।—(पंजाब) ।

ढगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिगल में एक मात्रिक गण जो तीन
मात्राओं का होता है । इसके तीन भेद हो सकते हैं, यथा—
IS, SI, III इनमें से पहले की संधा रसवास और ध्वजा,
दूसरे की पवन, नंद, स्वास, ताल और तीसरे की वलय है ।

ढचर—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] १. किसी वस्तु को बनाने या ठीक
करने का सामान या ढाँचा । आयोजन और सामान ।

क्रि० प्र०—फैलाना । बाँधना ।

२. टटा । बखेड़ा । जंजाल । घषा । कारबार । ३. आडंबर । झूठा
आयोजन । ढकोसला ।

क्रि० प्र०—फैलाना ।

४. बहुत दुबला पतला और बूढ़ा ।

ढटीगड़—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (= मोटा आदमी), हि० धींग, धींगड़ा]
१. बड़े डोलडोल का । धींग । जैसे,—इतने बड़े ढटीगड़ हुए पर
कुछ शऊर न हुआ । २. हूँट पुष्ट । मुस्टडा । मोटा ताजा ।

ढटीगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटीगड़' ।

ढटींगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढटीगड़' ।

ढट्टा^१—संज्ञा पुं० [हि० ढाढ़ या देश०] वह भारी साफा या मुरेठा जो
सिर के प्रतिरिक्त ढाढ़ी और कानों को भी ढाँके हो ।

ढट्टा^२—संज्ञा पुं० [हि० ढाट] छेद या मुँह फसकर बंद करने की
वस्तु । ढाट । ठेंपी । काग ।

ढट्टी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाढ़] ढाढ़ी बाँधने की पट्टी ।

ढट्टी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु ।
ढाट । ठेंपी ।

ढड्काना^३—क्रि० सं० [हि०] प्रागे बढ़ाना । जोर लगाकर ठेलना ।
ढक्काना । उ०—गाड़ी बाकी मार्ग में, बछड़न करी न पेश ।
अब गाड़ी ढड्काय दे, बवल घग हिरवेश ।—बुक्स ग्रं०
धं० (इति०), पृ० ८८ ।

ढड्ढा^१—वि० [देश०] बहुत बड़ा । आवश्यकता से अधिक बड़ा ।
बड़ा और बेढगा ।

ढङ्ढा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १. ढाँचा। मर्गों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारम्भ में की जाती है।

क्रि० प्र०—सजा करना।

२. आठवर। दिखावट का सामान। झूठा ठाट बाट।

क्रि० प्र०—सजा करना।

ढङ्ढो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० ढङ्ढा] १. बुढ़ी स्त्री। वह बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में हड्डी का ढाँचा ही रह गया हो। २. वक्तादिन स्त्री। ३. मटमैले रंग की एक बिड़िया जिसकी चोंच पीली होती है। यह बहुत लडती और चिल्लाती है। चरखी।

मुहा०—ढङ्ढो का ढङ्ढोवाला=मूर्ख। बेवकूफ।

ढङ्ढेसुरी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ठाट + सं० ईश्वर] दे० 'ठाठेश्वरी'। उ०—कोउ बाँह को उठाव ढङ्ढेसुरी कहाइ, जाइ कोउ तो मवन कोउ नगन बिचार है।—भीखा श०, पृ० ५५।

ढङ्ढर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] शरीर। देह। टट्टर। उ०—चहुँमान तुच्छ ढङ्ढर बहिय दुरिग सीर बिय सिर डरथी।—पु० रा०, १०।२७।

ढनढन—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] ढन ढन का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।

ढनका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] डोल, नगाड़ा, यदि बाजों की ध्वनि। उ०—पैज रुपनि दुहुँ और चोप चुहूँ चाचरि सीर डोल ढनक घोष मंगल सुनत सफल होत कान।—घनानंद, पृ० ४०४।

ढनमनाना—क्रि० प्र० [मनु०] लुढ़कना। ढुलकना। उ०—मुठिका एक महाकवि हनी। रघिर बसत घरनी ढनमनी।—तुलसी (शब्द०)।

ढपा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दफ, हिं० डफ] दे० 'डफ'।

ढपना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढापना] ढाकने की वस्तु। ढक्कन।

ढपना^२—क्रि० प्र० [हिं० ढकना] ढका होना। उ०—नसतु सेत सारी ढप्यो, तरल तरीना कान। परघो सनी सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान।—विहारी (शब्द०)।

ढपना^३—क्रि० प्र० [हिं० ढापना] ढाकना। ऊपर से ढोढ़ाना। छिपाना।

ढपरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुपहरिया'। उ०—चार पहर पैदा माँ रगड़ी खरी ढपरिया पैहो।—कबीर श०, भा० पृ० २२।

ढपरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० ढापना] चूड़ीवालों की भोगीठो का ढकना।

ढपला—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दफ, हिं० डफ, ढप] दे० 'डफला'।

ढपली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० डफला] दे० 'डफली'।

ढपीसा—वि० [हिं० ढापना] माच्छादित करनेवाली। ढापनेवाली। उ०—योवन के वसंत सृष्टि को उपमा सेंडे की काली, कोभिल, ढपील, ढाल से देना अनुचित प्रतीत होता है।—भाषुनिक०, पृ० २३।

ढप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। ढड्डा।

ढफ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० डफ] दे० 'डफ'। उ०—रंज मुरज डफ ताख बासुरी, झालर की झफार।—सूर (शब्द०)।

ढफला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० डफला] [स्त्री० डफली] दे० 'डफला'। उ०—ढमकत डोल डफला प्रपार। धमकत धरनि भौसा फुँकार।—सुबान०, पृ० ३०।

ढफारा—सञ्ज्ञा पुं० [मनु०] चिंगाड़। जोर से रोने या चिल्लाने का शब्द। डफार। उ०—तब माझुब सु छाड़ि डफारा। कहै लाग का तोर बिगारा।—हिंदी प्रेम०, पृ० २४५।

ढव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धव (= चलना, गति) या देश०] १. क्रियाप्रणाली। ढंग। रीति। ठोर तरीका। जैसे, काम करने का ढव। उ०—साकन को ढव नाहि तकन की गति है न्यारी।—पल्लव०, पृ० ४४। २. प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। जैसे,—वह न जाने किस ढव का भ्रादमी है। ३. रचना-प्रकार। बनावट। गठन। ढाँचा। जैसे,—वह गिलास और ही ढव का है। ४. अभिप्रायसाधन का माँग। युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—किसी ढव से क्या निकासना चाहिए।

मुहा०—ढव पर चढ़ना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ धर्म सिद्ध हो। किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतलब निकसे। जैसे,—कहीं वह ढव पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा। ढव पर लगाना या लाना=अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ धर्म सिद्ध हो। अपने मतलब का बनाना।

५ गुण और स्वभाव। प्रकृति। भावत। बान। टेव।

मुहा०—ढव डालना=(१) भावत डालना। अभ्यस्त करना। (२) अच्छी भावत डालना। आचार व्यवहार की शिक्षा देना। शरार सिखाना। ढव पढ़ना=भावत होना। बान या टेव पढ़ना।

ढवका(१)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] उपाय। युक्ति। उ०—चेतनि प्रसवार ग्यान गुह करि और तजो सब ढवका।—गोरख०, पृ० १०३।

ढवरा—वि० [हिं० ढावर] दे० 'ढावर'।

ढवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० ढिबरी] मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छी-दार डिबिया। ढिबरी। उ०—धुँभा अधिक देतो है, टिन की ढवरी, कम करतो उजियाला।—ग्राम्या, पृ० ६५।

ढवीला—वि० [हिं० ढव + ईला (प्रत्य०)] ढव का। ढववासा। चालाक। चतुर।

ढवुआ^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खेतों के मचान के ऊपर का छप्पर।

ढवुआ^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का तबे का प्रचलित देशी सिक्का जिसकी चलन बंद कर दी गई है। २. पैसा।

ढवैला—वि० [हिं० ढावर + एला (प्रत्य०)] मिट्टी और कीचड़ मिखा हुआ (पानी)। मटमैला। गंदला।

ढमक—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] ढम ढम शब्द।

ढमकना—क्रि० प्र० [मनु०] ढम ढम शब्द होना। ढम ढम की आवाज होना।

ढमकाना—क्रि० प्र० [हिं० ढमकना] १. डोल, नगाड़ा यदि धाद्य बजाना। २. ढम ढम शब्द उत्पन्न करना।

ढमढम—सञ्ज्ञा पुं० [मनु०] डोल का झपका नगारे का शब्द।

ढमलाना^१—क्रि० प्र० [देश०] लुढ़कना।

ढमलाना^२—क्रि० प्र० लुढ़काना।

ढयना—क्रि० प्र० [सं० ध्वंसन, हिं० ढहना] १. किसी दीवार, मकान आदि का गिरना। ध्वस्त होना। २. पस्त होना। शिथिल होना। उ०—ढीले से ढए से फिरत ऐसे कोन पे ढहे ही।—नद० प्र०, पृ० ३५९।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—ढय पड़ना=उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकवारगी आकर बेरा डाल देना (व्यंग्य)।

ढरकना—क्रि० प्र० [हिं० ढार या ढाल] १. पानी या झीर किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिरकर बह जाना। उ०—वाक़े पानी पत्र न लागे ढरकि चले जस पारा हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. नीचे की ओर जाना। उ०—(क) सकल सनेह शिथिल रघुवर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परसत भोजन प्रातःहि ते सब। रवि माये ते ढरकि गयो धब।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दिन ढरकना=सूर्यास्त होना। दिन डूबना।

३. आराम करना। शय्या पर शयन करना। लेटना।

ढरका—संज्ञा पुं० [हिं० ढरकना] १. मौल का एक रोग जिसमें मौल से मौल बढ़ा करता है। २. मौल से प्रभु चहना।

क्रि० प्र०—लगना।

२. सिरे पर कलम की तरह छीली हुई बाँट की नली जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते हैं। बाँट की नली से चौपायों के गले में दवा उतारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

ढरकाना—क्रि० सं० [हिं० ढरकना] पानी या झीर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढरकना] जुलाहों का एक औजार जिससे वे लोग बाने का सूत फँकते हैं। उ०—सब ढरकी चले नाहि छीने।—पलटू, पृ० २५।

विशेष—ढरकी की आकृति करताल की सी होती है और यह भीतर से पोलो रहती है। खाली स्थान में एक काँटे पर लपेटा हुआ सूत खड़ा रहता है। जब ढरकी को इधर से उधर फँकते हैं तब उसमें से सूत छुलकर बाने में भरता जाता है। इसे भरनी भी कहते हैं।

यौ०—जुसाहे की ढरकी=प्रस्थिरमति आदमी। कभी इधर कभी उधर होनेवाला व्यक्ति।

ढरकीला—वि० [हिं० ढरकना + ईला (प्रत्य०)] बह जानेवाला। ढरक जानेवाला। उ०—रजनी के श्याम कपोलो पर ढरकीले धम के कन।—यामा, पृ० १६।

रना—क्रि० प्र० [हिं० ढलना] १. दे० 'ढलना'। २. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) मलिन कुसुम तनु चीरे, करतल कमल नयन ढर नीरे।—विद्यापति, पृ० ५५४।

(ख) ऊपर तैं दधि दूध, सीसन गागरि गन ढरे।—नद० प्र०, पृ० ३३४।

ढरनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढरना] १. गिरने वा पड़ने की क्रिया। पतन। उ०—सखी बचन सुनि कौसिला लखि सुंदर पाठे ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. हिलने ढोलने की क्रिया। गति। स्पंदन। उ०—कठसिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३. चित्त की प्रवृत्ति। मुकाव। उ०—रिख भो कंचि हों समुक्ति देखिहौ वाके मन की ढरनि, वाकी भावती वात चलाय हौ।—सूर (शब्द०)। ४. किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दीन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक कष्टणा। दशाशीलता। सहज कृपालुता। उ०—(क) राम नाम सो प्रतीत प्रीति राखे कवटुक तुलसी ढरंगे राम भगनी ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृपासिंधु कोसल धनी सरनागत पालक ढरनि भगनी ढरिए।—तुलसी (शब्द०)।

ढरहरना—क्रि० प्र० [हिं० ढरना] ससकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावल गुण आवत डिग ढरहरि।—सूर (शब्द०)।

ढरहरा—वि० [हिं० ढार + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] डालुवा। डालू।

ढरहरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] पकोड़ी। उ०—रायभोय लियो भात पसाई। मुँग ढरहरी हींग लगाई।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी^२—वि० स्त्री० [हिं० ढरहरा] डालू। डालुवा।

ढरार्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढलाई'।

ढराना—क्रि० सं० [हिं०] १. दे० 'ढलाना'। उ०—खैच खराब चढ़ाए नहीं न सुहार के ढारनि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)। २. दे० 'ढरकाना'।

ढरारा—वि० [हिं० ढार] [वि० स्त्री० ढरारी] १. ढलनेवाला। ढरकनेवाला। गिरकर बह जानेवाला। २. लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। जैसे, गोली।

यौ०—ढरारा रवा=गहना बनाने में सोने चाँदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

३. शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोवन रंग रंगोली, सोने से ढरारे नैना, कंठपोत मखतूली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

ढरैया—संज्ञा पुं० [हिं० ढारना] १. ढालनेवाला। २. ढलनेवाला। किसी ओर प्रवृत्त होनेवाला।

ढर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० या देश०] १. मार्ग। रास्ता। पथ। २. किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका। ३. मुक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकालना।

४. आचरणपद्धति। चाल चलन। जैसे,—यह लडका बिगड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. पानी या धीरे किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना । ढलवा ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुढ़कना । नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना । ३. हिलना । उ०—कुँडल झलक ढलक सीसनि की ।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ३८३ ।

ढलका—संज्ञा पुं० [हि० ढलकना] शीश का एक रोप जिसमें शीश से बराबर पानी बहा करता है । ढरका ।

ढलकाना—क्रि० प्र० [हि० ढलकना] १. पानी या धीरे किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना । लुढ़काना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढरकी' ।

ढलना—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. पानी या धीरे किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना । ढरकना । गिरकर बहना । जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना । उ०—मधुरन बुवाइ लेउं सिगरो रस तनिको न जान देउं इत उत ढरि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना । छाती ढलना = स्तनो का लटक जाना । जीवन ढलना = युवावस्था के चिल्लो का जाता रहना । जवानी का उतार होना । दिन ढलना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन ढले = संध्या को । शाम को । सूरज का चढ़ ढलना = सूर्य या चंद्रमा का अस्त होना ।

२. बीतना । गुजरना । निकल जाना । उ०—काहे न प्रगट करो जवुपति सो दुसह दोष की अवधि गई ढरि ।—सूर (शब्द०) । ३. पानी या धीरे किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना । पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में आना जाना । उड़ना जाना ।

मुहा०—बोतल ढलना = खूब शराब पिया जाना । मद्य पिया जाना । शराब ढलना = मद्य पिया जाना ।

४. लुढ़कना । ५. झुकना । झुकल होना । मान जाना । उ०—मुसलमान इसपर ढल भो गए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५ । ६. किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना । लहर खाकर इधर उधर झोलना । सहराना । जैसे, चेंबर ढलना । ७. किसी धीरे आकर्षित होना । प्रवृत्त होना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

८. झुकल होना । प्रसन्न होना । रीझना । उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक हो कै, सोढाभाय जोगी जब ओठर ढरत है ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. पिघली या गली हुई सामग्री से सचि के द्वारा बनना । सचि में ढालकर बनाया जाना । ढाला जाना । जैसे खिलौने ढलना, बरतन ढलना ।

मुहा०—सचि में ढला द्रव्य = बहुत सुंदर और सुगंध ।

ढलमल—वि० [अनु०] १. श्रान्त । शिथिल । २. अस्थिर । चंचल । कभी इधर कभी उधर होना ।

ढलवाई—वि० [हि० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को सचि में ढालकर बनाया गया हो । जैसे, ढलवाई बरतन ।

ढलवाईका—संज्ञा पुं० [सं० ढाल + वाहक] ढालवाले सिपाही । ढाल धारण करनेवाले सैनिक । ढलैत । उ०—कोटि धनुदर धावधि पायक । लक्ष सख चलिमउं ढलवाईक ।—कीर्ति०, पृ० ८८ ।

ढलवाना—क्रि० प्र० [हि० ढालना का प्रेरक] ढालने का काम कराना ।

ढलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] १. सचि में ढालकर बरतन आदि बनाने का काम । ढालने का काम । २. ढालने की मजदूरी ।

ढलान^१—वि० [हि० ढाल] दे० 'ढलवाई' ।

ढलान^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढालना] ढालने का काम । ढलाई ।

ढलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'ढलवाना' । उ०—नाम अगर पूछे कोई तो कहना बस पीनेवाला । काम, ढालना धीरे ढलाना, सबको मदिरा का प्याला ।—मधुबासा, पृ० ८४ ।

ढलुवाई—वि० [हि०] १. दे० 'ढलवाई' । २, दे० 'ढालवाई' ।

ढलैत—संज्ञा पुं० [हि० ढाल] ढाल बांधनेवाला । सिपाही ।

ढलैया—संज्ञा पुं० [हि० ढालना] धातु आदि को ढालनेवाला कारीगर ।

ढवका—संज्ञा पुं० [देश० ?] धोखा । उ०—ढूँढ़े चौपड़ि बुझि मिलि जाई । ढवका तब काहे को खाई ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२२ ।

ढवरी^१—[देश०] पुन । डोरी । ली । लगन । रट । दे० 'डोरी' । उ०—सूरदास गोपी बड़ भागी । हरि वरमान की ढवरी लागी ।—सूर (शब्द०) ।

ढसक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ठन ठन शब्द जो सुखी छाँसी में गले से निकलता है । २. सुखी छाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है ।

ढहना—क्रि० प्र० [सं० ध्वसन या वह] १. बीमार, मकान आदि का गिर पड़ना । ध्वस्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. नष्ट होना । मिट जाना । उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलिख भायो, कोल कलमल्यो ढहि कमठ को बल गो ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढहरना—क्रि० प्र० [हि० ढार] १. लुढ़कना । गिरना । २. (किसी की ओर) गिरना झुकना या झुकल होना । उ०—ढीले से उए से फिरत ऐसि कीच पै ढहे हो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५६ ।

ढहराना—क्रि० प्र० [हि० ढार] १. लुढ़काना । २. सुप के पत्र में से गोल बाने की ककड़ी, मिट्टी आदि को लुढ़काकर ढल्लय करना । पटोरना । फटकना ।

ढहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] देहरी । देहली । देहलीज । उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहु टेकत ढहरी ।—सूर (शब्द०) ।

ढहरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन । मटका । उ०—डगर न देत काहुहि फोरि डारत ढहरी ।—सूर (शब्द०) ।

ढह्वाना—क्रि० सं० [हि० ढहाना का प्रेरणारूप] ढहराने का काम करना । गिरवाना ।

ढहाना—क्रि० सं० [सं० ध्वंसन या दह] दीवार मकान आदि गिराना । ध्वस्त करना । उ०—एक ही बान को, पाषाण को कोट सब हुतो चहुं ओर, सो दियो ढहाई ।—सूर (शब्द०) ।

ढहावना(०)।—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढहाना' । उ०—तोपे बंद केरि पति भारी । मर मर ढहावन हारी ।—हम्मीर०, पृ० ३० ।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देश०] १. कुपती के एक पेंच का नाम । २. पलाश । डाक ।

ढाँकना—क्रि० सं० [सं० ढक (= छिपाना)] १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उसपर गंदे आदि न पड़े । ऊपर से कोई वस्तु फैला या ढालकर (किसी वस्तु को) छोट में करना । कोई वस्तु ऊपर से ढालकर छिपाना । जैसे,—(क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ो, ढाँक दो । (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. इस प्रकार ऊपर ढालना या फैलाना जिसमें कोई वस्तु नीचे छिप जाय । जैसे,—इसपर कपड़ा ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढाँका—संज्ञा पुं० [हि० ढाक] दे० 'ढाक' । उ०—तरिवर भरहि भरहि बन ढाँका । भई मनपत फूलि कर साक्षा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५६ ।

ढाँगा—वि० [देश०] दे० 'ढालुवा' ।

ढाँच—संज्ञा पुं० [हि० ढाँचा] दे० 'ढाँचा' ।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० देश० या हि० ठाट] १. किसी वस्तु की रचना की प्रारम्भिक अवस्था में स्थूल रूप से संयोजित अंगों की समष्टि । किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़कर वैठाए हुए उसके भिन्न भिन्न भाग जिनसे उस वस्तु का कुछ आकार खड़ा हो जाता है । ठाट । टट्टर । डोल । जैसे,—भभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है, तल्ले आदि नहीं जड़े गए हैं ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—बनाना ।

२. भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बल्ले या छड़ कि उनमें बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके । जैसे, चौखटा, बिना बुनी चारपाई, कुरसी आदि । ३. पजर । ठट्टरी । ४. चार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे 'नचनी' बटकाते हैं । ५. रचनाप्रकार । गढ़न । बनावट । जैसे,—इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है । ६. प्रकार । भाँति । तरह । जैसे,—वह न जाने किस ढाँचे का आबमी है ।

ढाँढा—वि० [देशी ढढ (= निकम्मा । कपटी)] कपटी । तुच्छ । पशु । नीच । उ०—रे ढाँढा करि छोहरी करद करहारी काणि ।—ढोला० (परि०२), पृ० २६६ ।

ढाँपना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढाँकना' । उ०—श्यामा हूँ तन

पुलकित पल्लव भगुरिन मुख निज ढाँपि ।—श्यामा०, पृ० १०७ ।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [मनु०] वह 'ठन/ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है । ढसक ।

ढाँसना—क्रि० प्र० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना ।

ढाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाँस] सूखी खाँसी ।

ढाई^१—वि० [सं० भद्रद्वितीय, प्रा० भद्राद्वय, हि० भद्राई] दो ओर भाषा । जो गिनती में दो से भाषा अधिक हो । उ०—रूसी उनकी गुप्तगूँगा समझते । वह अपनी कहते थे, यह अपने ढाई चावन गला । ये ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४२ ।

मुहा०—ढाई बड़ी गी घाना = चटपट मोत घाना । (स्त्रियों का कोसना) जैसे,—तुम्हें ढाई घड़ी की आवे । ढाई चुल्लू लहू पीना = मार डालना । कठिन दंड देना (क्रीडावाक्य) । जैसे,—तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी । ढाई दिन की बादशाहत करना = (१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना । (२) डूल्हा बनना ।

ढाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाना] १. लड़कों का एक खेल जिसे वे कोड़ियों से खेलते हैं । इसमें कोड़ियों का समूह एक घेरे में रखकर उसे गोलीयों से मारते हैं । २. वह कीड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

ढाक^१—संज्ञा पुं० [सं० भापाढक (= पलाश)] १. पलाश का पेड़ । छिउना । छीउल । उ०—भानदधन ब्रजजीवन जेवत हिलमिलि ग्वार तोरि पतानि ढाक ।—घनानंद, पृ० ४७३ ।

मुहा०—ढाक के तीन पान = सदा एक सा निर्धन । कभी भरा पूरा नहीं ।—(निर्धन मनुष्य के संबंध में बोलते हैं) । ढाक तले की फूहड़, महुए तले की सुघड़ = जिसके पास धन नहीं रहता वह निर्गुणी, ओर धनवाला सर्वगुणसंपन्न समझा जाता है ।

२. कुपती का एक पेंच । दे० 'ढाँक' । उ०—उस्ताव सम्भले रहते हैं । मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो तीन को करा सकते हैं । बस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक, कलाजग, बिस्से आदि दाँव चले ओर कटे ।—काने०, पृ० ४ ।

ढाक^२—संज्ञा पुं० [सं० ढकका] लड़ाई का बड़ा ढोल । उ०—गोमुख, ढाक, ढोल पणवानक । बाजत रव प्रति होत मयानक ।—सबल (शब्द०) ।

ढाकनी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढक्कन' ।

ढाकना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ढाँकना' ।

ढाका—संज्ञा पुं० [सं० ढक] पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध पूर्वी बंगाल का एक नगर । जैसे, ढाके की बूढ़, ढाके की मलमल ।

ढाकायाटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूझदार महीन कपड़ा ।

ढाकेवाल पटेल—संज्ञा पुं० [हि० ढाक + पटेल (= पटी नाव)] एक प्रकार की पूरबी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है । छप्पर के नीचे बैठकर माँझी नाव खेते हैं ।

ढाटा—संज्ञा पुं० [हि० ढाकी] १. कपड़े की वह पट्टी जिससे ढाड़ी बाँधी जाती है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

२. वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट ढाढ़ी और गाल से होता हुआ जाता है । ३. वह कपड़ा जिससे मुरदे का मुँह इसलिये बाँध देते हैं जिससे कफन सरकने से मुँह खुल न पाय ।

ढाठा—संज्ञा पुं० [हि० ढाढ़ी] दे० 'ढाढा' । उ०—चारों ने खाना खाया और ढाठे बाँधा, बाँधकर तख्तवारें सटकाकर चले ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४४ ।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [मनु०] १ धिगधाड़ । चीख । गरज (बाघ, सिंह आदि की) । दे० 'दहाड़' । २ चिल्लाहट ।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्लाकर रोना ।

विशेष—दे० 'घाड़' ।

ढाड़सा—संज्ञा पुं० [सं० दृढ] दे० 'ढाड़स' ।

ढाढ़ी—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ढाढ़ी' । उ०—धुन किसी ढाढ़ी बच्चे से पुछिए । मैं धुन उन नहीं जानता ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २ ।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [देश० या हि० घाड़] चिल्लाहट । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़ से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—चुमते०, पृ० ५२ ।

ढाड़^①—संज्ञा पुं० [मनु०] एक प्रकार का बाजा जिसे ढाढ़ी बजाते हैं । उ०—ढाड़िनि मेरी नाचै गावै हों हूँ ढाड़ बजाऊँ ।—सूर०, १०।३७ ।

ढाड़ना—क्रि० सं० [हि० ढाड़ना] दे० 'ढाड़ना' । उ०—एक परे गाढ़े, एक ढाड़त ही काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहीं पावक भयावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढाड़स—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़, प्रा० ढिढ] १ सकट, कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता । धैर्य । भीरव । साँति । आशवासन । सहायता । तसल्ली । उ०—क्यों भला काम लें न ढाड़स से । क्यों लगे ढाड़ मारकर रोने ।—चुमते०, पृ० ५२ ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स देना या बाँधना = बच्चों से दुखी चित्त को शांत करना । तसल्ली देना ।

२. दृढ़ साहस । हिम्मत ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ढाड़स बाँधना = साहस उत्पन्न करना । उत्साहित करना ।

ढाड़िन—संज्ञा स्त्री० [हि० ढाढ़ी] ढाढ़ी की स्त्री । उ०—कृष्ण जन्म सुनि अपने पति से हैंसि ढाड़िन पों बोली छु ।—नद० प्र०, पृ० ३३६ ।

ढाढी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढाड़िन] एक प्रकार के नीचे गवैए जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर वधाई आदि के गीत गाते हैं । उ०—ढाढ़ी और ढाड़िन गावै हरि के ठाढ़े बजावै हरिप मसीस देत मस्तक नवाई के ।—सूर (शब्द०) ।

४-४०

ढाढ़ौन—संज्ञा पुं० [सं० ढिण्डणी] जल सिरिस का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जगसी सिरिस से कुछ छोटा होता है । वैद्यक के अनुसार यह निदोष, कफ, कुष्ठ और बवासीर को दूर करता है ।

ढाण—संज्ञा स्त्री० [देश०] जूट की तेज चाल । गति । उ०—क्रम क्रम, ढोला पय कर, ढाण म चूके ढाल । मा माऊ बीजी महल, मासइ झूठ एवाच ।—ढोला०, दू० ४४० ।

मुहा०—ढाण घालना = तेज चलाना । उ०—जूट ने चढ़ता ही ढाण नहीं घालणी ।—ढोला० (परि० १), पृ० २५४ ।

ढाना—क्रि० सं० [हि० ढाहना] १. दीवार, मकान आदि को गिरावा । ऊँची उठी हुई वस्तु को तोड़ फोड़कर गिरावा । ध्वस्त करना । उ०—जब मैं बनाकर प्रस्तुत करता हूँ तब वह भाकर ढा जाता है ।—कबीर म०, पृ० ७६ ।

संयो० क्रि०—जाना ।—देना ।

२. गिराना । गिराकर जमीन पर डालना । जैसे, किसी को मारकर ढाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढापना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'ढाँपना' ।

ढाबरा—वि० [हि० डाबर (= गड्ढा)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमैला । गंदला । उ०—भूमि परत भा ढाबर पानी । बनु जीवहि माया सपटाची ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढाबा—संज्ञा पुं० [देश०] १. झोलती । २. जाल । ३. परछत्ती । ४. रोटी आदि की दुकान । वह दुकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं ।

ढामक—संज्ञा पुं० [मनु०] ढोल नगारे आदि का सन्ध । उ०—ढमकत ढोल ढमाक डफसा तबब ढामक जोर ।—सूदन (शब्द०) । ५. भाँस, मिट्टी आदि से बनी कच्ची छत ।

ढामना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

ढामरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हसिनी । हसी । मादा हंस (स्त्री)

ढार^१—संज्ञा पुं० [सं० धार या सं० नवधार, *प्रा० षोढार > ढार]

१. वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिसपर से होकर कोई वस्तु नीचे फिसल या बह सके । बतार । उ०—सक्रुष सुरत धारम ही बिछुरी नाज सजाय । ठरकि ढार छुरि ढिग भई कीठ ठिठाई पाय ।—बिहारी (शब्द०) । २. पथ । मार्ग । प्रणाली । उ०—(क) सब हूँ पावै पथधे ढार । मीत मिलन दुखंभ ससार ।—नद० प्र०, पृ० ३३६ । (ख) ढेर ढार वेही ठरब, दूजे ढार ढरे न । क्यों हूँ धामन धाम सौ नैना लागत नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ३. प्रकार । ढाँचा । ढग । रचना । बनावट । उ०—(क) दग घरकोंहूँ पथखुले, देह घरकोंहूँ ढार । सुरति सुखी यो देखियत, कुचित मरम के धार ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) तिय को मुख सुंदर बन्यो, बिधि केयो परगार । तिलन बीच को विदु है, गाल गोल इक ढार ।—मुबारक (शब्द०) ।

ढार^१—सञ्ज्ञा स्त्री० १ ढाल के आकार का, कान में पहनने का एक गहना। बिरिया। २. पछेली नामक गहना।

ढार^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रनु०] रौने का घोर शब्द। घातनाद। चिल्लाकर रौने की ध्वनि।

मुहा०—ढार मारना या ढार मारकर रौना = घातनाद करना। चिल्ला चिल्लाकर रौना।

ढारना^१—क्रि० सं० [सं० धार, हिं० ढार + ना- (प्रत्य०)] १. पानी या भीर किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। उ०—(क) ऊतक देख न, लेइ उसासु। नारि चरित करि ढारइ भासु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उरग नारि प्रायें भई ठाढ़ी नैननि ढारति नीर।—सूर०, १०।५७५। २. गिराना। ऊपर से छोड़ना। डाखना। जैसे, पासा ढारना।

विशेष—दे० 'ढालना'।

३. चारो ओर घुमाना। डुलाना (चँवर के लिये) उ०—रवि बिमान सो साधि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहि सब ढारा।—जायसी (शब्द०)। ४. धातु भादि को गला कर साँचे के द्वारा तैयार करना। दे० 'ढालना'—६।

ढारस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढाड़स'। उ०—हृत्तर दिल को जरा ढारस दीजिए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७।

ढाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार, भाले आदि का वार रोकने का मस्त्र जो चमड़े, धातु आदि का बना हुआ धाली के आकार का गोल होता है। फरी। चर्म। माड़। फलक।

विशेष—ढाल गेंड़े के पुट्टे, कछुए की पीठ, धातु भादि कई चीजों की बनती है। जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी ओर प्रागे की ओर उभरी हुई होती है। प्रागे की ओर इसमें ४-५ काँटे या मोटी फुलिया पड़ी होती है।

मुहा०—ढाल बाँधना = ढाल हाथ में लेना।

२ एक प्रकार बड़ा झडा जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है। उ०—बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समार्ई।—जायसी प्र०, पृ० २२४।

ढाल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धवधार] १ वह स्थान जो प्रागे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके। उतार। जैसे,—(क) पानी ढाल की ओर बहेगा। (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया। २. ढग। प्रकार। तीर तरीका। उ०—(क) सदा मति ज्ञान मे सु ऐसे एक ढाल है।—हनुमान (शब्द०)। (ख) ढाल धरो सतसय उबारा।—धरनी०, पृ० ४१। † ३ उगाही। चंदा। बेहरी।—(पञ्जाब)।

ढालना—क्रि० सं० [सं० धार] १. पानी या भीर किसी द्रव पदार्थ को गिराना। डंडेलना। जैसे,—(क) हाथ पर पानी ढाल दो। (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो। (ग) बोटल की धारा गिलास में ढाल दो।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—बोटल ढालना = धारा पीना। मद्यपान करना।

२ धारा पीना। मद्यपान करना। मदिरा पीना। जैसे,—पाच-कल तो खूब ढालते हो। ३. बेचना। बिक्री करना (सवाल)। ४ थोड़े दाम पर माल निकालना। सस्ता बेचना। लुटाना। ५ ताना छोड़ना। व्यर्थ्य बोलना। † १. चंदा उतारना। उगाही करना।—(पञ्जाब)। ७. पिघली हुई धातु भादि को साँचे में ढालकर बनाना। पिघली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा निमित्त करना। जैसे, छोटा ढालना, खिलोने ढालना। उ०—कोउ ढालत गोली कोउ बुँदव बँडि बनावत।—प्रेम-घन०, भा० १, पृ० २४।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

ढालवाँ—वि० [हिं० ढाल] [वि० ढालवाँ] जो प्रागे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु जल्दी से लुढ़क, फिसल या बह सके। जिसमें ढाल हो। ढालदार। ढालु। जैसे,—यह रास्ता ढालवाँ है, संभलकर चखना। उ०—हो इसी ढालवाँ को जब, बस सहज उतर जावें हम। फिर समुख तीर्थ मिलेगा, वह प्रति उज्ज्वल पावनतम।—कामायनी, पृ० २७६। २ ढाला हुआ। साँचे के अनुरूप तैयार किया हुआ।

ढालिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता इत्यादि पिघली धातुओं को साँचे में ढालकर बरतन, गहने आदि बनानेवाला। भरिया। धुलवाँ। साँचिया।

ढाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ढालिन्] ढाल से सुसज्ज योद्धा (को०)।

ढालुआँ—वि० [हिं० ढालना] दे० 'ढालवाँ'।

ढालुवाँ—वि० [हिं० ढालना] दे० 'ढालवाँ'।

ढालू—वि० [हिं० ढाल] दे० 'ढालवाँ'।

ढावना—क्रि० सं० [दे०] गिराना। ढाहना।

ढासा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० वस्तु] ठग। लुटेरा। डाकू। उ०—बासर ढासिन के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर। सकर निज पुर राखिए, चिते सुलोचन कोर।—तुलसी प्र०, पृ० १२२।

ढासना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० √ धा (= धारण करना) + भासन्] १ वह ऊँची वस्तु जिसपर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके। सहारा। टेक। उठगन। उ०—वह मलिक की एक स्तम्भ का ढासना लगाकर सो गया।—वे० न०, पृ० २५४।

२. तकिया। शिरोपधान।

ढाहना—क्रि० सं० [सं० ध्वसन] दीवार, मकान आदि को गिराना। ध्वस्त करना। ढाना। उ०—(क) ढाहत भूपरूप तर भूला। चबो विपति-वारिधि प्रनुकुला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वृक्ष वन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दोनो गिराई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'ढाना'।

ढाहा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढाहना] नदी का ऊँचा करारा।

ढिंग(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ढिंग] दे० 'ढिंग'। उ०—करना भूरे दसो दिस द्वारे, कस ढिंग भावो साहेब तुम्हारे।—धरम०, पृ० १६।

दिगलाना—क्रि० म० [दि०] लुढ़कना । गिरना ।

दिगलाना—क्रि० स० [पूर्वी रूप दिगलाना] ढहाना । लुढ़काना । गिराना । उ०—केहर हायल धावे कर, कुजर दिगलो कीध । —बांकी० प्र०, भा० १, पृ०-१८ ।

दिडो—संज्ञा पु० [हि० ढोडो (= नाभि)] पेट । उदर । उ०—मरि दिडो खाइन जनम गवाइन, काहु न भापु संमार ।—गुलाल०, पृ० १५ ।

दिडोरना—क्रि० स० [प्रनु०]-१-मंथन, करना । मथना । बिलोडन करना । २-हाथ डालकर हड़ना । खोजना । तलाश करना । उ०—(क) बयो बचिहँ मजिहँ घनमानद, बैठी रहै धर पेठि दिडोरत ।—घनानंद (शब्द०) । (ख) भूलि गई माखन की खोरी खात रहे धर सकल दिडोरी ।—विश्राम (शब्द०) ।

दिडोरा—संज्ञा पु० [प्रनु० डम+डोल] १. वह डोल जिसे बजाकर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है । घोषणा करने की मेरी । डुगडुगिया ।

मुहा०—दिडोरा पीटना या बजाना=डोल बजाकर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना । चारो ओर घोषित करना । मुनादी करना । उ०—खुदा जाने इन्सान क्या बात करता है । तुम जाकर दिडोरा पीटवा दो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२० ।

२. वह सूचना जो डोल बजाकर सर्वसाधारण को दी जाय । घोषणा । मुनादी । उ०—जो मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय । नगर दिडोरा फेरती, प्रीति करो जानि कोय ।—(प्रचलित) ।

क्रि० प्र०—फेरना ।

दिपा—क्रि० वि० [दि०] दे० 'दिग' । उ०—एकै हँसे हँसावै एकै । सहित प्रदाव जाति दिए एकै ।—हम्मीर०, पृ० ९ ।

दिकचन—संज्ञा पु० [दि०] गन्ने का एक भेद ।

दिकलाना—क्रि० प्र० [हि० डकलाना] धक्के से धागे जाना । धागे होना । उ०—बिना बड़े ही मैं धागे को जाने किस बल से दिकला ।—माझा, पृ० ५४ ।

दिकुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'देकुली' ।

दिग—क्रि० वि० [सं० दिक् (= ओर)] पास । समीप । निकट । नजदीक । उ०—मुरली पुनि सुनि सवै खालिनी हरि के दिग बसि प्राई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है, तथापि, इसका प्रयोग सप्तमी विभक्ति का शेष करके प्रायः क्रि० वि० वत् ही होता है ।

दिग—संज्ञा स्त्री० १. पास । समीप । २. तट । किनारा । छोर । उ०—सेतुबध दिग चडि रघुराई । चितव कृपालु, सिंधु बहताई ।—तुलसी (शब्द०) । ३. कपड़े का किनारा । पाड़ । कोर । हाथिया । उ०—(क) साल दिगत की सारी साकी पीत मोड़निया कीनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) पट की दिग कृत ढाँपियत सोमित सुभग सुवेस । हृद रद ध्व ध्वि देखियत सद रदध की देख ।—बिहारी (शब्द०) ।

दिटोना—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] दे० 'ढोटा' । उ०—रूपमती मन होत बिरागी, बाजबहादुर के नद दिटोना ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३५६ ।

दिठपना—संज्ञा पु० [हि० ठोठ+पन (प्रत्य०)] घृष्टता । दिठाई । उ०—न घर केस न कर दिठपन । मलपे मलापे करह निघुवन ।—विद्यापति, पृ० ४५३ ।

दिठाई—संज्ञा स्त्री [हि० ठोठ+आई (प्रत्य०)] गुरुजनों के समल, व्यवहार की अनुचित स्वच्छदता । संकोष का अनुचित प्रभाव । घृष्टता । अपलता । गुस्ताखी । उ०—छमिहँहि सज्जन मोरि दिठाई ।—तुलसी (शब्द०) । २. लोकलज्जा का प्रभाव । निलंजिता । उ०—गोने की चूनरी वेसिये है, दुलही मबही से दिठाई बगारी ।—मति० प्र०, पृ० २६६ ।

क्रि० प्र०—बगारना = (१) घृष्टता करना । (२) निलंजिता करना ।

३. अनुचित साहस ।

दिठोना—संज्ञा पु० [हि० ठोटा] पुत्र । उ०—डगर डगमगे डोलने, परी ठोठि डहकाय । निडर दिठोना नंद के, डरे उठे बरराय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५ ।

दिपुनी—संज्ञा स्त्री० [दि०] १. फल या पत्ते के साँय लगा हुआ टहनी का पतला नरम भाग । २. किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह समरा हुआ भाग । ठोंडी । ३. कुच का अग्रभाग । बोंडी । चूचुक ।

दिबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डिबरा] १. टीन, पीछे, या पकी मिट्टी की डिबिया या कुप्पी जिसके मुँह पर बत्ती लगाकर मिट्टी का तेल जलाते हैं । मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छीदार डिबिया । २. बरतन के सचि के पल्ले के तीन भागों में से सबसे नीचे का भाग । सचि की पेंदी का भाग ।

दिबरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डपना] १. किसी कसे जानेवाले पेच के सिरे पर लगा हुआ लोहे का चोड़ा टुकड़ा जिससे पेच बाहर नहीं निकलता । २. चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इसलिये लगाई जाती है जिसमें तकवा न घिसे ।

दिबुवा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'देबुवा' । उ०—गद्यत गद्यत जब भागै भावा । बित उनमाल दिबुवा इक पावा ।—कबीर प्र०, पृ० २३७ ।

दिमका, दिमाका—सर्व० [हि० धमका का प्रनु०] [स्त्री० डिमकी] प्रमुक । धमका । फलाँ । फलाना ।

यौ०—फलाना-दिमका=प्रमुक प्रमुक-मनुष्य । ऐसा ऐसा भावमी ।

दिलड—वि० [हि० डीला] दे० 'डीला' । उ०—जन रेवास कहैं बनजरिया तेरे दिलड़े परे परान बे ।—रे० बानी, पृ० २७ ।

दिलदिल—वि० [हि० डीला] दे० 'दिलदिला' ।

दिलदिला—वि० [हि० डीला] १. डीला डाला । २. (रस भावि) जो गाढ़ा न हो । पात्रों की तरह पतला ।

दिल्लई—संज्ञा स्त्री० [हि० डीला] १. डीला होने का भाव । कसा च रहने का भाव । २. क्षिपिलता । सुस्ती । मालस्य । किसी

कार्य के करने में अनुचित बिलब । जैसे,—तुम्हारी ही दिल्लवाई से यह काम पिछड़ा है ।

दिल्लवाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव । ढीला करने का काम ।

दिल्लाना^१—क्रि० सं० [हि० ढीलना का प्रेरण] १ ढीलने का काम कराना । २. ढीला कराना ।

दिल्लाना^४—क्रि० सं० १ ढीला करना । २ कसी या बँधी हुई वस्तु को खोलना । उ०—जसु स्वामी जब उठे प्रभाता । बैलन बंधे लखे सुखदाता । खेती हित लै गए दिल्लवाई । भेद न जान्यो गए चोराई ।—रघुराज (चन्द०) ।

दिल्लाइ—वि० [हि० ढीला] १. ढील करनेवाला । मटुर । सुस्त ।

दिल्ली^५—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] दिल्ली का एक पुराना नाम ।

दिल्लीवै^६—संज्ञा पुं० [हि० दिल्ली + वै = (पति)] दिल्ली का नरेश । दिल्लीपति ।

दिल्लोस^७—संज्ञा पुं० [हि० दिल्ली + ईस] दिल्ली का राजा ।

दिसरना^८—क्रि० प्र० [सं० ध्वसन] १. फिसल पड़ना । सरक पड़ना । २. प्रवृत्त होना । झुकना । उ०—उक्ति युक्ति सब तबहीं बिसरे । जब पड़ित पड़ि तिय पै दिसरे ।—निश्चय (चन्द०) । ३ फलों का कुछ कुछ पड़ना ।

ढीकूँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ढेकुली' । उ०—ल्यो की बैज, पवन का ढीकूँ, मन मटका ज बनाया । सत की पाटि, सुरत का चाठा, सहज नीर मुकलाया ।—कबीर ग्रं०, पृ० १६१ ।

ढींगिराँ—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. बड़े ढील ढील का घादमी । मोटा मुट्ठहा घादमी । २. पति या उपपति । उ०—कहू कबीर ये हरि के काज । जोइया के ढींगिर कोन है साज ।—कबीर (चन्द०) ।

ढीढ़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीड़ा' ।

ढीढस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिहा] ढिंडसी नाम की तरकारी । टिंडा ।

ढीढाँ—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड (= लंबोदर, गणेश)] १. बड़ा पेट । निकसा हुआ पेट ।

मुहा०—ढीढा फूलना = पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना । २. गर्म । हमल ।

मुहा०—ढीढा गिराना = गर्मपात करना ।

ढीगे^९—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ढिग' ।

ढीकुली^{१०}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकुली' । उ०—सुरति ढीकुली लै जल्यो, मन नित ढीलनहार । कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस पीवै बारंबार ।—कबीर ग्रं०, पृ० १८ ।

ढी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीह या ढीह] दे० 'ढीह' ।

ढीचाँ—संज्ञा पुं० [देश०] १. कूबड़ । २. सफेद चील ।

ढीटाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेखा । लकीर । डँडीर । उ०—रेख छाँड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमन जो तैं मोख बिनु दिए भीख मोख हौ न पावती । कोऊ मदमागो यह राम के न भागै भायो, दरसन पावत हौ देव न सकावती । ढीट भेट देऊँ फिर ढीट ही

मिलाय लेऊँ, हूँ है बात सोई भगवंत तू को भावती ।—हनुमान (चन्द०) ।

ढीठ—वि० [सं० घृष्ट, प्रा० डिष्ट] १ वह जो गुस्सनों के सामने ऐसा काम करे जो अनुचित हो । बड़ों का मुकोच या डर न रखनेवाला । बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छदा प्रकट करनेवाला । बेप्रदब । शोख । उ०—बिनु पूछे कछु कहवै गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाई ।—तुलसी (चन्द०) । २. किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला । ऐसे कामों में भागा पीछा न करनेवाला जिनसे लोगों का विरोध हो । अनुचित साहस करनेवाला । बिना डर का । उ०—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी ।—सूर (चन्द०) । ३. साहसी । हिम्मतवर । हिमाववाला । किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला ।

ढीठता^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं० घृष्टता] ढिठाई ।

ढीठाँ^{१२}—वि० [हि० ढीठ] दे० 'ढीठ' ।

ढीठाँ^{१३}—संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट] ढिठाई । घृष्टता ।

ढीट्यो^{१४}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढीठ' ।

ढीड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] भाँख का कीचड़ । उ०—मोड़े मुख तार बहे भाँखिन में ढीढ़, राखि कान में, सिकर रेट भीतन में डार देति ।—पोद्दार ग्रंथि० प्र०, पृ० १६३ ।

ढीठपन—संज्ञा पुं० [हि० ढीठ + पन (प्रत्यय)] घृष्टता । ढिठाई । उ०—तखनक ढीठपन जहइ न जाय साजे विमुखो धनि रहल लजाय ।—विद्यापति, पृ० ५२ ।

ढीमाँ—संज्ञा पुं० [देश०] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा । पत्थर का टोका । उ०—सिला ढीम ढाहै, इला वीर बाहै । बड़ा बड़ु सई, मड़ा महु हूँ है ।—सूदन (चन्द०) ।

ढीमड़ो^{१५}—संज्ञा पुं० [देश०] कूप । कुम्हा ।—(द्विगल) ।

ढीमर^{१६}—संज्ञा स्त्री० [सं० धीवर, या देश०] १. धीमर या धीवर जाति की स्त्री । २. वह स्त्री जो जल प्रादि भरती है । उ०—ढीमर वह धीमर पहिरि लुमर मदन भरेर । चितहि धुरावत पाहिके बँधत बेर सुरेर ।—स० सप्तक, पृ० ३८१ ।

ढीमा—संज्ञा पुं० [देश०] ढेला । ईंट पत्थर भादि का टुकड़ा । ढोका ।

ढील—संज्ञा स्त्री० [हि० ढीला] १. कार्य में उत्साह का अभाव । शिथिलता । अतत्परता । नामुस्तेदी । सुस्ती । अनुचित बिसंब । जैसे,—इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा । उ०—न्याह जोग रंभावती, बरख त्रयोदस माहि । ताँ वैग विवाहिवै कामु ढील को नाहि ।—रसरत्न, पृ० ८७ ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—ढील देना = ध्यान न देना । इतच्छिन्न न होना । बेपरवाही करना । उ०—दूधूर तो गजब करते हैं, सब फरमाइए ढील किसकी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२३ । २. बंधन को ढीला करने का भाव । डोरी को कड़ा वा तना न रखने का भाव ।

मुहा०—ढील देना = (१) पतंग की रॉर बढ़ाना जिससे वह

भागे बढ़ सके । (२) स्वच्छदता देना । मनमाना करने का प्रवसर देना । वश में न रखना ।

ढीला^२—वि० दे० 'ढीला' ।

ढीला^३—संज्ञा पुं० [देश०] बालो का कोड़ा । छूँ ।

ढीलना—क्रि० सं० [हिं० ढीला] १. ढीला करना । कसा या तना हुआ न रखना । बंधन आदि की लवाई बढ़ाना जिससे बंधी हुई वस्तु धीरे धीरे या इधर उधर बढ़ सके । जैसे, पतंग की डोरी ढीलना, रास ढीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. बंधनमुक्त करना । छोड़ देना । उ०—तापे सूर चखवन ढीलत बन बन फिरत बहे ।—सूर (शब्द०) । ३. (पकड़ी हुई रस्सी आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह भागे या नीचे की ओर बढ़ती जाय । डोरी आदि को बढ़ाना या ढालना । जैसे, कुएँ में रस्सी ढीलना । ४. किसी गाड़ी वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि ढालना । ५. समीप करना । प्रसंग करना । (वाजारू) । † ६. धारण करना । जैसे,—भाज वे धोती ढीलकर निकले हैं ।

ढीलम ढाला—वि० [हिं० ढीला + ढाला] जो ठोस न हो । शिथिल । उ०—ढीलमढाला फूला हुआ घास का गट्टर ।—भाषुनिक०, पृ० १ ।

ढीला—वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिठिल] १. जो कसा या तना हुआ न हो । जो सब ओर से खूब खिंचा न हो । (डोरी, रस्सी तागा आदि) जिसके ठहरे या बंधे हुए छोरों के बीच झोल हो । जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना ।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना । प्रकृष न रखना । मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छद करना ।

२. जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो । जो मज्झी तरह जमा या बँटा न हो । जो दृढ़ता से बंधा या लगा हुआ न हो । जैसे, पेंच ढीला होना, जंगले की छड़ ढीली होना । ३. जो खूब कसकर पकड़े हुए न हो । जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गाँठ ढीली होना, बंधन ढीला होना । ४. जिसमें किसी वस्तु को ढालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा हो । जो किसी सामनेवाली चीज के हिसाब से बड़ा या चौड़ा हो । फराख । कुशादा । जैसे, ढीला जूता, ढीला भगा, ढीला पायजामा । ५. जो कड़ा न हो । बहुत गीला । जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो । पनीला । जैसे, रसा ढीला करना, चाशनी ढीली करना । ६. जो अपने हठ पर भड़ा न रहे । प्रयत्न या सकल्प में शिथिल । जैसे,—ढीले मत पड़ना, बराबर अपने रूप का तकाजा करते रहना ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. जिसके क्रोध आदि का वेग मंद पड़ गया हो । धीमा । शांत । नरम । जैसे—जरा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

८. मद । सुस्त । धीमा । शिथिल । जैसे, उरसाह ढीला पड़ना ।

मुहा०—ढीली घ्राँख = मद मद दृष्टि । प्रधुनी घ्राँख । रसपूर्ण या मदभरी चितवन । उ०—देह लम्बो ढिग गेहपति तक नेह निरबाहि । ढीली भँखियन हो हते गई कनखियन चाहि ।—बिहारी (शब्द०) ।

९. मंदुर । सुस्त । भावहीन । काहिल । १०. जिसमें काम का वेग कम हो । नपुंसक ।

ढीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + पन (प्रत्य०)] ढीला होने का भाव । शिथिलता ।

ढीली^१—वि० श्री० [हिं० ढीला] दे० 'ढीना' ।

ढीली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] दे० 'दिल्ली' । उ०—ढीली मञ्जल पुणि जोईयउ । जउमो छई मथूरी मढण राय । बी० रासो, पृ० ८ ।

ढीह—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हिं० दीह] कंचा टीला । ढूह ।

ढीहा—संज्ञा पुं० [हिं० दीह] ढूह । दीह । ढोला । उ०—सो नाग जो के वश की तो उहाँ कोऊ हतो नाहीं । भीर भरू गिरचो परचो ढीहा होइ रह्यो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २६ ।

ढुंढा^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढूँढना] चाई । उचक्का । ठग । लुटेरा । उ०—चोर ढुंढ बटपार मन्याई भपमारगी कहाँ जे ।—सूर (शब्द०) ।

ढुंढन—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डनम्] तलाश । खोज । पता लगाना [को०] ।

ढुंढपाणि(१)—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डपाणि] १. शिव के एक गुण का नाम । २. दण्डपाणि भैरव । उ०—पुनि काल भैरव ढुंढपाणिहि भीर सिंगरे देव को ।—कबीर (शब्द०) ।

ढुंढपानि(२)—संज्ञा पुं० [हिं० ढुंढपाणि] दे० 'ढुंढपाणि' ।

ढुंढा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दुण्डा] १. पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी ।

विशेष—इसको शिव से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी । जब प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय करके हिरण्यकशिपु हार गया तब उसने दुंढा को बुलाया । वह प्रह्लाद को लेकर भाग में बैठी । विष्णु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद तो न जले, दुंढा जलकर भस्म हो गई ।

† २. भुने अन्न लाई आदि का चाशनी के साथ बना लड्डू ।

ढुंढा^४—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डन (= अग्नेयण, खोजना)] पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक राक्षस । उ०—ढूँढ़ि ढूँढ़ि खाए नरनि तातें ढुंढा नाम ।—पृ० रा०, १। ५१७ ।

ढुंढाहर(१)—संज्ञा पुं० [देश०] जयपुर राज्य का एक पुराना नाम । उ०—मायो पत्र उताव सौं ताहि बाँचि ब्रजएस । सुत सुरज सौं तब कही भँमि ढुंढाहर देस ।—सुजान०, पृ० २५ ।

विशेष—इस राज्य की भाषा जो जयपुर, मलवर, हाड़ोती आदि में बोली जाती है, आज भी 'ढूँढाणी' या 'जयपुरी' कही जाती है । राजस्थानी गद्य साहित्य का अधिकार इसी भाषा में प्राप्त होता है, राठौर पृथ्वीराज की 'बेखि क्रिसन स्वमणी रो' की

टीका जो १६७३ में लिखी गई थी, इसी भाषा के ग्रंथ में प्राप्त होती है।

हुंदि—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डि] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों में से है।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि सारे विषय इनके हुंटे हुए या अन्वेष्टित हैं। इसी से इनका नाम हुंदि या हुंदिराज है।

हुंदित—वि० [सं० दुण्डित] अन्वेष्टित। १ हुंड़ा हुमा [को०]।

हुंदिराज—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डिराज] दे० 'हुंदि'।

हुंढी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बाँह। बाहु। मुसुक।

हुंढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोंढ़] दे० 'ढोंढी'।

मुहा०—हुंढिया चढ़ाना=मुसुकें बांधना। उ०—उसने भट उसकी पगड़ी उतार हुंढिया चढ़ाय मुख, डाढ़ी और सिर मुँड रप के पीछे बांध लिया।—लल्लु (शब्द०)।

हुंढवाना—क्रि० सं० [हिं० हुंढना या प्रे० रूप] हुंढने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

हुंढाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंढना] हुंढने का काम।

हुंढाहरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० हुंढना] खोज। तलाश।

हुकना—क्रि० प्र० [देश०] १ घुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ झुक पड़ना। टूट पड़ना। पिल पड़ना। एकबारगी किसी ओर धावा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३ किसी बात को सुनने या देखने के लिये झाड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे, हुककर कोई बात सुनना। किसी को पकड़ने के लिये हुकना। उ०—(क) हुकी रही जहँ तहँ सब गोरी। (ख) जउ न होत चारा कह भासा। कित थिरिहार हुकत लेह लासा।—जायसी (शब्द०)।

हुकास—संज्ञा स्त्री० [अनु० हुक हुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—खगना।

हुक्का—संज्ञा पुं० [देश० हुक्का] दे० 'हुक्का'।

हुक्का—संज्ञा पुं० [देश०] घूसा। मुक्का।

हुटौना—संज्ञा पुं० दे० 'ढोटा'।

हुनमुनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० हुनमनाना] १ लुढ़कने की क्रिया या भाव। २ सावन में कजली गाने का एक ढंग। जिसमें स्त्रियाँ एक मंडल में घूमती हुई गोल बाँधकर हाथ से तालियाँ बजाती हुई गाती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—रात को कजली गांती कुछ हुनमुनिया भी खेलती है।—प्रेमघन०; भा० २, पृ० ३२६।

दुरकना(१)—क्रि० प्र० [हिं० डार] १ लुढ़कना। फिसलकर सरकना या गिरना। उ०—खोप चढ़ी प्रति मोहन की गति मोह महा गिरि तें दुरकी।—देव (शब्द०)। २ झुकना। उ०—सग में

सईस तें रईस तें नफीस बेस सीस उसनीस बना वाम और दुरकी।—गोपाल (शब्द०)। ३ डरकना। टपकना। बहना।

दुरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरकना] लेटकर किया जानेवाला विश्राम। लेटने या शयन करने की स्थिति। झपकी।

दुरना—संज्ञा पुं० [हिं० डार] दे० 'हुनमुनिया'—२।

दुरना—क्रि० प्र० [हिं० डार] १ गिरकर बहना। डरकना। ढलना। टपकना। नैनन दुर्हि मोति और मुँगा। कस गुड खाय रहा हूँ मुँगा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

२ कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डग-मगाना। ३ सूँ या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। सहारामा। जैसे, बँवर दुरना। उ०—जोवन मदमाती इतराती बेनी दुरत कटि पे छवि बाढी।—सूर (शब्द०)। ४ लुढ़कना। फिसल पड़ना। ५ प्रयुक्त होना। ६ झुकना। उ०—कभी दुर दुर कर स्त्रियों की भाँति हुनमुनिया भी खेलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६ अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोपे दुरी कान्हू-गरीब निवाज।—रसनिधि (शब्द०)।

दुरदुरिया—वि० [हिं० दुरना] ढलवाँ। चढ़ाव उतारवाला। उ०—भग भोके पातर मुँह दुरदुरिया, चूहे, मेखन के रेख।—शुक्ल० अभि० प्र० (सा०), पृ० १४०।

दुरदुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना] १ लुढ़कने की क्रिया का भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या बहने की क्रिया। उ०—लूटि सी करति कलहस जुग देव कहे, लुटि मोतिसिरि छिति छुटि दुरदुरी सेति।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

२ पगडंडी। पतला रास्ता। नथ में लगी हुई सोने के गोल दानों की पक्ति।

दुराना—क्रि० सं० [हिं० दुरना] १ गिराकर बहाना। डरकाना। ढलकाना। टपकाना। २ इधर उधर हिलाना। लहराना। उ०—ध्वजा फहराइ छत्र चौर सो दुराय बागे बीरन बताय यो बलाइ वाम धाम के।—हनुमान (शब्द०)। ३ लुढ़कना। फिसलकर गिरना।

दुरावना(१)—क्रि० सं० [हिं० दुराना] दे० 'दुराना-१'। उ०—पलक न लावति, रहत प्यान घरि, बारबार दुरावति पानी।—सूर (शब्द०)।

दुरावना—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना] गोल मटर। केराव मटर।

दुरकना(१)—क्रि० प्र० [हिं० दुलकना] दे० 'दुलकना'।

दुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते बन जाय। पगडंडी।

दुलकना—क्रि० प्र० [हिं० डाल + कना (प्रत्य०), वा सं० लुलकन,

- हि० लुङकना] १. नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना ।
ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना । लुङकना ।
ढंगलाना । २. दे० 'दुरना' ।

संयो० क्रि०—जाना ।

दुलकाना—क्रि० सं० [हि० दुलकना] टपकाना । गिराना । बहाना ।
लुङकाना । ढंगलाना । उ०—जैसे मोस्र जल ने दुलकाया ।
धवल धूलि ने नहलाया ।—वीणा पृ० १२ ।

दुलदुल—वि० [हि० दुलना] एक मोर स्थिर न रहनेवाला । लुङकने-
वाला । अस्थिर । कभी इधर कभी उधर होनेवाला ।

दुलना^१—क्रि० प्र० [हि० ढाल] १. गिरकर बहना । ढरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लुङकना । फिसल पड़ना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. प्रवृत्त होना । झुकना ।

संयो० क्रि०—माना ।—पड़ना ।

४. अनुकूल होना । प्रसन्न होना । कृपालु होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

५. कभी इधर कभी उधर होना । इधर उधर डोलना । इधर से
उधर हिलना । उ०—दुलहि प्रीति, लटकति नकुवेसरि, मद
मद गति पावे ।—सूर (शब्द०) । ६. सूत या रस्ती के रूप
की वस्तु का इधर उधर हिलना । लहर खाकर डोलना ।
लहराना । जैसे, चँवर दुलना ।

दुलना^२—संज्ञा पुं० [सं० डोल] एक वाद्य । दे० 'डोल' । उ०—
दुलना सुनो घघकारी । महलों उठै झनकारी ।—घट०,
पृ० ३७१ ।

दुलमुल—वि० [हि० दुलना, या अनु०] दे० 'दुलदुल' । उ०—गा गया
फिर भक्त दुलमुल चाटुना से वासना की झनमलाकर ।—
इत्यलम्, पृ० १६७ ।

दुलमुलाना—क्रि० प्र० [हि० दुलना] कपित होना । हिलना ।
उ०—पत्तियों की घुतकियाँ भट दीं चजा, ढालियाँ कुछ
दुलमुलाने सी लगी । किस परम आनदनिधि के चरण पर,
विश्व साँसें गीत पाने सी लगी ।—हिमवत०, पृ० ४० ।

दुलभाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० डोना] १. डोने का काम । २. डोने की
मजदूरी ।

दुलभाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलना] १. दुलाने की क्रिया । २.
दुलाने की मजदूरी ।

दुलबाना^१—क्रि० सं० [हि० डोना का प्रे० रूप] डोने का काम
कराना । बोझ लेकर जाने का काम कराना ।

दुलबाना^२—क्रि० सं० [हि० दुलाना का प्रे० रूप] दुलाने का
काम कराना ।

दुलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलाना] १. दुलाने की क्रिया । २. डोए
जाने की क्रिया । जैसे,—भाजकल सामान की दुलाई हो
रही है । ३. डोने की मजदूरी ।

दुलाना^१—क्रि० सं० [हि० ढाल] १. गिराकर बहाना । ढरकाना ।
ढालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. नीचे ढालना । ठहरा न रहने देना । गिराना । उ०—स्यंदन
खडि, महारण खंडी कपिध्वज सहित दुलाऊँ ।—सूर
(शब्द०) । ३. लुङकाना । ढंगलाना । ४. पीड़ित करना ।
जलाना । जलन या दाह उत्पन्न करना । उ०—रमैया चिन
नींद न पावे । नींद न पावे विरह सतावे, प्रेम की भाँच
दुलावे ।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ७३ ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. प्रवृत्त करना । झुकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. अनुकूल करना । प्रसन्न करना । कृपालु करना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

७. कभी इधर, कभी उधर करवा । इधर उधर दुलाना । इधर से
उधर हिलाना । जैसे, चँवर दुलाना । ८. चलाना । फिराना ।
उ०—सूर स्याम श्यामा वश कीनो ज्यों संग छाँह दुलावे हो ।
—सूर (शब्द०) । ९. फेरना । पीतना । उ०—ऊँचा
महल चिनाइया चूना कली दुलाय ।—कबीर (शब्द०) ।

दुलाना^२—क्रि० सं० [हि० डोना] डोने का काम कराना ।

दुलिया^१—संज्ञा पुं० [हि० डोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'डोलकिया' ।
उ०—जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, दुलिया डोल बजावे ।—
कबीर० पृ०, भा० १, पृ० १०२ ।

दुलिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलना] १. छोटी डोलक । २. छोटा
पालना या डोलो । सज्जा सहित एक दुलिया लैयो श्री पानन
की डौली झ ।—नद० ग्रं०, पृ० ३३१ ।

दुलुआ^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर या ताड़ की वनी शकर ।

दुलारार^१—संज्ञा पुं० [देश०] धुन नाम का कीड़ा ।

दूँकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दुकना' ।

दूँका—संज्ञा पुं० [हि० दूँकना] किसी घात या वस्तु की गुप्त रूप से
देखने के लिये घाट में छिपने का कार्य । बिना अपनी भाव
दिए कुछ देखने की घात में छिपने का काम ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दूँद—संज्ञा स्त्री० [हि० दूँदना] खोज । तलाश । प्रत्येक ।

मुहा०—दूँद दूँद = खोज । तलाश ।

दूँदना—क्रि० सं० [सं० दुण्डन] खोजना । तलाश करना । प्रत्येक
करना । पता लगाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना (दूसरे के लिये) ।—लेना (अपने
लिये) ।

यौ०—दूँदना डौदना = खोजना । तलाश करना ।

दूँदलार^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुण्डा] दुँडा नाम की राससी ।

दूँडो^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. किसी बीज का गोल पिंड या सोंदा ।
२. भुने हुए घाटे भाँच का बड़ा गोल लट्ठ जिसमें गुड़ घीर
तिल आदि मिले रहते हैं । अधिकतर यह देहातों में बनती है ।

दुकड़ा—सं० [सं० √ डूक, प्रा० दुक्क] पाठ । निकट । समीप ।
उ०—आगरवात पिचागियऊ, ए मति उत्तिम कीष । साहू
महूँ दुकड़ा, दाड़ी डेरउ नीय ।—डोसा०, दू० १८० ।

दुहना—क्रि० प्र० [सं० √ डूक, प्रा० दुक्क, हि० डुकना] १. पाठ
जाना । समीप जाना । उ०—महूर रंग रचउ हुवइ, मुच
काजत मति प्रल । जौएउ गुजाइत मसइ, तेण न डूकउ
मन ।—डोसा०, दू० २०२ ।

दुहा—सं० पु० [डू] दहन, पाठ प्रादि के बोझ का एक मान जो
रस पुन का होता है ।

दुहा—सं० पु० [हि० दुंकना] दे० 'दुँका' ।

दुहिया—सं० पु० [दे०] देवीवर धेनों का एक नद ।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान
के समय को छोड़ सदा मुँह पर पट्टी धाँपे रहते हैं ।

दुमर—सं० पु० [दे०] बनियों की एक जाति ।

दुसा—सं० पु० [दे०] कुरी का एक पेच जिसमें ऊपर घाया हुआ
पक्षपात नीचेपात को गरदन पर हाथ मारकर उसे चित
करता है ।

दुर्दा—सं० पु० [सं० स्तूय] १. डेर । घटासा । २. टीला । भीटा ।
उ०—नहि रकबा को नाम, पाम गिरि डूह दयो वनि ।—
प्रेमधन०, भा० १, पु० ११ । ३ मिट्टी का छोटा टीला जो
तामा या हृद मुचित करने के लिये सड़ा किया जाता है ।

दुर्दा—सं० पु० [सं० स्तूय] दे० 'दुँह' ।

दुँक—सं० श्री० [सं० डेऊ] दे० 'डूँक' ।

डूँकिका—सं० श्री० [सं० डेङ्किका] एक प्रकार का नृत्य ।

डूँक—सं० श्री० [सं० डेङ्क, प्रा० डेऊ] पानी के किनारे रहनेवाली
एक चिड़िया जिसकी पींछ और गरदन लंबी होती है । उ०—
(क) केवा डोन डेऊ बक लेयी । रहे मपूरि मोन जल भेदी ।
—जायसी (सं०) । (ख) हवत पिक मानहुँ गजमाते ।
डेऊ महोष जैट बिसराते ।—तुलसी (सं०) ।

डूँक—सं० पु० [दे०] घान कूटने का लकड़ी का एक यंत्र ।
डूँकली ।

डूँकली—सं० श्री० [दे०] घपवा हि० डूँक (= चिड़िया, जिसकी
गरदा लंबी होती है) । १. विषाई के लिये हुए से पानी
निकासने का एक यंत्र ।

विशेष—इसमें एक ऊँची छोटी लकड़ी के ऊपर एक छोटी लकड़ी
धीं-धींसे इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसके दोनों छोर
बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकेंगे । इसके एक छोर में,
मिट्टी छोटी रहती है । या परपर बंधा रहता है और दूसरे
छोर में दो दूँके के मुँह की ओर होता है, बोल की रस्ती बंधी
होती है । मिट्टी या परपर के बोझ को बोल कुँ में से ऊपर
धाती है ।

डूँक प्र०—जाना ।

• एक प्रकार की घिसाई की जोड़ की महीर के नमानांतर नहीं
होती, छोटी होती है । छोटे बोझ की घिसाई ।

डूँक प्र०—मारना ।

३ घान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार खोचने की
डूँकली ही से मिलता छलता पर बहुत छोटा और जमीन से
लगा हुआ होता है । घनकुट्टी । डूँकी । ४. भस्के से घर्क
उतारने का यंत्र । वक्तु ड यंत्र । ५. सिर नीचे और पैर ऊपर
करके उलट जाने की क्रिया । कताबाजी । कतैया ।

डूँक प्र०—जाना ।

डूँका—सं० पु० [हि० डूँक (= पक्षी)] १. कोल्हू में वह बाँस जो
जाट के सिर से हतरी तक लगा रहता है । २. बड़ी डूँकी ।

डूँकिया—सं० श्री० [हि० डूँकी] डेडपटी चढ़ बनाने में कपड़े की
एक प्रकार की गूँठ और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई एक
तिहाई पच जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है ।

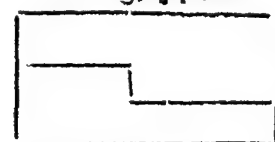
विशेष—इस काट की विशेषता यह है कि इसमें बाड़ी जोड़
किनारे तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है । इसमें
कपड़े की लंबाई को तीन बराबर भागों में तह करके बाँडे
निशान डाल देते हैं । फिर एक बाड़ी लकीर पर बाँधी दूर
तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं । इसी प्रकार दूसरे
किनारे की ओर दूसरी बाड़ी लकीर पर भी बाँधी दूर तक
फाड़ते हैं । इसके उपरांत बीच में पड़नेवाले भाग को सड़े बस
भाँडेगाय काट देते हैं । इस तरह जो दो टुकड़े निकलते हैं
उन्हें खाली स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं ।

पूरा कपड़ा

काटा हुआ कपड़ा



दोनों जुड़े हुए कपड़े



डूँकी—सं० श्री० [हि० डूँक (= एक पक्षी)] घानाज कूटने का
लकड़ी का एक यंत्र । डूँकली ।

डूँकी—सं० श्री० [सं० डेङ्किका, डेङ्की] दे० 'डूँकिका' ।

डूँकुरी—सं० श्री० [हि०] दे० 'डूँकली' ।

डूँकुली—सं० श्री० [हि०] दे० 'डूँकली' ।

डूँकी—सं० श्री० [दे०] घन भा पेड़ ।

डूँकी—सं० पु० [दे०] १. कोया । २. एक नीच जाति जो मरे जान
घरों का माँस खाती है । उ०—माँस खाते डूँक सब मद
पीये सो नीच ।—कबीर (सं०) । ३. मुराँ । मूढ । जड़ ।

डूँक—सं० पु० [सं० तुण्ड, हि० डूँक] कपास प्रादि का डोसा ।
डोडा । उ०—सुनर सुगना सबए दुइ डेँ की मास ।—
कबीर (सं०) ।

डूँकर—सं० पु० [हि० डूँक] घाँस के डेँ के निकल हुआ चिड़िया
नीच । डूँकर ।

डूँकवा—सं० पु० [दे०] काने मुँह का घदर । सगुर ।

ढंढा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] दे० 'ढे' ।

ढंढी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढंढा] १. कपास का ढोडा । २. पोस्ते का ढोडा । ३. कान का एक गहना । तरकी । उ०—सीस फूल जड़ाव जड़ा ग्रंजन ज्ञान लगावन । मानसी नयुनी ढंढी शब्द मांग भरावन ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४ ।

ढेंप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । २. कुचाप । बोंड़ी ।

ढेंपी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेंप' ।

ढेउआ—संज्ञा पुं० [देश०] पंसा ।

ढेऊ—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर । तरंग । हिलोरा ।

ढेकुआ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ढेकली' ।

ढेढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नजर । प्रांख । उ०—रात दिवस घनी पहरीयो । तोही मूसारी मूसी गयो ढेढ़ ।—बी० रासी, पृ० २७ ।

ढेड़स—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेड़सी' ।

ढेपनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेपनी' ।

ढेपुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेप] १. पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है । ढेंप । २. किसी वस्तु की बाने की तरह उभरी हुई नोक । ठोंठ । ३. कुचाप । घुघुक ।

ढेवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डिवरी' ।

ढेवरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरी, मामरो घोर वही भी कहते हैं । वि० दे० 'रुही' ।

ढेवुआ—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका; या देश०] दे० 'ढेवुक' ।

ढेवुका—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका या देश०] डेउआ । पंसा । उ०—यया ढेवुक मुद्रा जग माहीं । है सब एक पवित्र सम नाहीं ।—विश्राम (मैन्द०) ।

ढेवुआ—संज्ञा पुं० [सं० ढेवुका, देश०] पंसा । डेउआ । ताम्रमुद्रा ।

ढेममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढेऊ + का० मौज] बड़ी सहर । समुद्र की केंची लहर (लश०) ।

ढेर—संज्ञा पुं० [हि० धरना] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो । राशि । घटाला । धबार । गंज । टाल ।

ढि० प्र०—करना ।—जगाना ।

मुहा०—ढेर करना=मारकर गिरा देना । मार डालना । उ०—होस की दवा करो । ढेर कर दूंगा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३७ । ढेर रखना=मारकर रख देना । चीता न छोड़ना । ढेर रहना = (१) गिरकर मर जाना । (२) एककर चूर हो जाना । मस्यत मियिल हो जाना । ढेर हो जाना = (१) गिरकर मर जाना । मर जाना । (२) ध्वस्त होना । गिर पड़ जाना । जैसे, मकान का ढेर होना । (३) मियिल हो जाना ।

ढेरी—वि० बहुत । अधिक । ज्यादा ।

४-४१

ढेरना—संज्ञा पुं० [देश० या हि० ढुरना (= घुमना)] सूत या रस्सी बटने की फिरकी ।

ढेरा—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो घाड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा ढंढा जड़कर बनाई जाती है । २. मोट के मुंह पर का लकड़ी का लोहे का घेरा जो मोट का मुंह खुला रखने के लिये लगा रहता है । ३. घंकोल का पेड़ (वैद्यक) ।

ढेरा—वि० [देश०] जिसकी घाँसों की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों । भेंगा । ग्रंथर तक्क ।

ढेराढेक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली । दे० 'ढेक' ।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेर] ढेर । समूह । घटाला । राशि ।

ढेरु—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ढेर' । उ०—कचन को ढेर जो मुमेय सो लसात है ।—सूरदास प्र०, पृ० ४६ ।

ढेला—संज्ञा पुं० [हि० डला] दे० 'डेला' ।

ढेलवाँस—संज्ञा स्त्री० [हि० डेला + सं० पाश] रस्सी का एक फंदा जिससे डेला फेंकते हैं । गोफना । उ०—इस सम्मता के लोगों के घल्ल घल्ल, भाखे, कटार, परणु, गदा, तीर, धनुष, डेलवाँस आदि थे ।—आदि० भा०, पृ० ४८ ।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हि० डला] १. ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा । चक्का । जैसे, डेला फेंककर मारना ।

यौ०—ढेला चौथ ।

२ टुकड़ा । खड । जैसे, तमक का डेला । ३. एक प्रकार का घान । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर डेला जोरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

ढेलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [हि० डेला + चौथ] भादों, सुदी चौथ । भाद्र शुक्ल चतुर्थी ।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलक लगता है । यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए । गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर डेला फेंकना है । अतः लोग इस दिन डेला फेंकते हैं । यह प्रायः एक प्रकार का विनोद या खेलवाड़ सा हो गया है ।

ढेवुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पैसे का सिक्का [को०] ।

ढेकली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ढेकली' ।

ढेकुरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का युद्धयन्त्र । डेलवाँस । गोफन । उ०—भार ढेकुरी जय निबान । गड पर पछिन पावे जाव ।—छिटाई०, पृ० ५९ ।

ढेंचा—संज्ञा पुं० [देश०] चकवेंक की तरह का एक पेड़ जिसकी छाज से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । हरी खाद के रूप में भी इसका प्रयोग होता है । जयती । २ पाख के भीठे पर छाजन के लिये सन या पटवे का डंठल ।

ढेक—संज्ञा स्त्री० [हि० ढेक] दे० 'ढेक' । उ०—डेकि पल्लि मटामरे घने । जलकुकरी भारि घनघने ।—छिटाई०, पृ० ६३ ।

टिप्पणी—यहाँ श्री० [द्वि० जाई] १. जाई खेर की बाट । जाई खेर
 गोवन का बटखरा । २. जाई मुने का पहाड़ा । ३. घनेखर
 क मृदु राति भर स्थिर रहूँ का जाई वर्ष का कात ।

नोट—चक्र [सं.] से 'डोक' ।

दीक्षता—वि० न० [धनु०] पोना । पो जाना । (पतिष्ट या
मिनाद) ।

टीका—यह दो [दिनांक] १. पायर या घोर किसी कड़ी वस्तु का उदा घनगड़ टुकड़ा । २ यह बाँस जो कोल्ह में जाट के सिरे त भेदर कोल्ह तक बंधा रहता है । ३. दो डोली पान । पार की पान (समोना) ।

श्रीगो—नमो ३० [१५० अ] उद्योतसा । पाखंड । कृष्ण माडवर ।
 श्री० प्र०—रुना ।—रघना ।

संनिवृत्तः यदा तु [वि० जंग+ध० घृतं] घृतं विद्या । घृतंता ।
पाठः ।

दोंगियाज - नि० [हि० उँग + छा० बाज] दे० 'दोंगी' ।

शैव्याचा वस्त्र का० [हि० डोंग + का बाजी] पासड । माडवर ।
डोंग ।

डोंगा— कषा पु० [हि० डोंगा] नाप । ठोल । मान । चोगा ।
उ० बाँग का डोंगा, काठ की डोकनी तथा रेत की डलिया
द्वारा नाप जोख का प्रचलन उठाकर उनके स्थान पर तबि का
माना (साथ सेर), पाथी (चार सेर) - इत्यादि को
प्रमाणित पैमाना माना जायगा।—नेपाल०, पृ० ३१ ।

जै. वि. [द्वि. गै.] पास हो । उहोसलेवाज । झूठा घाटपर
करना ।

६ - पृष्ठ १० [हि०] ३० 'ओटा' ।

३ - ६५: १५ [५० तुल्य] कपास, पोस्ते मादि का होना । २. कली ।

४। १—मह. का. [हि. गेड़] १. नामि । पुन्नी । २. कली । डोली ।

1. — एक का [बेस] एक प्रकार की मद्य जो १२ इंच लम्बी होती है। डरी। गैर।

शोचना—(च० प्र० [हि० चुकना] कुकना । मद्य रहना । उ०—
 दया मम ने राक्षि पुन के धरनन डोस्त ।—प्रज्ञ० प्र०
 पृ० ११८ ।

टीका—कण ३० [द्वि०] १ २० 'जोका' । २. पर्या । योज । उ०—
 भाजि भ'जि के धम (देवच) क ठोके लगाए । —प्रेमपत्र०,
 भा० २, पृ० २५८ ।

झोटा—जब [३० दुग्धितृ (= सङ्करी), हि० डोटी] [स्त्री०
झोटी] १ पुन। यटा। उ०—देखत छोट छोट नुपडोटा।
—दुपडी (म०२०)। २ सङ्करी। वासर। उ०—गोकुल के
मंड एह सोरगे सो झोटा माई धेगियन के पंक पैठि जो के
रह गयो वे।—मूर (म०२०)।

टीप— ५. ४० [५० इति] सरदी । पुत्री । पालिका ।

गोटीना, गोटीनादि — यथा दुः [हि० गोटा] २० 'गोटा' । उ०—
 यथाय यथा दुरु विचरो गोटीना वेदि माहो नोदिवो जगदी ।
 —पूर (पृ० २०) ।

ढोङ्गा—सश पु० [देव०] जट । (डि०) ।

ढोङ्गीं—सया श्री० [सं० दुहितृ] दे० 'ढोटी' । उ०—दुखी बुखी
ढोङ्गीं सँदरी पर खोखे भुलखे पाखी सी, खिसियाए मुँह
वाए ।—रसलम्, पृ० ११० ।

ढोना—क्रि० सं० [सं० ढोड (= वहन करना, ले जाना), प्रायश
 धण्विपर्यय > ढोव] । चीक लावकर ले जाना । मार ले
 चलना । भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान
 पर पहुँचाना ।

सयो० कि०—देना ।—ले जाना ।

२. उठा ले जाना । जैसे,—चोर सारा माल ढो ले गए ।

ढोर—सषा ५० [हिं. हुस्ता] गाय, बैल, भैंस आदि पशु । चौपाया ।
मवेशी । उ०—जय हरि मधुवन को जु सिधारे घोरज घरत
न डोर ।—सूर (शब्द०) ।

ढोरना। ७१—क्रि० सं० [हि० डारना] १ पानी या झोर कोई द्रव पदार्थ गिराकर बहाना । ढरकाना । ढालना उ०—(क) रीते भरें, भरे पुनि ढोरें, चाहे फेरि भरे । कबहुँकृ तृण वृक्ष पानी में कबहुँ चिला तरै ।—सूर (शब्द०) । (ख) जननी प्रति रिस जानि बधायो चित्त वदन लोचन जल ढोरै ।—सूर (शब्द०) । (ग) वे मत्कूर कूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरै ।—सूर (शब्द०) । २ लुढ़काना । ३ फेरना । ढालना । उ०—यमुनाप्रसाद ने माँखें ढोरी । कहा, 'पहलवान, मामता भुमारा नहीं झोर भय बिलकुल बक्त नहीं रहा' ।—कालि०, पृ० ४१ । ४. डुसाना । हिलाना । उ०—(क) खेंवर बास डोरत हूँ ठाढ़ी ।—नद० प्र०, पृ० २१३ । (ख) लेकर वाउ विजन कर डोरी ।—रसरतन, पृ० २१५ । (ग) पान सबावत झरन पलोदत डारत विजन झोर ।—भारतेन्दु प्र०, भा० ३, पृ० ५६९ । ५ नम्र करना । नमाना । नीचा करना । उ०—मैंसे बचनु सुन्यो मुलिवान । सीसु डोरि कै मुँदे कान ।—द्विताई०, पृ० ६१ ।

ढोरा—सषा पु० [हि०] दे० 'ढोर' ।

ढोरी'—सथा की० [हि० ढोरना] १ ढालने का भाव । ढरकाने की क्रिया या भाव । उ०—कनक कषय केसरि भरि ल्याई बारि दियो हरि पर ढोरी की । प्रति मानव भरो व्रज मुखी गावति गीत सये ढोरी की ।—सूर (पाव०) । २. रट । धुन । बान । ली । लगन । उ०—सुरदास गोपी बहभागी । हरि बरसन की ढोरी लागी । (ख) ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी मुस्कात । घोरी घोरी सकुच सों भोरी भोरी बात ।—बिहारी (पाव०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

ढोरो^३—वि० [हि० डोरना] १ डुरो डुरई। दली डुरई। २ हिलवा
डुमती। मत्त। उ०—ब्रज बनिता वीरो भई होरी भुनत
माज। रस डोरी दोरी फिरत निजवत हैं ब्रजराज।—अ०
पं०, पं० ३१।

ढोल—सजा पु० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों छोर चमड़ा मड़ा होता है ।

विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए लंबोतरे कुदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों ओर मुँह पर चमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से और बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों पर दो मिन मिन प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'ढव ढव' की तरह गभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का शब्द होता है।

यौ०—ढोल ढमका = बाजा गाजा। घुम घाम।

मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = धोपणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहते या जताते फिरना। उ०—(क) नाचो घूँघट खोलि, ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१। (ख) ब्रजमंडल में ध्वनानी के ढोल, निरंक हैं आज बजे तो बजे।—नट०, पृ० ५८।

२ कान का पन्दा। कान की वह झिल्ली जिसपर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोल(०)२—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'—१। उ०—नाचो घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१

ढोलक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकिहा—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलकिया'। उ०—फटत ढोल बहु ढोलकिहन की घोंगुरिन तर तर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६।

ढोलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलक'।

ढोलढमका—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल + अनु० ढमका] दे० 'ढोल' का यौ०।

ढोलना^१—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] दे० 'ढोलना'२।

ढोलना^२—संज्ञा पुं० [प्रप०] दूल्हा। प्रिय। प्रियतम। उ०—ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ भाइ। सुंदर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाय।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० १८१।

ढोलनहार—वि० [हिं० ढोलना] ढालने या ढलकानेवाला। उ०—मन नित ढोलनहार।—कबीर ग्र०, पृ० १८।

ढोलना^३—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १ ढोलक के आकार का छोटा जतर जो ताने में पिरोकर गले में पहना जाता है। उ०—माने गड़ि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर (शब्द०)। २ ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या खेत के ढेले फोड़कर जमीन चोरस करते हैं।

ढोलना^४—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] बच्चों का छोटा झूला। पालना।

ढोलना^५—क्रि० स० [सं० ढोलन] १ ढरकाना। ढालना। उ०—(क) रे घटवासी, मैंने वे घट तेरे ही चरणों पर ढोले, कोन तुम्हारी बातें खोले।—हिमवत्, पृ० २६। (ख) चोवा केरे कूपले ढोली साहिब सीस।—ढोला०, पृ० ५६२। २ झर उधर हिलाना। ढुलाना। झलना। जैसे, चँवरें ढोलना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोलन] बच्चों का झूला। पालना। उ०—

भगर चवन को पालनी गढ़ई गुर डार सुंदार। लै भायो गड़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुतधार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा धेरेदार खटोला सा होता है।

ढोलवाई^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] दे० 'ढुलवाई'।

ढोला—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १ बिना पेर का रंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो आध अंगुल से दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पोषों के हरे ढठलों में पड़ जाता है। २ वह दूह या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है। हृद का निशान।

यौ०—ढोलावदी।

३ गोल मेहराब बनाने का ढाट। लदाव। ४ पिंड। शरीर। देह। उ०—जो लगी ढोला तो लगी ढोला तो लगी धनव्यवहार।—कबीर (शब्द०)। ५ डंका या दमामा। उ०—वामसेनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देहु जुद्ध कहें ढोला।—हिंदी प्रेम०, पृ० २२३।

ढोला^२—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, दुल्लह, राज०, प्रं० ढोला] १ पति। प्यारा। प्रियतम। २ एक प्रकार का गीत। ३ मूर्ख मनुष्य। जठ।

ढोलिधरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—ढोलिधरा के होलें—होलें ढोलु बजाइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६१८।

ढोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० होल] दे० 'ढोल'। उ०—सग राधिका सुजान गावत सारंग तान, बजत वाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३६३।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली। डंफालिन। उ०—नटिनि डोलिनी ढोलिनी सहनाइनि मेरिकांरि। नितंत तत विनोद सकैं विहंसत खेलत नारि।—जायसी (शब्द०)।

ढोलिया^१—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—मीर बड़े बड़े जात बड़े तहाँ ढोलिये पार लगावत को है।—ठाकुर (शब्द०)।

ढोलिया(०)^२—[हिं० ढुलकना या ढुलना] एक जगह स्थिर न रहनेवाला। गतिशील। रमता। उ०—ढोलिया साधु सदा ससारा।—धरनी०, पृ० ४१।

ढोली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोल] २०० पानों की गड्डी। उ०—ढोलिन ढोलिन पान विकाना भीटन के मेदाना।—कबीर (शब्द०)।

ढोली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोली, ठोली] हँसी। दिल्लगी। ठोली। ठुड़ा। उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहि करति ढोली।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ढोव—संज्ञा पुं० [हिं० ढोवना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं। डाली। नजर। उ०—लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।—तुलसी (शब्द०)।

ढोवना^१—क्रि० स० [हिं० ढोवा] दे० 'ढोना'।

ढोवा^१—संज्ञा पुं० [?] घावा । घातमण । हुमला । उ०—पंच पंच मन की हाथनि गुरज । ढोवा ढारि ढहावे नुरज ।—छिटाई०, पृ० ३४ । (ख) निसि वासर ढोवा करे सोणित बहै प्रवाह ।—छिटाई०, पृ० ४२ ।

ढोवा^२—संज्ञा पुं० [हि० ढोना] १ ढोए जाने की क्रिया । ढोवाई । २. लूट । उ०—सुनहि सुन सँवरि पड़ रोवा । कस होइहि जो होइहि ढोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ढोवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ढुवाई] दे० 'ढुवाई' ।

ढोहना—क्रि० स० [हि० ढोह] ढोह लेना । खोजना ।

ढौंचा—संज्ञा पुं० [सं० घट्टे, प्रा० घट्टु + हि० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक घटक का साढ़े चार गुना घट्ट वतलाया जाता है । साढ़े चार का पहाड़ा ।

ण—हिन्दी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है । इसके उच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट धीर सानुनासिक है । बाह्य प्रयत्न सवार साद घोष धीर म्रलप्राण है । इसका संयोग मूधन्य वर्ण, प्रत्यक्ष तथा मन्धोर ह के साथ होता है ।

ण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदुष । एक बुद्ध का नाम । २. प्रासूषण । ३. निरुण्य । ४. ज्ञान । ५. शिव का एक नाम । ६. पानी का

ढौंसना—क्रि० प्र० [प्रनु०, हि० धौंस] धानदधनि करना । उ०—तियनि को तल्ला पिय तियन पियल्ला त्यागे ढौंसत प्रबल्ला मल्ला धाप राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

ढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] घुस । रिशवत ।

ढौकना—क्रि० स० [देश०] पीना ।—(अग्निष्ट) ।

ढौकित—वि० [सं०] समीप या निकट लाया हुआ [को०] ।

ढौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] रठ । घुन । लौ । लगन । उ०—(क) रसिक सिर मोर ढौरि लगावत गावत राधा राधा नाम ।—सूर (शब्द०) । (ख) रुखिए खात नही मनखात भखे दिन राति रही परि ढौरी ।—देव (शब्द०) ।

ढौरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ढुरना] दे० 'ढुरी' ।

ण

घर । ७ दान । ८ पिगल में एक गण का नाम । वि० दे० 'जगण' । ९ बुरा व्यक्ति । खराब, मादमी (को०) । १०. प्रस्वीकारसूचक शब्द । न । नहीं (को०) ।

ण^२—वि० गुणरहित । गुणशून्य ।

णगण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मात्राओं का एक मात्रिक गण । इसके दो रूप हो सकते हैं—जैसे, 'ध्री (ऽ) धीर हरि' (॥) ।

ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक का एक समुद्र [को०] ।

त

—संस्कृत या हिन्दी वर्णमाला का १६वाँ धीर तवर्ण का पहला ध्वनि जिसका उच्चारणस्थान दंत है । इसके उच्चारण में विवार, श्वास धीर मधोष प्रयत्न लगते हैं । इसके उच्चारण में प्राची-मात्रा का समय लगता है ।

त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाव । नौका । २. पुण्य । पवित्रता ।

तंक—संज्ञा पुं० [सं० तङ्क] १ मय । डर । वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग से हो । २. परस्पर काटने की टीकी । ४. पहनने का कपड़ा । ५. कष्टपूर्ण जीवन । विपत्तिमय जीवन (को०) ।

तंकन—संज्ञा पुं० [सं० तङ्कन] कष्टमय जीवन । दुःख के साथ जीवन व्यतीत करना [को०] ।

तका^१—वि० [हि० तक] मयकारी । घातक उत्पन्न करनेवाला । उ०—नरवल धौ चितोइ सु तका ।—ह० रासो, पृ० ५६ ।

तंग^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घोड़ों की जीम कसने का तस्मा । घोड़ों की पेटो । कसन ।

तंग^२—वि० १ कसा । चढ़ । २. भाजिय । दुखी । विक । विकल । हैशान ।

मुहा०—तंग घाना, तंग होना = चबरा जाना । थक जाना । तंग करना = ससाना । दुःख देना । हाथ तंग होना = पल्ले पैसा व होना । मनहीन होना ।

३ सँकरा । संकुचित । प्रतला । चुस्त । सकीर्ण । मोछा । छोटा । सिकुड़ा हुआ । सकेत । उ०—कहै पदमाकर त्यों उन्नत उरोज्वर पै तंग भंगिया है तनी तनिन तनाइके ।—पद्माकर प्र०, पृ० १२६ ।

तंगदस्त—वि० [फ्रा०] १. कृपण । कजूस । २. दरिद्री । धनहीन । गरीब ।

तंगदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. कृपणता । कजूसी । २. दरिद्रता । धनहीनता । गरीबी ।

तंगदिल—वि० [फ्रा०] कजूस । उ०—हुमा मालूम यह गुचे से हृमको । जो कोई जरदार है सो तंगदिल है ।—कविता को०, भाग० ४, पृ० ३० ।

तंगमजर—वि० [फ्रा० तंग + प्र० मजर] १. तुच्छ दृष्टि का । सीमित दृष्टिवाला । बहुत कम देखनेवाला । उ०—उसने उनकी तुलना उन तंगमजर कीटियों से की, जो किसी प्रतिमा के सौंदर्य को इसलिये नहीं देख पाते क्योंकि उसपर रंगते सनने वे केवल उसके छोटे मोटे उतार चढ़ावों पर ही दृष्टि केंद्रित रखती हैं ।—प्रेम० धीर गोर्की, पृ० 'च' । २. अनुदार । बकियापुस ।

तंगनजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तंगनजर + ई (प्रत्य०)] १. दृष्टि की संकीर्णता । दृष्टि की मरुता । २. अनुदारता । बकियापुसी ।

तंगहाल—वि० [फा०] १. निर्वन । गरीब । २. विपदग्रस्त । कष्ट में पड़ा हुआ । ३. बीमार । रोगग्रस्त । मरणाश्रय ।

तंगहाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तंग + प्र० हाल + फा० ई (प्रत्य०)] १. तंग होने की स्थिति । कठिनाई । २. अभाव । ३. परेशानी । दिक्कत । ४. अर्थभाव की स्थिति [को०] ।

तंगा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ । २. अघघ्ना । डपल पैसा ।

तंगिशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'तंगी' ।

तंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. तंग या सँकरे होने का भाव । सँकी-खुंता । सँकीच । २. दुःख । तकलीफ । क्लेश । ३. निर्वनता । गरीबी । ४. कमी । उ०—वध ते निर्वध कीहुँ तोड सब तंगी । कहँ कधीर भगम गम कीया नाम रग रगी ।—कबीर श०, मा० १, पृ० ७७ ।

तंजन—सञ्ज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] देश० 'ताजन' । उ०—जल विनु पट्टम घानि विनु चपा विद्या चतुर घोड विनु तंजन ।—स० दरिया, पृ० ६० ।

तंजेव—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तंजेव] एक प्रकार का महीन घोर बढिया मलमल ।

तंढे—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्य । नाच । उ०—बहुत गुलाब के सुगंध के समीर सने परत कुही है जस जतन के तब की ।—रसकृष्णमकर (शब्द०) ।

तंढे—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्ड] एक ऋषि का नाम ।

तंढे^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डा] १. वध । सहार । २. आक्रमण । प्रहार । उ०—जिन बीरन बसि करन दुद आराधत तंडहि ।—पृ० रा० ६।५६ ।

तंडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डक] १. खनन पत्ती । २. फेन । ३. पैर का तना । ४. वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों । ५. बहुवचन । ६. सज्जा । सजावट (को०) । ७. ऐंद्रजालिक । बाजीगर (को०) । ८. पूर्वाभ्यास प्रपञ्च पूर्व अभिनय (को०) ।

तंडना^२—क्रि० सं० [सं० तण्ड] नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—तोप नगारो तडियो, मसुरां देव समाप ।—शिखर०, पृ० ६५ ।

तंडव^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्यविशेष । एक प्रकार का नाच । जैसे,—दोऊ रति पडित मलडित करत काम तंडव सो मडित कला कहँ पुरन की ।—देव (शब्द०) ।

तंडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डा] १. मार डालना । वध । २. आक्रमण । प्रहार [को०] ।

तंडि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डि] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वंश महाभारत में आया है । इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र यजुर्वेद में हैं ।

तंडीर^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूणीर] तूणीर । तरकस । उ०—तीन पनच पुनही करन बड़े कटन तंडीर ।—पृ० रा०, ७।७६ ।

तंडु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डु] महादेव जी के नविकेशवर । नबी ।

तंडुरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुरण] १. चावल का पानी । २. कीड़ा मकोड़ा ।

तंडुरीण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीण] १. वह पानी जिसमें चावल धोया गया हो । चावल का धोवन । २. मांड । ३. बज्र मुख । बर्बर व्यक्ति । ४. कीड़ा मकोड़ा [को०] ।

तंडुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. चावल । २. बायबिडंग । ३. तंडुली शाक । चोलाई का साग । ४. प्राचीन काल की हीरे की एक तोल जो आठ सरसों के बराबर होती थी ।

तंडुलजल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलजल] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बतलाया गया है । यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(१) चावल को कुटकर घटगुने पानी में पकाकर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुलजल है । (२) चावल को थोड़ी देर तक भिगोकर छान लेते हैं । यह तंडुलजल साधारण है ।

तंडुलाम्बु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलाम्बु] १. तंडुलजल । २. मांड । पीच ।

तंडुला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुला] १. बायबिडंग । ककड़ी का पोषा । २. चोलाई का साग ।

तंडुलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] चोलाई । चोराई ।

तंडुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुली] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. चोलाई का साग । ३. यवतिका नाम की लता ।

तंडुलीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीक] चोलाई का साग ।

तंडुलीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] चोलाई का साग ।

तंडुलीयक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीयक] १. बायबिडंग । २. चोलाई का साग ।

तंडुलीयिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुलीयिका] बायबिडंग ।

तंडुलू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तण्डल] बायबिडंग । बिडंग ।

तंडुलेर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेर] चोलाई का साग ।

तंडुलेरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेरक] चोलाई का साग ।

तंडुलोत्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थ] चावल का पानी । देश० 'तंडुलजल' ।

तंडुलोत्थक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थक] देश० 'तंडुलोत्थ' [को०] ।

तंडुलोदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोदक] चावल का पानी । देश० 'तंडुलजल' ।

तंडुलौष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोष] १. एक प्रकार का बसि । कट-वासी । २. अनाज का ढेर [को०] ।

तंत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्तु] 'तन्तु' । उ०—किंगरी हाथ यहै बैरागी । पाँच तंत घुनि यह एक लागी ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तुरंत] किसी बात के लिये जल्दी । आतुरता । उतावली । उ०—ध्यान की मूरति प्राप्ति के प्रागे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति हैं तंत सौं ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—तपाना ।

तंत^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तत्व] देश० 'तत्व' । उ०—योगिहि कोह न चाही तब न मोहि रिस धाग । योग तंत ज्यों पानी काहि करे तेहि धाग ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. वह बाधा जिसमें बजाने के लिये तार बंधे हो । जैसे,—सितार, बीन, सारंगी । उ०—(क) बदिनी

डोमिनि डोलिनी सहनाहनि भेरिकार । निरतत तत विनोद
सर्वे विहंसत खेलति नारि ।—जायसी (शब्द०) । (ख) तंन
की भनकार बजत भीनी भीनी ।—सतवाणी०, पृ० २३ । २.
क्रिया । उ०—जनु उन योग तत प्रब खेला ।—जायसी
(शब्द०) । ३ तनपास । उ०—कइ जीउ तत मंत सउ हेरा ।
गएउ हेराय सो वह भा मेरा ।—जायसी(शब्द०) । ४ इच्छा ।
प्रबल कामना । उ०—(क) दिसि परजत मनत क्यात जय
बिजय तत जिय ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत
तंत जय मय निरधारत ।—गोपाल (शब्द०) । ५ वश ।
अधीनता । उ०—रथो पदमाकर आइयो कत इकत जवै निज
तत में जानी । पद्याकर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'तंत्र' ।

तंत^१—वि० जो तौल में ठीक हो । जो वजन में बराबर हो ।

तंतमंत^७—सङ्घा पुं० [सं० तन्त्रमन्त्र] दे० 'तन्त्र मन्त्र' । उ०—कइ जित
तव मत सों हेरा । गएउ हिराय जो वह भा मेरा—
जायसी (शब्द०) ।

तंतरी^७—सङ्घा पुं० [सं० तन्त्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो ।
उ०—प्रायो दुसह बसत री कंत न प्राए वीर । जन
मन वेधत तंतरी मदन सुमन के तीर ।—शृ० सत० (शब्द०) ।

तंताल^७—सङ्घा पुं० [?] पाताल । उ०—नम नाल तंताल
धराल मिले त्रयलोक सुरपति विद्धि सहो ।—राम० धर्म०,
पृ० ३०० ।

तंति—सङ्घा स्त्री० [सं० तन्ति] १ गो । गाय । २. रस्सी (को०) । ३.
पक्ति (को०) । ४ शृङ्खला (को०) । ५ फैलाव । प्रसार (को०) ।

तंति^२—सङ्घा पुं० जुलाहा ।

तंति^७—सङ्घा स्त्री० [सं० तन्त्री] १ तन्त्री । बीणा । उ०—वृत्तन
एक संगीत भति । नारद रिभक्त कर धरत तति ।—पु०
रा०, ६।४१ । २ तौत । प्रत्यक्षा । डोरी । गुण । उ०—नव
पुहुपन के धनुष बनावे । मधुप पौति तिनि तति चढ़ावे ।
—नद० ग्रं०, पृ० १६४ ।

तंतिपास—सङ्घा पुं० [तन्तिपाल] १ सहदेव का वह नाम जिससे
वह प्रजातवास के समय विराट के यहाँ प्रसिद्ध थे । २. वह जो
गो की रक्षा या पालन करता हो ।

तंती^७—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'तन्त्री' । उ०—ततिनाद । तंबोल रस
सुरहि सुगंधत जाइ ।—ढोला०, दृ० २२३ ।

तंतु^१—सङ्घा पुं० [सं० तन्तु] १. सूत । डोरा । तागा ।

यौ०—तंतुकीट ।

२. ग्राह । ३ संतति । सतान । बाल बच्चे । ४. विस्तार ।
फैलाव । ५ यज्ञ की परंपरा । ६. वंशपरंपरा । ७ तौत ।
८ मकड़ी का जाला ।

तंतु^१^७—सङ्घा पुं० [सं० तन्त्र] तन्त्र । उ०—जिहि मूरि प्रोपद लगे,
जाहि तनु नहि मंतु । पिय पकष पावे नही, व्याधि कहत
इमि जनु ।—रस र०, पृ० ५० ।

तंतुक^१—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुक] १ सरसो । २. (केवल समासात में)
सूय । रस्सा (को०) । ३ सप (को०) ।

तंतुक^२—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाडी ।

तंतुकाण्ठ—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुकाण्ठ] जुलाहे की एक लकड़ी जिसे
तूली कहते हैं ।

तंतुकी—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाडी ।

तंतुकीट—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुकीट] १. मकड़ी । २ रेशम का कीड़ा ।

तंतुजाल—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुजाल] नषों का समूह (रेचक) ।

तंतुण—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुण] १. एक गड्ढी मछली । २ मगर (को०) ।

तंतुन—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुन] दे० 'तंतुण' (को०) ।

तंतुनाग—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुनाग] मगर ।

तंतुनाभ—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुनाभ] मकड़ी ।

तंतुनिर्यास—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुनिर्यास] ताड़ का पेड़ ।

तंतुपर्व—सङ्घा पुं० [सं० तंतुपर्व] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन
राखी बांधी जाती है । रक्षावधन ।

तंतुभ—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुभ] १ सरसो । २ बछड़ा ।

तंतुमत्—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुमत्] प्राग ।

तंतुमान्—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुमत्] प्राग (को०) ।

तंतुर—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुर] मृणाल । भसीड़ । मुरार । कमल की
जड़ । कमलनाल ।

तंतुल—सङ्घा स्त्री० [सं० तन्तुल] दे० 'तंतुर' ।

तंतुवर्धन^१—वि० [सं० तन्तुवर्धन] जाति को बढ़ानेवाला (को०) ।

तंतुवर्धन^२—सङ्घा पुं० १ विष्णु । २ शिव (को०) ।

तंतुवाद्दक—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुवादक] तन्त्री । बीन प्रादि तार के
बाजे बजानेवाला । उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई । गान
करन में निपुन बनाई ।—रामाश्वमेध (शब्द०) ।

तंतुवाद्य—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुवाद्य] १ तारवाला बाजा (को०) ।

तंतुवाप—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुवाप] १ तौत । २. तौती । दे० 'तंतुवाय' ।

तंतुवाय—सङ्घा पुं० [सं०] १ कपड़े बुननेवाला । तौती ।

विशेष—मिन्न मिन्न स्मृतियों में इनकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न
प्रकार से बतलाई गई है । किसी में इन्हे मणिबध पुष्प और
मणिकार स्त्री से और किसी में वेश्य पिता और सत्रियाणी
माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है । इनकी उत्पत्ति के
सबध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं ।

२ मकड़ी । उ०—प्राकाश जाल सब और, तना, रवि तंतुवाय
है प्राज बना । करता है पदप्रहार वही, मक्खी सी भिन्ना
रही मही ।—साकेत, पृ० २६७-७८ ।

तंतुवायर्द्ध—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुवायर्द्ध] करघा (को०) ।

तंतुविग्रह—सङ्घा पुं० [सं० तन्तुविग्रह] केले का पेड़ ।

तंतुविग्रहा—सङ्घा स्त्री० [सं० तन्तुविग्रहा] केले का पेड़ (को०) ।

तंतुशाला—सङ्घा स्त्री० [सं० तन्तुशाला] जुलाहे का कपड़ा बुनने का
स्थान (को०) ।

तंतुसंतत—वि० [सं० तन्तुसंतत] बुना हुआ [को०] ।

तंतुसंतति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तन्तुसंतति] बुनाई [को०] ।

तंतुसतान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्तुसतान] बुनाई [को०] ।

तंतुसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्तुसार] सुपारी का पेड़ ।

तंत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १ तनु । तति । २ सूत । ३. जुलाहा । ४. कपड़ा बुनने की सामग्री । ५ कपड़ा । वस्त्र । ६ कटुब के भरण और पोषण आदि का कार्य । ७ निश्चित सिद्धांत । ८ प्रमाण । ९. शोध । दवा । १०. झाड़ने फूँकने का मंत्र । ११. कार्य । १२ कारण । १३ उपाय । १४ राज-कर्मचारी । १५ राज्य । १६ राज का प्रबंध । १७. सेना । फौज । १८ अधिकार । १९. कार्य का स्थान । पद । २०. समूह । २१ प्रसन्नता । आनंद । २२ घर । मकान । २३. घन । संपत्ति । २४. अधीनता । परवश्यता । २५. श्रेणी । वर्ग । कोटि । २६ दल । २७. उद्देश्य । २८ कुल । खानदान । २९ सापस । कसम । ३० हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिवप्रणीत है । यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तंत्र । वाराही तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरुषचरण, पट्कर्म-साधन और चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन हो, उसे आगम और जिसमें सृष्टितत्व, ज्योतिष, नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णमंद और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं, और जिसमें सृष्टि, लय, मन्त्रनिर्णय, देवताओं के सन्धान, यन्त्रनिर्णय, तीर्थ, ध्यात्म, धर्म, कर्ष, ज्योतिष सन्धान, व्रत-कथा, शौच और अशौच, स्त्री पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दान-धर्म, युवाधर्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है । इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलि-युग में वैदिक मंत्रों, ज्यों और यज्ञों आदि का कोई फल नहीं होता । इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है । इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है । आजकल प्रायः मारण, उच्चाटन, बशीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है । यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का ही है और इसके मंत्र प्रायः धर्महीन और एकाक्षरी हुंकार करते हैं । जैसे,—ह्रीं, क्लीं, श्री, स्वीं, शू, कूं आदि । तंत्रिकों का पंचमकार—मय, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मेथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है । तंत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतंत्र होता है । चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं में तंत्रिक लोग मय, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नगी करके उनका पूजन करते हैं । यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारण, मोहन, उच्चाटन और बशीकरण

आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है । कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है । चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है । यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह इसकी चौथी या पाँचवी सताब्दी से अधिक पुराना नहीं है । हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने । हिंदू तंत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं । उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन में है । वाराही तंत्र में यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गंग, पुलस्त्य, भृगु, शुक, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है ।

तंत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रक] मया कपड़ा ।

तंत्रकाष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रकाष्ठ] दे० 'तनुकाष्ठ' [को०] ।

तंत्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रण] शासन या प्रबंध आदि करने का काम ।

तंत्रता—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तन्त्रता] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना । कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों । जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्राय-श्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायें अथवा बार बार प्रसूय होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सबके घट में एक ही बार स्नान कर लेना । (धर्मशास्त्र) ।

तंत्रधारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रधारक] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्मकांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो ।

विशेष—स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि में ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है ।

तंत्रमंत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्र + मन्त्र] जादूगीरी । जादू टोना । २. उपाय । युक्ति । ढव । ३. साधक द्वारा साधना में प्रयुक्त तंत्रादि ।

तंत्रयुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तन्त्रयुक्ति] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता ली जाय ।

विशेष—सुश्रुत संहिता में तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—प्रधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रवेश, प्रतिवेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकांत, पूर्व पक्ष, निरुण्य, अनुमत, विधान, अनागतवैक्षण, प्रतिज्ञातावैक्षण, सशय, व्याख्यान, स्वसज्ञा, निर्वचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह ।

तंत्रवाद्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाद्य] तारवाले वाद्य यंत्र । जैसे, बीणा, सारंगी आदि ।

तंत्रवाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाप] १. तनुवाप । तति । २. मकड़ी ।

तंत्रवाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाय] १. तनुवाय । तति । २. मकड़ी । ३. तति ।

तन्द्रावाप, तन्द्रावाय—सखा प्र० [सं० तन्द्रावाय, तन्द्रावाय] दे० 'तनुवाय'।
तन्द्रा—सखा श्री० [सं० तन्द्रा]।१ वह अवस्था जिसमें बहुत प्रविक नींद
मालुम पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। उर्वाह।

कंघ । २. वह हलकी वेहोरी जो चिता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य को व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियों का ज्ञान नहीं रह जाता, जैसाई भाती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं । तद्रा कटुविषय या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम करने से दूर होती है ।

क्रि० प्र०—माना ।

तंद्रालस—वि० [सं० तन्द्रा + लस] १ तंद्रालीन । भालस्ययुक्त । सुस्त । २ क्वात । यकित । ३ निद्रित । उ०—सीतर नद-राम और प्रेमा का स्नेहालाप बंद हो चुका था । दोनों तंद्रा-लस हो रहे थे ।—इंद्र०, पृ० २२ ।

तंद्रालु—वि० [सं० तन्द्रालु] जिसे तंद्रा भाती हो ।

तंद्रि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रि] दे० 'तद्रा' ।

तंद्रिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तन्द्रिक] एक प्रकार का ज्वर [को०] ।

तंद्रिक सन्निपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें उर्ध्वादि विशेष माए, ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली होकर छुरछुरी हो जाय, दम फूले, दस्त विशेष हों, जलन न हो और कान में बंद रहे । इसकी अवधि २५ दिन है ।

तद्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तद्रिका] दे० 'तद्रा' ।

तद्रित—वि० [सं० तद्रित] तद्रा युक्त । भलसाया हुआ । उ०—यक तद्रित राग रोग है, भव जो जाग्रत है वियोग है ।—साकेत, पृ० ३२१ ।

तद्रिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तद्रिता] तद्रा में होने का भाव ।

तद्रिल—वि० [सं० तद्रिल] १ जिसे तद्रा भाती हो । भालसी । २. तद्रा या भालस्य से युक्त । ३ भलसाया हुआ । तद्रित । सुस्त । उ०—तद्रिल तद्वल, छाया शीतल, स्वप्निष ममर । हो साधारण साध उपकरण, सुरा पात्र भर ।—मधुञ्जय, पृ० ६० ।

तद्रो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तद्रो] १ तद्रा । २ भृकुटी । मौव ।

तद्रो—वि० [सं० तद्रि] १. यका दुग्रा । वनांत । २ भालसी [को०]

तंपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गी । गाय ।

तंफना—क्रि० प्र० [सं० तंफना] स्तभना । स्तमित होना । उ०—घरि वमान ध्यान तिन प्रगति दिस । पडे सु जगि तके जगीस ।—पृ० रा० १।४८८ ।

तवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तम्वा] गी । गाय ।

तवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तवान] बहुत लोड़ी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा । उ०—तवा सुपन सरो जाधिया तनिया पवला । पगरी बोरा ताजगोस बदा सिर मगला ।—सुदन (शब्द०) ।

तंबाकू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टोबैको] दे० 'तमाकू' ।

तंबाकूगर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तंबाकू + का० गर] तमाकू बनानेवाला ।

तंबाकू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पोधा । उ०—निकल भाया मू तंबाकू के सार ।—दिल्लीनो० पृ० ६० ।

तंबिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तम्बिका] गी । गाय ।

तंबिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तंबा + ह्या (प्रत्य०)] १ तंबि का बना हुआ छोटा तसला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन । २. किसी प्रकार का तसला ।

तंबीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तम्बीर] ज्योतिष का एक योग । उ०—होय तंबीर जब कठिन कुंदी करे चामदल कष्ट तही परे गाढ़ी ।—राम० घमं०, पृ० ३८१ ।

तंबीह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐसी सूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य घागे के लिये सावधान रहे । नसीहत । शिक्षा । २ दड । सजा । (लश०) ।

तंबू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तनना] १. कपड़े, टाट, कनवास, आदि का बना हुआ वह बड़ा घर जो खंभों और खंटी पर बना रहता है और जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं । सेमा । डेरा । शिविर । शामियाना ।

विशेष—साधारणत तंबू का व्यवहार जंगलों में शिकार आदि के समय रहने घयबा नगरों में सांख्यिक सभाएं, खेल, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—सानना ।

२ एक प्रकार की मछली जो बाँव की तरह होती है ।

तंबुआ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तम्बू] दे० 'तंबू' । उ०—हाथी घोड़ा तंबुआ भावे केहि कामा । फूलन सेव बिछावते फिर गोर मुकामा ।—पलटू०, भा०, ३, पृ० १७ ।

तंबूर—सञ्ज्ञा पुं० [का०] एक प्रकार का छोटा ढोल ।

तंबूर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तवूरा' ।

तंबूरची—सञ्ज्ञा पुं० [का० तम्बूर + ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला ।

तंबूरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तानपूरा या तुम्बुर (गधर्व)] बोन या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो भलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है । तान-पूरा । उ०—प्रजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे सी साठ रे । खूँटी दूटी तार बिलगाना कोई न पूछे बात रे ।—कबीर रा०, पृ० ४७ ।

विशेष—इससे राग के बोल नहीं निकाले जाते । इसमें नीच में सोहे के दो तार होते हैं जिनके दोनों और दो और तार पीतल के होते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुम्बुर गधर्व ने बनाया था, इसी से इसका नाम तंबूरा पड़ा । इसकी जवारी पर तारों के नीचे मूत रख देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ झनझनाहट भा जाती है ।

तंबूरा तोप—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तंबूरा + तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप ।

तंबूरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्बूर] पान । तानून ।

तंबेरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तम्बेरम] हाथी (हि०) ।

तवेरम०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी उ०—पानहु दोन्ह
समुद्र हलोरा, लहट मनुज तवेरम घोरा -इंद्रा०, पु० ६६।

तंबोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १ दे० 'तांबू' और 'तमोल'।
उ०—अपु सरूप सजि भग्नरहि ऐकु त न प्रव तेल्लु।—
—प्रकवरी०, पु० ११२। २ एक प्र० का पेड जिसके
पत्ते लिसोड़े के पत्तों से मिलते जुल होते हैं। ३ वह
घन जो बरात के समय वर को दिया ० है। (पञ्चाव)।
४ वह घन जो विवाह या बरात के 'ते के साथ मार्ग-
व्यय के बिये भेजा जाता है। (दुर वड)। ५. वह
खून जो लगाम की रगड के कारण घोड़े के मुँह से निकलता
है। (साईस)।

क्रि० प्र०—घाना।

तंबोलिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली का स्त्री०] पा बनेवाली स्त्री।
बरइन।

तंबोलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बूल + इया (प्रत्य०)] पान के घाकार
की एक प्रकार की मछली जो प्रायः गंगा और जमुना में
पाई जाती है।

तंबोली—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] जो पान बेचता
हो। पान बेचनेवाला। बरई।

तंभ०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] शृंगार रस के १० वों में से एक।
स्तम्भ। उ०—मोहति मुरति माँसु स्वेत प पुलक धिवनं
कप सुरभग मुरधि परति है।—देव (शब्द०)।

तंभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] शृंगार रस के १० तत्विक भावों
में से एक। स्तम्भन। उ०—धारभन तंभन तंभ परिरभन
कषगृह सरभन छुंभन घनेरे ई।—देव (शब्द०)।

ताबती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तम्भावती या हिं०] संपूर्ण गति की एक
रागिनी जो रात के सरे पहर में पाई जाती है।

तमोल०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोल'। उ०—(क)
मधराम रागु तमोल जीम।—प० रासी०, पु० ६५। (ख)
दुति बसन हीर तमो रंग। दाढिमी बीज मान तुरग।—
रसरतन०, पु० २४।

तंई—प्रत्य० [हिं०] दे० 'तई'।

तंकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकारी'।

तंगिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तन गा] दे० 'तंगी'।

तंडलाना०—क्रि० प्र० [सं० तण्ड] टोड़ना। उ०—लहू झोक
सायबक, सेप साबल क र तंडला।—रा० रू०, पृ० ८५।

तंदरा०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंदरा'। उ०—डींग र तंदरा
बाबा, देखो फिरंगी का।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० १६।

तंदियाना—क्रि० प्र० [हिं० तंदा] १ तंदि के रंग का। २.
तंदि के भरतन में रहने का कारण किसी पदार्थ में। तंदि का
स्वाद या गंध घा घाना।

तंदुघा०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तंदू] दे० 'तंदू'।

तंदूची—सञ्ज्ञा पुं० [फा० तंदू ची (प्रत्य०)] दे० 'तंदूची'।

उ०—कहै पदमाकर तिलंगी भीर भृगन को मेजर तंदूची
मयूर गुन गायो है।—पद्माकर प्र०, पृ०, ३२०।

तंदोर०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोर'। उ०—छा मनुरागे
पागे रंग तंदोर।—घनानंद, पृ० ३३४।

तंदोल०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताबूल'। उ०—मुख तंदोल रंग
धारहि रासा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६०।

तंदोलिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली] दे० 'तंदोलिन'।

तंदोलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तंदोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'तंदोलिया'।

तंदोली—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] दे० 'तंदोली'।

तंदोर०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोर'। उ०—मगल घरसाने छा
राजत धधर मगल रवि रच्यो तंदोर।—घनानंद, पृ० ३२६।

तंदकना०—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तंदकना'। उ०—तंदक निखड
खड हूँ गयक।—माधवानल०, पृ० २०२।

तंदचुर०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'ताम्रचूड'। उ०—गिह
मल्लर तंदचुर जो हारा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६४।

तंदर०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोर' ५। उ०—कमध्वज कूरम
गोड तंदर परिहार समानो।—ह० रासी०, पृ० १२२।

तंदाना०—क्रि० प्र० [हिं० तंदकना] आवेश में घाना। क्रुद्ध
होना। उ०—सवति भोजिया और जेठनिया ठाढ़ी रहलि
तंदई।—गुलाल०, पृ० ५७।

तंदार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] १ सिर में घानेवाला चक्कर।
धुमटा। धुमेर। २ हुरारत। ज्वाराश।

क्रि० प्र०—घाना।—खाना।

तंदारा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंदार'।

तंदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तंदार'।

तंदाना०—क्रि० प्र० [?] १ स्तुति करना। २. प्रतीक्षा करना।
उ०—राउत राना ठाढ़ तंदानी।—चित्रा०, पृ० १७६।

तंद०—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तंद'। उ०—लेखित लखे सिर
पागु तंदे, तंद तंद तंद मुरके।—नद० प्र०, पृ० २०७।

तं०—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नौका। नाव। २ पुण्य। ३ खोर। ४.
झूठ। ५ पूछे। दुम। ६ गोद। ७ स्लेच्छ। ८. गर्भ। ९.
शठ। १० रत्न। ११. बुद्ध। १२ अमृत। १३ योद्धा (की०)।
१४. रत्न (की०)। १५. एक पिगल (की०)।

तं०—क्रि० वि० [सं० तंद, हिं० तो] तो। उ०—(क) घउ
पाएँ मानुस कह भाखा। नाहि त पखि मूठि घर पोखा।—
जायसी (शब्द०)। (ख) हमहूँ कष्ट घब ठकुर सोहाती।
नाहि त मोन रहब दिन राती।—तुलसी (शब्द०) (ग) करतें
राज त तुमहि न दोसू। रामहि होत सुनत सतोसू।—तुलसी
(शब्द०)।

तश्मजुव—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तश्मजुव] आश्चर्य। विस्मय। प्रबला।

क्रि० प्र०—करना।—में घाना।—होना।

तश्ममुल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तश्ममुल] १. सोच। क्रि० विचार।

उ०—लिहाजा विला तममुख हूँसी प्रीर मजाक की बातें कर चलते ।—प्रेमघन०, भाग० २, पृ० ६३ ।

२. देर । भरसा । ३. सत्र । धैर्य ।

तथ्यमुल^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तममुख' ।

तथ्यल्लुकः—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुकह्] बहुत से मोजों की जमीन-दारी । बड़ा इलाका ।

यौ०—तथ्यल्लुक दार ।

तथ्यल्लुकदार—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुकह् + का० दार (प्रत्य०)] इलाकेदार । तथ्यल्लुके का मालिक ।

तथ्यल्लुकदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तथ्यल्लुकह् + का० दारी (प्रत्य०)] तथ्यल्लुक दार का पद ।

तथ्यल्लुक—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुक] १. इलाका । २. सबध । लगाव ।

तथ्यल्लुका—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुका] दे० 'तथ्यल्लुकः' ।

तथ्यल्लुकादार—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुकह् + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथ्यल्लुक दार' ।

तथ्यल्लुकेदार—सञ्ज्ञा पुं० [म० तथ्यल्लुकह् + का० दार (प्रत्य०)] दे० 'तथ्यल्लुकादार' ।

तथ्यल्लुकेदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तथ्यल्लुकह् + का० दारी (प्रत्य०)] तथ्यल्लुक दारी ।

तथ्यस्सुव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पक्षपात, विशेषत घमं या जाति संबंधी पक्षपात । उ०—तथ्यस्सुव मे हुए हैवान बिलशादा ।—कवीर ग्र०, पृ० २०८ ।

तई^७—प्रत्य० [हि० तें भयवा सं० तस् (तसिल्), त, तह्, तह्, तई] से । उ०—कीन्हैस कोइ निभरोसी कीन्हैस कोइ बरियार । छारहि तई सब कीन्हैस पुनि कीन्हैस सब छार ।—जायसी (शब्द०) ।

तई^२—प्रत्य० [प्रा०] प्रति । को । से । (क्व०) । जैसे,—मेने आपके तई कहूँ रखा था ।

तई^३—सर्व [सं० त्वया, प्रा० तई] दे० 'तुम' । उ०—तई अणदिट्टा सज्जणा, किउं करि लग्गा पेम ।—डोला०, पृ० ६ ।

तई^४—सर्व० [सं० तत्] वह । उस । उ०—उई हुंती चन्दउ कियइ, लइ रनियउ भाकाश ।—डोला०, पृ० ४३७ ।

तइक—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चमार । (सोनारों की बोली) ।

तइनात—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेनात' ।

तइस^७—वि० [सं० तादृश, म० तइस] दे० 'तैसा' ।

तइसन^७—वि० [हि०] दे० 'तइसा' । उ०—तनु पसेव पसाहुनि भासलि, पुखग तइसन जागु ।—विद्यापति, पृ० ३१ ।

तइसां—वि० [सं० तादृश] दे० 'तैसा' या 'वैसा' । उ०—जस हीछा मन जेहि कह सो तइसन फल पाउ ।—जायसी (शब्द०) ।

तई^१—प्रत्य० [सं० तावत्] लिये । वास्ते ।

तई^{१२}—क्रि० वि० [हि०] तभी । तब । उ०—हम जरा सेंडख पर पालिस करके तई भीतर गयेन ।—भूमिघन, पृ० ८८ ।

तई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तवा या तया का स्त्री०] इसका भाकार

पाली का साहा है प्रीर इसमें कहे लगे होते हैं । इसमें प्रायः जलेबी या पुष्पा ही बनाया जाता है ।

तई^७—प्रत्य० [हि०] ति । को । से । उ०—कोऊ कहे हरि रीति सब तई । प्रीर मिलन का सब सुख दई ।—सुर (शब्द०) ।

तउ^७—प्रत्य० [हि० सं० तह्यपि (तहि+अपि) या तदापि भयवा तवपि (तद् अपि)] १. दे० 'तब' । २. दे० 'त्यों' । उ०—मा परलउ नियराना जउ ही । मरइ सो ता कहूँ पालउ तउ हीं ।—जायसी (शब्द०) ।

तऊ^७—प्रत्य० [हि० तउ] तो भी । तिस पर भी । तब भी । तथापि ।

तए—वि० [हि० तथा का बहुव०] गरम किए हुए । गरमाए हुए ।

तक^१—प्रत्य० [सं० तावत्क, तावत्क, तवक, तक] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा भयवा भवधि सूचित करती है । पर्यंत । जैसे,—दे दिल्ली तक गए हैं । परसों तक ठहरो । दस रुपए तक दे देंगे । उ०—जो पल तकिया छोड़ि टग सके न तुव तक प्राइ । दरस भीख उनकौ कहौ दीजत नहि पहुँचाइ ।—रसनिधि (शब्द०) ।

तक^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [पं० तकडी] १. तराजू । २. तराजू का पल्ला ।

तक^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टक' । उ०—प्रति बल जल बरसत सोउ लोवन दिन मर रहन रहत एकहि तक ।—तुलसी (शब्द०) ।

तकड़ा—वि० [हि०] दे० 'तगड़ा' ।

तकड़ी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है । चरमरा । हेम ।

बिशेष—इसे घोड़े बहुत चाव से खाते हैं । इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुमा करती है ।

तकड़ी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] तराजू (पजाव) । उ०—तकड़ी के एक पलडे मे तो उसके सब पाप रखे प्रीर एक पलडे में भगवन्नाम रखा, तो पापवाला पलडा हलका हो गया ।—राम० धर्म०, पृ० २६५ ।

तकट^७—सञ्ज्ञा पुं० [का० तख्त] दे० 'तख्त' । उ०—वाट एतदि तिरहुत पइट्ट । तकट चडिड सुखान बइट्ट ।—कीर्ति०, पृ० ८५ ।

तकथ^७—सञ्ज्ञा पुं० [का० तख्त] दे० 'तख्त' । उ०—हाजीर हजर बैठे तकथ ताहीं कों वयो न जाचिये रे ।—सं० दरिया, पृ० ६८ ।

तकदमा—सञ्ज्ञा पुं० [म० तकदमह्] किसी खोज की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय । तखमीना ।

तकदीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तकदीर] १. भवाजा । मिकदार । २. भाग्य । प्रारब्ध । किस्मत । नसीब ।

यौ०—तकदीरवर ।

विशेष—'तकदीर' के मुहावरों के लिये देखो 'किस्मत' के मुहावरे ।

तकदीरवर—वि० [प्र० तकदीर + क्रा० वर] जिसका भाग्य बहुत हो । भाग्यवान् ।

तकन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तकना] ताकने की क्रिया या भाव । देखना । दृष्टि ।

तकनार्त्त०—क्रि० प्र० [हि० ताकना (सं० तर्कण)] १. देखना । विहारना । प्रवलोकन करना । उ०—(क) देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गँव तकइ लेऊँ कैहि भाँती ।—तुलसी (शब्द०) (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुरी बिहारी तकत न भोर पाट ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किप बलबीर बिहारी ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) । २. शरण लेना । पनाह लेना । आश्रय लेना । उ०—देवन तक मेघ पिरि छोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

तकवर०—वि० [प्र० तकवुर] मानी । अभिमानी । उ०—शाह हुमायूँ को नंदन बदन एक तेष पृष्ठ बोधा तकवर ।—प्रकबरी०, पृ० १०६ ।

तकबीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. किसी को बड़ा मानना या कहना । २. ईश्वर की प्रशंसा । उ०—ऊँ छोहा पीर । तबि ताकबीर । गोरख०, पृ० ४१ ।

तकबरी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] एक तरह की तलवार । उ०—रिपु-मलन मकोरे मुख नहि मोरे बखतर तोरे तकबरी ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८ ।

तकचुर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. घमण्ड । अभिमान । २. मकड़ । ३. शोखी (की०) ।

मा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा' । २. दे० 'तुकमा' ।

मोल—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] पूरा होने की क्रिया या भाव । पूर्णता ।

रमलही—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया । (गढ़वाल) ।

फरार—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] किसी बात की बार बार कहना । २. हुज्जत । विवाद । ३. झगडा । टटा । लड़ाई । ४. कविता में किसी वर्णन को दोहराना । ४. बावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोता गया हो । ५. वह खेत जिसमें जो, चना, गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो ।

फरारी—वि० [प्र० तकरार + हि० ई (प्रत्य०)] तकरार करनेवाला । झगडावा । लडाका ।

फरीब—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकरीब] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ लोग संमिलित हो । उत्सव । जलसा ।

फरीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकरीर] १. बातचीत । गुप्तगू । उ०—दमे तकरीर गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं ।—भारतेंदु प्र०, भाग १, पृ० ८४७ । २. वक्तृता । भाषण ।

हरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकरी] मुकरने होने की क्रिया या भाव । वियुक्ति ।

हा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. सोहे की वह सलाई जो सूत काटने के चरखे में लगी होती है और जिसपर सूत लिपटता जाता

है । टेकुमा । २. बिटियों की टेकुरी की सलाई जिसपर कला-बत्तू बटकर चढ़ाते जाते हैं । ३. सुतारों को सिकरी बनाने की सलाई । ४. रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी ।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना = सारी शोखी या पाजोपन दूर करना । अच्छी तरह दुस्त या ठीक करना ।

तकली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तकला] छोटा तकला या टेकुरी ।

तकलीद—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकलीद] अनुसरण । अनुकरण । देखा देखी कोई काम करना । नकल । उ०—क्यों प्रप्रेजियत की तकलीद की जाय ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१ ।

तकलीफ—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकलीफ] १. कष्ट । ज़ेज्ज । दुःख । आपत्ति । मुसीबत । जैसे,—(क) आजकल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते हैं । (ख) इस तोते को पिंजड़े में बड़ी तकलीफ है । २. विपत्ति । मुसीबत ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।—मिलना ।—सहना ।

२. खेद । शोक (की०) । ३. ग्रामय । रोग । मर्ज (की०) । ४. मनोव्यथा (की०) । ५. निर्धनता । मुकलिसी (की०) ।

तकल्लुफ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तकल्लुफ] १. शिष्टाचार । दिखावा । दिखाने के लिये कष्ट उठाकर कोई काम करना । २. टीमटाम । बाहरी सजावट ।

मुहा०—तकल्लुफ का = बहुत अच्छा । बढ़िया या सजा हुआ ।

३. सकोच । पसोपेश (की०) । ४. शील सकोच । लिहाज (की०) । ५. सज्जा । शर्म (की०) । ६. बेगानगी । परायापन (की०) । ७. कष्ट सहन करना । तकलीफ उठाना (की०) ।

तकवा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तकवह] सयम । इंद्रियनिग्रह । परहेजगारी । शुद्ध रहना । उ०—तू तो नफस सँ तकवा राखे शरभ मुहम्मदी भावे ।—दक्खिनी०, पृ० ५५ ।

तकवाना—क्रि० सं० [हि० तकना का प्रे० रूप] ताकने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना ।

तकवाहा०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ताकना] खेतों या बागों का रखवाला । देखभाल करनेवाला । निगरानी करनेवाला व्यक्ति । उ०—बड़ी चारपाई जिसपर बैठा तकवाहा ।—भरारा, पृ० १६८ ।

तकवाही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तकवाह + ई (प्रत्य०)] १. देखभाल । रखवाली । किसी चीज की रक्षा के लिये उसपर बराबर नजर रखना । २. दे० 'तकाई' ।

तकसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] नाथ । दुर्बला ।

तकसीम—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तकसीम] बाँटने की क्रिया या भाव । बँटवारा । विभाजन । बँटाई । २. गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय । बड़ी संख्या का छोटी संख्या से विभाजन । भाग ।

क्रि० प्र०—देना ।

सौ०—तकसीमेकार = हर एक को भलग भलग काम का बाँटना ।

तकसीमे मुल्क, तकसीमे मतन = देश का विभाजन या बँटवारा ।

तकसीर^१—संज्ञा स्त्री० [घ० तकसीर] १. अपराध। दोष। कसूर।
२. मूल। धुक। श्रुति। उ०—सच तो यों है कि हमें इसक
सजावार नहीं। तेरी तकसीर है क्या।—श्यामा०, पृ० १०२।
३. कर्तव्य में कमी (की०)। ४. न्यूनता। कमी (की०)।

तकसीर^२—संज्ञा स्त्री० [घ०] १. प्रचुरता। अधिकता। २. वृद्धि
करना। अधिक्य करना [की०]।

तकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना + ई (प्रत्य०)] ताकने की
क्रिया या भाव। २. वह धन जो ताकने के बदले में दिया
जाय।

तकाजा—संज्ञा पुं० [घ० तकाजा] १. ऐसी चीज माँगना जिसके
पाने का अधिकार हो। तगादा। जैसे,—जामो, उनसे रुपयों
का तकाजा करो। २. कोई ऐसा काम करने के लिये कहना
जिसके लिये वधन मिल चुका हो। जैसे,—बहुत दिनों से उनका
तकाजा है। चलो आज उनके यहाँ हो जाएँ। ३. किसी
प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा। जैसे, उम्र या वक्त का
तकाजा। ४. आवश्यकता। जरूरत (की०)। ५. किसी काम के
लिये किसी से बराबर कहना (की०)।

यौ०—तकाजाए उम्र=(१) उम्र की माँग। (२) उम्र के
लिहाज से कोई काम करना या न करना। तकाजाए वक्त =
समय की माँग। किसी समय क्या करना है यह माँग।

तकातक—क्रि० वि० [हि० तकना] देखते हुए। देखकर निशान
लेते हुए। उ०—धनुष बान ले चढ़ा पारधी धनुआ के परच
नहीं है रे। सरसर बान तकातक मारे मिरगा के घाव नहीं
है रे।—कवीर श०, भा० २, पृ० ६६।

तकान—संज्ञा स्त्री० [हि० थकान] दे० 'थकान' या 'थकावट'।

तकाना^१—क्रि० सं० [हि० ताकना का प्रे० रूप] १. ताकने का
काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना।
दिखाना। २. प्रतीक्षा करना। किसी को प्राणा में रखना।

तकाना^२—क्रि० घ० किसी धोर को रख करना। किसी धोर को
भागना या जाना। जैसे, उसने घने जंगल का रास्ता तकाया।

तकावी—संज्ञा स्त्री० [घ० तकावी] वह धन जो जमींदार, राजा या
सरकार की धोर से गरीब खेतहरो को खेती के भोजार
बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ प्रादि बनवाने के लिये ऋण
स्वरूप दिया जाय।

क्रि० प्र०—बाँटना।—देना।

२ इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया।

तकित^१—वि० [हि०] १. थकित। थका। २. ताकता हुआ।
देखता हुआ। उ०—हिय धरवक धुधरह वदन लोहल जल
निभभर। तकित चकित समीत समग सकरिय दुष्प्रभर।—
पृ० रा०, ६।१००।

तकिया—संज्ञा पुं० [फा० तकियह] १. कपड़े का बना हुआ लंबो-
तरा, गोल या ओकीर थैला जिसमें रुई, पर प्रादि भरते हैं
और जिसे सोने लेटने प्रादि के समय सिर के नीचे रखते हैं।
बालिश। उपधान। २. पत्थर की वह पटिया प्रादि जो छज्जे,
रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है। मुतक। ३. विश्राम

करने या आश्रय लेने का स्थान। ४. आश्रय। सहारा।
आसरा। आरोसा। उ०—तहँ तुलसी के कील को काको
तकिया रे।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तकियाकलाम।

५. वह स्थान विशेषतः शहर के बाहर या कश्मिस्तान के पास का
स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो। कश्मिस्तान का
स्थान। ६. चारजामा। (लभ०)।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं० [फा० तकियह + घ० कलाम] दे०
'सखुनतकिया'।

तकियागाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तकियह + गाह] फकीर का निवास।
पीर या फकीर का स्थान [की०]।

तकियादार—संज्ञा पुं० [फा०] मजार पर रहनेवाला मुसलमान
फकीर।

तकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धूलें। २. घोषध।

तकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोषध। दवा। २. एक जड़ी (की०)।

तकी—वि० [घ० तकी] संयमी। इद्रियनिग्रही।

तकुआ—^१—संज्ञा पुं० [सं० तकुं] दे० 'तकला'।

तकुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + उभा (प्रत्य०)] ताकनेवाला।
देखनेवाला।

तकैया^१—संज्ञा पुं० [हि० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने या
देखनेवाला।

तकौली^१—संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा
वृक्ष, जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० 'पस्सी'।

तककर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक'। उ०—के गए मुनिक पाइल
अगय धीर छडि तककर परत। दिष्यो लग लगावली
बियो न कोई धीरज धरत।—पृ० रा०, १७।५।

तककह^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तक'। उ०—सय सुपच वर विप्र,
वेद मंत्र अधिकारिय। उभय सहस कोविद्, छद तककह
अनुसारिय। पृ० रा०, १२।६३।

तककी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताकना] ताकते रहने की क्रिया या भाव।
दे० 'टकटकी'।

तककौल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तकमा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तकमन्] १. वसंत नामक चर्मरोग।
२. शीतला देवी।

तकमा^२—संज्ञा पुं० [हि० तमगा] दे० 'तमगा'।

तकमा^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुकमा'।

तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मट्टा। छाद्य। मठा। उ०—छलकत तक
उफनि भ्रंय धावत नहि जानति तेहि कालहि सौं।—सूर
(शब्द०)। २. शहस्रत के पेड़ का एक रोग।

तककुर्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध। छेना।

तकपिंड—संज्ञा पुं० [सं० तकपिण्ड] फटा हुआ दूध। छेना।

तकप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरयो का एक रोग जिसमें छाद्य का सा
श्वेत मूत्र होता है, और मट्ठे की सी गंध आती है।

तकभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] कैय। कपित्थ।

उक्रमांस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मांस का रसा । घलनी ।

तक्रवामन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नागरग ।

तक्रसंधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तक्रसन्धान] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की काँजी ।

विशेष—इसे सौ टके भर छाछ में एक एक टके भर साँभर नमक, राई और हल्दी का चूर्ण डालकर बनाते हैं । यह काँजी पहले पंद्रह दिन पड़ी रहने दी जाती है, तब तैयार होती है । ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टक पी जाय तो तापतिल्ली अच्छी हो जाती है ।

तक्रसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मक्खन ।

तक्राट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मथानी ।

तक्रार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तक्रार] ३० 'तक्रार' ।

सक्रारिष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का अरिष्ट जो मट्ठे में हठ और श्रौत्रे प्रादि का चूर्ण मिलाकर बनाया जाता है ।

विशेष—यह सप्रहणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है ।

तक्राह्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप ।

तक्वा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तक्व] १, चोर । २ शिकारी चिड़िया [को०] ।

तक्वीम—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सीधा करना । २ मूल निश्चित करना । ३ पचाग । जंतरी । उ०—मुनज्जिम अक्ल का देखा ताजा तक्वीम । किया है बात सूँ उस वक्त तरकीम । —दक्खिनी०, पु० २७६ ।

तक्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र । २ वृक के पुत्र का नाम । ३ पतला करने की क्रिया ।

तक्त^२—वि० काटनेवाला (केवल समासात् में प्राप्त) ।

तक्तक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाताल के आठ नागों में से एक नाग जो क्षयप का पुत्र था और कद्रु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—शुभी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था । इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत विगड़े और उन्होंने ससार भर के साँपों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ प्रारंभ किया । तक्षक इससे डरकर इंद्र की शरण में चला गया । इसपर जनमेजय ने अपने ऋषियों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़ें, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मंगाओ और भस्म कर दो । ऋषियों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे । तब इंद्र ने डरकर तक्षक को छोड़ दिया । जब तक्षक खिंचकर अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए ।

प्राजकल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी । नाग जाति के लोग अपने आपको तक्षक की सतान ही बतलाते हैं । प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे । कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट जनार्थों को हिंदु लोग तक्षक या नाग कहा करते थे । और ये लोग संभवतः शक थे । तिब्बत, मंगोलिया और

चीन के निवासी अबतक अपने आपको तक्षक या नाग के वंशधर बतलाते हैं । महाभारत के युद्ध के उपरान्त धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तरपश्चिम भारत में तक्षक लोगो का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक राज्य रहा । इनका जातीय चिह्न सर्प था । ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है, उसके सबब में कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पाण्डवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मार गए थे, और अंत से जनमेजय ने फिर तक्षकशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्पयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई है ।

२ साँप । सर्प । ३ विश्वकर्मा । ४. सूत्रधार । ५ दस वायुओं में से एक । नागवायु । उ०—प्राण, अपान, व्यान, उदान और कहियत प्राण समान । तक्षक, घनजय पुनि देवदत्ता और पौंड्रक शंख धुमान ।—सूर (शब्द०) । ६ एक प्रकार का पेड़ । ७. प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिसका वर्णन भागवत में आया है । ८. एक सकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ग्राहणी माता से मानी गई है ।

तक्तक^१—वि० छेदनेवाला । छेदक ।

तक्तण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २ लकड़ी को साफ करने का काम । रदा करने का काम । २ बढ़ई । ३ लकड़ी पत्थर आदि में खोदकर मूर्तियाँ और बेल बूटे बनाने का काम । लकड़ी पत्थर आदि गढ़कर मूर्तियाँ बनाना ।

तक्तणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का वह भोजार जिससे वे लकड़ा छीलकर साफ करते हैं । रदा ।

तक्तशिल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तक्षकशिला का निवासी [को०] ।

तक्तशिल^२—वि० तक्षकशिला संबंधी [को०] ।

तक्षकशिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भरत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी ।

विशेष—विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके आसपास के प्रदेश में तक्षक लोगो का राज्य था, इसलिये इस नगरी का नाम भी तक्षकशिला पड़ा था । महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गांधार में है । अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोदकर निकाला गया है । वहाँपर बहुत से बौद्ध मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं । महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यही सर्पयज्ञ किया था । सिकंदर जिस समय भारत में आया था, उस समय यहाँ का राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था । कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश मगध के शासन में था । अनेक यूनानी और चीनी यात्रियों ने तक्षकशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है । बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी । दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे । आणव्य यही का था ।

तक्षा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तक्ष] बढ़ई ।

तखड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तकड़ी] तराजू ।

तखत—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तखत] दे० 'तख्त' । उ०—दीबै भेजि हरम
हज़ूर मरहट्टो वेगि, चाहिये जो कुसल तखत सिरताजी की ।—
हम्मीर०, पृ० २१ ।

मुह्रा०—तखत पलटना = तख्ता उलटना । उ०—जब निबख हो
वने सबल सगी । तब पलटते न किस तरह तखने । तो चले
क्यो बराबरी करने । बल बराबर अगर नहीं रखते ।—
जुमते० पृ० ६८ ।

तखतनशीन—वि० [फ्रा० तखतनशीन] दे० 'तखतनशीन' । उ०—
जो है दिल्ली तखतनशीन । पातसाह मालावदीन ।—हम्मीर०,
पृ० १७ ।

तखफोफ—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तखफोफ] कमी । न्यूनता ।

तखमीनन्—क्रि० वि० [प्र० तखमीनन्] प्रदाज से । अटकल से ।
अनुमान से ।

तखमीना—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तखमीनह्] प्रदाज । अनुमान । अटकल ।
क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।

तख्ययल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तख्ययल] १ विचारना । २. कल्पना ।
३. काव्यविषय ।

तखरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तकड़ी' ।

तखलिया—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तखलियह्] एकात स्थान । निर्जन स्थान ।
तखल्लुस—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तखल्लुस] कवि या गायर का वह नाम
जो वह अपनी कविता में सिद्धता है । उपनाम ।

तखाना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तक्षण] बढ़ई ।

तखिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताकी] लकी टोपी, जो मत लोग लगाते
थे । उ०—बिनु हरि भजन को- भेष लिए बड़ा दिए तिलक
सिर तखिया ।—मीरा० श०, पृ० ७१ ।

तखिहा—वि० [प्र० ताक] बहुत वेच जिसकी दोनों प्राँखें दो रंग
की हों ।

तखीत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तहकीक] १ तलाशी । २ तहकीकात ।
(लघ०) ।

तख्त—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्त] १. राजा के बैठने का आसन । सिंहा-
सन । २ तख्तों की बनी हुई बड़ी चौकी ।

यौ०—तख्त की रात = सोहागरात । (मुसल०)

३ राज्य । शासन । हुकूमत (को०) । ४ पलंग । चारपाई (को०) ।
५ जौन (को०) ।

तख्तगाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तख्तगाह] राजधानी (को०) ।

तख्त ताऊस—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्त + प्र० ताऊस] एक प्रसिद्ध
राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपया लगवाकर
बनवाया था । इसके ऊपर एक जडाऊ मोर पख फैलाए हुए
खड़ा था । इस तख्त को सन् १७१६ ई० में नादिरशाह
तूटकर ले गया ।

तख्तनशीन—वि० [फ्रा० तख्तनशीन] जो राजसिंहासन पर बैठा हो ।
सिंहासनाशुद्ध ।

तख्तनशीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तख्तनशीन + ई (प्रत्य०)] राज्या-

भियेक । उ०—मोर तख्तनशीनी के दरबार का तो फिर कहना
हो क्या है ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १५४ ।

तख्तपोश—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्तपोश] १ तख्त या चौकी पर बिछाने
की चादर । २ चौकी । तख्त ।

तख्तबंद—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्तबंद] १ बंदी । कैदी । २ कारावास ।
कैद । ३ लकड़ी की वह खपची जो दूटी हड्डी को जोड़ने के
लिये बाँधी जाती है (को०) ।

तख्तबंदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तख्तबंदी] १ तख्तों की बनी हुई दीवार ।
२ तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया । ३ बाग की क्यारियों
आदि को ढँप से सजाना (को०) ।

तख्तरवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्तरवाँ] १ वह तख्त जिसपर बादशाह
सवार होकर निकलता हो । हवादार । २ वह तख्त या बड़ी
चौकी जिसपर आदियों में बरात के आगे रहियौ, नाचवाले
या लोहे नाचते हुए चलते हैं । ३. चढ़नखटोला ।

तख्ता—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्तह्] १, लकड़ी का वह पीरा हुआ लंबा
चौड़ा मोर चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो । बड़ा
पटरा । पल्ला ।

मुह्रा०—तख्ता उलटना = (१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो
जाना । किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना । (२) किसी
प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना । बना बनाया काम बिगड़ाना ।
तख्ता हो जाना = ऐंठ या मकड़ जाना । तख्ते की तरह जड़
हो जाना ।

२ लकड़ी की बड़ी चौकी । तख्त । ३ घरघो । टिखटी । ३.
कागज का ताव । ४ खेतों या बागों में जमीन का वह प्रलग
टुकड़ा जिसमें बीज बोए या पोषे लगाए जाते हैं । कियारी ।

यौ०—तख्तए कागज = कागज का ताव । तख्तए तावूत = वह
संयुक्त या पलंग जिसमें शव ले जाते हैं । तख्तए तालीम = वह
काला पटरा जिसपर बच्चों को प्रहार, गिनती आदि सिखाते
हैं । शिक्षापटल । ब्लैक बोर्ड । तख्तए नद = चौसर खेलने
का तख्ता । तख्तए मयपत = मुर्दों को सहलाने का तख्ता ।
तख्तए मयक = (१) बच्चों की तख्ती । (२) वह चीज जो
बहुत प्रयुक्त हो । तख्तए मोवा = आकाश । आसमान ।

तख्तापुल—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तख्तह् + पुल] पटरों का पुल जो किले की
खदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी
लिया जा सकता है ।

तख्तो—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तख्तो] १. छोटा तख्त । २ काठ की वह
पट्टी जिसपर लकड़ी प्रहार बिखाने का प्रयत्न करते हैं ।
पटिया । ३ किसी चीज की छोटी पट्टी ।

तख्तोताज—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] शासनसूत्र । राज्यमार । शासनप्रबंध
(को०) ।

तख्मीना—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तखमीनह्] दे० 'तखमीना' ।

तग—अव्य० [हि०] दे० 'तक' । उ०—राजा के हीन हयात तप
वावशाह के तावे नहीं हुआ ।—दक्खिनी०, पृ० ४४३ ।

तगड़ा—वि० [हि० तन + कड़ा] [वि० स्त्री० तगड़ी] १. जिसमें ताकत
ज्यादा हो । सबल । बलवान् । मजबूत । २. प्रच्छा मोर बड़ा ।

तगड़ी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तागड़ी' ।

तगड़ी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तखड़ी' ।

तगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छंद.शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (SS) वर्ण होता है ।

तगदमा, तगदस्मा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तगदुम] १ व्यय भादि का किया हुआ अनुमान । तखमीना । २. दे० 'तकदमा' ।

तगना—क्रि० प्र० [हि० तागना] तागा जाना ।

तगनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तागना] तागने का भाव । तगाई ।

तगपहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तागा + पहनना] जुलाहों का एक औजार जो दूटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है ।

तगमा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमगा' ।

तगर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, कश्मीर, भूटान और कोकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है ।

विशेष—भारत के बाहर यह मडागास्कर और जम्बिया में भी होता है । इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है । यह एकड़ी अगर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है । लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका बुरादा जलाने के काम में आता है । भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं । इसकी पत्तियों के रस से आँख के अनेक रोग दूर होते हैं । वैद्यक में इसे उष्ण, वीर्यवर्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष, मरस्मार, शूल, शृष्टिदोष, विषदोष, भूतोन्माद और त्रिदोष आदि का नाशक माना है ।

पर्याय—वक्र । कुटिल । शठ । महोरग । नत । रोपन । विनम्र । कुचित । घट । जहृष । पाणिव । राजहृषण । क्षत्र । धीन । कासानुषारिवा । कासानुसारक ।

२ इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंध द्रव्यों में होती है । इसके खाने से दाँतों का दद मच्छा हो जाता है । ३. मदनवृक्ष । मैनफल ।

तगर^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की शहद की मयली ।

तगला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तकला] १ तकला । २ दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाहे साथी मिलाते हैं ।

तगसा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह एकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं ।

तगा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तागा' । उ०—प्रफुल्लित हूँ के भान धीन है यशोदा रानी भीनी ए भगुली तामें कचन को तगा ।—सुर (शब्द०) ।

तगा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जो कहेलखंड में बसती है । इस जाति के लोग अनेक पहनते और अपने आपकी ब्राह्मण मानते हैं ।

—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तागना] १. तागने का काम । २ तागने का भाव । ३. तागने की मजदूरी ।

तगाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ दे० 'तगार' । २ वह ओकोर इंटों का घेरा जिसमें गारा या सुरभी चूना सानते हैं ।

तगाड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या मोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रखकर जोड़ाई करनेवालों के पास में जाते हैं । प्रड़िया ।

तगादा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तकाजा] दे० 'तकाजा' ।

क्रि० प्र०—करना ।

तगाना—क्रि० स० [हि० तागना का प्रे० रूप] तागने का काम करना । दूसरे को तागने में प्रवृत्त करना ।

तगाकुल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तगाकुल] १. गफलत । अपेक्षा । ध्यान । न देना । प्रसाधनी । उ०—हमने माना कि तगाकुल न करोगे लेकिन, हाक हो जायें हम तुमको खबर होने तक । —कविता को०, भा० ४, पृ० ४६२ ।

तगार—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगारी' ।

तगारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तगर] १. हलवाइयों का नाद । २. तरकारी बेचनेवाले का नाद ।

तगारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. उखली गाढ़ने का गड्ढा । २. हलवाइयों का मिठाई बनाने की मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद । ३. चूना गारा इत्यादि डोने का तसला ।

तगियाना—क्रि० स० [हि० तागा से नागिक बाहु] दे० 'तागना' ।

तगीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तगीर, तगीर] बदलने की क्रिया या भाव । परिवर्तन । बदलना । कुछ का कुछ कर देना । तब्दीली । उ०—(क) महदी गद्द रोग घनता । जागीर तगीर करता । —विश्राम (शब्द०) । (ख) जोबन आगिल प्राइ के भूपन कर तदशीर । घट बड़ रकम बनाइ के सिमुता करी तगीर । —रसनिधि (शब्द०) ।

तगीरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तगीर, हि० तगीर] बदली । परिवर्तन । उ०—गैरहाजिरी लिखिठे कोहैं । मनसब पटैं तगीरी होई । —साल कवि (शब्द०) ।

तगीर्युर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तगीर्युर] बहुत बड़ा परिवर्तन । उ०—मुझको मारा ये मेरे हान तगीर्युर न कि है, कुछ गुमाँ और ही घड़के से दिले नूनिस्के ।—आगिवास० प्र०, पृ० ५५ ।

तगना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तगना' ।

तघार, तघारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगार' ।

तचना—क्रि० प्र० [हि० तचना] तचना । तप्त होना । उ०—(क) तापन ओ तचती बिरमें तिन काज बुया मन भीहि बिदुष्यों । —प्रताप (शब्द०) । (ख) मानों विधि घर उलटि रही री । जानस नहीं सखी कहैं ठे वही नखेज तची री ।—सुर (शब्द०) ।

तचा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तच्चा] चमड़ा । खाल । तच्चा । उ०—तुम बिन नगा रहे पै तचा । अब नहि बिरह गवड़ पै बचा ।—जायसी (शब्द०) ।

तचाना—क्रि० स० [हि० तपाना] तपाना । जलाना । तप्त करना । उ०—प्रनल उचाट रूप छाउ में तचाई भारी कारीगर काम ने सुधारी अभिराम सान ।—दीनदयालु (शब्द०) ।

तच्छ(५)—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष] दे० 'तक्ष' ।

तच्छक(५)—संज्ञा पुं० [सं० तक्षक] दे० 'तक्षक' ।

तच्छना(५)—क्रि० सं० [सं० तक्षण] १ काटना । २. नष्ट करना । काटकर टुकड़े करना ।

तच्छप(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्षक' ।

तच्छिन(५)—क्रि० वि० [सं० तक्षण] उसी समय । तत्काल ।

तछन(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तक्षण' । उ०—कैधे राखि प्रापने लयै । प्रगिनिहि तछन भखन करि गये ।—नंद० प्र०, पृ० ३१० ।

तछिन(५)†—अव्य० [सं० तक्षण] दे० 'तच्छिन' । उ०—जाके डर तहँ जात च कोई । तछिन भखन करि बारी छोई ।—नब० प्र०, पृ० २७७ ।

तज—संज्ञा पुं० [सं० तज] १ तमाश घोर दारखोशी की जाति का मन्त्रोक्त कण का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार, पूर्व बंगाल, बासिया की पहाड़ियों घोर बरमा में अधिकता से होता है ।

विशेष—भारत के अतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा प्रादि स्थानों में भी होता है । बासिया और बसतिया की पहाड़ियों में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है । जिन स्थानों पर समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है, वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है । इसके पेड़ प्रायः पाँच पाँच हाथ की घुरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच वर्ष के हो जाते हैं, तब वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं । छोटे पीछे प्रायः बड़े पेड़ों या झाड़ियों प्रादि को छाया में ही रखे जाते हैं । बाजारों में मिलनेवाला तेजपात या तेजपत्ता इस पेड़ का पत्ता और तज (लकड़ी) इसकी छाँड़ है । कुछ लोग इसे घोर दारखोशी से पेड़ को एक ही मानते हैं, पर वास्तव में यह अलग ही है । इस वृक्ष की आगियों की कुतंगियों पर अनेक फूल लगते हैं जिनमें गुलाब की सी सुगंध होती है । इसके फल करोड़ों के से होते हैं जिनमें से तेज निकाला जाता है और इन तथा मर्चे बनाया जाता है । यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक रहता है ।

२. इस पेड़ की छाँड़ को बहुत सुगंधित होती है और औषध के काम में आती है । वैद्यक में इसे गरपरा, शीतल, हृदका, स्वादिष्ट, रुफ, खाँसी, घाम, कंठ, अर्श, कुमि, पीनस प्रादि को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्धक और घषकारक माना जाता है ।

पर्याय—भृग । वराम । रामेष्ट । बिजुल । त्वच । उत्कट । चोल । सुरभित्तकल । सुतकव । मुखशोधन । सिद्ध । सुरस । कामवल्लभ । बहुगंध । वनप्रिय । लटपण । पथवत्कल । वर । शीत । रामवल्लभ ।

तजकिरा—संज्ञा पुं० [प्र० तजकिरह] १ चर्चा । चिन्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—बलना ।—छिड़ना ।—होना ।

२. वास्तालाप । बातचीत (को०) । ३. क्पाति । प्रसिद्धि (को०) ।

४. प्रसंग । सिलसिला (को०) ।

४-४३

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० तेजगरी] सिकलीगरी की बो अंगुल चौड़ी घोर अनुमानत डेढ़ बालिशत लंबी लोहे की पटरी जिसपर तेल गिराकर रदा तेज करते हैं ।

तजहीद—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्दीद] १ नया करना । नवीनीकरण । २. नवीनता । नयापन (को०) ।

तजन(५)†—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव । त्याग । परित्याग ।

तजन†—संज्ञा पुं० [सं० तजीन] कोड़ा या चाबुक ।

तजना—क्रि० सं० [सं० त्यजव] त्यागना । छोड़ना । उ०—(क) सब तज । हर भज ।—(चन्द०) । (ख) तजहु पास विज विज गृह जाहू ।—मानस, १।२५२ ।

तजरबा—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जबह्, तज्जिबह्, तज्जुबह्] १ वह ज्ञान जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय । अनुभव । जैसे,—मैंने सब बातें अपने तजरबे से कही हैं ।

यो०—तजरबेकार=जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया हो । अनुभवी ।

२ वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय । जैसे,—प्राप पहले तजरबा कर बीजिए, तब बीजिए ।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबह् + फा० कार] जिसने तजरबा किया हो । अनुभवी ।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जुबह् + फा० कारी (प्रत्य०)] अनुभव ।

तजरी (—) [प्र० तज्जीद] १. उद्घाटित कर किसी चीज को असली दशा में कर देना । नया कर देना । २. (काट/छाँटकर) सजाना या सँवारना । ३. सुधार करना । ४. एकाकी जीवन । ब्रह्मचर्य । उ०—कोई तजरीद तफरीद बोधते हैं कोई नकी ।—दक्खिनी०, पृ० ४३३ ।

तजरुबा—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबह्] दे० 'तजरबा' ।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुबह् + फा० कार] दे० 'तजरबाकार' ।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तज्जुबह् + फा० कारी] दे० 'तजरबाकारी' ।

तजल्ली—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १ प्रकाश । रोशनी । दूर । २ प्रताप । जलाल । ३. प्रख्यात ज्योति । उ०—कीजै फहुम फना को लै के, दूर तजल्ली अपना ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२ ।

तजवीज—संज्ञा स्त्री० [प्र० तजवीज] १ सम्मति । राय । २. फैसला । निर्णय । ३. बशोबस्त । इतिजाम । प्रबंध ।

तजवीजसानी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तजवीज + सानी] किसी अमानत में उसी अदालत के किए हुए किसी फैसले पर फिर से होनेवाला विचार । एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार ।

तज्जुज—संज्ञा पुं० [प्र० तज्जुज] १ सीमा का उल्लंघन । २. अपने इशतियार से बाहर कोई काम करना । ३. अवज्ञा । हुक्मउद्घोष । उ०—शरीफत के माने तुम्हारे घोर हवाई को इस हद पे तज्जुज न करे ।—दक्खिनी०, पृ० ४२६ । ४. घृष्टता । गुस्ताखी (को०) ।

तजुब^७—अव्य० [भ० तमजुब] आश्रयं । विस्मय । अचंभा ।
उ०—तजुब नही कि खोपरी टूट जाय ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० १५५ ।

तज्जनित—वि० [सं०] उससे उत्पन्न ।

तज्जन्य—वि० [सं०] उससे उत्पन्न । उ०—कविता हमारे मन पर
पड़े हुए सामाजिक प्रतिवधो और तज्जन्य विचारों की प्रति-
क्रिया है ।—नया०, पृ० ३ ।

तज्जातपुरुष—सद्या पु० [सं०] का 'निपुण' श्रमी । होशियार कारीगर ।

तज्जी—सद्या स्त्री० [सं०] हिगुपत्री ।

तज्ज—वि० [सं० तज् + ज (तज् + ज)] १. तत्व का जाननेवाला ।
तत्वज्ञ । उ०—देवतज्ज सर्वज्ञ जज्ञेश अच्युत विभो विश्व
भवदश सभष पुरारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ज्ञानी ।

तटक^७—सद्या पु० [सं० ताटङ्क] कर्णफूल नामक कान का आभूषण ।
कर्णफूल । उ०—चलि चलि भावत श्रवण निकट प्रति सकुचि
तटक फंदा ते ।—सूर (शब्द०) ।

तट^१—सद्या पु० [सं०] १. क्षेत्र । खेत । २. प्रदेश । ३. तीर ।
किनारा । कूल । ४. शिव । महादेव । ५. जमीन या पर्वत
का ढाल (को०) । ६. आकाश (को०) ।

तट^२—क्रि० वि० समीप । पास । नजदीक । निकट ।

तटक—सद्या पु० [सं०] नदी, तालाब आदि का किनारा (को०) ।

तटका—वि० [हि०] [वि० स्त्री० तटकी] दे० 'टटका' । उ०—निसि के
उनीदे नेना तेसे रहे टरि टरि । किधौ कहूँ प्यारी को तटकी
लागी नजरि ।—सूर (शब्द०) ।

तटक्कना—क्रि० भ० [हि०] दे० 'तड़कना' । उ०—तटक्क दुहू छोह
लोहू चलावे ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तटग—सद्या पु० [सं०] तड़ाग ।

तटनी^७—सद्या स्त्री० [सं० तटनी] (तटवासी) नदी । सरिता ।
दरिया । उ०—(क) मदाकिनि तटनि तीर मजु मृग बिहग
और धीर मुनि गिरा गंभीर आम पान की ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) कदम चिटप के निकट तटनी के प्राय मटा झड़ि चाहि
पीतपट फहरानी सो ।—रसखान (शब्द०) ।

तटवर्ती—वि० [सं०] तट से सबब रहनेवाला या होनेवाला (को०) ।

तटस्थ^१—वि० [सं०] १. तीर पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला ।
२. समीप रहनेवाला । निकट रहनेवाला । ३. किनारे रहने-
वाला । अलग रहनेवाला । ४. जो किसी का पक्ष न ग्रहण
करे । उदासीन । निरपेक्ष ।

यौ०—तटस्थ वृत्ति ।

तटस्थ^२—सद्या पु० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को
लेकर नहीं बल्कि उसके गुण और धर्म आदि को लेकर वत-
साया जाय । दे० 'सक्षण' ।

यौ०—तटस्थ लक्षण ।

तटस्थित—वि० [सं०] दे० 'तटस्थ' ।

तटाक—सद्या पु० [सं०] तड़ाग । तालाब ।

तटाकिनी—सद्या स्त्री० [सं०] बड़ा तालाब (को०) ।

तटाघात—सद्या पु० [सं०] पशुओं का अपने सींगों या दाँतों से
असौम्य क्षोभना ।

तटिनी—सद्या स्त्री० [सं०] नदी । सरिता । दरिया ।

तटी^१—सद्या स्त्री० [सं०] १. तीर । कूल । किनारा । तट । २. नदी ।
सरिता । उ०—ताहि समे पर नामि तटी को गयो उड़ि सेवक
पीन प्रसंग में ।—सेवक (शब्द०) । ३. तराई । घाटी ।

तटी^२—सद्या स्त्री० समाधि ।

तटी^३—अव्य० [सं० तज्] वहाँ । उस जगह पर ।

तठना—क्रि० वि० [सं० तज्, प्रा० तथ्य] वहाँ । उ०—जुष बेल
खगे रिए छोड़ जठे । तन पाष जिसो रुधनाप ठठे ।—रा०
रू०, पृ० ३५ ।

तड़^१—सद्या पु० [सं० तट] १. समाज में हो जानेवाला विभाग । पक्ष ।
यौ०—तड़वदी ।

२. स्थल । खुरकी । जमीन ।—(लश०) ।

तड़^२—सद्या पु० [अनु०] १. चप्पड़ आदि मारने या कोई चीज पटकने
से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

यौ०—तटातड़ ।

२. चप्पड़ ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

३. लान का आयोजन । आमदनी की सुरत ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—वेठाना ।

तड़क^१—सद्या स्त्री० [हि० तड़कना] १. तड़कने की क्रिया या भाव ।
२. तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ चिल्ला । ३.
भोजन के साथ खाए जानेवाले मचार, चटनी आदि चटपटे
पदार्थ । चाट ।

तड़क^२—सद्या स्त्री० [सं० तट्टक = (घरन)] वह बड़ी खक्की ओ दीवार
से बेंडेर तक लगाई जाती है और जिसपर दासे रखकर छपर
छाया जाता है ।

तड़कना^१—क्रि० भ० [अनु० तड़] १. 'तड़' शब्द के साथ फटना,
फूटना या टूटना । कुछ आवाज के साथ टूटना । चटकना ।
कडकना । जैसे, घोषा तड़कना, खक्की तड़कना । २. किसी
चीज का सुखने आदि के कारण फट जाना । जैसे, छिलका
तड़कना, जखम तड़कना । ३. जोर का शब्द करना । उ०—
कहि योगिनि निशि हित प्रति तड़की । विद्याचल के ऊपर
खक्की ।—गोपाल (शब्द०) । ४. क्रोध से बिगड़ना । भुंभुं-
छाना । बिगड़ना । ५. जोर से उछलना या कूदना । तड़पना ।
सयो० क्रि०—जाना ।

तड़कना^२—क्रि० स० तड़का देना । छोकना । बघारना ।

तड़क भड़क—सद्या स्त्री० [अनु०] वेभव, शान आदि की दिखावट ।

तड़कसी—सद्या स्त्री० [देश०] ताटक । तरौना । कर्णानुपण । तरकी ।
उ०—नाग फण का तड़कसी, छोटि कसण पयोहर खीची ।—
वी० रासो, पृ० ७२ ।

तड़का—सद्या पु० [हि० तड़कना] १. सवेरा । सुबह । प्रातःकाल ।
प्रभात । २. छोक । बघार ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़काना—क्रि० स० [हि० तड़कना का सक० रूप] १. किसी वस्तु
को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड़' शब्द हो । २. किसी
पदार्थ को सुखाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना ।

३ जोर का शब्द उत्पन्न करना । ४ किसी को क्रोध दिलाया या खिजाना ।

तड़कीला^१—वि० [हि० तड़कना + ईला (प्रत्य०)] १. चमकीला । भड़कीला । २. तड़कनेवाला । फट जानेवाला । ३. फुटोला ।

तड़क्का^१—सब्बा पुं० [भनु० तड़] तड़ का शब्द ।

तड़क्का^१—क्रि० वि० [हि० तड़का] जल्दी । झटपट । उ०—चेतहु काहे न सवेर यमन सों रारिहै । काख के हाथ कमान तड़क्का मारिहै ।—कवीर (शब्द०) ।

तड़ग—सब्बा पुं० [सं० तड़ग] तालाव । तडाग [को०] ।

तड़तड़ाना^१—क्रि० प्र० [भनु०] तड़ तड़ शब्द होना ।

तड़तड़ाना^२—क्रि० प्र० तड़ तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़ाहट—सब्बा स्त्री० [भनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव ।

तड़ता(पु०)—सब्बा स्त्री० [सं० तड़ित] विजली । विद्युत् ।—(हिं०) ।

तड़प—सब्बा स्त्री० [हिं० तड़पना] १. तड़पने की क्रिया या भाव । २. चमक । भड़क ।

तड़प भड़प—सब्बा स्त्री० [भनु०] वे० 'तड़क भड़क' । उ०—केवल ऊपरी तड़पभड़प रखनेवाली पश्चिमीय सभ्यता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१५ ।

तड़पदार—वि० [हिं० तड़प + फा० दार] चमकीला । भड़कदार । भड़कीला ।

तड़पन—सब्बा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़प' ।

तड़पना—क्रि० प्र० [भनु०] १. बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना । छटपटाना । तड़फड़ाना । तलमलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. धोर शब्द करना । भयकर ध्वनि के साथ गरजना । जैसे, किसी से तड़पकर धोलना, शेर का तड़पकर झाड़ी में से निकलना ।

तड़पवाना—क्रि० प्र० [हिं० तड़पाना का प्रेरणार्थक] किसी को तड़पाने का काम दूसरे से कराना ।

तड़पाना—क्रि० प्र० [हिं० तड़पना का सं० रूप] १. शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचाकर व्याकुल करना । २. किसी को गरजने के लिये बाध्य करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

तड़फड़—सब्बा स्त्री० [हिं० तड़फड़ाना] तड़पने की क्रिया ।

तड़फड़ाना—क्रि० प्र० [हिं०] तड़पना । छटपटाना । तलमलाना ।

तड़फड़ाहट—सब्बा स्त्री० [हिं० तड़फड़ + अहट (प्रत्य०)] १. छटपटाहट । तलमलाहट । बेचैनी । २. मारे जाने या जलकर मरने के समय की बेचैनी या तड़पन ।

तड़फना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तड़पना' ।

तड़भड़—सब्बा स्त्री० [भनु०] हड़भड़ । जल्दी जल्दी । उ०—पातसाह भजमेर परस्ते । कृप कियो तड़भड़ भड़ कस्ते ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

तड़भंडी—सब्बा स्त्री० [हिं० तड़ + फा० बंदी] समाज, विरादरी या पंथग भ्रमण तड़ बनाना ।

तड़क^१—सब्बा पुं० [सं० तड़क] तड़ग । तालाव । सरोवर ।

तड़क^२—सब्बा स्त्री० [भनु०] तड़के का शब्द । किसी चीज के टूटने का शब्द ।

तड़क^३—क्रि० वि० १. 'तड़' या 'तड़क' शब्द के सहित । २. जल्दी से । चटपट । तुरंत ।

यौ०—तड़क पड़क = चटपट । तुरंत ।

तड़का^१—सब्बा पुं० [भनु०] १. 'तड़' शब्द । जैसे,—न जाने कहाँ कल रात को बड़े जोर का तड़का हुआ । २. कमलवाक्य बुननेवालों का एक ढाका जो प्रोयः सवा गज लंबा होता है और लक्ष में बँधा रहता है । इसके नीचे तीन और ढाके बँधे होते हैं । ३. पेड़ । वृक्ष ।—(कहारों की परि०) ।

तड़का^२—क्रि० वि० [हिं० तड़क] चटपट । जल्दी से । तुरंत । जैसे,—तड़का जाकर बाजार से सीदा ले आओ (बोलचाल) ।

तड़ग—सब्बा पुं० [सं० तड़ग] १. तालाव । सरोवर । ताल । पुष्कर । पोखरा । पद्मादियुक्त सर । उ०—(क) भरतु हंस रवि बस तड़ागा । जनमि कीन्ह पुन पोष विभागा ।—मानस, ३।२३१ । (ख) धनुराग तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मजुल कजकसी ।—तुलसी प्र०, पृ० १६७ ।

विशेष—प्राचीनो के अनुसार तड़ाग पाँच सौ धनुष लंबा, चौड़ा और खूब गहरा होना चाहिए । उसमें कमल आदि भी होने चाहिए ।

तड़ागना—क्रि० प्र० [भनु०] १. गर्जन उर्जन करना । तड़फड़ाना । २. डींग मारना । ३. प्रयास करना । उ०—पहुँचेंगे तब कहेंगे वही देश की सीख । धवही कहा तड़ागिए वेडी पायन बीच ।—सतवाणी०, पृ० ३५ ।

तड़ागी—सब्बा स्त्री० [सं० तड़ाग] १. करघनी । २. कमर ।

तड़ाघात—सब्बा पुं० [सं० तड़ाघात] दे० 'तड़ाघात' [को०] ।

तड़ातड़—क्रि० वि० [भनु०] १. तड़तड़ शब्द के साथ । इस प्रकार जिसमें तड़तड़ शब्द हो । जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना । उ०—भागे रघुवीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तमका मे ।—पद्माकर (शब्द०) । २. जल्दी से ।

तड़ातड़ी—क्रि० वि० [भनु०] मि० बँगला ताड़ाताड़ी] जल्दी में । शीघ्रता में । उ०—घो कुछ शुना नेई और बड़ा तड़ातड़ी मे भाग ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

तड़ाना^१—क्रि० प्र० [हिं० तड़ाना का प्रेरणार्थक] किसी दूसरे को तड़ाने में प्रवृत्त करना । भेंपाना ।

तड़ाना^२—क्रि० प्र० [हिं०] जल्दी मचना ।

तड़ावा—सब्बा स्त्री० [हिं० तड़ाना (= दिखाना)] १. ऊपरी तड़क भड़क । वह चमक दमक जो केवल दिखाने के लिये हो । २. धोखा छल ।—(व०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़ि^१—सब्बा [सं० तड़ि] आघात [को०] ।

तड़ि^२—वि० आघात करनेवाला [को०] ।

तड़ि^३—सब्बा स्त्री० [सं० तड़ित्] विजली । उ०—मेघनि विबँ धलप जल परे । तड़ि भई मलुप नेह परिहरे ।—नद० प्र०, पृ० २६० ।

तद्धित—सका स्त्री० [सं० तद्धित्] बिजली । बिद्युत् । उ०—उपमा एक प्रभूत महीं तब जब जननी पट पीत उड़ाए । नील लसक पर उड़गन बिरबल तबि सुभानु मनो तद्धित छिपाए ।
—तुलसी (शब्द०) ।

तद्धिता—सका स्त्री० [सं० तद्धित्] दे० 'तद्धित' । उ०—तद्धि तद्धिता चहुं मोरन तें छिति छाई समीरन सी लहरें । मयमाते महा गिरि श्रु गति पै गन मंजु मयूरन के कहुरें ।—इतिहास, पृ० ३१८ ।
तद्धितकुमार—सका पुं० [सं० तद्धितकुमार] जैनों के एक देवता जो भुवनेश्वर के रूप में से है ।

तद्धितपति—सका पुं० [सं० तद्धितपति] बादल । मेघ ।
तद्धितप्रभा—सका स्त्री० [सं० तद्धितप्रभा] कार्तिकेय की एक मानिका का नाम ।

तद्धित्वाङ्—सका पुं० [सं० तद्धित्वाङ्] १ नागरमोषा । २ बादल ।
तद्धिद्गर्भ—सका पुं० [सं० तद्धिद्गर्भ] बादल ।

तद्धिदाम—सका पुं० [सं० तद्धिदाम] बिजुलता । बिद्युलता ।
बिजली कमरते समय दीकनेवाली रेखा [को०] ।

तद्धिमय—वि० [सं० तद्धिमय] बिजली की तरह कमरने-वाला [को०] ।

तद्धिया—सका स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा ।—(लश०) ।

तद्धियाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तद्धपना' ।

तद्धियाना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तद्धपाना' ।

तद्धियाना^३—क्रि० प्र० [हि०] जल्दी करना । जल्दी मचाना ।

तद्धिल्लता—सका स्त्री० [सं० तद्धिल्लता] बिद्युल्लता [को०] ।

तद्धिल्लेखा—सका स्त्री० [सं० तद्धिल्लेखा] बिजली की रेखा [को०] ।

तडी^१—सका स्त्री० [तड से अनु०] १ अपत । घोल ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

२. घोसा । छल ।—(दलाल) ३. बहाना । हीला ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

तडी^२—सका स्त्री० [देश०] जल्दी । शीघ्रता ।

तडीत^३—सका स्त्री० [हि०] दे० 'तद्धित' ।

तण^४—अव्य० [हि० तनु] की तरफ । मोर का ।

तणई^५—सका स्त्री० [सं० तनया] कन्या । पुत्री ।

तणमीट^६—सका पुं० [हि०] मुसलमान ।

तणी^७—अव्य० [हि०] दे० 'तङ्' ।

तणी^८—अव्य० [हि० तनिक] थोड़ा । अल्प ।

तणु^९—सका पुं० [हि०] दे० 'तनु' ।

तणौ^{१०}—अव्य० [हि० तनु] के लिये । की तरफ ।

तण^{११}—सका पुं० [सं०] १. ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम । जैसे,—
धौ तव सत् । २. वायु । हवा ।

तण^{१२}—सर्व० उच ।

विशेष—इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ उनके धारम में होता है । जैसे,—तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष, तत्पञ्चात्, तदनन्तर, तदाकार, तद्द्वारा, तत्पूर्व, तत्प्रथम ।

तव^१—सका पुं० [सं०] १. वायु । २. विस्तार । ३. पिता । ४. पुत्र ।

संतान । ५. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे, सारंगी, सितार, बोन, एकतारा, बेहूसा आदि ।

विशेष—तव बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली उंगली या मिञ्जराब आदि से बजाए जाते हैं, जैसे, सितार बोन, एकतारा आदि । ऐसे बाजों को मंगुलिन यंत्र कहते हैं और जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं, जैसे, सारंगी, बेहूसा आदि, वे धनु यंत्र कहलाते हैं ।

तत^२—वि० १. विस्तृत । फैला हुआ । २. विस्तारित । ३. ढका हुआ । छिपा हुआ । ४. झुका हुआ । ५. अंतररहित । लगातार [को०] ।

तत^३—वि० [सं० तप्त] तपा हुआ । गरम । उ०—नखत भकासहि चढ़इ दियाई । तत तत लूका परहि बुझाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तत^४—सका पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्त्व' ।

तत^५—सर्व० [सं० तत्] उस । जैसे,—ततखन = तत्क्षण ।

ततकरा—क्रि० वि० [सं० तत्काल] तुरंत । उ०—ततकरा मपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत विचार ।—रैदास०, पृ० ३७ ।

ततकारा—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

ततकाल^६—अव्य० [हि०] दे० 'तत्काल' ।

ततखण—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, प्रा० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखण मालवणी कहइ सभलित कत सुरंग ।—ढोला, पृ० ६५४ ।

ततखन^७—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखन भाइ बिबान पहुँचा । मन तें अधिक गगन ते ऊँचा ।—जायसी (शब्द०) ।

ततच्छन—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—(क) राज काज भाष्य विद्यालय बीच तत्च्छन ।—प्रेमघन०, पृ० ४१५ ।
(ख) भरज गरज सुनि देत उचित भादेश ततच्छन ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० १५ ।

ततछन^८—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण' ।

ततछिन^९—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, हि० ततछन] दे० 'तत्क्षण' । उ०—सिध पौरि बृषभानु की, ततछिन पहुँचे जाइ ।—नद०—प्र०, पृ० १६८ ।

ततताथेई—सका स्त्री० [अनु०] नृत्य का शब्द । नाच के बोल ।

ततत्त्व—सका पुं० [सं०] १. विलम्बित काल । मंद काल ।—(सगीत) ।
२. नैरतय । निरंतरता [को०] ।

ततपत्री—सका स्त्री० [सं०] केले का पत्र ।

ततपर—वि० [सं० तत्पर] दे० 'तत्पर' ।

ततबाव^{१०}—सका पुं० [सं० तन्नुवाय] दे० 'तन्नुवाय' ।

ततबीर^{११}—सका स्त्री० [प्र० तदबीर] दे० 'तदबीर' । उ०—कोउ गई जल पेठि तरुनी और ठाढ़ी तीर । तिनहि खई बोलाइ राधा करत सुख ततबीर ।—सूर (शब्द०) ।

ततवेता—वि० [सं० तत्त्ववेत्ता] ज्ञानी । उ०—जैसा हूँदत में फिरी, तैसा मिला न कोय । ततवेता निरगुन रहित, निरगुन से रह होय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १८ ।

ततरी—सका स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

तत्त्व—वि० [सं० तत्त्व] तत्त्वज्ञानी । तत्त्व की बात जाननेवाला ।
उ०—तत्त्व मिन कृष्ण तेहि भागे । ऊँचो रोइ अप तप को
सगे ।—घट०, पृ० २६२ ।

तत्त्वसार०—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वसारा] तापने का स्थान । धींच
देने या तपाने की जगह । उ०—सतगुरु तो ऐसा मिला ताते
सोह लुहार । कसमो दे कंचन किया ताय लिया तत्त्वसार ।—
कबीर (शब्द०) ।

तत्त्वहृद्—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व + हि० हृद्] [स्त्री० मत्प्रा०
तत्त्वहृद्] वह चरतन विशेषतः मिट्टी का चरतन जिसमें
देहातवासे नहाने का पानी गरम करते हैं ।

तत्त्वार्थ०—संज्ञा स्त्री० [हि० तत्त्वा] तत्त्व होने की क्रिया या भाव
परमो । उ०—वरनि बतार्थ छिति ब्योम की तत्त्वार्थ, जेठ
भायो प्राततार्थ पुटपाक सी करत है ।—कवित्त०, पृ० ५६ ।

तत्त्वामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह । दादा ।

तत्त्वार्त्ता—क्रि० सं० [हि० तत्त्वा (= परम)] १ परम जल से
धोना । २ ठरेरा देकर धोना । धार देकर धोना । उ०—मनहु
बिरह के सय घाय द्विये सखि तकि तकि धरि बीर तत्त्वार्त्ता ।
—तुलसी (शब्द०) ।

तत्त्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अणी । पक्ति । ताँता । २. समूह । सेना ।
भीड़ । ३. विस्तार । यज्ञ का समारोह । उत्सव (को०) ।

तत्त्व—वि० [सं०] संवा छोड़ा । विस्तृत । उ०—यज्ञोपवीत पुनीत
विराजत गूढ़ जनु बनि पीन धंस तत्त्व ।—तुलसी (शब्द०) ।

तत्त्वार्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वार्त्ता] दे० 'तत्त्वार्त्ता' ।

तत्त्व—वि० [सं०] १ हिंसा करनेवाला । २. तारनेवाला । ३
जीतनेवाला (को०) । ४ रक्षण या पालन करनेवाला (को०) ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० १ अग्नि । २ इन्द्र (को०) ।

तत्त्व—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्व या तत्त्व (= तत्त्व) + हि० ऐया
(प्रत्यय०)] २ बरें । मित्र । हड्डा । २ जवा मित्र जो बहुत
कड़ई होती है ।

तत्त्व—वि० [हि० तीता मयवा तत्त्वा] १ तेज । फुरतीला । २
बाधाक । बुद्धिमान ।

तत्त्वधिक—वि० [सं० तत्त्वधिक] उससे अधिक (को०) ।

तत्त्व—अव्य० [हि०] तो । उ०—जो हृम सो हित हानि कियो ।
ततो भूलिबो वा हरि कौन सौ साह पो ।—नट०, पृ० ३४ ।

तत्त्व—क्रि० वि० [सं०] तुरत । फौरन । उसी समय । उसी वक्त ।

तत्त्व—वि० [सं०] उसी समय का ।

तत्त्व—क्रि० वि० [सं०] उसी समय । तत्काल । फौरन । उसी दम ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व, हि०] दे० 'तत्त्व' ।

तत्त्व—वि० [सं० तत्त्व, हि०] दे० 'तत्त्व' । उ०—चुरंगी सु तत्त्व,
वर सिध उत । मित्यो वध्य मान, दुप मल्ल जान ।—पृ०
रा०, १ । ६४५ ।

तत्त्व—वि० [सं०] मित्र मित्र (को०) ।

तत्त्व—सर्व० वह वह । उन उन (को०) ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तत्त्व' । उ०—हृथ्य जोर
मरुहून सो बुल्लिव । तत्त्वमत्त मतर कव बुल्लिव ।—पृ०
रा०, पृ० १७२ ।

तत्त्वा—वि० [सं० तत्त्व] जसता या तपता हुआ । गरम । उष्ण ।

सुहा०—तत्त्वा तत्त्वा = जो बात बात पर लगे । लड़ाका । भगवान् ।

तत्त्वार्थ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भाष का बोल ।

तत्त्व—वि० स्त्री० [हि० तत्त्वा] तीक्ष्ण । तप्त । उ०—जगपत्नी उण
जोस मै, रत्ती प्राप समाण । वनसपत्नी खल जालवा, कर
तत्ती केवाण ।—रा० क०, पृ० १२६ ।

तत्त्वार्थ—संज्ञा पुं० [हि० तत्त्वा (= गरम) + धामना] १ दम
दिलासा । बहुलावा २ दो लड़ते हुए भावमियों को समझा
बुझाकर शांत करना । बीच बचाव ।

तत्त्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] १ वास्तविक स्थिति । यथार्थता ।
वास्तविकता । असलियत । २ जगत् का मूल कारण ।

विशेष—सांख्य में २५ तत्त्व माने गए हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व
(बुद्धि), अहंकार, अक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्,
पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मूत्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, पंध,
पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । मूल प्रकृति से शेष तत्त्वों
की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्त्व (बुद्धि),
महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,
पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र, पाँच तन्मात्रों
से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि) । प्रलय काल में ये सब
तत्त्व फिर प्रकृति में क्रमशः विलीन हो जाते हैं । योग में
ईश्वर को और मिलाकर कुल २६ तत्त्व माने गए हैं । सांख्य
के पुरुष से योग के ईश्वर में विशेषता यह है कि योग का
ईश्वर क्लेश, कर्मेन्द्रियाँ आदि से पृथक् भावा गया है ।
वेदांतिओं के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमात्मा तत्त्व है । शून्य-
वादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परमात्मा तत्त्व है, क्योंकि
जो वस्तु है, वह पहले नहीं थी और भागे भी न रहेगी ।
कुछ धर्म तो जीव और अजीव ये ही दो तत्त्व मानते हैं और
कुछ पाँच तत्त्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल
और अस्तिकाय । चार्वाक के मत में पृथ्वी, जल, अग्नि और
वायु ये ही तत्त्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति
कही गई है । न्याय में १६, वैशेषिक में ६, शैवदर्शन में ३६,
इसी प्रकार अनेक दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताएँ तत्त्व के
संबंध में हैं ।

यूरोप में १६वीं शती में रसायन के क्षेत्र का विस्तार हुआ ।

पैरासेल्सस ने तीन या चार तत्त्व माने, जिनके मुताबिक खदख
गंधक और पारद माने गए । १७वीं शती में फ्रांस पृथ्वी
इलैड में भी इसी प्रकार के विचारों की प्रशंसा मिलता रहा ।
तत्त्व के संबंध में सबसे अधिक स्पष्ट विचार राबर्ट बायल
(१६२७-१६९१ ई०) ने १६६१ ई० में रखा । उसने परिभाषा
की कि तत्त्व उन्हें कहेंगे जो किसी यांत्रिक या रासायनिक
क्रिया से अपने से भिन्न दो पदार्थों में विभाजित न किए जा
सकें । १७७४ ई० में प्रीस्टली ने फास्फोरस तैयार की ।
कैवेंडिश ने १७८१ ई० में फास्फोरस और हाइड्रोजन के योग
से पानी तैयार करके दिखा दिया और तब पानी तत्त्व न
रहकर यीपियों की श्रेणी में आ गया । साव्वाये ने १७८२
ई० में यौगिक और तत्त्व के प्रमुख घटकों को बताया । उसके

समय तक तत्वों की संख्या २३ तक पहुँच चुकी थी। १९वीं शती में सर हफ्री डेवी ने नमक के मूल तत्त्व सोडियम को भी पृथक् किया और कैल्सियम तथा पोटैशियम को भी योगिकों में से अलग करके दिखा दिया। २०वीं शती में मोजली नामक वैज्ञानिक ने परमाणु संख्या की कल्पना रखी जिससे स्पष्ट हो गया कि सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन से लेकर प्रकृति में प्राप्त सबसे भारी तत्व यूरेनियम तक तत्वों की संख्या लगभग १०० हो सकती है। प्रयोगों ने यह भी सभ्य करके दिखा दिया है कि हम अपनी प्रयोगशालाओं में तत्वों का विभाजन और नए तत्वों का निर्माण भी कर सकते हैं।

३ पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) । ४ परमात्मा । ब्रह्म । ५ सार वस्तु । सारांश । जैसे,—उनके लेख में कुछ तत्व नहीं है ।

यौ०—तत्त्वमसि=यह उपनिषद् का एक वाक्य है जिसका तात्पर्य है हर व्यक्ति ब्रह्म है ।

तत्त्वज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञ] १ वह जो ईश्वर या ब्रह्म को जानता हो । तत्त्वज्ञानी । ब्रह्मज्ञानी । २ दार्शनिक । दर्शनशास्त्र का ज्ञाता ।

तत्त्वज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञान] ब्रह्म, आत्मा और मृष्टि आदि के सत्त्व का यथार्थ ज्ञान । ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य की मोक्ष हो जाय । ब्रह्मज्ञान ।

विशेष—साध्य और पातजल के मत से प्रकृति और पुण्य का भेद जानना और वेदात् के मत से श्रद्धा का नाश और यत्न का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्त्वज्ञान है ।

यौ०—तत्त्वज्ञानार्थ दर्शन = तत्त्वज्ञान का विमर्श या आलोचना ।

तत्त्वज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वज्ञानिन्] १ जिसे ब्रह्म, मृष्टि और आत्मा आदि के स्वयं का ज्ञान हो । तत्त्वज्ञ । दार्शनिक ।

तत्त्वतः—अव्य० [सं० तत्त्वत] वस्तुतः । यथार्थतः । वास्तव में [को०] ।

तत्त्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वता] १ तत्व होने का भाव या गुण । २ यथार्थता । वास्तविकता ।

तत्त्वदर्श—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्श] १ तत्त्वज्ञानी । २ सावर्णि मन्वतर के एक ऋषि का नाम ।

तत्त्वदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वदर्शिन्] १ जो तत्व को जानता हो । तत्त्वज्ञानी । देवत मनु के एक पुत्र का नाम ।

तत्त्वदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्त्वदृष्टि] यह दृष्टि जो तत्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो । ज्ञानचक्षु । दिव्य दृष्टि ।

तत्त्वनिष्ठ—वि० [सं० तत्त्वनिष्ठ] तत्व में निष्ठा रखनेवाला [को०] ।

तत्त्वन्यास—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वन्यास] तत्त्व के अनुसार विष्णुपूजा में एक मंत्रन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है ।

तत्त्वभाव—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाव] प्रकृति । स्वभाव ।

तत्त्वभाषी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वभाषिन्] वह जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो ।

तत्त्वभूत—वि० [सं० तत्त्वभूत] तत्व या सार रूप [को०] ।

तत्त्वदर्शिन—संज्ञा पुं० [सं०] तत्त्व के अनुसार स्त्री देवता का बोध ।

वधुबीज ।

तत्त्ववाद—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववाद] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार ।

तत्त्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववादिन्] १ जो तत्त्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो । २ जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो ।

तत्त्वविद्—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वविद्] १ तत्त्ववेत्ता । २ परमेश्वर ।

तत्त्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र ।

तत्त्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्ववेत्तृ] १ जिसे तत्व का ज्ञान हो ।

तत्त्वज्ञ । २ दर्शनशास्त्र का ज्ञाता । फिलासफर । दार्शनिक ।

तत्त्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वशास्त्र] १ दर्शनशास्त्र । २ वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र ।

तत्त्वावधान—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वावधान] निगीक्षण । जाँच पड़ताल । देख रेख ।

तत्त्वावधानक—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्वावधानक] देखरेख करनेवाला । निरीक्षक ।

तत्त्वा'—वि० [सं० तत्त्व] मुख्य । प्रधान ।

तत्त्वा'—संज्ञा पुं० शक्ति । बल । ताकत ।

तत्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ केने का पेड़ । २. वधुपत्नी नाम की घात ।

तत्पद्—संज्ञा पुं० [सं०] परम पद । निर्वाण ।

तत्पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] मृष्टिर्तत्ता । परमात्मा ।

तत्पर'—वि० [सं०] [सं० तत्परता] १. जो कोई काम करने के लिये तैयार हो । उत्तम । मुस्तैद । सज्ज । २ निपुण । ३. चतुर । होशियार । ४ उसके बाद का [को०] ।

तत्पर'—संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा भाग । एक निमेष का तीसरा भाग ।

तत्परता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तत्पर होने की क्रिया या भाव । सज्जता । मुस्तैदी । २. दक्षता । निपुणता । ३. होशियारी ।

तत्परायण—वि० [सं०] किसी वस्तु या ध्येय में पूरी तरह से लगन या रतचित्त [को०] ।

तत्परचात्—अव्य० [सं०] उसके बाद । अनंतर [को०] ।

तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । परमेश्वर । २ एक उद्ग का नाम । ३ मत्स्य पुराण के अनुसार एक वृत्त (काल विभाग) का नाम । ४ व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्ता शब्द की विभक्ति को छोड़कर कर्म आदि दूसरे कारका की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो । इसका लिंग और वचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार होता है । जैसे,—जलचर, नरेण, हिमालय, यज्ञशाला ।

तत्पतिरूपक व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] जैतियों के मत से एक प्रतिचार जो धेनो के लिये पदार्था में सोद पदार्थ की मित्रावृत्त करने में होता है ।

तत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुट नामक शोधधि । २ बेर का फल । ३ कुजलय । नील कमल । ४ चीर नामक मधुद्रव्य । ५ श्वेत कमल [को०] ।

तत्र—वि० [सं०] उस स्थान पर । उस जगह । वहाँ ।

तत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जो योरप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में भूगोलान्तर तक होता है ।

विशेष—यह मत्तार के पेड़ के बराबर या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ लम्बाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में मत्तारों के यहाँ समाक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ खट्टा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। बठल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिक्काया जाता है। हिन्दुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ विषली से मंगाई जाती हैं।

तत्रत्य—वि० [सं०] वहाँ रहनेवाला [को०]।

तत्रभवान्—संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—तत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रस्थ—वि० [सं०] वहाँ स्थित। वहाँ का निवासी।

तत्रापि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तत्संबंधी—वि० [सं० तत्संबंधिन्] उससे संबंध रखनेवाला [को०]।

तत्सम—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो। जैसे—दया, प्रत्यक्ष, स्वरूप, मृष्टि आदि।

तत्सामयिक—वि० [सं०] उस समय से संबंधित। उस समय का [को०]।

तथ—संज्ञा पुं० [हिं०] १. 'तत्त्व'। उ०—उह मनु कैसा जो कथे प्रकथु। उह मनु कैसा जो उलटै बुनि तनु।—प्राण०, पृ० ३४

तथता—संज्ञा पुं० [सं० तथ+ता] १. सत्यता। वस्तु का वास्तविक स्वरूप में निरूपण। २. तथा का भाव। उ०—यदि आप चाहें तो प्रसक्तों को धर्मता, तथता का प्रशंसित मान सकते हैं।—संपूर्ण० अभि० प्र०, पृ० ३३५।

तथा^१—अव्य० [सं०] १. और। व। २. इसी तरह। ऐसे ही। जैसे—यथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथारूप। तथारूपी। तथावादी। तथाविध। तथाविधान। तथावृत्त। तथाविधेय। तथास्तु=ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रायंत्य को स्वीकार करने भयवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

तथा^२—संज्ञा पुं० १. सत्य। २. सीमा। हृद। ३. निश्चय। ४. समानता।

तथा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तथ्य] २०. 'तथ्य'।

तथाकथित—वि० [सं०] जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो। नामधारी।

तथान्वय—वि० [सं०] २०. 'तथाकथित' [को०]।

तथाकृत—वि० [सं०] इसी या उसी प्रकार किया हुआ या निमित्त [को०]।

तथागत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम। २. जिन [को०]।

तथागुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेमा दुः गुण। २. सत्य। वस्तु-स्थिति [को०]।

तथाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] २०. 'तथता' [को०]।

तथानुरूप—वि० [सं०] २०. 'तदनुवय'। उ०—तथा ता, जो भवति होनी है वह तत्त्वों का समवर्गीय होना और उ०। और उनसे निकाले हुए नियमों का तथानुरूप होना है।—पा० भा० वि०, पृ० ५।

तथापि—अव्य० [सं०] तो भी। तिस पर भी। तब भी। उ०—प्रभृति तथापि प्रकृत विलोकी। नागि भगवत् उह होतें भगोकी।—मानस, १। १६४।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,—यद्यपि हम वहाँ नहीं गए, तथापि उनका काम हो गया।

तथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. रैगा भाव या स्थिति। २. सत्यता [को०]।

तथाभूत—वि० [सं०] १. उस प्रकार के गुण या प्रकृति का। २. उस स्थिति का [को०]।

तथाराज—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

तथैव ताथेइ ताथे—संज्ञा पुं० [मनु०] २०. 'ताताथेइ'। उ०—सग्यो काण्ड के मानि, तथेइ ताथेइ ताथे। ब्रजनिधि की चित चूर चूर करि डारयो राधे।—ग्रज० प्र०, पृ० १६।

तथैव—अव्य० [सं०] वैसे ही। उसी प्रकार।

तथोक्त—वि० [सं०] वैसे वर्णित। जैसा कहा गया है। २. तथा-कथित। उ०—भारत की तथोक्त ऊँची जातियाँ चाहे कितनी ही भूमिमान करे पर उनको प्राकृतियाँ और इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि वह सांकर्य दोष से बची नहीं है।—भार्या०, पृ० १३।

तथ्य^१—वि० [सं०] १. सत्य। सचाई। यथार्थता। २. रहस्य [को०]।

तथ्य^२—अव्य० [सं० तत्] उस जगह। वहाँ [को०]।

तथ्यत—क्रि० वि० [सं०] सत्य या सचाई के अनुसार [को०]।

तथ्यभाषी—वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी—वि० [सं० तथ्यवादिन्] २०. 'तथ्यभाषी'।

तद्—वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग योगिक शब्दों के प्रारम्भ में होता है। जैसे,—तदनंतर, तदनुसार।

तदा^१—क्रि० वि० [सं० तदा] उस समय। तब।

तदंतर—क्रि० वि० [सं० तदनंतर] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर—क्रि० वि० [सं० तदनंतर] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में भेद। कार्य और कारण की एकता। (पेशत)।

तदनु—क्रि० वि० [सं०] १. उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार। २. उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुकूल—वि० [सं०] उसके अनुसार। तदनुसार।

तदनु रूप—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार—वि० [सं०] उसके मुताबिक । उसके अनुकूल ।

तदन्यथाधिसार्थ—संज्ञा पु० [सं०] नभ्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक ।

तदपि—अर्थ० [सं०] तो भी । तिसपर भी । तथापि ।

तदधीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन । उक्ति । तरकीब । यत्न ।

तदर्थ—अर्थ० [सं०] उसके लिये । उसके वास्ते [को०] ।

तदर्थी—वि० [सं०] तदर्थिन [दे० 'तदर्थीय' ।

तदर्थीय—वि० [सं०] उसके अर्थ की तरह अर्थ रखनेवाला । समानार्थक [को०] ।

तदा—क्रि० वि० [सं०] उस समय । तब । तिस समय ।

तदाकार—वि० [सं०] १. वैसा ही । उसी आकार का । उसी आकृतिवाला । तद्रूप । २. तन्मय ।

तदाशक्त—संज्ञा पु० [अ०] १. कोई हुई चीज या प्राणें हुए अपराधी प्राणि की खोज या किसी दुर्घटना प्राणि के संबंध में जाँच । २. किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध । पेशबंदी । बंदोबस्त । ३. सजा । दंड ।

तदि—क्रि० [हि०] तदा । तब । उस समय । उ०—तदि करघो घोष वह विधि सुताहि ।—ह० रासो, पृ० ४६ ।

तदीय—सर्व [सं०] उससे सबंध रखनेवाला । उसका ।

यौ०—तदीय समाज । तदीय सर्वस्व ।

तदुत्तर—वि० [सं०] उसके बाद । उसके प्रतिरिक्त । उ०—कठिन है अपना तर्क तुम्हें समझाना । इह मेरा है पूर्ण, तदुत्तर परलोको का कीन ठिकाना ।—इत्यलम्, पृ० २१८ ।

तदुपरांत—क्रि० वि० [सं०] तदुपरांत उसके पीछे । उसके बाद ।

तदुपरि—वि० [सं०] उसके ऊपर । उसके बाद । उ०—कष्टों में अल्प उपशम भी क्लेश को है घटाना । जो होती है तदुपरि व्याया सो महादुर्मंगा है ।—प्रिय०, पृ० १२२ ।

तद्गत—वि० [सं०] १. उससे संबन्ध रखनेवाला । उसके सबंध का । २. उसके अंतर्गत । उसमें व्याप्त ।

तद्गुण—संज्ञा पु० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है । जैसे,—(क) अक्षर धरत हरि के परत झोंठ बीठ पट जोति । हरित बाँस की बाँसुरी इद्रधनुष सी होती ।—बिहारी (शब्द०) । इसमें बाँस की बाँसुरी का अपना गुण छोड़कर इद्रधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है । (ख) जाहिरे बाग़त सी जमुना जब बूझै यहै उमहँ वहै बेनी । त्यों पदमाकर होर के हारन गग तरंगन को सुख बेनी । रायन के रंग सों रंगि जात सुभाँतिहि भाँति सरस्वति बेनी । पेरे जहाँ हो जहाँ वह बाज तहाँ तहाँ ताब में होत त्रिबेनी ।—पद्माकर (शब्द०) । यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तलबों के ससयों के कारण त्रिबेणी का रूप धारण करना कहा गया है ।

तदपि—अर्थ० [हि०] दे० 'तथापि' । उ०—अथ उद्ध अम्प्यो

बहु कमलि नाल । नहि पार मखी तदपि मुहाल ।—ह० रासो, पृ० ४ ।

तद्वन—संज्ञा पु० [सं०] कृपण । कंजूस ।

तद्वर्म—वि० [सं०] तद्वर्मन् [जिनका वह धर्म हो । उस धर्मवाला ।

उ०—किंतु आप कहेंगे कि यद्यपि जाति का तद्वर्मत्व नहीं है तथापि तीक्ष्णश्रुति और कपित्तत्व का अग्निजाति से प्रविनाभाव है ।—संपूर्ण अर्थ० ग्रं०, पृ० ३३७ ।

तद्धित^१—संज्ञा पु० [सं०] १. व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर शब्द बनाते हैं ।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है—(१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व प्रादि का बोध होता है । इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है । जैसे, शिव से शिव, विष्णु से वैष्णव, रामानंद से रामानंदी प्रादि । (२) कर्तृवाचक—जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है । इसमें 'वाला' या 'हारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है । जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़ीवाला या लकड़हारा । (३) भाववाचक—जिससे भाव का बोध होता है । इसमें 'प्राई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'पन', 'पा', 'वट', 'हट', प्रादि प्रत्यय लगाते हैं । जैसे, डीठ से डिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट प्रादि । (४) ऊनवाचक—जिससे किसी प्रकार की न्यूनता या अधुना प्रादि का बोध होता है । इसमें संज्ञा के अंत में 'क', 'इया' प्रादि लगा देते हैं और 'प्रा' को 'ई' से बदल देते हैं । जैसे,—बूझ से बूझक, फोडा से फोडिया, डोला से डोली । (५) गुणवाचक—जिससे गुण का बोध होता है । इसके संज्ञा के अंत में 'प्रा', 'इक', 'इत', 'ई', 'ईला', 'एला', 'लु', 'वत', 'वान', 'दायक', 'कारक', प्रादि प्रत्यय लगाए जाते हैं । जैसे, ठंड से ठंडा, मेल से मिला, शरीर से शारीरिक, मानद से आनंदित, गुण से गुणी, रंग से रंगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक प्रादि ।

२. वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय ।

तद्धित^२—वि० इसके लिये उपयुक्त [को०]

तद्वत्—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का वाण ।

तद्भव—संज्ञा पु० [सं०] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो । संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप । जैसे, हस्त का हाथ, मञ्जू का माँजू, अर्घ का आर्घा, काष्ठ का काठ, कपूर का कपूर, वृत्त का भी ।

तद्यपि—अर्थ० [सं०] तथापि । तो भी ।

तद्रूप—वि० [सं०] समान । सदृश । वैसा ही । उसी प्रकार का ।

तद्रूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सादृश्य । समानता । उ०—जानि जुग जूष में सुप तद्रूपता बहुरि करिहै कलुष भूमि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तद्वत्—वि० [सं०] उसी के जैसा । उसके समान । ज्यों का त्यों ।

यौ०—तद्वत्ता=तद्वत् होने का भाव या स्थिति ।

तथो^१—क्रि० वि० [सं० तदा] तभी (वच०) ।

तन^१—संज्ञा पुं० [सं० तनु । तुल० क्रा० तन] १. शरीर । देह । गात । जिस्म ।

यौ०—तनताप = (१) शारीरिक कष्ट । (२) भूख । क्षुधा ।

मुहा०—तन को लगाना = (१) हृदय पर प्रभाव पड़ना । जो मे बैठना । जैसे,—चाहे कोई काम हो, जब तन को न लगे तब तक वह पूरा नहीं होता । (१) (छाद्य पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना । जैसे,—जब चिता दूटे, तब खाना पीना भी तन को लगे । तन तोड़ना = भ्रगडाई लेना । तन देना = व्यान देना । मन लगाना । जैसे,—तन देकर काम किया करो । तन मन मारना = इन्द्रियों को वश में रखना । इच्छाओं पर अधिकार रखना ।

२. जी की मूर्त्रेन्द्रिय । भग ।

मुहा०—तन दिखाना = (स्त्री का) समोग करना । प्रसंग कराना ।

तन^२—क्रि० वि० तरफ़ घोर । उ०—बिहूँसे कृष्णा भयन चित्तइ जानकी लखन नन ।—मानस, २ । १०० ।

तन^३—संज्ञा पुं० [सं० स्तन, प्रा० यण, हि० यन; राज० तन,] दे० 'स्तन' । उ०—तिया माऊ रा तन खिस्या पंडर हुवा ज फेस ।—ढोला०, पृ० ४४२

तनक^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते हैं ।

तनक^२—वि० [हि०] दे० 'तनिक' । उ०—अपही देखे नवल किशोर । घर आवत ही तनक भसे हैं ऐसे तन के चोर—सुर (शब्द०) ।

तनकना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना' ।

तनकीद—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीद] १. भालोचना । २. परख । [क्रि०] ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनकीह] १. जाँच । खोज । तहकीकात । २. न्यायालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में विचारणीय और विवादास्पद विषयों को ढूँढ़ निकालना । भदालत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके लिये वह मुकदमा चलाया गया हो और जिनका फैसला होना जरूरी हो ।

विशेष—भारत में दोबानी भदालतों में जब कोई मुकदमा दायर होता है, तब पहले उसमें भदालत की ओर से एक तारीख पड़ती है । उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील बहुस करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचारणीय बातों को जानने में सहायता मिलती है । उस समय हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है । उन्ही बातों को ढूँढ़ बिकालना और उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है ।

तनककना^१—क्रि० वि० [हि० तनक] दे० 'तनिक' । उ०—रहे तनक पोरि जाय फेरि भगि हल्लिय ।—ह० रासो, पृ० ३१ ।

४-४४

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] वह धन जो प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य में मिलता है । वेतन । तलब ।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा०] वह जो तनखाह पर काम करता हो । तनखाह पानेवाला नौकर । वेतनभोगी ।

तनखाह—संज्ञा स्त्री० [फा० तनखाह] दे० 'तनखाह' ।

तनखाहदार—संज्ञा पुं० [फा० तनखाहदार] दे० 'तनखाहदार' ।

तनगना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तनकना' । उ०—अनतहि बसत अनत ही डोलत भावत किरिन प्रकास । सुनहु सुर पुनि तो कहि भावे तनगि गए ता पास ।—सुर (शब्द०) ।

तनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर ढँकने का मामूली वस्त्र । उ०—सई तनगरी तोरि के सु हरि बोली हरि बोस ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ३१७ ।

तनज—संज्ञा पुं० [प्र० तज] १. ताना । २. मजाक ।

तनजीम—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनजीम] अपने वगों को संघटित करना । संघटन [क्रि०] ।

तनजील—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनजील] १. आतिथ्य करना । २. उतारना [क्रि०] ।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फा० तनजेब] एक प्रकार का बहुत ही महीन बड़िया सूती कपड़ा । महीन चिकनी मलमल ।

तनज्जुल—संज्ञा पुं० [प्र० तनज्जुल] तरबकी का उलटा । भवनति । उतार । घटाव ।

तनज्जुली—संज्ञा स्त्री० [प्र० तनज्जुल + फा० ई (प्रत्य०)] भवनति । उतार । तरबकी का उलटा ।

तनतनहा—क्रि० वि० [हि० तन + फा० तनहा] विसकुल भकेला । जिसके साथ और कोई न हो । जैसे,—वह तनतनहा दुश्मन की छावनी से चला गया ।

तनतना—संज्ञा पुं० [हि० तनतनाना या प्र० तनतनह] १. रोबदाव । दबदबा । २. क्रोध । गुस्सा । (वच०) ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

तनतनाना—क्रि० प्र० [प्रनु० या प्र० तनतनह] १. दबदबा दिखलाना । डान दिखाना । २. क्रोध करना । गुस्सा दिखलाना ।

तनत्राण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो । २. कवच । बखतर ।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'तदेही' ।

तनधर—संज्ञा पुं० [सं० तनु + धर] दे० 'तनुधारी' ।

तनधारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुधारी' ।

तनना^१—क्रि० प्र० [सं० तन या तनु] १. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का इस प्रकार भागे की ओर बढ़ना जिसमें उसके मध्य भाग का भोल निकल जाय और उसका विस्तार कुछ बढ़ जाय । भटके, खिंचाव या खुरकी आदि के कारण किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना । जैसे, चादर या चादनी तनना, धाव पर की पपड़ी तनना । २. किसी चीज का जोर से किसी

घोर खिचना। प्राकषित या प्रवृत्त होना। ३ किसी चीज का प्रकटकर सीधा खड़ा होना। जैसे,—यह पेड़ कल झुक गया था, पर छाज पानी पाते ही फिर तन गया। ४ कुछ प्रमिमान-पूर्वक रुष्ट या उदासीन होना। ऐंठना। जैसे,—इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

तनना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तानना'। उ०—ग्रहपथ के धालोक-वृत्त से काषजास तनता अपना।—कामायनी, पृ० ३४।

तनना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ताना] वह रस्सी जिससे तानने का कार्य किया जाता है।

तनपात(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनुपात'।

तनपोषक—वि० [सं० तन + पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे। स्वार्थी।

तनवाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जिसका नाम महा-भारत में आया है।

तनमय—वि० [सं० तन्मय] दे० 'तन्मय'। उ०—अपनो अपनो भाव सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे।—सूर (शब्द०)।

तनमात्रा(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तन्मात्रा] दे० 'तन्मात्रा'।

तनमानसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका।

तनय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। सड़का। २. जन्मलग्न से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र भाव देखा जाता है।

तनया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़की। बेटो। पुत्री। २. पिठबन लता।

तनराग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तनु + राग] दे० 'तनुराग'।

तनरुह(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तनूरुह] दे० 'तनूरुह'। उ०—द्वरपर्वत चर भ्रमर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई।—तुलसी (शब्द०)।

तनवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भौतिकवाद। शरीर को मुख्य माननेवाला सिद्धांत। उ०—वह ठेठ तनवाद और कर्मवाद है।—मुख्या, पृ० १६१।

तनवाना—क्रि० सं० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। तनाना।

तनवाल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

तनसल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक। बिल्वोर।

तनसिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उरोज। उ०—सब गनना चित चोर सों, बनी सुनत यह बोल। भरके तनसिज तरनि के, फरके बोल कपोल।—स० सप्तक, पृ० २४२।

तनसीख—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तनसीख] रद्द करना। नातिथ करवा। नाजायज करना। मसूखी।

तनसुख—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तन + सुख] तजेब या पट्टी की तरह का एक प्रकार का बड़िया फूलदार कपड़ा। उ०—(क) तनसुख सारी लहरी भंगिया मतलस मतरोटा छवि चारि चारि चूरी पहुंचीनि पहुंची छमकी बनी अकफूल जेब मुख बीरा चौके कोवे चंद्रम झूली।—हरिदास (शब्द०)। (ख) कोमलता पर रसास तनसुख की सेज सलज मनहूँ सोम सूरज पर सुधाबिडु बरये।—

तनहा^१—वि० [प्रा०] १. जिसके संग कोई न हो। बिना साथी का। अकेला। एकाकी। २. रिक्त। खाली (को०)।

तनहा^२—क्रि० वि० बिना किसी संगी साथी का। अकेले

तनहाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. तनहा होने की दशा या भाव। २. वह स्थान जहाँ घोर कोई न हो। एकांत।

यौ०—तनहाई कैद।

तना^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० तनह] ब्रह्म का जमीन से ऊपर निकला हुआ वहाँ तक का भाग जहाँ तक आलियाँ न निकली हों। पेड़ का धड़। मंदल।

तना^२—क्रि० वि० [हि० तन] घोर। तरफ। दे० 'तन'। उ०—नील पट भूपटि लपेटि छिगुनी पै घरि डेरि डेरि कहैं होस हेरि हरिज तना।—देव (शब्द०)।

तना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तन] शरीर। जिस्म। उ०—तना सुख में पठा तब से गुरु का शुक्र क्यों भूला।—कबीर म०, पृ० १४३।

तनाई—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव'।

तनाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव'।

तनाउ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तनाव'। उ०—फटिक छरी सी किरन कुंजरंघनि जब आई। मानो बितनु बितान सुखेस तनाउ तनाई।—नंद० प्र०, पृ० ७।

तनाउल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तनावुल] भोजन करना। उ०—दुधर को खासा तनाउल फमनि को नावक्त हुमा जाता है।—प्रेमघन०, पृ० ८५।

तनाऊ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव'।

तनाक—वि० [हि०] दे० 'तनिक'। उ०—दर, स्तोक, ईश्वर, प्रलय, रंचक, मद, मनाक। तब प्रिय सहचरि तन चिते, सुसकी कुंभरि तनाक।—नंद० प्र०, पृ० १००।

तनाकु(७)—वि० [हि०] दे० 'तनिक'।

तनाजा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तनाजम] १. बसेड़ा। झगडा। टटा। दंगा। संघर्ष। फसाद। २. मदावत। कसाकस। शत्रुता। वैर। वैमनस्य।

तनाना—क्रि० सं० [हि० तानना का प्रे० रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। उ०—कलस चरन तोरन ध्वजा सुवितान तनाए।—तुलसी (शब्द०)।

तनाबा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तनाब] १. खेमे की रस्सी। २. बाजी-गरों का रस्सा जिसपर वे चलते तथा दूसरे खेल करते हैं।

यौ०—तनाबे प्रमस=(१) प्राणा रूपी डोर। (२) प्राणा।

तनाबे उम्र=प्रायुसूत्र। प्रायु। जीवनकाल।

तनाय(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तनाव'।

तनाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तनाव] १. तानने का भाव या क्रिया। २. वह रस्सी जिसपर घोड़ी कपड़े सुखाते हैं। ३. रस्सी। डोरी। जेवरी। रज्जु।

तनासुख—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तनासुख] आनंदमय [स्त्री०]।

तनि^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तनिक'। उ०—तनि सुख तो बढ़ियत
हुती हरे विष विविहि मनाय। मली भई जो सखि भयो
मोहन मयुरे धाय।—रसनिधि (शब्द०)।

तनि^२—अभ्य० तरफ। मोर।

तनि^३—सङ्ग पु० [सं० तनु] शरीर। देह।

तनिक^१—वि० [सं० तनु (=मल्प)] १ थोड़ा। कम। २ छोटा।
उ०—इहाँ हुती मेरी तनिक मझिया को रुप धाई छव्यो।—
सूर (शब्द०)।

तनिक^२—क्रि० वि० जरा। टुक।

तनिका^१—सङ्ग औ० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज बाँधी जाय।

तनिका^२—सर्व० [हि० तिनका] उसका। उ०—भनइ विद्यापति
कवि कठहार। तनिका दोसर काम प्रहार।—विद्या-
पति०, पु० २८।

तनिमा—सङ्ग औ० [सं० तनिमन्] १ कुशता। २ नजाकत।
उ०—तनिमा ने हर खिया तिमिर, भगों में खदरी फिर फिर,
तनु में तनु प्रारति सी स्थिर, प्राणों की पावनता बन।—
गीतिका, पृ० ९६।

तनियाँ—सङ्ग औ० [हि० तनी] १. लँगोटा। लँगोटी। कीपीन। २.
कछनी। जाँघिया। उ०—तनिया ललित कठि विभिन्न टिपारो
सोस मुनि मग हुरत बचन कहै तोतरात।—गुप्तसी (शब्द०)।
३. चोली। उ०—तनियाँ न तिलक सुधनियाँ पगनियाँ न घामे
धुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।—भूषण (शब्द०)।

तनिष्ठ—वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला, छोटा या कमजोर हो।

तनिसाँ—सङ्ग पु० [दे०] पुमाल।

तनी^१—सङ्ग औ० [सं० तनिका, हि० तानना] १. डोरी की तरह
बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो भँगरसे, चोली धादि में
उनका पल्ला तानकर बाँधने के लिये सपाया जाता है। बर।
बंधन। उ०—कंधुकि ते कुषकलस प्रगट हूँ दृष्टि न ठरक
तनी।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'तनियाँ'।

तनी^२—क्रि० वि० [सं० तनु] दे० 'तनिक'।

तनी^३—वि० दे० 'तनिक'।

तनीदार—वि० [हि० तनी + दार] तनी या बंदवाला।

तनु^१—वि० [सं०] १. कम। दुबला पतला। २. मल्प। थोड़ा। कम।
३. कोमल। नाजुक। ४. सुंदर। बढ़िया। ५. तुच्छ (को०)।
६. छिछला (को०)।

तनु^२—सङ्ग औ० [सं०] १ शरीर। देह। बदन। २. चमड़ा। छाल।
त्वक्। ३. स्त्री। शरीर। ४. कँधुली। ५. ज्योतिष में लग्न-
स्थान। जन्मकुंडली में पहला स्थान। ६. योग में अस्मिता,
राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद
जिसमें चित्त में क्लेश की प्रवृत्ति होती है, पर साधन
या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती।

तनुक^१—वि० [सं० तनु + क (प्रत्यय)] दे० 'तनिक'।

तनुक^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तनिक'।

तनुक^३—सङ्ग पु० [सं० तनु] दे० 'तनु'।

तनुक^४—वि० [सं०] १. पतला। क्षीण। कम। २. छोटा (को०)।

तनुकूप—सङ्ग पु० [सं०] रोमछिद्र (को०)।

तनुकेशी—सङ्ग औ० [सं०] सुंदर बालोंवाली स्त्री (को०)।

तनुक्षय—सङ्ग पु० [सं०] कौटिल्य मर्यादासूत्र के अनुसार वह लाभ जो
मन्त्र मात्र से साध्य हो।

तनुक्षीर—सङ्ग पु० [सं०] घामड़े का पेड़।

तनुगृह—सङ्ग पु० [सं०] अश्विनी नक्षत्र (को०)।

तनुच्छद—सङ्ग पु० [सं०] कवच। बखतर।

तनुच्छाय^१—सङ्ग पु० [सं०] छाल बहल का पेड़।

तनुच्छाय^२—वि० मल्प या कम छायावाला (को०)।

तनुज—सङ्ग पु० [सं०] १ पुत्र। बेटा। लड़का। २ जन्मकुंडली
में लग्न से पाँचवाँ स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है।

तनुजा—सङ्ग औ० [सं०] कन्या। लड़की। पुत्री। बेटो।

तनुता—सङ्ग औ० [सं०] १. लघुता। छोटाई। २. दुर्बलता।
दुबलापन। कुशता।

तनुत्याग—वि० [सं०] कम खर्च करनेवाला। कृपण (को०)।

तनुत्र—सङ्ग पु० [सं०] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्राण—सङ्ग पु० [सं०] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो।
२. कवच। बखतर।

तनुत्रान(७)—सङ्ग पु० [सं० तनुत्राण] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्वचा^१—सङ्ग औ० [सं०] छोटी भरणी।

तनुत्वचा^२—सङ्ग औ० जिसकी छाल पतली हो।

तनुदान—सङ्ग औ० [सं०] भगवान। शरीरदान (समोग के लिये)।

तनुधारी—वि० [सं०] शरीरधारी। देहधारी। शरीर धारण करने-
वाला। उ०—कहहु सखी भस को तनुधारी। जो न मोह
येहु रूप निहारी।—मानस, १।२२१।

तनुधी—वि० [सं०] क्षीणमति। मल्पबुद्धि (को०)।

तनुपत्र—सङ्ग पु० [सं०] गोंदनी या गोंदी का पेड़। इंगुमा वृक्ष।

तनुपात—सङ्ग पु० [सं०] शरीर से प्राण निकलना। मृत्यु। मोत।

तनुपोषक—सङ्ग पु० [सं०] वह जो अपने ही शरीर या परिवार का
पोषण करता हो। स्वार्थी। उ०—तनुपोषक नारि नरा
सगरे। परनिहक जे जग भौ बगरे।—मानस, ७।१०२।

तनुप्रकाश—वि० [सं०] छुँधले या मद प्रकाशवाला (को०)।

तनुबीज^१—सङ्ग पु० [सं०] राजबेर।

तनुबीज^२—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुभव—सङ्ग पु० [सं०] [औ० तनुभवा] पुत्र। बेटा। लड़का।

तनुभस्त्रा—सङ्ग औ० [सं०] नासिका। नाक (को०)।

तनुभूमि—सङ्ग औ० [सं०] बौद्ध आदि के जीवन की एक अवस्था।

तनुभृत्—वि० [सं०] देहधारी, विशेषतः मनुष्य (को०)।

तनुमत्—वि० [सं०] १. समाहित। सन्निहित। २. शरीर युक्त।
शरीरवाला।

तनुमध्य—सङ्ग पु० [सं०] कमर वा कटि (को०)।

तनुमध्य—वि० क्षीण कटि या कमरवाला (को०)।

तनुमध्यमा—वि० [सं०] पतली कमरवाली (को०)।

तनुमध्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक वणुवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और यगण (SS1—SS) होता है। इसको चौरस भी कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि माली, घुमै मतवाली।—(शब्द०)।

तनुरस—सङ्घा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग—सङ्घा पुं० [सं०] १. केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अंगूर आदि को मिलाकर बनाया हुआ उबटन। २. वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उबटन बनाया जाता है।

तनुरुह—सङ्घा पुं० [सं०] रोम। रोम।

तनुल—वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ [को०]।

तनुलता—सङ्घा स्त्री० [सं०] लता सद्यः सुकुमार पतला शरीर [को०]।

तनुवात—सङ्घा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो। २. एक नरक का नाम।

तनुवार—सङ्घा पुं० [सं०] कवच। वस्त्रतर।

तनुबीज—सङ्घा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुबीज^२—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुव्रण—सङ्घा पुं० [सं०] बह्मीक रोग। फोलपाँव।

तनुशिरा^१—सङ्घा पुं० [सं०] तनुशिरस [एक वैदिक छंद।

तनुशिरा^२—वि० छोटे सिरवाला [को०]।

तनुसर—सङ्घा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनु—सङ्घा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. शरीर। ३. प्रजापति। ४. गौ। पाय। ५. अग्न। अवयव [को०]।

तनुज—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'तनुज'।

तनु^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'तनुजा'।

तनु^२—सङ्घा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

तनु^३—सङ्घा पुं० [सं०] तनुजन्मन् [पुत्र [को०]।

तनु^४—सङ्घा पुं० [सं०] लबाई की एक माप जो एक हाथ के बराबर थी [को०]।

तनु^५—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तनुताप' [को०]।

तनूतप—सङ्घा पुं० [सं०] घृत। घी।

तनूनपात् तनूनपाद्—सङ्घा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. चीते का वृक्ष। चीता। चीतावर। चित्रक। ३. प्रजापति के पोते का नाम। ४. घी। घृत। ५. मक्खन।

तनूनप्ता—सङ्घा पुं० [सं०] तनूनपत् [वायु [को०]।

तनूपा—सङ्घा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि।

तनूपान—सङ्घा पुं० [सं०] वह जो शरीर की रक्षा करता है। अवरक्षक।

तनूपृष्ठ—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर—सङ्घा पुं० [फ़ा०] खमीरी रोटी पकाने की गहरी बहरनुभा भट्टी। चूँदूर।

तनूरुह—सङ्घा पुं० [सं०] १. रोम। लोम। रोम। २. पक्षियों का पर। पख। ३. पुत्र। लड़का। बेटा।

तनी—सङ्घा पुं० [हिं०] तनी की ओर। की तरफ।

तनेनना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तानना'। उ०—तू इत बैठी भौंह तनेनत नहि सोहाव मोहि यह खूखो कलि।—भा० प्र०, भा० १, पृ० ४८३।

तनेना—वि० [हिं०] तनना + एना (प्रत्य०) [वि० स्त्री० तनेनी] १. खिंचा हुआ। टेढ़ा। तिरछा। उ०—वात के बूझत ही मतिराम कहा करती भव भौंह तनेनी।—मतिराम (शब्द०)। २. कुद्ध। जो नाराज हो। उ०—माली हों गई ही भाजु भुमि वरसाने कहूँ तापे तू परे है पचाकर तनेनी बयो।—पचाकर (शब्द०)।

तनै^१—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तनय'।

तनै^२—वि० [हिं०] तन (=ओर, तरफ) [तई] लिये। उ०—दोउ जंघ रभ कंचन दिपत, थरी कमल हाटक तनी।—ह० रासो, पृ० २५।

तनैना^३—सङ्घा पुं० [हिं०] [वि० स्त्री० तनेनी] दे० 'तनेना'। तना हुआ। खिंचा हुआ।

तनैया^४—सङ्घा स्त्री० [सं०] तनया [पुत्री]। बेटो। कन्या। लड़की।

तनैया^५—वि० [हिं०] तानना + ऐया (प्रत्य०) [ताननेवाला]।

तनैला—सङ्घा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं।

तनो—वि० [हिं०] तन (=तरफ) [तई] के लिये। वास्ते। उ०—नहि तनूँ सेख को प्रण करिव, सरन घरम छत्रिय तनो।—ह० रासो, पृ० ५७।

तनोआ^६—सङ्घा पुं० [हिं०] तानना [१. वह वस्त्र जिसे तानकर छाया की जाती है। २. चंदोआ।

तनोजा^७—सङ्घा पुं० [सं०] तनूज [१. रोम। लोम। रोम। उ०—अंग थरहरे बयो भरे खरे तनोज पसेव।—शृ० सत० (शब्द०)। २. लड़का। बेटा।

तनोरुह^८—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तनूरुह'।

तनोवा—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तनोआ'।

तन्ना—सङ्घा पुं० [हिं०] तानना [१. बुनाई में ताने का सूत जो लबाई में ताना जाता है। २. वह जिसपर कोई चीज तानी जाय।

तन्नाना^९—क्रि० प्र० [हिं०] तनना [अकड़ना। पेंठना। अकड़ दिखाना। बिगड़ना। क्रुद्ध होना।

तन्नि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. पिठवन। २. काश्मीर की चत्रतुल्या नदी का नाम।

तन्नी^{१०}—सङ्घा स्त्री० [सं०] तनिका, हिं० तानना या तनी [१. तराजू में जोती की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराजू के पल्ले लटकते हैं। जोती। २. एक प्रकार की भेंकुसी जिससे सोहें की मेल खुरचते हैं। ३. जहाज के मस्तूल की जड़ में बंधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ाते हैं (शब्द०)]।

तन्त्री^२—सद्या पुं० [हि० तरनी] किसी व्यापारी जहाज का वह भ्रमसर जो यात्राकाल में उसके व्यापार सबधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

तन्त्री^३—सद्या पुं० [हि०] दे० 'तरनी'।

तन्मनस्क—वि० [सं०] तन्मय। तल्लीन [को०]।

तन्मय—वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलीन। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कवहें कहति कौन हरि को मैं यों तन्मय हूँ जाही।—सूर (शब्द०)।

तन्मयता—सद्या स्त्री० [सं०] लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदाकारता। लगन।

तन्मयासक्ति—सद्या स्त्री० [सं०] भगवान् में तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भुल जाना और अपने को भगवान् ही समझना।

तन्मात्र—सद्या पुं० [सं०] सास्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष मूल। पंचभूतों का मादि, अग्निश्च और सूक्ष्म रूप। ये सख्या में पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विशेष—सास्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार पहले प्रकृति से महत्त्व की उत्पत्ति होती है। महत्त्व से अहंकार और अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों, एक मन और पाँच तन्मात्र हैं। इनमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श दो तन्मात्रों से वायु उत्पन्न होती है और शब्द तथा स्पर्श दोनों ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है और जिसमें ये चारों गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमें ये पाँचों गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—सद्या स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

तन्मात्रिका—सद्या स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्रा'। वेदात् शास्त्र की एक सज्ञा। पाँच विषयों की पाँच तन्मात्राएँ। उ०—इति तन्मात्रिका सहेता। ये पंच विषय की होता।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ६७।

तन्मूलक—वि० [सं०] उससे निकला हुआ [को०]।

तन्मय—वि० [हि०] तनना। तानने या खींचने योग्य।

तन्मय—सद्या पुं० [सं०] १ वायु। हवा। २ रात्रि। रात। ३ गर्जन। गरजना। ४ प्राचीन काल का एक प्रकार का राजा।

तन्मय—वि० [सं०] तन्मय। सुकुमार या स्त्रीण शरीरवाला [को०]।

तन्मयिनी—वि० स्त्री० [सं०] तन्मयी। उ०—विवसना लता सी, तन्मयिनि, निजंन में क्षणभर की सगिनि।—युगांत, पृ० ३७।

तन्मयी—वि० [सं०] तन्मयी। कुशाग्री। दुबली पतली।

तन्मि—सद्या स्त्री० [सं०] काश्मीर की चद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्मिनी—सद्या स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मयी'।

तन्मी^१—सद्या स्त्री० [सं०] १. एक घृत का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से भगण, तणण, नगण, सगण, भगण, यगण नगण और यगण (शा-सश-लल-लस-शा-शा-लल-लस) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें प्रक्षर पर यति होती है। २ कोमलाग्री। कुशाग्री [को०]।

तन्मी^२—वि० दुबले पतले और कोमल अर्गोवाली। जिसके भंग कुण और कोमल हों।

तप.कर—सद्या पुं० [सं०] १ तपस्वी। २ तपसी मछली।

तप.कृश—वि० [सं०] तप से क्षीण।

तप.पूत—वि० [सं०] तपस्या करके जो शरीर एवं मन से पवित्र हो गया हो [को०]।

तप.प्रभाव—सद्या पुं० [सं०] तप द्वारा की हुई शक्ति [को०]।

तप.भूत—वि० [सं०] तपस्या द्वारा, आत्मशुद्धि प्राप्त करनेवाला [को०]।

तप.साध्य—वि० [सं०] जो तप द्वारा सिद्ध हो [को०]।

तप.सुत—सद्या पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

तप.स्थल—सद्या पुं० [सं०] तप करने का स्थान। तपोभूमि [को०]।

तप.स्थली—सद्या स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

तप—सद्या पुं० [सं०] तपस् १. शरीर को कष्टदेने वाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायें। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों, यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से ऐसे लोग हुआ करते थे जो अपनी इन्द्रियों को बंध में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये, अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहाँ वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना लेते थे और कद मूल आदि खाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करते रहते थे। कभी वे लोग मौन रहते, कभी गरमो सरदी सहते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि में इस प्रकार के तपो और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी किसी अभीष्ट की सिद्धि या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को लाने के लिये भगीरथ का तप, शिव जी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पार्तजल दर्शन में इसी तप को क्रियायोग कहा है। गीता के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अवगंत हैं, सत्य और प्रिय बोलना, वेदशास्त्र का पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मोनावलंब, आत्मनिग्रह आदि की गणना मानसिक तप में है।

२. शरीर या इन्द्रिय को बंध में रखने का धर्म। ३. नियम।

४. माघ का महोवा। ५. ज्योतिष में लग्न से नवाँ स्थान।

६ अग्नि । ७ एक कल्प का नाम । ८ एक लोक का नाम ।
वि० दे० 'तपोलोक' ।

तप²—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. ताप । गरमी । २. ग्रीष्म ऋतु । ३.
बुखार । ज्वर ।

तपकना(५)—क्रि० प्र० [हि० टपकना या तपकना] १. घड़कना
उछलना । उ०—रतिया झेंधेरी धीरे न तिया धरति मुख
धतिया कड़ति सठे छतिया तपकि तपकि ।—देव (शब्द०)
२. दे० 'टपकना' ।

तपचाक—सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक तरह का चुर्की घोड़ा ।

तपच्छद्—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'तपनच्छद्' ।

तपड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. ढूढ़ । छोटा टीखा । २. एक प्रकार का
फल जो पकने पर पीलापन लिए साख रंग का हो जाता है ।
यह जाड़े के मस में बाजारी में मिलता है ।

तपती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन²' ।

तपति—वि० [देश०] ढूढ़ी । वृद्ध । उ०—भोग रहे भरपूर प्रायु यह
बोति गई सब । तप्यो नाहि तप मूढ़ भवस्था तपति भई
प्रब ।—ब्रज० प्र०, पु० १०६ ।

तपती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या
का नाम ।

विशेष—यह छाया के गर्न से उत्पन्न हुई थी । सूर्य ने कुम्बखी
संवरण की सेवा प्रादि से प्रसन्न होकर तपती का विवाह
उन्हीं के साथ कर दिया था ।

तपतोदक(५)—सञ्ज्ञा पु० [सं० तप + उदक] गरम पानी । उ०—यह
तीनों रसज्वर के नेती । पीस लिए तपतोदक सेती ।—ईशा०,
पु० १५२ ।

तपन¹—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. तपने की क्रिया या भाव । ताप ।
जलन । भाँच । दाह । २. सूर्य । धातितप । रवि । ३. सूर्य-
कांत मणि । सुरजमुखी । ४. ग्रीष्म । परमी । ५. एक
प्रकार की अग्नि । ६. पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही
शरीर जलता है । ७. धूप । ८. भिखावे का पेड़ । ९. मदार ।
भाक । १०. भरनी का पेड़ । ११. वह क्रिया या हाव भाव
प्रादि जो नायक के वियोग में नायिका करे या दिखलावे ।
इसकी गणना भलकार में की जाती है ।

यौ०—तपनयोवन=सूर्य का पोवन । सूर्य की प्रखरता ।
उ०—प्रखर से प्रखरतर हुआ तपनयोवन सहसा ।—अपरा,
पु० ६१ ।

तपन²—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तपना] तपने की क्रिया या भाव । ताप ।
जलन । गरमी ।

मुहा०—तपन का महोना=वह महोना जिसमें गरमी खूब
पड़ती हो । गरमी ।

तपनकर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपनच्छद्—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मदार का पेड़ ।

तपनतनय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्य के पुत्र—यम, कर्ण, शनि, सुधीव प्रादि ।

तपनवनया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी वृक्ष । २. यमुना नदी ।

तपनमणि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपनाशु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्य की किरण । रश्मि ।

तपना¹—क्रि० प्र० [सं० तपन] १. बहुत अधिक गर्मी, भाँच या
धूप प्रादि के कारण खूब गरम होना । घत होना । उ०—
निज मस समुक्ति न कुछ कहि जाई । तपइ मवी हव उर
अधिकार्द्ध ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—रसोई तपना=दे० 'रसोई' के मुहाविरे ।

२. संवत होना । षष्ठ सहना । मुसीबत भेलना । जैसे,—हम
घंटों से यहाँ प्राप के प्रासरे तप रहे हैं । उ०—सीप सेवाति
कहे तपइ समुद मोंक नीर ।—जायसी (शब्द०) । ३. तेज
या ताप धारण करना । गरमी या ताप फैलाना । उ०—
जइस भानु जप ऊपर तापा ।—जायसी (शब्द०) । ४.
प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना । प्रताक फैलाना ।
जैसे,—प्राजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं । उ०—
(क) घेरसाहि दिल्ली सुलतान । चारिउ खंड तपइ जस
भानु ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कर्मकान, गुन, सुमाउ
सबके सीस तपत ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपना²—क्रि० प्र० [सं० तप] तपस्या करना । तप करना ।

तपनाराधना—सञ्ज्ञा पु० [सं०] तपस्या (की) ।

तपनि(५)¹—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपन' ।

तपनी¹—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तपना] १. वह स्थान जहाँ बैठकर लोग
प्राप तापते हों । कोड़ा । भलाव ।

क्रि० प्र०—तापना ।

२. तपस्या । तप । ३. तपन (की) ।

तपनी²—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी । २. पाठा सता (की) ।

तपनीय¹—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सोता ।

तपनीय²—वि० तपने या तापने योग्य (की) ।

तपनीयक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'तपनीय' ।

तपनेष्ट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ताँबा ।

तपनोपल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

तपभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तपस् + हि० भूमि] दे० 'तपोभूमि' ।

तपराशि—सञ्ज्ञा पु० [सं० तपोराशि] दे० 'तपोराशि' ।

तपरासी(५)—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'तपोराशि' । उ०—ब्रह्म के
उपासी तपरासी बनबासी वर विपुल मुनीश्वर के प्राश्रम
सिंभायो मैं ।—राम० धर्म०, पु० २६० ।

तपलोक—सञ्ज्ञा पु० [सं० तपोलोक, हि०] दे० 'तपोलोक' ।

तपबाना—क्रि० प्र० [हि० तपाना का प्रे० रूप] १. गरम करवाना ।
तपाने का काम दूसरे से कराना । २. किसी से व्यर्थ व्यर्थ
कराना । प्रनावश्यक व्यय कराना ।

तपवृद्ध(५)—वि० [सं० तपोवृद्ध, हि०] दे० 'तपोवृद्ध' ।

तपशील—वि० [सं० तप शील] तपस्या करनेवाला (की) ।

तपश्चरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] तप । तपस्या ।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या । तपश्चरण ।

तपस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा । २. सूर्य । ३. पक्षी ।

तपस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस] तप । तपस्या । उ०—न्याय, तपस, ऐश्वर्य में परे, ये प्राणी चमकीले लगते । इस निदाघ मरु में सुखे से, स्रोतों के तह जैसे जगते ।—कामायनी, पृ० २७० ।

तपसा^३—संज्ञा पुं० तपस्वी ।

तपसनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—काम कुमत्तो चपनी दीय तपसनी साप । नीसल दे बुधि चल विचल प्रगटि पुख को पाप ।—पृ० रा०, १।४६५ ।

तपसरनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तपस्विनी' । उ०—मय दिवाह पाहुट्ट दुति तपसरनी की कोप । जल बेली बिहू बाग त्रिय । ते जिन भय प्रलोप ।—पृ० रा०, १।५०७ ।

तपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] १. तपस्या । तप । २. तापती मदी का दूसरा नाम जो बैतुज के पहाड़ से निकलकर अंधात की खाड़ी में गिरती है ।

तपसालि^④—संज्ञा पुं० [हि० तप + साली] दे० 'तपसाली' ।

तपसाली—संज्ञा पुं० [सं० तप.शासिण] वह जिसने बहुत तपस्या की हो । तपस्वी । उ०—प्राण मुनिवर निकर तब कोबिकादि तपसालि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तपसी—संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला । तपस्वी । उ०—तपसी तुमको तप करि पावें । मुनि भाषवत गृही गुज गावें ।—सूर (शब्द०) ।

तपसी मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिशत संबो एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह बंगाल की खाड़ी में होती है । बैसाख या जेठ के महीने में बड़े बड़े के लिये यह नदियों में बली जाती है ।

तपसोमर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णि के सप्तपियों में से एक ।

तपस्तत्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

तपस्तति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तपस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंभ पुष्प । २. तपस्या । तप । ३. हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम । ४. फागुन का महीना । ५. मजुन ।

विशेष—मजुन का एक नाम फाल्गुन भी था, इसीलिये तपस्य भी मजुन का एक नाम हो गया ।

तपस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तप । तपश्चर्या । २. फागुन मास । ३. दे० 'तपसी मछली' ।

तपस्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी ।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने । तपस्या या भाव ।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री । २. तपस्वी की स्त्री । ३. पतिव्रता या सती स्त्री । ४. जटा-माती । ५. वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान का पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक

अपना जीवन बितावे । ६. दीन और दुखिया स्त्री । ७. बड़ी गोरखमुंड़ी । ८. कुटकी । कटुरोहिणी ।

तपस्विपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष । दोने का पेड़ ।

तपस्वी^१—संज्ञा पुं० [सं० तपस्विण] [स्त्री० तपस्विनी] १. वह जो तप करता हो । तपस्या करनेवाला । २. दीन । ३. दया करने योग्य । ४. धीकृपार । ५. तपसी मछली । ६. तपसोमूर्ति का एक नाम ।

तपस्स^②—संज्ञा पुं० [सं० तपस] दे० 'तपस्वी' । उ०—धर्मकी धरा धर्म धर्म धरकी । कठं पिठु कंमटु गट्टु करकी । डिये महुगं सो दिगपाल दसं । तरकके बके मुनि जंन तपस्स ।—पृ० रा०, ६।१११ ।

तपा^३—संज्ञा पुं० [हि० तप] तपस्वी । उ०—मठ मंडप चहुँपास सँवारे । तपा जपा सब घासन मारे ।—जायसी (शब्द०) ।

तपा^२—वि० तप में मग्न । जो तपस्या में लीन हो । उ०—फेरे मेख रहै धा तपा । धूरि भपेठा मानिक छपा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाक—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. आवेश । जोश । जैसे,—घाटे ही यह बड़े तपाक से बोला ।

मुहा०—तपाक बदसना = नाराज होना । बिगड़ जाना । तेवर बदसना ।

२. बेग । तेजी ।

तपात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म का अंत या वर्षाकाव । बरसात ।

तपानल—संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज । वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो ।

तपाना—क्रि० सं० [हि० तपना] १. बहुत अधिक गर्मी, प्राण, धूप आदि की सहायता से गरम करना । तप्त करना । २. संतप्त करना । दुःख देना । क्लेश देना । ३. तप करके शरीर को कष्ट देना । तप करने में शरीर को प्रयुक्त करना ।

तपायमान—वि० [सं० तप] तप्त । हुआ । उ०—एक काल में शृगु की स्त्री जात रही थी, तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ ।—योग०, पृ० ७ ।

तपारी—संज्ञा पुं० [हि०] तपस्वी [स्त्री०] ।

तपावन्त—संज्ञा पुं० [हि० तप + वन्त (प्रत्य०)] तपस्वी । तपसी । वह जो तपस्या करता हो । उ०—तपावन्त छाया लिखि दीन्हा । बेग चलाव चहुँ सिधि कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।

तपाव—संज्ञा पुं० [हि० तपना + भाव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव । गरमाहट । ताप ।

तपावस^④—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तपस्या' । उ०—करै तपावस प्रबली भापे । उग्मन कालु कच मारे भापे ।—प्राण०, पृ० २२७ ।

तपित^⑤—वि० [सं०] तपा हुआ । गरम । तप्त ।

तपिय—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तपी' । उ०—सुनत बखान कलिबर ईसु । तपिय भरव पर डारेड सीसु ।—ईशा०, पृ० १६ ।

तपिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्यभारत, बंगाल तथा आसाम में होता है ।

विशेष—इसकी छाल तथा पत्तियाँ मोषध के काम में आती हैं। इसे बिरमी भी कहते हैं।

तपिश—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] गरमी। तपन। प्रांच। ताव।

तपी—संज्ञा पुं० [हिं० तप + ई (प्रत्य०)] १. तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—घनवत् कुलीन मलीन मपी। द्विज चीन्ह अनेउ उधार तपी।—भावस, ७।१०। २. सूर्य (हिं०)।

तपीसर०—वि० [सं० तपीश्वर] तपस्या करनेवाला। उ०—न सोहागनि महापवीत। तपे तपीसर डाले चीत।—कवीर ग्रं०, पृ० २८४।

तपु^१—संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] १. अग्नि। प्राग। २. सूर्य। रवि ३. शत्रु।

तपु^२—वि० १. तप्त। उष्ण। गरम। २. तापने या गरम करनेवाला।

तपुराम्र—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तपा या तपाया हुआ हो [को०]।

तपुराम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी या माला [को०]।

तपेदिक—संज्ञा पुं० [क्रा० तप + छ० दिक] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

तपेस्सा०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्या'।

तपोज—वि० [सं०] १. जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। २. जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का एक नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन।—(अश०)।

तपोदान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्यतीर्थ जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

तपोधुति—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मन्वन्तर के एक ऋषि [को०]।

तपोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तपस्या के प्रतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। तपस्वी। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृंद।—मानस, १।१०५। २. धीने का पेड़।

तपोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंढी।

तपोधनी—वि० [सं० तपोधनिन्] दे० 'तपोधन'। उ०—तपोधनी में जात कहायो। तै नहि जान्यो सन्मुख आयो।—शकुन्तला, पृ० १२।

तपोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधाम—संज्ञा पुं० [सं० तपोधामन्] १. तप करने का स्थान। २. एक प्राचीन तीर्थ [को०]।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोवन०—संज्ञा पुं० [सं० तपोवन] दे० 'तपोवन'।

तपोवत्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या से प्राप्त बल, तेज या शक्ति [को०]।

तपोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तपोभङ्ग] विघ्नादि के कारण तप का भंग होना [को०]।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. तपस्वी। ३. पुराणानुसार बारहवें मन्वन्तर के चौथे सावर्णि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तपोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोको में से ऊपर के सात लोको में से छठा लोक जो जनलोक और सत्य लोक के बीच में है।

विशेष—पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक तेजोमय है; और जो लोग अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके भी कृष्ण भगवान् को संतुष्ट करते हैं; वे इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मावतं देश।

तपोवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह एकान्त स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोवरण—वि० [देशी०] तप से च्युत कर देनेवाली। उ०—एक तेरी तपोवरण।—मर्चना, पृ० ३।

तपोवत्—संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध^१—वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोवृद्ध^२—संज्ञा पुं० बहुत बड़ा तपस्वी [को०]।

तपोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्या संबंधी व्रत। २. वह जिसने तपस्या का व्रत धारण कर लिया हो [को०]।

तपोशहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम २. तपसोमूर्ति का एक नाम।

तपोनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तापना] १. ठणो की एक रसम जो मुसाफिरों के गिरोह को लुट मार चुकने और उनका आन ले लेने पर होती है। इसमें सब ठग मिलकर देवी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ाकर उसी का प्रसाद मापस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपोनी का गुड़=(१) तपोनी की पूजा के प्रसाद का गुड़ जो किसी नए भादमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए भादमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

२. दे० 'तपनी'।

तप्त—वि० [सं०] १. तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। २. दुःखित। क्लेशित। पीड़ित।

यौ०—तप्त शरीर=जलती हुई देह। उ०—कभी यहाँ देखे जिनके, श्याम बिरह से तप्त शरीर।—अपरा, पृ० १०२।

तप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही [को०]।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुण्ड] वह प्राकृतिक जलधारा जिसका पानी गरम हो। गरम पानी का सोता या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खोलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, सोडा, अनेक प्रकार के सार) भी मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं, पर यूरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं, जिन्हें देखने तथा उनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग आते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है, उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त लाने, घल बढ़ाने या रक्तविकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुम्भ] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खोखले हुए तेल के कड़ाहे रहते हैं। उन्हीं कड़ाहों में दुराचारियों को यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकुच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाता है।

विशेष—इसमें व्रत करनेवालों को पहले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन पल गरम दूध, तथा तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज छह पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक गरम वायु सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करने से द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मत से यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन छह पल गरम जल पीना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाप—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता मानी जाती थी।

विशेष—इसमें लोहे या ताँबे के बरतन में घी या तेल खोलाया जात था और परीक्षार्थी उस खोखले हुए घी या तेल में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादि के क्षापे जो तपाकर वैष्णव लोग अपनी भुजा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। चक्रमुद्रा।

विशेष—यह धार्मिक चिह्न माना जाता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशुर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं।

विशेष—इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए सोहे के खने घालियन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तसुराकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्ता^१—संज्ञा पुं० [सं० तप्त] १. तथा। २. चट्टी। ३.—निदान कई गहरे और एक भारी तप्ता जलाकर आवश्यक कृत्य आरंभ हो जाता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५२।

तप्ता^२—वि० तप्त करनेवाला।

तप्ताभरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोने का गहना [को०]।

तप्तायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तप्तायनी' [को०]।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सताकर प्राप्त की जाय।

तप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप्त होने की अवस्था या भाव। गरमी। ताप [को०]।

तप्प^१—पुं० [हि० तप] दे० 'तप' उ०—साधक सिद्धि न पाय जो लहि साधन तप्प। सोई जानहि बापुरो सोस जो करहि कलप्प।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १२३।

तप्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तप्य^२—वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफकुर—संज्ञा पुं० [अ० तफकुर] १. चिता। फिक। २. भयाशंका। उ०—मेरी खुराक भागे से इस तफकुर में धाबी हो गई।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२२।

तफज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तफज्जुल] बढ़ाई। बढ़प्पन [को०]।

तफतीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तफतीश] छानबीन। खोज। गवेषणा। उ०—मैं सोझा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफतीश पर जाने को तैयार लड़े थे। मान०, पृ० ३५।

तफरीक—संज्ञा पुं० [अ० तफरीक] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डाखना।—पड़ना।

तफराका—संज्ञा पुं० [हि०] तमचा। उ०—होर मुसलमानों के मुँह पर तफराका मारना गुनाह कबोरा है।—बनिकनी०, पृ० ४०१।

तफरीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तफरीक] १. जुदाई। भिन्नता। मत-हदगी। २. बाकी निकासना। बटाना (गणित)।

क्रि० प्र०—निकासना।

३. फरक। अंतर। ४. बंटबारा। बाँट। बँटाई (कातून)।

तफरीह—संज्ञा स्त्री० [प्र० तफरीह] १ खुशी। प्रसन्नता। फरहत्।
२ दिव्यहवाय। बिस्लगी। हँसी। ठट्ठा। ३ हवाखोरी।
सेर। ताजापन। ताजगी।

तफरीहन्—कर्म० [प्र० तफरीहन्] १ मनवहवाय के लिये। २. हँसी
खेब के लिये [को०]।

तफर्का—संज्ञा पुं० [प्र० तफर्कह् या तफिकह्] १ फूट। परस्पर
विरोध। २ शत्रुता। दुश्मनी। ३ पुण्यकृता। प्रसगाव।
उ०—अगर इन बातों में जिस कदर तफर्का पड़ता जायगा,
सुननेवाले के दिव्य का असर बदलता चला जायगा। प्र०,
पृ० ३१।

यौ०—तफर्का अगसेब, तफर्का अगेज, तफर्का परदान, तफर्का
पर्वर=फूट डालनेवाला। तफर्का अगेजी, तफर्का अद्वाबी,
तफर्का परबाजी, तफर्का पर्वरी=फूट या विरोध डालना।

तफर्ज—संज्ञा स्त्री० [प्र० तफर्ज] १ दरिद्रता और हीनता से
समृद्धि और उन्नति की ओर जाना। ३. सेर। धानब बिहार।
श्रीड़ा। कौतुक। तमाशा। उ०—तफर्ज सते शाहजाया
निकल। अस्या कामराजी का घर दिव्य शान्त।—दरिद्री०,
पृ० २७०।

यौ०—तफर्ज गहू=सेर तमाशे का स्थान। श्रीदास्यल
विनोदस्थल।

तफसील—संज्ञा स्त्री० [प्र० तफसील] १. विस्तृत वर्णन। २.
टीका। तशरीह। ३. सूची। केहरिस्त। फई। ४. कैफियत।
व्योरा। बिबरण।

तफसीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० तफसीर] कुरान शरीफ की टीका।
उ०—मो अलम तफसीर सूरत नबम मे यह लिखता है।
—कबीर म०, पृ० २७।

तफावत—संज्ञा पुं० [प्र० तफावत] दे० 'तफावत'। उ०—पिदर पर
देखकर बकशो मुझे अब, प्रमानत में तफावत में करो सब।
—दरिद्री०, पृ० ३११।

तफावज—संज्ञा पुं० [प्र० तफावत] फर्क। तफावत। उ०—
उ०—सुकवि सूँ सम दाखिए, नहीं तफावज देह।—बाँकी०
प्र०, भा० ३, पृ० २७।

तफावत—संज्ञा पुं० [प्र० तफावत] १ अंतर। फर्क। २.
दूरी। फासिदा।

तफसीर—संज्ञा पुं० [प्र० तफसीर] १ व्याख्या। तशरीह। २
किसी धर्मग्रंथ की व्याख्या या भाष्य। उ०—इ तारीख व
तफसीर बहतर, के अजह्ना बामी एक था खर।—दरिद्री०,
पृ० २२०।

तब—प्रत्यय० [सं० तब] १ उस समय। उस वक्त।

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रायः जब के साथ होता है।
जैसे,—जब तुम आओगे, तब मैं चलूँगा।

२. इस कारण। इस वजह से। जैसे,—मेरा उधर काम था तब
मैं गया, नहीं तो क्यों जाता ?

तब—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. ताप। तपन। गर्मी। २. ज्वर।
बुझार [को०]।

तबई—क्रि० वि० [सं० तबई] तभी। उ०—जबई प्राणि पर
तहाँ, तबई ता सिर देहि।—नद० प्र०, पृ० १३५।

तबक—संज्ञा पुं० [प्र० तबक] १ घाटाघाट से वे कल्पित खट जो
पुश्की के ऊपर और नीचे मारे जाते हैं। खोक। तन। २
परत। तह। ३. चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तों को
पोटकर कागज की तरह पनाया हुआ पतला परत जो धुंधला
मिठाईयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता
है। ४. चाँदी और छिछली वाली। ५. वह पूजा या उपचार
जो मुसलमान स्त्रियों परियों की बाधा से बचने के लिये करती
हैं। परियों को नमाज।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

६. घोड़े का एक रोग जिससे उनके शरीर पर सूजन हो जाती
है। ७. रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग।
चकत्ता।

तबकगर—संज्ञा पुं० [प्र० तबक+गर् (प्रत्य०)] वह जो सोने चाँदी
आदि के तबक का पत्तर बनाता हो। तबकिया।

तबकड़ी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबक+री (प्रत्य०)] छोटी
रिकाबी।

तबकचा—संज्ञा पुं० [प्र० तबक+चा (प्रत्य०)] छोटी रिकाबी [को०]।

तबकफाड़—संज्ञा पुं० [प्र० तबक+फाड़ (प्रत्य०)] कुश्ती का एक पैंच।

विशेष—जब अशु पेट में घुस जाता है, तब पहलवान अपनी
दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पाँव को नीतर से बाँधते हैं और
दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टाँग को पकड़ कर जगह
पकड़कर उसके दोनों पाँव फाड़ते हैं और मोचा पाकर उसे
धित कर बैठे हैं।

तबका—संज्ञा पुं० [प्र० तबकह] १. खड। विभाग। २. तह।
परत। ३. लोक। तल। ४. आदमीयों का गरोह। ५. पद।
स्तथा।

तबकिया—संज्ञा पुं० [प्र० तबक+इया (प्रत्य०)] वह जो सोने
चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो। तबकगर।

तबकिया—क्रि० तबक सबधी। जिसमें तबक या परत हों। जैसे
तबकिया हस्ताक्षर।

तबकिया हस्ताक्षर—संज्ञा पुं० [प्रि० तबकिया+हस्ताक्षर] एक प्रकार
की हस्ताक्षर जिसके टुकड़ों में तबक या परत होते हैं। इसके
टुकड़े में से अलग अलग पत्रियाँ सी उतरती हैं।

तबदील—क्रि० [प्र० तब्दील] जो बदला गया हो। परिवर्तित।

यौ०—तबदील आबोहवा=अलवायु का बदलना। एक स्थान
से दूसरे स्थान पर जाना। तबदीले सूरत=(१) रूप या शक्ल
बदल जाना। (२) दुखिया बदलना। बहुरूपिया बनना।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबदील+ली (प्रत्य०)] १
बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया। बदली। परि-
वर्तन। २. स्थानांतरण [को०]। ३. उधल पुथल। क्रांति।

इनकिलाव (को०) । ५ किसी चीज के बदले में कोई दूसरी चीज लेना (को०) ।

तबद्दुल—संज्ञा पुं० [घ०] १ बदल जाना । बबसना । २ क्रांति । इनकिलाब ।

तबर^१—संज्ञा पुं० [फा०] १ कुल्हाड़ी । बाँगी । २ कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई का एक हथियार ।

तबर^२—संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है ।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला ।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम ।

तबरक—संज्ञा पुं० [घ०] प्रसाद । माघीर्वाद रूप में प्राप्त हुई वस्तु [को०] ।

तबरों—[घ०] १. धृष्टा प्रकट करना । चफरत । २ वे दुर्वचन जो शिष्या लोग सुन्निषों के पैगंबरो को कहते हैं । ३. मजहब विरोधियों के बिये गाया जानेवाला गीत [को०] ।

तबल—संज्ञा पुं० [फा०] १. बड़ा डोल । २. नगाडा । डंका ।

तबलजी—संज्ञा पुं० [घ० तबलह् + जी (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलिया ।

तबला—संज्ञा पुं० [अ० तबलह्] १ ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लंबीतर और लोखले कूँड़ पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है ।

विशेष—यह चमड़ा 'पूरी' कहलाता है और इसपर लोहचुन, भाँवें, लोई, सरेस, मंगरेखे और ठेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह चमाकर निकले पत्थर से छोटी हुई होती है । इसी स्याही पर आधात पड़ने से तबले में से आवाज निकलती है । कूँड़ पर रखकर यह पूरी चारों ओर चमड़े के छोटे छे, जिसे 'बन्दी' कहते हैं, कसकर बाँध दी जाती है । इस बन्दी और कूँड़ के बीच में काठ की गुलियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तबले का स्वर आदमकठानुसार बढ़ावे या उतारते हैं । आतावरण अधिक ठंडा हो जाने के कारण भी तबला घापसे घाप उतर जाता और अधिक गरमी के कारण घापसे घाप चढ़ जाता है । यह बाजा मकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे 'बायाँ', 'ठेका' या 'डुंगी' कहते हैं । साधारणतः योजनबाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिलाकर भी केवल तबला ही कहते हैं । तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजना ।—यजाना ।

मुहा०—तबना उतरना = तबले की बन्दी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला उतारना = तबले की बन्दी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे । तबला खनकना =

दे० 'तबला ठनकना' । तबला चढ़ना = तबले की बन्दी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता है और स्वर ऊँचा निकलने लगता है । तबला बड़ाना = तबले की बन्दी को कसकर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से स्वर निकलने लगे । तबला ठसकना = (१) तबला दबना । (२) बाज रंग होना । तबला मिछाना = तबले की गुलियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ाकर ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले ।

④२. एक तरह का बर्तन । तबि या पीतल का एक पात्र । उ०—पुनि चरवा चरई तब्ती तबला झारी लोटा गावहि ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ७४ ।

तबलिया—संज्ञा पुं० [हि० तबला + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो । तबलजी ।

तबलीग—संज्ञा पुं० [घ० तबलीग] प्रचार । प्रसार । उ०—क्या यही वह इस्लाम है जिसकी तबलीग का तूने बीडा उठाया है ?—मान०, भा० १, पृ० १८४ ।

तबल्ल—संज्ञा पुं० [घ० तबलह्] दे० 'तबला' । उ०—किंते बीर तोरा तबल्ल बनाए ।—ह० रासो, पृ० १४६ ।

तबस्ता④—संज्ञा पुं० [देश०] एक फून का नाम । उ०—बन उनये हरियर होय फूला । कैतक भिरंग तबस्ता फूना ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७ ।

तबस्सुम—संज्ञा पुं० [घ०] मुस्कुराहट [को०] ।

तबह—वि० [फा० तबाह का लघु रूप] दे० 'तबाह' [को०] ।

यौ०—तबहकार = तबाहकार । तबहहास = तबाह हाल ।

तबा—संज्ञा पुं० [घ० तिबाय] १ प्रकृति । २ प्रतिभा । उ०—मिखाव हूर के तन यो प्रमृत है जान, तथा बाव की दोड़कर कर पछाव ।—बख्शनी०, पृ० २४३ ।

तबाअत—संज्ञा स्त्री० [घ०] मुद्रण । छपाई । उ०—'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत ममी शुरू नहीं हुई ।—प्रेम० गो०, पृ० ५२ ।

तबाक—संज्ञा पुं० [घ० तबाक] बड़ा पाल । परात ।

यौ०—तबाकी कुत्ता = केवल खाने पीने का साथी । वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय भलग हो जाय ।

तबाख—संज्ञा पुं० [घ० तबाक, हि०] दे० 'तबाक' ।

तबाखी—संज्ञा पुं० [हि० तबाख] वह जो परात में रखकर सीदा बेचता है ।

यौ०—तबाखी कुत्ता = स्वार्थी मित्र ।

तबादला—संज्ञा पुं० [घ० तबादुल या तबादलह्] १ बदली स्थानांतरण । २ परिवर्तन । उ०—मामले को सब समझा हो या झूठ, मुन्गी का बहरहाल तबादला हो गया । बरखास्त होते होते बचे, यह उन्होंने अपना सीमाग्य समझा ।—काले०, पृ० ६७ ।

तबावत—संज्ञा स्त्री० [सं०] विक्रिस्ता । वैद्यक ।

तबाशीर—संज्ञा पुं० [सं० तबशीर] बसलोचन ।

तबाह—वि० [क्रा०] १. जो नष्टभ्रष्ट या बिलकुल खराब हो गया हो। घट। बरबाद। चोपट। २. जनशून्य। निर्जन (को०)। ३. निकृष्ट। खराब (को०)। ४. दुर्दशाग्रस्त। बदहाल (को०)।
यौ०—तबाहकार = (१) तबाही मचानेवाला। विनाशकारी। मत्पाकारी। (२) कदाचारी। बदचलन। तबाह रोजपार = कालचक्रग्रस्त। दुर्दशापीडित। तबाह हाल = (१) दुर्दशाग्रस्त (२) निर्धन। दरिद्र।

तबाही—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] नाश। बरबादी। प्रधःपतन।
क्रि० प्र०—घाना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज का टूट फूटकर रह जायना।—
(सश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना।—(सश०)।

तबिअत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तबीअत] दे० 'तबीअत'।

तबी—अव्य० [हि०] तभी। तब ही उ०—'तो तबी कि अब उनपर'—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २५३।

तबीअत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तबीअत] १. चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीअत घाना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीअत घाना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीअत उलझना = जी घबराना। तबीअत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जी मिचलाना। तबीअत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो जाना। समंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीअत फड़क जाना = दे० 'तबीअत फड़क उठना'। तबीअत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीअत बिगड़ना = दे० 'तबीअत खराब होना'। तबीअत भरना = (१) संतोष होना। तसल्ली होना। (२) सतोष करना। तसल्ली करना। जैसे,—हमने अच्छी तरह उनकी तबीअत भर दी, तब उन्होंने रुपए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे,—अब इन कामों से हमारी तबीअत भर गई। तबीअत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) ख्याल लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे,—इधर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीअत लगी हुई है। तबीअत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे,—तबीअत लगाकर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीअत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

२ बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीअत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तबज्जह करना। जैसे,—जरा तबीअत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीअत लड़ाना = दे० 'तबीअत पर जोर डालना'।

यौ०—तबीअतदार। तबीअतदारी।

तबीअतदार—वि० [प्र० तबीअत + क्रा० दार (प्रत्य०)] १ जो भावों को चट ग्रहण करता हो। समझदार। २. भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीअतदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तबीअत + क्रा० दारी (प्रत्य०)] १. होशियारी। समझदारी। २. भावुकता। रसज्ञता।

तबीअ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम। उ०—तब तबीअ तसल्ली कर ले घरि।

तबीन—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ताबन्] ताबेदार। सेवक। उ०—पसंद ऐसी साहिबी साहब रहे तबीन। दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक बीन।—पखदू०, भा० १, पृ० ६३।

तबेला—संज्ञा पुं० [प्र० तबेलह] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हो। प्रस्तबल। घुडसाल।

मुहा०—तबेले में लगी चलाना = विशिष्ट कार्य करने में प्रयत्न उपस्थित होना।

तबेला—संज्ञा पुं० [हि० ताँबा] ताँबे का एक पात्र।

तबेली—क्रि० प्र० [क्रा० ताब (= ताप) + हि० एली (प्रत्य०)] छटपटाना। तालावेली। उ०—कहा करौ कैसे मन समझाई व्याकुल जियरा धीर न धरत लागिरे रहति तबेली।—घनानन्द, पृ० ४८०।

तबोताब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तप + क्रा० ताब] रजोगम। गरमी। उ०—माल से उसकी बस है वह तबोताब। के होय महेश्वर में उसको तूले हिसाब।—दक्खिनो०, पृ० २१६।

तबोरो—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बोल] पान। लगाया हुआ पान। उ०—अधर अधर सो भीज तबोरो। मलका हरि मुरि मुरि गो मोरी।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४२।

तबौ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तक'। उ०—सहस्र मठासी मुनि जो जैवें तबौ न घटा बाँधै। कहहि कबीर सुपन्न के जैए, घट भगन ह्वै गाँजे।—कबीर (शब्द०)।

तब्ब—अव्य० [हि०] दे० 'तब'। उ०—गहरी क्यों न मन्न। कहै बैन तब्ब।—ह० रासो, पृ० १३६।

तब्बर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तबर'।

तभी—अव्य० [हि० तब + ही] १ उस समय। २ उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे,—जब तुम नहीं आए, तभी मैंने समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। २. इसी कारण। इसी वजह से। जैसे,—तुम्हारा उधर काम था, तभी तुम गए।

तमंग—संज्ञा पुं० [सं० तमङ्ग] १ रमंग्व। २ मंच (को०)।

तमंगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तमङ्गक] छत या छाजन का भाग निकला हुआ भाग (को०)।

तमचा—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० तमचह] १. छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—चलाना।—दागना।—मारना।—छोड़ना।

यौ०—तमचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पैर में घुस आने पर बाँधे हाथ से कमर पर से उसका लँगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पाँव चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जाँघ फँसाते और उसे बित कर देते हैं २. एक लंबा पत्थर जो दरवाजे की मजबूती के लिये बमब में लगाया जाता है।

तमः—संज्ञा पुं० [सं०] तमस् का समस्तपदों में प्रयुक्त रूप।

यौ०—तम प्रम, तम.प्रमा=एक नरक। तमःप्रवेश=(१) भँघेरे में टटोलना। (२) विषाद।

तम^१—संज्ञा पुं० [सं० तम, तमस्] १. भ्रंशकार। भँघेरा। २. पैर का भ्रगला भाग। ३. तमाल वृक्ष। ४. राहु। ५. वराह। सुभर। ६. पाप। ७. क्रोध। ८. भ्रजान। ९. कालिख। कालिमा। श्यामता। १०. नरक। ११. मोह। १२. सांख्य के अनुसार अविद्या। १३ सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है।

विशेष—जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है, तब उसकी प्रवृत्ति काम, क्रोध, हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तम^२—वि० १ काला। दूषित। बुरा [को०]।

तम^३—वि० [सं० तमय्] एक प्रकार का प्रत्यय, जो विशेषण शब्दों में खगने पर प्रतिशय या सबसे अधिक का अर्थ प्रकट करता है जैसे, क्रूरतम, कठिनतम।

तम^४—सर्व० [सं० त्वाम्, हिं० तुम, गुज० तम] दे० 'तुम'। उ०—हावुलि राय हमीर सलथ पामार जैत सम। कछो राज हम मात तात अत्पी बिल्लो तम।—पृ० रा०, १८६।

तमअ—संज्ञा स्त्री० [म० तमअ] १ लालच। लोभ। हिंस्र। २ चाह। इच्छा। स्वाहिष।

तमक^१—संज्ञा पुं० [हिं० तमकना] १. जोश। उद्वेग। २. तेजी। तीव्रता। ३. क्रोध। गुस्सा।

तमक^२—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद। विशेष—इसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत व्यास लगती है, पसीना आता है, जो मिचलाता है और गले में घरघराहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकनत—संज्ञा स्त्री० [म०] १. इज्जत। प्रतिष्ठा। २. गौरव। ३. गौरव का अनुचित प्रदर्शन। ४. माडबर। ५. धमड। गडर [को०]।

तमकना—क्रि० म० [अनु०] १. क्रोध का आवेक्ष दिखलाना। क्रोध के कारण चखल पड़ना। उ०—भ्रंजन त्रास तजत तमकत तक तानत दरसन डोठि। हारेह नहि हटत अमित बल बबन पयोधि पईठ।—सूर (शब्द०) २. दे० 'तमतमाना'।

तमकश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है।

विशेष—इसके उत्पन्न होने से प्रायः रोगी के मर जाने का भी भय होता है।

तमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुन्यामलकी। सुई प्राँवला [को०]।

तमकाना—क्रि० स० [हिं० तमकना का प्रेरक] तमकने में प्रवृत्त कराना।

तमकि^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमक] दे० 'तमक'। उ०—सतगुर मिलिमें तमकि मिटि जाई। नानक तपसी की मिली बहाई।—प्राण०, पृ० ६०।

तमगा—संज्ञा पुं० [तु० तमगह्] पबक। तंगमा। मेडल।

तमगुल^१—संज्ञा पुं० [सं० तमोगुल] दे० 'तमोगुल'।

तमगेही^१—वि० [सं० तमगेहिन्] भ्रंशकार में घर बनानेवाला। भ्रंशकार में रहनेवाला [को०]।

तमगेही^२—संज्ञा पुं० पतंगा।

तमचर—संज्ञा पुं० [सं० तमीचर] १. गलस। निशाचर। २. उल्लूक। उल्लू।

तमचुर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] भुरगा। कुक्कुट। उ०—(क) सुनि तमचुर को सोर घोस की बागरी। नवसत साजि सिंगार चलीं ब्रज नागरी।—सूर (शब्द०)। (ख) ससि कर हीन छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मोरे प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

तमचूर^२—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड, हिं० तमचुर] दे० 'तमचुर'। उ०—(क) बोले लागे ठोर ठोर तमचूर। हुहि बोली री पिक बैनी।—नंद० प्र०, पृ० ३६७। (ख) बिल राखे नहि होत भँगूरु। सबद न देख बिरह तमचूरु।—जायसी (शब्द०)।

तमचोर^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'तमचुर'।

तमच्छन्न—वि० [सं० तमस् (श्) + च्छन्न] तम से आच्छादित। भ्रंशकारमय। उ०—अन्य मानसं! चिर तमच्छन्न। पृथ्वी के उदय शिखर पर, तुम त्रिनेत्र के ज्ञान धनु से प्रकट हुए प्रलयकर।—युगवाणी, पृ० ३८।

तमजित्—वि० [सं०] भ्रंशकार को जीतनेवाला। उ०—बाँधो, बाँधो किरणें चेतन, तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन।—अपरा, पृ० २०६।

तमत—वि० [सं०] १. इच्छुक। अभिलाषी। २. वांछित। वांछा हुआ [को०]।

तमतमाना—क्रि० भा० [सं० ताम्र] १ घृष या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना। २. चमकना। दमकना। (क्व०)।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमतमाना] तमतमाने का भाव।

तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तम का भाव। २. भँघेरा। भ्रंशकार।

तमदुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहर में एक स्थान पर मिल जुलकर रहना और वहाँ की व्यवस्था करना। वायविकता। २. किसी की वेशभूषा, रहन सहन का ढंग और आचार व्यवहार। सम्पत्ता [को०]।

तमन—संज्ञा पुं० [सं०] दम घुटने की अवस्था [को०]।

तमना^१—क्रि० म० [हिं०] दे० 'तमकना'।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री० [म०] आकांक्षा। इच्छा। स्वाहिष। कामना। अभिधाया। उ०—दिल लाखों तमन्ना उस पे और ज्यादा हवस। फिर ठिकाना है कहाँ उसके ठिकाने के लिये।—तुलसी० श०, पृ० ४।

तमप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमयी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमी अथवा तमयी] रात।

तमरंग—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीवू जिसे 'तुरंज' कहते हैं।

विशेष—दे० 'तुरंज'।

तमर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बग।

तमर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तम] अक्षकार। भेंधेरा।

तमराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खाइ जो वैद्यक में ज्वर, वात तथा पित्तनाशक मानी गई है।

तमलूक—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तामलूक] दे० 'तामलूक'।

तमलेट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० टम्बलर] १. लुक फेरा हुआ टीन या लोहे का बरतन। २. फोबी सिपाहियों का लोटा।

तमस्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अक्षकार। २. अज्ञान का अक्षकार। ३. प्रकृति का एक गुण। तमोगुण। वि० दे० 'गुण'।

तमस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अक्षकार। २. अज्ञान का अक्षकार। ३. पाप। ४. नयन। ५. कृप। कृपा।

तमस^२—वि० काले रंग का। श्याम वण का [को०]।

तमस(उ)^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] ६. तमसा नदी। टोंस। उ०—प्रायो तमस नदी के तीरा। तब साडिल परिहार सुबीरा।—रघुराज (शब्द०)।

तमसना(उ)^४—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तमकना'। उ०—तमसि तमसि सायंत जाइ वर वीर सुख्यो। उभय पुता इक बहु भोम भयीरप बल बंध्यो।—पु० रा०, १२।१५३।

तमसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] टोंस नाम की नदी। दे० 'टोंस'।

विशेष—इस नाम की तीन नदियाँ हैं।

तमसाच्छन्न—वि० [सं०] अक्षकार से ढका हुआ। उ०—उसे अपनी माता के तत्काल न मर जाने पर भुक्कलाहट सी हो रही थी। समीर अधिक शीतल हो चला। प्राची का आकाश स्पष्ट होने लगा, पर जगमेया का अदृष्ट तमसाच्छन्न था।—इंद्र०, पु० ११०।

तमसावृत—वि० [सं०] अक्षकार से घिरा हुआ। उ०—मानव उर का मंदिर, कब से भीतर है तमसावृत।—युगपथ, पु० १०३।

तमसील—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तमसील] १. चपमा। तुलना। २. समानता। बराबरी। ३. छप्पात। उदाहरण। मिसाल। उ०—याने इसका तमसील यूँ है।—दक्खिनी०, पु० ३६५।

तमस्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भेंधेरा। २. विषाद। म्लानता [को०]।

तमस्कांड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तमस्काण्ड] घना भेंधेरा। भारी भेंधेरा [को०]।

तमस्खुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तमस्खुर] मस्खुरापन। उ०—उसके मिजाज में जराफत और तमस्खुर जियादा है...—प्रेमघन०, भाग २, पु० १०२।

तमस्तति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षकार की अधिकता। अक्षकार का बाहुल्य। [को०]।

तमस्तरण—वि० [सं०] अक्षकार को तरने या पार करनेवाला। उ०—मग ढगमग पग, तमस्तरण जागे जग।—प्रचंना, पु० १४।

तमस्वती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तमस्विनी'।

तमस्विनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि। रात। रजनी। २. हल्दी।

तमस्वी—वि० [सं० तमस्विन्] अक्षकारयुक्त। अक्षकारपूर्ण [को०]।

तमस्सुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जो अक्ष लेनेवाला अक्ष के प्रमाण स्वरूप लिखकर महाजन को देता है। दस्तावेज। अक्षपत्र। लेख।

तमहँड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तंवा + हँडी] हँडी के आकार का तंबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तम + हर] दे० 'तमोहर'।

तमहाया—वि० [सं० तम + हिं० हाया] १. अक्षकारवाला। २. तमोगुणी।

तमहीद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तमहीद] वह जो कुछ किसी विषय को धारण करने से पहले किया जाय। भूमिका। दोबाचा।

क्रि० प्र०—बाँधना।

तमाँचा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तमाचह] दे० 'तमाचा'।

तमा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तमा, तमस] राह।

तमा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० रात। रात्रि। रजनी।

तमा^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तमम] दे० 'तमम'।

तमा^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तमाम] दे० 'तमाम'। उ०—तमा दुनिया की जर पर कर वह बदजात। उठाया दोन से इकराणी हात।—दक्खिनी०, पु० १६०।

तमाइ(उ)^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तमम] दे० 'तमम'। उ०—(क) लोक परलोक विसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू वीर धान को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आप कीन तप खप कियो न तमाइ जोग जाग न विराग त्याग तीरथ न तन को।—तुलसी (शब्द०)।

तमाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] खेत जोतने से पूर्व उसमें की घास प्रादि साफ करना।

तमाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तम + हिं० भाई (प्रत्य०)] १. भेंधेरा। श्यामता। ताअता। २. अज्ञान। उ०—साहब मिन साहब भय कछु रही न तमाई। कहैं मलुक तिस घर गए जह पवन न जाई।—मल्लक० पु० ७।

तमाकू—सञ्ज्ञा पुं० [पुर्त० टबैको] १. तीन से छह फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पीधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर युरोप में अधिकता से होता है। तबाकू।

विशेष—इसकी अनेक जातियाँ हैं, पर खाने या पीने के काम में केवल ५-६ तरह के पत्ते ही भाते हैं। इसके पत्ते २-३ फुट तक लंबे, विषाक्त और नशीले होते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से भिन्न है, पर बहुधा यह फुमारा, कातिक से लेकर पूस तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो। इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है, उसमें साल में बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५-६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं, तब इसे दूसरी जमीन में, जो पहले से कई बार बहुत

अच्छी तरह जोती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। प्रारंभ से इसमें सिंचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूजने से पहले ही इसकी कलियाँ धीरे नीचे के पत्तों छूटि दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं और उसपर चित्तियाँ पड़ जाती हैं, तब या तो ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पीछे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में लाए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते हैं और रोग होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी से पहले तमाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतों के प्रादिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चबाते और इसका धुँपा पीते हुए देखा था। सन् १५३९ में स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप में गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे प्रसदवेग ने बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने इसके धीरे धीरे चिलम पर रखकर इसे धक्कर को पिलाना चाहा था, पर हुक्मीनों ने मना कर दिया। पर धीरे धीरे चलकर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। प्रारंभ में इंग्लैंड, फ्रांस तथा भारत प्रादि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियों और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे, पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुढ़े प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

२. इस पेड़ का पत्ता। सुरती।

विशेष—इसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। धूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धुँपाँ खींचने के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नशा होता है। भारत में धुँपाँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है (दे० तीसरा अर्थ)। इसका बहुत महीन चूर्ण सुँघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत के लोग इसके पत्तों को सुखाकर पान के साथ प्रयत्न यों ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, जरदा प्रादि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का प्रबलेह भी बनाया जाता है जिसे 'किबाम' कहते हैं। इस देश में लोग इसके सूखे पत्तों को चूने के साथ मलकर मुँह में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे 'खैनी' या 'सुरती' कहते हैं। यूरोप, अमेरिका प्रादि देशों में इसके धूरे को कागज या पत्तों प्रादि में लपेटकर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषतः आँखों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण,

गरम, कटुप्रा, मद और वमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है।

३. इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गोखी पिढी जिसे चिलम पर जलाकर मुँह से धुँपा खींचते हैं।

विशेष—पत्तियों के साथ रेह मिलाकर जो तमाकू तैयार होता है, वह 'कडुमा' कहलाता है, गुठ मिलाकर बनाया हुआ 'मीठा' कहलाता है, और कटहल, वेर प्रादि की खमीर मिलाकर बनाया हुआ 'खमीरा' कहलाता है। इसे चिलम पर रखकर उसके ऊपर कोयले की प्राग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाने हाथ गीरे प्रयत्न इसके पर रखकर नली से धुँपाँ खींचते हैं।

मुद्दा—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलम पर रखकर और उसपर प्राय या टिकिया रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धुँपाँ खींचना। तमाकू भरना = दे० 'तमाकू चढ़ाना'।

तमाखू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमाकू'।

तमाखा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तमचह] हथेली और उँगलियों से गाल पर किया हुआ प्रहार। थप्पड़। स्नापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी—संज्ञा पुं० [सं० तमाचारिन्] राजस। दैत्य। निशिवर।

तमादी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. प्रविषीत जाना। मुदत या मियाद गुजर जाना। २. उस प्रविषीत जाना जिसके अंदर लेन देन सबधी कोई कातूरी कारंवाई हो सकती हो। उस मुदत का गुजर जाना जिसके अंदर प्रदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमाना—क्रि० प्र० [सं० तम से नामिक घालु] ताव में माना। प्रावेश में माना।

तमाम—वि० [प्र०] १. पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिल्कुल। जैसे,—(क) दो ही बरस में तमाम रुपए फूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। २. समाप्त। खतम।

मुद्दा—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संज्ञा स्त्री० [प्र० तमाम + फ्रा० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का देशी रेणमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्त की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः गोट लगाने के काम में आता है।

तमाराना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैयार'।

तमारि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर। रवि।

तमारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तैयार'। उ०—पल में पल रूप बीतिया लोगन खगी तमारि।—कबीर (शब्द०)।

तमारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमारि'। उ०—सत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि बँदु तमारी।—मानस, ७। १२१,

तमारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताविरा' ।

तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीस पचीस फुट ऊँचा एक बहुत सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल । श्याम तमाल कम मिलता है । उसके फूल लाल रंग के और उसकी लकड़ी आबनूस की तरह कासी होती है । तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीर के पत्ते से मिलते जुलते होते हैं । वैसाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं । इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक लट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं । ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीदड़ बड़े चाव से खाते हैं । श्याम तमाल को वैद्यक में कसेला, मधुर, बसवीर्यवर्धक, भारी, शीतल, श्रम, शोथ और ब्राह्म को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्तनाशक माना है ।

पर्या०—कालस्कंध । तापिरथ । समितद्रुम । शोकस्कंध । नीलवज्र । नीलताल । तापिज । तम । तया । कालताल । महाबल ।

२. तेजपत्ता । ३. काले खैर का वृक्ष । ४. बाँस की छाल । ५. वरुण वृक्ष । ६. एक प्रकार की तसवार । ७. तिलक का पेड़ । ८. हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़ ।

विशेष—इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो घटिया रेवद चीनी की तरह का होता है । इसकी छाल से एक प्रकार का बढ़िया पीला रंग निकलता है । पुस, माघ में इसमें फल खगता है जिसे लोग यों ही खाते अथवा हमली की तरह दाल तरकारियों में डालते हैं । इसका व्यवहार औषध में भी होता है । लोग इसे सुखाकर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं । इसे मन्डोला और उमवेख भी कहते हैं ।

६. सुरती (को०) । १०. तमाल के बीज के रस और चंदन का तिलक (को०) ।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता २. तमाल वृक्ष । ३. बाँस की छाल । ४. चौपतिया साग । सुसना साग ।

तमालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल का पत्ता । २. सुरती का पत्ता । ३. सांप्रदायिक सिक्का [को०] ।

तमासा—संज्ञा पुं० [हि० तमारा] पालों में घँघियारी छा जाना । चकाचौप । उ०—होस छडे फाटे हियो, पड़े तमासा माय । देखे जुष तसवीर द्रग, मावड़िया मुरझाय ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० १७ ।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुहँ घाँवला । सुम्यामलकी । २. ताम्रवल्ली नाम की लता ।

तमालिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताम्रलिप्त देश का एक नाम । २. सुम्यामलकी । मुहँ घाँवला । ३. काले खैर का वृक्ष । कृष्ण खदिर । ४. वह सूक्ष्म जहाँ तमाल के वृक्ष अधिक हों (को०) ।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वरुण वृक्ष । २. ताम्रवल्ली नाम की लता जो चित्रकूट में बहुत होती है ।

तमाशागीर—संज्ञा पुं० [क्रा० तमाशा + गीर] दे० 'तमाशाबीन' ।

तमाशाबीन—संज्ञा पुं० [क्रा० तमाशा + गीर] १. तमाशा देखने वाला । सेलानी । २. रडीबाज । बेय्यागामी । ऐयाश ।

तमाशाबीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तमाशाबीन + ई (प्रत्य०)] रडीबाजी । ऐयाशी । बदकारी । उ०—फारसी पढ़ने से इसकाजी तमाशाबीनी और प्रयाशी ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८२ ।

तमाशा—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. वह दृश्य जिसे देखने से मनोरंजन हो । श्रित्त को प्रसन्न करनेवाला दृश्य । जैसे, मेला, पिएटर, नाच, भातिशबाजी आदि । उ०—मद भोलक जब खुलत हैं तेरे दुग गजराज । भाइ तमासे जुरत हैं नेही नैच समाज ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—देखना ।—दिखाना ।—होना ।

२. मदभुत व्यापार । विलक्षण व्यापार । अनोखी बात ।

सुहा०—तमाशे की बात = प्राश्नचर्च भरी और अनोखी बात ।

यौ०—तमाशागर = तमाशा करनेवाला । तमाशागाह = कीड़ा-स्थल । कीतुकागार । तमाशाबीन = तमाशा देखनेवाला ।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [क्रा० तमाशा + क्रा० ई (प्रत्य०)] तमाशा देखनेवाला । वह जो तमाशा देखता हो ।

तमासा^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तमाशा' । उ०—काहू सग मोहू चहिं ममता देखहिं निषेय भये तमासा ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १५५ ।

तमासा^७—संज्ञा पुं० [क्रा० तमाशा] । उ०—मेहर की भासा तमासा भी मेहर का, मेहर का भाब दिल को पिलाइए ।—कबीर रे०, पृ० ३४ ।

तमाहाय—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र [को०] ।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात । २. मोह ।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तमिल^१—संज्ञा पुं० [देश०] तमिल भाषा का प्रदेश । २. तमिल भाषाभाषी ।

तमिल^२—संज्ञा स्त्री० १. तमिल जाति । २. तमिल जाति की भाषा । वि० दे० 'तमिल' ।

तमिल^३—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला [को०] ।

तमिसरा^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तमिस्रा' । उ०—रवि परभात भरोखे उवा । गयउ तमिसरा बासर हुमा ।—इंद्रा०, पृ० ८०

तमिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रमकार । भ्रंश । २. क्रोध । गुस्सा । ३. पुराणानुसार एक नरक का नाम । ४. भ्रजान । मोह (को०) । ५. कृष्ण पक्ष (को०) ।

तमिस्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष । भ्रंश पक्ष ।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भ्रंशेरी रात । २. गहरी भ्रंशेरी या भ्रमकार (को०) ।

तमी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. रात । रात्रि । निशा । २. दूरिद्रा । हलदी ।

तमीचर^१—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर । राक्षस । बैरव । बनुष ।

तमीचर^२—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला [को०] ।

तमीज—संज्ञा स्त्री [भ० तमीज] १ भले धीरे धीरे को पहचानने की शक्ति । विवेक । २ पहचान । ३ ज्ञान । बुद्धि । ४. अदब । कायदा ।

यौ०—तमीजदार = (१) बुद्धिमान । समझदार (२) शिष्ट । सभ्य ।

तमीपक्षि—संज्ञा पुं [सं०] चंद्रमा । निशाचर । क्षपाकर ।

तमीश—संज्ञा पुं [सं० तमी + ईश] चंद्रमा । क्षपाकर । उ०—तो लों तम राखै तमी खी लों नहि रजनीध । केशव ऊगे तरण के तमु न तमी न तमीश ।—केशव (शब्द०) ।

तमु०—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तम' ।

तमरां—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तवरा' ।

तमूला—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तामूल' ।

तमे०—संज्ञा पुं [गुज० तमे (= तुम)] तुम ।—दो सौ भावन०, भा० १, पृ० २१८ ।

तमोत्य—वि० [सं० तमोऽत्य] सूर्य धीरे चंद्रमा के दस प्रकार के ग्रहों में से एक ।

विशेष—इसमें चंद्रमण्डल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक धीरे धीरे के भाग में बहुत थोड़ी सी जान पड़ती है । फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से फसल को हानि पहुँचती है धीरे धीरे का भय होता है ।

तमोन्ध—वि० [सं० तमोऽन्ध] १ अज्ञानी । २ क्रोधी ।

तमोगुण—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'तमस्'—३ ।

तमोगुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो । अश्वमेध वृत्ति-वाला । उ०—तमोगुणी चाहै या भाई । मम बेरी क्यों ही मर जाई ।—सूर (शब्द०) ।

तमोघ्न—संज्ञा पुं [सं०] १ अग्नि । २ चंद्रमा । ३ सूर्य । ४ बुद्ध । ५ बौद्ध मत के नियम आदि । ६ विष्णु । ७ शिव । ८. ज्ञान । ९ दीपक । दीया । चिराग ।

तमोघ्न^२—वि० जिससे अंधेरा दूर हो ।

तमोज्योति—संज्ञा पुं [सं० तमोज्योतिस्] जुगलु [को०] ।

तमोदर्शन—संज्ञा पुं [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो ।

तमोनुद्—संज्ञा पुं [सं०] १ ईश्वर । २ चंद्रमा । ३ अग्नि । ४ प्राण ।

तमोभिद्^१—संज्ञा पुं [सं०] जुगलु ।

तमोभिद्^२—वि० अश्वमेध दूर करनेवाला ।

तमोमणि—संज्ञा पुं [सं०] १ जुगलु । २ मोमेदक मणि ।

तमोमय^१—वि० [सं०] १ तमोगुणयुक्त २ अज्ञानी । ३ क्रोधी ।

तमोमय^२—संज्ञा पुं [सं०] राहु ।

तमोर०—संज्ञा पुं [सं० ताम्बूल] ताम्बूल । पान । उ०—(क) चार तमोर दूध दधि रोषन हरि पयोदा लावै ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुरंग अघर धी नीन तमोरा । सोई पान फूल कर जोरा ।—जायसी प्र०, पृ० १४३ ।

तमोरि—संज्ञा पुं [सं०] सूर्य ।

तमोरो०—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तबोली' ।

तमोल०—संज्ञा पुं [सं० ताम्बूल] १ पान का बीड़ा । उ०—बंदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार । दण प्रांजे राजे खरी ये ही सहज सिंगार ।—विहारी (शब्द०) । २ दे० 'तबोल' ।

तमोस्त्रि—संज्ञा स्त्री [हि० तमोली का स्त्री०] दे० 'तबोलिन' ।

तमोलिप्ती—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त' ।

तमोली—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तबोली' ।

तमोविकार—संज्ञा पुं [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार । जैसे, नीब, मालस्य आदि ।

तमोहंत—संज्ञा पुं [सं० तमोहन्त] दस प्रकार के ग्रहणों में से एक ।

विशेष—दे० 'तमोत्य' ।

तमोहपद्^१—संज्ञा पुं [सं०] १. सूर्य । २ चंद्रमा । ३ अग्नि । ४ दीपक । दीया ।

तमोहपद्^२—वि० १ मोहनाशक । २ अश्वमेध दूर करनेवाला ।

तमोहर^१—संज्ञा पुं [सं०] १ चंद्रमा । २ सूर्य । ३ अग्नि । प्राण । ४ ज्ञान ।

तमोहर^२—वि० [सं०] अश्वमेध दूर करनेवाला । २ अज्ञान दूर करनेवाला ।

तमोहरि०—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'तमोहर' ।

तम्भना०—क्रि० प्र० [हि० तम्भना] तप्त होना । क्रुद्ध होना । उ०—परि लर परे उठै एक । तम्भी उकसि भारे नेक (तेक) ।—पृ० रा०, ६१।६४ ।

तव^१—वि० [भ०] १ पूरा किया हुआ । निबटाया हुआ । समाप्त । जैसे, रास्ता तय करना । काम तय करना । २ निश्चित । स्थिर । ठहराया हुआ । मुकर्रर । जैसे,—सोमवार को बसना तय हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तय पाना = निश्चित होना । ठहराना ।

तय०^२—अव्य० [हि० तह] तहाँ । वहाँ । उ०—बुल्लाय बाब सु घर चित्रिय । पठ्यो प्रति चहुमान तय ।—पृ० रा०, ६६ ।

तय^३—संज्ञा पुं [सं०] १ रक्षा । २ रक्षक [को०] ।

तयना०^१—क्रि० प्र० [सं० तपन] १ बहुत परम होना । तपना । उ०—निसि वासर तया विहँ ताय ।—तुलसी (शब्द०) । २. संतप्त होना । दुखी होना । पीड़ित होना ।

विशेष—दे० 'तपना' ।

तयना०^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तपाना' ।

तयनावां—वि० [हि०] दे० 'तैनात' ।

तयां—संज्ञा पुं [हि०] 'तवा' ।

तयार०—वि० [हि०] दे० 'तैयार' ।

तयारी(७)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तयारी' ।

तयार—वि० [हि०] दे० 'तयार' । उ०—कोमाँ ऐसा लजीज तयार हुआ ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ८४ ।

तरंग—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्ग] १. पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है । लहर । हिलोर । २. मोज ।

क्रि० प्र०—उठना ।

पर्या०—भंग । ऊर्मि । उर्मी । विधि । वीची । हसी । लहरी ।

भृषि । उत्कलिका । जललता ।

२. संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार । स्वरलहरी । उ०—बहु भाँति तान तरंग सुनि गधर्व किल्लर लाजही ।—सुलसी (शब्द०) । ३. चित्त की उमंग । मन की मोज । उत्साह या आनन्द की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार । जैसे,—(क) भग की तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए । ४. वस्त्र । कपड़ा । ५. छोटे घादि की फलांग या उछाल । ६. हाथ में पकड़ने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने का तार उमेठकर बनाई जाती है । ७. हिलना डुलना । इधर उधर घूमना (को०) । (८) किसी ग्रंथ का विभाग या अध्याय जैसे—कथासरित्सागर में ।

तरंगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरङ्गक] [स्त्री० तरंगिका] १. पानी की लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी ।

तरंगभीरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरङ्गभीरु] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

तरंगवती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरङ्गवती] नदी । तरंगिणी ।

तरगायित—वि० [सं० तरङ्गायित] दे० 'तरंगित' । उ०—सुंदर बने तरङ्गायित ये सिंधु से, लहराते जब वे मारुतवशा भूम के ।—करुणा०, पृ० २ ।

तरंगालि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गालि] नदी ।

तरंगिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिका] १. लहर । हिलोर । २. स्वरलहरी । उ०—स्वर मद बाजत घाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका ।—राधाकृष्ण दास (शब्द०) ।

तरंगिणी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तरङ्गिणी] नदी । सरिता ।

यौ०—तरंगिणीनाथ, तरंगिणीभर्ता=समुद्र ।

तरंगिणी^२—वि० तरंगवाधी ।

तरंगित—वि० [सं० तरङ्गित] हिलोर मारता हुआ । लहराता हुआ । नीचे ऊपर उठता हुआ ।

तरंगिनी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तरङ्गिणी] नदी ।

तरंगी—वि० [सं० तरङ्गिन्] [स्त्री० तरंगिणि] १. तरंगयुक्त । जिसमें लहर हो । २. ऐसा मन में आवे, वैसा करनेवाला । मनमोजी । आनंदी । लहरी । वेपरवाह । उ०—नार्चहि गावहि गीत परम तरंगी भूत सब ।—मानस, १ । ६३ ।

तरंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. नाव । नौका । २. मछली मारने की डोरी में बँधी हुई लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है । ३. नाव खेने का डंडा । ४. वेड़ा (को०) ।

यौ०—तरंडपाश=एक प्रकार की नाव ।

तरंडा, तरंडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरण्डा, तरण्डी] १. नौका । नाव । २. वेड़ा (को०) ।

तरंत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरन्त] १. समुद्र । २. मेढक । ३. राक्षस । ४. जोर की वर्षा (को०) । ५. भक्त (को०) ।

तरन्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरन्ती] नाव । किशो ।

तरन्तुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरन्तुक] कुशक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम ।

तरन्वुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरन्वुज] तरवूज ।

तरहुत^१—क्रि० वि० [हि० तर + हुत (प्रत्य०)] १. नीचे । २. नीचे की तरफ ।

तरहुत^२—वि० १. नीचेवाला । नीचे की तरफ का । २. नीचा ।

तर^३—वि० [फा०] १. भीगा हुआ । मारदं । गोला । जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना ।

यौ०—तर बतर=भीगा हुआ ।

२. भीतल । ठंडा । जैसे,—(क) तर पानी, तर माल । (ख) तरवूज खाओ, तबीयत तर हो पाय । ३. जो सुखा न हो । हरा ।

यौ०—तर व साजा=टटका । तुरत का ।

४. भरा पूरा । मालदार । जैसे, तर प्रसामी ।

तर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पार करने की क्रिया । २. अग्नि । ३. बुझ । ४. पथ । ५. गति । ६. नाव की उतराई । ७. घाट की नाव (को०) । ८. बढ़ जाना (को०) । ९. पराजित करना । परास्त करना (को०) ।

तर^१—क्रि० वि० [सं० तल] तले । नीचे । उ०—कोन बिरिख तर मीजत होइहैं राम लपन दूनो भाई ।—गीत (शब्द०) ।

तर^२—प्रत्य० [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगकर दूसरे की अपेक्षा प्राधिव्य (गुण में) सुविन करता है । जैसे, गुप्तर, अधिकतर, श्रेष्ठतर ।

तरङ्गी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तारा] नक्षत्र ।

तरक^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरण्डक] दे० 'तरंडक' ।

तरक^२—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० तरङ्कना] दे० 'तरङ्क' ।

तरक^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. विचार । सोच विचार । उधेड़बुन । ऊहूपोह । उ०—होइहि सोई जो राम रचि राखा । को करि तरक बढ़ावहि साक्षा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. उक्ति । तर्क । चतुराई का वचन । चोज की बात । उ०—(क) सुगत हैंसि चले हरि सकुचि भारी । यह कह्यो भाज हम आइहैं गेह'तुव तरक जिनि बहो हम समुक्ति डारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) प्यारी को भुख धोई के पट पौछि सँवारयो तरक बात बहुतै कही कछु सुधि न संभारयो ।—सूर (शब्द०) ।

तरक^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तर (=पथ ?)] वह अक्षर या शब्द जो पुष्ठ या पन्ना समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर घागे के पुष्ठ के आरंभ का अक्षर या शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है ।

विशेष—हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार प्रक्षर या शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्र लगाए जा सकें। पुष्ठी पर अंक देने की प्रथा नहीं थी।

तरका^१—संज्ञा पुं० [सं० तर्क (= सोच विचार)] २ प्रवृत्त। बाधा। २ व्यतिक्रम। भूल चूक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरका^२—संज्ञा पुं० [प्र० तर्क] १. त्याग। परित्याग। २. छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

तरकना^३—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तड़कना'।

तरकना^४—वि० तड़कना। भड़कनेवाला।

तरकना^५—क्रि० प्र० [सं० तर्क] १ तर्क करना। सोच विचार करना। २. अनुमान करना। उ०—तरकि न सकहि बुद्धि मन बानी। तुलसी (शब्द०)।

तरकना^६—क्रि० प्र० [अनु०] उछलना। कूटना। झपटना। उ०—बार बार रघुवीर सँभारी। तरकैउ पवनसुनय बल भारी। तुलसी (शब्द०)।

तरकश—संज्ञा पुं० [फा० तर्कश] तीर रखने का चोगा। भाषा। तूणीर।

तरकशबंद—संज्ञा पुं० [फा० तर्कशबंद] तरकश रखनेवाला व्यक्ति।

तरकस—संज्ञा पुं० [फा० तर्कश] दे० 'तरकश'।

तरकसी—संज्ञा स्त्री० [फा० तर्कश] छोटा तरकश। छोटा तूणीर। उ०—घरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पठ मोढ़े। बल्लू बाह बाहु। भग भंग सुपन जराय के जगमगत हुरत जन के जी को तिमिर प्रालु। तुलसी (शब्द०)।

तरका^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तड़का'।

तरका^८—संज्ञा पुं० [प्र०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए भावमों के वारिस को मिले।

तरका^९—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] बड़ी तरकी।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फा० तरह (= संज्ञा, शाक) + कारी] १. वह पोधा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल फूल आदि पकाकर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, मालु, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात भाजी। २. खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल, कद मूल, पत्त आदि। शाक भाजी। ३. खाने योग्य मांस।—(पजाव)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडकी] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के अंदर रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताडकी' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आभूषण छोटी जाति की स्त्रियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णकुल आदि के लिये भी इस शब्द का अयोग होता है।

तरकीव—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. संयोग। मिलान। मेख। २. बनावट। रचना। ३. युक्ति। उदाय। ढग। ढव। जैसे,—उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। ४. रचना प्रणाली। शैली। तोर। तरीका। जैसे,—इनके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुली—संज्ञा पुं० [सं० ताल + कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुली—संज्ञा पुं० [हिं० तरकुल] कान में पहनने का एक गहना। तरकी।

तरकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकुल] कान का एक गहना तरकी। उ०—लछिमन संग भूँके कमल कदम कहूँ देखी तिय कामिनी तरकुली कमक की।—हुनुमान (शब्द०)।

तरक्कना—क्रि० प्र० [हिं०] तरकना। उछलना। चमकना। उ०—नव जड़ नफेरि भेरी सभा। तरक्कन तेगं मनी बिजु नालं।—पु० रा०, १२।८०।

तरक्की—संज्ञा स्त्री० [प्र० तरक्की] बुद्धि। बढ़ती। उन्नति। (शरीर, पद एवं वस्तु आदि में)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़बग्घा। २. चीता [को०]।

तरक्कु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाघ। लकड़बग्घा। चरग। २. चीता [को०]।

तरखा—संज्ञा पुं० [सं० तरग] जल का तेज बहाव। तीव्र प्रवाह।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तखण] लकड़ी का काम करनेवाला। बढ़ई।

तरगुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] शकत रखने का एक प्रकार का छिछला बरतन।

तरचखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पोधा जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है।

तरच्छी—वि० स्त्री० [हिं०] तिरछी। टेढ़ी। उ०—सजम जप तप सांपरत, इत जुत प्रोग यिनाए। प्राँख तरच्छी ईस ताँ जीता समया जीए।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ३४।

तरछत^१—क्रि० वि० [हिं० तर] नीचे। नीचे की ओर।

तरछत^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछा—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं।

तरछाना^३—क्रि० प्र० [हिं० तिरछा] तिरछी आँख से इशारा करना। इंगित करना। ल०—अरध जाम जामिनि गए सखिन सकुचि तरछाय। देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित सलपाय।—देव (शब्द०)।

तरछी—वि० [हिं०] तिरछी। उ०—भलकत बरछी तरछी तरवारि धड़े। मार मार करत परत पलभल है।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४८५।

तरज—संज्ञा पुं० [प्र० तर्ज] दे० 'तर्ज'।

तरजना—क्रि० प्र० [सं० तर्जन] १. ताड़न करना। झटाना।

अपटना । उ०—गरजति तरजनिन्ह तरजत वरजत सयन नयन के कोए ।—तुलसी (शब्द०) २ मसा बुरा कहना । विगड़ना । ३ गरजना । उ०—सिंह व्याघ्रो का तरजना जिसे सुन विचारी कोमल बालाओं के हृष्य का लरजना—इस दुर्ग के गुर्जो ही से बैठे बैठे सुन को ।—श्यामा०, पृ० ७५ ।

तरजनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] भंगूटे के पास की उँगली । उ०—
(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोठ नहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सरल बरजि तजिय तरजनी कुम्हड़े के कुम्हड़े को आई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

तरजनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय । डर । उ०—ग्रहो रे विह्वल मनवासी । तेरे बोल तरजनी बाढ़ति श्रवणन सुनत नौदक नासी ।—सूर (शब्द०) ।

तरजीला—वि० [सं० तर्जन + हि० ईला (प्रत्य०)] १ तर्जन करने-वाला । २. क्रोध में बरा हुआ । ३ प्रचंड । तेज । उग्र ।

तरजीह—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जीह] परीयता । प्रधानता । श्रेष्ठता । उ०—वे व्यापकता के ऊपर गहराई को तरजीह देते हैं ।—इति० और आलो०, पृ० ८ ।

तरजूई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराजू] छोटी तराजू ।

तरजुमा—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमह] अनुवाद । भाषांतर । उल्था ।

तरजुमान—संज्ञा पुं० [सं० तर्जुमान] वह जो अनुवाद करता है [को०] ।

तरजौहा^१—वि० [हि०] दे० 'तरजीला' ।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि को पार करने का काम । पार करवा । २. पानी पर तैरनेवाला तख्ता । वेडा । ३. विस्तार । उद्धार । ४. स्वयं । ५. नौका [को०] । ६. पराजित करना । [को०] ।

तरणतारण—वि० [सं०] १. संचार सागर से पार करनेवाला । उ०—
शोक छारण करण कारण, तरण तारण विष्णु शकर ।—
अर्चना, पृ० ८८ । २. नदी या जलाशय से पार करनेवाला ।

तरणाक्षप—संज्ञा पुं० [हि० तरण + सं० आक्षेप] सूर्य की धूप । उ०—तरणाक्षप टोप वगत्तरय । प्रत्यक्ष चमकत पवसरियं ।—रा० ६०, पृ० ८१ ।

तरणापठ—संज्ञा पुं० [सं० तरण, राज० तरण + आपठ, हि० तरणा प्रा० पठ] दे० 'तारण्य' । उ०—बिम जिम मन बमले कियइ सार पठती जाइ । तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणापठ याइ ।—ढोला०, पृ० १२ ।

तरणि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मंदार । ३. किरन ।

तरणि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणी' ।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या, यमुना । २. एक वर्षा ऋतु का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुह होता है । इसका दूसरा नाम 'सती' है । जैसे,—
नगपसी-परसती ।

तरणितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत' ।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना ।

तरणिधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तरणिपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या कठोता जिससे नाव का पानी उलीचा जाता है [को०] ।

तरणिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०] ।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का पुत्र । २. यम । ३. शनि । ४. कर्ण ।

तरणिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री । यमुना [को०] ।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २. धीकुमार । ३. स्थल कमलिनो ।

तरतर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तड़तड़' । उ०—वरखै प्रलय को पानी, न जात काहू पे बखानी, ब्रह्म हूँ ते भारी दूत है तरतर ।—नद० प्र०, पृ० ३६२ ।

तरतराता—वि० [हि० तर] घी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान) । जिसमें से घी निकलता या चढ़ता हो (खरबदाय) ।

तरतराना^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाना । उ०—फहरान पुत्रा मनु असमानु, के तड़ित चहूँ दिख तरतरान ।—सुजान०, पृ० १७ ।

तरतराना^२—क्रि० प्र० [अनु०] तड़तड़ शब्द करना । तोड़ने का सा शब्द करना । तड़तड़ाना । उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात पररात भहरात माथ नाथे ।—सूर (शब्द०) ।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [सं०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति । यथास्थान रखा या लगाया जाना । क्रम । सिलसिला । जैसे,—किताबें तरतीब से लगा दें ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—सजाना ।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना । सजाना ।

तरत्समदीय—संज्ञा स्त्री० [सं० तरत्समन्दीय] वेद के पवमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अप्रतिग्राह्य धन ग्रहण करने या निषिद्ध भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है ।

तरखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का फंडीला पेज ।

तरखीद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काटने या रद करने की क्रिया । मंजूरी । २. खडन । प्रत्युत्तर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरदुदुद—संज्ञा पुं० [सं०] सोच । फिक्क । भ्रमण । चिंता । खटका । उ०—एक कमरे तक सीमित रहने पर भी जाने-आनेवाले यात्रियों और मुँके भी तरदुदुद रहता ।—किन्नर०, पृ० ५६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तरदुदुद में पड़ना = चिंता में पड़ना ।

तरदुदुती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो घी और बही के साथ माड़े हुए घाटे की गोलियों को पकाने से बनता है ।

तरन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरण' ।

तरन^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरौना' ।

तरनतार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरण, हि० तरना] १. सद्धार । निस्तार । मोक्ष । २. सद्धार करनेवाला । वह जो भवसागर से पार करे ।

तरना^१—क्रि० प्र० [सं० तरण] पार करना ।

तरना^२—क्रि० प्र० १. भवसागर से पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे,—तुम्हारे पुरखे तर जायेंगे । २. तरना न दूबना ।

तरना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तलना' ।

तरना^४—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] व्यापारी जहाज का वह मफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनाग—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तरनाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बांधते हैं ।—(लघ०) ।

तरनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणी' ।

तरनि^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'तरणि' । उ०—तरनि तेम तुलाधार परताप गहिप्रोरे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।

यौ०—तरनितनया = सूर्य की पुत्री । यमुना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय युहमि पे प्रगट सब लोक सिरताबै ।—धनानंद, पृ० ४९३ ।

तरनिजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरणिजा' ।

तरन्नि—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरणि' । उ०—भूपन तोखन तेज तरन्नि सों वैरिन को कियो पानिप हीनो ।—भूपण ग्रं०, पृ० ४८ ।

तरनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] १. नाव । नौका । उ०—रातिहि घाट घाट की तरनी । घाई भगनित जाहि न धरनी ।—मानस, २।२२० । २. वह छोटा मोड़ा जिसपर मिठाई का पाल या खोचा रखते हैं । दे० 'तन्नी' ।

तरनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] उमर के आकार की बनी हुई बीज जिसपर खोमचेवाले भपनी वाली रखते हैं ।

तरन्मुष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] घालाप ।

तरपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तड़प' ।

तरपट^१—वि० [हि० तरिपट] (चारपाई) जो टेढ़ी हो । जिसमें तीन ही पाटी सीधी हो ।

तरपट^२—सञ्ज्ञा पुं० देवापन । भेद ।

तरपत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] १. सुपास । सुवीता । २. भाराम । घेन । उ०—तुँदो सम सर तजत खड मंडत पर तरपत ।—गोपाल (शब्द०) ।

तरपटी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—जुग पानि नामि ताली बनाय । रमि दिष्ट सिष्ट गिरवान राय । तरपटी साध सिख कमल मूर । इष्टि भति साध तप तपनि जुर ।—पृ० १०, १ । ५०४ ।

तरपन^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तर्पण' । उ०—तरपन होम करहि विधि नाना ।—मानस, २ । १२६ ।

तरपना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तडपना' । उ०—तरपे त्रिमि विज्जुल सी पिय पे भरपे भूनाय सदै घर में ।—सुदरी-सर्वस्व (शब्द०) ।

तरपर—क्रि० वि० [हि० तर+पर] १. नीचे ऊपर । २. एक के पीछे दूसरा ।

तरपरिया—वि० [हि०] १. नीचे ऊपर का । २. पहला और दूसरा (सतान) । क्रम में पहला और बाद का (बच्चा) ।

तरपीला^१—वि० [हि० तड़प+ईला प्रत्य०] तड़पवाला । धमकदार ।

तरपू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और धूरे रंग की होती है और मकानों में लगती है । यह पेड़ मलावार और पच्छिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफ—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तरफ] १. ओर । दिशा । चलेंगे । जैसे, पूरव तरफ । पश्चिम तरफ । २. किनारा । पार्श्व । बगल । जैसे, दाहिनी तरफ । बाई तरफ । ३. पक्ष । पासदारी । जैसे,—(क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे ? (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।

यौ०—तरफदार ।

तरफदार—वि० [म० तरफ+फा० दार (प्रत्य०)] पक्ष में रहनेवाला । साथी या सहायता देनेवाला । पक्षपाती । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तरफ+फा० दारी (प्रत्य०)] पक्षपात । क्रि० प्र०—करना ।

तरफना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तडफना' । उ०—यातें घनि भीलनि की तिया । हसनि कदू तरफति है हिया ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६ ।

तरफराना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'तड़फडाना' ।

तरव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तरपना, तड़पना] सारंगी में वे तार जो तौल के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं ।

तर वतर—वि० [फा०] भीगा हुआ । मारें । शराबोर ।

तरवझा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताल+हि० बन] ताल का बन ।

तरवन्ना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तालपण] दे० 'तरवन' ।

तरवहना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तर+वहना] बाली के आकार का तंबू या पीतल का एक बरतन जो प्रायः ठाकुरजी को स्नान कराने के काम में लाया जाता है ।

तरवियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तबियत] १. पालन पोषण करना । देखरेख या परवरिश करना । २. शिक्षा । ३. सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा (की०) ।

तरबूज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० तरबूज, तरबुजह] एक प्रकार की बेर जो

जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। कलीदा। काखिद। कलिंग।

विशेष—ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने पर इनके भीतर फिल्लोदार लाल या सफेद गूदा तथा मीठा रस निकलता है। बीजों का रंग लाल या काला होता है। गरमी के दिनों में तरबूज तरावट के लिये लाया जाता है। पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है। यह बलुए खेतों में, विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों में जाड़े के षट में बोया जाता है। ससार के प्रायः सब गरम देशों में तरबूज होता है। यह दो तरह का होता है—एक फसली या वार्षिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पीछे केवल अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फलते फूलते रहते हैं।

तरबूजई—वि० सं० पु० [क्रा० तरबूज+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूजिया'।

तरबूजा—संज्ञा पु० [क्रा० तरबूज+ई] दे० 'तरबूज'। २. ताजा फल।

तरबूजिया^१—वि० [हि० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का। गहरा हरा। काही।

तरबूजिया^२—संज्ञा पु० गहरा हरा रंग।

तरबोना^१—क्रि० सं० [हि० तर+बोरना] तर करना। अच्छी तरह भिगोना।

तरबोना^२—क्रि० प्र० तर होना। भीगना।

तरबोर—वि० [हि०] दे० 'तराबोर'। उ०—बूढ़े गए तरबोर को कहुं खोज न पाया।—मलुक० पृ० १८।

तरभरा^१—संज्ञा स्त्री० [प्रत्य०] १. तड़भड़ की आवाज। २. खलबली।

तरभाची^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरवाची'।

तरमाना^१—क्रि० प्र० [देश०] बिपड़ना। नाखुश होना।

तरमाना^२—क्रि० सं० किसी की नाराज या नाखुश करना।

तरमाना^३—क्रि० प्र० [हि० तर+माना (प्रत्य०)] तर होना।

तरमाना^४—क्रि० सं० तर करना।

तरमानो—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में आती है।

क्रि० प्र०—माना।

तरमिरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जो या जने के साथ बोया जाता है। तिरा। तिउरा।

विशेष—इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है।

तरमीमा^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] सशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरय्या—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरई'। उ०—जो विशाखा की तरय्या चक्रकला की बवाई करें तो क्या भवभा है।—शकुंतला, पृ० ५१।

तरराना^१—क्रि० प्र० [प्रत्य०] ऐठना। ऐंठाना।

तरलंग—वि० [सं० तरलङ्ग] चपल, चंचल। उ०—भैरवहल कीना भमर, तै दीना तरलंग।—बाकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७।

तरल^३—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। चलायमान। चंचल। चल। उ०—सखत सित सारी उभयो तरल तरीस कान।—बिहारी (शब्द०)। २. अस्थिर। खलुभंगुर। ३. (पानी की तरह) गहनेवाला। द्रव। ४. चमकीला। भास्वर। कांतिकार। ५. खोखला। पोछा। ६. विस्तृत (की०)। ७. लपट (की०)।

तरल^२—संज्ञा पु० १. द्वार। २. बीच की मण्डि। ३. द्वार। ४. होरा। ५. देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम (महाभारते)। ६. तल। पेंदा। ७. घोड़ा।

तरलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। २. द्रवत्व।

तरलनयन—संज्ञा पु० [सं०] एक धनुष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण होते हैं। उ०—नयन सुषर सन्निहित। पिरकि पिरकि फिरत मुदित।

तरलभाव—संज्ञा पु० [सं०] १. पतलापन। २. चंचलता। चपलता।

तरला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यवागू। जो की मड़। २. मदिरा। ३. मधुमक्षिका। शहद की मक्खी।

तरला^२—संज्ञा पु० [हि० तर] छाजन के नीचे का बाँध।

तरलाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तरल+हि० लाई (प्रत्य०)] १. चंचलता। चपलता। २. द्रवत्व।

तरलायित^१—वि० [सं०] हिलाया हुआ। कंपाया हुआ। [की०]।

तरलायित^२—संज्ञा स्त्री० सहर। तरंग। हिलोर [की०]।

तरलित—वि० [सं०] १. तरल किया हुआ। उ०—कही कहे मन को समझा लूँ, ऊँचा के द्रुत भाषाओं या चुट्टि के तरलित उत्पत्तों सा, या वह प्रणय तुम्हारा प्रियनम।—इत्यमर, पृ० २७।

तरवँछ+—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+वँछ (प्रत्य०)] जुए के नीचे की छकड़ी जो बैलों के गले के नीचे रहती है। तरवाँची।

तरवट—संज्ञा पु० [सं०] एक धुप। माहुल्य। दत्तकण्डक [की०]।

तरवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला+ढी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा।

तरवन—संज्ञा पु० [सं० तालपत्र] १. कान में पहनने का एक गहना। तरकी। २. कण्ठफूल।

तरवर^१—संज्ञा पु० [सं० तलवर] बड़ा पेड़। वृक्ष।

तरवर^२—संज्ञा पु० [सं० तलवर] एक प्रकार का लंबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिक्काया जाता है।

विशेष—यह मध्यभारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तिरमिला'।

तरवरिया^१—संज्ञा पु० [हि० तर वार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा^१—संज्ञा पु० [हि० तरवार] दे० 'तरवरिया'।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+मावा] जुए के नीचे की आकृषी ।
मचेरी ।

तरवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरवाँची' ।

तरवाँ—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' । उ०—भँगुरीन
लों जाय मुलाय तही फिरि छाया लुमाय रहै तरवा । अपि
चायनि धूर हूँ एहिनि छूँ अपि घाय छकै छवि छाया छवा ।
—घनानंद, पृ० ८ ।

तरवाई, सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तर+सिर] ऊँची जमीन
और नीची जमीन । पहाड़ और घाटी ।

तरवाना^१—क्रि० प्र० [हि० तरवा+घाना] १ बैलों के तनवों
का बसते बसते घिस जाता जिससे वे खँगाते हैं । २. बैलों
का लँगडाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरवाना^२—क्रि० प्र० [हि० तारना का प्रेरण] तारने की प्रेरणा
करना ।

तरवार^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तलवार' ।

तरवार^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरवर' ।

तरवार^३—वि० [हि० तर (= नीचा, तले) + वार (प्रत्य०)]
निचली । खलार (भूमि) ।

तरवारि—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग का एक भेद । तलवार । उ०—रोष न
रसना जनि छोलिए वर छोलिए तरवारि ।—तुलसी (शब्द०)

तरवारी^१—संज्ञा पुं० [हि० तरवार] तलवार चलानेवाला ।

तरस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बल । २ वेग । ३. बानर । ४ रोष ।
५ तीर । तट ।

तरस्^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रस (= डरना) धयवा क्रा० तसं (= भय,
डर, खोफ)] दया । करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—प्राप्ता ।

मुहा०—(किसी पर) तरस खाना = दयावंत होना । दया करना ।
रहम करना ।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा पाया हुआ जान
पड़ता है । जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है, उसपर दया
प्रायः की जाती है ।

तरस्^२—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०] ।

तरसना^१—क्रि० प्र० [सं० तपण (= घमिखाया)] किसी वस्तु के
प्रभाव में उसके लिये इच्छुक और आकृष्ट रहना । प्रभाव का
दुःख सहना । (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना ।
जैसे,—(क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं । (ख) कुछ
दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे । उ०—दरसन धिनु
पँखियाँ तरस रही ।—(गीत) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

तरसना^२—क्रि० प्र० [सं० त्रस्] त्रस्त होना ।

तरसना^३—क्रि० प्र० त्रस्त करना । त्रास देना ।

तरसा—क्रि० वि० [सं० तरस्] शीघ्र । उ०—कमलनोचन क्या
कल भा गए, पलट क्या कुकपाल किया गई । मुरखिका फिर

क्यों वन में बजी । वन रसा तरसा बरसा सुधा ।—प्रिय०
पृ० २२८ ।

तरसान—संज्ञा पुं० [सं०] नौका [को०] ।

तरसाना—क्रि० प्र० [हि० तरसना] १. प्रभाव का दुःख होना
किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त कराकर उसके लिये बेचैन
करना । २. किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करना
उससे वंचित रखना । व्यर्थ ललचाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—मारना ।

तरसि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरसा' । उ०—तरसि पधार हूँ
सप्यारी । धीर तणो प्रायो प्रतपारी ।—रा० क०, पृ० १८

तरसौहाँ^१—वि० [हि० तरसना + प्रोहो (प्रत्य०)] तरसनेवाला
उ०—तिय तरसौहैं मुनि किए करि सरसौहैं मेह । घर परसौ
हैं रहे भर बरसौहैं मेह ।—बिहारो (शब्द०) ।

तरस्वान्—वि० [सं० तरस्वत्] १ तेज गतिवाला । वेगवान् । २ धीर
और भीमार तरुण [को०] ।

तरस्वान्^२—संज्ञा पुं० १ शिव । २ गरुड । ३ वायु [को०] ।

तरस्वी^१—वि० [सं० तरस्विम्] [वि० स्त्री० तरस्विनी] १. छद्म
बन्नी । उ०—बली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि
ऊर्ज, प्रवणि, भास्वरि, सुभट, राधे जिन करि मान ।—नंद
प्र०, पृ० ११३ । २ वेगवान् । फुर्तीला ।

तरस्वी^२—संज्ञा पुं० १. धावक । दूत । २. नायक । वीर । ३. पवन
वायु । ४ गरुड [को०] ।

तरह—संज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रकार । भाँति । किस्म । जैसे,—यहाँ त
तरह की चीजें मिलती हैं ।

मुहा०—किसी की तरह = किसी के समान । किसी के समान
जैसे,—उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं है ।

२. रचना प्रकार । ढाँचा । शैली । डील । पद्धति । बनावट
रूपरंग । जैसे,—इस छोट की तरह अच्छी नहीं है । ३ ठा
तर्ज । प्रणाली । रीति । ढंग । जैसे,—वह बहुत खुरी तरह
पढ़ता है ।

मुहा०—तरह उठाना = ढंग की नकल करना ।

४. युक्ति । हथ । उपाय । जैसे,—किसी तरह से स
रूपया निकालो ।

मुहा०—तरह देना = (१) खयाल न करना । बचा जान
विरोध या प्रतिकार न करना । क्षमा करना । जाने देना
उ०—इन तेरह तें तरह दिए बनि पावे साईं ।—गिरि
(शब्द०) । (२) टालहल करना । ध्यान न देना ।

५. झाल । दशा । अवस्था । जैसे,—भाजकल उनकी
तरह है ?

६. समस्या । पद्य का एक चरण ।

मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना ।

७. व्यास । नींव । बुनियाद । ८ घटाना । घाकी । व्यवकल
तफरीक । ९. वेशभूषा । पहनावा ।

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे) + हट (प्रत्य०)] १ नी
भूमि । २. पहाड़ की तराई ।

तरहदार—वि० [छ० तरह + फा० दार (प्रत्य०)] १ सुंदर बनावट का। अच्छी चास या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छोट। २ सजधजवाला। शोकीन। वजादार। जैसे, तरहदार मादमी।

तरहदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] वजादारी। सजधज का ढग।

तरहरा—क्रि० वि० [हि० तर + हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—जम करि मुँह तरहर परधो इहि घर हरि चित लाइ। बिषय त्रिषा परिहरि अज्यो नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

तरहर—वि० १ नीचा। तले का। नीचे का। २ निकट। बुरा।

तरहरि—क्रि० वि० [हि० तर + हरि (प्रत्य०)] नीचे।

तरहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तर + हा (प्रत्य०)] १. कुर्मी खोदने में एक माप जो प्रायः एक हाथ की होती है। २. यह कपड़ा जिसपर मिट्टी केबाकर कड़ा ढाँचने का साँचा बनाते हैं।

तरहारि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तरहर'।

तरहेल—वि० [हि० तर + हर, हल (प्रत्य०)] १. मधीन। निम्नस्थ। २. वश में आया हुआ। पराजित। उ०—तो जोपड़ खेली करि होया। जो तरहेल होय सो तोया।—आयसी (शब्द०)।

तरांधु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरांधु] थोड़े पैदे की नाव [को०]।

तराँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तराना'।

तराँ—अव्य० [सं० तदा] तब। उ०—मन्तो जरा विवाह री, तराँ विचारी डीछ।—रा० ल०, पृ० ८२।

तराँ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पटुआ। पटसन।

तरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तला] १ दे० 'तला'। २ दे० 'तलवा'।

तराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तर (= नीचे) + आई (प्रत्य०)] १ पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीढ़ या तरो रहती है। जैसे, नेपाल की तराई। २. पहाड़ी की घाटी। ३. मुँज के मुँह जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।

तराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तलाई] छोटा ताल। तलेया।

तराय—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तराय (= फाट छोट)] दे० 'तराय'। उ०—धवर फारि कागज फर, एजी कोई ऊँगली तराय लखम।—पोद्दार० अभि० प्र०, पृ० ६४५।

तराजू—सञ्ज्ञा स्त्री०, पुं० [फ्रा० तराजू] रस्सियों के द्वारा एक सीधी ढाँड़ी से छोरों से बँधे हुए दो पलकों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तोल मापना करते हैं। तोलने का यंत्र। मुखा। डकड़ी।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) तीर का निशाने के इस प्रकार धारदार घुसना कि उसका आधा भाग एक छोर, छोर आधा दूसरी छोर निकला रहे। (२) दो सैनिक दलों का इस

प्रकार ठीक ठीक धराधर होना कि एक दूसरे को परास्त न कर सके।

तराटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रिकुटी संग भ्रूमय तराटक नैव नैन लपि लाये।—पोद्दार० अभि० प्र०, पृ० ११८।

तरातर—वि० [फा० तर (= गीला)] प्रत्यत गीला। प्राद्रं। उ०—चलत पिचुका घर पिचकारी करत तरातर।—प्रेमघव०, भा० १, पृ० ३४।

तरात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बिना आज्ञा लिए नदी पार करने का जुरमाना [को०]।

तराना—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तरानह] १. एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोध इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दि मा बा रे रे बी मू ता दी मू वा ना ना वे रे ता दा रे बा नि ता ना ना है रे ना ता ना ना वे रे ना ता ना ना ता ना तोम् देर ता रे दा नी।

विशेष—तराना हर एक राय का हो सकता है। इसमें कभी कभी सरपम धीरे तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं।

२. कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत।—(भव०)।

तराना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तराना'।

तराना—क्रि० प्र० [हि० तर छे नामिक धातु] दे० 'तरमाना'।

तराप—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बंदूक, तोप आदि का शब्द। उ०—सेन मफमान सेन सगर सुतन छागी कपिल सराप सौ तराप तोपखाने की।—सूषण (शब्द०)।

तरापा—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। आहि आहि। उ०—परी घमेंसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोकवस काँपा।—सुबसिंह (शब्द०)।

तरापा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तरना] पानी में तैरता हुआ शहतीर। बेड़ा।—(सध०)।

तराबोर—वि० [फ्रा० तर + हि० बोरना, शुद्ध रूप फ्रा० शराबोर] खूब सीगा हुआ। खूब-हुवा हुआ। सराबोर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तर (= नीचे)] १. मुँज के वे मुँह जो छाजन में खपरल के नीचे दिए जाते हैं। २. जुए के नीचे भी खकड़ी।

तरामोरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] सरसों की तरह का एक पोधा जिसके बीजों से तेल निकलता है।

विशेष—उधरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चोपायों को खिलाई जाती है। इसे दुर्गा भी कहते हैं।

तरायल—वि० [देश०] तेज। वेगवान्। फुर्तीला। त्वरावान्। शीघ्रप। उ०—मागे मागे तरन तरायले चलत चले।—सूषण प्र०, पृ० ७३।

तरारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश० या घनु० ?] १ उछाल । छलांग । कुलाँव ।
क्रि० प्र०—भरना ।—मारना ।

मुहा०—तरारा भरना = जल्दी जल्दी काम करना । फरटि के साथ काम करना । तरारा मारना = डींग हँकना । बढ़ बढ़कर बातें करना ।

२ पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे ।

तरारा^२—वि० [फा० तर + हिं० घारा (प्रत्य०)] गोला । सजल ।
घाट्रं । उ०—घाए जब मोहन रंग भरे । क्यों मो नैन तरारे
करे ।—नद० पं०, पु० १५२ ।

तरालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छिछने पड़े की एक बड़ी नाव [को०] ।

तरावट—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तर + हिं० घावट (प्रत्य०)] १ गोला-
पन । नमी । २ ठंडक । शीतलता । जैसे,—सिर पर पानी
पड़ने के तरावट आ गई ।

क्रि० प्र०—घाना ।

१. कसावट बिच को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ । शरीर
की गरमी घात करनेवाला आहार प्रावि । ४ स्निग्ध भोजन ।
जैसे, घी, दूध प्रावि ।

तराश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ काटने का ढग । काठ । २. काट-
छाँट । बनावट । रचनाप्रकार ।

यौ०—तराश खराश ।

३ ढग । तर्जं । ४ ताश या गंजीके का वह पत्ता जो ६
के बाद हाथ में आवे ।

तराश खराश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] काटछाँट । कतरन्योत । व
तराशना—क्रि० सं० [फा०] काटना । कतरना । कलम करना ।

तरास^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास' ।

तरास^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तराश] दे० 'तराश' ।

तरासना^३—क्रि० सं० [सं० त्रास + ना (प्रत्य०)] भय दिलायाना
डराना । तस्त करना । उ०—समक बीजु घन गरजि तरासा ।
बिरह काल होइ जीव तरासा ।—जायसी (शब्द०) ।

तरासा^४—वि० [सं० तृपिज] प्यासा ।

तरासा^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] प्यासा ।

तराहि^६—प्रत्य० [सं० त्राहि] दे० 'त्राहि' ।

तराही^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरे' ।

तरिका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तरना + इका (प्रत्य०)] वह पीपा जो
समुद्र में किसी स्थान पर जगर के द्वारा बाँध दिया जाता है
और लहरों के ऊपर उतराया रहता है ।—(सं०) ।

विशेष—ये पीपे जटान प्रादि की सूखवा के लिये बाँधे जाते हैं
और कई प्रकार प्रकार के होते हैं । इनमें से किसी किसी में
गुदा, सीटी प्रादि भी लगी रहती है ।

तरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका । नाव । २ कपड़ों का पिटारा ।
३ कपड़े का छोर । घामन ।

तरिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तल में तैरनेवाली सड़की । बेड़ा । २.
४-४७

नाव का महसूल लेनेवाला । उतराई लेनेवाला । ३ मल्लाह ।
केवट । माँझी ।

तरिका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २. मक्खन [को०]

तरिका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । बिद्युत ।

तरिकी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरिकिन्] माँझी । मल्लाह [को०] ।

तरिको^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडक] कान का एक गहना । तरकी ।
तरीना । उ०—तैं कत तोरधो द्वार नौसरि को मोती बपरि
रहे सब बन में गयो कान को तरिको ।—सूर (शब्द०) ।

तरिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तरणी [को०] ।

तरिता^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तर्जनी उँगली । २ माँग । ३
गाँत्रा ।

तरिता^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । उ०—भरपै भरी
कोँधे कडै तरिता तरपै पुनि लाल छटा में धिरी ।—पद्मनेस
(शब्द०) ।

तरित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तरित्रो] बड़ी नाव । नौका । पोत ।
[को०] ।

तरित्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाव । नौका [को०] ।

तरिया^६—[हिं० तरना] तैरनेवाला ।

तरियाना^७—क्रि० सं० [हिं० तरे (= नीचे)] १. नीचे कर देना ।
नीचे डाल देना । तह में बैठ देना । २ डीकना । छिपाना । ३
घट्टप के पेंदे में मिट्टी राख प्रावि पोतना जिससे प्राँच पर बढ़ाने
में उसमें कालिख न जमे । लेवा लगाना ।

तरियाना^८—क्रि० प्र० तले बैठ जाना । तह में जमना ।

तरियाना^९—क्रि० सं० [फा० तर से नामिक धातु] तर करना ।
गोसा करना ।

तरिवन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ताड़] १ कान का एक गहना । जो फूल
के आकार का होता है । तरकी ।

विशेष—इसका वह भाग जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के
पत्ते को लपेटकर बनाया जाता है ।

२ कण्ठफूल ।

तरिखर^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरु + वर] दे० 'तरुवर' ।

तरिहृत + —क्रि० वि० [हिं० तर + हृत, हृत (प्रत्य०)] नीचे ।
तले । उ०—बुधि जो गई दे दिय बीराई । गवें गयो तरिहृत
सिर नाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाव । नौका । २. गदा । ३. कपड़ा
रखने का पिटारा । पेटी । ४. धुप्रा । धूम । ५ कपड़े का
छोर । घामन ।

तरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ गोलापन । घाट्रंता । २ ठंडक ।
शीतलता । ३. वह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत
दिनों तक इकट्ठा रहता हो । कच्चार । ४. तराई । तरहटी ।
५. सपृद्धि । घनाढ्यता । मासबारी ।

तरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे)] १. जूते का तला । २.
तलछट । तलौघ ।

तरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० तरा] कान का एक गहना । तरिवन । कण्ठफूल । उ०—काने कनक तरी बर बेसरि सोहहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तरी०—संज्ञा स्त्री० [हि०] चाल । भ्रमण । उ०—बैठे सुंदर कमल को हंस ग्रहण करे तैसे पिता का चरण ग्रहण किया । जैसे कमल के तरे कोमल तरियाँ होती हैं, तिन तरियों सहित कमल को हंस पकड़ता है, तैसे दशरथ जी की भोगुरीन को राम जी ने ग्रहण किया ।—योग०, पृ० १३ ।

तरीक०—क्रि० वि० [देश० तड़का, तड़के] प्रातःकाल । तड़का । सबेरा । उ०—कहै साहि गोरी गश्म ग्रहो पान ततार । कलिह तरीक सुठं च दिन चढ़ि प्ररि सद्धो सार ।—पु० रा०, १।६३ ।

तरीक०—संज्ञा पुं० [म० तरीक] १. मार्ग । रास्ता । शैली । रविष । उ०—बाद चढे हजरते शेखे शफीक, बाकिफ्रे प्रसरारे हुक हादी तरीक ।—दक्खिनी०, पृ० २०३ । २. परपरा । रिवाज । ३. धर्म । भजह्व । ४. युक्ति । तरीक । ५. नियम । दस्तूर ।

तरीकत०—संज्ञा स्त्री० [म० तरीकत] १. आत्मशुद्धि । अतःशुद्धि । दिल की पवित्रता । २. ब्रह्मज्ञान । अघ्यात्म । तसब्बुफ । उ०—यूँ ले निद्रा सुख सपने का जागा कन बैठे, राह तरीकत मारग उनके मुस्तीद होकर छठे ।—दक्खिनी०, पृ० ५५ ।

तरीका—संज्ञा पुं० [म० तरीकह] १. ढग । विधि । रीति । प्रकार । ढब । २. चाल । व्यवहार । ३. युक्ति । उपाय । तबदीर । तरीक ।

तरीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूखा गोबर । २. नौका । नाव । ३. पानी में बहनेवाला तश्ता । वेड़ा । ४. समुद्र । ५. व्यवसाय । ६. स्वर्ग । ७. कुशल व्यक्ति (को०) । ८. सजावट (को०) । ९. सुंदर आकार या आकृति (को०) ।

तरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध की कन्या ।

तरु०—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । पेड़ । २. गति । वेग (को०) । ३. काठ का एक पात्र जिसमें सोम लिया जाता था (को०) । ४. एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहाड़ी, चटगाँव और बरमा में होते हैं ।

विशेष—इसमें से जो विरोजा या गोंद निकलता है, वह सबसे अच्छा होता है । तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है ।

तरु०—वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

तरुआ०—संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए धान का चावल । मुजिया चावल ।

तरुआ०—संज्ञा पुं० [हि० तलवा] दे० 'तलवा' ।

तरुटी०—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'श्रुति' । उ०—भंडारा समाप्त हो गया । कोई तरुटी नहीं हुई ।—मैला०, पृ० ४८ ।

तरुण०—वि० [सं०] [वि० स्त्री तरुणी] १. युवा । जवान । २. नया । नूतन ।

तरुण०—संज्ञा पुं० १. बड़ा जीरा । स्थूल जीरक । २. एरंड । रेंड । ३. कृष्ण का फूल । मोतिया ।

तरुणक—संज्ञा पुं० [सं०] भंक्रुर [को०] ।

तरुणज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो सात दिन का हो गया हो ।

तरुणतरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरुण सूर्य' ।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है ।

तरुणपीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

तरुणसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य ।

तरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । उ०—भव अणुव की तरुणी तरुणा । बरसीं तुम नयनों से करुणा ।—भर्चना०, पृ० १ ।

तरुणाई०—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी ।

तरुणाना०—क्रि० प्र० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना । युवावस्था में प्रवेश करना ।

तरुणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली सखीसी हड्डी ।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणिमन्] जवानी [को०] ।

तरुणी०—वि० स्त्री० [सं०] युवती । जवान स्त्री ।

तरुणी०—संज्ञा स्त्री० १. युवती । जवान स्त्री ।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए ।

२. धौकुमार । त्वारपाठा । ३. दंती । जमालगोटा । ४. शीशा नामक गंधद्रव्य । ५. कृष्ण का फूल । मोतिया । ६. मेष राग की एक रागिनी ।

तरुणीकटाक्षमाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिलक वृक्ष ।

विशेष—कवि समय के अनुसार तिलक का वृक्ष तरुणियों की कटाक्ष दृष्टि से पुष्पित होता है । अतः इसका एक नाम 'तरुणीकटाक्षमाल' है ।

तरुतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

तरुन०—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] दे० 'तरुण' ।

तरुनई०—संज्ञा स्त्री० [हि० तरुन + ई (प्रत्य०)] दे० 'तरुनाई' ।

तरुना०—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तरुण' । उ०—ऐसे बिरह बिकल कल बैन । सुनि के तरुना करना ऐन ।—नंद प्र०, पृ० ३२१ ।

तरुनाई०—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + हि० आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था । जवानी ।

तरुनापा०—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + हि० आपा (प्रत्य०)] युवावस्था । जवानी । उ०—बालापन खेलत में स्त्रीयो तरुनापे गरबानी ।—सूर (शब्द०) ।

तरुनी०—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] दे० 'तरुणी' । उ०—ब्रज तरुनि रमन आनंदधन चातकी निसद भद्रभुत प्रखरित जगत आनी ।—घनानंद, पृ० ३८६ ।

तरुवाही०—संज्ञा स्त्री० [सं० तरु + हि० बाहि] पेड़ की मुष्ठा । शाखा । डाल । उ०—इक सशय फल है तरु माहीं । पाँच कोटि दल हैं तरुवाही ।—सदल मिश्र (शब्द०) ।

तरुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] बंदाक । बाँदा ।

तरुभुज—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुज] दे० 'तरुभुक्' ।

तुराग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता । किसलय ।
 तुराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष । २. ताड़ का वृक्ष ।
 तुरगहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
 तुरोहिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा । बदाक ।
 तुरवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष ।
 तुरवरियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तरवारि तलवार ।
 तुरवल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जलका लता । पानड़ी ।
 तुरवासिनी—वि० [सं०] तुर + वासिनी । पेड़ पर रहनेवाली । उ०—
 कूक उठी सहसा तुरवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना । किसने
 तुझको अतर्पामिनि ! बतलाया उसका भाना ?—वीणा,
 पृ० ५८ ।

तुरसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।
 तुरस्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा ।
 तुरुट, तुरुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़ । भसीड़ । मुरार ।
 तुरेदा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तरण्ड १. पानी में तैरता द्रुमा काठ । वेडा ।
 २. वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें ।
 उ०—सिंह तुरेदा जेइ गहा पार भयो तिहि साथ । ते पय
 बूडे वारि ही भेड पूछ जिनि हाथ ।—जायसी (शब्द०) ।

तुरे'—क्रि० वि० [सं०] नीचे । तले ।
 मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना ।
 तुरे'—वि० [हि०] दे० 'तरह' । उ०—बाने की लाज राख्यो
 तुमसे है सब इलाखी । गलबाहियाँ भानि नाखी रस उस तरे
 ही खाखी ।—ब्रज प्र०, पृ० ४४ ।

तुरेटी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तर + एट (प्रत्य०)] नाभि के नीचे का
 हिस्सा । पेड़ ।

तुरेटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तर] पर्वत के नीचे की भूमि । तराई ।
 तरहटी । तलहटी । घाटी ।

तुरेड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तुरेरा', 'तरारा' ।

तुरेरेना—क्रि० सं० [सं०] तर्ज (= डाटना) + हि० हेरना (= देखना)]
 भाँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट
 हो । दृष्टि कुपित करना । भाँख के इशारे से डाँट बताना ।
 दृष्टि से असम्मत या असतोष प्रकट करना । उ०—सुनि
 सखिमन बिहूँसे बहुरि नयन तुरेरे राम ।—मानस, १।२७८ ।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ भाँख या उसके
 पर्यायवाची शब्द पाते हैं ।

तुरेरा'—सञ्ज्ञा [सं०] तरारहूँ लहरों का थपेड़ा ।

तुरेरा'—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तुरेरेना । क्रुद्ध दृष्टि ।

तुरेसाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुर + ईश, या देश०] कल्प वृक्ष । उ०—दड़-
 काल करगा तुरेस सी गणेश देत ।—रघु० ६०, पृ० २४६ ।

तुरैनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तर (= नीचे) + ऐनी (प्रत्य०)] वह पक्षी
 जो हरिष और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है ।

तुरैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरई' ।

तुरेखा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तुरे' किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

तुरैली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरैली' ।

तुरौचाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तर = नीचे + आँख (प्रत्य०), या देश०]
 १. कंधी के नीचे की लकड़ी । २. दे० 'तुरौछ' ।

तुरौचाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तर (= नीचे)] [स्त्री०] तुरौची] जुए के नीचे
 की लकड़ी ।

तुरौडा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना भनाज जितना हलवाड़े
 आदि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है ।

तुरोई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई' ।

तुरोता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तरवट] एक लंबा पेड़ जो मध्यभारत और
 दक्षिण भारत में पाया जाता है । इसकी छाल चमड़ा सिम्हाने
 के काम में आती है । इसे 'तखर' भी कहते हैं ।

तुरोना—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरोना' । उ०—प्रभा तुरोना लाल
 की परी कपोलन भानि । कहा छपावत तुर तिय कत दत
 छत जानि ।—नद० प्र०, पृ० ३३५ ।

तुरोवर, तुरोवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तखर] दे० 'तखर' । उ०—
 रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई सौवरे गात । काम तुरोवर
 सौवरी, ब्रज बनिता ही पात ।—नद० प्र०, पृ० १८६ ।

तुरौछ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तर + आँख (प्रत्य०)] तलछट ।

तुरौछी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तर + आँखी (प्रत्य०)] १. वह लकड़ी
 जो हल में नीचे की तरफ लगी रहती है ।—(जुलाहे) । २.
 बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो मुजावा के नीचे
 रहती है ।

तुरौटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का
 नीचेवाला पाट । जाँते के नीचे का पत्थर ।

तुरौता—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तर + मोटा (प्रत्य०)] छाजन में वे
 लकड़ियाँ जो ठाठ के नीचे ली जाती हैं ।

तुरौस—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तर + आँख (प्रत्य०)] तड़ । तीर ।
 किनारा । उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा
 तीर । भंसुनि करति तुरौस की छिनक खरौही नीर ।—
 बिहारी (शब्द०) ।

तुरौना—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ताड़ + बना] १. कान में पहनने का एक
 गहना जो फूल के आकार का गोल होता है । तरकी ।
 (इसका वह प्रश्न जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते
 की गोल लपेटकर बनाया जाता है) ।

विशेष—दे० 'तरकी', 'ताड़क' ।

२. कर्णफूल नाम का आभूषण । उ०—लसत सेत सारी दियो
 तरल तुरौना कान ।—बिहारी (शब्द०) ।

तुरौना—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तर (= नीचे)] वह मोड़ा जिसपर मिठाई
 का सोंचा रखा जाता है ।

तुरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के विषय में प्रज्ञात तत्व को
 चि द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार ।
 २. विवेचना । दलील ।

विशेष—तर्क न्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है । जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्व ज्ञात नहीं होता, तब उस तत्व के ज्ञानार्थ (किसी निगमन के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति दी जाती है जिसमें विरुद्ध निगमन की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है । ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं । तर्क में शका का होना भी आवश्यक है, क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी, तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति दी जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है वैसा नहीं । जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य । यहाँ आत्मा का यथार्थ रूप ज्ञात नहीं है । उसका यथार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं,—यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और उसका प्रावागमन या मोक्ष न हो सकता । पर इन सब बातों का होना प्रसिद्ध ही है । अतः आत्मा नित्य है, ऐसा मानना ही पड़ता है ।

२. अमस्कारपूर्ण चर्चा । बुद्ध की बात । शेष की बात । चतुर्थाई से भरी बात । उ०—प्यारी को मुख थोड़े के पट पोंछि संवारयो । तरु वात बहुते कही कुछ सुधि न संभारयो । —सुर (शब्द०) । ३. व्यंग्य । ताना । उ०—दे सब तर्क बोलिहैं मोकों तासों बहुत बेराऊँ । —सुर (शब्द०) । ४. धारणा । अनुमान (को०) । ५. विचार । विचारणा । ऊहा । वितर्क (को०) । ६. शुद्ध या स्वतंत्र चिंतन के आधार पर स्थापित विचार व्यवस्था (को०) । ७. छद्म की स्रष्टा (को०) । ८. कारण (को०) । ९. इच्छा । प्राकाशा (को०) । १०. न्यायशास्त्र (को०) । ११. ज्ञान (को०) । १२. अर्थवाद (को०) ।

यौ०—तर्कशील = तर्क में प्रवीण । तार्किक । तर्क करनेवाला । उ०—प्राचीन हिंदू बड़े तर्कशील थे । —हिंदु० सभ्यता पृ० ६२ ।

तर्क^१—सज्ञा पुं० [भ०] १. त्याग । छोड़ना । २. छूटना । क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—तर्कभ्रम = भ्रमिष्ठता । प्रसभ्यता । तर्कदुनिया = साधु या फकीर हो जाना ।

तर्कक—सज्ञा पुं० [सं०] १. तर्क करनेवाला । तर्कशास्त्री । तार्किक । २. याचक । मंगता ।

तर्कण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्कणीय, तर्क्य] तर्क करने की क्रिया । बहुस करने का काम ।

तर्कणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचार । विवेचना । ऊहा । २. युक्ति । दलील ।

तर्कना^१—सज्ञा स्त्री० [सं० तर्कणा] दे० 'तर्कणा' ।

तर्कना^२—क्रि० प्र० [सं० तर्क + ना (प्रत्य०)] तर्क करना ।

तर्कना^३—क्रि० प्र० [हि०] उछलना । कूदना ।

तर्कमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा ।

तर्कवितर्क—सज्ञा पुं० [सं०] १. ऊहापोह । विवेचना । सोच विचार । २. वाद विवाद । बहुस ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर्कविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र । [को०] ।

तर्कश—सज्ञा पुं० [क्रा०] तीर रखने का चोंगा । भाषा । तूणीर ।

तर्कशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हों । सिद्धांतों के खंडन मंडन की शैली बतानेवासी विद्या । २. न्याय शास्त्र ।

तर्कस—सज्ञा पुं० [फा० तरकश] दे० 'तर्कश' ।

तर्कसी—सज्ञा स्त्री० [क्रा० तरकश] छोटा तरकश ।

तर्का—सज्ञा स्त्री० [सं०] तर्क [को०] ।

तर्काट—सज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक । याचक [को०] ।

तर्कातीत—वि० [सं०] तर्क से परे । उ०—तर्कातीत श्रद्धा से हटकर एक बुद्धिघटत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया । —नदी०, पृ० १०१ ।

तर्काभास—सज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो । कुतर्क ।

तर्कारी^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. मंगेधू का बूझ । भरणी बूझ । २. जैत का पेड़ ।

तर्कारी^२—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकारी' ।

तर्कीण—सज्ञा पुं० [सं०] चकवेंड । पेंवार ।

तर्किल—सज्ञा पुं० [सं०] चकवेंड । पेंवार ।

तर्की^१—सज्ञा पुं० [सं० तर्किन] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला ।

तर्की^२—सज्ञा स्त्री० [हि०] टरकी । पत्नी ।

तर्की^३—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरकी' ।

तर्कीव—सज्ञा स्त्री० [हि० तरकीब] दे० 'तरकीब' ।

तर्कु—सज्ञा पुं० [सं०] तर्कला । टेकुमा ।

यौ०—तर्कुशाण = सान धरने का पत्थर ।

तर्कुक—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी [को०] ।

तर्कुट—सज्ञा पुं० [सं०] काटना [को०] ।

तर्कुटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्कला । टेकुमा । २. काटना [को०] ।

तर्कुपिंड, तर्कुपीठ, तर्कुपीठी—सज्ञा पुं० [सं० तर्कुपिण्ड] तर्कले की फिरकी ।

तर्कुल—सज्ञा पुं० [सं० ताड़ + कुल] १. ताड़ का पेड़ । २. ताड़ का फल ।

तर्क्य—वि० [सं०] जिसपर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो । विचार्य । चिंत्य ।

तर्कु—सज्ञा पुं० [सं०] तेंदुसा या चोता नामक जंतु ।

तर्क्य—सज्ञा पुं० [सं०] जवाहार नमक ।

तर्कशा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तर्कश' । उ०—ना तर्कश न धन खडे ना सिपर तलवारि । —प्राण०, पृ० २८६ ।

तर्ज—सज्ञा पुं०, स्त्री० [भ० तर्ज] १. प्रकार । किस्म । तरह । २. रीति । शैली । डग । डब । जैसे, बातचीत करने का तर्ज । जैसे,—इस छोट का तर्ज अच्छा नहीं है ।

तर्जन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्जित] १. घमकाने का कार्य । अयग्रहण । २. श्लेष । ३. तिरस्कार । फटकार । डाँट छपट ।

यौ०—तर्जनं गर्जनं = डाँट फटकार । क्रोधप्रदयंत्र ।

तर्जना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जन' [को०] ।

तर्जना^२—क्रि० प्र० [सं० तर्जन] डाँटना । धमकाना । डपटना ।

तर्जनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घेंगूठे के पास की उँगली । घेंगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली । प्रदेशिनी । उ०—इहाँ कुम्हड़ बतिया कोठ नाहीं । जे तर्जनी देखि भरि जाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं ।

तर्जनीमुद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तर्जनी की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुठ्ठी बाँधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं ।

तर्जिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम । ताजिक देश ।

तर्जित—वि० [सं०] १. डाँटा या फटकारा हुआ । धमकाया हुआ । २. धमकावित । तिरस्कृत [को०]

तर्जुमा—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] भाषांतर । सल्फा । अनुवाद ।

तर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा । बछवा ।

तर्णक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तुरत जन्मा हुआ गाय का बछड़ा । २. शिशु । बच्चा ।

तर्णि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणि' ।

तर्तरीक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चाव ।

तर्तरीक^२—वि० १. पार जानेवाला । २. पार ले जानेवाला (को०) ।

तर्दू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोई [को०] ।

तर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] १. तृप्त करने की क्रिया । सन्तुष्ट करने का कार्य । २. कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि और पितरों को तुष्ट करने के लिये द्वाप या घरमे से पानी देते हैं ।

विशेष—मध्याह्न स्नान के पीछे तर्पण करने का विधान है ।

क्रि० प्र०—करता ।—होता ।

१ पक्ष की अग्नि का ईंधन (को०) । ४. भोजन । आहार (को०) ।

५. पाल में तेज डालना (को०) ।

तर्पणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी का वृक्ष । २. गंगा नदी ।

तर्पणी^२—वि० तृप्ति देनेवाली ।

तर्पणीय—वि० [सं०] तृप्ति के योग्य ।

तर्पिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पक्ष्माणिणी खता । स्पल कमखिरी । स्पलपक्ष ।

तर्पणेच्छु^१—वि० [सं०] १. तर्पण करने की इच्छा । २. तर्पण कराने की इच्छा [को०] ।

तर्पणेच्छु^२—सञ्ज्ञा पुं० शीघ्र [को०] ।

तर्पित—वि० [सं०] तृप्त किया हुआ । सन्तुष्ट किया हुआ ।

तर्पी—वि० [सं० तर्पित] [वि० स्त्री० तर्पिणी] १. तृप्त करनेवाला । सन्तुष्ट करनेवाला । २. तर्पण करनेवाला ।

तर्फ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तरफ' । उ०—क्या हुआ पार छिप

गया किस तर्फ । एक भलक ही मुझे दिखा करके ।—भारतेंदु य०, भा० २, पृ० २२० ।

तर्घट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवेङ्ग । पेंवार । २. चादर वस्त्र । वर्ष ।

तर्वियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा दीक्षा । उ०—भाप ही की तापीम और तर्वियत का यह घर है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१ ।

तर्वूज—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरबूज' ।

तरघोना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरौना' ।

तरघोना^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तरौना] दे० 'तरौना' । उ०—पत्नी तरघोना ही रह्यो श्रुति सेवत इकर ग । बाक बास बेसरि लह्यो बति मुकुतनि के संग ।—बिहारी २०, दो० २० ।

तरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बँधी रहती है ।

तराना—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० तरावा] एक प्रकार का गाना । दे० 'तराना' तराना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चराना' ।

तरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे भैंसे बड़े प्रेम से खाती हैं ।

तर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अभिषापा । २. तृष्णा । घसतोष । उ०—देव शोक संदेह मय हृषं तम तर्पं गन साधु सद्युक्ति बिच्छेद-कारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. वेङ्ग । ४. समुद्र । ५. सूर्य ।

तर्पक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुफ का एक भेद ।—माधव०, पृ० ५८ ।

तर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पित] १. पिपासा । व्यास । १. अभि- लाषा । इच्छा ।

तर्पित—वि० [सं०] १. व्यास । २. जो सालसा किए हो । इच्छुक ।

तर्पुल—वि० [सं०] दे० 'तर्पित' [को०] ।

तर्स—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तरस' । उ०—तर्स है यह देर से, प्राँहिं यजो शृंगार में ।—वेला, पृ० ६७ ।

तर्ह—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तरह' ।

यौ०—तर्ह मदाज = तर्ह भक्षण = नीचे डालनेवाला । बुनियाद रखनेवाला ।

तर्हदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० तरह + क्रा० दारी (प्रत्य०)] १. बाँकापन । छद्मोत्पापन । साजसज्जा । १. हाव भाव । नाज मखरा । ३. हुस्न । सौंदर्य । उ०—हे नई सजावट नई तर्हदारी है । सब कहो किससे आजकल नई पारी है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६४ ।

तर्हे^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० तर्ह] दे० 'तरह' । उ०—काशी पडत घरो पाव बहोत तर्हे से मनाव ।—दक्खिनी०, पृ० ४६ ।

तल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का भाग । २. पैदा । तल । १. जल के नीचे की भूमि । ४. वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो । जैसे, तख्तल ।

मुहा०—तल करना = नीचे बसा देना । छिपा लेना ।—(जुमारी) ।

५. पैर का तलवा । ६. हथेली । ७. चपल । घपड़ । ८. किसी वस्तु का पाहरी कैलाव । बाहर विस्तार । पुच्छदेश । सतह । जैसे,—भूतल, परातल, समतल । ९. स्वरूप । स्वभाव । १०.

कानन । जंगल । ११ गढ़वा । गढ़वा । १२. चमड़े का वल्ला जो घनुष की डोरी की रगड़ बचाने के लिये बाईं बांह में पहना जाता है । १३. घर की छत । पाटन । जैसे, चार तला मकान । १४ ताड़ का पेड़ । १५. मुठिया । मुठ । दस्ता । १६ वाएँ हाथ से वीणा बजाने की क्रिया । १७. गोधा । गोह । १८ कलाई । पहुँचा । १९ बालिशत । बित्ता । २० आधार । सहारा । २१. महादेव । २२ सप्त पातालों में से पहला । २३ एक नरक का नाम । २४ चद्दयेय (को०) । २५. मूल । कारण (को०) । २६ ताल । तलाव (को०) ।

तलक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ताल । पोखरा । २ एक फल का नाम ३. सिंगरी । भोगीठी (को०) ।

तलक^२—अव्य० [हिं० तक] तक । पर्यंत ।

तलकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है ।

तलकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ ।

विशेष—यह पंजाब, अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में होता है । इसकी लकड़ी लसाई लिए भूरी होता है और खेती के सामान बनाने तथा मकानों में लगाने के काम में आती है ।

तलकीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० तलकीन] १ शिक्षा । उपदेश । २ दीक्षा देना । गुहमन्त्र देना । पीर का मुरीद को भ्रमल आदि पढ़ाना (को०) ।

तलख—वि० [फ्रा० तलख] १ कड़भा । अप्रिय । २ अरुचिकर । नागवार । उ०—तेरी जैसी राक्षसिन के हाथ में पड़कर ज़िदगी तलख हो गई ।—गोदान, पृ० ५७ ।

तलखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलखी] कड़वाहट । कटुता । कड़वापन । उ०—हिप्प की तलखी नहीं है जिसमें तलख ज़िदगानी वह है ।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६६ ।

तलग^१—अव्य० [हिं०] दे० 'तलक', 'तक' । उ०—तू माये तलग मल ते कर इलाज । चलाउंगी मैं सब तेरा मुल्को राज ।—दक्खिनी०, पृ० १४५ ।

तलगू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तैलग] तैलग देश की भाषा । तेलगू भाषा ।

तलघरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल + हिं० घर] तहखाना ।

तलछट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तल + छटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई सैज । तलोछ । गाव ।

तलछत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट' । उ०—तिमि उड़त कोट पम्पै सहित दल दम्पै तलछत परे ।—हम्मीर०, पृ० ४३ ।

तलठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट' । उ०—तिल तिल आर कबीर लए तलठी आरे लोग ।—कबीर० म०, पृ० ३२५ ।

तलत्र, तलत्राण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर का दस्ताना (को०) ।

तलना—क्रि० स० [सं० तरण (= तिराना)] कड़कड़ाते हुए धी या तेल में डालकर पकाना । जैसे, पापड़ तलना, धुंधनी तलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—खाना ।

विशेष—भावप्रकाश में 'धी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता ।

तलप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल्प] दे० 'तल्प' । उ०—तुम जानकी, जनकपुर जाहू । कहा मानि हम संग भरमिही, गहबर वन दुख-सिधु मयाहू । तजि वह जनक राज भोजन सुख, कत तन-तल्प, बिपिन फल खाहू ।—सूर०, ६ । ३४ ।

तलपट—वि० [देश०] नाप्त । बरबाद । चौपट ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तलपट^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौठा । प्रायः फलक ।

तलपत्त^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] बिछोने की चादर । उ०—हरि मगहि हरनछू करहि तलपत्त पत्त धर ।—पृ० रा०, २ । ३०८ ।

तलपना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तलफना' । उ०—तलपन लागे प्रान नगल ते छिनहु होहु जो न्यारे ।—मारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३३ ।

तलफ—वि० [अ० तलफ] नष्ट । बर्बाद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—मुहरिर तलफ ।

तलफना—क्रि० प्र० [हिं० तड़पना अथवा अनु०] १ कष्ट या पीड़ा से अंग टपकना । छटपटाना । २ व्याकुल होना । देचन होना । विकल होना ।

तलफाना—क्रि० स० [अनु०] तड़पाना ।

तलफी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलफी] १. खराबी । बरबादी । नाश । २ हानि ।

यौ०—हक तलफी = स्वत्व का मारा जाना ।

तलफफुज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० तलफफुज] उच्चारण (को०) ।

तलब—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. खोज । तलाश । २. चाह । पाने की इच्छा । ३. आवश्यकता । माँग ।

मुहा०—तलब करना = माँगना या भोगना ।

४ बुलावा । बुलाहट ।

मुहा०—तलब करना = बुला भेजना । पास बुलाना ।

५ तनखाह । वेतन ।

क्रि० प्र०—खाना ।—चुकाना ।—देना ।—पाना । मिलना ।—सेना ।—माँगना ।—चाहना ।

तलबगार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला । माँगनेवाला ।

तलबदार—वि० [फ्रा०] चाहनेवाला ।

तलबदास्त—सञ्ज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० दास्त] समन ।

तलबनामा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० तलब + फ्रा० नामा] समन । मदालत में उपस्थित होने का लिखित आज्ञापत्र ।

तलबाना—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तलबाना] १ वह खर्च जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में मदालत में दाखिल किया जाता है । २ वह खर्च जो मालगुजारी समय पर व जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप में लिया जाता है ।

विशेष—चपरासियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खर्च जमींदार देते हैं, उसको भी तलवाना कहते हैं।

तलवी—सज्ञा स्त्री० [सं० तलव + क्रा० ई० (प्रत्य०)] १. बुलाहट। २. माँग।

क्रि० प्र०—होना।

तलवेली—सज्ञा स्त्री० [हि० तलवेली] किसी वस्तु के लिये मातुरता या बेचैनी। छटपटी। घोर उत्कंठा। उ०—काम्ह उठे प्रति प्रात ही तलवेली लागी। प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंतर खागी।—सूर (शब्द०)

तलमल—सज्ञा पुं० [सं०] तलछट। तरौछ। गाद।

तलमलाना^१—क्रि० प्र० [देश०] तड़फड़ाना। तड़पना। बेचैन होना।

तलमलाना^२—क्रि० प्र० दे० 'तिलमिलाना'।

तलमलाहट^१—सज्ञा स्त्री० [देश०] व्याकुलता। तड़पने का भाव। बेचैनी।

तलमलाहट^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'तिलमिलाहट'।

तलमाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तलमलाना'।—(क्व०)। उ०—लगे दिवस कई वेग पाया न भ्रान, यी जान उसकी और लगी तलमान।—दक्खिनी०, पृ० ८७

तलव—सज्ञा पुं० [सं०] गानेवाला।

तलवकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामवेद की एक शाखा। २. एक उपनिषद् का नाम।

तलवा—सज्ञा पुं० [सं० तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो ढ़ड़ी और पंजों के बीच में होता है। पादतल।

मुहा०—तलवा छुजलाना=तलवे में छुजली होना जिससे यात्रा का शक्नुन समझा जाता है। तलवे चाटना=बहुत खुशामद करना। अत्यंत सेवा शुश्रूषा में लगा रहना। तलवे छलनी होना=चलते चलते पैर घिस जाना। चलते चलते शिथिल हो जाना। बहुत दौड़ धुप की नोबत घाना। तलवे तले घाँखें मलना=दे० 'तलवों से घाँखें मलना'। तलवों तले मेटना=कुचलकर नष्ट करना। रौंद डालना।—(स्त्रि०)। तलवे घो घोकर पीना=अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यंत श्रद्धा भक्ति प्रकट करना। अत्यंत प्रेम प्रकट करना। तलवा न टिकना=पैर न टिकना। जमकर बैठा न रहा जाना। भासन न जमाना। एक जगह कुछ देर बैठे न रहा जाना। तलवा न भरना=दे० 'तलवा न टिकना'।—(स्त्रि०)। तलवों से घाँखें मलना=(१) अत्यंत दीनता प्रकट करना। बहुत अधिक भ्रष्टता दिखाना। (२) अत्यंत प्रेम प्रकट करना। (३) दे० 'तलवों तले मेटना'। तलवों से माँग लगना=क्रोध से शरीर भस्म होना। अत्यंत क्रोध चढ़ना। तलवों से मलना=पैर से कुचलना। रौंदना। कुचलकर नष्ट करना। तलवों से लगना=(१) क्रोध चढ़ना। (२) बुरा लगना। अत्यंत अप्रिय लगना। कुढ़न होना। चिढ़ होना। तलवों से लगना, सिर में जाकर बुझना=सिर से पैर तक क्रोध चढ़ना। क्रोध से

शरीर भस्म होना। तलवे सहलामा=(१) अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

तलवार—सज्ञा स्त्री० [सं० तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड्ग। घसि। कृपाण।

पर्या०—घसि। विशसन। खड्ग। तीक्ष्णवर्मा। दुरासद। श्रीगर्भ। विजय। धर्मपाल। धर्ममाध। निस्त्रिण। चद्रहास। रिष्टि। करवाल। कौलेयक। कृपाण।

क्रि० प्र०—चलना। —चलाना। —मार्ग। —लगना। —लगाना। —करना।

मुहा०—तलवार करना=तलवार चलाना। तलवार का वार करना। तलवार कसाना=तलवार झुकाना। तलवार का खेत=लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। तलवार का घाट=तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन प्रारंभ होता है। तलवार का छाला=तलवार के फल में उभरा हुआ दाग। तलवार का डोरा=तलवार की धार जो पतले सूत की तरह दिखाई देती है। तलवार का पट्टा=तलवार की चौड़ी धार। तलवार का पानी=तलवार की आभा या दमक। तलवार का फल=मूठ के प्रतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल=तलवार का टेढ़ापन। तलवार का मुँह=तलवार की धार। तलवार का हाथ=(१) तलवार चलाने का ढंग। (२) तलवार का वार। खड्ग का आघात। तलवार की आँच=तलवार की चोट का सामना। तलवार की माला=तलवार का वह जोड़ जो दुवाले से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में=ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों ओर तलवार ही तलवार दिखाई देती हो। रणक्षेत्र में। तलवार के घाट उतरना=लड़ते लड़ते मर जाना। तलवार के घाट उतारा जाना=मारो जाना। वीरगति पाना। उ०—ह्वासा में बहुत से लामा और विद्वान् तलवार के घाट उतारे गए हैं।—किन्नर०, पृ० ६१। तलवार खींचना=म्यान से तलवार बाहर करना। तलवार जडना=तलवार मारना। तलवार से आघात करना। तलवार तोलना=तलवार को हाथ में लेकर अंदाज करना जिससे वार भरपूर बैठे। तलवार संभालना। तलवार पर हाथ रखना=(१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना। (२) तलवार की शपथ होना। तलवार बाँधना=तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना। तलवार साँतना=तलवार म्यान से निकालना। धार करने के लिये तलवार खींचना।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। अनुर्वेद आदि ग्रंथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारें बनती थीं जिनसे पर्यर तक कट सकता था। प्राचीन काल में खट्टर देश, मग, वंग, मग्यग्राम, सहग्राम, कालिजर इत्यादि स्थान खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे। ग्रंथों में लोहे की उपयुक्तता, खड्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी

दिया हुआ है। पानी देने के लिये लिखा है कि धार पर नमक या क्षार मिली गीली मिट्टी का लेप करके तलवार को धाग में तपावे और फिर पानी में बुझा दे। उधाना और शुष्काचार्य ने पानी के प्रतिरिक्त रक्त, घृत, ऊँट के दूध घाबि में बुझाने का भी विधान बतलाया है। तलवार की ऋतुकार (ध्वनि) तथा फल पर धापसे धाप पड़े हुए चिह्नों के अनुसार तलवार के शुभ, अशुभ या अच्छे बुरे होने का निर्णय किया गया है। ऐसे निर्णय के लिये जो परीक्षा की जाती है, उसे प्रष्टांग परीक्षा कहते हैं। तलवार चलाने के ह्राय ३२ गिनाए गए हैं। जिनके नाम ये हैं—भ्रात, उद्भ्रात, धाविद्ध, धाप्लुत, विप्लुत, सृत, सजात, समुबोधुं, निग्रह, प्रग्रह, पदावकपण, सधान, मस्तक भ्रामण, भूष भ्रामण, पाश, पाद, विषय, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, धालेप, पातन, उत्थानक-प्लुति, बहुता, सौष्ठव, शोभा, स्वयं, दृढमुष्टिता, तिर्यक् प्रचार और ऊर्ध्व प्रचार। इसी प्रकार पट्टिक, मोष्टिक, महि-पास धाबि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। धाजकल भी तलवारों के कई भेद होते हैं, जैसे खाँड़ा, जो सीधा और धोर पर चौड़ा होता है, सेफ, जो लंबी पतली और सीधी होती है, दुधारा, जिसके दोनों धोर धार होती है। इसके प्रतिरिक्त स्थानभेद से भी तलवारों के कई नाम हैं। जैसे, सिरोही, बँदरी, जुलूगी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार ऊना कहलाती है जिसे राधा तर्फि में रख सकते या कमर में लपेट सकते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान भस्त्र है, इसी से कभी कभी तलवार को दुर्गा भी कहते हैं।

तलवारण—[सं०] तलवार। धसि [को०]।

तलवारियाँ—सङ्गा पुं० [हिं०] तलवार चलाने में निपुण व्यक्ति।

तलवारी—वि० [हिं० तलवार] तलवार सदृशी।

तलहट्टी—सङ्गा स्त्री० [सं० तल + घट्ट] पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ की तराई।

तलहट्टी—सङ्गा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलहट्टी'। उ०—तलहट्टी सुरताण, रहे जोषाण महल्ले। अन्न प्राण तप प्रकल।

तलहर्दा—वि० [हिं० ताल] १ ताल म्वधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तलही—सङ्गा स्त्री० [हिं० ताल + ही (प्रत्य०)] ताल में रहनेवाली चिड़िया। उ०—कोउ तलही, मुगाधी कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमचन०, पृ० २६।

तलांगुलि—सङ्गा स्त्री० [सं० तलाङ्गुलि] पैर का अँगूठा [को०]।

तला^१—सङ्गा पुं० [सं० तल] १ किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदा। २. छूटे के नीचे का समझा जो जमीन पर रहता है।

तला^२—सङ्गा स्त्री० [सं०] दे० 'तलनाथ' [को०]।

तला^३—वि० [सं० तल] दे० 'तल्ला'।

तलाई^१—सङ्गा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल। तलेया। बावनी।

तलाई^२—सङ्गा स्त्री० [हिं० √ तल + आई (प्रत्य०)] तलने की क्रिया या भाव।

तलाई^३—सङ्गा स्त्री० [हिं० तलाना] १. तलाने का भाव। २. तलाने की मजदूरी।

तलाउ—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'तलाव'।

तलाक—सङ्गा पुं० [सं० तलाक] पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंधत्याग।

क्रि० प्र०—हैना।

तलाची—सङ्गा स्त्री० [सं०] चटाई।

तलातल—सङ्गा पुं० [सं०] सात पाठाओं में से एक पाठाल का नाम।

तलाफी—सङ्गा स्त्री० [सं० तलाफी] क्षतिपूर्ति। हानि की पूर्ति। नुकसान का बदला। तदावक [को०]।

तलावा^१—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'तालाब'।

तलाबेली^१—सङ्गा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलबेली'।

तलामली^१—सङ्गा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलाबेली'।

तलामली^२—सङ्गा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलमल'। उ०—दिन पहाड़ सा मालूम होते सया खासकर डाक की बड़ी तलामली बग रही थी।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३८१।

तलाया—सङ्गा स्त्री० [हिं० ताल] तलेया। तलाई। उ०—हाँ तलाया गोठ जुरे जहाँ चकवे। परतो विश है धात्रु काम है चकवे।—राम० घमं०, पृ० २८२।

तलार^१—वि० [सं० तल + हिं० धार (प्रत्य०)] दे० 'तलहार'। उ०—वे पानी में सूँ जो निकसे भार। रखे हैं जो परबर हयाँ उस तलार।—वसिष्ठी०, पृ० ३३७।

तलार^२—सङ्गा पुं० [सं० तल (= तल) + रक्षक] नगररक्षक।

तलार^३—सङ्गा पुं० [हिं०] नगररक्षक अधिकारी या कोतवाल।

उ०—प्राचीन सिधालेखों तथा पुस्तकों में तलारक्ष और तलार शब्द नगररक्षक अधिकारी (कोतवाल) के अर्थ में प्रयुक्त किए जाते थे। सोड्डल रचित 'उदयपुरी कथा' में एक गलस का वर्णन करते हुए लिखा है कि बूया उत्पन्न करने वाले उसके रूप के कारण वह नरक नगर के तलार के समान था।—राज० इति०, पृ० ४५६।

तलावा^१—सङ्गा पुं० [सं० तलाव > प्रा० तलाव > तलाव, या सं० तल्ल] वह लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें सामान्यतः बरसात का पानी जमा रहता है। ताल। तालाब। पोखरा। उ०—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जमि सदगुण सज्जन पैहू भावा।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—तलाव जाना = खोज जाना। पालाने जाना।

तलावा^२—वि० [हिं० तलना] तला हुआ। जैसे, तलाव हींग।

तलाव^३—सङ्गा पुं० तलने की क्रिया या भाव।

तलाबडी^१—सङ्गा स्त्री० [सं० तलाव, तलाविका, प्रा० तलाव, तलाइया, तलाम, तलाई, तलाव + डी (प्रत्य०)] दे० 'तलैया'। उ०—जोवण फटि तलाबडी, पालि ब बंधक काई। डोला०, दू० १२२।

तलावरी—सङ्गा स्त्री० [हिं० तलाव + री (= 'री' प्रत्य०)] तलाई। छोटा ताल। उ०—ताल तलावदि नरनि न बाही। सूक वारवार तेन्ह नाही।—बायसी प्र० (गुप्त), पृ० १४१।

तलाश—सङ्गा स्त्री० [तु०] १. खोज। ढूँढ़ाई। अन्वेषण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. आवश्यकता । चाह ।

क्रि० प्र०—होना ।

तलाशना—क्रि० सं० [फा० तलाश + हि० ना (प्रत्य०)]
हूँड़ना । खोजना ।

तलाशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

तलाशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर वार, चीज, वस्तु आदि की देखभाल । जैसे—पुलिस ने घर की तलाशी ली, तब बहुत सी चोरी की चीजें निकलीं ।

मुहा०—तलाशी देना = गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये सदेह करनेवाले को अपना घर वार, कपड़ा लता आदि हूँड़ने देना । तलाशी लेना = गुम या छिपाई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर वार आदि की देखभाल करना जिस पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो ।

तलाशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] दे० 'तलाश' । उ०—तुलसी बिना तलाश भास भग ना सगी । हिंदू तुरक पे जबर लप जम की जो जगी ।—तुरसी श०, पृ० १४३ ।

तलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तोबड़ा । २. तंग [को०] ।

तलित्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तडित्' [को०] ।

तलित^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मुना हुआ मांस [को०] ।

तलित^२—वि० घी या चिकने के साथ मुना हुआ । तला हुआ ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता, संस्कृत ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता । केवल भावप्रकाश में मुने हुए मांस के लिये आया है ।

तलित^३—वि० तल युक्त [को०] ।

तलिन—वि० [सं०] १. दुबला । क्षीण । कुंवल ।

यौ०—तलिनोदरी=क्षीण कटिवाली स्त्री ।

२. विरल । छितराया हुआ । भलग भलग । ३. थोड़ा । कम ।

४. साफ । स्वच्छ । शुद्ध । ५. नीचे या तल में स्थित [को०] ।

६. आच्छादित । ढका हुआ [को०] ।

तलिन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या । सेज । पर्लंग ।

तलिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र । पाटन । २. शय्या । पर्लंग । ३. खड्ग । ४. चंद्रा । ५. बड़ी छुरी या छुरा [को०] । ६. जमीन का पक्का फर्श [को०] ।

तलिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की याह ।—(हि०) ।

तलिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा तालाब । उ०—मान-सरोवर की कथा वकुल का जानै । उनके चित तलिया बसे, कही कैसे माने ।—कवीर श०, भा० ३, पृ० ४ ।

तलियार^७—सञ्ज्ञा पुं० [देशी] कोतवाल । नगरदक्ष ।

तली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह ।

४-४८

पेंदी । २. तलछट । तलीछ । †३. पेर की एड़ी । †४. विवाह में वर वधू के मासन के नीचे रखा हुमा रुपया पैसा ।

तलीचरैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताल + चरैया (= चरनेवाला)] एक पक्षीविशेष । उ०—धोबहन, तलीचरैया, कीड़ेनी, चवा इत्यादि ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३० ।

तलुआ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तलवा' ।

तलुआ^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताल' ।

तलुन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. युवा पुरुष ।

तलुन^२—वि० [वि० स्त्री० तलुनी] युवा । तरुण [को०] ।

तलुनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] युवती । तरुणी [को०] ।

तले—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे । ऊपर का उलटा । जैसे, पेड़ के तले ।

मुहा०—तले ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा । जैसे,—किताबों को तले ऊपर रख दो । (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे । उलट पलट किया हुआ । गड़बड़ । जैसे,—सब कागज लगाकर रखे हुए थे; तुमने तले ऊपर कर दिए । तले ऊपर के = भागे पीछे के । ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरांत हुआ हो । जैसे,—ये तले ऊपर के लड़के हैं । इसी से लड़ा करते हैं ।—(स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती ।) । तले ऊपर होना = (१) उलट पुलट हो जाना । (२) संभोग में प्रवृत्त होना । जो तले ऊपर होना = (१) जो मचलाना । (२) जो ऊबना । चित्त धवराना । तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह जाना = (१) ठक रह जाना । स्तब्ध रह जाना । कुछ कहते सुनते या करते धरते न बन पड़ना । (२) भौबक रह जाना । हक्का बक्का रह जाना । चकित रह जाना । तले की दुनिया ऊपर होना = (१) भारी उलट फेर हो जाना । (२) जो चाहे सो हो जाना । असंभव से असंभव बात हो जाना । जैसे,—चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय, हम सब वहाँ न जायेंगे । (मावा चौपाए के) तले बच्चा होना = साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होगा । जैसे,—इस गाय के तले एक बच्चा है ।

तलेचण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शूकर । सूअर ।

तलेटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल + हि० एटी (प्रत्य०)] १. पेंदी । २. पहाड़ के नीचे की भूमि । तलहटी ।

तल्ले—वि० [सं०] १. नीचे रहनेवाला । २. हीन । तुच्छ । गया गुजरा । ३. किसी द्वारा शासित ।

तल्लेचा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का और छत से नीचे का भाग ।

तलेटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तलहटी] दे० 'तलेटी' । उ०—एक गाँव पहाड़ की तलेटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर ।—फूल०, पृ० ७ ।

तलैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताल] छोटा ताल ।

तलोदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तलोदरी] तोंदवाला [को०] ।

तलोदरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

तलोदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया । नदी ।

तलोछ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल (= नीचे) + हि० छ (प्रत्य०)] नीचे जमी हुई मेल आदि । तलछट ।

तलोचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह परिवर्तन जो मत, सिद्धांत एवं विचार में हो जाता है । २. रंग बदलना । ३. छिछोरा-पन [को०] ।

तलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वन ।

तल्ल—वि० [फ्रा० तल्ल] १. कठुआ । कटु । २. बदमजा । बुरे स्वाद का ।

तल्लू—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तल्लू] कठुआहट । कठुआपन ।

तल्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अट्टा । पलम । छेज । २ अट्टाखिका । अट्टारी । ३. (लाक्ष०) पत्नी । भार्या । बैद्य, गुरुतल्प (को०) ।

तल्पक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पक्षी । २ वह सेवक जो पलग पर विस्तर आदि लगाता है [को०] ।

तल्पकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण । खटमल ।

तल्पज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज पुत्र ।

तल्पन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की पीठ पर की मासपेशियाँ । २ हाथी की पीठ या उसका मांस [को०] ।

तल्लाना—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तल्लान] गवाहों को तलब कराने का खर्च । दे० 'तल्लाना' । उ०—स्टॉप, तल्लाने वगैरे के हिसाब में लोगों को धोका दे दिया करता था ।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० २१० ।

तल्लपल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मेरुदंड, रीढ़ या पृष्ठवक्त्र [को०] ।

तल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विल । गड्ढा । २. ताल । पोखरा ।

तल्लह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

तल्ला^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तल १ तल की परत । अस्तर । भित्तिका । २ ढिग । पास । सामीप्य । उ०—तियन को तल्ला पिय, नियन पियल्ला श्यागे डोसत प्रबल्ला भल्ला धाप राजद्वार की ।—रघुराज (शब्द०) ।

तल्ला^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल्प] मकान का मजिल । जैसे, तीन तल्ला मकान ।

तल्लास^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तलास] दे० 'तलाश' । उ०—फौज तल्लास कर हारी । भाए जहाँ भूप बेजारी ।—तुरसी प्र०, पृ० ६५ ।

तल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ताजी । कुशी

तल्ली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ खूँटे का पत्ता । २ नीचे की तलछट जो नाँद में बैठ जाती है ।

तल्ली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तरुणी । धुवती । २ नौका । नाव । ३ वरुण की पत्नी ।

तल्लीन—वि० [सं०] उसमें लीन । उसमें लग्न । दत्तचित्त [को०] ।

तल्लुआ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक कपडा । महमूदी । चुकरी । सल्लम ।

तल्लो^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल] जल के नाचे की पाट ।

तल्लकारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तल्लकार' ।

तल्लार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तला । नीचे । उ०—जिता गंज है यो जमी के तल्लार । तो यक बोल पर ते सद्दे-उसकूँ वार ।—बख्खनी०, पृ० १५२ ।

तल्लचुर^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल्लचुर, हि० तल्लचुर] मुर्षा ।

तल्ल—सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

तल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा । वचना । प्रतारणा [को०] ।

तल्लका^५—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० तल्लक] १ विस्वास । २ आशा । ३ प्रार्थना । उ०—नहिं तू मेरा संगी भया । तुलसी तल्लका ना किया ।—तुरसी प्र०, पृ० २४ ।

तल्लकु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तल्लकु] १ विलस । डेर । २ डोखापन [को०] ।

तल्लकीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० फ्रा० तलाशीर] तलाशीर । तीखुर ।

तल्लकीरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कनकचूर जिसकी जड़ है एक प्रकार का तीखुर बनता है । अशीर इसी तीखुर का बनता है ।

तल्लजह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्यान । रख ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

२. कृपादृष्टि ।

तल्लन^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तल्लन] १ गर्भी । तपन । २ धाग ।

तल्लन^७—सर्व० [हि० तीन] वह ।

तल्लन^८—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'स्तवन' उ०—चित्त धनेकह विधि विवर विल नविनी निकास । मन्त्र रूप गंगा तल्लन लगे करन रिप तास ।—पृ० रा०, १ । १५४ ।

तल्लन^९—क्रि० प्र० [सं० तल्लन] १ तपना । परम होना । २. ताप से पीड़ित होना । दुःख से पीड़ित होना । उ०—(क) काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है ।—तुलसी प्र०, पृ० २४२ । (ख) जबते न्दान गई तई ताप भई बेहाल । भली करी या नारि की नारी देखी लाल ।—शु० सत० (शब्द०) । ३ प्रताप फैलाना । तेज पसारना । उ०—छतर गगन लग ताकर सूर तवइ जस भाप ।—जायसी (शब्द०) । ४ क्रोध से जलना । गुस्से से खाल होना । कुछ जाना । उ०—(क) भरत प्रसंग ज्यो कालिका लहू देखि तन मे तई ।—नाभाबास (शब्द०) । (ख) महादेव बैठे रहि गए । बस देखि के तेहि दुल गए ।—सूर (शब्द०) ।

तल्लन^{१०}—क्रि० प्र० [सं० तल्लन] दे० 'तलावा' ।

तल्लन^{११}—क्रि० प्र० [स्तवन] स्तुति करना ।

तल्लना^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तला] हलका तला ।

तल्लन^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तलाना (= ठकना, मूँदना)] ठकन । मूँदने का साधन जो छेद या किसी वस्तु के मुँह को बंद करे ।

तल्लर^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तल' । उ०—अवनी के तल्लरे प्रगनिज अवरे मजा कंवरे विच मवरे । सिरियादे सिवरे हरि हित हिवरे ग्याही निवरे जो जिवरे ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

तल्लर^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर' ।

तवरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुवर] एक पेड़ जो समुद्र घोर नदियों के तट पर होता है ।

विशेष—इसमें इमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से घोपायों का दूध बढ़ता है ।

तवरना—क्रि० सं० [?] कहना । उ०—वचन एक सहस्र द्रुय सहस्र रसना वणो । तिको फणपत्ती गुण यकै तवरो ।—रघु० ७०, पृ० ५७ ।

तवराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुरंगम । यवास शर्करा ।

तवर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] त घोर न के मध्य के समस्त प्रसर समूह ।

तवल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तवल] तबल । उ०—तवल शत वाज कत भेरि भरे फुकिरपा ।—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवलघोष—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तवलघो' ।—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तवला' ।

तवल्लह—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तवल' । उ०—घरे इक एक धनेक सुपान । मलकृत मुह तवल्लह मान ।—पु० रा०, ६ । ६६ ।

तवस्सल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तवस्सल] सहायता । उ०—सोलह वष के हुनम जारी करें । जो-सतगुरु तवस्सल तयारी करें ।—कवीर म०, पृ० १३१ ।

तवस्सुत—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] मध्यस्थता । बीच में पड़ने का कार्य । उ०—आपके तवस्सुत की माफत मेरी ५०० जिलदों में से भी कुछ निकल जाय तो क्या कहना ।—प्रेम० घोर गोर्की, पृ० ५८ ।

तवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तवना (= जखना)] १. लोहे का एक छिछला गोख बरतन जिसपर रोटी सेंकते हैं ।

क्रि० प्र०—जठाना ।

मुहा०—तवा सा मुँह = कालिख खगे हुए तवे की तरह काखा मुँह । तवा सिर से बाँधना = सिर पर प्रहार सहने के लिये तैयार होना । अपने को खूब द्रष्टु घोर सुरक्षित करना । तवे का हँसना = तवे के नीचे जमी हुई कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिससे घर में विवाद होने का कुछकुन समझा जाता है । तवे की बूँद = (१) क्षणस्थायी । देर तक न टिकनेवाला । नश्वर । (२) जो कुछ भी न मालूम हो । जिससे कुछ भी तूति न हो । जैसे,—इतने से उसका क्या होता है, इसे तवे की बूँद समझो ।

२ मिट्टी या खपड़े का गोख ठिकरा जिसे चिल्लम पर रखकर तमाखू पीते हैं । ३ एक प्रकार की लाल मिट्टी जो हाँग में भेल देने के काम में आती है । ३ तवे के आकार का साधन जो घुड़ में बन्धाने के विचार से छापी पर रहता था ।

तवाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तबाही' । उ०—गुमन देख के तवाई करना । खुवा मिल के बाख खाना ।—बख्तिनी०, पृ० ६५ ।

तवाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तापे] ताप ।

तवाखीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तवखीर] वंशरोचन । बंसलोचन ।

तवाजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तवाजह] १. पादर । मान । आवाभगत । २. मेहुमानदारी । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तवाना^१—वि० [फ्रा०] बली । मोटा ताजा । मुस्टडा ।

तवाना^२—क्रि० सं० [सं० तापन, हि० ताना] तप्त करना । गरम कराना ।

तवाना^३—क्रि० सं० [हि० ताना] ढक्कन को बिपकाकर बरतन का मुँह बंध कराना ।

तवाना^४—क्रि० प्र० [हि० ताव से घामिक घातु] ताव या भावेष में माना ।

तवायफ—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तवायफ] वेश्या । रंडी ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द तायफह का बहु० है, पर हिंदी में एक-वचन बोला जाता है । कहीं कहीं तायफा भी बोला जाता है ।

तवारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताप, हि० ताव + रा (प्रत्य०)] बलन । दाह । ताप । उ०—तवते इन सबहिन सजुपायो । जवतें हरि सदैश तुम्हारो सुनत तवारो पायो ।—सूर (शब्द०) ।

तवारीख—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तवारीख] इतिहास ।

विशेष—यह 'तारीख' शब्द का बहुवचन है ।

तवारीखी—वि० [प्र० तवारीख + फ्रा० ई (प्रत्य०)] ऐतिहासिक [को०] ।

तवालत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ लंबाई । दीर्घत्व । २ आधिक्य । अधिकता । अधिकई । ज्यादाती । ३ बखेड़ा । तूल तवील । झगड़ ।

तविप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २ समुद्र । ३ व्यवसाय । ४ शक्ति ।

तविप^२—वि० १ वृद्ध । महत् । २. वखवान । दृढ़ । बली । ३ पुज्य (को०) ।

तविषी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । २. नदी । ३. शक्ति । ४. इन्द्र की एक कन्या का नाम [को०] ।

तविष्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति । बल । तेज [को०] ।

तवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तवा] १ छोटा तवा । २ पतले किनारे-वाली लोहे की पाली । ३ कश्मीर की एक नदी ।

तवीयन^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तवीय] वैद्य । चिकित्सक ।

तवीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग । २ समुद्र । ३. सोना [को०] ।

तवेला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तवेला] दे० 'तवेला' ।

तवै^१—प्रत्य० [हि०] दे० 'तब' । उ०—तवे बाजि तैं सेख सूर पै जु पायो । कछु वख ही भग ताकी उड़ायो ।—हम्मीर०, पृ० ३८ ।

तशखीश—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तशखीश] १. ठहराव । निश्चय । २. मर्ज की पहचान । रोप का निदान । ३ लगान निर्धारित करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

तशदुदुक्—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. आक्रमण । २ कठोर व्यवहार । ज्यादाती । सख्ती [को०] ।

तशप्फो—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तशप्फो] १. दाढ़स । सातवना । उ०—

ऐसे कठकों को प्रेमचंद से पूरी तथ्यफी हासिल होती है।—

प्रेम० भीर गोर्की, पृ० २१७। २. रोगमुक्ति (की०)।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तशरीफ] वज्रुर्गी। इज्जत। महत्त्व। बड़प्पन।

मुहा०—तशरीफ रखना=विराजना। बैठना (आदरायक)। तशरीफ जाना=पदार्पण करना। आना (आदरायक)। तशरीफ ले जाना=प्रस्थान करना। चला जाना।

तश्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। २. परात। लगन। ३. तबे का वह बड़ा बरतन जो पाखानों में रखा जाता है। गमला।

तश्तरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। रिकावी।

तश्वीश—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चिता। फिफ। २. भय। डर। आस। उ०—किसी किसम के तरदुद भीर तश्वीश की गुंजाइश नहीं है।—प्रेमचंद०, भा० २, पृ० १३५।

तषति०—संज्ञा पुं० [फ्रा० तत्त] दे० 'तत्त'। उ०—तपति निवास की आ मनि माई।—प्राण०, पृ० ५३।

तषते—संज्ञा पुं० [अ० तत्त] दे० 'किवाड़'। उ०—सुरति बारी के तषते खोले। तब नानक बिनसे सगले मोले।—प्राण०, पृ० ३७।

तष्ट—वि० [सं०] १. छीला हुआ। २. कुटा हुआ। पीसकर दो दलों में किया हुआ। ३. पीटा हुआ।

तष्टा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. छीलनेवाला। २. छील छालकर गड़नेवाला। ३. विश्वकर्मा। ४. एक आदित्य का नाम।

तष्टा^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० तश्त] तबे की एक प्रकार की छोटी तश्तरी जिसका व्यवहार ठाकुर पूजन के समय मूर्तियों को नहलाने के लिये होता है।

तष्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तष्टा'^२। एक प्रकार का बरतन। धातुपात्र। उ०—पुनि चरवा चरई तष्टी तबला झारी लोटा गावहि।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ७४।

तष्यना०—क्रि० सं० [हि० ताकना] ताकना। देखना। उ०—प्रथिराज राज राजग गुर तष्य तरकस तष्ययो।—पृ० रा०, १२। ५४।

तष्य०—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्षणी] नागिन। सपिण्णी। उ०—नयन सुकज्जल रेप, तष्य तष्यन छवि कारिय। श्रवण सहज फटाछ, चित्त कर्पन नर नारिय।—पृ० रा०, १४, १५६।

तस०^१—वि० [सं० ताश्श, प्रा० तारिस, पुहि० तहस] तैसा। वैसा। उ०—किहँ जाहि छाया जलद सुखद बहइ बर घात। तस मगु भयेउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात।—मानस, २। २१५।

तस०^२—क्रि० वि० तैसा। वैसा। उ०—तस मति फिरो रही जस भागी।—तुलसी (चन्द०)।

तस०^३—सर्व [सं० तत्, तस्य] उसका। तत् शब्द का संबंधकारक एकवचन। उ०—इंद्रां वाह्य वासिका, तामु

तणइ डण्हार। तस भख हुवइ प्राहुणउ, तिणि विणुणार उतार।—ढोला०, दू० ५८०।

तसकर—संज्ञा पुं० [सं० तस्कर] दे० 'तस्कर'। उ०—सग तेहि बहुरंग तसकर, बड़ा भजुगुति कीन्ह।—जग० बानी, पृ० ४५।

तसकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्कीन] तसली। डारस। दिवासा। तसगर—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों के ताने में नीलबखी के पास की दो लकड़ियों में से एक।

तसगीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्गीर] १. संक्षेप करना। २. संक्षेप करने की क्रिया या भाव [को०]।

तसदीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तसदीक] १. सचाई। २. सचाई की परीक्षा या निश्चय। समर्थन। प्रमाणों के द्वारा पुष्टि। ३. साक्ष्य। गवाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तसदीह^१—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीह] १. दर्दसर। २. तक्कीफ। दुःख। क्लेश। उ०—नहि चून धीव सबील ही तसदीह सब ही की सही।—सुदन (चन्द०)। ३. परेशानी। कष्ट (की०)।

तसहुक—संज्ञा पुं० [अ० तसदुहक] १. निछावर। सदाका। २. बलिप्रदान। कुरबानी।

तसनीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] ग्रंथ की रचना।

तसबी—सं० स्त्री० [अ० तस्बीर] दे० 'तसबीह'। उ०—फेरे न तसबी जपे न माला।—पलदू०, पृ० ६१।

तसबीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीर] दे० 'तसबीर'। उ०—लिखे-चिखेरे चित्र में पिय विचित्र तसबीर। दरसत दग परसत हिये परसत तिय घर धीर।—स० सप्तक, पृ० ३६७।

तसबीरगर—संज्ञा पुं० [अ० तस्बीर + फ्रा० गर (प्रत्य०)] चित्रकार। उ०—हीठि मिचि जात मिचि हचत ना ऐषी खैची खिचत न तसबीर तसबीरगर पै।—पञ्चनेस०, पृ० ७।

तसबीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीह] सुमिरिनी। माला। जपमाला। (मुसल०)। उ०—मन मनि के तहँ तसबी फेरइ। तब साहब के वह मन भेवइ।—दादू (चन्द०)।

मुहा०—तसबीह फेरना=ईश्वर का नामस्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना।

तसमा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तस्मह] १. चमड़े की कुछ चौड़ी बोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बांधने या कसने के काम में आये। चमड़े का चौड़ा पीता।

मुहा०—तसमा खीचना=एक विशेष रूप से गले में फंदा आसकर मारना। गला घोटना। तसमा लगा न रखना=गरदन साफ उड़ा देना। साफ सों दुकड़े करना।

२. घुटे का पीता (की०)। ३. चमड़े का कोड़ा या दुरा (की०)।

तसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुलाहों की ढरकी। २. एक प्रकार का घटिया रेशम। वि० दे० 'टसर'।

तसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुनाई [की०]।

तसला—संज्ञा पुं० [फ्रा० तस्त + ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार

का पर उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, तबे आदि का बनता है ।

तसली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तसला] छोटा तसला ।

तसलीम—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तस्लीम] १. सलाम । प्रणाम । २. किसी बात की स्वीकृति । हामी । बेसे,—गलती तसलीम करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

तसल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. डारस । सात्वना । आशवासन । २. व्यग्रता की निवृत्ति । व्याकुलता की शान्ति । धैर्य । धीरज । ३. सतोष । सन्न ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

मुहा०—तसल्ली दिलाना = धीरज या सतोष देना । धैर्य धारण करना ।

तसवीर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तस्वीर] १. वस्तुओं की आकृति जो रंग आदि के द्वारा कागज, पट्टी आदि पर पनी हो । चित्र ।

क्रि० प्र०—खींचना ।—बनाना ।—लिखना ।

मुहा०—तसवीर उतारना = चित्र बनाना । तसवीर निकालना = चित्र बनाना ।

२. किसी घटना का यथावस्थ विवरण ।

तसवीर^२—वि० चित्र सा सुंदर । मनोहर ।

तसवीस^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तसवीस] १. चिता । सोच । फिक्र । २. मय । डर । आस । ३. व्याकुलता । प्रवराहट । उ०—ना तसवीस खिराज न माल खोफ न खजा न तरस जवाल । —संत रे०, पृ० ११० ।

तसव्वुर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] कल्पना । उ०—तसव्वुर से तेरे रूख के गई है नौद भाँखों से । मुकाबिल जिसके हो खुरशीद क्यों कर उसको स्वाव भावे ।—कविता को०, भाग ४, पृ० २६ ।

तसाना—क्रि० स० [हि० आसना] प्रस्त करना । डराना । उ०—हृय दई घनमानंद हूँ करि को ली वियोग के ताप तसायहो । —घनानंद, पृ० ६६ ।

तसि^४—वि० [हि० तस] वैसी । उस प्रकार की ।

तसि^५—क्रि० वि० [हि० तस] वैसी । वैसी । उ०—(क) जनु भादों निसि दामिनी दीसी । चमकि उठी तसि भीनि बत्तीसी । —जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६१ । (ख) तसि मति फिरो ग्रहइ जसि भावी । रहषी बेरि घात जनु फावी ।—मानस, २।१७ ।

तसिलदार^६—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तहसीलदार' । उ०—बड़ी बटी मूली पठवायो तसिलदार तब ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४१६ ।

तसी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] तीन बार जोता हुआ खेत ।

तसील^८—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तहसील] १. तहसील । २. वसूली । प्राप्ति ।

तसीलना—क्रि० स० [म० तहसील, हि० तसील से नामिक वातु] वसूल करना । पाना । उ०—वक तसीलत कितो, महाजन कितो कोइ श्रव ।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० ५४ ।

तसू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + शूक = जो की तरह का एक कदन्न] लंबाई की एक माप । इमारती गज का २४ बाँ अण जो १३ इंच के लगभग होता है ।

तस्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चोर । २. श्रवण । कान । ३. मैनफल । मदन वृक्ष । ४. बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार के केतु जो लवे और सफेद होते हैं । ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं । ५. चोर नामक गंधद्रव्य । ६. कान (को०) ।

तस्करता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोर का काम । चोरी । २. श्रवण । सुनना (को०) ।

तस्करवृत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चोर । पाकेटमार (को०) ।

तस्करस्तायु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फाकनासा लता । कबूत ठोंठी ।

तस्करी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] १. चोर का काम । चोरी । २. चोर की स्त्री । ३. वह स्त्री जो चोर हो । ४. उग्र स्वभाव की स्त्री (को०) ।

तस्कीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'तसकीन' । उ०—फिराके यार में होते से क्या तस्कीन होती है ।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १६७

तस्थु—वि० [सं०] एक ही स्थान पर रहनेवाला । स्थावर । अचल ।

तस्नीफ़—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० तस्नीफ] १. पुस्तक लेखन । किताब बनाना । २. लिखित पुस्तक । बनाई हुई कविता । ३. मनगढ़त या फपोलकल्पित बात (को०) ।

तस्फिया—सञ्ज्ञा पुं० [म० तस्फियाह] १. आपस का निपटारा या समझौता । २. निर्णय । फैसला । ३. शुद्ध करना । साफ करना । शुद्धि । सफाई । ४. दिलो की सफाई । मेल (को०) ।

यौ०—तस्फिया तलब = वे बातें जिनकी सफाई होनी आवश्यक है । तस्फियानामा = वह कागज जिसमें आपस के तस्फिए की लिखापढ़ी हो ।

तस्मा—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० तस्मह] १. चमड़े की कम चोड़ी और लंबी पट्टी । २. जूते का फीता । ३. चमड़े का कोश या दुर्गा (को०) ।

यौ०—तस्मापा = जिसका पाँव तस्मे से बँधा हो । तस्माबाज = (१) घुँत । वक्क । मक्कार । छली । (२) छूतकार । जुमारी । तस्माबागी = (१) छल । कपट । (२) एक प्रकार का जुमा ।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये ।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका ।

तस्लीम—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. सलाम करना । प्रणाम करना । २. स्वीकार करना । कबूल करना । ३. सौंपना । सिपुर्दे करना । ४. आज्ञा का पालन करना । (को०) ।

तस्वीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. चित्र । प्रतिकृति । २. चित्र बनाना । मूर्ति पनाना । ३. पट्टत ही सुंदर पक्ष । ४. प्रतिमा । मूर्ति ।

यौ०—तस्वीरकशी = चित्रण । चित्रकर्म । तस्वीरखाना = (१) वह स्थान जो चित्रों के लिये हो या जहाँ चित्र बनाए गए हो । चित्रशाला । (२) वह स्थान जहाँ बहुत से सुंदर स्त्रियाँ हो । परीखाना । तस्वीरे मस्जि = छायाचित्र । फोटो ।

तस्वीरे खयाली—चित्र या खयाल में धाई हुई आकृति ।
काल्पनिक चित्र । तस्वीरे पिली—मिट्टी की मूर्ति ।
तस्वीरे नीम रुख = एक तरफ से लिखा हुआ चित्र जिसमें
मुख का एक ही रुख भाए ।

तस्वीर^७—संज्ञा स्त्री० [प्र० तस्वीर] दे० 'ससवीर' । उ०—बंघे
साहि गोरी रही तस्वीर । वही राज चौहान न्यों सरीर ।
—पु० रा०, २१।११८ ।

तस्सू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तसु' ।

तहँ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तहाँ' ।

यौ०—तहँ तहँ = वहाँ वहाँ । उस उस स्थान पर । उ०—जह
जह आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध बला बहु भाती ।—
मानस, १।३३३ ।

तहँवाँ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तहाँ' ।

तह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १ किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव जो
किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो । परत । जैसे, कपड़े की तह,
मलाई की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह । उ०—(क)
इसपर अभी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी (शब्द०) । (ख)
इस कपड़े को चार पाँच तहों में खपेटकर रख दो (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खदना ।—खदना ।—जमना ।—जमाना ।—लगाना ।

यौ०—तहदार = जिसमें कई परत हों । तह व तह = एक के नीचे
एक । परत पर परत ।

मुहा०—तह करना = किसी फैली हुई (चदर आदि के धाकार
की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ ओर एक दूसरे
के ऊपर फैलाकर उस वस्तु को समेटना । चौपरत करना ।
तह कर रखो = छिप रहो । मत निकासो या दो । नहीं
आहिए । तह जमाना या बैठाना = (१) परत के ऊपर परत
दबाना । (२) भोजन पर भोजन किए जाना । तह तोड़ना =
(१) झगड़ा बिटाना । समाप्ति को पहुँचाना । कुछ बाकी
न रखना । निबटवा । (२) कुएँ का सब पानी निकाल देना
जिससे जमीन दिखाई देने लगे । (किसी बीज की) तह देना =
(१) हलकी परत चढ़ाना । थोड़ी मोटाई में फैलाना या
बिछाना । (२) हलका रंग चढ़ाना । (३) मत्तरे बनाने में
जमीन देना । आधार देना । जैसे,—चंदन की तह देना ।
तह मिलाना = जोड़ा लगाना । नर और मादा एक साथ
करना । तह लगाना = चौपरत करके समेटना ।

२ किसी वस्तु के नीचे का विस्तार । तल । पैदा । जैसे, इस
मिलाप में धुँधी दवा तह में जाकर जम गई है ।

मुहा०—तह का सच्चा = वह कबूतर जो बराबर अपने छत्ते पर
बला धावे, घपला स्याम व भूले । तह की बात = छिपी हुई
बात । गुप्त रहस्य । गहरी बात । (किसी बात की) तह
को पहुँचना = दे० 'तह तक पहुँचना' । (किसी बात की) तह
तक पहुँचना = किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना ।
यथार्थ रहस्य जान लेना । असली बात समझ जाना ।

३. पानी के नीचे की जमीन । तल । थाह । ४. महीन पटल ।
बरक । झिल्ली ।

क्रि० प्र०—उचड़ना ।

तहकीक—संज्ञा स्त्री० [प्र० तहकीक] १. सत्य । यथार्थता । २. सचाई
की जाँच । यथार्थ बात का प्रत्येक्षण । खोज । अनुसंधान ।
३ जिज्ञासा । पृच्छताछ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री० [प्र० तहकीकात, तहकीक का बहु व०]
किसी विषय या घटना की ठीक ठीक बातों की खोज । अनु-
संधान । प्रत्येक्षण । जाँच । जैसे, किसी मामले की तहकीकात,
किसी इल्म की तहकीकात ।

मुहा०—तहकीकात घाना = किसी घटना या मामले के सबंध में
पुसिस के प्रफसस का पता लगाने के लिये घाना ।

तहखाना—संज्ञा पुं० [फा० तहखानह] वह कोठरी या घर जो
जमीन के नीचे बना हो । भूद्वारा । तलगृह ।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बचने
के लिये जा रहते या घन रखते हैं ।

तहजर्द—वि० [फ्रा० तहजर्द] दे० 'तहजरज' [को०] ।

तहजीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तहजीब] शिष्ट व्यवहार । शिष्टता ।
सभ्यता ।

तहजरज—वि० [फा० तहजरज] (कपड़ा आदि) जिसकी तह तक
न खोली गई हो । बिलकुल नया । ज्यों का त्यों नया रखा
हुआ ।

तहनशीं—वि० [फ्रा०] तरल पदार्थ में नीचे बैठनेवाली (वस्तु) ।

तहनिशाँ—संज्ञा पुं० [फा०] लोहे पर सोने चाँदी की पन्चीकारी ।

तहपेच—संज्ञा पुं० [फ्रा०] पगड़ी के नीचे का कपड़ा ।

तहपोशी—संज्ञा स्त्री [फा०] साड़ी के नीचे पहनने का पाजामा [को०]

तहबद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] लुपी [को०] ।

तहवाजारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तहवाजारी] वह महसूल जो सट्टी
में सोदा बेचनेवालों से जमींदार लेता है । भरी ।

तहमत—संज्ञा पुं० [फ्रा० तहबद या तहमत] कमर में लपेटा हुआ
कपड़ा । ओपेछा । लुगी । अंचला ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।—लगाना ।

तहम्मुल—संज्ञा पुं० [अ०] १ सहिष्णुता । सहनशीलता । २ गमी-
रता । सजीदगी । ३ धैर्य । सन्न । ४ नम्रता । नमी [को०] ।

तह्राँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तहहँडा' ।

तहरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. पेटे की बरी, और चावल की खिचड़ी ।

२ मटर की खिचड़ी । ३. कालीन बुननेवालों की ढरकी ।

तहरीर—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १ लिखावट । लेख । २. लेखनी । जैसे,—
उनकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है । ३ लिखी हुई बात ।
लिखा हुआ मजमून । ४ लिखा हुआ प्रमाणपत्र । लेखबद
प्रमाण । ५ लिखने की उजरत । लिखाई । लिखने का मिहन्-
ताना । जैसे,—इसमें १) तहरीर लगेगी । ६. गुरु की कच्ची
छपाई जो कपड़ों पर होती है । कट्टर की उटाई । (छोपी) ।

तहरीरी—वि० [क्रा०] लिखा हुआ । लिखित । लेखवद् । जैसे, तहरीरी सवृत, तहरीरी बयान ।

तहलका—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तहलकहू] १. मोत । मृत्यु । २. बरबादी । ३. खलबली । घूम । हलप्रव । विप्लव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—मचाना ।

४ कोलाहल । कोहराम (को०) ।

तहलील—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तहलील] १. पचना । हजम होना । २. धुलना । मिलना (को०) । उ०—जो खाना तहलील करने मोर हरातर मिटाने को लेटे ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १५६ यौ०—तहवीं जहवीं ।

तहवीं—प्रथम० [हि० तह्वीं + वां (प्रत्य०)] वहाँ । उ०—(क) बहु समेत गए प्रभु तहवीं ।—मानस, ३। २४। (ख) जाएस नगर घरम धस्यातु । तहवीं यह कवि कीन्ह बछातु ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १३४ ।

तहवील—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तहवील] १. सुपुर्बो । २. धमानत । धरोहर । ३. किसी मद की धामदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो । खजाना । जमा । रोकड़ । ४. फिरना (को०) । ५. फिराना (को०) । ६. प्रवेश करना । दाखिल होना (को०) । ७. किसी ग्रह का किसी राशि में प्रवेश (को०) ।

यौ०—तहवीलबार । तहवीले आपताब=सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश । संक्राति ।

तहवीलदार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तहवील + फा० दार (प्रत्य०)] वह धामदमी जिसके पास किसी मद की धामदनी का रुपया जमा होता हो । खजानची । रोकड़िया ।

तहशिया—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तहशियह] किसी पुस्तक यादि पर पाशवं में टिप्पणी लिखना (को०) ।

तहस नहस—वि० [दृष्ट०] विनष्ट । बरबाद । नष्ट भ्रष्ट । ध्वस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तहसीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तहसीन] प्रशंसा । तारीफ । बलाधा । उ०—वहाँ कबरदानी मोर तहसीन, इससे मेरा काम न चखा ।—प्रेम० मोर गोर्की, पृ० ५६ ।

तहसील—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. बहुत से भाषमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया । वसूली । उगाही । जैसे,—पोत तहसील करना ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

२. वह धामदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो । जमीन की खाजाना धामदनी । जैसे,—इनकी पचास हजार की तहसील है । ३. वह दफतर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं । तहसीलदार की कचहरी । माल की छोटी कचहरी ।

तहसीलदार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तहसील + फा० दार (प्रत्य०)] १. कर वसूल करनेवाला । २. वह मकसर जो किसानों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है मोर माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है ।

तहसीलदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तहसील + फा० दार

या महसूल वसूल करने का काम । मालगुजारी वसूल करने का काम । तहसीलदार का काम । २. तहसीलदार का पद ।

क्रि० प्र०—करना ।

तहसीलना—क्रि० सं० [प्र० तहसील से नामिक धातु] उमाहना । वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, चषा यादि) ।

तहाँ—क्रि० वि० [सं० तत् + स्थान, प्रा० याण, पान] वहाँ । इस स्थान पर । उ०—तहाँ जाए देखी बन सोभा ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—लेख में जब इसका प्रयोग सठ गया है, केवल 'जहाँ का तहाँ' ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है ।

तहाना—क्रि० सं० [फा० तह से नामिक धातु] उह करना । घरी करना । खपटना ।

संयो० क्रि०—खाचना ।—देना ।

तहिया—क्रि० वि० [हि०] तब । उस समय । उ०—मुख धन बिस्व जितव तुम्ह जहिया । धरिहहि विष्णु मनुष्य वनु तहिया ।—मानस, १। ३६ ।

तहियाँ—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब । उस समय । उ०—कहू कबीर कहू धखिलो न जहियाँ । धरि बिरवा प्रतिपालेसि तहियाँ ।—कबीर (शब्द०) ।

तहियाना—क्रि० सं० [फा० तह] तह लगाकर खपटना ।

तहीँ—क्रि० वि० [हि० तहाँ] वहाँ । उसी जगह । उसी स्थान पर । उ०—दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीँ ।—मानस, १। १७ ।

तहूँ—क्रि० वि० [सं० तदपि] तब भी । उ०—खंड ब्रह्मंड सूखा पड़े, तहूँ न विफल जाय ।—कबीर सा०, पृ० ७ ।

तहोयाला—वि० [फा०] नीचे ऊपर । ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर । उलट पलट । क्रमभंग ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तहाँ—क्रि० वि० [हि० तहाँ + ओं (प्रत्य०)] तहाँ भी । उ०—तहाँ प्रतीपहि कहत हैं कवि कोबिब सब कोय ।—मति० प्र०, पृ० ३७२ ।

तांडव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] १. पुरुषों का नृत्य ।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव मोर स्त्रियों के नृत्य को छास्य कहते हैं । तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है । इसी से कोई तनु भर्पात नबी को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं । किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसी से इसका नाम तांडव हुआ ।

२. वह नाच जिसमें बहुत सज्जल कूद हो । उद्वत नृत्य । ३. शिव का नाम । ४. एक तृण का नाम ।

तांडवतालिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताण्डवतालिक] नंदीश्वर (को०) ।

तांडवप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताण्डवप्रिय] शकर (को०) ।

तांडवित—वि० [सं० ताण्डवित] १. नृत्यशील । २. तांडव नृत्य को गोलाई में घुमता हुआ । ३. चक्कर खाता हुआ । ४. हुं (को०) ।

ठांडवी—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवी] सगीत के चौदह तालों में से एक ।

ठांडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] तंडि मुनि का निकला हुआ नृत्य शास्त्र ।

ठांडी—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डिन्] १. सामवेद की तांड्य शाखा का अध्ययन करनेवाला । २. यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार ।

ठांड्य—संज्ञा पुं० [सं० ताण्ड्य] १. तंडि मुनि के वंशज । २. सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम ।

ठांत—वि० [सं० तान्त] १. आत । थका हुआ । २. जिसके अंत में व हो । ३. मुरझाया हुआ । (को०) । ४. कष्टमय (को०) ।

ठांतव^१—वि० [सं० तान्तव] [वि० स्त्री० तांतवी] जिसमें तंतु या तार हो । जिसमें से तार निकल सके ।

ठांतव^२—संज्ञा पुं० १. बुनना । २. बुना हुआ कपड़ा । ३. जाल । ४. सूत कातना । (को०) ।

ठांतुवायि, ठांतुवाय्य—स्त्री० पुं० [सं० तान्तुवायि, तान्तुवाय्य] तनुवाय या बुनकर का पुत्र (को०) ।

ठांत्रिक^१—वि० [सं० तान्त्रिक] [स्त्री० तान्त्रिकी] तंत्र संबंधी ।

ठांत्रिक^२—संज्ञा पुं० १. तंत्र शास्त्र का जाननेवाला । यंत्र मंत्र आदि करनेवाला । मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के प्रयोग करनेवाला । २. एक प्रकार का सन्निपात ।

ठांवूल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १. पान । नागवल्ली दल । २. पान का बीड़ा । ३. किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय (जेन) । ४. सुपारी ।

ठांवूलकरक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलकरक] १. पान रखने का बरतन । बट्टा । बिलहारा । २. पान के बीड़े रखने का ढिब्बा । पनढिब्बा ।

ठांवूलद—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलद] पान रखने और तैयार करके देनेवाला नौकर (को०) ।

ठांवूलधर—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलधर] तावूलद (को०) ।

ठांवूलनियम—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलनियम] पान, सुपारी, लवंग, इलायची आदि खाने का नियम । (जेन) ।

ठांवूलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलपत्र] १. पान का पत्ता । २. प्रथमा नाम की लता जिसके पत्ते पान के से होते हैं । पिंडाल ।

ठांवूलपीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलपीटिका] पान का बीड़ा । बीड़ी ।

ठांवूलराग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलराग] १. पान की पीक । २. मसूर ।

ठांवूलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलवल्ली] पान की बेल । नागवल्ली ।

ठांवूलवाहक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलवाहक] पान खिलानेवाला सेवक । पान का बीड़ा लेकर चलनेवाला सेवक ।

ठांवूलपीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा (को०) ।

ठांवूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला । तमोली ।

ठांवूली^१—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलिन] पान बेचनेवाला । तमोली ।

ठांवूली^२—वि० तावूल संबंधी (को०) ।

ठांवूली^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूल] पान की बेल । उ०—तावूनी, अहिबल्लरी, द्विजा, पान की बेल ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०६ ।

ठांवेत—संज्ञा पुं० [?] कछुवा । कच्छप ।

ठांमुल^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तावूल' । उ०—घृत बिन भोजन ज्यो जून बिन तामुन जटा बिन जोगी जैसे पुंछ बिन लोपरा ।—प्रकवरी०, पृ० ५३ ।

ठाँ^५—अव्य० [?] तब तक । उ०—जौ जसराज प्रतपियो ताँ सुरपुज प्रकाल ।—रा० रं०, पृ० १६ ।

ठाँ^६—अव्य० [सं० तता, प्रा० तई, तया; राज० ताँ] वहाँ । उ०—सज्जण भलगा ताँ सगई, जाँ लय समये दिह ।—ढोला०, पृ० ४२० ।

ठाँई^७—अव्य० [सं० तावत् या प्रा० ता] १. तक । पर्यंत । २. पास । तक । समीप । निकट । ३. (किसी के) प्रति । समक्ष । लक्ष्य करके । जैसे, किसी के ताँई कुछ कहना । उ०—कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताँई । इन तेरह तें तरह दिए बनि भावे साँई ।—गिरिधर (शब्द०) । ४. विषय में । संबंध में । लिये । वास्ते । निमित्त । उ०—दीन्ह रूप श्री जोति गोसाई । कीन्ह खम दुहुँ जग के ताँई ।—जायसी (शब्द०) ।

मुहा०—अपने ताँई = अपने को ।

विशेष—दे० 'तई' ।

ठाँगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टांगा' ।

ठाँडा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टाँडा' । उ०—राम नाम सीदा किया दूजा दाण चुकाय । जन हरिया गुहान का ताँडा देह लदाय ।—राम० धर्म०, पृ० ५३ ।

ठाँण^८—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तान' । उ०—अहाँ तुपक तरवारि भर सेल टकटक हूँ बाँण की ताँण चहुँ केर हुई ।—सुदर० ग्रं०, भाग २, पृ० ८८१ ।

ठाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तु] १. भेड़ बकरी की अंतड़ी, या जोपायों के पुट्टों को घटकर बनाया हुआ सूत । बमड़े या नसों की बनी हुई डोरी । इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के तार बनाए जाते हैं ।

मुहा०—ठाँत सा = बहुत दुबला पतला । ठाँत बाजी और राग बूझा = जरा सी बात पाकर खूब पहचान लेना । उदा०—घर की टपकी बासी साग । हम तुम्हारी जात बुनियाद से बाकि हैं । ठाँत बाजी और राग बूझा ।—सैर कु०, पृ० ४४ ।

२. धनुष की डोरी । ३. डोरी । सूत । ४. सारंगी आदि का तार । जैसे, ठाँत बाजी राग बूझा । उ०—(क) सो मैं कुमति कहवें केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँड़र ताँती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सेइ साधु गुह मुनि पुरान श्रुति ब्रम्हो राग बाजी ताँति ।—तुलसी (शब्द०) । ५. जुलाहों का राख ।

सौतडी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत का प्रत्यय०] ताँत ।

मुहा०—सौतडी सा = ताँत की तरह दुबला पतला ।

सौतवा—संज्ञा पुं० [हि० माँत] माँत उतरने का रोग ।

सौता—संज्ञा पुं० [सं० तति (=श्रेणी) प्रत्यय सं० ताति (=क्रम)] श्रेणी । पक्ति । कतार ।

मुहा०—सौता बाँधना = पक्ति में खड़ा होना । सौता लगना = तार न टूटना । एक पर एक बराबर चला चलना ।

सौताँ—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत] दे० 'ताँत' ।

सौतिया^१—वि० [हि० ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला ।

सौतिया^२—संज्ञा पुं० [हि०] ताँत बजानेवाला । तंतुवादक । उ०—
रुहें कधीर मस्तान माता रहे, बिना कर सौतिया नाद गावे ।—कबीर स०, भा० १, पृ० ६५ ।

सौती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँत] १. पक्ति । कतार । २. बाल बच्चे । घोचर ।

सौती^२—संज्ञा पुं० जुलाहा । कपड़ा बुननेवाला ।

सौती^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँत' । उ०—उनमनी ताँती बाजन लागी, यही सिधि तुम्हीं पाँडी । गोरख०, पृ० १०६ ।

सौती^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तान' । उ०—गोपी रीति रही रस तानन सौ सुष सुष सब बिसराई ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५१ ।

सौता—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में गंधक, छोटे तथा घोर द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है ।

विशेष—यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है । ताप और विद्युत् के प्रवाह का संचार ताँबे पर बहुत अधिक होता है, इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ प्रादि में होता है । ताँबे में घोर दूसरी धातुओं को निहित मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, रौंदा मिलाने से काँसा, जस्ता मिलाने से पीतल । कई प्रकार के विलायती सोने भी ताँबे से बनते हैं । लूब ठोड़ी जगह में ताँबा और जस्ता बराबर बराबर लेकर गला डाले । फिर गली हुई धातु को खूब घोड़े और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे । थोड़े थोड़े कुछ देर में सोने की तरह पीला हो जायगा । ताँबे की खानें ससार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का ताँबा निकलता है । कहीं घूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का । भारतवर्ष में सिन्धुभूमि, हजारीबाग, जयपुर, अजमेर, कच्छ, नागपुर, नेल्लोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँबा निकलता है । जापान से बहुत अच्छे ताँबे के पत्तर बाहर जाते हैं ।

हिंदुओं के यहाँ ताँबा बहुत पवित्र धातु माना जाता है, घट, उसके शरवे, पंचपात्र, कलश, भारी प्रादि पूजा के वस्तु बहुत बनते हैं । डाक्टरों, हकीमों और वैद्यक चीनो मत की चिकित्सकों में ताँबे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है । आयुर्वेद में ताँबा घोषने की विधि इस प्रकार है । ताँबे का

बहुत पतला पत्तर करके आग में तपाकर लाल कर डाले । फिर उसे क्रमशः तेल, मट्टे, काँजी, गोमूत्र और कुलपी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे । बिना घोषा हुआ ताँबा विष से अधिक हानिकारक होता है ।

पर्या०—तम्रक । शुल्ब । म्लेच्छमुख । द्वघष्ट । वरिष्ठ । उदुंबर । द्विष्ट । भवक । तपनेष्ट । भरविंद । रविलोह । रविप्रिय । रक्त । नेपालिक । मुनिपित्तल । अर्क । लोहितायस ।

ताँवा^१—संज्ञा पुं० [प्र० तममह] मास का वह टुकड़ा जो बाज प्रादि शिकारी पक्षियों के प्रागे खाने के लिये डाला जाता है ।

ताँबिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँबी' ।

ताँबी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताँवा] १. छोटे मुँह का ताँबे का एक छोटा बरतन । २. ताँबे की करछी ।

ताँबेकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का लाल रंग ।

ताँम^१—क्रि० वि० [?] तब । उ०—बज्जिव निसान गज्जिव सु ताँम ।—ह० रासो, पृ० ५० ।

ताँवत^१—क्रि० वि० [सं० तावत्] दे० 'तावत्' । उ०—जैत फूल फल पतिय बाही । ताँवत प्रागमपुर में बाही ।—इंद्रा०, पृ० १४ ।

ताँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताव] १. ताप । ज्वर । हुरारत । २. जाँटा देकर घानेवाला बुखार । जूबी । ३. मूर्छा । पछाड । घुमटा । चक्कर ।

क्रि० प्र०—घाना ।

ताँवरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँवर' । उ०—फिरत सीस खलु भा घोंघियारा । ताँवरि प्राइ परी बिकरारा ।—चित्रा०, पृ० १२३ ।

ताँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताँवर' ।

ताँवरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताँवर' । उ०—ज्यो सुक सेव भास लागि निधि बासर हठि चित्त लगायो । रीतो परधो जवे फल चाख्यो, उडि गयो तुल ताँवरी प्रायो ।—सूर०, १ । ३२६ ।

ताँसना^१—क्रि० सं० [सं० त्रास] १. डौटना । त्रास देना । धमकाना । घ्रास दिखाना । २. कुव्यवहार करना । सताना । जैसे, साम का बहू को ताँसना ।

ताँसा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा । भाँक ।

ताँह^१—सर्व०—[सं० तत्] दो । सो (वह) सर्वनाम के कर्मकारक का बहुवचन । उ०—आडा डूंगर वन घणा, ताँह मिलिजुड केम ।—ढोला०, दू०, २१२ ।

ताँही^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'ताई' । उ०—जो अतरजामी ढिग प्राही । का करि सके इद्र इन ताँही ।—नद० प्र०, पृ० १६२ ।

ता^१—प्रत्य० [सं०] एक भाज्वाचक प्रत्यय जो विशेषण और सज्ञा धव्यों के प्रागे लगता है । जैसे,—उत्तम, उत्तमता, मनु, मनुता, मनुष्य, मनुष्यता ।

ता^२—प्रत्य० [प्रा०] तक । पर्यंत । उ०—(क) केस मेघावरि सिर ता पाई । चमकहि दसन बीजु की नाई ।—जायसी

(शब्द०) । (ख) । रुठता हूँ इस सबब हर बार मैं । ता गले तेरे लगूँ ऐ यार मैं । कविता कौ०, भाग ४, पृ० २६ ।

ता^३—सर्व० [सं० तद्] उस ।

विशेष—इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है । जैसे,—ताकों, तासों, तापे इत्यादि ।

ता^३—वि० उस । उ०—तब शिव उमा गए सा ठौर ।—सुर (शब्द०)

विशेष—इसका प्रयोग विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ही होता है ।

ता^३—क्रि० वि० [फा०] जब तक । उ०—करे ता मो मल्लाह का नायब करम । हमारा सभी जाय ये दर्शो गम ।—बक्सिनी०, पृ० २१४ ।

ता^३—सञ्ज्ञा पुं० [मनु०] वृत्त्य का बोल । उ०—रास मे रसिक दोऊ भानेद भरि नाचत, गताद्रिम द्वि ता ततयेइ ततयेइ गति बोले ।—नद० प्र०, पृ० ३६६ ।

ताई^३—अव्य० [सं० तावत् या फा० ता] दे० 'ताई'-३ । उ०—अपूत छोड़ विषय रस पीवै, धृग तृग तिनके ताई ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४५ ।

ताई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हि० ताय + ई (प्रत्य०)] १. ताप । हुरारत । हलका ज्वर । २. जाड़ा देकर भानेवाला बुखार । छड़ी ।

क्रि० प्र०—पाना ।

३ एक प्रकार की छिद्यली कड़ाही जिसमें मालपूषा, जलेबी आदि बनाते हैं ।

ताई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताऊ का स्त्रीलिंग] बाप के बड़े भाई की स्त्री । जेठी चाची ।

ताई^३—अव्य० [सं० तावत् या फा० ता] दे० 'ताई'-३ । उ०—भूत खानि मे रहो समार्ई । सब जग जाने तेरे ताई ।—कबीर सा०, पृ० १५१८ ।

ताई^३—वि० [सं० तावत्] वही । उ०—साजे सार छत्रीस सिपाई । तयार हुषा रण मंडण ताई ।—रा० रू०, पृ० ६५ ।

ताईत^३—सञ्ज्ञा पुं० [फा० ताबीज] ताबीज । जतर । यंत्र ।

ताईद^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. पक्षपात । तरफदारी । २. अनुमोदन । समर्थन । पुष्टि । उ०—आखिर मिरजा साहब भूठ क्यों बोलते और मुशी प्रखर साहब इनकी ताईद क्यों करते ?—सेर०, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ताईशी^३—सञ्ज्ञा पुं० १. सहायक कर्मचारी । नायब । २. किसी कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह काम करनेवाला व्यक्ति ।

ताउा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताव' ।

ताउला—वि० [हि० उतावला] उतावला । मधीर ।

ताऊ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तावतु] बाप का बड़ा भाई । बड़ा चाचा । ताया ।

मुहा०—बखिया के ताऊ=बैल । मुखं । जड़ ।

ताऊन—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] एक घातक सक्रामक रोग जिसमें गिहटी निकलती और बुखार आता है । प्लेग ।

ताऊस—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. मोर । मयूर ।

यौ०—तख्त ताऊस=शाहजहाँ के बहुमूल्य रत्नजटित राज-सिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत से मोर के आकार का बनाया गया था ।

२. सारंगी और सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिसपर मोर का आकार बना होता है ।

विशेष—इसमें सितार के से तरब और परदे होते हैं और यह सारंगी की कमानी से रेतकर बजाया जाता है ।

ताऊसी—वि० [प्र०] १. मोर का सा । मोर की तरह का । २. गहरा ऊदा । गहरा बैंगनी ।

ताक^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताकना] १. ताकने की क्रिया । अवलोकन । यौ०—ताक भाँक ।

मुहा०—ताक रखना=निगाह रखना । निरीक्षण करते रहना । २. स्थिर दृष्टि । टकटकी ।

मुहा०—ताक बाँधना=दृष्टि स्थिर करना । टकटकी लगाना ।

३ किसी अवसर की प्रतीक्षा । मौका देखते रहने का काम । घात । जैसे,—बदर आम लेने की ताक में बैठा है ।

मुहा०—(किसी की) ताक में बैठना=(किसी का) प्रहित चेतना । उ०—जो रहे ताकते हमारा मुँह । हम उन्हीं की न ताक में बैठें ।—चोखे०, पृ० २७ । ताक में रहना=उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहना । मौका देखते रहना । ताक रखना=घात में रहना । मौका देखते रहना । ताक लगाना=घात लगाना । मौका देखते रहना ।

४ खोज । तलाश । फिराक । जैसे,—(क) किस ताक में बैठे हो ? (ख) उसी की ताक में जाते हैं ।

ताक^३—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ताक] दीवार में बना हुआ गड्ढा या खाड़ी स्थान जो चीज वस्तु रखने के लिये होता है । भाला । तावा ।

मुहा०—ताक पर धरना या रखना=पड़ा रहने देना । काम में न लाना । उपयोग न करना । जैसे,—(क) किताब ताक पर रख दी और खेलने के लिये निकल गया । (ख) तुम अपनी किताब ताक पर रखो, मुझे उसकी जरूरत नहीं । ताक पर रहना या होना=पड़ा रहना । काम में न पाना । भलग पड़ा रहना । व्यर्थ जाना । जैसे, यह वस्तुवेत्र ताक पर रह जायगा, और उसकी डिगरी हो जायगी । ताक भरना=किसी देवस्थान पर मनौती की पूजा चढ़ाना ।—(मुसल०) ।

ताक^३—वि० १. जो संख्या में सम न हो । जो बिना खडित हुए दो बराबर भागों में न बँट सके । विषम । जैसे, एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह आदि ।

यौ०—जुफ्त ताक या जूस ताक ।

२. जिसके जोड़ का दूसरा न हो । अद्वितीय । एक या अनुपम । जैसे, किसी फन में ताक होता । उ०—जो था अपने फन में ताक था ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४६ ।

ताकजुप्त—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ताक + क्रा० जुप्त] एक प्रकार का जूपा जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कौड़ियाँ या श्रीर वस्तुएँ लेकर बुझाते हैं कि वस्तुओं की सख्या सम है या विषम। यदि बुझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताकभाँक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताकना + भाँकना] १. रह रहकर बार बार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात। जैसे,—क्या ताक भाँक लगाए हो, ममी वे यहाँ नहीं आए हैं। २. छिपकर देखने की क्रिया। ३. निरोक्षण। देखभाल। निगरानी। ४. प्रवेक्षण। खोज।

ताकत—संज्ञा स्त्री० [प्र० ताकत] १. जोर। बल। शक्ति। २. सामर्थ्य। जैसे,—किसी की क्या ताकत ओ तुम्हारे सामने आवे।

ताकतवर—वि० [प्र० ताकत + फा० वर (प्रत्य०)] १. बलवान्। बलिष्ठ। २. शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० सं० [सं० तर्कण (= विचारना)] १. सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो राउर मनि मनभय ताका। सो पाइहि यह फल परिपाव।—तुलसी (शब्द०)। २. अवलोकन करना। दृष्टि जमाकर देखना। टकटकी लगाना। ३. साजना। समझ जाना। लखना। ४. पहले से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देखकर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे,—(क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यही बैठो। (ख) कोई अच्छा आदमी ताककर यहाँ लाओ। ५. दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे,—मैं अपना प्रसबाव यही छोड़े जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० टक्क (= एक देश या एक जाति)] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—मटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके प्रक्षरो को खुडे या मूंडे भी कहते हैं।

ताकवना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ताकना'। उ०—कायर सेरी ताकव, सुरा मर्दे पात्र।—कवीर० सा०, स०, पृ० २९।

ताकि—अव्य० [क्रा०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे,—यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेताकर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बार बार कहा गया हो। जैसे,—मुहरिरो से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें। उ०—क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके मही कहा था कि उत्सव हो ? —भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १७६।

क्रि० प्र०—करना।

ताकीद कामिल—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० ताकीद + कामिल], पूर्ण चेतावनी। सावधानी। उ०—जरा इसकी ताकीद कामिल रहे कि कहीं वह बूढ़ा चर्खा मोल्की न घुस आए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८।

ताकोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक पीघे का नाम।

ताक्षण्य, ताक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बढ़ई का लड़का [को०]।

ताखड़—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ताक] दे० 'ताक'। उ०—पड़ सुगना सत वाम, बैठ तन ताख में।—घरम०, पृ० ४३।

ताखड़ा—वि० [देश०] दे० 'तगड़ा'।

ताखड़ा—वि० [?] उत्साहित। उ०—ताखड़ा, नमीठा मोडिया सायली। घण्टा घायल किया भाप घण्टा घायली।—रघु०, पृ० १८३।

ताखड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + हि० कडी] तराजू। काँटा।

ताखन—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तत्क्षण'। उ०—ताखन उठलिये जागि रे।—घरनी०, पृ० २८।

ताखा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताक'।

ताखी—वि० [प्र० ताक] १. जिसकी दोनों आँखें एक तरह की न हों। जिसकी एक आँख एक रंग या ढंग की हो और दूसरी आँख दूसरे रंग ढंग की हो। (घोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐसी समझे जाते हैं)। २. साधुओं के पहनने की नोकदार एक टोपी। उ०—गुरु का सबद बोल कान में मुद्रिका, उनमुनी तिलक सिर तत ताखी।—पलटू०, भा० २, पृ० २५।

ताखीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० ताखीर] विलव। देर। उ०—देख नाचार कर न कुछ ताखीर।—कबीर प्र०, पृ० ३७४।

ताग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तागा] दे० 'तागा'। उ०—सत रज तम तीनों ताग तोरि डारिए।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० १११।

तागड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ताग + कडी] १. तागे में पिरोए हुए सोने चाँदी के धुंधुरों का बना हुआ कमर में पहनने का एक गहना। करघनी। काँची। किकिणी। सुदघटिका।

विशेष—तागड़ी सीकड़ या जजीर के आकार की भी बनती है। २. कमर में पहनने का रंगीन डोरा। कटिसूत्र। करगता।

तागत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० ताकत] दे० 'ताकत'। उ०—तागत विना हवास होस तुलसी में मल्ले।—संत० तुरसी, पृ० १४३।

तागना—क्रि० सं० [हि० तागा + ना (प्रत्य०)] सुई से तागा डालकर फँसाना। स्थान स्थान पर डोभ या लगर डालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, डुलाई या रजाई तागना। उ०—ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला सहज सुई से तागी।—कबीर प्र०, भा० ३, पृ० ४२।

तागपहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तागा + पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रक्षकर पय में पहनाया जाता है। (जुलाहे)।

तागपाट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तागा + पाट (= रेशम)] एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह रेशम के तागे में सोने के तीन ठासे या जतर डालकर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—तागपाट डालना = विवाह की रीति के अनुसार गणेश-

पूजन आदि के पीछे वर के बड़े भाई (दुलहिन के जेठ) का वधू को तागपाठ पढ़ाना ।

तागरी^७—संज्ञा स्त्री० [हि० तागरी] दे० 'तागरी'—२। उ०—
चिरगठ फारि चटरा ले गयो तरी तागरी छूटी ।—कबीर
ग्र०, पृ० २७७ ।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० ताकंवा, प्रा० तागो, प० हि० तागो] १. रूई,
रेशम आदि का वह ग्रंथ जो तकले आदि पर बटने से लंबी
रेखा के रूप में निकलता है। सूत। डोरा। धागा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पिरोना ।

मुहा०—तागा डालना = सिलाई के द्वारा तागा फँसाना । दूर दूर
पर सिलाई करना । तागना ।

२ वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे ।

विशेष—मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं; इसी से यह
ग्रन्थ लिया गया है ।

तागीर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तागीर' । उ०—तब देसाधिपति ने
उन सौ परगना तागीर करि उनको अपने पास बुलाए ।—दो
सौ बावन०, भा० १, पृ० २०१ ।

तागडवि^७—संज्ञा पुं० [अनु०] तडतड शब्द । उ०—दुहु ओढ़ी
दल गाजै, तागडवि तबल बाजै रिणातूर ।—रघु०, रू०,
पृ० २१६ ।

ताचना^७—क्रि० सं० [हि० तचना] जलाना । तपाना । उ०—
विस्फुल्लिग से जग दुख तजि तब विरह भगिन तन ताचौ ।—
भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६ ।

ताज^१—संज्ञा पुं० [अ०] १ बादशाह की टोपी । राजमुकुट ।

यौ०—ताजपोशी ।

२ कलमी । तुरी । ३ मोर, मुर्गे आदि पक्षियों के सिर पर की
चोटी । शिखा । ४ दीवार की कोंगनी या छज्जा । ५ वह
बुर्जी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना देते हैं । ६
गजीके के एक रंग का नाम । ७ आगरे का ताजमहल ।

ताज^७—संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] घोड़े को मारने का चाबुक ।
उ०—तीख तुखार चाडि घी बाँके । सँचरहि पोरि ताज बिनु
हँके ।—जायसी (शब्द०) ।

ताजक—संज्ञा पुं० [फा०] १ एक ईरानी जाति जो तुकिस्तान के
बुखारा प्रदेश से लेकर बख्श्या, काबुल, बिलोचिस्तान, फारस
आदि तक पाई जाती है ।

विशेष—बुखारा में यह जाति सर्त, अफगानिस्तान में देहान और
बिलोचिस्तान में देहवार कहलाती है । फारस में ताजक एक
साधारण शब्द ग्रामीण के लिये हो गया है ।

२ ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यावनाचार्य कृत प्रसिद्ध है ।

विशेष—यह पहले अरबी और फारसी में था, राजा समरसिंह,
नीलकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया । इसमें बारह गणियों
के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ
बतलाई गई हैं । जैसे, भेष, सिंह और घनु का पित्त स्वभाव
और क्षत्रिय वरुण, मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव
और वैश्य वरुण, मिथुन, तुला और कुम्भ का सम स्वभाव और

शूद्र वरुण; कर्कट, धूमिक और मीन का कफ स्वभाव और
ब्राह्मण वरुण । इस ग्रंथ में जो सजाएँ पाई हैं, वे अधिकशः
अरबी और फारसी की हैं, जैसे, इक्कवाल योग, इतिहा योग
इत्यथाल योग, इशाराक योग, गैरकवल योग इत्यादि ।

ताजकुला—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० कुलाह] रत्नजटित मुकुट ।
उ०—बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान
महमूद राणा सांगा के हाथ कैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध
'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमर पेटो
उसके पास थी ।—राज० इति०, पृ० ६६७ ।

ताजगी—संज्ञा स्त्री० [फा० ताजगी] १ शुक्लता या कुम्हलाहट का
अभाव । ताजापन । हुरापन । २ प्रफुल्लता । स्वस्थता ।
शिथिलता या श्राति का अभाव । ३ सद्यः प्रस्तुत होने का
भाव । नयापन ।

ताजदार^१—वि० [फा०] १ ताज के ढग का । २. ताजवाला ।
ताजदार^२—संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह । उ०—सत्ताईश
वंश हैं उनके ताजदार ।—कथीर म०, पृ० १३१ ।

ताजन—संज्ञा पुं० [फा० ताजियाना] १. कोड़ा । चाबुक । उ०—
साज न भावति मोर समाजन लागे मलोक के ताजन ताहू ।—
केशव ग्रं०, पृ० ७२ । २ दड । सप्ता (को०) । ३. उत्तेजना
प्रदान करनेवाली वस्तु (को०) ।

ताजना—संज्ञा पुं० [हि० ताजन] दे० 'ताशन' । उ०—तनक ताजना
लगत ही, छाड़ देत भुष भग ।—प० रासो, पृ० ११७ ।

ताजपोशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] राजमुकुट धारण करने या राज-
सिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव ।

ताजबक्श—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० बक्श] बादशाह बनाने-
वाला या हारे हुए बादशाह को बादशाह बनानेवाला सम्राट्
(को०) ।

ताजबीबी—संज्ञा स्त्री० [अ० ताज + फा० बीबी] शाहजहाँ की,
अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल जिसके शिर्से
आगरे में ताजमहल नाम का मकबरा बनाया गया था ।

ताजमहल—संज्ञा पुं० [अ०] आगरे का प्रसिद्ध मकबरा जिसे शाह-
जहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति
में बनवाया था ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न
देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा
कभी सुना नहीं गया था । बेगम ने बादशाह से कहा—'मेरा
अंतिम काल निकट जान पड़ता है । आपसे मेरी प्रार्थना है
कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न
करें, मेरे सड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनाएं और
मेरा मकबरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमण्डल पर नहीं ।
प्रसव के थोड़े दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया ।
बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार जमुना के
किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके
जोड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है । यह मकबरा
बिल्कुल संगमरमर का है । जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य

रगीन परधरो के दुकड़े जड़कर वेल वूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का धोखा होता है। रंग विरग के फूल पत्ते पच्चीकारी के द्वारा खचित हैं। पत्तियों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मकवरे को बनाने में ३० वर्ष तक हजारों मजदूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मजदूरी आदि भाजकल की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३५०२४ खपए लगे। टेवनियर नामक फोंच यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठाणों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए, तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि 'यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मकबरा बने, तो मैं पाज़ मरने के लिये तैयार हूँ।'

ताजा—वि० [फ्रा० ताजह] [वि० ओ० ताजी] १ जो सुखा या कुम्ह-लाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी गोभी। २ (फल आदि) जो ढाल से टूटकर तुरत ढाया हो। जिसे पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे अमरुद, ताजी फलियाँ। ३ जो आत या शिथिल न हो। जो थका मोटा न हो। जिसमें फुरती और उत्साह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे,—(क) घोड़ा जलपान कर लो ताजे हो आधोगे। (ख) शरवत पी खेने से तबीयत ताजी हो गई।

यो०—मोटा ताजा = हट्ट पृष्ठ।

४ तुरत का बना। सद्य प्रस्तुत। जैसे, ताजी पुरी, ताजी जलेबी, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना।

५ जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। ६ जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे—ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) नए सिरे से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे,—दवा दबाया मगढ़ा क्यों ताजा करते हो? (२) स्मरण दिलाना। याद दिलाना। फिर चिन्त में लाना। जैसे,—गम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) नए सिरे से उठना। फिर छिड़ना या चलना। फिर उपस्थित होना। जैसे,—उनके जाने से मामला फिर ताजा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चिन्त में उपस्थित होना। जैसे, गम ताजा होना।

ताजातम—वि० [फ्रा० ताजा + सं० तम (प्रत्य०)] विल्कुल नवीन। नवीनतम। उ०—'कड़ी में कोयला' 'उग्र' लिखित ताजातम उपन्यास है।—कड़ी० (प्रकाशकीय), पृ० ८।

ताजि—वि० [हि० ताजी] दे० 'ताजी'। उ०—अनेक पाणि तेजि ताजि साजि साजि आनिमा।—कीर्ति०, पृ० ८४।

ताजिणी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताज्ज'। उ०—हाथि लगामी ताजिणी पार कइ सेवइ राजदुमार।—बी० रासो, पृ० ६६।

ताजिया—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजियह] बाँस की कमधियों पर रंग

विरंगे कागज, पन्नी आदि चिपकाकर बनाया हुआ मकबरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसैन की कब्र बनी होती है।

विशेष—मुहर्रम के दिनों में शीया मुखमान इसकी आराधना करते और प्रतिदिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर दफन करते हैं।

मुहा०—ताजिया ठहा होना = (१) ताजिया दफन होना। (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुखमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि १६वीं शताब्दी के आरंभ में मुगल शासक हुमायूँ ने जब दिल्ली आया था तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के आगे आगे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताजियादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ताजिया + फ्रा० दारी (प्रत्य०)] ताजिया के प्रति समानप्रदर्शन। उ०—दुर्गाबाई सुन्नी मुखमान थी। वह ताजियादारी करती थी और राखना उनका पेशा था।—भासी०, पृ० ३१०।

ताजियाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजियान] १. चाबुक। कीटा। उ०—हर नफस गोया उसे एक ताजियाना हो गया।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५०।

ताजी^१—वि० [फ्रा० ताजी] भरबी। भरब का। भरब संबंधी।

ताजी^२—संज्ञा पुं० १. भरब का घोड़ा। उ०—सुंदर घर ताजी बंधे तुरकिन की घुरसाल।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७३७। २. शिकारी कुत्ता।

ताजी^३—संज्ञा स्त्री० भरब की भाषा। भरबी भाषा।

ताजी^४—वि० राजा का जी० रूप।

ताजीम—संज्ञा स्त्री [फ्रा० ताजीम] किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना, झुककर सलाम करना इत्यादि। संमानप्रदर्शन। उ०—सिखदा सिरजनहार को मुरसिद को ताजीम।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० २८६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताजीमी—वि० [फ्रा० ताजीमी + फ्रा० ई (प्रत्य०)] ताजीम। उ०—और रसूल पर करो यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा।—घट०, पृ० २११।

ताजीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजीमी + फ्रा० सरदार] वह सरदार जिसके जाने पर राजा या बादशाह उठकर खड़े हो जायें या जिसे कुछ आये बढ़कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताजीर—संज्ञा स्त्री [फ्रा० ताजीर] सजा। दंड [की०]।

ताजीरात—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताजीरात, फ्रा० ताजीर का बहु व०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। गडविधि। जैसे, ताजीरात हिंदू।

ताजीरी—वि० [फ्रा० ताजीरी + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १ दंड से संबंधित। २ दंड रूप में लगाया हुआ या तैनात किया हुआ (कर या पुखिद आदि)।

ताजीस्त—अव्य० [फा० ताजीस्त] जीवन भर। आजीवन। आजन्म।
उ०—ताजीस्त सनारव्वां ही तू इस कालिल अपने।—कवीर
म०, पृ० ४६८।

ताजुर्वा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० तमज्जुव] दे० 'तमज्जुव'।

ताज्जुव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० तमज्जुव] दे० 'तमज्जुव'।

ताटंक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] १ कान में पहनने का एक गहना।
करनफूल। तरकी। उ०—चलि चलि जात निकट सवननि
के उलटि पलटि ताटंक फँदाते।—सतवाणी०, पृ० ५५। २
छप्पय के २४वें भेद का नाम। ३ एक छंद जिसके प्रत्येक
चरण में १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं
और अतः मगण होता है। किसी किसी के अतः में एक
गुरु का ही नियम रखा है। लावनी प्रायः इसी छंद में
होती है।

ताटका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताडका' [को०]।

ताटस्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताटस्थ] १ समीपता। निकटता। २
तटस्थता। उदासीनता। निरपेक्षता [को०]।

ताड़क—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] कान का एक गहना। तरकी।
करनफूल।

विशेष—पहले यह गहना ताड़ के पत्तों का ही बनता था। अब
और तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है।

ताड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताड] १ शाखारहित एक बड़ा पेड़ जो खरों
के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल
सिरे पर पत्ते धारण करता है।

विशेष—ये पत्ते चिपटे मजबूत डठलों में, जो चारों ओर निकले
रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे रहते हैं और बहुत ही
कठे होते हैं। इसकी लकड़ी की भीतरी बनावट सूत के ठोस
लच्छों के रूप की होती है। ऊपर गिरे हुए पत्तों के डठलों के
मुल रह जाते हैं जिससे छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है। चेत
के महीने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों
में खूब पक जाते हैं। फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी
और रेशेदार गुदा होता है जो खाने के योग्य होता है। फूलों
के कच्चे अकुरों को पाखने से बहुत सा रस निकलता है जिसे
ताड़ी कहते हैं और जो घूप लगने पर नशीला हो जाता है।
ताड़ी का व्यवहार नीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर
करते हैं। बिना घूप लगा रस भीठा होता है जिसे नीरा
कहते हैं। महात्मा गांधी ने नीरा का प्रयोग उचित बताया
था। नीरा तथा ताड़ी दोनों में विटामिन बी प्रचुर मात्रा में
होता है। बेरी बेरी रोग में दोनों अत्यंत लाभकारी होते हैं।
ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है। भारतवर्ष, भरम,
बरमा, सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपसमूह तथा फारस
की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश में ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं।
ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं। संमिल भाषा में ताल-
विलास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ७०१ प्रकार के ताड़
गिनाए गए हैं और प्रत्येक का भक्षण भक्षण गुण बतलाया
गया है। दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं।

गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की
विलक्षण शोभा है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी
काम में आता है। पत्तों से पखे बनते हैं और छपर छाए
जाते हैं। ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है।
खकड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी
बनाते हैं। डठल के रेशे बटाई और जाल बनाने के काम में
आते हैं। कई प्रकार के ऐसे ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत
मजबूत होती है। सिंहल के जफना नामक नगर से ताड़ की
लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी। प्राचीन काल में दक्षिण के
देशों में ताणपत्र पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। ताड़ का रस
श्लेष्म के काम में भी आता है। ताड़ी की पुलटि फोड़े
या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है। ताड़ी का तिरका
भी पड़ता है। वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह
और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि,
कुष्ठ और रक्तपित्त नाशक माना जाता है। ताड़ ऊँचाई
के लिये प्रसिद्ध है। कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक
ऊँचे होते हैं, पर घेरा किसी का ६-७ बिस्ते से अधिक नहीं
होता।

पर्या०—तालद्रुम। पत्री। दीर्घस्कंध। ध्वजद्रुम। तुराज।
मधुरस। मदाह्य। दीर्घपादप। चिरायु। तुराज। दीर्घपत्र।
गुच्छपत्र। घासवद्रु। लेख्यपत्र। महोन्नत।

२ ताड़न। प्रहार। ३ शब्द। वृत्ति। घमाका। ४ घास,
मनाव के उठान आदि की श्रैटिया जो मुट्ठी में घा जाय।
जुट्टी। पृला। ५ हाथ का एक गहना। ६. मूर्ति-निर्माण-
विद्या में मूर्ति के ऊपरी भाग का नाम। ७ पहाड़। पर्वत
(को०)।

ताड़क—वि० [सं० ताडक] ताड़ना या पापात करनेवाला [को०]।

ताड़क—सञ्ज्ञा पुं० वधिक। जल्लाद [को०]।

ताड़का—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की
माता से श्री रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कहा है कि यह सुकेतु नामक
एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा
को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार
हाथियों का बल था। यह सुंद को व्याही थी। जब भगवत्पुत्र
श्री ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला,
तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर भगवत्पुत्र श्री को खाने
दोड़ी। श्री के पाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस
हो गए। उसी समय से ये भगवत्पुत्र जी के तपोवन का नाश
करने लगे और उसे दहने प्राणियों से शून्य कर दिया।
यह सब व्यवस्था दशरथ से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी
को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

ताड़काफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडकाफल] बड़ी इलायची।

ताड़कायल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडकायल] विश्वामित्र के एक पुत्र
का नाम।

ताड़कारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडकारि] (ताडका के पत्तु) श्री रामचंद्र।

ताड़कैय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताडकैय] (ताडका का पुत्र) मारीच।

ताड़घ—संज्ञा पुं० [सं० ताड़घ] १ वेत या कोड़ा मारनेवाला । २ जल्लाद ।

ताड़घात—संज्ञा पुं० [सं० ताड़घात] हथौड़े आदि से पीटकर काम करनेवाला । लोहार ।

साड़न—संज्ञा पुं० [सं० ताड़न] १ मार । प्रहार । घाघात । २. डाँट डपट । घुड़की । ३. घासन । दड । ४. मन्त्रों के वणों को चदन से लिखकर प्रत्येक मंत्र को जल से वायुवीज पढ़कर मारने का विधान । ५. गुणन । ६. खड ग्रहण (को०) ।

साड़ना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़न] १ प्रहार । मार । उ०—देख ताड़ना चित्त की तुल्य सर चाढ़े पास हो ।—कबीर सा०, पृ० ८६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२ उत्पीड़न । कष्ट ।

ताड़ना^२—क्रि० सं० १. मारना । पीटना । दंड देना । २ डाँटना । डपटना । शासित करना ।

ताड़ना^३—क्रि० सं० [सं० तर्कण (= सोचना)] १ किसी ऐसी बात को जान लेना जो जान बूझकर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो । लक्षण से समझ लेना । अज्ञात से मालूम कर लेना । भाँपना । खल लेना । जैसे,—मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी निये आए हो । उ०—लिहा जोहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली । थैजी लई समेटि दिहा गाहक को टाली ।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६ ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

२ मार पीटकर भगाना । हटा देना । हौकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

ताड़नी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़नी] धातुक । कोड़ा (को०) ।

ताड़नीय—वि० [सं० ताड़नीय] दंड देने योग्य । दंडनीय ।

ताड़पत्र^१—संज्ञा पुं० [सं० ताड़पत्र] ताड़क । ताटक ।

ताड़पत्र^२—संज्ञा पुं० [सं० ताड़पत्र] दे० 'तालपत्र' ।

ताड़वात्र—वि० [हिं० ताड़ना + प्रा० वात्र] ताड़नेवाला । भाँपने-वाला । समझ जानेवाला ।

ताड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ि] दे० 'ताड़ी' (को०) ।

ताड़िका^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तारा । तारिका । उ०—जरे जजराय भर राग मिल्लै । मनो नो ग्रहं ताड़िका होड पिल्लै ।—पृ० रा०, १२।३।६ ।

ताड़ित—वि० [सं० ताड़ित] १. मारा हुआ । जिसपर प्रहार पड़ा हो । २ जो डाँटा गया हो । जिसने घुड़की खाई हो । ३ बडित । शासित । ४ मारकर भगाया हुआ । निकाला हुआ । हाँका हुआ ।

ताड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ी] १ एक प्रकार का छोटा ताड़ । २ एक भानूपत्र ।

ताड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़ + ई (प्रत्य०)] ताड़ के फूलते हुए डठनो से निकला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है ।

विशेष—ताड़ के सिरे पर फूलते हुए डठनो या अकुरों को छुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं । दूसरे दिन सबेरे जब बरतन रस से भर जाता है, तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं ।

ताड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तार] संतों की ताली । संतों की ध्यानावस्था । ध्यान । समाधि । उ०—ध्यान रूप होय ग्रहण पाए । साच नाम ताड़ी चित लाए ।—प्राण०, पृ० १३१ ।

ताड़ुल—वि० [सं०] मारने पीटनेवाला । घात करनेवाला (को०) ।

ताड़ू—वि० [हिं० ताड़ना] ताड़नेवाला । भाँपने या अनुमान करनेवाला ।

ताड़्य—वि० [सं०] १ ताड़ने के योग्य । २ डाँटने डपटने लायक । ३. दंड्य । दंड के योग्य ।

ताड़्यमान^१—वि० [सं०] १ जो पीटा जाता हो । जिसपर प्रहार पड़ता हो । २ जो डाँटा जाता हो ।

ताड़्यमान^२—संज्ञा पुं० डोल । ढक्का ।

ताड़^३—वि० [सं० स्वप्न, प्रा० शब्द, मरा० तडा, यडा, हिं० ठंडा] ठंडा । शीतल । उ०—जिए दीहे पावस भरइ बाजइ, हाडो बाय । तिए रिति मेल्हे मालविण प्री परदेस म जाय ।—ढोला०, पृ० २९६ ।

ताणना^१—क्रि० सं० [हिं० तानना] १ खींचना । २ ठहराना । उ०—बाजिद ताण विचारण याण तक रहै अचभा ।—रघु० क०, पृ० ४७ ।

तात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिता । बाप । २ पूज्य व्यक्ति । गुरु । ३ प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, बंधु, हृष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है । उ०—तात जनक तनया यह सोई । धनुष जग्य जेहि कारन होई ।—तुलसी (पा०) । ४ वह व्यक्ति जिसके प्रति दया का उष्य हो (को०) ।

तात^२—वि० [सं० तप्त, प्रा० तप्त] १ तपा हुआ । गरम । २ दुखी । निवृत्त । उ०—मालवणी म्हे चालिस्यां, म फरि हमारा तात ।—ढोला०, पृ० २७८ ।

तातगु^१—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा ।

तातगु^२—वि० १ पिता के लिये स्वीकार्य । २ पैतृक (को०) ।

ताततुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा या अत्यंत पूज्य व्यक्ति (को०) ।

तावन—संज्ञा पुं० [सं०] संशय पक्षी । छिड़रिच ।

तावनी^१—संज्ञा पुं० [हिं० ताँत] दे० 'ताँत' । उ०—ज्ञान की काछनी तान में तातनी, सच के सबद की कथा वानी ।—पलटू०, भा० २, पृ० ३३ ।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का पेड़ ।

तावक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितृ तुल्य सबधी । २ रोग । ३. छोड़े का फाँटा । ४ पाक । पक्वता । ५ उष्णता । गर्मी (को०) ।

तावक्ष^२—वि० १ तप्त । गरम । २ पैतृक (को०) ।

तावा^१—वि० [सं० तप्त, प्रा० तप्त] [वि० स्त्री० ताती] १ तपा हुआ । गरम । उष्ण । उ०—(क) जहाँ सगि बाप नेह

प्रथ नाते । पिय बिनु तियहि तरविहुँ ते ताते ।—मानस, २ । ६५ । (ख)मीठे प्रति कोमल हैं नीके । ताते तुरत चभोरे घी के ।—सूर०, १०।३६९ । २. बुरा । दुखवायी । कष्टदायक ।

ताताथेई—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] १ नृत्य मे एक प्रकार का बोल । २. नाचने में पैर के गिरने आदि का अनुकरण शब्द । जैसे, ताताथेई ताताथेई नाचना ।

तातार—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य एशिया का एक देश ।

विशेष—हिंदुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तातार देश कहलाता है । हिमाचल के उत्तर सहाय, यारकंद, खुतन, बुखारा, तिब्बत आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं । साधारणतः समस्त तुर्क या मोगल तातारी कहलाते हैं ।

तातारी^१—वि० [फ़ा०] तातार देश संबंधी । तातार देश का ।

तातारी^२—सञ्ज्ञा पुं० तातार देश का निवासी ।

ताति^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बच्चा ।

ताति^२—वि० [सं० तप्त] गरम । उ०—ताति वाड नागे नहीं, भाठी पहर मनद ।—सतवाणी०, पृ० १३५ ।

ताती^१—वि० [सं० तप्त] गरम । उष्ण । उ०—ताती श्वासन विनास्यो रूप होठन ।—शकुंतला, पृ० १०६ ।

ताती^२—क्रि० वि० [?] जल्यो । उ०—तई मुझे धी धारया ताती ।—रा० क०, पृ० ३०३ ।

तातील—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] वह दिन जिसमें काम काज बंद रहे । छुट्टी का दिन । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—तातील मनाना=छुट्टी के दिन विश्राम लेना या आमोद प्रमोद करना ।

तात्कालिक—वि० [सं०] तत्काल का । तुरत का । उसी समय का ।

तात्पर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह भाव जो किसी वाक्य को कहकर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो । अर्थ । आशय । मतलब । अभिप्राय ।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य भिन्न होता है । जैसे, 'काशी गंगा पर है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी गंगा के जल के ऊपर बसी है, पर कहनेवाले का तात्पर्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है ।

२. तत्परता ।

तात्पर्यवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तात्पर्य + वृत्ति] वाक्य के भिन्न पदों के वाच्यार्थ को एक में समन्वित करनेवाली वृत्ति । उ०—पहले उन्होंने तात्पर्यवृत्ति को लिया है और बताया है कि नैयायिकों की तात्पर्यवृत्ति बहुत समय से प्रसिद्ध थी ।—भाष्यार्थ, पृ० १३१ ।

तात्पर्यार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी वाक्य के जिसलनेवाले अर्थ से भिन्न अर्थ जो वक्ता या लेखक का होता है [क्रि०] ।

तात्त्विक—वि० [सं० तात्त्विक] १. तत्त्व संबंधी । २. तत्त्वज्ञान युक्त । जैसे, तात्त्विक दृष्टि । ३. यथार्थ ।

तात्त्व्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के बीच में रहने का भाव । एक

वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । २. एक व्यंजनात्मक उपाधि जिसमे जिस वस्तु का कथन होता है, उस वस्तु में रहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है । जैसे, 'सारा घर गया है' से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

तायें^१—सर्व० [हि० ता + यें (प्रत्य०)] इससे । इस कारण से । उ०—घरे रूप जेते तिते सर्वे जानों । लगे बार कहते न तायें वखानों ।—पु० रा०, २ । १६५ ।

ताथेई—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'ताताथेई' ।

तादर्थिक—वि० [सं०] उसमें अर्थ से संबद्ध [क्रि०] ।

तादर्थ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उद्देश्य या सत्य की एकता । २. अर्थ की समानता । ३. उद्देश्य [क्रि०] ।

तादात्म्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिलकर दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना । तत्त्वरूपता । अनेक संबंध ।

यौ०—तादात्म्यानुभूति=तादात्म्य की अनुभूति । तत्त्वरूप की अनुभूति । उ०—प्रकृति से तादात्म्यानुभूति को सरल कामना की कई पक्तियों में प्रतिबिंबित हुई है ।—सा० समीक्षा, पृ० २६० ।

तादात्विक (राजा)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार । वह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो । जितना धन राजकर आदि में मिले, उसको खर्च कर डालनेवाला ।

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं । ये प्रबंध में व्यय करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं ।

तादाद—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तपदाद] संख्या । गिनती । शुमार । •

तादृक्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] दे० 'तादृश' [क्रि०] ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] उसके समान । वैसा ।

तादृसी^१—वि० [सं० तादृशी] तादृश । वैसी ही । उ०—जो याहू गांव मे एक वैष्णव तादृसी चर्चा करन और श्रीकृष्ण स्मरण करन आवत है । दो री बौवन०, भा० १, पृ० २६५ ।

ताधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तायाथेई' । उ०—मुकुटी धनुष नैन सर साधे वदन विकास अगाधा । चल चल चार प्रबलोकनि काम नचावति ताधा ।—सूर (शब्द०) ।

तान—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालने का भाव या क्रिया । खींच । फैलाव । विस्तार । जैसे, भौंभों की तान । उ०—जल में मिलि के नम सबनी लों तान तनावति ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५५ ।

यौ०—खींचतान ।

२ गाँव का एक ग्रंथ । अनुभूति विनोद गति से गमन । मुखौना भाषि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विभाग करके सुर का खींचना । लय का विस्तार । घालाप । उ०—छूटे तान धवेवा दीन्हा । ठड़े भगत तहँ गावन लीन्हा ।—कबीर म०, पृ० ४६६ ।

विशेष—संगीत यामोहर के मत से स्वरों से सप्तम तान ४६ है । इन ४६ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं । किसी किसी मत से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना=गीत गाना । घलापना । तान छोड़ना=लय को खींचकर रुकके के साथ समय पर विराम देना ।

किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या श्रोधसूचक बात कहना। भाषेप करना। बौछार छोड़ना। तान भरना, मारना, सेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना। मलापना। तान की जान = साराण। खुलासा। सी बात की एक बात।

३ ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों भादि को हो। ४ कबख का तान। — (गडेरिए)। ५ भाटे का हलड़ा। सहर। तरंग। — (खण०)। ६ लोहे की छड़ जिसे पलंग या हीदे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक प्रकार का पेड़। (८) सूत्र। सूत। धागा (को०)। (९) एकरस स्वर। एक ही प्रकार का स्वर (को०)।

तानकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तानकर्म] १ गाने के पहले किया जानेवाला मालाप। २. मूल स्वर को ग्रहण करने के लिये स्वर-साधना (को०)।

तानटप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० तान + टप्पा] संगीत। गाना बजाना। उ०—घोर यहाँ होता क्या है? वही समस्यापूर्ति, वही या तो खड़खड़ मडमड़ घोर तानटप्पा।—कुंकुम (मृ०), पृ० २।

तानतरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तानतरङ्ग] मलापचारी। लय की लहर।

तानना—क्रि० सं० [सं० तान (= विस्तार)] १. किसी वस्तु को उसकी पूरी लवाई या चौड़ाई तक बढ़ाकर ले जाना। फैलाने के लिये जोर से खींचना। किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रखकर उसके किसी छोर, कोने या धंस को जहाँ तक हो सके, वनपूर्वक भागे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना। उ०—इक दिन द्रोपदि नग्न होत है, घोर दुःसाधन तान।—सतवाणी० पृ० ६७।

विशेष—‘तानना’ घोर ‘खींचना’ में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता। जैसे, खूँटे में बंधी हुई रस्सी तानना। पर ‘खींचना’ किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने की भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खींचना, पत्था खींचना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर = वनपूर्वक। जोर से। जैसे, तानकर तमाचा मारना। उ०—सतगुरु मारा तानकर, सन्द सुरंगी बान।—कबीर सा०, पृ० ८।

२ किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींचकर फैलाना। वनपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ाकर पसारना। जैसे, गास तानना, छाता तानना, चद्दर तानकर सोना, कपड़े को तानकर झोल मिटाना।

विशेष—‘तानना’ घोर ‘फैलाना’ में यह अंतर है कि ‘तानना’ क्रिया में कुछ दस लगाने या जोर से खींचने का भाव है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर सूतना = दे० ‘तानकर सोना’। उ०—मेद वह जो कि मेद खो देवे, जान पाया न तानकर सूते।—बोसे०, ४-५०।

पृ० ४। तानकर सोना = सूत्र हाथ पैर फैलाकर निश्चित सोना। माराम से सोना।

३. किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैलाकर बाँधना या ठहराना। छात्रन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना। जैसे, चंदोवा तानना, चादनी तानना, तबू तानना। संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४ डोरी, रस्सी भादि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींचकर बाँधना कि वह ऊपर अधर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बाँधना। जैसे,—(क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का सुबीत हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

५. मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये भस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंडा तानना। ६ किसी को हानि पहुँचाने या दह देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ कोई चिट्ठी पत्री या दरखास्त भादि भेजना। जैसे,—एक दरखास्त तान देंगे, रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

७ कैदखाने भेजना। जैसे,—हाकिम ने उसे दो बरस को तान दिया। ८ ऊपर उठाना। ऊँचे ले जाना।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हिं० पूरा] सितार के आकार का एक बाजा जिसे गवैए कान के पास लगाकर गाने के समय खेड़ते जाते हैं या उनके पार्श्व में बैठकर कोई छेड़ता जाता है।

विशेष—यह गवैयों की मुर बाँधने में बड़ा सहारा देता है; यथात् मुर में जहाँ विराम पड़ता है, वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबाज—संज्ञा पुं० [हिं० तान + बाज] सगीताचार्य। उ०—गंग ते न गुनी तानसेन ते न तानबाज, मान ते न राजा श्री न दाता वीरवर ते।—मकबरी०, पृ० ३५।

तानबान(५†)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘तानाबाना’। उ०—जोमहा तानबान नहि जानै फाट बिनै दस ठाई ह्यो।—कबीर (शब्द०)

तानव—संज्ञा पुं० [सं०] १ तनुता। कृपता। २ स्वल्पता। लघुता। छोटाई (को०)।

तानसेन—संज्ञा पुं० [?] मकबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके बोज का धाजतक कोई नहीं हुआ।

विशेष—मगबुलफजल ने लिखा है कि इधर हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का ब्राह्मण था। कहते हैं, पहले इसका नाम त्रिलोचन मिश्र था। इसे सगीत से बहुत प्रेम था, पर गाना इसे नहीं आता था। जब वृंदावन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ, तब यह सगीत

में कुशल हुआ। धीरे धीरे इसकी स्याति बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचन्द्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है, वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इन्ना-हीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया। अंत में अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के बस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में समानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया, बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह खालियर जाकर और मुहम्मद गौस नामक एक मुसलमान फकीर से कसमा पककर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं, पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजादी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनों का विवाह कर दिया। तानसेन की मृत्यु के समय में भी एक भ्रूलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देखकर दरबार के और गवैए इससे जला करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सवने मिलकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गावे तो आपसे आप भस्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो दीपक राग न गवावे। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लङ्की को मलार राग गाने के लिये पास ही बैठा लिया जिसमें दीपक राग से प्रज्वलित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब बुके हुए दीपक जल उठे और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लङ्की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की दुर्दशा देख उसका सुर विगड़ गया और तानसेन जलकर भस्म हो गया। उसका शव खालियर में ले जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक इमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैए इस कब्र पर जाते हैं और इमली के पत्तों को चबाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कठरस उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक समान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने कान पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना^१—संज्ञा पुं० [हि० तानना] १ कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—अस जोलहा कर मरम न जाना। जिन जग आइ पसारल ताना।—कबीर (शब्द०)।

धौ०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

२ दरी, कालीन बुनने का करघा।

ताना^२—क्रि० सं० [हि० तान + ना (प्रत्यय०)] १. तान देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल मत्सर नहि पावत प्रति उसास तन ताइए (शब्द०)। (ख) देव दिखावति कचन सो तन श्रीरत को मन तावे धगोनी।—देव (शब्द०)। २ पिघलाना। जैसे, धी ताना। ३. तपाकर परीक्षा करना (सोना आदि धातु)। ४ परीक्षा करना। जाचना। माजमाना।

ताना^३—क्रि० सं० [हि० तावा, तवा] गीली मिट्टी, माटे आदि से ठक्कन चिपकाकर किसी बरतन का मुह बंद करना। मूँदना। उ०—तिन श्रवणन पर दोष निरंतर सुनि भरि भरि तावो।—तुलसी (शब्द०)।

ताना^४—संज्ञा पुं० [सं० तम्नह्] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली। व्यंग्य। कटाक्ष। २. उपालम। गिला (की०)। ३ निशा। बुराई (की०)।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

मुहा०—ताने देना = व्यंग्य करना। कटु बात कहना। उ०—मुँह खोल के ददं दिल किसी से कह नहीं सकती कि हमजो-लियाँ ताने देंगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३३।

तानापाई—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना = पाई (= ताने का सूत फैलाने का ढाँचा)] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उबो प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुझाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानाबाना—संज्ञा पुं० [हि० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यर्थ इधर से उधर आना जाना। हेरा फेरी करना।

तानारीरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तान + अरु० रीरी] साधारण गाना। राग। मलाप।

तानाशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ मन्तुलहसन बादशाह का दूसरा नाम। यह बादशाह स्वेच्छाचारी था। २ ऐसा शासक जो मनमाने ढंग से शासन करता हो और नासिद्धों के हित का ध्यान न रखता हो। निरंकुश शासक। ३ स्वेच्छाचारी व्यक्ति। मनमाने ढंग से और जोर जबदस्ती काम करनेवाला आदमी।

तानाशाही—संज्ञा स्त्री० [हि० तानाशाह] स्वेच्छाचारिता। मन मानी। जोर जबदस्ती। उ०—जातीय जनतांत्रिक समुक्त मोर्चा कांग्रेसी सरकार की तानाशाही को समाप्त करने तथा देश को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने के निमित्त खड़ा हुआ था।—नेपाल०, पृ० १८९।

तानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लबाई के बल हो।

तानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तानना] गँगरे या बोली आदि की

तनी । बंद । उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी । दूटे हार मोति छहरानी ।—जायसी (शब्द०) ।

तानूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का भँवर । २. वायु का भँवर ।

तानी—संज्ञा पुं० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों । चक ।

तान्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुज । पुत्र । २. एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे ।

ताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण आदि के रूप में इन्द्रियों को होता है । यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं । उष्णता । गर्मी । तेज ।

विशेष—ताप एक गुण मात्रा है, कोई द्रव्य नहीं है । किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ फर्क नहीं पड़ता । विज्ञानानुसार ताप गतिशक्ति का ही एक भेद है । द्रव्य के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है । ताप सब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है । जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है, तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । जब शक्ति के संचार में रुकावट होती है, तब वह ताप का रूप धारण करती है । दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रगड़ में व्यय होता है, वह उष्णता के रूप में फिर प्रकट होती है । ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है । ताप का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है । सूर्य के अतिरिक्त ताप सघर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है । जो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथोड़ा मारने से भाग निकलते बहुतों ने देखा होगा । इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साथ दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी भाग या गरमी पैदा हो जाती है । चूने की बली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटैश बालने से गरमी या लपट उठती है ।

ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं । यदि सोहे की किसी ऐसी छड़ को लें जो किसी छेद में फसकर बैठ जाती हो और उसे तपावें तो वह उस छेद में वहीं घुसेगी । गरमी में किसी ठेक चलाती हुई गाड़ी के पहिए की हाल जब ढीली मालूम होने लगती है, तब उसपर पानी डालते हैं जिसमें उसका फैलाव घट जाय । रेख की साइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है, वह इसीलिये जिसमें गरमी में साइन के लोहे फैलकर सट न जायें । जीवों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अतः स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ताप का ठीक ठीक मंदाज सदा नहीं हो सकता । इसी से ताप की मात्रा नापने के लिये थर्मामीटर नाम का एक यंत्र

बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है जो अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है ।

२. घाँच । सपट । ३. ज्वर । बुखार ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

यौ०—तापतिल्ली ।

४ कष्ट । दुःख । पीड़ा ।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—प्राध्यात्मिक, प्राधिदैविक और प्राधिभौतिक । वि० दे० 'दुःख' । उ०—दैहिक, दैविक, भौतिक तापा । रामराज काहुहि नहि । व्यापा ।—तुलसी (शब्द०) ।

५ मानसिक कष्ट । हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि) । उ०—एकही प्रलङ्ग जाप ताप कूँ हरसु है ।—संतबाणी०, पृ० १०७ ।

तापक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप उत्पन्न करनेवाला । उ०—तापक जो रवि सोपत है नित कज ज्यूँ ताहि देख्यो बिकसाहीं ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ । २. रजोगुण ।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दुःख का प्रतिकारण माना जाता है ।

३. ज्वर । बुखार ।

तापक्रम—संज्ञा पुं० [सं० ताप + क्रम] १. शरीर के तापमान का बढ़ाव उतार । २. वायुमंडल की गरमी का उतार चढ़ाव [क्रि०] ।

तापड़ना—क्रि० सं० [हि० ताप] सताप देना । उ०—सेन अकम्बर तापड़े भाप गयो खहु मग ।—रा० क०, पृ० १०२ ।

तापति—अव्य० [सं० तपस्श्चात्] उसके बाद । तपस्श्चात् । उ०—सुरत रस सुचेतन बालमु तापति सबे भरार ।—विद्यापति, पृ० २३९ ।

तापतिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० ताप (=ज्वर) + तिल्ली] ज्वरयुक्त प्लोहा रोग । पिल्ली बढ़ने का रोग ।

तापती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या तापी । २. एक नदी का नाम जो सतपुड़ा पहाड़ से निकलकर पश्चिम की ओर को बहता हुई खमात की खाड़ी में गिरती है ।

विशेष—स्कंदपुराण के तापी खंड में तापती के विषय में यह कथा लिखी है । अगस्त्य मुनि के शाप से वरुण सवरण नामक सोमवशी राजा हुए । उन्होंने घोर तप करके सूर्य की कन्या तापी से विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और तापनाशिवी थी । वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई । जो लोग उसमें स्नान करते हैं, उनके सब पातक छूट जाते हैं । आषाढ़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष माहात्म्य है । तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाखा तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है । इन तीर्थों के अतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं ।

तापत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के ताप—प्राध्यात्मिक, प्राधिदैविक, और प्राधिभौतिक ।

तापत्व^१—संज्ञा पुं० [सं०] धर्तुन का एक नाम [को०] ।

तापत्व^२—वि० तापती सबबी [को०] ।

तापद—वि० [सं०] कष्टदायक [को०] ।

तापदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पातंजल दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद ।

विशेष—पातंजल दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, सस्कारदुःख और परिणामदुःख । ६० 'दुःख' ।

तापन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप देनेवाला । २. सूर्य । ३. कामदेव के पाँच बाणों में से एक । ४. सूर्यकांत मणि । ५. भक्त वृक्ष । मदार । ६. ढोल नाम का बाजा । ७. एक नरक का नाम । ८. तत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीड़ा होती है । ९. सुवर्ण । सोना (को०) । १०. कष्ट देनेवाला (को०) । ११. श्रीराम ऋतु (को०) । १२. जलानेवाला (को०) । १३. भस्मना करनेवाला (को०) । १४. भवसाद । कष्ट । विपाद (को०) ।

तापन^२—वि० १. कष्टद । कष्टकारक । २. गरमी देनेवाला । ताप-कारक [को०] ।

तापना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता । शुद्धता [को०] ।

तापना^२—क्रि० प्र० [सं० तापन] प्राग की प्राँच से अपने को गरम करना । अपने को प्राग के सामने गरमाना । कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं, जैसे, वह ताप रहा है ।

विशेष—'प्राग तापना' आदि प्रयोगों को देख आधिकांश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है । पर प्राग इस क्रिया का कर्म नहीं है, क्योंकि प्राग नहीं गरम की जाती है, गरम किया जाता है शरीर । 'शरीर तापते हैं', 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता । दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्ता से अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपाना' में देखा जाता है । 'प्राग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें प्राग तृतीयांत पद (करण) है ।

तापना^३—क्रि० सं० १. शरीर गरम करने के लिये जलाना । फूँकना । संयो० क्रि०—ढालना ।

२. उड़ाना । नष्ट करना । बरबाद करना । जैसे,—वे सारा धन फूँक तापकर किनारे हो गए ।

यौ०—फूँकना तापना ।

तापना^४—क्रि० सं० तपाना । गरम करना । उ०—तापी सब भूमि यौं कृपान मासमान सौं ।—सुषण प्र०, पृ० ४६ ।

तापनीय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उपनिषद् । २. एक प्राचीन तौल जो एक निष्क के बराबर थी [को०] ।

तापनीय^२—वि० सोने से युक्त । सुनहला [को०] ।

तापमान—संज्ञा पुं० [सं० ताप + मान] थर्मामीटर या गरमी मापने के यंत्र द्वारा मापी गई शरीर या वायुमंडल की ऊष्मा ।

तापमान यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तापमान + यंत्र] 'उष्णता की मात्रा मापने का एक यंत्र । गरमी मापने का एक यंत्र । गरमी मापने का एक योजार ।

विशेष—यह यंत्र धीरे की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भरकर बनाया जाता है । अधिक गरमी पाकर वह पारा

लकीर के रूप में ऊपर की ओर चढ़ता है और कम गरमी पाकर नीचे की ओर घटता है । गली हुई बरफ या बरफ के पानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे घाती है, एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और क्षीणते हुए पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरा चिह्न वहाँ लगा देते हैं । इन दोनों के बीच की दूरी को १०० अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं । ये चिह्न अश या डिग्री कहलाते हैं । यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है, उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है ।

तापयान—वि० [सं०] उष्ण । जलता हुआ [को०] ।

तापला^१—संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध ।—(डि०) ।

तापल^२—वि० गरम । उत्तम । तपा हुआ । उ०—एक कहा यह जोर पियारा । तापल रहइ सरीर मझारा ।—इंद्रा०, पृ० ५८ ।

तापव्यञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० तापव्यञ्जन] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे ।

विशेष—कोटिल्य के समय में ये समाहर्ता के अवीन होते थे । ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न ग्रन्थियों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे ।

तापश्चित—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

तापस^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] १. तप करनेवाला । तपस्वी । उ०—सखी । कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६८४ । २. तमाल । तेजपत्ता । ३. दमनक । दीना नामक पौधा । ४. एक प्रकार की ईख । ५. बक । बगला ।

तापस^२—वि० तपस्या या तपस्वी से संबंधित ।

तापसक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी । वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो ।

तापसज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता । तेजपान ।

तापसतरु—संज्ञा पुं० [सं०] द्विगोट वृक्ष । इगुप्ता का पेड़ । इगुरी वृक्ष ।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इगुदी का ही तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा ।

तापसद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] इगुदी वृक्ष ।

तापसप्रिय^१—वि० [सं०] १. जो तपस्वियों का प्रिय हो । २. जिसे तपस्वी प्रिय हों ।

तापसप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. इगुदी वृक्ष । २. बिरोजी का पेड़ ।

तापसप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमूर या मुनक्का । दाख ।

तापसवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ६० 'तापसतरु' ।

तापसव्यञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० तापसव्यञ्जन] ६० 'तापव्यञ्जन' ।

तापसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री । २. तपस्वी की स्त्री ।

तापसेजु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईंस ।

तापसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का । दाख [को०] ।

तापस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तापस धर्म । तपस्या । २. वैराग्य । सन्यास [को०] ।

तापस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की उष्णता पहुँचाकर उत्पन्न किया हुआ या ज्वरादि की उष्णता के कारण उत्पन्न पसीना । २. गरम बालू, नमक, वस्त्र, हाथ, भाग की भाँच आदि से सँककर पसीना निकालने की क्रिया ।

तापस्स—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तापस-१' । उ०—जगम इक तापस्स मिल्यो वरदार सुद्ध मन ।—पृ० रा०, ६। १४२ ।

तापहर—वि० [सं० ताप + हिं० हरना] तपन या दाह को दूर करनेवाला । उ०—तापहर हृदयवेग लग्न एक ही स्मृति में, कितना अपनाव ।—अनामिका, पृ० ६६ ।

तापहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यजन का नाम । एक पकवान । (भाष्यप्रकाश) ।

विशेष—उरद की बरी मिले हुए घोए चावल को हलदी के साथ घी में तले या पकावे । तल जाने पर उसमें थोड़ा जल डाल दे । जब रसा तैयार हो जाय, तब उसे मंदरक और हींग से ढकारकर उत्तार ले ।

तापा—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना ?] १. मछली मारने का तस्ता (लज्ज०) । २. मुरगी का दरवा ।

तापायन—संज्ञा पुं० [सं०] बाजसनेयी शाखा का एक भेद ।

तापिञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० तापिञ्ज] दे० 'तापिज' ।

तापिज—संज्ञा पुं० [सं० तापिञ्ज] १. सोनामखली । २. श्याम तमाल ।

तापिञ्ज—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष । उ०—वड़ी तापिञ्ज शाखा सी भुजाएँ—अनुज की ओर दाएँ ओर बाएँ ।—साकेत, पृ० ६३ ।

तापित्त—वि० [सं०] १. तापयुक्त । जो तपाया गया हो । २. दुःखित । पीड़ित ।

तापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप ?] अनाहत चक्र की एक मात्रा ।

तापी^१—वि० [सं० तापिन्] १. ताप देनेवाला । २. जिसमें ताप हो ।

तापी^२—संज्ञा पुं० ब्रुहदेव ।

तापी^३—संज्ञा स्त्री० १. सूर्य की एक कन्या । दे० 'तापती' । २. तापती नदी । ३. यमुना नदी ।

तापीज—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामखली । मांझिक घातु ।

तापुर—संज्ञा पुं० [पालि ?] महाभोगिसत्व का दूसरा नाम । उ०—नवदीक्षित भिक्षु बोधिसत्व होने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसके बाद से उनके शिष्य उन्हें 'तापुर' या महाभोगिसत्व कहकर संबोधित करते हैं ।—संपूर्णां अंभि० प्र०, पृ० २१४ ।

तापेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तापेन्द्र] सूर्य । उ०—नमो पातु तापेंद्र देव प्रतीच । नमो मे रवि रक्ष रत्नें दु दीचं ।—विश्राम (शब्द०)

ताप्ती^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तापती] दे० 'तापती' ।

ताप्ती^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तापता'

ताप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामखली ।

ताफता—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताफतह] दे० 'तापता' । उ०—बुटो न सिसुता की झलक झलकयो जीवन मग । दीपत देह दुहून मिलि विपति ताफता रग ।—बिहारी (शब्द०) ।

ताफता—संज्ञा पुं० [फ्रा० ताफतह] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा । धूप छोड़ रेशमी कपड़ा ।

ताव—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. ताप । गरमी । २. चमक । आभा । दीप्ति । ३. शक्ति । सामर्थ्य । हिम्मत । तजाल । जैसे,—उनकी क्या ताव कि आपके सामने कुछ बोलें ? ४. सहन करने की शक्ति । मन को बल में रखने की सामर्थ्य । धैर्य । जैसे,—जब इतनी ताव नहीं है कि दो घड़ी ठहर जायें ।

तावकुतोड़—क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा, इस क्रम से । अर्थात् क्रम से । लगातार । बराबर ।

तावनाक—वि० [फ्रा०] प्रकाशमान । ज्योतिर्मय । चमकता हुआ । उ०—वचन का मजब मय यो है तावनाक । फहमदार के गोश का जिसम खुशक ।—दक्खिनी०, पृ० २६७ ।

तावाँ—वि० [फ्रा०] ज्योतिर्मय । प्रकाशमान । दीप्त । रोशन ।

तावाँ^१—वि० [प्र० तावप्र] दे० 'तावे' ।

तावाँ^२—संज्ञा पुं० अधिकार । हक । उ०—राकै वंश जाया भूमि तावा की मडाई ।—शिखर०, पृ० २७ ।

ताविश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गर्मी । उष्णता । तपन । उ०—तुज हुल के खुरशीव का तिरलोक में ताविश पड़े ।—दक्खिनी०, पृ० ३२१ ।

तावी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताव] ताप । गरमी । उष्णता । उ०—मक्का भिस्त हूज्ज की देखा । अनरा भाव मीर तावी ।—घट०, पृ० २११ ।

तावीज—संज्ञा पुं० [प्र० ताम्रवीज] दे० 'तावीज' । उ०—हीरा मुज तावीज में सोहत है यह वान ।—स० सप्तक, पृ० १५६ ।

तावीर—संज्ञा स्त्री० [प्र०] स्वप्न आदि का शुभाशुभ वस्तु । उ०—इषादत में रहता है रोशन जमीर । बतावेगा तावीर वह मंद पीर ।—दक्खिनी०, पृ० ३०० ।

तावूत—संज्ञा पुं० [प्र०] वह सँदूक जिसमें मुरदे की लाश रखकर गाढ़ने को ले पाते हैं । मुरदे का सँदूक । उ०—कुशवण हसरते दीवार है या रव किस्के । नखल तावूत में जो फूल लं नरगिस्के ।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० ८५ ।

तावे^१—वि० [प्र० तावप्र] १. वशीभूत । अधीन । मातहत । जैसे,—जो तुम्हारे तावे हो, उसे माल दिखामो । २. आज्ञानुवर्ती हुकम का पाबंद ।

यौ०—तावेदार ।

तावेगम—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताव + प्र० गम] दुःख सहने की शक्ति [को०] ।

तावेजबत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ताव + प्र० जबत] प्रेम की पीड़ा या दुःख सहने की शक्ति [को०] ।

तावेदार^१—वि० [प्र० ताव्य + फा० दार (प्रत्य०)] भाषा-
कारी । हुम का पावद ।

तावेदार^२—सञ्ज्ञा पुं० नौकर । सेवक । अनुचर ।

तावेदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. सेवकाई । नौकरी । २. सेवा ।
टहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—बजाना ।

ताम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दोष । विकार । उ०—ऊद्धत रहत
बिना पर जाये त्यागी कनक ले ताम ।—गुलाल०, पृ० १२ ।
२. मनोविकार । चित्त का उद्वेग । व्याकुलता । बेचैनी ।
उ०—(क) मिटथो काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदन
गोपाल ।—सूर (शब्द०) । (ख) तस्तमाल तर तरुन
कन्हाई धूरि करन युवतिन तनु ताम ।—सूर (शब्द०) ।
३. दुःख । क्लेश । व्याथा । कष्ट । उ०—देखत पय पीवत
बलराम । तातो लगत डारि तुम दोनो बावानख पीवत नहि
ताम ।—सूर (शब्द०) । ४. खानि । ५. इच्छा । चाहना
(को०) । ६. यकान । कलाति (को०) ।

ताम^२—वि० १. भीषण । डरावना । भयंकर । २. दुःखी । व्याकुल ।
हैरान । उ०—प्रति सुकुमार मनोहर मुरति ताहि करति
तुम ताम ।—सूर (शब्द०) ।

ताम^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तामस] १. क्रोध । रोष । गुस्सा । उ०—
(क) सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दुरि करहु मन
तामहि ।—सूर (शब्द०) । (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात
न सोइ करति तनु ताम ।—सूर (शब्द०) । २. ग्रंथकार ।
ग्रंथेरा । उ०—जननि कहति उठहु श्याम, विगत जानि रजनि
ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु खेवे ।—सूर (शब्द०) ।

ताम^४—अव्य० [प्राकृत] १. तब तक । २. तब । उस समय ।
उ०—ताम इस घायो समधि कछो भहो शशिवृत्त ।—पु०
रा०, २५ । २६३ ।

तामजान—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तामना + सं० जान (= सवारी)] एक
प्रकार की छोटी खुली पालकी । एक हलकी सवारी जो काठ
की लकी कुरसी के आकार की होती है और जिसे कहार
उठाकर ले चलते हैं ।

तामभाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तामजान] धूमधाम । शान शौकत ।
दिल्लावटी प्रदर्शन ।

तामड़ा^१—वि० [सं० ताम्र, हि० ताम्रा + द्रा (प्रत्य०)] ताम्र
के रंग का । खलाई लिए हुए सुरा । जैसे, तामड़ा रंग, तामड़ा
कबूतर ।

तामड़ा^२—सञ्ज्ञा पुं० १. ऊदे रंग का एक प्रकार का पत्थर या
नगीना । २. एक तरह का कागज । ३. खल्वाट मस्तक । गजी
खोपड़ी । ४. स्वच्छ भाकाश । ५. बहुत पकी हुई ईंट ।

तामदान^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तामजान' । उ०—श्री दर्शने-
श्वरनाथ को पुष्पाञ्जलि चढ़ाने के लिये तामदान पर सवार
होकर गए ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० १८१ ।

तामना^४—क्रि० सं० [दे०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास
उखाड़ना ।

तामर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पानी । २. घी ।

विशेष—यह शब्द 'तामरस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये
गड़ा हुआ जान पड़ता है ।

तामरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कमल । उ०—सियरे बदन सुखि
गए कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है तथापि आर्यभाषा का
नहीं है । 'पिक' आदि के समान यह अनार्य भाषा से आया
हुआ माना गया है । शबर भाष्य में इस बात का स्पष्ट
उल्लेख है ।

२. सोना । ३. त्रिबा । ४. घतूरा । ५. सारस । ६. एक
वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, दो जगण
और एक यगण (III, ISI, ISI, ISS) होता है । जैसे,—निज
जय हेतु करो रघुबीरा । तब नुति मोरी हरी मय पीरा ।

तामरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सरोवर जिसमें कमल हों । कमलों-
वाला ताल [को०] ।

तामलकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सूयामलकी । भूमावला ।

तामलूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ताम्रलिप्त] बंग देश के भूतगत एक भूभाग
जो मेदिनीपुर जिले में है । वि० दे० 'ताम्रलिप्त' ।

विशेष—यह परगना गंगा के मुहाने के पास पड़ता है । इस
प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलिप्त है । ईसा की चौथी शताब्दी
से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान
स्थल था ।

तामलेट—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ताम + प्लेट या टंबलर] लोहे का गिलास या
बरतन जिसपर चमकदार रंगन या लुक केरा रहता है ।
एनेमल किया हुआ बरतन ।

तामलोटे—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तामलेट' ।

तामस^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तामसी] १. जिसमें प्रकृति के उस
गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच
वृत्तियों के बधीभूत होकर भाषण करता है । तमोगुण युक्त ।
उ०—(क) होइ भजन नहि तामस देहा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) विप्र साप तें दूनउं भाई । तामस भगुर देह तिन पाई ।
—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पद्मपुराण में कुछ शास्त्र तामस बतलाए गए हैं । कणाद
का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की
मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार तामस
शास्त्रों में की गई है । इसी प्रकार बृहस्पति का चावर्ग दर्शन,
शाक्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शंकर का वेदांत इत्यादि उत्तरज्ञान
संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से तामस माने जाते हैं ।
पुराणों में तामस्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि और स्कंद ये छह
तामस पुराण कहे गए हैं । सामुद्र, शख, यम, भीमनस आदि
कुछ सृष्टियों तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि,
शुक्राचार्य आदि कुछ मुनियों को भी तामस कह डाला है ।
इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं
और व्यापारों के विभाग किए गए हैं । निद्रा, भालस्य, प्रमाथ
आदि से उत्पन्न सुख को तामस सुख; पुरोहिताई, असत्प्रति-

प्रह, पनुहिवा, सोम, मोह, प्रहकार आदि को तामस कर्म कहा है। विष्णु धर्मसूत्रम्, ब्रह्म रजोगुणमय और तमोगुणमय माने जाते हैं। उ०—ब्रह्मा तामस गुण प्रविकारी तम तामस प्रविकारी।—मूर (शब्द०)।

२. प्रविकार मुक्त। प्रविकारमय (शब्द०)। १. तमम् से प्रभावित या ससक्त (शब्द०)। ४. तम (शब्द०)। ५. दुष्ट। कुटिल (शब्द०)।

तामस^१—यथा पु० १. तमं। २. सत। ३. उत्तु। ४. शब्द। गुणा। वि०। उ०—कहू सोको केवे मावत है विनु ये तामस एत?—मूर (शब्द०)। ५. प्रविकार। प्रवेरा। उ०—तू मय कूय प्रवीक पुन द्विप तामस बावा।—वीनदयाल (शब्द०)। ६. प्रविकार। मोह। ७. सोये मनु का नाम। ८. एक प्रस का नाम।—(वाल्मीकि रामायण)। ९. तृतीय प्रकार के केतु जो सूर्य और चन्द्रमा के नीचे वृश्चिक और मीन के बीच में होता है।—(वृहत्संहिता)। १०. तमोगुण। उ०—मूढा है ससार सो तामस परिहरी।—परम०, पु० ४०। ११. राहु का एक पुत्र (शब्द०)। १२. प्रविकार (शब्द०)। १३. यह घोड़ा जिसमें तमोगुण हो (शब्द०)।

तामसकीलक—यथा पु० [त०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं।

विशेष—सूर्यमंडल में इनके सूर्य, प्रकाश और स्थान को देखकर फल का निर्णय किया जाता है। ये यदि सूर्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं, तो इनका फल मनुष्य और चन्द्रमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है।

तामसमय—यथा पु० [त०] कई बार को धीमे हुई धारा।

तामसवाण—यथा पु० [त०] एक प्रस का नाम।

तामसाहकार—यथा पु० [त० तामसाहकार] एक प्रकार का प्रहकार प्रहकार का एक भेद। उ०—विहि तामसाहकार वे दस सस उवजे पाह।—गुदर० प्र०, भा० १, पु० ६०।

तामसिक—वि० [त०] [वि० तामसिकी] १. तामसयुक्त। तमोगुणवाली। उ०—या विविध तामसिक बावें। उवरो है प्रविकर रवाली।—परिभाषा, पु० ७२। २. तमम् से उत्पन्न या तमम् से तम (शब्द०)।

तामसी^२—वि० त० [त०] तमोगुणवाली। जैसे, तामसी प्रवृत्ति।

त०—तामसी गीता = धर्मोप के प्रकारों में से एक (गीता)।

तामसी^३—यथा शब्द० [त०] १. मधेरी रात। २. मृदाकाली। ३. जड़मासी। ४. एक प्रकार की भाषा जिसे गिर ने निरुद्धिमा यज्ञ से प्रसन्न होकर वेदवाद को दिया था।

तामा^४—यथा पु० [हि०] वे० 'तामा'।

तामि—यथा शब्द० [त०] तम का तमिपण (शब्द०)।

तामिरी—वि० [हि० तामा + दवा (शब्द०)] १. 'तामिरा'।

तामिरा—वि० [हि० तामा + दवा (शब्द०)] १. तमि के रस का। २. तमि का। तमि से निर्मित।

तामिल—यथा शब्द० [तमिल; तमिन्] १. भारत के दक्षिण दक्षिण की एक जाति जो प्राचिनिक यज्ञाष्ट प्रोष्ठ के प्रविकार

तमि में निवास करती है। यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्रविड' से निकला है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड़ देश और द्रविड़ जाति का उल्लेख है। तामिरी प्राकृत या तामी में इसी 'द्रविड' शब्द का रूप 'तामिरी' हो गया। तामिल वर्णमाला में त, त्र, द आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'तामिरी' का 'तामिरी' या 'तामिरा' हो गया। संस्कृतभाषा के चारों ओर तामि में 'द्रविड' शब्द प्रचलित है। द्रविड़भाषा नामक चीनी भाषा ने भी द्रविड़ देश को द्रि-नो-नो करके लिखा है। तामिल व्याकरण के अनुसार द्रविड़ शब्द का रूप 'विरमिड' होता है। प्राचिनिक कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि यह 'विरमिड' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतभाषा ने 'द्रविड़' शब्द बना लिया। तैत्तिरीय के 'तनुज्य माहाराज्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड़' शब्द पर एक विलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से प्रादि तीर्थंकर अथर्ववेद को 'द्रविड़' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ, उसका नाम 'द्रविड़' पड़ गया। पर भारत, मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड़ जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड़ पड़ा। (दे० द्रविड़)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्त्वविदों का मत है कि यह जाति प्रनाय है और प्राचीन के मागमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में जाकर त्रिभुवन लोको की महाप्रताप से लंका पर चढ़ाई की थी और त्रिभुवन यात्री ने बदर लिखा है, ये इसी जाति के थे। उनके कानि सूर्य, मित्र प्रकृति तथा रिद्धि भाषा आदि के कारण ही प्राचीन ने उन्हें बदर कहा होगा। पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति प्राचीन के सगर के पूर्व ही बहुत कुछ संख्या प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किले बनाकर रहते थे। ये हजार तक पित्त लेते थे। ये नाव, छोटे मोटे जहाज, पनुय, बाण, धनुष आदि बनाते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। रात, मीने और जलो को छोड़ और सब प्राणियों का भोजन भी करते थे। प्राचीन के सगर के उपरांत उन्होंने प्राचीन की संख्या पूर्ण रूप से बढ़ा दी। दक्षिण देश में ऐसी जनप्रति है कि प्रत्येक ग्राम में दक्षिण में जाकर वहाँ के निवासियों को बहुत ही विचारपूर्वक विचारों। बारह वरगुण यो यो बढ़ते दक्षिण में दैन्य का बड़ा प्रसार था। यो तो प्राचीन द्रविड़ जाति जिस समय दक्षिण में गया था, उसने वहाँ निरंतर दोनों को प्रसादना देती थी।

२. द्रविड़ भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का ग्राह्यता भी अत्यंत प्राचीन है। यो हजार वर्ष पूर्व तक का प्रचलित भाषा में विद्यमान है। पर वर्तमान भाषा की लिपि की तुलना से भ्रष्ट है। प्राचिनिक ग्रंथ सूर्य की छोटी अक्षर के एक एक वर्ण का

उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ, चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनो के इस अभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे विकृत हो जाते हैं, जैसे, 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिनन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रन्थ कवि तिरुवल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल लिपि—संज्ञा स्त्री० [हिं० तामिल + सं० लिपि] एक प्रकार की लिपिविशेष।

विशेष—यह लिपि मद्रास अहाते के जिन हिस्सों में प्राचीन ग्रन्थ-लिपि प्रचलित थी वहाँ के, तथा उक्त अहाते के पश्चिमी तट अर्थात् मलबार प्रदेश के तामिल भाषा के लेखों में ई० स० की सातवीं शताब्दी से बराबर मिलती चली आती है। ('तामिल' शब्द की उत्पत्ति देश और जातिसूचक 'द्रमिल' (द्रविड) शब्द से हुई है। (दे० भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १३२।)

तामिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नरक का नाम जिसमें सदा घोर अंधकार बना रहता है। २ क्रोध। ३ द्वेष। ४ एक अविद्या का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिल कहते हैं।—(भागवत)। ५ घृणा (को०)। ७ एक राक्षस (को०)।

तामी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तामि' (को०)।

तामी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० तामि] १ तबिये का तसला। २. द्रव पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्माण। बनाना। रचना। इमारत का निर्माण। वास्तुकिया। ३ सुधार। इस्लाह। ४ इमारत। भवन बनावट (को०)।

यौ०—तामीरे कोम=(१) राष्ट्रनिर्माण। (२) जाति का निर्माण। कोम या जाति का सुधार। तामीर मुल्क = राष्ट्रनिर्माण।

तामीरी—वि० [हिं० तामीर + ई (प्रत्य०)] इस्लाही। रचनात्मक (को०)।

तामील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ (आज्ञा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

यौ०—तामीले हुक्म=आज्ञा का पालन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. किसी परवाने, सम्मन या वारंट का बिध्यादन (को०)।

तामेसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तामि] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेरू के योग से बनता है।

ताम्मुल—संज्ञा पुं० [सं० तमम्मुल] सोच विचार। असमंजस। उ०—हृष्ट, इन जरा जरा सी बातों पर इतना सा ताम्मुल करेंगे तो काम क्योंकर चलेगा?—श्रीनिवास प्र०, पृ० ५०।

ताम्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताम्र। २ एक प्रकार का कोड़। ३ अजना या ताम्रिया लाल रंग (को०)।

ताम्र^२—वि० १. ताम्र का बना हुआ। २. ताम्र के रंग का। ताम्र बैसा (को०)।

पुं० [सं०] ताम्र।

ताम्रकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम के दिग्गज अंजन की पत्नी। अंजना।

ताम्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र के बरतन बनानेवाला। तमेरा।

ताम्रकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रकार' (को०)।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़ या पौधा।

विशेष—यह शब्द गढ़ा हुआ है और कुलावर्ण तंत्र में आया है।

ताम्रकुम्भि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुल्य। तूतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] १ कुकरोधा नाम का पौधा। २ मुरगा। उ०—दूर बोला ताम्रचूड गभीर, क्रूर भी है काल निर्भर धीर।—साकेत, पृ० १६५।

ताम्रचूड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूडक] हाथ की एक मुद्रा (को०)।

ताम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्र जैसा लाल रंग (को०)।

ताम्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रतुण्ड] एक प्रकार का बरतन (को०)।

ताम्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुग्दी। छोटी दुग्दी। अमर सजीवनी।

ताम्रद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] लालचदन (को०)।

ताम्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहाल। लका (को०)।

ताम्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाल खडिया। २. ताम्र (को०)।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताम्र की चट्ट का एक टुकड़ा जिसपर प्राचीन काल में अक्षर खुदवाकर दानपत्र आदि लिखते थे। २ ताम्र की चट्ट। ताम्र का पत्र।

ताम्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + पर्ण] लाल रंग का पत्ता। उ०—ताम्रपर्ण पीतल थे, शतमुख भरते चंचल स्वर्णम निर्भर।—गम्या, पृ० ६३।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बावली। तालाब। २ दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मदरास प्रांत के तिरुवल्ली जिले से होकर बहती है।

विशेष—इसकी लंबाई ७० मील से लगभग है। रामायण, महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकि] पाकर का पेड़।

ताम्रपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र का बरतन (को०)।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हसपदी। सास-रंग की लज्जाल।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घातकी। धव का पेड़। २. पाटन। पाड़र का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। टेरा। डेरा।

ताम्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र । ताम्र का पत्तर [को०] ।

ताम्रमुख^१—वि० [सं० ताम्र + मुख] जिसका मुख ताम्र के रंग का हो

ताम्रमुख^२—संज्ञा पुं० यूरोपीय व्यक्ति ।

ताम्रमृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । घमासा । २. लज्जालु । छुईमुई । ३. किवीच । कौच । कपिकच्छु ।

ताम्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल हिरन [को०]

ताम्रय—संज्ञा पुं० [सं०] लाली । ललाई [को०] ।

ताम्रयुग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + युग] ऐतिहासिक विकासक्रम में वह युग जब मनुष्य ताम्र की बनी वस्तुओं का व्यवहार करता था ।

ताम्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + योग] एक प्रकार की रासायनिक दवा [को०] ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मेदिनीपुर (बंगाल) जिले के तमलुक नामक स्थान का प्राचीन नाम ।

विशेष—पूर्व काल में यह व्यापार का प्रधान स्थल था । वृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमात्रा, जावा चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पाली ग्रंथ महावक्त्र से पता लगता है कि ईसा से ३६० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध वदरगाहों में से था । यही जहाज पर चढकर सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज प्रशोक ने समुद्रतट पर छड़े होकर उसके लिये मौसु बहाए थे । ईसा की पाँचवी शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बौद्ध ग्रंथों की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज पर बैठ सिंहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शका किराता दरदा बर्वरा ताम्रलिप्तका । अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । (द्रोणपर्व) ।

ताम्रलेख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रपत्र' [को०] ।

ताम्रवर्ण^१—वि० [सं०] १. ताम्र रंग का । २. लाल ।

ताम्रवर्ण^२—संज्ञा पुं० १. वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम । २. पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के अतर्गत एक द्वीप । सिंहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहल द्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था । मेगास्थनीज ने इसी द्वीप का नाम तम्रोवेन लिखा है ।

विशेष—दे० 'सिंहल' ।

ताम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़हर का पेड़ । मडहुल । मोड्डुण ।

४-५१

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ । २. एक लता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रवीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी ।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रवृन्त] कुलथी ।

ताम्रवृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रवृन्ता] कुलथी ।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलथी । २. लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशासन—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + शासन] ताम्रपत्र । दानपत्र । उ०—राजामों तथा सामंतों की तरफ से मंदिर, मठ, ब्राह्मण साधु आदि को दान में दिए हुए गाँव, खेत, कुएँ आदि की सन्देशों ताम्र पर प्राचीन काल से ही खुदवाकर री जाती थीं और प्रबलक दी जाती हैं जिनको 'दानपत्र', 'ताम्रपत्र', 'ताम्रशासन' या 'शासनपत्र' कहते हैं ।—भा० प्रा० लि०, पृ० १५२ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुक्कुट । मुरगा ।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चंदन का पेड़ । २. लाल खैर ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सिंहली पीपल । २. दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे वे ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थी—(१) कौची, (२) भासी, (३) सेनी, (४) धृतराष्ट्री और (५) शुकी । (रामायण) ।

ताम्राक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल । २. कौमा [को०] ।

ताम्राक्ष^२—वि० लाल आँखोंवाला [को०] ।

ताम्राभ^१—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्राभ^२—वि० ताम्र का धाभावाला [को०] ।

ताम्राध^१—संज्ञा पुं० [सं०] कौता ।

ताम्राश्मा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्राश्मन्] पक्षराग मणि [को०] ।

ताम्रिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ताम्रिकी] ताम्रकार [को०] ।

ताम्रिक^२—वि० [वि० स्त्री० ताम्रिकी] ताम्र का । ताम्रनिमित्त । ताम्र से बना हुआ [को०] ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुजा । पुष्पची ।

ताम्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रिमन्] लालिमा । ललाई [को०] ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । २. जलघड़ी का कटोरा । जलघड़ी का पात्र [को०] ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रमत्स्य । ताम्र की राख ।

ताम्रोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रोपजीविन्] ताम्रकार [को०] ।

तायँ^१—अव्य० [हि०] तक ।

तायँ^२—संज्ञा पुं० [सं० ताय, हि० ताय] १. ताय । गरमी । २. जलन । ३. धूप ।

तायँ^३—सर्व० [हि०] दे० 'ताहि' । उ०—महै सूर री बँसुरिया, तैं कहूँ दीनो ताय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५२ ।

सायदाद—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तादाद' ।

सायन(७)¹—संज्ञा पुं० [फा० ताजियानह्] चाबुक । कोड़ा । उ०—
तीख़ तुख़ार चाँड़ मो बाँके । तरपहि तबहि तायन बिनु हाँके ।
२. वृद्धि ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १५० ।

सायन²—संज्ञा पुं० [सं०] १. ममगता । भागे बढ़नेवाला व्यक्ति ।
विकास [को०] ।

सायना(७)¹—क्रि० सं० [हि० ताव] तपाना । गरम करना ।
उ०—पायन वजति उतायल तायन कीन । पुनि करि कायल
घायल हायल कीन ।—सेवक (शब्द०) ।

सायफा—संज्ञा पुं० स्त्री० [फा० सायफह्] १. नाचने गानेवाली वेश्याओं
और समाजियों की मंडली । २. वेश्या । रंडी । उ०—तन
मन मिलयो तायफे, छाँकौ हिलियो छेल ।—श्रीफा प्र०,
भा० २, पृष्ठ ३ ।

सायब(७)¹—वि० [फा० तोबह्] तोबा करनेवाला । पश्चात्ताप करने-
वाला । उ०—गुनह से हो सब मादमी तायब ।—कबीर
प्र०, पृ० १३३ ।

सायल—वि० [हि० ताव] तेज । तावदार । उ०—तायल तुरंगम
उड़त जनु बाज ।—पद्माकर प्र०, पृ० २५ ।

साया¹—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई ।
बड़ा चाचा ।

साया²—वि० [हि० ताना] १. गरमाया हुआ । २. पिघलाया हुआ ।
जैसे, ताया घी ।

सार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूपा । चाँदी । २. (सोना, चाँदी तवा,
लोहा इत्यादि), धातुओं का सूत । तपी धातु को पीट और
खींचकर बनाया हुआ तागा । रस्सी या तागे के रूप में
परिणत धातु । धातुतु ।

विशेष—धातु को पहले पीटकर गोल बत्ती के रूप में करते हैं ।
फिर उसे तपाकर जती के बड़े छेद में डालते और सेंदसी से
दूसरी ओर पकड़कर जोर से खींचते हैं । खींचने से धातु
लकीर के रूप में बढ़ जाती है । फिर उस छेद में से सूत या
बत्ती को निकालकर उससे और छोटे छेद में डालकर खींचते
जाते हैं जिससे वह बराबर महीन होता और बढ़ता जाता
है । खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है । सोने, चाँदी,
आदि धातुओं का तार गोटे, पट्टे, कारचोबी आदि बनाने के
काम आता है । सीसे और राँगे को छोड़ और प्रायः सब
धातुओं का तार खींचा जा सकता है । जरी, कारचोबी आदि
में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है । तार को सुनहरी
बनाने के लिये उसमें रत्ती दो रत्ती सोना मिला देते हैं ।

क्रि० प्र०—खींचना ।

यौ०—तारकण ।

मुहा०—तार दबकना=गोटे के लिये तार को पीटकर चिपटा
और चौड़ा करना ।

३. धातु का वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली की
सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा
जाता है । टेलिग्राफ । जैसे,—उन दोनों गाँवों के बीच तार

लगा है । उ०—तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुम समाचार
यह ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८०० ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

यौ०—तारघर ।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की
शक्ति काम में लाई जाती है । इसके लिये चार वस्तुएँ
आवश्यक होती हैं—बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर,
बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संचार को प्रवाह
द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संचार को ग्रहण करनेवाला यंत्र ।
यह एक नियम है कि यदि किसी तार के धरे में से बिजली
का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो, तो
उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन
हो जाता है । चुंबक के रहने से जिस दिशा को बिजली का
प्रवाह होगा, उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलटकर दूसरी दिशा
की ओर हो जायगा । प्रवाह के इस दिशापरिवर्तन का ज्ञान
कपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी
रहती है । यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती
है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है ।
सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्तन का पता
लगता है । आजकल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती ।
जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है, उसके बगल में
दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युत्घट से मिला देने से
थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है । अब
समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता
है, स्थूल रूप से यह देखना चाहिए । भेजनेवाले तारघर में
जो विद्युत्घटमासा होती है, उसके एक ओर का तार तो
पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले
स्थान की ओर गया रहता है । उसमें एक कुंजी ऐसी होती
है जिसके द्वारा जब चाहे तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें
तब मलग कर दें । इसी के साथ उस तार का भी संचार
रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा बदल
जाती है । इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी
इधर कभी उधर करने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ
में रहती है जिससे संचार ग्रहण करनेवाले स्थान की
सुई को वह जब अधर चाहे, बटन या कुंजी दबाकर कर
सकता है । एक बार में सुई जिस क्रम से दाहिने या बाएँ
होगी, उसी के अनुसार यंत्र का सकेत समझा जायगा ।
सुई के दाहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को
बेण (रेखा) कहते हैं । इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से
मार्स नामक एक व्यक्ति ने मॉरेजी वर्णमाला के सब अक्षरों
के सकेत बना लिए हैं । जैसे,—

A के लिये —

B के लिये — . . .

D के लिये — . — . इत्यादि ।

तार के संचार ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं—एक दर्शन
प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली । ऊपर लिखी रीति पहली

प्रणाली के मंत्रगंत है। पर अब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं। मम्पास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब प्रश्न समझ लिए जाते हैं।

४. तार से भाई हुई खबर। टेलिग्राफ के द्वारा प्राया हुआ समाचार।

क्रि० प्र०—माना।

५. सुत। तागा। ततु। सूत्र।

यौ०—तार तोड़।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु की धड़ियाँ अलग अलग करना। नोचकर सूत सूत अलग करना। उ०—तार तार कौन्ही फारि सारी जरतारी की।—दिनेश (शब्द०)। तार तार होना = ऐसा फटना कि धड़ियाँ अलग अलग हो जायें। बहुत ही फट जाना। ६. सुतड़ी (लघ०)। ७. बराबर चलता हुआ क्रम। अलख परपरा। सिलसिला। जैसे,—दोपहर तक लोगो के जाने जाने का तार लगा रहा।

मुहा०—तार टटना = चलता हुआ क्रम बंद हो जाना। परंपरा खंडित हो जाना। लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना। तार बंधना = किसी काम का बराबर चला चलना। किसी बात का बराबर होते जाना। सिलसिला जारी होना। जैसे,—सबेरे से जो उनके रोने का तार बंधा, वह एक न टूटा। तार बंधना = (किसी बात को) बराबर करते जाना। सिलसिला जारी करना। तार खगाना = दे० 'तार बंधना'। तार ब तार = छिन्न मिश्र। अस्त व्यस्त। बेसिलसिले।

७. व्योत। सुवीता। व्यवस्था। जैसे,—जहाँ चार पेसे का तार होगा वहाँ जायेंगे, यहाँ क्यों भावेंगे।

मुहा०—तार बैठना या बंधना = व्योत होना। कार्यसिद्धि का सुधीता होना। तार लगना = दे० 'तार बैठना'। तार जमना = दे० 'तार बैठना'।

८. ठीक माप। जैसे,—(क) अपने तार का एक जुता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है। ९. कार्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढव। जैसे,—कोई ऐसा तार लगामो कि हम भी तुम्हारे साथ भा जायें।

यौ०—तारघाट।

१०. प्रणव। भोजार। ११. राम की सेना का एक वदर जो तारा का पिता या भोर वृहस्पति के अश्व से उत्पन्न था। १२. शुद्ध मोती। १३. नक्षत्र। तारा। उ०—रवि के उदय तार भी छीना। चर बीह्र दूनो महे लीना।—कबीर श्र०, पृ० १३०। १४. साध्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुरु से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। १५. शिव। १६. विष्णु। १७. संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से उठकर कपाल के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। १८. प्राख की पुतली। १९. अठारह प्रश्नों का एक

संग्रहित। जैसे,—तह प्राण के नाथ प्रसन्न बिलोकी। २०. तोल। उ०—तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावे कोठ पन भोर कुँभर बोक प्रेम की तुला घौ तार।—तुलसी (शब्द०)। २१. नदी का तट। तीर।

विशेष—दिशावाचक शब्दों के साथ संयोग होने पर 'तीर' शब्द 'तार' बन जाता है। जैसे दक्षिणतार।

२२. मोती की शुभ्रता या स्वच्छता (को०)। २३. सुंदर या बड़ा मोती (को०)। २४. रक्षा (को०)। २५. पारगमन। पार जाना (को०)। २६. चाँदी (को०)। २७. बीज का भाग (विशेषतः कमल का)।

तार(१)^२—सङ्घा पुं० [सं० ताल] १. ताल। मजीरा उ०—काहू के हाथ मघोरी, काहू के बीन, काहू के मृदंग, कोक गहे तार।—हरिदास (शब्द०)। २. करताल नामक वाजा।

तार(१)^३—सङ्घा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सोकर माँघन को बलि पे करतारहू ने करतार पसारयो।—कैशव (शब्द०)।

यौ०—करतार = हथेली।

तार(१)^४—सङ्घा पुं० [हि० तार] १. कान का एक गहना। ताटक। तरोना। उ०—श्रवणन पहिरे उलटे तार।—सूर (शब्द०)।

तार(१)^५—सङ्घा पुं० [सं० ताल, ताड] ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेसि बनखेँड भो जरि मुरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जामसी (शब्द०)।

तार(१)^६—वि० [सं०] १. जिसमें से किरनें फूटी हो। प्रकाशयुक्त। प्रकाशित। स्पष्ट। २. निर्मल। स्वच्छ। ३. उच्च। उदात्त। जैसे, स्वर (को०)। ४. अति ऊँचा। उ०—जिम जिम मन ममले कियइ तार चढती जाइ।—ढोला०, दू० १२। ५. तेज। उ०—माह वहि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर तार।—पृ० रा० २५। २५। ६. मच्छा। उत्तम। प्रिय (को०)। ७. शुद्ध। स्वच्छ (को०)।

तार(१)^७—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'तारा'। उ०—मग्नल भो मारफत हासिल न पावे। दोयम तार के दिल गुमराह होवे।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

तार(१)^८—अण्य० [सं० तार (= तीर, पतला)] किचिन्मात्र। जरा भी। उ०—माँघउ खारा लून कर तू भाण न उर तार।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ७५।

तार(१)^९—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'ताल'। उ०—बाजत चट सौं पटरी तारन ग्वारन गावत संग।—नंद० प्र०, पृ० ३८८।

तारक—सङ्घा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। २. प्राख। ३. प्राख की पुतली। ४. ईद्र का शयु एक असुर। इसने जब इद्र को बहुत सताया, तब नारायण ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (पद्मपुराण)। ५. एक असुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था। दे० 'तारकासुर'।

यौ०—तारकजित्, तारकरिपु, तारकवंरी, तारकसुदन = कार्तिकेय।

१. राम का पञ्चम मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है भोर

वारख ५—संज्ञा पुं० [सं० वाक्यं] गुरु । (दि०) ।

तारखो(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तारख्यं] छोटा । (हिं०) ।

तारग(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारक'—१०' । उ०—मुक्ति पथ का पाया मारग । दादू राम मिलाया गुरु तारग ।—राम० धर्म०, पृ० २०८ ।

तारघर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तार + घर] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय ।

तारघाट—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तार + घाट] कायंसिद्धि का योग । मतलब निकलने का सुवीता । व्यवस्था । आयोजन । जैसे,—वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है ।

तारचरबी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मोमचीना का पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है । इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के बिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं । चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबत्तियाँ बनती हैं । चरबी के प्रतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है ।

तारचौ(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तार (= कँचा) + (च = गति करनेवाला)] तारक । तारा । उ०—तारचो सटुल, बाई सुतल ।—पृ० रा०, २६ । ७० ।

तारछ(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तारक्ष्यं] गरुड । उ०—गरुत्मान, तारछ, गरुड, वैवतेय, शकुनीध ।—नद० प्र०, पृ० १११ ।

तारट(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तारक] तारा । तरेया । उ०—सित दुक्ख विभूत बोधकंठी नप तारट ।—पृ० रा०, २ । ४२४ ।

तारण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ (दूसरे को) पार करने का काम । पार उतारने की क्रिया । २ उद्धार । निस्तार । ३. उद्धार करने या तारनेवाला व्यक्ति । ४ विष्णु । ५. साठ सवत्सरों में से एक । ६ शिव (को०) । ७ नाव । नौका (को०) । ८. विजय (को०) ।

तारण^२—वि० १. उद्धार करनेवाला । पार करनेवाला । २. पार करानेवाला ।

यौ०—तारण तिरण = पार उतारनेवाला । उ०—तारण तिरण जय लग कहिए ।—कबीर प्र०, पृ० १०५ ।

तारणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कण्ठ की एक पत्ती जो याज्ञ और उपयाज को मासा कहती जाती है । २ नौका । नाव (को०) ।

तारतंडुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तारतण्डुल] सफेद ज्वार ।

तारतर्खाना(७)—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तद्धारत + फ्रा० खानह] शुद्ध स्थान । पवित्र स्थल । वह स्थान जहाँ पर शुद्ध होकर नमाज आदि पढ़ने के लिये जाया जाता है । उ०—प्रति सोने पतसाह प्रछाने । खिए सज्या खिए तारतर्खाने ।—रा० क०, पृ० ९६ ।

तारतम(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारतम्य' । उ०—चीपा प्रकिल भंष को लेखा । वो तारतम से करे विवेखा ।—कबीर सा०, पृ० २३३ ।

तारतमिक—वि० [सं० तारतम्यिक] परस्पर न्यूनाधिक्य क्रम का या कमी वेशीवाला । क्रमबद्ध ।

तारतम्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] १. न्यूनाधिक्य । परस्पर न्यूनाधिक्य का संबंध । एक दूसरे से कमी वेशी का हिसाब । २ उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था । कमी वेशी के हिसाब से तरतीब । ३. दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार । गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान ।

तारतम्यबोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में से एक का दूसरे से बढ़कर होने का विचार । कई वस्तुओं में से थले बुरे आदि की पहचान । सापेक्ष संबंध ज्ञान ।

तार तार^१—वि० [हिं० तार] जिसकी धाँजियाँ भलग भलग हो गई हों । टुकड़ा टुकड़ा । फटा फटा । उधड़ा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।

तर तार^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक गौण सिद्धि । पठित भाग्य आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त परीक्षा से प्राप्त सिद्धि ।

तारतोड़—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तार + तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है । कारचोबी । उ०—दिखावे कीई गोखरू मोड़ मोड़ । कहीं सुत बूटे कहीं तारतोड़ ।—मीर हुसैन (शब्द०) ।

तारदो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कटिदार पेड़ । तरदो धूस ।

पर्या०—खजुरा । तीव्रा । रक्तबीजका ।

तारन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तारण] दे० 'तारण' । उ०—(क) हम तुम्ह तारन तेज धन सुदर, नीके सों निरबहिये ।—दादू०, पृ० ५५१ । (ख) जग कारण, तारन भव, भजन धरनी भार ।—तुलसी (शब्द०) ।

तारन^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे ?)] १ छत की ढाँख । छाजन की ढाँख । २ छप्पर का वह बाँध जो कौड़ियों के नीचे रहता है ।

तारना^१—क्रि० सं० [सं० तारण] १ पार लगाना । पार करना । २ सवार के बलेश आदि से छुड़ाना । भबबाधा दूर करना । उद्धार करना । निस्तार करना । सद्गति देना । मुक्त करना । उ०—काह के न तारे चिन्हें गंगा तुम तारे घोर जेते तुम तारे सेते नभ में न तारे हैं ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. पानी की धारा देना । सरैया देना । उ०—मनई बिरह के सय धाव हिए लक्षि तकि तकि धरि धीरज तारति ।—तुलसी (शब्द०) । ४. तराना ।

तारना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताहना] दे० 'ताहना' ।

तारनी(७)^१—क्रि० सं० [हिं०] १. ताड़ना करना । बंड देना । पीड़ित करना । २. देखना । निरीक्षण करना ।

तारपट्टक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तलवार (को०) ।

तारपतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलकापात (को०) ।

तारपीन—संज्ञा पुं० [अ० टरपेंटाइन] चीड़ के पेड़ से निकाला हुआ तेल ।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोखला गड्ढा काटकर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर कुछ गहरा कर देते हैं । इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकलकर गोद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गदा-बिरोजा कहते हैं । इस गोंद से भवके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, उसे तारपीन का तेल कहते हैं । यह भीषण के काम में आता है और वंद के लिये उपकारी है ।

तारपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पेड़ ।

तारबर्की—संज्ञा पुं० [हि० तार + म० बर्क + फ्रा० ई० (प्रत्य०)] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार ।

सारमान्त्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारयिता—संज्ञा पुं० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारने-वाला । उद्धार करनेवाला ।

तारल^१—वि० [सं०] १ चपल । चंचल । अस्थिर । २ लपट । विलासी [को०] ।

तारल^२—संज्ञा पुं० विट [को०] ।

तारल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म । द्रवत्व । २ चंचलता । चपलता । ३. लपटता । कामुकता [को०] ।

तारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज या जोर की आवाजवाली हवा [को०] ।

तारविमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामन्त्री नाम की उपधातु ।

तारशुद्धिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा [को०] ।

सारसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

तारस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँचा स्वर । ऊँची आवाज [को०] ।

तारहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुंदर या बड़े मोतियों का हार । उ०—ढाँढ़ो के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेर स्फार, बिखराती जल मे तार हार ।—शुक्ल, पृ० ६५ । २ चमकीला हार । तेजोमय हार [को०] ।

तारहेमाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु [को०] ।

तारा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ नक्षत्र । सितारा ।

यौ०—तारामंडल ।

मुहा०—तारे खिलना = तारों का चमकते हुए निकलना । तारों का दिखाई देना । तारे गिनना = चिंता या आशंका में बेचैनी से रात काटना । दुःख से किसी प्रकार रात बिताना । तारे छिटकना = तारों का दिखाई पड़ना । आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना । तारा टूटना = चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना । उल्कापात होना । तारा टूटना = (१) किसी नक्षत्र का भस्त होना । (२) शुक्र का भस्त होना ।

विशेष—शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए

तारे तोड़ लाना = (१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना ।

(२) बड़ी चालाकी का काम करना । तारे दिखाना = प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन, भूत आदि का डर न रह जाय ।

विशेष—मुसलमान स्त्रियों में यह रीति है ।

तारे दिखाई दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँखों के सामने तिरमिराहट दिखाई पड़ना । तारा सी आँखें हो जाना = ललाई, खुजल, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना । तारों की छाँह = बड़े सवेरे । तड़के, जब कि तारों का धुँधला प्रकाश रहे । जैसे,—तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे तारा हो जाना = (१) बहुत ऊँचे पर हो जाना । इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे । (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े । बहुत फासले पर हो जाना ।

२. आँख की पुतली । उ०—देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।—मानस, १।२४४ ।

मुहा०—नयनों का तारा = दे० 'आँख का तारा' । मेरे नैनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

३. सितारा । भाग्य । किस्मत । उ०—ग्रीष्म के भानु सो सुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे भए मुँदि तुरकन के ।—धृपण (शब्द०) । ४. मोती । मुक्ता [को०] । ५. छह स्वरोंवाले एक राग का नाम [को०] ।

तारा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक । २ वृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था ।

विशेष—वृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा, तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया । इसपर वृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और घोर युद्ध आरंभ हुआ । अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को लेकर वृहस्पति को दे दिया । तारा को गर्भवती देख वृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया । तारा ने तुरंत शिशु का प्रसव किया । देवताओं ने तारा से पूछा—'ठीक ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है ?' तारा ने बड़ी देर के पीछे बताया—'यह वसुहस्त नामक पुत्र चंद्रमा का है ।' चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम बुध रखा ।

३. जैनो की एक शक्ति । ४. बालि नामक बदर की स्त्री और सुभेन की कन्या ।

विशेष—इसने बालि के मारे जाने पर उसके भाई सुग्रीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था । तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसका नाम लेने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है । यथा—

महत्या द्रोपदी तारा कुती मंदोदरी तथा ।

पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥१॥

५ सिर में बांधने का चीरा । ५ राजा हरिश्चंद्र की पत्नी का नाम । तारामती (को०) । ६ बौद्धों की एक देवी (को०) ।

तारा^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताला' । उ०—हिय भंडार नग्राहि जो पूजो । खोलि जोम तारा के कूँजो ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३५ ।

मुहाना—तारा मारना=ताला बंद करना । उ०—ता पाछे वह ब्राह्मण ने अपने वेटा कों घर में मूँदि घर की तारयो मारयो ।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० २७६ ।

तारा^८—संज्ञा पुं० [सं० ताल (= सर)] तालाब ।

ताराकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तारा + कुमार] १ तारा का पुत्र, भगद । २. चंद्रमा का पुत्र बुध जो तारा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है ।

ताराकूट—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है ।

ताराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष दैत्य ।

तारागण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह । तारों का समूह ।

ताराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और सनि इन पाँच ग्रहों का समूह । (वृहत्संहिता) ।

ताराचक्र—संज्ञा पुं० [सं० तारा + चक्र] दीक्षा मंत्र के शुभाशुभ फल का निर्णायक एक तांत्रिक चक्र (को०) ।

ताराज—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. लूटपाट । लूटमार ।—(लश०) । २. नाथ । ध्वस । विनाश । बरबादी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तारात्मक नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रांतिवृत्त के उत्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिनमें अश्विनी, भरणी आदि हैं ।

ताराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ शिव । ३. वृहस्पति । ४ बालि । ५. सुग्रीव ।

तारावीश—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताराधिप' ।

तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २. वृहस्पति । ३ बालि । ४ सुग्रीव ।

तारापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तारानाथ' ।

तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

तारापीड—संज्ञा पुं० [सं० तारापीड] १ चंद्रमा । २. मत्स्य पुराण के अनुसार अयोध्या के एक राजा का नाम । ३. काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम ।

ताराभ—संज्ञा पुं० [सं०] पारद । पारा ।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

ताराभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डल] १. नक्षत्रों का समूह या घेरा । उ०—नाचते ग्रह, तारामंडल, पलक में उठ गिरते प्रतिपल ।—अनामिका, पृ० ६३ । २ एक प्रकार की

प्रातःपूजाजी । ३. एक प्रकार का कपड़ा (को०) । ४. एक प्रकार का शिव का मंदिर (को०) ।

तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डूर] बैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है ।

तारामंडल^७—संज्ञा पुं० [सं० तारा + हि० मंडल] तारा बूटी की छपाईवाला एक वस्त्र । उ०—तारामंडल पहिरि मलचोला । भरे सीस सब नखत मनोना ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८० ।

तारामती—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हरिश्चंद्र की पत्नी जिसका तारा नाम भी है (को०) ।

तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र ।

तारमैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन मात्र से होनेवाला प्रेम (को०) ।

तारायण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश । २ वट का पेड़ (को०) ।

तारायण^७—संज्ञा पुं० [सं० तारा + गण] तारकसमूह । तारे । उ०—जु तारायण मोक्षी सो चंद, गोवल माहि मिलइ ज्यु गोव्यद ।—वी० रासो०, पृ० १११ ।

तारारि—संज्ञा पुं० [सं०] विटमालिक नाम की उपधातु ।

तारालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारो की श्रेणी । तारकपक्ति । उ०—तृण, तृष से तारालि सत्य है एक प्रखंडित ।—ग्राम्या, पृ० ७० ।

तारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कापात (को०) ।

तारावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दुर्गा (को०) ।

तारावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारवपक्ति । तारों का समूह (को०) ।

तारि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ताली' । उ०—गाल नाचें तारि दे दे देत बहुत बनाप ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१० ।

तारिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल । उतराई । २ नदी से माल को पार करवाने और कर वसूल करनेवाला कर्मचारी । उ०—घाट पर तारिक नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को पार उतारने में सहायता करता तथा उचित टैक्स वसूल करता था ।—पृ० म० भा०, पृ० १३० । ३ मल्लाह (को०) ।

तारिक^७—वि० [सं०] १ तर्क करनेवाला । त्यागी । त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला । उ०—ग्रहकारी । धमडी (को०) । यौ०—तारिके दुनिया = ससार से विरक्त । तारिके सज्जात = सांसारिक प्रानंद का त्याग करनेवाला । निस्पृह ।

तारिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य ।

तारिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तारका] १. दे० 'तारका' । उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, अवन भनक परो ललिता के तान की ।—सुर (शब्द०) । २ सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्री । अभिनेत्री । ३ तारीख ।

तारिका^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] दे० 'ताडका' । उ०—तस्मि नाम तारिका ग्यान हरि परसी राम ।—पृ० रा०, २।२६७ ।

तारिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] १. तारनेवाली । उद्धार करनेवाली । २ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी और ४ फीट हाँव ऊँची नाव । तारिणी^२—संज्ञा स्त्री० तारा देवी । वि० दे० 'तारा' ।

सारित—वि० [सं०] १. तारा हुआ। पार किया हुआ। २ जिसका उद्धार हुआ हो [को०]।

तारी^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. विद्या। ३. समाधि। ध्यान। उ०—(क) विकल अचेत तारी तुम हो क्यों लगी रहै।—घनानन्द, पृ० २००। (ख) सूनि समाधि लागि गइ तारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १००।

तारी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तारी'। उ०—छुटकी तारी थाप दे गऊ जिह्वाई वेग।—कबीर मं०, पृ० ११४।

तारी^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तारी'।

तारी—वि० [सं० तारिन्] १. उद्धार के योग्य बनानेवाला। २. उद्धार करनेवाला। उद्धारक [को०]।

तारीक—वि० [फ्रा०] १. स्थाय। काला। २. धुंधला। धंधेरा। उ०—घस के तारीक अपनी छाँवों में जमाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

तारीकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. स्थायी। २. धंधकार। उ०—इस्लाम के आफताव के आगे कुछ की तारीकी फमी ठहर सकती है?—भारतेंदु, भा० १, पृ० ५२६।

तारीख—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।

मुहा०—तारीख डालना = तिथि वार भाँति लिखना।

२. वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषतः ऐसी जिसका उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो। ३. नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहराया हुआ दिन। जैसे,—कल मुकदमे की तारीख है।

मुहा०—तारीख डालना = तारीख मुकदमे करना। दिन नियत करना। तारीख टलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे,—उनके मुकदमे की तारीख टल गई। तारीख पढ़ना = किसी काम के लिये दिन मुकदमे होना। तिथि नियत होना।

४. इतिहास। उ०—मैंने सुना है कि तारीख अकबरी में कबीर साहब और नानक साहब के विषय में अनेक बातें लिखी हैं।—कबीर मं०, पृ० ५२४।

तारीफ—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तारीफ] १. लक्षण। परिभाषा। २. वार्णन। विवरण। ३. बखान। प्रशंसा। श्लाघा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. प्रशंसा की बात। विशेषता। गुण। सिकत। जैसे,—यही तो इस धरा में तारीफ है कि जरा भी नहीं जगती।

मुहा०—तारीफ के पुल बाँधना = बहुत अधिक प्रशंसा करना। अतिरजित प्रशंसा करना। उ०—मुबारक कदम ने तो तारीफ के पुल ही बाँध दिए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३५।

तारी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तारी] दे० 'तारी'। उ०—दसवें दुवार तार का लिखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २६५।

तारु^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारु'।

तारुण—वि० [सं०] युवा। जवान [को०]।

तारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] यौवन। जवानी। उ०—फलकता पाता अभी तारुण्य है। मा गुराई से मिला मारुण्य है।—साकेत, पृ० ११।

तारुण्य—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तारुणी'। उ०—तब ग्रंथ गोप तारुण त्रिविध सपिय गोप उम्भिय सरस। प्रतिबिम्ब मुष्ण राका दरस मुहु गावत चहुमान जस।—पृ० २०, १६७१।

तारु^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारु'।

तारुणी^४—वि० [हिं० तारुणा] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ०—तारुणी ाट देखिहो, तारुणी भस्याना।—दाहू, पृ० ५६२।

तारेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. तारा या बालि का पुत्र मंगल। २. वृद्धस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध। ३. मंगल ग्रह [को०]।

तार्क्य—वि० [सं०] बुना हुआ [को०]।

तार्किक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्कशास्त्र का ज्ञाननेवाला। २. तत्त्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] कथयप।

तार्क्य^२—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्यं] कथयप के पुत्र गरुड।

तार्क्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसाजन।

तार्क्य^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाताखगरुडो खता। छिरेंटी। छिरिहुटा।

तार्क्य^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष मुनि के गोत्रज। २. गरुड। ३. गरुड के बड़े भाई अरुण। ४. घोड़ा। ५. रसाजन। ६. सर्प। ७. अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। ८. एक पर्वत का नाम। ९. महादेव। १०. सोना। स्वर्ण। ११. रथ। १२. पत्नी [को०]।

तार्क्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसोत। रसाजन।

तार्क्यध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

तार्क्यनायक—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

तार्क्यनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] घाज पक्षी [को०]।

तार्क्यपुत्र, तार्क्यसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

तार्क्यप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] रसाजन। रसोत।

तार्क्यसाम—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्यसामन्] सामवेद [को०]।

तार्क्य^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनलता का नाम।

तार्क्य^६—वि० [सं०] [वि० तार्क्य] तार्क्य से निर्मित [को०]।

तार्क्य^७—संज्ञा पुं० १. घास का कर। २. अग्नि [को०]।

तार्क्य^८—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसका रंग सुमापक्षी होता है और गंध लड्डी होती है [को०]।

तार्तीय^९—वि० [सं०] १. तृतीय। तीसरा। २. तृतीय सप्तम रखनेवाला [को०]।

तार्तीय^{१०}—संज्ञा पुं० तृतीय अंश या भाग [को०]।

तार्तीयक—वि० [सं०] तृतीय [को०]।

तार्य—संज्ञा पुं० [सं०] तृपा नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था ।

तार्य^१—वि० [सं०] १. तारने योग्य । उद्धार करने योग्य । २. पार करने योग्य । ३. जीतने योग्य [को०] ।

तार्य^२—संज्ञा पुं० नाव आदि का साड़ा [को०] ।

तालक—संज्ञा पुं० [सं० तालक] दे० 'तडक' [को०] ।

ताल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ का तल । करतल । हथेली । २. यह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरी पर मारने से उत्पन्न होता है । करतलध्वनि । ताली । उ०—हलुक, छटुछल, प्रतिगीत, वाद्य, ताल, नृत्य, होइते मछ ।—वर्ण-रत्नाकर, पृ० २ । ३. नाचने या गाने में उसके साथ और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं । उ०—मार्गणहारो सीख सी डोलइ तिएहि ज ताल ।—दोहा०, दू० २०६ ।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी । भरत मुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चत्तुष्टय, चाचपुट, पटपितापुत्रक, उदघट्टक, संनिपात, ककण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, क्षचीप्रिय, पार्वतीलोचन, रात्रघुङ्गामणि, जयश्री, बादकाकुल, कदपं, नलकुवर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चंचरी, कुहक, विजयानंद, वीरविक्रम, टेंगिक, रंगभरण, श्रीक्रीति, वनमासी, चतुर्मुख, सिंहनंदन, नदीश, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गभवे, मकरद, त्रिभंगी, रतिताल, बसंत, जगभंग, गारुडि, कविशेखर, घोष, हरवल्लभ, मेरव, गतप्रत्यागत, मल्लताली, मेरव-मस्तक, सरस्वतीकठामरण, श्रीङ्गा, निःसार, मुक्तावली, रंग-राज, भरतानंद, भादितासक, सपकष्टक । इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं । इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है । इन नामों में से आजकल बहुत प्रचलित हैं । संगीत में ताल देने के लिये सबसे, भूदंग डोल और मंजोरे आदि का व्यवहार किया जाता है ।

क्रि० प्र०—देना । —बजाना ।

यौ०—तालमेल ।

मुहा०—ताल बेताल = (१) जिसका ताल ठिकाने से न हो । (२) भ्रष्टर या बिना भ्रष्टर के । मोके । बेमोके । ताल से बेताल होना = ताल के नियम से बाहर हो जाना । उलझ जाना । (गाने बजाने में) ।

४. अपने जंघे या बाहु पर जोर से हथेली मारकर उत्पन्न किया हुआ शब्द । कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को लसकारते हैं, तब इस प्रकार हाथ मारते हैं ।

मुहा०—ताल ठोकना = लड़ने के लिये लसकारना ।

५. मंजोरा या झंझ नाम का बाजा । उ०—ताल मेरि भूदंग बाजत सिधु गरजन जान ।—चरण० बानी, पृ० १२२ । ६. चरमे के पत्थर या काँच का एक पल्ला । ७. हस्ताक्ष । ८.

४-५२

तालीख पत्र । ९. ताड़ का पेड़ या फल । १०. बेत । विल्कल (भनेकार्य०) ११. हाथियों के कान फटफटाने का शब्द । १२. नंबाई की एक माप । बिता । १३. तासा । १४. तसवार की मूठ । १५. एक नरक । १६. महादेव । १७. दुर्गा के सिंहासन का नाम । १८. पिंगल में डमरु के दूसरे भेद का नाम जो एक गुरु और एक सधु का होता है—५ । १९. ताड़ की ध्वजा (को०) । २०. कंबाई का एक परिमाण (को०) । २१. एक नृत्य (को०) ।

ताल^२—संज्ञा पुं० [सं० तल्ल] वह नीची भूमि या संवा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है । जलाशय । पोखरा । तालाब । उ०—कोन ताल और कोन द्वारा । कहें होइ हसा करे बिहारा । कबोर मं०, पृ० ५५५ ।

ताल^३—संज्ञा पुं० [हि० तार] उपाय । दौव । उ०—वास बिकल निबसा नसे सबल न सागे ताल ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

ताल^४—संज्ञा पुं० [सं० ताल] क्षण । समय । उ०—ठाढी गुणी बोसाविषा, राजा तिएही ताल ।—दोहा०, दू० १०५ ।

ताल^५—वि० को० [सं० उत्ताल] ऊँची । उ०—भ्याकुल थीं निस्सीम सिधु की ताल तरंगों ।—प्रतामिका, पृ० ५६ ।

तालकंद—संज्ञा पुं० [सं० तालकन्द] ताल मूली । मुवसी ।

तालक^१—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक] दे० 'तमल्लुक' । उ०—हो तो एक बालक न मोहि कछु तालक पै देखो तात तुमहें को कैसी सधुताई है ।—हनुमान (शब्द०) ।

तालक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. हस्ताक्ष । २. तासा । ३. गोपीचंदन । ४. ताड़ का पेड़ या फल (को०) । ५. भरहर (को०) ।

तालक^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तसक' । उ०—त्रिकुटी संधि नासिका तालक, सुष्मनि जाय समाई ।—प्राण०, पृ० ६४ ।

तालकट—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार बणिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का ठासीकोट हो ।

तालकाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] हरा रंग (को०) ।

तालकाम^२—वि० हरा (को०) ।

तालकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी । तालरस ।

तालकूटा—संज्ञा पुं० [हि० ताल + कूटना] झंझ बजाकर मजने आदि गानेवाला ।

तालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो । २. भीष्म । ३. बलराम ।

तालकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] एक शीघ्र जो कुट, फोड़ा फुंसी आदि में हो जाती है ।

विशेष—दो मासे हरताल में पेठे के रस, भीकुमार के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं । फिर दो मासे गंधक और एक मासे पारे को मिलाकर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हरताल मिलाकर फिर सब में क्रम से बकरी के घृत, नीबू के रस और भीकुमार के रस की तीन दिन भावना देते हैं । अंत में सब का गोल कतरा बनाकर उसे हाड़ी में सार

के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंडा होने पर खरा लेते हैं।

ताक्षकोश—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर या ताड़ की बीनी। २.

तालरस, ताड़ी (को०)।

तालक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'तालक्षीर' (को०)।

तालखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल + हि० खजूर]—केतकी। उ०—

तालखजूरी, तुलसी, केतकी पकरति पाइ।—नंद० पुं०,

पृ० १७५।

ताक्षगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी—(को०)।

ताक्षचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। २. उक्त देश

का निवासी। ३. उक्त देश का राजा—(को०)।

तालजय—संज्ञा पुं० [सं० तालजय] १. एक देश का नाम। २.

उस देश का निवासी। ३. एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने

राजा सगर के पिता प्रसिद्ध को राजव्युत किया था। ४. एक

प्रकार का गृह (को०)। ५. महाभारत का एक पात्र या

नयिक (को०)।

तालजटा—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जटा (को०)।

तालक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत की तालों का आनकार (को०)।

तालधारक—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक (को०)।

तालध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी ध्वजा पर ताल के पेड़

का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम। ४. एक पर्वत

का नाम।

ताम्रनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माद्रि) शुक्ला नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियों व्रत रखती और ताम्रपत्र पादि से गौरी

की पूजन करती हैं।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र का पत्र।

विशेष—प्राचीन समय में, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ

था, ताड़ के पत्ते पर ही लिखा जाता था।

२. एक प्रकार का कान का गहना। ताटक (को०)।

ताम्रपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्रिका।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

ताम्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताम्रपत्री।

तालवेन—संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक प्रकार का बाजा।

ताल वैताल—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वैताल] दो देवता या यक्ष।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध

किया था और ये बराबर उनकी सेवा में रहते थे।

ताक्षभंग—संज्ञा पुं० [सं० ताल + भङ्ग] गाने और बजाने में ताल स्वर

की विपमता।

तालमखाना—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मखाना] १. एक पोषा जो

गोली या सीढ़ जमीन में होता है, विशेषतः पानी या दलदलों

के निकट।

विशेष—इसकी पतियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा

अंगुल चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टङ्क-

नियाँ निकलती हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गुप्ते के पोषे की

गठियों के ऐसी गठि होती हैं। इन गठियों पर कटि होते हैं।

इन्हीं गठियों पर फूल या बीजों के कोशों के भङ्गुर होते हैं।

फुलों के ऊँड़ जाने पर गठि के कोशों में जोर के ऐसे बीज

पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर,

शीतल, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह

आदि को दूर करनेवाले माने जाते हैं। वाल और गठिया में भी

तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा

करके इन्हें मूत्रकारक, बलकारक और जननेन्द्रिय संबंधी रोगों

के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पोषा दो प्रकार

का होता है—एक नाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का।

सफेद फूल का अधिक मिसता है। कहीं कहीं इसकी पतियों

का साग भी खाया जाता है।

पर्याय—कोकिलास। कामेक्षु। शूर। शूरक। मिश्र। कांडेनु।

शुशुर्षा। शुगली। शुखवि। शूरक। शुगलपंटी। वज्रास्थि।

शुखला। वनकंदक। वंज। त्रिधुर। शुक्लपुष्प (सफेद

तालमखाना)। धृत्रक और प्रतिचंद्र (तालमखाना)।

२. दे० 'मखाना'।

तालमर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा (को०)।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की डाल।

तालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तालमूल'।

तालमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली।

तालमूल—संज्ञा पुं० [हि० ताल + मूल] १. ताल सूर का मिलन। २.

मिलन। मेलजोष। उपयुक्त योजना। ठीक ठीक संयोग।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना। प्रकृति धारि

तमेल खाना = ठीक ठीक मिलन। मेलजोष खाना = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

करना। तालमेल = ठीक ठीक मिलन। तालमेल = ठीक ठीक संयोग

वालरस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ के पेड़ का मध्य । ताड़ी-उ०—ताल-
रस बलराम-चाबयो मन भयो मानंद । गोपसुत सब डेरि
ओन्हें सुभि मई नंदनव ।—सुर (शब्द०) ।

तालरेचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक । २. अभिनेता [को०] ।

ताललक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजी, बलराम ।

तालवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ के पेड़ों का जंगल । २. ब्रज
मंडल के मंतगत एक वन जो गोवर्धन के उत्तर जमुना के
किनारे पर है । कहते हैं, यही पर बलराम ने धेनुकवध
किया था । उ०—सखा कहत नगरे हरि सों तब । चघो
तालवन को जये प्रब ।—सुर (शब्द०) ।

तालवाही—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय ।
जैसे, मँजोरा, भाँक आदि ।

तालवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० तालवृत्त] १. ताड़ के पत्ते का पछा । उ०—
ठहर मरी, इस हृदय मे लगी विरह की प्राग । तालवृत्त से
भीर भी धक्क उठेगी जाग ।—साकेत, पृ० २११ । २. एक
प्रकार का सोम ।—(सुश्रुत) ।

तालवृत्तक—संज्ञा पुं० [सं० तालवृत्तक] दे० 'तालवृत्त' [को०] ।

तालव्य—वि० [सं०] १. ताल संबंधी । २. ताल से उच्चारण किया
जानेवाला वरुण ।

विशेष—इ, ई, अ, ए, ऊ, ऋ, ॠ, य, श—ये वरुण तालव्य
कहाते हैं ।

तालसंपुटक—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सम्पुटक] ताड़ के पत्ते की बनी
हुई भाँपी जो फल आदि रखने के काम आती है । उ०—
हे ताठ, तालसंपुटक तनिक ले लेना । बहनों को वन उपहार
मुझे है देना ।—साकेत, पृ० २४६ ।

तालसौंस—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सौंस (=गूदा)] ताड़ के फल के
भीतर का गूदा जो खाने के काम आता है ।

तालस्कन्ध—संज्ञा पुं० [सं० तालस्कन्ध] एक मस्त्र जिसका नाम
वाल्मीकि रामायण में आया है ।

तालांक—संज्ञा पुं० [सं० तालांक] १. वह जिसका चिह्न ताड़ हो ।
२. बलराम । ३. एक प्रकार का साग । ४. घारा । ५. शुष्क-
लक्षणवान् मनुष्य । ६. पुस्तक । ७. महादेव । ८. ताड़पत्र जो
लिखने के काम आता था (को०) ।

तालांकुर—संज्ञा पुं० [सं० तालांकुर] मँजोरा ।

ताला—संज्ञा पुं० [सं० ताल] लोहे, पीतल आदि की वह कल जिसे
बंद किवाड़, सडूक आदि की कुडी में फँसा देने से किवाड़
या सडूक बिना कुडी के नहीं खुल सकता । कपाट प्रवृत्त
रखने का यंत्र । जदरा । कुल्फ ।

क्रि० प्र०—खुलना । —खोलना । —बंद होना । —करना ।
—लगना । —लगाना ।

तौ—ताला कुंजी ।

मुहा०—ताला जकड़ना = ताला लगाकर बंद करना । ताला
तोड़ना = किसी दूसरे की वस्तु को चुराने या लुटने के लिये
उसके घर, सडूक आदि में लगे हुए ताले को तोड़ना । ताला
भिड़ना । ताला बंद होना । ताला भेड़ना = ताला लगाना ।

ताला①—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल । उ०—बिनही ताला ताल
बजावे ।—कबीर ग्र०, पृ० १४० ।

ताला②—संज्ञा पुं० [सं०, ताले] भाग्य । उ०—मेरे ताले केरा प्राया
सो एक बार । यकायक भाँककर देखे मुँज नार ।—दक्खिनी०
पृ० २८२ ।

ताला③—संज्ञा पुं० [दे०] उरस्ताण । छाती का कवच । उ०—तोरत
रिपु ताले भाले भाले रधिर पनाले बालत हैं ।—पद्माकर
ग्र०, पृ० २७ ।

ताला④—संज्ञा स्त्री० [?] देरी । उ०—चाहे दुरंग तक तजि
ताला ।—रा० रू०, पृ० ३४४ ।

तालाकुंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] १. किवाड़, सडूक,
आदि बंद करने का यंत्र ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. लड़को का एक खेल ।

तालाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूरकचरी ।

तालापचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालावचर' [को०] ।

तालाव—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + आ० मान, प्रपवा सं० तडाग, प्रा०
तलाव, तलाव, हिं० तालाव] जलमय । सरोवर । पोखरा ।

तालावेलि①—संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्याकुलता । तडपन । पीडा ।
उ०—तालावेलि होत घट भीतर, जैसे जन बिन मोन ।—
कबीर ग्र०, भा० २ पृ० ६२ ।

तालावेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तालावेलि] तडपने या छटपटानेवाला
व्यक्ति । विरही पुरुष । उ०—जा घट तालावेलिया, ताको
लावो सोधि ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४० ।

तालावेली②—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालावेलि' । उ०—दादू
साहिब कारणें, तालावेली मोहि ।—दादू, पृ० ३७८ ।

तालावचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक । २. अभिनेता [को०] ।

तालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फँसी हुई हथेली । २. चपत । तमाचा ।
३. नखी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र
या कागज बंधे हों । ४. तालपत्र या कागज का पुलिदा ।
५. ताली । करतल की ध्वनि (को०) ।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताली । कुंजी । २. नखी या तागा
जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज भलग भलग
बंधे हो । तालपत्र या कागज का पुलिदा । ३. नीचे ऊपर
लिखी हुई वस्तुओं का क्रम । नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिनमें
भलग भलग चीजें गिनाई गई हो । सूची । कैहरिस्त । ४.
चपत । तमाचा । ५. ताल, मूली । मुसली । ६. मजोठ ।

तालित—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगोन्मत्त । २. वाद्य । बाजा । ३.
रस्सी । डोरी [को०] ।

तालिबा—संज्ञा पुं० [सं०] १. हड़बंदीवाला । तलाश करनेवाला ।
चाहनेवाला । २. शिष्य । चेला । उ०—तालिब मतलूब को
पहुँचे तोक करे दिव मंदूर ।—कबीर सा०, पृ० ८८८ ।

तालिबइलम—संज्ञा पुं० [सं०] विद्यार्थी ।

तालिबा②—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालिब' । उ०—कबीरा

तालिबा ठेरा । किया दिन बीच में डेरा ।—कबीर ज०,
भा० १, पृ० ६४ ।

तालिम(ुर्) —संज्ञा स्त्री० [सं० तल्प] शय्या । बिस्तर । (हि०) ।

तालिमागार—संज्ञा पुं० [हि० ताली+मारना] जहाज या नाव का
घमसा भाग जो पानी काटता है । गच्छी ।—(तन्त्र०) ।

तालिश—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ [को०] ।

ताली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहे की वह कील जिससे ताला
खोला और बंद किया जाता है । कुंजी । चाबी । उ०—तब
ताली खुले ताला ।—घट०, पृ० ३७० । २. ताड़ी । ताड़ का
मद्य । ३. तालमूली । मुसली । ४. मूषावला । भुम्यामलकी ।
५. भरहर । ६. ताम्रवल्ली लता । ७. एक प्रकार का छोटा
ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है । बजरबट्ट । बट्ट ।
उ०—ताली तृनद्रुम केतकी खड्गरी यह भाहि ।—प्रनेकार्य०,
पृ० २२ । ८. एक वणवृत्त । ९. मेहराब के बीचोबीच का
पत्थर या ईंट । १०. दोनों फैली हुई हथेलियों को एक दूसरी
पर मारने की क्रिया । करतलों का परस्पर आघात । थपड़ी ।
उ०—रानी नोचदेवी ताली बजाती है । तंबू फाड़कर शस्त्र
छोचि हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं ।—भारतेंदु
प्र०, भा० १, पृ० ५४६ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—बजाना ।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना=हँसी उड़ाना । उपहास
करना । ताली बज जाना=उपहास होना । निरादर होना ।
एक हाथ से ताली नहीं बजाती=बैर या प्रीति एक ओर से
नहीं होती । दोनों के करने से लड़ाई मगड़ा या प्रेम का
व्यवहार होता है ।

११. दोनों हथेलियों को केसाकर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न
शब्द । करतलवनि । १२. नृत्य का एक भेद ।

विशेष—मृदंगी दक्षिण ताली कहलीं श्रुत पुर्वरी । नृत्य गीत
प्रबंध च भ्रष्टांगो नृत्य उच्यते ।—पृ० रा०, २५ । १२ ।

ताली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल (=जलाशय)] छोटा ताल । तलेवा ।
गच्छी । उ०—फरई कि कोदव बालि सुसाली । मुक्ता प्रसव
कि संवुक ताली ।—तुलसी (शब्द०) ।

ताली^३—संज्ञा स्त्री० [ट्य०] पैर की बिचली रंगनी का पोर या
ऊपरी भाग ।

ताली^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] सनाधि तारी । उ०—(क) सुले सुधि
नुभि ज्ञान ध्यान सों खागो ताली ।—ब्रज० प्र०, पृ० १५ ।
(ख) जुम पानि नाभि ताली लगाय । रमि त्रिष्टि द्रष्टि विरि
वंन राय ।—पृ० रा०, १ । ४८१ ।

ताली^५—संज्ञा पुं० [सं० तालिन्] शिव [को०] ।

तालीका—संज्ञा पुं० [सं० तालीका] १. मास भ्रमनाम की जन्ती ।
मकान की कुर्ची । २. कुर्च किए हुए भ्रमनाम की फिहरिस्त ।
३. परिशिष्ट (को०) ।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीपत्र ।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा । अभ्यासाने उपदेश । सीखे,—
उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—लेना ।

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल या तेजपत्ते की जाति का
एक पेड़ ।

विशेष—यह हिमालय पर सिंध से सतलज तक बोड़ा बहुत और
उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है । घासाम में
खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए
जाते हैं । इसके पत्ते एक लंबे डंठल के दोनों ओर लपेटे हैं
और तेजपत्ते से लंबे होते हैं । डंठल में खजूर की तरह चौकोर
खाने से होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है । पत्ते
वाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम
में आते हैं । वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफनाशक
तथा गुल्म, क्षय रोम और खाँसी को दूर करनेवाला माना
जाता है ।

पर्या०—घात्रीपत्र । शुकोदर । श्रृंगिकापत्र । तुलसीवृक्ष ।
मरुनंभ । पत्राक्ष्य । करिपत्र । करिच्युद । नील । मौसावर ।
तालीपत्र । तमाह्वय ।

२. दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो उत्तरी भारत, बंगाल तथा
समुद्र के किनारे के देशों में होता है ।

विशेष—यह मूषावला की जाति का है । इसकी सुखी पत्तियाँ
भी दवा के काम में आती हैं । इसे पनिया घामला भी कहते
हैं । इसका पौधा मूषावले से बड़ा और चिसबिल से मिसला
जुलता होता है ।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र ।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] ताल ।

तालुकर्टक—संज्ञा पुं० [सं० तालुकर्टक] एक रोम जो बच्चों के तालु
में होता है ।

विशेष—इसमें तालु में कटि से पड़ जाते हैं और तालु बँस
जाता है । इसके कारण बच्चा स्तन बढ़ी कठिनाई से पीता
है । जब यह रोग होता है, तब बच्चे को पतले दस्त भी
आते हैं ।

तालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालु । २. तालु का एक रोग [को०] ।

तालुका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालु की नाड़ी ।

तालुका^२—संज्ञा पुं० [सं० तमल्लुकह] २० 'तमल्लुका' ।

तालुज—वि० [सं०] तालु से उत्पन्न [को०] ।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल ।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालु पक
जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है ।

तालुपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग ।

तालुशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालु सूख जाता है
और उसमें फटकर घाव से हो जाते हैं ।

तालू—संज्ञा पुं० [सं० तालु] १. मुँह के भीतर की ऊपरी छत्र
, जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी नीम या कीने
तक होती है ।

तालुफाड़

विशेष—इसका ढाँचा कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तर्हों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोश और मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालु उठाना = तुरंत के जनमें हुए बच्चे के तालु को दबाकर ठोक करना। (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं)। तालु में दाँत जमना = म्रष्ट माना। बुरे दिन माना।

विशेष—प्रायः क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों को तालु में काँटा या भँकुर सा निकल आता है जिसे तालु में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है।

तालु चटकना = रोग के कारण तालु का नीचे लटक जाना। तालु से जीभ न लगना = घुपचाप न रहना जाना। दफे जाना।

२. खोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग।

मुहा०—तालु चटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे,—प्यास से तालु चटकना।

३. घोंड़े का एक ऐव।

तालुफाड़—संज्ञा पुं० [हिं० तालु + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालु में घाव हो जाता है।

तालूर—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर [को०]।

तालुषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालु' [को०]।

तालेवर—वि० [प्र० ताला (= माय) + फा० वर (प्रत्य०)] घनाह्य। घनी।

ताल्लुक—संज्ञा पुं० [त० तमल्लुक] संबंध। लगाव। उ०—हमारे ताल्लुक मलेमानुस शरीफों से हैं। हमने ऐसे एक एक दफे के दस दस रूपए लिए हैं।—ज्ञानदान, पृ० १२६।

ताल्लुका—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुकह] दे० 'तमल्लुक'।

ताल्लुकात—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुक का बहु व०] संबंध। मेल जोल [को०]।

ताल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [प्र० तमल्लुकह + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तमल्लुकेदार'।

ताल्लुखुँद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालु में कमल के आकार का एक बड़ा सा भँकुर या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव—संज्ञा पुं० [सं० ताप, प्रा० तव] १. वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

द्वि० प्र०—लगना।

यौ०—तावबंद। तव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) तव माना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए, उतना गरम हो जाना। जैसे,—घनी तव नहीं प्राया है, पुरियाँ कड़ाही में मत डालो। तव खाना = (१) घाँच में गरम होना। (२) भावेष में माना। क्रुद्ध हो जाना। तव खा जाना = (१) घाँच पर चढ़े हुए कड़ाहे के घी,

चाशनी, पाग इत्यादि का भावश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाशनी का तव खा जाना, पाग का तव खा जाना ३. किसी खोलाई, तपाई या पिघलाई हुई वस्तु का भावश्यकता से अधिक ठंडा होना। दे० 'ताव खाना'। तव देखना = घाँच का प्रंदाज देखना। तव देना = (१) घाँच पर रखना। गरम रखना। (२) प्राग में तव करना। तपाना। —(घालु आदि का) तव बिगड़ना = पकाने में घाँच का कम या अधिक हो जाना (जिससे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मुखों पर तव देना = सफलता आदि के अभिमान में मुखें ऐँठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मुखों पर हाथ धरना।

२. अधिकार मिले हुए क्रोध का भावेष। घमंड लिप हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान मिला हुआ क्रोध प्रकट करना। बड़प्पन दिखाते हुए बिगड़ना। भाँख दिखाना। तव में माना = अभिमान मिले हुए क्रोध के भावेष में होना। ग्रहंकार मिथित क्रोध के वश में होना। जैसे,—ताव में आकर कहीं मेरी चीजें भी न फेंक देना।

३. ग्रहंकार का वह भावेष जो किसी के बढ़ावा देने, सलकारने भावि से उत्पन्न होता है। शेखी की झोंक। जैसे,—ताव में आकर इतना चंदा लिख तो दिया, पर दोगे कहाँ से? ४. किसी वस्तु के तत्काल होने की घोर इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या भावश्यकता। उ०—वीछुणिया साजण मिलइ, वलि किउ ताडउ तव।—ढोला०, पृ० ५५६।

मुहा०—ताव चढ़ना = (१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोदीपन होना। तव पर = जब इच्छा या भावश्यकता हो, उसी समय। जरूरत के मोके पर। जैसे,—तुम्हारे तव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

ताव—संज्ञा पुं० [फा० ता (= संख्या)] कागज का एक तस्ता। जैसे, चार तव कागज।

तावड़ियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, प्रा० तव + डी (प्रत्य०)] धाम। धूप। उ०—सूखे जेठ मँझार सर तोखा तवड़ियाँह। वाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १६।

तावण—वि० [सं० तावान्] तितना। उतना। उ०—तिल ज्यों घ्राणी पीड़िए तवण तत्ते तेव।—प्राण०, पृ० २५५।

तावत्—क्रि० वि० [सं०] १. उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। २. उतनी दूर तक। वहाँ तक। ३. उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह 'मात्' का संबंधपूरक शब्द है।

तावताँम—संज्ञा पुं० [हिं० तव + अनु० ताम] भावेष। क्रोध। गुस्सा। उ०—दायी सु तोप लखि तव ताम।—ह० रासो, पृ० १०८।

तावदार—वि० [हिं० तव + फा० दार] १. वह (व्यक्ति)

जिसमें तावहीन जो आवेश में आकर या साहसपूर्वक काम करने में करता हो (वस्तु) जो कड़ी और सुंदरता लिए बना हुआ हो।

तावना ॐ—क्रि० सं० [सं० तापन] १ तपाना। गरम करना।
उ०—भतन तक ही मैं तापन तें तावेगो।—भारतेंद्र प्र०,
भा० १, पृ० ३७६। २ जलाना। ३ संतान पहुँचाना। दुःख पहुँचाना। बाधना।

तावबंद—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + का० बंद] वह भौषध जिसके प्रयोग से चाँदी का क्षोटापन तपाने पर भी प्रकट न हो।

तावभाव—वि० थोडा सा। जरा सा। हलका सा।

तावर ॐ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तावरी'।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + री (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। उ०—फिरत हो उतावरी लगत नही तावरी।
—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ४८०। २. धूप। घाम। मातप।
३. बुलार। ज्वर। हरात। ४. गरमी से आया हुआ चक्कर।
मूर्छा।

क्रि० प्र०—आवा।

तावरो ॐ—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + रा (प्रत्य०)] १. ताप। दाह।
जलन। २. सूर्य की गरमी। धूप। घाम। मातप। उ०—मैं
जमुना जल भरि घर आवति भो को लागो तावरो।—धुर
(शब्द०) ३. गरमी से आया हुआ चक्कर। घनेर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावला—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जल्दी। उतावलापन। हड़बड़ी।

तावा—संज्ञा पुं० [हिं० ताव] १. दे० 'तवा'। २. वह कच्चा खपड़ा या मृण्मय जिसके किनारे अभी मोड़े न गए हों। ३. तवा।

तावर—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यचा [को०]।

तावान—संज्ञा पुं० [का०] १. वह चीज जो नुकसान भरने के लिये दी या ली जाय। क्षतिपुति। नुकसान का मुआवजा। २. मर्याद। बाँड़।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

३. वह धन या सामान आदि जो हारा हुआ राष्ट्र विजेता को देता है [को०]।

यौ०—तावाने जग = युद्ध की क्षतिपुति, जो पराजित राष्ट्र को करनी पड़ती है।

तावाना ॐ—क्रि० सं० [सं० ताप, हिं० तावना] घाँघ में ताप देना।
प्रश्नि में तपाना। दे० 'तावना'। उ०—ठुक ठुक करिके गये
ठेरा बार बार तावाई।—वा. सूरत के रही भरोसे, पछिला
धरम नसाई।—फकीर सा०, भा० ३, पृ० ५४।

ताविष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तावीष'।

ताविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवकन्या। २. नदी। ३. पुण्ड्रिणी।
४. समुद्र [को०]। ५. स्वर्ग [को०]। ६. सोना। सुवर्ण [को०]।

तावीज—संज्ञा पुं० [म० तावीज] १. यन्त्र, मन्त्र या कवच जो किसी सपुट के भीतर रखकर गले में या बाँह पर पहना जाय। रक्षाकवच। कवच। उ०—यन्त्र मंत्र जती करि लागे,

करि तावीज गले पहिराए।—कबीर सा०, पृ० १४०।

२. सोने, चाँदी, ताँबे आदि का जो कोर या मठपहना, गोल या चिपटा सपुट जिसे तर्ग में लगाकर गले या बाँह पर पहनते हैं। जतर।

विशेष—ये सपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं और इनके भीतर यन्त्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि लिखकर बाँधना। कवच बाँधना।

३. कन्न पर बना हुआ ईंटों या पत्थर का निखान (की०)। ४. गले का एक घासुपण (की०)।

तावीत—संज्ञा स्त्री० [म०] १. स्पष्टीकरण। २. किसी बात का प्रसंगी प्रत्येक से हटकर दूसरा प्रत्येक। ३. किसी बात का ऐसा प्रत्येक बताना जो लगभग ठीक जान पड़े। ४. स्वप्नफल कहना [को०]।

तावीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। २. स्वर्ग। ३. समुद्र।

तावीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताविषी' [को०]।

तावुरि—संज्ञा पुं० [यूनी टारस] वृष राशि।

ताश—संज्ञा पुं० [म० तास (=तश्त या चौडा बरतन)] १. एक प्रकार का जरदोजी कपड़ा जिसका ताना रेखम का और बाना बादले का होता है। जरवपत। २. खेलने के लिये मोटे कागज का चौखूँटा टुकड़ा जिसपर रंगों की बूटियाँ या तस्वीरें बनी रहती हैं। खेलने का पत्ता।

विशेष—खेलने के ताश में चार रंग होते हैं—हृष्य, चिड़ी, पान और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक से दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमशः एकका, दुसकी (या दुडी), तिक्की, चौकी, पजी, छक्का, सत्ता, सट्टा, नहसा और दहसा कहते हैं। इनके प्रतिरिक्त तीन पत्तों में क्रमशः गुलाम, बीबी और बादशाह की तस्वीरें होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलटकर बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार दहले की गुलाम मार सकता है और गुलाम की बीबी, बीबी की बादशाह और बादशाह को एकका। एकका सब पत्तों को मार सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं, जैसे, ट्रंप, गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले किस देश में निकला, इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई काबुल को, कोई भारत को और कोई भारतवर्ष को इसका आविष्कार मानता है। फारस और भारत में गजीफे का खेल बहुत दिनों से प्रचलित है जिसके पत्ते खप के आकार के गोल मोचे होते हैं। इसी से उन्हें ताश कहते हैं। भक्तवर्धन समय हिंदुस्तान में जो ताश प्रचलित थे, उनके रंगों के नाम भी भिन्न थे। जैसे, भवपति, गजपति, नरपति, गढ़पति, दलपति इत्यादि। इनमें भी हाथी आदि पर सवार तस्वीरें बनी होती थीं। पर आजकल जो ताश खेले जाते हैं वे यूरोप से ही आते हैं।

विशाल^७—संज्ञा पुं० [हि० तमाला, तमारा] चक्कर। उ०—भावे जोड़ी ईखियाँ, उन ज्यों भड़ा विशाल।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० २३।

वि^७—वि० [सं० तद या त] वह। उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंसक हीन।—केशव (शब्द०)।

विश्र^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिय'। उ०—रामचरित चिंता-मनि चारु। सत सुमति विश्र सुमग विगारु।—मानस १। ३२।

विश्रा^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिया'।

विश्रागी^७—वि० [हि०] दे० 'त्यागी'। उ०—बलि श्री विक्रम दानि बड़ा भहे। हेतिम करन विश्रागी कहे।—जायसी प्र०, (गुप्त), पृ० १३१।

विश्रास^७—सर्व० [हि० ता] वा। उसे। उ०—ज्यों प्राया स्थों जोयसी जम सहहि विश्रास सहाम।—प्राण०, पृ० २५२।

विश्राह^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविवाह] १ तीसरा विवाह। २. वह पुरुष जिसका तीसरा व्याह हो रहा हो।

विश्राह^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पतालीसवें दिन किया जाता है।

विश्रा^७—संज्ञा पुं० [देश०] खेसारी नाम का कदम। केसारी।

विश्रा^७—संज्ञा पुं० [देश०] एक पीधा जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है जो जलाने के काममें आता है।

विश्रा^७—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी। खेसारी।

विश्रा^७—संज्ञा [हि०] दे० 'त्योरी'। उ०—तिरछी विश्रा देख सुन्दारी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

विश्रा^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि मानें विश्राहार सन्त, गाइ देवारी खेल। हों का गावों कत बिनु, रही द्वार सिर मेल।—जायसी (शब्द०)।

विश्रा^७—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तितना'। उ०—बिपी मल्लन भग इत्ती प्रकारं। विश्रा तात के नग्न लिखे सुधार।—पृ० २०, २१। ११६।

तिक्त^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टिकठी'। उ०—जाय तन तिक्त पर दारा। वदन वन बीष ले मारा।—सप्त तुरसी०, पृ० ४८।

तिक्त^७—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + क्रम] १ चाल। षड्यंत्र। उ०—मानों श्री लल्लुलाल जी को इसी तिक्तक्रम के हेतु फोट विलियम कलेज में आकरी मिली थी।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ८५। २. तरकीब। उपाय।

तिक्त^७—वि० [हि० तिक्तमन्त्रका० बाज] दे० 'तिक्तमी'।

तिक्त^७—वि० [हि० तिक्तम] १ तिक्तमबाज। आलाक। होखियार। २. भोखेबाज। घूर्त।

तिक्त^७—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कड़ी] १. जिसमें तीन कड़ियाँ हों। २. चारपाई आदि की वह बुनावट जिसमें तीन रस्सियाँ एक साथ हों।

तिक्त^७—वि० तीन कड़ी या लड़ीवाली।

तिक्त^७—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सवारी में पशुओं को हानि के लिये किया जानेवाला शब्द।

विश्रा^७—बच्चे जाँघों के बीच में एक लकड़ी ले जाते हुए पकड़ लेते हैं और उसे घोड़ा मानकर तथा अपने को सवार मानकर 'तिक तिक घोड़ा' कहते हुए खेलते हैं।

तिकानी^७—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + कान] वह तिकानी लकड़ी को पहिए के बाहर घुरी के पास पहिए की रोक के लिये लगी रहती है।

तिकार^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + कार] खेत की तीसरी जोटाई।

तिकुरा^७—संज्ञा पुं० [हि० तीन + कुरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार लेता है।

तिके^७—सर्व० [हि० ति] वे। उ०—देह जिकण वाताँ मँ दोई, तिके सदाई तीला।—रघु० रू०, पृ० २४।

तिकोन^७—वि० [सं० त्रिकोण] दे० 'तिकोना'। उ०—बाँस पुराना साज सब भटपट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी (शब्द०)।

तिकोन^७—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिकोण'।

तिकोना^७—वि० [सं० त्रिकोण] [वि० स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीन कोने हों। तीन कोनों का। जैसे, तिकोना टुकड़ा।

तिकोना^७—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नमकीन पकवान। समोसा। २. तिकोनी नक्काशी बनाने की छेनी।

तिकोना^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

तिकोनिया^७—वि० [हि० तिकोन + इया (प्रत्यय०)] दे० 'तिकोना'।

तिकोनिया^७—संज्ञा स्त्री० तीन कोनोंवाला स्थान।

विश्रा^७—यह स्थान प्रायः दो दीवारों के बीच कोने में तिकोना परपर या लकड़ी गड़कर बनाया जाता है जिसपर छोटे मोटे सामान रखे जाते हैं।

तिक्का^७—संज्ञा पुं० [फा० तिक्कह] मांस की बोटी। लोब।

मुहा०—तिक्का बोटी करना = टुकड़े टुकड़े करना। बज्जी बज्जी भलग करना।

तिक्की^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तृ] १. ताछ का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों। २. गजीके का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हो।

तिक्ख^७—वि० [सं० तीक्ष्ण, प्रा० तिक्ख] १. तीखा। चोखा। तेज। २. तीव्रबुद्धि। तेज। चालाक।

तिक्खा^७—वि० [हि०] तिरछा। टेढ़ा।

तिक्खे^७—क्रि० वि० [हि०] तिरछे।

तिक्क^७—वि० [सं०] तीता। कड़ुआ। जिसका स्वाद नीम, पुष्प, चिरायते आदि के समान हो।

तिक्क^७—संज्ञा पुं० १. पिसापापडा। २. सुगंध। ३. कुटज। ४. वरुण वृक्ष। ५. छह रसों में से एक।

विश्रा^७—तिक्क छह रसों में से एक है। तिक्क और कटु में भेद यह कि तिक्क स्वाद असहिकर होता है; जैसे, नीम, चिरायते आदि का; पर कटु स्वाद चरपरा और सहिकर होता है।

धैरे, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तिक्त रस
द्वेदक, संचिकारक, दोषक, शोधक तथा मूत्र, मेद, रक्त, वसा
आदि कः शोषण करनेवाला है। ज्वर, खुजली, कोढ़, मूर्च्छा
आदि में यह विशेष उपकारी है। प्रमिलतास, गुब्ब, मजीठ, कनेर हल्दी, इद्रजव, भटकटैया, प्रशोक, कुटकी,
चरियारा, चाह्नी, गदहपुरना (पुनर्नवा) इत्यादि तिक्त वर्ग
के अंतर्गत हैं।

तिक्तकण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकण्डिका] वनशट। गंधपत्रा।
वनकचूर।

तिक्तक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परवस। २. चिरति।
चिरायता। ३. काला खैर। ४. इंगुदी। ५. नीम। ६. कुटज।
कुरैया। ७. तिक्त रस (को०)।

तिक्तक^२—वि० तीता [को०]।

तिक्तकांड—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकाण्ड] चिरायता।

तिक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुतुंडी। कटुपा कटू।

तिक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धा] १. बराहकाता। बराही
कव। २. सरसों (को०)।

तिक्तगण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगण्डिका] १. बराहकाता।
बराही कंद। २. सरपं। सरसों (को०)।

तिक्तगुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगुञ्जा] कजा। करंज। करजुमा।

तिक्तघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक्त औषधियों
के योग से बना हुआ एक घृत जो कुष्ठ, विषम ज्वर, गुल्म,
ग्रंथ, ग्रहणी आदि में दिया जाता है।

तिक्ततंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततण्डुला] पिप्पली। पोपल।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिटाई। कटुभापन। तीतापन।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुण्डो] कटुई तुरई।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुम्बी] कटुपा कटू। तितलीकी।

तिक्तदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षिरनी। २. मेढासिंधी।

तिक्तधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर के भीतर की कटुई धातु,
प्रजात्) रित्त।

तिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा। खेखसा।

तिक्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुबरी। पेहूँटा।

तिक्तपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष। २. हुलहुल। हुरहुर। ३.
गिलोय। गुपं। ४. मुलेठी। जेठी मधु।

तिक्तपुष्पा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तिक्तपुष्पा^२—वि० जिसके फूल का स्वाद तीखा हो [को०]।

तिक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोठा। निर्मल फल। २. यवविक्ता
लता (को०)। ३. निर्मनी। फतक घुस (को०)।

तिक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भटकटैया। २. कचरी। ३. सर-
भूजा। ४. यवतिक्ता लता (को०)। ५. घात की (को०)।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तितलीकी [को०]।

तिक्तभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

तिक्तयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राखिनी।

तिक्तरौहिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिक्तरौहिणी।

तिक्तरौहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तिक्तवल्लो—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] मूर्वा लता। मुरा। मरोठफली।
चुरनहार।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुपा कटू। तितलीकी।

तिक्तशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. वरण वृक्ष। ३.
पत्रसदर शाक।

तिक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिण नाम की घास। २. खैर
का पेड़।

तिक्तांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ताङ्गा] पातालगाछी सत। छिरेटा।

तिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। कटुका। २. पाठा। ३. यव-
तिक्ता लता। ४. खरबूजा। ५. छिकनी नाम का पौधा।
नकछिकनी।

तिक्ताख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुपा कटू। तितलीकी।

तिक्त्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तितलीकी। २. काकमाची। ३.
कुटकी।

तिक्त्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुमडी या सह्रर नाम का बाजा जिसे
प्राय सपेरे बजाते हैं।

तिक्त्तु^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] १. तीक्ष्ण। तेज। २. चोखा। पैना।
उ०—धनु धान तिसा कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों। रघुबीर
को यह देखिए रस शीर सात्विक धर्म सों।—केशव (शब्द०)।

तिक्त्ता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेजी। उ०—शूर बाजिन की
सुरी प्रति तिसता तिनकी हुई।—केशव (शब्द०)।

तिक्त्ति^३—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—गणनाथ हृष्य लिए
तिति फर्षी। पिनाकी पिनाकं किए भाव दर्शों।—हु०
रासो, पृ० ८४।

तिख—वि० [सं० त्रि + खपं] तीन बार का जोता हुआ। तिबहा (खेत)।

तिखटी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिकठी'।

तिखरा—वि० [हिं०] दे० 'तिख'।

तिखराना^१—क्रि० सं० [हिं० तिखारना का प्रे० रूप] निखारने का
काम दूसरे से कराना।

तिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] तीखापन। तीक्ष्णता। तेजी।

तिखारना^२—क्रि० प्र० [सं० त्रि + हिं० भाखर] किसी बात को
छद्म या निबिन्न करने के लिये तीन बार पूछना। पक्का करने
के लिये कई बार कहलाना।

विशेष—तीन बार कहकर जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह बहुत
पक्की समझी जाती है।

तिखूँट^३—वि० [हिं०] दे० 'तिखूँटा'। उ०—बेतवार सहारा छत्रि
सूटे। चोतभनाले प्रीर तिखूँटे।—भक्ति पं०, पृ० १७५।

तिखूँटा—वि० [हिं० तीन + खूँट] तीन कोने का। जिसमें तीन
कोने हों। तिकोना।

तिगना^१—क्रि० सं० [दि०] देखना । नजर डालना । भांपना ।
(दनाली) ।

तिगना^२—वि० [हि०] दे० 'तिगुना' ।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० श्री० त्रिगुनी] तीन बार अधिक ।
तीन गुना ।

तिगुचना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तिगना' ।

तिगून—संज्ञा पुं० [हि० त्रिगुना] १ त्रिगुना होने का भाव । २
प्रारंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में
लगाया जाय, प्रागे बजकर वह चीज उसके विहाई समय में
गाना । साधारण से तिगुना । जल्दी पावा या बजाना । वि०
दे० 'चीगून' ।

तिग्मसंज्ञा—संज्ञा सं० [हि०] दे० 'तिग्मांशु' । उ०—मिहिर तिमिरधुर
प्रभाकर उत्तररश्मि तिग्मसंज्ञा—प्रनेकार्यं, पु० १०२ ।

तिग्म^१—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण । खरा । तेज । प्रखर । उ०—खोज
गए ससार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर । जन सस्कृति का
तिग्म स्कीत सौख्य स्वप्न दिखलाकर ।—ग्राम्या, पु० ४७ ।
२. तप्त । तप्त करनेवाला (की०) ।

यौ०—तिग्मकर । तिग्मदीधिति । तिग्ममन्यु । तिग्मरश्मि ।
तिग्मांशु ।

३. प्रचंड । उग्र (की०) ।

तिग्म^२—संज्ञा पुं० १ यज्ञ । २ पिप्पली ।—(प्रनेकार्यं) । ३ पुरुवशीय
एक क्षत्रिय ।—(मत्स्य) । ४. ताप (की०) । ५. तीक्ष्णता ।
सौक्ष्मापन (की०) ।

तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो बरसर और
सुवोशी के पुत्र थे । (भाष्यवत्) ।

तिग्मज्जंभ—संज्ञा पुं० [सं० तिग्मज्जम्भ] घण्टि (की०) ।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता । तेज । चपता । प्रचंडता ।
उ०—परतंत्रता के साधारणों को निर्बल और दरिद्र बना
दिया है इनमें बहुत तिग्मता, जो विजयी भाति में होती है,
कभी मा ही नहीं सकती ।—प्रेमघन०, भा० २, पु० २८१ ।

तिग्मतेज^१—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण । तीव्र । २. बैठने-
वाला । प्रविष्ट होनेवाला । ३. उग्र । प्रचंड । ४. तेजस्क ।
तेजस्वी (की०) ।

तिग्मतेज^२—संज्ञा पुं० सूर्य (की०) ।

तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मद्युति, तिग्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (की०) ।

तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महाधेय । शिव ।

तिग्ममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन्] सूर्य (की०) ।

तिग्मयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (की०) ।

तिग्मरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तिप्परा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन
जिसमें दूध दही रखा जाता है । मटकी ।

तिचिया—संज्ञा पुं० [दि०] जहाज पर के वे भावनी जो माकाश में
नक्षत्रों को देखते हैं (लक्ष्म) ।

तिच्छा—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छन—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तिच्छना—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक कांच ना
भेद ज्ञान में तिच्छना । धरे ही रे पद्म ऊँघो से हरि कहै सत
के लच्छना ।—पलटू०, भा० २, पु० ७७ ।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।
तिजारी ।

तिजर्वासा—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर
उसके कुटुंब के लोग करते हैं ।

तिजर्वा—संज्ञा पुं० [हि०] तीसरा पहर ।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + पहर] तीसरा
पहर । अपराह्न ।

तिजहरी—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
तीसरा पहर । अपराह्न ।

तिजारा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर ।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणिज्य । बानेज । व्यापार ।
रोजगार । सोदागरी ।

तिजरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिजार] तीसरे दिन आया देकर
आनेवाला ज्वर ।

तिजिया—संज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका
तीसरा विवाह हो ।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ राक्षस (की०) ।

तिजहना—क्रि० सं० [सं० त्यजन] तजना । छोड़ना । उ०—
महारक्ष हीरा अपहृष्ट, नहीं तो गोरी । तिजहूँ पराण ।—श्री०
रासो, पु० ३३ ।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ट्रेजरी] छोटे की मजबूत छोटी मालमारी,
जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं ।

तिङ्गो—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताण का वह पत्ता जिसमें
तीन दृष्टियाँ हो ।

मुहा०—तिङ्गो करना = गायब करना । चढ़ा से जाना । तिङ्गो
होना = (१) चुपके से चले जाना । गायब होना । (२)
माय जाना ।

तिङ्गीबिङ्गी—वि० [दि०] तितर बितर । छितराया हुआ । परत-
व्यस्त ।

तिङ्गु—संज्ञा वि० [हि०] दे० 'टिङ्गो' । उ०—ऊँचालउ क प्रवर-
सणउ कइ फाकउ कइ तिङ्गु ।—ढोला०, दू०, ६९० ।

तिण—सर्व० [हि०] दे० 'तिन' । उ०—बहुँ दिसि दामिनि
सघन घन, पीउ तजी तिण बार ।—ढोला०, दू० ३७ ।

तिण—उक्त पुं० [सं० तृण] तृण । तिनका ।

विष्णु७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'विनका'। उ०—दंत विष्णु सीने कहे रे पिय प्राप विखाइ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६८२।

वित७—क्रि० वि० [सं० तत्ति] १ तहाँ। वहाँ। उ०—श्रीनिवास को निज निवास छवि का कहिये वित।—नद० प्र०, पृ० २०२। २ उधर। उध धोर। उ०—जित देखो वित प्रयाममयी है।—सुर (शब्द०)।

वित३—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] वित्त। तीता। जैसे, वित्तधीकी।

वित्त३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वसनी। २ छत्र। छाता [को०]।

वित्तना—क्रि० वि० [सं० तत्ति, तत्तीनि] उतना। उसके बराबर। उ०—तब बाकी सास एक ही बेर बाकी पातरि में परोसे। वित्तनी ही वह खरिफिनी खरनापुत मिलाय के खाहि।—दो सो वावन०, भा० २, पृ० १८।

विशेष—'जितना' के साथ भाए हुए वाक्य का संबंध पुरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पर प्रश्न गद्य में इसका प्रचार नहीं है।

वितर७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वीतर'। उ०—हकुम स्वामि छटुत सु इम, मनों वितर पर बाज।—पृ० २०, २१४।

वितर वितर—वि० [हिं० वितर + प्रनु० वितर] १ जो इधर उधर हो गया हो। छितराया हुआ। बिखरा हुआ। जो एकत्र न हो। जैसे,—तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही वितर वितर हो गए। २ जो क्रम से खगा न हो। प्रयवस्थित। प्रस्त व्यस्त। जैसे,—तुमने सब पुस्तकें वितर वितर कर दी।

वितरात—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पोषा जिसकी जड़ औषध के काम में पाती है।

वितरोखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिट्ठिया।

वितली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पू० हिं० तितिल (चित्रित डेनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फटिंगा जो प्रायः बगीचों में फूलों के पराग धोर रस आदि पर निर्वाह करता है।

विशेष—वितली के छह पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसे दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है। दोनों धोर दो दो के हिस्से से चार बड़े पक्ष होते हैं। भिन्न भिन्न वितलियों के पक्ष भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूँदियाँ रहती हैं। पक्ष के अतिरिक्त इसका धोर शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता। गुबरेले, रेणम के कीड़े आदि फटिंगों के समान वितली के शरीर का भी रूपांतर होता है। भ्रष्ट से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँठदार डोले या सूँड़ के रूप में रहती है। ऐसे डोले प्रायः पोषों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं। इन डोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पोषों को कभी कभी चढ़ी हानि पहुँचाते हैं। छह मसखी पैरों के अतिरिक्त दून्हे रुई धोर पैर होते हैं। ये ही डोले रूपांतरित होते होते वितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं।

२ एक बात जो छेँ बारि के क्लों में गती है।

विशेष—इसका पोषा हल बजा हल तक प्र होता है। लौकी पतनी पतनी होती है। इसकी पत्तियाँ धोर लौकी के काम में पाते हैं।

वितलीभा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तीत + भा] कड़वा कू।

वितलीकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीत + की] कड़ुकी। कड़वा कड़ू।

वितारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० वार] वह विचार की वस्तु जो एक बाजा जिसमें तीन तार बने रहते हैं। उ०—नाई कण, नगारा, बीन, बाँसुरी वितारा चारिआ लौ आया पुन लाबता निसक है।—रघुराज (बम्ब०)। २. ध्वज की तीसरी बार की सिचाई।

वितारा—वि० तीन तारवाला। जिसमें तीन तार हो।

वितिवा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० वतिम्भ] १. उकोतना। २. हेर। ३. लेख का वह भाग जो धत में रही पुस्तक के संबंध में बना देते हैं। परिशिष्ट। उपसहार।

वितिच—वि० [सं०] सहनशील। क्षमाशील।

वितिच३—सञ्ज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

वितिचा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरदी गरमी बारि धरे की सामर्थ्य। सहिष्णुता। २. क्षमा। क्षाति। उ०—तबे दुल्ले भाज शत्रु भी ऐसी वित्ता, जिसका प्रप हो रर धोर धि दया वितित्ता।—साकेत, पृ० ४२२।

वितिचु—वि० [सं०] क्षमाशील। क्षात। सहिष्णु। २. लाफे की इच्छावाला (को०)।

वितिचु३—सञ्ज्ञा पुं० पुरुषसीय एक राजा जो महाभारत का पुत्र था।

वितिभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जुगपू। २ धोरबूटो (को०)।

वितिम्मा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० वतिम्भ] १. बचा हुआ भाग। अवशिष्ट भय। २. किसी प्रप के धत में समाया हुआ प्रकरण। परिशिष्ट।

वितिर, वितिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी (को०)।

वितिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में सात करणों में के एक। दे० 'वैतिल'। २ नाद नाम का मिट्टी का बरतन। ३ विल की खली (को०)।

विती७—क्रि० वि० [सं० तत्ति, तत्तीनि] उतनी। उ०—उध भी हरि वह भाया जितो। अतरध्यान करो तहें वितो।—नद० प्र०, पृ० २६७।

वितीर्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तैरने या पार करने की इच्छा। २. तर जाने की इच्छा।

वितीर्षु—वि० [सं०] १ तैरने की इच्छा करनेवाला। उ०—कवि प्रत्य, उदुप मति, भव वितोर्षु दुस्तर भवार। कल्पनापुत्र में भावी द्रष्टा, निराधार।—प्राग्या, पृ० ५८। २ तरने का प्रमिलायी।

वितुला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का भार।

विते७—वि० [सं० तत्ति] उतने (संख्यावाचक)। उ०—सुंदर

तिगना^१—क्रि० सं० [दि०] देखना। नजर डालना। भाँपना।
(दनाली)।

तिगना^२—वि० [हि०] दे० 'तिगुना'।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० श्री० त्रिगुनी] तीन बार अधिक।
तीन गुना।

तिगुचना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तिगना'।

तिगून—सञ्ज्ञा पुं० [हि० त्रिगुना] १. त्रिगुना होने का भाव। २.
प्रारम्भ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में
सगाया जाय, भागे बजकर वह चीज उसके सिद्धाई समय में
गाना। साधारण से त्रिगुना। जल्दी घाना या बजाना। वि०
दे० 'बोगून'।

तिग्मसंज्ञा—सञ्ज्ञा सं० [हि०] दे० 'तिग्मांशु'। उ०—मिहिर तिमिरहर
प्रभाकर उत्तररश्मि तिग्मसंज्ञा—प्रनेकार्यं, पृ० १०२।

तिग्म^१—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण। छरा। तेज। प्रसर। उ०—खोज
गए ससार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर। जन संस्कृति का
तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर।—ग्राम्या, पृ० ४७।
२. तप्त। तप्त करनेवाला (को०)।

यौ०—तिग्मकर। तिग्मदीधिति। तिग्ममन्यु। तिग्मरश्मि।
तिग्मांशु।

३. प्रचंड। उग्र (को०)।

तिग्म^२—सञ्ज्ञा पुं० १. वज्र। २. पिप्पली।—(प्रनेकार्यं)। ३. पुष्पशीप
एक क्षत्रिय।—(मत्स्य)। ४. ताप (को०)। ५. तीक्ष्णता।
तोखापन (को०)।

तिग्मकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवशीप एक राजा जो उत्तर धोर
सुवोषी के पुत्र थे। (भाष्यवत्)।

तिग्मच्छांभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिग्मच्छम्भ] शम्भु (को०)।

तिग्मता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता। तेज। सघटा। प्रचंडता।
उ०—परतपता ये साधारणों को निबल धोर दरिद्र बना
दिया है इनमें वह तिग्मता, जो विजयी भाति में होती है,
कभी भा ही नहीं सकती।—मेमघन०, भा० २, पृ० २८१।

तिग्मतेज^१—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण। तीक्षा। २. तेजने-
वाला। प्रविष्ट होनेवाला। ३. उग्र। प्रचंड। ४. तेजस्क।
तेजस्वी (को०)।

तिग्मतेज^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य (को०)।

तिग्मदीधिति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मद्युति, तिग्मभास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

तिग्ममन्यु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तिग्ममयूखमाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन्] सूर्य (को०)।

तिग्मयातना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (को०)।

तिग्मरश्मि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मांशु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिघरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का बोरे मुँह का बरतन
जिसमें दूध दही रखा जाता है। मटकी।

तिचिया—सञ्ज्ञा पुं० [दि०] जहाज पर के वे भावमी जो याकाश में
नक्षत्रों को देखते हैं (लघ०)।

तिच्छ^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छन^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छना^१—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—कनक काँच ना
भेद ज्ञान में तिच्छना। धरे हार पछटू ऊषो से हरि कहैं सत
के लच्छना।—पलटू०, भा० २, पृ० ७७।

तिजरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन घानेवाला ज्वर।
तिजारी।

तिजवाँसा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
वह उत्सव जो किसी स्त्री की तीन महीने का गर्भ होने पर
उसके कुटुंब के लोग करते हैं।

तिजहरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तीसरा पहर।

तिजहरिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + पहर] तीसरा
पहर। अपराह्न।

तिजहरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)]
तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन घानेवाला ज्वर।

तिजारत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वाणिज्य। बानेज। व्यापार।
रोजगार। सोदागरी।

तिजरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर
घानेवाला ज्वर।

तिजिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका
तीसरा विवाह हो।

तिजिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. राक्षस (को०)।

तिजिना^१—क्रि० सं० [सं० त्यजन] तजना। छोड़ना। उ०—बद
म्हारइ हीरा अपहुइ, नहीं तो सोरी। तिजहूँ पराए।—बी०
रासो, पृ० ३३।

तिजोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ट्रेजरी] लोहे की मजबूत छोटी घालमारी,
जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं।

तिङ्गो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताल का वह पत्ता जिसमें
तीन वृटियाँ हो।

मुहा०—तिङ्गो करना = गायब करना। उड़ा ले जाना। तिङ्गो
होना = (१) चुपके से चले जाना। गायब होना। (२)
माम जाना।

तिङ्गीबिङ्गी—वि० [दि०] तितर बितर। छितराया हुआ। अस्त-
व्यस्त।

तिङ्गु^१—सञ्ज्ञा वि० [हि०] दे० 'टिङ्गो'। उ०—ऊँ बालउ क प्रवर-
सणउ कह फाकउ कह तिङ्गु।—ढोला०, दू०, ६९०।

तिण^१—सर्व० [हि०] दे० 'तिन'। उ०—बहुँ दिसि दामिनि
सघन घन, पीउ तजो तिण वार।—ढोला०, दू० ३७।

तिण^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण। तिनका।

तिष्ठा^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका' । उ०—दंत तिष्ठा लीमे कहे रे पिय प्राप विखाइ ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८२ ।

तिष्ठ^७—क्रि० वि० [सं० तत्ति] १ वहाँ । वहाँ । उ०—श्रीनिवास की निज निवास छवि का कहिये तित ।—नद० प्र०, पृ० २०२ । २ उपर । उस ओर । उ०—जित देखीं तित प्रियमयी है ।—सूर (शब्द०) ।

तिष्ठ^३—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] तित्त । तीता । जैसे, तित्तोकी ।

तिष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जसनी । २. छत्र । छाता [को०] ।

तिष्ठना—क्रि० वि० [सं० तति, ततोनि] उतनी । उससे बराबर । उ०—तब बाकी सास एक ही बेर बाकी पातरि में परोसे । तितनो ही वह सरिकिनी चरनापृत मिलाय के खाई ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० १८ ।

विशेष—'जितना' के साथ साथ हुए वाक्य का संबंध पुरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है । पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है ।

तिष्ठर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर' । उ०—हुकुम स्वामि छुटत सु हम, मनो तितर पर बाज ।—पू० रा०, २१४ ।

तिष्ठर बितर—वि० [हिं० तिष्ठर + अनु० बितर] १ जो इधर उधर हो गया हो । छितराया हुआ । बिखरा हुआ । जो एकत्र न हो । जैसे,—तोप की भावाज सुनते हो सब सिपाही तितर बितर हो गए । २ जो क्रम से खगा न हो । अव्यवस्थित । अस्त व्यस्त । जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दी ।

तिष्ठरात—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पोधा जिसकी जड़ भोपध के काम में आती है ।

तिष्ठरोस्त्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

तिष्ठली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पू० हिं० तितिल (चित्रित डेनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिगा जो प्रायः बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है ।

विशेष—तिष्ठली के छह पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसे दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है । दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पंख होते हैं । भिन्न भिन्न तितलियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर टुटियाँ रहती हैं । पंख के प्रतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता । गुबरेले, रेशम के कीड़े आदि फतिगों के समान तितली के शरीर का भी रूपांतर होता है । भड़े से निकलने के ऊपरत यह कुछ दिनों तक गठधार डोले या मूँके के रूप में रहती है । ऐसे डोले प्रायः पोषों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं । इन डोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पोषों को कमी कमी बड़ी हानि पहुँचाते हैं । छह मसखी पैरों के प्रतिरिक्त इन्हे कई और पैर होते हैं । ये ही डोले रूपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं ।

२ एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है ।

विशेष—इसका पोधा हाथ सवा हाथ तक का होता है । पत्तियाँ पतली पतली होती हैं । इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं ।

तितलौआ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तीत + लोधा] कड़वा कढ़ू ।

तितलौकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीता + लोधा] कटु तुबी । कड़वा कढ़ू ।

तितारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं । उ०—बाजे डफ, नगारा, बीन, बाँसुरी सितारा चारितारा ह्यों तैतारा मुख लावता निसक है ।—रघुराज (शब्द०) । २. फसल की तीसरी बार की सिंचाई ।

तितारा—वि० तीन तारवाला । जिसमें तीन तार हों ।

तितिवा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ततिम्मह] १. ढकोसला । २. थैप । ३. लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के सबध में लगा देते हैं । परिशिष्ट । उपसंहार ।

तितित्त—वि० [सं०] सहनशील । क्षमाशील ।

तितित्त^३—सञ्ज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम ।

तितित्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. सरदी गरमी आदि सहने की सामर्थ्य । सहिष्णुता । २. क्षमा । शांति । उ०—पावें तुमसे भाज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका अर्थ हो दह और इति दया तितिक्षा ।—साकेत, पृ० ४२२ ।

तितित्तु—वि० [सं०] क्षमाशील । शांत । सहिष्णु । २. त्यागने की इच्छावाला (को०) ।

तितित्तु^२—सञ्ज्ञा पुं० पुत्रवधाय एक राजा जो महामना का पुत्र था ।

तितिभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जुगन्मू । २ बीरवहूटी (को०) ।

तितिम्मा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० ततिम्मह] १. बचा हुआ भाग । अवशिष्ट अण । २. किसी प्रष के अंत में लगाया हुआ प्रकरण । परिशिष्ट ।

तितिर, तितिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी (को०) ।

तितिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष में सात करणों में के एक । दे० 'तैतिल' । २ नांद नाम का मिट्टी का बरतन । ३ तिल की खली (को०) ।

तिती^७—क्रि० वि० [सं० तति, उत्तीनि] उतनी । उ०—तब श्री हरि वह माया जिते । अंतरध्यान करी सहें तिते ।—नद० प्र०, पृ० २६७ ।

तितीर्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तैरने या पार करने की इच्छा । २. तर जाने की इच्छा ।

तितीर्षु—वि० [सं०] १ तैरने की इच्छा करनेवाला । उ०—कवि प्रत्य, उदुप मति, भव तितीर्षु दुस्तर अपार । कल्पनापुत्र में भावी द्रष्टा, निराधार । —ग्राम्या, पृ० ५८ । २ तरने का अभिलाषी ।

तितीर्षा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का भार ।

तिते^७—वि० [सं० तति] उतने (संख्यावाचक) । उ०—पवर

माँझ भ्रमरगन जिते । देखत हैं घट घोटनि तिते ।—नद० प्र०, पु० २६८ ।

तितेक①—वि० [हि० तितो + एक] उतना । उ०—गोकुल गोपी गोप जितेक । कृष्ण चरित रस मगन तितेक ।—नद० प्र०, पु० २५६ ।

तितै②—क्रि० वि० [हि० तित + ई (प्रत्य०)] १. वहाँ ही । वही । २. वहाँ । ३. उधर ।

तितो③—वि० [सं० तावत्] उस मात्रा या परिमाण का ।

तितो३—क्रि० वि० उतना ।

तितौ④—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तितो' । उ०—(क) जब सब लोक चराधर जितो । प्रलय उदधि मधि मज्जत तितो ।—नद० प्र०, पु० २७१ । (ख) जद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनो दीपक देह । तऊ प्रकासु करे तितो भरिये जिते सवेह ।—बिहारी र०, दो० ६५८ ।

तित्तिर—संज्ञा पुं० [श्री० तित्तिरी] १. तीतर नाम का पक्षी । २. तितली नाम की घास ।

तित्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतर पक्षी । २. यजुर्वेद की एक शाखा का नाम, ३० वि० 'तैत्तिरीय' । ३. यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने तैत्तिरीय शाखा चलाई थी ।—(भाष्येय अनुक्रमणिका) ।

विशेष—भागवत आदि पुराणों के अनुसार वेशपायन के शिष्य मुनियो ने तितर पक्षी बनकर याज्ञवल्क्य के उगले हुए यजुर्वेद को चुँगाया ।

तित्यू—अव्य० [प०] तहाँ । उ०—ग्रहो ग्रहो घनघानंद जानी तित्यू जाँदा है ।—घनानंद० पू० १८१ ।

तिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के अनुसार गिने जानेवाले महीने का दिन । चांद्रमास के मलग मलग दिन जिनके नाम सषया के अनुसार होते हैं । मिति । तारीख ।

यौ०—तिथिपक्ष । तिथिवृद्धि ।

विशेष—पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं । कृष्ण और शुक्ल । प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं । जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिवा), द्वितीया (द्वज), तृतीया (होज), चतुर्थी (चौय), पंचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (दुमास) त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या अमावस्या । कृष्णपक्ष की अतिरिक्त तिथि अमावस्या और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है । इन तिथियों के पाँच वर्ग किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम जया, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा, तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम रिक्ता, और पंचमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्या का नाम पूर्णा है । तिथियों का मान नियत होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दंडों की वर्हीं होती । २ पत्रह की संख्या ।

तिथिकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष तिथि पर किया जानेवाला धार्मिक कृत्य [को०] ।

तिथिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि । किसी तिथि का गिनती में न आना ।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं । ऐसी अवस्था में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती है, उसका खय माना जाता है ।

तिथिदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो तिथि का अधिष्ठाता होता है [को०] ।

तिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता ।

विशेष—भिन्न भिन्न ग्रंथों के अनुसार ये अधिपति भिन्न भिन्न हैं । जिस तिथि का जो देवता है, उसका उक्त तिथि को पूजन होता है ।

तिथि	देवता	
	बृहत्संहिता	वसिष्ठ
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विधाता	विधाता
३	हरि	शरी
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	पद्मानन	षडानन
७	शक्र	सूर्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वदेवा
१२	सविता	हरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वदेवा	चंद्रमा
अमावस्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रा । पचांग । जन्नी ।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तिथियुग्म—संज्ञा पुं० [सं०] दो तिथियों का योग [को०] ।

तिथिवृद्धि—संज्ञा जी० [सं०] वह तिथि जो दो सूर्योदयों तक चले [को०] ।

तिथ्यर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] करण ।

तिहारी—संज्ञा जी० [हि० तीन + हार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हो ।

तिहारी—संज्ञा पुं० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बत्तख की तरह की एक चिड़िया ।

विशेष—यह बहुत तेज उड़ती है और जमीन पर सूखी घास का चोसला खाती है । इसका लोग शिकार करते हैं ।

विद्यारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० विद्यार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या छिड़कियाँ हों ।

विधरा—क्रि० वि० [सं० तज] उधर । उस ओर ।

विधरि०—क्रि० वि० [हि०] दे० 'विधर' । उ०—विधरि देखों नैन भरि विधरि सिरजनहारा । —दादू०, ६८ ।

विधारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० विधार] एक प्रकार का सूहर (सेंदुड) जिसमें पत्ते नहीं होते ।

विशेष—इसमें उँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर को निकलती हैं । इसे बगीचों आदि की बाढ़ या टट्टी के लिये लगाते हैं । इसे बच्ची या नरसेज भी कहते हैं ।

विधारीकांडवेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० विधारी + सं० काण्डवेल] हड़जोड ।

तिनंगा—पुं० [हि०] दे० 'तिलगा' । उ०—सार तिनंगा तारयो ।—पृ० रा०, १०।३२ ।

तिनी—सर्व० [सं० तेन (= उनसे)] 'तिस' शब्द का बहुवचन । जैसे, तिन्ने, तिनकी, तिनसे इत्यादि । उ०—तिन कवि केशवदास सों कीनी धर्म सनेहु ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता ।

तिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृण] तिनका । तृण । घासफूस । उ०—हैं कपूर मणिमय रही मिलति न दुति मूकतालि । छिन छिन खरो बिचन्दनो लखहि छाया तिन पालि ।—बिहारी (शब्द०)

तिनउर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृण + उर या ओर (प्रत्य०)] घसवा सं० तृण + भाकर] तिनकों का ढेर । तृणसमूह । उ०—तन तिन-उर भा, भूरी खरी । भइ बरखा, दुख प्रागरि जरी ।—जायसी (शब्द०) ।

तिनक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—लाज तिनक जिमि तोरि ही दोनी ।—नव० पृ० १५२ ।

तिनकना—क्रि० प्र० [प्र० चिनगारी, चिबगी, या घनु०] चिड़-चिड़ाना । चिड़ना । झल्लाना । बिगड़ना । नाराज होना ।

तिनका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणक] तृण का टुकड़ा । सूखी घास या बाँटी का टुकड़ा । उ०—तिनका सों अपने जन की गुन मानत मेरु समान ।—सूर०, १।८ ।

मुहा०—तिनका दीवों में पकड़ना या लेना = विनती करना । क्षमा या कृपा के लिये धीनतापूर्वक विनय करना । गिरविड़ाना हा हा खाना । तिनका तोड़ना = (१) सबध तोड़ना । (२) बसाय लेना । बसाय लेना ।

विशेष—बच्चे को नजर न लगे, इसलिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है ।

तिनके चुनना = बेसुध हो जाना । भवेत होना । पागल या बावला हो जाना । (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं) । उ०—रजे फिराफ मे तिनके चुनने की चोबत आई ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६८ । तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना । (२) मोहित करना । तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा । (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत डारस बंधे । तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर डालना । तिनके को पहाड़ कर दिखाना = थोड़ी सी बात

को बहुत बढ़ाकर कहना । तिनके की मोट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिना रहना । सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना । २ किसी प्रकार का थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना ।

तिनगना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' ।

तिनगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्वान । उ०—पेठा पाक जलेवी पेरा । गोंदपाग तिनगरी गिरीरा ।—सूर (शब्द०) ।

तिनताग०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + ताग] तीन तागे (जनेऊ) । उ०—आह्वान कहिए ब्रह्मरत है ताका बड़ भाग । नाहित पसु भ्रजानता गर डारे तिन तांग ।—भीखा० पृ० १०१ ।

तिनतिरिया—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मनुवा कपास ।

तिनधरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] तीन धार की रेती जिससे भारी के दाँत चोखे किए जाते हैं ।

तिनपतिया—वि० [हि० तीन + पात] तीन पत्तेवाले (बेलपत्र आदि) ।

तिनपहल—वि० [हि० तीन + पहल] दे० 'तिनपहला' ।

तिनपहला—वि० [हि० तीन + पहल] [वि० स्त्री० तिनपहली] जिसमें तीन पहल हो । जिसके तीन पार्श्व हो ।

तिनमिना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तिन + मगिया] घाला जिसके बीच में सोने का जड़ाऊ जुगमु हो ।

तिनचा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बरमा में बहुत होता है । मासाम ओर छोटा नाम-पुर में भी यह पाया जाता है । यह इसारतों में लगता है ओर चटाइयाँ बनाने के काम में आता है । इसके षोर्गों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग भाव भी पकाते हैं ।

तिनष्पना०—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—मुरपी साहि गोरी महाबीर धीर । तसवी तिनष्पी लिए पिभिक्त तीर ।—पृ० रा० १३।६५ ।

तिनस—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनसुना—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का पेड़ ।

तिनाशक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिनिश वृक्ष ।

तिनास—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनिश' ।

तिनि०—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—विहि नारी के पुस तिनि भाऊ । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊ ।—कबीर जी०, पृ० ५ ।

तिनिश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ समी या खेर की सी होती हैं ।

विशेष—इसकी जकड़ी मजबूत होती है ओर किवाड़, गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है । इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं । वैद्यक में यह कसैला ओर गरम माना जाता है । रक्तातिसार, जोड़, दाह, रक्तविकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ आदि दी जाती है ।

पर्या०—स्यवन । नेमी । रथद्रु । प्रतिमुक्तक । चित्रकृत । चक्री । शतांग । शकट । रथिक । भस्मगर्भ । मेघी । जलधर । शलक । तिनाशक ।

तिनुक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनुका' । उ०—हुम स्वामि काज सामंत मरन तन तिनुक विचारो ।—पृ० रा०, १२।१६८ ।

तिनुका—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—दूठ आय छोट तिनुका की रसक रहे ठहराई ।—कबीर श०, भा० २, पृ० २ ।

तिनुवर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणवर] तिनका ।

तिनूका^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिनका' । उ०—होय तिनूका वज्र वज्र तिनका हूँ दूठ ।—गिरिधर (शब्द०) ।

तिन्नक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तविक] १. तुच्छ चीज । २. छोटा लड़का ।

तिन्ना—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सती नामक वर्यवृत्त । २. रोटी के साथ खाने की रसेदार वस्तु । ३. तिन्नी के धान का पोषा ।

तिन्नी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हि० तिन, अथवा सं० तृणाक्ष] एक प्रकार का जंगली धान जो तालों में आपसे आप होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जड़हन का सी ही होती हैं । पोषा तीन चार हाथ ऊँचा होता है । कातिक में इसकी बाल फूटती है जिसमें बहुत खड़े खड़े दूँड़ होते हैं । बाल के दाने तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इससे इकट्ठा करनेवाले या तो हटके में दानों को भाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पोषों के धिरों को एक में बाँध देते हैं । तिन्नी का धान लंबा और पतला होता है । चावल खाने में नीरस और ख़रा ख़गता है और व्रत प्रादि में ख़ाया जाता है ।

तिन्नी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] नीची । फुफुंरी ।

तिन्ही^१—सर्व० [हि०] दे० 'तिन' ।

तिपड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + पट] कमखाब बुननेवालों के करघे की वह सफ़ाई जिसमें तागा खपेटा रहता है और जो दोनों बैसरो के बीच में होती है ।

तिपतास^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृप्ति + प्राथय] । तृप्ति प्रदान करनेवाली वस्तु । उ०—काजा सो जाँका कवल विधास । ज्ञान सपूरण है तिपतास ।—प्राण०, पृ० १० ।

सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—सहस एक साजि दासि विय तिपति इक मधि ।—पृ० रा०, १४।११६ ।

तिप्—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] तिप् तिप् की ध्वनिपूर्वक ठपकने का भाव । उ०—मोर बेला, सिन्धी छत से ओस की तिप् तिप् पहाड़ी काक ।—हरी शास०, पृ० १४ ।

तिपल्ला—वि० [हि० तीन + पल्ला] १. तीन पल्लों का । जिसमें तीन पतें या पायें हों । २. तीन तागे का । जिसमें तीन तागे हों ।

तिपाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + पाया] १. तीन पायों की बैठने की-ऊँची चौकी । स्टूल । २. पानी के बड़े रखने की ऊँची चौकी । टिकड़ी । सिगोड़िया । ३. लफड़ी का एक चौखटा जिसे रंगरेज काम में खाते हैं ।

तिपाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीव + पाड़] १. जो तीन पाठ जोड़कर

बना हो । उ०—दक्षिण चौर तिपाड़ को लहंगा । पहिरि विविध पट मोलन महंगा ।—सुर (शब्द०) । २. जिसमें तीन पल्ले हो । ३. जिसमें तीन किनारे हो ।

तिपारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पोषा जो बरसात में आपसे आप इधर उधर जमता है । मकोय । परपोटा । छोटी रसभरी ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी और सिर पर चुकीली होती हैं । इसमें सफ़ेद फूल गुच्छों में लगते हैं । फल सघुट के आकार के एक झिल्लीदार कोष में रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा कई पदार्थ बने रहते हैं ।

तिपुर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिपुर' । उ०—काली सुर महि-वास तिपुर जित्ति । महिपासुर ।—पृ० रा०, १।६२ ।

तिपैरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + पुर] वह बड़ा कुर्मा जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें ।

तिप्त^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—सी मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावे । साध सयति महि हरि लिव लावे ।—प्राण०, पृ० २२४ ।

तिप्ति^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—तिप्ति सतोपि रहे मित्र धाई । नानक जोती जोति मिलाई ।—प्राण०, पृ० १७७ ।

तिफली^७—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तिपल + फा० ई (प्रत्य०)] वचपन । उ०—पावद हुमा तिफली जवानी व बुढ़ापा ।—कबीर प्र०, पृ० १५० ।

तिपल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तिपल्] बच्चा । उ०—कहे प्राए तिपल मेरे मूर ऐनी । जो यक सौजब कुँ लामो होर तागा ।—दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

यौ०—तिपल मिजाज = वातप्रकृतिवाला । तिपले अशक = प्रभु-विदु । तिपले मातथ = चिनगारी । तिपले मकतब = निरक्षर । मखें । अनभिज्ञ । अनाड़ी । तिपले शीरखार = दुधमुँहा मच्चा । तिपले हिंदू = मौख की पुतली । कनीनिका ।

तिव—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] यूनानी चिकित्सा । हकीमी [को०] ।

तिवल्ली—वि० स्त्री० [हि० तीन + बाध] (चारपाई की बुनावट) जिसमें तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जायें ।

तिवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] घाटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन ।

तिवारी^१—वि० [हि० तीन + बार] तीसरी बार ।

तिवारी^२—सञ्ज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुमा मय ।

तिवारी^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + बार (= दरवाजा)] [स्त्री० तिवारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों ।

तिवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तीस द्वारवाला घर या कोठरी । उ०—वह मचलती हुई बिसात के बाहर तिवारी में चली आई । पाँसे हाथ में लिए एकवर उसकी ओर देखने लगे ।—इंद्र०, पृ० ३६ ।

तिबासी—वि० [हि० तीन + बासी] तीन दिन का बासी (बाध पदार्थ) ।

तिविक्रम^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०—तरेई तीर
तिविक्रम, ताकि दया करि दे विदिसा मनमेही । —घनानंद,
पृ० १४८ ।

तिवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देख०] खेसारी ।

तिव्व—सञ्ज्ञा स्त्री० [प०] १ यूनानी चिकित्सा शास्त्र । हकीमी ।
२ चिकित्सा शास्त्र [को०] ।

यौ०—तिव्वे कदीम = प्राचीन चिकित्सापद्धति । तिव्वे जदीद =
नवीन चिकित्सापद्धति या पाश्चात्य चिकित्सापद्धति ।

तिव्वत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के
उत्तर पड़ता है ।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में थोड़ा कहते हैं । इसके तीन
विभाग माने जाते हैं । छोटा तिब्बत, बड़ा तिब्बत और खास
तिब्बत । तिब्बत बहुत ठंडा देश है, इससे वहाँ पेड़ पौधे बहुत
कम पाये हैं । वहाँ के निवासी तातारियों के मिलते जुलते
होते हैं और अधिकतर उच्च के ऊँच, ऊपरे पाणि बुनकर
भपना बिबाहु करते हैं । देश कस्तूरी और खैर के खिये
प्रसिद्ध है । सुरा पाय और कस्तूरी पूरा यहाँ बहुत पाए जाते
हैं । तिब्बत के रहनेवाले सब महापान शाखा के पीते हैं ।
बोदों के अनेक मठ और महल हैं । कैलास पर्वत और मान-
सरोवर भी तिब्बत ही में हैं । ये हिंदू और बौद्ध दोनों के
तीर्थ स्थान हैं । कुछ लोग 'तिब्बत' को त्रिविष्टप का अपभ्रंश
बसनाते हैं । स्वतंत्र भारत ने इसे चीन को दे दिया और यह
देश अब पूर्णतः चीनी शासन में है और वहाँ के प्रमुख
बसाई खाना भारत में निवास करते हैं ।

तिव्वती^१—वि० [हि० तिब्बत] तिब्बत संबंधी । तिब्बत का ।
तिब्बत में उत्पन्न । जैसे, तिब्बती भाषा, तिब्बती भाषा ।

तिव्वी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० तिब्बत की भाषा ।

तिव्वसी^३—सञ्ज्ञा पुं० तिब्बत देश का रहनेवाला ।

तिव्विया—वि० [प० तिब्बियह] तिब्बत संबंधी । हकीमी [को०] ।

तिभुवन^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—सुम तिभुवन
तिहुं काल बिचार बिसारव ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३० ।

तिमंगल^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिगल' । उ०—घाठ दिसा
वित हरे उताला । ताता साँण तिमगल वाला ।—रा० क०,
पृ० २१३ ।

तिमंजिला—वि० [हि० तीन + ज० मंजिल] [वि० स्त्री० तिमंजिली]
तीन खंडों का । तीन मराठिया का । जैसे, तिमंजिला मकान ।

तिम^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० टिम] नगाड़ा । जंका । कुटुपी (डि०) ।

तिम^७—प्रत्यय० [हि०] दे० 'तिमि' । उ०—ता उत्पर खालुकर
बीर बंधी तिम सीमह ।—पृ० १०, १२ । ३० ।

तिमर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०—बूझ बिन सूझ
पर तिमर लागी ।—तुलसी० श०, पृ० १८ ।

तिमाना—क्रि० सं० [देख०] भिगोना । तर करना ।

तिमाशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + माशा] १ तीन माशे की एक

तोल । २. ४ जो की एक तोल जो पहाड़ी देशों में
प्रचलित है ।

तिमिगल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गल] १. समुद्र में रहनेवाला
मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक
बड़े मत्स्य की भी निगल सकता है । बड़ा भारी ह्वेल । उ०—
रश्न सोव के वातायन, जिनमें आता मधु मदिर समीर ।
टकराती होगी सब उनमें तिमिगलों की भीड़ घघीर ।—
कामायनी, पृ० १२ ।

तिमिगलाशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण का एक देशविभाग
जिसके अजगंत संका आदि हैं और वहाँ के निवासी तिमिगल
मत्स्य का मांस खाते हैं (वृहत्संहिता) । २ उक्त देश का
निवासी ।

तिमिगल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गल] दे० 'तिमिगल' [को०] ।

तिमि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार
का एक बड़ा भारी जंतु ।

विशेष—लोगों का अनुमान है कि यह जंतु ह्वेल है ।

२. समुद्र । १. प्राँख का एक रोग जिसमें रात को सुझाई नहीं
पड़ता । रतौंधी । ४ मछली [को०] ।

तिमि^७—प्रत्यय० [सं० तद + इव = इमि] उस प्रकार । जैसे ।
उ०—तिमि तिमि मारवणीतणइ सब तरण पड पाइ ।
डोला०, पृ० १२ ।

विशेष—इसका व्यवहार 'जिमि' के साथ होता है ।

तिमिकोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

तिमिघाती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिघातिम्] मछेरा । मछुघा [को०] ।

तिमिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोती [को०] ।

तिमित^१—वि० [सं०] १ निम्बल । मचल । स्थिर । २ क्लिप्त ।
भीगा । धाँद । ३ शांत । धीर [को०] ।

तिमित^७—वि० [सं० तम] काला । उ०—नयन सरोज धूँह बह
नीर । काजर पखरि पखरि पर चीर । धेँधि तिमित सेज
सरज सुवेस ।—विद्यापति, पृ० ३७३ ।

तिमिधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तम + धार] धंधकार । धंधेरा । उ०—
मनो कमल मुकलित खलित छयो सघन तिमिधा ।—सं०
सप्तक, पृ० ३४५ ।

तिमिध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शबर नामक वैश्य जिसे मारकर राम-
चंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था ।

तिमिमाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिमालिम्] समुद्र [को०] ।

तिमिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अधकार । धंधेरा । उ०—काज गरज
है तिमिर धपारा ।—कबीर सा०, पृ० २ । २ प्राँख का एक
रोग ।

विशेष—इसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं । प्राँखों के
धुंधला दिखाई पड़ना, चीजें रज धिरग की दिखाई पड़ना,
रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने
गए हैं ।

३ एक पेड़ । (वाल्मीकि०) ।

तिमिरजा—वि० स्त्री० [सं० तिमिर + जा] ग्रंथकार से उत्पन्न ।
उ०—लहराई दिग्भ्राति तिमिरजा स्रोतस्विनी कराली ।
—प्रपञ्चक, पृ० ५१ ।

तिमिरजाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिर + जाल] ग्रंथकारसमूह । घना
ग्रंथकार । उ०—गत स्वप्न निशा का तिमिरजाल नव
किरणों से धो खो ।—प्रपञ्चक, पृ० १६ ।

तिमिरनुद्^१—वि० [सं०] ग्रंथकार का नाश करनेवाला ।

तिमिरनुद्^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरभिद्^१—वि० [सं०] ग्रंथकार को भेदने या नाश करनेवाला ।

तिमिरभिद्^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य ।

तिमिरमय^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राहु । २. ग्रहण [को०] ।

तिमिरमय^२—वि० ग्रंथकारयुक्त [को०] ।

तिमिररिपु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । भास्कर ।

तिमिरारु—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिरारि' । उ०—होइ मधुकर
जोगी रस लेई । होइ तिमिरार जोत तोहि देई ।—इंद्रा०,
पृ० ७६

तिमिरारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रंथकार का शत्रु । २. सूर्य ।

तिमिरारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तिमिराली] ग्रंथकार का समूह ।
ग्रंथेरा । उ०—मधुप से नैन धर वधुवल ऐस होठ श्री फल
से कुच कच बेलि तिमिरारी सी ।—देव (शब्द०) ।

तिमिरावलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथकार का समूह । उ०—तिमि-
रावलि सँवरे दंतन के क्षित मेन धरे मनो दीपक हूँ ।—
सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

तिमिर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिमिर' । उ०—जय गुप्त तेज
प्रचंड तिमिरि पाखंड विहंडन ।—नट०, पृ० ६ ।

तिमिरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिरिन्] एक कोड़ा [को०] ।

तिमिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक वाद्य यंत्र [को०] ।

तिमिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । फूट । २. पेठा । सफेद कुम्हड़ा ।
३. तरबूज ।

तिमी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तिमि मत्स्य । २. वक्ष की एक कन्या जो
कश्यप की स्त्री और तिमिगर्ज की माता थी ।

तिमीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पेठ का नाम ।

तिमुहानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + फा० मुहाना] १. वह स्थान
जहाँ तीन धोर जाने को तीन फाटक या मार्ग हों । तिर-
मुहानी । उ०—त्रिविध त्रास त्रासक तिमुहानी । राम सङ्ग
सिधु समुहानी ।—मानस, १।४० । २. वह स्थान जहाँ तीन
धोर से तीन नदियाँ प्राकर मिली हो ।

तिम्नगत—वि० [?] १. अस्तमित । २. प्रक्षर गतिवाला । उ०—
भर विभ्रम लग मग हय गश्य । रहिय तिमनगत जुद्ध इच्छ ।
—पृ० रा०, ७।१८१ ।

तिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] १. स्त्री । धोरत । उ०—के जज
तिय गन नदनकमल की झलकत भाई ।—भारतेंदु प्र०,
भा० २, पृ० ४५५ । २. पत्नी । भार्या । जोरु ।

तियतरा—वि० [सं० त्रि + अन्तर] [स्त्री० तियतरी] वह वेदा जो
तीन वेदियों के बाद पैदा हो । तैत्तिरी ।

तियरासि—वि० [हि० तिय + राशि] कन्या राशि । उ०—ससि मीन
तीस कटि एक अंस । तियरासि कहाँ सुरभानुतंस ।—ह०
राघो, पृ० २२ ।

तियला—सञ्ज्ञा पुं० [सि० तिय + ला (प्रत्य०)] मित्रियों का एक
पहनावा । उ०—प्राहाणियों को इच्छा भोजन करवाय सुधेर
तियले पहराय दक्षिणा दी ।—लल्लु (शब्द०) ।

तियलिंग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तिय + लिंग] दे० 'स्त्रीलिंग' । उ०—
धारादिक तियलिंग ए, कवि भाषा के माहि ।—बोद्धार प्रभि०
प्र०, पृ० ५३२ ।

तिया^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि] १. गजीके या ताण का वह पत्ता जिस-
पर तीन बूटियाँ होती हैं । तिक्की । तिड़ी । २. नक्कीपूर के
खेल में वह दाँव जो पूरे पूरे गडों के गिनने के बाद तीन
कोड़ियाँ बचने पर होता है ।

तिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तिय' । उ०—गुनि चोपर खेलों
के दिया । जो तिर हेल रहे सो तिया ।—जायसी प्र०
(गुप्त), पृ० ३३२ ।

तियाग—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्याग' । उ०—तीखो साग
तियाग, जेहल वेड़ो जनमियो ।—वांकी०, भा० ३, पृ० १२ ।

तियागना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + त्याग + ना (प्रत्य०)] त्याग करना ।
छोड़ना । उ०—मात पिता सब कुटुंब तियागे, सुरत पिया
पर लावे ।—कबीर रा०, भा० १, पृ० १०३ ।

तियागी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्यागी] त्याग करनेवाला । छोड़नेवाला ।
उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे । हातिम करन तियागी
मई ।—जायसी (शब्द०) ।

तिरंग—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरंगा' । उ०—फहर तिरंग चक्रदल
प्रतिपल । हुरता जन मन भय सशय, जय जय हे ।—युगपथ,
पृ० ८६ ।

तिरंगा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीत + रंग] तीन रंगोंवाला राष्ट्रीय
ध्वज । उ०—यात्र तिरंगे से रे प्रहर रंग तरंगित ।—युगपथ,
पृ० ८१ ।

तिरंगा^२—वि० तीन रंगवाला । तीन रंगों का ।

तिरकट—सञ्ज्ञा पुं० [?] भागे का पाल । अगला पाल (लश०) ।

तिरकट गावा सवाई—सञ्ज्ञा पुं० [?] भागे का ठौर सबसे उपरी
सिरे पर का पाल (लश०) ।

तिरकट गावी—सञ्ज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल (लश०) ।

तिरकट डोल—सञ्ज्ञा पुं० [?] भागे का मस्तूल (लश०) ।

तिरकट तन्नर—सञ्ज्ञा पुं० [?] वह छोटा चोकोर भागे का पाल
जो सबसे बड़े मस्तूल के ऊपर भागे की धोर लगाया जाता
है । इसका व्यवहार बहुत सीमा हुआ चलने के समय होता
है (लश०) ।

तिरकट सवर—सञ्ज्ञा पुं० [?] सबसे ऊपर का पाल (लश०) ।

तिरकट सवाई—सञ्ज्ञा पुं० [?] भागे का वह पाल जो उस रस्ते में
बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता
है (लश०) ।

तिरकना—क्रि० म० [मनु०] तडकना । चटखना । फट जाना ।

तिरकसा—वि० [सं० तिरस्] टेढ़ा ।

तिरकाना—क्रि० स० [मनुष्य०] १. डोला छोड़ना । —(लष०) । २. रस्सी ढीली करना । लहासी छोड़ना (लष०) ।

तिरकुटा—सञ्ज्ञा पु० [सं० त्रिकट्ट] सोंठ, मिर्च, पोपल इन तीन कड़ुई मोपधियों का समूह ।

तिरकुटी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—झिलमिलि झलके तूर तिरकुटी महल मे ।—पलटू०, पृ० ६४ ।

तिरकोन०—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिकोण' । उ०—त्रिगुण रूप तिरकोन यत्र बनि मध्य विदु शिवदानो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२ ।

तिरखा०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा' ।

तिरखित०—वि० [सं० तृषित] दे० 'तृषित' ।

तिरखूँटा—वि० [सं० त्रि + हि० खूँट] [वि० स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें तीन खूँट या कोने हों । तिखोवा ।

तिरगुण०—वि० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—नौ गुण सुत संयोग बखानूँ तिरगुण गौठ खवानो ।—कबीर ग्रं०, पृ० १७५ ।

तिरच्छ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] तिनिस वृक्ष ।

तिरछड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा] तिरछापन ।

तिरछ उड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + उड़ना] मालखम की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन पर नहीं लगता, एक कंधा झुकाकर और एक पाँव उठाकर वह शरीर को चक्कर देता है । इसे छलाँग भी कहते हैं ।

तिरछन०—वि० [हि०] दे० 'तिरछा' । उ०—हंस उबारें भी भ्रम टार तरनी तिरछन सो भारिए ।—स० दरिया०, पृ० १० ।

तिरछा—वि० [सं० तिर्यक् या तिरस्] [स्त्री० तिरछी] १. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो । जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल झुका हुआ हो । जो न ठीक ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर । जो ठीक सामने की ओर न जाकर दक्षर उधर हटकर गया हो । जैसे, तिरछी लकीर ।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है । टेढ़ा वह है जो अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, दक्षर उधर मुड़ता या घुमता हुआ गया हो । पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो, पर जिसका लक्ष्य ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न हो । (टेढ़ी रेखा ~; तिरछी रेखा /) ।

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला । जैसे, बाँका तिरछा जवान ।

सुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुकाकर सिर पर रखी टोपी । तिरछी चितवन = बिना सिर के हुए बगल की ओर दृष्टि ।

४-५४

विशेष—जब लोगों की दृष्टि बँचाकर किसी ओर ताकना होता है, तब लोग, विशेषतः प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से देखते हैं ।

तिरछी नजर = दे० 'तिरछी चितवन' । उ०—हुए एक भान मे जस्मो हजारी । अधर उस यार ने तिरछी नजर की ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ । तिरछी बात या तिरछा वचन = कटु वाक्य । अप्रिय शब्द । उ०—हरि उदास सुनि तिरछे ।—सबल (शब्द०) ।

२ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में आता है ।

तिरछाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन ।

तिरछाना—क्रि० म० [हि० तिरछा] तिरछा होना ।

तिरछापन—सञ्ज्ञा पु० [हि० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने का भाव ।

तिरछी^१—वि० स्त्री० [हि० तिरछा] दे० 'तिरछा' ।

तिरछी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] भरहर के वे अपरिपक्व दाने जिनकी दाल नहीं बन सकती । इनकी फलगाने के बाद धुनी बनाकर रोटी बनाते हैं या जानवरों को खिला देते हैं ।

तिरछी बैठक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरछो + बैठक] मालखम की एक कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की ऐंठन की तरह परस्पर गुंथकर ऊपर उठते हैं ।

तिरछे—क्रि० वि० [हि० तिरछा] तिरछेपन के साथ । तिरछापन लिए हुए ।

तिरछोही^१—वि० [हि० तिरछा + ओही (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तिरछोही] कुछ तिरछा । जो कुछ तिरछापन लिए हो । जैसे, तिरछोही बैठ ।

तिरछोही^२—क्रि० वि० [हि० तिरछोही] तिरछापन लिए हुए । तिरछेपन के साथ । वक्रता से । जैसे, तिरछोही ताकना ।

तिरछिका०—सञ्ज्ञा पु० [सं० तृण] दे० 'तिनिका' । उ०—तिरछिका मोट सिष्ट का करता जुग देपि लुकाना ।—रामानंद०, पृ० १६ ।

तिरतालीसा—वि० [हि०] दे० 'तैतालीस' ।

तिरतिराना—क्रि० म० [मनु०] बूँद बूँद करके टपकना ।

तिरथ०—सञ्ज्ञा पु० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—पहली भँवरिया वेद पढ़े मुनि जानी हो । दुसरि भँवरिया तिरथ, जाको निरमल पानी हो ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ४ ।

तिरदंडी०—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिदंडी-१' । उ०—नेम प्रचार करे कोउ कितनो, कवि कोविद सब खुश । तिरदंडी सरबगो नागा, मरे पियास भी भुख ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११ ।

तिरदश०—सञ्ज्ञा पु० [सं० त्रिदश] दे० 'त्रिदश'-१ । उ०—ताकी कन्या रुक्मिणी मोहे तिरदशे ।—प्रकबरी०, पृ० ३३४ ।

तिरदेव०—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—निराकार यम तहाँ न जाई । तिरदेवन की कोन खलाई ।—कबीर सा०, पृ० ४१२ ।

तिरन^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव ।
उ०—बूढ़े के डर तें तिरन को उपाइ करै ।—सुदर० प्र०,
भा० २, पृ० ६५५ ।

तिरना—क्रि० प्र० [सं० तरण] १ पानी के ऊपर आना या
ठहरना । पानी में न डूबकर सतह के ऊपर रहना ।
उतराना । उ०—जल तिरिया पाहुण सुजड़, पतसिय नाम
प्रताप ।—रघु० ६०, पृ० २ । २ तेरना । पैरना । ३ पार
होना । ४ तरना । मुक्त होना ।

संयो० क्रि०—जाना

तिरनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश० या हि० तिल्ली] १ वह डोरी जिससे
घाघरा या धोती नाभि के पास बंधी रहती है । नीवी ।
तिल्ली । कुबती । २ स्त्रियों के घाघरे या धोती का वह भाग
जो नाभि के नीचे पड़ता है । उ०—वेनी सुभग नितबनि
ढोलव मंदगामिनी नारी । सूपन जघन बाधि नाराबंद तिरनी
पर छवि भारी ।—सूर (शब्द०) ।

तिरप—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] नृत्य में एक प्रकार का ताल जिसे
त्रिसम या तिहाई कहते हैं । उ०—तिरप लेति चपला सी
चमकति भ्रमकति भूषण धंग । या छवि पर उपमा कहूँ नाही
निरपत बिबस भ्रमग ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।

तिरपटी—वि० [देश०] १ तिरछा । टेढ़ा । टिड़बिड़गा । २
मुश्किल । कठिन । विकट ।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा ताकनेवाला । भेंगा । ऐंछाताना ।

तिरपत^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—दरिया पीवे मोत कर,
छो तिरपत हो जाय ।—दरिया० बानी, पृ० ३१ ।

तिरपति^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—पायो पानी
बुद चोंच से तिरपति प्यास न जाई ।—जग० शा०, पृ० ६६ ।

तिरपन^१—वि० [सं० त्रिपञ्चाशत्, प्रा० त्रिपण] जो गिनती में
पचास से तीन और अधिक हो । पचास से तीन ऊपर ।

तिरपन^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पचास से तीन अधिक की संख्या का सूचक
शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है, —५३ ।

तिरपाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाद या त्रि + पदी] तीन पायों की
ऊँची चौकी । स्टूल ।

तिरपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृण + हि० पालना (= बिछाना)] फूस या
सरकड़ों के लगे घुले जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते
हैं । मुट्ठा ।

तिरपाल^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० टारपालित] रोगन चड़ा हुआ कनवस ।
शाल चढ़ाया हुआ टाट ।

तिरपित^७—वि० [सं० तृप्त] दे० 'तृप्त' ।

तिरपुटी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटी] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—
तिरपुटिय भाल शिल कमन मूर । इह माति ताव तग तपनि
धूर ।—पृ० रा०, १ । ४८६ ।

तिरपौलिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + हि० पोल (= फाटक)] वह स्थान

जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी,
घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सके ।

विशेष—ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों
के बीच होते हैं ।

तिरफला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] दे० 'त्रिफला' ।

तिरवेनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिवेणी] दे० 'त्रिवेणी' ।

तिरवो^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरना] सिंध देश की एक प्रकार की
नाव का नाम ।

तिरवो^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तरना] तिरने की क्रिया । मुक्ति-
प्राप्ति । मोक्ष । उ०—जपे समुक्त नित जाय, सागरभव तिरवो
सहल ।—रघु० ६०, पृ० २ ।

तिरभंगी^७—वि० [हि०] दे० 'त्रिभंगी' ।—उ०—का बहुमाना
कित्ति कंत धीरज तिरभंगी ।—पृ० रा०, १ । ७६७ ।

तिरमिरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिमिर] १ दुर्बलता के कारण दृष्टि
का एक दोष जिसमें प्राई प्रकाश के सामने नहीं ठहरती और
ताकने में कभी भ्रंशेरा, कभी अनेक प्रकार के रंग, और कभी
छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं । २.
कमजोरी से ताकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं,
उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं । ३ तीक्ष्ण प्रकाश या पट्टरी
चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता । तेज रोशनी में नजर
का न ठहरना । चकाचौंध ।

क्रि० प्र०—लगना ।

तिरमिरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेल + मिलना] घी, तेल या चिकनाई
के छोटे जो पानी, दूध या और किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाब,
रसा आदि) के ऊपर तैरते दिखाई देते हैं ।

तिरमिराना—क्रि० प्र० [हि० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के
सामने न ठहरना । तेज रोशनी या चमक के सामने (प्राई
का) झपना । चौंधना । चौंधियाना ।

तिरमुहानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिमुहानी' ।

तिरलोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिलोक] दे० 'त्रिलोक' । उ०—सकल
तिरलोक लौ गावें ।—घट०, पृ० ३६६ ।

तिरलोकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिरलोक] दे० 'त्रिलोकी' ।

तिरवट—सञ्ज्ञा [देश०] एक प्रकार का राग जो तराने या तिल्लाने
का एक भेद है ।

तिरवर^७—वि० [हि० तिरवराना] भिन्नमिल । चकाचौंध उत्पन्न
करनेवाला । उ०—दादू जोति चमकै तिरवरै ।—दादू०,
पृ० २४० ।

तिरवराना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिरवा—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] उतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके ।

तिरवाही^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि ।

तिरवाह^२—क्रि० वि० किनारे किनारे । तट से

तिरश्चीन—वि० [सं०] १ तिरछा । २ टेढ़ा । कुटिल ।

तिरश्चीन गति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति । कुपती
का एक पेशा ।

विरसंकु^७—सङ्घा पुं० [सं० त्रिषङ्कु] दे० 'त्रिषङ्कु' । उ०—विरसंकु गेहूँ लहूँ, दाऊँ सम ए जान ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

विरसू—सं० [सं०] अतर्धान, तिरस्कार, आच्छादन, तिरछापन आदि अर्थों का बोधक शब्द [को०] ।

विरसठ^१—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसष्ठि] जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो । साठ से तीन ऊपर । उ०—विरसठ प्रकार की राग रागिनी छेड़ी ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४३ ।

विरसठ^२—सङ्घा पुं० १. वह सख्या जो साठ से तीन अधिक हो । २. उक्त सख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३ ।

विरसना^१—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'वृष्णा' । उ०—विरसना के बस में पहुँकर आदमी इसी तरह अपनी जिदगी चौपट करता है ।—गोदान, पृ० २८५ ।

विरसा—सङ्घा पुं० [सं० वि + हि० रस ?] वह पाल जिसका एक सिरा चोड़ा और एक सेंकुरा होता है (लश०) ।

विरसूत^७—सङ्घा पुं० [सं० त्रिसूत्र] तीन तानों का यज्ञोपवीत । यज्ञोपवीत । उ०—ताके परछों पाँच ब्रह्म अपने को पावे । भमं अनेऊ तोरि प्रेम विरसूत बनावे ।—पलटू, प्रा० १, पृ० ११३ ।

विरसूल^१—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'त्रिशूल' । उ०—जो तोको काँटा बुने, ताहि बोव तू फूल । तोहि फूल को फूल है, बाको है तिरसूल ।—संतवाणी०, पृ० ४४ ।

विरसूली^७—सङ्घा पुं० [हि० तिरसूल] दे० 'त्रिशूली' । उ०—महा मोहनो मय माया मोहे तिरसूली ।—नद०, प्र०, पृ० ३८ ।

विरस्कर—सङ्घा पुं० [सं०] आच्छादक । परदा करनेवाला । ढाँकनेवाला ।

विरस्करिणी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. छोटी आड़ । परदा । कनात । चिक । २. वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है ।

विरस्करो—सङ्घा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छादन । परदा ।

विरस्कार—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] १. अनादर । अपमान । २. भर्त्सना । फटकार । ३. अनादरपूर्वक त्याग । ४. साहित्य के अंतर्गत एक अर्थालंकार जिसमें गुणान्वित वस्तु में दुर्गुण दिखाकर उसका तिरस्कार किया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विरस्कार्य—वि० [सं०] तिरस्कार योग्य । तिरस्कृत होने लायक ।

विरस्कृत—वि० [सं०] १. जिसका तिरस्कार किया गया हो । अनादर । २. अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ । ३. आच्छादित । परदे में छिपा हुआ । ४. तन्त्र के अनुसार (वह मंत्र) जिसके मध्य में बकार हो और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र हों ।

विरस्क्रिया—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार । अनादर । २. आच्छादन । ३. अस्त्र । पहरावा ।

विरहा^१—सङ्घा पुं० [देश०] एक फतिगा जो घान के फूल को नष्ट कर देता है ।

विरहुत—सङ्घा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] मिथिला प्रदेश

जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुजफ्फरपुर और दरभंगा । उ०—विरहुत देस घनीती गई ।—घट पु० ३५१ ।

विरहुति—सङ्घा स्त्री० [सं० तीरभुक्ति] १. एक प्रकार का गीत जो तिरहुत में गाया जाता है । २. दे० 'विरहुत' ।

यौ०—विरहुतिनाथ = राजा जनक । उ० देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम, सचि तिरहुतिनाथ साखि देति मझी है ।—तुलसी प्र०, पृ० ३१४ ।

विरहुतिया^१—वि० [हि० तिरहुत] तिरहुत का । तिरहुत सबधी ।

विरहुतिया^२—सङ्घा पुं० तिरहुत का रहनेवाला ।

विरहुतिया^३—सङ्घा स्त्री० तिरहुत की बोली ।

विरहुती—वि०, सङ्घा पुं०, स्त्री० [हि०] दे० 'विरहुतिया' ।

विरहेल—वि० [सं० वि] क्रम में तीसरा । जो तीसरे स्थान पर हो ।

विरा—सङ्घा पुं० [देश०] एक पोषा जिसके बीजों से तेल निकलता है । एक तेलहन । तिररा ।

विराटी—सङ्घा स्त्री० [सं०] निसोत ।

विरानवे^१—वि० [सं० त्रिनवति, प्रा० तिनवडि] जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो । तीन ऊपर नब्बे ।

विरानवे^२—सङ्घा पुं० १. नब्बे से तीन अधिक की सख्या । २. उक्त सख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३ ।

विराना^१—क्रि० सं० [हि० तिरना] १. पानी के ऊपर ठहराना । २. पानी के ऊपर चलाना । तैराना । ३. पार करना । ४. उबारना । तारना । निस्तार करना ।

विराना^७—क्रि० सं० [हि० तिरना] पानी के ऊपर रहना । उतराना ।—उ०—पानी पत्थर आज तिराना ।—घट०, पृ० २३३ ।

विराना^३—क्रि० अ० [सं० तीर से नामिक धातु] तीर पर या किनारे पा जाना ।

विरावण^७—सङ्घा पुं० [हि० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव । उ०—सो धोदाता पलक में विरे, तिरावण जोग ।—दादू०, पृ० ६ ।

विरास—सङ्घा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास' । उ०—कई बार प्रागे गए छप्पन जहूँ तिरास ।—सहजो० बानी ०, पृ० ३३ ।

विरासना^१—क्रि० सं० [सं० त्रासन] त्रास दिखाना । डराना । भयभीत करना ।

विरासना^२—क्रि० अ० [सं० तृषित] प्यासा होना । प्यास लगना ।

विरासी^१—वि० [सं० त्र्यशीति, प्रा० तियासीति] जो गिनती में अस्सी से तीन अधिक हो । तीन ऊपर अस्सी ।

विरासी^२—सङ्घा पुं० १. अस्सी से तीन अधिक की सख्या । २. उक्त सख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८३ ।

विराहा—सङ्घा पुं० [हि० तीर + सं० त्रि + का० राह] वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते तीन ओर को गए हों । तिरमुहानी ।

विराही—सङ्घा स्त्री० [हि० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी कटारी या तलवार ।

तिरि०—वि० [सं० त्रि] तीन । उ०—पुनि तिहि ठाउँ परी
तिरि रेखा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६४ ।

तिरिआ०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिरिआ' ।

तिरिगत्त०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगतं' । उ०—तिरिगत्त राज तामस
बुभुयो दिपिय पंग सजोगि मुष ।—पृ० रा०, ११।२४५८ ।

तिरिजिह्वक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

तिरिनः—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' ।

तिरिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिय०—वि० [सं० तिर्यक्] वक्र । कुटिल । उ०—तिरिय
वक्र श्रधवक्र न ऊरध वक्र प्रमान ।—पृ० रा०, ७ । १७० ।

तिरिया^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद । एक प्रकार का धान ।

तिरिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री । शीरत । उ०—तुम तिरिया
मति हीन तुम्हारी ।—जायसी (शब्द०) ।

सौ०—तिरिया चरितार = स्त्रियो का रहस्य या कोणल ।

तिरिया^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो नेपाल में होता
है । इसे ओला भी कहते हैं ।

तिरिविष्टप०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिविष्टप] दे० 'त्रिविष्टप' । उ०—
स्वर्ग, नाक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।—नद०
प्र०, पृ० १०८ ।

तिरिसना०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—लोभ मोह
हंकार तिरिसना, सग लोभे कोर ।—कबीर श०, भा० ३,
पृ० ३१ ।

तिरीछन०—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० तीक्ष्ण । उ०—रीपी ध्यान
छोरि के ताका । नैन तिरीछन भहुँ प्रति बाँका ।—स०
बरिया, पृ० ३ ।

तिरीछा०—वि० [हि०] 'तिरिछा' ।

तिरीछो०—वि० [हि०] दे० 'तिरिछा' । उ०—प्रापुन इनके अंतर
बरघो । ऊखल तनक तिरीछो करघो ।—नद० प्र०, पृ० २५४

तिरीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लोघ । लोघ । २ किरीट ।

तिरीफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] दती वृक्ष ।

तिरीविरी—वि० [हि०] दे० 'तिडोबिड़ी' ।

तिरेंदा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १ समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो
सकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी
छिछला होता है, चट्टानें होती हैं, या इसी प्रकार की और
कोई बाधा होती है ।

विशेष—ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं । किसी किसी के
ऊपर घटा या सीटी लगी रहती है ।

२ मछली मारने की बसी में कंटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बंधी
हुई पाँच छह अंगुल की लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है
और जिसके डूबने से मछली के फँसने का पता लगता
है । तरेंदा ।

तिरै—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] कोखवानो का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए
हृदयस्थियों को लेटाने के लिये बोलते हैं ।

तिरोजनपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य ग्रंथशास्त्र के अनुसार
राष्ट्र का मनुष्य । विदेशी ।

तिरोधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अतर्धान । अदर्शन । गोपन ।
प्राच्छादन । पर्दा । आवरण । परिधान (को०) ।

तिरोधायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घाड़ करनेवाला । छिपानेवाला
गुप्त करनेवाला ।

तिरोभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अतर्धान । अदर्शन ।
गोपन । छिपाव ।

तिरोभूत—वि० [सं०] गुप्त । छिपा हुआ । अदृष्ट । अतर्हित । गायन

तिरोहित—वि० [सं०] १. छिपा हुआ । अतर्हित । अदृष्ट । उ०—
भाज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसत ?
कामायनी, पृ० १० । २. प्राच्छादित । उका हुआ ।

तिरौछाँ—वि० [हि०] दे० 'तिरिछा' । उ०—कठिन वचन सु
श्रवण जानकी सकी न वचन सहार । तृण अंतर दें
तिरौछो दई नैन जलधार ।—सूर (शब्द०) ।

तिरौवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिरैवा' ।

तिर्यक्^१—वि० [सं० तिर्यक्] १ तिरिछा । टेढ़ा । वक्र । घाड़ा [के
तिर्यक्^२—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० तिर्यक्] १ पक्षी । २ पशु । ३. जो
जगत् या वनस्पति (जैव) ।

तिर्यक्चानुपूर्वी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यक्चानुपूर्वी] जैन शास्त्रानुसार ज
की वह गति जिसमें उसे तिर्गंयोनि में जाते हुए कुछ काल त
रहना पड़ता है ।

तिर्यक्ची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यक्ची] पशु पक्षियों की मादा ।

तिर्गुन—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिगुण' । उ०—इ कहै ठगा न को
लिप है तिर्गुन गोसी ।—पलटू, भा० १, पृ० ८३ ।

तिर्देव०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—कहै कबीर यह जा
तिर्देव का ।—कबीर रे०, पृ० ३४ ।

तिर्पित०—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बिन मुँड के बहु करे प्र
तिर्पित कियो निपुरारि है ।—पद्माकर प्र०, पृ० २१ ।

तिर्यक्^३—वि० [सं०] तिरिछा । घाड़ा । टेढ़ा ।

विशेष—मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी प्रादि जीव तिर्यक् कहलाते हैं
क्योंकि खड़े होने में उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर
नहीं रहता, घाड़ा होता है । इनका खाया हुआ भोजन सीधे
ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता, बल्कि घाड़ा होकर पेट में
जाता है ।

तिर्यक्^२—क्रि० वि० वक्रतापूर्वक । टेढ़ेपन के साथ [को०] ।

तिर्यक्^३—सञ्ज्ञा पुं० १ पशु । २ पक्षी [को०] ।

तिर्यक्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तिरिछापन । घाड़ापन ।

तिर्यक्त्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिरिछापन । घाड़ापन ।

तिर्यक्पाती—वि० [सं० तिर्यक्पातिवृत्ति] [वि० स्त्री० तिर्यक्पातिनी] घाड़ा
केलाया या रखा हुआ । टेढ़ा रखा हुआ ।

तिर्यक्प्रमाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चौड़ाई [को०] ।

तिर्यक्प्रेक्ष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिरिछी चितवन [को०] ।

तिर्यक्मेद—संज्ञा पु० [सं०] दो सहारों पर. टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना ।

तिर्यक्स्त्रोतस्—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसका फैलाव घाटा हो । २. जीव जिसके पेट में छाया हुआ घाटा होकर जाता हो । वह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, घाटा हो । पशु पक्षी ।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के सर्वस्त्रोतस्, तिर्यक्स्त्रोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं । भागवत में तिर्यक्स्त्रोतस् २८ प्रकार के माने गए हैं—(१) द्विधुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, नैस, कृष्णसार मृग, मूषर, नीलगाय, रुह नामक मृग । (२) एकधुर—गदहा, घोड़ा, खरघर, गोरमृग, शरभ, मुरागाय । (३) पंचनख—कृत्ता, गीदड़, मेड़िया, बाघ, विल्ली, बरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा, मेढक इत्यादि । (४) जलचर—मछली । (५) खेचर—गीध, भाला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी । ये सब जीव ज्ञानगूण्य और तमोगुणविशिष्ट कहे गए हैं । इनके अतः करण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं बतसाया गया है ।

तिर्यगयन—संज्ञा पु० [सं० तिर्यक् + प्रयत्न] सूर्य की वार्षिक परिक्रमा [को०] ।

तिर्यगीक्ष—वि० [सं०] तिरछा देखनेवाला [को०] ।

तिर्यगीश—संज्ञा पु० [सं०] श्रीकृष्ण [को०] ।

तिर्यग्माति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरछी या टेढ़ी चाल । २. कर्मवशा पशु योनि की प्राप्ति ।

तिर्यग्गामी^१—संज्ञा पु० [सं० तिर्यग्गामिन्] केकड़ा [को०] ।

तिर्यग्गामी^२—वि० तिरछी या टेढ़ी चाल चलनेवाला [को०] ।

तिर्यग्दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०] ।

तिर्यग्दिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा ।

तिर्यग्यान—संज्ञा पु० [सं०] केकड़ा ।

तिर्यग्योनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुपक्षी आदि जीव । २० 'तिर्यक्स्त्रोतस्' ।

तिर्यक्—संज्ञा पु० [सं०] २० 'तिर्यक्' ।

तिलंगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + अंगनी] एक प्रकार की मिठाई जो चीनी में तिल पागकर बनती है ।

तिलंगसा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का वन्य जो हिमालय पर नेपाल से होकर पंजाब तक होता है । अफगानिस्तान में भी यह पेट पाया जाता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में लगती है तथा हथ, कप्यान का डंडा आदि बनाने के काम में आती है । शिमले के पासपास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है ।

तिलंगा^१—संज्ञा पु० [हि० तिलगाना, सं० तेलङ्ग] १. मगरेजी फोज का देशी सिपाही ।

विशेष—पहले पहल ईस्ट इंडिया कंपनी ने मदरास में किला बनाकर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था ।

इससे मगरेजी फोज के देशी सिपाही मात्र तिलंगे कहे जाने लगे ।

२. सिपाही । सैनिक ।

तिलंगा^२—संज्ञा पु० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार का कनकोवा ।

तिलंगा^३—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० तिलंगी] भाग का बड़ा कण । बड़ी चिनगारी ।

तिलांगाना—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तैलंग देश ।

तिलंगी^१—संज्ञा पु० [सं० तैलंग] तिलांगाने का निवासी । तैलंग । २०—नहि जालंधर पार बंग चंगी न तिलंगी—पृ० रा०, १२।१३० ।

तिलंगी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लंग] एक प्रकार की पतंग ।

तिलंगी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तिलंगा] भाग का छोटा कण । चिनगारी

तिलजुलि—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'तिलाजलि' । २०—लोफ लाज की गेल को देह तिलजुलि दान ।—श्यामा०, पृ० २० ।

तिलंतुद—संज्ञा पु० [सं० तिलन्तुद] तेली [को०] ।

तिल—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पोधा जिसकी खेती संसार के प्राय सभी गरम देशों में तेल के लिये होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ घाट दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं । ये नीचे की ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई खगती हैं, पर जोड़ा ऊपर चलकर कुछ अंतर पर होती हैं । पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं । फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं । ये फूल सफेद रंग के होते हैं, केवल मुँह पर भीतर की ओर बेंगनी धन्वे दिखाई देते हैं । बीजकोश लंबोतरे होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं । ये बीज छिपटे और लंबोतरे होते हैं । हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला । तिल की दो फसलें होती हैं—कुवारी और खेती । कुवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है । खेती फसल यदि कार्तिक में बोई जाय तो पुस माघ तक तैयार हो जाती है ।

उद्भिद शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदिस्थान अफ्रीका महादीप है । वहाँ घाट नौ जाति के जंगली तिल पाए जाते हैं । पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था, तब तिल से निकाला गया । इसी कारण उसका नाम ही तेल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया । अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है । आजकल भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है । वैद्यक में तिल भारी, स्निग्ध, गरम, कफ-पित्त-कारक, बलवर्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है । तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय, तो रेशक होता है ।

पर्याय—होमशान्य । पवित्र । पितृतर्पण । पापघ्न । पुत्रघाभ्य । जटिल । बनोज्ञव । स्नेहफल । तैलफल ।

यौ०—तिलकुट । तिलचट्टा । तिलमुग्गा । तिलशकरी ।

२ छोटा ग्रथ या भाग जो तिल के परिमाण का हो ।

मुहा०—तिल की भोझल पहाड = किसी छोटी बात के भीतर बड़ा भारी बात । तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोटे से मामले को बहुत बढ़ा करना या दिखाना । तिल का ताड़ बनना = प्रतिरजित होना । उ०—श्रद्धा के उत्साह वचन, फिर काम प्रेरणा मिल के । भ्रातृ मयं वन भागे आए बने ताड़ थे तिल के ।—कामायनी, पृ० ११० । तिलचावले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल । खिचड़ी बाल । तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ विवाह में विवाह के समय बूढ़े का दुल्हिन के हाथ पर रखे हुए काले तिलों का चाटना ।

विशेष—यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दुश्मन सदा अपनी स्त्री के वश में रहे ।

तिल तिल = थोड़ा थोड़ा । उ०—घरि स्वामि धर्म सुरग । बढ़ि रहे तिल तिल धग ।—ह० रासो, पृ० १२३ । तिल घरने की जगह न होना = जरा सी भी जगह खाली न रहना । पूरा स्थान छिन्ना रहना । तिल बांधना = सूर्यकांत शीशे से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीकृत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल भर = (१) जरा सा । थोड़ा सा । उ०—रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) ।† (२) क्षण भर । थोड़ी देर । (किसी के) तिलो से तेष निकालना = किसी से किसी प्रकार रुपया लेकर वही उसके काम में लगाता ।

३ काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है । उ०—चिबुक कूप रसरी भलक तिल सु चरस धग बेल । बारी बयस गुलाब की सीचत मनमय छैल ।—रसलीन (शब्द०) ।

विशेष—सामुद्रिक में तिलों के स्थान भेद से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बतसाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर ओर स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है । हथेली का तिल शोभायसूचक समझा जाता है ।

४. काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये गाल, ठुड़ी आदि पर गोदाती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

५ घाँख की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिसमें सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—सबा खी० [सं० तिलकण्ठी] विष्णुकाची । काली कीवांठी ।

तिलक^१—सबा पु० [सं०] १. वह चिह्न जिसे गीले चदन, केसर आदि से मस्तक, बाहु आदि अंगों पर संप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका । उ०—छापा तिलक बनाइ करि दग्ध्या लोक भनेक ।—कबीर प्र०, पृ० ४६ ।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव सखा तिलक या ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं जिसके संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव भाटा तिलक

या त्रिपुंड्र लगाते हैं । शाक्त लोग रक्त चदन का पाटा टी लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक ग्रन्थपुराण में ऊर्ध्व पुंड्र तिलक की बड़ी महिमा गाई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश ग्रंथ मा हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पार्श्व) दोनों काँ दोनों बाँह, कंधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से उपासना का चि समझा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—धारण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना । राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । गद्दी ।

यौ०—राजतिलक ।

क्रि० प्र०—सारना = राज्य पर अभिषिक्त करना । गद्दी राजसिंहासन का प्रतिष्ठा देना । उ०—मिला पाइ जब धनु मुम्हारा । जार्ताह राम तिलक तेहि सारा ।—मानस, ५।५४ ३ विवाह संबंध स्थिर करने की एक रीति जिसमें कन्या प के लोग वर के माथे में दही भस्म आदि का टीका लगा और कुछ द्रव्य उसके साथ देते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे, उसने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक सामग्री के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना । ४ माथे पर पहनने का लियों का एक गहना । टीका । ५ तिर मण्डि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्त पुरुष ।

विशेष—इसका समास के मत में प्रयोग बहुधा मिलता है जैसे, रघुकुलतिलक ।

६ पुश्ताग की जाति का एक पेड़ जिसमें छत्ते के आकार के वसत शत्रु में लगते हैं ।

विशेष—यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है ।

७ मूँज का फूल या घुमा । ८. लोघ्र वृक्ष । शोध का पेड़ । ९ मरुवक । मरुवा । १०. एक प्रकार का भस्वरय । ११. ए जाति का घोड़ा । घोड़े का एक भेद । १२ तिल्ली जो पेट भीतर होती है । बलोम । १३ सोवचल लक्षण । सोव नमक । १४ संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरण पचीस पचीस मक्षरो के होते हैं । १५ किसी ग्रंथ की अर्थसूचक व्याख्या । टीका । १६ एक रोग (को०) । १७ पीपल का एक प्रकार या भेद (को०) । १८ तिल का शोभा या फूल (को०) ।

तिलक^२—सबा पु० [तु० तिरलीक का सक्षित रूप] १. एक प्रकार का ढोला ढाला जनाना कुरता जिसे प्राय मुसलमान स्त्रियाँ सूर्य के ऊपर पहनती हैं । उ०—तनिया न तिलक, सुपनिया पगनिया न घाँसे घुमराती छाड़ि सेजिया सुन्न की ।—भूषण (शब्द०) । २. श्लिषत ।

तिलक कामोद—सबा पु० [सं०] एक रागिनी जो कामोद और

विभिन्न प्रयथा कान्हुडा कामोद धीर पङ्क्योग से मिलकर बनी है।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का चूर्ण। २. एक मिठाई जो तिल के चूर्ण के योग से बनती है।

तिलकधारी—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + धारी] तिलक लगानेवाला। उ०—दास पलटू कहै तिलकधारी सोई, उदित तिलु लोक गजपूत सोई।—पलटू०, भा० २, पृ० १६।

तिलकना^१—क्रि० प्र० [हि० तडकना] गीली मिट्टी का सूखकर स्थान स्थान पर दरकना या फटना। ताल आदि की मिट्टी का सूखकर दरार के साथ फटना।

तिलकना^२—क्रि० प्र० [हि०] बिछलना। फिसलना। उ०—करहुड कादिम तिलकस्पइ पंथी पूगल दूर।—डोला०, दू० २५६।

तिलक मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदन आदि का टीका धीर शंख चक्र आदि का छाप जो भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकल्का—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण। तिलकुट।

तिलकहू—संज्ञा पुं० [सं० तिलक + हि० हू (प्रत्य०)] दे० 'तिलकहार'।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हि० तिलक + हार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से बर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (115) होते हैं। इसे 'तिल्ला', 'तिल्लाना' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। २. कठ में पहनने का एक आभूषण।

तिलकार्पिक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खेती करनेवाला व्यक्ति [को०]।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। २. सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि जिसमें पुरुष की इन्द्रिय पक्ष जाती है और उसपर काने काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकावल—वि० [सं०] चिह्नों से युक्त। चिह्नोंवाला [को०]।

तिलकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] माथा। लजाट [को०]।

तिलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकित—वि० [सं०] १. तिलक लगाए हुए। २. जिसको तिलक लगाया गया हो। जैसे, सिद्धर तिलकित भाल। ३. चित्ती-दार। बिंदीवाला [को०]।

तिलकुट—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकट] कूटे हुए तिल जो खाँड की चाशनी में पगे हो।

तिलखली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + खली] तिल की खली [को०]।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हि० तिल + चाटना] एक प्रकार का भोंगुर। चपटा।

तिलचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी [को०]।

तिलचौवरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हि० चौवरी] दे० 'तिलचावली'। तिलचावली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + चावल] तिल और चावल की खिचड़ी।

तिलचावली^३—वि० स्त्री० जिसका कुछ अंश सफेद और कुछ काला हो। जैसे, तिलचावली दाढ़ी।

तिलचित्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तेलकंद।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—क्रि० प्र० [मनु०] विकल रहना। छटपटाना। देचने रहना।

तिलडा^१—वि० [हि० ती < सं० त्रि + हि० लड़] [दि० स्त्री० तिलड़ी] जिसमें तीन लड़े हों। तीन लड़ों का।

तिलड़ा^२—संज्ञा पुं० [देश०] पर्यार गढ़नेवालों की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसमें बीच में एक जुगनी लटकती है।

तिलतडुल—संज्ञा पुं० [सं० तिल + तण्डुल] १. तिल और चावल। २. ऐसा मेल जिसमें मिलनेवालों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई दे।

यौ०—तिलतडुल न्याय = दे० 'न्याय'।

तिलतडुलक—संज्ञा पुं० [सं० तिलतण्डुलक] १. भेंट। मिसन। २. आलिगन। गले से लगाना [को०]।

तिलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल [को०]।

तिलदानो—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल्ला + सं० प्राचीन] कपड़े की वह धेनी जिसमें दरजी सुई, तागा, अगुशताना आदि धोआर रखते हैं।

तिलद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विशेष मास की द्वादशी तिथि (जो उरुमव के लिये निश्चित हो)।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलों का जमाया हुआ कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० तिल + पपड़ी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. सरल का गोंद। ३. तिल का पत्ता [को०]।

तिलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिलपर्णी'।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त चंदन। २. एक नदी [को०]।

तिलपिज—संज्ञा पुं० [सं० तिलपिञ्ज] तिल का वह पीघा जिसमें फल नहीं लगते। बझा तिल बूझ।

तिलपिचट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठी। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तिलपीड] तिल पेरनेवाला, तेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का फूल। २. व्याघ्रनख। बघ-नखी। ३. नाक [को०]।

तिलपुष्पक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहेड़ा । २. तिल का फूल (को०) ।
३. नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलपेज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिलपिज' ।

तिलफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं ।

तिलबद्धा—संज्ञा पुं० [देश०] चोपायो का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बड़ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलधर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम । —(महाभारत) ।

तिलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका (को०) ।

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + सं० भुक्त] खाँड़ मिले हुए भुने तिल को खाए जाते हैं । तिलकुट ।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ भुना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है । स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देवापित किए खाना वर्जित है ।

तिलभेज—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का दाना ।

तिलमनिया(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० मनिया] गले में पड़ना जानेवाला एक माभूषण । उ०—गले तिलमनिया पढ़े बिना विराजित बाजुबन फुदन सुघारी री ।—स० दरिया, पृ० १७० ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं ।

तिलमापट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में बिलारी और करनूल में होनेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिल] चकाचौंध । तिलमिराहट ।

तिलमिलाना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तिलमिराना' ।

तिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना + आहट (प्रत्य०)] तिलमिलाने की क्रिया या भाव । व्याकूलता । वेचनी ।

तिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना] तिलमिलाहट ।

तिलरस—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलरा—संज्ञा पुं० [देश०] देढ़ी चक्की बनाने की छेनी जिसे कसेरे काम में लाते हैं ।

तिलरा^२—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] [वि० स्त्री० तिलरी] दे० 'तिलड़ा' ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलड़ी' ।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलपट्टी । तिलपपड़ी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पोधा जो जंगल और बगीचों में होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें सबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज, फूल आदि दवा के काम में आते हैं ।

वैद्यक ने तिलवन गरम और वात गुल्म आदि को करनेवाली माना जाता है । पीली तिलवन मांस के से पड़ती है ।

पर्या०—मजगधा । खरपुष्पा । सुगंधिका । काबरी । तुगो ।

तिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + वा (प्रत्य०)] तिलो का लड्डू ।

तिलशकरो—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + शकर] तिल और ची बनाई हुई मिठाई । तिलपपड़ी ।

तिलशिखी—संज्ञा पुं० [सं० तिलशिखिन्] तिलमयूर (को०) ।

तिलशैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का पर्वताकार ढेर जो दिया जाता है ।

तिलषिक—संज्ञा पुं० [?] तेली । उ०—तेली को कहा जाता था ।—मायें० भा०, पृ० २१२ ।

तिलसुषमा—संज्ञा पुं० [सं० तिल + सुषमा] सृष्टि के सभी पदार्थों से थोड़ा थोड़ा करके एकत्र किया गया ।

उ०—निमित्त सबकी तिलसुषमा से, तुम निखिल सृष्टि चिर निरुपम ।—युगात, पृ० ४६ ।

विशेष—तिलोत्तमा नामक अक्षरा को सृष्टि ब्रह्मा ने प्रकार की थी । सुंद और उपसुंद नाम के दो असुर भाई तिलोत्तमा के लिये आपस में हो लड़कर मर गए ।

तिलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [प्र० तिलस्म] १. जादू । इद्रजाल । २. या प्रलौकिक व्यापार । करामात । चमत्कार । ३. (को०) ४. वह मायारचित विचित्र स्थान जहाँ प्रजीवो व्यक्ति और चीजें दिखलाई पड़ें और जहाँ जाकर प्रादमी जाय और उसे घर पहुँचने का रास्ता न मिले ।

मुद्रा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

यौ०—तिलस्म बंद = तिलस्म और जादू के असर में आया या सावारस्ता । तिलस्म बंदो = जादू के असर में आ जाना ।

तिलस्मात—संज्ञा पुं० [प्र० तिलस्म का बहु ब०] मायारचित स्थान । मायाजाल (को०) ।

तिलस्माती—वि० [प्र० तिलस्मात + प्रा० ई (प्रत्य०)] १. माया-पूर्ण । तिलस्मी । २. मायावी । जादुगर (को०) ।

तिलस्मी—वि० [प्र० तिलस्म + प्रा० ई० (प्रत्य०)] १. तिलस्म संबंधी । जादू का । २. मायानिर्मित । माया संबंधी (को०) ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + धान्य] फसल के रूप में बोए जानेवाले पोषे जिनके बीजों से तेल निकलता है । जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि ।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकद ।

तिलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जलि] दे० 'तिलाञ्जली' (को०) ।

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जली] मृतक सत्कार का एक भग ।

विशेष—हिंदुओं में मृतक संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जम चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की झुली में जल भरकर घोर उसमें तिल डालकर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—तिलाजली देना = बिभकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।

तिलांबु—संज्ञा पुं० [सं० तिलाम्बु] तिलाजली।

तिला^१—संज्ञा पुं० [प्र०] सुवर्ण। सोना [को०]।

तिला^२—संज्ञा पुं० [प्र० तिलाप्र] वह तेल जो लिगेंद्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिगलेप। २ दे० 'तिल्ला'।

तिलाक—संज्ञा पुं० [प्र० तलाक] १ पति-पत्नी-संबंध का भंग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को प्रलग प्रसंग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यौ०—तिलाकनामा।

२ परित्याग। त्याग देना। छोड़ देना। उ०—बाहि तिलाक याहि जो खोवे।—चरण० बानी, पृ० २१०।

तिलाकार—वि० [प्र० तिला + कार (प्रत्य०)] सोने की चित्रकारीवाला। उ०—बाव मुह्त के हैं देहली के फिरे दिन या रब। सस्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे।—भारतेंदु पं०, भा० २, पृ० ७४७।

तिलादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

तिलान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी।

तिलापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जीरा।

तिलावा^१—संज्ञा पुं० [हिं० लीन + लावना, लाना?] वह बड़ा कुम्हा जिसपर एक साथ तीन पुरवठ चल सकें।

तिलावा^२—संज्ञा पुं० [प्र० तलावह.] रात के समय कीतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौद।

तिलिंग—संज्ञा पुं० [सं० तिलिङ्ग] एक देश का नाम [को०]।

तिलिंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलगा'।

तिलिस्स—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का साँप जिसे गोवस भी कहते हैं। २ मज्जरा [को०]।

तिलिया—संज्ञा पुं० [दे०] १ सरपट। २ दे० 'तेलिया' (विप)।

तिलिस्म—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'तिलस्म' [को०]।

तिलिस्मात—संज्ञा पुं० [प्र० तिलिस्म का बहु व०] दे० 'तिलस्मात' [को०]।

तिलिस्माती—वि० [प्र० तिलिस्मात + का० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्माती' [को०]।

तिलिस्मी—वि० [प्र० तिलिस्म + का० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्मी' [को०]।

तिली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तिल'। २. दे० 'तिल्ली'।

तिली^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल्ली का सक्षिप्त रूप] दे० 'तिल्ली'।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूंदी जो फसल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० [तेलु० तेलुगु] दे० 'तेलगू'।

तिलोक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलोक'।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० तिलोकपति] विष्णु। उ०—तुलसी विसोक हैं तिलोकपति गयो नाम को प्रताप बात विधित है जग में।—तुलसी (शब्द०)।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० तिलोकी] इसकीस मानाओं का एक उपजाति छंद जो प्लवंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है। इसके प्रत्येक चरण के प्रथम में लघु गुण होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलोचन'।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम रूपवती प्रपञ्चा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने ससार भर के सब उत्तम पदार्थों में से एक एक तिल ग्रह लेकर इसे बनाया था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिरण्यक के मुँद और उपमुँद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत उपस्था करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें, और यदि मरें भी तो आपस में ही सड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इन्द्र को बहुत तप कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे मुँद तथा उपमुँद के निवासस्थान विष्णु-जल पर भेज दिया। इसी को पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला झुली भर जल जो मृतक के सद्देश्य से दिया जाता है। तिलांजली। उ०—पुत्र न रहता, तो क्या होता कौन फिर देता पिंड तिलोदक।—कव्या०, पृ० १६।

तिलोरि^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलोरी'। उ०—पियरि तिलोरि भाव जलहवा। विरहा पैठि हिए कत नसा।—जायसी पं० (गुप्त), पृ० ३६३।

तिलोरी^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मेना जिसे तेलिया मेना भी कहते हैं। उ०—येदु तिलोरी धो जल हँसा। हिरदय पैठ विरह लग नसा।—जायसी (शब्द०)।

तिलोरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० घोरी (प्रत्य०)] दे० 'तिलोरी'।

तिलोहरा^१—संज्ञा पुं० [दे०] पटसन का रेशा।

तिलोचना—क्रि० स० [हिं० तेल + चोचना (प्रत्य०)] थोड़ा

तेल नयाकर चिकना करना । उ०—पुनि पौछि गुलाब तिलोष्धि
फुलेल भंगोछे मे छाछे भंगोछनि के ।—शिव ग्रं०, पृ० २० ।

तिलोष्ठा—वि० [हि० तेल+भोष्ठा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का
सा स्वाद या रंग हो । जैसे, तिलोष्ठा फल ।

तिलोनी—वि० [हि० तेल] सुगन्धित । उ०—भाछो तिलोनी
ससे भंगिया गसि चोवा की बेसि विरासति सोइन ।—
घनानंद, पृ० २१३ ।

तिलौरी—सका झी० [हि० तिल+बरी] उदं या भूंग की वह
बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो ।

विशेष—इसमें कमल भी पड़ा रहता है और यह भी में तबकर
चाई जाती है ।

तिल्य^१—सका पुं० [सं० तिल] तिल का खेद । उ०—तिल, उदक,
अनसी सबही घोर चीना के खेतों को क्रमशः तिल्य तैलीन...
कहते थे ।—संपूर्ण० ग्रंथि० ग्रं०, पृ० २४५ ।

तिल्य^२—वि० तिल की खेती के योग्य [को०] ।

तिल्लाना—सका पुं० [?] तिलका नाम का वखुंवृत्त ।

तिल्लार—सका पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिट्ठी या लिपि
भी कहते हैं ।

तिल्ला^१—सका पुं० [सं० तिल्ला] १ कलाबत्त या बायसे धावि
का काम ।

झी०—तिल्लवार ।

२ पक्की छपट्टे या छाड़ी धावि का वह धंजल जिसमें कलाबत्त
या बायसे धावि का काम किया हो । ३ वह सुपर पदार्थ जो
किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें जोड़ दिया जाय ।
(क०) ।

झी०—बहारा तिल्ला ।

तिल्ला^२—सका पुं० दे० 'तिलका' (बयंभरा) ।

तिल्लाना—सका पुं० [हि०] दे० 'वराना'—१ ।

तिल्ली^१—सका झी० [सं० तिल्ल, दुबलीय घ० तिल्ला (= तिल्ली)]

पेट के भीतर का अवयव जो मांस की पोखी गुठली के आकार
का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है ।

विशेष—इसका खनन पाकालय में होता है । इसमें साफ हुए
पदार्थ का विशेष रस कुछ काम तक रहता है । जबतक यह
रस रहता है, तबतक तिल्ली फैलकर कुछ बढ़ी हुई रहती
है, फिर जब इस रस को रक्त जोख लेता है, तब वह फिर
ज्यों की त्यों हो जाती है । तिल्ली में पहुँचकर रक्तकणिकाओं
का रंग बेगनी हो जाता है ।

ज्वर के कुछ काज तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, इसमें रक्त
अधिक धा जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती
है । ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमें से लाख रक्त
निकलता है । ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त
घाते रहने से ही तिल्ली बढ़ती है । इस रोग में मनुष्य दिन
दुबला होता जाता है, उसका मुँह सूखा रहता है और
पेट निकल आता है । वैद्यक के अनुसार त्रय दाहकारक तथा
कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से अधिक कुपित होकर

कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है, तब तिल्ली बढ़ जाती
और मंदान्ति, जीर्ण ज्वर आदि रोग साथ चल जाते हैं
जवाहार, पलाय का हार, शल की अस्म आदि प्लीहा
आयुर्वेदोक्त औषध हैं । डाक्टरों में तिल्ली बढ़ने पर कुं
तया आर्सेनिक (खंभिया) और चोहा मिली हुई दवाई
जाती है ।

पर्या०—प्लीहा । पिलही ।

तिल्ली^२—सका झी० [सं० तिल] तिल नाम का अन्न या तेलहन
वि० दे० 'तिल' ।

तिल्ली^३—सका झी० [देश०] एक प्रकार का शौच जो आसाम में
बरमा में कभी पहाड़ियों पर होता है ।

विशेष—ये बाँध पचास सठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इन
बाँधों दूर दूर पर होती हैं, इससे ये चोंगे बनाये के काम
अधिक आते हैं ।

तिल्ली^४—सका झी० [हि०] दे० 'बीबी' ।

तिल्लोतर्मा—सका झी० [हि०] दे० 'तिल्लोतर्मा' । उ०—ति
ऊपर तिल्लोतर्मा बार बई सो बार ।—बाँकी० पृ०, भा०
पृ० ३३ ।

तिल्ल—सका पुं० [सं०] चोघ । चोघ ।

तिल्लक—सका पुं० [सं०] १. लोघ । २. तिल्लिख ।

तिल्लहारी—सका झी० [?] झालर की तरह का वह परदा
घोड़ी के माथे पर उनकी आँखों की मक्खियों के बचावे
बिजे बाँधा जाता है । नुकता ।

तिल्लहार—सका पुं० [हि०] दे० 'त्योहार' । उ०—होली तिल्लहार
की बहुत पञ्चमी है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० १९८ ।

तिल्लाही—सका पुं० [हि०] दे० 'तिल्लाही' ।

तिल्ल—अव्य० [हि०] दे० 'तिल्लि' । उ०—छद्म पाँखी ज
मासकी बिल काँगु तिल्ल चहुँछुँ भवि ।—धी० रासो
पृ० ४५ ।

तिल्ल^१—सका झी० [सं० झी] झी ।

तिल्ल^२—सका झी० [सं० झी] झी ।

तिल्लाना—अव्य० [हि०] दे० 'तिल्लाना' । उ०—तब जुन
भ्यन किहू तिल्लाना ।—फकीर सा०, पृ० ७४ ।

तिल्लार—अव्य० [?] सदा । तब । हर बार । हर समय । उ०—
सम राज अग्यि यही तिल्लार । उपराज इह पद्मुत विहार
—पृ० रा०, २४। ३३३ ।

तिल्लारी—सका पुं० [सं० तिल्लाठी] [झी० तिल्लारिह] तिल्लाठी
वि० दे० 'तिल्लाठी' ।

तिल्लारी^२—सका झी० [हि० तिल्लार] वह घर या कोठी जिसमें
तीन द्वार हों । उ०—फूलनि के सभ फूलनि की तिल्लारी ।—
छोत०, पृ० २७ ।

तिल्लासा—सका पुं० [सं० तिल्लापर] तीन दिन । उ०—मन फाँ
बायल बरे मिटै सगाई साक । जैसे दूध तिल्लास को उलवि
हुमा जो आक ।—कबीर (शब्द०) ।

विवासी—वि० [हि०] दे० 'विवासी' ।

तिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविक्रम] दे० 'त्रिविक्रम' । उ०—बुज कनोज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत घोर । बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि तमूजा तीर ।—सुषण्ड प्र०, पृ० १८ ।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बैसारी ।

तिशाना—संज्ञा पुं० [प्र० तथानीम् (= नुरा भला कहना)] ताना । मेहना ।

क्रि प्र०—देना ।—मारना ।

थौं—तावा तिशना ।

तिशता—वि० [प्रा० तिशनह्] १. व्यासा । तृपित । २. प्रवृत्त । प्रसंतुष्ट ।

थौं—तिशना काम=(१) तृपित । (२) प्रसफलमनोरथ ।
तिशना चिचर=(१) प्रसफलकाम । (२) प्रशिलापी ।
तिशना खूँ=खून का व्यासा । खान का गाहक । तिशन खोदार=दशम की धृषा ।

तिशनाखन—वि० [प्रा० तिशनखन] १. बहुत व्यासा । तृपित । २. इच्छुक । उ०—मारख प चरमप कोसर नहीं । तिशनाखन हूँ खरबते दोबार का ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ६ ।

तिशनाह—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—बहु तरंग तिम्नाह राग बहु प्रेह कुरतो ।—पु० रा०, १७६७ ।

तिष—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—जब सूखे तब ही तिष बाये ।—प्राण०, पृ० १५ ।

तिष्ठी—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठित] स्थापित । निमित्त । उ०—कोठ कहै यह काज उपावत कोठ कहै यह ईश्वर तिष्ठी ।—सुंदर० प्र०, भा० ३, पृ० ६११ ।

तिष्ठदशु—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गोएँ चरकर अपने खूँटे पर आ जाती हैं । अध्या । सार्यकाज । गोघुषी ।

तिष्ठदोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक होम या यज्ञ जिसमें पुरोहित काड़ा रहकर प्राहुति प्रदान करता है (को०) ।

तिष्ठना—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] ठहरना । उ०—चोदहु भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठइ नहि कोई ।—तुलसी (सन्द०) ।

तिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की बंदी जो हिमाचल के पास से निकलकर नवाबगंज के पास गया से मिलती है ।

तिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र । २. पीप मास । ३. कलियुग । ४. पशुचक्र के एक भाई का नाम (को०) ।

तिष्य—वि० १. मांगल्य । कल्याणकारी । २. भाग्यवान (को०) । ३. तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न (को०) ।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पीप मास ।

तिष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

तिष्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी ।

तिष्यफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी (को०) ।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी । २. दीपति । चमक (को०) ।

तिष्यन—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—खल्य में पण्डित तिष्यन तेज जे सूर समाज में गान गने हैं ।—तुलसी (सन्द०) ।

तिष्यय—वि० [हि०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—प्रसिय मुख्य दंतलिय तरुन तिष्यय प्राधारिय ।—पु० रा० २।१५३ ।

तिसाँ—सर्व [सं० तस्य, पा० तिस्रं, प्रा० तस्य, तिस्र] 'ता' का एक रूप जो उसे बिभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है । जैसे, तिसने, तिसको, तिससे इत्यादि ।

विशेष—प्रब इस शब्दप्रकार का व्यवहार गद्य में नहीं होता, केवल 'तिसपर' का प्रयोग होता है ।

मुहा०—तिस पर=(१) उसके पीछे । उसके उपरांत । (२) इतना होने पर । ऐसी अवस्था में । जैसे,—(क) हमारी बीज को दे गए, तिसपर हमीं को बातें भी सुनाते हो । (ख) इतना मना किया, तिसपर भी वह चला गया ।

तिस—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष] दे० 'तृषा' । उ०—जित हितमय उचार प्रार्थनकर रस बरखत आतक तिस तें रे ।—चनानंद, पृ० १६४ ।

तिसखुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसी+खूँटी] तीसी के पीछों के छोटे छोटे बंडल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं । तीसी की खूँटी ।

तिससुर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तिससुट' ।

तिसटना—क्रि० प्र० [सं० तिष्ठ] स्थित रहना । उ०—ज्यौंरे पोड़ा सेंग जग, वैरी बणा बसंत । तिसटे दिन पोड़ा तिके, पाखे सत प्रसत ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

तिसडी—वि० [हि० तिस+डी (प्रत्य०)] बेसी । उस तरह की । उ०—नारी एक वीर उमै नर में, तिसडी न खखी सुपनतर में ।—रघु० क०, पृ० १३३ ।

तिसना—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा' ।

तिसरा—वि० [हि० तीसरा] [वि० स्त्री० तिसरी] दे० 'तीसरा' । उ०—सो प्रगटित बिज रूप करि इहि तिसरे प्रध्याइ ।—बद० प्र०, पृ० २३१ ।

तिसराना—क्रि० प्र० [हि० तिसरा से नामिक धातु] तीसरी बार करना ।

तिसरायाँ—क्रि० प्र० [हि० तिसरा] तीसरी बार ।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हि० तीसरा+घायत (प्रत्य०)] १. तीसरा होने का भाव । गैर होने का भाव । २. मध्यस्थ । बिचला ।

तिसरैत—संज्ञा पुं० [हि० तीसरा+एत (प्रत्य०)] १. दो प्रादमियों के रूपों से प्रत्येक एक तीसरा अनुष्य । तत्स्य । मध्यस्थ । २. तीसरे हिस्से का मालिक ।

तिसा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—बातें तिसा कभी न बिचारे । विषयन दोन हैहु प्रतिपारे ।—बद० प्र०, पृ० २११ ।

तिसाना—क्रि० प्र० [सं० तृषा] व्यासा होना । तृपित होना । उ०—देखि के विमृति सुख उपज्यो भभूत कोठ (चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं ।—प्रिया (सन्द०) ।

तिसाया—वि० [हि० तिसाना] तृपित । व्यासा । उ०—देमन है रहिलेबाँ सत्सा में कहाया । सारा कामछानी खून मेठा का तिसाया ।—बिचर०, पृ० ५७ ।

तिसिया०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृपित, प्रा० तिसिय] तृपित । प्यासा ।
उ०—या रहनी तैं पैकबर निपजै, तिसियां मरै संसारा ।
—गोरख०, पृ० २१३ ।

तिसी०—वि० [हि० तिस + ई (प्रत्य०)] उसी । उ०—साहो
लेता जनम गो तुय करै तिसी तोषी होई ।—बी० रासो,
पृ० ४४ ।

तिसु०—सर्व० [सं० तस्य, हि० तिस] उसको । उसे । उ०—जिन
चाखिया तिसु प्राया स्वादु । नानक बोले इहु बिसमाद ।—
प्राण०, पृ० १३४ ।

तिसो०—सर्व० [हि०] दे० 'तिस' । उ०—तक छीजो सोना तिसो
पातर वालो प्रेम ।—वांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ५ ।

तिसूत—सञ्ज्ञा पुं० [?] एक दवा का नाम ।

तिसूची^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + सूत] तीन तीन सूत के ताने
वाने से बुना हुआ कपड़ा ।

तिसूती^२—वि० तीन तीन सूत के ताने वाने से बुना हुआ ।

तिस्टा०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—नहिं भोजन
नहिं प्रास नही इंद्री की तिस्टा ।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६ ।

तिस्ना०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृष्णा' । उ०—काम क्रोध
तिस्ना मद माया । पाँचो चोर न छाड़हि काया ।—जायसी
ग्र० (गुप्त०), पृ० २०४ ।

तिस्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दपुष्पी ।

तिस्स—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिष्य] राजा अशोक के सयें भाई का नाम ।

तिह०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] तिया । स्त्री । उ०—बदनह बन्न ज्यों पाय
बिल्ल । तिह नाह पिष्य ज्यों सुभय सिल्ल ।—पु०-रा०, ३।४६ ।

तिहत्तर^१—वि० [सं० तिससति, पा० तिससति, प्रा० तिहत्तरि] जो
गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो । तीन ऊपर सत्तर ।

तिहत्तर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ सत्तर से तीन अधिक की संख्या । २ उक्त
संख्यासूचक अक्षर जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३ ।

तिहड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + प्र० हड़] वह स्थान जहाँ तीन हड्डें
मिलती हो ।

तिहरा^१—वि० [हि०] दे० 'तेहरा' ।

तिहरा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० प्रल्पा० तिहरी] दही जमाने या
दूध दुहने का मिट्टी का बरतन ।

तिहराना—क्रि० [हि० तेहरा] (किसी बात या काम को) तीसरी
बार करना । दो बार करके एक बार फिर धोर करना ।

तिहरी^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तेहरी' ।

तिहरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + हार] तीन लडो की माला ।

तिहरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ती + हड़ो] दूध दुहने या दही जमाने
का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तिहवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिस्रवार] पर्व या उत्सव का दिन । त्योहार
वि० दे० 'त्योहार' ।

तिहवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योहारी' ।

तिहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिह्व] १. रोग । २ चावल । ३ धनुष । ४.
अच्छाई । सद्भाव [को०] ।

तिहाई^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + भाग] १. तृतीयांश । तीसरा भाग ।
तीसरा हिस्सा ।

तिहाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० खेत की उपज । फसल । (पहले खेत की उपज
का तृतीयांश कायतकार लेता था, इसी से यह नाम पड़ा) ।
उ०—नई तिहाई के धंखुभा खेतन ज्यों ऊगत ।—प्रेमघन०,
भा० १, पृ० ४४ ।

मुहा०—तिहाई काटना = फसल काटना । तिहाई मारी जाना =
फसल का न उपजना ।

तिहाचा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ क्रोध । तेह । २ वैर । बिगाड़ । उ०—
हित सों हित रति राम सों रिपु सों वैर तिहाउ । उदासीन सब
सो सरल तुलसी सहज सुभाउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

तिहानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिशत लंबी और तीन भंगुल चौड़ी
लकड़ी जिसका काम चूड़ियाँ बनाने में पड़ता है ।

तिहायत^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तिहाई (= तीसरा)] दो प्रादमियों के मगड़े
से मलग एक तीसरा प्रादमी । तिसरेत । तृटस्थ । मध्यस्थ ।

तिहायत^२—वि० [हि०] तीन गुना । उ०—जन रज्जव सुरता बनी
लगी तिहाइत तेज ।—रज्जव० बानी, पृ० ५ ।

तिहाना०—वि० [सं० तृपित] १ प्यासा होना । २. प्रतृप्त होना ।
उ०—तबहु तू किछु पीता कि रहता तिहाय ।—प्राण०,
पृ० ६८ ।

तिहारा^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तिहारो०—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—भोर-तुम तो काहू
के घर जात भावत नाही । भोर प्राज तिहारो भावनो कैसे
भयो ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ६३ ।

तिहारो०—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—हो-पिय, यह कल
गीत तिहारो । महा-प्रनिल के बान प्रनिवारी ।—नद० ग्र०,
पृ० ३२० ।

तिहासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास की बोड़ी ।

तिहावा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेह (= गुस्सा, ताव)] १ क्रोध । कोप ।
२. बिगाड़ । अनबन ।

तिहि^१—सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—कालीदह सों पकरि ल्याय
नाच्यो तिहि सिर पर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६३ ।

तिहो०—वि० सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—भरत-ज-भो सवरो,
तिहो वैर गयो ग्राह ।—नद० ग्र०, पृ० १ ।

तिही०—सर्व० [हि०] दे० 'तेहि' । उ०—पटुली फनक की तिही
वानक की बनी मनमोहनी ।—नद० ग्र०, पृ० ३७५ ।

तिहुँलोक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीन + हूँ (प्रत्य०) + लो०] तीन-लोक
स्वर्ग, मर्त्य, पाताल । उ०—राम यह तिहुँलोक समझ । कर्म
भोग भी खानि रहाई ।—घट०, पृ० २२२ ।

तिहुँ—वि० [हि० तीन + हूँ (प्रत्य०)] तीन । तीनों जैसे, तिहुँ लोक ।
तिहुँयन०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—करिष्ये विनति
सों ए प्रायव जन्हि बिनु तिहुँयन सीत ।—विद्यापति, पृ० १६६ ।

तिहैया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तिहाई] १ तीसरा भाग । तृतीयांश । २.
तबले मृदंग आदि की वे तीन पापें जिनमे से प्रत्येक पाप

प्रतिम या समवाले ताल को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम थाप ठीक समय पर पड़ती है।

विह्वल^७—सर्व [हि०] दे० 'तिन'। उ०—विह्वल के मरत नहिं मुएव साज गहि बनन सिधाएउ।—प्रकवरी०, पृ० ६६।

ती^७—सका स्त्री० [सं० स्त्री] १ स्त्री। औरत। उ०—हैं कव माभत तो इतै सखी लियार्ई धेरि।—सं० सप्तक, पृ० ३७६। २ जोरु। पत्नी। ३ मनोहरण छंद का एक नाम। अमरावली। नलिनी।

तीव्रता^७—सका स्त्री० [सं० तृणान्ति] शाक। भाजी। तरकारी।

तीकरा^७—सका पुं० [दश०] बीज से फूटकर निकला हुआ फल। मंथुप्रा।

तीकुर^७—सका पुं० [हि० तीन+कुरा (=प्रश)] फसल की वह बँटाई जिसमें एक, तिहाई प्रश जमींदार और दो तिहाई काश्तकार सेवा है। तिहाई।

तीक्ष्ण^७—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तीक्ष्ण^७—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—प्रायस क्रिय तीक्ष्ण मनिय सेस मय्य श्रमनीन।—प० रासो, पृ० ३।

तीक्ष्ण^७—वि० [सं०] १ तेज नोक या धारवाला। जिसकी धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके। जैसे, तीक्ष्ण भाण। २ तेज। प्रखर। तीव्र। जैसे, तीक्ष्ण शोध, तीक्ष्ण बुद्धि। ३ उग्र। प्रचंड। तीखा। जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव। ४ जिसका स्वाद बहुत चटपटा हो। तेज या तीखे स्वादवाला। ५ जो (वाक्य या बात) सुनने में प्रश्रित हो। कर्ण-कटु। जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर। ६ भास्मत्प्राणी। ७ निरालस्य। जिसे भालस्य न हो। ८ जो सहन न हो। प्रसह्य।

तीक्ष्ण^७—सका पुं० [सं०] १ उत्ताप। गरमी। २ विष। जहर। ३ इस्पात। लोहा। ४ युद्ध। लड़ाई। ५ मरणा। मृत्यु। ६ शास्त्र। ७ समुद्रो नमक। करकच। ८ मुष्कक। मोला। ९ वस्त्रनाभ। वस्त्रनाग। १० चर्म। चाव। ११ महामारी। मरी। १२ सवदार। जवाहार। १३ सफेद कुशा। १४ कुदुर पोद। १५ योगी। १६ ज्योतिष में मूल, मार्या, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति।

तीक्ष्णकटक^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णकटक] १ धतूरे का पेड़। २ बज्र का पेड़। ३ दूगुदी का पेड़। ४ करील का पेड़।

तीक्ष्णकटका^७—सका स्त्री० [सं० तीक्ष्णकटका] एक प्रकार का वृक्ष जिसे फकारी कहते हैं।

तीक्ष्णकंद^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णकंद] पलांडु। प्याज।

तीक्ष्णक^७—सका पुं० [सं०] १ मोखा वृक्ष। २ सफेद सरसो।

तीक्ष्णकर्मा^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णकर्मा] उरसाही व्यक्ति [को०]।

तीक्ष्णकर्मा^७—वि० उरसाही [को०]।

तीक्ष्णकल्क^७—सका पुं० [सं०] तुलसी का वृक्ष।

तीक्ष्णकाता^७—सका स्त्री० [सं० तीक्ष्णकाता] कालिकापुराण के अनुसार तारा देवी का नाम।

विशेष—इनका ध्यान कृष्णवर्णा, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है। इनके पूजन से प्रमोद का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षोरी^७—सका स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

तीक्ष्णगंध^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णगन्ध] १ सङ्खजन का पेड़। २ लास तुलसी। ३ लोबान। ४ छोटी इलायची। ५ सफेद तुलसी। ६ कुदुर नामक गन्धद्रव्य।

तीक्ष्णगन्धक^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णगन्धक] सहिजन।

तीक्ष्णगंधा^७—सका स्त्री० [सं० तीक्ष्णगन्धा] १ श्वेत वच। सफेद वच। २ कपारी का वृक्ष। ३ राई। ४ जीवन्ती। ५ छोटी इलायची।

तीक्ष्णतंडुला^७—सका स्त्री० [सं० तीक्ष्णतण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता^७—सका स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप^७—सका पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेल^७—सका पुं० [सं०] दे० 'तीक्ष्णतेल'।

तीक्ष्णतेल^७—सका पुं० [सं०] १ राल। २ सेहूँ का दूध। ३ मदिरा। शराब। ४ सरसों का तेल।

तीक्ष्णत्व^७—सका पुं० [सं०] दे० 'तीक्ष्णता'। उ०—इन दोनों के साधारण धर्म कपिलत्व या तीक्ष्णत्व के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है।—संपूर्णा, अग्नि० प्र०, पृ० ३३६।

तीक्ष्णदंत^७—सका पुं० [सं० तीक्ष्णदन्त] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हो।

तीक्ष्णदंष्ट्र^७—सका पुं० [सं०] बाघ।

तीक्ष्णदंष्ट्र^७—वि० तेज दाँतवाला। जिसके दाँत तेज हो।

तीक्ष्णदृष्टि^७—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार^७—सका पुं० [सं०] खड्ग।

तीक्ष्णधार^७—वि० जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र^७—सका पुं० [सं०] १ तुंबुर। धनिया। २ एक प्रकार का गन्ना।

तीक्ष्णपत्र^७—वि० जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प^७—सका पुं० [सं०] लवंग। लोंग।

तीक्ष्णपुष्पा^७—सका स्त्री० [सं०] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय^७—सका पुं० [सं०] जी।

तीक्ष्णफल^७—सका [सं०] तुंबुर। धनिया।

तीक्ष्णफल^७—वि० जिसका फल कड़वा हो [को०]।

तीक्ष्णफला^७—सका स्त्री० [सं०] राई।

तीक्ष्णबुद्धि^७—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो। कुप्राय बुद्धिवाला। बुद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी^७—सका स्त्री० [सं० तीक्ष्णमञ्जरी] पान का पोषा।

तीक्ष्णमार्ग^७—सका पुं० [सं०] तखवार [को०]।

तीक्ष्णमूल^७—सका पुं० [सं०] १ कुसुम। २ सङ्खजन।

तीक्ष्णमूल^७—वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

श्रीदण्डरश्मि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

श्रीदण्डरश्मि^२—वि० जिसकी किरणें बहुत तेज हो ।

श्रीदण्डरश्मि^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यवसार । जवाखार । २. शोरा ।

श्रीदण्डरश्मि^४—वि० चरपरे रसवाला [को०] ।

श्रीदण्डलौह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इस्पात ।

श्रीदण्डशूक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

श्रीदण्डशूक^२—वि० जिसके दूँड़ पैने हों [को०] ।

श्रीदण्डशृंग—वि० [सं० तीक्ष्णशृङ्ग] जिसके सींग पैने या नुकीले हों [को०] ।

श्रीदण्डसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोहा [को०] ।

श्रीदण्डसारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

श्रीदण्डांशु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

श्रीदण्डा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बच । २. कैलाच । ३. संप्रकाशी पृथ्वी । ४. बड़ी मानकंगनी । ५. अत्यम्बपर्यायिता । ६. मित्र । ७. बौक । ८. तारा देवी का एक नाम ।

श्रीदण्डाग्नि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रबल जठराग्नि । २. धमीर्ण रोष ।

श्रीदण्डाग्र—वि० [सं०] जिसका अग्रज भाग तेज या नुकीला हो । पैनी नोकवाला ।

श्रीदण्डायस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा ।

शीखा^१—वि० [हिं०] दे० 'तीखा' । उ०—अनिल प्रबल वन मलयज शीख । जेह छल सीतल सेह भेल तीख ।—विद्यापति, पृ० १६६

शीखन^१—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

शीखर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

शीखर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

शीखा^२—वि० [सं० तीक्ष्ण] [वि० शी० तीखी] १. जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो । तीक्ष्ण । २. तेज । तीव्र । प्रखर । ३. उग्र । प्रचंड । जैसे, शीखा स्वभाव । ४. जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो । जैसे,—(क) तुम तो बड़े तीखे दिलवादी पड़ते हो । (ख) यह लड़का बहुत तीखा होया । ५. जिसका स्वाद बहुत तेज या खरपरा हो । जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो । ७. खोखा । बढ़िया । अच्छा । जैसे,—यह कपड़ा उससे तीखा पड़ता है ।

शीखा^३—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

शीखापन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० शीखा + पन] पैनापन । तीक्ष्णता [को०] ।

शीखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] रेसम फेरनेवालों का काठ का एक धोखार जिसके बाज में गज डालकर उसपर रेसम फेरते हैं ।

शीखुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तबखीर] हजरी की जाति का एक प्रकार का पोषा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—अच्छी तरह जोती हुई जमीन में बाड़े के आरम्भ में इसके कंद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिंचाई की जाती है । पूरा माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पत्तों का समझा जाता है । उस समय इसकी जड़ खोदकर

पानी में खूब धोकर कुटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बढ़िया मैदे की तरह होता है । यही सत्त बाजारों में तीखुर के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार कई तरह की मिठाइयों, खट्टे, सेब, जलेबी आदि बनाने में होता है । हिंदु लोग इसकी गणना 'फलाहार' में करते हैं । इसे पानी में घोड़कर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं । अब एक प्रकार का तीखुर विजायत से भी माता है जिसे भराकट कहते हैं । वि० दे० 'भराकट' ।

तीखुल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीच्छन^१—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—उत्तमांग नहि सिन्धु-ब्रिय करत न तीच्छन दत्त ।—प० रासो, पृ० २ ।

तीछन^२—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक कामिनी बड़ी दोक है तीछन वारा । तब बचिहै तरजून रहै छुरी से न्यारा ।—फलकू, भा० १, पृ० ५३ ।

तीछनता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] दे० 'तीक्ष्णता' ।

तीछे^१—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा' । उ०—दूरि तें दूर नजीक तें नोरे हि अण्डे तें आकी है तीछे तें तीछी ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० १५७७ ।

तीज—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया] १. प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । २. हरतालिका तृतीया । भादों सुदी तीज । वि० दे० 'हरतालिका' । उ०—इद्रावति मन प्रेम पियारा । पढ़ाया भाइ तीज तेवहारा ।—इद्रा०, पृ० ६० ।

तीजना^१—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तजना' । उ०—मुखि राजा अपढ़ धयाए हूँ किम चालुं एकली ? धा गइ गोरी तीजइ परीण ।—बी० रासो, पृ० ८२ ।

तीजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तीज] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन ।

विशेष—इस दिन मृतक के सवधी गरीबों को रोटीयाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं ।

तीजा^२—वि० [वि० स्त्री० तीजी] तीसरा । तृतीय । उ०—के दिन सिरजे सो सही, तीजा कोई गीहि ।—रजव०, पृ० ३ ।

तीजापन^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तीजा + पन (प्रत्यय)] तीसरी अवस्था । उ०—तीजापन में कुटुंब भयी तब पति अभिमान बढ़ायो रे ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ६६ ।

तीजी^१—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तीजा' । उ०—तीजी रानी है मनप्री । तया काण्य न माने कोई ।—कबीर सा०, पृ० ५५० ।

तीड़ा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिहो' । उ०—तीड़ा करसण सूँदियों, बाबरहा तूँ बाग ।—बीकी० प्र०, भा० २, पृ० ६३ ।

तीड़ी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिहो' । उ०—मंत्र सकसी मंत्र सूँ, ज्यों तीड़ी से जाय ।—रा० क०, पृ० १७६ ।

तीता^१—वि० [सं० तित्त] दे० 'तीता' । उ०—करिष्य विनति सौ
एँ प्रायश्च वन्हि बिनु तिट्ठमन तीत ।—विद्यापति, पृ० १६६ ।

तीतना^२—क्रि० प्र० [हि०] भोगना । गीला होना । उ०—
प्रसन्नहि तीतल तेंहि भति सोभा । प्रलिकुल कमल वेदल मुख
सोभा ।—विद्यापति, पृ० ३१६ ।

तीतर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तित्तिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त पशुप्रा
णीय पशुओं में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका
में भी होती है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है और केवल सोने के समय
को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है । यह बहुत
तेज शक्ति है और पारत में प्रायः कपास, गेहूँ या चावल
के बेलों में बांध में फँसाकर पकड़ा जाता है । इसका घोंसला
घमेल पर ही होता है और इसके घड़े चिकने और चन्देदार
होते हैं । जो यह कहने के लिये पावते, इसका शिकार करते
और मांस खाते हैं । बेलों में इसके मांस को बचिकारक,
बधु, बौर्य-बल-वर्धक, कपास, मधुर, ठंडा और श्वास, कास,
ज्वर तथा त्रिदोषनाशक माना है । प्रायःप्रकाश के अनुसार
कहते तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस
अधिक उत्तम होता है ।

तीता^४—वि० [सं० तित्त] १ बिचका स्वाध तीता और चरपरा
हो । तित्त । लैदे, मिचं ।

विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तित्त और कटु में भेद माना है, पर
प्रायःकाल साधारण बोलचाल में 'तीता' और 'कटुमा' दोनों
'बन्नों' का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है । कुछ प्रांतों में
केवल 'कटुमा' शब्द का व्यवहार होता है और उससे तात्पर्य
भी बहुत एक ही रस का होता है । जिन प्रांतों में 'तीता'
और 'कटुमा' दोनों बन्नों का व्यवहार होता है, वहाँ भी इन
दोनों के कोई विशेष भेद नहीं माना जाता ।

२ कटुमा । कटु ।

तीता^५—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ खोलने बोलने की बमोन का गीलापन ।
२ ऊपर भूमि । ३ टेकी या रूढ़ का मगला भाग । ४
ममीरे के भाग का एक नाम ।

तीता^६—वि० [हि०] भीगा हुआ । गीला । नम ।

तीति^७—वि० स्त्री० [हि० तीत] तित्त । उ०—माजु बसलि काजि
जहें बेंचलि तीति होइति मधु धामिनि रे ।—विद्यापति,
पृ० ६४ ।

तीतिर^८—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीतर' । उ०— तीतिर को
बोमल के दास्ते घुमाया करते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ४३ ।

तीती^९—वि० [हि०] दे० 'तीता' । उ०—तख्त और सुनी है
उषा घन, पाप है स्याम वही कोऊ तीती ।—नट०, पृ० ३५ ।

तीतुरी^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तीतर] दे० 'तीतर' ।

तीतुरी^{११}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरी' ।

तीतुरी^{१२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीतर] मगदा तीतर । तीतरी ।
उ०—हसा हरेई राजि । तीतुरिय ताँबी राजि ।—ह० रासो,
पृ० १२५ ।

तीतुल^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० तीतुली] दे० 'तीतर' ।

तीन^{१४}—वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो । जो गिनती के
चार से एक कम हो ।

तीन^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० १ दो और चार के बीच की संख्या । दो और ५
का जोड़ । २ उक्त संख्यासूचक शब्द जो इस प्रकार लिख
जाता है—३ ।

यौ०—तीन ठाग = जनेक । यक्षोपवीत । उ०—ना मे तोंग ज्ञान
गधि नाजें । ना में सुनत करि बोरजें ।—मुद्गर० पृ०,
भा० १ (भू०), पृ० ४८ ।

मुहा०—तीन पाँच करना = इधर उधर करना । घुमाव फिरोक
या हलचल की बात करना ।

तीन^{१६}—सञ्ज्ञा पुं० सरयूपारी जालियों में तीन गोत्रों का एक वर्ग ।

विशेष—सरयूपारी जालियों में सोलह गोत्र होते हैं जिनमें से
तीन गोत्रवालों का एकत्र वर्ग है और षेरह गोत्रवालों का
दूसरा वर्ग है ।

मुहा०—तीन ढेरह करना = तितर बितर करना । इधर उधर
छितराया या पसरा पसरा करना । उ०—कियो तीन ढेरह
पड़े चौका चौका धाय ।—हरिवंश (पृष्ठ०) । ४ तीन में, ४
ढेरह में = जो किसी पिनदी में न हो । बिदे कोई पृथक् न
हो । उ०—कुंघ कान नाम कहीं पैये मोतें पानराय बूझ हुम
झरे हैं न ढेरह न तीन में ।—हनुमान (पृष्ठ०) ।

तीन^{१७}—संज्ञा स्त्री० [हि०] तिन्नी का भाव ।

तीनपान—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्य जिसकी
मोटाई कम से कम एक फुट होती है (लघ०) ।

तीनपाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीनपान' ।

तीनलकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तीन + लकी] लकी में पहनने की एक
प्रकार की माला जिसमें तीन लकड़ियाँ होती हैं । तिलकी ।

तीनि^{१८}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तीन' ।

तीनि^{१९}—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—बर बरनी, वरनी
रंग भीनी । दासी भीनि तीनि सत बीनी ।—नव० प्र०,
पृ० २२१ ।

तीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तिन्नी] तिन्नी का भाव ।

तीपड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] देखी कपड़ा बुननेवालों का एक धोजार
जिसके नीचे ऊपर दो सक्ड़ियाँ सगी रहती हैं जिन्हें बेसर
कहते हैं ।

तीमार—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] रोगी की देखभाल । देवा शुश्रूषा [स्त्री०] ।

तीमारदार—वि० [क्रा०] परिचर्या करनेवाला । उ०—यसि बर
बीमार तो कोई न हो तीमारदार । और अगर मर आइए तो
नोहाला कोई न हो ।—कविता स्त्री०, भा० ४, पृ० ४७१ ।

तीमारदारो—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] रोगियों की सेवा शुश्रूषा का काम ।

तीय^{२०}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री । औरत । नारी । उ०—पति
देवता तीय जगधन धन गावत देव पुरात ।—भारतेंदु प्र०,
भा० १, पृ० ६७६ ।

तीय^{२१}—वि० [सं० तृतीय] तीसरा ।

तीया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'तीय' ।

तीया^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिक्की' या 'तिडी' ।

तीरंदाज—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तीरंदाज] वह जो तीर चलाता हो । तीर चलातेवाला ।

तीरंदाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तीरंदाजी] तीर चलावे की विद्या या क्रिया ।

तीर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नदी का किनारा । कूल । तट । उ०—
विच विच कथा विचित्र विभागा । अनु सरि तीर तीर बन
बागा ।—मानस, १।४० ।

२ पास । समीप । निकट ।

विशेष—इस प्रर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का छोप करके
क्रियाविशेषण की तरह होता है ।

३ सीसा नामक धातु । ४. रागा । ५. गंगा का तट (को०) । ६
एक प्रकार का बाण (को०) ।

तीर^४—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] बाण । शर । उ०—तीरों उभर तीर
सहि, सेलां उपर सेज ।—हम्मीर०, पु० ४८ ।

विशेष—यद्यपि पंचदशी प्रादि कुछ प्राधुनिक प्रर्थों में तीर शब्द
बाण के प्रर्थ में आया है, तथापि यह शब्द वास्तव में है
फारसी का ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—छोड़ना ।—फेंकना ।—सपना ।

मुहा०—तीर चलाना=युक्ति भिड़ाना । रग डगलाना ।
वेधे,—तीर तो गहरा चलाया था, पर खाली गया । तीर
फेंकना=दे०='तीर चलाना' । लगे तो तीर नहीं तो बुक्का=
कार्यसिद्धि पर ही साधन की उपयोगिता है ।

तीर^५—सञ्ज्ञा पुं० [?] अस्त्र का मस्तूल ।

तीर^६—वि० [हिं० तिरना (= पार करना)] पारंगत । पारकार ।
उ०—बादशाह करे जिकीर सच्च हिंदु फकीर । ब्रह्मज्ञान में
तीर रणधीर भाए हैं ।—दक्खिनी०, पु० ५० ।

तीरकस^७—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तीरकस] तरकस । उ०—लिप
सपाइ तीरकस भारे ।—हम्मीर०, पु० ३० ।

तीरकारी^८—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० तीर+कारी] बाणों की वर्षा ।
उ०—यई तीरकारी छुटे नाख बान । परी सोर की धुंध
सुभई न भान ।—पु० रा०, १।४५१ ।

तीरगर—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] वह जो तीर बनाता हो । तीर बनानेवाला
कारीगर । उ०—गुरु कीन्हों धक्कीसवों वाहि तीरगर जान ।
—मनविरक्त०, पु० २६७ ।

तीरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किनारे पर का बुझ (को०) ।

तीरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करंज ।

तीरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' । उ०—तीरथ बनादि
पञ्चगंगा मनोकनिकादि सात आवरण मध्य पुन्य रूपी घसी
है ।—भारतेंदु प्र० भा० १, पु० २८१ ।

विशेष—तारथ के योगिक शब्दों के लिये दे० 'तीर्थ' के
योगिक शब्द ।

तीरथपति^९—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तीरथ+पति] तीर्थराज । प्रयाग ।

उ०—प्राथ मकर गत रवि जब होई । तीरथपतिहि प्राब सब
कोई ।—मानस, १।४४ ।

तीरभुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गङ्गी घोर कोशिकी इन तीन
नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश ।

तीरवर्ती—वि० [सं० तीरवर्तिन्] १. तट पर रहनेवाला । किनारे
पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला । पास रहनेवाला ।
पड़ोसी । ३. तीरस्थ । तीर पर स्थित ।

तीरस्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नदी के तीर पहुँचाया हुआ मरणासन्न
व्यक्ति ।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि गेगी जब मरने को
होता है, तब उसके सबधी पहले ही उसे नदी के तीर पर ले
जाते हैं, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना
अधिक उत्तम समझा जाता है ।

२. तीर पर स्थित । तीर पर बसा हुआ ।

तीरा^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीर' ।

तीराट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोच ।

तीरित—वि० [सं०] निरुण्य किया हुआ । कै किया हुआ (को०) ।

तीरित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कार्य की पूर्णता या समाप्ति । २. रिरवत या
अन्य साधनों से दंडित होने से बचना (को०) ।

तीरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । महादेव । २ शिव की स्तुति ।

तीर्य—वि० [सं०] १ जो पार हो गया हो । उत्तीर्ण । २ जो
सीमा का उल्लंघन कर चुका हो । ३. जो भीगा हुआ
हो । तरबतर ।

तीर्यपदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूच । मुद्गनी ।

तीर्यपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तीर्यपदा' ।

तीर्यप्रतिज्ञा—वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हो (को०) ।

तीर्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक
नगण घोर एक गुण (॥१५) होता है । इसको 'सती', 'तिन्व'
घोर 'तरणिजा' भी कहते हैं । जैसे, नगपत्नी । बनसती । शिव
कहो । मुख लहो ।

तीर्थकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तीर्थंकर] १. जैनियों के उपास्य देव जो
देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित,
मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं । इनकी मूर्तियाँ दिगंबर
बनाई जाती हैं और इनकी प्राकृति प्रायः बिलकुल एक ही
होती है । केवल उनका वस्त्र और उनके सिंहासन का आकार
ही एक दूसरे से भिन्न होता है ।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए थे जिनके नाम ये
हैं—१. केवलज्ञानो । २. निर्वाणो । ३. सागर । ४. महाशय ।
५. विमलनाथ । ६. सर्वानुभूति । ७. श्रीधर । ८. दत्त ।
९. वामोदर । १०. सुतेज । ११. स्वाधी । १२. मुनिसुव्रत ।
१३. सुमति । १४. शिवगति । १५. यस्ताग । १६. नेमोश्वर ।
१७. धनल । १८. यशोधर । १९. कृतार्थ । २०. जितेश्वर ।
२१. शुद्धमति । २२. शिवकर । २३. स्यदन और । २४.
सप्रति । वर्तमान प्रवर्तपिणी के प्रारंभ में जो चौबीस तीर्थंकर
हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

१. ऋषभदेव । २. भजितनाथ । ३. सभवनाथ । ४. भूमिन्दन ।
५. सुप्रतिनाथ । ६. पद्मप्रभ । ७. सुवासनाथ । ८. चन्द्रप्रभ ।
९. सुबुधिनाथ । १०. शीतलनाथ । ११. श्रेयासनाथ । १२.
वासुपूज्य स्वामी । १३. विमलनाथ । १४. धनंतनाथ । १५.
धर्मनाथ । १६. शातिनाथ । १७. कुसुनाथ । १८. धर्मरनाथ ।
१९. मल्लिनाथ । २०. मुनि सुवत । २१. नमिनाथ । २२.
नेमिनाथ । २३. पार्श्वनाथ । २४. महावीर स्वामी । इनमें से
ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगाभ्यास
में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई
जाती हैं ।

२. विष्णु (को०) । ३. शास्त्रकर्ता (को०) ।

तीर्थकृत—सच्चा पुं० [सं० तीर्थकृत्] १. धैतियों के देवता । जिन ।
२. शास्त्रकार ।

तीर्थ—सच्चा पुं० [सं०] १. वह पवित्र वा पुण्य स्थान जहाँ धर्म-
भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते
हैं । जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ,
गया, द्वारका आदि, अथवा मुसलमानों के लिये मक्का
और मदीना ।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं,—
(१) जगम, जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि, (२) मानस,
जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दान, सतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुर
भाषण आदि; और (३) स्थावर, जैसे, काशी, प्रयाग, गया
आदि । इस शब्द के अंत में 'राज', 'पति' अथवा इसी
प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है,—
तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग । तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट
माने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में सिर मुँड़ाकर आदर करने
और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है ।

२. कोई पवित्र स्थान । ३. हाथ में के कुछ निश्चित स्थान ।

विशेष—दाहिने हाथ के अंगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अंगूठे
और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे
का भाग प्राजापत्य तीर्थ और उँगलियों का अगला भाग देव-
तीर्थ माना जाता है । इन तीर्थों से क्रमशः आश्विन, पिंडदान,
पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है ।

४. शास्त्र । ५. यज्ञ । ६. स्थान । ७. उपाय । ८. अवसर ।
९. नारीरज । रजस्वला की रक्त । १०. अवतार । ११.
चरणामृत । देव-स्नान-जन । १२. उपाध्याय । गुरु । १३.
मन्त्री । अमात्य । १४. योनि । १५. दर्शन । १६. घाट । १७.
ब्राह्मण । विप्र । १८. निशान । कारण । १९. अग्नि । २०.
पुण्यकाल । २१. सन्यासियों की एक उपाधि । २२. वह जो
तार दे । तारनेवाला । २३. वैरभाव को त्यागकर परस्पर
उचित व्यवहार । २४. ईश्वर । ५. माता पिता । २६.
पतिथि । मेहुमान । २७. राष्ट्र की अठारह संपत्तियाँ ।

विशेष—राष्ट्र की इन अठारह संपत्तियों के नाम हैं,—(१)
मन्त्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५)
द्वारपाल, (६) मंत्रवैसिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) द्रव्य-
४-५६

सचयकारक, (९) कृत्याकृत्य अर्थ का विनियोजक, (१०)
प्रदष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निमणिकारक,
(१३) धर्माध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दण्डपाल, (१६)
दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रातपाल और (१८) अष्टवीपाल ।

२८. मार्ग । पथ (को०) । २९. जलाशय (को०) । ३०. साधना ।
माध्यम (को०) । ३१. स्रोत । मूल (को०) । ३२. मंत्रणा ।
परामर्श । जैसे कृततीर्थ = जो 'मंत्रणा' कर चुका हो । ३३.
चात्वाल और उरकर के बीच का वेदी का पथ (को०) ।

तीर्थ—वि० १. पवित्र । पावन । पूत । २. मुक्त करनेवाला ।
रक्षक (को०) ।

तीर्थक—सच्चा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण । उ०—युवागवाग कहते हैं कि
मिथ्यादृष्टि के तीर्थक भी ऐसा ही कहते हैं ।—संपूर्णो० अमि०
अ०, पु० ३५४ । २. तीर्थकर । ३. वह जो तीर्थ की यात्रा
करता हो ।

तीर्थक—वि० १. पवित्र । २. पूज्य (को०) ।

तीर्थकमंडलु—सच्चा पुं० [सं० तीर्थकमण्डलु] वह कमंडलु जिसमें
तीर्थजल हो (को०) ।

तीर्थकर—सच्चा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. जिन । ३. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थकाक—सच्चा पुं० [सं०] १. तीर्थ का कीवा । २. अत्यंत लोभी
व्यक्ति (को०) ।

तीर्थकृत—सच्चा पुं० [सं०] १. जिन । २. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थचर्या—सच्चा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा (को०) ।

तीर्थदेव—सच्चा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

तीर्थपति—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'तीर्थराज' ।

तीर्थपाद—सच्चा पुं० [सं०] विष्णु ।

तीर्थपादीय—सच्चा पुं० [सं०] वैष्णव ।

तीर्थपुरोहित—सच्चा पुं० [सं०] तीर्थ का पंडा (को०) ।

तीर्थयात्रा—सच्चा स्त्री० [सं०] पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये
जाना । तीर्थटन ।

तीर्थराज—सच्चा पुं० [सं०] प्रयाग ।

तीर्थराजि—सच्चा स्त्री० [सं०] काशी (को०) ।

तीर्थराजी—सच्चा स्त्री० [सं०] काशी ।

विशेष—काशी में सब तीर्थ हैं, इसी से यह नाम पड़ा है ।

तीर्थवाक—सच्चा पुं० [सं०] सिर के घात (को०) ।

तीर्थवायस—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'तीर्थकाक' (को०) ।

तीर्थविधि—सच्चा स्त्री० [सं०] तीर्थ में करणीय कार्य । जैसे,
क्षीरकर्म (को०) ।

तीर्थशिला—सच्चा स्त्री० [सं०] घाट तक जानेवाली पत्थर की
सीढ़ियाँ (को०) ।

तीर्थशौच—सच्चा पुं० [सं०] तीर्थस्थल पर घाट आदि का परिष्कार
करने या कराने की क्रिया (को०) ।

तीर्थसेनि—सच्चा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तीर्थसेवी^१—वि० [सं० तीर्थसेविन्] धार्मिक भाव से तीर्थ में रहने-वाला [को०] ।

तीर्थसेवी^२—सका पुं० बहुला [को०] ।

तीर्थोदन—सका पुं० [सं०] तीर्थयात्रा ।

तीर्थिक—सका पुं० [सं०] १. तीर्थ का प्रहण । पहा । २. बोनों के अनुसार घोटधर्म का विद्वेषी ब्राह्मण । ३. तीर्थवर ।

तीर्थिया—सका पुं० [सं० तीर्थ + हि० इया (प्रत्य०)] तीर्थकरों को माननेवाला, जेबी ।

तीर्थभूत—वि० [सं०] १. पवित्र । शुद्ध । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थोद्भूत—सका पुं० [सं०] तीर्थ का पवित्र जल [को०] ।

तीर्थ्य^१—सका पुं० [सं०] १. एक कन्न का नाम । २. सहपाठी ।

तीर्थ्य^२—वि० तीर्थ से संबंधित [को०] ।

तीर्न—सका पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ' ।

तील^१—सका पुं० [हिं०] दे० 'तिल' । उ०—सलडि तील तेज चरये नीर चरगे बाई । नाव बिष मीठी पड़िना मववा कही प बाई । —रामानंद०, पु० १५ ।

तीलखा—सका पुं० [देश०] एक प्रकार की बिड़िया ।

तीला—सका पुं० [क्रा० और] तिषका । बिसेषत बड़ा तिषका ।

तीली—सका बी० [क्रा० ती (= घाण)] १. बड़ा तिलका । पीक । २. बाहु घाघि का पतला, पर कड़ा छार । ३. करघे में डरकी की वह सीक-जिसमें नरी पहनाई जाती है । ४. तीलियों की वह कुँबी जिससे जुलाहे सुत साफ करते हैं । ५. पत्तों का वह घोंचिर जिससे वे रेखम सपेटते हैं । इसमें जोड़े का एक छार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल हुकड़ा लगा रहता है ।

तीव^१—सका बी० [सं० स्त्री] स्त्री । घोरत ।

तीव^२—सका बी० [हिं०] दे० 'टीव' । उ०—टीवइ बंधव सुख सरीक । समुद्र बहिरि सोई तब बाक । —जायसी (ब्रज०) ।

तीवनी—सका पुं० [सं० तेमन (= व्यसन)] १. पकवाव । २. रस्तेदार वरकारी ।

तीवर—सका पुं० [सं०] १. समुद्र । २. व्यावा । बिहारी । ३. घोवर । मछुपा । ४. एक वणप्रकर प्रत्यय प्राति ।

विशेष—यह ब्रह्मदेवर्षि पुराण के अनुसार रावपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से बना पराशर के मत से रावपूत माता और पुरुष पिता के गर्भ से उत्पन्न है । कुछ लोग तीवर और घोवर को एक ही मानते हैं । स्मृति के अनुसार तीवर की स्पर्श करने पर स्वाय करने की आवश्यकता होती है ।

तीव्र^१—वि० [सं०] १. अतिशय । अत्यंत । २. तीक्ष्ण । तेज । ३. बहुत गरम । ४. नितांत । बेहद । ५. कटु । कड़वा । ६. दुःसह । असह्य । न सहने योग्य । ७. प्रचंड । ८. तीखा । ९. वेगयुक्त । तेज । १०. कुछ ऊँचा और अनेक स्थान से बढ़ा हुआ (स्वर) ।

विशेष—संगीत में ५ स्वरों—ऊपम, गाधार, मध्यम, धैवत और निषाद के तीव्र रूप होते हैं । वि० दे० 'कोमल' ।

तीव्र^२—सका पुं० १. जोड़ा । २. इस्पात । ३. नदी का किनारा । ४. शिव । महादेव ।

तीव्रकंठ—सका पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरज । जमीकद । झोल ।

तीव्रकंद—सका पुं० [सं० तीव्रकण्ड] सूरज [को०] ।

तीव्रगंधा—सका बी० [सं० तीव्रगन्धा] प्रजवायन । यवानो ।

तीव्रगंधिका—सका बी० [सं० तीव्रगन्धिका] दे० 'तीव्रगंधा' ।

तीव्रगति^१—सका स्त्री०, पुं० [सं०] वायु । हवा ।

तीव्रगति^२—वि० तेज जाबजाबा [को०] ।

तीव्रगामी—वि० [सं० तीव्रगामिन्] [वि० बी० तीव्रगामिनी] तेज गतिवाला । तेज भाव का ।

तीव्रज्वाला—सका बी० [सं०] धव का कूब जिसके कूबे से जोय रुहते हैं, जरीर में जाव हो जाता है ।

तीव्रता—सका बी० [सं०] तीव्र का भाव । तीक्ष्णता । तेजी । तीव्रापव । प्रखरता ।

तीव्रश्रुति—सका पुं० [सं०] सुयं [को०] ।

तीव्रबंध—सका पुं० [सं० तीव्रबंध] तमोगुण [को०] ।

तीव्रवेदना—सका पुं० [सं०] अत्यधिक पीड़ा । भयकर दुःख [को०] ।

तीव्रसंवेग—वि० [सं०] दृढ़ निश्चयवाला । अटल [को०] ।

तीव्रसम—सका पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का पक्ष ।

तीव्रा—सका बी० [सं०] १. पञ्च स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति । २. मकरिणी । सुरासानी प्रजवायन । ३. राई । ४. बाँडर मुख । ५. तुलसी । ६. बड़ी मालकौबनी । ७. कुटकी । ८. तरवी मुख ।

तीव्रानंद—सका पुं० [सं० तीव्रानन्द] महादेव । शिव [को०] ।

तीव्रानुराग—सका पुं० [सं०] १. वैधियों के अनुसार एक प्रकार का प्रतिहार । परस्त्री या परपुत्र के प्रसंग अनुसार करना प्रजा काम की बुद्धि के बिधे पकीम, कस्तूरी पाबि खाया । २. अत्यधिक प्रेम [को०] ।

तीस^१—वि० [सं० तिस्रति, पा० तीसा] जो बिनहीं में जनबोच के बाह्य और इज्जतीय के पहले हो । जो दस का बिनुता हो । बीस और दस ।

तीस^२—तीनों बिन या बीस बिंद = दस । हमेबा । तीसमार चाँ = बहुत बीर । बड़ा बहादुर (अग्य) ।

तीस^३—अज्ञ पुं० दस की तिथि का सख्या जो पक्षों में इस प्रकार बिखी जाती है—३० ।

तीस^४—अज्ञ पुं० [?] घातक । उ०—रवि बिपन बाटिका तीस दुम छाँह रहति तब ।—पु० रा०, २५ । ३ ।

तीसना^१—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'टीसना' ।

तीसर^१—वि० [हिं०] दे० 'तीसरा' । उ०—तब शिव तीसर नयन उधारा । चितवत काम मयज जरि छारा ।—मानस, १।८७ ।

तीसर^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा] खेत की तीसरी जुताई ।

तीसरा—वि० [हिं० तीन + सरा (प्रत्य०)] १. क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला । जो दो के उपरांत हो । जिसके पहले दो धोर हों । उ०—पुसरे सीसरे पाँचमे सातमे घाठमें तो मखा भाइयो कीजिए ।—ठाकुर०, पृ० २ । २ जिसका प्रस्तुत विषय के कोई संबंध न हो । संबंध रखनेवालों के भिन्न, कोई धोर । जैसे,—ब हमारी बात, न तुम्हारी बात, तीसरा जो कहे, वही हो ।

ती०—तीसरा पहर = दोपहर के बाद का समय । दिन का तीसरा पहर । अपराह्न ।

तीसवाँ—संज्ञा पुं० [हिं० तीस + वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला । जो उनतीस के उपरांत हो । जिसके पहले बसतीस धोर हों ।

तीसी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० घनसी] घनसी नामक तेलहन । वि० दे० 'मलसी' ।

तीसी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीस + ई (प्रत्य०)] १. फल आदि गिबने का एक मान जो तीस ग्राहियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है । २ एक प्रकार की छेनी जिससे सोहे की मालियों आदि पर नकाशो करते हैं ।

तीहा^१—संज्ञा पुं० [सं० तुष्टि ?] १ तसली । आशवासन । २. धर्म । धोरता । ३ संतोष ।

तीहा^२—संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई] तिहाई । जैसे, भाषा तीहा । विशेष—इसका प्रयोग समास ही में होता है ।

तु०—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम' । उ०—तुं भाता करतार तुं परता हुरता देव ।—पृ० रा०, १।२।

तुंग^१—वि० [सं० तुङ्ग] १ उन्नत । ऊँचा । उ०—सारा पर्वत याम तुम सरल सवाहरित देवदास्यों से ठँका था ।—किन्नर०, पृ० ४२ । २ उग्र । प्रखंड । उ०—तुंग फकीर साहू सुस्ताने सिर सिर हुकुम बजावे ।—माण०, पृ० २९३ । ३ प्रभाव । मुख्य ।

तुंग^२—संज्ञा पुं० १ पुन्नाग वृक्ष । २. पर्वत । पहाड़ । ३ नारियल । ४ किन्नरक । कमल का कैसर । ५ शिव । ६ बुध ग्रह । ७. ग्रहों की उच्च राशि । दे० 'उच्च' । ८ एक वर्षावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण धोर दो गुह होते हैं । जैसे,—न नग गहू बिहारो । कहत ग्रहि पियारो । ९ एक छोटा भाऊ या पेड़ जो सुवेमान पहाड़ तथा पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी, छाल धोर पत्ती रंगने धोर चमड़ा छिन्नाने के काम में आती है । इसकी लकड़ी से यूरोप में तख्त-बोरों के मककाशीबार जोखटे आदि भी बघते हैं । हिमालय पर पहाड़ी लोग इसकी टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं । यह पेड़ तमक या समाक जाति का है । इसे घामी, दरंगी धोर परंजी भी कहते हैं ।

१०. सिंहासन (को०) । ११. चतुर या निपुण व्यक्ति (को०) । १२ वृक्ष । झुड़ । समूह (को०) ।

तुंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गक] १. पुन्नाग वृक्ष । नागकैसर । २ महा-भारत के अनुसार एक तीर्थ ।

विशेष—पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेद पढ़ाया करते थे । एक बार जब वेद नष्ट हो गए, तब मयिरा के पुत्र ने एक 'मोक्ष' शब्द का उच्चारण किया । इस शब्द के उच्चारण के साथ ही धूला हुआ सब वैद्य उपस्थित हो गया । इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों धोर वैद्यताओं के बड़ा भारी यज्ञ किया था ।

तुंगता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गता] उँचाई ।

तुंगत्व—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गत्व] उच्चता । ऊँचाई ।

तुंगनाथ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाथ] हिमालय पर एक शिवविग धोर तीर्थस्थान ।

तुंगनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गनाभ] सुशुभ के अनुसार एक कीड़ा जो विप्रेक्षे वस्तुओं में गिनाया गया है । इसके काटने से जलन धोर पीड़ा होती है ।

तुंगनास—वि० [सं० तुङ्गनास] लंबी नाकवाला (को०) ।

तुंगबाहु—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबाहु] तबवार के ३२ हाथों में से एक ।

तुंगबीज—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गबीज] पारा (को०) ।

तुंगभद्र—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गभद्र] मतवाला हाथी ।

तुंगभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गभद्रा] दक्षिण की एक नदी जो सत्यादि पर्वत से निकलकर कृष्णा नदी में जा मिली है ।

तुंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गमुख] गंगा (को०) ।

तुंगरस—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गरस] एक प्रकार का गवध्रम्य (को०) ।

तुंगता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी भाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—पड़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्वाद पर व्यवहार करते हैं । इसके फल खट्टे होते हैं धोर इसली की तरह काम में लाए जाते हैं ।

तुंगवेणा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गवेणा] महाभारत के अनुसार एक नदी जिसका नाम महानदी, (बेण गया) आदि के साथ पाया है । कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो ।

तुंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गा] १ वणखोजन । २ शमी वृक्ष । ३ तुंग नामक वर्षावृत्त । ४ मैसूर की एक नदी (को०) ।

तुंगारण्य—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] झोंडी से ९ कोस भोइछा के पास का एक जंगल । इस स्थान पर एक मंदिर है धोर मेला खगता है । यह वेतवा नदी के तट पर है । उ०—नदी बेतवे तीर जहँ तीरथ तुंगारण्य । नगर भोइछो तहँ बसे घन्ती तल मे घन्य ।—केशव (शब्द०) ।

तुंगारन्न^०—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारण्य] दे० 'तुंगारण्य' ।

तुंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गारि] सफेद कनेर का पेड़ ।

तुंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिनी] महा शतावरी । बड़ी शतावर ।

तुंगिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गिमा] तुंगता । ऊँचाई (को०) ।

तुंगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० तुङ्गी] १. हलबी । २. रात्रि । ३. बनतुलसी । बघई । मसरी ।

तुंगी^२—वि० [सं तुङ्गिर] ऊँचा [को०] ।

तुंगी^३—सञ्ज्ञा पुं० ऊँचाई पर स्थित ग्रह [को०] ।

तुंगीनास—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुङ्गीनास] दे० 'तुंगनाभ' ।

तुंगीपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुङ्गीपति] चंद्रमा ।

तुंगीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुङ्गीश] १ शिव । २ कृष्ण । ३ सूर्य ।

तुंज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुञ्ज] १ वज्र । २ भाषात । वक्ता (को०) ।
३. आक्रमण (को०) । ४. राक्षस (को०) । ५. दान देना (को०) ।
६. दबाव । दाब (को०) ।

तुंज^२—वि० दुष्ट । फिटरती । हानिकर [को०] ।

तुंजाला—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुंज + जाल] एक प्रकार का जाल जो घोड़ों के ऊपर उन्हे मक्खियों आदि से बचाने के लिये डाला जाता है । इसके नीचे फुँदने भी लगते हैं ।

तुंजीन—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुञ्जीन] काश्मीर देश के कई प्राचीन राजाओं का नाम जिनका वर्णन राजतरंगिणी में है ।

तुंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुण्ड] १ मुख । मुँह । उ०—दो दो टुं
रह दह दवाकर निज तुंडों में ।—साकेत, पृ० ४१३ । २
बुलु । चौब । ३ निकला हुआ मुँह । धूपन । ४ तलवार
का मगला हिस्सा । खग का मग भाग । उ०—फुट्ट कपाल
कहै गज मुंड । तुटत कहै तरवारिन तुंड ।—सूदन (शब्द०) ।
५ शिव । महादेव । ६ एक राक्षस का नाम । ७ हाथी की
सुँड़ (को०) । ८. हथियार की नोक (को०) ।

तुंडकेरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डकेरिका] कपास वृक्ष ।

तुंडकेरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डकेरी] १ कपास । २ कुंदर ।
बिबाफल ।

तुंडकेशरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुण्डकेशरी] मुख का एक रोग जिसमें
तालु की छड़ में सूजन होती और दाढ़ पीड़ा आदि उत्पन्न
होती है ।

तुंडनाय^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुण्ड + नाद] तुंडनाद । शुंडावनि ।
चिघाड़ । उ०—तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत और ।—
शिवरं, पृ० ३३१ ।

तुंडला^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डल ?] पीपर । उ०—कोला, कृष्णा,
मागधी, तिम, तुंडला होइ ।—नव० प्र०, पृ० १०४ ।

तुंडि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डि] १ मुँह । २ चौब । ३ बिबाफल ।
४ नाभि ।

तुंडिक—वि० [सं तुण्डिक] तुंडवाला । धूपनवाला [को०] ।

तुंडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिका] १ टोटी । २ चौब । ३
बिबाफल । कुंदर । ४ नाभि (को०) ।

तुंडिकेरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिकेरी] १ कपास वृक्ष । २ तालु में
अत्यधिक सूजन का होना [को०] ।

तुंडिकेशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुण्डिकेशी] कुंदर ।

तुंडिभ—वि० [सं तुण्डिभ] १ तोंदल । जिसका पेट बड़ा हो ।
२ तुंदिल । जिसकी नाभि उभरी हुई हो [को०] ।

तुंडिल—वि० [सं तुण्डिल] १ तोंदवाला । निकले हुए पेटवाला ।

२. जिसकी नाभि निकली हुई हो । निकली हुई डोढ़वाला ।
डोंढ़ । ३. बकवादी । मुँहजोर ।

तुंडी^१—वि० [सं तुण्डिन्] १ मुँहवाला । चौबवाला । ३ धूपन-
वाला । ४ सुँड़वाला ।

तुंडी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ गणेश । उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेता ।
तुंडी ते उपजत सब तेता ।—निघवल (शब्द०) । २ शिव
के धूम का नाम । नदी (को०) ।

तुंडी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० १ नाभि । डोढ़ी । २ एक प्रकार का
कुम्हड़ा [को०] ।

तुंडीगुदपाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुण्डीगुदपाक] एक रोग जिसमें वक्त्रो
की गुदा पक जाती है और नाभि में पीड़ा होती है ।

तुंडोरमडल—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुण्डोरमण्डल] दक्षिण के एक देश का
नाम । उ०—पुनि तुंडोर मडल एक देसा । तहँ बिलमगल
ग्राम सुवेसा ।—रघुराज (शब्द०) ।

तुंद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुन्द] पेट । उदर ।

तुंद—वि० [क्रा०] १ तेज । प्रचंड । घोर । २ भावेगपूर्ण । पुरजोश
(को०) । ३ क्रुद्ध । क्रुपित (को०) ।

यौ०—तु दमिजाज = दे० 'तुंदलू' ।

४ शीघ्र । त्वरित । तेज । जैसे,—हृषा का तुंद भोका ।

यौ०—तु दरपतार, तुंदरी = द्रुतगामी । बहुत तेज चलनेवाला ।

तुंदकूपिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुन्दकूपिका] नाभि का गड्ढा [को०] ।

तुंदकूपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुन्दकूपी] नाभि का गड्ढा [को०] ।

तुंदलू—वि० [क्रा० तुंदलू] कठे मिजाज का । गुस्सेल । क्रोधी ।
उ०—उस तुंदलू सनम से जब से लगा हूँ मिलने । हर कोई
मानता है मेरी दिलावरी को ।—कविता को०, भा० ४,
पृ० ४८ ।

तुंदसाद—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] झाँधी । झकड़ । झंझावात [को०] ।

तुंदर—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा०] १ बादल की गरज । मेघगर्जन । २ मधुर
स्वरवाली एक प्रसिद्ध चिटिया । तुलतुल [को०] ।

तुंदि—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुन्दि] १ नाभि । २ एक गधवं का नाम ।
३ उदर । पेट (को०) ।

तुंदिक—वि० [सं तुन्दिक] १ तोंदवाला । बड़े पेटवाला । तुंदिल ।
२ बड़ा । विशाल (को०) ।

तुंदिकफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिकफला] खीरे की देल ।

तुंदिकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं तुन्दिकर] नाभि । डोढ़ी [को०] ।

तुंदिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिका] नाभि ।

तुंदित—वि० [सं तुन्दित] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदिभ—वि० [सं तुन्दिभ] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदिला^१—वि० [सं तुन्दिल] तोंदवाला । बड़े पेटवाला ।

तुंदिल^२—सञ्ज्ञा पुं० गणेश जी [को०] ।

तुंदिलफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं तुन्दिलफला] १ खीरा । २.
ककड़ी [को०] ।

तुंदिलित—वि० [सं तुन्दिलित] तोंदवाला । तोंदिय [को०] ।

तुलसीचरण—सज्ञा पुं० [सं० तुलसीचरण] फुलाना । बढ़ा करना [को०] ।

तुली—सज्ञा स्त्री० [सं० तुली] नाभि ।

तुली—वि० [सं० तुलित] दे० 'तुलित' [को०] ।

तुली—सज्ञा स्त्री० [का०] १ तोत्रता । २ सेजी । ३ भावेग । जोश । ४ स्वभाव की तीव्रता । वदमित्राजी । ५ लिंग का उत्थान । ६ कोप । गुस्सा [को०] ।

तुल्ल—वि० [हिं० तुल्ल + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'तुल्ल' ।

तुल्ला—वि० [सं० तुल्ल + हिं० ऐला (प्रत्य०)] तोड़वाला । नुई पेटवाला । लबोदर ।

तुल्ल—सज्ञा पुं० [सं० तुल्ल] १. लोकी । लोवा । घोया । २ लोवे का सूखा फल । तुल्ला । ३. आवला (को०) ।

तुल्ल—सज्ञा पुं० [सं० तुल्ल] १. दे० 'तुल्ल' । २. एक वाद्ययंत्र । तानपुरा । उ०—विसद जत सुर सुद्ध तन तुल्लर जुत सो है । ३. रासो, पृ० १ ।

तुल्ल—सज्ञा पुं० [सं० तुल्ल] एक गधर्व ।

तुल्ल—सज्ञा स्त्री० [सं० तुल्लरी] एक प्रकार का अन्न [को०] ।

तुल्ल—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्ल' ।

तुल्ल—सज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो दक्षिण दिशा में है ।

तुल्ला—सज्ञा पुं० [सं० तुल्ला] [स्त्री० मत्स्यां तुल्लो] १. कड़ुआ कद्दू । गोल कड़ुआ घोया । २ कड़ुआ कद्दू की खोपड़ी का पात्र । ३. एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे घापसे घाप होता है । ४ दुवार गाय (को०) । ५ दूध का बर्तन (को०) ।

तुल्लार—सज्ञा पुं० [सं० तुल्लार] तुल्लो [को०] ।

तुल्लि—सज्ञा स्त्री० [सं० तुल्लि] लोकी [को०] ।

तुल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं० तुल्लिका] दे० 'तुल्लो' । उ०—पानी माहि तुल्लिका वृक्षो पाहन तिरत न खागो बेर ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ५१३ ।

तुल्लो—सज्ञा स्त्री० [सं० तुल्लो] १. छोटा कड़ुआ कद्दू । छोटा कड़ुआ घोया । तितलोकी । २. गोल कद्दू का खोपड़ा । गोल घोंए का बना हुआ पात्र ।

तुल्लुक—सज्ञा पुं० [सं० तुल्लुक] कद्दू का फल । घोया ।

तुल्लुरी—सज्ञा स्त्री० [सं० तुल्लुरी] १ धनिया । २ कुतिया ।

तुल्लुरु—सज्ञा पुं० [सं० तुल्लुरु] १ धनिया । २ एक प्रकार के पोथे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है ।

विशेष—इसमें बड़ी माल होती है । मुँह में रखने से एक प्रकार की धुनबुनाहट होती है और लार गिरती है । दाँत के ददं में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दवाते हैं । वैद्यक में यह गरम, कड़ुवा, चरपरा, अग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । इसे बंगाल में नैपावी धनिया कहते हैं ।

एक गधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं ।

विशेष—ये विष्णु के एक प्रिय पार्श्वधर और संगीत विद्या में प्रति निपुण हैं ।

४. एक जिन उपासक का नाम । ५. तानपुरा (को०) ।

तुल्लियाना—क्रि० प्र० [हिं० तोल से नामिक धातु] तोल का बढ़ना ।

तुल्लेला—वि० [हिं० तोले + ऐला (प्रत्य०)] नुई पेटवाला । तोलियल ।

तुल्लेड़ी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्लेड़ी' ।

तुल्लेड़ी—सज्ञा स्त्री० [दश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी मंदर से संकेद, नर्म और चिकनी निकलती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी मकानों में लगती है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

तुल्लर—सज्ञा पुं० [हिं०] एक गधर्व तुल्लर । उ०—जोगनी जोगमाया जगी नारद तुल्लर निहस्त्रिया । दध एक रुद्र दारिद्र गत दानव तामर हस्त्रिया ।—पृ० रा०, २ । १३० ।

तुल्लरी—संज्ञा [सं० तुल्लर + हिं० री० (प्रत्य०)] दे० 'तुल्लरी' ।

तुल्लर—सर्व० [हिं०] दे० 'तुल्ल' । उ०—सज्ञा भावे गोत्र पुनि, छेम धाम तुल्ल नाम ।—नद० प्र०, पृ० ८६ ।

तुल्लना—क्रि० प्र० [हिं० तुल्ल, तुल्लना] १ चूना । टपकना । २ गिर पड़ना । खड़ा न रह सकना । ठहरा न रहना । उ०—निकरे सी निकई निहारे नई रति रूप तुल्लई तुल्ले सी परे ।—सुंदरीसर्वद्व (शब्द०) । ३ गर्भरात होना । बच्चा गिर पड़ना ।

संयो क्रि०—पड़ना ।

तुल्लर—सज्ञा पुं० [सं० तुल्लरी] भरहर । भाड़की । उ०—घोर चौर, सीधो, नए वासन मे बूरा तुल्लर भादि सर्व सामान घर मे हतो सो हरिबस जो को सर्व वस्तु दिरगई ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० ७५ ।

तुल्लार—सर्व० [हिं०] दे० 'तुल्लारे' । उ०—नाथ, तुल्लारे कुशल कुशल मय लेखिहि ।—प्रकरी०, पृ० ३३७ ।

तुल्ले—सर्व० [हिं०] दे० 'तुल्ल' । उ०—मर्वाहि मारि तुल्ले पेम न खेला । का जानसि कस होइ दुहेला,—जायसी प्र०, पृ० ७५ ।

तुल्ले—सर्व० [हिं०] दे० 'तुल्ल' ।

तुल्ले—सर्व० [हिं० तुल्ल] तुल्ले । तुल्लको । उ०—मूलि कुरगिनी कसि मई मनहुँ सिध तुल्ले छीठ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुल्ले—संज्ञा स्त्री० [?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की वेल जिसे दुपट्ट स्थिरा दुपट्टे पर लगाती हैं ।

तुल्ले—सर्व० [हिं०] दे० 'तुल्ल' ।

तुल्ले—सज्ञा स्त्री० [हिं० तुल्ल (= तुल्ले)] १. किसी पद्य या गीत का कोई खंड । रुबो । २. पद्य के चरण का अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल । अक्षरमेली । मत्स्यानुपास । काफिया ।

यौ०—तुल्लेबंदी ।

मुहा०—तुल्ले जोडना = (१) वाक्यों को जोड़कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य खड़ा करना । (२)

महा पद्य बनाना । मदी कविता करना । तुक वैठाना = दे० 'तुक जोड़ना' ।

तुक^३—संज्ञा पुं० [सं० तुकं] मेख । सामजस्य । जैसे,—घापकी बात का कोई तुक नहीं है ।

तुकना—क्रि० सं० [सं० तुक] एक अनुकरण शब्द जो 'तुकना' शब्द के साथ बोलचाल में आता है । उ०—तुकि के तुकि के सर पावनि को खलि के द्विज देवन शापनि को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तुकतुकाना—क्रि० प्र० [हि०] तुक जोड़ते हुए कविता का सम्पादन करना । मदी तुक जोड़ना ।

तुकबंद—संज्ञा पुं० [हि० तुक + बंद (= बाधना)] तुक बाधनेवाला । तुकबंद । उ०—बहुत से तुकबंद प्रत्येक युग में रहते हैं और जीवन पर्यंत इसी भ्रम में बने रहते हैं कि वे कवि हैं ।—काव्यशास्त्र, पृ० ७ ।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुक + प्रा० बंदी] १ तुक जोड़ने का काम । मदी कविता करने की क्रिया । २ महा पद्य । मदी कविता । ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों । उ०—बहुत दिनों के बाद आज मेरी यह पुरानी तुकबंदियाँ सप्रह के रूप में सामने आ रही हैं ।

तुकमा—संज्ञा पुं० [प्रा० तुकमह्] घुंड़ी फँसाने का फदा । मुट्ठी ।

तुकांत—संज्ञा पुं० [हि० तुक + सं० अन्त] पद्य के दो चरणों के प्रतिम अक्षरों का मेल । अस्यानुप्रास । काफिया ।

तुका—संज्ञा पुं० [प्रा० तुकह्] वह तीर जिसमें गाँधी न हो । वह तीर जिसमें गाँधी के स्थान पर घुंड़ी सी बनी हो । उ०—काम के तुका ३ फूव खोलि खोलि डारें मन मोरे किये डारें ये कवंचन की डारें री ।—कविद (शब्द०) ।

तुकार—संज्ञा पुं० [हि० तू + सं० कार] अशिष्ट संवोधन । मन्थम पुरुष वाचक अशिष्ट सर्व० का प्रयोग । 'तू' का प्रयोग जो अपमानजनक समझा जाता है ।

मुहा०—तू तुकार करना = अशिष्ट शब्द से संवोधन करना । 'तू' भावि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करना ।

तुकारना—क्रि० सं० [हि० तुकार] तूझू करके संवोधन करना । अशिष्ट संवोधन करना । उ०—वारों हों कर जिन हरि को वदन, छुवारी । वारों वलु रचना जिन बोल्यो तुकारो ।—सूर (शब्द०) ।

तुककड़—संज्ञा पुं० [हि० तुक + मकड़ (प्रत्य०)] तुक जोड़नेवाला । तुकबंदी करनेवाला । मदी कविता बनानेवाला ।

तुककल—संज्ञा स्त्री० [प्रा० तुकह्] एक प्रकार की लड़ी पतंग जो मोटी डोर पर सड़ाई जाती है ।

तुकका—संज्ञा पुं० [प्रा० तुकह्] १ वह तीर जिसमें गाँधी के स्थान पर घुंड़ी सी बनी होती है । २ टीला । छोटी पहाड़ी । टेकरी । ३ सीधी खड़ी वस्तु ।

मुहा०—तुकका सा = सीधा उठा हुआ । ऊपर उठा हुआ । जैसे,—जब देखो तब रास्ते में तुकका सी पैठी रहती है ।

तुक्ख^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक्ख' । उ०—ज्ञान कथे बहुमेव बनावे इही बात सब तुक्ख ।—पद्मदू०, भा० ३, पृ० ११ ।

तुक्खार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुक्खार' [को०] ।

तुख—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १ भूसी । छिलका । उ०—भटकत पट भट्टतता भटकत ज्ञान गुमान । सटकत वितरन ते बिहरि फटकत तुख समिमान ।—तुलसी (शब्द०) । २ घड़े के ऊपर का छिलका । उ०—ग्रह फोरि किय खँदुपा तुख पर नीर सिहारि । पहि खंगुल बातक चतुर डारेत बाहर बारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुखार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है ।

विशेष—मधिकांश प्राचीन के मत से इसकी स्थिति हिमालय के उत्तरपश्चिम में हुंती चाहिए । यहाँ के छोटे प्राचीन काल में बहुत मन्त्रे माने जाते थे ।

२. तुखार^२ देश का निवासी ।

विशेष—हरिवंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेदों का मयन किया था, तब इस समयमेंत असम्भ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी, पर उत्कृष्ट प्रप में इस जाति का निवासस्थान विषय पर्वत लिखा है जो और प्राचीन के विरुद्ध पड़ता है ।

३ तुवार देश का घोड़ा । ४ घोड़ा । उ०—(क) तीख तुखार चौड़ मो बाँके । तरपहि तबहि तापन बिनु हाँके ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १५० । (ख) आना काटर एक तुखार । कहा सो फेरी भा मसवाल ।—जायसी (शब्द०) ।

तुखार^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुवार' ।

तुखम—संज्ञा पुं० [प्रा० तुखम] १ बीज । दाना । २ गुठली (को०) ।

३. मंडा (को०) । ४ सतान । मौलाद (को०) । ५ बीयें (को०) ।

यौ०—तुखमाणी = बीबारोपण । खेत में बीज बोना । तुखम-रेजी = बीज बोना ।

तुखमी—वि० [प्रा० तुखमी] १ जो बीज बोकर उत्पन्न किया गया हो । २ देशी घाम जो कलमी न हो (को०) ।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशवोधन ।

तुगाक्षोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशवोधन ।

तुम—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काष्ठ के एक राक्षस का नाम जो मन्थिनी कुमारों के उपासक थे ।

विशेष—इन्होंने वीरपातकों के अनुग्रहों को परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुज्यु को ब्रह्मा पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था । मार्ग में जब एक बड़ा तुकान आया और वायु नौका को उमटने लगी, तब भुज्यु ने मन्थिनीकुमारों की स्तुति की । मन्थिनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपनी बोका पर लेकर तीव्र दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया ।

तुम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुम के वंश का पुरुष । तुम वंशज । २. तुम के पुत्र भुज्यु ।

तुम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी । जल (को०) ।

तुच^७—संज्ञा पुं० [सं० तुच] चमड़ा । छाल । उ०—बहु चील नोचि वे जात तुच मोद मढ़्यो सबको हियो ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २६५ ।

तुषा—सका स्त्री० [सं० त्वचा] दे० 'त्वचा'। उ०—घावे तन
बाँधी बड़ि भाई। सपें तुषा छाती खपटाई।—शकुंतला,
पृ० १३६।

तुषु—सका स्त्री० [सं० तुष] दे० 'त्वचा'। उ०—घाँसि नाक जिम्मा
तुषु काना। पाँचो इंद्री ज्ञान प्रधाना।—स० दरिया, पृ० २९।

तुच्छ—वि० [सं०] १ नीतर से खाली। खोखला। नि सार।
शून्य। २ छुड़ा। नाचोड़। उ०—जिन्हें तुच्छ कहते हैं,
उनके बाबा क्यों, उत्तर ऐसा?—साहित, पृ० ३८८। ३
छोटा। नीच। ४ प्रत्य। थोड़ा। ५ शीघ्र। उ०—
छिन्न सु सरवर तुच्छ जघु राजा रखा सोइ।—प्रवेकार्य०
पृ० ६८। ६ छोड़ा हुआ। त्यक्त (को०)। ७ गरीब। दरिद्र
(को०)। ८ दयनीय। दुखी (को०)।

तुच्छ^१—सका पुं० १ सारहीन छिन्नका। सूखी। २ तृटिया। ३.
नीच का पोषा।

तुच्छक^१—सका पुं० [सं०] काँधे धीरे धीरे रेंब का परकव या पन्ना
जो सूत्र या बिन्दु कोटि का माथा बाँधा है।

तुच्छक^२—वि० शून्य। खाली। रिक्त (को०)।

तुच्छता—सका स्त्री० [सं०] १ हीनता। नीचता। २ छोटापन।
छुद्रता। ३. प्रस्यता।

तुच्छद्वय—वि० [सं०] द्वायशून्य। निर्द्वय (को०)।

तुच्छना—वि० [सं० तच्छण] छोड़ना। काटना। हरायना।
उ०—चहुँपान तुच्छ ठगुर वक्षिण।—पृ० रा०, १०।२७।

तुच्छत्व—सका पुं० [सं०] १ हीनता। छुद्रता। २ छोटापन।

तुच्छद्र—सका पुं० [सं०] रेंब का पेड़।

तुच्छधान्य—सका पुं० [सं०] भूखी। तुष [को०]।

तुच्छधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] भूखी। तुष।

तुच्छमाय—वि० [सं०] महत्त्वहीन (को०)।

तुच्छवित—वि० [सं० तुच्छ + वित्] तुच्छ। बरत्न। उ०—
रुक्मिणी इह धर्मिके भय तुमहें तिनमें तुच्छवित।—द्रव्य० प्र०,
पृ० ११०।

तुच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नीच का पोषा। २ तृटिया। ३
गुजराती इलायची। छोटी इलायची। ३. कृष्ण पक्ष की
चतुर्दशी तिथि (को०)।

तुच्छासितुच्छ—वि० [सं०] छोटे से छोटा। प्रत्यंत हीन। प्रत्यंत छुद्र।
तुच्छीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ] तुच्छ होवे या करने की क्रिया
या भाव।

तुच्छीकृत—वि० [सं० तुच्छ] तुच्छ किया हुआ। उ०—समस्त
भागों को तुच्छीकृत करना।—मेघधन०, भा० २, पृ० १०६।

तुच्छय—वि० [सं०] रिक्त। शून्य। व्यर्थ (को०)।

तुछ—वि० [सं० तुच्छ] दे० 'तुच्छ'। उ०—तुछ बुद्धि भट्ट देखत
मुल्यो कवि सुभक्ति कहे का वरन।—पृ० रा०, ६।६५।

तुज^१—वि० [सं०] दुष्ट। कष्टप्रद (को०)।

तुज^२—संज्ञा पुं० दे० 'तुज' (को०)।

तुज^३—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्ह'। उ०—जिन्ने जम्म डारा है तुज
कूँ, निसर गया उनका ध्यान तू।—दक्खिनी०, पृ० १४।

तुजन्—सर्व० [पं०] तुम्हें। तुम्हको। उ०—मैं तेडी सटकन
फँदा क्या तुजम्हें कीया।—घनानंद, पृ० १७८।

तुजीह—सका स्त्री० [हि०] धनुष। कमान।

तुज्जक—सका पुं० [तु० तुज्ज] १ जज्जा। राजावट। २ प्रवध।
व्यवस्था। इतिवाम। ३ सैन्य-सज्जा। फौज की सरतौब।
४ राजसभा की सजावट। उ०—भूतन भनत सही सरजा
सिवाही गाओ, तिनको तुज्जक देखि नेकहू न जरवा।—भूपण
प्र०, पृ० ४४। ५. घातमचरित्। जैसे, तुज्जक जहाँगिरी।

तुम्ह—सर्व० [प्रा० तुम्ह] 'तू' मध्य का वह रूप जो उष्टे प्रथमा
धीर षष्ठो के प्रतिरिक्त धीर विभक्तियों लगने के पहिले प्राप्त
होता है। जैसे, तुम्हको, तुम्हसे, तुम्हपर, तुम्हमें।

तुम्हें—सर्व० [हिं० तुम्ह] 'तू' का रूप धीर संप्रसारण रूप। तुम्हको।

तुम्ह—सर्व० [हिं०] तुम्हारा। धीरा। दाह्य हूँवर सुहिण्ड निबद्ध,
सु बरि सस बर तुम्ह।—डोबा०, पृ० ४४।

तुट—वि० [सं० तुट (= टूटना)] टुकड़ा। धिक्कापन। बरा सा।

तुटना—वि० [हिं०] दे० 'तुटना'। उ०—तुटे वत आरी।
तरे गे विहारो। परे भूमि पान। कबं कूट पान।—पृ० रा०,
१। १४६।

तुटि—सका स्त्री० [सं०] छोटी इलायची (को०)।

तुटितुट—सका पुं० [सं०] शिब।

तुटम—सका पुं० [सं०] मूषक। मूस। चूहा (को०)।

तुटना—वि० [हिं० टूटना] दे० 'तुटना'। उ०—दरिया वधि
सिप मयन भोम कटिय पह तुटिय।—पृ० रा०, १। १३६।

तुटना^१—वि० [सं० तुट, मा० तुट + च (प्रत्य०)] तुट
करना। प्रसन्न करना। राखी करना।

तुटना^२—वि० [सं० तुट] होना। प्रसन्न होना। राखी होना।

तुठना—वि० [हिं०] दे० 'तुठना'। उ०—स्नेह तुठो राजा
प्रोषणी मेलही।—वी० रासो, पृ० ४८।

तुठताण—वि० [सं० रुधिर?] पीछा। उ०—प्रसई मःपो-
वास रो, विण वेसा तुठताण।—रा० क०, पृ० १३३।

तुठवाई—सका स्त्री० [हिं० तुठवाना] दे० 'तुठवाई'।

तुठवाना—वि० [हिं०] तुठवाना का प्रे० रूप] तोड़ने का काम
कराना। तोड़ने में प्रवृत्त करना। तोड़ने देना।

तुठवाई—सका स्त्री० [हिं० तुठवाना] १ तुठाने की क्रिया या भाव।
२ तोड़ने की क्रिया या भाव। ३ तोड़ने की मजदूरी।

तुठाना—वि० [हिं०] तोड़ने का प्रे० रूप] १ तोड़ने का काम
कराना। तुठवाना। २ बंधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना।
बधन छुड़ाना। जैसे,—घोड़ा रस्सी तुठाकर भागा। ३. प्रसन्न
करना। सबस तोड़ना। जैसे, बच्चे को माँ से तुठाना। ४. एक
बड़े सिक्के को बराबर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से

बदलना । मुनाना । जैसे, रुपया तुड़ाना । ५. दाम कम कराना । मूल्य घटवाना ।

तुडम—संज्ञा पुं० [सं० तुडम्] तुरही । विगुल ।

तुणि—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़ ।

तुसरा^७—वि० [हि० तोतला] [वि० श्री० सुतरी] दे० 'तोतला' । उ०—मन मोहन की तुतरी बोलन मुनिमन हरत सुदेसि मुसकवियाँ ।—सूर (शब्द०) ।

तुतराना^७—क्रिया प्र० [हि० तुतरा + ना (प्रत्य०)] दे० 'तुतलाना' । उ०—श्रवणन नहि उपकठ रहत है धर बोलत तुतरात री ।—सूर (शब्द०) ।

तुतरानि^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] तुतलाने की क्रिया या भाव ।

तुतरानी^७—संज्ञा स्त्री० [हि० तुतरा + ई (प्रत्य०)] तोतली । तुतलाती हुई । उ०—जननि वचन सुनि तुतत उठे हरि कहत बात तुतरानी ।—नंद० प्र०, पृ० १३७ ।

तुतरी^७—वि० श्री० [हि०] दे० 'तुतली' । उ०—काय हूँ प्राम सुधा सींचति धारस भरि बोलनि तुतरी ।—घमानद, पृ० ४३ ।

तुतरीही^७—वि० [हि० तुतरा + भीही (प्रत्य०)] दे० 'तोतला' । तुसला—वि० [हि०] दे० 'तोतला' । उ०—मा के तन्मय तर से मेरे जीवन का तुतला उपक्रम ।—पल्लव, पृ० १०६ ।

तुतलान—संज्ञा स्त्री० [हि० तुतलाना] तुतलाने की क्रिया या भाव ।

तुतलाना—क्रि० प्र० [सं० तुट (=टूटना) या मनु०] शब्दों और वणों का प्रत्यष्ट उच्चारण करना । रुक रुककर टूटे फूटे शब्द बोलना । साफ न बोलना । शब्द बोलने में वणों ठीक ठीक मुँह से न निकालना । जैसे, बच्चों का तुतलाना बहुत प्यारा लगता है । उ०—सागति प्रमूढी मीठी धानी तुतलान की ।—शकुंतला०, पृ० १४० ।

तुतली—वि० श्री० [हि०] दे० 'तोतली' । उ०—कर पद से चलते देख उन्हें सुनकर तुतली बाणी रसाल ।—सागरिका, पृ० ११३ ।

तुतुई^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुतुही' ।

तुतु लूम लूल^७—संज्ञा पुं० [मनु०] बच्चों का एक खेल । उ०—मनस कबहुँ भावरि कबहुँ तुतु लूम लूल मल ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४७८ ।

तुतुही^७—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. टोंटीदार छोटी घटी । छोटी सी भारी जिसमें टोंटी लगी हो । २. एक वाद्य । तुरही ।

तुत्त—सर्व० [सं० त्वत्] तुम । उ०—विहि बंस भीम धर धम्म सुत्त । विहि बंस बली धनगेस तुत्त ।—पृ० रा०, ३।३२ ।

तुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तूतिया । नीला घोषा । २. ध्वनि (को०) । ३. पत्थर (को०) ।

तुत्थक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुत्थ' ।

तुत्थाजंन—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थाजंन] तूतिया । नीला घोषा ।

तुत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का घोषा । २. छोटी इलायची ।

तुद्^७—वि० [सं०] माघातकारी । पीड़ावायी । कष्टकर जैसे,—मर्मतुंद । असंतुंद ।

तुद्^७—संज्ञा पुं० [?] तुस्त । उ०—कदन, विधुर, प्रक, दून, तुद्, गहन, ब्रजिन पुनि भाहि ।—नंद० प्र०, पृ० १०० ।

तुदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यथा देने की क्रिया । पीड़न । २. व्यथा । पीड़ा । उ०—कृपादृष्टि करि तुदन मिटावा । सुमन माल पहिराय पठावा ।—विश्राम० (शब्द०) । ३. घुमाने या गड़ाने की क्रिया ।

तुन—संज्ञा पुं० [सं० तुन्न] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिक्किम और सूटान तक होता है ।

विशेष—इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास साठ हाथ तक और सपेट दस गारह हाथ तक होती है । पत्तियाँ इसकी नीम की तरह लगी लंबी पर बिना कटाव की होती हैं । विशिष्ट में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है । बसंत के प्रारंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पंखुड़ियाँ संकेद पर बीच की घुड़ियाँ कुछ बड़ी और पीले रंग की होती हैं । इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसती रंग निकलता है । मड़े हुए फूलों को लोग इकट्ठा करके सुखा लेते हैं । सूखने पर केवल कड़ी कड़ी घुड़ियाँ सरसों के दाने के आकार की रह जाती हैं जिन्हें साफ करके फूट डालते या उद्यान डालते हैं । तुन की लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है । इसमें बीमक और घुन नहीं लगते । मेज कुरसी घाँव सजावट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है । आसाम में चाय के बरत भी इसके बनते हैं ।

तुनक—वि० [फ्रा० तुनुक] दे० 'तुमुक' ।

यौ०—तुनक मिजाज = दे० 'तुनुकमिजाज' । तुनकमिजाजी = दे० 'तुनुकमिजाजी' । तुनकहवास = दे० 'तुनुकहवास' ।

तुनकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—स्त्रियाँ प्रायः तुनक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं ।—कंकाल, पृ० १६५ ।

तुनकामौज—संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र । (जय०) ।

तुनकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुनुक + ई (प्रत्य०)] एक तरह की खस्ता रोटी ।

तुनतुनी—संज्ञा स्त्री० [मनु०] १. वह बाजा जिसमें तुनतुन शब्द निकले । २. सारंगी ।

तुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुन] तुन का पेड़ ।

तुनीर—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] दे० 'तूणीर' । उ०—हिम की दरप मरुधरनि की नीर ओ री, जियरी मदन तोरणन को तुनीर भो ।—मिहारी० प्र०, पृ० १०१ ।

तुनुक—वि० [फ्रा०] १. सूक्ष्म । बारीक । २. प्रत्यक्ष । थोड़ा । ३. झुड़ल । नाजुक । ४. क्षीण । दुबला पतला (को०) ।

यौ०—तुनुकजफ = (१) छिछोरा । लोफर । (२) प्रकुलीन । कमीना । (३) पेट का हलका । जो भेद खोल दे । (४) जो थोड़ी सी शराब पीकर बहुत जाय । (५) जो किसी

बड़े प्रादमी को निकटता या जेँचा पद पाकर घमड के कारण
प्रादमी न रहे । तुनुकदिल = बहुत छोटे दिल का । अनुदार ।

तुनुकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तिनकना' । उ०—पंजुर ने
तुनुककर कहा ।—इत्यलम्, पृ० ११५ ।

तुनुकमिजाज—वि० [फ्रा० तुनुकमिजाज] बिड़बिड़ा । शीघ्र क्रोध
में मानेवाला । छोटी छोटी बातों पर अप्रसन्न होनेवाला ।
उ०—पिछनगुप्तो की खुशामद ने हमें इतना प्रमिमाची भौर
तुनुकमिजाज बना दिया है ।—गोदान, पृ० १५ ।

तुनुकमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुनुकमिजाजी] छोटी बातों पर
शीघ्र अप्रसन्न होने का भाव । बिड़बिड़ापन ।

तुनुकसत्र—वि० [फ्रा० तुनुक + प्र० सत्र] घातुर । खराबाद ।
बेसत्र । जल्दबाज [को०] ।

तुनुकहवास—वि० [फ्रा० तुनुक + प्र० हवास] तीक्ष्णबुद्धि [को०] ।

तुल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुल का पेड़ । २. फटे हुए कपड़े का
टुकड़ा ।

तुल्ल—वि० १. कटा या फटा हुआ । छिन्न । २. पीड़ित [को०] । ३.
जुमा हुआ [को०] । ४. माहत । घायल [को०] ।

तुल्लवाय—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा सीनेवाला । दरजी ।

तुल्लसेवनी—संज्ञा पुं० [सं०] जर्जर । वह जो घाव को सीने का
काम करता हो [को०] ।

तुपक—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप का प्रत्या० रूप] १. छोटी तोप । उ०—
तुपक तोप जरबाज कराये । भरि भरि मारू गज गुजारे ।—
हम्मीर०, पृ० ३० । २. बंदूक । कडावीन ।

क्रि० प्र०—चलना । छूटना ।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप, हि० तुपक, प्रयत्ना फ्रा० तुफंग] १.
बंदूक । तुपक । हवाई बंदूक । उ०—कोदब चढ करकटि
नियप । इक चढ मुसुहो ले तुफंग ।—सुषान०, पृ० ३८ । २.
वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या माटे की गोखियाँ, छोटे तीर
आदि डालकर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं ।

यौ०—तुफंग प्रदाज = बंदूकची । निशानेबाज । तुफंगची = (१)
बंदूक चलानेवाला । (२) बंदूक रखनेवाला । (३) निशानची ।
तुफंगेतहपुर = कारतूसी बंदूक । तुफंगे दहनपुर = तोपीदार
बंदूक । तुफंगे सीजनी = कारतूसी बंदूक जिसमें घोड़ा
नहीं होता ।

तुफ—प्रत्यय [फ्रा० तुफ] धक्कार । धक् [को०] ।

तुफक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तुफक] बंदूक । तुफंग । तुपक ।

तुफान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूफान' ।

तुफानी—वि० [हि०] दे० 'तूफानी' । उ०—सासु बुरी घर ननद
तुफानी देख सुहाग हमार जरे ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६ ।

तुफैल—संज्ञा पुं० [प्र० तुफैल] द्वारा । कारण । जरिया ।

यौ०—तुफैल से = के द्वारा ।—की कृपा से ।

तुफैली—संज्ञा पुं० [प्र० तुफैली] १. वह व्यक्ति जो बिना निमन्त्रण

के प्रयत्ना किसी निमन्त्रित व्यक्ति के साथ किसी के यहाँ जाय ।
२. आश्रित व्यक्ति । वह जो किसी के सहारे हो [को०] ।

तुपक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुपक' । उ०—दल समूह तजि
चलियै तुपक पड़ी तुर तप—पृ० रा०, २५।६ ।

तुभना—क्रि० प्र० [सं० स्तुभ, स्तोमव (= स्तब्ध रहना, ठक रहना)]
स्तब्ध रहना । ठक रह जाना । प्रचल रह जाना । उ०—
टरति न टारे यह छवि मन में चुमी । स्पाम सघन पीतावर
दामिनि, अखियाँ चातक हैं जाय तुमी ।—सुर (शब्द०) ।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन । वह सर्व नाम जिसका
व्यवहार उस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता
है । जैसे,—तुम यहाँ से चले जाओ ।

विशेष—संबध कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों
के साथ शब्द का यही रूप बना रहता है, जैसे, तुमने, तुमको,
तुमसे, तुममे, तुमपर । संबध कारक में 'तुम्हारा' होता है ।
शिष्टता के विचार से एकवचन के लिये भी बहुवचन 'तुम' का
ही व्यवहार होता है । 'तू' का प्रयोग बहुत छोटी या बच्चों के
लिये ही होता है ।

मुहा०—तुम जानो तुम्हारा काम जाने = सब जिम्मेवारी तुम्हारी
है । मन में जो आए सो करो । उ०—और सरफ इस वक्त
ध्यान न घटाओ । आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने ।—
सेर०, पृ० २८ ।

तुमडिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुमड़ी' । उ०—हरी बेल की
कोरी तुमडिया सब तीरथ कर आई । जगन्नाथ के दरसन
करके, अजहूँ न गई कहुवाई ।—कवीर रा०, भा० १, पृ० ४६ ।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बर + हि० ई (प्रत्यय०)] १. कहुए गोल
कद्दू का सूखा फल । गोल घीए का सूखा फल । २. सूखे गोख
कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्रायः साधु
पापी पीते हैं । ३. सूखे कद्दू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह
से फूँककर बजाया जाता है । महुवर ।

विशेष—यह बाजा कद्दू के खोखले पेट में नरकट की दो
नलियाँ घुसाकर बनाया जाता है । संपेरे इसे प्रायः बजाते हैं ।

तुमकना—क्रि० प्र० [अनु०] दिखाई देना । प्रकट होना । उ०—
एक भोका वायु से ले, सिर हिलाकर तुमक जाना ।—
हिमकि०, पृ० ६४ ।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुमतड़ाक' ।

तुमतराक—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुमतराक] १. वैभध । शानशील । २.
धूमधाम । तड़कभड़क । अहंकार । घमड [को०] ।

तुमरा—सर्व० [हि०] [स्त्री० तुमरी] दे० 'तुम्हारा' ।

तुमरी—संज्ञा स्त्री० [हि० तुमड़ी] दे० 'तुमड़ी' ।

तुमरू—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] दे० 'तुम्बुरु' ।

तुमल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमल' ।

तुमहियै—सर्व० [हि० तुम] तुम ही । तुम्ही । उ०—रीति

हंसि हाथी हमें सब कोऊ देत, कहा रीतिहंसि हाथी एक
तुमहिये देत ही।—मृषण प्र०, पृ० ३६।

तुमही—सर्व० [तुम + ही (प्रत्य०)] तुमको।

तुमाना—क्रि० सं० [हि० तुमाना का प्रे० रूप] तुमने का काम
कराना। दबी या जमकर बैठी हुई रूई को पुलपुली करके
केलाने के लिये नोचवाना।

तुमार^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुमार'। उ०—ये झूलहिं सब
हथियार हथ गय लोग बाग तुमार।—नीला श०, पृ० ४४।

तुमारा^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—ताते चलिहै
महार तुमारा। इतना वचन धर्म कहै द्वारा।—कबीर सा०,
पृ० ४५५।

तुमुवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया।

तुमुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'तुमुल'। २. धनियों की एक जाति
जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण में है।

तुमुल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का कोलाहल। सेना की धूम।
लड़ाई की हलचल। २. सेना की झिड़क। गहरी मुठमेड़। ३.
बहेड़े का पेड़।

तुमुल^२—वि० [सं०] १. हलचल उत्पन्न करनेवाला। २. शोरगुल से
युक्त। ३. भयकर। तीव्र। उ०—सँग दादुर भीगुर रुदन
धुवि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं।—बारहेंबु प्र०, भा० १,
पृ० २६८। ४. घनेक ध्वनियों के भेज के ध्वनित (को०)।
५. ध्रुव (को०)। ६. घबराया हुआ। डब (को०)।

तुम्ह^१—सर्व० [हि०] दे० 'तुम'। उ०—जल ब्रह्म सुवा कीन्ह है
केरा। गाढ़ न जाइ विरीतम केरा।—जायसी प्र० (गुप्त),
पृ० २७२।

तुम्ह^७—सर्व० [हि० तुम] तुम्हारा। उ०—प्राबहु सामि सुलच्छना
जीउ वसै तुम्ह नाव।—जायसी प्र०, पृ० १०१।

तुम्हरा^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—दुष्ट दमन तुम्हरो
प्रवतार। हे भद्रमुत ब्रजराज कुमार।—नद० प्र०, पृ० ३१२।

तुम्हारा—सर्व० [हि० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध
कारक का रूप। उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है। जैसे,
तुम्हारी पुस्तक कहाँ है ?।

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० 'सिर'।

तुम्हें—सर्व० [हि० तुम] 'तुम' का वह बिभक्तियुक्त रूप जो उसे
कर्म और संप्रदान में प्राप्त होता है। तुमको।

तुया—सर्व० [हि०] दे० 'तू'। उ०—लाहो केता जनम गो तुय करे
तिथी तोपी होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तुया^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोय'। उ०—जेव उत्पत ते तुया।
—भोरख०, पृ० १५६।

तुरंग^१—वि० [सं० तुरङ्ग] जल्दी चलनेवाला।

तुरंग^२—सञ्ज्ञा पुं० १. घोड़ा। उ०—नरुड तुरग तुरग मन, बहुरि
तुरंग तुरग।—प्रनेकार्य०, पृ० १३३। २. चित्र। ३. सात
की संख्या।

तुरंगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गक] १. बड़ी तोरई। २. घोड़ा (को०)।
तुरंगकांता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गकान्ता] घोड़ी (को०)।

यौ०—तुरंगकांतामुख = वाडवाच।

तुरंगगंधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गगन्धा] प्रसवगंधा। प्रसवगंध (को०)।

तुरंगगौड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + गौड़] गौड़ राग का एक भेद।
यह बीर या रोद्र रस का राग है।

तुरंगद्विपणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्विपणी] भैंस। महिषी (को०)।

तुरंगद्वेपिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्वेपिणी] भैंस। महिषी।

तुरंगप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गप्रिय] जी। यव।

तुरंगव्रह्मचर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गब्रह्मचर्य] वह ब्रह्मचर्य जो स्त्री के
न मिलने तक हो (को०)।

तुरंगम^१—वि० [सं० तुरङ्गम] जल्दी चलनेवाला।

तुरंगम^२—सञ्ज्ञा पुं० १. घोड़ा। २. चित्र। ३. एक वृत्त का नाम
जिसके प्रत्येक चरण में दो नवरा और दो गुह होते हैं। इसे
तुन और तुना भी कहते हैं। उ०—न नम गहु बिहारो।
कहत भदि पियारी।—(अब्द०)।

तुरंगमो^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गमो] १. प्रसवगंध। २. घोड़ी (को०)।

तुरंगमो^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमो] घुड़सवार। प्रसवारोही (को०)।

तुरंगमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमुख] [स्त्री० तुरंगमुखी] (घोड़े का
सा मुंहवाला) किन्नर। उ०—गावे गीत तुरंगमुख, जलरत्न
जब घटिपाई।—भा० प्र०, भा० ३, पृ० ६।

तुरंगमेघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमेघ] प्रसवमेघ (को०)।

तुरंगयम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयम] जी। यव (को०)।

तुरंगयायी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयायिन्] घुड़सवार (को०)।

तुरंगरत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गरत्न] साईस (को०)।

तुरंगलीलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गलीलक] संगीत एक ताल में (को०)।

तुरंगवक्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवक्त्र] (घोड़े का सा मुंहवाला)
किन्नर।

तुरंगवदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवदन] (घोड़े का सा मुंहवाला)
किन्नर।

तुरंगशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गशाला] घोड़सार। घस्तबल।

तुरंगसादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गसादिन्] घुड़सवार (को०)।

तुरंगस्कंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्कन्ध] १. घोड़ों की सेना। २.
घोड़ों का समूह (को०)।

तुरंगस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्थान] घुड़साव। घस्तबल (को०)।

तुरंगारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारि] १. कपेर। करवीर। २.
भैंसा (को०)।

तुरंगिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गिका] देवदासी। घघरवन। बदाख।

तुरंगारूढ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारूढ] घुड़सवार। प्रसवारोही (को०)।

तुरंगी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गी] १. प्रसवगंधा। प्रसवगंध। २.
घोड़ी (को०)।

तुरंगी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गी] घुड़सवार (को०)।

तुरज—संज्ञा पुं० [क्रा०। प्र० तुज] १. अकोतरा नींव। २. विजोरा नींव। छट्टी। ३. सूई से काढ़कर बनाया हुआ पान या कलमी के आकार का वह वृद्ध जो भंगरखों के मोड़ो घोर पीठ पर तथा दुशाले के कोनों पर बनाया जाता है। कुज।

तुरजबीन—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. एक प्रकार की चीनी जो प्रायः कंठफटारे के पोषों पर घोस के साथ सुरासान देश में जमती है। २. नींव के रस का शबंत।

तुरत—क्रि० वि० [सं० तुर (=वेग, जल्दी)] जल्दी से। प्रत्यंत शीघ्र। तत्क्षण। भटपट। फौरन। बिना विलंब के। उ०—रघुपति बरन नाइ सिर चलेउ तुरंत प्रनंत। भंगद बीस मयंद नल सय सुभट हनुमत।—मानस, ६।७४।

तुरता—संज्ञा पुं० [हि० तुरत] १. गाँजा (जिसका नशा तुरत पीते ही बढ़ता है)। २. सत्तू। (जिसे तत्काल खाया जा सकता है)।

तुरंग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरग'। उ०—तुरंग चपल चंद्रमल बिकल बेला, कुद है विफल जहाँ नीच गति बारिण।—मति० प्र०, पृ० ४१७।

तुरज—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुरज-२'। उ०—गलगल तुरज सदा-कर फरे। नारंग प्रति राते रस भरे।—जायसी प्र०, पृ० १३।

तुर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्द। उ०—बहु दावि डारे समर में तुर में तुरगहि दपटि के।—पद्माकर प्र०, पृ० २०।

तुर—वि० १. वेगवान्। शीघ्रगामी। २. छड़। सबल (को०)। ३. घायज। ग्राह्य (को०)। ४. धनी (को०)। ५. अधिक। प्रचुर (को०)।

तुर^३—संज्ञा पुं० वेग। क्षिप्रता [को०]।

तुर^१—संज्ञा पुं० [सं० तुरु] १. वह लकड़ी जिसपर जुवाहे कपड़ा बुनकर लपेटे जाते हैं। २. वह वेहन जिसपर गोटा बुनकर लपेटे जाते हैं।

तुर^२—संज्ञा पुं० [? सं० तुरग > तुरम, तुर] घोड़ा। अश्व। तुरग। उ०—माघ षड् पंचमि दिवस चङ्गि चलिए तुर तार।—पृ० रा०, २५। २२५।

तुरई^१—संज्ञा स्त्री [सं० तूर (=तुरही वाजा)] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोख कटावदार कदड़ की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। यह पौधा बहुत दिनों तक नहीं रहता। इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है। बरसाती तुरई छप्परोँ या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि में फैलाने से पत्तियों और फलों के सड़ जाने का डर रहता है। गरमी में भी लोग क्यारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं। गरमी से बचाने पर यह देव जमीन ही में फैलती और फलती है। तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और सम्भा के समान खिलते हैं। फल लंबे लंबे होते हैं जिनपर संभाई के बल उबरी हुई नसों की सीधी लकीर समान प्रवर पर होती हैं।

मुंभा—तुरई का फूल सा = हलकी या छोटी मोटी बीज की

तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला। इस प्रकार भटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मालूम न हो। जैसे,—तुरई के फूल से ये सी रूप देखते देखते उठ गए।

२. उक्त बेल का फल।

तुरई^२—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'तुरही'।

तुरक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक'।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [तु० तुक + हि० टा (प्रत्य०)] मुसलमान। (घृणासूचक शब्द)।

तुरकाना^१—संज्ञा पुं० [तु० तुक] १. तुकों या मुसलमानों की बस्ती। २. दे० 'तुक'। उ०—पायर पूजत द्विदु मुलाना। मुरबा पूज भूले तुरकाना।—कवीर सा०, पृ० ८२०।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [तु० तुक] [स्त्री० तुरकानी] १. तुकों का सा। तुकों के ऐसा। २. तुकों का देश या बस्ती।

तुरकानी^१—वि० स्त्री० [तु० तुक + हि० भानी (प्रत्य०)] तुकों की सी।

तुरकानी^२—संज्ञा स्त्री० तुकों की स्त्री।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुक + हि० इन (प्रत्य०)] १. तुकों की स्त्री। २. तुकों जाति की स्त्री। ३. मुसलमानिन। मुसलमान स्त्री।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुर्किस्तान'।

तुरकी^१—वि० [तु० तुकी] १. तुकों देश का। जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरका सिपाही। २. तुकों देश का।

तुरकी^२—संज्ञा स्त्री० तुकों की भाषा। तुर्किस्तान की भाषा।

तुरक^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुक'। उ०—राए बसिमसे सत हृम रोस, लज्जाइय निज मनहि मन, भस तुरक भसमान गुणइ। कीर्ति०, पृ० १८।

तुरग^१—वि० [सं०] तेज चलनेवाला।

तुरग^२—संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] १. घोड़ा। २. चिरा।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरगगन्धा] अश्वगंधा। अश्वगंध।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक दैत्य जो कृष्ण की आज्ञा से कृष्ण को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था।

तुरगत्रयचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्री के मिलने के कारण ही हो।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत दामोदर के अनुसार एक ठाल का नाम।

तुरगारोही^१—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

तुरगारोही^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगारोहिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरगी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़ी। २. अश्वगंधा।

तुरगी^२—संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन्] अश्वारोही। घुड़सवार।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कान के कर्णफूल नामक गहने में लटकाया जाता है। झुमका। लोलक।

तुरगोपचारक—संज्ञा पुं० [सं०] साईस [को०]।

तुरण^१—वि० [सं०] वेगवान्। शीघ्रगामी [को०]।

तुरण^२—संज्ञा पुं० शीघ्रता। वेग [को०]।

तुरत—प्रत्य० [सं० तुर] शीघ्र । चटपट । तत्क्षण । उ०—दुनी रिश-
वत तुरत पचावे ।—भारतेन्दु प०, भा० १, पृ० ६६२ ।

यौ०—तुरत कुरत = चटपट ।

तुरतुरा—वि० [सं० स्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] १ तेज । जल्दबाज ।
२ बहुत जल्दी जल्दी बोलनेवाला । जल्दी जल्दी बात
करनेवाला ।

तुरतुरिया—वि० [हि०] दे० 'तुरतुरा' ।

तुरसा—प्रत्य० [हि०] दे० 'तुरत' । उ०—कड़िये सुवीर बड़िये
तुरत ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तुरन—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तुरण' । उ०—सहसा, सत्वर, रम,
तुरा, तुरन बगे के साज ।—नद० प०, पृ० १०७ ।

तुरना—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरण] तुरणावस्था । अवानी । उ०—घाला
काठा तुरना काठा, बिगये काठ न जाय ।—कबीर श०,
पृ० ४८ ।

तुरनापन—सञ्ज्ञा पु० [हि० तुरना+पन (प्रत्य०)] तुरणावस्था ।
अवानी । उ०—तुरनापन गढ़ बीत बुड़ापा मान तुलाने ।
कांपन लागे सीस चबट दोठ चरन पिराने ।—कबीर श०
पृ० १ ।

तुरपई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई । तुरपन ।
तुरपन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिसमें
जोड़ों को पहले लवाई के बल टाँके ढालकर मिला लेते हैं,
फिर निकले हुए छोर को मोड़कर तिरछे टाँकों से जमा देते
हैं । लुढ़ियावन । धखिमा का उलटा ।

तुरपना—क्रि० सं० [हि० तुर (= नीचे) + पर (= ऊपर) + ना
(प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना । लुढ़ियाना ।

तुरपवाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] दे० 'तुरपाना' ।

तुरपाना—क्रि० सं० [हि० तुरपना का प्रे० रूप] तुरपने का काम
दूसरे से कराना ।

तुरबत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुरबत] कपड़ । उ०—घासना तुरबत प
मेरे शायियाना हो गया ।—भारतेन्दु प०, भा० २, पृ० ८५० ।

तुरम—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरम] तुरही ।

तुरमती—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक बिड़िया जो बाज की तरह
शिंकार करती है । यह बाज से छोटी होती है ।

तुरमनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रेतने की रेत ।

तुरय—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरग] [स्त्री० तुरी] घोड़ा । उ०—सायक
जाप तुरय घनि जति हो लिए सबै तुम जाहू ।—सूर
(शब्द०) ।

तुररा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'तुरा' । उ०—तापर तुररा सुभत
मति कहत सोभ कवि नाथ ।—पृ० रा०, १ । ७५२ ।

तुरल—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा । उ०—बणिया गजा तुरे सिर
बाँना । मिलाया तुरल रबी घसमाँना ।—रा० रू०, पृ० २२५ ।

तुरस—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश० ?] ढाल । उ०—तुरस फट्टि कटि
गुरज मुकुठ करि रेप रिवेसर ।—पृ० रा०, ५ । ५१ ।

तुरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुषसी' । उ०—हरि धरन
तुरसिय माल । धन पति सुक विसाल ।—पृ० रा०,
२ । ३११ ।

तुरही—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तूर] कुँकुर बजाने का एक बाजा जो
मुँह की ओर पतला घोर पीछे की ओर चौड़ा होता है ।
उ०—बाजत तास मृदग भाँक डक, तुरही तान नफीरी ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० १०८ ।

विशेष—यह बाजा पीतल प्रादि का बनता है और टेढ़ा सीधा
कई प्रकार का होता है । पहले यह सडाई में नगाड़े प्रादि के
साथ बजता था । अब इसका व्यवहार विवाह प्रादि में
होता है ।

तुरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्वरा] दे० 'तुरा' । उ०—तोखी तुरा
तुषसी कहाते पे हिए उपमा को समान न पायो । मानो प्रतच्छ
परबष की नम लोक लसी कपि यों पुकि पायो ।—तुलसी
पृ० पृ० १६६ ।

तुरा—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा ।

तुराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तूर (= रुई) । तूनिका (= गद्दा)] कई
मरा हुमा गुदगुदा जिझायन । गद्दा । तोषक । उ०—(क) नौद
बहुत प्रिय सेज तुराई । लखन न भूप कपट चतुराई ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) विविध वचन, उपधान, तुराई । छोरकेन मृदु
पिसद सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कुस किमलय साधरी
सुहाई । प्रभु संग मजु नोज तुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तुराट—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुरग] घोड़ा । (हि०) ।

तुराना—क्रि० प्र० [सं० तुर] घबराना । घातुर होना ।

तुराना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तुराना' ।

तुराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दटना' । उ०—फिरत फिरत सब
चरन तुराने ।—कबीर श०, पृ० २३० ।

तुरायण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ एक प्रकार का यज्ञ जो चैन शुक्ला ५
और वेशांत शुक्ला ५ को होता है । २ यमन । विरति ।
मनारक्ति (कौ०) ।

तुराव—सञ्ज्ञा पु० [हि० तुरा] जल्दी । शीघ्रता । उ०—गवना
चाला तुराव सगे है । जो कोउ रोके वाक्ये न हँस रे ।—
कबीर श०, भा० २, पृ० ६८ ।

तुरावत्—वि० [सं० स्वरावत्] [स्त्री० तुरावती] वेगवाना । वेगयुक्त ।

तुरावती—वि० स्त्री० [सं० स्वरावती] वेगवाली । झोक के साथ बढ़ने-
वाली । उ०—(क) विषम विषाद तुरावति धारा । भय
भ्रम भँवर भवतं अपारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रसूत
सरोवर सरित अपारा । ढाई कूस तुरावति धारा ।—श०
दि० (शब्द०) ।

तुरावध—वि० [हि० तुरा] स्वरावान् । शीघ्रतायुक्त । उ०—
सामंत सितुंग तुरग तुरावध रावध आवध मणि भरे ।—
पृ० रा०, १३।१३० ।

तुरावान्—वि० [सं० स्वरावान्] दे० 'तुरावत्' ।

तुरापाट्—सञ्ज्ञा पु० [सं०] इत्र ।

- तुरासाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ इद्र। २ विष्णु (को०)।
 तुरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुरी' (को०)।
 तुरि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—सात जनम तुरि घर
 वसों एक वसत भकलक।—पु० रा०, २३।३०।
 तुरित—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तुरत'। उ०—गंगाजल कर कलस
 सी तुरित मंगाइय हो।—तुलसी० प्र०, पु० ३।
 तुरिय^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरग'। उ०—पपरैत तुरिय
 पपरैत गज्ज। नर कस्से वगतर सिलह सज्ज।—पु०
 रा०, १।४४१।
 तुरिय^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरीय'। उ०—सुखित रुई
 तिहि छिन मय ऐसैं। तुरिय प्रवस्य पाइ मुनि जेसैं।—नंद०
 प्र०, पु० ३०२।
 तुरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरीय'। उ०—व्योम मनसूत
 घर वो बरे भौहरे मांहि। सुदर साखी स्वरूप तुरिया
 विशेषिये।—सुदर० प्र०, भा० २, पु० ५६८।
 तुरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोरिया'।
 तुरियासीत^१—वि० [सं० तुरीय + सीत] जो तुरीयावस्था से
 आगे हो। चतुर्थ अवस्था से आगेवाला। उ०—तुरियासीत
 त्वे चित्त जब हक भयो रैन दिन मगन है प्रेम पापी।—पलटू०,
 भा० २, पु० २६।
 तुरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुलाहों का तोरिया या तोडिया नाम
 का मोजार। २ जुलाहों की कूची। हथी। ३ चित्रकार
 की तूलिका (को०)। ४ वसुदेव की एक पत्नी का
 नाम (को०)।
 तुरी^२—वि० वेगवाली।
 तुरी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरय (=घोड़ा)] १ घोड़ी। उ०—तुरी
 प्रठारह साव्य प्रमीरी बल्लू की। दिया मदं ने छोड़ भास
 सब ससक की।—पलटू०, भा० २, पु० ७६। २.
 लगाम। बाग।
 तुरी^४—संज्ञा पुं० [हिं०] १ घोड़ा। २. सवार। अश्वारोही।
 तुरी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरी] १ फूलों का गुच्छा। २ मोती की
 सड़ों का झुंड जो पगड़ी से कान के पास लटकाया
 जाता है।
 तुरी^६—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरही'।
 तुरी^७—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय] चौथी अवस्था। उ०—प्रेम तेल
 तुरी बरी, भयो ब्रह्म उजियार।—दांग्या० बानी, पु० ६७।
 तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरीयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य की गति
 जानी जाती है।
 तुरीय—वि० [सं०] चतुर्थ। चौथा।

विशेष—वेद में बाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—
 परा, परयती, मध्यमा और वैखरी। इसी वैखरी बाणी को
 तुरीय भी कहते हैं। सायण के अनुसार जो नादात्मक बाणी
 मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता
 है उसका नाम परा है। जिसे कवच योगी लोग ही जान

सकते हैं, वह परयती है। फिर जब बाणी बुद्धिगत होकर
 बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं।
 ध्रुव में जब बाणी मुँह में आकर उच्चरित होती है, तब
 उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं।

वेदातियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं—जाग्रत,
 स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष
 है जिसमें समस्त भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा
 अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य होती है।

तुरीयवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुरुष। शूद्र।

तुरीयावस्था—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय + अवस्था] वेदातियों के अनुसार
 चार अवस्थाओं में से अंतिम। वि० दे० 'तुरीय'। उ०—इसी
 प्रकार तुरीयावस्था (दृष्ट) नाम की कविता में उन्होंने
 ब्रह्मानुसूति का वर्णन इस प्रकार किया है।—चिंतामणि,
 भा० २, पु० ७२।

तुरुक^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क'।

तुरुकिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरुक] तुर्क जाति की स्त्री। तुरकिन।
 उ०—वरप नाथ तुरुकिनी धान किछु काहु न भावइ।—
 कीर्ति०, पु० ४२।

तुरुप^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रुप] ताश का खेल जिसमें कोई एक रंग
 प्रधान मान लिया जाता है। इस रंग का छोटे से छोटा पत्ता
 दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है।

तुरुप^२—पुं० [सं० द्रुप (=सेना)] १ सवारों का रिसाला। २ सेना
 का एक खंड। रिसाला।

तुरुप^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरपन'। उ०—कसमसे कसे उरुसेढ
 से उरोजन पे लपटात कथुकी की तुरुप विरोधी देख।—
 पद्मनेस०, पु० ४।

तुरुपना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तुरपना'।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुर्क जाति। तुर्किस्तान का रहनेवाला
 मनुष्य।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम
 प्राया है जिससे अभिप्राय हिमाचल के उत्तर पश्चिम के
 निवासियों ही से जान पड़ता है। उक्त पुराणों में तुरुष्क
 राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है। कपासरित्सागर
 और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है।

२ वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो। तुर्किस्तान। ३. एक
 गंधद्रव्य। लोबान। ४ तुर्किस्तान का घोड़ा।

तुरुष्कगौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क + गौड़] दे० 'तुरगगौड़'।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर भयवा तूर] दे० 'तुरही'।

तुरे^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरय'। उ०—जोवन तुरे हाथ गति
 लीजै। जहाँ जाइ तहें भाइ न दीजै।—जायसी प्र० (गुप्त),
 पु० २३४।

तुरैया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'। उ०—सदा तुरैया फूले
 नहीं, सदा न साहुन होय।—गुप्त प्रमि० प्र०, पु० १५६।

तुर्क—संज्ञा पुं० [तु०] १. तुर्किस्तान का निवासी। २ रूम का
 विवासी। टर्कों का रहनेवाला।

तुर्कचीन—सज्ञा पुं० [तु० तुर्क + चीन] सूर्य [को०] ।

तुर्कमान—सज्ञा पुं० [फ्रा० तुर्क] १ तुर्क जाति का मनुष्य । २ तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है ।

तुर्करोज—सज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ्रा० रोज] सूर्य [को०] ।

तुर्कसवार—सज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ्रा० सवार] एक विशेष प्रकार का सवार ।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहनावा पहनाया जाता था ।

तुर्कानी—सज्ञा पुं० [हि० तुर्क] दे० 'तुर्किन' । उ०—सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानी को का कर दीन्हा ।—कबीर सा०, पृ० ८२२ ।

तुर्किन—सज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इन (प्रत्य०)] १ तुर्क जाति की स्त्री । उ०—मू भौंसी थी तो तुर्किन, बन गई पहिरिन । खुदाराम, पृ० १४ । तुर्क की स्त्री ।

तुर्किनी—सज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हि० इनी (प्रत्य०)] दे० 'तुर्किन' ।

तुर्किस्तान—सज्ञा पुं० [तु० फ्रा०] तुर्कों का देश । तुर्की । टर्की [को०] ।

तुर्की—वि० [फ्रा० तुर्क] तुर्किस्तान का । तुर्किस्तान में होनेवाला । जैसे—तुर्की घोड़ा ।

तुर्की^२—सज्ञा स्त्री० १ तुर्किस्तान की भाषा । २ तुर्कों की सी ऐंठ । झकड़ । गवं ।

मुहा०—तुर्की तमाम होना = घमड़ जाता रहना । शेखी निकल जाना ।

तुर्की^३—सज्ञा पुं० १ तुर्किस्तान का घादमी । २ तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुर्की टोपी—सज्ञा स्त्री० [तु० तुर्की + हि० टोपी] एक प्रकार की टोपी जो लाख, गोल, ऊँची और ऊँचेदार होती है ।

विशेष—इस टोपी को तुर्क लोग पहनते थे । इसी से इसका नाम तुर्की टोपी पड़ा ।

तुर्तु^४—अध्य० [हि०] दे० 'तुर्त' । उ०—जो अनदच्छा होय मम तुर्त होत है नाथ ।—कबीर सा०, पृ० २१८ ।

यौ०—तुर्त कुर्त = चल्ती में । शीघ्रतापूर्वक ।

तुर्फरी—सज्ञा पुं० [सं०] प्रकुण का मारनेवाला भाग जो सामने सीधी नोक की ओर होता है । हवा ।

यौ०—जफरी तुफरी = बात का बतवकड़ । प्रलाप ।

तुर्थ^१—वि० [सं०] चौथा । चतुर्थ ।

यौ०—तुर्थ गोख = एक कालसूचक यंत्र । तुर्थवाट = चार साल का बछड़ा ।

तुर्थ^२—सज्ञा पुं० तुरीयावस्था [को०] ।

तुर्थवाह—सज्ञा पुं० [सं०] चार वर्ष की बछिया या बछड़ा [को०] ।

तुर्थी—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिसमें मुक्ति हो जाती है । तुरीय ज्ञान ।

तुर्थीश्रम—सज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थीश्रम । सन्यासाश्रम ।

तुरी^१—सज्ञा पुं० [प्र०] १ घुंघराले वालों की लट जो माथे पर हो । काकुल ।

यौ०—तुरी तरार = सुंदर बालों की लट ।

२ पर या फुँदना जो पगड़ी में लगाया या खोसा जाता है । कलगी । गोशवारा । ३ बादले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है ।

मुहा०—तुरी यह कि = उसपर भी इतना और । सबके उपरांत इतना यह भी । जैसे,—वे घोड़ा तो ले ही गए, तुरी यह कि खर्च भी हम दें । किसी बात पर तुरी होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना । (२) यथायं बात के प्रतिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना । हाशिया चढ़ाना ।

४ फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है । ५ ठोरी घावि में लगा हुआ फुँदना । ६ पक्षियों के सिर पर निकले हुए परों का गुच्छा । चोटी । शिखा । ७ हाशिया । किनार । ८ मकान का छज्जा । ९ मुँहासे का वह पल्ला जो उसके ऊपर निकला होता है । १०. गुलतुरी । मुगंकेष नाम का फूल । अटाघारी । ११. कोडा । चाबुक ।

मुहा०—तुरी करना = (१) कोड़ा मारना । (२) कोड़ा मारकर छोड़े की बड़ाना ।

१२ एक प्रकार की गुलगुल जो ८ या ९ प्रगुल लंबी होती है ।

विशेष—यह जाड़े भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों में रहती है, पर गरमी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है ।

१३ एक प्रकार का बटेर । डुयकी ।

तुरी^२—सज्ञा पुं० [अनु० तुल्य तुन (= पानी डालने का शब्द)] भाँग घादि का घूँट । चुसकी ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—तुरी बड़ाना या जमाना = भाँग पीना ।

तुरी^३—वि० [फ्रा० तुरंस्] घनोष्ण । शीत ।

तुर्वणि—वि० [सं०] १ कुर्त्तला । क्षिप्र । २. विजेता । शत्रुओं को नष्ट या क्षतिग्रस्त करनेवाला [को०] ।

तुर्वसु—सज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयानी के पथ में उत्पन्न हुआ था ।

विशेष—राजा ययाति ने विषय भोग से तृप्त न होकर जब इससे इसका जीवन माँगा था, तब इसने देने से साफ इनकार कर दिया था । इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू प्रथमियों प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर प्रत्येक प्रकार के कष्ट भोगेगा । विष्णुपुराण के अनुसार तुर्वसु का पुत्र हुआ बाहु, बाहु का गोमानु, गोमानु का ब्रजान, ब्रजान का करधम और करधम का महता । महता की कोई सति न थी, इससे उसने पुत्रवशीय दुष्यंत को पुत्र रूप से ग्रहण किया ।

तुर्श^१—वि० [फ्रा०] १ खट्टा । २ रुखा [को०] । ३. कड़ा [को०] ।

४ प्रयत्न [को०] । ५ क्रुद्ध । कुपित [को०] ।

तुर्शरू—वि० [फ्रा०] तीखे मिजाजवाला । बदमिजाज । उ०—तुर्शरूई छोड़ दे श्री तत्त्वगोई तक कर ।—कविता की०, भा० ४, पृ० १० ।

तुलसी—सका श्री० [क्रा० तुलसी + हि० आई (प्रत्य०)] दे० 'तुलसी'।

तुलसी—क्रि० प्र० [क्रा० तुलसी से नामिक धातु] खट्टा हो जाना।

तुलसी—सका श्री० [क्रा०] १ खटाई। अम्बता। २ कृता। अग्र-सप्तता (को०)।

तुलसी—सका श्री० [क्रा०] घोड़े के दाँतो में कीट या मेल जमने का रोग।

तुलसी—वि० [सं०] दे० 'तुल्य' उ०—'हरीचंद' स्वामिनि अधि-रामिनि तुल न जगत में जाकी।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८०।

तुलक—सका प्र० [सं०] राजा का सलाहकार। राजमन्त्री (को०)।

तुलकना—क्रि० प्र० [सं० तुल] बराबरी करना। समता करना। उ०—बल्लभा यहि में व मचाकवि कोने धी काम कना तुलकी।—प्रकलरी०, पृ० ३५१।

तुलसी—सका श्री० [हि०] दे० 'तुलसी'। उ०—घरि घरि तुलसी वेब पुराण।—धी० रासी, पृ० ८१।

तुलन—सका प्र० [सं०] १ वजन। तोल। २. तोलना। ३. तुलना करना। समापता दिखावा (को०)।

तुलना—क्रि० प्र० [सं० तुल] १ तोला जाना। तराजू पर अंदाजा जाना। मान का कृता जाना।

सयो० क्रि०—जाना।

२ तोल या माप में बराबर उतरना। तुल्य होना। उ०—सात सयं अपवर्गं सुख धरिय तुल्य इह भग। तुल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसग।—तुलसी (शब्द०)। ३ किसी भाषा पर इस प्रकार ठहरना कि भाषा के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोझ के कारण किसी ओर को झुका न हो। ठीक अंदाज के साथ टिकना। जैसे, किसी कोस पर छड़ी आदि का तुलकर टिकना। वाइसिकिंग पर तुलकर बैठना। ४ किसी प्रत्यय आदि का इस प्रकार हिसाब से चलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और उसना ही भाषात पहुँचावे जितना इष्ट हो। सधना। जैसे, तुलकर तलवार का मारना। ५. नियमित होना। बँधना। अंदाज होना। बँधे हुए मान का अभ्यास होना। उ०—जैसे, दूकान-दारों के हाथ तुल हुए होते हैं, चितना उठाकर दे देते हैं, वह प्राय ठीक होता है। ६. भरना। पूरित होना। ७ पाड़ी के पहिए का घोंगा जाना। ८ उद्यत होना। उताऊ होना। किसी काम या बात के लिये विलकुल तैयार होना। जैसे,—वे इस बात पर सुले हुए हैं, कभी न मानेंगे।

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = (१) कोई काम करने के लिये उद्यत होना। (२) जिद पकड़ लेना। हठ करना। उ०—तोचने के लिये भला किसकी, तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२। तुली हुई बातें कहना = ठिकाने की बातें कहना। पक्की बातें कहना। उ०—तोचने के लिये भला किसकी। तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२।

तुलना—सका श्री० [सं०] १ दो या अधिक वस्तुओं के गुण, माप आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार। मिश्रण। तारतम्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ साध्य। समता। बराबरी। जैसे,—इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती। ३ उपमा। ४ तोल। वजन। ५. तुलना। गिनती। ६ उठाना। साधना (को०)। ७ भाँकना। कूटना। अंदाज लगाना या करना (को०)। ८. परोक्षण करना (को०)।

तुलनात्मक—वि० [सं०] तुलना विषयक। जिसमें दो वस्तुओं की समानता दिखाई जाय। उ०—मानस, मानुषी, विकासशास्त्र हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान।—युगांत, पृ० ९०।

तुलनी—सका श्री० [सं० तुल] तराजू या काँटे की डाँड़ी में सूई के दोनों तरफ का खोला।

तुलसी—सका श्री० [देश०] जलदीबाजी।

तुलपाई—सका श्री० [हि० तोलना, तुलना] १ तोलने की मजदूरी। २ पहिए को घोंघने की मजदूरी।

तुलवाना—क्रि० सं० [हि० तोलना] [पंजा तुलवाई] १. तोल कराना। वजन कराना। २ गाड़ी के पहिए की धुरी में धो, तेज आदि दिलाना। घोंगवाना।

तुलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकस। तूणीर। (को०)।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक छोटा भाड़ या पोथा जिसकी पत्तियों से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक भ्रगुल से दो भ्रगुल तक लंबी और लंबाई छिप हुए गोख काट की होती हैं। फूल मजरी के रूप में पतली सीकों में लगते हैं। भ्रगुर के रूप में बीज से पहले दो दल फूटते हैं। अजिद शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं। तुलसी अनेक प्रकार की होती है। गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है। अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद मिलते हैं। अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर लड़ी कहते हैं। फसली बुझार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है। भारत वर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है, जैसे, गम-तुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कृष्ण तुलसी या कृष्णा, चंदरी तुलसी या ममरी। तुलसी की पत्ती मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है। वैद्यक में यह गरम, कड़ई, दाहकारक, दीपन तथा कफ, वात और कुष्ठ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

तुलसी को वैष्णव अत्यंत पवित्र मानते हैं। शालग्राम ठाकुर की पूजा बिना तुलसीपत्र के नहीं होती। चरणापुत्र आदि में भी तुलसीपत्र बांधा जाता है। तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवर्त पुराण में यह कहा है—तुलसी नाम की एक गोपिका गोबोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख आप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर। आप के अनुसार तुलसी धर्मध्वज राजा की कन्या हुई। उसके रूप की तुलना किसी से नहीं

हो सकती थी, इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने बन में जाकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा—'मैं कृष्ण की रति से कभी तृप्त नहीं हुई हूँ। मैं सन्दी की पति रूप में पाना चाहती हूँ। ब्रह्मा के कथनानुसार तुलसी ने शखचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। शखचूड़ को वर मिला था कि बिना उसकी स्त्री का सतीत्व भग हुए उसकी मृत्यु न होगी। जब शखचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया, तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने शखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इसपर तुलसी ने नारायण को शपथ दिया कि 'तुम पत्थर हो जाओ'। जब तुलसी नारायण के पैर पर गिरकर बहुत रोने लगी, तब विष्णु ने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गङ्गी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा।' तब से बराबर शालग्राम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसी-दल उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की लक्ष्मी की माला और कठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी शालग्राम का विवाह बड़ी धूमधाम से करते हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है, क्योंकि कार्तिक की अमावस्या तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

२ तुलसीदल।

तुलसीचौरा—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्गाकार उठा हुआ स्थान जिसमें तुलसी लगाई जाती है। तुलसी वृक्षावन।

तुलसीदल—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पौधे का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर चढ़ाकर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटते हैं। कहीं कहीं कथा वार्ता आदि में आने के लिये और प्रसाद रूप में तुलसीदल बाँटा जाता है। कहीं कहीं मंदिरों और साधुओं के रागियों की घोर से भी तुलसीदल निमंत्रण रूप में समारोहों के अवसर पर भेजा जाता है।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + दाना] एक गहना।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [सं० तुलसी + दास] उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिनके 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है।

विशेष—ये जाति के सरयूपारीय ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिभोजा के द्वेष थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा हुआ माना जाता है और बहुत छपा नहीं है, इन्हें गाना का मित्र लिखा है। (यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है)। वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। उसका उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। कहते हैं, वेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

नामा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा आई है, जैसे—कलि कुटिल जीव निस्तार दित बालमीकि तुलसी भयो। . . . रामचरित-रस-मत्सरहत महनिधि प्रतधारी।

भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तांत लिखा है और वही लोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्मकाव्य संवत् १५८९ बताया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणों से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजापुर नामक ग्राम ही ठहरता है, जहाँ अब तक इनके हाथ की लिखी रामायण का कुछ अंश रक्षित है। तुलसीदास के माता पिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम द्वे और माता का तुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इनके संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके साक्षात्कृत और अप्रत्यक्ष को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत मासक्त थे। एक दिन स्त्री बिना पुछे घाघ के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा—'यदि तुम इतना प्रेम राम से करते, तो न जाने क्या हो जाते'। स्त्री की बात इन्हें लग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले गए। यहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने आया करते थे। हनुमान जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। हनुमान जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी, जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं, जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बदरो का उत्पात करना और बादशाह का तग आकर छोड़ना, इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ८ (रामनवमी), संवत् १६३१ को रामचरित मानस लिखना प्रारंभ किया। संवत् १६८० में काशी में मसीघाट पर इनका शरीरांत दृष्टा, ऐसा इस दोहे से प्रकट है—सबत सोलह सौ प्रथी मसी गग के तीर। आवण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। कुछ लोगों के मत से 'शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्यामा तीज अर्ति' पाठ चाहिए क्योंकि इसी तिथि के अनुसार गोस्वामी जी के मंदिर के वर्तमान अधिकारी बराबर सीधा दिया करते हैं, और यही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है। रामचरितमानस के प्रतिरिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहावली, गीतावली, कवितावली या कविता रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला नहछु, बरवें रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्य सदीपनी, कृष्णगीतावली। इनके प्रतिरिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसीद्वेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी। बबई। बबरी। ममरी।

तुलसीपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीवास—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + वास (=महक)] एक प्रकार का महोदध धान जो अगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल बहुत सुगन्धित होता है और कई साल तक रह सकता है ।

तुलसीवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी के वृक्षों का समूह । तुलसी का जंगल । २ वृंदावन ।

तुलसी विवाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की मूर्ति के साथ तुलसी के विवाह करने का एक उत्सव ।

विशेष—हिंदू परिवारों की धार्मिक महिलाएँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में श्रीरामपंचक एकादशी से पूर्णिमा तक यह उत्सव मनाती हैं ।

तुलसी वृंदावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुलसीचौरा [को०] ।

तुलाह(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुला + हिं० ह (स्वा० प्रत्य०)] तुला । तराजू । उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पक्षज न सेर मड़ाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३ ।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साध्यप । तुलना । मिलाव । २. गुल्ल नापने का यंत्र । तराजू । काँटा ।

यौ०—तुलावट ।

३ मान । तौल । ४ मनाव आदि नापने का यंत्र । भाट । ५ प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के समम होती थी । ६ ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि ।

विशेष—मोटे हिसाब से दो चक्षुषों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश पर्याप्त सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है । तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के साथ ४५-४५ दंड होते हैं । इस राशि का भाकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है ।

७. सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी । वादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा । वि० दे० 'तुलापरीक्षा' । ८ वास्तु विद्या में स्तम्भ (स्तम्भ) के विभागों में से चौथा विभाग ।

तुलाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुला = रुई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो । रुई से भरा दोहरा कपड़ा जो धोड़ने के काम में आता है । तुलाई । उ०—तपन तेज तपता तपन तूल तुलाई माह । सिसिर सीत वयोद्वै न घटें दिन लपटे वियनाह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तुलाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] १ तौलने का काम या भाव । २ तौलने की मजदूरी ।

तुलाई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को घोंगाने या घुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।

४-५५

तुलाकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तौल में कसर । २ तौल में कसर करनेवाला । डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य ।

तुलाकोटि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तराजू की डही के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी बँधी रहती है । २ एक तौल का नाम । ३. प्रबुद्ध संख्या । ४ तूपुर । ५. स्तम्भ का सिरा या छोर (को०) ।

तुलाकोटी—सञ्ज्ञा स्त्री० । [सं०] दे० 'तुलाकोटि' [को०] ।

तुलाकोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुलापरीक्षा । २ तराजू रखने का स्थान (को०) ।

तुलाकोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाकोश' ।

तुलादंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुलादण्ड] तराजू की डाँड़ी या डही [को०]

तुलादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है । यह सोबह महादानों में से है । तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं ।

तुलाधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तराजू की डही । २ तराजू का पलड़ा [को०] ।

तुलाधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी । सोदागर । २ तुला राशि । ३. सूर्य [को०] ।

तुलाधार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुला राशि । २ तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बंधे रहते हैं । ३ बनियाँ । बणिक् । ४. काशी का रहनेवाला एक बणिक् जिसने महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था ।—(महाभारत) । ५. काशीनिवासी एक व्यापारी जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था ।

विशेष—कृतबोध नामक एक व्यक्ति जब इससे सामने आया, तब इसने उसका समस्त पूर्ववृत्तांत कह सुनाया । इसपर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया ।—(बृहद्बर्मपुराण) ।

तुलाधार^२—वि० तुला को वारण करनेवाला ।

तुलना(५)^१—क्रि० घ० [हिं० तुलना (=तौल में बराबर माना)] आ पहुँचना । समीप आना । निकट आना । उ०—(क) संमुद बोक घन जड़ी बिवाना । जो दिन डरे सो घाह तुलाना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) घपनो काध पापु ही बोख्यो इसकी मोचु तुलानी ।—सूर (शब्द०) ।

तुलना^२—क्रि० सं० [हिं० तुलना] १. तुलना । तौलना । २. बराबर होना । पूरा सतरना । ३. पाड़ी के पहियों को घोंगाना । गाड़ी के पहियों की घुरी में चिकना विधान ।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियुक्तों की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में अग्निपरीक्षा, बिषपरीक्षा आदि के समान प्रचलित थी । दोषी या विशेष होने की दिव्य परीक्षा ।

विशेष—सूत्रियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान दिया हुआ है । एक छुल्ले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक कड़ी सी तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर

तोरण आदि बाँधे जाते थे। फिर मंत्रपाठपूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर बैठाकर मिट्टी आदि से तौल लेते थे। फिर उसे उतारकर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें पितृयाक (तिल की खली), भात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन ताब दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाभार' [को०]।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलादान'।

तुलाप्रमह—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाप्रमाह—संज्ञा पुं० [सं०] तुलाप्रमह।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] घुंघरी के बीज जो तौल के काम में आते हैं। गुजाबीज।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] शंकर दिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलाभार—संज्ञा पुं० [सं०] सोने जवाहरात का एक पुरुष के तौल का मान जो दान किया जाता था [को०]।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह श्रदाज या मान जो तौलकर किया जाय। २. बाट। बटखरा।

तुलामानान्तर—संज्ञा पुं० [सं० तुलामानान्तर] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कोटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलायत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुलायन्त्र] तराजू।

तुलायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू की दंडी [को०]।

तुलावा—संज्ञा पुं० [हि० तुलना] १. वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके घुरी में तेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। २ वह लकड़ी जिसके सहारे घोगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [मं०] कम तौलना। ढाँडी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुलाहों की कूँची। २ चित्र बनाने की कूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजन की तरह की एक छोटी चिड़िया।

तुलित—वि० [सं०] १ तुला हुआ। २ बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शात्मनी वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का फल।

तुली^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुलि'।

तुली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटा तराजू। काँटा।

तुली^३—संज्ञा स्त्री० [?] तवाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाडा कहते हैं।

तुलू—संज्ञा स्त्री० [कन्नड] कर्नाटक में प्रचलित एक उपभाषा।

तुलू—संज्ञा पुं० [मं० तुलूष] सूर्य या किसी नक्षत्र का उदय होना।

तुलूलो—संज्ञा स्त्री० [मनु० तुलतुल] बंधी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बंधना।

तुल्य—वि० [सं०] १. समान। बराबर। २. सप्रति। समरूप। उसी प्रकार का। ३. उपयुक्त। युक्त [को०]। ४. अभिन्न [को०]।

तुल्यकक्ष—वि० [सं०] समान। बराबरी का। उ०—राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस सहभाव को तुल्यकक्ष कहकर काव्य को दूसरे प्रकार के लेखों से अलग किया है।—पा० सा० सि०, पु० १।

तुल्यकर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] (व्यक्ति) जिनका उद्देश्य समान हो [को०]।

तुल्यकाल—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकालीय—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकुल्य^१—वि० [सं०] समान कुल का [को०]।

तुल्यकुल्य^२—संज्ञा पुं० रिश्तेदार। संबंधी [को०]।

तुल्यगुण—वि० [सं०] १ समान गुणवाला। २ समान रूप से अच्छा [को०]।

तुल्यजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान [को०]।

तुल्यजोगिता^(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुल्ययोगिता'। उ०—तुल्यजोगिता तर्हें घरम जहें बरन्यन को एक।—भूषण प्र०, पु० २७।

तुल्यतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अनुमान जो सत्य के निकट हो [को०]।

तुल्यसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बराबरी। समता। २ सादृश्य।

तुल्यदर्शन—वि० [सं०] समान दृष्टि से देखनेवाला। सबके प्रति एक दृष्टि रखनेवाला [को०]।

तुल्यनामा—वि० [सं० तुल्यनामन्] एक ही नाम का। समान नाम का [को०]।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुलकर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यप्रधानव्यङ्ग्य] वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार जिसमें कई प्रस्तुतों या प्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। जैसे,—(क) अपने अंग के जानि के जोबन सुपति प्रबोनि। स्तन, मन, नेन, नितब को बडो इजाफा

कीन ।—बिहारी (शब्द०) । यहाँ स्तन, मन, नयन, नितंब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इजाफा होना' एक ही धर्म कहा गया है । (ख) लखि तेरी सुकुमारता परी या जग मोहि । कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहि (शब्द०) । यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है ।

तुल्ययोगी—वि० [सं० तुल्ययोगिन्] समान सब व रखनेवाला ।

तुल्यरूप—वि० [सं०] समरूप । सदृश । एक जैसा [को०] ।

तुल्यलक्षण—वि० [सं०] समान लक्षण युक्त [को०] ।

तुल्यवृत्ति—वि० [सं०] समान पेशेवाला [को०] ।

तुल्यशः—क्रि० वि० [सं०] तुल्यतापूर्वक । तुल्यतापूर्वक [को०] ।

तुल्य—वि० [सं० तुल्य] दे० 'तुल्य' ।

तुल्यल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

तुव—सर्व० [हिं०] दे० 'तव' ।

तुब^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम' । उ०—यिर रहहु राव हम उच्चरे, न उरि न उरि प्रव सेख तुव ।—ह० रासो, पृ० ५१ ।

तुवर^१—वि० [सं०] १. कसेला । २. बिना दाढ़ी मोछ का । शमशुद्दीन ।

तुवर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसेला रस । कषाय रस । २. भरहर । ३. एक पोधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है ।

विशेष—इसके फल इसली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है ।

तुवरयावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल ज्वार । लाल जुन्हरी ।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपीचदन । २. माढ़की । भरहर ।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुवरिका' ।

तुवरीशिव—संज्ञा पुं० [सं० तुवरीशिव] चकवेंड का पेड़ । पेंवार ।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँबी ।

तुशियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है । इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । पुरनी ।

तुप—संज्ञा पुं० [सं०] १. घन के ऊपर का छिलका । भूसी । उ०—घनदघन, इनकोँ सिख ऐसे जैसे तुप ले फटके ।—घनानंद, पृ० ५४३ । २. ढंढे के ऊपर का छिलका । ३. बहेड़े का पेड़ ।

तुपग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मणि ।

तुपधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] छिलकायुक्त मनाज [को०] ।

तुपसार—संज्ञा पुं० [सं०] मणि [को०] ।

तुपांतु—संज्ञा पुं० [सं० तुपांतु] एक प्रकार की काँजी जो भूसी सहित कूटे हुए जो को सड़ाकर बनती है ।

विशेष—वैद्यक में यह मणिदीपक, पाचक, हृदयप्राही और तीक्ष्ण मानी गई है ।

तुपाग्नि—संज्ञा पुं० [हिं०] तुपातन [को०] ।

तुपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी की भाग । घासकूस की भाग । करसी की भाग । २. भूसी या घास कूस की भाग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है ।

विशेष—कुमारिल भट्ट तुपाग्नि में ही भस्म होकर मरे थे ।

तुपार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा में मिली भाप जो सरदी से जमने और सूक्ष्म जलकण के रूप में हवा से प्रलग्न होकर गिर और पदार्थों पर जमती दिवनाई देती है । पाला । २. हिम बरफ । ३. एक प्रकार का कपूर । चीनियाँ कपूर । ४. हिम सय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे । तुपार देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी । ६. भोस (को०) । ७. हलकी वर्षा । कुही (को०) । ८. तुपार देश का घोडा (को०) ।

तुपार^२—वि० धूने में बरफ की तरह ठंडा ।

तुपारकण—संज्ञा पुं० [सं०] भोस की बूँदें । हिमकण [को०] ।

तुपारकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमकर । चंद्रमा । २. कपूर (को०) ।

तुपारकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु । जाडा [को०] ।

तुपारकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुपारगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुपारगौर^१—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

तुपारगौर^२—वि० १. तुपार जैसा श्वेत । हिम सा घावल । २. तुपा पठने से श्वेत [को०] ।

तुपारद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

तुपारपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुपारपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोला । २. बरफ ।

तुपारमर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तुपारतु^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठंडक का मौसम । शीतकाल [को०] ।

तुपाररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तुपारशिखरी—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुपारशील—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुपारांशु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तुपारद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत ।

तुपारावृत्त—वि० [सं० तुपार + आवृत्त] हिम से घिरा हुआ । हिम से ढँका हुआ । उ०—तुपारावृत्त घंघेरा पय या । हिम गिर रहा या । तारों का पता नहीं, भयानक शीत और निर्जन निशीथ ।—प्राकाश०, पृ० ३५ ।

तुपित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के गणदेवता जो सस्या में १२ हैं । मन्वतरों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं । २. विष्णु । ३. एक स्वर्ग का नाम । (बौद्ध) ।

तुपिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेवियों का एक वर्ग, जिनकी सस्या बारह या छत्तीस मानी जाती है [को०] ।

तुपोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुपोदक' ।

तुपोदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलके समेत कूटे हुए जो को पानी में सड़ाकर बनाई हुई काँजी । तपावु । २. भूसी को सड़ाकर खट्टा किया हुआ जल ।

तुप्ट—वि० [सं०] १. तोपप्राप्त । तृप्त । संतुष्ट । उ०—तुप्ट तुम्हीं में उम्हे देखकर रही, रहूँगी ।—साकेत, पृ० ४०५ । २. राजी । प्रसन्न । सुख ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष । प्रसन्नता ।

तुष्टना^७—क्रि० घ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना । उ०—(क) अपर कमं तुष्टत चिरकाशा । प्रेम ते प्रयट होत वचकाला ।—विश्राम (शब्द०) (ख) नाम खेद जेहि युवति को नहि सुहाइ सुनि तासु । राम जानकी के कहै तुष्टत तेहि पर मासु ।—विश्राम (शब्द०) ।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संतोष । तृप्ति । २. प्रसन्नता ।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार प्राक्यात्मिक और पाँच बाह्य । प्राक्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मानकर सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृति या धंगतुष्टि कहते हैं । (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है, ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है, उसे उपादान या सखिलतुष्टि कहते हैं । (३) काल—कास पाकर प्राप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा, इस प्रकार तुष्टि को कासतुष्टि या मोक्षतुष्टि कहते हैं । (४) भाग्य—भाग्य में होगा तो मोक्ष हो जायगा, ऐसी तुष्टि को भाग्यतुष्टि या वृष्टितुष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार इन्द्रियों के विषयों से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है, वह पाँच प्रकार से होती है, जैसे, यह समझने से कि, (१) अर्जन करने में बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यों ज्यों भोग करते हैं, त्यों त्यों इच्छा बढ़ती ही जाती है और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता । इन पाँचों के नाम क्रमशः पार, सुपार, पारापार, अनुरामांभ और सत्तामाम हैं ।

इन नौ प्रकार की तुष्टियों के विपर्यय से बुद्धि की प्रशक्ति उत्पन्न होती है । वि० दे० 'प्रशक्ति' ।

३ कस के छाठ भाइयों में से एक ।

तुष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का एक गहना । कण्ठमणि [को०] ।

तुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तुस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुष' ।

तुसाँवे^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—रहै दा तुसाँदे जाल कछु ना कहैषा है ।—नट०, पृ० ६३ ।

तुसाडी^७—सर्व० [पुं०] घापकी । उ०—की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो होरी है ।—चनानद, पृ० १७६ ।

तुसार—संज्ञा पुं० [सं० तुपार] 'तुपार' । उ०—पूस मास तुसार आयो कपि जाइ जनाइया ।—गुलाल०, पृ० ८४ ।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] घन के ऊपर का छिलका । सूती । उ०—ऐसी को ठाली बैठो है तोसो मूँड़ पिरावे । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत ह्याय न आवै ।—सूर (शब्द०) ।

तुस्स—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घूल । गद । २. भूसी [को०] ।

तुस्स^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तुष' । उ०—सत्य असत्य कहो कद एकै कृ दन तुस्स निकारी ।—राम० धर्म०, पृ० १७५ ।

तुहु^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम' । उ०—जो तुह मिलहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउं सिल तुम्हारि घरि सीसा ।—मानस, १।८१ ।

तुहुफा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोहफा' । उ०—तुहके, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६ ।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० [घ०] दे० 'तोहमत' ।

तुहारा—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' ।

तुहाले^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—जग में राम तुहाले जोई, हवो न कोई फेर हूँ ।—रघु० क०, पृ० १६ ।

तुहि^७—सर्व० [हि० तू + हि (प्रत्य०)] तुम्हको ।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाला । कुहरा । तुपार । २. हिम । बरफ । ३. चंद्रतेज । चाँदनी । ४. शीतलता । ठंडक । ५. कपूर (को०) । ६. मोस (को०) ।

तुहिनकण—संज्ञा पुं० [सं०] मोसकण । तुपार [को०] ।

तुहिनकर—संज्ञा पुं० [पुं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—समाचार मुनि तुहिनगिरि गयनें तुरत निकेत ।—मानस, १।६७ ।

तुहिनगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुचिनद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनशील—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहिनशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरफ का टुकड़ा । बरफ ।

तुहिनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

तुहिनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—गए सकल तुहिनाचल गेहा । गावहि मगल सहित सनेहा ।—मानस, १।६४ ।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुही^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुहि' । उ०—घ्राप को साफ कर तुहीं साई ।—केशव० प्रमी०, पृ० ६ ।

तुम्हे^७—सर्व० [हि०] दे० 'तुम्हें' ।

तूँ—सर्व० [सं० त्वम्] दे० 'तू' ।

तूँधर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोमर' । उ०—अनंगपाल तूँधर वहाँ दिली बसाई पानि ।—पृ० रा०, १।५७० ।

तूँगा^७—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] फीज का समूह । उ०—तूँगा दरवाजा लगे, पूगा पुरा प्रवेस ।—रा० क०, पृ० २६७ ।

तूँगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पृथ्वी । भूमि । २. नाव । नौका ।

तूँब^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' । उ०—जुग तूँब की बीन परम सोमित मन भाई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७ ।

तूँवड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूँबा' ।

तूबना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तूमना' ।

तूबा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] १ कहुआ गोल कद्दू । कहुआ गोल धीया । तितलीकी । उ०—मन पवस दुइ तूबा करिही जुग जुग सारद साजो ।—कवीर ग्रं०, पृ० ३२६ ।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई कामों में लाते हैं, बरतन बनाते हैं, सितार आदि बाजो में ध्वनिकोण बनाने के लिये लगाते हैं आदि ।

२ कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं । कमंडल ।

तूबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तूबा] १ कहुआ गोल कद्दू । २ कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन ।

मुहा०—तूबी लगाना = वात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूबी का व्यवहार करना ।

विशेष—तूबी के भीतर एक वत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है । फिर जिस भग पर उसे लगाना होता है, उसपर आटे की एक पतली छोई रख कर उसके ऊपर तूबी उलटकर रख देते हैं जिससे उस भग के भीतर की वायु तूबी में खिच आती है । यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है, तो उस स्थान को जिसपर तूबी लगानी होती है, नश्वर से पाछ देते हैं ।

तू—सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है । मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम । जैसे,—तू यहाँ से चला जा ।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है, अतः इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटी या नीचों के लिये होता है । परमात्मा के लिये भी 'तू' का प्रयोग होता है ।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, तू तू में में करना = कहा सुनी करना । अशिष्ट शब्दों में विवाद करना । गाली गलौज करना । कुवाक्य कहना ।

यौ०—तू तुकार = अशिष्ट विवाद । कहा सुनी । कुवाक्य । उ०—प्रत्यक्ष धिक्कार और तू तुकार की मुसलाधार वृष्टि होती ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६८ ।

तू^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] कुत्तो को बुलाने का शब्द । जैसे—'घाव तू तू ...' । उ०—दुर दुर करे तो बाहिरे, तू तू करे तो जाय ।—कवीर सा० सं०, पृ० २१ ।

तूख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुप = तिनका] का वह टुकड़ा जिसे गोदकर दोना बनाते हैं । सीक । खरका । उ०—छ्वावति न छाँह, छुए नाहक हो 'नाही' कहि, नाइ गल माहँ बाहँ मेले सुखरूख सी । तीखी दीठि तूख सी, पतूख सी, अररि अग, ऊख सी मरुरि मुख लागति महूख सी ।—देव (शब्द०) ।

तूछा(५)—वि० [हि०] दे० 'तुच्छ' । उ०—वलपी वादसाही सील बाही तेग तूछा ।—शिखर०, पृ० २० ।

तूफ(५)—सर्व० [हि०] दे० 'तुफ' । उ०—दीनानाथ तूफ दिन डूख री कण्ठे जाय पुकार कहाँ ।—रघु० रू०, पृ० ६८ ।

तूटना—क्रि० अ० [सं० श्रुट] 'टूटना' । उ०—तुटै तूट बाहँ । दतै दत मौह ।—पृ० रा०, ७ । १२० ।

तूटना(५)^१—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुष्ट] तुष्ट होना । सतुष्ट होना । तृप्त होना । भ्रष्ट होना । उ०—राधे ब्रजनिधि मीत पै हित के हाथन तुठि ।—अज० ग्रं०, पृ० १७ । २. प्रसन्न होना । राजी होना ।

तूटना(५)^२—क्रि० सं० प्रसन्न करना । सतुष्ट करना ।

तूण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तीर रखने का चोंगा । तरकश ।

यौ०—तूणधर, तूणधार = धनुर्धर ।

२ चामक नामक वृक्ष का नाम ।

तूणद्वेड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाण । तीर ।

तूणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तूणीर । तरकश [को०] ।

तूणी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकश । निषग । २ नील का पौधा । ३ एक वातरोग जिसमें मुत्राशय के पास से दंढ उठता है और गुदा और पेड़ तक फैलता है ।

तूणी^२—वि० [सं० तूणिन्] तूणधारी । जो तरकश लिए हो ।

तूणी^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूणीक ?] तुन का पेड़ ।

तूणीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़ ।

तूणीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तूण । निषग । तरकश ।

तूत—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं ।

विशेष—यह पेड़ मझोले आकार का होता है । इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोत्तरे और मोटे दल के होते हैं । किसी किसी के सिरे पर फाँकें भी कटी होती हैं । फूल मजरी के रूप में लगते हैं जिनसे आगे चलकर कीड़ों की तरह खवे खवे फल होते हैं । इन फलों के ऊपर महीन धाने होते हैं जिनपर रोइयाँ सी होती हैं । इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है । फलों के भेद से तून कई प्रकार के होते हैं, किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे किसी के हरे, किसी के लाल या काग्रे होते हैं । मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं । तूत योरप और एशिया के अनेक भागों में होता है । भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—काश्मीर से सिक्किम तक—राए जाते हैं । अनेक स्थानों में, विशेषतः पञ्जाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं । रेशम के कीड़े उनकी पत्तियाँ खाते हैं । तूत की लकड़ी भी वजनी और मजबूत होती है और खेती तथा सजावट के सामान, और आदि बनाने के काम आती है । तूत शिशिर ऋतु में लहलहाता है और चैत तक फूलता है । इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं ।

तूतही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुतही' ।

मुहा०—तूतही का सा मुँह निकल आना = (१) चेहरे पर दुर्बलता की प्रतीति होना । (२) लज्जित होना । उ०—एक—तूतही का सा मुँह निकल आया ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०६ ।

तूतिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूथ्य] नीला थोथा ।

तूती—[फ्रा०] १ छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच

पीली, गरदन बैंगनी और पर हरे होते हैं। उ०—के बाँ पे वजाँ आई तूती के पास।—दक्खिनी०, पु० ८५। २. कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिजरो में पालते हैं। ३. मटमेल रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है।

विशेष—(१) इसे लोग पिजरो में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है, पर गरमी में उत्तर काश्मीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का घोंसला बनाकर रहती है।

विशेष—(२) उर्दू में तूती शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्गवत् होता है।

मुहा०—तूती का पढ़ना = तूती का मोठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना = किसी की खूब चलती होना। किसी का खूब प्रभाव जमाना। नक्कार खाने में तूती की आवाज की सुनता है = (१) बहुत मोड़ भाड़ या धोरगुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटी की बात कोई नहीं सुनता।

४ मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा। ५ मिट्टी की छोटी टोंटीदार घरिया जिससे लड़के खेलते हैं।

तूव'—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूस'।

तूव^२—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़ [को०]।

तूव^३—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'तूता' [को०]।

तूवा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तूवह्] १ डेर। डेरी। राशि। २ सीमा का चिह्न। हदबंदी। ३ मिट्टी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है। ४ पुरता। टीला [को०]। ५ वह दीवार जिसपर बैठकर तीरदाज निशाना लगाते हैं [को०]। ६ वह टीला जिसपर चांदमारी का अभ्यास किया जाता है [को०]।

तून^१—संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] १ तुन का पेड़। वि० दे० 'तुना'। २ तूल नाम का लाल कपड़ा।

तून^२—संज्ञा पुं० [सं० तूण] दे० 'तूण'।

तून^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—तू न लखति कसि तून कटि सजि प्रसून धनु बान।—स० सप्तक, पु० ३८४।

तूना—क्रि० प्र० [हिं० तूना] १. तूना। टपकना। २ खडा न रह सकना। गिरना। ३ गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

विशेष—दे० 'तुमना'।

तूनी—संज्ञा स्त्री० [विश०] मूत्राशय और पक्वाशय में उठनेवाली पीड़ा। उ०—सी पुरुषों के गुच्छ स्थल में पीड़ा करे उस रोग को तूनी कहते हैं।—माधव०, पु० १४४।

तूनीर^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूणीर'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि हपुधी तून निपंग।—घनेकार्य०, पु० ३६।

तूफान—संज्ञा पुं० [प्र० तूफान] १ डुबानेवाली बाढ़। २ वायु के वेग का उपद्रव। ऐसा प्रघट्ट जिसमें खूब धूल उठे, पानी बरसे, बादल गरजें तथा इसी प्रकार के और उत्पात हों। घाँधी।

क्रि० प्र०—घाना।—उठना।

३. आपत्ति। ईति। प्रलय। आफत। ४ हल्लागुल्ला। बावैला। ५ भगडा। बखेडा। उपद्रव। बंगा फमाद। हलचल। जैसे,—थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की क्या जरूरत ?।

क्रि० प्र०—उठना।—खड़ा करना।

६ ऐसा कलक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जो डना या बाँधना = झूठा कलक लगाना। झूठा दोषारोपण करना। तूफान बनाना = दे० 'तूफान जोड़ना'।

तूफानी—वि० [फ्रा० तूफानी] १ तूफान खड़ा करनेवाला। ऊत्रमी। उपद्रवी। बखेडा करनेवाला। फसादी। २ झूठा कलक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। ३ उग्र। प्रचंड। प्रबल।

तूवा^१—संज्ञा पुं० [विश०] स्वर्ण का एक वृक्ष जिसके फल परम स्वादिष्ट माने जाते हैं। उ०—और तूवा वृक्ष तथा कल्पवृक्षों की बड़ी सुगंधि आती थी।—कबीर म०, पु० २१२।

तूमा^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तूम'। उ०—तय वह लरिकिनी वा ब्रजवासी के डिंग प्रायके पूछयो, जो तूम कोन हो ?—दो सो वाचन, भा० २, पु० ३८।

तूमड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे० तूवा + डी (प्रत्य०)] १ तूँबी। २. तूँबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपरे बजाया करते हैं।

विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं। और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ दो पतली नलियों में लगाकर ढाल देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जिनपर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तमतराक] १ तड़क भड़क। शान शोकत। मान बान। २. ठसक। बनावट।

तूम तनाना—संज्ञा पुं० [मनु०] अधिक मालाप। स्वर को प्रत्यधिक खींचने की क्रिया। उ०—सब्र करो, होली के दिन तुम्हारी नजर दिला दूँगा, मगर भाई, इतना याद रखो कि वहाँ पक्का गाना गाया और निकाले गए। तूम तनाना की धुन मत बाँध देना।—काया०, पु० २६५।

तूमना—क्रि० सं० [सं० स्तोम (= डेर) + ना (प्रत्य०)] १ रुई आदि के जमे हुए लच्छों को नीच नीचकर छुड़ाना। उँगली से रुई इस प्रकार खींचना कि उसके रेशे अलग अलग हो जायें। रुई के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ धलंग धलंग करना। उधेड़ना। बिथूरना। २ धज्जी धज्जी करना। उ०—सदियों का दैन्य तमिन्न तूम, धुन तुमने काते प्रकाश सूत।—युगांत, पु० ५४। ३ मलना। घलना। ४. बात का उधेड़ना। रहस्य खोलना। सब भेद प्रकट करना।

तूमर^१—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] दे० 'तूँबा'। उ०—ताखी और सिक्क साज सेव्ही और तूमर माल।—बीखा०, पु० ५६।

तूरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तूमरी' । उ०—सीस वष कर
तूमरी, सिये बुल्लि घर पोय ।—पं० रासो पृ० ७० ।

तूमा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] दे० 'तूँबा' । उ०—तूमा तीन भारती
बनायो धीरे नीर भरि हाथ लगायो ।—गुलाल०, पृ० ५७ ।

तूमार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] बात का व्यर्थ विस्तार । बात का घतगड़ ।
क्रि० प्र०—बाधना ।

तूगिया सूत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तूगना + सूत] एव गहीन कता हूमा
सूत । ऐसा सूत जो तूमी हुई ऊई से काता गया हो ।

तूया—उ० स्त्री० [देश०] काली सरसो ।

तूर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का राजा । नगाड़ा । उ०—तोरन
तोरन घूर बजे वर भावत भौटिन गावति ठाड़ी ।—केशव
(शब्द०) । २ तुरही नाम का वाजा । सिंघा ।

तूर^२—वि० शीघ्रता करनेवाला । जल्दबाज [स्त्री०] ।

तूर^३—सञ्ज्ञा पुं० हरकारा [स्त्री०] ।

तूर^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० तूर (= सं० तूर)] १ गज डेढ़ गज लंबी एक
सड़की जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी
नपेटी जाती है । इससे दोना चिरों पर दो चूर और
चार छेद होते हैं । २ वह रस्सी जिसे जनानी पालकी
के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हवा से उड़ने न
पावे । चौबंदी ।

तूर^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तूवरी] सरहर ।

तूर^६—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] नाम या सोरिया का एक पहाड़ जिसपर हज-
रत मुमा ने ईश्वर का जत्वा देना था ।

थो०—कोह तूर = तूर नामक पहाड़ ।

तूरन^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरण^८—क्रि० वि० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' ।

तूरत—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पत्ती ।

तूरन^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य' । उ०—नददाम की कृति
सदूरन । नक्ति मुक्ति पावे सोइ तूरन ।—नद० ग्रं०, पृ० २१५ ।

तूरना^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तूरना^{११}—क्रि० सं० [हि०] दे० 'तूड़ना' । उ०—धनु सतावन है जग
को है फठोर महा सबको मद तूरत ।—शमु (शब्द) ।

तूरना^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही । उ०—ताकत सराय के विवाह
के उद्याह कपू डोलि लोल बूझन नवद डोन तूरना ।—तुलसी
(शब्द०) ।

तूरा^{१३}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । गति [स्त्री०] ।

तूरा^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का वाजा । उ०—निसि दिन
बाजहि पावर तूरा । रहस कूद सब भरे सँदूरा ।—जायसी
(शब्द०) ।

तूरान—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] फारस के उत्तरपूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया
का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियों का
निवासस्थान है । हिमालय के उत्तर भट्टाई पर्वत का प्रदेश ।

विशेष—फारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत
प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था । यह तूरानी जाति
वही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे । अफरासियाव नामक
तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है । प्राचीन
तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुधर्म की बलि
चढ़ाते थे । ये प्रायों की अपेक्षा असभ्य थे । इनके उत्पातों से
एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था । चंगेज खाँ, तैमूर,
उसमान आदि इसी तूरानी जाति के अरुंथ थे ।

तूरानी^१—वि० [फा०] तूरान देश का । तूरान सवण ।

तूरानी^२—सञ्ज्ञा पुं० तूरान देश का निवासी ।

तूरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूर] दे० 'तूरि' । उ०—सुनो प्रयाण के विषाण
तूरि भेरि बज उठे ।—युगपथ, पृ० ८८ ।

तूरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घतूरे का पेड़ ।

तूरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तूर] तूर्य । तूरही ।

तूरू^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूर' । उ०—जस मारइ कहं वाजा तूरू ।
सूरी देखि हँसा मसूरू ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६५ ।

तूर्य^१—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्दी । तुरत । उ०—तू तूर्य और हो
पूर्य सकल, नय नवोमियो के पार उतर ।—गीतिका, पृ० ७ ।

तूर्य^२—वि० फुर्तीला । वेगवान् [स्त्री०] ।

तूर्य^३—सञ्ज्ञा पुं० खरण । वेग । फुर्ती [स्त्री०] ।

तूर्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे
त्वरितक भी कहते हैं ।

तूर्यि^१—वि० [सं०] फुर्तीला । तेज [स्त्री०] ।

तूर्यि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० वेग । गति [स्त्री०] ।

तूर्य^४—क्रि० वि० [सं०] तुरत । तत्काल । शीघ्र ।

तूर्य^५—वि० फुर्तीला । तेज [स्त्री०] ।

तूर्य^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुरही । सिंघा । २ मृदंग [स्त्री०] ।

तूर्यशोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाद्यशुद्ध [स्त्री०] ।

तूर्यखंड, तूर्यगठ—सञ्ज्ञा [सं० तूर्यखण्ड, तूर्यगण्ड] एक प्रकार का
मृदंग [स्त्री०] ।

तूर्यमय—वि० [सं०] सगीतात्मक [स्त्री०] ।

तूर्य^७—क्रि० वि० [सं०] तुरत । शीघ्र ।

तूर्ययाण—वि० [सं०] १. फुर्तीला । वेग । २. विजेता । ३.
सर्वोच्च । श्रेष्ठ [स्त्री०] ।

तूर्यि^८—वि० [सं०] तूर्ययाण [स्त्री०] ।

तूल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. तूल का पेड़ । णहूत ।
३. कपास, मदार, सेमर आदि के डोडे के भीतर का धूसा ।
रुई । उ० । उ०—(क) जेहि मारवगिरि मेव उघाहीं ।
कहहु तूल फेहि लेखे माहीं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) व्याकुल
फिरत भवन जन जहँ तहँ तूल आक उघराई ।—सूर
(शब्द०) । ४. धास या तूल का सिरा [स्त्री०] । ५. फूल या
पौधों का गुल्म [स्त्री०] । ६. घतूरा [स्त्री०] ।

तूल^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] तुल = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रंगते हैं ।]

हैं। १. सुती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है।
२. गहरा लाल रंग।

तूल^७—वि० [सं० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तदपि सकोच
समेत कवि कहहि सीय सम तूल।—तुलसी (शब्द०)।

तूल^८—सञ्ज्ञा पु० [प्र०] १ लवेपन का विस्तार। लवाई। दीर्घता।
यौ०—तूल भर्ज=लंबाई और चौड़ाई। तूल तकेल=लंबा
चौड़ा। विस्तृत।

मुहा०—तूल खीचना=किसी बात या कार्य का आवश्यकता से
बहुत बढ़ाना। जैसे—(क) व्याह का काम बहुत तूल खींच
रहा है। (ख) उन लोगों का भगड़ा बहुत तूल खींच रहा
है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना।
जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी भावना है।
उ०—मफसरों ने कहा धुदा के लिये बातों को तूल न दो।
—फिसाना, भा० ३, पृ० १७६। तूल पकड़ना=दे० 'तूल-
खींचना'।

२ विलंब। देर। तवालत (को०)। ३ डेर (को०)।

तूलक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलकामुक, तूलचाप, तूलधनुष—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धुनकी (को०)।

तूलत—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की
छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी
वस्तु में बंधी रस्सी इसलिये अटक दी जाती है जिसमें वस्तु
धीरे धीरे नीचे जाय, एक दम से न गिर पड़े।—(लघ०)।

तूलतबोल—वि० [प्र०] बहुत लंबा। उ०—बेगम—बड़ा तूल
तबील फिस्सा है कोई कहीं तक बयान करें।—फिसाना,
भा० ३, पृ० ७२।

तूलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना^१—क्रि० सं० [हि० तुलना] १ घुरी में तेल देने के लिये
पहिए को निकालकर पाढ़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर
ठहराना। २ पहिए की घुरी में तेल या घिकना देना।

तूलना^२—क्रि० प्र० [हि० तुलना] तुल्य होना। तुलित होना।
उ०—सु मध्य सीस फूलय, दिनेस तेज तुल्यं।—द० रासो,
पृ० २४।

तूलनालिका, तूलनाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पूनी (को०)।

तूलपट्टिका, तूलपटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रजई (को०)।

तूलपिचु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रुई (को०)।

तूलफजूल—सञ्ज्ञा पु० [प्र० तूल + फजूल] व्यर्थ विवाद। अनावश्यक
भ्रम। उ०—यदि बिना तूलफजूल किए ही जमीन नकदी
हो रही है तो सोशलिस्ट पार्टी में जाने की क्या जरूरत है।
—मैला, पृ० १५३।

तूलमतूल—क्रि० वि० [सं० तुल्य या प्र० तूल (=लंबाई)] आगने
सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेंट देखी तूलम
तूल होइ। भए बयस दुइ हेंठ मुहमद निति सरवरि करै।—
जायसी (शब्द०)।

तूलवती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

तूलवृक्ष—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज। बिनोला।

तूलसेवन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रुई से सुत कातने का काम।

तूला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कपास। २ दिए की बत्ती (को०)।

तूलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तुलिका (को०)।

तूलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चित्रकारों की कुँची जिससे वे रंग
भरते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम। २. रुई की बत्ती
(को०)। ३. रुई का गद्दा (को०)। ४. बरमा (को०)। ५. धातु
का साँचा (को०)।

तूलिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मणकद। २. सेमर का पेड़।

तूलिफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का वृक्ष या पौधा। २. रंग
भरने की कुँची। ३. लकड़ी का एक भोजार जिसमें कुँची
के रूप में खड़े खड़े रंगे जमाए रहते हैं और जिससे जुसाहे
केलाया हुआ सुत पैठाते हैं। जुसाहों की कुँची। ४. दिए की
बत्ती या वाती (को०)।

तूल^७—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'तूँबा'। उ०—कटि केस बेस मनु
उई हूव। कट मुड परे ज्यों वेलि तूल।—सुजान०, पृ० २२।

तूलर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'तुवरक'।

तूलरक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. हूँडा बैल। बिना सींग का बैल।
२. बिना दाढ़ी मोँछ का मनुष्य। हिजड़ा। ३. कपास रस।
कसला रस। ४. भरहर।

तूलरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. भरहर। २. गोपीवदन।

तूलरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तूल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कपड़े का किनारा (को०)।

तूलणी^१—वि० [सं० तूलणीम् (प्रत्यय०)] मोन। चुप।

तूलणी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० मोन। खामोशी। चुप्पी। उ०—बंचकता,
अप्रमान, अमान, अलाभ भुजंग भयानक तूलणी।—केशव
(शब्द०)।

तूलणी^३—क्रि० वि० चुपचाप। बिना बोले हुए (को०)।

तूलणीक—वि० [सं०] मोनावलबी। मोन साधनेवाला।

तूलणीदंड—सञ्ज्ञा पु० [सं० तूलणीदण्ड] ऐसा दंड जो गुप्त रूप से
दिमा जाय (को०)।

तूलणीभाव—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मोनभाव। चुप्पी (को०)।

तूलणी युद्ध—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कोटिल्य कथित वह युद्ध जिसमें पक्ष
के दोनों शत्रु के मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर
लिया जाय।

तूलणीशील—सञ्ज्ञा पु० [सं०] चुप रहनेवाला। चुप्पा। बहुत कम
बोलनेवाला (को०)।

तूस^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० तुष] भूसी, भूसा। उ०—जे दिन बीन रे
तिहूँ ते वड़ित ते सब सुखत नम न तूस।—मकबरी,
पृ० ३१८।

तृप्त^१—सञ्ज्ञा पु० [विम्बती पोष] [वि० तृप्ति] १. एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशुम। पशुमीना। उ०—तृप्त तुराई में दूरे दूरी जाय न त्यागि।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, यफं के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंडे से ठंडे स्थानों में रह सकती है और काश्मीर से लेकर मध्य एशिया में भलटाई पर्वत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने मुखायम रोमों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को काश्मीर में मसली तृप्त या पशुम कहते हैं। यह दुसालों में दिया जाता है। खालिस तृप्त का भी शाल बनता है जिसे तृप्ति कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तृप्तवाली बकरियाँ सदाख में जाड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

२ तृप्त के ऊन का जमाया हुआ कबल या नमदा।

तृप्त^२—सञ्ज्ञा पु० [हि०] भय। त्रास। उ०—मधम गीत मुखे मंदर, त्रिविध कुकवि विण तृप्त।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७८।

तृप्तदान—सञ्ज्ञा पु० [पुर्त्ति० कारदण + दान (प्रत्य०)] कारतृप्त।

तृप्तना^३—क्रि० सं० [सं० तृप्ति] १ सतृप्ति करना। तृप्त करना। २. प्रसन्न करना।

तृप्तना^४—क्रि० प्र० संतृप्ति होना।

तृप्ता—सञ्ज्ञा पु० [सं० तृप्ति] चोकर। भूषी।

तृप्ती—वि० [हि० तृप्त] तृप्त के रंग का। स्लेट या करज के रंग का करजई।

तृप्ती^२—सञ्ज्ञा पु० एक रंग जो करज या स्लेट के रंग की तरह का होता है।

विशेष—यह रंग हल्का, माज्जुल और कसीस से बनता है।

तृप्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ घूल। रेणु। रज। २ भण्ड। कणिका। ३ जटा। ४. चाप। ५. धनुष। ५. पाप (को०)।

तृप्त—वि० [सं० तृप्ति] १. मादृत। २ दुःखी। ३ मारा हुआ। निहत (को०)।

तृप्ति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ प्राघात, कष्ट या दुःख देना। २. वध (को०)।

तृप्ति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कथयप ऋषि।

तृप्ति—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृप्ति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृप्ति^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति'।

तृप्तिवत—वि० [सं० तृप्ति, हि० तृप्ति + वत] दे० 'तृप्तिवत'। उ०—
ऐसे भूखे प्रीत भनाज, तृप्तिवत जल सेसी काज।—दक्षिणी०,
पृ० ४४।

तृप्तगुणता^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृप्तगुण + ता (प्रत्य०)] दे० 'तृप्तगुणता'।
४-५६

उ०—तन परिहरि मन दे तुव पद हैं सोक तृप्तगुणता छीनी।—
भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५८१।

तृच—सञ्ज्ञा पु० [सं०] तीन छंदोंवाला पद्य (को०)।

तृजग—वि० [सं० त्रियंक्] दे० 'त्रियंक्'। उ०—तृजग जोनि गत
गोध जनम भरि खरि खाइ कुजतु जियो हों।—तुलसी
(शब्द०)।

यौ०—तृजग जोनि = त्रियंक् योनि।

तृण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वह उद्भिद् जिसकी पेड़ी या कांड में छिलके और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नरें होती हैं, जाल की तरह बुनी हुई नहीं। जैसे, दूब, कुश, सराव, मूँज, बाँस, ताड़ इत्यादि। घास। उ०—ऊसर बरसे तृण हिं जामा।—
तुलसी (शब्द०)।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मललातंगत मल बनते जायें, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्रायः गठि छोटी छोटी दूर पर होती हैं और इन गठियों के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के पास डठल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पुष्पी का अधिकांश सल छोटे तृणों द्वारा माच्छादित रहता है। अधिकांश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गौंदर, नरकट, गूँदी, मूँज, उभ, मोषा इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ना = हीनता प्रकट करना। गिड़-
पिड़ाना। तृण गहाना या पकड़ाना = नष्ट करना। विनीत
करना। शशीभूत करना। उ०—कहो तो ताको तृण गहाय
के जीवत पायन पारों।—सूर (शब्द०)। (किसी वस्तु
पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि
उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े। उ०—भाबु
की बानिक पै तृण टूटत है कही न जाय कष्ट स्याम तोहि
रत।—स्वा० हृदिदास (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ वच्चे पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये
टोटके की तरह पर तिनका तोड़ती हैं।

तृणवत् = तिनके वराबर। प्रत्यत तृच्य। कुछ भी नहीं। तृण
बराबर या समान = दे० 'तृणवत्'। उ०—मस कहि जला
महा अभिमानी। तृण समान सुधीवहि जानी।—तुलसी
(शब्द०)। तृण तोड़ना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे
नजर से बचने के लिये उपाय करना। उ०—(क) गाँधे
महामनि मोर मजुल भग सब तृण तोरही।—तुलसी (शब्द०)
(ख) स्याम गोर सुंदर दोउ जोरी। निरखत छवि जननी
तृण तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (किसी से) तृण तोड़ना =
संबंध तोड़ना। नाता मिटाना। उ०—भुजा छुड़ाइ तोरि तृण
ज्यों हित करि प्रभु निहुर दियो।—सूर (शब्द०)।

२ तिनका (को०) । ३ खर पात (को०) ।

तृणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घास की खराब पत्ती (को०) ।

तृणकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।

तृणकांड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणकाण्ड] घास का ढेर (को०) ।

तृणकीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घासवाली जमीन (को०) ।

तृणकुंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणकुण्ड] एक सुगन्धित घास । रोहित घास ।

तृणकुटी, तृणकुटीर, तृणकुटीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की बनी मढ़ैया या भोपड़ी (को०) ।

तृणकुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घास का ढेर (को०) ।

तृणकूर्चिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कूँची या छोटी झाड़ू (को०) ।

तृणकूर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोख कद्दू ।

तृणकेतकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीखुर ।

तृणकेतु—सञ्ज्ञा पुं० दे० [सं०] 'तृणकेतुक' ।

तृणकेतुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणगोधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गिरगिट (को०) ।

तृणगौर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणकु कुम' (को०) ।

तृणग्रन्थी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तृणग्रन्थी] स्वर्णजीवती ।

तृणग्राही—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणग्राहिन्] एक रत्न का नाम । नीलमणि ।

तृणचर^१—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।

तृणचर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि ।

तृणजभा—वि० [सं० तृणजम्भन्] घास चरने योग्य । घास चरनेवाला ।
—सपूर्णां ग्रन्थिं य०, पु० २४८ ।

तृणजलायुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तृणजलोका' ।

तृणजलोका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोक ।

तृणजलोका न्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तृणजलोका के समान ।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैयायिक लोग उस समय करते हैं उन्हें जब आत्मा के एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने का दृष्टांत देना होता है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका पाम लेती है, तब पहले को छोड़ देती है । इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले को छोड़ देती है ।

तृणजाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति जिसमें घास और शाक आदि गृहीत हैं (को०) ।

तृणज्योतिस्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती तारा ।

तृणता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तृणवत्ता । निरपेक्षता । २. धनुष (को०) ।

तृणद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ ।

३. खजूर का पेड़ । ४. केतकी का पेड़ । ५. नारियल का पेड़ ।
६. द्विवाक ।

तृणधान्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तिन्नी का चावल । मुन्यन्न । तिन्नी का धान । २. सात ।

तृणध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणनिध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणनिम्ब] चिरायता ।

तृणप—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

तृणपत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदभं नामक तृण ।

तृणपत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदभं नामक तृण (को०) ।

तृणपीड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणपीड] एक प्रकार की लड़ाई । हाथों के द्वारा लड़ाई ।

तृणपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तृणकेशर । २. त्रिपुष्प । गठिवन ।

तृणपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्धरपुष्पी नामक घास ।

तृणपूलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गर्भपात (को०) ।

तृणपूलो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नरकट की चटाई (को०) ।

तृणप्राय—वि० [सं०] तृणवत् । तिनके जैसा । तुच्छ (को०) ।

तृणविंदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणविन्दु] दे० 'तृणविंदु' (को०) ।

तृणमत्कुण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जमानत देनेवाला । जामिन (को०) ।

तृणमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षक करनेवाला मणि । कहवरा ।

तृणमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ ।

तृणराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर । २. ताड़ । ३. नारियल ।

तृणवत्—वि० [सं०] तिनके के समान । अत्यंत तुच्छ (को०) ।

तृणविंदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तृणविन्दु] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी ।

तृणवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणद्रुम' (को०) ।

तृणशय्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछोना । चटाई । साथरी ।

तृणशाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ । २. बाँस का पेड़ (को०) ।

तृणशीत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोहित घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है । २. जलपिप्पली ।

तृणशीता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगन्धित घास (को०) ।

तृणशून्य^१—वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।

तृणशून्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १. मस्जिदा । २. केतकी ।

तृणशूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

तृणशोपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

तृणपटपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बरें । तलैया (को०) ।

तृणसंवाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पवन (को०) ।

तृणसारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला ।

तृणसिंह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सिंह । २. कुल्हाड़ी (को०) ।

तृणस्पर्श परोपह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछाकर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया । (जैन) ।

तृणहर्म्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की भोपड़ी (को०) ।

वृक्षजिन—संज्ञा पुं० [सं० वृक्षाञ्जन] एक प्रकार का गिरगिट [को०] ।
वृक्षग्नित—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घास फूस की ऐसी भाग जो जल्दी
बुझ जाय । २ जल्दी बुझनेवाली भाग । ३ घास फूस की भाग
से प्रपराधी को जलाकर दिया जानेवाला दह [को०] ।

वृक्षाद्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का वृक्ष जो भ्रौषध के
काम में आता है । एवं वृण । २ जंगल जो वृणवहुल
हो (को०) ।

वृक्षान्न—संज्ञा पुं० [सं०] वृणधान्य । तिन्नी [को०] ।

वृक्षान्त—संज्ञा पुं० [सं०] लवण वृण । नोनिया । घमलोनी ।

वृक्षारणि न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] वृण और भरणी रूप स्वतंत्र
कारणों के समान व्यवस्था ।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में वृण और भरणी दोनों कारण
तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अवधि भलग भलग कारण हैं ।
हैं । भरणी से प्राग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और वृण
में प्राग लगने का कारण दूसरा ।

वृक्षवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ चक्रवात । बवडर । २ एक दैत्य
का नाम ।

विशेष—इसे कस ने मयुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये
गोकुल भेजा था । यह चक्रवात (बवडर) का रूप धारण
करके आया था और वानक कृष्ण को ऊपर उठा ले गया
था । कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह
गिरकर चूर चूर हो गया ।

वृक्षेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० वृक्षेन्द्र] ताड़ का पेड़ ।

वृक्षेत्तु—संज्ञा पुं० [सं०] बल्लजा । सागे बागे ।

वृक्षोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम । ऊत्तल वृण ।

वृक्षोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] मुन्यन्न । तिन्नी धान । पसही ।

वृक्षोत्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल ।

वृक्षीक—संज्ञा पुं० [सं० वृक्षीक] घास फूस की भोपड़ी [को०] ।

वृक्षीषध—संज्ञा पुं० [सं०] एलुग । एलुगानु नामक गधद्रव्य ।

वृक्ष—वि० [सं०] १ काटा हुआ । २ कटा हुआ [को०] ।

वृक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास या तिनको का डेर [को०] ।

वृक्षियु—वि० [हि०] दे० 'तृतीय' । उ०—तृतीय प्रतीप वखा-
नहीं, उन्हें कविकुल सिरमोर ।—भूषण प्र०, पृ० ८ ।

वृक्षिया—वि० [हि०] दे० 'तृतीया' । उ०—तृतिषा अनुसयना
कहे, हों न गई पछिनाय ।—मति० प्र०, पृ० २६० ।

वृतीय—वि० [सं०] तीसरा ।

वृतीय—संज्ञा पुं० १ किसी वर्ग का तीसरा व्यंजन वर्ण । २ संगीत
का एक मान ।

वृतीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीसरे दिन पानेवाला ज्वर । तिजार ।
यौ०—तृतीयक ज्वर = तिजरा ।

२ तीसरी बार होनेवाली स्थिति (को०) । ३ तीसरा क्रम (को०) ।

वृतीयप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक
तीसरी प्रकृतिवाला । नपु सक । बलीव । द्विजड़ा ।

वृतीय सवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम आदि यज्ञों का तीसरा
सवन जिसे साय सवन भी कहते हैं । दे० 'सवन' ।

वृतीयंश—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग ।

वृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन । तीज ।
२ व्याकरण में करण कारक ।

वृतीया तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] तत्पुरुष समास का एक भेद ।

वृतीया नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० वृतीया + नायिका] नायिकाभेद
के अनुसार अथमा या सामान्या नायिका । दे० 'नायिका' ।
उ०—वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अथी वाला और वृतीया
नायिका वा वेश्या-वृत्ति-धारणी है ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० २५६ ।

वृतीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम । वानप्रस्थ ।

वृतीयी—वि० [सं० वृतीयिन्] १. तीसरे का हकदार । जिसे
किसी संपत्ति का वृतीयाण पाने का स्वत्व हो (स्पृति) ।
२ तीसरी श्रेणी प्राप्त करनेवाला (को०) ।

वृत्^१—संज्ञा पुं० [सं० वृण] दे० 'वृण' ।

मुद्रा०—वृत्त सा गिनना = कुछ न समझना । वृत्त मोट पहार छपाना =
(१) असमय कार्य के लिये प्रयत्न करना । (२) निष्फल
चेष्टा करना । उ०—मैं वृत्त सो गन्यो तीनहू लोफनि, तू वृत्त
मोट पहार छपावै ।—मति० प्र०, पृ० ४३४ । वृत्त तोड़ना =
दे० 'वृण तोड़ना' । उ०—मूलत में लोट पीट होत दोक रण
भरे निरखि छवि नददास बलि बलि वृत्त तोरे ।—नंद० प्र०,
पृ० ३७७ ।

वृत्त^२—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—वृत्त प्रथ वृत्तिक के इला-
नद । ससि बीस नद अज प्रंस मद ।—दृ० रासो, पृ० १४ ।

वृत्त जोक—संज्ञा स्त्री० [हि० वृत्त + जोक] वृणजलोका । दे० 'वृण-
जलोकान्याय' । उ०—ज्यों वृत्त जोक वृत्तन अनुसरे । आगे
गहि पाछे परिहरे ।—नंद० प्र०, पृ० २२२ ।

वृत्तद्रुमा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'वृणद्रुम' । उ०—तास खडूरी,
वृत्तद्रुमा, केतकि पकरति पाइ ।—नंद० प्र०, पृ० १०५ ।

वृत्तावर्त्त—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'वृणावर्त्त' । उ०—पुनि जब एक
वरप को भयो । वृत्तावर्त्त उड़ि ले नभ गयो ।—नंद० प्र०,
पृ० ३१० ।

वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा । २ छाता [को०] ।

वृत्तना—संज्ञा पुं० [सं० वृत्ति] वृत्त होना । सतुष्ट होना ।
अधाना । उ०—निरवधि मधु की धारा आहि । सु को जु वृत्त
पीवत ताहि ।—नंद० प्र०, पृ० २७६ ।

वृत्तता—वि० [हि०] दे० 'वृत्त' । उ०—दादू जब मुख माहें मेलिये,
सबही वृत्तता होइ ।—दादू०, पृ० १८७ ।

वृत्तित—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'वृत्ति' । उ०—मोजन करे वृत्तित
'सो होई । गुरु शिष्य भावै किन कोई ।—सुंदर० प्र०, भा०
१, पृ० ३६ ।

वृत्तल—वि० [सं०] १ प्रसन्न । खुश । २ सतुष्ट । ३ बेचैन ।
व्याकुल [को०] ।

पल^२—सङ्घा पुं० उपल । पत्थर [को०] ।

पला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. लता । २. त्रिफला ।

पित०—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त' ।

प्ल—वि० [सं०] १. तुष्ट । मघाया हुमा । जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो । २. प्रसन्न । खुश ।

प्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और मानद । सतोष । उ०—फिरत दूया भाजन भवलोक्त सुने सदन प्रजान । तिहि लालच कबहुँ कैसेहुँ तृप्ति न पावत प्रान । —सूर (शब्द०) । २. प्रसन्नता । खुशी ।

प्पना०—क्रि० सं० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । सतृप्त करना । उ०—ज्वालनिय माल तृप्पय तृपति, मति सुवेव नश्येद जुत । —पृ० रा०, २४ । २७६ ।

प्र—सङ्घा पुं० [सं०] १. घृत । घी । २. पुरोडाश । ३. तृप्त करनेवाला । तपक ।

फू—सङ्घा स्त्री० [सं०] सपं जाति [को०] ।

नी०—सङ्घा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी' । उ०—पावन परम देलि, मदन मद तृवेनी । —नद० प्र०, पृ० ३४८ ।

मंगी—वि० [हिं०] दे० 'त्रिमगी' । उ०—घर टेढ़ी पाग, चद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसै तृमगी लाल । —नद० प्र०, पृ० ३५० ।

ना०—सङ्घा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा' । उ०—जोगी दुखिया जगम दुखिया तपसी को दुख हुआ हो । भासा तृष्णा सबको व्यापे कोई महल न सूना हो । —कबीर श०, भा० १, पृ० १६ ।

न—सङ्घा स्त्री० [सं०] [वि० तृपित, तृष्य] १. प्यास । २. इच्छा । प्रमिलावा । ३. लोभ । सालच । ४. कलिहारी । करियारी ।

भू—सङ्घा स्त्री० [सं०] पेट में जल रहने का स्थान । क्लोम ।

या०—वि० [सं० तृपित] तृपित । प्यासा । उ०—सग रहे सोई पिये, नहि फिरे तृपाया बहर । —प्रिया० बानी, पृ० ३१ ।

लु—वि० [सं०] प्यासा । पियासित । तृपित । तृपातं ।

लु—वि० [सं० तृपावान् का बहुव०] प्यासा । उ०—तृपावत जिमि पाय पियूपा । —तुलसी (शब्द०) ।

त—वि० [सं०] प्यास से व्याकुल । प्यासा [को०] ।

बान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृपावती] प्यासा ।

स्थान—सङ्घा पुं० [सं०] क्लोम ।

हू—सङ्घा पुं० [सं०] पानी [को०] ।

हा—सङ्घा स्त्री० [सं०] सोंफ ।

त—वि० [सं०] १. प्यासा । उ०—तृपित बारि बिनु जो तनु त्यागा । सुप करे का सुषा तड़ागा । —तुलसी (शब्द०) । २. अभिलाषी । इच्छुक ।

तोसरा—सङ्घा स्त्री० [सं०] असनपर्णी । पटसन ।

—वि० [सं०] १. लोभी । इच्छुक । २. वेगवान् । क्षिप्र [को०] ।

ता—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति के लिये व्याकुल करनेवाली इच्छा । लोभ । सालच । २. प्यास ।

तृष्णाकुल—वि० [सं० तृष्णा + व्याकुल] प्यास से विकल । तृपित । उ०—तृष्णाकुल होंगे प्रिय ब्राम्हो । सलिल स्नेह मिल मधुर पिलाओ । —गीतिका, पृ० ४४ ।

तृष्णाक्षय—सङ्घा पुं० [सं०] १. इच्छा का समाप्त होना । २. मानसिक शांति । चित्त की स्थिरता । ३. सतोष ।

तृष्णारि—सङ्घा पुं० [सं०] पितृपापहा ।

तृष्णार्त—वि० [सं० तृष्णा + प्राप्त] प्यास से कातर । तृष्णा से प्राप्त । उ०—दूर हो दुरित जो जग जागा तृष्णार्त शान । —गीतिका, पृ० ७० ।

तृष्णालु—वि० [सं०] १. प्यासा । २. लालची । लोभी ।

तृष्य^१—वि० [सं०] इच्छा करने योग्य । चाहने लायक [को०] ।

तृष्य^२—सङ्घा पुं० १. लोभ । लालच । २. प्यास [को०] ।

तृसधि०—सङ्घा स्त्री० [सं० त्रि + सधि] तीन काल । तीन पहर । उ०—समीं सौं सौं सोइवा ममै जागिब तृसधि देणा पहरा । —गोरख०, पृ० ८६ ।

तृसालवो०—वि० [सं० तृषा] तृपालु । प्यासा । उ०—प्रहर बहै तृसालवो, सुले कौटा भागा । —गोरख०, पृ० ११२ ।

तेंदुस—सङ्घा पुं० [सं० टिएडण] डेडसी नाम की तरकारी ।

तें०—प्रत्य० [सं० तस् (प्रत्य०)] १. से । द्वारा । उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान । —गोपाल (शब्द०) । २. से (प्रधिक) । उ०—(क) को जग मद मलिन मति मो तें । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नैना तेरे जलज ते है खंजन तें मति नाचें । —सूर (शब्द०) । (ग) चपला तें चमकत मति प्यारी कहा करोगी श्यामहि । —सूर (शब्द०) ।

विशेष—कही कहीं 'प्रधिक' 'बढकर' आदि शब्दों का लोप करके भी 'तें' से अपेक्षाकृत प्राधिवय का अर्थ निकालते हैं । वि० दे० 'से' ।

३ (किसी काल या स्थान) से । उ०—छोसक तें पिय चित चढी कहै चढ़ीहैं स्थोर । —विहारी (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'से' ।

तेंतरा—सङ्घा पुं० [दश०] बेलगाड़ी में फड़ के गोचे लगी हुई लकड़ी ।

तेंतालिस—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तेंतालीस' ।

तेंतालिसवो—वि० [हिं०] दे० 'तेंतालीसवो' ।

तेंतालीस^१—वि० [सं० त्रिचरवारिणत्, पा० तिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौतालीस से एक कम हो । चालीस और तीन ।

तेंतालीस^२—सङ्घा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३ ।

तेंतालीसवो—वि० [हिं० तेंतालीस + वो] क्रम में तेंतालीस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बयालिस और हों ।

तेंतिस—वि०, सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'तेंतीस' ।

तेंतिसवो—वि० [हिं०] दे० 'तेंतीसवो' ।

तेंतीस^१—वि० [सं० त्र्यपस्त्रिणत्, पा० त्रितिसति, प्रा० त्रितीसा] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो । बीस और तीन ।

उ०—नौ खेलें तैत्तिरीय तीन । तेज वेद विष संग नीन ।—
कबीर ऋ०, भा० २, पृ० ११५ ।

तैत्तिरीय^२—संज्ञा पु० तीस से तीन अधिक की संख्या जो षको में इस प्रकार लिखी जाती है—३३ ।

तैत्तिरीया^३—वि० [हि० तैत्तिरीय + वा (प्रत्य०)] जो क्रम में तैत्तिरीय के स्थान पर पड़े । जिसके पहले बत्तीस और हों ।

तैत्तिरीया^४—संज्ञा पु० [दश०] बिल्ली या चीते की जाति का एक बड़ा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—बल और भयकरता आदि में शेर और चीते के उपरांत इसी का स्थान है । यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी मयाल नहीं होता । इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है । इसके शरीर पर काले काले मोस धब्बे या चित्तियाँ होती हैं । इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है ।

तैत्तिरीया^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तैत्तिरीय' ।

तैत्तिरीय^६—संज्ञा पु० [सं० तित्तिरीय] १ मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जंगलों में पाया जाता है ।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की मकड़ी बिलकुल काली हो जाती है । वही लकड़ी भाबमूस के नाम से बिकती है । इसके पत्ते लंबोत्तरे, नोकदार, खुरदुरे और महुवे के पत्तों की तरह पर उससे नुकीले होते हैं । इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है ।

पर्या०—कालस्कष । शितिशारय । कंदु । तितु । तितुल । तितुकी । नीलसार । अतिमुक्त । कालसार ।

२. इस पेड़ का फल जो नींबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है ।

विशेष—वैद्यक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कसेला, हलका, मलरोषक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्तरोग और वात का नाशक माना है ।

३ सिंध और पंजाब में होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे 'दिसपसद' भी कहते हैं ।

ते^७—प्रव्य० [हि०] दे० 'ते' । उ०—के कुदरत ते पैदा किया यक रतन ।—दक्खिनी०, पृ० ११७ ।

ते^८—सर्व० [सं० ते] वे । वे लोग । उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि भांति । जोगवहि जननि सकल दिन राती । ते अब फिरत विपिन पदचारी । कद मूल फल फूल प्रहारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) राम कथा के ते अधिकारी । जिनको सतसंगति अति प्यारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ते^९—सर्व० [हि० ते] उसे । उ०—कवि तो तेइ पाहन सम माने । नहि न पखान पखान बखाने ।—नद० प्र० पृ० ११८ ।

ते^{१०}—वि० [हि०] दे० 'तेईस' ।

ते^{११}—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'तेईस' ।

ते^{१२}—वि० [हि०] दे० 'तेईसवाँ' ।

तेईस^१—[सं० त्रिविंशति, पा० तैवीसति, प्रा० तैवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो । बीस और तीन ।

तेईस^२—संज्ञा पु० बीस से तीन अधिक की संख्या जो षको में इस प्रकार लिखी जाती है—२३ ।

तेईसवाँ^३—वि० [हि० तेईस + वा (प्रत्य०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बीस और हों ।

ते^४—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यों' । उ०—रघुमद आरि परेम की, जेठ भावे ते^४ खेनु ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६१ ।

तेक^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तेग' । उ०—तेक ठोक तब्यो तुरी ।—पृ० रा०, ७१००५ ।

तेखना^६—क्रि० प्र० [सं० तीक्ष्ण, हि० तेहा] बिगड़ना । क्रुद्ध होना । नाराज होना । उ०—उ० (क) सुभ बोल्थो तबै भैम सों तेखि कै । लाल नैना धरे बक्रता देखि कै ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) हनुमान या कौन बलाय बसी कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री । हित मानि हमारो हमारे कहे मला मो मुख की छवि देखियो री ।—हनुमान (शब्द०) । (ग) मोहो की झूठी कहो झगरो करि सौह करो तब और ऊ तेखो । बैठे हैं थोक बगीचे में जायके पाई परों भव भाइके देखो ।—रघुराज (शब्द०) ।

तेखना^७—क्रि० प्र० [हि०] प्रसन्न होना । उमंग में आना । उ०—ढारत अतर लगाइ भरगजा रंगिली समधिनि तेखि ।—पृ० ३८० ।

तेखी^८—वि० [हि० तीखा] क्रोधयुक्त । क्रुद्ध । उ०—दिस लंक संग्रह भाद द्वादस, तहकिया तेखी ।—रघु० ४०, पृ० १६१ ।

तेग^९—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तेग] तलवार । खग । उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देवें । तो हमहूँ तुम्हरो मत लेवें ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) बरने दीनदयाल हुरवि जो तेग चलेहो । ह्वैहो जीते जसी, लरे सुरलोकहि पैहो ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेगा^{१०}—संज्ञा पु० [फ्रा० तेग] १ खाड़ा । खग (प्रस्न) । उ०—तेगा ये रग मोत के पानि पवार सुघाट । अजन बाढ़ दिए तेना करत चौगुनी काट ।—रसनिधि (शब्द०) । २ किसी मेहराब के नीचे के भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया । ३ कुश्ती का एक दाँव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं ।

तेज^१—संज्ञा पु० [सं० तेजस्] दीप्ति । शक्ति । चमक । दमक । आभा । उ०—जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई ।—तुलसी (शब्द०) । २ पराक्रम । जोर । बल । ३ वीर्य । उ०—पतिव तेज जो भयो हमारो कहो देव को धारी ।—रघुराज (शब्द०) । ४ किसी वस्तु का सार भाग । तत्त्व । ५ ताप । गर्मी । ६ पित्त । ७ सोना । ८ तेजी । प्रचक्षता । उ०—(क) तेज कृष्णानु शेष महि शेषा । भव भवगुन घन घनी घनेसा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) यल सो अचल सील, अनिल से चलचिरा, जल सो अमल तेज कैसो पायो ।—

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी ।

तेजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० तेजी] १. तेज होने का भाव । तीक्ष्णता । २. तीव्रता । प्रबलता । ३. सघनता । प्रचढ़ता । ४. शीघ्रता । जल्दी । ५. महुँगी । गरानी । मदी का सलटा । ६. सफर का महीना या मास (श्लो०) ।

यौ०—तेजी का चाँद = सफर महीने का चाँद ।

तेजेयु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोद्राक्ष राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

तेजो—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तेजस् का समासगत रूप, जैसे तेजोबल, तेजोमय ।

तेजोबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पञ्जा (श्लो०) ।

तेजोभंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तेजोभङ्ग] अपमान । विरहकार (श्लो०) ।

तेजोभीरु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छाया । परछाईं (श्लो०) ।

तेजोमण्डल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तेजोमण्डल] सूर्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल । छटामंडल ।

तेजोमंथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तेजोमन्थ] गनियारी का पेड़ ।

तेजोमय—वि० [सं०] १. तेज से पूर्ण । जिसमें खूब तेज हो । जिसमें बहुत आभा, काँति या ज्योति हो । उ०—तेजोमय स्वामी उन्हें सेवक हैं तेजोमय ।—सुंदर० प्र० भा० १, पृ० ३० ।

तेजोमूर्ति—वि० [सं०] तेजयुक्त । तेज से परिपूर्ण (श्लो०) ।

तेजोमूर्ति^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य (श्लो०) ।

तेजोरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. जो अग्नि या तेज रूप हो ।

तेजोवत्—वि० [सं०] दे० 'तेजस्वत्' (श्लो०) ।

तेजोवती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गरुडिणी । २. चण्ड । ३. माल-कंगनी । तेजबल ।

तेजवान्—वि० [सं० तेजोवत्] [स्त्री० तेजोवती] १. तेजवाला । २. उत्साही (श्लो०) ।

तेजोविन्दु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तेजोविन्दु] मञ्जा ।

तेजोवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छोटी भरणी का वृक्ष ।

तेजोदत्त—वि० [सं०] जिसका तेज समाप्त हो गया हो (श्लो०) ।

तेजोह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेजबल । २. चण्ड ।

तेटकी—क्रि० वि० [हि० तेता] दे० 'तेतिक' । उ०—जाकी जितनी रच्यो विधाता ताकी भावे तेटकी ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ८३३ ।

तेट्टिक—वि० [सं० त्रिपण्ड] त्रिदंड धारण करनेवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५ ।

तेट्टना—क्रि० स० [राज०] दे० 'टेटना' । उ०—पिंगल राजा पाठ्यह, डोला तेट्टन काज ।—डोला०, पृ० ८१ ।

तेढाँ—वि० [हि०] दे० 'टेढ़ा' । उ०—माजेवाँ तेढ़ाँ मझाँ, वेढाँ छणी विसझ ।—रा० रु०, पृ० १३७ ।

तेण—सर्व० [हि० ते] उस । उ०—हण्ये कुंभण्येसा जोधहर श्रीहवाँ, करे कुंभ तेण परमाण काया ।—रघु० क०, पृ० २६ ।

तेणु—सर्व० [सं० तेन; प्रा० तेण, तेण] १. तिससे । उस कारण से । इसलिये । इससे । उ०—तेणु न राखी सासर मजे स मारु वाल ।—डोला०, पृ० ११ ।

तेतना—वि० [हि०] दे० 'तितना' । उ०—मास षट बिहार तेतने निमिष हूँ न जाने रस नददास प्रभु संग रैन रय जागरी ।—नंद० प्र०, पृ० ३६५ ।

तेता—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना । उसी कदर । उसी प्रमाण का । उ०—(क) हरि हर विधि रवि शक्ति समेता । तुडी ते उपजत सब तेता ।—निमेषन (शब्द०) । (ख) जेती स ति कृपन के तेती तू मत जोर । बहुत पात ज्यों ज्यों उरज त्यो रयो होत कठोर ।—बिहारी (शब्द०) ।

तेतालीस^१—वि० [हि०] दे० 'तैतालीस' ।

तेतालीस^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैतालीस' ।

तेतिक—वि० [हि० तेता] उतना ।

तेती—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'तेता' । उ०—किर्ताहि बुझावे का करे तिहि घर तेती मागि ।—नंद० प्र०, पृ० १३७ ।

तेतीस—वि० सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तैतीस' ।

तेतो—वि० [हि०] दे० 'तेता' ।

तेथ—प्रत्य० [सं० तत्र] तहाँ । उ०—जेय तेथ प्राणी जलें लालच ददी लाय ।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ६० ।

तेन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गीत का आरम्भिक स्वर (श्लो०) ।

तेनु—सर्व० [सं० तत्] उसने । उ०—धरमान नाम कायष सुधर, तेनु चरित लिखे सर्व ।—पृ० रा०, १६।२३ ।

तेम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोला होना । भाद्र होना । भाद्रंता (श्लो०) ।

तेम^२—प्रत्य० [हि०] दे० 'तिमि' । उ०—योग ग्रंथ माँहि लिखे मैं समुझाये तेम ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ४१ ।

तेमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंजन । पका हुआ भोजन । २. गोला करने की क्रिया (श्लो०) । ३. भाद्रंता । गोलापन (श्लो०) ।

तेमनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चूल्हा (श्लो०) ।

तेमरू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] तेंदु का वृक्ष । भावपूस का पेड़ ।

तेयागना—क्रि० स० [हि०] दे० 'त्यागना' । उ०—हमारे कहने का मतसब यह है कि सब कोई भेदभाव त्याग के, एक होकर के परमारण कारज में सहजोग दीजिए ।—मैला०, पृ० २६ ।

तेर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तेरह' । उ०—सय तेर परे हिंदू सयन कोस तीन रत मद्ध पर ।—पृ० रा०, ६।२०६ ।

तेरज—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खतियोनी का गोशवारा ।

तेरना—क्रि० स० [हि०] दे० 'टेटना' । उ०—पूनम तिथि मंगल दिनह, गृह तेरिय प्राजान । आसन छडि सु अथ दिय, बहु भादर सनमान ।—पृ० रा०, ४।६ ।

तेरपन—वि० [हि०] दे० 'तिरपन' । उ०—सत्रासे तेरपन सेर सीकरी नैं बसायो ।—मिखर०, पृ० ४८ ।

तेरवाँ—वि० [हि०] दे० 'तेरहवाँ' ।

तेरस—सका श्री० [सं० त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि । त्रयोदशी ।

तेरसि०—सका श्री० [सं० त्रयोदशी] दे० 'तेरस' । उ०—तेरसि तिथि ससि सम्मर पय निसि दसमि दसा भोरि भेलि ।—विद्या पति, पृ० १७८ ।

तेरह^१—वि० [सं० त्रयोदश, प्रा० तेहह, अर्द्धमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो । दस और तीन । उ०—कासी नगर भरा सब भारी । तेरह उतरे भोजन पारी ।—घट०, पृ० २६३ ।

तेरह^२—सका पु० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक अक्ष जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३ ।

तेरहवाँ—वि० [हि० तेरह + वाँ (प्रत्य०)] दस और तीन के स्थान-वाला । क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला । जिसके पहले बारह और हो ।

तेरही—सका श्री० [हि० तेरह + ई (प्रत्य०)] किसी के मरने के दिन से मयवा प्रेतकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मणभोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं ।

तेरा^१—मवं० [मं० ते (=तव) + हि० रा (प्रत्य०)] [श्री० तेरी] मध्यम पुरुष एकवचन की पंथी का सूचक सर्वनाम शब्द । मध्यम पुरुष एकवचन सबंध कारक सर्वनाम । तू का सबंध कारक रूप । उ०—तू नहि मानन देति पाली री मन तेरों मानने कीं करत ।—नद० ग्रं०, पृ० ३९८ ।

मुहा०—तेरी सी = तेरे लाभ या मतलब की बात । तेरे अनुकूल बात । उ०—बकसीस ईस जी की खीस होत देखियत, रिस काहे लागति कहत तो हों तेरी सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—शिष्ट समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है ।

तेरा०^२—वि० [हि०] दे० 'तेरह' । उ०—चंद्रमा मिथुन को तेरा १३ भस, मनि लगन में देह होगी ।—हृ० रासो०, पृ० ३० ।

तेरिज—सका पु० [प्र० तिराज ?] १. खुलासा । स्पष्ट । २. सार । संक्षेप । उ०—तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की ।—धरनी०, पृ० ४ ।

तेरस०^१—सका पु० [हि०] दे० 'त्योस' ।

तेरस^२—सका श्री० दे० [हि०] 'तेरस' ।

तेरु०—वि० [हि० तेरना] तेरनेवाला । उ०—इसो तेरु कँवण फाड़ भावे उदध, लछीवर कवण नरपाल लामे ।—रघु० ७०, पृ० २६७ ।

तेरो^१—अर्थ० [हि० ते] से । उ०—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत तेरे । जनकसुतहि आवहु ढिग मेरे ।—विश्राम (शब्द०) । (ख) यहि प्रकार सब वृक्षन तेरे । भेटि भेटि पूछे प्रभु हेरे ।—विश्राम (शब्द०) ।

तेरो०^२—सर्व० [हि०] दे० 'तेरा' । उ०—तेरो मुख बदा बकोर मेरे नैना ।—(शब्द०) ।

तेलंग—सका पु० [हि०] दे० 'तैलंग' । उ०—तेलंगा बगा मोख कलिगा रामापुत्ते मडोभा ।—सीति०, पृ० ४८ ।

तेल—सका पु० [सं० तेल] १. वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है मयवा आपसे आप निकलता है । यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, भलकोहल में घुल जाता है । अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धुमाँ देकर जल जाता है । इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है । चिकना । रोगन ।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और खनिज । मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों से निकलता है । वनस्पत्य मसृण वह है जो बाजों या दानों आदि की कोल्हू में पेरकर या दबाकर निकाला जाता है, जैसे, तिल, सरसों, नीम, पारी, रेंड़ी, कुसुम आदि का तेल । इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साबुन और वानिज बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का मचार डालने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है । मशीनों के पुरजों में उन्हे घिसने से बचाने के लिये भी यह डाला जाता है । सिर में लगाने के चमेली, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं । भिन्न भिन्न तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं । इसके प्रतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी आपसे आप तेल निकलता है जो पीछे से साफ कर लिया जाता है, जैसे,—ताड़पीन आदि । जतुज तेल जानवरों की चरबी का तरल भाग है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है । जैसे, साँप का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि । उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न भागों से भभके द्वारा उतारा जाता है । जैठ, प्रजधान का तेल, ताड़पीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि । ऐसे तेल हवा लगने से सूख या उड़ जाते हैं और इन्हें खोलाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है । इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुछ असन भी होती है । ऐसे तेलों का व्यवहार विषाघटी औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है । कभी कभी वारनिश या रण आदि बनाने में भी यह काम आता है । खनिज तेल वह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से ही निकलता है । जैसे, मिट्टी का तेल (देखो 'मिट्टी का तेल' और 'पेट्रोलियम') आदि । आजकल सारे संसार में बहुधा रेशनी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है ।

आयुर्वेद में सब प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है । वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल मलने से फफ और वायु का नाश होता है, घातु पुष्ट होती है, तेज बढ़ता है, चमड़ा मुलायम रहता है, रंग खिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है । पैर के तलवों में तेल मलने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क

तथा नेत्र ठंडे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, भस्तिष्क ठंडा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेल में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुल्फाक, गरम, पित्तकर, त्वचाशोष उत्पन्न करनेवाली और वायु तथा दृष्टि के लिये अहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसों आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की ओषधियाँ पकाई जाती हैं।

क्रि० प्र०—जलना ।—जलाना ।—निकलना ।—निकाखना ।
—पेरना ।—मलना ।—लगाना ।

मुहा०—तेल में हाथ डालना = (१) अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डालना । (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खोलते हुए तेल में हाथ डलवाने की प्रथा थी) । (२) विकट शपथ खाना । माल का तेल निकालना = दे० 'माल' के मुहावरे ।

२ विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल लगाया जाता है। इस रस्म के उपरांत प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय श्राद्ध विधि सब विवाह के चारा। कृत्ति तेल मायन करवैहँ व्याह विधान अपारा ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—तेल उठाना या चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी होना ।
उ०—तिरिया तेल हमोर हठ चढ़े न हूजी बार ।—कोई कवि (शब्द०) । तेल चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी करना ।
उ०—प्रयम हरहि वदन करि मंगल गावहि । करि कुलरीति कलस यपि तेल चढ़ावहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

तेलगू—सच्चा श्री० [तेलुगु] माध्र राज्य की भाषा ।

तेल चलाई—सच्चा श्री० [हि० तेल + चलाना] देशी छोट की छपाई में मिठाई नाम की क्रिया [वि० दे० 'मिठाई'] ।

तेलवाई—सच्चा पु० [हि० तेल + वाई (प्रत्य०)] १ तेल लगाना । तेल मलना । २. विवाह का एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनवासे में वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजते हैं ।

तेलसुर—सच्चा पु० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है ।
विशेष—इसके हीर की लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए पोली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और मिलहट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं ।

तेलहँड़ा—सच्चा पु० [हि० तेल + हड़ा] [श्री० अल्पा० तेलहँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन ।

तेलहँड़ी—सच्चा श्री० [हि० तेल + हँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन ।

तेलहन—सच्चा पु० [हि० तेल + हि० हन (प्रत्य०)] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, मलसी, इत्यादि ।

उ०—तिरगुन तेल चुम्मावे हो तेलहन संसार । कोइ न बचे जोगी जती फेरे बारबार ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३६ ।

तेलहा—वि० [हि० तेल + हा (प्रत्य०)] [वि० श्री० तेलही] १. तेलयुक्त । जिसमें तेल हो । जिसमें से तेल निकल सकता हो । २. तेल-वाला । तेल संबंधी । ३. जिसमें चिकनाई हो । ४ तैल निमित । तेल से बना हुआ ।

तेला—सच्चा पु० [देश०] तीन दिन रात का उपवास । उ०—जिसे कतल का हुकम हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुधरे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

तेलिन—सच्चा श्री० [हि० तेली का श्री०] १ तेली की स्त्री । तेली जाति की स्त्री । २. एक बरसाती कीड़ा ।

विशेष—यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं ।

तेलियर—सच्चा पु० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं ।

तेलिया^१—वि० [हि० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला । चिकने और चमकीले रंगवाला । तेल के से रंगवाला । जैसे,—तेलिया भमोवा ।

तेलिया^२—सच्चा पु० [हि० तेल + दया (प्रत्य०)] १ काला, चिकना और चमकीला रंग । २ इस रंग का घोड़ा । ३. एक प्रकार का बबुल । ४. एक प्रकार की छोटी मछली । ५. कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो । ६. सींगिया नामक विष ।

तेलियाकंद—सच्चा पु० [सं० तेलकन्द] एक प्रकार का कंद ।

विशेष—यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सीँधी हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोहे की पतला करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तरकाल देह को सिद्ध करनेवाला माना है ।

तेलियाकत्था—सच्चा पु० [हि० तेलिया + कत्था] एक प्रकार का कत्था जो भीतर से काले रंग का होता है ।

तेलियाकाकरेजी—सच्चा पु० [हि० तेलिया + काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग ।

तेलियाकुमैत—सच्चा पु० [हि० तेलिया + कुमैत] १ घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है । २. वह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो ।

तेलियागर्जन—सच्चा पु० [हि० तेलिया + सं० गर्जन] दे० 'गर्जन' ।

तेलियापखान—सच्चा पु० [हि० तेलिया + सं० पाषाण] एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर । उ०—नहीं चद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

तेलियापानी—सच्चा पु० [हि० तेलिया + पानी] बहुत खारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसे प्रायः पुराने कुओं से निकलता रहता है ।

तेलियासुरग—सच्चा पु० [हि० तेलिया + सुरग] दे० 'तेलिया कुमैत' ।

तेलियासुहागा—सच्चा पु० [हि० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है ।

तेली—संज्ञा पुं० [हि० तेल + ई (प्रत्य०)] [खी० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है। इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसो, तिल आदि पेरकर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं। साधारणतः द्विज लोग इस जाति के लोगों का धूपा हुपा जल नहीं गहण करते।

मुहा०—तेली का बेल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति।

तेलीची—संज्ञा स्त्री० [हि० तेल + ची (प्रत्य०)] पत्थर, काँच या लकड़ी आदि की बह छोटी प्याली, जिसमें घरीर में लगाने के लिये तेल रखते हैं। मालिया।

तेवर—संज्ञा स्त्री० [दे०] सात दीर्घ अथवा १४ लघु मात्राओं का एक ताक्ष जिसमें तीन आधन और एक खाली रहता है। इसके

+ ३ ०

तबले के बोल ये हैं—धिन् धिन् धाकेटे, धिन् धिन् धा, तिन्
+
तिन् ताकेटे धिन् धिन् धा। धा।

तेवड़^(१)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—जेवड़ साहिब तेवड़ दाती दे वे करे रजाई।—प्राण०, पृ० १२३।

तेवड़^(२)—वि० [हि०] दे० 'तेहरा'। उ०—बूँ लीजे गड़ा बका भाई, दोवर कोट घर तेवड़ खाई।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८।

तेवन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा। २. वह स्थान, विशेषतः वन आदि जहाँ आमोदप्रमोद और क्रीड़ा हो। बिहार। उपवन। ३. नजरबाग। पार्श्व बाग।

तेवन^(२)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—वैसे प्रवान अभावन राजित तेवन लागी संसारी।—कबीर मं०, पृ० ३६१।

तेवर—संज्ञा पुं० [हि० तेह (= क्रोध)] १. क्रुपित दृष्टि। क्रोध भरी चितवन।

मुहा०—तेवर भाना = मूर्खी भाना। चक्कर भाना। उ०—यह कहकर बड़ी बेगम को तेवर भाया और घड़ से गिर पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०६। तेवर चढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो। तेवर चढ़ा लेना या तेवर चढ़ाना = क्रुद्ध होना। दृष्टि को ऐसा बना लेना जिससे क्रोध प्रकट हो। उ०—क्यों न हम भी आज तेवर लें चढ़ा। हैं बुरे तेवर दिखाई दे रहे।—चोखे०, पृ० ५२। तेवर तनना = दे० 'तेवर चढ़ना'। उ०—भाल भाग्य पर तने हुए थे तेवर उसके।—साकेत, पृ० ४२३। तेवर बदलना या बिगड़ना = (१) वेगुरीवत हो जाना। (२) खफा हो जाना। उ०—प्रगर स्त्रियों की हँसी की आवाज कभी मरदानों में जाती तो वह तेवर बदले घर में आता।—सेवासदन, पृ० २०८। (३) मृत्युबिह्व प्रकट होना। तेवर बुरे नजर भाना या दिखाई देना = अनुराग में अंतर पड़ना। प्रेम भाव में अंतर आ जाना। तेवर पर बल पड़ना = दे० 'तेवर बुरे चकर भाना या दिखाई देना'। उ०—हर हमें तिरछी निगाहों

का नहीं। देखिए धब बल न तेवर पर पड़े।—चोखे०, पृ० ५२। तेवर मेले होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना। तेवर सहना = क्रोध या क्षोभ सहना। क्रोध का विरोध न करना। उ०—जो पड़े सिर पर रहें सहते उसे, पर न घीरो के बुरे तेवर सहे।—धुभते० पृ० १६।

२ भौंह। भृकुटी।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. ककड़ी। २. खीरा। ३. फूट।

तेवरा—संज्ञा पुं० [दे०] दून में बजाया हुआ रूपक ताल। (संगीत)।

तेवराना^१—क्रि० प्र० [हि० तेवर + आना (प्रत्य०)] १. भ्रम में पड़ना। सदेह में पड़ना। सोच में पड़ना। २. विस्मित होना। आश्चर्य करना। दे० 'तेवराना'। ३. मुच्छित हो जाना। बेहोश हो जाना।

तेवराना^२—संज्ञा पुं० [हि० तेवारी] तिचारियों की बस्ती।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

तेवहार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि मानहि तेवहार सब, गाइ देवारी खेल।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५७।

तेवान^(१)—संज्ञा पुं० [दे०] सोच। चिन्ता। फिकर। उ०—मन तेवान के राधव भूरा। नाहि उबार जीउ डर पुरा।—जायसी (शब्द०)।

तेवान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तावान'। उ०—गयो अजपा सुखि भूले, गयो बिसरि तेवान।—जग० शं०, पृ० १४।

तेवाना^(१)—क्रि० प्र० [दे०] सोचना। चिन्ता करना। उ०—(क) संवरि सेज घन मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेकर लंका।—जायसी (शब्द०)। (ख) रहों लजाय तो पिय चले नहीं तो कहैं मोहि डोढ। ठाढ़ि तेवानी का करो भारी बोढ बसीठ।—जायसी (शब्द०)।

तेवारी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तिवारी'।

तेह^(१)—संज्ञा पुं० [सं० तक्षय, हि० तेखना] १. क्रोध। गुस्सा। उ०—हम हारी के के हहा पायन पारधो प्योह। सेह कहा भजहैं किए तेह तरेरे त्योह।—बिहारी (शब्द०)। २. अहंकार। घमंड। ताव। उ०—घावे तेह वष भूप करहि हठ पुनि पाछे पछितैहैं। भवषकिशोर समान और बर जन्म प्रयत न पैहैं।—रघुराज (शब्द०)। ३. तेजी। प्रचंडता। उ०—शेष भार खाईकें उतारे फन हू ते भूमि कमठ बराह छोड़ि भागे क्षिति जेह को। भानु सितभानु तारा मडल प्रतीचि उबै सोखे सिंधु बाढव तरणि तजे तेह को—रघुराज (शब्द०)।

तेहज^(१)—सर्व० [हि० ते] उसी को। उ०—दाहु तेहज लीजिए रे, साधो सिरजनहार।—दाहु० बानी, पृ० ५८।

तेहनौ—सर्व० [हि० ते] उसका। उ०—ते पुर प्राणी तेहनौ अविचल सदा रहत।—दाहु०, पृ० ५८४।

तेहवार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'। उ०—'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३२।

तेहरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिह्वार] तीन सड़ की सिकड़ी, करघनी या जजोर जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। उ०—जेहर, तेहर, पाँय विछुवन छबि उपजायल।—नद० प्र०, पृ० ३८६।

तेहरा—वि० पुं० [हि० तीन + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेहरी]
१ तीन परत किया हुआ। तीन सपेट का। २ जिसकी एक साथ तीन प्रतियाँ हो। जो एक साथ तीन हो। उ०—
दोहरे तेहरे चौहरे सुपण जाने जात।—विहारी (शब्द०)।
३ जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहनत।

विशेष—इस शब्द में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों।

४ तिगुना। (क्व०)।

तेहराना—क्रि० सं० [हि० तेहरा] १ तीन सपेट या परत का करना। २. किसी काम को उसकी श्रुति आदि दूर करने अथवा उसे बिल्कुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहरावाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेहरा + वाव (प्रत्य०)] तीसरी बार की किया या भाव।

तेहवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिपि + वार] दे० 'त्योहार'।

तेहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेह] १. क्रोध। गुस्सा। २. प्रहकार। शेली। अभिमान। घमंड।

यौ०—तेहेदार। तेहेवाज।

तेहातेह—क्रि० वि० [हि० तह] तह पर तह। छुव गहरे में। उ०—जो जै प्रहर रेणु के मिलिया तेहातेह। धन नहि घरतो दुइ रही, कंन सुहावो मेह।—डोला०, दू० ५८४।

तेहि^१—सर्व० [सं० ते] उसको। उसे। उ०—छबि सो छबीले छैन भेंटि तेहि छिनहि उहावत।—नद० प्र०, पृ० ३६।

तेही^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेह + ई (प्रत्य०)] १ गुस्सा करनेवाला। जिसमें क्रोध हो। क्रोधी। २ अभिमान। घमंडी।

तेही^२—सर्व० [हि० ते + ही] उसे। उमी को।

तेहीज^१—सर्व० [हि० तेही + ज] उसी को। उ०—प्रारध दख गाढयो रहई, जोग सीरज्यो होई तेहीज स्थाय।—वी० रासो, पृ० ४६।

तेहेदारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेहा + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेहेवाजा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तेहा + फा० वाज (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तैतिडीक—वि० [सं० तैत्तिडीक] तितित्ती या हमली की काँजी से बनाया हुआ या तैयार किया हुआ (को०)।

तै^१—क्रि० वि० [हि० तै] मे। दे० 'तै' उ०—कुज तै कहूँ सुनि कत को गमन लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)।

तै^२—सर्व० [सं० त्वम्] तू। उ०—त्रिय सग लरहि न भट रिपु भगनी। बक सम आता तै मम भगनी।—गोपाल (शब्द०)।

तैवालीस—वि० दे० [हि०] तैवालीस।

तैतीस—वि० [हि०] दे० 'तैतीस'। उ०—छुमो तैतीस जव कटे मुत्र बीस। धरि मारु दससीस मन राउ राती।—पलटू० भा० २, पृ० १०८।

तै^३—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उस मात्रा का। जैसे,—घब जै नबर के बाद कहिये ते नबर के बाद आपका ताश निकले।—रामकृष्ण वर्मा (शब्द०)।

तै^४—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. समाप्ति। स्वात्मा।

यौ०—तै तमाम = प्रत। समाप्ति।

२ चुकता। बेबाकी (को०)। ३ निर्णय। फैसला। निबटारा। (को०)। ४ रास्ता चलना। जैसे, मंजिल तै कर सो। उ०—वहुओं ने राह तै की सँभले न पाव फिर भी।—बेला, पृ० ६०।

तै^५—वि० १ जिसका निबटारा या फैसला हो चुका हो। निर्णयित। २ जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, ऋणदा तै करना। रास्ता तै करना।

तै^६—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तह] दे० 'तह'।

तैकायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिक श्रमिक के वशज या मिथ्य।

तैक्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिक का प्रभाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। तिकत्व।

तैक्षण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तीक्ष्णता। तीक्ष्ण का भाव। २. अर्थ-करता (को०)। ३. पेनाएन (को०)। ४. निर्बंधता (को०)।

तैखाना^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तहखानह] दे० 'तहखाना'।

तैजस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। २. धी। ३. पराक्रम। ४. बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। ५. सुमति के एक पुत्र का नाम। ६. जो स्वयंप्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो, भगवान्। ७. वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। ८. एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है। ९. राजस प्रवस्था में प्राप्त प्रहकार जो एकादश इन्द्रियो और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना प्रहकार कभी सात्त्विक या तामसी प्रवस्था प्राप्त नहीं करता।

विशेष—दे० 'प्रहकार'।

१०. जगम (को०)।

तैजस^२—वि० [सं०] १ तेज से उत्पन्न। तेज सबधी। जैसे, तैजस पदार्थ। २. चमकीला। द्युतिमान (को०)। ३. प्रकाश से परिपूर्ण (को०)। ४. उत्तेजित। उत्साही (को०)। ५. शक्तिशाली। साहसी (को०)। ६. राजसी द्युतिवाला। रजोगुणी (को०)।

तैजसावर्तनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी सोना गजाने की धरिया। मूषा।

तैजसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गजविष्वती।

तैत्ति—वि० [सं०] धैर्यवान्। सहनशील (को०)।

तैड़े^१—सर्व० [राज०] तेरा। उ०—नागर तट तैड़े देखे बिन बेकसियाँ दिख भू।—नट०, पृ० १२६।

तैविर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तीवर] तीवर।

तैत्तिरीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्यारह करणों में से चौथा करण ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकुशल, रूपवान्, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है ।

२. देवता । ३. गंडा ।

तैत्तिरीय—संज्ञा पुं० [सं०] १ तीव्रों का समूह । २ तीतर । ३. गंडा ।

तैत्तिरीय—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम जो वैशंपायन के बड़े भाई थे ।

तैत्तिरीय—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पकड़नेवाला [को०] ।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक ।

विशेष—यह मात्रेय अनुक्रमणिका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरी नामक ऋषि प्रोक्त है । पुराणों में इसके संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी । उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी । और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए । इसपर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो । याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा या वह सब उगल दिया, और उस वमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया ।

२. इस शाखा का उपनिषद् ।

विशेष—यह तीन भागों में विभक्त है । पहला भाग संहितोपनिषद् या शिवावल्ली कहलाता है, इसमें व्याकरण और भद्वैतवाद संबंधी बातें हैं । दूसरा भाग भानवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है । इन दोनों समिलित भागों को वाङ्मयी उपनिषद् भी कहते हैं । तैत्तिरीय उपनिषद् में बह्विद्या पर उत्तम विचारों के प्रतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं । इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत प्रशंसा भाष्य है ।

तैत्तिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला ।

तैत्तिरीयारण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक ग्रंथ जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है ।

तैत्तिरीय—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'तैत्तिरीय' ।

तैनात—वि० [प्र० तपश्चतु] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ । मुकर्रर । नियत । नियुक्त जैसे,—मोठ भाड का इतना करने के लिये दम सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे ।

तैनाती—संज्ञा स्त्री० [हि० तैनात + ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगने की क्रिया या भाव । नियुक्ति । मुकर्ररी ।

तैमित्य—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ता [को०] ।

तैमिर—संज्ञा पुं० [सं०] माँख का एक रोग [को०] ।

विशेष—इस रोग में आँखों में धुँधलापन भा जाता है ।

तैया—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें छोपी कपड़ा धोने के लिये रंग रखते हैं । महर ।

तैयार—वि० [प्र०] १. जो काम में जाने के लिये बिल्कुल उपयुक्त हो गया हो । सब तरह से दुस्त या ठीक । सैस । जैसे, कपड़ा (सिलकर) तैयार होना, मकान (बनकर) तैयार होना, फल (पककर) तैयार होना, गाड़ी (जुतकर) तैयार होना, आदि ।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का बहुत सुरीला और रस-युक्त होना । ऐसा गला होना जिससे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके । हाथ तैयार होना = कला भाँति में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना । हाथ का बहुत मँज जाना ।

२. उद्यत । तत्पर । मुस्तैद । जैसे,—(क) हम तो सवेरे से चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए । (ख) अब देखिए तब आप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं । ३ प्रस्तुत । उपस्थित । मौजूद । जैसे,—इस समय पचास रुपए तैयार हैं, बाकी कल ले लीजिएगा । ४. दृष्ट पुष्ट । मोटा साजा । जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुडोल हो । जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है । ५ संपूर्ण । मुकम्मल (को०) । ६ समाप्त । खत्म (को०) । ७ पक्व । पुस्ता (को०) । ८ कटिबद्ध । आमादा (को०) । ९. सुसज्जित । आरास्ता (को०) ।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हि० तैयार + ई (प्रत्य०)] १. तैयार होने की क्रिया या भाव । दुस्त । संपूर्णता । २ तत्परता । मुस्तैदी । ३ शरीर की पुष्टता । मोटाई । ४. धूमधाम । विशेषतः प्रबंध आदि के संबंध की धूमधाम । जैसे,—उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी । ५. सजावट । जैसे,—आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं । ६ समाप्ति । खारमा (को०) । ७ प्रयोग के काबिल होना (को०) । ८. रचना । निर्माण । सृष्टि (को०) ।

तैयों—सर्व० [सं० त्वम् हि० तै] तुमसे । उ०—तूँ आप करण कारण है तेरा ही कीना होया सब कुछ है । तैयों कुछ छपिया नहीं ।—प्राण०, पृ० २०२ ।

तैयों—क्रि० वि० [हि०] ३० 'तऊ' । उ०—सहस्र अठासी मुनि जो जेवँ तैयो न घटा बाजे । कहहि कबीर सुपच के जेए घट मगन हैं गाजे ।—कबीर (शब्द०) ।

तैरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसकी पत्तियों आदि को वैद्यक में तिक्त और व्रणनाशक माना है ।

पर्या०—तैर । तैरणी । कुनीली । रागद ।

तैरना—क्रि० प्र० [सं० तरण] १ पानी के ऊपर ठहरना । उतराना । जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना । २. किसी जीव का अपने भ्रम संचालित करके पानी पर चलना । हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना । पैरना । तरना ।

विशेष—मछली आदि जलजंतु तो सदा जल में रहते और विचरते ही हैं, पर इनके प्रतिरिक्त मनुष्य को छोड़कर बाकी अधिकांश जीव जल में स्वभावतः बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं । तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग

अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों को गति देनी पड़ती है। मनुष्य का साधारण तैरना प्रायः मेढक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर चुपचाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे मासनों से भी तैरते हैं। साधारण चोपायों को तैरने में अपने पैरों को प्रायः वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चोपाए ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊद-बिलाव, गधबिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही बिलकुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, हेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और मदर भी। जिन पक्षियों के पैरों में जालियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटकते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, अजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कछुए आदि अपने चारों पैरों की सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दौड़ते अथवा चित पटककर तैरते हैं।

तैरय—सर्व० [सं० तव] तेरा। उ०—पच सखी मिली बड़ो छइ भाइ। तैरय लिखी सखी माँहि सुणाई।—बी० रासो, पृ० ७४।

तैराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तैरना + ई (प्रत्य०)] १. तैरने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तैराक^१—वि० [हि० तैरना + प्राक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराक^२—सञ्ज्ञा पुं० तैरने में कुशल व्यक्ति।

तैराना—क्रि० सं० [हि० तैरना का प्रे० रूप] १. दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। २. घुसाना। धंसाना। गोदना। जैसे,—चोर ने उसके पेट में छुरी तैरा दी।

तैरू—वि० [हि० तैरना] तैराक। तैरनेवाला। उ०—दरिया गुरु तैरू मिलाकर दिया पैले पार।—सतवाणी०, पृ० १२।

तैर्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

तैर्य^२—वि० तीर्थ सबधी।

तैर्यिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि। २. साधु। संत (को०)। ३. तीर्थस्थान का पवित्र जल (को०)।

तैर्यिक^२—वि० १. पवित्र। २. तीर्थ से आनेवाला। तीर्थ से सबद्ध। ३. तीर्थों अथवा मंदिरों में जानेवाला (को०)।

तैर्यगवनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैर्यग्योन—वि० [सं०] तिर्यक् योनि सबधी (को०)।

तैलंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिंग] १. दक्षिण भारत का एक प्राचीन

देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य से मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलुगु कहलाती है।

विशेष—इस देश में कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिकलिंग पड़ा है, इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से लेकर मदरास के और आगे तक का समुद्रतटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलगाना कहलाता है।

२. तैलंग देश का निवासी।

यौ०—तैलंग ब्राह्मण।

तैलंगा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलगा'।

तैलंगी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

तैलंगी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

तैलंगी^३—वि० तैलंग देश संबंधी। तैलंग देश का।

तैलपाता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तैलम्पाता] स्वधा जिसमें मुख्यतः तिल की आहुति दी जाती है (को०)।

तैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तिल, सरसों आदि को पेरकर निकाला हुआ तेल। २. किसी प्रकार का तेल। ३. घूप। गुग्गुल (को०)।

तैलकंद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तैलकन्द] तैलियाकंद।

तैलकल्कज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खत्री (को०)।

तैलकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तैली (जाति)।

विशेष—ब्रह्मवेवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है। दे० 'तैली'।

तैलकिट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।

तैलचौम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र जिसकी राख का प्रयोग घाव पर होता है (को०)।

तैलचित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तैल + चित्र] तैल रंगों से बना हुआ चित्र।

तैलचौरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तैलघट्टा (को०)।

तैलत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तैल का भाव या गुण।

तैलद्रौणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिसकी लंबाई मादमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी।

विशेष—इसमें तैल भरकर चिकित्सा के लिये रोगी लिटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये मृत शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रौणी में ही रखा गया था।

तैलधान्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसों, दोनों प्रकार की राई, अरु और कुसुम के बीज हैं।

तैलपण्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।

तैलपरिष्क—सङ्घा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चदन । २. लाल चदन । ३ एक प्रकार का वृक्ष ।

तैलपरिष्का—सङ्घा स्त्री० [सं०] तैलपरिष्की [को०] ।

तैलपरिणी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. सलई का गोंद । २ चंदन । ३. शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलपा, तैलपायिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलपाती—सङ्घा पुं० [सं० तैलपायिन्] १. भीगुर । चपड़ा (कीड़ा) । २ तलवार (की०) ।

तैलपिज—सङ्घा पुं० [सं० तैलपिञ्ज] सफेद तिल [को०] ।

तैलपिपीलिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीटी ।

तैलपिष्टक—सङ्घा पुं० [सं०] खली ।

तैलपोष—वि० [सं०] जिसने तेल पिया हो [को०] ।

तैलपूर—वि० [सं०] (दीपक) जिसमें तेल भरने की आवश्यकता न हो [को०] ।

तैलप्रदीप—सङ्घा पुं० [सं०] तेल का दीपक [को०] ।

तैलफल—सङ्घा पुं० [सं०] १ हंगुदी । २ बहेड़ा । ३ तिलका ।

तैलबिंदु—सङ्घा पुं० [सं० तैल + बिन्दु] किसी सक्षिप्त उक्ति को बढ़ा बढ़ाकर कहना । उ०—किसी सक्षिप्त उक्ति को खूब बढ़ाकर ग्रहण करना तैलबिंदु कहा गया है ।—सपुष्पां० अमि० प्र०, पृ० २१३ ।

तैलभाविनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़ ।

तैलमाली—सङ्घा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती । पलीता ।

तैलयंत्र—सङ्घा पुं० [सं० तैलयन्त्र] कोल्लू ।

तैलरंग—सङ्घा पुं० [सं० तैल + रङ्ग] एक प्रकार का रंग जो तेल में मिलाकर बनाया जाता है और जिस रंग से तैलचित्र बनते हैं ।

तैलवल्ली—सङ्घा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतमूली ।

तैलसाधन—सङ्घा पुं० [सं०] शीतल चीनी । कबाब चीनी ।

तैलस्फटिक—सङ्घा पुं० [सं०] १. अवर नामक गंधद्रव्य । २ वृण-मणि । कहूबा ।

तैलस्यन्दा—सङ्घा स्त्री० [सं० तैलस्यन्दा] १ गोकर्णी नाम की लता । मुरहटी । २. काकोली नाम की ओषधि ।

तैलांबुका—सङ्घा स्त्री० [सं० तैलांबुका] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलाक्त—वि० [सं०] जिसमें तेल लगा हो । तैलयुक्त । उ०—उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली ।—ग्राम्या, पृ० ३५ ।

तैलाख्य—सङ्घा पुं० [सं०] शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलागुरु—सङ्घा पुं० [सं०] अंगूर की लकड़ी ।

तैलाटी—सङ्घा स्त्री० [सं०] बरें । मिड़ ।

तैलाभ्यंग—सङ्घा पुं० [सं० तैलाभ्यङ्ग] शरीर में तेल मलने की क्रिया । तेल की मालिश ।

तैलिक—सङ्घा पुं० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला । तेली ।

तैलिक^२—वि० तेल संबंधी ।

तैलिक यंत्र—सङ्घा पुं० [सं० तैलिक यन्त्र] कोल्लू । उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुमट घालि घानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तैलिन—सङ्घा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलिनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] बत्ती ।

तैलिशाळा—सङ्घा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का कोल्लू चलता हो ।

तैली—सङ्घा पुं० [सं० तैलिन] तैली ।

तैलीन—सङ्घा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलीशाळा—सङ्घा स्त्री० [सं० तैलिनशाळा] तेल पेरने का स्थान [को०] ।

तैलवक^१—वि० [सं०] लोभ की लकड़ी से बना हुआ ।

तैलवक^२—सङ्घा पुं० [सं०] लोभ ।

तैश—सङ्घा पुं० [प्र०] भावेशयुक्त श्लोक । गुस्सा ।

मुद्दां—तैश दिखाना=ऐसा कार्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो । श्लोक चढ़ाना । तैश में घाना=क्रुद्ध होना । बहुत क्रुपित होना ।

तैष—सङ्घा पुं० [सं०] चाद्र पोष मास । पोष मास की पूर्णिमा के दिन तिथ्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से उसका नाम तैष पड़ा है ।

तैषी—सङ्घा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्रयुक्ता पोषमासी । पूष की पूर्णिमा ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तद्वत्] दे० 'तैसा' । उ०—पवन जाइ वहै पहुँचै चहा । मारा तैस दृष्टि मुई बहा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २२६ ।

तैसई^७—वि० [हि० तैस + ई (प्रत्य०)] तैसे ही । वैसे ही । उसी प्रकार के । उ०—तैसई मंत्री अरु सब पुष्य प्रधान ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७० ।

तैसही^७—वि० [हि० तैस + ही (प्रत्य०)] दे० 'तैसई' । उ०—वरिहै विजैत्री भाप हूँ कहूँ श्यामसुंदर तैसही ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६ ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तद्वत्] उस प्रकार का । 'वैसा' का पुराना रूप ।

तैसील^७—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'तहसील' । उ०—मिलिके बादिसाहूँ का अमल को उठाया । ऊ तीन बरस होगा तैसील कूँ न आया ।—शिलर०, पृ० २३ ।

तैसे—क्रि० वि० [हि०] दे० 'वैसे' ।

तैसों^७—वि० [हि०] दे० 'वैसा' । उ०—रंग रंगीले सँग सखा गन रंगीली नव बहु तैसोंई जम्पौ रंगीली वसत रागु ।—नद० प्र०, पृ० ३६७ ।

तैसो^७—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तैसे' । उ०—अंगन में कीनो भृगमद अंगराग तैसो आनन घोड़ाय लीनो स्याम रंग सारी में ।—मति० प्र०, पृ० ३१३ ।

तौ^७—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यों' ।

तौधर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'तोमर'। उ०—सब मंत्री परधान यान पर। गए जहाँ पावासर तौधर।—पृ० रा०, १।४६४। २. तोमर नामक मय।

तौद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द-तुन्दिल] पेट के भागे का बड़ा हुमा भाग। पेट का फुलाव। मर्यादा से अधिक फूला या भागे की ओर बढ़ा हुमा पेट।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—तौद पचकना = (१) मोटाई दूर होना। (२) खेती निकल जाना।

तौदल—वि० [हिं० तोद + ल (प्रत्य०)] तोदवाला। जिसका पेट भागे की ओर बढ़ा और खूब फूला हुमा हो।

तौदा^१—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग।

तौदा^२—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० तोदा] १. वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिसपर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं। २. डेर। राशि। (वव०)।

तौदियल—वि० [हिं०] दे० 'तौदल'।

तौदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डी] नामि। डोढी।

तौदीला—वि० [हिं०] दे० [वि० स्त्री० तोदीली] दे० 'तौदल'।

तौदूमल—वि० [हिं० तोदु + मल] दे० 'तौदल'। उ०—तौद बना लो, नही उल्लू बनाकर निकाल दिए जाओगे या किसी तोदूमल को पकड़ो।—काया०, पृ० २५१।

तौदल—वि० [हिं० तोद + ऐल] दे० 'तौदल'।

तौन^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तोन'। उ०—होत दीधं (जो) मत है हरि सम सब यह तोम।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

तौबा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूबा'।

तौबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूबी'।

तौर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ०—तहँ तोर तीपन ताकिये, रन विरद जिनके बाँकिये।—पद्माकर प्र०, पृ० ७।

तो^१—सर्व० [सं० तव] तेरा।

तो^२—अव्य० [सं० तद्] तब। उस वधा में। जैसे,—(क) यदि तुम कहो तो मैं भी पत्र लिख दूँ। (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना। उ०—जो प्रभु भवसि पार गा बहूह। तो पद पदुम पखारन कहहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः 'जो' के साथ होता था।

तो^३—अव्य० [सं० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यों ही किया जाता है। जैसे,—(क) प्रायः चले तो सही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा। (ख) जरा बैठो तो। (ग) हम गए तो थे, पर वे ही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी बहार है?

तो^४—सर्व० [सं० तव] तुम्हें। तू का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है, जैसे, तोको।

तो^५—क्रि० प्र० [हिं० हतो (= था)] था। (वव०)। उ०—काल

करम दिगपान सकल जग जान जासु करतल तो।—तुलसी (शब्द०)।

तोड़^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोय] पाना। जल। उ०—बीठ होखे मोर दिम छिरक रूप रस तोड़। मयि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिलोड़।—रसनिधि (शब्द०)।

तोड़^२—अव्य० [सं० तत + अपि] फिर भी। उ०—माव तोड़ण कणमणइ साल्ह कुमर बहु साठ।—ढोला०, पृ० ६०५।

तोई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] १. अंग्रे या कुरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोद। २. चादर या दोहर आदि की गोद। ३. लहंगे का नेफा।

तोई^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय'। उ०—जों लणि तोई रोखे बोले, तों लणि भाया माहीं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६।

तोऊ^१—अव्य० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—तोऊ दुसग पाइ बहिषुं हूँ रह्यो है।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १५३।

तोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शिशु। अपत्य। लडका या लड़की। २. श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा का नाम।

तोकक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चातक [को०]।

तोकना^१—क्रि० सं० [?] उठाना। उ०—तेक तोकि तनयो तुरी।—पृ० रा०, ७। १०५।

तोकरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की लता जो मफूम के पौधों पर लिपटकर उन्हें सुखा देती है।

तोकवत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तोकवती] पुत्रवान [को०]।

तोकौ^१—सर्व० [हिं० तो + को] तुमको। तुम्हें। उ०—प्रीति विधि रूप दोन्ह है तोकौ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१।

तोका^१—सर्व० [हिं० तो + को] तुम्हको। तुम्हें। उ०—करसि विवाह धरम है तोका।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

तोकम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मकुर। २. जो का नया मकुर। हरा और कच्चा जो। ४. हरा रंग। ५. बादल। मेघ। ६. कान का मेल।

तोख^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय' या 'सतोय'। उ०—विरिह होइ कत कर तोखू। किरिरा किहू पाव धनि मोखू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

तोखना^१—क्रि० सं० [हिं० तोख] प्रसन्न करना। सतृप्त करना। उ०—तिय ताकी पतिवरता भई। पति ही पोख्यो तोख्यो चहै।—नद० प्र० पृ० २१२।

तोखार—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुखार'। उ०—पौवरि तखडु देहु पग पेरी मावा वौक तोखार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०८।

तोगा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोक'। उ०—जातिपुत्र सिंह ने एषेंस का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था।—वैशाली०, पृ० १२४।

तोख^२—वि० [हिं०] दे० 'तुख'। उ०—सेना तोख तपस्या सम्मत।—रा० रू०, पृ० ६५।

तोटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वणंजित जिसके प्रत्येक अक्षर में चार

सगण (॥५ ॥५ ॥५ ॥५) होते हैं । जैसे,—ससि सो सखियाँ बिनती करती । टुक मदन हो पग तो परती । हरि के पद भक्ति हूँ न दे । छिन तो टक लाय निहारन दे । २ शकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक । इनका एक नाम नदीश्वर भी था ।

तोड़का—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटका' । उ०—घोषघ घनेक जत्र मत्र तोड़कादि किये वादि भए देवता मनाए अधिकाति है ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोटा' । उ०—सोदा सतगुरु सँ किया राम नाम धन काज । लाभ न कोई छेहछो तोड़ा सबही भाज ।—राम० धर्म०, पु० ५२ ।

तोठाँ—सर्व० [हि० तो + ठा (प्रत्य०)] तुम्हारा । उ०—दुवमूँ सूर तोठाँ गाँव सोला की लिपावटि ।—शिखर०, पु० १०६ ।

तोड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोड़ना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव (व०) । २. किले की दीवारों आदि का वह भग्न जो गोले की मार से टूट फूट गया हो । ३. नदी आदि के जल का तेज बहाव । ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजों को तोड़ फोड़ दे । ४. कुपती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच रद्द हो । किसी दाँव से बचने के लिये किया हुआ दाँव । ५. किनी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य । प्रतिकार । मारक । जैसे—भगर वह तुम्हारे साथ कोई पात्रोपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना ।

यो०—तोड़ जोड़ । तोड़ फोड़ ।

६ दही का पानी । ७ बार । दफा । झोंक । जैसे,—पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जो बहुत भावेषपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं ।

तोड़क—वि० [हि० तोड़ + क (प्रत्य०)] तोड़नेवाला । जैसे, जाति पाँत तोड़क मंडल ।

तोड़ जोड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोड़ + जोड़] १ दाँव पेंच । बाल । युक्ति । २ अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाने और किसी को भ्रमण करने का कार्य । चट्टे बट्टे लडाकर काम निकालना ।

क्रि० प्र०—भिड़ाना ।—चगाना ।

तोड़न—पञ्जा पुं० [सं० तोड़नम्] १ फाड़ना । विभाजित करना । २ चिथड़े चिथड़े करना । ३ आघात या चोट पहुँचाना ।

तोड़ना—क्रि० सं० [हि० टटना] १ आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना । भग्न, विभक्त या खंडित करना । टुकड़े करना । जैसे, गन्ना तोड़ना, लकड़ी तोड़ना, रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोड़ना, ब्रधन तोड़ना ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों ।

४-६१

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

यो०—तोड़ा मरोड़ी ।

२. किसी वस्तु के भग्न को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को नोच या काटकर, अथवा और किसी प्रकार से भ्रमण करना । जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ) बटन तोड़ना, जिल्द तोड़ना, दाँत तोड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—तोड़ना = मार डालना । समाप्त कर देना । उ०—उस बाज ने कवूतर को पकड़कर तोड़ डाला ।—कबीर मं०, पु० ४८५ ।

३. किसी वस्तु का कोई भग्न किसी प्रकार खंडित, भग्न या बेकाम करना । जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना । ४. खेत में हल जोतना (व०) । ५. सेंध लगाना । ६. किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना । किसी का कुमारीत्व भग्न करना । ७. बल, प्रभाव, महत्त्व, विस्तार आदि घटाना या नष्ट करना । क्षीण, दुर्बल या भ्रष्ट करना । जैसे,—(क) बीमारी ने उन्हें विलकुल तोड़ दिया । (ख) युद्ध ने उन दोनों देशों को तोड़ दिया । (ग) इस कुएँ का पानी तोड़ वो । ८. खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटाकर निश्चित करना । जैसे, वह तो १५०) माँगता था पर मैंने तोड़कर १००) पर ही ठीक कर लिया । ९. किसी सगठन, व्यवस्था या कार्यक्षेत्र आदि को न रहने देना अथवा नष्ट कर देना । किसी चलते काम कार्यालय आदि को सब दिन के लिये बंद करना । जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद तोड़ना, स्कूल तोड़ना । १०. किसी निश्चय या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित न रखना । निश्चय के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना । बात पर स्थिर न रहना । जैसे, ठेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना । ११. बुर करना । भ्रमण करना । मिटा देना । बना न रहने देना । जैसे, सबंध तोड़ना, गर्व तोड़ना, दोस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना । १२. स्थिर या दृढ़ न रहने देना । कायम न रहने देना । जैसे, गवाह तोड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—कंजम तोड़ना = दे० 'कलम' के मुहा० । कमर तोड़ना = दे० 'कमर' के मुहा० । किला या गढ़ तोड़ना = दे० 'गढ़' के मुहा० । तिनका तोड़ना = दे० 'तिनका' के मुहा० । पैर तोड़ना = दे० 'पैर' के मुहा० । मुँह तोड़ना = दे० 'मुँह' के मुहा० । रोटियाँ तोड़ना = दे० 'रोटी' के मुहा० । सिर तोड़ना = दे० 'सिर' के मुहा० । हिम्मत तोड़ना = दे० 'हिम्मत' के मुहा० ।

तोड़फोड़—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + फोड़ना] नष्ट करने की क्रिया । नष्ट करना । खराब करना ।

तोड़मरोड़—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तोड़ना + मरोड़ना] १ तोड़ने मरोड़ने का कार्य । २. गलत अर्थ लगाना । कुतर्क में भ्रम अर्थ सिद्ध करना ।

तोडर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोडा] एक भाभूपण का नाम । उ०—
मुद्रिक तोडर दए उत्तारी ।—०, हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६५ ।

तोड़वाना—क्रि० स० [हि० तोडना प्रे० रूप] दे० 'तुड़वाना' ।

तोड़ा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तोडना] १ सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जजोर या सिकड़ी जिसका व्यवहार भाभूपण की तरह पहनने में होता है ।

विशेष—भाभूपण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पेरों, हाथों या गले में पहना जाता है । कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा सपेट सेते हैं ।

२. रुपए रखने की टाट आदि की थैली जिसमें १०००) रु० आते हैं ।

विशेष—घड़ी यँची भी जिसमें २०००) रु० आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है ।

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े उलटना या गिनना = (किसी को) सेकड़ों, हजारों रुपए देना । बहुत सा द्रव्य देना ।

३. नदी का किनारा । तट । ४. वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बालू, मिट्टी आदि होने के कारण बन जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. घाटा । घटी । कमी । टोटा । उ०—तो लाला के लिये दूध का तोड़ा थोड़ा ही है ।—मान०, भा० ५, पृ० १०२ ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।

६ रस्सी आदि का टुकड़ा । ७ उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय । नाच का एक टुकड़ा । ८ हल की वह लंबी लकड़ी जिसके आगे जुमा लगा होता है । हरिस ।

तोड़ा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुण्ड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सूत बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाल की तोड़दार बट्टक छोड़ी जाती थी । फलीता । पलीता । उ०—तोड़ा मुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बट्टकन ।—आरतेंदु म०, भा० १, पृ० ५२४ ।

यौ०—तोड़ेदार बट्टक = वह बट्टक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय । आजकल इस प्रकार की बट्टक का व्यवहार उठ गया है । दे० 'बट्टक' ।

तोड़ा^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ मिसरी की तरह की बहुत साफ की हुई चीन्हा जिससे ओला बनाते हैं । कंद । २ वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है । ३ वह भँस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो । तीन बार तक ब्याई हुई भँस ।

तोड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुड़ाई' ।

तोड़ाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'तुड़ाना' ।

तोड़ियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तोड़' ।

तोड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों ।

तोण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तूण] निदग । तरकस ।

तोता^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० तोदह्, या तूदह्, (=तेर)] १ डेर । समूह । उ०—घर घर उनही के जुरे बदनामी के तोत । भावत जे हित खेत तै नेकनाम कब होत ।—(शब्द०) । २. खेल (क्व०) ।

तोत^७—सञ्ज्ञा पुं० [?] कपट । उ०—पातसाह सुणता दुख पायो एक हस्तर तोत उपजायो ।—रा० रू०, पृ० ३०८ ।

तोतई^१—वि० [हि० तोता+ई (प्रत्य०)] सुगं जैसा । तोते के रंग का सा । घानी ।

तोतई^२—सञ्ज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो । घानी रंग ।

तोतरंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो पितपित्ता की सी होती है ।

तोतरा—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतरा—वि० [हि०] दे० 'तोतला' ।

तोतराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' । उ०—पूछत तोतराना बात मातहि जदुराई । अतिसे मुख जावे तोहि मोहि कछु समझाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोतरि^७—वि० स्त्री० [हि० तोतराना] दे० 'तोतला' । उ०—वरिकाई लटपट जग खेला । तोतरि बात मात संग बोला ।—घट०, पृ० ३७ ।

तोतला—वि० [हि० तुतलाना] १ वह जो ततलाकर बोलता हो अस्पष्ट बोलनेवाला । जैसे, तोतला बालक । २ जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो । जैसे, तोतली जवान ।

तोतलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'तुतलाना' ।

तोतली—वि० [हि० तोतलाना] दे० 'तोतला' । उ०—खिना हुआ मुख कज, मज्जु दशनावली, अग्रण शम्भर, फलकठ तोतली काकली ।—शकु० पृ० ४८ ।

तोठा—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है । कीर । सुमा ।

विशेष—इसकी दुम छोटी होती है और पेरों में दो आंग्रे और दो पीछे इस प्रकार चार उँगलियाँ होती हैं । ये आदमियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और 'राम राम' या छोटे मोटे पद सिखलाते हैं । ये फस या मुलायम प्रनाज खाते हैं । तोते की छोटी, बड़ी सेकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमें से अधिकांश फलाहारी और कुछ मासाहारी भी होती हैं । तोते साधारण छोटी चिड़ियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं । कुछ जातियों के तोतो का स्वर तो बहुत मधुर और श्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय । इनमें नर और मादा का रंग प्रायः एक सा ही होता है । अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते हैं । हीरामन, कातिक, नूरी, काकात्वा आदि तोते की जाति के ही हैं । तीतर, मुरगे, मोर, कवूर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनों तक पाले जाते हैं यदि कभी लड़का इधर उधर चले जाय तो प्रायः फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर

अपने पालनेवाले के पास प्रायः नहीं आते। इसलिये तोतों की बेमुरीवती मशहूर है।

मुंहा०—हार्यों के तोते उड़ जाना = बहुत धबरा जाना। सिर पीटा जाना। तोते की तरह झूलें फेरना या बदलना = बहुत बेमुरीवत होना। तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे बूझे रटना। तोता पालना = किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझकर बढ़ाना। किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

यौ०—तोताचरम। तोताचरमी।

२ बंदूक का घोड़ा।

तोताचरम—सज्ञा पुं० [फ्रा०] तोते की तरह झूल फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बेमुरीवत हो।

तोताचरमी—सज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोताचरम + ई० (प्रत्य०)] बेमुरीवती। बेवफाई।

मुहा०—तोताचरमी करना = बेमुरीवत होना। बेवफाई करना। उ०—यकीन नहीं आता कि भाजाद न आएँ और ऐसी तोताचरमी करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८।

तोतापंखी—वि० [हि० तोता + पंख + ई (प्रत्य०)] तोते के पंखों जैसे पीत वरुण का। पीताम्ब। उ०—तोतापंखी किरनों में दिसती बाँसों की टहनियों। यहाँ बैठ कहती थी तुमसे सब कहना मनकहनी।—ठठारा०, पृ० २०।

तोती—सज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोता] १ तोते की मादा। उ०—बोलहिं सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक पोत कपोती।—नंद० प्र०, पृ० ११६। २. रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखनी। सुरेतिन। (कव०)।

तोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चाबुक आदि जिसकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोथी०—अव्य० [हि०] बही। उ०—लाहो लेता जनम गो तुम करे तिसी तोथी होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तोद^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ पीड़ा। व्यथा। उ०—आनंदधन रस बरसि बहायो जनम जनम को तोद।—घनानंद, पृ० ४८६। २. सूर्य (को०)। ३. चलाना। हाँकना (को०)।

तोद^२—वि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १. तोत्र। चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि। २. व्यथा। पीड़ा। ३. एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसला, मीठा, हल्का तथा कफ और वायुनाशक माना है।

तोदरी—सज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कंटोला पेड़ जिसमें पतले छिलकेवाले फूल लगते हैं।

विशेष—इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह चपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और घोष के काम में घाने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—खाल, सफेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज

बहुत रक्तपोषक, पोष्टिक और बलवर्धक समझे जाते हैं। कहते हैं, इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग खाल हो जाता है।

तोदी—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ख्याल (संगीत)।

तोनि०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—हनुमान हृथ्य संदेश सु कथ्य। धरे पिटु तोन खड़ी बीर सथ्यं।—पृ० रा०, २।२६७।

तोनि०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण'। उ०—कर खग धनुष कटि लसे तोनि।—ह० रासो०, पृ० १२।

तोप—सज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा शस्त्र जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी गोलियाँ या मेसों आदि से भरे हुए गोल या लंबे गोले रखकर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में धारुद रखकर पलीते आदि से उसमें आग लगा देते हैं। उ०—छुटाहि तोप धनधोर सबे बंदूक चलावे।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४०।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुमा करती थीं और उनको खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके प्रतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रखकर चलाने योग्य तोपें अलग हुमा करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७५-७५ मील तक जाता है। इसके प्रतिरिक्त बाइसफिर्सों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये अलग प्रकार की तोपें होती हैं। जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबंदी तोड़ने के लिये होता है। आजकल में किसी के जन्म के समय घरवा इसी प्रकार की और किसी महत्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भरकर केवल शब्द करते हैं।

किं० प्र०—खलना।—चलाना।—छूटना।—छोड़ना।—दगना।—दागना।—भरना।—मारना।—सर करना।

यौ०—तोपची। तोपखाना।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कसकर ठोक देना जिससे उसमें से गोला न चलाया जा सके। [प्राचीन काल में मौका पाकर शत्रु की तोपें भयवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं।] तोप की सलामी उतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर भयवा किसी महत्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के केवल बारूद भरकर शब्द करना। तोप के मुँह पर छोड़ना = बिल्कुल निराश्रित छोड़ देना। खतरे के स्थान पर छोड़ना। उ०—फिर तुम उस बेचारी को प्रकली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो।—रति०, पृ० ४४। तोप के मुँह पर रखकर

उड़ाना = बहुत कठिन दंड या प्राणदंड देना। तोप के मुहरे पर उड़ा देना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। उ०—ऐसी बंद औरतो को तोप के मुहरे पर उड़ा दे बस।—संस्कृत ५० १८। तोप बंद करना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुँह उसकी ओर करना।

तोपखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोप + खाना] १ वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। २ गोलों और सामान की गारियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

तोपची—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भरकर चलाता हो। गोलदाज।

तोपचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चोबचीनी'।

तोपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का कवुतर। २ एक प्रकार की मक्खी।

तोपना—क्रि० सं० [देश०] नीचे दवाना। ढांकना। छिपाना।

तोपवाना—क्रि० सं० [हिं० तोपना प्रे० रूप] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढांकवाना। छिपवाना।

तोपा—संज्ञा पुं० [हिं० तुरपना] एक टाँके में की हुई सिलाई।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

तोपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] १ तोपने की क्रिया या भाव। २ तोपने की मजदूरी।

तोपाना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तोपवाना'।

तोपास—संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू देनेवाला। झाड़ूवरदार।

तोपी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोपी'।

तोफ़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुफ (अव्य०)] दुश्मन। पश्चात्ताप। अफसोस। उ०—तालिव मतलूब को पहुँचै तोफ करे दिल अदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तोफगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोहफा] तोफा या सम्दा होने का भाव। खूबी। अच्छापन।

तोफाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोप'। उ०—दो तोफाँ वहे गोला रोहसा मोरछा दोला।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १२७।

तोफाँ—क्रि० [फ्रा० तोहफा] बढ़िया।

तोफा—संज्ञा पुं० दे० 'तोहफा'।

तोफाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूफान'। उ०—साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है, हिंदू और तुलुक तोफान करता।—स० दरिया, पृ० २७।

तोवडा—संज्ञा पुं० [फ्रा० तोवरा या तुवरा] चमड़े या टाट आदि का वह थैला जिसमें दाना भरकर घोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर बाँध देते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तोवड़ा चढ़ाना = बोलने से रोकना। मुँह बंद करना।

तोवा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० तोवह] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य की विशेषतः अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। उ०—सबे जग लोक दुखदाई नम तोवा हाम हाई।—सत गुरसी०, पृ० ४४।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।

मुहा०—तोवा तिल्ला करना या मचाना = रोते, चिल्लाते या दीनता दिखलाते हुए तोवा करना। तोवा तोडना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से तोवा कर चुके हैं, उसे फिर करना। तोवा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़कर प्रथवा ईश्वर से डरकर (कोई बात) कहना। तोवा बुलवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे तोवा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। ची बुलवाना।

तोम—संज्ञा पुं० [सं० स्तोम] समूह। डेर। न०—(क) जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो महामोहन वास तिमि तोमनि को यल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिनकर के उदय तोम तिमिर फटत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चढ़ूँ घाँ तें महा तगपे बिजुरी तम तोम में भ्रातु तमासे करे।—किशोर (शब्द०)।

तोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूमड़ी'।

तोमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाले की तरह एक-प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में आगे की ओर तोहे का बड़ा फल लगा रहता था। शर्पला। शायल। २. बारह मात्ताओं का एक छंद जिसके भव में एक मुख और एक लघु होता है। जैसे, तव चले बान कराल। फुकरत जनु वहु म्याल। कोणो समर थीराम। चले विशिख निखिल निकाम।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों में है। ४. इस देश का निवासी। ५. राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली में आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था।

विशेष—प्रसिद्ध राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरो ने कन्नौज को अपना राजनगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आजकल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

तोमरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तोमरधारी सैनिक [क्रो०]।

तोमरधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ 'तोमरग्रह'। २ भूमि [क्रो०]।

तोमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तोमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तूमड़ी'। २. कहुआ कदू।

तोमा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँवा'। उ०—मेहर का जामा और तोमा भी मेहर का। मेहर का आपा इस दिल को पिलाइए।—मल्लिक, पृ० ३१।

तोय—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल। पानी। पूर्वापादा नक्षत्र।

तोय(७)^२—अव्यं [हि० तो] तो भी । फिर भी । उ०—चहुवाणी
कुल चल्लणी, वियो न चल्लै कोय । चाड न घट्टै खूँद की
सोस पलट्टै तोय ।—रा० ६०, पृ० ११६ ।

तोय^३—सर्व० [हि० तो] दे० 'तुम्हें' । उ०—मैं पठई वृषभानु के,
करनि सगाई तोय ।—नंद० प्र० पृ० १६५ ।

तोयकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयकर्मन्] तर्पण ।

तोयकाम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैन जो जल के समीप
उत्पन्न होता है । वानीर ।

तोयकाम^२—वि० १. जल चाहनेवाला । २. प्यासा [को०] ।

तोयकुम्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयकुम्भ] सेवार ।

तोयकृच्छ्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत ।

विशेष—इसमें जल के सिवा और कुछ माहार ग्रहण नहीं किया
जाता । यह व्रत एक महीने तक करना होता है ।

तोयक्रीड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयक्रीडा] जल में खेल करना । जल-
क्रीडा [को०] ।

तोयगर्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नारियल [को०]

तोयचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलचर [को०] ।

तोयडिम्ब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] घोला । पत्थर । करका ।

तोयडिम्ब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] दे० 'तोयडिब' [को०] ।

तोयद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ, बादल । २. नागरमोथा । ३.
घो । ४. वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहा-
त्म्य बहुत अधिक माना जाता है ।)

तोयद^२—वि० जल देनेवाला ।

तोयदागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु । वरसात ।

तोयदात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धारद ऋतु [को०] ।

तोयघर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मेघ । बादल ।

तोयधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । २. मोथा । ३. वर्षा [को०] ।

तोयधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । सागर । २. चार की
सख्या [को०] ।

तोयधिप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लौंग ।

तोयनिधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । सागर । २. चार की
सख्या [को०] ।

तोयनीवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पी ।

तोयपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] करेला ।

तोयपिप्पली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली ।

तोयपुष्पो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष । पाँडर ।

तोयप्रष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष । पाँडर [को०] ।

तोयप्रसादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तोयप्रसादनफल' ।

तोयप्रसादनफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निर्मली ।

तोयफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तरवृक्ष या ककडो आदि की फल ।

तोयमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का फेन [को०] ।

तोयसूच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । २. मोथा ।

तोययंत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोययन्त्र] १. जलघड़ी । २. फीवारा [को०] ।

तोयरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रादंता । नमी [को०] ।

तोयराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण [को०] ।

तोयराशि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. तालाव या झील [को०] ।

तोयवल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की तेल ।

तोयवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवार ।

तोयवेला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जल का विनाश । तीर । तट [को०] ।

तोयव्यतिकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सगम । जैसे, नदियों का [को०] ।

तोयशुक्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी [को०] ।

तोयशूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवार [को०] ।

तोयसर्पिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मेंढक [को०] ।

तोयसूचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में वह योग जिसमें वर्षा
होने की सूचना मिले । २. मेंढक [को०] ।

तोयांजलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तोयाञ्जलि] दे० 'तोयकर्म' [को०] ।

तोयाग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वाडव अग्नि [को०] ।

तोयात्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोयात्मन्] ब्रह्म [को०] ।

तोयाधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी । तालाव ।

तोयाधिवासिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष ।

तोयालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । सागर [को०] ।

तोयाशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. झील । २. कुम्हाँ कूप । ३. जख-
सग्रह [को०] ।

तोयेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २. शतभिषा नक्षत्र । ३. पूर्वा-
षाढा नक्षत्र ।

तोयोत्सर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्षा [को०] ।

तोर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तुघर] भरहर ।

तोर(७)^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तोड़' । उ०—आदि चहुआण
रजपूती का तोर । पाछे मुसलमान बादशाही का जोर ।—
शिखर०, पृ० ५५ ।

तोर(७)^३—वि० [हि०] दे० 'तेरा' ।

तोर(७)^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० तोर] तोर । तरीका । ढंग । उ०—
तो राखे सिर पर तिको, तज जबरी रा तोर ।—झाँकी०
ग्र०, भा० २, पृ० ११५ ।

तोरई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तुरई' ।

तोरकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के
गरम प्रदेशों और लका में प्रायः घास के साथ होती है ।

विशेष—पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके
दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते थे ।

तोरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी घर या नगर का बाहरी फाटक ।
बहिर्द्वार । विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार
तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो ।
उ०—स्वच्छ सुंदर और विस्तृत घर बने, इद्रधनुषाकार
तोरण हैं तने ।—साकेत, पृ० ३ । २. वे मालाएँ आदि जो

सजावट के लिये खर्चों और दीवारों आदि में बाँधकर लटकवाई जाती हैं। वंदनवार। ३ ग्रीवा। गला। ४ महादेव।

तोरणमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवतिका पुरी।

तोरणस्कटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय दानववाली सभा देखकर ईर्ष्यावश बनवाई थी।

तोरन④—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोरण'।

तोरन तेगा④—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना + तेगा] एक प्रकार का तेगा। उ०—तुरकव के तेगा तोरन तेगा सकल सुवेगा अधिर भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

तोरना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तोड़ना'। उ०—काहे को लगायो सनेहिया रे भव तोरतो न जाय।—पलटू०, पृ० ८२।

तोरय④—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—खुले सुभाय मोरयं, लहो दरस तोरय।—ह० रासो, पृ० १३।

तोरश्रवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोरश्रवस्] भगिरा श्रपि का एक नाम।

तोराँ④—सर्व० [हिं०] दे० 'तोरा'। उ०—नानक बगोयद जी तोराँ तिरा चाकरा पारवाक।—कबीर मं०, पृ० ४११।

तोरा④—सञ्ज्ञा पुं० [फा० तुरह्] तुरा। कलगी।

तोरा④^१—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—अलकाउर मुरि मुरि गा तोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तोराई④—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा + हिं० ई (प्रत्य०)] वेग। धीम्रता। तजी।

तोरादार④—वि० [हिं० तोडा (= प्रायुषण) + फ्रा० दार] तोड़ेदार। मध्ययुग के वे ताजीमी सरदार या मनसबदार, जिन्हें बादशाह सम्मानार्थ पैरो में पहनने के लिये सोने के तोड़े या कड़े प्रदान करता था। श्रेष्ठ। प्रतिष्ठित। उ०—तोरादार सकल विहारें मनसबदार।—भूपण ग्रं०, पृ० २७७।

तोराणा④^१—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तुड़ाना'।

तोरावती④—वि० [हिं०] वेगवाली। उ०—विषम विषाव तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर भवतें भपारा।—तुलसी (शब्द०)।

तोरावान्④^१—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० स्त्री० तोरावती] वेगवान्। तेज।

तोरिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तूरी] गोटा किमारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेलन जिसपर वे बुना हुआ गोटा पट्टा और किमारी आदि बराबर लपेटते जाते हैं।

तोरिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० तोरना (= तोड़ना) + इया (प्रत्य०)] १ वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दूहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो।

तोरिया^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसो। तोरी।

तोरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुर्ई'।

तोरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसो।

तोरी^३—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहँ देस है तोरी।—धरम० ग्रं०, पृ० ६।

तोल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तोला (तोल) जो ८० रत्ती के बराबर होता है। २. तोल। वजन।

तोल^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] नाव का डाँडा। (लघ०)।

तोल④^३—वि० [हिं०] दे० 'तुल्य'। उ०—साने कोने भावे बुरूप बोल मदन पाभोल आपन तोल।—विद्यापति, पृ० १२०।

तोलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तोला (तोल)। बारह माशे का वजन।

तोलन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तोलने की क्रिया। २. उठाने की क्रिया।

तोलन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उत्तोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लड़ी जाती है। चाँड।

तोलना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तोलना'। उ०—तोचन घृण सुमग जोर राग ५ भए भोर भौह धनुष घर कटाल सुरात व्याध तोले रो।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—तोल तोलकर बोलना = दे० 'तोल तोलकर बोलना'।

उ०—मत बक्ता अपनी बातों को तोल तोलकर नहीं बोलता।—शैली, पृ० ४६।

तोलवाना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तोलवाना'।

तोला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोलक] १ एक तोन जो बारह माशे या छानवे रत्ती की होती है। २. इस तोल का घाट।

तोलाना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'तोलाना'।

तोलि④—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोला'। उ०—पच तोलि पच मुहरे सु मानि।—ह० रासो, पृ० ६०।

तोलिवा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोलिया'।

तोली—वि० [हिं० तुलना] तुली हुई। उ०—यह माल कही कुछ बोली। यह हुई श्याम की तोली।—मचना, पृ० ३४।

तोल्य^१—वि० [सं०] जिसे तोला जाय (ज्ञे०)।

तोल्य^२—सञ्ज्ञा पुं० तोलना। तोलने की क्रिया (ज्ञे०)।

तोवालाँ④—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—अग्रध भूप दरसे तोवालाँ भवनी मोहि रूप उद्योत।—रघु० रू० पृ० २४६।

तोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हिमा। २ हिंस करनेवाला। हिंसक।

तोशक—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या खोल में रुई, नारियल की जटा आदि भरकर बनाया हुआ गुदगुदा बिछौना। हलका गद्दा।

यौ०—तोशकखाना।

तोशकखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशकखाना'।

तोशदान—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० तोशदान] १ वह थैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री, विशेषतः सैनिक अपना जलपान आदि या दुमरी आवश्यक चीजें रखते हैं। २. चमड़े का वह छोटा बक्सा या थैली जो सिपाहियों की पेटों में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।

तोशल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोपल'। उ०—विदित है बल वज्र शरीरता विकटता शल तोशल कूट की।—प्रिय०, पृ० ११।

तोशा^१—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० तोषाह्] १. वह खाद्य पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है।

औ०—तोशे प्राकृत = पूर्य। धर्माचरण (त्रिसर्ग परलोक गते)। २ साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।

तोशा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे गाय को स्त्रियाँ बांह पर पहनती हैं।

तोशाखाना—सञ्ज्ञा पुं० [तु० तोपक + क्रा० खानह्] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और धर्मियों के पहनने के बढिया कपड़े और गहने आदि रहते हैं। वहाँ और धार्मिकों आदि का भंडार। उ०—जो राजा अपने वस्त्र या खजाने, तोशे-खाने को कभी नहीं सम्हालते, जो राजा अपने बड़ों की धरोहर शस्त्रविद्या को जड़ मूल से भूल गए, उनके जीवन पर भिन्नकार है।—श्रीनिवास० प्र०, पृ० ८५।

तोष^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मघाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। सतोष। तृप्ति। २. प्रसन्नता। आनंद। ३. भागवत के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर के एक देवता का नाम। ४. श्रीकृष्ण-चंद्र के एक सखा नाम।

तोष^२—वि० [सं० तप] धृत्प। थोड़ा।—(अनेकार्यं)।

तोषक—वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला।

तोषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तृप्ति। 'सतोष'। २. संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

तोषना—क्रि० प्र० [सं० तोष] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—प्रभु तोषेउ सुनि मंकर वचना। भक्ति विवेक धर्म जुत रचना।—मानस, १।७७। २. संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। वस्तिशानामा।

तोषल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे धनुर्जय में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। २. मूसल।

तोषार—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुषार'। उ०—तुषक तोषारहि चनल हाट भमि हेडा मगह।—कीर्ति०, पृ० ४८।

तोषित—वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, मघवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोषी—वि० [सं० तोषिन्] १. जिससे संतुष्ट हुआ जाय। २. संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न करनेवाला। (विशेषतः समासात् में प्रयुक्त)।

तोष—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष'। उ०—सूर घपाए खुज्जड़ा तो डरपावे तोष।—रा० ००, पृ० ७६।

तोषका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषक'। उ०—गुन कर पलंग जान कर तोषक सुरत तकिया लगावो। जो सुख चाहो सोई सतमहल बहुर दुख नहि पावो।—कवीर रा०, भा० १, पृ० १०।

तोषदान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषदान'। उ०—तोषदान चकमक पचहा गोलीन भरानी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३।

तोषय—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोषक'। उ०—गरम रूम तोषयें ठके पलंग पोषयें।—पू० रा०, १७। ५४।

तोषल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तोषल] दे० 'तोषल'।

तोषा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषा'। उ०—कुछ गाँठि खरची मिहर तोषा खेर खुबोहा खीर बे।—रं० बानी, पृ० ३३।

तोषाखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषाखाना'। उ०—तेरे काज गजी गज चारिक, भरा रहै तोषाखाना।—पतवाणी०, पृ० ७।

तोषागार—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० तोष + सं० आगार] दे० 'तोषाखाना'।

तोषौ—सर्व [हिं० तो + सौ] मुझसे। उ०—महं तोसों नद लाहिले भगरीगी। मेरे सग की दूरि जाति हैं मद्रुभी पटक के बग-रौगी।—नद० प्र०, पृ० ३६१।

तोषफणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तोषफ + फा० फी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्बगी।

तोषफा^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तोषफ + सं० आगत] उपायन। भेंट। उपहार।

तोषफा^२—वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोषमत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] मिथ्या अभियोग। बुरा लगाया हुआ दोष। झूठा कलक।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—लगाना।—लेना।

मुहा०—तोषमत का घर या हट्टी = वह कार्य या स्थान जिसमें बुरा कलक लगने की संभावना हो।

तोषमती—वि० [प्र० तोषमत + फा० ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोषरा—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हमह सग सब तोहरे प्रायव।—कवीर सा०, पृ० ५३१।

तोषार—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तोषी—सर्व० [हिं० तू या ते] १. तुझको। तुझे। २. तुम्हारा। उ०—हिव मालवणी वीनवद, हूँ प्रिय दासी तोषी।—ढोला०, दू० ३४१।

तोषे—सर्व० [हिं०] दे० 'तोषी'। उ०—चरण भलि नहि तुष रीति एहि मति तोषे कलक लागल।—विद्यापति, पृ० २३०।

तौ—सर्व० [हिं०] दे० 'तु'। उ०—तौ लौ रहि प्यारी जौ लौ लाल हो ले भाऊँ।—नद० प्र०, पृ० ३७१।

तौ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—ऐसे प्रभु पे कीन हँकारे। तौ तौ बडे गुपाल पिपारे।—नद० प्र०, पृ० १६२।

तौकना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'तौसना'।

तौवर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौमर'। उ०—लोहाया तौवर अभंग मुहर सब सामत।—पू० रा०, ४। १६।

तौसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ऊष्म, हिं० ऊमस, औस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भीति न बुझे।

तौसना—क्रि० प्र० [हिं० तौस] १. गरमी से झुलस जाना। गरमी के कारण सतस होना। २. प्यासा होना। पिपासित होना।

तौसा^१—सं० पुं० [सं० ताप, हिं० ताव + सं० ऊ, म, हिं० ऊमस, औस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

तौ^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'तो' ।

तौ^२—क्रि० प्र० [हि० हतो] या । उ०—वेऊ आए द्वारे हूँ हुती
मगवारे और द्वारे मगवारे कोऊ तौ न तिहि काल में ।—
पद्याकर (शब्द०) ।

तौक—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तौक] १ हंसुली के आकार का गले में पहनने
का एक प्रकार का गहना । यह पटरी की तरह कुछ चौड़ा
होता है और इसके नीचे धुंघरू आदि लगे होते हैं ।

विशेष—प्रायः मुसलमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का
चाँदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें ताबीज आदि
बँधी होती है । कभी कभी यह केवल मन्त्र पुरी करने के
लिये भी पहनाया जाता है ।

२ इसी आकार की पर तौल में बहुत भारी वृत्ताकार पटरी
या मंडरा जिसे अपराधी या पागल के गले में इसलिये पहना
देते हैं जिसमें वह अपने स्थान से हिल न सके ।

३ इसी प्रकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों आदि के गले
में होता है । हंसुली । ४ पट्टा । चपरास । ५ कोई गोल
घेरा या पदार्थ ।

तौकीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तौकीर] समान । प्रतिष्ठा । इज्जत ।
उ०—इस सत्यगुरु की खादिम तौकीर में देखो ।—कबीर
मं०, पृ० ४६७ ।

तौके गुलामी—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तौकेगुलामी] गुलाम होने की
विवेकांतर [को०] ।

तौत्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घनुराणि ।

तौचा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे कहीं कहीं देहाती
स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं ।

तौजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तौजी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि
में खर्च करने के लिये पेशगी दिया जाता है । बियाही ।

तौजा^२—वि० हाथ उधार । दस्तगर्द ।

तौजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] ताजियागोरी । मुहरंम मनाना । उ०—
तौजी और निमाज न जानूँ ना जानूँ धरि रोजा ।—मल्लकं,
पृ० ७ ।

तौतातिक—वि० [सं०] कुमारिल भट्ट से संबंध या संबंध रखनेवाला ।
विशेष—कुमारिल भट्ट का विशेषण तुतात या तुतातित था ।

तौतातिस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जैनियों का भेद । २ कुमारिल भट्ट
का एक नाम ।

तौतिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मुक्ता । मोती । ३ मोती का
सीप । शुक्ति ।

तौन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय
उसका बछड़ा उसके मगले पैर से बाँध दिया जाता है ।

तौना^२—सर्व० [सं० ते] वह । सो । उ०—उनकी छाया सबको भाई ।
तौन छौह सब घटहि समझ ।—कबीर मं०, पृ० ६१० ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का सबंध पूरा करने के
लिये 'जोन' के साथ होता है ।

तौन^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तूण' । उ०—चढ़ि नरिंद कमधज्ज
तौन तन सज्जन वारो ।—पृ० रा०, २६।१६ ।

तौना^१—वि० [हि० ताना] जिससे कोई चीज ताई या मुँदी जाय ।

तौनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तवा का स्त्री० भल्पा० रूप] रोटी सेंकने का
छोटा तवा । तई । तबी ।

तौनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तौन' ।

तौनी^३—सर्व० [हि०] दे० 'तौन' ।

तौफ^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० तौफ] चक्कर । परिक्रमा । उ०—बहुते
तौफ जाय तब बायफ ना देव जाय पंहाड़ समुंदर ।—कबीर
सा०, पृ० ८८८ ।

तौफीक—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तौफीक] १ सयोगात् किसी वस्तु का
सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाना । २. देवकृपा । ईश्वरानुग्रह ।
३ शक्ति । सामर्थ्य । ३ होसला । उमंग । ५ योग्यता ।
पात्रता [को०] ।

तौफीर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० तौफीर] अधिकता । प्रचुरता । उ०—
रख अपने पनह गुनह व तौफीर ।—कबीर मं०, पृ० ४२२ ।

तौवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] दे० 'तोबा' ।

तौरगिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तौरगिक] साईस [को०] ।

तौर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

तौर^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १ चालढाल । चालचलन ।

यौ०—तौर तरीक या तौर तरीका = चाल चलन ।

मुहा०—तौर बेतौर होना = रंग ढग खराब होना । लक्षण
विगडना ।

२ अवस्था । दशा । हालत ।

मुहा०—तौर बेतौर होना = अवस्था विगडना । दशा खराब होना ।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्रायः
बहुवचन में होता है ।

३ तरीका । तर्ज । ढग । ४ प्रकार । भाँति । तरह ।

तौर^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मथानी मथने की रस्सी । नेत्री ।

तौतश्रवस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम (गान) ।

तौरात—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तौरेत' ।

तौरायणिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो तुरायण यज्ञ करता हो ।

तौरि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० तौरि] घुमेर । घुमरी । चक्कर ।

तौरीत—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तौरेत' । उ०—उसका समाचार
तौरीत में उत्पत्ति की पुस्तक में है ।—कबीर मं०, पृ० ४२ ।

तौरुष्किक—वि० [सं०] तुरुष्क देश या जाति संबंधी [को०] ।

तौरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामरूप में प्राप्त एक प्रकार का चंदन [को०] ।

तौरेत—सञ्ज्ञा पुं० [इब०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हज़रत
मूसा पर प्रकट हुआ था । इसमें सृष्टि और आदम की उत्पत्ति
आदि विषय हैं । उ०—जिसमें बनी इसराईल इस नियम पर
चले और इस नियमावली का नाम तौरेत पुस्तक ठहरा ।
—कबीर मं०, पृ० १६७ ।

तौल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल मंजीरा आदि बाजे । २. ढोल मंजीरा आदि बजाना ।

तौलत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम ।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बत-साया है ।

तौल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू । २. तुला राशि ।

तौल^२—संज्ञा स्त्री० १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण । भार का मान । वजन । २. 'गुरुत्व' ।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटांक = १ पाव

१६ छटांक = १ सेर

५ सेर = १ पसेरी

८ पसेरी या ४० सेर = १ मन

इससे मन, सरकारी आदि भारी और अधिक मान में होने-वाली चीजें तौली जाती हैं । हलकी और छोटी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = १ रत्ती

८ रत्ती = १ माशा

१२ माशा = १ तोला

५ तोला = १ छटांक

उप्युक्त तौलों का प्रचलन अब बंद हो गया है । अब तौल दामिक प्रणाली पर चल रही है, जिसमें वजन क्विंटल, किलो ग्राम आदि में किया जाता है । इसमें सबसे अधिक वजन की तौल क्विंटल है और सबसे कम वजन की तौल मिलीग्राम ।

२ तौलने की क्रिया या भाव ।

तौलना—क्रि० सं० [सं० तौलन] १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या काँटे आदि पर रखना । वजन करना । जोखना ।

संयो० क्रि०—भालना ।—देना ।

मुहा०—तौल तौलकर कदम धरना = सावधानी के साथ चलना । इस प्रकार धीरे चलना कि खड़े में एक विशेषता पा जाय । उ०—कुछ नाज व धदा से तौल तौलकर कदम धरती हैं ।—किसाना०, भा० ३, पृ० २११ । किसी का तौलना = किसी की खुशामद करना ।

२ समझ बुझकर व्यवहार करना । ऐसा व्यवहार करना कि किसी प्रकार की गलती न हो ।

मुहा०—तौल तौलकर बोलना = धैर्यव सावधानी के साथ बोलना । ऐसे बोलना कि किसी प्रकार की गलती न हो जाय ।

३ किसी धर्म आदि को चलाने के लिये ह्वाय को इस प्रकार ठीक न करना कि वह धर्म अपने स्वयं पर पहुँच जाय । साधना । उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौंह धनुष सर कटाक्ष सुरति व्याध तौले रो ।—सूर (शब्द०) ।

४—६२

४ दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि का परस्पर तुलना करके विचार करना । तारतम्य जानना । मिलान करना । उ०—गए सब राज केते जग माँह जो बाहु बली बल बोलत है ।—सं० दरिया, पृ० ६३ । ५ गाड़ी का पहिया घोंगना । गाड़ी के पहिए में तेल देना ।

तौलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'तौलाई' ।

तौलवाना^१—क्रि० सं० [हि० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे का तौलने में प्रवृत्त करना । तौलाना ।

तौला—संज्ञा पुं० [हि० तौलना] १. दूध नापने का मिट्टी का बरतन । २. भनाज तौलनेवाला मनुष्य । बया । ३. तँबिया । ४ मिट्टी का कमोरा । ५ महुए की शराब ।

तौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० तौल + लाई (प्रत्य०)] १. तौलने की क्रिया या भाव । २. वह मन जो तौलने के बदले में दिया जाय । तौलने की मजदूरी ।

तौलाना—क्रि० सं० [हि० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना ।

तौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिकिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार ।

तौलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० टावेल] एक विशेष प्रकार का मोटा भोंगोछा जिससे स्नान आदि करने के उपरांत शरीर पोंछते हैं ।

तौली^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का मिट्टी की छोटी प्याली । २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें भनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं ।

तौली^२—संज्ञा पुं० [सं० तौलिन] १. तौलनेवाला । २. तुलाराधि [को०] ।

तौलैया^१—संज्ञा पुं० [हि० तौलना + ऐया (प्रत्य०)] भनाज तौलने-वाला मनुष्य । बया ।

तौलैया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० तौलाई] तौलने का काम ।

तौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन । भार । २. समता । साध्य ।

तौपार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुपार का जल । पाले का पानी । २. हिम । पाला (को०) ।

तौपार^२—वि० [वि० स्त्री० तौपारी] शर्फीला । हिमयुक्त [को०] ।

तौसन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] घोड़ा । घमव । तुरग । उ०—तौसने उमरे खौ दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५० ।

तौसना^१—क्रि० प्र० [हि० तीष] गरमी से बहुत व्याकुल होना । उ०—नाम से बिलास बिलास चकुलाव घति तात तात तौसियत भौसियत झरहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

तौसना^२—क्रि० सं० गरमी पहुँचाकर व्याकुल करना ।

तौहीद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] एकेश्वरवाद । उ०—कहे तौहीद क्या हैं मुँह कही घब ।—दक्खिनी०, पृ० ११६ ।

यौ०—तौहीदपरस्त = एकेश्वरवादी ।

तौहीन—सद्वा स्त्री० [प्र०] अपमान । अप्रतिष्ठा । वेदज्जती ।

यौ०—तौहीने भदालत = न्यायालय का अपमान ।

तौहीनी०—सद्वा स्त्री० [प्र० तौहीन] दे० 'तौहीन' ।

तौहू०—अव्य० [हि० तऊ] तब भी । तो भी । तिसपर भी ।
उ०—पानी माहीं घर करे, तौहू मरे पियास ।—कबीर सा०,
पृ० ५ ।

त्यक्त—वि० [सं०] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो । उ०—निकल गए सारे कटक से व्यथा आप ही त्यक्त हुई ।—साकेत, पृ० ०७६ ।

त्यक्तजीवित—वि० [सं०] १. जो प्राण छोड़ने को तत्पर हो । मरने को तैयार । २. बड़े से बड़ा खतरा उठाने को तैयार [को०] ।

त्यक्तप्राण—वि० [सं०] दे० 'त्यक्तजीवित' [को०] ।

त्यक्तलज्ज—वि० [सं०] जिसने लज्जा त्याग दी हो । निलज्ज ।
देह्या [को०] ।

त्यक्तविधि—वि० [सं०] नियमों का प्रतिक्रमण करनेवाला । नियम न माननेवाला [को०] ।

त्यक्तव्य—वि० [सं०] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्तश्री—वि० [सं०] भाग्यहीन । भ्रमागा [को०] ।

त्यक्ता—वि० [सं०] त्यक्तृ । त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यक्ताग्नि—वि० [सं०] गृहाग्नि का परित्याग करनेवाला (ब्राह्मण) ।

त्यक्तात्मा—वि० [सं०] त्यक्तात्मन् । निराश । हताश [को०] ।

त्यग्नायि—सद्वा पुं० [सं०] त्यग्नायिस् । एक प्रकार का साम ।

त्यजण०—सद्वा पुं० [सं०] त्यजनीय । त्याग । उ०—शब्द स्पर्श रूप त्यजण । त्यो रसगंध नाही भजण ।—सुदर० प्र०,
भा० १, पृ० ३७ ।

त्यजन—सद्वा पुं० [सं०] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय—वि० [सं०] जो त्यागने योग्य हो । त्याज्य ।

त्यज्यमान—वि० [सं०] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यांतिक०—अव्य० [?] तब तब (टीका०) । उ०—पग्यो न दिल प्रभुरे पद पकज, भिसत न त्यांतिक भेरे ।—रघु० ल०,
पृ० १८ ।

त्याँ०—सर्व० [सं० तत्] दे० 'तिस' । उ०—ज्या की जोही वीछड़ी त्या निसि नीद न भाई ।—ढोला०, पृ० ५८ ।

त्याँहा०—सर्व० [सं० तत्] 'तू' सर्वनाम के कर्मकारक का रूप । उ०—चकवीकइ हर पखडी, रयणि न भेलउ त्याह ।—
ढोला०, पृ० ७१ ।

त्या०—प्रत्य० [सं० तत्] से । उ०—किसे दिवाने कहता मेरा जावे तन तू सब त्या न्यारा ।—दक्खिनी०, पृ० ६६ ।

त्याग—सद्वा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा देने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—त्यागपत्र ।

२. किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे प्रसव का त्याग ।

३. संध या लगाव न रखने की क्रिया । ४. विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्याय्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को सन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम्य धर्म का परित्याग तो सन्यास है और कर्मों के फल की प्राप्ति न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की ओर सब चीजें तो त्याज्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याज्य नहीं हैं ।

५. दान । ४. कन्यादान (हिं०) ।

त्यागना—क्रि० सं० [सं० त्याग] छोड़ना । तजना । पुष्क करना । त्याग करना । उ०—ना त्यागने काम ना त्यागले क्रोध ।—प्राण०, पृ० ११५ ।

संयो० क्रि०—देना ।

त्यागपत्र—सद्वा पुं० [सं०] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । २. इस्तीफा । ३. तिलाकनामा ।

त्यागवान्—वि० [सं०] त्यागवत् । [वि० स्त्री० त्यागवती] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी—वि० [सं०] त्यागिन् । जिसने सब कुछ त्याग दिया हो । स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्याजक—वि० [सं०] तजनेवाला । त्यागी [को०] ।

त्याजन—सद्वा पुं० [सं०] त्याग । त्याग करना [को०] ।

त्याजना०—क्रि० सं० [सं०] त्याजन । त्यागना । उ०—प्रति उमग भ्रंग भ्रंग भरे रग, सुकर मुकर निरखत नहि त्याजे ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३८० ।

त्याजित—वि० [सं०] १. जिससे त्याग कराया गया हो या छुड़ाया गया हो । २. जिसका अपमान कराया गया हो । ३. छोड़ा हुआ । त्यक्त [को०] ।

त्याज्य—वि० [सं०] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यारी—वि० [हिं०] दे० 'तैयार' । उ०—एक कटे एक पडे एक कटने को तयार । भड़े रहैं केते सुमन मोता तेरे द्वार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

त्यारी—सद्वा स्त्री० [हिं०] दे० 'तैयारी' । उ०—बाजराज वारण रथा, प्रवर, समाज भर्मा । हाजर तिएवारी हुमा, तयारी करे तमाम ।—रघु० ल०, पृ० ६३ ।

त्यारे०—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—बितीमा के बोलत बोलने रे, तयारे विरत दस मास ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६३३ ।

सुहिज—वि० [हि०] दे० 'त्यो'। उ०—करनहरी खेमकन, बांध गढ़ बात न बोले। वले जग केहरो, सुहिज बोले खग तोले।
—रा० ६०, पृ० १५७।

त्यु—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'।

त्योरसां—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योरस'।

त्यो^१—क्रि० वि० [सं० तत् + एवम् या हि०] १. उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये भलि या बलि के भधरानि में भानि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पदमाकर माधुरी त्यो कुच दोउन की चढ़ती उनई सी। ज्यों कुच त्यों ही नितव चढ़े कछु ज्यों ही नितव त्यो चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहिधौ कटि बीच ही लूटि लई सी।—पदमाकर (शब्द०)।
२. उसी समय। तत्काल। जैसे,—ज्यों में वहाँ पहुँचा त्यों वह उठकर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार 'ज्यों' के साथ सबध पुरा करने के लिये होता है।

त्यो^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० तन] धोर। तरफ। उ०—सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधु सिय सो कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्योरसां—सञ्ज्ञा पुं० [हि० (ति) + वरस] १. पिछला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिससे बीते दो बरस हो चुके हो। जैसे,—हम त्योरस वहाँ गए थे। २. प्राणामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्योरस साल।

त्योरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० त्रिकुटी, सं० त्रिकूट (=चक्र)] भवलोकन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना = दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध झलके। प्राप्ति चढ़ना। त्योरी में बल पड़ना = त्योरी चढ़ना। त्योरी चढ़ाना या बदलना = भौंहें चढ़ाना। प्राँखें चढ़ाना। दृष्टि या प्राकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। त्योरी में बल डालना = त्योरी चढ़ाना।

त्योहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व दिन। जैसे, हिंदुओं के त्योहार—दसहरा, दीवाली, होली आदि, मुसलमानों के त्योहार—इद, शव वरात आदि, ईसाइयों के त्योहार, बड़ा दिन, गुडफ्राइडे आदि।

मुहा०—त्योहार मनाना = पर्व या उत्सव के दिन प्रमोद करना।

त्योहारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० त्योहार + ई० (प्रत्य०)] वह धन जो किसी त्योहार के उपलक्ष में छोटी, लड़कों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

त्यौं—क्रि० वि० [हि०] दे० 'त्यो'।

त्योनार—सञ्ज्ञा पुं० [हि०, (देश०)] १. ढग। तर्ज। उ०—(क) भाए हैं मनुहारि हित धारि प्रपूर यहार। लखि जीके नीके सुख ये पीके त्योनार।—शृ० सत० (शब्द०)। (ख) रहो

गुही वेनी लखें गुहिवे के त्योनार। लागे नीर चुचावने नीठि सुखाए वार।—विहारी (शब्द०)। किसी कार्य को विशेष कुशलता के साथ करने की योग्यता।

त्यौर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योरी'। उ०—(क) द्योसक ते पिय चित चढ़ी कहै चढ़ी है त्योर।—विहारी (शब्द०)। (ख) तेह तरेरो त्योर करि कत करियत दृग लोल। लीक नहीं यह पीक की स्तुति मणि भनक कपोल।—विहारी (शब्द०)।

त्यौराना—क्रि० प्र० [हि० तौर] माया घुमना। सिर में चक्कर घ्राना।

त्योरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योरी'।

त्योरस—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योरस'।

त्योहार—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्योहार'।

त्योहारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्योहारी'।

त्रंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रङ्ग] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चंद्र का राजनगर था।

त्रंवक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—नयी सिर नाग सुमडिय जग, घुरे सुर जोरय त्रंवक संग।—पृ० रा०, २४।२२५।

त्रंवकसखा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बक + सखा] शिव के मित्र। कुवेर। उ०—गुह्यक पति त्रंवक सखा राजराज पुनि सोइ।—प्रनेकार्य०, पृ० २१।

त्रंवकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [राज० त्रवाल] छोटा नगाड़ा। उ०—उभय सहस बाजित। ढोल त्रंवकी सुमत गुर।—पृ० रा०, २५।३२०।

त्रंवक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—कलस बक त्रंवक लोह संकर वर बधौ।—पृ० रा०, २४।४५।

त्रंवागल—सञ्ज्ञा पुं० [राज० त्रवाल] नगाड़ा। उ०—त्रंवागल रिणतूर बिहदौ बाजिया।—रघु० ६०, पृ० ६३।

त्र^१—वि० [सं०] १. तीन। २. रक्षा करनेवाला। रक्षक (समासोंत में प्रयुक्त)।

त्र^२—प्रत्यय एक प्रत्यय जो सप्तमी विभक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है।

त्रइय—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रयी'। उ०—चंद्र ब्रह्म नख मडि त्रइय सुनि श्रवननि धारहि।—पृ० रासो, पृ० ३६।

त्रई—वि० [हि०] दे० 'त्रय'। उ०—मरन काल त्रई लोक में, भ्रमर न दीपे कोय।—कबीर सा०, पृ० ६६२।

त्रकाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकाल'। उ०—साहीं उर असुहावती, राजावाँ रखवाल। जाँ जसराज प्रतपियो, ताँ सुर पूज त्रकाल।—रा० ६०, पृ० १६।

त्रकुटाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट + चल] लंकास्थित त्रिकूट पर्वत। उ०—धिर जोषाणी धेरियो फिर त्रकुटाचल कीस।—रा० ६०, पृ० ५७।

त्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि] दे० 'तीन'। उ०—तकणी री पोसाक त्रण, जीवन मूली जाण।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० २२।

त्रदस^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'त्रिदश' । उ०—सत्रियाँ रा खटतीस कुल, त्रदस कोइ तेतीस ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०५ ।

त्रन^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'तृन' ।

मुहा०—त्रन तोरना = दे० 'तृण तोड़ना' ('तृण' में) । उ०—
तोरि त्रन तरुनिय कहत । घरनि सही तुम भार ।—पृ०
रा०, १८१५४ ।

त्रपित^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्ति' । उ०—उमा त्रपति रुधिरं भई
घनि सूरन भुज दंड ।—पृ० रा०, २५७४४ ।

त्रपत्त^७—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—तन ग्रीध महासद मन
त्रपत्त । पूरिया रहै नित सगतपन्न ।—रा० रु०, पृ० ७४ ।

त्रपनाना^७—वि० [सं० तर्पण] तर्पण । सध्या करनेवाले । उ०—
तौ पंडित आये वेद भुलाये षट्क रमाये त्रपनाये ।—सुंदर०
ग्र०, भा० १, पृ० २३७ ।

त्रप्पवर^७—वि० [सं० त्रपा] लज्जालु । लज्जाशील । उ०—कि करे
न तसकर त्रप्पवर प्रबुध इष्ट सत्ताहु सुमन ।—पृ० रा०,
१०११३३ ।

त्रपा^१—सङ्का स्त्री [सं०] [वि० त्रपमान] १. लज्जा । लाज । शर्म ।
हया । उ०—ह्री लज्जा श्रीका त्रपा सकुच न कर विनु काज ।
पिय प्यारे पे अलिय बलि प्रोषध सात कि लाज ।—नंददास
(शब्द०) । २ छिनाल स्त्री । पुंश्चली ।

यौ०—त्रपारङ्गा = १ छिनाल स्त्री । २ वेश्या । रंडी ।
३ कीर्ति । यश ।

त्रपा^२—वि० लज्जित । शरमिदा । उ०—भवधनु दलि जानकी विवाही
भये विहाल चुपास त्रपा हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रपानिरस्त—वि० [सं०] निलज्ज । घृष्ट [को०] ।

त्रपाहीन—वि० [सं०] निलज्ज । घृष्ट [को०] ।

त्रपारंङ्गा—सङ्का स्त्री [सं० त्रपारण्डा] वेश्या । रंडी [को०] ।

त्रपित—वि० [सं०] १. लज्जित । शरमिदा । २ लज्जालु । लज्जा-
शील [को०] । ३ विनीत । विनम्र [को०] ।

त्रपिष्ठ—वि० [सं०] मत्पत तृप्त । परितृप्त [को०] ।

त्रपु—सङ्का पुं [सं०] १ सीसा । २ राँगा ।

त्रपुकर्कटी—सङ्का स्त्री [सं०] १. खीरा । २ ककड़ी ।

त्रपुटी—सङ्का स्त्री [सं०] छोटी इलायची ।

त्रपुल—सङ्का पुं [सं०] राँगा ।

त्रपुष—सङ्का पुं [सं०] १. राँगा । २ खीरा ।

त्रपुषी—सङ्का स्त्री [सं०] १. ककड़ी । २. खीरा ।

त्रपुस—सङ्का पुं [सं०] १ राँगा । २. ककड़ी ।

त्रपुसी—सङ्का स्त्री [सं०] १. ककड़ी । २ खीरा । ३. बड़ा । इद्रायन ।

त्रप्सा—सङ्का स्त्री [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ ।

त्रप्स्य—सङ्का पुं [सं०] मट्टा [को०] ।

त्रपाट^७—सङ्का पुं [हि०] नगारा । उ०—दलबल सज दुगम चद्रिय
सुत दशरथ तहक तबल पत रुहत त्रपाट ।—रघु० रु०,
पृ० ११११ ।

त्रभंगी^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'त्रिभंगी' । उ०—त्रभंगी छंद पढ़े
बु चंद गुन वहि बंदे गुन सोई ।—पृ० रा०, २४ । २४८ ।

त्रभवण^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—भुवण तबै
रहियो विखै, त्रभवण हदो राब ।—रा० रु०, पृ० ३६१ ।

त्रभुयण^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'त्रिभुवन' । उ०—भालस तज
निज गरज मब, मज त्रभुयण भूपाल ।—बाँकी० ग्रं०, भा०
२, पृ० ४० ।

त्रमाला^७—सङ्का पुं [हि० त्रंवागल] नगाडा । उ०—रिण बलवंता
रूप परमसंता प्रतिपाला । तूफ भुजा हरितणी तहक बाजंत
त्रमाला ।—रघु० रु०, पृ० ४ ।

त्रय^१—वि० [सं०] १ तीन । उ०—महाधोर त्रय ताप न जरई ।—
तुलसी (शब्द०) । २ तीसरा ।

त्रय^७—सङ्का स्त्री [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—त्रय जोरै कर हृष्य
को नील समरि वै राइ ।—पृ० रा० २५ । ७३० ।

त्रयदेव^७—सङ्का पुं [हि०] दे० 'त्रिदेव' । उ०—भब मैं तुम से
कहो चिताई । त्रयदेवन की उत्पति भाई ।—कबीर सा०,
पृ० ८१७ ।

त्रयविसत—वि० [सं० त्रयोविंशति] तेईस । तेईसवाँ । उ०—भब
सुनि त्रयविसत प्रख्याइ । द्विज भव द्विजपतिनिन के भाइ ।
—नंद० ग्रं०, पृ० ३०० ।

त्रयलोकी^७—वि० [हि० त्रिलोकी] त्रिलोकपति । तीनों लोकों के
स्वामी । उ०—रामचंद्र वर्णन करूँ, त्रयलोकी हैं नाथ ।—
कबीर सा०, पृ० ८१३ ।

त्रयी—सङ्का स्त्री [सं०] १ तीन वस्तुओं का समूह । त्रिगुह ।
तीखट । जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश । उ०—(क) वेद
त्रयी भव राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है ।—केशव
(शब्द०) । (ख) किधों सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले
जग चित वित लेन । प्रसूत त्रयी किधों पठई है विधि मग
लोगन सुख देन ।—तुलसी (शब्द०) २ सोमराजी सता ।
३ दुर्गा । ४ वह स्त्री जिसका पति और बच्चे जीवित हों
(को०) । ५ बुद्धि । समझ (को०) ।

त्रयोतनु—सङ्का पुं [सं०] १, सूर्य । २ शिव (को०) ।

त्रयोधर्म—सङ्का पुं [सं०] वैदिक धर्म, जैसे, ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि ।

त्रयीमय—सङ्का पुं [सं०] १. सूर्य । २ परमेश्वर ।

त्रयीमुख—सङ्का पुं [सं०] ब्राह्मण ।

त्रयीविद्या—सङ्का स्त्री [सं० त्रयी + विद्या] ऋग्वेद, यजुर्वेद और
सामवेद ये तीन वेद । उ०—ऊपर की पक्तियों में त्रयीविद्या
अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एव कर्मकांड के सिद्धांतों
की सक्षिप्त विवेचना की गई ।—स० दरिया, (भू०) पृ० ५५ ।

त्रयोदश—वि० [सं०] १ तेरह । २. तेरहवाँ (को०) ।

त्रयोदशी—सङ्का स्त्री [सं०] किसी पक्ष की तेरहवी तिथि । तेरस ।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये
बहुत उपयुक्त है ।

त्रयाख्य—सङ्का पुं [सं०] पद्महर्षे द्वापर के एक व्यास का नाम ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार सोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं० तृप्ति] तृप्तायुक्त । प्यासा ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [?] दे० 'तृप्ति' (तृप्ति) । उ०—प्राक्पक्ष भव प्राधार भर्त के बहुत खिलोना । परिया टमरी प्रतरदान रूपे के सोना ।—सुदन (शब्द०) ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव । इन जीवों के चार प्रकार हैं—(क) द्वीन्द्रिय प्रजाति दो इन्द्रियोंवाले जीव । (ख) त्रीन्द्रिय प्रजाति तीन इन्द्रियोंवाले जीव । (ग) चतुर्न्द्रिय प्रजाति चार इन्द्रियोंवाले जीव और (घ) पंचेन्द्रिय प्रजाति पाँच इन्द्रियोंवाले जीव । २. जंगल । वन । ३. भंगम । ४. प्रसरेणु ।

प्राक्पक्ष—वि० सञ्ज्ञ । जगम [को०] ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय । डर । २. उद्वेग ।

प्राक्पक्ष—क्रि० प्र० [सं० प्राक्पक्ष] भय से काँप उठना । डरना । सोफ खाना । उ०—(क) कष्ट राजत सूरज भवन खरे । अनु सक्षम के अनुराग भरे । चितवत चित्त कुमुदिनी प्रसे । चोर चकोर चिता सो लसे ।—केशव (शब्द०) । (ख) नवल भनगा होय सो मुग्धा केशवदास । खेले बोले बाल विधि हँसे प्रसे सविश्राम ।—केशव (शब्द०) ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की डरकी । तसर ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से भाती हुई धूप में नाचता या घूमता दिखाई देता है । सूक्ष्म कण ।

विशेष—मनु के अनुसार एक प्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैद्यक के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'प्रसरेणु' । उ०—चद चकोर की चाह करे, घनमानंद स्वाति पपीहा को धावे । त्यों प्रसरेणु के ऐन बसे रवि, मोन पे दीन हूँ सागर भावे ।—घनानंद, पृ० ६५ ।

प्राक्पक्ष—क्रि० प्र० [हि० प्राक्पक्ष] डरवाना । घमकाना । भय दिखाना । उ०—(क) सूर प्रयाम बाधे ऊँखल गहि माता डरत न प्रति हि प्रसायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) जाको शिव व्यावत निसि बासर सहसासन जेहि गावे हो । सो हरि राधा बदन चद को नैन चकोर प्रसावे हो ।—सूर (शब्द०) ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं० प्रसृत] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई । प्रसित पर्यो भवनी प्रकुलाई ।—(शब्द०) । २. पीड़ित । सताया हुआ । उ०—सीत प्रसित कहै प्रगति समाना । रोग प्रसित कहै प्रीति जाना ।—गोपाळ (शब्द०) ।

प्राक्पक्ष—क्रि० प्र० [हि० प्राक्पक्ष] भय खाना । डरना । उ०—प्राक्पक्ष सदाई नटनागर गुरु जन ते ।—नट०, पृ० ५८ ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं० प्राक्पक्ष ?] जबरदस्त । उ०—राजा सिंहस दीपरे तोनू दीध प्रसींग ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७२ ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं०] भीर । डरपोक ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं०] १. भयभीत । डरा हुआ । उ०—एक बार मुनिबर कोषिक के तप से सुरपति प्रसृत हुआ ।—सर्कु०, पृ० २ । २. पीड़ित । दुःखित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । ३. चकित । जिसे आश्चर्य हुआ हो ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं०] दे० 'प्रसुर' [को०] ।

प्राक्पक्ष—क्रि० प्र० [सं० प्राक्पक्ष] प्राक्पक्ष करना । प्रसृत होना । उ०—खरे यों लुहान भग्न जुवान । प्रसवत ओरं प्रह्वकेति घोर ।—पू० रा०, ४।३० ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ताटक' । उ०—प्राक्पक्ष की उपमा इतनी । जु कही कवि चद सुरग घनी ।—पू० रा०, २।७६ ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट्कर्मों में से छठा कर्म या साधन । इसमें अनिमेष रूप से किसी विदु पर दृष्टि रखते हैं ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राक्पक्ष] योगियों की एक क्रिया । उ०—रद्र भगनि का प्राक्पक्ष नाम ।—गोरख०, पृ० २४६ ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा । बचाव । हिफाजत । २. रक्षा का साधन । कवच ।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार योगिक ग्रन्थों के मत में होता है । जैसे, पादप्राण, भगप्राण ।

३. प्रायमाण लता ।

प्राक्पक्ष—वि० जिसकी रक्षा की गई हो । रक्षित [को०] ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक ।

प्राक्पक्ष—वि० पुं० [सं० प्राक्पक्ष] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं० प्राक्पक्ष] रक्षा करनेवाला । रक्षक [को०] ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं० प्राक्पक्ष + प्राक्पक्ष] प्राण देनेवाला । रक्षा करनेवाला । प्राणक । प्राता । उ०—दयाशील प्राणदाता के मिलने से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६७ ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण लता ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं०] बचाया हुआ । रक्षित [को०] ।

प्राक्पक्ष—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य । बचाने के लायक ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं० प्राक्पक्ष] रक्षक । बचानेवाला । उ०—तप बस रचै प्रपच विधाता । तप बल विष्णु सकल, भगप्राता ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । उ०—मोक्षप्रदा भव धर्ममय मयुरा मम प्राक्पक्ष ।—गोपाल (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृत में यह प्राक्पक्ष (प्राक्पक्ष) शब्द का बहुवचन रूप है ।

प्राक्पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] रागि का बना हुआ वरतन या और कोई पदार्थ ।

प्रापुप^२—वि० रांगे का बना हुआ [को०] ।

प्रायंती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्रायन्ती] प्रायमाण लता

प्रायन^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्राण' । उ०—ताड़न छेदन प्रायन खेवन बहु विधि कर ले उपाई ।—२० बानी, पृ० १६ ।

प्रायमाण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बनफले की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है ।

विशेष—इसमें बीज बीज में छोटी छोटी ढकियाँ निकलती हैं जिनमें कसेले बीज होते हैं । इन बीजों का व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है ।

पर्या०—मनुजा । भवनी । गिरिजा । देवबाला । बलभद्रा । पालिनी । भयनाशिनी । रक्षिणी ।

प्रायमाण^२—वि० रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

प्रायमाणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायमाण लता ।

प्रायमाणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रायमाण' ।

प्रायवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रायवृत्त] गङ्गीर या गुडिरी नामक साग ।

प्रास—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ डर । भय । उ०—जम की सब प्रास विनास करी मुख ते निज नाम उचारन में ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २८२ । २ तकलीफ । ३. मणि का एक दोष ।

प्रासक—सञ्ज्ञा पुं० १, डरानेवाला । भयभीत करनेवाला । २ निवारक । दूर करनेवाला । उ०—त्रिविध ताप प्रासक तिमुहानी । राम सरूप सिधु समुहानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रासकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भयोत्पादक । प्रासक [को०] ।

प्रासद—वि० [सं०] प्रासकर । दुःखद । उ०—नाटकों में प्रासद (दुःखांत = ट्रेजेडी) और हासद (सुखांत) का भेद किया जाता है ।—स० शास्त्र, पृ० १२६ ।

प्रासदायी—वि० [सं० प्रासदायिन्] भयोत्पादक । डरानेवाला [को०] ।

प्रासदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्रासद+हिं० ई (प्रत्य०)] दुःख से पूर्ण रचना विशेषतः नाटक जो दुःखांत हो ।

प्रासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रासनीय] १. डराने का कार्य । २ डरानेवाला । भय दिखानेवाला ।

प्रासना—क्रि० स० [सं० प्रासन] डराना । भय दिखाना । प्रास देना । उ०—काहे को फलह नाघ्यो दाखण दावरि दाघ्यो कठिन लकुट ले प्रास्यो मेरो भैया ?—सूर (शब्द०) ।

प्रासमान—वि० [सं० प्रास+मान्] प्रस्त । भीत । ड०—जोगी जती भाव जो कोई । सुनतहि प्रासमान भा सोई ।—जायसी प्र०, पृ० ११५ ।

प्रासा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा' । उ०—करहा पाणी खच पित्र प्रासा घणा सहसि ।—ढोला०, दू० ४२६ ।

प्रासिका^७—वि० [सं० प्रासक] प्रास देनेवाली । दुःखद । उ०—दिवंत जोति नासिका । सु गति कीर प्रासिका ।—पृ० रा०, २५ । १४४ ।

प्रासित—वि० [सं०] १ भयभीत । डराया हुआ । २ जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो । प्रस्त ।

प्रासिनी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्रासिन्] डरानेवाली । भयदायिनी ।

उ०—दुर्मंद दुरत धर्म दस्युओं की प्रासिनी निकल, चली जा तू प्रतारण के कर से ।—लहर, पृ० ५८ ।

प्रासी—वि० [सं० प्रासिन्] डरानेवाला । प्रासक [को०] ।

प्राहि—अव्य० [सं०] बचाओ । रक्षा करो । प्राण दो । उ०—दाखण तप जब कियो राजसुत तब काप्यो मुरलोक । प्राहि प्राहि हरि सो सब माप्यो दूर करो सब शोक ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—प्राहि प्राहि करना=दया या भयदान के लिये गिड़-गिड़ाना । दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना । प्राहि मचना=रक्षा के लिये चीख पुकार होना । विपत्ति में पड़े हुए लोगों के मुँह से प्राहि प्राहि की पुकार मचना । प्राहि प्राहि होना=दे० 'प्राहि प्राहि मचना' ।

त्रिबक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक' । उ०—त्रिनयन, त्रिबक, त्रिपुर धरि ईस, उमारति होई ।—नद० ग्रं०, पृ० ६२ ।

त्रिशा—वि० [सं०] तीसवाँ ।

त्रिशात्—वि० [सं०] तीस ।

त्रिशात्पत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोई का फूल । कुमुदिनी ।

त्रिशाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग । किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग । २. एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष में मेष, मियुन, सिंह, तुला, घन और कुम्भ ये छह राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, बृश्चिक, मकर और मीन ये छह राशियाँ सम मानी जाती हैं । त्रिशाश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७ और ५ त्रिशाशों के क्रमशः मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिशाशों के स्वामी ये ही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—मर्यात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं । मर्यात्—प्रत्येक विषम राशि के

१	से	५	त्रिशाश	तक के	अधिपति	—मंगल
६	”	१०	”	”	”	—शनि
११	”	१८	”	”	”	—बृहस्पति
१६	”	२५	”	”	”	—बुध
२६	”	३०	”	”	”	—शुक्र

माने जाते हैं । पर सम राशियों में त्रिशाशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१	”	५	त्रिशाश	तक के	अधिपति	—शुक्र
६	”	१२	”	”	”	—बुध
१३	”	२०	”	”	”	—बृहस्पति
२१	”	२५	”	”	”	—शनि
२६	”	३०	”	”	”	—मंगल

माने जाते हैं । प्रत्येक ग्रह के त्रिशाश में जन्म का मंगल मंगल फल माना जाता है । जैसे—मंगल के त्रिशाश में जन्म

होने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, श्रोणी और अधिमानो प्रादि होना और बुध के त्रिशांश में जन्म होने का फल बहुत भनवान् और सुखी होना माना जाता है ।

त्रि-वि० [सं०] तीन ।

विशेष—इसका व्यवहार योगिक शब्दों में, आरंभ में, होता है । जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिकला आदि ।

त्रि०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिय' । उ०—राजमती तु मोक्षकुमार तो सम त्रि नहीं इणोई ससार ।—वी० रासो, पृ० ४६ ।

त्रिप्रपिरी०—संज्ञा स्त्री० [त्रिप्रसर] प्रोम् । गोरख सप्रदाय का मन्त्र विशेष । उ०—त्रिप्रपिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुट निजपान । गोरख०, पृ० १०२ ।

त्रिकट—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकट] दे० 'त्रिकटक' ।

त्रिकटक^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटक] १. गोखरु । २. त्रिशूल । ३. तिषारा धूर । ४. जवासा । ५. टेंगरा मछली ।

त्रिकटक^२—वि० जिसमें तीन कटि या नोकें हों ।

त्रिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन का समूह । जैसे, त्रिकमय, त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद । २. रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कूट के हड्डियाँ मिलती हैं । ३. कमर । ४. त्रिकला । ५. त्रिमद । ६. त्रिमुहानी । ७. तीन रूप सेकड़े का सूद या लाभ प्रादि (मनु) ।

त्रिक^२—वि० १. तेहरा । त्रिगुना । त्रिविध । २. तीन का रूप लेनेवाला । तीन के समूह में जानेवाला । ६. तीन प्रतिशत । ४. तीसरी बार होनेवाला [को०] ।

त्रिकुट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिकूट पर्वत । २. विष्णु । (विष्णु ने एक बार वाराह का अवतार धारण किया था, इसी से उनका यह नाम पड़ा) । ३. दस दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिकुट^२—वि० जिसे तीन शृंग हों ।

त्रिकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदान वायु जिससे उकार और छीक प्राती है । २. नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिकट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकट' ।

त्रिकटु—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ ।

विशेष—वेचक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खीसी, साँस, कफ, मेह, मेद, श्लीषद और पीनस आदि का नाशक माना है ।

त्रिकटुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकटु' ।

त्रिकत्रप—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकला, त्रिकुटा और त्रिभेद । अर्थात् हड, बहेडा और श्रविला, सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोया, चीता और वायविडंग इन सब का समूह ।

त्रिकर्मा—वि० [सं० त्रिकर्मन्] वह जो पढ़े, पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे । द्विज ।

त्रिकल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन मात्राओं का शब्द । प्लुत । २.

दोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु प्रसार होते हैं । जैसे,—प्रति प्रपात जो सरितवर, जो नृप सेतु करारहि । यदि पिपीलिका परम लघु, विन श्रम पारहि जाहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिकल^२—वि० जिसमें तीन कलाएँ हों ।

त्रिकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] दे० 'तैलग' ।

त्रिकशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग जिसमें कमर की तीनी हड्डियों, पीठ की तीनी हड्डियों और रीढ़ में पीडा उत्पन्न हो जाती है ।

त्रिकस्थान—पुं० [सं० त्रिक + स्थान] दे० 'त्रिक^२' । उ०—वायु गुदा में स्थित होने से त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीडा होती है ।—माघव०, पृ० १३४ ।

त्रिकांड^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकाण्ड] १. अमरकोष का दूसरा नाम । (अमरकोष में तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा) । २. निरुक्त का दूसरा नाम । (निरुक्त में भी तीनों कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा) ।

त्रिकांड^२—वि० जिसमें तीन कांड हों ।

त्रिकांडी^१—वि० [सं० त्रिकाण्डीय] जिसमें तीन कांड हों । तीन कांडोंवाला ।

त्रिकांडी^२—संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद ।

त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कूर्प पर का वह चौखटा जिसमें गराडी लगी होती है । २. कूर्प का ढक्कन (को०) ।

त्रिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

त्रिकार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, अतीस और मोया इन तीनों का समूह ।

त्रिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य । २. तीनों समय—प्रात, मध्याह्न और साय ।

त्रिकालज्ञ^१—संज्ञा पुं० [सं०] भूत, वर्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति । सर्वज्ञ ।

त्रिकालज्ञ^२—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला । उ०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वज्ञ तुम्हारे ।—मानस, १। ६६ ।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों का बातें जानने की शक्ति या भाव ।

त्रिकालदर्शी०—वि० [हि०] दे० 'त्रिकालदर्शी' । उ०—तुम्ह त्रिकालदर्शी मुनिमाया । विस्व वदर जिमि तुम्हरे हाथा ।—मानस, २। १२५ ।

त्रिकालदर्शक^१—वि० [सं०] तीनों कालों को जाननेवाला । त्रिकालज्ञ ।

त्रिकालदर्शक^२—संज्ञा पुं० शृपि ।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव । त्रिकालज्ञता ।

त्रिकालदर्शी^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकालदर्शिन्] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति । त्रिकालज्ञ ।

त्रिकालदर्शी^२—वि० तीनों कालों को बातों की जाननेवाला ।
त्रिकालज्ञ [को०] ।

त्रिकुट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकूट' ।

त्रिकुटा^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकुट] सोठ, मिचं और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह ।

त्रिकुटा^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागी ।—प्राण०, पृ० २ ।

त्रिकुटाअचल^३—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट + अचल] त्रिकूट पर्वत ।
उ०—संपातरा सुख वयण सारा गहर नद गाजे । चित्त चाव त्रिकुटा मचल चढ़िया, कुदवा काजे ।—रघु० क०, पृ० १६२ ।

त्रिकूटिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिकूट] तीन कूट या चोटीवाली ।
उ०—यंत्रों मन्त्रों तंत्रों की थी वह त्रिकूटिनी माया सी ।—साकेत, पृ० ३८८ ।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट चक्र का स्थान । दोनों भीहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान । उ०—पूरन कुमक रेचक करहू । उलट ध्यान त्रिकुटी को धरहू ।—विश्राम- (शब्द०) ।

त्रिकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल ।

त्रिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन शृंगोवाला पर्वत । वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हो । २. वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है । देवीभागवत के अनुसार यह एक पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती हैं । उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु भँकारी । विधि निमित्त दुर्गम प्रति भारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सैषा नमक । ४. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है ।

विशेष—वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है । यहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर तथा गधर्व आदि ऋषि करने पाते हैं । इसकी तीन चोटियाँ हैं । एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिसपर चंद्रमा आश्रय लेते हैं । तीसरी चोटी बरफ से ढकी रहती है और वेद्वयं, इन्द्रनील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है । यही उसकी सबसे ऊँची चोटी है । नास्तिकों और पापियों को यह नहीं दिखलाई देता ।

त्रिकूटलवण—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक [को०] ।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तानिकाँ की एक मेरवी ।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कोई प्राणि चोरने का एक शस्त्र जिसका व्यवहार बालक, बृद्ध, भोर, राजा आदि की मल्लिकिस्ता के लिये होना चाहिए ।

त्रिकुटी^४—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रिधाविरी त्रिकुटी अपीला ब्रह्मकुंड निज पान ।—गोरख०, पृ० १०२ ।

त्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन कोने का क्षेत्र । त्रिभुज का क्षेत्र । क्षेत्र, \triangle \triangleright । २. तीन कोनेवाली कोई वस्तु । ३. तीन कोटियोवाली कोई वस्तु । ४. योनि । भग । ५. कामरूप के भ्रतर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है । ६. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से पाँचवाँ और नवाँ स्थान ।

त्रिकोणक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कोण का पिंड । त्रिकोना पिंड ।

त्रिकोणचंडा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकोण घण्टा] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का तिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से घाघात करके ताल देते हैं । इसका आकार ऐसा है—)

त्रिकोणफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा । पानीफल ।

त्रिकोणभजन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ और नवाँ स्थान । दे० 'त्रिकोण' ।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग, विस्तार आदि की नाप निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं ।

विशेष—आजकल इसके भ्रतर्गत त्रिभुज के प्रतिरिक्त त्रिभुज और त्रिभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं ।

त्रिहार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाहार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारों का समूह ।

त्रिहुर—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना ।

त्रिल—संज्ञा पुं० [सं०] खीरा ।

त्रिस्त्रा^५—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा' ।

त्रिखित^६—वि० [हिं०] दे० 'तृषित' । उ०—त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु विमल वृंदाविपिन भूमिचारी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५४ ।

त्रिगंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगङ्गा] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

त्रिगंधक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगन्धक] दे० 'त्रिजातक' ।

त्रिगंभीर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगम्भीर] वह जिसका सत्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो । लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है ।

त्रिगढ़^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गढ़] ब्रह्मांड । सहस्रार । उ०—कूट भद्र कपट की भ्रष्ट कुँ छाड़ि दे त्रिगढ़ सिर बाय भनहद तूरा ।—राम० धर्म०, पृ० १३७ ।

त्रिगण—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्रिगण' ।

त्रिगत^८—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आजकल पंजाब के जालंधर और काठूआ आदि नगर हैं । २. इस देश का निवासी ।

त्रिगर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री । पुरुषली । वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की इच्छा हो ।

त्रिगर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिगत' ।

त्रिगामी^९—वि० [सं० त्रि + गामिन्] तीन लोकों में बहनेवाली । त्रिपथगा । उ०—त्रिपथी त्रिगामी विराजत गंगा । महा लग्न लोक नर नारि भगा ।—पृ० रा०, १ । १६२ ।

त्रिगुण^१—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, और तम इन तीनों गुणों

का समूह । तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह । दे० 'गुण' ।
उ०—त्रिगुण प्रतीत जैसे, प्रतिबिम्ब मिटि जात ।—सत-
बाणी०, पृ० ११५ ।

त्रिगुण^२—वि० [सं०] १. तीन गुना । त्रिगुना । २. तीन भागोंवाला ।
जिसमें तीन भाग हो (को०) । ३. सत, रज, तम इन तीन
गुणोंवाला (को०) ।

त्रिगुण^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. माया । तत्र में एक
प्रसिद्ध धीज ।

त्रिगुणात्परा—वि० [सं० त्रिगुणात् + परा] त्रिगुणों से परा ।
उ०—इस अग्निदेवता का निवास है त्रिगुणमयी यह निखिल
मृष्टि । पर प्रथम चरम आलोकधाम त्रिनयन की त्रिगुणात्परा
दृष्टि ।—अग्नि०, पृ० ४० ।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त ।
जिसमें तीनों गुण हों । उ०—नारी के नयन ! त्रिगुणात्मक
ये सन्निपात किसको प्रमत्त नहीं करते ।—लहर, पृ० ७१ ।

त्रिगुणित—वि० [सं०] तीन गुना किया हुआ । त्रिगुना किया
हुआ (को०) ।

त्रिगुणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेल का पेड़ ।

विशेष—वेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसी से इसका
यह नाम पड़ा ।

त्रिगुण(५)—वि० [सं० त्रिगुण] सत, रज, तम इन तीन गुणोंवाला ।
उ०—कह्यो पूरन ब्रह्म ध्यावो त्रिगुण मिथ्या भेष ।—पोद्दार
अभि० प्र०, पृ० ३१८ ।

त्रिगूढ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढ] स्त्रियों के वेष में पुरुषों का मूल्य ।

त्रिगूढक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढक] दे० 'त्रिगूढ' ।

त्रिगुण(६)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + गुण] तीन का समुदाय । उ०—
बहु विवेक कल मान ताल मडै त्रिगुण सुर ।—पृ० रा०,
२५ । १५७ ।

त्रिघंटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिघंटा] एक कल्पित नगर जो हिमालय
की चोटी पर अवस्थित माना जाता है । कहते हैं, यहाँ
विद्याधर आदि रहते हैं ।

त्रिघट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रि + घट] स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीन
शरीर । उ०—युगनि युगनि युगनि युगा त्रिघट उघटित
तुरिय उत्तमा ।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० ८३४ ।

त्रिघाई(७)—क्रि० वि० [देश०] त्रिरात्रि । बार बार । उ०—नचै
नद नंदो त्रिघाई त्रिधावे ।—पृ० रा०, २५ । २२४ ।

त्रिघाना(८)—क्रि० प्र० [सं० तृप्त] तृप्त होना । संतुष्ट होना । उ०—
नचै कर बेताल त्रिघाई । नारद नद करै कलकाइ ।—
पृ० रा०, १५ । २१४ ।

त्रिचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] त्रिविनीकुमारों का रथ ।

त्रिचतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिचतुस्] महादेव ।

त्रिचित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपत्याग्नि ।

त्रिजग(९)^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रियंक्] आकाश चलनेवाले जंतु । पशु
तथा कीड़े मकोड़े । त्रियंक् । उ०—(क) त्रिजग देव नर जो

तनु धरजें । तहें तहें राम भजन अनुसरजें ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) यहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर
समेते । अखिल विश्व यह मम उपजाया । सब पर मोरि
चराचर दाया ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिजग^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और
पाताल । उ०—किहि विधि त्रिपयगामिनि त्रिजग पावनि
प्रसिद्ध भई भले ।—पद्माकर (शब्द०) ।

त्रिजगत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये
तीनों लोक (को०) ।

त्रिजगती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों
लोक (को०) ।

त्रिजट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. एक ब्राह्मण का
नाम जिसको वनयात्रा के समय रामचंद्र जी ने बहुत सी गाएँ
दान दी थीं ।

त्रिजटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. विभीषण की बहन जो अशोक-
वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी । २. वेल
का पेड़ ।

त्रिजटी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिजटिन् या त्रिजट] महादेव । शिव ।

त्रिजटी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिजटा' ।

त्रिजङ्ग—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १. कटारी । २. तलवार ।

त्रिजमा(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रियामा' । उ०—तेही त्रिजमा
राय सरेखा । पहिली रात कि मूरत देखा ।—इन्द्रा०, पृ० १० ।

त्रिजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिजातक' ।

त्रिजातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी
(छाल) और तेजपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के
पदार्थों का समूह जिसे त्रिमुगधि भी कहते हैं । यदि इसमें
नागकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे ।

विशेष—वैद्यक में इसे रेचक, रुखा, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुँह
की दुर्गंध दूर करनेवाला, हलका, पित्तवर्धक, दीपक तथा
बायु और विपनाशक माना है ।

त्रिजामा(६)^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि । रजनी । उ०—
(क) युग चारि भए सब रेनि याम । प्रति दुसह विधा तनु
करो काम । यहि ते दयाइ मानो विरचि । सब रेनि त्रिजामा
कीन्ह सचि ।—गुमान (शब्द०) । (ख) छनदा छपा
तमस्विनी तमी तमिश्वा होय । निशित्री सदा विभावरी रात्रि
त्रिजामा सोय ।—नन्ददास (शब्द०) ।

त्रिजीवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ६० अंशों तक
फेले हुए चाप की ज्या ।

त्रिज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक खिंची
हुई रेखा । व्यास की आधी रेखा ।

त्रिङ्गना(७)—क्रि० प्र० [अनु० तङ्गत, राज० तिङ्कणो, हिं०
तङ्कना] दे० 'तङ्कना' । उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिङ्ग,

हिरणी झालइ गाम । तहि दिहारी गोरड़ी, पठतउ झालइ
ग्राम ।—ढोखा०, पृ० २८२ ।

त्रिण०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—मोढ सहस्सौ मस्थये
लक्ष गिणे त्रिणमत्त ।—रा० रू०, पृ० ११५ ।

त्रिणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घनुष ।

त्रिणव—पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष
प्रकार से उसकी (३×६) सत्ताईस धावुलियाँ करते हैं ।

त्रिणाचिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेद के एक विशेष भाग का
नाम । २ उस भाग के अनुयायी । ३ नारायण । ४ अग्नि
(स्त्री०) ।

त्रिणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी ।

विशेष—यह माना जाता है कि पुरुष पति प्राप्त करने के पूर्व
कन्या का संवध सोम, गधर्व और अग्नि से होता है ।

त्रितंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] दे० 'त्रितन्त्री' (स्त्री०) ।

त्रितन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] कच्छपी वीणा की तरह की
प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तीन तार लगे
होते थे ।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानस-
पुत्र माने जाते हैं । २ गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक
जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे ।

विशेष—एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंग्रह करने के
लिये जंगल में गए थे । वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संग्रह किए
हुए पशु छीनकर और इन्हें भकेला छोड़कर घर का रास्ता
लिया । वहाँ एक भेड़िए को देखकर ये डर के मारे दौड़ते
हुए एक गहरे घड़े कुएँ में जा गिरे । वहाँ इन्होंने सोमयाग
प्रारम्भ किया जिसमें देवता लोग भी भा पहुँचे । उन्हीं देवताओं
ने उस कुएँ से इन्हें निकाला । महाभारत में लिखा है कि
सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी ।

त्रितय^१—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म, धर्म और काम इन तीनों का समूह ।

त्रितय^२—वि० जिसके तीन भाग हों । तेहरा (स्त्री०) ।

त्रिताप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताप' ।

त्रितिया०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृतीया' । उ०—त्रितिया सों,
सप्तमी को एक बचन कबिराइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०,
पृ० ५३० ।

त्रितीय०—वि० [हि०] दे० 'तृतीय' । उ०—त्रितीया कीया बाय
सधेज ।—प्राण०, पृ० ३६ ।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्ड] १ सन्यास आश्रम का चिह्न,
बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ
बंधी होती हैं । २ मन, वचन और कर्म का समय (स्त्री०) ।
३ दे० 'त्रिदंडी' (स्त्री०) ।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्डन्] १ मन, वचन और कर्म तीनों को
दमन करने या वश में रखनेवाला व्यक्ति । २ सन्यासी ।
परिव्राजक । २ यज्ञोपवीत । जनेऊ ।

त्रिदक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का दक्ष ।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी । हंसपदी ।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धूहर जिसे चर्मकला
या सातला कहते हैं ।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता । उ०—(क) कदपं दपं दुगंम दवन
उमारवन गुन भवन हर । तुलसीस त्रिलोचन त्रिगुन पर त्रिपुर
मथन जय त्रिदशवर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) निरक्षत
वरक्षत कुसुम त्रिदश जन सूर सुमति मन फून —सूर
(शब्द०) । २ जीव ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु बृहस्पति ।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] वीरवहूटी नाम का कीड़ा ।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा । प्राकाशगंगा ।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशपुङ्गव] विष्णु (स्त्री०) ।

त्रिदशपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] लोण ।

त्रिदशमजरो—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिदशमञ्जरी] तुलसी ।

त्रिदशवधू, त्रिदशवतिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा ।

त्रिदशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशवर्त्मन्] प्राकाश (स्त्री०) ।

त्रिदशश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ ब्रह्म (स्त्री०) ।

त्रिदशसर्पप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों । देवसर्पप ।

त्रिदशांकुश—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशाङ्कुश] वज्र ।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिदशायन' ।

त्रिदशायन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिदशायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

त्रिदशारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग । २ सुमेरु पर्वत ।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत ।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा ।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकपा । सातला ।

त्रिदिनस्पृश—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स्पर्श
करती हो । अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत अंश तीन दिनों में
पड़ता हो ।

विशेष—ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई
शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ।

त्रिदिव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग । उ०—अनुज । रहना उचित
तुमको यहाँ है, यहाँ जो है त्रिदिव में भी नहीं है ।—साकेत,
पृ० ६५ । २ प्राकाश । ३ सुख ।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र । २ देवता (स्त्री०) ।

त्रिदिवि०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिदिव' । उ०—स्वर्ग, नाक,
स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।—नद० ग्रं०
पृ० १०८ ।

त्रिदिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता । २. इंद्र (स्त्री०) ।

त्रिविबोद्धा—सखा स्त्री० [सं०] १ बड़ी इनायची । २. गंगा ।
 त्रिविबोका—सखा पुं० [सं० त्रिविबोकस्] देवता [को०] ।
 त्रिदश—सखा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 त्रिदेव—सखा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ।
 त्रिदोष—सखा पुं० [सं०] १. वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष ।
 २. 'दोष' । उ०—गदस्यु त्रिदोष ज्यों दूरि करे वर । त्रिदोष
 सिर त्यों रघुनंदन के घर ।—केशव (शब्द०) । २. वात,
 पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात । उ०—यौवन ज्वर
 जुवती कुपत्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाप ।—तुलसी
 (शब्द०) ।
 त्रिदोषज^१—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात, पित्त और कफ से
 उत्पन्न ।
 त्रिदोषज^२—सखा पुं० [सं०] सन्निपात रोग ।
 त्रिदोषजा—वि० स्त्री० [सं०] २० 'त्रिदोषज' । उ०—पूर्वोक्त त्रिदो-
 पजा अश्वमेधी विशेष करके बालकों के होती है ।—माधव०,
 पु० १८० ।
 त्रिदोषना^१—क्रि० म० [सं० त्रिदोष] १. तीनों दोषों के कोप
 में पड़ना । उ०—कुलहि लजावें बाल बालिस वजावें गाल
 कैषों कर काल वरा तमकि त्रिदोषे है ।—तुलसी (शब्द०) ।
 २. काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना । उ०—(क)
 कालि की बात बालि की सुधि करी समुक्ति हिताहित खोधि
 भरोखे । कसो कुरोघित को न मानिए वड़ी हानि जिय जानि
 त्रिदोषे ।—तुलसी (शब्द०) ।
 त्रिवनी—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी ।
 त्रिधन्वा—सखा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक
 पुत्र का नाम ।
 त्रिधर्मा—सखा पुं० [सं० त्रिधर्मन्] महादेव । शिव ।
 त्रिधा^१—क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से । तीन प्रकार से ।
 त्रिधा^२—वि० [सं०] तीन तरह का ।
 यौ०—त्रिधारव = तीन प्रकारकता । तीन प्रकार का होना ।
 त्रिधातु—सखा पुं० [सं०] १ गणेश । २ सोना, चाँदी और ताँबा ।
 त्रिधाम—सखा पुं० [सं० त्रिधामन्] १ विष्णु । २ शिव । ३. अग्नि ।
 ४ मृत्यु । ५ स्वर्ग । ६ व्यास मुनि (को०) ।
 त्रिधामूर्ति—सखा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु,
 और महेश तीनों हैं ।
 त्रिवारक—सखा पुं० [सं०] १. बड़ा नागरमोथा । गुँदला । २ कसेरू
 का पेड़ ।
 त्रिधारा—सखा स्त्री० [सं०] १ तीन धारावाला सेतु । २. स्वर्ग,
 मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा ।
 त्रिधाविशेष—सखा पुं० [सं०] सायक के अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज
 और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर ।
 त्रिधासर्ग—सखा पुं० [सं०] देव, तिर्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग
 जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।
 त्रिधोप—दे० 'सर्ग' ।

त्रिन^१—सखा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पदतल इन कहँ बलहु
 कीट त्रिन सरिस जवनचय ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १,
 पृ० ५४० ।
 त्रिनयन^१—सखा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।
 त्रिनयन^२—वि० जिसकी तीन आँखें हों । तीन नेत्रोंवाला ।
 त्रिनयना—सखा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।
 त्रिनवत—वि० [सं०] तिरानवेवाँ [को०] ।
 त्रिनवति—वि०, स्त्री० [सं०] तिरानवे । नव्वे और तीन [को०] ।
 त्रिनाभ—सखा पुं० [सं०] विष्णु ।
 त्रिनेत्र—सखा पुं० [सं०] १ महादेव । शिव । २. सोना । चरुण ।
 त्रिनेत्रचूडामणि—सखा पुं० [सं० त्रिनेत्रचूडामणि] चंद्रमा [को०] ।
 त्रिनेत्ररस—सखा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।
 विशेष—यक्ष षोडशे हुए पारे, गंधक और फूँके हुए तबि को
 बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार
 किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है ।
 त्रिनेत्रा—सखा स्त्री० [सं०] बाराहीकंद ।
 त्रिनैत^१—वि० [सं० त्रिपंक् + नेत्र] त्रिपंक् नेत्रवाला । उ०—चट्यो
 भोजराज पहार त्रिनैत ।—पु० रा०, २५ । २१८ ।
 त्रिनैत^२—सखा पुं० [हि०] दे० 'त्रिनयन' । उ०—सरि सरि नैन त्रिनैत
 मनावे । प्रोढ़ा विप्रलब्ध सु कहवै ।—नद० ग्रं०, पु० १५४ ।
 त्रिन्न^१—सखा पुं० [हि०] दे० 'तृण' । उ०—पेट काज तय, तुंग ।
 त्रिन्न परि घर पर डारें ।—पु० रा०, १ । ७६४ ।
 त्रिपंखो^१—सखा पुं० [हि०] एक प्रकार का ढिगल गीत । उ०—मद
 सुकवि हण भेल, गीत त्रिपंखो गुण इणा ।—रघु० ६०,
 पु० १६० ।
 त्रिपंच—वि० [सं० त्रिपञ्च] त्रिगुणा पाँच अर्थात् पद्म [को०] ।
 त्रिपंचार्श—वि० [सं० त्रिपञ्चाश] त्रिरपनवाँ [को०] ।
 त्रिपटु—सखा पुं० [सं०] १ काँच । शीशा । २ ललाट की तीन भाड़ी
 रेखाएँ या बल [को०] ।
 त्रिपत—वि० [हि०] दे० 'तृप्त' । उ०—बरगाँ राल बरमाल सूर
 वरें । त्रिपत पखाल पिल खुल ठाला ।—रघु० ६०, पु० २० ।
 त्रिपताक—सखा पुं० [सं०] १ वह माथा या ललाट जिसमें तीन बल
 पड़े हों । २ हाथ की एक मुद्रा जिनमें तीन उँगलियाँ फैली
 हों [को०] ।
 त्रिपति^१—वि० [सं० तृप्त > त्रिपति त्रिपति] दे० 'तृप्त' । उ०—
 त्रिय त्रिधाइ पुरन भए त्रिपति उमापति मुड ।—पु०
 रा०, २५ । ७४४ ।
 त्रिपति^२—सखा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—न हिय राज
 कह छिन त्रिपति ।—पु० रा०, १ । ४८४ ।
 त्रिपत्र—सखा पुं० [सं०] १ बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन
 तीन लगे होते हैं । २ पलाश का पेड़ [को०] ।
 त्रिपत्रक—सखा पुं० [सं०] १ पलाश का पुष्प । ढाक का पेड़ । २.
 तुलसी, कुंद और बेल के पत्ते का समूह ।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरहर का पेड़। २. तिपतिया घास।
त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कर्मठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहायगो रामदुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)। २. तीनों लोकों (भाकाश, पाताल और मर्त्य लोक) के मार्ग (को०)। ३. वह स्थान जहाँ तीन पथ मिलते हैं। तिराहा (को०)।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—मानो मूल भाषा त्रिपथगा की तीन धारा हो बही।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७०।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में गंगा बहती है, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'त्रिपथगा'। उ०—पथ देख रही तरंगिणी, त्रिपथा सी वह सग रंगिणी।—साकेत, पृ० ३६३। २. मयुरा (को०)।

त्रिपद^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपद] १. तिपाई। २. त्रिभुज। ३. वह जिसके तीन पद या चरण हो। ४. यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी। ५. विष्णु (को०)। ६. जयर (को०)।

त्रिपद^२—वि० [सं० त्रिपद] १. तीन पैरोंवाला। २. तीन पाएवाला। ३. तीन चरणवाला। ४. तीन पदों का (शब्दसमूह) (को०)।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री।

विशेष—गायत्री में केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

२. हसपदी। लाल रंग का लज्जू।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई की तरह का पीतल प्लादि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। २. तिपाई। ३. सकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हसपदी। २. तिपाई। ३. हाथी की पलान बाँधने का रस्सा। ४. गायत्री। ५. तिपाई के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा। ६. गोघापदी लता (को०)।

त्रिपन्त—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दस घोड़ों में से एक।

त्रिपरिक्लात^१—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपरिक्लात] १. वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पड़े पढ़ावे और दान दे। २. वह व्यक्ति जिसने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया हो (को०)।

त्रिपरिक्लात^२—वि० जो हवन की परिष्कार करे (को०)।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़। किशुक वृक्ष।

त्रिपर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी। २. बनकपास। ३. एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का धुप जिसका कद मोषध में काम आता है। २. शालपर्णी। ३. बनकपास।

त्रिपर्ण^७—संज्ञा पुं० [?] त्रिविध प्राणायाम रेचक, पूरक, कुंभक।

उ०—ताड़ी लागी त्रिपल पलटिये छूटे होई पसारी।—कबीर ग्र०, पृ० २२८।

त्रिपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोच (को०)।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठिन] १. तीन वेदों का जाननेवाला पुरुष। त्रिवेदी। २. ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। वस्त्र। छाल।

त्रिपात्, त्रिपात—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपाद' (को०)।

त्रिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। बुखार। २. परमेज्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई। २. हसपदी लता। लाल रंग का लज्जालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपिण्ड] पार्वण श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रंथ मानते हैं।

विशेष—यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है।

इनके नाम ये हैं—सूत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक।

सूत्रपिटक में बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने भिन्न भिन्न घटनाओं और अवसरों पर किए थे।

विनयपिटक में भिक्षुओं और श्रावकों आदि के आचार के सवध की बातें हैं। अभिधर्मपिटक में चित्त, चैतिक धर्म और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधर्म बौद्ध दर्शन का मूल है।

यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए, तथापि आजकल मध्ययमान का संस्करण नहीं मिलता।

हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा में है और वरमा, स्याम तथा लका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के सवध का अभिधर्म से पुष्कट कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, घासाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों में है।

इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सोत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभाषिक कहते हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ अंश नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अबतक मिलते हैं। पहले पहल महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरांत उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महाराज अशोक ने अपने समय में उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। द्वैतयान-

वाले प्रपना संस्करण इसी को बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायानवाले प्रपना कहते हैं। हीनयान और महामान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनों किसी प्रय की छाया हैं जो प्रब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन शिव, ब्रह्मा, वरुण और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना^१—क्रि० प्र० [सं० तृप्ति + आना (प्रत्य०)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। श्रद्धा जाना। उ०—(क) कैसे तृप्तावत जल भ्रंजवत वह तो पुनि ठहरात। यह मातुर छवि ले उर धारत नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर (शब्द०)। (ख) जे पटरस मुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सूर सुनो लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर (शब्द०)।

त्रिपिताना^२—क्रि० स० तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह खसी, पानी पीने के समय जिसके दोनों कान पानी से छू जाते हो। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुंड्र] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शीव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। स०—गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुण्ड्र विराजा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुण्ड्र] त्रिपुंड्र।

त्रिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोखरू का पेड़। २. मटर। ३. खेसारी। ४. तोर। ५. ताला। ६. एक हाथ की लवाई (को०)। ७. किनारा। तट (को०)। ८. वाण (को०)। ९. छोटी या बड़ी एला या इलायची (को०)। १०. मल्लिका (को०)। ११. एक प्रकार का फोडा (को०)। १२. ताल। तलेया (को०)।

त्रिपुट^२—वि० [सं०] त्रिभुजाकार (को०)।

त्रिपुटक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी। २. फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटक^२—वि० त्रिकोना या त्रिभुजाकार (फोडा)।

त्रिपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेल का पेड़। २. छोटी इलायची। ३. बड़ी इलायची। ४. निसोय। ५. कनफोडा वेल। ६. मोतिया। ७. त्रिको की एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी गई है।

त्रिपुटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निसोय। २. छोटी इलायची। ३. तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, व्याप्ता, ध्येय और ध्यान; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ०—ज्ञाता, ज्ञेय अथ ज्ञान जो ध्याता, ध्येय अथ ध्यान। द्रष्टा, दृश्य अथ दारण जो त्रिपुटी शब्दाभान।—कबीर (शब्द०)।

त्रिपुटी^२—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुटिन्] १. रेंड का पेड़। २. खेसारी।

त्रिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाणासुर का एक नाम। २. तीनों लोक। ३. चंदेरी नगर।—(डि०)। ४. महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनों दैत्यों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे।

विशेष—इनमें से एक नगर सोने का और स्वर्ण में था, दूसरा

भतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव जी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों राक्षसों को मार डाला।

त्रिपुरआराति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] कामारि। महादेव।

त्रिपुरआराती^७—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] दे० 'त्रिपुर आराति'। उ०—जदपि सती पूछा बहु भाती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।—मानस, १।५७।

त्रिपुरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदाहक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + दाहक] दे० 'त्रिपुरदहन'। उ०—त्रिपुरदाहक शिव भद्रवट पर था।—प्रा० भा० स०, पृ० १०८।

त्रिपुरभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग में दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—काली भिचं ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और शुद्ध सीनी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीबू के रस में फिर पाँच दिन तक मदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोखियाँ बना लेते हैं। यह गोखी मदरक के रस के साथ दी जाती है।

त्रिपुरभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरहर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (को०)।

त्रिपुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुरसुन्दरी] दुर्गा (को०)।

त्रिपुरांतक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुरान्तक] शिव। महादेव।

त्रिपुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, ताँबे, गंधक, लोहे, अभ्रक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरारी^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिपुरारि'। उ०—मुनि सन विदा मांगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दक्षकुमारी।—मानस, १।४८।

त्रिपुरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरुष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता, पितामह और प्रपितामह। २. सपत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियों अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुरुष^२—वि० जिसकी लंबाई उतनी हो जितनी तीन पुरुषों के मिलने पर होती है (को०)।

त्रिपुप—संज्ञा पुं० [सं०] १ ककड़ी । २. खीरा । ३. गेहूँ ।

त्रिपुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला निक्षोप ।

त्रिपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराकाशगुनी, पूर्वभाद्रपद और विष्णुवा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन त्रिविधों में से किसी एक नक्षत्र एक बार और एक त्रिविध एक साथ पड़ने से होता है ।

विशेष—इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो मादमी और मरते हैं और उससे सवधियों को मनेक प्रकार के कष्ट होते हैं । इसमें यदि कोई हानि हो तो बेगी हो हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो बेगा हो लाभ और दो बार होता है । बासक के जन्म के लिये यह योग जारज योग समझा जाता है ।

त्रिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'त्रिपूरुष' [खे०] ।

त्रिपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव ।

त्रिपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'त्रिपूरुष' ।

त्रिपौलिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'त्रिपौलिया' ।

त्रिप्तु—वि० [हि०] २० 'तृप्त' । उ०—गुप्त गुप्त तन निप्त भई ।—केशव० घमो०, पृ० १० ।

त्रिप्तासना—वि० सं० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—प्रचित्त नामु भोजन त्रिप्तासे । गुर के चरि कपन पर गासे ।—प्राण०, पृ० १८२ ।

त्रिप्ररन—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में विष्ठा, देव और काल सवधी प्ररन ।

त्रिप्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं०] यह हाथी त्रिषके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो ।

त्रिप्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम त्रिषका उत्प्लेख वैदिक प्रयोगों में आया है ।

त्रिफला—संज्ञा पुं० [सं०] १ धौले, हड़ और बहेरे का समूह ।

विशेष—यह फलों के लिये हितकारक, घमिदीपक, दधिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और विषमज्वर का नाशक माना जाता है । इससे वैद्यक में मनेक प्रकार के घृत यदि बनाए जाते हैं ।

पर्या०—त्रिफली । फलत्रय । फलत्रिक ।

२. वह जूएँ जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है ।

विशेष—यह जूएँ बनाते समय एक भाग हड़, दो भाग बहेरा और तीन भाग धौला लिया जाता है ।

त्रिवंक^१—वि० [सं० त्रि + हि० वंक] तीन जगह से टेढ़ा । उ०—बंक दासी संग बैठि चितह त्रिवंक भो ।—नट०, पृ० ३६ ।

त्रिवंक^२—संज्ञा स्त्री० तीन जगह से टेढ़ी, कुन्ना । उ०—हम सूधी को टेढ़ी गनी गनिका या त्रिवंक को धक धरी सो धरी ।—नट०, पृ० ३१ ।

त्रिबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'त्रिबली' ।

त्रिबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे तीन बल जो पद पर पड़ते हैं । इन बलों को गणना धौर्वर्ग में होती है । उ०—त्रिबली वा पदं ललित, गोम रात्री मर मोहे ।—६० रागी, पृ० २४ । २. मिथुली (खे०) ।

त्रिबलीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाग । २ ममदार । पुत्र ।

त्रियाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कट के एक घुवरा का नाम । २. तमसार का एक दाय ।

त्रिविद्रि—वि० [हि०] २० 'त्रिविध' । उ०—यह बहूविद्रि त्रिविद्रि समीर ।—६० रागी, पृ० २४ ।

त्रिविध—वि० [हि०] २० 'त्रिविध' । उ०—दरसन प्रथम पान त्रिविध त्रय त्रिभुवन ।—भारद्वाज्य०, भा० १, पृ० २८२ ।

त्रिचीज—संज्ञा पुं० [सं०] तीनों [खे०] ।

त्रिचीली—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'त्रिचीली' । उ०—उत्तु त्रिचीली पुत्रे दुषाक ।—प्राण०, पृ० १११ ।

त्रिचैनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'त्रिचैनी' ।

त्रिभंग^१—वि० [सं० त्रिभंग] तीन अवस्था से टड़ा । तीन मोड़ अवस्था में पड़ने का । उ०—देख को त्रिभंग तन हो मुन सनह । गयी त्रिभंग तनु स्थान को कुटिन न बने दह ।—पद्याकर (सन्द०) ।

त्रिभंग^२—संज्ञा पुं० धड़े होन को एक मुड़ा त्रिभंग पद कनर और गरदा में कुछ टेढ़ापन रहता है ।

विशेष—प्रायः योद्धाएँ क प्रथम न इस प्रकार मड़े टूटकर बने बजाने की भावना को प्राप्ती है ।

त्रिभंगी^१—वि० [सं० त्रिभंगी] तीन अवस्था से टड़ा । तीन मोड़ का । त्रिभंग । उ०—करी कुबल रंग कुटिनता, तनी न तीन दयाल । दुभी होशुन सनह दिन बसत त्रिभंगी तान ।—बिहारी (सन्द०) ।

त्रिभंगी^२—संज्ञा पुं० १. धान के साठ मुक्य बढ़ा न स एक नद त्रिभंग एक मुक, एक मनु और एक मनु मास होती है । २. मुज राग का एक भेद । ३. एक मासिक पद त्रिभंगे त्रय राग में ३२ मास होती है और १०, ८, ८, ८, मासों पर पड़ती है । जैसे,—दरमद पद पावन, लोक नयारन, प्रगट भई तन पुत्र मही । ४. गणारमक शब्द का भेद त्रिभंगे त्रयक परण में ६ गणण, २ तगण, मगण नगण, मगण और घन में एक मुक होता है पर्याय त्रयक परण में ३० मसर होते हैं । जैसे,—मयन जसद तनु सजत त्रिभंग तनु यम नण रवी भनकों है उमगो है बुद मनो है । गुर मुग मटननि फिरि जटननि पनियिप नेन जो है हरणो है त्रिभंग मोहे । ५. २० 'त्रिभंग' ।

त्रिभंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभंडी] त्रिभंड ।

त्रिभ^१—वि० [सं०] तीन नक्षत्रों में युक्त । त्रिभं तीन नक्षत्र हों ।

त्रिभ^२—संज्ञा पुं० चंद्रमा के हिसाब से देखती, प्रविनी और भरणी नक्षत्रयुक्त मासिक, सत्रमिया, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद

नक्षत्रयुक्त भाद्रमास, और पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास ।

त्रिमगु—वि० [हि०] दे० 'त्रिमग' । उ०—मुरली सुर नट वाद त्रिमग उर प्रायत कंबी ।—पृ० रा०, २ । ४२६ ।

त्रिमजीया—सद्या स्त्री० [सं०] व्यास की माधी रेखा । त्रिज्या ।

त्रिमज्या—सद्या स्त्री० [सं०] त्रिमजीया । त्रिज्या ।

त्रिभु—सद्या स्त्री० [सं०] सहवास । स्त्रीप्रसंग [को०] ।

त्रिभुवन—सद्या पुं० [सं०] त्रिभुवन । दे० 'त्रिभुवन' । उ०—कर्म पुत तें बली नाहि त्रिभुवन में कोई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।

त्रिभुक्ति—सद्या पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश ।

त्रिभुज—सद्या पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र । यह घरातल जो तीन भुजाओं या रेखाओं से घिरा हो । जैसे, \triangle \triangleright ।

त्रिभुवन—सद्या पुं० [सं०] तीन लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ।

त्रिभुवनगुरु—सद्या पुं० [सं०] शिव । उ०—तुम्ह त्रिभुवनगुरु वेद बखाना । भान जीवन पविर का जाना ।—मानस, १ ।

त्रिभुवननाथ—सद्या पुं० [सं०] त्रिभुवन + नाथ । जगदीश । परमेश्वर । उ०—त्यों भव त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सहस्रत ।—केशव (शब्द०) ।

त्रिभुवनराइ—सद्या पुं० [सं०] त्रिभुवन + राज । तीन लोकों का स्वामी ।

त्रिभुवनराई—सद्या पुं० [सं०] त्रिभुवनराज । तीन लोकों का स्वामी । उ०—हम तीनों हैं त्रिभुवन राई ।—कबीर सा०, पृ० ५५३ ।

त्रिभुवनसुदरी—सद्या स्त्री० [सं०] त्रिभुवनसुन्दरी । १. दुर्गा । २. पार्वती ।

त्रिभूम—सद्या पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान । तिमहला घर ।

त्रिभोजन—सद्या पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त पर पडनेवाले क्रांतिकृत्त का ऊपरी मध्य भाग ।

त्रिमंडला—सद्या स्त्री० [सं०] त्रिमण्डला] एक प्रकार की जहरोली मकड़ी ।

त्रिमद—सद्या स्त्री० [सं०] १. मोथा, चौटा और बायविडंग इन तीनों चीजों का समूह । २. परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अभिमान ।

त्रिमधु—सद्या पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक अंग का नाम । २. वह व्यक्ति जो विषिपूर्वक उक्त अंग पढ़े । ३. ऋग्वेद का एक यज्ञ । ४. घी, घहद और चीनी इन तीनों का समूह ।

त्रिमधुर—सद्या पुं० [सं०] दे० 'त्रिमधु' ।

त्रिमात—वि० [सं०] दे० 'त्रिमात्रिक' ।

त्रिमात—वि० [सं०] त्रिमात्रिक [को०] ।

त्रिमात्रिक—वि० [सं०] तीन मात्राओं का । तीन मात्राओंवाला । जिसमें तीन मात्राएँ हों । प्लुत ।

त्रिमार्गा—सद्या स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गामिनी—सद्या स्त्री० [सं०] गंगा ।

त्रिमार्गा—सद्या स्त्री० [सं०] १. गंगा । २. त्रिमुहानी ।

त्रिमंड—सद्या पुं० [सं०] त्रिमण्ड [१. त्रिधारा राक्षस । २. ज्वर । बुखार ।

त्रिमुकुट—सद्या पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों । त्रिकुट ।

त्रिमुख—सद्या पुं० [सं०] १. शाक्यमुनि । २. गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा ।

त्रिमुखा—सद्या स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमुखी' ।

त्रिमुखी—सद्या स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी ।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं ।

त्रिमुनि—सद्या पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि ।

त्रिमुहानी—सद्या स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिमुहानी' ।

त्रिमूर्ति—सद्या पुं० [सं०] १. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता । २. सूर्य ।

त्रिमूर्ति—सद्या स्त्री० [सं०] १. ब्रह्म की एक शक्ति । २. बौद्धों की एक देवी ।

त्रिमृत—सद्या पुं० [सं०] निःशेष ।

त्रिमृता—सद्या स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमृत' ।

त्रियंगु—वि० [सं०] त्रि + अङ्ग । तीन रूप का । तीन तरह का । उ०—तहाँ बिट्टिय दति ऊमत्त मत्त । तहाँ छत्र रंग त्रियंगे ढरत ।—पृ० रा०, १६।१४६ ।

त्रिय—सद्या स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—एहि कर नामु सुमिरि ससारा । त्रिय चडिहहि पतिव्रत असिधारा ।—मानस, १।६७।

त्रियङ्गो—वि० [हि०] दे० 'त्रिदङ्गी' । उ०—एक डङ्गी बुडङ्गी त्रियङ्गो भगवान हूवा ।—गोरख०, पृ० १३२ ।

त्रियलोक—सद्या पुं० [हि०] दे० 'त्रिलोक' । उ०—एक सतगुरु सूर सम तिमिर हरे त्रियलोक ।—रज्जव०, पृ० १६ ।

त्रियव—सद्या पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जी के बराबर या एक रत्ती के लगभग होता है ।

त्रियष्टि—सद्या पुं० [सं०] पितृपापड़ा । शाहसरा ।

त्रियन—वि० [हि०] दे० 'तीन' । उ०—त्रियन बरस त्रिय मास दिन त्रिय घटी पल उन्न ।—पृ० रा०, २३।१३१ ।

त्रिया—सद्या स्त्री० [सं०] स्त्री ।

यौ०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नहीं समझ सकते ।

त्रियाइ—सद्या स्त्री० [हि०] दे० 'त्रिया' । उ०—जलघर विन यों मेदिनी । ज्यों पतिहीन त्रियाइ ।—पृ० रा०, २५।४४।

त्रियाजीत—वि० [हि०] त्रिया + जीत । स्त्री के वश में न आनेवाला । उ०—त्रियाजीत ते पुरिषागता मिलि भानंत ते पुरिषागता । गोरख०, पृ० ७६ ।

त्रियातीत—वि० [सं०] त्रि + अतीत । तीन अर्थात् त्रिगुण से परे । उ०—त्रियातीत की श्रेणी जिनको वेद सबसे बढकर बतसाता है ।—कबीर म०, पृ० १२६ ।

त्रियान—सज्ञा पुं० [सं०] बीहों के तीन प्रधान भेद या ज्ञान—महा-यान, हीनयान और मध्यमयान ।

त्रियामक—सज्ञा पुं० [सं०] पाप ।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि ।

विशेष—रात के पहले चार बड़ों और प्रतिम चार बड़ों की गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही पहर बच रहते हैं । इसी से उसे त्रियामा कहते हैं ।

२. यमुना नदी । ३. हलदी । ४. नील का पेड़ । ५. काला निसोप ।

त्रियासंग—सज्ञा पुं० [हिं० त्रिया + संग] स्त्रीप्रसंग । सहवास । उ०—राजयोग के चिह्न में जाने विरला कोय । त्रियासंग मति कीजियहु जो ऐसा नहि होय ।—सुंदर पं०, भा० १, पृ० १०४ ।

त्रियुग—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. वसंत, वर्षा और शरद ये तीनों ऋतुएँ । ३. सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग ।

त्रियूह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा ।

त्रियोदश—वि० [हिं०] ३० 'त्रयोदश' । उ०—रवि ग्रयन भ्रम पठ बीस मानि । ससि जन्म त्रियोदस भ्रम ज्ञानि ।—हं० रासो, पृ० २६ ।

त्रियोनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुकदमा जो क्रोध, लोभ और मोह के कारण होता है [को०] ।

त्रिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध, धर्म और सध का समूह । (बौद्ध) ।

त्रिरश्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिकोण' ।

त्रिरसक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस या स्वाद हो ।

त्रिरात्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन रात्रियों (और दिनों) का समय । २. एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है । ३. गर्ग त्रिरात्र नामक योग ।

त्रिराव—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम [को०] ।

त्रिरूप^१—संज्ञा पुं० [सं०] धर्ममेघ यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार का घोड़ा ।

त्रिरूप^२—वि० तीन रंगों या प्राकृतियोंवाला [को०] ।

त्रिरेख^१—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्र ।

त्रिरेख^२—वि० तीन रेखाओंवाला । जिसमें तीन रेखाएँ हों ।

त्रिल—संज्ञा पुं० [सं०] नगण, जिसमें तानों वरुण लघु होते हैं ।

त्रिलघु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगण, जिसमें तीनों वरुण लघु होते हैं । २. वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मूर्धेन्द्रिय छोटी हो । पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं ।

त्रिलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा, साँभर और सोचर (काला) नमक ।

त्रिलिंग—संज्ञा पुं० [हिं० तैलग] तैलग शब्द का बनावटी संस्कृत रूप ।

त्रिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक । यी०—त्रिलोकनाथ । त्रिलोकपति ।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों लोकों का मालिक या रक्षक, ईश्वर । २. राम । ३. कृष्ण । ४. विष्णु का कोई अवतार । ५. सूर्य ।

त्रिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकमणि—संज्ञा पुं० [?] सूर्य । उ०—निरवोज कहे राक्षस निकर, मेदुं फिर त्रिलोकमणि ।—रघु० क०, पृ० ४८ ।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'त्रिलोक' ।

त्रिलोकीनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिलोकी + नाथ] ३० 'त्रिलोकनाथ' ।

त्रिलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. सूर्य ।

त्रिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिलोचनी' ।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा । २. व्यभिचारिणी (को०) ।

त्रिलोह—संज्ञा पुं० [सं०] सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिलोहक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोह—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०] ।

त्रिलोही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मृदा जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी ।

त्रिवट—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'त्रिवण' ।

त्रिवण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के समय गाया जाता है ।

विशेष—इसे कुछ लोग द्विजोल राग का पुत्र मानते हैं ।

त्रिवणी—संज्ञा स्त्री० [?] एक मकर रागिनी जो सरारामरण, जयश्री और नरनारायण के मेल से बनती है ।

त्रिवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म, धर्म और काम । २. त्रिकला । ३. त्रिकुटा । ४. बुद्धि, स्थिति और क्षय । ५. सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण । ६. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ । ७. सुगति । ८. गायत्री ।

त्रिवर्ण^१—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिवर्ण [को०] ।

त्रिवर्ण^२—वि० तीन रंगवाला [को०] ।

त्रिवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू । २. त्रिकला । ३. त्रिकुटा । ४. काला, लाल और पीला रंग । ५. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ ।

त्रिवर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्रपास ।

त्रिवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती ।

विशेष—कहते हैं, जिसके पास यह मोती होता है उसको बरिष्ठ कर देता है ।

त्रिवर्त्मा^१—वि० [सं० त्रिवर्त्मान्] तीन मागों से जानेवाला । [को०] ।

त्रिवर्त्मा^२—संज्ञा पुं० जीव [को०] ।

त्रिवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवली' ।

त्रिवलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'त्रिवली' ।

त्रिशुली—सका श्री० [सं०] २० 'त्रिशुली' ।

त्रिशुल्य—सका पु० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर घमटा मड़ा होता था ।

त्रिवार—सका पु० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

त्रिबाहु—सका पु० [सं०] तक्षक के ३२ हाथों में से एक हाथ ।

त्रिविक्रम—सका पु० [सं०] १. वामन का भवतार । २. विष्णु ।

त्रिविद्—सका पु० [सं०] वह जिसने तीनो वेद पढ़े हों ।

त्रिविद्य—सका पु० [सं०] वह ब्राह्मण जो तीनों वेदों का ज्ञाता हो [को०] ।

त्रिविध^१—वि० [सं०] तीन प्रकार का । उ०—त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी । राम स्वरूप विष्णु समुहानी ।—तुलसी (शब्द०)

त्रिविध^२—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से ।

त्रिविन्तत—सका पु० [सं०] वह जिसमें दैवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो ।

त्रिविष्टप—सका पु० [सं०] १. स्वर्ग । २. तिन्वत् ऐश ।

त्रिविस्तीर्ण—सका पु० [सं०] वह पुरुष जिसका खलाट, कमर और छाती ये तीनों ग्रह चोढ़े हों ।

विशेष—ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है ।

त्रिवृत्^१—सका पु० [सं० त्रिवृत्] १. एक प्रकार का यज्ञ । २. निसोय ।

त्रिवृत्^२—सका श्री० तीन लक्षों की करघनी [को०] ।

त्रिवृता—सका श्री० [सं०] २० 'त्रिवृत्' ।

त्रिवृत्करण—सका पु० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को भलग भलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया ।

विशेष—इस विचारपद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों भी समावेश माना जाता है । उदाहरण के लिये अग्नि को लीजिए । अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है, और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाणस्वरूप अग्नि की ललाई, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है । अग्नि की ललाई उसमें अग्निदेव के होने का, सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है । आरोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है । जान पड़ता है, उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली ।

त्रिवृत्त—वि० [सं०] तिगुना ।

त्रिवृत्ता—सका श्री० [सं०] २० 'त्रिवृत्ति' ।

त्रिवृत्ति—सका श्री० [सं०] निसोय ।

त्रिवृत्पर्णी—सका श्री० [सं०] दूरदूर । हिलमोपिका ।

त्रिवृद्वेद—सका पु० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. प्रणव ।

त्रिवृष—सका पु० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापर के व्यास का नाम ।

त्रिवेणी—सका श्री० [सं०] १. तीन नदियों का संगम । २. तीन नदियों की मिली हुई धारा । ३. गंगा, यमुना और सरस्वती का संगमस्थान जो प्रयाग में है ।

विशेष—यह तीर्थस्थान माना जाता है और वाक्णी तथा मकर संक्रांति आदि के अवसरो पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है ।

४. हठयोग के अनुसार इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का संगम स्थान ।

त्रिवेणु—सका पु० [सं०] रथ के अगले भाग के एक अंग का नाम ।

त्रिवेद—सका पु० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद । २. इन तीनों वेदों में घटलाए हुए क्रम । ३. वह जो इन तीनों का साता हो ।

त्रिवेदी—सका पु० [सं० त्रिवेदिन्] १. ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों का जाननेवाला । २. ब्राह्मणों का एक भेद ।

त्रिवेनी^७—सका श्री० [सं०] २० 'त्रिवेणी' ।

त्रिवेला—सका श्री० [सं०] निसोय ।

त्रिशंकु—सका पु० [सं० त्रिशङ्कु] १. बिल्ली । २. जुगुनू । ३. एक पहाड़ का नाम । ४. पपीहा । ५. एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूमरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके ।

विशेष—रामायण में लिखा है कि सशरीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशकु ने अपने गुरु वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की । इसपर वह वशिष्ठ के पुत्रों के पास गए, पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उल्टे उन्हें धाप दिया कि तुम चाँडाल हो आओ । तदनुसार राजा चाँडाल होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे अपनी अप्रियाया प्रकट की । इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुलाकर उसके यज्ञ करने के लिये कहा । ऋषियों ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र घबघुं बने । जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न पाए । इसपर विश्वामित्र बहुत घिबड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे । जब इंद्र ने त्रिशकु को सशरीर स्वर्ग की ओर धाते हुए देखा तब उन्होंने वही दे उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया । त्रिशंकु जब उल्टे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े जोर से चिल्लाए । विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की

घोर दूसरे सप्तपियों घोर नक्षत्रों की रचना प्रारम्भ की। सब देवता भयभीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अतः अब वह जहाँ के तहाँ रहेंगे और हमारे बनाए हुए सप्तपि घोर नक्षत्र उनके चारों ओर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वही आकाश में नीचे सिर किए हुए लटक रहे और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्र्याम्बक का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चाँदाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चाँदाल होकर चाँदालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रातः में बारह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सो गयीं को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को ऋषिपत्नी से लेकर उसे पालना प्रारम्भ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मास के प्रभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मास विश्वामित्र के लड़के को खिलाया था और स्वयं भी खाया था। इसपर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को असंतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मास स्वयं खाया और ऋषिपुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसी से वह त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री और पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभियुक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकय वंश की सत्तरवा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चन्द्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मन्त्रों के ऋषि थे।

६. एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु है जो इंद्र के ढकेलने पर आकाश से गिर रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुज] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चन्द्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुयाजिन] त्रिशंकु को यज्ञ कराने वाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा, ज्ञान, और क्रिया रूपी तीनों ईश्वर शक्तियाँ। २. महत्तत्त्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्त्व। ३. तानिका की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों

देवियाँ। ४. गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। २. विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशत—वि० [सं०] तीन सौ [को०]।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. धैनियों के एक प्राचाय का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिर्ची इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान प्रवर्तमान के चौबीस तीर्थ-करों में से अंतिम तीर्थकर वर्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशास्त्र—वि० [सं०] जिसमें प्रागे की ओर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशाखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वेज का पेड़।

त्रिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कमरोंवाला मकान [को०]।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर ओर और कोई इमारत न हो।

विशेष—ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिशूल। २. किरीट। ३. रावण के एक पुत्र का नाम। ४. बेल का पेड़। ५. तामस नामक मन्वन्तर के इंद्र के नाम।

त्रिशिखर—वि० जिसकी तीन शिखाएँ हो। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखदत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकद नाम की लता प्रपञ्च उसका फल (मूल)।

त्रिशिखी—वि० [सं०] २० 'त्रिशिख'।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] १. रावण का एक भाई जो खर-दूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। २. कुबेर। ३. एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। ४. स्वर्ण प्रजापति के पुत्र का नाम। हरिवंश के अनुसार ज्वरपुरुष।

विशेष—इसे दानवों के राजा वाण की सहायता के लिये महादेव जी ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ माँलें थीं।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० [त्रिशिरस्] २० 'त्रिशिर'।

त्रिशोर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। स्वर्ण प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशोर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में है। २. वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हो।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलभर = महादेव ।

२ देहिक, देविक और मोतिक दुख । ३ तत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें घण्टे को कनिष्ठा उँगली के साथ मिलाकर बाकी तीनों उँगलियों को केना देते हैं ।

त्रिशूलपाठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तपण करने से गायुपर्य देह प्राप्त होती है ।

त्रिशूलधारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलधारिन्] शिव (को०) ।

त्रिशूली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाला, महादेव ।

त्रिशूली—सञ्ज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

त्रिशृंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिशृङ्ग] १ त्रिशूट पर्वत जिसपर लका बसी थी । २ त्रिकोण ।

त्रिशृंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिशृङ्गी] टेंगना नचनी जिसके सिर पर तीन कटि होते हैं ।

त्रिशोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जीव, जिसे प्राधिदैविक, प्राधिभौतिक, प्राव्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं । २ कएव ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

त्रिश्रुतिमध्वम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर ।

विशेष—यह संदीपनी नाम की श्रुति से प्रारम्भ होता है । इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

त्रिपरणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल । त्रिकाल ।

त्रिषष्ठ—वि० [सं०] तिरसठवाँ । क्रम में तिरसठ के स्थान पर पड़नेवाला ।

त्रिषष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] साठ और तीन की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।

त्रिषष्टि^२—वि० साठ और तीन । तिरसठ (को०) ।

त्रिषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'तृषा' । उ०—घमर भेद साहिब कहि दीजे । त्रिषा बुझाय घमोरस पीजे ।—कबीर सा०, पृ० ६१२ ।

त्रिपाली^१—वि० [हि० त्रिषा] तृपातुर । व्यासा । उ०—पिछल्या रहे त्रिपाली भगव्यों धाव मिल ।—नट०, पृ० १६८ ।

त्रिपित^२—वि० [हि०] दे० 'तृपित' । उ०—घातुर गति मनो चद छदै भए घावत त्रिपित चकोरी ।—नंद० प्र०, ३३२ ।

त्रिपु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान ।

त्रिपुक्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला घनुप ।

त्रिपुपर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुपर्ण' ।

त्रिष्टक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक मणि ।

त्रिष्टुप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टुप्] दे० 'त्रिष्टुप्' ।

त्रिष्टुम्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह मक्षर होते हैं ।

विशेष—इसका गोत्र कौशिक, वर्ण लोहित, स्वर धेवठ, देवता इन्द्र और उत्पत्ति प्रजापति के मांस से मानी जाती है । इसके

सुमुखी, इन्द्रवज्रा, उषेन्द्रवज्रा, कीर्ति, वारणी, माला, शाखा, हुंसी, माया, जाया, बाला, भार्वा, मद्रा, प्रेमा, रामा, रघोदता, दोषक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं ।

त्रिष्टोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो क्षत्रवृत्ति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है ।

त्रिष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी ।

त्रिसंक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिशंकु' । उ०—कमल भवाज त्रिसंक वह वध चम आदि सदैव । ह्रीं हि हलंत कदापि नहि, आइ करे जो बंध ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

त्रिसंगम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिसङ्गम] १. तीन नदियों के मिलन का स्थान । त्रिवेणी । २ किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।

त्रिसंधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्धि] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है । इसे फगुनियाँ भी कहते हैं । वैद्यक में इसे संचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है ।

पर्या०—साध्यकुसुमा । सधिवल्ली । सदाफला । त्रिसध्यकुसुमा । काडा । सुकुमारा । सधिया ।

त्रिसंध्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्य] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।

विशेष—जो तिथि त्रिसंध्यव्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्यकुसुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्यकुसुम] दे० 'त्रिसंधि' ।

त्रिसंध्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्यव्यापिनी] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो ।

विशेष—ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्या] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों संध्याएँ ।

त्रिसप्तति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्तर और तीन का जोड़ । तिहत्तर । २ तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३ ।

त्रिसप्तसितम—वि० [सं०] तिहत्तरवाँ । जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो ।

त्रिसप्त^१—पञ्चा पुं० [सं०] सौंठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का समूह ।

त्रिसप्त^२—वि० जिसकी तीनों भुजाएँ बराबर हो (ज्या०) ।

त्रिसर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी । २. तीन लड़ियों का मोतियों का हार (को०) । ३ दूध में मिलाकर पका हुआ तिल और चावल (को०) ।

त्रिसरैनु^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसरेणु] दे० 'त्रिसरेणु' । उ०—उपजत भ्रमत फिरत गर्दि चैनु । जैसे जालरध त्रिसरैनु ।—नंद० प्र०, पृ० २७० ।

त्रिसर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] सत्त्व, रज और तम बीनों गुणों का समं। सृष्टि।

त्रिसल(पुं०)—सज्ञा स्त्री० [?] त्रिरेखा। त्रिपुंड्र। उ०—भव माया बाल लिया, त्रिसलो लिया लिलाट।—दांकी० प्र०, भा० २, पृ० १६।

त्रिसामा—सज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर।

त्रिसामा^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है।

त्रिसिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिषाकरा'।

त्रिसुगंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसुगन्धि] दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगन्धित मसालों का समूह।

त्रिसुद्ध—वि० [सं० त्रि + शुद्ध] तीनों तरह से शुद्ध। उ०—सूक्तं च सुद्ध त्रिसुद्ध तो स्वर्गापवर्गाहि पावही।—पद्माकर प्र०, पृ० १५।

त्रिसुपर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मन्त्रों का नाम। २. यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मन्त्रों का नाम।

त्रिसुपर्णिक—सज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का ज्ञाता हो।

त्रिसूल—सज्ञा पुं० [हिं० त्रिसल] चिता या शोषावेश में ललाट पर उभड़ जानेवाली त्रिसूल की आकृति की रेखा। उ०—माथि त्रिसूल नक सल, फोड़ विण्णुटा कज्ज।—डोला०, दू० २१६।

त्रिसौपर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिसुपर्णिक। २. परमेश्वर। परमात्मा।

त्रिस्कंध—सज्ञा पुं० [सं० त्रिस्कन्ध] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं।

त्रिस्तनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री। २. महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे।

त्रिस्तवन—सज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

त्रिस्तावा—सज्ञा स्त्री० [सं०] भगवद्भक्त यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से तिगुनी बड़ी होती थी।

त्रिस्थली—सज्ञा स्त्री० [सं०] काशी, गया और प्रयाग ये तीन पण्य स्थान।

त्रिस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थावों में रहनेवाला, परमेश्वर।

त्रिस्पृशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी।

विशेष—यह उस समय होती है जब एक ही सायन दिन में उदयकाल के समय थोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है। ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्य का्यों के लिये उपयुक्त मानी जाती है।

त्रिस्तान—सज्ञा पुं० [सं०] सवेरे, दोपहर और संध्या तीनों समय का स्नान।

विशेष—यह स्नान प्राश्निक या अश्विन में रहनेवाले के लिये आवश्यक है। कई प्राश्निकों में भी त्रिस्तान करवा पड़ता है।

त्रिस्रोता—सज्ञा स्त्री० [सं० त्रिस्रोतम्] १. गंगा। उ०—भस्म त्रिपु-
ंड्रक शोभिजे वरुंत बुद्धि उदार। मनो त्रिस्रोता सोतद्युति
वदत लगी लिलार।—केशव (शब्द०)। २. उत्तर बंगाल
की एक बड़ी नदी जिसे त्रिस्ता कहते हैं।

त्रिहायण—वि० [सं०] जिसकी भवस्था तीन वर्ष की हो [को०]।

त्रिहायणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी।

त्रिहूत—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिरहुत'।

त्री^१—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—गुण गजवध तथा कब
गावे। दु रस परायण त्री दरमावे।—रा० रू०, पृ० १६।

त्री^२—वि० [हिं०] दे० 'त्रि'। उ०—त्री भस्थान निरंतर निरधार।
नहें प्रभु बैठे सन्नय सार।—शङ्कर, पृ० ६७५।

त्रीकुटा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटा'। उ०—मोथा और
पटोल दल घानी। त्रिफला भी त्रीकुटा समानी।—इंद्रा०,
पृ० १५१।

त्रीगुन—वि० [सं० त्रिगुण] तिगुना। उ०—इंद्र बीराइ बल इंद्र
जोर। त्रीगुन विलास तन हरत रोर।—पृ० रा०, ६।८०।

त्रीघटना—क्रि० प्र० [हिं० घटना] घटित होना। होना। उ०—
पायरी घड़ी यो के त्रीघट लोह।—वी० रासो, पृ० ६४।

त्रीछन—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—प्रणिनि तत्तुपुर
ऊपर बहई। त्रीछन चाल पवन कर अहई।—स० दरिया,
पृ० २५।

त्रीजइ—वि० [सं० तृतीय] दे० 'तीसरा'। उ०—त्रीजइ पुहरि
उलांघियउ, आउ वलारउ घट्ट।—डोला०, दू० ४२४।

त्रीस—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—सूख नहीं त्रीस
ऊछली।—वी० रासो, पृ० ६७।

त्रीचाँ—वि० [सं० त्रि] तीनों। उ०—मारु मारइ पहिबड़ा, जउ
पहिरइ सोवन्न। दती चूडइ मोलियाँ, त्रीचाँ हेक वरन्न।—
डोला०, दू० ४७५।

त्रुगटो^१—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—त्रुगुणी त्रुगटो
मनकर भरघा सपट ध्यान धरीजै।—रामानंद०, पृ० २७।

त्रुगुणी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिगुणी'। उ०—त्रुगुणी त्रुगटो
मनकर भरघा सपट ध्यान धरीजै।—रामानंद०, पृ० २७।

त्रुटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी। कसर। न्यूनता। २. अभाव।
३. भूल। चूक। ४. वचनभंग। ५. छोटी इलायची। एला।
६. सशय। सदेह। ७. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।
८. समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर
और किसी के मत से प्रायः चार क्षण के बराबर होता है।

त्रुटित—वि० [सं०] १. कटा या टूटा हुआ। २. जिसपर आघात
लगा हो। ३. अक्षत।

त्रुटिवीज—सज्ञा पुं० [सं०] अर्द्ध। कच्चा। धुँसा।

त्रुटी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रुटि'।

त्रुटी^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रुटि'। उ०—त्रुटी परे है या भेरा
भैया जीवरो बहु ठूँस पावे।—नंद० प्र०, पृ० ३५१।

शुटना^७—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दूटना' । उ०—सदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यऊं हीया फुटि । पारेवा का झूल जिउं, पडिनई मरिणि नृटि ।—ढोला०, पृ० १४३ ।

त्रेटकु^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'वाटक' । उ०—त्रेटकु भेप न चेटकु कोई ।—प्राण०, पृ० ११० ।

त्रेटना^७—क्रि० प्र० [सं० वृटि] तोटना । चोट मारना । उ०—कटक काल फिरि कदे न त्रेटे ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

त्रेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगों में से दूसरा युग जो १२६६०० वर्ष का होता है ।

विशेष—पुराणानुसार इस युग का जन्म भयवा आरभ कार्तिक शुक्ला नवमी को होता है । इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है, और सब लोग धर्मपरायण होते हैं । पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है । परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है ।

मुहा०—त्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना । नष्ट होना । (एक भाष) ।

२ दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ । ३ जुए में तीन कौड़ियों का भयवा पासे के उस भाग का चित पड़ना जिसपर तीन चिदियाँ हों ।

त्रेताग्नि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ ।

त्रेतायुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रेता' ।

त्रेतायुगाद्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन त्रेता का जन्म या आरभ होना माना जाता है ।

विशेष—इसकी गणना पुण्य त्रितियों में है ।

त्रेतिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] यह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय तीनों प्रकार की अग्निियों से हो ।

त्रेथा—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार के भयवा तीन भागों में [को०] ।

त्रेन^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रण' । उ०—नैहर नेह नहि त्रेन तन तोरो । पुण्य पल्लव पर प्रेम प्रिति जोरो ।—सं० बरिया, पृ० १७२ ।

त्रै—वि० [सं० त्रय] तीन । उ०—ज्यों प्रति प्यासो पावे मग में गगात्रल । प्यास न एक बुझाय बुझै त्रै ताप बल ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—त्रैकालिक ।

त्रैकण्डक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रैकण्डक] दे० 'त्रिकण्डक' ।

त्रैकुण्ड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकुण्ड' ।

त्रैकुम्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकुम्भ' ।

त्रैकालज्ञ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकालज्ञ' ।

त्रैकालिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैकालिकी] वह जो त्रिकाल में होता हो । तीनों कालों में या सदा होनेवाला ।

त्रैकाल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तीन काल—भूत, वर्तमान और

भविष्यत् । २ सूर्योदय, अपराह्न और सूर्यास्त । ३. तीन का समूह । ४. तीन दशाएँ—उत्पत्ति, रक्षण और विनाश [को०] ।

त्रैकूटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलचुरि राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश ।

त्रैकोणिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके तीन पार्श्व हो । त्रिपहला २. वह जिसके तीन कोण हों ।

त्रैकोन^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रिकोण' । उ०—मध्यचरन त्रैकोन है प्रभृत कलश कहूँ देख ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ३३ ।

त्रैगर्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ त्रिगर्त देश का रहनेवाला । २ त्रिगर्त देश का राजा ।

त्रैगुणिक—वि० [सं०] १ तेहरा । तीनगुना । २ तीन गुणों से सवधित [को०] ।

त्रैगुण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] त्रिगुण का धर्म या भाव । सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव ।

त्रैता^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'त्रेता' । उ०—त्रैता राम रूप दशरथ गृह रावन कुलहि संधारयो ।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० १६२ ।

त्रैदशिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उँगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है ।

त्रैदशिक^२—वि० १ ईश्वरीय । २ देवताओं से सवधित [को०] ।

त्रैघ—वि० [सं०] तेहरा । तिगुना [को०] ।

त्रैघातवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रैपन^७—वि० [हि०] दे० 'त्रिपन' । उ०—हवसीह सग त्रैपन हजार । कर घरे कहर कर्ता बजार ।—पृ० रा०, १३ । १७ ।

त्रैपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर' ।

त्रैपुरुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैपुरुषी] पुरुषों को तीन पीढ़ी तक चलनेवाला [को०] ।

त्रैफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के समोप से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है ।

त्रैवलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है ।

त्रैमातुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण ।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो अंश खाया था वह पहले कोशल्या और केकयी को दिया गया था और उन्होंने दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम त्रैमातुर पड़ा ।

त्रैमासिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैमासिकी] हर तीसरे महीने होनेवाला । जो हर तीसरे महीने हो । जैसे, त्रैमासिक पत्र ।

त्रैमास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तीन महीने का समय [को०] ।

त्रैयंबक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रैयंबक] एक प्रकार का होम ।

त्रैयंबक^२—वि० [सं०] त्रैयंबक सवधी । जैसे, त्रैयंबक बलि ।

त्रैयंबिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्रैयंबिका] गायत्री ।

त्वक्सारभेदिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चैंच ।
 त्वक्सारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बसलोचन ।
 त्वक्सुगंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्ध] नारंगी [को०] ।
 त्वक्सुगंधा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्धा] १. एलुवा । २. छोटी इलायची ।
 त्वगंकुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वगङ्कुर] रोमांच ।
 त्वग्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'त्वक्' का समासगत रूप [को०] ।
 त्वगाक्षीरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बसलोचन ।
 त्वगेंद्रिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्वगिन्द्रिय] स्पर्शेंद्रिय [को०] ।
 त्वग्गंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वग्गन्ध] नारंगी का पेड़ ।
 त्वग्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोम । रोमाँ । २. रक्त । लहू ।
 त्वग्जल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पसीना [को०] ।
 त्वग्दोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ । कुष्ठ ।
 त्वग्दोषापहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] धकुची । बावची ।
 त्वग्दोषारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकद ।
 त्वग्दोषी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढी । जिसे कुष्ठ रोग हो ।
 त्वग्भेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा काटना । चमड़े को छीलकर निकालना [को०] ।
 त्वघ्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा । २. छाल । बत्कन । ३. दारचीनी । ४. सपि की केंचुली । ५. त्वक् इन्द्रिय । दे० 'त्वक्' ।
 त्वच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दारचीनी । २. तेजपत्ता । ३. छाल [को०] ।
 त्वचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. छाल से ढाँकना । २. साल उतारना [को०] ।
 त्वचा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक् । चर्म । चमड़ा ।
 त्वचापत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता । २. दारचीनी । ३. छाल [को०] ।
 त्वचिसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौस ।
 त्वचिसुगंधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्वचिसुगन्धा] छोटी इलायची ।
 त्वदीय—सर्व० [सं०] [स्त्री० त्वदीया] तुम्हारा ।
 त्वन्तिःसृत—वि० [सं० त्वत् + नि सृत] तुम से निकला हुआ । उ०—
 सुख चला है सवित त्वन्ति सृत नेह प्रमिय ।—धवासि,
 पृ० ३४ ।
 त्वम्—सर्व० [सं०] तुम [को०] ।
 त्वर्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रतापूर्वक । वेग से [को०] ।
 त्वरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्वर' [को०] ।
 त्वरणीय—वि० [सं०] जिसे शीघ्रता से किया जाय । जिसके करने के लिये शीघ्रता की अपेक्षा हो [को०] ।
 त्वरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेग । शीघ्रता [को०] ।
 त्वरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता । जल्दी ।
 त्वरारोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कबूतर [को०] ।
 त्वरावान्—वि० [सं० त्वरावत्] [वि० स्त्री० त्वरावती] १. शीघ्र-

गामी । २. शीघ्रता करनेवाला । काम को जल्दी करनेवाला ।
 ३. फुर्तीला । तेज [को०] ।
 त्वरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वर' ।
 त्वरित—वि० [सं०] वि० स्त्री० त्वरिता । तेज ।
 त्वरित—क्रि० वि० शीघ्रता से । उ०—त्वरित भारती ला, उतार
 लुं । पद दगवु से मैं पखार लुं ।—साकेत, पृ० ३१० ।
 त्वरितक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का
 चावल जिसे तूणक भी कहते हैं ।
 त्वरितगति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक
 चरण में नगण, ज०ण, नगण और एक गुण होता है । इसका
 दूसरा नाम 'प्रमृताति' भी है । जैसे,—निज नग खोजत हर
 लू । पयसित लक्ष्मि वरलू । (शब्द) २. तेज चाल ।
 त्वरिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] त्वर के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा
 युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है ।
 त्वरता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पानी का सप ।
 त्वष्टा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्वष्ट] १. विश्वकर्मा । विष्णुपुराण के
 अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं । २. महादेव ।
 शिव । ३. एक प्रजापति का नाम । ४. बड़ई । ५. वृत्रासुर के
 पिता का नाम । ६. बारह धादित्यों में से ग्यारहवें धादित्य
 जो अश्वि के प्रविष्ठाता देवता माने जाते हैं । ७. एक वैदिक
 देवता जो षण्मुखों और मनुष्यों के गर्भ में वीर्य का विभाग
 करनेवाले माने जाते हैं । ८. सूत्रधर नाम की वर्णसंकर जाति ।
 ९. चित्रा नक्षत्र के प्रविष्ठाता देवता का नाम ।
 त्वष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनु के अनुसार एक सकर जाति । २.
 बड़ई का घंघा [को०] ।
 त्वष्टर—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० त्वष्ट] दे० 'त्वष्टा' । उ०—हे त्वष्टर ।
 इसकी सतान दो ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८१ ।
 त्वाच—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वाची] त्वचा से संबंधित [को०] ।
 त्वाष्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।
 त्वष्ट्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. त्वष्टा (विश्वकर्मा) का बनाया
 हुआ हथियार, बख । २. वृत्रासुर का एक नाम । ३.
 चित्रा नक्षत्र ।
 त्वाष्ट्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या सञ्ज्ञा का एक नाम ।
 जो सूर्य की व्याही थी और जिसके गर्भ से प्रसवनीकुमार का
 जन्म हुआ था । २. चित्रा नक्षत्र ।
 त्विष्टपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।
 त्विष्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीव्र धादोलन । २. प्रचंडता । ३.
 घबड़ाहट । परेशानी । ४. वाणी । ५. सौंदर्य । ६. प्रभा ।
 चमक [को०] ।
 त्विषाम्पति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्विषाम्पति] सूर्य [को०] ।
 त्विषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा । दीप्ति । तेज ।
 त्विषामीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. आक का पेड़ ।

त्रिषि—सङ्ग स्त्री० [सं०] १. किरण । २. सक्ति (को०) ३. चमक ।
प्रभा (को०) । ४. भोज । तेज । प्रताप (को०) ।
स्त्रेय—वि० [सं०] तेजस्वी । स्वमकता हुमा । प्राभामय (को०) ।
स्त्रेय्य—वि० [सं०] उरावना । भयावना (को०) ।

त्सरु—सङ्ग पुं० [सं०] १. तलवार का मूठ । २. सपं ।
त्सरुमार्ग—सङ्ग पुं० [सं०] तलवार की लड़ाई (को०) ।
त्सारु—सङ्ग पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो ।

थ

थ—हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा
प्रक्षर । इसका उच्चारण स्थान दंत है ।
थंका—सङ्ग पुं० [?] बिलमुकता ।
थंड—सङ्ग पुं० [देश०, सं० स्थण्डिल, प्रा० थडिल] भूमि । स्थान ।
प्रदेश । उ०—गुन गठि कवि आए सु चढ । दिय अनंत
द्रव्य बीजोउ थड ।—पु० रा०, ६१ । २४६७ ।
थडा—वि० [हिं० ठडा] शीतल । ठंडा । उ०—चित सू शिव जब
मिले तब तनु थडा होय । 'लुका' मिलना जिह्वासु' ऐसा विरला
कोय ।—बिखनी०, पु० १०६ ।
थंडिल(पु)—सङ्ग पुं० [सं० स्थण्डिल, प्रा० थडिल] यज्ञ की वेदी ।
थया—सङ्ग पुं० [देश० ?] नृत्य (ताता येई इत्यादि) । उ०—
मंथन करि चाखे नही पड़ि पड़ि राखे ग्रथ । थय करत पग
परत नहि कठिन प्रेम को पय ।—ब्रज० प्र०, पु० १४० ।
थंभ—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ, थंभ] १. खंभा । स्तम्भ ।
उ०—राजकुल कीर्ति थंभ थिर ।—कानन०, पु० २ । २
सहारा टेक । ३. राजपुतो का भेद ।
थंवन—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंवन] सहारा । टेक । उ०—
घरती पवन उदित अकाशा । ता पर सूर करे परकासा ।
—धरम०, पु० १७ ।
थंवा—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंवा] खंभा । थंवा । थंभ । उ०—
माटी की भीत पवन का थंवा, गुन धौगुन से जाया ।—
दरिया० वानी, पु० ६५ ।
थंवी—सङ्ग स्त्री० [सं० स्तम्भी] १. खड़ी लकड़ी । २. चाँड़ । सहारे
की बल्ली । धुनी ।
थंभ—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] खंभा । उ०—जवन को
कबली सम जानै । अथवा कनक थंभ सम मानै ।—
सूर (शब्द०) ।
थंभन—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भन] १. रूकावट । ठहराव । २. तत्र के
छह प्रयोगों में से एक । दे० 'स्तम्भन' । ३. वह धोपध जो
शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल, मूत्र, शुक्र इत्यादि)
को रोके रहे ।
थो—जलयंभन = वह मत्तप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह
या बरसना प्रादि रोक दिया जाय । महियंभन = धरती को
स्थिर रखना । पृथ्वी को रोजना । पृथ्वी को थंभाना या
पहाना । उ०—भमरित पय नित स्रवहि वच्छ महियंभन
जावहि । हिंडुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि ।
—पकबरी०, पु० ३३३ ।

४-६५

थंभनी—सङ्ग स्त्री० [सं० स्तम्भनी] योग में एक तत्त्व या धारणा ।
योग की धारणाओं में से प्रथम धारणा । ज०—पहिली ।
धारणा थंभनी, दूजी द्रावण होय । तीजी दहिनी जानिए
चौथि भ्रामिनी सोय ।—मृष्टांग०, पु० ८६ ।
थंभा—सङ्ग पुं० [सं० स्तम्भ] दे० 'थंवा' उ०—जल की भीत भीत
जल भीतर, पवन भवन का थंभा रो ।—सत तुरसी०,
पु० २३४ ।
थंभित(पु)—वि० [सं० स्तम्भित] १. रुका हुआ । ठहरा हुआ ।
मड़ा हुआ । २. अचल । स्थिर । ३. भय या आश्चर्य से
निश्चल । ठक ।
थंभिनी—सङ्ग स्त्री० [सं० स्तम्भिनी] योग की एक धारणा । उ०—
यह एक थंभिनी एक द्रावणी एक सु दहिनी कहिए । पुनि
येक भ्रामिणी येक शोषणी सदगुह बिना न लहिप ।—सुदर०
प्र०, भा० १, पु० ५२ ।
थंभी—सङ्ग स्त्री० [सं० स्तम्भी, प्रा० थंभ, थंभ + ई (प्रत्य०)]
चाँड़ । सहारे का खंभा । दे० 'थंवी' । उ०—निकसि गइ थंभी
ढहि परा मंदिर, रलि गया चिक्कड गारा ।—सतवाणी०,
भा० २, पु० ८ ।
थंभना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] दे० 'थंभना' ।
थंभवाना—क्रि० प्र० [हिं० थंभना] दे० 'थंभवाना' ।
थंभाना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन] दे० 'थंभाना' ।
थ—सङ्ग पुं० [सं०] १. रक्षण । २. मगल । ३. भय । ४. पर्वत ।
५. भयरक्षक । ६. एक व्याधि । ७. भक्षण । प्राहार ।
थंई—सङ्ग स्त्री० [हिं० ठाँव, ठाँई] १. ठाँव । जगह । २. डेर ।
घटाला ।
थंइली—सङ्ग स्त्री० [हिं०] दे० 'थंली' ।
थंक—सङ्ग पुं० [सं० स्था] दे० 'थाक' ।
थकन—सङ्ग स्त्री० [हिं० थकना] दे० 'थकान' ।
थकना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भ वा स्था + करण < √कृ, प्रा०
थक्कन अथवा देण०] १. परिश्रम करते करते और परिश्रम
के योग्य न रहना । मिहनत करते करते हार जाना । जैसे,
चलते चलते या काम करते करते थक जाना ।
संयो० क्रि०—जाना ।
२. ऊब जाना । हैरान हो जाना । जैसे,—कहते कहते थक गए
पर वह नहीं मानना ।
सयो० क्रि०—जाना ।

३. बुढ़ापे से प्रशक्त होता । बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना । जैसे,—मन के बहुत थक गए, घर ही पर रहते हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

४. मंश पड जाना । थकता न रहना । घीमा पड जाना । ढोला होना या रुक जाना । जैसे, कारवार का थक जाना, रोजगार का थक जाना । ५. मोहित होकर प्रचल हो जाना । मुग्ध होना । लुभाना । उ०—(क) यके नयन रघुपति छवि देखी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) यके नारि नर प्रेम पियासे ।—तुलसी (शब्द०) ।

थकरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट । थकान ।

थकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के बाल झड़ने की खस की कुँची ।

थकान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव । थकावट । क्षिपिलता ।

थकाना—क्रि० सं० [हि० थकना] १. आत करना । शिथिल करना । परिश्रम कराते कराते प्रशक्त कराना । २. हराना । संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।

थका मोंदा—वि० [हि० थकना] परिश्रम करते करते प्रशक्त । आत । श्रमित ।

थकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'थ' अक्षर या वर्ण ।

थकावा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थकना] थकावट । शिथिलता ।

थकावटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकने का भाव । शिथिलता । क्रि० प्र०—माना ।

थकाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना + प्राहट (प्रत्य०)] दे० 'थका वट' । उ०—रोने से उसके चेहरे पर जो थकाहट छप गई थी, उसने उसकी शोभा और भी निर्मल कर रखी थी ।—शराबी, पृ० ३२ ।

थकित—वि० [हि० थकना प्रथवा सं० स्था (= स्थिर) + कृत] १. थका हुआ । आत । शिथिल । २. मोहित । मुग्ध । उ०—थकित भई गोपी लखि स्यामहि ।—सुर (शब्द०) ।

थकिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना] १. किसी गाढ़ी चीज को जमी हुई मोटी तह । २. गली हुई धातु का जमा हुआ लोंदा ।

थौं—थकिया की चाँदी = गलाकर साफ की हुई चाँदी ।

थकैनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थकना] दे० 'थकावट' ।

थकौड़ा—वि० [हि० थकना] [वि० स्त्री० थकौड़ी] कुछ थका हुआ । थकामोंदा । शिथिल । उ०—दग थिरकौड़ें प्रथखुले देह थकौड़े डार । सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरभ के भार ।—विहारी (शब्द०) ।

थक्कना—क्रि० प्र० [प्रा० थक्क] दे० 'थकना' । उ०—सबै सेउ फिरि थक्क कहै काहू न रखायब ।—ह० रासो, पृ० ५५ ।

थक्का—सञ्ज्ञा सं० [सं० स्था + क, बँग० थाकना (= ठहरना)] [स्त्री० थक्की, थकिया] १. किसी गाढ़ी चीज की जमी हुई मोटी तह । जमा हुआ कतरा । झठी । जैसे, दही का थक्का,

खून का थक्का । २. गली हुई धातु का जमा हुआ कतरा । जैसे, चाँदी का थक्का ।

थगित—वि० [प्रा० थक्क, हि० थकित] १. ठहरा हुआ । रुका हुआ । २. शिथिल । ढोला । मद ।

थट, थट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [देशी० थट्ट] थूथ । समूह । ठट्ट । कुँड । उ०—(क) इसक समय प्राथेट, राव खेवन बन प्राए । सकल सुभट थट सग, बीर वाने जु वनाए ।—ह० रासो, पृ० १३ । (ख) रहै सुभट थट्ट प्रथिराज सग ।—पृ० रा०, ६ । ३ ।

थेड—सञ्ज्ञा पुं० [देशी०] समूह । थूथ । कुँड ।

थड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल] १. बैठने की जगह । बैठक । २. दूकान की गद्दी ।

थगुसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (= शिव), प्रा० थणु, पाणु हि० थणु + सं० सुत] शिव के पुत्र । १. गणेश । २. कातिकेय । स्कंद ।

थती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थाती] दे० 'थाती' ।

थतिहारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थाती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाती रखी हो ।

थत्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थाती] डेर । राशि । घटाला । जैसे, रथों की थत्ती ।

थथोलना—क्रि० सं० [हि० टटोलना] हूँदना । खोजना ।

थन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तन, प्रा० थण] १. गाय, भैंस, बकरी इत्यादि चोपायो का स्तन । चोपायो की चुँची । उ०—प्रडा पाले काछुई, विन थन राखे पोख ।—सतवाणी०, पृ० २२ । २. स्त्रियों का स्तन । उ०—उठे थन थोर बिराजत नाम । धरें मनु हाटक सालिगराम ।—पृ० रा०, २१।२० ।

थनइला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थन] दे० 'थनेल' ।

थनकुदी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली चिड़िया जो कीड़े मकोड़े खाती है । इसका रंग बहुत सुंदर होता है ।

थनगन—सञ्ज्ञा पुं० [बरकी] एक चड़ा पेड़ जो वरमा, धरार और मलाबार में बहुत होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत में लगती है ।

थनटुट्ट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थन + टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध घाला बद हो गया हो ।

थनथाई—वि० [सं० स्तनस्थानीय] एक ही स्तन जिनका स्थान हो । एक स्तन का दूध पीनेवाला । घायभाई । सगोत्रिय । कोका । उ०—करि सलाम हृन्नेन घना बंधी दिसि बाई । सजरा बघे कठ सह सज्जे थनथाई ।—पृ० रा०, ७ । ३४ ।

थनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] १. स्तन के आकार की थैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं । गलपना । २. हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ माँस का झुर्रे जो एक ऐसे समझा जाता है । ३. घोड़े की लिमेट्रिय में थन के आकार का लटकता हुआ माँस जो एक ऐसे समझा जाता है ।

थनुा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'थन' ।

बनेला—सका पुं० [हि० यन + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० यनेली] १. एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और घाव हो जाता है। २. गुवरेले की जाति का फोड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय, भैंस आदि के यन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

बनेत—सका पुं० [हि० यान] १. गाँव का मुखिया। २. वह आशु जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

यनेल—सका स्त्री० [हि० यन + ऐल (प्रत्य०)] वह जिसका यन भारी हो (गाय आदि)।

बनेला—सका पुं० [हि० यन + ऐला (प्रत्य०)] दे० 'यनेला'।

बनेली—सका स्त्री० [हि० यन + ऐली (प्रत्य०)] दे० 'यनेला'।

यनपु—सका पुं० [सं० स्यान] दे० 'यान'। उ०—देव काल सजोग तपे दिलगी घर यमो।—पु० रा०, १। ७०२।

यपकना—क्रि० सं० [मनु० यप यप] १. प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसी के शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, सुनाने के लिये बच्चे को यपकना। २. धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, बापी से गध यपकना। ३. पुचकारना या दम दिलासा देना। ४. किसी का क्रोध ठंडा करना। शांत करना।

यपकी—सका पुं० [हि० यपकना] दे० 'यपकी'।

यपकी—सका स्त्री० [हि० यपकना] १. किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ माघात। २. हाथ से धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना। उ०—यपकी देने लगी तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पु० ४१३।—लगाना।

१. हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा माघात। ३. जमीन को पीटकर चोरस करने की मुँगरी। ४. बापी। ५. घोड़ियों का मुँगरा या डबा जिससे वे घोटे समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

यपड़ी—सका स्त्री० [मनु० यप यप] १. दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—यपड़ी पीटना या बजाना = जोर जोर से हँसी करना। उपहास करना। दिस्सगी उड़ाना।

२. पाली बजने का शब्द। ३. वेसन की पूरी जिसमें होंग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

यपयपी—सका स्त्री० [मनु० यप यप] दे० 'यपकी'।

थपनपु—सका पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उपे यपन धिर थपेउ यपनहार केसरीकुमार बम यपनो सँभारिये।—तुलसी (शब्द०)।

यो०—यपनहार = स्थापित या प्रतिष्ठित करनेवाला।

थपनापु—क्रि० सं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। २. प्रतिष्ठित करना।

यपना^२—क्रि० प्र० १. स्थापित होना। जमाना। ठहरना। २. प्रतिष्ठित होना।

यपना^३—क्रि० सं० [मनु० यप यप] धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना^४—सका पुं० १. पत्थर, लकड़ी आदि का भोजार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु की पीटें। पीटना। २. बापी।

थपरा^५—सका पुं० [मनु०] दे० 'यपड़'।

थपाना^६—क्रि० सं० [यपना] स्थापित कराना। स्थित कराना। उ०—जगन्नाथ कहे दोन्ह यपाई। तब हम चल चंदवारे भाई।—कवीर सा०, पु० १६२।

थपुआ—सका पुं० [हि० यपना (= पीटना)] छानन का वह खपड़ा जो चोटा, चोरस और चिपटा हो। यपान नाभी के घाकार का न हो जैसी कि नरिया होती है।

विशेष—खपरेल में प्रायः थपुआ और नरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर नरिया मोधी करके रखी जाती है।

थपेटा—सका पुं० [मनु०] दे० 'यपेड़ा'।

थपेड़ना—क्रि० सं० [हि०] यपेड़ा देना। यपेड़ा लगाना।

थपेड़ा—सका पुं० [मनु० यप यप] १. हथेली से पहुँचाया हुआ माघात। यपपट। २. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का माघात। धक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का यपेड़ा। उ०—यपकी देने लगी तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पु० ४१३।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

थपोड़ी^७—सका स्त्री० [मनु०] दे० 'यपड़ी'।

थप्पा^८—सका पुं० [मनु०] यप का सा शब्द। उ०—यप्प यप्प यनवार कइ सुनि रोमाचिम भग।—कीर्ति०, पु० ८४।

थप्पड़—सका पुं० [मनु० यप यप] १. हथेली से किया हुआ माघात। तमाचा। झापड़। थपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—यप्पड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना। झापड़ मारना।

२. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का माघात। धक्का। जैसे, पानी के हिलोर का यप्पड़, हवा के झोंके का यप्पड़। ३. दाद या फुंसियों का छत्ता। चकड़ा।

थप्पण—वि० [सं० स्थापन, प्रा० यप्पण] स्थापित करनेवाला। बसानेवाला। रक्षा करनेवाला। उ०—साहा ऊयप यप्पणो, पढ़ तरनाही पय।—रा०, क०, पु० १०।

थप्पन—सका पुं० [सं० स्थापन, प्रा० यप्पण] स्थापन। स्थापित करना। उ०—तुपति को यप्पन उयप्पन समयं सयुसात सुत करे करतूति चित्त चाह की।—महि० प्र०, पु० ३७२।

थप्परि—सका स्त्री० [सं० स्थापन, प्रा० यप्पण] न्यास। धरोहर। उ०—राज सुनो चालुक कहै है यप्परि इह कप। राति परी जुव नहि करे प्राप्त करे फिर पुढ।—पु० रा०, १। ४६१।

थप्पा—सका पुं० [लघ०] एक प्रकार का जहाज।

थविर—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्पविर, प्रा० थविर] दे० 'स्पविर'।—
सावयधम्म दोहा, पृ० १२८।

थम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थम] १ खम्भा। लाट। स्तम्भ।
थुनी। उ०—धरती पैठि गगन थम रोपी इस बिधि बन
पेड़ पेले।—रामानन्द०, पृ० १५। २. केलो की पेढी। ३.
छोटी छोटी पूरियाँ और हलुमा जिसे देवी को चढ़ाने के लिये
छियाँ ले जाती हैं।

थमकाना—क्रि० सं० [हिं० थमकना या ठमकना का प्रे० रूप]
स्तम्भित करना। रोकना। उ०—साँस को थमका कर सारे
बदन को कडा किया और जमाई ली।—नई०, पृ० ६६।

थमकारी—वि० [सं० स्तम्भकारिन्] स्तम्भ करनेवाला। रोकने-
वाला। उ०—मन बुधि चित अहंकार दर्थे इन्द्रिय प्रेरक
थमकारी।—सूर (शब्द०)।

थमना—क्रि० प्र० [सं० स्तम्भन (= रकना)] १. रकना। ठहरना।
चलता न रहना। जैसे, गाड़ी का थमना, कोल्हू का थमना।
२. जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का थमना,
आँसुओं का थमना। ३. धीरज धरना। सन्न करना। ठहरा
रहना। उतावला न होना। जैसे,—थोड़ा थम जाओ, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

थमुआँ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० थामना] नाव के डंडे का हथ्या।

थम्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] [स्त्री० थम्मी] दे० 'थंम'। उ०—(क)
थम्मा के गलि लागई अहि सिर पर अगनि अंगारू।—प्राण०,
पृ० २४४। (ख) काम विरह की आठी बाधा। विरह
अग्नि की थम्मी बाधा।—प्राण०, पृ० १५२।

थर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

थर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ दे० 'थल'। उ०—एहि थर वनी
झोडा गजमोचन और अनत कथा सुति गई।—सूर०, १।६।
२. बाघ की माँद।

थरक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थिरक'।

थरकना—क्रि० प्र० [अनु० थर थर + करना] थराना। डर से
फपना। उ०—बंक हग वदन मयक वारे अरु भरि अग
मे ससक परथक थरकत है।—देव (शब्द०)।

थरकाना—क्रि० सं० [हिं० थरकना] डर से कपाना।

थरकुलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थाली] दे० 'थरलिया'।

थर थर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से कपाने की मुद्रा।

मुहा०—थर थर करना = डर से कपाना।

थर थर^२—क्रि० वि० कपाने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे,—बहु डर
के मारे थर थर कपाने लगा। उ०—थर थर कपहि पुर नर
नारी।—तुलसी (शब्द०)।

थरथर कपनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थरथर + कपना] एक छोटी
चिड़िया जो बैठने पर कपती हुई मालूम होती है।

थरथराट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] थरथराहट। कपकपी।
उ०—थरथराट उज्ज्वलो तज्यो भक्कोट कामकृत।—पृ०
रा०, ६१। १८०।

थरथराना—क्रि० प्र० [अनु० थर थर] १. डर के मारे कपना। २.

कपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के भ्रंश लागी
चंद्रमा के चार प्रतिविंब ऐसी थरथरात।—शृंगारसुधाकर
(शब्द०)।

थरथराहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] कपकपी जो डर के
कारण हो।

थरथरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अप० थर थर] कपकपी जो डर के कारण हो।
क्रि० प्र०—घूटना।—लगन।

थरथर—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थर थर'। उ०—थरथर
काइर जाइ रमकि।—प० रासो, पृ० ४२।

थरना^१—क्रि० सं० [म० थुन, हिं० थुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर
चोट लगाना।

थरना^२—सञ्ज्ञा पुं० सुनारो का एक औजार जिससे वे पत्ती को नक्काशी
बनाते हैं।

थरना^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० स्तर, प्रा० त्वर, थर] फैलना। उ०—
कारी घटा डरावनी आई। पापिनि साँपनि सी थरि छाई।—
नद० प्र०, पृ० १६१।

थरपना—क्रि० सं० [सं० स्थापन] स्थापित करना। प्रतिष्ठित
करना। स्थापना। उ०—दरिया साँचा सूरमा, भरि दल
घाले चुर। राज थरपिया राम का, नगर बसा भरपुर।—
दरिया० बानी, पृ० १३। (ख) धधन जाल जुक्त जम दीनी,
कीनी काल थरपना।—रसी० श०, पृ० २२६।

थरमस—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पात्र जिसमें वस्तुओं का
तापमान देर तक सुरक्षित रहता है।

थरसना—क्रि० प्र० [म० थसन] थराना। कपना। बास पाना।
उ०—घनमानंद कोन थनोखी दसा भवि भावरी वावरी है
थरसे।—रसखान०, पृ० ५३।

थरहरना—क्रि० प्र० [देशी थरहर] हिलना डुलना। थरथराना।
कपना। उ०—ताजन पर कलेंगी थरहरई। नृपगन दलदल
सोभा करई।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७०५।

थरहराना—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'थरथराना'।

थरहरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थरहरना] कपकपी जो डर के कारण
हो। उ०—खरी गिदाघी दुपहरी तपनि भरी बन मेह। हहा
अरी यह कहि कहा परी थरहरी देह।—स० सप्तक, पृ० २७६

थरहाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एहसान। निहोरा।

थरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १ बाघ आदि की माँद। चुर। उ०—
सिंह थरि जाने बिन जावली जगल भठी, हटी गज एदिल
पठाय करि भटक्यो।—भूपण प्र०, पृ० १२। २ स्थली।
आवास स्थान। रहने की जगह। उ०—जौ लागि फेरि मुकुति
है परी न पिजर माहँ। जाउँ वेगि थरि आपनि है जहाँ विभ
वनाहँ।—पदमावत, पृ० ३७३।

थरिया—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'।

थरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल] दे० 'थल'।

थरुलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० थारी] छोटी थाली।

थरुहट—सञ्ज्ञा पुं० [देश० थारु] थरुओं की बस्ती।

थरहटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश० थारु] थारु जाति की बोली। उ०—
भीतरी मधेश की निचली तलहटी में 'थरहटी' बोली है, जिसे
थारु लोग बोलते हैं।—नेपाल, पृ० ६८।

थर्ड—वि० [अंग०] तृतीय। तीसरा।

थर्मामीटर—सञ्ज्ञा पुं० [अंग०] सरदी गरमी नापने का यन्त्र। दे०
तापमान'।

थराना—क्रि० प्र० [अनु० थरथर] डर के मारे कांपना। दहलना।
जैसे,—वह घेर को देखते ही थर्रा उठा।

थंयो० क्रि०—उठना।—जाना।

थल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल] १ स्थान। जगह। ठिकाना। उ०—
सुमति भूमि थल हृदय अगाध। वेद पुरान उदधि धन साधू।
—मानस, १। ३६।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना = (१) आराम से बैठना।
(२) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। जमकर
बैठना। आसन जमाकर बैठना।

२ सूखी धरती। वह जमीन जिसपर पानी न हो। जल का
उलटा। जैसे,—(क) नाव पर से उतर कर थल पर आना।
(ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई
पड़ा। ३ थल का मार्ग।

थौ०—थलचर। थलवेडा। जलथल।

४ ऊँची धरता या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके।
५ वह स्थान जहाँ बहुत सी रेत पड़ गई हो। झड़। थली।
रेगिस्तान। जैसे, थर परखर। ६ बाघ की माँद। चुर।
७ बादले का एक प्रकार का गोल (चवन्नी के धरावर का)
साज जिसे चवन्नी की टोपी आदि पर जब चाहे तब टाँक
सकते हैं। ८ फोड़े का छाल और सूजा हुआ घेरा। ब्रणमडल।
जैसे, फोड़े का थल बाँधना।

क्रि० प्र०—बाँधना।

थलफना—क्रि० प्र० [सं० स्थूल, हिं० धूला, धुलधुला] १ कसा या
तना न रहने के कारण झोल खाकर हिलना या फूलना पच-
कना। झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना। उ०—थोद
थलकि वर चाल, मनो मृदग मिलावनो।—नद० प्र०, पृ०
३३४। २. मोटाई के कारण शरीर के मांस का हिलने डोलने
में हिलना। थलथल करना।

थलचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव।
उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड चेतन जीव
जहाना।—मानस, १। ३।

थलचारी—वि० [सं० स्थलचारिन्] भूमि पर चलनेवाले।

थलज—वि० [सं० स्थल + ज] स्थल पर उत्पन्न। उ०—थलज
जलज झलमलत ललित बहु भँवर उडावे। उडि उडि परत
पराग कछु छवि कहत न आवे।—नद० प्र०, पृ० २६।

थलथल—वि० [सं० स्थूल, हिं० धूला] मोटाई के कारण झूलता या
हिलता हुआ।

मुहा०—थलथल करना = मोटाई के कारण किसी भंग का

झूल झूलकर हिलना। जैसे,—चलने में उसका पैर थलथल
करता है।

थलथलाना—क्रि० [हिं० धूला] मोटाई के कारण शरीर के मांस
का झूलकर हिलना।

थलपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—स्रवन नमन
मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी (शब्द०)।

थलवेडा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० थल + वेडा] नाव या जहाज ठहरने की
जगह। नाव लगने का घाट।

मुहा०—थलवेडा लगना = ठिकाना लगना। आश्रय मिलना।
थल वेडा लगाना = ठिकाना लगाना। आश्रय ढूँढ़ना।
सहारा देना।

थलभारी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० थल + भारी] पालकी के कहारों की एक
बोली जिससे वे पिछले कहारों को आगे रेतीले मैदान का होता
सूचित करते हैं।

थलराना—क्रि० प्र० [हिं० धूलराना] प्रसन्न करना। अनुकूल बनाना।
उ०—नेह नवीका नारि कौं बारि बार का न्याय। थलराए
पै पाइए, नीपीडे न रसाय।—नद० प्र०, पृ० १४१।

थलरुह^④—वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उत्पन्न होनेवाले जंतु वृक्ष
आदि। उ०—जल थलरुह फल फूल सलिल सब करत पेम
पहुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

थलिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] थाली। टाठी।

थली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. स्थान। जगह। जैसे, पर्वतथली,
वनथली। २. जल के नीचे का तल। ३. ठहरने या बैठने की
जगह। बैठक। उ०—थली में कोई सरदार था, उसके पास
एक बैण्णव साधु आ गया।—कबीर सा०, पृ० ६७२। ४.
परती जमीन। ५. बालू का मैदान। रेतीली जमीन। ६. ऊँची
जमीन या टीला।

थवई—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थपति, प्रा० थवइ] मकान बनानेवाला
कारीगर। ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला शिल्पी। राज।
मेमार।

थवन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०, या सं० स्थापन] कुलहिन की तीसरी बार
अपने पति के घर की यात्रा।

थसकना—क्रि० प्र० [देश०] नीचे की ओर दबना। धसकना।

थचना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थपना] जुलाहे के उपयोग
में आनेवाला कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई
लकड़ी के छेद में चरखी की लकड़ी पड़ी रहती है। इस चरखी
के घूमने से नारी भरी जाती है (जुलाहे)।

थह—सञ्ज्ञा पुं० [देशी] निवास। निलय। स्थान। गुफा। माँद।
उ०—(क) कानन सदन सभरत कूह कलह भापेट। यह सूतो
वर जगयो सिसु दंपति घटि पेट।—पृ० रा०, १७। ४। (ख)
जार्म नह थह भं जितै सभ हापल साकुल।—वांकी० प्र०,
भा० १, पृ० १३।

थहण^④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल, प्रा० थल, अथवा देशी थह]
स्थान। उ०—कमठ पीठ कलमलिय थहण डलमलिय सुचर
धिर।—रघु० छ०, पृ० ४२।

थहना^७—क्रि० सं० [हि० याह] याह लेना । पता लगाना ।
उ०—थया याह पही नहि जाई । यह धीरे वह धीर रहाई ।
—कबीर (शब्द०) ।

थहरना—क्रि० प्र० [मनु०] काँपना । थहराना । उ०—उत गोल
कपोलन पे प्रति लोल प्रमोल लसी मुक्ता थहरै ।—प्रेमघन०,
भा० १, पृ० १३२ ।

थहराना—क्रि० प्र० [मनु० पर पर] १ दुर्बलता या मय से भगों
का काँपना । कमजोरी या डर से बदन का काँपना ।
२, काँपना ।

थहाना—क्रि० सं० [हि० याह] १. गहराई का पता लगाना ।
याह लेना । उ०—(क) सूर कही ऐसी को त्रिभुवन भावे
सिधु थहाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी तीरहि के
चले समय पाइबी याह । याइ न जाइ थहाइबी सर सरिता
प्रवगाह ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता
लगाना ।

थहारना—क्रि० सं० [हि० ठहराना] जहाज को ठहराना ।

थाँग—संज्ञा स्त्री० [हि० थान] चोरों या डाकुओं का गुप्त स्थान ।
चोरों के रहने की जगह । २ खोज । पता । सुराग (विशेषत
चोर या खोई हुई वस्तु आदि का) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३ भेद । गुप्त रूप से खगा हुआ किसी बात का पता । जैसे,—
बिना थाँग के चोरी नहीं होती । ४. सहारा । आश्रय स्थान ।
उ०—प्रति उमगी री आन प्रीति नदी सु भगाध जल । धार
माँक ये प्रान, दरस थाँग विन नाहि कल ।—ब्रज० प्र०,
पृ० ४ ।

थाँगी—संज्ञा पुं० [हि० थाँग] १ चोरी का माल मोल लेने या
अपने पास रखनेवाला आदमी । २ चोरों का भेदिया । चोरों
को चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला मनुष्य ।
३ चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी । जासूस ।
४ चोरों का गढ़ा रखनेवाला आदमी । चोरों के गोल
का सरदार ।

थाँगीदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० थाँग + दार] थाँग का काम ।

थाँटा—वि० [देश०] भीतल । प्रसन्न । ठठा । उ०—पेड़ पेड़ ज्यौंरा
पिसण त्यारि कडवा बैण । जग जाँतू देखे जले नहि थाँटा हूँ
नैण ।—चौकी० प्र०, भा० ३, पृ० ७६ ।

थाँण—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० थाण] स्थान । ठिकाना ।
उ०—थाँणो भायो राय भापणो ।—वी० रासो, पृ० १०७ ।

थाँभ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. खम्भा । २. झूनी । चाँड़ । उ०—
थाम नाहि उठि सके न झूनी ।—जायसी प्र०, पृ० १५७ ।

थाँभना—क्रि० सं० [हि० थाम] दे० 'थामना' ।

थाँभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खम्भा । स्तम्भ । उ०—कोई सज्जन

भाबिया, जाँह की जोती चाट । थाँभा नाचइ घर हँसइ खेलण
लागी छाट ।—ढोला०, पृ० ५४१ ।

थाँवला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० थल] वह घेरा या गढ़वा जिसमें
कोई पोषा लगा हो । थाला । भालवाल । उ०—सतालो के
भोभा के घर तुलसी का थाँवला होता है ।—प्रा० भा० पृ०,
पृ० २० ।

था—क्रि० प्र० [सं० स्था] है शब्द का भूतकाल । एक शब्द जिससे
भूतकाल में होना सूचित होता है । रहा । जैसे,—वह उस
समय वहाँ नहीं था ।

बिशेष—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के छर बनाने में
भी संयुक्त रूप से होता है । जैसे, भाता था, भाया था, भा
रहा था, इत्यादि ।

थाइल—वि० [सं० स्थायी ?] थाई । स्थायी । उ०—हावनि बहु
भावनि करति मनसिज मन सपजाइ । दाइल वह थाइल करत
पाइल पाइ बजाइ ।—स० सप्तक, पृ० ३६५ ।

थाई^१—वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला । स्थिर-
रहनेवाला । न मिटने या जानेवाला । बहुत दिनों तक
चलनेवाला ।

थाई^२—संज्ञा पुं० १. बैठने की जगह । बैठक । अथाई । २. गीत का
प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है । ध्रुवपद ।
स्थायी ।

थाईभाव—संज्ञा पुं० [सं० स्थायी भाव] दे० 'स्थायी भाव' । उ०—रति
हसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान । मय निदा बिस्मय
सदा, थाईभाव प्रमान ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ३१ ।

थाउं—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हि० ठाँउ, ठाँव] उ०—ऊँचो गढ़
भपरपर थाउ । भमर भजोनी सचि तखत पाउ ।—प्राण०,
पृ० २५२ ।

थाक^१—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १ गाँव की सरहद । ग्रामसीमा । २
थोक । ढेर । समूह । घटाला । राशि । उ०—मधु, मेवा,
पकवान, मिठाई, घर घर तै लै निकसी थाक ।—नद० प्र०,
पृ० ३६० । ३ सीमा । हद । उ०—मेरे कहाँ थाकु गोरस
को नवनिधि मंदिर यामहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

थाक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० थकना] थकावट ।

क्रि० प्र०—लगना ।

थाकना—क्रि० प्र० [सं० स्था, वग० थाका] १ शक्ति न रहना ।
थक जाना । थिथिल होना । रुकना । उ०—थाकी गति भगन
की, मति परि गई मद सुखि झामरी सी हूँके देह लागी
पियरान ।—हरिश्चंद्र—(शब्द०) । २ रुकना । ठहरना ।
उ०—जग जलवूड़ तहाँ लगि ताकी । मोरि नाव खेवक बिनु
थाकी ।—जायसी (शब्द०) । ३ स्तमित होना । ठगा सा
होना । आश्चर्यचकित होना । उ०—रतन प्रमोलक परख
कर रहा जीहरी थाक ।—दरिया० बानी, पृ० १८ ।

थाका^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थका' । उ०—थाका होय खिर
के ताँहा ।—कबीर सा०, पृ० १५७८ ।

थाकि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० यकना] यकावट । शैथिल्य ।

थाकु^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाक' ।

थागना^१—क्रि० प्र० [देश०] रुकना । थाकना । उ०—अपणु घर की गम नही पर घर यागे काय । हस हंस की गम बले कागा काग की पाय ।—राम० धर्म०, पृ० ७२ ।

थाट^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] स गीत में रागों का आधार । दे० 'ठाट' ।

थाट^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कामना । मनोरथ । उ०—रिहया बाट करे जो राघव थाट सपूरण यावे ।—रघु० क० पृ० ६५ ।

थाटनहार—वि० [हि० ठाटना (= बनाना)] ठाठने (बनाने सेवारने) वाला । उ०—थाटनदारा एको सीई एक ही रीति एक ते आई ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

थात^१—वि० [सं० स्थातृ, स्थाता] जो बैठा या ठहरा हो । स्थित । उ०—हैं पिक बिब बतीस वज्रकन एक जलज पर थात ।—सूर (शब्द०) ।

थाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थात] १. स्थिरता । ठहराव । ठिकान । रहन । उ०—सगुन ज्ञान विराग भक्ति सुसाधनन की पाति । भाजि विकल विलोकि कलि भ्रम ऐगुनन की थाति ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'याती' ।

याती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थात] १. समय पर काम आने के लिये रखी हुई वस्तु । २. वह वस्तु जो किसी के पास इस विषय पर छोड़ दी गई हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । उ०—दुइ धरदान भूप सन याती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सचित धन । इकट्ठा किया हुआ धन । रक्षित द्रव्य । जमा । पूँजी । गय । ४. दूसरे का धन जो किसी के पास इस विचार से रखा हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । प्रमानत । उ०—बारहि बार चलावत हाथ सो का मेरी छाती में याती धरी है ।—(शब्द०) ।

याथी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'याती' । उ०—कहैं कबीर जतन करो साधो, सत्तगुरु की याथी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४८ ।

थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थान] १. जगह । ठौर । ठिकाना । २. रहने या ठहरने की जगह । डेरा । निवासस्थान । ३. किसी देवी देवता का स्थान । देवल । जैसे, माई का थान । उ०—इह गोपेसुर थान प्रपूरव । नित प्रति निसा ऊतरे सोरभ ।—पृ० रा०, १। ३६८ । ४. वह स्थान जहाँ घोड़े या घोषाएँ बाँधे जायें ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो खूँटे से बंधा बंधा नटखटी करे । घुड़साल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे, बाहर कुछ न बोले । अपनी गली में ही शेर बननेवाला । थान का सच्चा=सीधा घोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से छूटकर फिर अपने खूँटे पर आ जाय । थान में आना=(घोड़े का) घूल में लोटना । अच्छे थान का घोड़ा=अच्छे जाति का घोड़ा । प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा ।

५. वह घास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है । ६. कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी लवाई बँधी हुई होती है । जैसे,

मारकीन का थान, गोटे का थान । ७. सख्या । मदद । जैसे, एक थान मशरफी, चार थान गहने, एक थान कलेजी । ८. लिंगेन्द्रिय (बाजार) ।

थानक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थानक] १. स्थान । जगह । २. नगर । ३. थावंला । थाला । थाल बाल । ४. फेन । बबूला । आग । ५. देवस्थान । देवल । उ०—राजन मन चकित भयो सुनि थानक की बिद्धि ।—पृ० रा०, १। ४०१ ।

थानपती^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] स्थान का अधिकारी । स्वामी । उ०—तहें मिले प्रीतम फिर नही विछोहा । तहें थानपती निज महली सोहा ।—प्राण०, पृ० १६० ।

थाना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थानक, प्रा० थाण, हि० थान] १. महुआ । टिकने या बैठने का स्थान । उ०—पुण्यभूमि पर रहे पापियों का थाना क्यों ?—साकेत, पृ० ४१६ । २. वह स्थान जहाँ अपराधों की सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस की बड़ी चौकी ।

मुहा०—थाने चढ़ना=थाने में किसी के विरुद्ध सूचना देना । थाने में इतला करना । थाना बिठाना=पहरा बिठाना । चौकी बिठाना ।

३. बाँसो का समूह । बाँस की कोठी ।

थानापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता । स्थानरक्षक । देवता ।

थानी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] १. स्थान का स्वामी । वह जिसका स्थान हो । २. दिक्पाल । लोकपाल । ३. घरवाला । स्वामी । पति । उ०—तेरा थानी क्यों मुखा गह क्यों न राखा वाहि । सहजो बहुतक मिल छुटै चोरासी के माहि ।—सहस्र०, पृ० २३ ।

थानी^२—वि० सपन्न । पूरा ।

थानु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थाणु] शिव ।

थानुसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थाणु + सुत, प्रा० थाणु + सं० सुत] शिव जी के पुत्र गरुड । गजानन । उ०—थोरे थोरे मदनि कपोल फूले धूले धूले, ढोलें जल थल बल थानुसुत नाखे हैं ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० १३१ ।

थानेत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थान] दे० 'थानेत' ।

थानेदार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थाना + फा० दार] थाने का वह अधिकार या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छानबीन करने के लिये नियुक्त रहता है ।

थानेदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थाना + फा० दारी] थानेदार का पद या कार्य ।

थानेत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थान + ऐत (प्रत्यय०)] १. किसी स्थान का अधिकारी । किसी चौकी या मंडूके का मालिक । २. किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] १. तबले, मृदंग आदि पर पुरे पजे का आघात । थपकी । ठोक । उ०—मुट्ठ मागं पर भी द्रुत लय में यथा मुरज की थापें हैं ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

२. पनड़ । उमाथा । पूरे पजे का घापात । जैसे, घेर की याप, पड़वानों की याप ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

३. वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर घेठने से पड़े । एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान । घाप । जैसे, दीवार पर गोले पंजे का याप, बालु पर पैर की याप ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—लगाना ।

४. स्थिति । उमाव । ५. किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका करना मानें, मय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें । महत्वस्थापन । प्रतिष्ठा । मर्यादा । धाक । साक । उ०—कहे पदमाकर मुमहिमा मही मे भई महादेव देवन में बाढ़ी घिर याप है ।—पचाकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—होना ।

६. मान । कदर । प्रमाण । जैसे,—उनकी बात की कोई याप नहीं । ७. पचायत । ८. छपव । सोगध । कसम ।

मुहा०—किसी की याप देना = किसी की कसम मगाना । छपव देना ।

यापयि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना, प्रा० यावणा] स्थिरता । स्थापना । स्थैर्य । धारिता । उ०—यापयि पाई धिति भई, सतगुर दोन्ही धोर । कबीर हौरा बणजिया, मानसरोवर तीर ।—कबीर पं०, पृ० २८ ।

थापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करने की क्रिया । जमाने या बैठाने की क्रिया । २. किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य । रखने का कार्य । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि धामन । रघुकुल तिलक भुवाल सदा तुम उचपन थापन ।—तुलसी (शब्द०) ।

थापनहार—वि० [सं० स्थापन, हि० थापन + हार] स्थापन या थापन करनेवाला । प्रतिष्ठित करनेवाला । उ०—मयपन थापन-हारा ।—परनी०, पृ० ४२ ।

थापना^१—क्रि० सं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना । जमाना । बैठाना । जमाकर रखना । उ०—सिग यागि विधिवन करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दुजा ।—मानस, ६।२ । २. किसी गीली सामग्री (मिट्टी, गोबर आदि) को हाथ या सोंबे से पीट छथका दबाकर कुछ बनाना । जैसे, उपले थापना, छपड़े थापना, हँट थापना ।

थापना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] १. स्थापन । प्रतिष्ठा । रखने या बैठाने का कार्य । उ०—जहँ लगि तीरथ देखहु जाई । इनही सब थापना अपाई ।—कबीर मं०, पृ० ४७० । २. मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा । जैसे, दुर्गा की थापना । उ०—करिहो इही समु थापना । मोरे हृदय परम कतारना ।—मानस, ६।२ । ३. नरनाम में दुर्गापूजा के लिये घटस्थापना ।

थापरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थाप + र (प्रत्यय)] दे० 'थापक' ।

थापरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] छोटी नाव । डोगी (लश०) ।

थापा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० थाप] १. हाथ के पजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेहदी, रंग आदि) से पुती हुई हथेली की जोर से दबाने या मारने से बन जाता है । पजे का घापा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं ।

२. गाँव में देवी देता की पूजा के लिये किया हुआ बंदा । पुजारा । १. खेलेयान में मनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से डाना हुआ चिह्न जो इसलिये डाला जाता है जिसमें यदि कोई छुरावे तो पता लग जाय । चौकी । ४. वह सोंबा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न अंकित किया जाय । घापा । ५. वह सोंबा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या डालकर कोई वस्तु बनाई जाय । जैसे, हँट का थापा, सुनारो का थापा । ६. डेर । राशि । उ०—सिर्दाहि दरब भागि के थापा । कोई जरा, जार, कोई तापा ।—जायसी (शब्द०) । ७. नेपालियों की एक जाति ।

थापा—सञ्ज्ञा [सं० स्थापना, हि० थाप] घाघात । थपकी । थाप । थप्पड़ । उ०—जहाँ जहाँ दुख पाइया गुरु को थापा सोय । जत्रही सिर टक्कर लगे तत्र हरि सुमिरन होय ।—मल्लकं०, पृ० ४० ।

थपिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थापन] दे० 'थापी' ।

थापी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थापना] १. काठ का चिपटे और चौड़े सिरे का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटते हैं । २. वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर गच्च पीटते हैं । ३. थपकी । हथेली से किया हुआ घाघात । थाप । उ०—कबीर साहब ने उस गाय को थापी दिया ।—कबीर मं०, पृ० ११४ ।

थाम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थम] १. खम्भा । स्तम्भ । २. मस्तूल (लश०) ।

थाम^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० थामना] थामने की क्रिया या ढग । पकड़ ।

थामना—क्रि० सं० [सं० स्तम्भन या स्तम्भन, प्रा० थमन (= रोकना)] १. किसी चलती हुई वस्तु को रोकना । गति या वेग प्रवरद्ध करना । जैसे, चलती गाड़ी को थामना, बरसते मेह को थामना ।

सयो० क्रि०—देना ।

२. गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना । गिरने पड़ने से बचाना । जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना ।

सयो० क्रि०—लेना ।

३. पकड़ना । ग्रहण करना । हाथ में लेना । जैसे, छड़ी थामना । उ०—इस किनाब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ ।—संयो० क्रि०—लेना ।

४. सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । संभालना । जैसे,—
पंजाब के गेहूँ ने थाम लिया, नहीं तो मन्न के बिना बड़ा
कष्ट होता ।

संयो० क्रि०—लेना ।

५ किसी कार्य का भार ग्रहण करना । अपने ऊपर कार्य का
भार लेना । जैसे,—जिस काम को तुम ने थामा है उसे पूरा
करो । ६ पहरों में करना । चौकसी में रखना । हिरासत
में करना ।

थाम्हा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १ स्तम्भ । खम्भा । टेक । उ०—
बाद सूरज कियो तारा गगन लियो बनाय । थाम्ह थूनी
बिना देखी, रख लियो ठहराय ।—जग० श०, भा० २,
पृ० १०६ ।

थाम्हना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'थामना' ।

थाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाय] दे० 'स्थान' । उ०—धमकंत
धरनि महि सिर निह्लय । हलहलिय द्विग उद्विग थाय ।
पुर धूरि पूरि जुटिनि भमिनि । बिसि व दिसि राज पसरंत
किति ।—पु० रा०, १ । ६२५ ।

थायी०—वि० [सं० स्थायी] दे० 'स्थायी' ।

थारा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाल' । उ०—भावना थार
हुसास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति ।—घनानंद,
पृ० १४६ ।

थारा०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ठोकर । घाघात । उ०—हृयलुर थारन,
छार फुटि गिरि समुद्र पक हुन ।—प० रासो, ७४ ।

थारा—सर्व० [हिं० तिहारा] तुम्हारा । उ०—भनमेल्हुं पाणी
तिजुं कहित (१) गोरी थारा जनम की बात ।—बी० रासो,
पृ० ३४ ।

थारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] दे० 'थाली' ।

थारू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जो नेपाल की तराई में
पाई जाती है ।

विशेष—यह पूर्व से पश्चिम तक बसी हुई है और अपने रीति-
रिवाज, जादू टोना आदि रुढ़िगत विश्वास से बंधी हुई है ।
इसे लोग पुरानी जनजाति मानते हैं और वर्णव्यवस्था में
इनका स्थाननाम शूद्र का रखते हैं ।

थाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० थाली] बड़ी थाली । कसि या पीतल का बड़ा
छिछला बरतन ।

थाला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] १ वह घेरा या गड्ढा जिसके
भीतर पोषा लगाया जाता है । थालेला । मालवाल । २
कुडी जिसमें ताना लगाया जाता है (लण०) । ३ फोड़े का
घेरा । फोड़े की सूजन । ग्रण का शोथ ।

थालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] दे० 'थाली' । उ०—सोरह
सिगार किए पीतम को ध्यान दिए, हाथ किए मगलमय
कनक थालिका ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० २६८ ।

थालिका—सञ्ज्ञा [हिं० थाला] बूझ का थाला । मालवाल ।
उ०—पुरजन पूजोपहार सोमित ससि धवल धार भंजन
भवभार भक्ति कल्प थालिका ।—तुलसी (शब्द०)

४-६६

थाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली (= बटलोई)] १ कसि या
पीतल का गोल छिछला बरतन जिसमें खाने के लिये भोजन
रखा जाता है । बड़ी तरतरी ।

मुहा०—थाली का बैगन = लाभ और हानि देख कभी इस पक्ष,
कभी उस पक्ष में होनेवाला । मस्तिर सिद्धांत का । बिना पैंदी
का लोटा । उ०—जबरलूँ होंगे उनकी न कहिए । यह थाली
के बैगन हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९ । थाली जोड़ =
कटोरे के सहित थाली । थाली और कटोरे का जोड़ा । थाली
फिरना = इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच थाली फेंकी
जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे । भारी
भीड़ होना । थाली बजना = साँप का विष उतारने का मंत्र
पढ़ा जाना जिसमें थाली बजाई जाती है । थाली उजाना =
(१) साँप का विष उतारने के लिये थाली बजाकर मंत्र
पढ़ना । (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये
थाली बजाने की रीति करना ।

२. नाच की एक गत जिसमें थोड़े से घेरे के बीच नाचना
पड़ता है ।

थौं—थाली कटोरा = नाच की एक गत जिसमें थाली और
परबंद का मेल होता है ।

थाब—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'थाह' ।

थावर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थावर] दे० 'स्थावर' । उ०—नर पशु कीठ
पतंग में थावर जगम मेल ।—स० सप्तक, पृ० १७८ ।

थाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्था] १. नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे
की जमीन । जलाशय का तलभाग । धरती का वह तल
जिसपर पानी हो । गहराई का अंत । गहराई की हद ।
जैसे,—जब थाह मिले तब तो लोटे का पता लगे ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुहा०—थाह मिलना = जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो
जाना । पानी में पैर टिकने के लिये जमीन मिल जाना ।
हूबते को थाह मिलना = निराश्रय को आश्रय मिलना । सकल
में पड़े हुए मनुष्य को संहारा मिलना ।

२. कम गहरा पानी । जैसे,—जहाँ थाह है वहाँ तो हलकर पार
कर सकते हैं । उ०—चरण धूते हो जमुना थाह हुई ।—
खल्लू (शब्द०) । ३ गहराई का पता । गहराई का अन्त ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।

मुहा०—थाह लगना = गहराई का पता चलना । थाह लेना =
गहराई का पता लगाना ।

४. अंत । पार । सीमा । हद । परिमिति । जैसे,—उनके धन की
थाह नहीं है । ५. संख्या, परिमाण आदि का अनुमान । कोई
वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता । जैसे,—उनकी
बुद्धि की थाह इसी बात से मिल गई ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।—लगना ।

मुहा०—थाह लेना = कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी
जाँच करना ।

६. किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय।
प्रप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। भेद। जैसे,—इस बात की
थाह लो कि वह कहीं तक देने की तैयार है।

क्रि० प्र०—पाना।—लेना।

मुहा०—मन की थाह = मत करण के गुप्त अभिप्राय की जान-
कारी। चिन्ता की बात का पता। संकल्प या विचार का पता।
उ०—कुटिल जनन के मनन की मिलति न कवहूँ थाह।—
(शब्द०)।

थाहना—क्रि० सं० [हि० थाह] १. थाह लेना। गहराई का पता
खलना। २. प्रंदाज लेना। पता लगाना।

थाहरी—वि० [हि० थाह] १. छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें
जल गहरा न हो। उ०—खरखराइ जमुना गह्यो प्रति थाहरो
सुभाय। मानहु हरि निज पाँव ते दीनी ताहि दवाय।—
सुकवि (शब्द०)।

थिएटर—सङ्घ पु० [म०] १. रंगमणि। रंगशाला। २. नाटक का
प्रभिनय। नाटक का तमाशा। उ०—बलव, कमेटी, थिएटर
घोर होटलों में।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ७५।

थिगली—सङ्घ स्त्री० [हि० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए
कपड़े या घोर किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका
या लगाया जाय। चकती। पैवद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना = ऐसी जगह पहुँचकर काम करना
जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भिडाना। युक्ति
लगाना। बादल में थिगली लगाना = (१) अत्यन्त कठिन
काम करना। (२) ऐसी बात कहना जिसका होना
असम्भव हो।

थित^३—वि० [सं० स्थित] १. ठहरा हुआ। २. स्थापित। रखा
हुआ। उ०—भए घरम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज
लागे।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २७२।

थिति^३—सङ्घ स्त्री० [सं० स्थिति] १. ठहराव। स्थायित्व। २.
विश्राम करने या ठहरने का स्थान। ३. रहाइस। रहन।
४. बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईश रजाइ सीस सब
ही छे। उत्पति थिति, लय विपद्द भरी के।—तुलसी
(शब्द०)। ५. अवस्था। दशा।

थितिभाव^३—सङ्घ पु० [सं० स्थिति भाव] दे० 'स्थायी भाव'।

थिबाऊ—सङ्घ पु० [देश०] दाहिने भग का फडकना आदि जिसे ठग
लोग प्रशुभ समझते हैं (ठग)।

थियेटर—सङ्घ पु० [म०] १. वह मकान जहाँ नाटक का प्रभिनय
दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटकघर। २. भिनय।
नाटक।

थियोसोफिस्ट—सङ्घ पु० [म०] थियोसोफी के सिद्धांत को माननेवाला।

थियोसोफी—सङ्घ स्त्री० [म०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति
अथवा भ्रमा के प्रभाव से हुमा हो।

थिर^१—वि० [सं० स्थिर] १. जो चलता या हिलता डोलता न हो।

ठहरा हुआ। प्रचल। २. जो प्रचल न हो। शांत। धीर। २.
जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिर^३—सङ्घ स्त्री० [सं० स्थिरा] स्थिरा। पृथ्वी। उ०—थिर
घूर हुमा कर सूर थके। छल पेख वृंदारक व्योम छके।—
रा० क०, पृ० ३६।

थिरक—सङ्घ पु० [हि० थरकना] नृत्य में चरणों की चंचल
गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठाना
और गिराना।

थिरकना—क्रि० प्र० [सं० अस्थिर + करण] १. नाचने में पैरों का
क्षण क्षण पर उठाना और गिराना। नृत्य में अगसचालन
करना। जैसे, थिरक थिरककर नाचना। २. अग मटका-
कर नाचना। ठमक ठमककर नाचना।

थिरकौह^१—वि० [हि० थिरकना + प्रौह (प्रत्य०)] थिरकनेवाला।
थिरकता हुआ।

थिरकौह^२—वि० [सं० स्थिर] ठहरा हुआ। रुका हुआ। उ०—दग
थिरकौहें भगखुलें देह थैंकोहें डार। सुरत सुखित सी देखियति
दुखित गरभ के भार।—विहारी (शब्द०)।

थिरचर—सङ्घ पु० [सं० स्थिर + चल] स्थावर और जंगम। उ०—
तान लेत चित की चोपन सी मोहै वृंदावन के थिर चर।
—ब्रज० प्र०, पृ० १५९।

थिरजीह^३—सङ्घ पु० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरता^३—सङ्घ स्त्री० [सं० स्थिरता] १. ठहराव। अचलत्व। २.
स्थायित्व। प्रचलता। ३. शांति। धीरता।

थिरताई^३—सङ्घ स्त्री० [सं० स्थिर + ताति (वै० प्रत्य०)]
दे० 'थिरता'।

थिरथानी^३—सङ्घ पु० [सं० स्थिर + स्थान] थिर स्थानवाले,
लोकपाल आदि। उ०—सुकुत सुमन तिल मोद बासि विधि
जतन जत्र भरि कानी। सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि
खेलख थिरथानी।—तुलसी (शब्द०)।

थिरथिरा—सङ्घ पु० [देश०] एक प्रकार का तुलसी जो जाड़े के दिनों
में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० प्र० [सं० स्थिर, हि० थिर + ना (प्रत्य०)] १. पानी
या घोर किसी द्रव पदार्थ का हिलना डोलना बंद होना।
हिलते डोलते या लहराते हुए जल का ठहर जाना। जल का
क्षय न रहना। २. जल के स्थिर होने के कारण उसमें
घुली हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूमना
आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे में
जाकर जमना। ३. मेल आदि नीचे बैठ जाने के कारण जल
का स्वच्छ हो जाना। ४. मेल, धूल, रेत आदि के नीचे
बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर रह
जाना। निथरना।

थिरा^३—सङ्घ स्त्री० [सं० स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना^१—क्रि० सं० [हि० थिरना] १. पानी आदि का हिलना
डोलना बंद करना। धुव्व जल को स्थिर होने देना। ३

धुली हुई मेल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना । ४. किसी वस्तु को जल में धोलकर और उसमें मिली हुई मेल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठकर साफ करना । नितारना ।

धिराना^३—क्रि० प्र० दे० 'धिरना' । उ०—दोहन को रूप गुण दोउ भरनत फिरें, पल न धिरात रीति नेह को नई नई ।—देव० ।

धी^१—क्रि० प्र० [हि०] 'ही' के भूतकाल 'धा' का स्त्री० ।

धी^२—प्रत्य [देश०] से । उ०—इद्रसिध दक्षिण यो प्रायो ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

धीकरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थित + कर] किसी आपत्ति के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गाँव का प्रत्येक समय मनुष्य बारी बारी से अपने ऊपर लेता है ।

धीजना—क्रि० प्र० [सं० स्था] टिक जाना । प्रचल होना । स्थिर रहना । उ०—मन तुम तन मँडरात है नहिं धीजे हा हा । घनानद, पृ० ३६७ ।

धीता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थिति] सत्य । वस्तुस्थिति । उ०—धीत चीन्हें नही पयल पूजता फिरे करम मनक करि नरक लोन्हा ।—स० दरिया, पृ० ८३ ।

धीता^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थित, हि० धित] १. स्थिरता । धाति । २. कल । चैन । उ०—धीतो परे नहिं धीतो चवेयन देखत पीठि दे डोठि के पेनी ।—देव (शब्द०) ।

धीती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति, प्रा० धिइ] संतोष । ठाढ़स । स्थिरता । उ०—टंकु पिपास, बांधु जिय धीतो ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५२ ।

धीथी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] स्थिरता । २. धैर्य । धीरज । इतमीनान ।

धीन—वि० [प्रा० धीण, घिएण] घन । स्त्यान । कठिन । जमा हुआ । उ०—सुमट्ट सुसरं कुषट्ट सु कीन उलथ्ये समेजी पृतं जान धीन ।—पु० रा०, २५ । ५५५ ।

धीर^१—वि० [सं० स्थिर] स्थिर । ठहरा हुआ । मझोल । उ०—(क) उलथहि मानिक मोती हीरा । दरब देखि मन होइ न धीरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पियरे मुख श्याम शरीरा । कहै रहत नहीं पल धीरा—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२६ ।

धुँदला^१—वि० [अनु०] धुलधुल । फूला हुआ । भड़ा । उ०—मोटा तन व धुँदला धुँदला मू व कुच्ची माल व मोटे मोठ मुखदर की आमद आमद है ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६ ।

धी०—धुँदला धुँदला = धुलधुल ।

धुक्वाना—क्रि० सं० [हि० धूकना] दे० 'धुकाना' ।

धुक्हाई—वि० स्त्री० [हि० धूक + हाई (प्रत्य०)] ऐसी (स्त्री) जिसे सब लोग धूकें । जिसकी सब निंदा करते हों ।

धुकाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूकना] धूकने का काम ।

धुकाना—क्रि० सं० [हि० धूकना का प्रे० रूप] १ धूकने की क्रिया दूसरे से कराना । दूसरे को धूकने की प्रेरणा करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२ मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना । उगलवाना । जैसे,—वच्चा मुँह में मिट्टी लिए है, जल्दी धुकाओ । ३. धुकी धुकी कराना । निंदा कराना । तिरस्कार कराना । जैसे,—क्यों ऐसी झाल चलकर गली गली धुकाते फिरते हो ।

धुकायला^१—वि० [हि० धूक + मायल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग धूकें । जिसे सब लोग धिक्कारें । तिरस्कृत । निंदा ।

धुकेला^१—वि० [हि० धूक] दे० 'धुकायल' ।

धुक्का^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूक] निंदा । घृणा । धिक्कार ।

धी०—धुक्का धुक्की = परस्पर निंदा, धिक्कार या घृणा ।

धुक्का फजीह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूक + म० फजीह] निंदा और तिरस्कार । धुकी धुकी । धिक्कार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धुक्की—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूक] रेशम के तागे को धूक लगाकर सुलझाने की क्रिया (जुलाहे) ।

धुकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु० धू धू (= धूकने का शब्द)] घृणा । और तिरस्कारसूचक शब्द । धिक्कार । लानत । फिट । जैसे,—धुकी है तुम्हको ।

मुहा०—धुकी धुकी करना = धिक्कारना । निंदा और तिरस्कार करना ।

धुत—वि० [सं० स्तुत, स्तुत्य, प्रा० धुम, धुत] प्रशंस्य । प्रशसनीय । उ०—कनकज जैचंद मात भयो सभरि बहिनी सुत । तिन पवत दुज पठिय बार जर चीर थपिय धुत ।—पृ० रा०, १।६९० ।

धुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] स्तवन । प्रार्थना । स्तुति । उ०—जोरि हस्य धुति मत्र फिरयो पुरदच्छि लगि पय । रुधिर नयन प्रारक्त कठ लग्यो सु मुक्ति भय ।—पृ० रा०, १।१०८ ।

धुत्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धूत्कार' ।

धुथना—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धूथन' ।

धुथराई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] मुँह लटकना । तुलना में न्यूनता माना । उ०—जान महा गन्वे गुन में घन मानंद हेरि रस्यो धुथराई । पेने कटाच्छनि भोज मनोज के बानन बीच बिधी मुथराई ।—रसखान, पृ० १०४ ।

धुथराना—क्रि० प्र० [हि० धोडा] धोड़ा पड़ना ।

धुथाना—क्रि० प्र० [हि० धूथन] धूथन फुलाना । मुँह फुलाना । नाराज होना ।

धुथलाना—क्रि० प्र० [अनु०] धलथलाना । कपित होना । झल्लाना । भभक पड़ना । उ०—रामनाथ क्रोध में धुथला गया ।—भस्मावृत०, पृ० ८१ ।

धुनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूनी] टेक । सहारा । धूनी । उ०—प्रति पुरव पुरे पुण्य रूपी कुल भटल धुनी ।—सूर (शब्द०) ।

धुनेर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्थूल, हि० धून] गठिवन का एक भेद ।

धुन्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल] धूनी । खमा । चौड़ ।

धुपरना—क्रि० [सं० स्तूप, हि० धूप] मङ्गुवे की बालों का डेर लगाकर दबाना जिसमें उनमें कुछ गरमी आ जाय। बंदवाना। धोसाना।

धुपरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तूप] मङ्गुवे की बालों का डेर जो धोसने के लिये दबाकर रखा जाय।

धुरना—क्रि० सं० [सं० धुवण (= मारना)] १. कूटना। २. मारना। पीटना।

धुरहथा—वि० [हि० धोड़ा + हाथ] [वि० श्री० धुरहथी] १ जिसके हाथ छोटे हों। जिसकी हथेली में कम चीज धावे। २. किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु धावे। किरायात करनेवाला। उ०—कन देबो सोंप्यो ससुर बहू धुरहथी जानि। रूप रहचठे लगि लग्यो मंगिन सब जग जानि।—बिहारी (शब्द०)।

धुलना—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कबल।

धुलमा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धुलना'।

धुलो—सञ्ज्ञा श्री० [सं० स्थूल, हि० धूला] किसी भजन के मोटे कण जो दलने से होते हैं। दखिया।

धुवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'धूवा'।

धूक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धूक] दे० 'धूक'।

धूकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धूकना'।

धूथी—सञ्ज्ञा श्री० [देश०] दे० 'धूथनी'। उ०—नतमस्तक हो धूथी को धरती में देकर, सुँघ सुँघकर कूटे के ढेरों के भ्रमर किया न भजन।—दीप ज०, पृ० १६६।

धू—अव्य० [अनु०] १. धूकने का शब्द। वह ध्वनि जो जोर से धूकने में मुँह से निकलती है। २. घृणा और तिरस्कार सूचक शब्द। धिक्। छि। जैसे,—धू धू। कोई ऐसा काम करता है? उ०—बकरी भेड़ा, मछली खायो, काहे गाय चराई। खिर मास सब एकै पाँड़े धू तोरी बम्हनाई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२।

मुहा०—धू धू करना = घृणा प्रकट करना। छि छि करना। धिक्कारना। धू धू होना = चारों ओर से छि छि होना। निंदा होना। धू धू युद्ध = लड़को का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे वेईमानी होने के कारण हार रहे हों।

धूक—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० धू धू] वह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीला रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा मांस की झिल्लियों से छूटता है। फीवन। खखार। लार।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीवों के प्रत्येक भाग तथा मुँह के भीतर की मांसल झिल्लियों में राने की तरह उमरे हुए (प्रत्यत) सूक्ष्म छेद होते हैं जिसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न जलुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य प्रादि प्राणियों के धूक के भाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का अंश होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

—धूक उछालना = व्यर्थ की बकबात करना। धूक बिलोना =

व्यर्थ बकना। अनुचित प्रलाप करना। धूक लगाना = हराना। नीचा दिखाना। धूना लगाना। हेरान और तग करना। धूक लगाकर छोड़ना = नीचा दिखाकर छोड़ना। (विरोधी को) तग और लज्जित करके छोड़ना। बड़ देकर छोड़ना। धूक लगाकर रखना = बहुत सेतकर रखना। जोड़ जोड़कर इकट्ठा करना। कलसी से जमा करना। कृपा-एता से संचित करना। धूकों सत्तू सानना = कलसी या किरायात के मारे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम करने चलना। बहुत थोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य पूरा करने चलना। धूक है = धिक् है। लानत है।

धूकना—क्रि० प्र० [हि० धूक + ना (प्रत्य०)] १ मुँह से धूक निकालना या फेंकना।

सयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न धूकना = अत्यंत घृणा करना। जरा भी पसबन करना। अत्यंत तुच्छ समझकर ध्यान तक न देना। जैसे,—हम तो ऐसी चीज पर धूकों भी नहीं। धूककर चाटना = (१) कहकर मुकर जाना। वादा करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) किसी दी हुई वस्तु को लौटा लेना। एक बार देकर फिर से लेना।

धूकना—क्रि० सं० १ मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना। उगलना। जैसे,—पान धूक दो।

सयो० क्रि०—देना।

मुहा०—धूक देना = तिरस्कार कर देना। घृणापूर्वक त्याग देना।

२ बुरा कहना। धिक्कारना। निंदा करना। तिरस्कृत करना। जैसे,—इसी चाल पर लोग तुम्हें धूकते हैं।

धूथी—सञ्ज्ञा श्री० [वि० स्तूप] दे० 'धूथनी'। उ०—तिहि समय घटल धूथी सुषण्प। गणनाथ पूजि सुभ मंत्र जण्प।—ह० रासो, पृ० १५।

धूत्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धूकने का शब्द। धू धू करना [फो०]।

धूत्कृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धूत्कार'।

धूथन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लवा निकला हुआ मुँह। जैसे, सुभर, घोड़े, ऊँट, बैल प्रादि का।

धूथनी—सञ्ज्ञा श्री० [हि० धूथन] १ लवा निकला हुआ मुँह। जैसे, सुभर, घोड़े, बैल प्रादि का।

मुहा०—धूथनी फेलाना = नाक भी चढ़ाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

२ हाथी के मुँह का एक रोग जिसमें उसके तालु में घाव हो जाता है।

धूथरा—वि० [देश०] धूथन के ऐसा निकला हुआ मुँह। बुरा चेहरा। भद्दा चेहरा।

धूथुनी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धूथन'।

धूत—सञ्ज्ञा श्री० [सं० स्थूणा] धूनी। चाँड़। खभा। उ०—प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। अनु हिरदय गुनग्राम धून पिर रोपहि।—तुलसी (शब्द०)।

यून^२—सखा पुं० एक प्रकार का मोटा पोंडा या गन्ना जो मदरास में होता है। मबरासी पोंडा।

यूना—सखा पुं० [देश०] मिट्टी का लोटा जिसमें परेता खोंसकर सूत या रेशम फेरते हैं।

यूनी—सखा स्त्री० [हि० यून] दे० 'यूनी'।

यूनिया—सखा स्त्री० [हि० यून + इया (प्रत्य०)] दे० 'यूनी'।
उ०—चौदह पंद्रह सालवाले लड़के मछाडा गोठ चुके थे, छप्पर की यूनिया पकड़े हुए बैठकर रहे थे।—काले०, पृ० ३।

यूनी—सखा स्त्री० [सं० स्थूल] १ लकड़ी आदि का गढ़ा हुआ बूझा बल्ला। खंभा। स्तम्भ। यम। २ वह खंभा जो किसी बोझ को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। चाँड। सहारे का खंभा। उ०—चाँद सूरज कियो तारा, गगन लियो बनाय। याम्ह यूनी बिना देखो, राख लियो ठहराय।—जग० श०, छा० २, पृ० १०६।

क्रि० प्र०—लगाना।

३ वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सी का फंदा लगाकर मयानी का डंडा घटकाते हैं।

यून्ही—सखा स्त्री० [सं० स्थूल] दे० 'यूनी'।

यूवी—सखा स्त्री० [देश०] साँप का विष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

यूर^१—सखा पुं० [देश०] समूह। कोठी (बाँस की)। उ०—प्रधिराज प्रबोधिय धार धर हकि साह उप्परि परिय। जानै कि मगि उद्यान वन वस यूर दव प्रज्जरिय।—पु० रा०, १३। १४०।

यूर^२—सखा पुं० [सं० तुवर] घरहर। तूर। तोर।

यूरना^१—क्रि० सं० [सं० युर्वण (=मारना)] १ कूटना। दलित करना। २ मारना। पीटना। उ०—घूरत करि रिस जबहि होति सतहर सम सुरत। घूरत पर वल भूरि हृदय महुँ पूरि गरुरत।—गोपाल (शब्द०)। ३. ठूसना। बस कर भरना। ४ खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

यूरना^२—क्रि० सं० [सं० युट] दे० 'तोडना'।

यूल^(१)—वि० [सं० स्थूल] १ मोटा। भारी। २ भद्दा। उ०—श्रवणादि वचनादि देवता मन न भादि, सूक्ष्म न यूल पुनि एक ही न दोह हैं।—सुवर० प्र०, भा० १, पृ० ७६।

यूला—वि० [सं० स्थूल] [वि० स्त्री० शूलि, शूली] मोटा ताजा। उ०—करतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता फलता मुनि के। सधु दोरघ पातरि शूलि तही सुसमाधि टरे मुनि के मुनि के।—तोष (शब्द०)।

यूली—सखा स्त्री० [हि० यूला (=मोटा)] १ किसी अनाज का दंजा हुआ मोटा कण। दलिया। २ सूजी। ३ पकाया हुआ दलिया जो गाय को बच्चा जनने पर दिया जाता है।

यूवा^१—सखा पुं० [सं० स्थूल, प्रा० यूप, यूव] १ मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। २. गोली मिट्टी का पिंडा या लोंडा। डोमा। भेली। धोधा। ३ मिट्टी का ढहा जो सरहद के निशान के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। ४.

ढूह के आकार का कासा रंगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दुकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। ५. वह बोझ जो कपड़े में बंधी हुई राब के ऊपर जुसी निकालकर वहाने के लिये रखा जाता है। ६. मिट्टी का लोंडा जो बोझ के लिये ढँकली की गाड़ी लकड़ी के छोर पर पोया जाता है।

यूवा^२—सखा स्त्री० [अनु० यूप यूप] युवती। धिक्कार का शब्द।

यूह—सखा पुं० [देश०] भवन का शिखर। मकान की ऊँची छत।—देशी०, पृ० १२५।

यूहड़—सखा पुं० [सं० स्थूल] दे० 'यूहर'।

यूहर—सखा पुं० [सं० स्थूल (=यूनी)] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्ली या डंडे के आकार के डंठल निकलते हैं। उ०—यूहरों से सटे हुए पेड़ मोर झाड़ हरे, गोरज से घूम से जो खड़े हैं किनारे पर।—आचार्य०, पृ० १६८।

विशेष—किसी जाति के यूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिनकुल नहीं होते। फाँटे भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। यूहर के डंठलों और पत्तों में एक प्रकार का कहुँसा दूध भरा रहता है। निकले हुए डंठलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं जिनपर भावरणपत्र या विउली नहीं होती। पुं० और स्त्री० पुष्प मलग मलग होते हैं। यूहर कई प्रकार के होते हैं—जेठे, काँटेवाला यूहर, तिषारा यूहर, चौधारा यूहर, नागफनी, खुरासानी यूहर, विलायती यूहर, इत्यादि। खुरासानी यूहर का दूध विपेला होता है। यूहर का दूध मोष के काम में आता है। यूहर के दूध में सानी हुई चाबरे के भाटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। यूहर के दूध में भिंगोई हुई चने की दाल (भाठ या दस दाने) खाने से अच्छा जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। यूहर की राख से निकाला हुआ खार भी दवा के काम में आता है। काँटेवाले यूहर के पत्तों का लोग प्रचार भी डालते हैं। यूहर का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। वैद्यक में यूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु तथा शूल, गुल्म, मूठ्ठी, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। यूहर को सेहुड़ भी कहते हैं।

पर्या०—स्तुही। समतुग्धा। नागदु। महावृक्षा। सुषा। वच्चा। शीहूँडा। सिहूँड। दडवृक्षक। स्नुक्। स्नुषा। गुड। गुडा। कृष्णसार निस्त्रिषपत्रिका। नेत्रारि। कांडवाख। सिंहतुड। कांडरोहक।

यूहा—सखा पुं० [सं० स्थूल, यूव] १. ढूह। मटाला। २. टीला।

यूही—सखा स्त्री० [हि० यूहा] १ मिट्टी की ढेरी। ढूह। २. मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी वा धिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

यैथर—वि० [देश०] यका हुआ। श्रात। सुस्त। हैरान।

ये^१—सर्व० बहु० [सं० त्वम्] तुज या भाप। उ०—ज्यूं ये जाणउ त्यूं करउ, राजा माइस बोध। डोला०, दु० ६।

येइ येइ^(१)—वि० [अनु०] दे० 'येई येई'। उ०—लाग मान येइ येइ करि उघटव घटव ताल मृदग गेंभोर।—सूर० (शब्द०)।

थेई थेई—वि० [मनु०] तालसूचक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरककर नाचने की मुद्रा और ताल।

क्रि० प्र०—करना।

थेकड़ा—सङ्घा पुं० [हि० टेक, ठेक, थेक (=स्तम्भ, खंभा)] (ला०) शरीररूपी स्तम्भ। शरीर। उ०—सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि नवावे थेक हो।—कबीर सा०, पृ० ४११।

थेगली—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'थिगली'। उ०—पाँच तत्त के गुदडी बनाई। चाँद सुरज दुइ थेगली लगाई।—कबीर सा०, भा० २, १४०।

थेघां—सङ्घा पुं० [दे०] सहारा। अवलंबन। उ०—गगन गरज मेघा, उठए घरनि थेघा। पंचसर हिय बोल सालि।—विद्यापति, पृ० १३५।

थेटी—वि० [दे०] प्रारम्भ का। प्रसली। मुख्य। उ०—प्र मल मड हे माजरा याहर जासी थेटी।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ३४।

थेवा—सङ्घा पुं० [दे०] १ अँगूठी का नगीना। २ किसी घातु का वह पत्र जिसपर मुहर खोदी जाती है। ३ अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जडा जाता है।

थेचा—सङ्घा सङ्घा पुं० [दे०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थे थे—वि० [सं०] वाद्य का अनुकरणार्थक एक शब्द। दे० 'थेई थेई'।

थेरज(ण्)—सङ्घा पुं० [सं० स्थैर्य] कठोरता। स्थिरता। दृढ़ता। उ०—ए हरि तोहर थेरज जत से सब कहत घनि गेखि सून सँकेता रे।—विद्यापति, पृ० २६०।

थैला—सङ्घा पुं० [सं० स्थल (=कपड़े का घर)] [स्त्री० अल्पा० थैली] १. कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। बड़ा कोश। बड़ा बटुआ। बड़ा कीसा।

मुहा०—थैला करना=मारकर ढेर कर देना। मारते मारते ढीला कर देना।

२ रुपयों से भरा हुआ थैला। तोड़ा। उ०—बोल्यो बनजारो दम खोलि थैला दीजिए लू लीजिए लू आया प्राम चरन पठाए है।—प्रियादास (शब्द०)। ३ पायजामे का वह भाग जो जघे से घुठने तक होता है।

थैली—सङ्घा स्त्री० [हि० थैला] १ छोटा थैला। कोश। कीसा। बटुआ। २ रुपयों से भरी हुई थैली। तोड़ा।

मुहा०—थैली खोलना=थैली में से निकालकर रुपया देना। उ०—तब मानिय व्योहरिया बोली। तुरत देउं में थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

थैलीदार—सङ्घा पुं० [हि० थैली+फ्रा० दार] १ वह भ्रामदी जो खजाने में रुपए उठाता है। २ तहवीलदार। रोकडिया।

थैलीपति—सङ्घा पुं० [हि० थैली+सं० पति] पूँजीपति। रुपएवाला। मालदार। उ०—पार्लामेंट में शुद्ध थैलीपतियों का बहुमत था।—सा० ६० ६०, पृ० २६४।

थैलीबरदारी—सङ्घा स्त्री० [हि० थैली+फ्रा० वरदार] थैली उठाकर पहुँचाने का काम। थैलियों की डोम्राई।

थैलीशाही—सङ्घा स्त्री० [हि० थैली+फ्रा० शाही] पूँजीवाद।

थौंद—सङ्घा स्त्री० [सं० तुन्द] दे० 'तोंद'। उ०—थोद थलकि बर चाल, मनो मृदग मिलावनो।—नंद० प्र०, पृ० ३३४।

थौंदिया—सङ्घा स्त्री० [हि० तोंद का स्त्री० अल्पा०] दे० 'तोंद'। उ०—उज्ज्वल तन, थोरी सी थोदिया, राते भर सोई।—नंद० प्र०, पृ० ३४१।

थो—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'था'। उ०—का जानें तुम कहा लिख्यो थो जाको फल मैं पायो।—नट०, पृ० २१।

थोक—सङ्घा पुं० [सं० स्तोत्रक, प्र० थोवक, हि० थोक] १ ढेर। राशि। अटाला। २ समूह। कुड। जत्था।

मुहा०—थोक करना=इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—दुम चढ़ि काहे न टेरो बान्हा गेयौ दूरि गई। विडरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भई। छाँड़ि खेन सब दूरि जात हैं बोले जो सके थोक कई।—सूर (शब्द०)। थोक की थोक=ढेर की ढेर। बहुत सी। उ०—वह यह भी जानते थे कि मेरी थोक की थोक डाक चिनी डाकखाने में जमा हो रही है।—किन्नर०, पृ० ५४।

३ विक्री का इकट्ठा माल। इकट्ठा वेचने की चीज। खुदरा का उलटा। जैसे,—हम थोक के खरीदार हैं। ४ जमीन का टुकड़ा जो किसी एक भ्रामदी का हिस्सा हो। चक। ५. इकट्ठी वस्तु। कुल। ६ वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हो। वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

थोकदार—सङ्घा पुं० [हि० थोक+फ्रा० दार] इकट्ठा माल वेचने-वाला व्यापारी।

थोड़(ण्)—वि० [सं० स्तोत्रक] दे० 'थोड़ा'। उ०—बहुल कौडि कनिक थोड़, धोवक पेंचाँ दोष घोड़।—कीर्ति० पृ० ६८।

थोड़ा—वि० [सं० स्तोत्रक, पा० थोअ+डा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो। ग़ून। अल्प। कम। तनिक। जरा सा। जैसे,—(क) थोड़े दिनों से वह बीमार है। (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रुपए रह गए हैं।

यौ०—थोड़ा थोड़ा=कम कम। कुछ कुछ। थोड़ा बहुत=कुछ। कुछ कुछ। किसी कदर। जैसे,—थोड़ा बहुत रुपया उनके पास ज़रूर है।

मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना=लज्जित होना। सकुचित होना। हेठ पड़ना।

थोड़ा—क्रि० वि० अल्प परिमाण या मात्रा में। जरा। तनिक। जैसे,—थोड़ा चलकर देख लो।

मुहा०—थोड़ा ही=नही। बिल्कुल नहीं। जैसे,—हम थोड़ा ही जायेंगे, जो जाय उससे कहो।

विशेष—बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझकर दूसरा कोई बात कहता है।

थोता—वि० [हि०] दे० 'थोथा' । उ०—'तुका' सज्जन तिन सँ कहिये
जियनी प्रेम दुनाय । दुजन तेरा मुख काला थोता प्रेम घटाय ।
—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

थोती—सद्या स्त्री० [देश०] चौपायो के मुँह का गगला भाग ।
शूयन ।

थोथ—सद्या स्त्री० [हि० थोथा] १ खोखलापन । नि.सारता ।
२. तोड़ । पेटी ।

थोथर—वि० [हि० थोथ + र (प्रत्य०)] खोखला । थोथरा । उ०—
वते मरी मुख थोथर भए गेल जनिक माओल सँप ठाम देलें
भुवन भमिम । मरी गेल सबे दाप ।—विद्यापति, पृ० ४०२ ।

थोथरा—वि० [हि० थोथ + रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोथरी] १ धुन
या कीड़ों का खाया हुआ । खोखला । खाली । २ नि.सार ।
जिसमें कुछ तत्व न हो । ३. निकम्मा । व्यर्थ का । जो किसी
काम का न हो । उ०—(क) मत छोड़ी घट थोथरा ता घर बैठो
फूलि ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २०४ । (ख) मनुमो झूठी
थोथरी निरगुन सच्चा नाम ।—दरिया० बानी, पृ० २२ ।

थोथा—वि० [देश०] [वि० स्त्री० थोथी] १. जिसके भीतर कुछ
सार न हो । खोखला । खाली । पोला । जैसे, थोथा चना
बाजे घना । उ०—बहुत मिले मोहि नेमी धर्मी प्रात करे
भसनाना । मातम छोड़ पयाने पूजें तिन का थोथा जाना ।—
कबीर श०, भा० १, पृ० २७ । २ जिसकी धार तेज न
हो । कुठित । गुठला । जैसे, थोथा तीर । ३ (सँप) जिसकी
पूँछ कट गई हो । बाडा । वे डुम का । ४ मद्दा । वेढगा ।
व्यर्थ का । निकम्मा ।

मुहा०—थोथी कथनी = व्यर्थ की बात । नि.सार बात । उ०—
करनी रहनी दड़ गहो थोथी कथनी डारो ।—चरण०
बानी, भा० २, पृ० १७० । थोथी बात = (१) मद्दा बात ।
(२) व्यर्थ की बात । व्यर्थ का प्रलाप ।

थोथा^२—सद्या पुं० बरतन ढालने का मिट्टी का सँचा ।

थोथी—सद्या स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

थोपड़ी—सद्या स्त्री० [हि० थोपना] चपत । घोल ।

यौ०—गनेम थोपड़ी = लड़को का एक खेल जिसमें जो चोर
होता है उसकी छाँड़ बढ़ करके उसके सिर पर सब लड़के
वारी वारी चपत लगाते हैं । यदि चपत खानेवाला लड़का
ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह
पहले चपत लगानेवाला लड़का चोर हो जाता है ।

थोपना—क्रि० सं० [सं० स्थापन, हि० धापन] १ किसी गीली चीज
(जैसे, मिट्टी, माटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना
या रखना । किसी गीली वस्तु का लोंदा यों ही ऊपर ढाल
देना या जमा देना । पानी में सनी हुई वस्तु के लोदे को
किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर ढालना कि वह
उसपर चिपक जाय । छोपना । जैसे,—घड़े के मुँह पर
मिट्टी छोप दो ।

सयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२ तबे पर रोटी बनाने के लिये यो ही बिना गड़े हुए गीला माटा

फैला देना । ३ मोटा लेप चढ़ाना । लेव चढ़ाना । ४.
मारोपित करना । मत्थे मढ़ना । लगाना । जैसे, किसी पर
दोष थोपना । ५ माकमण आदि से रक्षा करना । बचाना ।
दे० 'छोपना' ।

थोपी—सद्या स्त्री० [हि० थोपना] चपत । घोल । चपेट । थोपड़ी ।

थोवड़ा—सद्या पुं० [देश०] शूयन । जानवरों का निकला हुआ
लवा मुँह ।

थोव रखना—क्रि० सं० [लण०] जहाज को धार पर चढ़ाना ।

थोभड़ी—सद्या स्त्री० [देश०] थूही । बीवार । भित्ति । उ०—देखो
जोगी करामातही मनसा महल बनाया । बिन थाँमा बिन
थोभड़ी आसमान ठहराया ।—राम० धर्म०, पृ० ४६ ।

थोरा^१—सद्या पुं० [देश०] १. फेले की पेड़ी के बीच का गाभा । २.
थूहर का पेड़ ।

थोर^२—वि० [हि० थोड़ा] थोड़ा । स्वल्प । छोटा । उ०—उठे धन
थोर विराजत धाम । धरे मनु हाटक सालिगराम ।—पु०
रा०, २१।२० ।

यौ०—थोरयनी = छोटे छोटे स्तनवाली । उ०—रोम राज राजी
भ्रमहि थोरयनी बुँडि बाल । उतकंठा उतकंठ की ते पुज्जी
प्रतिपाल ।—पु० रा०, २५।७२५ ।

थोरा^३—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' ।

थोरिक^४—वि० [हि० थोरा + एक] थोड़ा सा । तनिक सा ।

थोरी^१—सद्या स्त्री० [देश०] एक हीन प्रनाय जाति ।

थोरी^२—वि० स्त्री० [थोरा का स्त्री० प्रत्या०] दे० 'थोड़ा' ।

थोरो, थोरी—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' । उ०—पाछे उन बदीवानन
के तें थोरो द्रव्य भावन लाग्यो ।—दो सी बावन०, भा० १,
पृ० १२८ । (ख) मद्दो महारि अब बधन थोरो । सुबर सुत
पर भयो न थोरो ।—नद० ग्रं०, पृ० २५१ ।

थोल^१—वि० [हि०] दे० 'थोड़ा' । उ०—काहु कापल काहु घोल,
काहु सबल काहु थोल ।—कीर्ति०, पृ० २४ ।

थोहर^२—सद्या पुं० [देश०] दे० 'थूहर' । उ०—सुभा हरड थोहर
सुभा, सुभा कहत कल्याण । सुभा जु सोभावान हरि, थोर
न दुजो जान ।—नद० ग्रं०, पृ० ७० ।

थौंदि^३—सद्या स्त्री० [सं० तुन्द या तुण्ड] तोंद । पेट । उ०—किहू
कटारीन सौं थौंदि फारी । तहीं दूसरें आनिकें सीस भारी ।
—सुजान०, पृ० २१ ।

थ्यौं^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'था' । उ०—सवास सात सूरतों खुदाए
ताला के जात मे क्यों थ्यौं ?—दक्खिनी०, पृ० ३८८ ।

थ्यावस^५—सद्या पुं० [सं० स्थेयस] १. स्थिरता । ठहराव । २. धीरता ।
धैर्य । उ०—(क) बिन पावस तो इन्हें थ्यावस है न सु क्यौं
करिये अब सो परसैं । बदरा बरसैं अतु मे धिरि के नित तु
अंखियाँ उधरी बरसैं ।—आनदधन (शब्द०) । (ख) ज्यौं
कहलाय मसूसनि ऊमस क्यो हूँ कहूँ सो धरे नहि थ्यावस ।—
आनदधन (शब्द०) ।

६

द—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में गठारहवाँ व्यंजन जो तवर्ग का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है, दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह मत्वप्राण है और इसमें सवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न हैं।

दंग^१—वि० [फा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध। हक्का बक्का।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

दंग^२—संज्ञा पुं० १ घबराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि चढ़ी रण सम्मुख जीय न भानो दंग। राघव सेन समेत संधारों करौं रघिरमय भंग।—सुर(शब्द०)। २ दे० 'दंगा'।

दंगा^३—संज्ञा पुं० [देख०] अग्निकण। उ०—इक राह चाह लगी असुर निरसहाय प्राकार नव। भवरग प्रथी पर उलटियो, दंग प्रगट्यो जाणु दव।—रा० रू०, पृ० २०।

दंगई—वि० [हि० दंगा + ई (प्रत्य०)] १ दगा करनेवाला। उपद्रवी लड़ाका। झगड़ालू। २ प्रचंड। उग्र। ३ दगली। बहुत लवा। लवा चौड़ा। भारी।

दंगल—संज्ञा पुं० [फा०] १ मत्तों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बदकर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम प्रादि मिले। २ झगड़ा। मल्लयुद्ध का स्थान।

मुहा०—दंगल में उतरना = कुश्ती लड़ने के लिये झगड़े में भाना। ३ जमावड़ा। समूह। समाज। दल। उ०—सावन नित सतन के घर में, रति मति सिमवर में। नित वसत नित होरी मंगल, जैसी वस्ती तैसी जंगल, दल बादल से जिनके दंगल पगे रटे की झर में।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

४ बहुत मोटा गद्दा या तोणक। उ०—(क) महलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दंगल पर रहता था, खाना एक बड़ी सी कुर्सी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) बावर्ची जब छुट्टी पाता हो "किसी बड़े दंगल पर पाँव फैला कर लबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दंगली—वि० [फा० दंगल] १ युद्ध करनेवाला। लड़ाका। प्रसय-कर। उ०—भूषण भनत तेरी खरगल दंगली।—भूषण प्र०, पृ० ४५। २ दंगल में कुश्ती लड़नेवाला। दंगल जीतनेवाला।

दंगवारा—संज्ञा पुं० [हि० दंगल + वारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल प्रादि देकर देते हैं। जिता। हरसीत।

कुंगा—संज्ञा पुं० [फा० दंगल] १ झगड़ा। बहैडा। उपद्रव। उ०—खेलन लाग बालकन संग। जब तव करिय सखन ते दगा।—विधाम। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—दगा फसाद।

२ गुल गपाड़ा। हुल्लड। शोर। गुल। उ०—शोश पर गंगा हँसे भुजन भुजगा हँसे हाँस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह मे।—पद्माकर (शब्द०)।

दंगाई—वि० [हि० दगा] दे० 'दगई'।

दंगैत—वि० [हि० दंगा + एत या येत (प्रत्य०)] १. दगा करने-वाला। उपद्रवी। २. वागी। बलवाई।

दंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १ डंडा। सोटा। लाठी।

विशेष—स्मृतियों में शास्त्र और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय मेलला प्रादि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गुलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। सन्यासियों में कुटीचक और बहूदक को त्रिदंड (तीन दंड), हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। ऐसा निर्णयसिंधु में उल्लेख है। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड प्रादि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा लोग शासन और प्रतापसूचक एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना = सन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

२ डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, भुजदंड, शुभादंड, वैतसडंड, इक्षुदंड इत्यादि। ३ एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल अंगों से होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चक्रदंड।

४. भूमि पर अंगों से लेटकर किया हुआ प्रणाम। दहवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

५ एक प्रकार का व्याह। दे० 'दंडव्याह'। ६ किसी अपराध के प्रति-कार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या हानि। कोई मूल चूक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ शास्त्र में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत

वर्णन स्पृति ग्रंथो मे है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश-निकाला, भगच्छेद इत्यादि), मध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है; जैसे, लुटना, भाग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उखाड़ना इत्यादि।

७ अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुरमाना। डंड।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।—लेना।

मुद्रा०—दंड डालना = (१) जुरमाना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पड़ना = हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे,—घड़ी किसी काम की न निकली, उसका रुपया दंड पड़ा। दंड भरना = (१) जुरमाना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना = (१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझकर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्मृतियों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रथम साहस ढाई सो पण तक, मध्यम साहस पाँच सो पण तक और उत्तम साहस एक हजार पण तक।

८ दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—सन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं,—(१) वाग्दंड—वाणी को वश में रखना; (२) मनोदंड—मन को चंचल न होने देना, अधिकार में रखना और (३) कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। सन्यासियों का शिदड इन्हीं तीन दंडों का सूरचक चिह्न है।

९ ध्वजा या पताका का वाँस। १० तराजू की डंडी। डंडी। ११. मयानी। १२. किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। १३ हल की लबी लकड़ी। हल में लगनेवाली लबी लकड़ी। हरिस। १४ जहाज या नाव का मस्तूल। १५ एक योग का नाम। १६ लवाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। १७ हरिवंश पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु राजा के सो पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंड-कारण्य नाम पड़ा। वि० दे० 'दंडक'—४। १८ कुवेर के एक पुत्र का नाम। १९ (दंड देनेवाला) यम। २०. विष्णु। २१ शिव। २२ सेना। फौज। २३ अश्व। घोड़ा। २४. साठ पल का काल। चौबीस मिनट का समय। २५. वह अग्नि जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हो। २६ सूर्य का एक पार्श्वचर। सूर्य का एक अनुचर (को०)। २७ गवं। घर्मंड। अभिमान (को०)। २८ वाद्य बजाने की एक प्रकार की लकड़ी (को०)। २९ कमल की नाल। जैसे, कमलदंड। ३१ राजा के हाथ का दंड जो शासन का प्रतीक होता है (को०)। ३२. बाँड। पतवार (को०)।

४-६७

दंडकृष्ण—सखा पु० [सं० दण्डकृष्ण] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडकंदक—सखा [सं० दण्डकन्दक] घरणी कंद। सेमर का मुसला।

दंडक—सखा पु० [सं० दण्डक] १ डंडा। २ दंड देनेवाला पुरुष। शासक। ३ छदो का एक वर्ग। वह छद जिसमें वरों की संख्या २६ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है, एक गणारमक, दूसरा मुक्तक। गणारमक वह है जिसमें गणों का बंधन होता है अर्थात् किस गण के उपरांत फिर कौन सा गण भ्राना चाहिए, इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमस्तक, त्रिभगी, नीलचक्र इत्यादि। उ०—(नीलचक्र)। जानि के समे भवाल, रामराज साज साजि ता समे भकाज काज कैकई जु कीन। भूप तैं हराय वैन राम सीय वधु युक्त बोलिके पठाय वेगि कानन सुदीन। —(शब्द०)। मुक्तक वह है जिसमें केवल प्रसंगों की गिनती होती है अर्थात् जो गणों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कही कही लघु गुच्छ का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित्त (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ०—(मनहर कवित्त)। आनंद के कद जग जयावन जगतवद दण्डरथनद के निबाहेई निवहिए। कहे पद्माकर पवित्र पन पालिदे कों चोरे, चक्रपाणि के चरित्रन कों चहिए। —पद्माकर प्र०, पु० २३८।

४. इक्ष्वाकु राजा के पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कोमार्य भग किया। इसपर शुक्राचार्य ने शाप देकर इन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

५. दंडकारण्य। ६ एक प्रकार का वातरोग जिसमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि भंग स्तब्ध होकर एंठ से जाते हैं। ७ शुद्ध राग का एक भेद। ८ हल में लगनेवाली एक लबी लकड़ी। हरिस (को०)।

दंडकर्म—सखा पु० [सं० दण्डकर्मन्] दंड देने का काम। दंड। सजा (को०)।

दंडकल—सखा पु० [सं० दण्डकल] एक छद का नाम जिसमें तीस मात्राएँ होती हैं (को०)।

दंडकला—सखा स्त्री० [सं० दण्डकला] एक छद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न भ्राना चाहिए। जैसे—फल फूलनि ल्यावे, हरिहि सुनावे, हे या लायक भोगन की। अथ सब गुन पुरी, स्वादन छरी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडका—सखा स्त्री० [सं० दण्डका] दंडक वन। दंडकारण्य (को०)।

दंडकाक—सखा पु० [सं० दण्डकाक] काला और बड़े आकारवाला कोमल। डोम कोमल (को०)।

दंडकारण्य—सखा पु० [सं० दण्डकारण्य] वह प्राचीन वन जो

विषय पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचन्द्र वनवास के कास में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के नाक फाँट कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकी] डोलक।

दंडखेदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पेर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की भी व्यवस्था की थी।

दंडगौरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डगौरी] एक मन्सरा का नाम।

दंडग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डग्रहण] सन्यास आश्रम जिसमें दंड ग्रहण करने का विधान है।

दंडघ्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डघ्न] १. डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर आघात पहुँचानेवाला। २. दंड को न माननेवाला। राजा या शासन जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट वचन बोधनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडचारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति (कोटि०)। २. सेना का एक विभाग (को०)।

दंडछदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें विभिन्न प्रकार के बतन रखे जाते हैं (को०)।

दंडदण्डका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डदण्डका] दमामा। नगाड़ा। धौसा।

दंडताम्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डताम्री] वह जलतरंग बाजा जिसमें ताँबे की फटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डदास] वह जो दंड का खपना न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुरमाने का खपना नौकरी करके चुकाता हो।

दंडदेवकुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डदेवकुल] न्यायालय। मजालत (को०)।

दंडदेवार—वि० [सं० दण्ड + हि० देवार = देनेवाला] दंड देनेवाला। क्षमताशाली। उ०—समर सिंघ मेवार दंडदेवार मज्जर जर। दीली पति मर्नग लरन मज्जी सुलोह लरि।—पृ० १०, ७।२४।

दंडधर—वि० [सं० दण्डधर] डंडा रखनेवाला।

दंडधर^२—सञ्ज्ञा पुं० १. यमराज। २. शासनकर्ता। ३. सन्यासी। ४. छद्मी बरदार। द्वाररक्षक। उ०—जहाँ बूढ़े करणिक, दंडधर, कंचुकी और बाहुक सत्परता से धर उधर घुमते।—पृ० न० पु० ६४।

दंडधार^१—वि० [सं० दण्डधार] डंडा रखनेवाला।

दंडधार^२—सञ्ज्ञा पुं० १. यमराज। २. राजा। ३. एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की ओर था और मजुन से लड़कर

मारा गया था। ४. पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडधारण—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डधारण] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े।

दंडधारी—वि० सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डधारिन्] दे० दंडधर (को०)।

दंडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डन] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया। शासन।

दंडना^७—क्रि० स० [सं० दण्डन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—मुशल मुग्ध हनत, त्रिविध कर्मणि गनत, मोहि दंडत धर्मदूत हारे।—सूर (शब्द०)।

दंडनायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डनायक] १. सेनापति। २. बंड-विधान करनेवाला राजा या हाकिम। ३. सूर्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डनीति] १. दंड देकर प्रत्यक्ष पीड़ित करके शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बलप्रयोग करने की विधि। २. दुर्गा का एक रूप (को०)।

दंडनीय—वि० [सं० दण्डनीय] दंड देने योग्य।

दंडनेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डनेतृ] १. नृप। राजा। २. यमराज। ३. हाकिम (को०)।

दंडप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डप] नरेश। राजा (को०)।

दंडपांशुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपांशुल] दंडधर। छद्मी बरदार। द्वारपाल (को०)।

दंडपांसुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपांसुल] दे० 'दंडपांशुल'।

दंडपाणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. यमराज। २. काशी में भेरव की एक मूर्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। सत्रम और उद्भ्रम नाम के मेरे दो गण तुम्हारी सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।

३. पुलिस। नगररक्षक कर्मचारी (को०)।

दंडपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपात] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को चीद नहीं आती और वह इधर उधर पागल की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपारुष्य] १. मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक भट्ट के मतानुसार दूसरे के शरीर पर हाथ, डंडे आदि से आघात करने, धूल मैला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य। मार पीट। २. राजाओं के सात व्यसनों में से एक।

दंडपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपाल] दे० 'दंडपालक'।

दंडपालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दण्डपालक] १. डंडोढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। २. एक प्रकार की मछली। दाड़िका मछली।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] १. दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी । २. घातक । जस्त्राद ।

दंडपाशिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशिक] पुलिस का अधिकारी । उ०—पास, परमार, गहड़वाल तथा प्रतिहार लेखों में पुलिस अधिकारी के लिये दण्डिक, दंडपाशिक या दंडशक्ति का प्रयोग किया गया है ।—पू० म० भा०, पु० ११० ।

दंडप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] भूमि में डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा । दंडवत् । सादर अभिवादन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दंडप्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] दे० 'दंडप्रणाम' । उ०—दंडप्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिमत भाग्य निज सेखे ।—मानस, २ । २०५ ।

दंडबालधि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डबालधि] हाथी ।

दंडभंग—संज्ञा पुं० [सं० दण्डभङ्ग] शासन या आदेश का उल्लंघन । दंडाज्ञा का व्यवहार न होना [को०] ।

दंडभय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + भय] दंड या सजा का डर ।

दंडभृत्—वि० [सं० दण्डभृत्] डंडा रखनेवाला । डंडा चलाने या घुमानेवाला ।

दंडभृत्—संज्ञा पुं० १. कुम्हार । कुंमकार । २. यमराज [को०] ।

दंडमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमत्स्य] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या साँप के आकार की होती है । बाम मछली ।

दंडमाणव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाणव] दे० 'दंडमाणव' ।

दंडमाथ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाथ] सीधा रास्ता । प्रधान पथ ।

दंडमान—वि० [सं० दण्ड + हि० मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य । सजा के लायक । दंडनीय । उ०—प्रदंडमान दीन गर्व दंडमान मेदवे ।—केशव (शब्द०) ।

दंडमानव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमानव] वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो । बालक । लड़का ।

दंडमुख—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमुख] सेनानायक । सेनापति [को०] ।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमुद्रा] १. तंत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी बाँधकर बीच की उँगली ऊपर की खड़ी करते हैं । २. साधुओं के दो चिह्न दंड और मुद्रा ।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डयात्रा] सेना की चढ़ाई । २. दिग्विजय के लिये प्रस्थान । ३. वरयात्रा । बारात ।

दंडयाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डयाम] १. यम । २. दिन । ३. प्रगल्भ्य मुनि ।

दंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डरी] एक प्रकार की ककड़ी । डंगरी फल । दंडवत्—संज्ञा पुं० । स्त्री० [सं० दण्डवत्] साष्टांग प्रणाम । पृथ्वी पर सेटकर किया हुआ नमस्कार ।

दंडवत्—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्' । उ०—मुनि कहें राम दंडवत् कीन्हा । आशिरवाद विप्र वर दीन्हा ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पूरुब में इस शब्द को पुल्लिङ्ग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द स्त्रीलिङ्ग बोला जाता है ।

दंडवध—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवध] प्राणदंड । फाँसी की सजा ।

दंडवासी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवांस्ति] १. द्वारपाल । दरवान । २. गाँव का हाकिम या मुखिया ।

दंडवाही—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवाहिन्] राजा की ओर से नगररक्षा विभाग का व्यक्ति । पुलिस का कर्मचारी [को०] ।

दंडविकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविकल्प] निर्धारित दो प्रकार के दंड (जुरमाना या सजा) में से किसी एक को चुन लेने की छूट [को०] ।

दंडविधान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविधान] दे० 'दंडविधि' ।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डविधि] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था । जुर्म और सजा का कानून ।

दंडविष्कम्भ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविष्कम्भ] वह खंभा जिसमें वही दूध मचने की रस्ती बाँधी जाय [को०] ।

दंडवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवृत्त] घूँघर । चेंदुड़ ।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डव्यूह] १. सेना की डंडे के आकार की स्थिति ।

विशेष—इस व्यूह में आगे बलाघ्यक्ष, बीच में राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर से हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे । मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है । अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यंगवृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं ।

२. कौटिल्य के अनुसार पक्ष, कक्ष तथा उरस्थ में सेना की समान स्थिति ।

दंडशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + शास्त्र] दंड देने का विधान या कानून [को०] ।

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय । अपने से कम शक्ति या बलवाले राजा से धन लेकर की जानेवाली संधि ।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डस्थान] १. वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है ।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—(१) उपस्थ, (२) उदर, (३) जिह्वा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों पैर, (६) घाँव, (७) नाक, (८) कान, (९) घन और (१०) देह । अपराध के अनुसार राजा नाक, कान आदि काट सकता है या घन हरण कर सकता है ।

२. कौटिल्य के मत से वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन केंद्र द्वारा होता हो ।

दंडहस्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डहस्त] १. तार का फूल । २. द्वार-रक्षक । द्वारपाल [को०] । ३. यमराज [को०] ।

दंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'डंडा' ।

दंडाकरण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य' ।

उ०—परे घाह बन परबत माहीं । दंडाकरन वीरु बन जाहीं ।
—जायसी (शब्द०) ।

दंडाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाक्ष] महाभारत के अनुसार चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ ।

दंडाख्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाख्य] बृहत्संहिता के अनुसार वह भवन जिसके दो पार्श्वों में से एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर हो ।

दंडाजिन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाजिन] १ साधु सन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगचम । २. झूठमूठ का माईबर । धोखेबाजी का ठकोसला । कपटवेश ।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डादण्डि] डंडों की मारपीठ । लट्ठबाजी । लाठी की लड़ाई ।

दंडाधिप—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अधिप] दंड देने का प्रमुख अधिकारी [को०] ।

दंडाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अध्यक्ष] दंडाधिकारी । न्यायाधीश । उ०—दंडाध्यक्ष या प्राचीन न्यायकारणिक का उल्लेख नहीं मिलता ।—पू० म० भा०, पृ० १०८ ।

दंडानीक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अनीक] सेना की ठुकड़ी या विभाग [को०] ।

दंडापतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपतानक] एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें कफ और वात के विगड़ने से मनुष्य का शरीर सूखे काठ की तरह जड़ हो जाता है । उ०—देह को दंड के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्ट साध्य है । माघव०, पृ० १३८ ।

दंडापूपन्याय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपूपन्याय] एक प्रकार का न्याय या दण्डांत कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुखकर कार्य अवश्य ही हुआ होगा । जैसे, यदि डंडे में बंधा हुआ अपूप अर्थात् मालपुष्पा कहीं रखा हो और पीछे मालूम हो कि डंडे को चूहे खा गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि चूहे मालपुष्प को पहले ही खा गए होंगे ।

दंडायमान—वि० [सं० दण्डायमान] डंडे की तरह सीधा खड़ा । खड़ा । उ०—यह कीतुक देखने के उपरांत विष्णु महाराज देवी की पुति करने को दंडायमान हुए । हे महाभाया ! सच्चिदानंदरूपिणी । मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ।—कथीर म० पृ० २१४ ।

दंडि० प्र०—होना ।

दंडार—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार] १ घनुष । २ मदगल हाथी । ३. नाव । ४ स्पदन । २५ । ५ कुम्हार का चाक [को०] ।

दंडार्ह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार्ह] दंड देने योग्य । दंडभागी । दंड पाने योग्य [को०] ।

दंडालय—संज्ञा पुं० [सं० दण्डालय] १ न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो । २. वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय । जैसे, जेल-

खाना । ३ एक छद जिसे दंडकला भी कहते हैं । दे० 'दंडकला' ।

दंडालसिका—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अलसिका] हैजा । कालरा [को०] ।
दंडावतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपतानक] दे० 'दंडापतानक' [को०] ।

दंडाहत^१—वि० [सं० दण्डाहत] डंडे से मारा हुआ ।

दंडाहत^२—संज्ञा पुं० छाछ । मट्ठा ।

दंडिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिक] १. नगरपालक कमचारी । २. दंडधर । छड़ी बरदार । ३ एक प्रकार का मत्स्य [को०] ।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिका] १ बीस पक्षियों की एक वर्गवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रंग के उपरांत एक जगण, इस प्रकार गणों का जोड़ा तीन बार आता है और प्रत्येक में गुरु लघु होता है । इसे वृत्त और गडका भी कहते हैं । जैसे,—रोज रोज राजगैब तें लिए गुमान गाल तीन आत । वायु सेवनायें प्रात वाग जात भाव ले सुकून पात । २ यष्टिका । छड़ी (को०) । ३ कतार । पक्ति (को०) । ४ रज्जु । डोरी (को०) । ५ मोती की लर, हार आदि (को०) ।

दंडित—वि० पुं० [सं० दण्डित] दंड पाया हुआ । जिसे दंड मिला हो । सजायापता । २. जिसका शासन किया गया हो । शासित । उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मनि देखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिनी] दंडोत्पला । एक प्रकार का साग ।

दंडिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिमुण्ड] शिव का एक नाम [को०] ।

दंडी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिन्] १ दंड धारण करनेवाला व्यक्ति । २ अमराज । ३ राजा । ४ द्वारपाल । ५. वह मन्दासी जो दंड और कमंडलु धारण करे ।

विशेष—ब्राह्मण के प्रतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है । यद्यपि पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रहते भी दंड सेने का निषेध है, तथापि लोग ऐसा करते हैं । मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (मन्त्र-प्राशन आदि) फिर से करते हैं । उसकी शिक्षा मूँड दी जाती है और जनेऊ उतारकर भस्म कर दिया जाता है । पहना नाम भी बदल दिया जाता है । इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गुरुवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं । इन सबको गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवनपर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है । दंडी लोग गुरुमा वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और वद्राक्ष भी धारण करते हैं । दंडी लोग अग्नि और धातु का स्पर्श नहीं करते, इससे अपने हाथ से रसोई नहीं बना सकते । किसी ब्राह्मण के घर से पका भोजन माँगकर खा सकते हैं । दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है । इन सब नियमों का बारह वर्ष तक पालन करके प्रत्येक दंडी को जल में फेंककर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है । दंडियों के लिये निर्गुण ब्रह्म की उपासना की व्यवस्था है । जिससे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना

कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शव का दाह नहीं होता, या तो शव मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नंदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पड़ते हैं।

६. सूर्य के एक पार्श्वचर का नाम। ७ जिन देव। ८. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९. दमनक वृक्ष। दोने का पोषा। १०. मजुश्री। ११. शिव। महादेव। १२. नाविक। केवट (को०)। १३. संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे दशकुमारचरित (गद्यकाव्य) काव्यादर्श (लक्षण ग्रंथ) और भवतिमुदरी कथा, पर तीसरे का पता बहुत दिनों तक नहीं लगा था। इसपर उक्त ग्रंथ प्राप्त हो गया है और प्रकाशित भी है। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की छठी शताब्दी में दंडी हुए थे। 'शंकर-विनिवर्जय मे 'वाणमयूरदंडि मुख्यान्' से ज्ञात होता है कि ये वाण और मयूर के समकालीन थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शूद्रक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाक्य-रचना आडंबरपूर्ण है।

दंडोत^७—संज्ञा स्त्री [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—वंचन सबही सुरन की विधि हू को दंडोत। कर्मन की फल देतु हैं इनकी कहा उदोत।—प्रज्ञ० प्र०, पृ० ७२।

दंडोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] एक पोषे का नाम जिसे कुछ लोग गुमा, कुछ लोग कुकरोषा और कुछ लोग बड़ी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला—संज्ञा स्त्री [सं० दण्डोत्पला] दे० 'दंडोत्पल'।

दंडोपनत—वि० [सं० दण्ड + उपनत] कौटिल्य के अनुसार पराजित और मधीन (राजा)।

दंडौत^७—संज्ञा स्त्री [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—सनमुप भजुलि जाइ करी दंडौत सबन कहूँ। फुसुमजलि सिर मडि धूप नैवेद समुह सहूँ।—पृ० रा०, ६।५८।

दंड्य—वि० [सं० दण्डय] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १ दाँत। उ०—दंत कवाड्या नहु रंग्या। चालउ सखी होली खेलवा जाई।—बी० रासो, पृ० ६८।

यौ०—दंतकथा। दंत चिकित्सक = दाँत की चिकित्सा करने-वाला। दंतचिकित्सा = दाँत का इलाज।

२ ३२ की सस्या। ३ गाँव के हिस्से में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौटिल्य में दाँत के चिह्न होते हैं इसी से यह सस्या बनी है)। ४ कुज। ५. पहाड़ की चोटी। ६ वाण का सिरा या नोक (को०)। ७ हाथी का दाँत (को०)।

यौ०—दंतकार।

दंतक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक] १ दाँत। २. पहाड़ की चोटी। ३. पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर। ४ धीवाल में लगी हुई खूँटी (को०)।

दंतकथा—संज्ञा स्त्री [सं० दन्तकथा] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से

लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों, तथा जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। अनुश्रुति। उ०—इति वेद वदति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न चिन्त यया।—तुलसी (शब्द०)।

दंतकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकर्षण] जमीरी नीव।

दंतकार—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकार] १ वह व्यक्ति जो हाथीदाँत का काम करता हो। २ दाँत बनानेवाला शिल्पी। दंत चिकित्सक डाक्टर।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठ] दंतुवन। धतूत। मुखारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठक] आहार्य वृक्ष। तरवट का पेड़।

दंतकुली—संज्ञा स्त्री [सं० दन्त + कुल (=समुदाय)] दाँतों की पक्ति। उ०—दंतकुली भगुली करी कोपरी कपाली। बीच खेत विश्वरी, फरी बिहरी किरमाली।—रा० २०, पृ० २५१।

दंतकूर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकूर] युद्ध। संग्राम।

दंतक्षत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] कामशास्त्र के अनुसार कामकेल में नायक नायिका द्वारा प्रेमोन्माद में एक दूसरे के अंग और कपोल में लगा हुआ दाँत काटने का चिह्न। दाँत काटने का निशान (को०)।

दंतधर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधर्ष] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिरीना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग प्रशुभ समझते हैं। रोगी के पक्ष में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतधात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधात] दे० 'दंताधात'।

दंतच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] मोष्ठ। श्रोष्ठ।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा स्त्री [सं० दन्तच्छदोपमा] विवाफल। कुंदरु।

दंतछत^७—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतछद^७—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] दंतच्छद।

दंतछद^२—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतजात—वि० [सं० दन्तजात] १ (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। २ दाँत निकलने योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो प्रशोच लगता है।

दंतजाह—संज्ञा पुं० [सं० दन्तजाह] दाँतों की लड़ (को०)।

दंतताल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तताल] एक प्रकार का प्राचीन वाजा जिससे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तदर्शन] क्रोध या चिड़चिड़ाहट में दाँत निकलने की क्रिया।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द करके वार किया जाता है।

दंतधाव—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधाव] दे० 'दंतधावन' (को०)।

दंतधावन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधावन] १. दाँत घोने या साफ करने

का काम । दातुन करने की क्रिया । २ दतीन । दातुन । ३
थेर का पेड़ । खदिर वृक्ष । ४. करज का पेड़ । ५ मौलसिरी ।

दंतपत्र—सज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्र] कान का एक गहना ।

धिरोप—संभवत जो हाथी दाँत का बनता रहा हो ।

दंतपत्रक—सज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्रक] १. कुंद पुष्प । २. कान का एक
ग्राम्भूयण । दंतपत्र (को०) ।

दंतपत्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपत्रिका] १ कान का एक ग्राम्भूयण ।
२. कुंद का पुष्प । ३. कंधी (को०) ।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपवन] दाँत शुद्ध करने की क्रिया ।
दंतपावन । २. दतुवन । दातन ।

दंतपांचालिका—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाञ्चालिका] हाथीदाँत की
बनी पुतली (को०) ।

दंतपात—सज्ञा पुं० [वि० दन्तपात] दाँतों का गिरना (को०) ।

दंतपार—सज्ञा स्त्री० [हिं० दंत+उपारना] दाँत की पीड़ा ।
दाँत का दर्द ।

दंतपालि—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपालि] तलवार की मूठ । तलवार का
कम्बा या दस्ता (को०) ।

दंतपाली—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाली] दाँत की जड़ । मसूड़ा (को०) ।

दंतपुपुट—सज्ञा पुं० [सं० दन्तपुपुट] मसूड़ों का एक रोग, जिसमें वे
सुज जाते हैं और दर्द करते हैं ।

दंतपुर—सज्ञा पुं० [सं० दन्तपुर] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर
जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्ता ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके
उसके ऊपर एक बड़ा मन्दिर बनवाया था ।

विशेष—यह दंतपुर कहाँ था, इसके सन्दर्भ में मतभेद है । डाक्टर
राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से
छह कोस दक्खिन जो दाँतन नामक स्थान है वही बोद्धों का
प्राचीन दंतपुर है । चित्तली बोद्धों के 'दाठावरा' नामक ग्राम
में दंतपुर के सबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है ।

दंतपुष्प—सज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्प] १ कतक । निर्मली । २ कुंद
का फूल ।

दंतप्रक्षालन—सज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रक्षालन] दे० 'दंतपवन' (को०) ।

दंतप्रवेष्ट—सज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रवेष्ट] हाथी के दाँत का आवरण (को०) ।

दंतफल—सज्ञा पुं० [सं० दन्तफल] १. कतक फल । निर्मली । २
कपित्थ । कैय ।

दंतफला—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तफला] विप्लवी ।

दंतबीज—सज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] वह जिसके बीज दाँत के स्रवण
हैं । दाड़िम । अनार (को०) ।

दंतबीजक—सज्ञा पुं० [सं० दन्तबीजक] दे० 'दंतबीज' (को०) ।

दंतभाग—सज्ञा पुं० [सं० दन्तभाग] १ हाथी के सिर का वह अग्र
भाग जहाँ से उसके दाँत निकलते हैं । २ दाँतों का
हिस्सा (को०) ।

दंतमध्य—सज्ञा पुं० [सं० दन्तमध्य] दे० 'दंतगत' (को०) ।

दंतमांस—सज्ञा पुं० [सं० दन्तमांस] मसूड़ा ।

दन्तमूल—सज्ञा पुं० [सं० दन्तमूल] १. दाँत की जड़ । २. दाँत का
एक रोग ।

दन्तमूलिका—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तमूलिका] दाँती वृक्ष । जमालगोटे
का पेड़ ।

दन्तमूलीय—वि० [सं० दन्तमूलीय] दन्तमूल से उच्चारण किया जाने-
वाला (वर्ण) । जैसे, तवर्ण ।

विशेष—व्याकरण के अनुसार स्वर वर्ण लू और त, य, द, न,
न तथा ल और स व्यंजन दन्तमूलीय कहे जाते हैं ।

दन्तलेखक—सज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखक] दाँतों को रंगने का व्यवसाय
करके अपनी जीविका अर्जित करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

दन्तलेखन—सज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखन] एक अस्त्र जिससे दाँत की
जड़ के पास मसूड़ों को चीरकर मवाद आदि निकालते हैं
जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है । दन्तशर्करा नामक रोग में
इस अस्त्र का प्रयोजन होता है ।

दन्तवक्र—सज्ञा पुं० [सं० दन्तवक्र] कर्ण देश का राजा, जो बुद्धसम्राट्
का पुत्र था । यह शिशुपाल का भाई लगता था और श्रीकृष्ण
के हाथ से मारा गया था ।

दन्तवर्ण—वि० [सं० दन्तवर्ण] चमकदार । भोपदार ।

दन्तवल्क—सज्ञा पुं० [सं० दन्तवल्क] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस ।
मसूड़ा ।

दन्तवस्त्र—सज्ञा पुं० [सं० दन्तवस्त्र] मोष्ठ । मोठ ।

दन्तबीज—सज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] अनार ।

दन्तबीणा—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तबीणा] १ वाद्यविशेष । एक प्रकार
का बाजा । २. (शोतादि के कारण) दाँतों का बजना (को०) ।

यौ०—दन्तबीणोपवेशाचार्य = शीत या ठंडक जिसके कारण दाँत
बजने लगते हैं ।

दन्तवेष्ट—सज्ञा पुं० [सं० दन्तवेष्ट] १. हाथी के दाँत के ऊपर का मढ़ा
हुआ छल्ला । २ मसूड़ा । ३ दाँतों में होनेवाला एक रोग
(को०) ।

दन्तवैदर्भ—सज्ञा पुं० [सं० दन्तवैदर्भ] दाँत का एक रोग । किसी
बाहरी आघात से दाँत का हिलना या टूटना ।

दन्तशंकु—सज्ञा पुं० [सं० दन्तशङ्कु] चीर फाड़ का एक औजार जो
जो के पत्तों के आकार का होता था (सुश्रुत) । दाँत को
उखाड़ने का यंत्र ।

दन्तशठ—सज्ञा पुं० [सं० दन्तशठ] १ वे वृक्ष जिनके फल खाने से
खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायें । जैसे, कैय, कमरख,
छोटी नारंगी, जभीरी नीबू, इत्यादि । २ खट्टापन । खटाई ।

दन्तशठा—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशठा] खट्टी नोनिया । अमलोनी ।
२ चुक । चूक ।

दन्तशर्करा—सज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशर्करा] दाँतों का एक रोग जो
मेल जमकर बैठ जाने के कारण होता है ।

दन्तशाण—सज्ञा पुं० [सं० दन्तशाण] मिस्सी । स्त्रियों के दाँत पर
लगाने का रंगीन मज्जन ।

दन्तशूल—सज्ञा पुं० [सं० दन्तशूल] दाँत की पीड़ा ।

दंशोफ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तशोफ] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा । दंताबुँद ।

दंशरिल्लष्ट—वि० [सं० दन्तरिल्लष्ट] दाँतों में उलझा या बिपका हुआ [को०] ।

दंशहर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्ष] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंडी या लट्टी वस्तु सगने से होती है । दाँतों का खट्टा होना ।

दंशहर्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्षक] जमीरी नीबू ।

दन्तहीन—वि० [सं० दन्तहीन] बिना दाँत का । जिसके मुँह में दाँत न हो [को०] ।

दंतांतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्त + अन्तर] दाँतों के बीच का अंतर या स्थान [को०] ।

दंताघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ताघात] १ दाँत का आघात । २ वह जिससे दाँत को आघात पहुँचे—नीबू ।

दंताज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ताज] १ दाँत की जड़ या संधि में पड़ने-वाले कीड़े । २. दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है ।

दंतादन्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्तादन्ति] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या लड़ाई ।

दंतायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तायुध] वह जिसका मस्त्र दाँत हो । सुभर । जगली सुभर ।

दंवार—वि० [हिं० दाँत + आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोवाला ।

दंवार—सञ्ज्ञा पुं० हाथी ।

दंवारा—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दवार] दे० 'दवार' ।

दंताबुँद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ताबुँद] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा ।

दंताल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दन्तार] हाथी ।

दंतालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ता + आलय] मुख । मुँह [को०] ।

दंतालि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालि] दाँतो की पक्ति । दाँतों की पाँत [को०] ।

दंतालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालिका] लगाम ।

दंताली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्ताली] लगाम ।

दंतावल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी ।

दंतावली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + अवली] दाँतो की पक्ति । 'दतालि' [को०] ।

दंताहल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ताहल] हाथी ।—(डि०) ।

दन्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] हाथी । उ०—सदा दन्ति के कुम को जो बिदारे ।—मारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १४२ ।

दन्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिका] दती । जमालगोटा ।

दन्तिजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिजा] दती वृक्ष । दती [को०] ।

दन्तिदन्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिदन्त] हाथीदाँत ।

दन्तीबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिबीज] जमालगोटा ।

दन्तिमद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिमद] हाथी का मद । हाथी के गंड-स्थल का स्त्राव [को०] ।

दंतियौ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + दया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत ।

दन्तिवक्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिवक्त्र] हाथी की तरह मुँसवाले-गजानन । गणेश [को०] ।

दन्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दन्ती] भट्टी की आति का एक पेड़ ।

विशेष—दन्ती दो प्रकार की होती है—एक सघुदती और दूसरी वृहदती । सघुदती के पत्ते गूलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और वृहदती के एरंड या भंडी के से । इसके बीज दस्तावर होते हैं और जमालगोटे के स्थान पर मोपध में काम आते हैं । वैद्यक में दन्ती, कटु, उष्ण और तृपा, शूल, बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । दन्ती के बीज अधिक मात्रा में देने से विष का काम करते हैं ।

पर्याय—शीघ्रा । निकुंभी । नागस्फोटा । दन्तिनी । उपचिस्ता । भद्रा । रक्षा । रेचनी । अनुकुला । निशल्या । विचल्या । मधुपुष्पा । एरंडफला । तरणी । एरंडपत्रिका । विद्योधनी । कुंभी । उदुंबरदला । प्रत्यक्षपर्णी ।

दन्ती^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] १ हस्ती । हाथी । गज । उ०—
भलते ये श्रुति तालवृत्त दन्ती रक्षु रक्षकर ।—साकेत, पृ० ४१४ । २. गणेश । गजानन । ३. पर्वत । ४. सोम । चंद्रमा [को०] । ५. व्याघ्र । मृगाधिप [को०] । ६. क्रोड़ । अक्षर । गोद [को०] । ७. श्वान । कुत्ता [को०] ।

दन्ती^३—वि० दाँतवाला । जिसके दाँत हों [को०] ।

दंतुर—वि० [सं० दन्तुर] जिसके दाँत आगे निकले हों । दंतुसा । दाँतू । २. ऊबड़ खाबड़ । नीचा ऊँचा [को०] । ३. छुला हुआ । भावरणरहित [को०] ।

दंतुर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ हाथी । २. सुभर ।

दंतुरच्छद—सञ्ज्ञा पुं० [दन्तुरच्छद] जमीरी नीबू । बिजोरा नीबू ।

दंतुरित—वि० [सं० दन्तुरित] १ आवेष्टित । ढका हुआ । दे० 'दंतुर' [को०] ।

दंतुल—वि० [सं० दन्तुल] दे० 'दंतुर' [को०] ।

दंतोलूखलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिक] एक प्रकार के सन्यासी जो मोखली आदि में कूटा हुआ भोजन नहीं खाते । ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित पनाज के दानों को दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं ।

दंतोलूखली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिन्] दे० 'दंतोलूखलिक' ।

दंतोष्ठय—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओठ से हो ।

विशेष—ऐसा वर्ण 'व' है ।

दन्त्य—वि० [सं० दन्त्य] १. दाँत संबंधी । २. (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो । जैसे, तवर्ग । ३. दाँतों का हितकारी (मोपध) ।

दद^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ददन्त, दन्तह्यमान्] किसी पदार्थ से निकलते हुई गरमो, जैसी तपी हुई भूमि पर मेघ का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पाई जाती है ।

क्रि० प्र०—माना ।—निकलना ।

दं३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ध प्रा० दद] १. लड़ाई झगडा। उपद्रव। हलचल। २. युद्ध। संघर्ष। संग्राम। उ०—भाज हनो जैचंद दद ज्यों मिटे ततधिषन।—पृ० रा० ६१। १४६। ३. हल्ला गुल्ला। धोरगुल। ४. दुख। मानसिक उथल पुथल। उ०—(फ) रोहिनि माता उदर प्रगट भए हरन भक्त के दद।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५१३। (ख) त्यागहू संसय जम कर ददा। सुक्ति परहि तब भवजल फदा।—दरिया० बानी, पृ० ३।

क्रि० प्र०—मचाना।

दं३ना^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'द्वद'। उ०—फूले पशु पक्षी सब, देखि ताप कटे तब, फूले सब ग्वाल बाल कटे दुख ददना—नद० ग्र०, पृ० ३७६।

दं३न—वि० [सं० दमन] नाश करनेवाला। दूर करनेवाला। दमन करनेवाला।

दं३श—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्धश] दाँत। दंत [को०]।

दं३शूक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्धशूक] १. सर्प। २. राक्षस विशेष। ३. कीट। कीडा [को०]। ४. एक प्रकार का नरक।

दं३शूक^२—वि० हिंसक। काटनेवाला [को०]।

दं३हर—वि० [सं० दन्धहर] द्वद को दूर करनेवाला। मानसिक शांति पहुँचानेवाला। उ०—परसति मद सुगंध ददहर विपिन विपिन में।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

दं३दह्यमान—वि० [सं० दन्धदह्यमान] दहकता हुआ।

दं३दा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना वाजा।

ददान—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा०] दाँत [को०]।

यौ०—ददानसाज = दंतचिकित्सक। दाँत बनानेवाला।

दं३दाना^१—क्रि० प्र० [हिं० दद] १. गरम लगना। गरमी पहुँचाता हुआ मालूम होना। जैसे, रुई का ददाना, बंद कोठरी का ददाना। २. किसी गरम चीज के आसपास होने से गरम होना। जैसे, रखाई या कंबल के नीचे ददाना।

दं३दाना^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० ददानह] [वि० ददानेदार] दाँत के आकार की उभरी हुई वस्तुओं की पक्ति। शकु या कंगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कधी या भारे पादि में होती है।

दं३दानेदार—वि० [प्रा०] जिसमें दं३दाने हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरो की पक्ति हो।

दं३दारु—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दद + धारु (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दं३दी—वि० [सं० दन्दी, हिं० दद] झगडालु। उपद्रवी। बखेडा करनेवाला। हुज्जती। उ०—कलियुग मधे जुग चारि रचीला चूकिला चार विचार। धरि धरि ददी धरि धरि बादी धरि धरि कषणहार।—गोरख०, पृ० १२३।

दं३दु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्ध] दे० 'द्वद'। उ०—प्रब हो कठ फाँद गिव चीन्हा। ददु के फाँद चाहु का कीन्हा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १७०।

दं३दुती—वि० [सं० तुन्दिल] दे० 'तुदिल'। उ०—विद्याभरी ददुल

पेट उसपर साँप की सपेट। विघन करत है सपेट पकड फेड काल की।—विविखनी०, पृ० ४५।

दंपत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपति'। उ०—छाँड़त ना पल एकौ झकेले, न पीड़त हैं परजक पे दंपत।—नट०, पृ० ३४।

दंपति^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपती'।

दंपती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्पती] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति पत्नी का जोड़ा।

दंपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० दमफना] बिजली। उ०—चोयते चकोर चहूँ धोर जानि चढमुखी जो न होती डरनि दसन वृत्ति दपा की।—पूरबी (शब्द०)।

दं३भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भ] [वि० दंभी] १. महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा झाड़बर। धोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। उ०—आसन मार दं३भ धर बैठे मन मे बहुत गुमाना।—कबीर ग्र०, पृ० ३३८। २. झूठी ठसक। अभिमान। घमंड। ३. शठता। शाठ्य [को०]। ४. शिव का एक नाम [को०]। ५. इद्र का वज्र [को०]।

दं३भक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भक] पाखंडी। ठकोसलेबाज। प्रतारक।

दं३भन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भन] पाखंड करना। ढोंग करना [को०]।

दं३भान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भ का बहुव०] दे० 'दं३भ'।

दं३भी—वि० [सं० दम्भिन्] १. पाखंडी। झाड़बर रचनेवाला। ठकोसलेबाज। २. झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दं३भोलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दम्भोलि] इद्रास्त्र। वज्र। उ०—मत्त मातंग बल अग दं३भोलि दल काछिनी लाल गजमाल सोहै।—सुर (शब्द०)।

दं३श—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। २. दाँत काटने की क्रिया। दशन। ३. साँप या धीर किसी विपरीत जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। ४. आक्षेपवचन। बोलार। व्यंग्य। कटुक्ति। ५. द्वेष। वैर।

क्रि० प्र०—रखना।

६. दाँत। ७. विपरीत जंतुओं का टक। ८. जोड़। सधि। प्रथि [को०]। ९. एक प्रकार की मक्खी जिसके टक विपरीत होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश घीते हिम आसा।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भमरालिका। पाणुर। दुष्टमुख। क्रूर।

१०. वम। बकतर। ११. एक असुर।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इसपर भृगु ने उसे शाप दिया कि 'तू मल मूत्र का कीड़ा हो जा'। शाप से डरकर जब असुर बहुत गिड़गिड़ाते लगा तब भृगु ने कहा—'मेरे वंश में जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे'। वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ।

कणों जब परशुराम से प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कणों के जघे पर सिर रखकर परशुराम खो गए। ठीक उसी समय वह कीड़ा भाकर कणों की जाँघ में काटने लगा। कणों ने गुरु का निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की तीव्र दूटी धीरे-धीरे उस कीड़े की धीरे-धीरे तोड़ दी। उनके साकसे ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीड़ा शरीर छोड़ा और अपने पूर्व रूप में आ गया।

दशक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो काट खाए। दाँत से काटनेवाला। २. डाँस नाम की मक्खी जो बड़े धीरे से काटती है। ३. श्वान। कुत्ता (को०)। ४. मच्छर। मच्छर (को०)।

दशक^२—वि० दशन करनेवाला।

दंशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] १. दाँत से काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन। २. धीरे धीरे पीठ पर हो दुरंत दंशनों का प्रास।—अमर, पुं० ५३।

क्रि० प्र०—करना।

२. बमं। बकतर।

दंशना^३—क्रि० प्र० [सं० दंश + हि० ना (प्रत्य०)] काटना। डसना।

दंशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीट (को०)।

दंशभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

विशेष—भैंसों को मच्छर धीरे धीरे बहुत लगते हैं।

दंशभीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशभीरु' (को०)।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] सहज का पेड़। शोभाजन।

दंशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला। बक (को०)।

दंशित—वि० [सं०] १. दाँत से काटा हुआ। २. बमं से मालावाहित। बकतर से डका हुआ।

दंशी^१—वि० [सं० दंशित] [वि० स्त्री० दंशनी] १. दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। २. मालेप वधन करनेवाला। कटुक्ति करनेवाला। ३. द्वेषी। वैर या कसर रखनेवाला।

दंशी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दण्ड। छोटा डाँस।

दंशक—वि० [सं०] डसनेवाला। डक मारनेवाला। दण्डक।

दंशर—वि० [सं०] १. दे० 'दंशक'। २. हानिकारक (को०)।

दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटे दाँत। स्थूल दाँत। बाढ़। चोबर। २. विष्णु नाम का पीषा जिसमें रोईदार फल लगते हैं। वृषिकाली।

यौ०—दंष्ट्राकराल = भयकर दाँतोंवाला। दंष्ट्रादंठ = वाराह या शूकर का दाँत। दंष्ट्रानखविष। दंष्ट्रा विष। दंष्ट्राविष।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके नख धीरे धीरे दाँत में विष हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढक, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका प्रस्न दाँत हो। शूकर। सुपर।

दंष्ट्राल^१—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंष्ट्राल^२—संज्ञा पुं० १. एक राक्षस का नाम। २. शूकर। वाराह।

दंष्ट्राविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। साँप (को०)।

दंष्ट्राविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह की मक्खी (को०)।

दंष्ट्रास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंष्ट्रायुध' (को०)।

दंष्ट्रिक—वि० [सं०] दंष्ट्रावाला। दंष्ट्राल (को०)।

दंष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दंष्ट्रा' (को०)।

दंष्ट्री^१—वि० [सं० दंष्ट्रिक] १. बड़े बड़े दाँतोंवाला। २. दाँतों से काटनेवाला (को०)। ३. मांसमक्षक। मांसाहारी। (को०)।

दंष्ट्री^२—संज्ञा पुं० १. सुपर। २. साँप। ३. लकड़बग्घा (को०)। ४. वह जंतु जिसके दाँत बड़े हों। बड़े दाँतोंवाला जंतु (को०)।

दंस^३—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] दे० 'दण्ड'।

दंडवत्^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—पटुमावती के बरसन आसा। दंडवत कीन्हु मँडप बहुत पासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २३२।

दंतना^३—क्रि० प्र० [हि० डटना] डटना। समीप होना। सटना।

दंतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त, हि० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत। दूध के दाँत। उ०—मदन पथर दंतियन की जोती। जपाकुसुम गधि जंतु बिबि मोती।—नय० प्र०, पृ० २४३।

दंती^३—संज्ञा पुं० [सं० दन्ती] हाथी। दती। उ०—तुष्टि तंतं मती, गजजनीय दंती।—पृ० रा०, १। १५१।

दंतुरच्छद्—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद्] बिजोरा नील।

दंतुरियाँ, दंतुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दंतुला—वि० [सं० दन्तुर] [वि० स्त्री० दंतुली] जिसके दाँत घाये निकले हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंतुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त] बच्चे का छोटा दाँत। उ०—बाज-कृष्ण के छोटे छोटे नए दूध के दाँतों के लिये दूध की दंतुली का प्रयोग कितना सुंदर है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७२।

दंठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] दन्त। अग्नि। धाग। उ०—दंठ दाधी मालति सुनव, अति दाघ्यो विहि ठाई।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २१५।

दंठरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन, हि० दाँवना] प्रनाज के सूखे डठलों में से दाना भाङ्गने के लिये उसे बैलों से रौबवाने का काम।

क्रि० प्र०—नाचना।

दंठारि^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दावागि'।

दंठगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटे आकार की गानेवासी चिरियाँ उ०—सबेरे सबेरे नहीं पाती बुल-बुल, न प्यामा सुरीली, न फुदकी, न दंठगल।—हरी पास०, पृ० ३६।

द^१—वि० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाला। २. देनेवाला। दाता।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी शब्द के प्रंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुख देनेवाला), जलद (जल देनेवाला, वादल) आदि।

द^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पर्वत। पहाड़। २ दान। ३ दाता।

द^२—संज्ञा स्त्री० १ भार्या। कन्या। स्त्री। २. रक्षा। ३ खडग।

दइ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—बहए बुलिए बुलि भमरि करुनाकर आहा दइ आइ की भेल।—विद्यापति, पृ० ११८।

दइआ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—आह दइअ में काह नसावा। करत नोक फलु मनइस पावा।—मानस, २।१६३।

दइजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—धीरज घरति सगुन बल रहत सो नाहिन। वर किसोर धनु घोर दइज नहि दाहिन।—तुलसी प्र० पृ० ५४।

दइजरी^१—वि० [हिं०] दे० 'दईजारी'।

दइजा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दायज] दे० 'दायज'।

दइव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दिति का पुत्र। दे० 'दैत्य'। उ०—नगर मजुध्या रामहि राजा। खेहँ दइव बाँध सब साजा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

दइमारा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दईमारी] दे० 'दईमारा'। उ०—(क) दूध वही नहि लेव रो कहि कहि पचिहारी। कहति सुर कोऊ घर नाही कहौ गई दइमारी।—सुर (शब्द०)। (ख) आशु धरन हिस दुष्ट मँवारी। मो परि उचरि चरी दइमारी।—नद० प्र०, पृ० १४८।

दइया^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। (स्त्रियों की बोलचाल में आश्रय एवं खेद प्रादि का व्यञ्जक)। उ०—भोर के धाए दोऊ भइया। कीनो नहिन फलेऊ दइया।—नव० प्र०, पृ० २५५।

दइवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव, प्रा० दइव] दे० 'देव'। उ०—वेरि एक दइव दहिन जजो होए, निरधन धन जके घरव मोजो गोए।—विद्यापति, पृ० ३५४।

दई—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देव] १ ईश्वर। विधाता। उ०—गई करि जाह दई के निहोरे।—दास (शब्द०)।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। प्रमाणा। कम-वरुड। उ०—जननी कहति, दई की घाली। काहे को इत-राती।—सुर (शब्द०)। दई का मारा = दे० 'दईमारा'। दई दई = हे देव। हे देव। रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई घाली पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वीरघ साँस न लेहि धुन, सुख साँसहि न भूल। दई दई क्यों करत है, दई दई सो कतून।—विहारी (शब्द०)।

२ देव संयोग। घट्ट। प्रारब्ध।

दईजार, दईजारी—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दईजारी] प्रमाणा। दईमारा। (स्त्रियों)।

दईव^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—कीन्हैसि राऊस सुत परोता। कीन्हैसि भोकग देव दईव।—जायसी (शब्द०)।

दईमारा—वि० [हिं० दई + मारना] [वि० स्त्री० दईमारी] ईश्वर का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। प्रमाणा। मदभाग्य। कमबल्ल। उ०—फीहा फीहा करो या पपीहा दईमारे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दईमारो^१—वि० [हिं०] दे० 'दईमारा'।

दउडा^१—वि० [सं० अधि + धृ] दे० 'डेढ़'। उ०—दउड़ घरस री मारवी, जिहँ वरसोरिउ कत। उणरउ जीवन वहि गयउ, तूँ किउँ जीवनवत।—ढोला०, पृ० ४५०।

दउरना^१—क्रि० प्र० [हिं० दीड़ना] दे० 'दीड़ना'।

दउरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दोरा'।

दक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, फा० दकन] दक्षिण भारत। देश का दक्षिणी भाग। २. दक्षिण दिक्। दक्खिन।

दकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तबग का तीसरा प्रसर 'द'।

दकार्गल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार भूमि के नीचे जल का ज्ञान करानेवाली एक विद्या। वि० दे० 'दगार्गल' [क्रि०]।

दकियानूस—सञ्ज्ञा पुं० [यू० से प्र० दकियानूस] रोम देश का एक अत्याचारी सम्राट जो सन् ३० ई० में सिंहासन पर बैठा था।

दकियानूसी—वि० [प्र० दकियानूसी] १ दकियानूस के समय का। पुराना। २ बहुत ही पुराना। रुढ़िग्रस्त। जर्जर। निकम्मा। उ०—हम आप क्या पुरातन दकियानूसी वृत्ति का परिषय देकर या प्रति प्रगतिवाद का वहाना करके इस जागरण का स्वागत न करेंगे?—कृष्ण (भू०), पृ० ११।

दकीक—वि० [प्र० दकीक] मुश्किल। कठिन। गूढ़। उ०—दिस्वा सखत मुश्किल मयक दकीक। या पानी का वाँ इक चममा अमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

दकीका—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दकीक] १ कोई वारीक बात। २ युक्ति। उपाय।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रहना = कोई उपाय बाकी न रहना। सब उपाय कर चुकना। जैसे,—मुझे नुकसान पहुँचाने में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

३ क्षण। लहजा।

दक्काक—वि० [प्र० दक्काक] १. कूटनेवाला। पीसनेवाला। महीन करनेवाला। १ गूढ़ या सूक्ष्म बातों को कहनेवाला।

दक्खणा^१—वि० [न० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] दक्षिण दिशा में स्थित दक्षिणी। उ०—मोढी मोरंग साहूँ उर निस दिवस धीर। यन लगो दक्खण मुलक, सरक न सके सरीर।—रा० ह०, पृ० १६६।

दक्खिन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] [वि० दक्खिनी] १. वह दिशा जो सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दाहिने हाथ की ओर पड़ती है। उत्तर के सामने की दिशा। जैसे,—जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विशेष—यद्यपि संस्कृत 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर हिंदी

शब्द दक्षिण विशेषण के रूप में नहीं आता। दक्षिण घोर, दक्षिण दिशा आदि वाक्यों में भी दक्षिण विशेषण नहीं है।

२. दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। ३. भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विष्य घोर नर्मदा के प्राये का देश।

दक्षिण^२—कि० वि० दक्षिण की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे,—
उत्का गाँव यहाँ से दक्षिण पड़ता है।

दक्षिणी^१—वि० [हि० दक्षिण] १. दक्षिण का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्षिणी किनारा। २. जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश संबंधी। जैसे, दक्षिणी भादमी, दक्षिणी बोली, दक्षिणी सुपारी, दक्षिणी मिर्च।

दक्षिणी^२—संज्ञा पु० दक्षिण देश का निवासी।

दक्षिणी^३—संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसमें किसी काम को चटपट सुगमसाधपूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे,—वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। २. दक्षिण। दाहिना। उ०—(क) दक्ष दिशि रुचिर वारीश कन्या।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित हरिदा अधिक ललितार्थ।—तुलसी (शब्द०)। ३. साधु। सच्चा। ईमानदार। सत्यवक्ता (को०)।

दक्ष^२—संज्ञा पु० १. एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद में दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्मण के पिता कहकर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष प्रवृत्ति के पिता थे, इससे वे देवताओं के प्रादिपुत्र कह जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि प्रथम से पहले ब्रह्माण्डपति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, अर्थात् से सत् उत्पन्न हुआ, उत्तानपद से भू और भु से बिनाएँ हुई, वहीं यह भी लिखा है कि 'प्रदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से प्रदिति जन्मी'। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि 'या तो दोनों ने समान जन्म-साध किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।' अतएव ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा गया है। हरिवंश में दक्ष को विष्णुस्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मातृपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैयुत द्वारा सृष्टि का विधान बतलाया।

वक्त्रपुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा ने सृष्टि का कामना से धर्म, श्रद्धा, मनु, ऋषि तथा सनकादि की मानव-रूप के रूप में उत्पन्न किया। फिर ब्राह्मणे प्रभृति से दक्ष को दक्षिण दिशा में उत्पन्न किया। इस पत्नी के

दक्ष की सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुई—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, बुद्धि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मुक्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हे ब्रह्मा के मानसपुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गई। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इसपर महादेव ने क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर भूव के वंश में जन्म लोगे। भूव के वंशज प्रचेतामण ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कडुकन्या मारिया के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या प्रसिकनी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं कन्याओं से अश्वपदादि ने सृष्टि बसाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

२. अग्नि ऋषि। ३. महेश्वर। ४. शिव का वैल। ५. ताम्रघुड़। मुरगा। ६. एक राजा जो उद्योतर के पुत्र थे। ७. विष्णु। ८. दक्ष। ९. कीर्ति। १०. पति (को०)। ११. नायक का एक भेद जो सभी प्रेयसियों में समान भाव रखता हो (को०)। १२. शक्ति। योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. छोटा या बुरा स्वभाव (को०)।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती। वि० दे० 'दक्ष'। २. प्रसिकनी आदि तारा।

दक्षकतुल्यंसी—संज्ञा पु० [सं० दक्षकतुल्यसिन्] १. महादेव। २. महादेव के आश से उत्पन्न वीरभद्र जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या'।

यौ०—दक्षजापति = (१) शिव। महेश्वर। (२) चंद्रमा (को०)।

दक्षार्ण—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दक्षिण घन सु सुरत ऋषि, उपजे गए न नरक।—ह० रासो, पृ. ३०।

दक्षतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या' (को०)।

दक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कमाल।

दक्षदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षिण^१—वि० [सं० दक्षिण] दाहिना। दाहिनी ओर का। उ०—मेढ़ हूँ के ऊपर दक्षिण पाव मानिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ. ४२।

दक्षिणायन^१—वि० [सं० दक्षिणायन] दे० 'दक्षिणायन'। उ०—माई दक्षिणायन हूँ, माँके उत्तरायन हूँ, माँके देह सर्प सिंह बिजुली बनत हूँ।—सुंदर०, वं०, भा० २, पृ. ६४२।

दक्षिणदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा का शब्द।

दक्षिणायन^२—संज्ञा पु० [सं०] वर्षे मनु का नाम।

दक्षसुत—सखा पुं० [सं०] देवता । सुर ।

दक्षसुता—सखा स्त्री० [सं० दक्ष + सुता] दे० 'दक्षकन्या' [को०] ।

दक्षांड—सखा पुं० [सं० दक्षाण्ड] मुरगो का घंटा [को०] ।

दक्षा^१—वि० स्त्री० [सं०] कुशल । निपुणा ।

दक्षा^२—सखा स्त्री० १. पृथ्वी । २. गंगा का एक नाम [को०] ।

दक्षाव्य—सखा पुं० [सं०] १. वेदवेत्ता । मरुट । २. पीष । गृद्ध [को०] ।

दक्षिण^१—वि० [सं०] १. दक्षिण । दाहिना । बायाँ का उलटा । अप-सव्य । २. इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो । अनुकूल । ३. साधु । ईमानदार । सच्चा [को०] । ४. उस ओर का जिधर सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दाहिना हाथ पड़े । उत्तर का उलटा ।

यौ०—दक्षिणापथ । दक्षिणायन ।

५. निपुण । दक्ष । चतुर ।

दक्षिण^२—सखा पुं० १. दक्षिण की दिशा । उत्तर के सामने की दिशा । २. काव्य या साहित्य में वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो । ३. प्रदक्षिण । ४. तन्त्रोक्त एक आचार या मार्ग ।

विशेष—कुशाग्रं तत्र में लिखा है कि सबसे उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अच्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अच्छा शैव मार्ग है, शैव से अच्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अच्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अच्छा सिद्धांत मार्ग है ।

५. विष्णु । ६. शिव का एक नाम [को०] । ७. दाहिना हाथ या पार्श्व [को०] । ८. दे० 'दक्षिणाग्नि' । ९. रथ के दाहिनी ओर का भ्रम [को०] । १०. दक्षिण का प्रदेश [को०] ।

दक्षिणकालिका—सखा स्त्री० [सं०] १. तंत्रसार के अनुसार तांत्रिकों की एक देवी । २. दुर्गा [को०] ।

दक्षिणगोल—सखा पुं० [सं०] विपुल रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राशियाँ, जो छह हैं—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ।

दक्षिणपवन—सखा पुं० [सं०] मलयपवन । मलयानिल ।

दक्षिण मार्ग—सखा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की तांत्रिक साधना । २. पितृयान [को०] ।

दक्षिणस्थ—सखा पुं० [सं०] रथवाह । रथ हँकनेवाला [को०] ।

दक्षिणा—सखा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है । वह धन जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय ।

किं प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बसन्ताया है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि कार्तिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ उसी में श्रीकृष्ण के दक्षिणाश से दक्षिणा की उत्पत्ति हुई थी ।

३. पुरस्कार । भेट । ४. वह नायिका जो नायक के अन्य स्त्रियों से संबंध करते पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो ।

दक्षिणाग्नि—सखा स्त्री० [सं० दक्षिण+अग्नि] यज्ञ में गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि ।

दक्षिणाग्र—वि० [सं०] जिसका प्रगला प्रण दक्षिण की ओर हो दक्षिणाभिमुख [को०] ।

दक्षिणाचल—सखा पुं० [सं०] मलयगिरि पर्वत । मलयाचल ।

दक्षिणाचार—सखा पुं० [सं०] १. सदाचार । शुद्ध भी उत्तम आचरण । २. तांत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आपको शिव मानकर पंचतत्त्व से शिव व पूजा की जाती है । यह आचार वामाचार से श्रेष्ठ भी प्रायः वैदिक माना जाता है ।

दक्षिणाचारी—सखा पुं० [सं०] दक्षिणाचारिन् । १. विशुद्धाचारी धर्मशील । सदाचारी । २. वह तांत्रिक जो दक्षिणाचार दीक्षित हो ।

दक्षिणापथ—सखा पुं० [सं०] विष्णुपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं ।

दक्षिणापरा—सखा स्त्री० [सं०] नेष्ट्रित कोण ।

दक्षिणाप्रवण—सखा पुं० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्ष दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुमाँ हो ।

विशेष—मनु के अनुसार आद्य आदि के लिये ऐसा ही स्था उपयुक्त होता है ।

दक्षिणामूर्ति—सखा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति ।

दक्षिणाभिमुख—वि० [सं०] दक्षिण की ओर मुँह किए हुए । जिसके मुख दक्षिण दिशा की ओर हो ।

दक्षिणायन^१—वि० [सं०] दक्षिण की ओर । सुमध्यरेखा से दक्षिण की ओर । जैसे, दक्षिणायन सूर्य ।

दक्षिणायन^२—सखा पुं० १. सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । २. वह छह महीने का समय जिसमें सूर्य क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा पर्याप्त उत्तरीय भ्रमनसीम पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी भ्रमन सीम मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हों उस समय कुम्भ, तालाव, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करना चाहिए । तो भी भैरव, वराह, रुद्रिह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावर्त^१—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो जो दाहिनी ओर घुमा हुआ हो ।

दक्षिणावर्त^२—सखा पुं० एक प्रकार का शस्त्र जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावर्त्तकी—सखा स्त्री० [सं० दक्षिणावर्त्तकी] दे० 'दक्षिणावर्त्तकी' ।

दक्षिणावर्त्तकी—सखा स्त्री० [सं०] वृश्चिकवादी नाम का पीषा ।

दक्षिणावह—सखा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाला हवा ।

दक्षिणारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा ।

दक्षिणारापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. मंगलग्रह ।

दक्षिणी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा ।

दक्षिणी^२—सञ्ज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी ।

दक्षिणी^३—वि० दक्षिण देश का । दक्षिण देश संबंधी ।

दक्षिणीय—वि० [सं०] १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । दक्षिण देश का । २. जो दक्षिण का पात्र हो ।

दक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'दक्षिणीय' [को०]

दक्षिण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—ब्राह्मणन को दान दक्षिना दे श्री गोकुल भाए ।—दो सो दान, भा० १, पृ० १३९ ।

दक्षिनी—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिणी] दे० 'दक्षिणी' ।

दखन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, फ़ा० दकन] दे० 'दक्षिण' ।

दखमा—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दख्ख] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं ।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट प्रकार के स्थान में रख देते हैं जहाँ चील कोए प्रादि उसका मांस खा जाते हैं । इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारो ओर से घेर देते हैं, जिसके ऊपरी भाग में जंगला सा लगा रहता है । इसी जंगल पर शव रख दिया जाता है । जब उसका मांस चील कोए प्रादि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जंगल में से नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे एक मार्ग होता है जिससे ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं । भारत में निवास करनेवाले पारसियों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था बर्मा, मुरत आदि कुछ नगरों में है ।

दखल—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दखल] १. अधिकार । कब्जा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मे माना ।—में लाना ।—होना ।

यौ०—दखलदिहानी । दखलनामा । दखलकार ।

२. हस्तक्षेप । हाथ डालना । उ०—मूरख दखल देई बिन जाने । गहँ चपलता गुह प्रस्थाने ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. पहुंच । प्रवेश । जैसे,—भाप भंगरेजी में भी कुछ दखल रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दखलदिहानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० दखल + फ़ा० दिहानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिला देना । कब्जा दिलवाना ।

दखलनामा—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दखल + फ़ा० नामह] वह पत्र विशेषतः सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो ।

दखिणाव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिणावय, प्रा० दक्षिणावध, दक्षिणावह] दक्षिण देश । उ०—उत्तर भाज न जाइयइ,

जिहाँ स सीत प्रगाथ । सा भइ सुरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाव ।—ढोला०, पृ० ३०१ ।

दखिन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—देखि दखिन बिसि हय हिहिनाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दखिनहरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दखिन + हारा] दक्षिण से मानेवाली हवा । दक्षिण की ओर से भाती हुई हवा ।

दखिनहो^३—वि० [हि० दखिन + हो (प्रत्य०)] दक्षिण का । दक्षिणी ।

दखिनाई—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दखिन + ना (प्रत्य०)] दक्षिण से मानेवाली हवा ।

दखील—वि० [फ़ा० दखील] अधिकार रखनेवाला । जिसका दखल या कब्जा हो ।

दखीलकार—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दखील + फ़ा० कार] वह प्रसामी जिसने किसी जमींदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रखा हो ।

दखीलकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० दखील + फ़ा० कार] १. दखीलकार का पद या भवस्था । २. वह जमीन जिसपर दखीलकार का अधिकार हो ।

दख्खी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दख्खा, दख] दे० 'दख' । उ०—महर पयोहर, दुइ नयण मीठा जेहा मख्ख । ढोला एही मारई, जाणे मीठी दख्ख ।—ढोला०, पृ० ४७० ।

दगंबर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दिगंबर] दे० 'दिगंबर' । उ०—दया दगंबर नामु एकु मनि एको प्रादि भ्रूप ।—प्राण०, पृ० २१२ ।

दगइल^२—वि० [हि० दगैल] दे० 'दगैल' ।

दगड़—सञ्ज्ञा पुं० [? या सं० ठक + हि० ड (प्रत्य०)] लड़ाई में बजाया जानेवाला घड़ा ढोल । जगी ढोल ।

दगड़ना—क्रि० प्र० [?] सच्ची बात का विश्वास न करना ।

दगड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दगड़] दे० 'दगड़' ।

दगदगा—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दगदग] १. डर । भय । २. सदेह । शक । ३. एक प्रकार की कडील ।

दगदगाना^१—क्रि० प्र० [हि० दगना] दमदमाना । चमकना । उ०—ज्यो ज्यो प्रति कृणता पड़ति त्यो त्यो दुति सरसात । दगदगात त्यो ही कनक ज्यो ही दाहृत जात ।—गुमान (शब्द०) ।

दगदगाना^२—क्रि० प्र० चमकाना । चमक उत्पन्न करना ।

दगदगाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक । दमक ।

दगदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दगदगा] दे० 'दगदगा' ।

दगध^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दग्ध] दे० 'दाह' । उ०—पेम का लुबुध दगध पे साधा ।—जायसी प्र०, पृ० ६४ ।

दगध^२—वि० दे० 'दग्ध' । उ०—ग्यान दगध जोगिद कुसट केरव भगि पान ।—पृ० रा०, ५४।१२१ ।

दग्धना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, हि० दगध + ना (प्रत्य०)] जलना । उ०—वज्र भगनि विरहित हिय जारा । मुलग सुलग दगधि भइ धारा ।—जायसी (शब्द०) ।

दगधना^२—क्रि० स० १ जलाना । १ बहुत दुख देना । कष्ट पहुँचाना ।

दगना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, हि० दग्ध + ना (प्रत्य०)] १ (बहुक या तोप आदि का) दूटना । चलना । जैसे,—बहुक घ्राप ही घ्राप दग गई । २ जलना । दग्ध होना । झुलस जाना । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामी कुजबिहारी की कटाछ कोटि काम दगे ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । ३. दागा जाना । दागना का प्रकर्मक रूप ।

दगना^२—क्रि० स० दे० 'दागना' । उ०—(क) विषघर स्वास सरिस लगे तन सीतल बन बात । अनलहुँ सों सरसे दगे द्विमकर कर धन गात ।—शृ० सत (शब्द०) । (ख) जे तब होत दिखा-दिखी भई प्रमी इक प्रीति । दगे तिराछी दोठ प्रब हूँ वोछी को डीक ।—बिहारी (शब्द०) ।

दगना^३—क्रि० प्र० [प्र० दाग] १ दागा जाना । प्रकृत होना । चिह्नित होना । २. प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०—लोक वेद हूँ लो दगो नाम भले को पोच । धर्मराज जस गाज पवि कहत सकोच न सोच ।—तुलसी (शब्द०) ।

दगरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [‘देर’ से देश०] दे० ‘दगरा’ ।

दगरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [?] १ देर । विलंब । उ०—भोरहि ते कान्ह करत सोवै कगरो । सब कोउ जात मधुपुरी वेचन कोने दियो दिखावहु कगरो । अचल ऐचि ऐचि राखत हो जान देहु भव होत है दगरो ।—सूर (शब्द०) । २. डगर । रास्ता । उ०—बहु जो खडित मेंड बनी दगरे के माहीं ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

दगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] वह बही जिसपर मलाई या साड़ी न हो ।

दगल^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘दगला’ । उ०—सौर सुपेती मदिह रातो । दगल चीर पहिरहि बहु माँती ।—जायसी (शब्द०) ।

दगल^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दगल] १ घोखा । फरेब । मक्कर । २ छोटा सोना या चाँदी (शब्द०) ।

दगलफसल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दगल + अनु० फसल या हि० फँसाना] घोखा । फरेब ।

दगला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मोटे वस्त्र का बना हुआ या रईदार झोंगरखा । भारी सबादा ।

दगली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० ‘दगला’ । उ०—मुई मेरी माई हो खरा सुखाला । पहिरो नही दगली लगे न पाला ।—कवीर प्र०, पृ० ३०६ ।

दगवाना—क्रि० स० [हि० दागना का प्रे० रूप] दागने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना । उ०—उठि भोरहि तोपन दगवायो । दीनन को बहु द्रव्य लुटायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

दगहा^१—वि० [हि० दाग + हा (प्रत्य०)] १ जिसके दाग लगा हो । दागवाला । २. जिसके सपेद दाग हों ।

दगहा^२—वि० [हि० दाग (= प्रेतकर्म) + हा (प्रत्य०)] जिसने प्रेत-कर्म की हो । प्रेतकर्मकर्ता ।

दगहा^३—वि० [हि० दगना + हा (प्रत्य०)] जो दागा हुआ हो । जो दग्ध किया गया हो ।

दगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० दगा] छल । कपट । धोखा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—खाना ।

यौ०—दगाबाज । दगादार ।

दगाती—वि० [फा० दगा] दगाबाज । धोखेबाज । उ०—सल बल करि नहि काहू पकरत दोरि दगाती ।—घनानंद०, पृ० ५६६ ।

दगादगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० दगा] धोखेबाजी । उ०—सजनी निपट अचेत है दगादगी समुझै न । चित बित परकर बेत है लगालगी काँ नैन ।—स० सप्तक, पृ० २३४ ।

दगादार—वि० [फा० दगा + दार] धोखेबाज । छली । उ०—(क) एरे दगादार गरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार मे पछार छार करिहौ ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) छबोले तेरे नैन बडे हैं दगादार ।—गीत (शब्द०) ।

दगादारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० दगादार + ई] दे० ‘दगादगी’ ।

दगाबाज^१—वि० [फा० दगाबाज] छली । कपटी । धोखा देनेवाला । उ०—(क) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाम तुलसी पे भोंडे भाग ते भयो है दास, किए अंगीकार एते बडे दगाबाज को ।—तुलसी (शब्द०) ।

दगाबाज^२—सञ्ज्ञा पुं० छली मनुष्य । धोखा देनेवाला साधमी ।

दगाबाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० दगाबाजी] छल । कपट । धोखा । उ०—सुहृद समाज दगाबाजी ही को सोदा सुत जब जाको काज तब मिले पाय परि सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

दगार्गल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या, जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी लक्षण आदि देखकर, भूमि के नीचे पानी होने प्रयत्न न होने का ज्ञान होता है ।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जलवाहिनी शिराएँ होती हैं और इस शिराओं के किसी स्थान पर होने प्रयत्न न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है । जैसे, यदि किसी निर्जल स्थान में जायुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा है, यदि किसी निर्जल स्थान में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे मच्छे जल की शिरा होगी, इत्यादि ।

दगैल^१—वि० [प्र० दाग + एल (प्रत्य०)] १. दागदार । जिसमें दाग हो । २ जिसमें कुछ खोट वा दोष हो ।

दगैल^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दगा] दगाबाज । छली । उ०—सात कोप कीर्त्तौ बलि आए । भए दगैन के मन माए ।—लाल (शब्द०) ।

दगाना^३—क्रि० प्र० [हि० दगना] दे० ‘दगना’ । उ०—तोष तुपक चढ़ सब बगिच ।—ह० रासो, पृ० १४५ ।

दग्ध^१—वि० [सं०] १. जला या जलाया हुआ । २. दुहित । जिसे कष्ट पहुँचा हो । जैसे, दग्धहृदय । ३. कुम्हलाया हुआ । म्लान । जैसे, दग्धमानन । ४. अशुभ । जैसे, दग्धयोग । ५. सुदृढ़ । तुच्छ । विकृष्ट । जैसे, दग्धदेह, दग्धउदर, दग्धजठर । ६. शुष्क । नीरस । वेस्वाद (को०) । ७. वुभुक्षित । क्षुधापस्त (को०) । ८. चतुर । चालाक । विदग्ध (को०) ।

दग्ध^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कर्तुण भी कहते हैं ।

दग्धकाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डोम कौवा ।

दग्धमन्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दग्धमन्त्र] तन्त्र के अनुसार वह मन्त्र जिसके मूर्धा प्रदेश में वह्नि और वायुयुक्त वर्ण हों ।

दग्धरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम । विशेष—दे० 'चित्ररथ' ।

दग्धरुह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

दग्धरुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष ।

दग्धवर्णक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोहिष नाम की घास ।

दग्धव्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलने का घाव (को०) ।

दग्धव्य—वि० [सं०] जलाने लायक । कष्ट देने योग्य (को०) ।

दग्धा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य के प्रस्त होने की दिशा । पश्चिम । २. एक प्रकार का वृक्ष जिसे कुरु कहते हैं । ३. कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ । जैसे—मीन और घन की अष्टमी । वृष और कुम्भ की चोथ । मेष और कर्क की छठ । कन्या और मिथुन की नौमी । वृश्चिक और सिंह की दशमी । मकर और तुला की द्वादशी ।

विशेष—दग्धा तिथियों में वेदारभ, विवाह, स्त्रीप्रसंग, यात्रा या वाणिज्य प्रभृति करना बहुत हानिकारक माना जाता है ।

दग्धा^२—वि० [सं० दग्ध] १. जलानेवाला । २. दुःख देनेवाला । (को०) ।

दग्धाक्षर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार क, छ, र, म और ष ये पाँचो अक्षर, जिनका छद के आरम्भ में रखना वर्जित है । उ०—दीर्घो भूष न छद के आदि क ह र म ष कोइ । दग्धाक्षर के दोष तें छद खोपयुत होइ ।—(शब्द०) ।

दग्धाह्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।

दग्धिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'दग्धा' २. जला हुआ अन्न या मात (को०) ।

दग्धित^१—वि० [सं० दग्ध + हि० इत (प्रत्य०)] दे० 'दग्ध' । उ०—बोले गिरा मधुर शक्ति करी विचारी । होवे प्रबोध जिससे दुख दग्धितों का ।—प्रिय०, पृ० १९६ ।

दग्धेष्टका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध + इष्टका] जली और भुलसी हुई ईंट । भावी (को०) ।

दघ्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दघ्नी] तक पहुँचने या जाननेवाला । तक गहरा या ऊँचा । (समासात् में प्रयुक्त) । जैसे, उरदघ्न, जानुदघ्न, गुल्फदघ्न आदि ।

दक्क—सञ्ज्ञा स्त्री० [मनु०] १. भटके या दवाव से लगी हुई चोट । २. धक्का । ठोकर । ३. दबाव ।

दक्कना^१—क्रि० प्र० [मनु०] १. ठोकर या धक्का खाना । २. दब जाना । लचकना । ३. भटका खाना ।

दक्कना^२—क्रि० प्र० १. ठोकर या धक्का लगाना । २. दबाना । लचकाना । ३. भटका देना ।

दक्का—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दक्कना] धक्का । ठोकर । उ०—हृल्लसा सा दक्का लगा तो गाडीवान की नींद भुन गई ।—रति०, पृ० ६२ ।

दवना—क्रि० प्र० [देश०] गिरना । पड़ना । उ०—गगन उड़ाइ गयो ले श्यामहि आइ घरनि पर आप दच्यो री ।—पुर (शब्द०) ।

दच्चा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ठोकर । धक्का । दक्का । उ०—तजै बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे ।—पद्माकर प्र०, पृ० ११ ।

दच्छ^१—वि० [सं० दक्ष] चतुर । निष्णात । कुशल । उ०—सापवस मुनिधनु मुक्तकृत विप्रहित यज्ञरच्छन दच्छ पच्छकर्ता ।—तुलसी प्र०, पृ० १ ।

दच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्ष, प्रा० दच्छ] दे० 'दक्ष' । उ०—जनमी प्रथम दच्छगृह जाई ।—मानस, १ ।

यौ०—दच्छकुमारी । दच्छसुत=दक्ष प्रजापति के पुत्र । उ०—दच्छसुतन्हि उपदेशेन्हि जाई ।—मानस, १ । दच्छसुता ।

दच्छकुमारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष प्रजापति की कन्या, सती । उ०—मुनि सन विदा माँगि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दच्छना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' ।

दच्छसुता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्षसुता] दक्ष की कन्या, सती ।

दच्छिन^१—सञ्ज्ञा पुं०, क्रि० वि०, वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—दच्छिन पिय ह्वै वाम वस विसराई तिय आन । एकै वासर के विरह लागे वरष धितान ।—बिहारी (शब्द०) ।

दच्छिननायक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दक्षिण + नायक] दे० 'दक्षिणनायक' ।

दच्छिना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—दच्छिना देत नद पग लागत, आसिस देत गरग सब द्विजवर ।—नद० प्र०, पृ० ३७१ ।

दछना, दछिना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—(क) भोजन कर जिजमान बिमाये । दछना कारन जाय अड़े ।—संत तुरसी०, पृ० १८६ । (ख) तुमहि मिलैगो बीरा दछिना भरि भरि भोरी लू ।—नद० प्र०, पृ० ३३६ ।

दज्जाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० दज्जाल] झूठा । बेईमान । अत्याचारी ।

दम्कना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध, प्रा० दम्क] दे० 'दहना' । उ०—दुज्जर काय सु कहत राज मन माँहि समझौ । कामज्वाल मो बढ़िय तुमहि तिन के दुख दम्कौ ।—पृ० रा०, १ । ४१६ ।

दट^१—क्रि० प्र० [सं० दष्ट, प्रा० दट्ट (कटा हुआ)] दब जाना । हट पड़ना । उ०—तरह मदन रत तरणी, देख दिल दरप जाय दट ।—रघु० रू०, पृ० ३६ ।

दटना^१—क्रि० प्र० [हि० डटना] दे० 'डटना' ।

दङ्घला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दङ्घोत्पल] सहदेई नाम का पौधा ।

दंडवका(७)—संज्ञा पुं० [अनु०] दरेरा । उ० इक इक हटवके, देव दंडवके, सेल तटवके श्रोन बहे ।—सुजान०, पृ० ३१ ।

दंडी—मन्त्रा स्त्री० [देश०] कटुक । गेंद । तड़ी । उ०—बोध पाए दंडी जेम घाणियो गिरव एम । उठे महीराव जाँए, नीव सूँ उखास ।—रघु० ६०, पृ० १६६ ।

दंडूक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दहाड़ । गरज ।

दंडूकना—क्रि० प्र० [अनु०] दहाड़ना । गरजना ।

दंडोकरना—क्रि० प्र० [अनु०] दहाड़ना । गरजना । बाघ, साँड़, घादि का बोलना ।

दंडू(७)—वि० [सं० दंड, प्रा० दंडु] पक्का । मजबूत । दृढ़ । उ०—खरे राव के रावतं जोर दंडु ।—ह० रासो, पृ० ६६ ।

दंड(७)—वि० [सं० दृढ़, प्रा० दंडु] दे० 'दृढ़' । उ०—सपं ब्यूह भाकार सज्जे सभारं । बडेँ फल पुर्थे रचे भित्त सारं ।—पृ० रा०, १।६३३ ।

ददियस्त—वि० [हिं० दाढ़ी + इत्यल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला । जो दाढ़ी रखे हो ।

दणयर, दणियर(७)—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर] सूर्य । दिनकर । उ०—माछ सी देखी नहीं, अणमुख दोय नयणह । घोडो सो भोले पड़ह, दणयर उगहताह ।—ढोला०, पृ० ४७८ ।

दत्त—संज्ञा पुं० [सं० दत्त (= दान)] दे० 'दान' उ०—देवी प्रभु पसाव दत्त, बीर गोड बछराज ।—वांकी० प्र०, भा० १, पृ० ७६ ।

दत्तना—क्रि० प्र० [हिं० दटना] दे० 'दटना' । उ०—केसव केसव देखन को तिनहें भोरही भोरी हूँ भानि दती हो । पान खयावत ही तिनसों तुम राति कहा सतराति हती हो ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ७१ ।

दत्तवन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दत्तवन' ।

दत्तारा—वि० [हिं० दाँत + आर (प्राय०)] १ दाँतवाला । जिसमें दाँत हों । दाँतदार । २ बड़े बड़े या दृढ़ दाँतवाला (हाथी, शूकर आदि) ।

दत्तिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] दाँत का स्त्रीलिंग और ग्रन्थार्थक रूप । छोटा दाँत ।

दत्तिया^२—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत सुंदर होता है । इसकी खाल मच्छे दामों पर बिकती है । नीलमोर । २ एक पुराना राज्य ।

दत्तिसुत—संज्ञा पुं० [सं० दत्तिसुत] दैत्य । राक्षस (डि०) ।

दत्तुघन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दत्तुवन' ।

दत्तुइन^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दत्तुवन' । उ०—दत्तुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई ।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२ ।

दत्तुघन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + घन (प्रत्य०)] मयवा घावन] १ नीम या बबूल आदि की काटी हुई छोटी टहनियों जिसके एक सिरे को दाँतों से कुचलकर कूचों की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं । दातुन ।

क्रि० प्र०—करना ।

२ दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—दत्तुवन कुल्ला=दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया ।

दत्तून—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दत्तुवन' ।

दत्तौन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दत्तुवन' ।

दत्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ दत्तात्रेय । २. जैतियों के नी वासुदेवों में से एक । ३ एक प्रकार के बगाली कायस्थों की उपाधि । ४. दान । ५. दत्तक ।

दत्त^२—वि० १. दिया हुआ । प्रदत्त । २. दान किया हुआ । ३. सुरक्षित । रक्षित (को०) ।

दत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र । वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो । गोद दिया हुआ लड़का । सुतबन्ना ।

विशेष—स्पृतिर्यों में जो औरस और-सेत्रज के प्रतिरिक्त दत्त प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं, उनमें दत्तक पुत्र भी है । इसमें से कलियुग में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है, पर मिथिला और उससे पास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण अबतक होता है । पुत्र के बिना पितृश्राद्ध से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है । पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृश्राद्ध से तो उद्धार हो जाता है पर पिछा पानी नहीं मिल सकता इससे उस व्यवस्था में भी पिछा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है । किंतु यदि मृत पुत्र का कोई पुत्र या पोत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता । दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पोत्र, प्रपोत्र आदि न हो । दूसरी बात यह है कि आशान प्रदान की विधि पूरी हो, अर्थात् लड़के का पिता यह कहकर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कहकर उसे ग्रहण करे 'धर्माय त्वां परिगृह्णामि, सन्तत्ये त्वां परिगृह्णामि । द्विजो के लिये हवन आदि भी आवश्यक है । वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी 'द्वामुष्यायण' कहलाता है । ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता है ।

दत्तक लेने का अधिकार पुष्प ही को है, अर्थात् स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही । विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा । वशिष्ठ का वचन है कि 'स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले । नंद पंडित ने तो दत्तक मोमासा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह जाप होम आदि नहीं कर सकती । पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है । वगदेश और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है, और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है । महाराष्ट्र देश के पंडित वशिष्ठ के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस व्यवस्था

में हैं जब दत्तक पति के सामने लिया जाय, पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियों से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है। कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है, स्मृतियों में इस सबब में कई नियम मिलते हैं—

- (१) शौनक, वशिष्ठ आदि ने एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का निषेध किया है। पर कनकत्ते को छोड़ और दूसरे हाइकोटों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।
- (२) लड़का सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।
- (३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव में भिन्न गोत्र सपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ सबंधी जो समानोदकों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।
- (४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, वहिन का लड़का, भाई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्र-च्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का नियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की 'दत्तक मीमांसा' और देवानंद भट्ट तथा कुवेर कृत 'दत्तक-चंद्रिका' सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहां—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब जो लगाया हो। जिसने खूब चित्त खगाया हो।

दत्ततीर्थकृत्—संज्ञा पु० [सं०] गत उत्सर्पिणी के घाठवें ग्रहंत (जैन)।

दत्तदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी आंखें किसी वस्तु पर टिकी हों [को०]।

दत्तशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जिसे प्राप्त करने के लिये शुल्क के रूप में कोई द्रव्य दिया गया हो [को०]।

दत्तस्यानपाकर्म—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना।

दत्तहस्त—वि० [सं०] जिसे हाथ का सहारा दिया गया हो [को०]।

दत्ता—संज्ञा पु० [सं० दत्त] ३० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा मिली है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की, स्त्री बड़ी पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसके आज्ञानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर अंधेरी रात में उस वेश्या के घर चली। रास्ते में माडव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे, अंधेरे

में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उल्टे लग गया। उन्होंने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि आओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें अग्नि मुनि की स्त्री अनसूया के पास जाने की समझ दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर अनसूया ने जाकर ब्राह्मण पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरने ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूंगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। इस-पर वह मान गई, तब सूर्य उदय हुआ और मृत ब्राह्मण को अनसूया ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने इस प्रकार होकर अनसूया से वर माँगने के लिये कहा। अनसूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया, और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वासा बनकर अनसूया के घर जन्म लिया। हेह्यराज ने जब अग्नि को बहुत कष्ट पहुँचाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आये थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषिकुमारों के साथ योगसाधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और ससार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही डूबे रहे फिर भी ऋषिकुमारों ने उनका सग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें छलने के लिये एक सुदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपान करने लगे। पर ऋषिकुमारों ने यह समझकर तब भी उनका सग न छोड़ा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। मागवत के अनुसार इन्होंने चौबीस पदार्थों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थी और उन्हीं चौबीस पदार्थों को ये अपना गुह मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कवूतर, अजगर, मागर, पतंग, मधुकर (भौरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुमग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिगला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारी कन्या, घाण बनानेवाला, साँप, मकड़ो और तितली।

दत्ताप्रदानिक—संज्ञा पु० [सं०] व्यवहार में घट्टारह प्रकार के विवाद पदों में से पाँचवाँ विवाद पद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तावधान—वि० [सं० दत्त + अवधान] दत्तचित्त। सावधान। उ०—भारत साम्राज्य को भी दत्तावधान होना पड़ा है। प्रेमचन०, भा० २ पृ० २२२।

दत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पक्का होना।

दत्तेय—संज्ञा पु० [सं०] दत्त।

उ०—कब को भयो रे डोटा दधिदानो ।—प्रकवरी०, पृ० ६१ ।

दधिधेनु—सच्चा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये कल्पित गो जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है ।

दधिधानी—सच्चा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें दही रखा हो । दही रखने का बर्तन [को०] ।

दधिनामा—सच्चा पुं० [सं० दधिनामन्] कैय का पेड़ ।

दधिपुष्पिका—सच्चा स्त्री० [सं०] सफेद मयराजिता ।

दधिपुष्पी—सच्चा स्त्री० [सं०] सेम ।

दधिपूप—सच्चा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो दही में फेंटे हुए शालि घान के चूर्ण को घी में तलने से बनता है ।

दधिफल—सच्चा पुं० [सं०] कैय । कपिल ।

दधिमंड—सच्चा पुं० [सं० दधिमण्ड] दही का पानी ।

दधिमंडोद—सच्चा पुं० [सं० दधिमण्डोद] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

दधिमयन—सच्चा पुं० [सं० दधिमन्यन] दही को मयने की क्रिया [को०] ।

दधिमयनार्त्ता—सच्चा पुं० [सं० दधिमन्यन] दही गिलने या मयने का काम । उ०—सो ता दिन में वह ब्रजवासिनी जब दधि-मयान को बैठती तब ही श्री गोबर्धननाथ जी वा पास भाइ विराजते ।—दो सो भावन०, भा० २, पृ० ६ ।

दधिमुख—सच्चा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की सेना का एक वदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था । रामायण के अनुसार यह सुग्रीव का समुर था । २ फनवाले साँपों में श्रेष्ठ एक नाग का नाम [को०] ।

दधियार—सच्चा पुं० [देश०] जीवतिका की जाति की एक लता मकंपुष्पी । मधाहली ।

विशेष—इस लता के पत्ते लंबे और पान के आकार के होते हैं । इसकी डठियों या दि में से दूध निकलता है और इसमें सुगंधमुखी की तरह के फूल लगते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता है ।

दधिवक्त्र—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'दधिमुख' [को०] ।

दधिशर—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'दधिमंड' [को०] ।

दधिशील—सच्चा पुं० [सं०] वदर । बानर [को०] ।

दधिपाय्य—सच्चा पुं० [सं०] घृत । घी [को०] ।

दधिसम्भव—सच्चा पुं० [सं० दधि + सम्भव] सम्भव । नवनीत । नैतृ ।

दधिसागर—सच्चा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

दधिसार—सच्चा पुं० [सं०] नवनीत । मक्खन ।

दधिसुत^१—सच्चा पुं० [सं० उदधि + सुत] १ कमल । उ०—देखो मैं दधिसुत में दधिजात । एक भ्रवं भी देखि सखी री रिपु में रिपु जु समात ।—सूर०, १०।१७२ २ मुक्ता । मोती । उ०—दधि-सुत जामे नव दुवार । निरखि नैन भवभयो मनमोहन रटत देह कर बारबार ।—सूर०, १०।१७३ । ३ उडुपति । चद्रमा । उ०—(क) राधे दधिसुत बधो न दुरावति । हों जु कहति वृषमानु नदिनी काहें जीव सतावति ।—सूर०, १०।१७४ ।

(स) दधिसुत जात हों उहि देस । शारिका है स्याम सु दर सकल भुवन नरेस ।—सूर०, १०।४२६४ ।

यौ०—दधिसुत सुत = चद्रमा का पुत्र, बुध, मर्षाव विद्वान् । पंडित । उ०—जिनके हरि वाहन नहीं दधिसुत सुत जेहि नाहि । तुनसो ते नर तुल्य हैं बिना समीर उड़ाहि ।—स० सप्तक, पृ० २१ ।

४ जालंधर दैत्य । उ०—विष्णु वचन पपसा प्रतिहारा । तेहि ते प्रापुन दधिसुत मारा ।—विश्राम (शब्द०) । ५ विष । जहर उ०—नहि विभूति दधिसुत न कट यह युगमद चदन चरचित तन ।—सूर (शब्द०) ।

दधिसुत^२—सच्चा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।

दधिसुता—सच्चा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप । उ०—दधिसुता सुत भवलि ऊपर इद्र प्रायुध जानि—सूर (शब्द०) ।

यौ०—दधिसुता सुत = सीप का पुत्र—मोती । मुक्ता ।

दधिस्नेह—सच्चा पुं० [सं०] दही की मलाई ।

दधिस्वेद—सच्चा पुं० [सं०] तक्र । छाद्य । मट्ठा ।

दधी०—सच्चा पुं० [सं० उदधि] दे० 'उदधि' । उ०—रिद्ध मानरायं, भए सो सहायं । हनुमान तायं, दधी सीस पायं ।—पु० रा०, २।२४ ।

दधीच०—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'दधीचि' । उ०—जीत महीपति हाइनही महे जोत दधीच के हाइन ही में ।—मति० प्र०, पृ० ३६२ ।

यौ०—दधीचास्त्रि = दे० 'दधीच्यस्त्रि' ।

दधीचि—सच्चा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से प्रयव के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे । किसी पुराण के मत से ये कदंभ ऋषि की कन्या और प्रयव की पत्नी शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे ।

विशेष—वेदों और पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं, जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इद्र ने इन्हें मधुविषा खिलाई थी और कहा था कि यदि तुम यह विषा बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे । इसपर अश्विपुंगव ने दधीचि का सिर काटकर मलग रख दिया और उनके पढ़ पर घोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधुविषा सीछी । जब इद्र को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला । इसपर अश्विपुंगव ने उनके पढ़ पर फिर वही मनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया । एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुःखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए । उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए मस्तक के प्रतिरिक्त और किसी मस्तक से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा । इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी । दधीचि ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इद्र को भी विमुख सोढाना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए । तब उनकी हड्डियों से मस्तक बनाकर वृत्रासुर मारा गया । तभी से दधीचि का बड़ा भारी शानो होना प्रसिद्ध है । महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दध

ने हरिद्वार में बिना शिव जी के यज्ञ किया था, तब इन्होंने दक्ष को शिव जी के निमंत्रित करने के लिये ब्रह्म समझाया था, पर उन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ों कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से भ्रष्ट करने के लिये भलवुषा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में तपस्या कर रहे थे तब भलवुषा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर इनका वीर्य स्थलित हो गया जिससे एक पुत्र हुआ। इसी से उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीच्यस्थि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि + मस्थि] १ इद्रास्थि। वज्र।
२ हीरा। हीरक।

दध्न्—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमों में से एक यम।

दध्यानी—संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दध्युत्तरक, दध्युत्तरग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दध्युत्तर' [को०]।

दन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिवस। दिन (दि०)।

दनकर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर, दणयर] दिनकर।
सूर्य (दि०)।

दनगा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १ दनदन शब्द करना। २
मानद करना। खुशी मनाना।

दनमणि—संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] चुमणि। सूर्य (दि०)।

दनादन—क्रि० वि० [प्रनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे,—दनादन
तोपें छूटने लगी।

दनु^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को
व्याही थी।

विशेष—इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं।
उनके नाय वे हैं—विप्रचित्ति, शबर, नमुचि, पुलोमा,
असिलोमा, केशी, दुर्जय, मयशिरा, अश्वशिरा, अश्वशकु,
गगनमूर्वा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, ध्रुवर्वा, अजक, अश्वघ्रीव,
सुक्ष्म, तुहुड, एकपद, एकवक्त्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचंद्र,
निकुभ, कुजट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चंद्र, एकाक्ष, अमृतप,
प्रलव, नरक, वातापी, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घजिह्व।
इनमें जो चंद्र और सूर्य नाम आए हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य
से भिन्न हैं।

दनु^२—संज्ञा पुं० एक दानव का नास जो श्री दानव का लड़का था।

विशेष—इंद्र द्वारा त्रस्त एवं पीड़ित इस राक्षस को राम और
लक्ष्मण ने मारा था। शिरविहीन कवच की आकृति का होने
से इसका एक नाम दनुकवच भी है।

दनुज—संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, असुर। राक्षस।

दनुजदलानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजद्विष्ट—संज्ञा पुं० [दनुजद्विष्ट] सुर। देवता [को०]।

दनुजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुज' [को०]।

दनुजराय—संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हि० राय] दानवों का राजा
हिरण्यकशिपु।

दनुजारि—संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु।

दनुजारी—संज्ञा पुं० [सं० दनुजारि] दनुजों के शत्रु। विष्णु। उ०—
बीचहि पथ मिले दनुजारी।—मानस, १।१३६।

दनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दनुजेंद्र] दानवों का राजा,—रावण।

दनुजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिरण्यकशिपु। २. रावण।

दनुजसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दनुज-संभव] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनुजसून—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुजसंभव'।

दनु—संज्ञा स्त्री० [सं० दनु] दे० 'दनु'।

दन्त—संज्ञा पुं० [अनु०] 'दन्त' शब्द जो तोप आदि के छूटने अथवा
इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट—संज्ञा स्त्री० [हि० डाँटू के साथ अनु०] घुड़की। डपट।
डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना—क्रि० सं० [हि० डाँटना के साथ अनु०] किसी को डराने
के लिये विगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना।
घुड़कना।

दपु^१—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दर्प। अहंकार। अभिमान। शेखी।
घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयो दपु
छोहि।—सूर (शब्द०)।

दपेट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दपट'।

दपेटना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दपटना'।

दप्प^१—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] दे० 'दर्प'।

दफतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तर] दे० 'दफ़तरी'।

दफ़तरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तरी] दे० 'दफ़तरी'।

दफ़तरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़तरीखाना] दे० 'दफ़तरीखाना'।

दफ़ती—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़तीन] कागज के कई तख्तों को एक में साट
कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बांधने आदि के काम
में आता है। गत्ता। कुट। बसली।

दफ़दर^१—संज्ञा पुं० [हि० दफ़तर] दे० 'दफ़तर'। उ०—तबलक तत्त
दगा को दफ़दर, सत कचहरी भारी।—घरनी० बानी, पृ० ३।

दफ़न—संज्ञा पुं० [अ० दफ़न] १ किसी चीज को जमीन में गाड़ने की
क्रिया। २ मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया।

दफ़नाना—क्रि० सं० [अ० दफ़न + आना] १ जमीन में दवाना।
गाड़ना। २ (लाक्ष०) किसी दुर्घटनहार, कटुता आदि को पूरी
तरह भुला देना।

दफ़रा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का बड़ा टुकड़ा या इसी प्रकार का
और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इसलिये लगा
दिया जाता है कि जिसमें किसी दूसरी नाव की टक्कर से
उसका कोई अंग टूट न जाय। हॉस (लश०)।

दफ़राना—क्रि० सं० [देश०] १ किसी नाव को किसी दूसरी नाव
के साथ टक्कर लड़ने से बचाना। २. (पाव), खड़ा करना।—
(लश०) ३. बचाना। रक्षा कराना।

दफला—संज्ञा पुं० [फा० दफ या दफन] दे० 'दफ' । उ०—बैंड से लेकर दफले और वसिहे तक सभी प्रकार के बाजे थे ।
—काया०, पृ० ५७५ ।

दफा^१—संज्ञा स्त्री० [म० दफमह्] १ बार । बेर । जैसे,—(क) हम तुम्हारे यहाँ कल दो दफा गए थे । (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना । २ किसी कानूनी किताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के सबध में व्यवस्था हो । धारा ।

मुद्दा०—दफा लगाना=प्रमियुक्त पर किसी दफा के नियमों को धटाना । अपराध का लक्षण आरोपित करना । जैसे—फौजदारी में आज उसपर चोरी की दफा लग गई ।

३. दर्जा । क्वालिटी । श्रेणी । कक्षा । उ०—किस दफे में पढ़ते हो भैया ?—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६६ ।

दफा^२—वि० [म० दफमह्] दूर किया हुआ । हटाया हुआ । तिरस्कृत । जैसे,—किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो ।

मुद्दा०—दफा दफान करना = तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना ।

दफादार—संज्ञा पुं० [म० दफमह् (= समूह) + फा० दार] फौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों ।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है ।

दफादारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दफादार + ई (प्रत्य०)] १ दफादार का पद । २. दफादार का काम ।

दफतीना—संज्ञा पुं० [म० दफतीना] गड़ा हुआ धन या खजाना ।

दफ्तर—संज्ञा पुं० [फा० दफ्तर] १ स्थान जहाँ किसी कारखाने आदि के सबध की कुल लिखा पढ़ी और लेन देन आदि हो । आफिस । कार्यालय । २ बड़ा भारी पत्र । लंबी चौड़ी चिट्ठी । ३ सविस्तर वृत्तांत । चिट्ठा ।

दफ्तरी—संज्ञा पुं० [फा० दफ्तर] १. किसी दफ्तर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज आदि दुरुस्त करता और रजिस्ट्रों आदि पर रूल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो । २ किताबों की जिल्द बांधनेवाला । जिल्दसाज । जिल्दबंद ।

यौ०—दफ्तरीखाना ।

दफ्तरीखाना—संज्ञा पुं० [फा० दफ्तरीखानह्] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बंधती हो अथवा दफ्तरी बैठकर अपना काम करते हो ।

दफती—संज्ञा स्त्री० [म० दफतीन] दे० 'दफती' ।

दफतीन—संज्ञा स्त्री० [म०] दफती (को०) ।

दवग—वि० [हि० दवाव या दवाना] प्रभावशाली । दवाववाला । जिसका लोगो पर रोवदाव हो । जैसे,—वे बड़े दवग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते ।

दवगपन—संज्ञा पुं० [हि० दवग + पन] दबदबा । रोवदाव । उ०—चाहिए कुछ दवगपन रखना । दब बहुत दाव मे न आएँ हम ।
—उभते०, पृ० ३६ ।

दव—संज्ञा स्त्री० [हि० दवना] बड़ों के प्रति सकोच या भय । दे०

'दाव' । उ०—कहा करो कछु बनि नहि आवे प्रति गुरजन की दव री ।—घनानंद, पृ० ५३३ ।

यौ०—दवगर ।

दवक—संज्ञा स्त्री० [हि० दवकना] दबने या छिपने की क्रिया या भाव । २ सिकुडन । शिकन । ३. धातु आदि को लवा करने के लिये पीटने की क्रिया ।

यौ०—दवकगर ।

दवकगर—संज्ञा पुं० [हि० दवक + गर (प्रत्य०)] दवका (तार) बनानेवाला ।

दवकना^१—क्रि० प्र० [हि० दवना] १ भय के कारण किसी सँकरे स्थान में छिपना । डर के मारे छिपना । जैसे,—(क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा आलमारी के नीचे दवक रहा । (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दवक रहा । २ लुकना । छिपना । जैसे,—शेर पहले से ही झाड़ी में दवका बैठा था, हिरन के आते ही उसपर झपट पड़ा ।

क्रि० प्र०—जाना ।—रहना ।

दवकना^२—क्रि० स० किसी धातु को हथौड़ी से चोट लगाकर बढ़ाना या चौड़ा करना । पीटना ।

दवकना^३—क्रि० स० [सं० दपं ?] डाँटना । झपटना । घुड़कना । उ०—दबकि दबोरे एक, वारिधि मे बोरे एक, मगन मही में एक, गगन उड़ात हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दवकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दवना] भाथी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा घुसती है ।

दवकवाना—क्रि० स० [हि० दवकना का प्रे० रूप] दवकाने का काम किसी दूसरे से कराना । दूसरे को दवकाने में प्रवृत्त करना ।

दवका—संज्ञा पुं० [हि० दवकना (= तार आदि पीटना)] कामदानी का सुनहला या रुपहला चिपटा तार ।

दवकाना—क्रि० स० [हि० दवकना का सक० रूप] १ छिपाना । डाँकना । भाड़ में करना । २ डाँटना ।—(व०) ।

दवकी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते हैं ।

दवकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दवकना] दवकने या छिपने की क्रिया या भाव ।

मुद्दा०—दवकी मारना = छिप जाना । अदृश्य हो जाना ।

दवके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा । दवके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है ।

दवकैया—संज्ञा पुं० [हि० दवकना + ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीटकर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला । दवकगर ।

दवगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १ डाल बनानेवाला । २. चमड़े के कुप्पे बनानेवाला ।

द्वगर्—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [हि० दव (= दाव) + गर्] दाव या घासन मे पडा हुआ । अधिकार माननेवाला ।

द्वटना—क्रि० प्र० [हि० दवाना] दवाना । अधिकार मे करना ।
उ०—इत तुलसी छवि हुलसी छोटति परिमल लपटे । इत कमोद मामोद गोद भरि भरि सुख दवटे ।—नद० प्र०, पृ० १२ ।

दवङ्ग घुसङ्ग—वि० [हि० दवाना + घुसना] डरपोक । सब से दबने भोर डरनेवाला ।

दवदवा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] रोवदाव । मातृक । प्रताप ।

दवना—क्रि० प्र० [स० दमन] १ भार के नीचे घाना । बोझ के नीचे पड़ना । जैसे, मादमियों का मकान के नीचे दवना । २ ऐसी अवस्था मे होना जिसमें किसी भोर से बहुत जोर पड़े । दाव मे घाना । ३ (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्वलता आदि के कारण) अपने स्थान पर च ठहर सकना । पीछे हटना । ४ किसी के प्रभाव या आतंक मे आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना । दवाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना । जैसे,—(क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं । (ख) प्राप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं । ५ अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठीक या अच्छा न जंचना । जैसे,—यह माला इस कटे के सामने दब जाती है । ६ किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना । किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना । जैसे, खबर दवना, मामला दवना । उ०—नाम सुनत ही हूँ गयी तब भोरे मन भोर । दवे नहीं चित चढ़ि रह्यो धवहुँ चढ़ाए त्योर ।—विहारी (रा०द०) । ७. उमड़ न सकना । शात रहना । जैसे, बलवा दवना, क्रोध दवना । ८ अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना । जैसे,—हमार सी रुपए उनके यहाँ दवे हुए हैं । ९ ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके । जैसे,—वे आजकल राई की तंगी से दवे हुए हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१० धीमा पड़ना । मद पड़ना ।

मुहा०—दबी आवाज=धीमी आवाज=वह आवाज जिसमे कुछ जोर न हो । दबी जवान से कहना=मस्मृष्ट रूप से कहना । किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो । दवे दबाए रहना=शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना । उपद्रव या कारंवाई न करना । दवे पाँव या पैर (चलना)=इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ आहट न लगे ।

११ संकोच करना । झेंपना ।

द्वभो—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है ।

द्वयवाना—क्रि० स० [हि० दवाना का प्रे० रूप] दवाने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को दवाने मे प्रवृत्त कराना ।

दवस—सञ्ज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान । जहाजी गोदाम में का माल ।

दवा—वि० [हि० दवाना] दवाव मे पड़ा हुआ । भार से दबा हुआ । विवश ।

दवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दवाना] घनात्र निकालने के लिये बालों या डठलों को बेलों के पैरों से रोंदवाने का काम ।

दवाऊ—वि० [हि० दवाना] १ दवानेवाला । २. जिस (गाड़ी आदि) का प्रगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोझिल हो । धव्व ।

दवाना—क्रि० स० [स० दमन] [सञ्ज्ञा, दाव, दबाव] १ ऊपर से भार रखना । बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज नीचे की भोर चस जाय अथवा हथर उधर हट न सके) । जैसे, पत्थर के नीचे किताब या कपड़ा दवाना । २. किसी पदार्थ पर किसी भोर से बहुत जोर पहुँचाना । जैसे, उँगली से काग दवाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकड़े को दवाना, हाथ या पैर दवाना । ३ पीछे हटाना । जैसे,—राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई । ४ जमीन के नीचे गाड़ना । दफन करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५ किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या आतंक जमाना कि जिसमे वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके । अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दवाव डालना । जोर डालकर विवश करना । जैसे,—(क) कल बातों बातों मे उन्होंने तुम्हें इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके । (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया । ६ अपने गुण या महत्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना । दूसरे के गुणों या महत्व का प्रकाश न होने देना । जैसे,—इस नई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया ।

संयो० क्रि०—देना ।—रखना ।

७ किसी बात को उठने या फैलने न देना । जहाँ का तहाँ रहने देना । ८. उमड़ने से रोकना । दमन करना । शात करना । जैसे, बलवा दवाना, क्रोध दवाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

९ किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना । कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना । जैसे —(क) उन्होंने हमारे सी रुपए दबा लिए । (ख) प्रापने उनकी किताब दबा ली ।

संयो० क्रि०—बैठना ।—रखना ।—लेना ।

१० भौंक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

११—ऐसी अवस्था में ले घाना जिसमें मनुष्य असहाय, दीन या विवश हो जाय । जैसे,—आजकल रुपए की तंगी ने उन्हें दबा दिया ।

दवाया—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] युद्ध की सामग्री मे लकड़ी का एक प्रकार

का बहुत बड़ा सड़क जिसमें कुछ भादमियों को बैठाकर गुप्त रूप से सुरंग खोदने प्रयत्न इसी प्रकार का और कोई उपद्रव करने के लिये शत्रु के किले में उतार देते हैं।

दवाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दवाना] १ दवाने की क्रिया। चाँप।

क्रि० प्र०—ढालना।—में घाना या पड़ना।

२. दवाने का भाव। चाँप। ३. रोव।

क्रि० प्र०—ढालना।—मानना।—में घाना या पड़ना।

दविला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या खुर्चनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयो का एक भोजार जिससे वे बेसन आदि मूतते, खोवा बनाते या चीनी की चाशनी आदि फेटते हैं।

दबीज—वि० [फ्रा दबीज] जिसका दल मोटा हो। गाढ़ा। सगीन।

दबीर—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] १. लिखनेवाला। मुशी। २. एक प्रकार के महाशय ब्राह्मणों की उपाधि।

दबूचना—क्रि० स० [हि० दबोचना] दे० 'दबोचना'। उ०—पजे से दबूच चोच से चमड़ी नोचकर—।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

दबूसा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला भाग। पिच्छल। २. बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३. जहाज का कमरा।—(लश०)।

दबोरना—क्रि० स० [हि० दवाना] दे० 'दबोरना'।

दबेला—वि० [हि० दबना + एला (प्रत्य०)] १. दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। २. जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लश०)।

दबैल—वि० [हि० दबना + ऐल (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबू। दबैला। उ०—सुख सों लाज सिधारी सुरग कों काहू की हौं न दबैल।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४०१।

दबैला—वि० [हि० दबना + ऐला (प्रत्य०)] १. जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। किसी से दबनेवाला। दबू।

दबोचना—क्रि० स० [हि० दवाना] १. किसी को सहसा पकड़कर दबा लेना। धर दवाना। जैसे—बिल्ली ने तोते को जा दबोचा। २. छिपाना।

सयो० क्रि०—लेना।

दबोरना—क्रि० स० [हि० दवाना] अपने सामने ठहरने न देना। दवाना। उ०—दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मगन मही में एक गगन उडात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबोस—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

दबोसना—क्रि० स० [देश०] शराब पीना।

दबौता—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दवाना + दौत (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुडा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के ठठलों आदि को दवाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

दबौनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दवाना + दौनी (प्रत्य०)] १. फसेरो का छोटे का भोजार जिसे वे बरतनी पर फूल पत्ते आदि

उभारते हैं। २. भोजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी (जोलाहे)।

दब्ब(उ)^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रव्य, प्रा० दव्व] द्रव्य। घन। संपत्ति। सामान। उ०—जो मिलत मुहि भाइ। देउं घन भवर दब्बू।

—पु० रा०, १२। ११७।

दब्बू^२—वि० [हि० दबना + ऊ (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबैला।

दध्र^१—वि० [सं०] १. घल्प। थोड़ा। कम। २. कुंद। मतीक्षण।

दध्र^२—सञ्ज्ञा पुं० सागर। समुद्र। उदवि [को०]।

दमंगल—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दमल ? या डि० दमगल] नखड़ा। उपद्रव। युद्ध। उ०—विधि हते वीर महावल गहवाल हूँ दमगल। विल ममय केकधा दवारे, गजे सुर गहर।—रघु० छ०, पृ० १५२।

दमंकना(उ)^१—क्रि० प्र० [हि० दमकना] चमकना। उ०—बहु कृपान तरवारि चमकहि। जनु वह दिशि दामिनी दमकहि।—मानस, ६। ८६।

दमंसा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दाम + अस्] मोल ली हुई जायदाद।

दम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दड जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। २. बाह्योद्विग्न का दमन। इन्द्रियो को वश में रखना और चित्त को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। ३. कीचड़। ४. घर। ५. एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। ६. पुराणानुसार मरुत राजा के पुत्र जो वधु की कन्या द्रसेना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इन्द्रियदमन करना पड़ा है वह वास्तव स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इनका नाम दम रखा था। ये वेद वेदार्थों के बहुत अच्छे ज्ञाता और धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे।

७. बुद्ध का एक नाम। ८. भीम राजा के एक पुत्र और दमयन्ती के एक भाई का नाम। ९. विष्णु। १०. दबाव।

दम^२—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] १. साँस। श्वास।

क्रि० प्र०—माना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम अटकना = साँस रुकना, विशेषतः मरने के समय साँस रुकना। दम उखड़ना = दे० 'दम अटकना'। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। घबराहट होना। जो घबराना। (२) दे० 'दम घुटना'। दम खाना = दे० 'दम लेना'। दम खिचना = दे० 'दम अटकना'। दम खीचना = (१) चुप रह जाना। न बोलना। (२) साँस खींचना। साँस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण साँस रुकना। साँस न लिया जा सकना। दम घोंटना = (१) साँस न लेने देना। किसी को साँस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोंटकर मारना = (१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० 'दम फूलना'। दम चुराना = जान बूझकर साँस रोकना।

विशेष—यह क्रिया विशेषतः मक्कार जानवर करते हैं। बदर मार खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारने

वाला उसे मुरदा समझ ले। लोमड़ी कभी कभी अपने आप को मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है। साज चढाने के समय मक्कार घोड़े भी साँस रोककर पेट फुला लेते हैं जिसमें पेटो या बंद अच्छी तरह न कसा जा सके।

दम दूटना = (१) साँस बंद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दोड़ने या तेरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे दोड़ा या तेरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय झटके से साँस लेना। अंतिम साँस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले।—(कुश्तीबाज)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना। हाँफना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि से रोकना। दम बंद होना = भय या आतंक आदि के कारण बिल्कुल चुप रह जाना। दम भरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अभिमानपूर्वक उसका वर्णन करना। जैसे,—(क) वे उनकी मुहब्बत का दम भरते हैं। (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम या दोड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगता और थकावट आ जाना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे,—इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) भालू का हाथ या लकड़ी मुँह पर रखकर साँस खींचना। इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता अथवा भोजन पचता है (कलंदर)। (४) किसी को कुश्ती लड़ाकर थकाना (पहलवानों की परीक्षा)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) बोलना। कुछ कहना। बूँ करना। जैसे,—आपकी बया मजाल जो इस बात में दम भी मार सके। (३) हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे,—इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। साँस रोकने का अभ्यास करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे,—(क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे। (ख) रूपो का नाम सुनते ही आप दम साध गए।

२. नशे आदि के लिये साँस के साथ धूम्र खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गंजी या चरस आदि को चिलम पर रखकर उसका धूम्र खींचना। दम लगाना = गंजी या चरस का धूम्र खींचना। दम लगाना = दे० 'दम मारना'।

३ साँस खींचकर जोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से झाड़ फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज में मुँह से हवा भरना। दम भरना = कदुतर के पोटे में हवा भरना।

४ उतता समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। लमहा। पल।

मुहा०—दम के दम = क्षण भर। थोड़ी देर। जैसे,—वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए। दम पर दम = बहुत थोड़ी थोड़ी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे,—दम पर दम उन्हें कै आ रही है। दम बंदम = दे० 'दम पर दम'।

५. प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलझना = जी घबराना। व्याकुल होना। दम खाना = दिक वरना। तग करना। दम खुश होना = दे० 'दम सुखना'। दम डराना = जी डराना। जान बचाना। किसी बहाने से काम करने से अपने आपकी बचाना। दम नाक में या नाक में दम आना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या परेशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा लाना = बहुत कष्ट या दुख देना। बहुत तंग या परेशान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके वियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे,—उसी को देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर आ बनना = (१) जान पर आ बनना। प्राणभय होना। (२) आपत्ति आना। आफत आना। (३) हैरानी होना। व्यग्रता होना। दम फडक उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देखकर चित्त का बहुत प्रसन्न होना। जैसे,—उसकी कसरत देखकर दम फडक गया। दम फडकना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फना होना = दे० 'दम सुखना'। जैसे,—(क) देने के नाम तो उनका दम फना हो जाता है। दम में दम आना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = प्राण रहना। जिदगी रहना। दम सुखना = बहुत अधिक भय के कारण बिल्कुल चुप हो जाना। बहुत डर के कारण साँस तक न लेना। प्राण सुखना। भय के मारे स्तब्ध होना। जैसे,—उन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया।

६ वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है। जीवनी शक्ति। जैसे,—(क) इस छाते में अब बिल्कुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। (२) मजबूत। दृढ़।

७ व्यक्तित्व। जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना। गई बीती दशा में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका आदर हो सके। जैसे,—इस शहर में अब तो और कोई पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है।

८ संगीत में किसी स्वर का देर तक उच्चारण।

मुहा०—दम भरना = किसी स्वर का देर तक उच्चारण करते रहना ।

यौ०—दमसात्र = वह मादमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे ।

६. पकाने की वह क्रिया जिसमें किसी खाद्य पदार्थ को बरतन में चढ़ाकर घोर उसकी मुँह बंद करके भाग पर चढ़ा देते हैं । इस प्रकार बरतन के भदर की भाँफ बाहर नहीं निकलने पाती घोर उस पदार्थ के पकने में भाँफ से बहुत सहायता मिलती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

यौ०—दम घुल्हा । दम मालू । दम पुस्त ।

मुहा०—दम करना = किसी चीज को बरतन में रखकर घोर भाँप रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके भाग पर चढ़ा देना । दम खाना = किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में भीतरी भाँफ की सहायता से पकाया जाना । दम देना = किसी मधुपकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी भाँप पर रखकर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह अच्छी तरह से पक जाय । दम पर माना = किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रह जाना कि थोड़ा दम देने से वह अच्छी तरह पक जाय । पक कर तैयारी पर माना । थोड़ी देर भाँप बंद करके छोड़ देने की कसर रहता । दम होना = भाँप से पकना ।

१०. धोखा । छल । फरेब । जैसे,—भाँप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं ।

यौ०—दम भाँसा = छन कपट । दम दिलासा = वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय । झूठी भाँसा । दम पट्टी = (१) धोखा । फरेब । (२) दे० 'दम दिलासा' । दमबाज = (१) धोखा देनेवाला । (२) फुसलाने या बहकानेवाला ।

मुहा०—दम देना = बहकाना । धोखा देना । फुसलाना । दम में माना = धोखे में पड़ना । फरेब में माना । जाल में फँसना । दम खाना = फरेब में माना । धोखे में पड़ना । दम में लाना = (१) बहकाना । फुसलाना । (२) धोखा देना । भाँसा देना ।

११ तलवार या छुरी आदि की वाड़ । धार ।

यौ०—दमदार = धोखा । तेज । पैना । धारदार ।

दम^३—सभा पु० [दे०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सवा सवा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं । ये करघे में पड़ी रहती हैं और उसमें जोड़ी बँधी रहती हैं जो पैर के अँगूठे में बाँध दी जाती हैं । बुनने के समय इसे पैर से नीचे दवाते हैं ।

दम^४—सभा पु० [दे०] भोपड़ा । छप्पर । व०—ये अपनी बस्ती को विश्व कहते थे और उनके भीतर इनके भोपड़े दम और पू कहलाते थे ।—प्रा० भा० प०, पृ० ६६ ।

दमक^५—सभा श्री० [हि० चमक का अनु०] चमक । चमकमाहट । चूति । प्राभा ।

४-७०

दमक^६—सभा पु० [सं०] दमनकर्ता । दवाने, रोकने या शांत करनेवाला ।

दमकना—क्रि० प्र० [हि० चमकना का अनु०] १ चमकना । चमकमाना । उ०—गजमोतिन से पूरे माँगो । लाले हिरा पुनि दमके आँगा ।—कवीर सा०, पृ० ४५८ । २. ज्वलित होना । सुलगना ।

दमकर्ता—सभा पु० [सं० दमकतृ] दमन करनेवाला । स्वामी । शासक (को) ।

दमकल—सभा श्री० [हि० दम + कल] १ वह यन्त्र जिसमें एक या अधिक ऐसे चक्के हों, जिनके द्वारा कोई तरन पदार्थ हवा के दबाव से, ऊपर अथवा नीचे किसी घोर भौंक से फेंका जा सके । पंप

विशेष—ऐसे यंत्रों में एक खजाना होता है जिसमें जल भरावा घोर कोई तरन पदार्थ भरा रहता है, घोर इसमें एक घोर पिचकारी और दूसरी घोर साधारण नल लगा रहता है । जब पिचकारी चलती है तब खजाने में का पदार्थ घोर से दूसरे नल के द्वारा बाहर निकलता है ।

२. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में लगी हुई आग बुझाई जाती है । पंप । ३. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं । पंप । दे० 'दमकल' ।

दमकला^१—सभा पु० [हि० + कल] १. दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महुफिलों में लोगो पर गुलाबजल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है । २. जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल खड़ा करते हैं । ३. दे० 'दमकल' ।

दमकला^२—सभा पु० [हि० दम] दे० 'दमचूल्हा' ।

दमखम—सभा पु० [फा० दमखम] १ छड़ता । मजबूती । उ०—कवि घुसरे के सामने दमखम से उपस्थित होते थे ।—प्राचार्य०, पृ० २०३ । २. जीवनी शक्ति । प्राण । ३. तलवार की धार और उसका मुकाब ।

दमगल्ल^३—सभा पु० [दि०] लड़ाई । दमपन । दमन । युद्ध । उ०—सुर असुर दमगल लल सकन, थक प्रबल ऊपल पयल चल ।—रघु० छ०, पृ० २२१ ।

दमघोष—सभा पु० [सं०] चेदि देश के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमयंती के भाई थे । इनका दूसरा नाम धृतराष्ट्र भी है ।

दमचा—सभा पु० [दे०] खेत के कोने पर बनी हुई वह मधान जिसपर बैठकर खेतिहर अपने खेत की रखवाली करता है ।

दमचूल्हा—सभा पु० [दे०] एक प्रकार का जोड़े का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाड़ी या भरना होता है ।

विशेष—इस जाड़ी के नीचे एक घोर बड़ा छिद्र होता है । इसकी जाड़ी पर कुछ कीयले रखकर उसकी खोवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा

की जाती है जिससे धाग सुलगती रहती है और जाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [?] तलवार ।—(डि०) ।

दमड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धाम + ढा (प्रत्य०)] रुपया । धन । दाम ।
—(बाज़ार) ।

क्रि० प्र०—खर्चना ।

मुहा०—दमड़े करना = बेचकर दाम खड़ा करना ।

दमड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्रविण (= धन) या दाम + ङी (प्रत्य०)]
१. पैसे का घाठवाँ भाग ।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं ।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना । कीड़ियों के भोल होना । दमड़ी को बुलबुल टका हसकाई = कम दाम की चीज पर अन्य खर्च अधिक पड़ जाना । उ०—तिनककर कहा ऊड़ । दमड़ी की बुलबुल टका हसकाई हम अपने आप पी लेंगे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२६ ।

२ चितचिचि पक्षी ।

दमथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मनियंत्रण या दमन । दम ।
२ दंड । सजा [को०] ।

दमथु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमथ' ।

दमदमा^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह्] १ वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय यैलों या क्षीरों में घुल या बालू भरकर की जाती है । मोरचा । घुस ।

क्रि० प्र०—घोषना ।

२ घोखा । जाल । फरेब । दिखावा (को०) ।

दमदमा^२—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दमदमह्] नगाड़ा । घोसा । उ०—उसके दहने दमदमा, बाएँ उसी के बव है ।—सत तुरसी०, पृ० ४० ।

दमदार—वि० [फ्रा०] १. जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो । जानदार ।
२ दृढ़ । मजबूत । ३ जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह सके । जैसे,—इष्ट हार्मोनियम की भाँथी बहुत दमदार है । ४ जिसकी धार बहुत तेज हो । चोखा ।

दमन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दवाने या रोकने की क्रिया । २ दंड जो किसी को दवाने से लिये दिया जाता है । ३. इन्द्रियों की चंचलता को रोकना । निग्रह । दम । ४ विष्णु । ५ महादेव । शिव । ६ एक ऋषि का नाम । दमयन्ती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी । उ०—पटराची सों कै मता, ले परिजन कछु साथ ।
आश्रम गयो नरेश तब जहाँ दमन मुनिनाथ ।—गुमान (शब्द०) । ७ एक राक्षस का नाम । उ०—दमन नाम निश्चर प्रति घोरा । गर्जत भाषत वचन कठोरा ।—रामाश्व-मेध (शब्द०) । ८ दीना । ९ कुद । १० वध । हनन (को०) । ११ रथ का चालक । सारथी (को०) । १२ योद्धा । युद्धकर्ता । सैनिक (को०) । १३. हरिभक्तिविलास में वर्णित एक पूजनोत्सव जिसमें चैत्र शुक्ल द्वादशी को विष्णु को दोना समर्पित किया जाता है ।

दमन^२—वि० १ दमन करनेवाला । दमनकर्ता । २ शांत [को०] ।

दमन(पु)^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयन्ती' । उ०—
दमनहि नलहि जो हस भेरावा । सुम्ह हिरामन नार्य कहावा ।
—जायसी (शब्द०) ।

दमनक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक छद का नाम जिसमें तीन नगण, एक लघु और एक गुरु होता है । २. दीना ।

दमनक^२—वि० दमन करनेवाला । दमनशील ।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो । दमन करनेवाला ।

दमना(पु)^३—क्रि० भ० [फ्रा० दम] धकना । दम लेना । उ०—फिरता फिरता जो दमता है बाबा, कोन रखे तेरे तन कूजू ।—
दक्खिनी०, पृ० १५ ।

दमना^१—क्रि० सं० [सं० दमन] दमन करना । वश में लाना ।

दमना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दमनक] द्रोणलता । दीना । उ०—दमना क मज्जरी शालिक परिमल ।—वर्ण०, पृ० २० ।

दमनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का धुर, जिसे अग्निदमनी कहते हैं ।

दमनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दमन] सकोच । लज्जा । उ०—सील सनी सजनीन समीप गुलाब कलू दमनी दरसावै ।—गुलाब (शब्द०) ।

दमनीय—वि० [सं०] १ दमन होने के योग्य । जो दमन किया जा सके । २ जो दबाया जा सके । जो सड़ित किया जा सके । जो दबाकर चढ़ाया जा सके । उ०—कुँवर मनोहर विजय बडि कीरति प्रति कमनीय । पावनहार विरचि जनु रचेत न धनु दमनीय ।—तुलसी (शब्द०) ।

दमपुख्त—वि० [फ्रा० दमपुख्त] (वह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो ।

दमवाज—वि० [फ्रा० दम + वाज] दम देनेवाला । फुसलानेवाला । बहाना करनेवाला ।

दमवाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० दम + वाजी] बहानेवाजी । दम देने या फुसलाने का काम । धोखेवाजी ।

दमयंतिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० दमयन्तिका] मदनवान वृक्ष ।

दमयन्ती—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० दमयन्ती] १ राजा नल की स्त्री जो विश्वं देश के राजा भीमसेन की कन्या थी । वि० दे० 'नल' । २ एक प्रकार का वेला । मदनवान ।

दमयिता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दमयितृ] १ दमन करनेवाला । दमकर्ता ।
२ विष्णु । ३ शिव [को०] ।

दमरक—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] दे० 'चमरक' ।

दमरख—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] दे० 'चमरख' । उ०—कहि बान घटेरन टाट गजी, कहि दमरख चमरख तकला है ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ ।

दमरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं० दमड़ी] दे० 'दमड़ी' । उ०—पेता दमरी नाहि हमारे । केहि कारणे मोहि राय हँकारे ।—कबीर सा०, पृ० ४८५ ।

दमवंती(पु)^३—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं० दमयन्ती] दे० 'दमयन्ती' । उ०—सो

उपकार करो जिय माई । दमवंती ज्यों नलहि मिलाई ।—
हिंदी प्रेम गाथा०, पृ० २२० ।

दमसाज—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा०] वह भादमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है ।

दमा—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० दमह] एक प्रसिद्ध रोग । श्वास । साँस ।

विशेष—इस रोग में श्वासवाहिनो नाखी के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है, पाकुचन और ऐंठन के कारण साँस लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी घाती है और कफ रककर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है । इस रोग के रोगी को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है, और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता । इसी लिये इसके अवधि में एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है ।

दमाग—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दमाग] दे० 'दिमाग' [को०] ।

दमाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० जामाट] कन्या का पति । जवाई । जामाता ।
उ०—ठाकुर कहत हम बैरी देवकूफन के जालिम दमाद हैं
प्रदानियाँ ससुर के ।—ठाकुर०, पृ० २६ ।

दमादम—क्रि० वि० [प्रनु०] १. दम दम शब्द के साथ । २. खगा-
ठार । बराबर ।

दमान—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दामन । पाल की चादर (लश०) ।

दमानक—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की वाड़ । उ०—देव सूत पितर
करम खख काल यह मोहि पर शीरि दमानक सी दई है ।—
तुलसी । (शब्द०) । (ख) निज सुभट धीरन संग ले सु
दमानकें भासीं भसी ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३ ।

दमाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दमामा] दे० 'दमामा' । उ०—जीव जेआले
पकि रहा, जमहि दमाम बजाय ।—कवीर सा०, सं०, पृ० ७४ ।

दमामा—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० दमामह] नगाड़ा । नक्कारा । उका । घोंसा ।

दमारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दावानल] १. जंगल की घाग । बन की
घास । २. दमड़ी । उ०—घघरम घाठो गांठि ग्याव विनु
चोगम सुबा । टकमि दमारि गुलाम घाप को भयो असूदा ।—
पलटू बानी, पृ० ११२२ ।

दमावति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दमवन्ती] दे० 'दमवंती' । उ०—राजा
नल कहँ जैसे दमावति ।—जायसी (शब्द०) ।

दमावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दमावति' ।

दमाह—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दमा] वैली का एक रोग जिसमें वे हाँफने
लगते हैं ।

दमित—क्रि० [सं०] १. जिसका दमन किया गया हो । उ०—कवि
सामाजिक प्रतिबंधों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियों का प्रका-
शन करता है ।—नया०, पृ० ३ । २. पराजित । परास्त ।
विजित (को०) ।

दमी^१—वि० [सं० दमिन्] दमनशील ।

दमी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] एक प्रकार का जेवी या सफरी नेवा ।
दम लगाने का नेवा ।

दमी^३—वि० [क्रा० दम] १. दम लगानेवाला । कण खींचनेवाला ।

२ गाँजा पीनेवाला । गंजेड़ी । जैसे,—दमी यार किसके । दम
लगाके खिसके । (कहा०) ।

दमी^४—वि० [हि० दमा] जिसे दमे का रोग हो । दमे के रोगवाला ।

दमुना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दमुनस्] १. अग्नि । आग । २. शुक्र का एक
नाम (को०) ।

दमैया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दमन + ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला ।
उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल विना हुआ कोन है दास
दुःख दमैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

दमोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दाम + मोड़ा (प्रत्य०)] दाम । मूल्य ।
कीमत । (दलाखी) ।

दमोदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दामोदर] दे० 'दामोदर' ।

दम्य^१—वि० [सं०] १. दमन करने योग्य । जो दमन किया जा सके ।
२. बैल जो बधिया करने योग्य हो ।

दम्य^२—सञ्ज्ञा पुं० बैल जो धुरा धारण कर सके । पुष्ट बैल [को०] ।

दयंतर्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य' । उ०—(क) देव दयतहि
भूतहि प्रेतहि कालहु सों कहहैं न डरे स ।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पृ० ३५ । (ख) कीन्हेसि राकस भूत परेता । कीन्हेसि
भोकस देव दयता ।—जायसी प्र० (गुप्त०), पृ० १२३ ।

दय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दया । कृपा । करुणा ।

दयत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैत्य' । उ०—मो नाम ठुंड बीसल
त्रपति साप देह समिय दयत ।—पृ० रा०, १।५६१ ।

दयत^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दयित] दे० 'दयित' । उ०—सुहृद दयत,
बल्लभ, सखा प्रीतम परम सुजान ।—नंद० प्र०, पृ० ८६ ।

दयनीय—वि० [सं०] दया करने योग्य । कृपा करने योग्य ।

दयनीयता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी दशा जिस देखकर देखनेवाले के
मन में दया उत्पन्न हो । उ०—ऐसी दयनीयता हुई है क्या ।
फूली है, मोतरी रई है क्या ।—पाराधना, पृ० १६ ।

दया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन का वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट
को दूर करने की प्रेरणा करता है । सहानुभूति का भाव ।
करुणा । रहम ।

क्रि० प्र०—माना ।—करना ।

यौ०—दया दृष्टि ।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ
'पर' विभक्ति लगती है । जैसे, किसी पर दया माना, किसी
पर (या किसी के ऊपर) दया करना । शिष्टाचार के रूप में
भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है । जैसे, किसी ने पूछा
'माप अच्छी तरह' ? उत्तर मिलता है—'मापकी दया से' ।

२ दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म की व्याही गई थी ।

दयाकर—वि० [सं०] दया करनेवाला । दयालु । कृपालु । उ०—
सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिधो । दीन दयाकर भारत बधो ।—
मानस, ७।१८ ।

दयाकर^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव (को०) ।

दयाकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दयावती—वि० श्री० [सं०] दया करनेवाली ।

दूर—पक्षा की० भाव । विलं । धेरे—कामन की दूर प्रायः

बहुत बड़ गई है । २. प्रमाण । ठीक ठिकाना । जैसे,—ससकी बात की कोई दर नहीं । ३. कदर । प्रतिष्ठा । महत्त्व । महिमा । उ०—सिर केतु सुहावन फरहरे जेहि सखि पर देव चरहरे । सुरराज केतु की दर हरे जादेव जोधा बर हरे ।—गोपाल (शब्द०) ।

दर-वि० [सं०] किवत् । योड़ा । जरा सा ।

दर-संज्ञा स्त्री० [सं० दार (= लकड़ी)] ईख । इक्षु । ऊख ।

उ०—कारन ते कारज है नोका । जया कद ते दर रस फोका ।—विश्राम (शब्द०) ।

दरकटिका—संज्ञा स्त्री० [दरकटिका] षठावरी । सठावर नामक मोषधि ।

दरक-वि० [सं०] डरनेवाला । डरपोक । भीरु ।

दरक-संज्ञा स्त्री० [हि० दरकना] १. जोर या दाव पड़ने से पड़ा हुआ दरार । खोर । २. दरकने की क्रिया ।

दरकच-संज्ञा स्त्री० [हि० दोरा + प्रनु० कच] = १. वह चोट जो जोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे । २. वह चोट जो कुचल जाने से लगे ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दरकचाना-क्रि० सं० [हि० दरकचरना] घोड़ा कुचलना । इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर न टूटने न हो ।

दरकटो-संज्ञा स्त्री० [हि० दर (= भाव) + कटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निख फाट देने की क्रिया । दर की मुकररी । दरकाव को ठहराव ।

दरकना-क्रि० सं० [सं० दर (= फाटना)] १. दाव या जोर पड़ने से फटना । २. चिरना । विदीर्ण होना । जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना । उ०—क्या धीरे धीरे लो हियो दरकत नहि नदलाव ।—बिहारी (शब्द०) ।

दरका-संज्ञा पुं० [हि० दरकना] १. शिगाफ । दरार फटने का स्थान । २. वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय ।

उ०—सखी धियोगिनि दाड़िमन, कटक अंग निदान । कुन्त नविन बरको लगो मुकुमुख किण्ववान ।—गुमान (शब्द०) ।

दरकाना-क्रि० सं० [हि० दरकना] फाड़ना । उ०—ढोठ लंगर बहाई मोरी मांगी दरकाई रे ।—(गीत) ।

दरकाना-क्रि० सं० फटना । उ०—पुलकित अंग अगिया दरकानी सर मोनई प्रथम फहरात ।—सूर (शब्द०) ।

दरकार-वि० [क्रा०] आवरण । आवृत । जहरी ।

दरकिनार-क्रि० वि० [क्रा०] मजग । झलझल । एक ओर । दूर ।

मुहा०—...तो दर किनार... कुछलना नही । दरकी बात है । बहुत बड़ी बात है । जैसे,—वस कुछ देना तो दरकिनार में उससे बात भी नहीं करना चाहता ।

दरकुच-क्रि० वि० [क्रा०] बुरावर यात्रा करना हुआ । मजल दरमजल । उ०—(क) रामचंद्र जी की चमू राज्यश्री विभीषण को, रावण की सीउ दरकुच चलि पाई है ।—

केषव । (शब्द०) । (ख) दस सहस्र बाजे दराब साजे प्रव मरावो संग ले । दरकुच भावत है, चलो मन माहि जंग उमंग ले ।—सुदन (शब्द०) ।

दरक-संज्ञा पुं० [दे०?] ऊट । उ०—दिन साख घटे हवर दरक । जवनान पड़े निस दिवस ।—रा० क०, पृ० ७३ ।

दरखत-संज्ञा पुं० [क्रा० दरखत] दे० 'दरखत' ।

दरखास्त-संज्ञा स्त्री० [क्रा० दरखास्त] १. निवेदन । किसी बात के लिये प्रार्थना ।

क्रि० प्र०—करना । २. प्रार्थनापत्र । निवेदनपत्र । वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो ।

मुहा०—दरखास्त गुजरना = दे० 'दरखास्त पढ़ना' । दरखास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना । कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो । दरखास्त पढ़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना । किसी के ऊपर दरखास्त पढ़ना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना ।

दरख्त-संज्ञा पुं० [क्रा० दरख्त] पेड़ । वृक्ष ।

दरगाह-संज्ञा स्त्री० [क्रा० दरगाह] दरबार । सभा । उ०—बादरा तणो वणिगो बदन घर वीणा दरगाह घसे ।—रघु० क०, पृ० ४६ ।

दरगाह-संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. चौखट । देहरी । २. दरबार । कचहरी । उ०—बड़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान ।—रसनिधि (शब्द०) । ३. किसी सिद्ध पुरुष का समाधि स्थान । मकबरा । मजार । जैसे, पीर की दरगाह । ४. मठ । मंदिर । तीर्थस्थान ।

दरगुजर-वि० [क्रा० दरगुजर] १. प्रलग्न । बाज । वचित ।

क्रि० प्र०—होना । २. दरगुजर करना = टालना । हुटाना ।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना । छोड़ देना । दंड प्राप्ति न देना । मुमाफ करना ।

दरगुजरना-क्रि० सं० [क्रा० दरगुजर + हि० ना (प्रत्यय)] १. छोड़ना । त्यागना । बाज आना । २. जाने देना । दंड प्राप्ति न देना । मुमाफ करना ।

दरगाह-संज्ञा पुं० [क्रा० दरगाह] दरबार । दरगाह । उ०—सहजादे निज अंग सनेहि मोमे खांग दरगाह मोहे ।—रा० क०, पृ० १५ ।

दरज-संज्ञा स्त्री० [सं० दर (= दार)] दरार । शिगाफ । दरार । वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पैदा जाय । उ०—घटहि में दया के दरजी, तो दरज मिलावहि हो ।—धरम०, पृ० ४६ ।

यौ०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम ।

जन—सखा पुं० [मं० दजन, हिं० दर्जन] दे० 'दर्जन' ।

जा^१—सखा पुं० [मं० दर्जह, हिं० दरजा] दे० 'दर्जा' ।

जा^२—सखा पुं० [हिं० दरजा] लोहा ढालने का एक औजार ।

जिन—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'दर्जिन' ।

जी—सखा पुं० [फा० दर्जी] दे० 'दर्जी' । उ०—छग दरजी बसनी सुई रेसम जोरे जाख ।—स० सप्तक, पृ० १६२ ।

ण—सखा पुं० [सं०] १ दलने या पीसने की क्रिया । २ ध्वंस । विनाश ।

णि—सखा पुं० [सं०] १. प्रवाह । धारा । २ भौर । भावत । ३. तरंग । लहर । ४. लोड़ना । छठन [को०] ।

णी—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'वरणि' ।

त, दरद—सखा स्त्री० [सं०] १ पर्वत । पहाड़ । २ वधा । वध । बाँध । ३ प्रपात । झरना । ४. डर । भय । ५ हृदय । ६ म्लेच्छ जाति [को०] ।

थ—सखा पुं० [सं०] १ कदरा । गुफा । २. गर्त । गड्ढा । ३ चारे की तलाश करना । ४. पलायन [को०] ।

द^१—सखा पुं० [फा० दर्द] १. पीड़ा । व्यथा । कष्ट । उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार ।—रसनिधि (शब्द०) । २ दया । कृपा । तर्पण । सहानुभूति । उ०—माई नेकहु न दरद करति हिलकिन हरि रोवे ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'दर्द' ।

द^२—वि० [मं०] भयदायक । भयकर ।

द^३—सखा पुं० १ काश्मीर और हिंदुकुश पर्वत के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम ।

विशेष—बृहत्संहिता में इस देश का स्थिति ईशान कोण में बतलाई गई है । पर प्राजकल जो 'दरद' नाम की पहाड़ी जाति है वह लद्दाख, गिलगित, चित्राल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है । प्राचीन यूनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवासस्थान हिंदुकुश पर्वत के पासपास ही निश्चित होता है ।

२. एक म्लेच्छ जाति, जिसका सल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पोंड्रक, भोड्र, दाविड, कांबोज, यवन्, शक, पारद, पल्लव, चीन, किरात, दरद और खस पहले दक्षिण थे, पीछे संस्कारविहीन हो जाने और ब्राह्मणों का दर्शन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए । प्राजकल जो दारद नाम की जाति है वह काश्मीर के पासपास लद्दाख से लेकर नागरहुंजा और चित्राल तक पाई जाती है । इस जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं । पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये आर्यकुलोत्पन्न हैं । यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते हैं, तथापि इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है ।

३ ईशुर । सिरफ । हिगुल ।

दरदमंद—वि० [फा० दर्दमंद] १ दुखी । दर्दवाला । २ दयालु । जो दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुख का अनुभव करे । उ०—करन कुवेर कलि कीरति कमाल करि ताले बंद मरद दरदमंद दाना था ।—प्रकाशरी०, पृ० १४४ ।

दरदर^१—क्रि० वि० [फा० दर दर] १. डार डार । दरवाजे दरवाजे । उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाथ नचावे । दर दर लोभ सागि ले डोले नाना स्वांग करावे ।—सूर (शब्द०) । २ स्थान स्थान पर । जगह जगह । उ०—दर दर देखो दरीखानन में दोरि दोरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकिदमकि उठै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

दरदर^२—वि० [हिं०] दे० 'दरदरा' ।

दरदरा—वि० [सं० दरण (= दलना)] [वि० स्त्री० दरदरी] जिसके कण स्थूल हों । जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों । जिसके कण टटोलने से मालूम हों । जो खूब भारीक न पिसा हो । जैसे, दरदरा माटा, दरदरा चूर्ण ।

दरदराना—क्रि० सं० [सं० दरण] १ किसी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या टुकड़े हो जायें । पट्टत महीन न पीसना, पीड़ा पीसना । जैसे,—मिचं थोड़ा दरदरा कर ले माओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं । † २ जोर से दाँत काटना ।

दरदरी^१—वि० स्त्री० [हिं० दरदरा] मोटे रवे की । जिसके रवे मोटे हों ।

दरदरी^२—सखा [सं० धरित्री] पृथ्वी । जमीन । धरती (हिं०) ।

दरदवंत^१—वि० [फा० दर्द + हिं० वत (प्रत्य०)] १ कृपालु । दयालु । सहानुभूति रखनेवाला । उ०—सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गोर । बोलनि चितवनि चलनि वह दरदवंत की ओर ।—रसनिधि (शब्द०) । २ दुखी । जिसके पीडा हो । पीड़ित । उ०—लेउ न मजनु गोर दिग कोऊ लेनै नाम । दरदवंत को नेऊ तो लेन देहु विश्राम ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दरदवंद^२—वि० [फा० दर्दमंद] १ व्यथित । पीड़ित । जिसके दर्द हो । २ दुखी । खिन्न ।

दरदाई^१—सखा स्त्री० [हिं०] दर्द से युक्त होने का भाव । वेदना । दर्द । उ०—पीकी मोहि लहर उठत छुटत रेन नाहीं । कहा कहै करमन की रेख हिय की दरदाई ।—तुलसी० श०, पृ० ६ ।

दरदालान—सखा पुं० [फा०] दालान के बाहर का दालान ।

दरदी—वि० [फा० दर्द, हिं० दरद + ई (प्रत्य०)] जिसे दुख मिला हो । दुखी । पीड़ित । उ०—मीरा कहती है मतवाली, दरदी को दरदी पहचाने । दरद और दरदी के रिश्तों को, पगती मीरा क्या जाने ।—हिमत०, पृ० ७६ ।

दरद—सखा पुं० [फा० दर्द] दे० 'दरद' या 'दर्द' ।

दरद्री—वि० [सं० दरिद्र] निर्धन । कगाल । उ०—बेहृद्य दरद्री द्रव्य ज्यों भ्रमल सचल सिर दिव्य । पंगार देम पेमहकरन । जित्ति कित्ति अभिजष्यई ।—पृ० रा०, १२ । ६६ ।

दरन^१—सखा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरण' ।

हरना^१—क्रि० सं० [सं० दरण] १. दलना । चूर्ण करना । पीसना ।
२. ध्वस्त करना । नष्ट करना ।

दरप^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्प] दे० 'दर्प' । उ०—तरह मदन रत
तणी देखि दिस दरप जाय दट ।—रघु० ६०, पु०

दरपक^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दे० 'दर्पक' । उ०—तोहि पाइ कान्ह
प्यारी होइगी विराजमान ऐसे जेसे खीने सग दरपक रति है ।
—कविता०, पु० ५३ ।

दरपन^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्पण] [लो० अल्पा० दरपनी] मुँह देखने
का शीशा । आईना । मुकुर । प्रारसी ।

दरपना^५—क्रि० प्र० [सं० दर्पण] १. ताव में प्राना । क्रोध करना ।
२. गर्व या अहंकार करना । घमड़ करना ।

दरपनी^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा ।
छोटा आईना ।

दरपरदा^७—क्रि० वि० [फ० दरपदह] चुपके चुपके । छिप में ।
छिपाकर ।

दरपिठ^८—वि० [सं० दर्पित] दे० 'दर्पित' ।

दरपेश^९—क्रि० वि० [फ्रा०] भागे । सामने ।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना । सामने प्राना । जैसे,
मामला दरपेश होना ।

दरवद^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] १. दरवाजा । बड़ा दरवाजा । २. पर-
कोटा । चारदीवारी । ३. दो रायों के मध्य का अंतर [को०] ।

दरवदी^{११}—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. किसी चीज की दर या भाव निश्चित
करने की क्रिया । २. खगान आदि की निश्चित की हुई दर ।
३. अलग अलग दख्खा विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया ।

दरव^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. धन । दोलत । २. धातु । ३. मोटी
किनारदार चादर ।

दरवदर^{१३}—क्रि० वि० [फ्रा०] द्वार द्वार । दर दर । उ०—उनकी
भसल जानै नहीं । दिल दर बदर हूँ कुफर ।—तुरसी० श०,
पृ० २७ ।

दरवरी^{१४}—वि० [सं० दरण] १. दरदरा । २. ऐसा रास्ता जिसमें
ठीकरे पड़े हों (कहारों की बोली) ।

दरवर^{१५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [देशी दखवड़ (= शीघ्र)] उतावली । हड़-
बड़ी । जल्दबाजी । शीघ्रता । उ०—महो हरि आए महा
हरबर में, कहा बनि भावे टहल दरवर में । साधु सिरमनि
घर में साधन धोखे घसे परवर में ।—घनानंद, पृ० ४४० ।

दरवराणा^{१६}—क्रि० सं० [हिं० दरवर] १. दरवरा करना । थोड़ा
पीसना । २. किसी को इस प्रकार डरा देना कि वह किसी
बात का खरन न कर सके । घबरा देना । ३. दवाना । दवाव
डालना ।

दरवराणा^{१७}—क्रि० प्र० [देशी दखवड़, हिं० दरवर] १. शीघ्रता
करना । हड़बड़ी करना । २. छटपटाना । आकुल होना
(लाक्ष०) । उ०—देखन की दग दरवरात, प्रान मिलन
अरवरात सिपिल होति अगनि गतिमति तितही करति गवन ।
—घनानंद, पृ० ४२० ।

दरवहरा^{१८}—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मद्य जो कुछ वनस्पतियों
को सड़ाकर बनाया जाता है ।

दरवो^{१९}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवान] दे० 'दरवान' ।

दरवा^{२०}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दर] १. कबूतरों, मुरगियों आदि के रखने
के लिये काठ का खानेदार सटूक, जिसके एक एक खाने में एक
एक पक्षी रखा जाता है । २. दीवार, पेड़ आदि में वह खोंडरा
या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रक्षित है ।

दरवान^{२१}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०, मि० सं० द्वारवान्] उचोड़ीदार । द्वारपाल ।

दरवानी^{२२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दरवान का काम । द्वारपाल का कार्य ।

दरवार^{२३}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] [वि० दरबारी] १. वा. स्थान जहाँ
राजा या सरदार मुसाहबों के साथ बैठते हैं । २. राजसभा ।
कचहरी । उ०—करि मज्जन सरयू जल गए भूप दरवार ।
—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—दरवारदार (१) दे० 'दरबारी' । (२) खुशामदी ।
चापलूस । दरवारदारी । दरवार भाम । दरवार खास ।
दरवार वृत्ति ।

मुहा०—दरवार करना = राजसभा में बैठना । दरवार खुला =
दरवार में जाने की आज्ञा मिलना । दरवार बंद होना =
दरवार में जाने की रोक होना । दरवार बाँधना = घूस
बाँधना । रिश्वत मुकदर करना । मुँह भरना । दरवार
लगना = राजसभा के सभासदों का इकट्ठा होना ।

३. महाराज । राजा (दरवाजों में प्रयुक्त) । ४. अमृतसर में
सिक्खों का मंदिर जिसमें 'ग्रंथ साहब' रखा हुआ है । ५.
दरवाजा । द्वार । उ०—तब बोलि उठयो दरवार विलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरवारदारी^{२४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दरवार में हाजरी । राजसभा
में उपस्थिति । २. किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और
खुशामद करने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।

दरवारविलासी^{२५}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवार + सं० विलासी]
द्वारपाल । दरवान । उ०—तब बोलि उठयो दरवारविलासी ।
द्विजद्वार लसे जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरवारवृत्ति^{२६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० दरवार + सं० वृत्ति] राजा द्वारा प्राप्त
होनेवाली वृत्ति । राज्य द्वारा दी हुई जीविका । उ०—निरय
दरवारवृत्ति पानेवाले हिंदी कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य
कवि भी अकबरी दरवार द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत हुए
थे ।—अकबरी०, पृ० ३२ ।

दरवाह साहब^{२७}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवार + अ० साहब] अमृतसर
स्थित सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल गुरुद्वारा जहाँ उनका धर्म-
ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' रखा हुआ है ।

दरवारी^{२८}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] राजसभा का सभासद । दरवार में
बैठनेवाला आदमी ।

दरवारी^{२९}—वि० दरवार का । दरवार के योग्य । दरवार से संबंध
रखनेवाला । जैसे, दरवारी पोशाक ।

दरवारी कान्हड़ा^{३०}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवारी + हिं० कान्हड़ा] एक

राग जिसमें शुद्ध ऋषभ के प्रतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं ।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] करछी । कलछी । करछुल ।

दरभ^१—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] दे० 'दर्भ' ।

दरभ^२—संज्ञा पुं० [?] दंबर । उ०—कपि शाखाभूग बलीमुख कीश दरभ लंगूर । बानर मकंठ प्लवंग हरि तिन कहें भजु मन-हूर ।—नंददास (शब्द०) ।

दरमंद—वि० [फा० दरमादह] प्राजिज । दुखी । नि सहाय । बेकस । उ०—सालिक तो दरमंद जगाया बहुत उमेद जवाब न पाया ।—दे० बानी, पृ० ५५ ।

दरमन—संज्ञा पुं० [फा०] इलाज । प्रोषण ।

यौ०—दवादरमन=उपचार ।

दरमाँदा—वि० [फा० दरमान्दह] लाचार । असहाय । संकटग्रस्त । उ०—दरमाँदा ठाढ़ो तुम दरबार । तुम बिन सुरत करे को मेरी दरसन दीवै खोन किवार ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ९० ।

दरमा^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस की वह चटाई जो बंगाल में ओपडियों की दीवार बनाने में काम आती है ।

दरमा^२—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार ।

दरमाहा—संज्ञा पुं० [फा० दरमाह] मासिक वेतन ।

दरमियान^१—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य । बीच ।

दरमियान^२—क्रि० वि० बीच में । मध्य में ।

दरमियानी^१—वि० [फा०] बीच का । मध्य का ।

दरमियानी^२—संज्ञा पुं० [फा०] १ मध्यस्थ । बीच में पड़नेवाला व्यक्ति । दो आदमियों के बीच के झगड़े का निवृत्तेरा करने-वाला मनुष्य । २ दलाल ।

दरम्यान^३—संज्ञा पुं० [फा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—अबल देखो ये कथा, उसे नाम न था, नाम दरम्यान पैदा हुआ चल, चल, चल ।—दक्खिनी०, पृ० ५७ ।

दरया—संज्ञा पुं० [फा० दर्या] दे० 'दरिया' ।

दरयाव—संज्ञा पुं० [फा० दरयाव] दे० 'दरियाव' । उ०—ऐसे सब खलक तैं सकल सकलिल रही, राव में सरम जैसैं सलिल दरयाव में ।—मति० प्र०, पृ० ३६८ ।

दररना^१—क्रि० स० [देश०] दे० 'दरना' ।

दररना^२—क्रि० स० [हि० दरेर] दे० 'दरेरना' ।

दरराना^३—क्रि० स० [मनु०] हड़बड़ी या तेजी से आना ।

दरराना^४—क्रि० स० [हि०] दे० 'दरदराना' ।

दरवाजा—संज्ञा पुं० [फा० दरवाजह] १. द्वार । मुहाना ।

मुहा०—दरवाजे की मिट्टी खोद डालना या ले डालना = बार बार दरवाजे पर आना । दरवाजे पर इतनी बार जाना आना कि उसकी मिट्टी खुद जाय ।

२. किबाड़ । कपाट ।

क्रि० प्र०—खटखटाना ।—खोलना ।—बंद करना ।—मेड़ना ।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] १. साँप का फुन ।

यौ०—दरवीकर=साँप । फनवाला साँप ।

२ करछुल । पोता । ३ संबसी । दस्तपनाह । दस्तपना ।

दरवेश—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० दरवेशी] फकीर । साधु ।

दरवेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] फकीरी । साधुता [स्त्री०] ।

दरश—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] दे० 'दर्श' ।

दरशन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरशना—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरशाना^३—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरस—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] १ देखादेखी । दर्शन । दीदार । उ०—दरस परस मज्जन भव पाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दरस परस ।

२ भेट । मुलाकात । ३ रूप । छवि । सुंदरता ।

दरसन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरसना^३—क्रि० प्र० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना । देख पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—स्त्री नारदे की दरसे मति सी । लोपे तमता भवकीरति सी ।—केशव (शब्द०) ।

दरसना^४—क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना । सखना । उ०—(क) बन राम शिला दरसी जवही ।—केशव । (शब्द०) । (ख) नर भव भए दरसे तर मोरे ।—केशव । (शब्द०) ।

दरसनिया^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] विस्फोटक, नहामारी आदि बमोारियों की शांति के लिये पूजा आदि करनेवाला । भाड़ फूट आदि करनेवाला ।

दरसनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण । शीशा । आईना । उ०—नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चरुचाप । दस दसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन प्रमिलाप ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरसनीय^३—वि० [सं० दर्शनीय] दे० 'दर्शनीय' ।

दरसनी हुंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] १. वह हुंड़ी जिसके भुगतान की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों । (इस प्रकार की हुंड़ी बाजार में दरसनी हुंड़ी के नाम से बिकती थी । २ कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय ।

दरसाना—क्रि० स० [सं० दर्शन] १. दिखलाना । दृष्टिगोचर करना । उ०—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु विराट दरसायो ।—रघुराज (शब्द०) । २ प्रकट करना । स्पष्ट करना । सम-झाना । उ०—रामायन भागवत सुनाई । दोन्ही भक्ति राह दरसाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसाना^२—क्रि० प्र० दिखाई पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—(क) डाढ़ी में भव वदन मे सेत बार दरसाहि । रघुराज (शब्द०) । (ख) प्रमुदित करहि परस्पर बाता । सखि तव अघर स्याम दरसाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसावना—क्रि० स० [हि० दरसाना] दे० 'दरसाना' ।

दरहाल—क्रि० वि० [फा० दर+प्र० हाल] अभी । इसी समय ।

उ०—दाढ़ कारणि कत के खरा दुखी वेहाल। मीरा मेरा
मिहार करि, दे दरसन दरहान।—दाढ़०, पृ० ९२।

हराती—सका श्री० [सं० दात्री] १ हंसिया। घास या फसल
काटने का योजार।

मुहा०—हराती पड़ना=कटोनी पड़ना। कटाई प्रारंभ होना।

२ दे० 'दरती'।

हरा—सका पु० [फा० दरद; तुल० सं० दरा (=गुफा)] दे०
'दर'। उ०—खेवरा का दरा सों वार घाँणी का हरादा।—
सिखर०, पृ० ५१।

हराई—सका श्री० [हि०] १. दखने की मजदूरी। २. दखने
का काम।

हराज^१—वि० [फा० दराज] बड़ा। भारी। लबा। दीघं।

हराज^२—क्रि० वि० [फा०] बहुत। अधिक।

हराज^३—सका श्री० [हि० दरार] दरज। शिगाफ। दरार।

हराज^४—सका श्री० [सं० द्राग्र] मेज में लगा हुआ चंदकनुमा
खाना जिसमें कुछ वस्तु रखकर ताजा लगा सकते हैं।

हार—सका श्री० [सं० दर] वह खाली जगह जो किसी चीज के
फटने पर सफ़ीर के रूप में पड़ जाती है। शिगाफ। उ०—
(क) बबहुं घवनि बिहरत दरार मिस को घवसर सुधि
कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुमिरि सनेहु सुमिना
सुत को दरकि दरार न धाई।—तुलसी (शब्द०)।

हारना^१—क्रि० प्र० [हि० दरार + ना (प्रत्य०)] फटना।
विदीर्ण होना। उ०—बाजहि मेरि नफीर मपारा। सुनि
कादर उर जाहि दरारा।—तुलसी (शब्द०)।

हारा—सका पु० [हि० दरना] दरैरा। धक्का। रगड़ा। उ०—
दल के दरारे हुते कमठ करारे कूटे केरा कैसे पात बिहराने
फन सेस के।—भूषण (शब्द०)।

रिंदा—सका पु० [फा० दरिन्दह] फाड़ खानेवाला जंतु। मांसमक्षक
बनजंतु। जैसे, घोर, कुत्ता, प्रादि।

रि—सका श्री० [सं०] दे० 'दरी' [को०]।

रित—वि० [सं०] १ भयालु। डरपोक। भीत। २ विदीर्ण।
फटा हुआ [को०]।

रिद—सका पु० [सं० दरिद्र] १ कंगाली। निर्धनता। गरीबी। २
कगाल। निर्धन।

रिदर—वि०, सका पु० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

रिद^१—वि० [सं०] [वि० श्री० दरिद्र] जिसके पास निर्वाह
के लिये यथेष्ट धन न हो। निर्धन। कंगाल।

यौ०—दरिद्र नारायण = कगाल। भिक्षुक।

रिद^२—सका पु० १ निर्धन मनुष्य। कगाल घादमी। २ दरिद्र्य।
कगाली।

रिदवा—सका श्री० [सं०] कगाली। निर्धनता।

४-७१

दरिद्राण—सका पु० [सं०] गरीबी। धनहीनता [को०]।

दरिद्रायक—वि० [सं०] धनहीन। कगाल [को०]।

दरिद्रित्त—वि० [सं०] दे० 'दरिद्रायक'।

दरिद्रो—वि० [सं० दरिद्रित्त, प्रपवा सं० दरिद्र + हि० ई (प्रत्य०)]
दे० 'दरिद्र'।

दरिया^१—सका पु० [फा०] १ नदी। २. समुद्र। सिंधु। उ०—

उ०—(क) तजि घास भो दास रघूपति को दसरथ के दानि
दया दरिया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दरिया दधि
किय मयन भोम फटिय लह तुटिय।—पु० रा०, १।६३६।

यौ०—दरियाबिल = उदार।

दरिया^२—सका पु० [हि० दरना] दलिया।

दरिया^३—सका पु० [देश०] चिगुंण पथी एक संत।

यौ०—दरियादासी।

दरियाई^१—वि० [फा०] १ नदी संबंधी। २ नदी में रहनेवाला।

जैसे, दरियाई घोड़ा। ३. नदी के निकट का। ४ समुद्र
संबंधी।

दरियाई^२—सका श्री० पतंग को दूर ले जाकर हवा में छोड़ने की
क्रिया। भोखी। छुड़ैया।

क्रि० प्र०—देना।

दरियाई^३—सका श्री० [फा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतंगी
साटन। उ०—सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे
सफेद फां पर गोबर का चोंच, सोने की सिकड़ी में लोहे की
बंदी और दरियाई की भोगिया में मूँज की बखिया।—
भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३७७।

दरियाई^४—सका श्री० [फा० दरिया] एक तरह की तलवार।
उ०—दिपती दरियाई दोनों धाई भटनि बसाई प्रति उमही।
—पद्याकर प्र०, पृ० २८।

दरियाई घोड़ा—सका पु० [फा० दरियाई + हि० घोड़ा] गैंडे की
तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रीका में
मदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है।

विशेष—इसके पैरों में खुर के घाकार की चार चार उँगलियाँ
होती हैं। मुँह के भीतर डढ़ें और कंटिले दाँत होते हैं।
शरीर लंबा, मोटा, भारी और बेठंगा होता है। चमड़े पर
बाल नहीं होते। नाक फूली और उभरी हुई तथा पूँछ और
पार्श्व छोटी होती हैं। यह जानवर पोषों की जड़ों और
कल्लों को खाकर रहता है। दिन भर तो यह झाड़ियों और
दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में
निकलता है और खेती आदि को हानि पहुँचाता है। पर
यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और जरा सा खटका या
भय होते ही नदी में जाकर गोता मार लेता है। यह देर
तक पानी में नहीं रह सकता, साँस लेने के लिये सिर निका-
लता है और फिर डूबता है। यह निर्जन स्थानों में गोल
बाँधकर रहता है।

कभी कभी लोग इसका शिकार गड्डे खोदकर करते हैं। रात को जब यह जल गड्डों में गिरकर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके घमड़े से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चाबुक बनता है जिसे 'करवस' कहते हैं। मिस्र देश में इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण बहुत कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल—संज्ञा पुं० [फा० दरियाई + हि० नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है।

विशेष—इसकी गिरी और छिलका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। खोपड़े का पात्र बनता है जिसे सन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियाय—संज्ञा पुं० [फा० दरियाय] दे० 'दरियाय'।

दरियादासी—संज्ञा पुं० [हि० दरियादास + ई] निपुण उपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं, इस संप्रदाय के लोग भावे हिंदू भावे मुसलमान होते हैं। सब दरिया के संप्रदाय का अनुगामी।

दरियादिल—वि० [फा०] [स्त्री० दरियादिली] उदार। दानी। केयाज।

दरियादिली—संज्ञा स्त्री० [फा०] उदारता।

दरियाफा—वि० [फा० दरियाफा] दे० 'दरियाफत'। उ०—आपुको खूब दरियाफ कीजें।—पलटू, पृ० ५६।

दरियाफत—वि० [फा० दरियाफत] ज्ञात। मातृम। जिसका पता लगा हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दरियाय—संज्ञा पुं० [फा० दरियाय] दे० 'दरियाय'। उ०—हिब ते पेदि पठान पग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊँ।—अरुबरी, पृ० ६७।

दरियावरामद—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'दरियावरार'।

दरियावरार—संज्ञा पुं० [फा०] वह भूमि जो किसी नदी की घाटी हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियावार—वि० [फा०] अत्यंत बरसनेवाला। उदार। बरसालू [स्त्री०]।

दरियावुर्द—संज्ञा पुं० [फा०] वह भूमि जिसे कोई नदी काटकर खराब कर दे जिससे वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाय—संज्ञा पुं० [फा० दरियाय] १ दे० 'दरिया'। उ०—तन समुद्र मन लहर है नैन कहूर दरियाय। बेसर भुजा सिकदो कहत न भाव, न घाव।—(प्रचलित)। २ समुद्र। सिंधु। उ०—पक्का मतो करिके मलिच्छ मनसव छोड़ि मक्का ही। उतरत दरियाय है।—भूपण (पद्य)।

१. गुफा। छोड़। २. पहाड़ के बीच वह खड्ड

या नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।

यो०—दरीभृत। दरीमुख।

दरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त०, स्तरी (= फैलाने की वस्तु)] मोटे सूतों का बुना हुआ मोटे दल का बिछोना। शतरंजी।

दरी—वि० [सं० दरिन्] १. फाड़नेवाला। विदीर्ण करनेवाला। २. डरनेवाला। डरपोक। फादर।

दरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] फारसी भाषा की एक शाखा का नाम [स्त्री०]।

दरीखाना—संज्ञा पुं० [फा० दर + खाना] यह घर जिसमें बहुत से द्वार हों। वारहदरी। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दोरि दोरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि ठठे।—पद्माकर (पद्य)।

दरीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दरी'। उ०—...ये मंदिर पाषाणखो को काट काटकर दरीगृहों के रूप में बने थे।—प्रा० भा०, पृ० ५६३।

दरीचा—संज्ञा पुं० [फा० दरीचह] [स्त्री० दरीची] १. खिड़की। झरोखा। २. छोटा द्वार। चौर दरवाजा। उ०—दरीचा तूँ इस बाव का मुज को खोल। मिल उस पार सूँ बूँ गहूँ मुज के बोल।—दरिस्तनी, पृ० ८४। ३. खिड़की के पास बैठने की जगह।

दरीची—संज्ञा स्त्री० [फा० दरीचह] १. झरोखा। खिड़की। २. खिड़की के पास बैठने की जगह। उ०—(क) मूँदि दरीचिन दे परदा सिदरीन झरोखन रोक छपायो।—गुमान (पद्य)। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के देवे ही में छपा की छबीली छवि छहरति ततकाल।—द्विजदेव (पद्य)।

दरीचा—संज्ञा पुं० [?] १. पान दरीचा। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तंबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। २. बाजार। उ०—मासिक अमनी साध सब, प्रलख दरावे जाइ। साहेब दर दीदार में, सब मिलि बैठे पाइ।—दादू, पृ० १३१।

दरीभृत—संज्ञा पुं० [सं० दरीभृत] पर्यंत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुफा का मुँह। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. गुफा के समान मुखवाला [स्त्री०]।

दरुदा—संज्ञा स्त्री० [फा० दरुद] दुआ। शुभकामना। कृपा। उ०—वे वदे को पैदा किया दम का दिया दरुदा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

दरुन—संज्ञा पुं० [फा०] आत्मा। हृदय। चित्त। कत्व [स्त्री०]।

दरुना—संज्ञा पुं० [फा० दरुना] वह फोड़ा या घाव जिसका मुँह भीतर हो। उ०—दादू हरदम माहि दिवान कहै दरुने दरद सों। दरद दरुन जाइ, जब देखो दीदार को।—दादू, पृ० ५६।

दरुनी—वि० [फा०] भीतरी। आंतरिक। उ०—बगोनी सब तमाशा यह जो देखो। न जाने यह दरुनी खेल घट का।—कबीर म०, पृ० ३७६।

दरौती—संज्ञा स्त्री० [सं० दर + यत्न] मनाज दलने का छोटा यत्न। चक्की।

- दरेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० दरेन्द्र] विष्णु का शख । पाचजन्य [को०] ।
 दरेक—संज्ञा पुं० [सं० दरेक] बकाइन का वृक्ष ।
 दरेग—संज्ञा पुं० [प्र० दरेग] कमी । कसर । कोर कसर । जैसे—
 हूँ मैं इस काम के करने में दरेग न करूँगा ।
 दरेर—संज्ञा पुं० [सं० दरर] दे० 'दरेरा' । उ०—दरिया जो कहे
 दरियान दरर में तोरि जजीर के तानतु है ।—स० दरिया,
 पृ० ६५ ।
 दरेरना—क्रि० स० [सं० दरर] १. रगड़ना । पीसना । २.
 रगड़ते हुए घबका देना ।
 दरेरा—संज्ञा पुं० [सं० दरर] १. रगड़ा । धक्का । उ०—तापर
 सहि न आय कछानिभि मन को दुसह दरेरो ।—तुलसी
 (शब्द०) । २. मेंह का भावा । ३. वहाव का जोर । तोड़ ।
 दरेस^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० ड्रेस] एक प्रकार की छोट । फूलदार छपा
 हुषा एक महीन कपड़ा ।
 दरेस^२—वि० [प्र० ड्रेस] तैयार । बना बनाया । सजा सजाया ।
 दरेस^३—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दरस' । उ०—दुसा देस तहाँ
 जा पहुँचे देखो पुरुष दरेस ।—कबीर० श०, भा० ३,
 पृ० ४६ ।
 दरेसी—संज्ञा स्त्री० [प्र० ड्रेस] दुस्तो । तैयारी । मरम्मत ।
 दरेयाँ—संज्ञा पुं० [सं० दरर] १. दलनेवाला । वह जो दखे । २.
 पातक । विनाशक । उ०—दरारस्य को नदन दुख दरेया ।
 —(शब्द०) ।
 दरोग—संज्ञा पुं० [प्र० दरोग] झूठ । असत्य । गसत । मिथ्या ।
 उ०—(क) हों दरोग जो कह्यो सूर सगै पच्छिम दिसि । हों
 दरोग जो कह्यो ईद सगमे कुटुं निसि ।—पृ० रा०, ६४ ।
 १३६ । (ख) मेरी बात जो कोई जाने दरोग । कमी फेर
 उसको न होवे फरोग ।—कबीर म०, पृ० १३४ ।
 यौ०—दरोग हलफ़ी ।
 दरोगहलफ़ी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दरोगहलफ़ी] १. सच बोलने की
 कसम खाकर भी झूठ बोलना । २. झूठी गवाही देने
 का जुमं ।
 दरोगा—संज्ञा पुं० [प्रा० दारोगह] दे० 'दारोगा' । उ०—सो
 वा परगने में एक म्लेच्छ दरोगा रहे ।—दो सो बावन०
 भा० १, पृ० २४२ ।
 दरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुरोदर' [को०] ।
 दरकार—क्रि० वि० [प्रा० दरकार] दे० 'दरकार' ।
 दगाह—संज्ञा पुं० [प्रा० दरगाह] दे० 'दरगाह' ।
 दर्जे—संज्ञा स्त्री० [हि० दरज; तुल० प्रा० दर्ज] दे० 'दरज' ।
 दर्जे—वि० [प्रा०] लिखा हुआ । कागज पर चढ़ा हुआ । प्रकित ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 दर्जन—संज्ञा पुं० [प्र० डजन] बारह का समूह । इकट्ठी
 बारह वस्तुएँ ।
 दर्जी—संज्ञा पुं० [प्र० दर्जह] १. ऊँचाई निचाई के क्रम के

- विचार से निश्चित स्थान । श्रेणी । कोटि । वर्ग । जैसे,—
 वह प्रबल दर्जे का पाजी है । २. पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा
 स्थान । जैसे,—तुम किस दर्जे में पढ़ते हो ।
 मुहा०—दर्जा उतारना = ऊँचे दर्जे से नीचे दर्जे में कर देना । दर्जा
 चढ़ना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में जाना । दर्जा चढ़ाना =
 नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में करना ।
 क्रि० प्र०—घटाना ।—बढ़ाना ।
 ४ किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो । खंड ।
 जैसे, घालमारी के दर्जे । मकान के दर्जे ।
 दर्जा^२—क्रि० वि० गुणित । गुना । जैसे,—वह चीज उससे हजार दर्जे
 अच्छी है ।
 दर्जिन—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दर्जी+हि० इन (प्रत्य०)] १. दर्जी
 जाति की स्त्री । २. दर्जी की स्त्री । ३. सीने का व्यवसाय
 करनेवाली स्त्री ।
 दर्जी—संज्ञा पुं० [प्रा० दर्जी] १. कपड़ा सीनेवाला । वह जो कपड़े
 सीने का व्यवसाय करे । २. कपड़े सीनेवाला जाति का पुरुष ।
 मुहा०—दर्जी की सूई = हर काम का मादमी । ऐसा मादमी जो
 कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके ।
 दर्द^१—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. पीड़ा । व्यथा ।
 क्रि० प्र०—होना ।
 मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना । (किसी भग का)
 दर्द करना = (किसी भग का) पीड़ित या व्यथित होना ।
 दर्द खाना = कष्ट सहना । पीडा सहना । जैसे,—उसने दर्द
 खाकर नहीं जना ? दर्द लगना = पीड़ा मारभ होना ।
 २ दुःख । तकलीफ़ । जैसे, दूसरे का दर्द समझना ।
 मुहा०—दर्द भाना = तकलीफ़ मालूम होना । जैसे,—बपया
 निकालते दर्द भाता है ।
 ३. सहानुभूति । करुणा । दया । तर्प । रहम ।
 क्रि० प्र०—भाना ।—लगना ।
 मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना । दया करना ।
 ४ हानि का दुःख । खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट ।
 जैसे,—उसे पैसे का दर्द नहीं ।
 यौ०—दर्दनाक । दर्दमद । दर्दजिगर = दर्देदिन । दर्देदिल = मन-
 स्ताप । मनोव्यथा । दर्देसर = (१) शिर पीड़ा । (२)
 झुकट का काम । दर्दोगम = पीडा मार दुःख । कष्टसमूह ।
 उ०—मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने । दर्दोगम
 कितने किए जमा तो दीवान किया ।—कविता को०, भा० ४,
 पृ० १२२ ।
 दर्दनाक—वि० [प्रा०] कष्टजनक । दर्द पैदा करनेवाला [को०] ।
 दर्दमंद—वि० [प्रा०] [उच्चा दर्दमंदी] १. जिसे दर्द हो । पीड़ित ।
 दुःखी । २. जो दूसर का दर्द समझे । जिसे सहानुभूति हो ।
 दयावान् ।
 दर्दर^१—वि० [सं०] दृढ़ा हुआ । फटा हुआ ।
 दर्दर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ कुछ खड़ित कलश । २. एक वाद्य ।
 दर्दुर । ३. दर्दुर नामक पर्वत [को०] ।

दर्दरात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक पेड़ का नाम । २ एक प्रकार का व्यञ्जन [को०] ।

दर्दरीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक । दादुर । २ मेघ । बादल । ३ वाद्य । बाजा । ४ एक प्रकार का विशेष वाद्य । जैसे, वधो [को०] ।

दर्दचंद—वि० [फ्रा० दर्दमद] दे० 'दर्दमद' । उ०—खंडे दर्दवद दरवेस दरगाह में खेर भी मेहर मोलुद मक्का ।—कबीर० रे०, पृ० ४० ।

दर्दी—वि० [फ्रा० दर्द + हि० ई (प्रत्य०)] १. दुखी । पीड़ित । २ जो दूसरे का दर्द समझे । दयावान् । जैसे, वेदर्दी ।

ददु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दाद । ददु [को०] ।

ददुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक ।

यौ०—ददुरोदना = यमुना नदी ।

२. बादल । ३. अन्नक । अबरक । ४. पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग । मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत । ५. उत्त पर्वत निकट का देश । ६. प्राचीन काल का एक बाजा (को०) । ७. एक प्रकार का चावल (को०) । ८. घोसे की ज्वनि । नगाड़े की धावाज (को०) । १०. राक्षस (को०) । ११. ग्राम, जिला या प्रांतसमूह (को०) ।

ददुरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक । दादुर । २ एक वाद्य । ददुर ।

ददुरच्छदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी बूटी ।

ददुरपुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंशी प्रादि वाद्यों का मुख [को०] ।

ददुरा, ददुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०] ।

ददु, ददु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दाद नामक रोग ।

ददुण, ददुण—वि० [सं०] दाद का रोगी । जिसे ददु रोग हुआ हो [को०] ।

दर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घमंड । अहंकार । अभिमान । गर्व । ताव । उ०—कदपं दुर्गमं दर्पं दवन उमारवन गुन भयन हर ।—तुलसी (शब्द०) । २. मन । अहंकार के लिये किसी के प्रति कोप । ३. उद्दंभता । अखड्डपन । ४. दबाव । आतंक । रोच । ५. कस्तूरी । ६. ऊष्मा । ताप । गर्मी (को०) । ७. उमग । अस्साह (को०) ।

यौ०—दर्पकल = गर्व के कारण मुखर । गर्वभरी बात कहने-वाला । दर्पच्छिद = गर्व को नष्ट करनेवाला । दर्पद = विष्णु का एक नाम । दर्पहर = दे० 'दर्पच्छिद' । दर्पहा = विष्णु ।

दर्पक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दर्प करनेवाला व्यक्ति । २ कामदेव । मनोज । ३. दर्प । अहंकार (को०) ।

दर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आईना । आरसी । मुँह खोलने का शीशा । वह काँच जो प्रतिबिम्ब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है । २. ताव के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद । ३. धनु । शस्त्र । ४. सदीपन । उद्दीपन । उभारने का कार्य । उत्तेजना । ५. एक पर्वत का नाम जो कुबेर का निवास-स्थान माना जाता है (को०) ।

दर्पन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दे० 'दर्पण' ।

दर्पना—क्रि० प्र० [सं० दर्पण] ताव में माना । दर्पना । गर्वयुक्त होना । उ०—रत मद मत्त निषाचर दर्पा । बिस्व प्रसिद्धि जनु एहि विधि दर्पा ।—मानस, ६ । ६६ ।

दर्पमय क्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रंगोत्पन्न के खेल । नाच रंग प्रादि ।

दर्पहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्पहृत्] विष्णु का एक नाम [को०] ।

दर्पित—वि० [सं०] गर्वित । अहंकार से भरा हुआ । उ०—रघुवीर बल दर्पित विभीषणु घालि नहि लाकड़ गने ।—मानस, ६।६३ ।

दर्पी—वि० [सं० दर्पित्] [वि० स्त्री० दर्पिणी] घमंडी । अहंकारी ।

दर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १ द्रव्य । घन । उ०—छलुद्र दर्प दे सधि के, फेरि देह हिदुयान ।—प० रासो, पृ० १०५ । २. घातु (सोना, चाँदी इत्यादि) ।

दर्पी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य । घन । उ०—प्रासा पासा मनसा लाय । पर दर्पा न हरे न पर परि जाय ।—प्राण०, पृ० १०१ ।

दर्वान—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवान] दे० 'दरवान' ।

दर्वार—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवार] दे० 'दरवार' ।

दर्वारी—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवारी] दे० 'दरवारी' ।

दर्पिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्रव्य] दे० 'द्रव्य' । उ०—हृष गय मानिन दवि दिप, मादर बहु नृप बिभ ।—प० रासो, पृ० १३१ ।

दर्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कुश । डाम । डानुस । २ कुश । ३ कुश निमित्त भ्रमन । कुशासन । उ०—प्रस कहि लवणसिंधु तट जाई । वैठे कपि सब दर्भ टसाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दर्भकुसुम = दर्भपुष्प । एक कीट । दर्भधीर = कुश का परिधान । दर्भपत्र । दर्भपुष्प । दर्भलवण । दर्भसंस्तर । दर्भसूची = दर्भा कुर ।

दर्भरेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशध्वज । राजा जनक के भाई का नाम ।

दर्भट—सञ्ज्ञा [सं०] गुप्त गृह । भीतरी कोठरी ।

दर्भपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पत्र ।

दर्भपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्र ।

दर्भलवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुश वा चास काटने का एक औजार [को०] ।

दर्भसंस्तर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुश का आसन या कुश का बिछोना [को०] ।

दर्भाकुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्भाकुर] डाम का गोफा जो सुई की तरह नुकीला होता है [को०] ।

दर्भासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशासन । कुश का बना हुआ बिछावन ।

दर्भाक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूँझ ।

दर्भि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

विशेष—महामारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के उपहार के लिय अर्घकोल नामक एक तीर्थ स्थापित किया था । इनका एक नाम दर्भी भी है ।

दर्भी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्भिन्] दे० 'दर्भि' ।

दर्भपिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुश का निचला भाग या डठल [को०] ।

दर्मियाँ—क्रि० वि० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे । कलाम प्राते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७ ।

दर्मियान—संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियान] दे० 'दरमियान' ।

दर्मियानी—वि०, संज्ञा पुं० [क्रा० दरमियानी] दे० 'दरमियानी' ।

दर्या—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' । उ०—एक मछली सारे दर्या को गदा कर डालती है ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ११७ ।

दर्याउ—संज्ञा पुं० [हिं० दरियाव] दे० 'दरिया' ।—कूर्द्धि जर कहुर दर्याउ में ।—पद्माकर प्र०, पृ० १४ ।

दर्यादिली—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दरियादिली] उदारता । हृदय की विशालता । उ०—घोर दर्यादिली खुदा के घर से इसी को मिली है ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६ ।

दर्यापत—वि० [क्रा० दरियापत] क्षात । मालूम । दरियापत । उ०—इस वक्त मुझसे यहाँ आने का सबब दर्यापत करेगा तो मैं इससे क्या जवाब दूँगा ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दर्याव—संज्ञा पुं० [क्रा० दरिया] दे० 'दरिया' ।

दर्रा—संज्ञा पुं० [फा०] १. पहाड़ी रास्ता । वह सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो । घाटी । २. दरार । दरज ।

दर्रा—संज्ञा पुं० [सं० दरना] १ मोटा घाटा । २ कंकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रविधो पर ढाली जाती है । ३ दरार । शिगाफ । दरज ।

दर्राज—संज्ञा स्त्री० [फा० दर्राज (= लंबा)] लकड़ी का एक भोजार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है ।

दर्राना—क्रि० प्र० [धनु० दड़ दड, धड़ धड] धड़धड़ाना । बेधड़क चला जाना । बिना रुकावट या डर के चला जाना ।

विशेष—इस क्रिया के उन्ही रूपों का प्रयोग होता है जिनसे क्रि० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्राकर=धड़ धड़कर । बेधड़क । दर्राता हुआ=धड़धड़ता हुआ । बेधड़क । उ०—वह दर्राता हुआ दरबार में जा पहुँचा । दर्राना=धड़धड़ता हुआ । बेधड़क । उ०—द्वारपालों की बात सुनी धनसुनी कर हरि सब समेत दरनि वहाँ चले गए, जहाँ तीन ताड़ लंबा प्रति मोटा महादेव का धनुष धरा था ।—लल्लु (शब्द०) ।

दर्व—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य । घन । संपत्ति । उ०—सहस्र धेनु कचन बहु हीरा । अगणित दर्वें दियो नृप बीरा ।—रसरतन, पृ० १६ ।

दर्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करनेवाला मनुष्य । २ राक्षस । ३ एक जाति जिसका नाम दरद, किरात आदि के साथ महानगर में आया है । इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था । ४. वह देश जहाँ उक्त जाति बसती थी । ५ सर्प का फण (को०) । ६ आघात । चोट । क्षति (को०) । ७ फरछुल । दर्वी (को०) ।

दर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव का चौकीदार । गोडइत । २ द्वार रक्षक । द्वारपाल (को०) ।

दर्वरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ इद्र । २. वायु । ३ एक प्रकार का बाजा ।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उशीनर की परनी का नाम ।

दर्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दर्वी' (को०) ।

दर्वि—वि० [सं० दर्प] दर्पयुक्त । गरवील । गर्वयुक्त । उ०—बहु दर्वि लरिव गुमान । सावत लखि परिवान ।—प० रासो पृ० ५२ ।

दर्विक—संज्ञा पुं० [सं०] डोप्रा । चमचा । कलछुल । दर्वी (को०) ।

दर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ माँख में लगाने का वह काजल जो धी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है । २ बनगोभी । गोजिया । ३. चमचा । डोप्रा (को०) ।

दर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करछी । चमचा । डोप्रा । २ साँप का फन । यौ०—दर्वीकर ।

दर्वीकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप ।

दर्वेसा—संज्ञा पुं० [फा० दरवेश] दे० 'दरवेश' । उ०—जोगी जंगम घोर सन्यासी, डीगवर दर्वेस ।—कवीर० श०, भा० १, पृ० ६ ।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्शन । भवलोकन । २ सूर्य और चंद्रमा का संगम काल । अमावस्या तिथि । ३ द्वितीया तिथि ।

यौ०—दर्शपति ।

३ वह यज्ञ या कृत्य जो अमावस्या के दिन किया जाय ।

यौ०—दर्शपौर्णमास ।

४ प्रत्यक्ष प्रमाण । चाक्षुष प्रमाण (को०) । ५ दृश्य (को०) ।

दर्शक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १ जो देखे । दर्शन करनेवाला । देखनेवाला । २ दिखानेवाला । लखानेवाला । बतानेवाला । जैसे, मार्गदर्शक । ३. द्वाररक्षक । द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है) । ४ निरीक्षक । निगरानी रखनेवाला । प्रधान ।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो । चाक्षुष ज्ञान । देखादेखी । साक्षात्कार । भवलोकन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दर्शन देना=देखने में आना । अपने को दिखाना । प्रत्यक्ष होना । दर्शन पाना=(किसी का) साक्षात्कार होना ।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण । २ भेंट । मुलाकात । जैसे,—चार महीने पीछे फिर आपसे दर्शन कहेगा ।

विशेष—प्रायः बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है ।

३ वह शास्त्र जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे तत्त्वज्ञान हो । वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य-कारण संबंध आदि का बोध हो ।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तर्कों या नियमों में अंतर्भाव करना ही दर्शन है। आरंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि को सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब लोग ससार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। ससार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इन्द्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के सशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इन्द्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों में पाया जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझाकर कहा है कि 'हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है'। वृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप में इन तत्त्वों का श्रुतियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छह दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये हैं—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तर-मीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे पकर्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं, अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति का मानकर उसके सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही ससार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि को प्रकृति की परिणामपरंपरा मानने के कारण यह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि सबधी सांख्य का यह मत इतिहास, पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्म-विपाक और आशय से रहित एक पुरुषविशेष या ईश्वर माना गया है। सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है। योग में किसी मत पर विशेष तर्क वितर्क या भाग्रह नहीं है, मोक्षप्राप्ति के निमित्त यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की

प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है, जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खड्ग मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं, जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छाज्ञानादि गुणयुक्त और कर्ता माना गया है। जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी, जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसी से इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं। इसी से इनका मत भारमवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एकमात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है। इसी से इसका मत विवतवाद और अद्वैतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा ससार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके खड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। भरत, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरोप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भारतवर्ष के इन छह प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त 'सर्वदर्शनसंग्रह' में चार्वाक, बौद्ध, माहंत, नकुलीय, पाशुपत, शैव, पूणप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शनों का भी उल्लेख है।

योरोप में यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन में सबसे पहले अग्रसर हुआ। ईसा स ५०० ई. पू. से पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल में दर्शन की योरोप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विशद प्रणाली वहाँ निकली है।

४ नेत्र । श्रोत्र । ५ स्पर्श । ६ बुद्धि । ७ धर्म । ८ दर्शन । ९ वय । रग । १० यज्ञ । इज्या (को०) । ११ उपलब्धि (को०) । १२ शास्त्र (को०) । १३ परीक्षण । निरीक्षण (को०) । १४ प्रदर्शन । दिखावा (को०) । १५ उपस्थिति या विद्यमानता (न्यायालय में) (को०) । १६ राय । सलाह । विचार (को०) । १७ नीयत (को०) ।

दर्शनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सम्भावना । २. वह स्थान जहाँ लोग कुछ देखने या सुनने के लिये बैठें (को०) ।

दर्शनपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का पथ । जहाँ तक दृष्टि जाय । क्षितिज (को०) ।

दर्शनप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या जामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह मादमी जो किसी को हाजिर कर देने का जिम्मा ले।

दर्शनप्रतिभाव्य शृणु—संज्ञा पुं० [सं०] वह शृणु जो दर्शन प्रतिभू की सलाह पर लिया गया हो।

दर्शनीय—वि० [सं०] १. देखने योग्य। देखने लायक। २. सुंदर। मनोहर। ३. न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थिति योग्य (को०)।

दर्शनी-हुंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दरसनी हुंड़ी'।

दर्शयिता—वि० [सं० दर्शयितृ] १. दिखानेवाला। प्रदर्शक। २. निर्देश करनेवाला। बतानेवाला। जैसे, पथदर्शयिता।

दर्शयिता^२—संज्ञा पुं० १. द्वाररक्षक। द्वारपाल। २. निर्देशक (को०)।

दर्शाना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'दरसाना'।

दर्शित—वि० [सं०] १. दिखताया हुआ। ३. प्रकाशित। प्रकटित। ३. प्रमाणित।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन] १. देखनेवाला। २. विचार करनेवाला। ३. अनुभूत करनेवाला।

दसे—संज्ञा पुं० [प्र०] शिक्षा। नसीहत। उपदेश। उ०—जो पढ़ते दस जब से खुद सार, मस्जिद के दरमियान तस्ती कर्ते ले।—दक्खिनी, पृ०, ११५।

दर्मनीय^७—वि० [सं० दर्शनीय] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—रम्य सुपेसल भव्य पुनि दर्सनीय रमनीय।—अनेकार्थ०, पृ० ६६।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के उन दो सम खंडों में से एक, जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायें। जैसे चने, अरहर, मूँग, उरद, मसूर, चिएँ इत्यादि के दो दल जो चक्की में दलने से अलग हो जाते हैं। २. पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। ३. तमाल-पत्र। ४. फूल की पखड़ी। उ०—जय जय कमल कमलदल लोचन।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ५. समूह। झुंड। गरोह। ६. गुट। चक्र। जैसे,—वह दूसरे के दल में है। ७. सेना। फौज। जैसे, शत्रुदल। ८. मयूरपुच्छ। ड०—दन कहिए नृप को बटक, दल पत्रन को नाम, दल घरही के चव सिर घरे स्याम अभिराम।—अनेकार्थ०, पृ० १३५। ९. गटरी के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई किसी चीज की मोटाई। १०. अल के ऊपर का आच्छादन। कोप। म्यान। ११. घन। १२. जल में होनेवाला एक वृण। १३. यश। दुकड़ा। खंड (को०)। १४. किसी का आघात। प्रघात (को०)। १५. वृक्षविशेष (को०)। १६. इक्ष्वाकुवशी परीक्षित राजा के एक पुत्र जिनकी माता महकराज की कन्या थी (को०)।

दलक^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दलक] गुदड़ी। उ०—वैठा है इस दलक बिच भापे भाप छिपाय। साहव जा तन लख परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि (शब्द०)।

दलक^२—संज्ञा पुं० [हिं० दलकता] राजगोरों का एक भोजार जिससे

नक्काशी साफ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिरे पर चिपटा होता है।

दलक^३—संज्ञा [हिं० दलकना] १. वह रूप जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। पर-थराहट। धमका। जैसे, डोलक की दलक। २. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक।

दलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] १. दलकों की क्रिया या भाव। दलक। २. झटका। आघात। उ०—भद बिलद भभेरा दलकन पाइय मुख भकभोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

दलकना^१—क्रि० प्र० [सं० दलन] १. फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोता तेहि दिन दलकि दली।—तुलसी (शब्द०)। २. थराना। काँपना। उ०—महाबली बलि की दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है।—तुलसी (शब्द०)। ३. पाँकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलकि उठै सुनि दधन कठोर। जनु छुड़ गयो पाक बरतोर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कैकेई अपने करमन को सुमिरत हिय में दलकि उठी।—देवस्वामी (शब्द०)।

दलकना^७—क्रि० सं० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से काँपा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लोन्ही दलकि शृगालहि।—सूर (शब्द०)।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पलड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पकज (को०)।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुद का पौधा।

दलगजन^१—वि० [सं० दलगञ्जन] श्रेष्ठ वीर। सेना को मारनेवाला। भारी वीर।

दलगंजन^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं० दलगन्ध] सप्तपर्ण वृक्ष। छिन्नवन। सतिवन।

दलगर्जन^७—वि० [सं० दलगञ्जन] दे० 'दलगंजन'। उ०—भग्न भग्न लच्छन बसहि जे बरनी बरीस। दलगर्जन दुर्जन दलन दमपति पति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

दलधुसरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० दाल + धुसड़ना] एक प्रकार की रोटी, जिसमें पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है।

दलधंभण—वि० [सं० दल + दंभन] सेना को रोकनेवाला। शत्रु की हुई सेना को रोक देनेवाला। दल का दंभन करनेवाला। उ०—दादू सूर सुभट दलधंभण रोपि रह्यो रन माहीं रे। जाकी साखि सकल जग बोले टेक टली कहु नाहीं रे।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८७६।

दलधंभन—संज्ञा पुं० [हिं० दल + दंभन] कमलाव बुननेवालों का भोजार जो बाँस का होता है और जिसमें भेंकुवा और नक्काशी बंधा रहता है।

दलध^७—संज्ञा पुं० दे० [सं० दारिद्र्य] 'दारिद्र्य'। उ०—तीसो पन

लीधो दसद, कीधो गात कुढग । गनका सुँ राखे गुसट रसिया
तोन् रग । —बोकी० प्र०, भा० २, पृ० १२ ।

दलदल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दलदल्य (= नदीतट का कीचड़)] १
कीचड़ । पाँच । चहूँला । २. वह जमीन जो गहराई तक गीली
हो और जिससे पेर नीचे को बँसता हो ।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है ।

मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना । (२) ऐसी
कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो । मुश्किल
या दिक्कत में पड़ना । (३) जल्दी खसम या तै न होना ।
अनिर्णीत रहना । खटाई में पड़ना । उ०—दोनों दलों की
दलादली में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा ।—
बदरीनारायण चौधरी (शब्द०) । ४ बुझी स्त्री (पालकी
के कहार) ।

दलदला—वि० [हिं० दलदल] [वि० स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल
हो । दलदलवाला । जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती ।

दलदार—वि० [हिं० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो ।
जिसकी तह या परत मोटी हो । जैसे, दलदार गूदा । दलदार
भाम ।

दलन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० दलित] १ पीसकर टुकड़े टुकड़े
करने की क्रिया । चूर चूर करने का काम । २ विनाश ।
संहार । ३ विदारण । उ०—या विधि वियोग ब्रज बावरो
भयो है सब, बाढत उदेग महा अंतर दलन को ।—घना-
नद०, पृ० ५०३ ।

दलन^२—वि० दलनेवाला । नष्ट करनेवाला । विनाशकारी । नाशक ।
उ०—साहि का ललन दिखी दल का दलन अफगल का मलन
शिवराज आया सरजा ।—भूषण प्र०, पृ० ११६ ।

दलना—क्रि० सं० [सं० दलन] १ रगड़ या पीसकर टुकड़े
टुकड़े करना । मलकर चूर चूर करना । चूँग करना ।
खंड खंड करना । २. रौंदना । कुचलना । मलना । खूब
दबाना । मसलना । मोड़ना । उ०—पर प्रकाश लगी तनु
परिहरी । जिमि हिम उरल कृषि दलि गरही ।—मानस,
१ । ४ ।

संयो० क्रि०—डालना ।—मारना ।

३ चक्की में डालकर घनाजे आदि के दानों को दलों या कई
टुकड़ों में करना । जैसे, दान दलना । ४. नष्ट करना ।
ध्वस्त करना । जतना । उ०—केतिक देश दल्यो भुज के
कन ।—भूषण (शब्द०) ।

यौ०—दलना मलना । उ०—भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि
दिवस कर अत ।—तुलसी (शब्द०) । —मलना दलना ।

५ तोड़ना । भटके से खंडित करना । उ०—(क) दलि तृण
प्राण निष्ठावरि करि करि लैहें मालु बलैया ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) सोई हों वृक्षत राजसभा धुनुकें दल्यो हों
दलिहों बल ताको ।—तुलसी (शब्द०) ।

६ ।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] दलने की क्रिया या ढग ।

दलनिर्मोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़ ।

दलनिहार^७—वि० [सं० दलनि + हिं० हारा (प्रत्य०)] विघ्नस
करनेवाला । नष्ट करनेवाला । मर्दित करनेवाला । उ०—
कलि नाम कामतरु राम को । दलनिहार दारिद' दुकाल दुख
दोष घोर घन घाघ को ।—तुलसी प्र०, पृ० ५३७ ।

दलनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कंकड़ । मिट्टी का टुकड़ा । ठेला [को०] ।

दलप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दलपति । मंडली या सेना का नायक ।
२ सोना । स्वर्ण । ३ शस्त्र । आयुध (को०) । ४. शास्त्र
(को०) ।

दलपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किसी मंडली या समुदाय का प्रधान ।
मंडली का मुखिया । प्रभुवा । सरदार । २. सेनापति ।
उ०—दलगर्जन दुर्गादलन दलपतिपति दिल्लीस ।—रस-
रतन, पृ० ८ ।

यौ०—दलपतिपति = सेनापतियों का अधीश्वर ।

दलपुष्पा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के
होते हैं ।

विशेष—केतकी या केवड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश
के भीतर रहती है । सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार
होता है ।

दलवर्दी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दल + हिं० बँधना] गुटबाजी । दल या
गुट बनाने का काम ।

दलबल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लाव लभकर । फौज । ड०—कछु मारे
कछु घायल कछु गढ़ चने पराइ । गर्जहि भालु बलीमुख
रिपु दलबल विचलाई ।—मानस, ६ । ४६ ।

दलबा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दलना] तीतरबाजो, बटेरबाजों आदि का वह
निर्बल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ाकर घोर मार
खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं ।

दलवादल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दल + बादल] १ बादलों का समूह ।
बादलों का झुंड । २ भारी सेना । ३ बहुत बड़ा शामि-
याना । बड़ा भारी खेमा ।

मुहा०—दलवादल खडा होना = बड़ा भारी शामियाना या खेमा
गड़ना ।

दलमलना—क्रि० सं० [हिं० दलना + मलना] १ मसल डालना ।
मोड़ डालना । उ०—यों दलमलियत निरदई दई कुसुम से
गात । कर धर देखी घरधरो प्रजों न उर ते जात ।—बिहारी
(शब्द०) । २. रौंदना । कुचलना । उ०—रनमत्त रावन
सकल सुभट प्रचड भुजबल दलमले ।—मानस, ६ । ६४ ।
३ विनष्ट कर देना । मार डालना ।

दलमलित—वि० [हिं० दलना + मलना] सताई हुई । कुचली हुई ।
पीड़ित । उ०—प्रजा दुखित दलमलित गए फटि फुटि पठान
दल ।—प्रफवरी०, पृ० ६८ ।

दलराय^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दल + राज, प्रा० राय] दे० 'दलपति' ।
उ०—दावदार निरखि रिसानो दोह दलराय, जैसे गढ़दार
अढ़दार गजराज को ।—भूषण प्र०, पृ० ६ ।

दलवाना—क्रि० सं० [हि० दलना का प्रे० रूप] १. दलने का काम करवाना। मोटा मोटा पिसवाना। जैसे, दाल दलवाना। २. रोंदवाना। ३. नष्ट कराना। ध्वस्त करा देना।

दलवाली—संज्ञा पुं० [सं० दलपात्र] सेनापति। फौज का सरदार।

दलबीटक—संज्ञा पुं० [सं०] कुट्टनीमतम् मे वर्णित कान का एक भाग-पण। एक कर्णसूषण [को०]।

दलवैया—संज्ञा पुं० [हि० दलना + वैया (प्रत्य०)] १. दलनेवाला। २. दलने मलनेवाला। जीतनेवाला।

दलसायसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी। श्वेत तुलसी [को०]।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केमुआ। बंछा। कच्छु।

दलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पीछा जिसके पत्तों में काटे हो। जैसे, नागफनी। २. पत्तों का काटा। ३. काँठा।

दलसूसा—संज्ञा स्त्री० [सं० दलस्रसा या दलस्तसा] दल की थिरा। पत्तों की नस।

दलहन—संज्ञा पुं० [हि० दाल + भ्रम] वह भ्रम जिसकी दाल बनाई जाती है जैसे, चना, भ्रमहर, मूँग, सरद, मसूर इत्यादि।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हि० दाल + हारा (प्रत्य०)] दाल बेचनेवाला। यह जो दाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हि० दालहा] धाला। धालवाल।

दलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दलना] १. चक्की से दाल आदि दरने का काम। उ०—जब तक धाँखें थीं, सिलाई करती रही। जब से धाँखें गई दलाई करती हूँ।—काया०, पृ० ५३६। २. दलने की मजदूरी। दराई।

दलाई लामा—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत के सबसे बड़े लामा या धर्म-गुरु जो वहाँ के सर्वप्रभुतासमस्त शासक भी होते हैं।

दलाढक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली तिल। २. गेरू। ३. नामकेसर। ४. सिरिस। ५. कुद। ६. गजकणी। एक प्रकार का पलाश। ७. गाज। फेन [को०]। ८. साईं। परिक्षा [को०]। ९. तीव्र वायु। भ्रंशवायु। हॉडर [को०]। १०. ग्राममुख्य। गाँव का प्रधान [को०]।

दलाढय—संज्ञा पुं० [सं०] नदी तट का कोचड़। पक [को०]।

दलादली—संज्ञा स्त्री० [सं० दलन का द्विवचन (पुष्टामुष्टि की भाँति)] मिड़त। संघर्ष। होड़। उ०—उसे इस दोनों बलों की दलादली ने दल मलकर समाप्त कर डाला।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३०७।

दलाना—संज्ञा पुं० [हि० दालान] दे० 'दालान'।

दलाना—क्रि० सं० [हि० दलना] दे० 'दलवाना'।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोने का पोछा। २. मक्खे का पोछा। ३. मैनफल का पेड़।

दलाल—संज्ञा पुं० [सं०] लोनिया साग। भ्रमलोनी।

दलारा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का भूमनेवाला बिस्तर जिसका व्यवहार जहाज पर मस्लान्ध लोग करते हैं।

दलास—संज्ञा पुं० [प्र०] [संज्ञा दलाली] १. वह व्यक्ति जो सीधा मोल लेने या बेचने में सहायता दे। बिचवई। मध्यस्थ। २.

स्त्री पुरुष का अनुचित संयोग करानेवाला। कुटना। ३. पाटों की एक जाति।

दलालत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] चिह्न। पता। लक्षण। उ०—दलालत यो सही कुरान मूँ है। कबी इस्लाम के ईमान मूँ है।—दक्खिनी०, पृ० १६३।

दलाली—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दलाल का काम।

क्रि० प्र०—करना।

२. वह द्रव्य जो दलाल को मिलता है। उ०—भक्ति हाट बैठि तू थिर हूँ हरि नग निर्मल लेहि। काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देखि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाहय—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

दलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का टुकड़ा। देना [को०]।

दलिक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ। लकड़ी। [को०]।

दलित—वि० [सं०] १. मीड़ा हुआ। मसला हुआ। मर्दित। २. रोंधा हुआ। कुचला हुआ। ३. खिंचा। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ४. धिन्धु किया हुआ। ५. जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं।

दलिहर—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य हरिद्र] १. दरिद्रता। गरीबी। उ०—आप चाहें तो एक दिन में हमारा दलिहर दूर कर सकते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३७। २. कुड़ा करकठ। गदगी। ३. हरिद्र। गरीब। धनहीन।

दलिद्रा—संज्ञा पुं० [सं० हरिद्र] दे० 'हरिद्र'।

दलिया—संज्ञा पुं० [हि० दलना। तुल० फा० दलीदह] दलकर कई टुकड़े किया हुआ मनाज। जैसे, गेहूँ का दलिया।

दलो—वि० [सं० बलिद्] १. जिसमें दल या मोटाई हो। २. जिसमें पत्ता हो। पत्तेवाला।

दलोपम—संज्ञा पुं० [सं० दिलीप] दे० 'दिलीप'।

दलील—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. तर्क। युक्ति। २. बहस। वाद-विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।

दलेगन्धि—संज्ञा पुं० [सं० दलेगन्धि] सप्तपर्णी वृक्ष।

दलेपंज—संज्ञा पुं० [हि० दलना + पंजा] १. वह घोड़ा जिसकी उमर ढल गई हो। वह घोड़ा जो जवान न रह गया हो। २. ढलती हुई उमर का आदमी।

दलेल—संज्ञा स्त्री० [प्र० दल] सिपाहियों का वह दंड जिसमें हथियार और रुपये आदि उनकी कमर में बाँधकर उन्हें ढहलाते हैं। वह कवायद जो सजा की तरह पर धी बाय। उ०—दिल बले दम बने रहेंगे ही, क्यों न हो दिल दलेल मे मेरा।—चोखे०, पृ० १४।

मुहा०—दलेल बोलना = सजा की तरह पर कवायद देने की आज्ञा देना।

दलै—क्रि० सं० [दे०] मुँह नामो। लामो (हाथीवानों की बोली)।

यौ०—दले छब दले = पानी पीओ (हाथीवानों की बोली) ।
दलैयां—सझा पु० [हि० दलना] १. दलने या पीसनेवाला । २. नाश करनेवाला । मारनेवाला । उ०—मदर बिलद मदगति के चलेया, एक पल में दलेया, पर दल बलखानि के । —मति० प्र०, पु० ३११ ।

दल्भ—सझा पु० [सं०] १. प्रतारण । धोखा । २. पाप । ३. चक्र ।
दल्मि—सझा पु० [सं०] १. इद्र का वज्र । मयानि । २. शिव का एक नाम [को०] ।

दल्लाल—सझा पु० [प्र०] दे० 'दलाल' । उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लाल कहेंगे । —प्रेमघन०, भा० २, पु० २६३ ।

दल्लासा—सझा श्री० [प्र० दल्लालहू] कुटनी । दूती ।

दल्लासी—सझा श्री० [प्र०] दे० 'दलाली' ।

दवंगराई—सझा पु० [सं० दव + मञ्जार] १. वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में होनेवाली झड़ी । उ०—बिहरत हिया करहु पिठ टेका । कीठि दवंगरा मेरवहु एका । —जायसी । (शब्द०) ।
२. वर्षा के प्रारम्भ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना । (बुदेल०) ।

दवरो—सझा श्री० [हि०] दे० 'दँवरी' ।

दव—सझा पु० [सं०] १. वन । जंगल । २. दवाग्नि । वह प्राग जो वन में आपसे आप लग जाती है । दवारि । दावा । उ०—गई सहमि सुनि बचन फोरा । मृगो देखि जनु दव चहुँ ओरा । —तुलसी (शब्द०) । ३. मग्नि । प्राग । उ०—(क) आजु प्रयोध्या जल नहि प्रचवीं ना मुख देखो माई । सुरदास राघव के बिष्टुरे मरौ मवन दव लाई । —सूर (शब्द०) । (ख) राकापति पोडण उगे तारागण समुदाय । सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय । —तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दवदवक = एक तृण । एक घास का नाम । दवदहन = दावाग्नि । वनाग्नि ।

४ दे० 'दवयु' ।

दवथु—सझा पु० [सं०] १. दाह । जगन । २. सताप । परितप । दुःख ।

दवददु—वि० [सं० दव + दग्ध, प्रा० दद्ध] दावाग्नि में जला हुआ । उ०—तहाँ सु ओषतर रिण्ड इक, कस तन प्राग सुरग । दवददो जनु दू म कोइ के कोइ भूत भुषण । —पु० रा०, ६।१७।

दवन^१—वि०, सझा पु० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला । नाश करनेवाला । उ०—प्राणनाथ सु दर भुजानमनि दीनवधु जन प्रारति दवन । —तुलसी (शब्द०) ।

दवन^२—सझा पु० [सं० दमनक] दीना नामक पोषा । उ०—गह्व गुलाब, मजु मोगरे, दवत्रे फूले, वेले मलवेले खिले चयक चमन में । —भुवनेश (शब्द०) ।

दवनपापड़ा—सझा पु० [सं० दमनपपंट] पितपापड़ा ।

दवना^१—सझा पु० [सं० दमनक] दे० 'दीना' ।

दवना^२—क्रि० सं० [सं० दव] जलाना । उ०—ग्रीष्म दवत दवरिया कुंज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरनिघाहि बाढ़ी पीर । —रहीम (शब्द०) ।

दवनी—सझा श्री० [सं० दवन] फसल के सूखे सटनों को बैलों से रीदवाकर दाना झाड़ने का काम । दँवरी । मिठाई । मँढ़ाई ।

दवरियाई—सझा श्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि' । उ०—ग्रीष्म दवत दवरिया कुंज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरनिघाहि बाढ़ी पीर । —रहीम । (शब्द०) ।

दवरी—सझा श्री० [हि० दवारि] प्राग । मग्नि । ज्वाला । ताप । उ०—जो मन की दवरी बुझि पावे, तब घट में परचे कुछ पावे । —दरिया सा०, पु० ३५ ।

दवाँ रिउ—सझा पु० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल' । उ०—प्रतिमि पूज्य प्रियतम पुराणि के । कामद मन दारिद दवारि के । —मानस०, १।३२ ।

दवा^१—सझा श्री० [प्रा०] १. यह वस्तु जिससे कोई रोग या व्याधि दूर हो । मोपथ । मोसद । उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार । —रसनिधि (शब्द०) ।

यौ०—दवाधाना । दवादारु । दवादर्पन । दवादरमन ।

मुहा०—दवा को न मिलना = योड़ा सा भी न मिलना । मयाप्य होना । दुखें होना । दवा देना = दवा पिलाना ।

२ रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,—
मच्छे बेच की दवा करो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे,—शक की कोई दवा नहीं । ४ अवरोध या प्रतिकार का उपाय । ठीक रखने की युक्ति । दुस्त करने की तद्विध । जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो चार सखी छोटी मुना दो ।

दवा^२—सझा श्री० [सं० दव] १. वनाग्नि । वन में लगनेवाली प्राग । उ०—कानन मूधर वारि बयारि महा बिष म्याधि दवा भरि घेरे । —तुलसी (शब्द०) । २. मग्नि । प्राग । उ०—(क) चवथो दवा सो तप्त दवा दुति भूरिधवा भर । —गोपाल (शब्द०) । (ख) तथा सो तपत धरामंडल मसटल मोर भारतव मडल दवा सो होत मोर तें । —वेनी (शब्द०) ।

दवाई^१—सझा श्री० [प्रा० दवा + हि० ई (प्रत्यय)] दे० 'दवा' ।

दवाईखाना—सझा पु० [हि० दवाई + प्रा० खाना] दे० 'दवाखाना' ।

दवाखाना—सझा पु० [प्रा०] १. यह जगह जहाँ दवा बिकती हो । २. मोपधाखण । चिकित्सालय ।

दवाग्नि^१—सझा श्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' । उ०—कहा दवाग्नि के पिछे, कहा धरे गिरि पीर । —मति० प्र०, पु० ३४७ ।

दवाग्नि^२—सझा श्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि । दावानल ।

दवाग्नि^३—सझा श्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' ।

दवाग्नि—सझा श्री० [सं०] वन में लगनेवाली प्राग । दावानल ।

दवात^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दवात] लिखने की स्थाही रखने का बरतन ।
मसिपात्र । मसिदानो ।

दवात^२—संज्ञा पुं० [प्रा० दवा] शीघ्र । उ०—रचिक साहि न
भावे, कहै कहानी जेत । परम दवात कहै जेत, दुखद होइ तेहि
तेत ।—इद्रा०, पृ० १३ ।

दवादर्पण—संज्ञा पुं० [प्रा० दवा + सं० दर्पण] शीघ्र । चिकित्सा ।
उ०—बिना दवा दर्पण के गृहनी स्वरग चली भाखें आतीं भर ।
—ग्राम्या, पृ० २५ ।

दवादस^१—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश' । उ०—गंधमादन प्राद
दवादस गाजिय कीस, समाजिय शीतरा ।—रघु० क०,
पृ० १५८ ।

दवान^१—संज्ञा पुं० [देश० ? या डि०] एक प्रकार का मत्त । एक
प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार । उ०—(क) सज्जे ह्यद
जे भरे सान, गज्जे सुमट्ट ले ले दवान ।—सुजान०, पृ० १७ ।
(ख) चले कवान वान भासमान भू गरज्जियो । घवान दै
दवान की कृपान हीय सज्जियो ।—सुजान०, पृ० ३० ।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि ।

दवाम^१—क्रि० वि० [प्र०] नित्य । हमेशा । सदा । उ०—एक शते
उस सधि में यह भी थी कि भासी का राज्य रामचंद्र राव के
कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे वारिस और सतान हों,
चाहे गोत्रज हों अथवा गोद लिए हुए हों ।—भासी०, पृ० १० ।

दवाम^२—संज्ञा पुं० [प्र०] नित्यता । स्थायित्व । हमेशगी ।

दवामी—वि० [प्र०] जो धिरकाल तक के लिये हो । स्थायी । जो
सदा बना रहे । जैसे, दवामी बंदोबस्त ।

दवामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [प्रा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें
सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय ।
भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस
प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न
हो सके ।

दवार^१—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—पधरावियो सुम
प्रात । छल हूँत मुरधर छात । दल कमेंध साह दवार । मन
रहे साम उधार ।—रा० क०, पृ० ३० ।

दवार^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दवारि' ।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हि० दवाग्नि] धनाग्नि । दवानल ।
उ०—हाय न कोऊ तलास करे ये पलासन कीने दवारि
सगाई ।—नरेश (शब्द०) ।

दवाला^१—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० दाला (=दो चरणों-
वाला)] छद । उ०—विषम सम विषम सम दवाले वेद तुक,
ठीक गुर भंत तुक वहस ठाला ।—रघु० क०, पृ० ५० ।

दव्वार^१—संज्ञा पुं० [सं० दवाग्नि, हि० दवारि] [प्राग की लपट]
प्राग का पुंज । उ०—प्रागे प्रणि का दव्वार । तपती भाय
ताता सार ।—राम० भर्म०, पृ० १६८ ।

दश—वि० [सं०] दे० 'दस' ।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ वा
सिर थे) ।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के सहारक, श्री
रामचंद्र । उ०—प्राजु विराजत राज है दशकंठजहा को ।—
तुलसी (शब्द०) ।

दशकंठजित्—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले,
श्रीराम ।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री
रामचंद्र ।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हि० कंध] रावण ।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं० दशकंधर] रावण ।

दशक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस का समूह । दस की डेरी । २ दस
वर्षों का समूह । दस साल का निर्धारित काल ।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक
के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुसवन,
सीमतोन्नयन, जातकरण, निष्कामण, नामकरण, धनप्राशन,
घृडाकरण, उपनयन और विवाह ।

दशकुमारचरित—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दशका का लिखा
एक गद्यात्मक काव्य ।

दशकुलवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुल
जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीप,
बरगद, गूलर, भांवला और हमली ।

दशकोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खटताल के ग्यारह में
(संगीत) ।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार दूध ८
दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भैंस, भैंस, घोड़ी, स्त्री, ९
हिरनी और गवही ।

दशगाव—संज्ञा [सं० दशगाव] दे० 'दशगाव' ।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर के दस प्रधान अंग । २ मृतक
सबको एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता
रहता है ।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है । पुराणों में
लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर
बनता है और दशवें दिन पूरा हो जाता है । जैसे, पहले
पिंड से सिर, दूसरे से भ्रू, कान, नाक इत्यादि ।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का
अधिपति या शासक बनाया गया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का
एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा
और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति
नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के
ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है ।

दशग्रामिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [स्त्री०] ।

दशग्रामी—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिक] दे० 'दशग्रामपति' [स्त्री०] ।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत ।

यौ०—दले छब दले = पानी पीसो (हाथीवानों की बोली) ।
 दलैया^१—सखा पुं० [हि० दलना] १. दलने या पीसनेवाला । २. नाश करनेवाला । मारनेवाला । उ०—मदर बिलद मंदगति के चलेया, एक पल में दलेया, पर दल बलखानि के । —मति० प्र०, पु० ३११ ।
 दल्भ—सखा पुं० [सं०] १. प्रतारण । धोखा । २. पाप । ३. चक्र ।
 दल्मि—सखा पुं० [सं०] १. इद्र का वज्र । अशनि । २. शिव का एक नाम [को०] ।
 दल्लाल—सखा पुं० [प्र०] दे० 'दलाल' । उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दलाल कहेंगे । —प्रेमघन०, भा० २, पु० २६३ ।
 दल्लाखा—सखा स्त्री० [प्र० दल्लालह्] कुटनी । हूती ।
 दल्लाली—सखा स्त्री० [प्र०] दे० 'दलाली' ।
 दवंगरा^१—सखा पुं० [सं० दव + अङ्गार] १. वर्षा ऋतु के प्रारंभ में होनेवाली ऋतु । उ०—बिहरत हिया करहु पिउ टेका । पीठि दवंगरा मेरवहु एका । —जायसी । (शब्द०) । २. वर्षा के प्रारंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना । (दु. देल०) ।
 दव्वरी—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'दवरी' ।
 दव—सखा पुं० [सं०] १. वन । जंगल । २. दवाग्नि । वह प्राग जो वन में आपसे आप लग जाती है । दवारि । दावा । उ०—गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि जनु दव चहुँ भोरा । —तुलसी (शब्द०) । ३. अग्नि । प्राग । उ०—(क) प्राजु अयोध्या जल नहिँ अचवों ना मुख देखों माई । सुरदास राघव के बिछुरे मरों भवन दव लाई । —सूर (शब्द०) । (ख) राकापति षोडश उर्गे तारागण समुदाय । सकल गिरिन दव लाइए रवि बिनु राति न जाय । —तुलसी (शब्द०) ।
 यौ०—दववधक = एक तृण । एक घास का नाम । दवदहन = दावाग्नि । वनाग्नि ।
 ४. दे० 'दवयु' ।
 दवथु—सखा पुं० [सं०] १. दाह । जलन । २. सताप । पग्निताप । दुःख ।
 दवदद^१—वि० [सं० दव + दध, प्रा० दद्ध] दावाग्नि में जला हुआ । उ०—तहाँ सु अँवतर रिख इक, ऋष तन अग सुरग । दवददो जनु हु म कोइ के कोइ भूत भुअग । —पु० रा०, ६।१७।
 दवन^१—वि०, सखा पुं० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला । नाश करनेवाला । उ०—प्राणनाथ सु दर मुअनमनि दीनवधु जन भारति दवन । —तुलसी (शब्द०) ।
 दवन^२—सखा पुं० [सं० दमनक] दीना नामक पौधा । उ०—गहब गुलाब, मजु मोगरे, दवन फूले, वेले अलवेले खिले चयक चमन में । —भुवनेश (शब्द०) ।
 दवनपापड़ा—सखा पुं० [सं० दमनपपट] पितपापड़ा ।
 दवना^१—सखा पुं० [सं० दमनक] दे० 'दीना' ।

दवना^२—क्रि० सं० [सं० दव] जलाना । उ०—ग्रीष्म दवत दवरिया कुज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरुनिमहि बाढ़ी पीर । —रहीम (शब्द०) ।
 दवनी—सखा स्त्री० [सं० दवन] फसल के सूखे डठलों की पैलों से रौंदाकर दाना झाड़ने का काम । दवरी । मिसाई । मँड़ाई ।
 दवरिया^१—सखा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि' । उ०—ग्रीष्म दवत दवरिया कुज कुटीर । तिमि तिमि तकत तरुनिमहि बाढ़ी पीर । —रहीम । (शब्द०) ।
 दवरी—सखा स्त्री० [हि० दवारि] प्राग । अग्नि । ज्वाला । ताप । उ०—जो मन की दवरी बुझि आवे, तब घट में परचे कुछ पावे । —दरिया सा०, पु० ३५ ।
 दवारी^१—सखा पुं० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल' । उ०—प्रतिधि पूज्य प्रियतम पुराणि के । कामद घन दारिद दवारी के । —मानस०, १।३२ ।
 दवा^१—सखा स्त्री० [का०] १. वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्यथा दूर हो । औषध । ओषध । उ०—दरद दवा दोनों रहैं पीतम पास तयार । —रसनिधि (शब्द०) ।
 यौ०—दवाखाना । दवादारु । दवादपन । दवादरमन ।
 मुहा०—दवा को न मिलना = चोड़ा सा भी न मिलना । अप्राप्य होना । दुर्लभ होना । दवा देना = दवा पिलाना ।
 २. रोग दूर करने का उपाय । उपचार । चिकित्सा । जैसे,—अच्छे वैद्य की दवा करो ।
 क्रि० प्र०—करना । —होना ।
 ३. दूर करने की युक्ति । मिटाने का उपाय । जैसे,—शक की कोई दवा नहीं । ४. अपरोध या प्रतिकार का उपाय । ठीक रखने की युक्ति । दुष्ट करने की तदवीर । जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो चार खरी खोटी सुना दो ।
 दवा^२—सखा स्त्री० [सं० दव] १. वनाग्नि । वन में लगनेवाली प्राग । उ०—कानन भूधर वारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि धरे । —तुलसी (शब्द०) । २. अग्नि । प्राग । उ०—(क) चलो दवा सो तम दवा दुति भूरिश्रवा भर । —गोपाल (शब्द०) । (ख) तवा सो तपत घरामंडल अलखल और मारत मंडल दवा सो होत मोर तें । —वेनी (शब्द०) ।
 दवाई^१—सखा स्त्री० [का० दवा + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'दवा' ।
 दवाईखाना—सखा पुं० [हि० दवाई + का० खाना] दे० 'दवाखाना' ।
 दवाखाना—सखा पुं० [का०] १. वह जगह जहाँ दवा बिकती हो । २. औषधालय । चिकित्सालय ।
 दवाग्नि^१—सखा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' । उ०—कहा दवाग्नि के लिए, कहा धरें गिरि घोर । —मति० प्र०, पु० ३४७ ।
 दवाग्नि^२—सखा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि । दावानल ।
 दवाग्नि^३—सखा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि' ।
 दवाग्नि—सखा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली प्राग । दावानल ।

दवात^१—सञ्ज्ञा श्री० [प्र० दवात] लिखने की स्याही रखने का बरतन ।
मसिपात्र । मसिदानी ।

दवात^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० दवा] शोध । उ०—रक्षिक ताहि न
भावे, कहैं कहानी जेत । परम दवात कहै जेत, दुखद होइ तेहि
तेत ।—इशा०, पु० १३ ।

दवादर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [फा० दवा + सं० दर्पण] शोध । चिकित्सा ।
उ०—बिना दवा दर्पण के गृहनी स्वरग चली भाँखें आती भर ।
—ग्राम्या, पु० २५ ।

दवादस^{१०}—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश' । उ०—गंधमादन माद
दवादस गाजिय कीस, समाजिय श्रोतरा ।—रघु० ६०,
पु० १५८ ।

दवान^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [देश० ? या डि०] एक प्रकार का मत्स्य । एक
प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार । उ०—(क) सज्जे ह्यद
जे भरे सान, गज्जे सुमट्ट ले ले दवान ।—सुजान०, पु० १७ ।
(ख) चले कवान वान भासमान भू गरजियो । धवान दे
दवान की कृपान हीय सज्जियो ।—सुजान०, पु० ३० ।

दवानल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि ।

दवाम^१—क्रि० वि० [प्र०] नित्य । हमेशा । सदा । उ०—एक शर्त
उस सधि में यह भी थी कि भाँसी का राज्य रामचंद्र राव के
कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे वारिस और सतान हों,
चाहे गोत्रज हों प्रथवा गोद लिए हुए हों ।—भाँसी०, पु० १० ।

दवाम^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] नित्यता । स्थायित्व । हमेशगी ।

दवामी—वि० [प्र०] जो बिरकाल तक के लिये हो । स्थायी । जो
सदा बना रहे । जैसे, दवामी बंदोबस्त ।

दवामी बंदोबस्त—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें
सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय ।
भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस
प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न
हो सके ।

दवार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—पथरावियो सुभ
प्रात । छल हूँत मुरघर छात । दल कर्मध साह दवार । भन
रहे साम उबार ।—रा० ६०, पु० ३० ।

दवार^२—सञ्ज्ञा श्री० [हि०] दे० 'दवारि' ।

दवारि—सञ्ज्ञा श्री० [सं० दवाग्नि, हि० दवागि] दवाग्नि । दवानल ।
उ०—हाय न कोऊ तलास करे ये पलासन कीने दवारि
लगई ।—नरेश (शब्द०) ।

दवाझा^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० डाला (= दो चरणों-
वाला)] छद्म । उ०—विषम सभ विषम सम दवाले वेद तुक,
ठीक गुर भत तुक वहस ठाला ।—रघु० ६०, पु० ५० ।

दव्वार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दवाग्नि, हि० दवारि] [प्राग की लपट]
प्राग का पुंज । उ०—प्रागे धनि का दव्वार । तपती भाय
ताता सार ।—राम० धर्म०, पु० १६८ ।

दश—वि० [सं०] दे० 'दस' ।

दशकंठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ का
सिर था) ।

दशकंठजहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के सहारक, श्री
रामचंद्र । उ०—भ्राजु विराजत राज है दशकंठजहा को ।—
तुलसी (शब्द०) ।

दशकंठजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले,
श्रीराम ।

दशकंठारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री
रामचंद्र ।

दशकंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दश + स्कन्ध, हि० कंध] रावण ।

दशकंधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकंधर] रावण ।

दशरू—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दस का समूह । दस की डेरी । २ दस
वर्षों का समूह । दस साल का निर्धारित काल ।

दशकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक
के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुसवन,
सोमतोन्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, पक्षप्राशन,
ब्रूडाकरण, उपनयन और विवाह ।

दशकुमारचरित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दक्ष का लिखा
एक गद्यात्मक काव्य ।

दशकुलवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुल
जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीप
बरगद, गूलर, भाँवला और इमली ।

दशकोपी—सञ्ज्ञा श्री० [सं०] चक्रताल के ग्यारह में
(सगीत) ।

दशक्षीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन ८
दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भैंस, भैंस, घोड़ी, स्त्री, ६
हिरनी और गदहो ।

दशगाव—सञ्ज्ञा [सं० दशगात्र] दे० 'दशगात्र' ।

दशगात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर के दस प्रधान अंग । २ मृतक
सबको एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता
रहता है ।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है । पुराणों में
लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर
बनता है और दशवें दिन पूरा हो जाता है । जैसे, पहले
पिंड से सिर, दूसरे से माँख, कान, नाक इत्यादि ।

दशग्रामपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का
प्रधिपति या शासक बनाया गया हो ।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का
एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा
और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का प्रधिपति
नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के
ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है ।

दशग्रामिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

दशग्रामी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०] ।

दशग्रीव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशति—सञ्ज्ञा श्री० [सं०] सी । शत ।

दशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस छिद्र—२ कान, २ नासिका, २ मुख, १ गुद, १ लिंग और १ ब्रह्मांड ।

दशधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति में निर्दिष्ट धर्म के दस लक्षण जो मानव मात्र के लिये करणीय हैं ।

दशधा^१—वि० [सं०] १. दस प्रकार का । २. दस के स्थान का । दशम । दसवाँ । उ०—विश्वमगल प्राधार सर्वानंद दशधा के प्राधार ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४११ ।

दशधा^२—क्रि० वि० दस प्रकार ।

दशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाँत । २ दाँत से काटना । दाँतो से काटने की क्रिया । ३ कवच । वस्त्र । ४ शिखर । चोटो ।

यौ०—दशनच्छद । दशनवासस् = होंठ । दशनपद = दस क्षत का स्थान ग्रथवा चिह्न । दशनबीज ।

दशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होठ । मोष्ठ ।

दशनबीज—संज्ञा पुं० [सं०] मनार ।

दशानांशु—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की चमक । दाँतो की दमक [को०] ।

दशानाट्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनिया शाक ।

दशनाम—संज्ञा पुं० [सं०] सन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—१ तीर्थ, २ आश्रम, ३ वन, ४ श्ररण्य, ५ गिरि, ६ पर्वत, ७ सागर, ८ सरस्वती, ९ भारती और १० पुरी ।

दशनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दशनाम] सन्यासियों का एक वर्ग जो भद्रतवादी शंकराचार्य के शिष्यों से चला है ।

विशेष—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामलक, मंडन और तोटक । इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम, हस्तामलक के दो शिष्य—वन और श्ररण्य, मंडन के तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर । इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी । इन्हीं दस शिष्यों के नाम से सन्यासियों के दस भेद चले । शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे, जिनमें इन दस प्रशिष्यों की शिष्यपरंपरा चली जाती है । पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्य परंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शारदा मठ के अंतर्गत, वन और श्ररण्य गोवर्धन मठ के अंतर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं । प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है । यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निगुण उपासक प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें से बहुतेरे शैवमत की दीक्षा लेते हैं ।

दशनोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रष्ट । मोष्ठ । २. भ्रष्टचुंबन । ३. निश्वास । श्वास । ४. दाँतो द्वारा स्पृष्ट कोई पदार्थ [को०] ।

दशपंचतपा—संज्ञा पुं० [पुं० दशपञ्चतपस] इन्द्रियों का निग्रह करते हुए पचास तपस्या करनेवाला तपस्वी [को०] ।

दशप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशप्राप्तपति' ।

दशपारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वेती मोपा । २. मालवे का एक प्राचीन

विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे । इसका नाम मेघदूत में आया है ।

दशपेय—संज्ञा पुं० [सं०] भाषवलायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक प्रकार का यज्ञ ।

दशवल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव । -

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे, जिनके नाम ये हैं—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान ।

दशवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव । पंचमुख [को०] ।

दशभुजा—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा का एक नाम ।

दशभूमिग—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव ।

दशभूमोश—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दशम—वि० [सं०] दसवाँ ।

यौ०—दशमदशा । दशमद्वार । दशमभाव । दशमलव ।

दशमदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसरूपरूप में वियोगी की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है ।

दशमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मद्वार । उ०—दशमद्वार से प्राण को त्याग श्री रामधाम को प्राप्त हुए ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४५५ ।

दशमभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्मलग्नांश । कुंडली में लग्न से दसवाँ घर ।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है ।

दशमलव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके हर में दस या उसका कोई चात हो (गणित) ।

दशमहाविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महाविद्या' [को०] ।

दशमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दसवाँ हिस्सा । दसवाँ भाग ।

दशमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद । एक प्रदेश का प्राचीन नाम ।

दशमालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश ।

दशमास्य—वि० [सं०] माता के गर्भ में दस महीने तक रहने-वाला [को०] ।

दशमिकभगनांश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भगनांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है । दशमलव ।

दशमी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चाद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि । २. विमुक्तावस्था । उ०—दशमी रानी है दिल दायक । सब रानी की सो है नायक ।—कबीर सा०, पृ० ५५० । ३. मरणावस्था ।

दशमी^२—वि० [सं० दशमिन्] [वि० स्त्री० दशमिनी] बहुत बूढ़ा । बहुत पुराना । शतायु की अवस्थावाला ।

दशमुख^१—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

बी०—दशमुखांतक = राम ।

दशमुख^२—संज्ञा पुं० [सं० दस + मुख] १. दसों दिशाएँ । २. त्रिदेव (ब्रह्मा के ४ मुख; विष्णु का १ भोर महेश के ५ मुख) ।
सं०—दशमुख मुख जोवें गजमुख मुख को ।—राम चं०, पृ० १ ।

दशमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशमूत्रक' ।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम जाता है—१. हाथी, २. भैंस, ३. ऊँट, ४. गाय, ५. बकरा, ६. मेढा, ७. घोड़ा, ८. गदहा, ९. पुरुष, भोर १०. ज्ञी ।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम आती है ।

विशेष—सरिवन (घासपर्णी), पिठवन (पुश्पिपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, भोर गोखरु ये लघुमूल भोर वेल, सोना-पाठा (श्योनाक), गंधारो, गनियारी भोर पाठा वृद्धमूल कहलाते हैं । इन दोनों के योग को दशमूल कहते हैं । दशमूल काष्ठ, श्वास भोर सन्निपात ज्वर में उपकारी माना जाता है ।

दशमूलीसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दशमूलीयसङ्ग्रह] वे दस चीजें जो प्राण से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिए ।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय से निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनिमम के द्वारा बाध्य था,—पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूप, (७) अक्रुण, (८) छूँटा आदि छत्ताङ्गने का औजार, (९) मशक भोर (१०) हवादि । इन दस चीजों का नाम दशमूलीसंग्रह था । जो लोग इसके रखने में प्रमाद करते थे उनकी १४ पण जुर्माना देना पड़ता था ।

दशमेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मकुंडली में दशम भाव का अधिपति (ज्योतिष) । २. सिख संप्रदाय के दसवें गुरु गोविंदसिंह ।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं० दशयोगभङ्ग] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवेध जिसमें विवाह आदि शुभकर्म नहीं किए जाते ।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य हो भोर जिस नक्षत्र में कर्म होने-वाला हो, दोनों नक्षत्रों के जो स्थान गणनाक्रम में हो उन्हें जोड़ डाले । यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आवे तो दशयोगभंग होगा ।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे । ये देवताओं की भोर से कई बार असुरों से लड़े थे भोर उन्हें परास्त किया था ।

विशेष—इस शब्द के आगे पुत्र वाचक शब्द लगने से 'राम' भयं होता है ।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

दशरथिमशत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । अशुमाली [को०] ।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस रातें । २. एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था ।

दशरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत में नाट्यशास्त्र पर आचार्य घनशंकर का लिखा हुआ लक्षणप्रथ ।

दशरूपभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु जिन्होंने दस अवतार धारण किया था [को०] ।

दशवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दशवक्त्र] दे० 'दशमुख' ।

दशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख ।

दशवाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशवाजिन्] चंद्रमा ।

दशवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम ।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण ।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रावण । २. चलाए हुए भस्त्रों से निष्फल करने का एक भस्त्र ।

दशशीश^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] दे० 'दशशीर्ष' ।

दशसीस^(२)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] रावण । दशमुख ।

दशस्यंदन^(३)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्यन्दन] दशरथ नामक राजा ।

दशहरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं ।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं । इसी से यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है । कहते हैं, इस तिथि को गंगास्नान करने से दसों प्रकार के भोर जन्म जन्मांतर के पाप दूर होते हैं । यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह भोर भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है । दशहरे को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं भोर सोने चांदी के जलजतु बनाकर भी गंगा में डालते हैं ।

२. विजयादशमी ।

दशहरा^२—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा, जो दस प्रकार के पापों का हरण करती है [को०] ।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है ।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है । एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुलु, चंदन, जटामासी, खोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर भोर कस्तूरी । दूसरी रीति के अनुसार मधु, नागरमोचा, धी, चंदन, गुग्गुलु, अमर, शिलाजतु, सलई का धूप, गुड़ भोर पीली सरसो । तीसरी रीति गुग्गुलु, गंधक, चंदन, जटामासी, सतावधि, सज्जी, खस, धी, कपूर भोर कस्तूरी ।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गक्वाथ] दस औषधियों का काढ़ा ।

विशेष—इस काढ़े में निम्नांकित १० औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं—(१) भट्टहा, (२) गुर्च, (३) पित्तपापड़ा, (४) चिरामता, (५) नीम की छाल, (६) जलभग, (७) हठ, (८) वहेड़ा, (९) घाबिला, भोर (१०) कुलथी । इनके क्वाथ में मधु डालकर पिलाने से अम्लपित्त नष्ट होता है ।

दशांगुल^१—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा । डंगरा ।

दशांगुल^२—वि० जो लंबाई में दस अंगुल का हो। दस अंगुल के परि-
माणवाला [को०]।

दशांत—संज्ञा पु० [सं० दशान्त] बुढ़ापा।

दशांतर—संज्ञा पु० [सं० दशान्तरा] शरीर अथवा जीव की विभिन्न
दशा [को०]।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अवस्था। स्थिति या प्रकार। हालत।
जैसे,—(क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है। (ख) पहले
मैंने इस मकान की अच्छी दशा में देखा था। २ मनुष्य के
जीवन की अवस्था।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—(१) गर्भवास,
(२) जन्म, (३) बाल्य, (४) कोमार, (५) योग्य, (६)
यौवन, (७) स्थाविर्य, (८) जरा, (९) प्राणरोध और
(१०) नाश।

३. साहित्य में रस के अतर्गत विरही की अवस्था।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—(१) अभिलाष, (२) चिंता, (३)
स्मरण, (४) गुणकथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७)
उन्माद, (८) व्याधि, (९) जडता और (१०) मरण।

४ फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह
का नियत भोगकाल।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष
की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली
रीति के अनुसार निर्धारित दशा विशोत्तरी और दूसरी के अनु-
निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काल में प्रत्येक
ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत
है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष,
चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष,
शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, राहु की १२ वर्ष
और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है। दशा जन्मकाल के
नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। जैसे, यदि जन्म कुतिका,
रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य की दशा होगी,
अर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य या भरणी नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा
की दशा, मघा, पूर्वाषाढागुनी या उत्तराषाढागुनी में होगा तो
मंगल की दशा, हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो
बुध की दशा, अनुराधा, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो
शनि की दशा; पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् या श्रवण
नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की दशा, धनिष्ठा, शतभिषा या
पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद,
रेवती, श्रवणी या अश्लेषा नक्षत्र होगा तो शुक्र की दशा
होगी। प्रत्येक ग्रह की दशा का फल अलग अलग निश्चित
है—जैसे, सूर्य की दशा में चित्त को उद्वेग, धनहानि, वेलण,
विदेशगमन, बचन, राजपीडा इत्यादि। चंद्रमा की दशा में
ऐश्वर्य, राज्यसम्मान, रत्नवाहन की प्राप्ति इत्यादि।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल या दशा के अतर्गत भी एक
एक ग्रह का भोगकाल नियत है जिसे अतर्दशा कहते हैं।
रवि की दशा को सीजिए जो ६ वर्ष की है। शनि इस
६ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा

की १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने
२० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति
की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की
१ वर्ष २ महीने की है। इन अतर्दशाओं के फल भी अलग
अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अतर्दशा
का फल राजदण्ड, मनस्ताप, विदेशगमन इत्यादि, सूर्य की दशा
में चंद्र की अतर्दशा का फल शत्रुनाश, रोगघाति, वित्ताभाव
इत्यादि।

ऊपर जो हिसाब बनलाया गया है वह नाक्षत्रिकी दशा का है।
इसके अतिरिक्त योगिनी, वापिकी, साग्निकी, मुकुंदा, पताकी,
हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि
फलियुग में नाक्षत्रिकी दशा ही प्रधान है।

५ दीप की बत्ती ६ चित्ता। ७. कपड़े का छोर। वस्त्रांत।

दशाकर्ष—संज्ञा पु० [सं०] १ कपड़े का छोर या प्रबल। २.
दीपक। चिराग।

दशाकर्षी—संज्ञा पु० [सं० दशाकर्षिन्] दे० 'दशाकर्ष' [को०]।

दशाक्षर—संज्ञा पु० [सं०] एक वर्णिक वृत्त [को०]।

दशाधिपति—संज्ञा पु० [सं०] १. फलित ज्योतिष में दशाओं के
अधिपति ग्रह। २ दस सनिकों या सिपाहियों का प्रमुख।
जमादार। (महामारत)।

दशानन—संज्ञा पु० [सं०] रावण।

दशानिक—संज्ञा पु० [सं०] जमालपोटा।

दशापवित्र—संज्ञा पु० [सं०] आढ़ प्रादि में दान किए जानेवाले
वस्त्रखंड।

दशापाक—संज्ञा पु० [सं०] भाग्य का परिपाक। भाग्यफल का पूर्ण
होना [को०]।

दशामय—संज्ञा पु० [सं०] खट।

दशारुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैशिका नाम की लता जो मांसवा में
होती है और जिससे कपड़े रंगे जाते हैं।

दशार्ण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु पर्यंत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित
उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर घसान नदी बहती है।

विशेष—मेघवृत्त से पता चलता है कि विदिशा (प्रायुनिक
बिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश
का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है।

२ उक्त देश का निवासी या राजा। ३ तत्र का एक दशाक्षर
मंत्र। ३ जैन पुराण के अनुसार एक राजा।

विशेष—इस राजा ने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर
अभिमान किया था। तीर्थंकर के प्रताप से उसे वहाँ
१६,७७,७२,१६,००० इन्द्र और १३,३७,०५,७२,५०,००,००,
००० इन्द्राणियों दिखाई पड़ी और उसका गर्व भूल ही गया।

दशार्ण्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] घसान नदी जो बिष्णुचल से निकल-
कर बुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई कालपी के पास
जमुना में मिल जाती है।

दशार्द्ध, दशार्ध—संज्ञा पु० [सं०] १ दस का आधा भाग। २.
बुद्धदेव। जो दसबलो से युक्त हैं।

दशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोट्ट्वंशीय घृष्ट राजा का पुत्र । २ राजा वृष्णि का पोत्र । ३. वृष्णिवंशीय पुरुष । ४. वृष्णि-वंशीयों का अधिकृत देश ।

दशावतार—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् विष्णु के दश अवतार जो इस प्रकार हैं,—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) वाराह, (४) वृषिह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) राम, (८) कृष्ण (९) बुद्ध घोर (१०) कल्कि ।

दशावरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सम्मो की शासक सभा । दस पर्वों की राजसभा ।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है । गौतम ने दशावरा के दस सम्मों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के घोर तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों । बौद्धायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थान पर मीमांसक, धर्मपाठक घोर ज्योतिषी रखे हैं ।

दशाविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दश 'दशापाक' ।

दशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] चन्द्रमा जिसके रथ में दस घोड़े लगते हैं ।

दशाश्वमेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी के अंतर्गत एक तीर्थ ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे । पहले यह तीर्थ रुद्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था । ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा । ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधेवर नामक शिवलिंग भी स्थापित किया था । जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके उक्त शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं ।

२ प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास वह घाट या तीर्थस्थान जहाँ यानी जल भरते हैं । लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल विगड़ता नहीं ।

दशास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख । रावण ।

दशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिन । २. मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन ।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है । पहले दिन श्मशान कृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग, और आदि घोर तीसरे दिन सपिंडीकरण । स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिनमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक भ्रंग की पूति के लिये दिया जाता है । पर ग्यारहवें दिन के कृत्य में भ्रम भी द्वितीयाह्निककल्प का पाठ होता है ।

दशी—संज्ञा पुं० [सं० दशिन] दस गाँवों का शासक । उ०—दश ग्रामों के शासक को 'दशी' कहा जाता था ।—भाटि०, पृ० १११ ।

दशैघन—संज्ञा पुं० [सं० दशा (= दीप की वत्ती) + इन्धन] प्रदीप । दीपक । दीया [को०] ।

दशेर—संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक जीव । हिंस्र प्राणी [को०] ।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मरु प्रदेश । मरु देश । २ मरु देश का निवासी । ३ उष्ट्र । ऊँट । युवा ऊँट । ४ गर्दभ । गदहा [को०] ।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक' [को०] ।

दशेश—संज्ञा पुं० [सं०] दस गाँवों का अधिपति । दशी [को०] ।

दशत—संज्ञा पुं० [फा०] जंगल । बियाबान । वन । उ०—फिरते ही फिरते दशत दिवाने किधर गए । वे भागिनी के हाथ जमाने किधर गए ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १५ ।

दक्षिण^७—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिणा^७—संज्ञा, स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—पुन विप्रहि दक्षिणा करि दोन्हा । देवत ताहि नेन हरि लीन्हा—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१२ ।

दष्ट—वि० [सं०] जिसे किसी ने उसा हो या काट लिया हो । काटा हुआ । उ०—चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ धन । दष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र शत तनु पान ।—गीतिका, पृ० ५८ ।

दसँन^७—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन' । उ०—परमानंद ठगी नंदनदन, दसँन, कुंद मुसकावत ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३५ ।

दस^१—वि० [सं० दश] १ पाँच का दूना । जो गिनती में नौ से एक अधिक हो । २. कई । बहुत से । जैसे,—(क) दस प्रादमी जो कहें उसे मानना चाहिए । (ख) वहाँ दस तरह की चीजें देखने को मिलेंगी ।

दस^२—संज्ञा पुं० १ पाँच की दूनी सख्या । २ उक्त सख्या का सूचक श्रक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१० ।

दस^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दश, प्रा० दस्, राज० दस] घोर । तरफ । दिशा । उ०—घाज घरा दस कनम्यउ, काली धड़ सखराई । उवा घण देसो भोलवा, कर कर लाँवी बाँह ।—ढोला०, पृ० २७१ ।

दसई^३—वि० [सं० दशम] दशम । दसवाँ । दस की सख्यावाला । उ०—दसई द्वार न खोलत कोई । तब खोले जब मरमी होई ।—इंद्रा०, पृ० ४६ ।

दसकंध^७—संज्ञा पुं० [सं० दशस्कन्ध, हिं० दशकंध] रावण । उ०—मसकरूप दसकंधपुर निसि कपि घर घर देखि ।—तुलसी०, ग्रं० पृ० ८६ ।

यौ०—दसकंधपुर = संका ।

दसखत^३—संज्ञा पुं० [फा० दस्तखत] दे० 'दस्तखत' ।

दसगुना—वि० [सं० दशगुणित] किसी संख्या या परिमाण का दस प्रतिशत अधिक । उ०—हीत दसगुनो भ्रंश है दिए एक ज्यो बिदु । दिए दिठोना यो बढ़ी भानन आमा इदु ।—मति० ग्रं०, पृ० ४५३ ।

दसगून^७—वि० [हिं० दसगुना] दे० 'दसगुना' । उ०—राम नाम को श्रक है, सब साधन है सुन । भ्रंश गए कछु हाथ नहि श्रक रहे दसगु ।—सतवाणी०, पृ० ७१ ।

दसठौन—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्थान] घच्चा जनने के समय की एक रीति, जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन नहाकर सोरी के घर से दूसरे घर में जाती है ।

दसतार्ता—संज्ञा पुं० [फा० दस्तानह] हाथ के पंजों की रक्षा के लिये बना हुआ लोह कवच । उ०—माये टोप सनाह तन, कर

दसता रिन काज । मावड़िया सोभे नहीँ, सूर हँवो साब ।—
बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० २० ।

दसन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन' । उ०—जो चित चटै
नाममहिमा जिन गुनगन पावन पन के । तो तुलसिहि तारिही
बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के ।—तुलसी प्र०, पृ० ५०७ ।

यौ०—दसनबसन = दातों का वस्त्र अर्थात् छोठ घोर भ्रमर ।
उ०—नैननि के तारनि में राखी प्यारे पूतरी के, मुरली ज्यों
लाइ राखी दसनबसन में ।—केशव० प्र०, भा० १, पृ० २८ ।

दसन^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी पंजाब,
सिंध, राजपूताने और मेसूर में पाई जाती है । इसकी छाल
चमड़ा सिक्काने के काम में आती है । दसरनी ।

दसन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विनयन । क्षय । नाश । २. हटा देना ।
बहिष्करण । निष्कासन । ३. सेपण । फेंकना [को०] ।

दसना^१—क्रि० प्र० [हिं० दासना] बिछना । बिछाया जाना ।
फँसाया जाना ।

दसना^२—क्रि० स० बिछाना । विस्तर फैलाना । उ०—विवेक सों
भनेकषा वसे भनूप भासने । भनयें भ्रम आदि दें विनय किए
घने घने ।—केशव (शब्द०) ।

दसना^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] बिछीना । विस्तर ।

दसना^४—क्रि० स० [सं० दशन या दशन] दे० 'दसना' ।

दसनामी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दशनाम] दे० 'दशनामी' । उ०—लेकिन
दही पाखंडी नहीं निर्द्वंद्व स्वच्छंद भवपूत सर्व वरुणगम गिरि,
पुरी, भारती और दसनामी और उदासीन भी ।—किन्नर०,
पृ० १०१ ।

दसनावलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दशनावलि] दातों की पक्ति ।
उ०—खिल उठी चल दसनावलि भाज, कुद कलियों में
कोमल भाभ ।—गुंजन, पृ० ४८ ।

दसमरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० दस + मरिया] एक प्रकार की बर-
साती बड़ी नाव जिसमें दस तख्ते लवाई के बल सगे होते हैं ।

दसमाथ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दस + माथ] रावण । उ०—सुनु
दसमाथ ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लका लाइहैं तो
रहैगी हथेरी सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दसमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दशमी] दे० 'दशमी' ।

दसरग—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दस + रग] मलखम की एक कसरत ।

विशेष—इस कसरत में कमरेटा करके जिघर का पैर मलखम
को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सीधी पकड़ से मलखम
में खपेटकर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसाकर सवारी
बांधते हैं तथा और अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे
ऊपर खसकते हैं ।

दसरथ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ' । उ०—क्यों न
सँभारहि मोहि, दयासिधु दसरथ के ।—तुलसी प्र०, पृ० ६० ।

दसरथ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ' ।

यौ०—दसरथसुत = रामचंद्र । उ०—सोइ दसरथसुत भगत हित
कोसल पति भगवान ।—मानस, १।११८ ।

दसरनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी । वि० दे०
'दसन' ।

दसरान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दस + रान ?] कुश्ती का एक पेच ।

दसराहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशहरा] विजया दशमी उ०—ढोला
रहिसि निवारियउ मिलिसि दई कह लेखि । पूगल हृदय ज
प्राहुणउ, दसराहा लग देखि ।—ढोला०, पृ० २७३ ।

दसवाँ^१—वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ घोर वस्तुओं के
उपरांत पड़ता हो । जो क्रम में नौ घोर वस्तुओं के पीछे हो ।
गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो । जैसे, दसवाँ
लड़का ।

दसवाँ^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दशगात्र' ।

दसस्यंदन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दस + स्यन्दन] बजरथ । उ०—
जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसल्या धनि दसस्यंदन ।
—धनानंद०, पृ० ५५१ ।

दसांग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] दे० 'दशांग' ।

दसा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा' ।

दसा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० दस] भगरवाल वैश्यों के दो प्रधान मेरों
में से एक ।

दसारन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दशाणं] एक देश । दे० 'दशाणं' ।

दसारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो पानी के किनारे
रहती है ।

दसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दशा] १. कपड़े के छोर पर का सूत ।
छोर । २. कपड़े का पल्ला । यान का भाँवल । उ०—आता
है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय ।—कबोर (शब्द०) ।
३. बैनगाड़ी की पटरी । ४. चमड़ा छीलने का औजार । रापी ।
५. पता । निशान । चिह्न ।

दसैंदू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] केंदू । तेंदू का पेड़ ।

दसेरक, दसेरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक' ।

दसौं^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दशमी, हिं० दसई] दशमी तिथि ।

दसोतरा^१—वि० [सं० दशोत्तर] दस ऊपर । दस अधिक । जैसे,
दसोतरा सी अर्थात् एक सी दस ।

दसोतरा^२—सञ्ज्ञा पुं० सी में दस । सैकड़ा पीछे दस का भाग ।

दसौंधी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दास (= दानपत्र) + दम्भुक (= स्तुतिगायक,
भाट)] बंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने का
ब्राह्मण कहती है । ब्रह्मभट्ट । भाट । राजाओं की वंशावली
और प्रशंसा करनेवाला पुरुष । उ०—(क) राजा रहा दृष्टि
करि भौषी । रहि न सका तब भाट दसौंधी ।—जायस
(शब्द०) । (ख) देस देस तें डाढ़ी घाए मनवाँछित फन पायो ।
को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबन मन भायो ।—
सूर (शब्द०) ।

दस्तंदाज—वि० [फा० दस्तदाज] हस्तसेप करनेवाला । बाधा देने-
वाला । छेड़छाड़ करवेवाला [को०] ।

दस्तंदाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० दस्तंदाजी] किसी काम में हाथ डालने
की क्रिया । किसी होते हुए काम में छेड़छाड़ । हस्तसेप ।
दखल ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

